



# हिन्दी विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक  
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहाशय,  
शिक्षक-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, पद्म, चार, ए, एष  
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्गृहित ।

—#—

विंशति भाग  
( रीणायन—घसुवशु )

## THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārṇava,  
Siddhānta-vāridhī, Śabda-ratnākara, Tattva-chintāmaṇi, M. R. A  
Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Banglā Sāhitya Parīśad  
and Kāyastha Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-  
bhāṅja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism;  
Hon. Archæological Secretary, Indian Research Society,  
Associate Member of the Asiatic  
Society of Bengal &c. &c. &c.

—♦—

Printed by A. Sen, at the Visvakosha Press.

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu  
9, Visvakosha Lane, Baghazar Calcutta.

1929.



हिन्दी

# विष्वकोष

विशति भाग

रैणायन ( स० पु० ) गीतभेद । ( संस्कारकीमुदी )  
रैहर ( हि० पु० ) ऋगङ्गा, लडाई ।  
रैहाँ ( अ० पु० ) एक प्रकारकी पतलपत्ति ।  
रोंग ( हि० पु० ) शरीर परका बाल, लोम ।  
रोंगटा ( हि० पु० ) मनुष्यके सिरको छोड़ कर और  
सारे शरीर परके बाल ।  
रोंगटी ( हि० स्त्री० ) खेलमें घुरा मानना या बेईमानी  
करना ।  
रोंडा ( हि० पु० ) कच्चे आगकी सुलाई हुई फाँक,  
आमलकी ।  
रो टामस ( Sir Thomas Roe )—एक अङ्गरेज राजदूत ।  
भारतवर्षमें वाणिज्य, फैलानेकी आशासे इङ्ग्लैण्डेश्वर  
१म जेम्सने इन्हे मुगल बादशाह जहाङ्गीरकी सभामें  
मेजा था । इङ्ग्लैण्डेश्वरका सौजन्य देख कर तथा  
उपहारसे प्रसन्न हो कर बादशाहने, टामस रोका  
वाणिज्योन्नतिविषयक प्रस्ताव सुना । इस देशहितकर  
उद्देश्यसाधनके लिये, वे अङ्गरेज दूतके साथ कई दिन  
तक परामर्श करते रहे । भीका देख कर राजदूत मीठी  
मीठी बातोंसे बादशाहकी खुश करने लगे । दूतकी बात-  
चीतसे प्रसन्न हो कर बादशाहने अङ्गरेज जातिकी  
भारतवाणिज्यके बहुतसे विषयोंमें अधिकार दे दिया ।

द्वितीय-राजद्वार और भारतवर्षमें रहते समय  
टामस रो दिल्ली और भारतके अन्यान्य स्थानोंका तत्का-  
लीन विवरण अपने पत्रादिमें लिपियद्ध कर गये हैं ।  
उन सबकी आलोचना करनेसे उस समयके भारत-इति-  
हासका प्रकृत विवरण संग्रह किया जा सकता है ।  
रोइसा ( हि० पु० ) रूसा घास । इसकी जड़से सुगन्धित  
तेल निकलता है । खां देखो ।  
रोइया ( हि० पु० ) जमीनमें गड़ा हुआ काठका कुंदा  
जिस पर रख कर गन्गेके टुकड़े काटते हैं ।  
रोक ( स० पु० ) रूच-घञ् न्यङ्गादित्यात् कुत्वं । १ नकद  
रपया, रोकड़ । २ नकद व्यवहारका सीदा । ३ दीप्ति ।  
( स्त्री० ) ४ छिद्र, छेद । ५ नीका, नांव । ६ चल,  
चलना, बिसकना ।  
रोक ( हि० स्त्री० ) १ किसी कार्यमें प्रतिबन्ध, काममें  
बाधा । २ वह वस्तु जिससे आगे बढ़ना या चलना  
रुक जाय, रोकनेवाली वस्तु । ३ ऐसी स्थिति जिससे  
चल या बढ़ न सकें, गतिमें बाधा, अटकाव । ४ मनाही,  
निषेध ।  
रोकभोंक ( हि० स्त्री० ) रोकटोक देखो ।  
रोकटोक ( हि० स्त्री० ) १ बाधा, प्रतिबन्ध । २ मनाही,  
निषेध ।



रौकड़ ( हि० र्क्री० ) १ मग्न रूपया पैसा भादि विद्योपगतः पद रकम निम्नमेंसे भाप-रूपय होता हो । २ जमा, पूंजी ।

रौकड़ बहो ( हि० र्क्री० ) यह बहो या किलाव जिसमें नकद रूपयेका लेन देन लिखा रहता है ।

रौकड़बिक्रो ( हि० र्क्री० ) नकद काम पर की हुई बिक्री ।

रौकड़िया ( हि० पु० ) रौकड़ रखनेवाला, यजमानयो ।

रौकना ( हि० क्रि० ) १ गतिको अवरोध करना, २ चलते हुएको धामना । २ जाने न देना, कही जानेसे मना करना । ३ अद्ययन डालना, बाधा डालना । ४ किसी क्रिया या व्यापारको स्थगित करना, जारी न रखना । ५ ऊपर लेना, मोड़ना । ६ यशमें रचना, कायूमें रचना । ७ मार्गमें इस प्रकार पड़ना कि कोई पशु दूसरी ओर न जा सके, छेड़ना । ८ बदनो हुई सेना या दलका सामना करना । ९ बाण रचना, मना करना ।

रोग ( सं० पु० ) दन्त्येऽनेनेति रोगजनमिति या श्रुज घञ् पदान्तरातीति श्रुज- (पदवर्धनः) इत्यस्येण्य् । पा ३।१।१६ ) इति कर्त्तरि घञ् । १ कुलीन्य । २ यह अयस्या जिससे अच्छो तरह न चले और जिसके बढने पर जीयनेमें संदेह हो, शीमारो, मर्त । पचाप-पञ्ज, यथा, उपताप, व्याधि, गद, आमय, अवाटय, आम, आतङ्क, भय, उपघात, मङ्ग, मारुत, तमोविकार, ज्वानि, क्षय, अमाश्रय, मृदुभूष्य, अन, माग्य, आकल्प । (हं) पापका फल रोग है । पाप करनेसे रोग होता है पापको कर्मो धरो होनेसे रोग मो कर्मो धरो हुआ करता है । पाप अनिपातक, महापातक और अनुपातकके मेदसे रोग प्रकारका है ।

अनिपातकादि पापका अनुष्ठान करनेसे पढने तरह भुगमना होता है । पूर्वजगमष्टय यह पाप नरकभोगके बाद फिर व्याधिपदमें देहको पाँडित करता है । अनपय पाप हो पक्षमात रोगका कारण है । निपातक ज्ञातिके कर्मो रोग नहीं होता । रोग होनेसे रोगका कारण जो पाप है उसका प्रायश्चित्त करना होता है । पापका हान होनेसे रोगका मो हान होता है । इत्यन्यत्रय, होम, दान और ह्युत्कर्षन भादि द्वारा भी रोगको नाशित होतो है । अर्थां भादि रोग अतिजानकाम, कुपु, राजपद्मना, प्रमेह, मर्दो, मूलहृष्य, अक्षरों, क्वार, दुग्धजन, गलामाया

पद्मापात, अक्षिनादा, महापातकज, जलोदर, पशु, श्लेधा, शूत्र, भ्यास, अज्ञोर्ण, उवर, सदि, रत्नाण्युद, पिसपै भादि रोग उपपातकज हैं । किस पापसे कौन रोग होता है उसका विषय कर्मविपाकमें लिखा जा चुका है । कर्मविपाक पत्र देखो ।

आ पय्यांशो, जितेन्द्रिय, देयद्विप्रभनः और स्वधर्मा-नुष्ठानकारी हैं उन्हें रोग नहीं होता । पैदाकके मतसे रोग और रोगके कारणदिक्का विषय संक्षेपमें नीचे लिखा गया है ।

‘रोगस्तु दोषैरेवम् दोषणाम्यगरो गता । रोगा दुःखस्य दातारो उग्रमभूवको हि ते ॥’ (वाग्भट) दोषके पैदापको रोग कहते हैं । पापु, पिस और कफ इन तीन दोषोंमें जब विपमना होती है तब ही रोग होता है । दोषके साम्य रहनेसे शरीर शीरोय रहता है । आहार विहायदि इस प्रकार करना होगा, जिसमें दोषोंमें विपमता न होने पाये । रोगमें विपमता होनेसे ही रोग होगा । रोग शरीरका दुःखदायक है ।

निज और आगन्तुक मेदसे रोग दो प्रकारका है । पढने पापु भादि रोग विगड़ कर पोछे जहाँ रोग उत्पन्न करता है वहाँ उसे निज और जहाँ रोग उत्पन्न हो कर पोछे जातादि रोग कुपित होता है वहाँ उसे आगन्तु रोग कहते हैं । इन सब रोगोंका अधिष्ठान देह और मन है । उनमेंसे उग्र भादि रोगोंका अधिष्ठान देह तथा मय, मूर्च्छा, संन्यास भादिका आघार मन है । (वाग्भट)

पढने ही लिखा जा चुका है, कि दोषको विपमता रोग तथा समता ही आरोग्य है । रोगमात हो प्राणियोंका विशेष है ज्ञापक है । यह रोग चार प्रकारका है, स्वाभाविक, आगन्तुक, मानसिक और कायिक । इनमेंसे आ रोग स्वभावजात है उसे स्वाभाविक कहने है, जैसे—क्षया, विवासा, निद्रा, वादंश्व और मृदु यह स्वभावजात रोग सभीको भोग करना होगा । फिर जगमने जो रोग उत्पन्न होता है उसे भी मृदु रोग कहने है जैसे जगमाय इत्यादि ।

अनिपातकादि जनि अथवा जगमातर-भादिरोगका नाम आगन्तुक रोग है । जैसे—दान, क्रोध, शीम, मोह, मय, अनिमान, क्षोणता, श्रूतता, शोक, विषय, ईर्ष्य,

भेद्युवां और मातसर्ज आदि । इसके सिवा अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, मोह, तम और सग्यास आदि भी आंगन्तुक है । पाण्डु प्रभृति रोगको कायिक कहते हैं ।

यह रोग फिर कर्मज, दोषज और कर्मदोषजके भेदसे तीन प्रकारका कहा गया है ।

कर्मज रोग—पूर्वजन्मकृत प्रबल दुष्कर्मसे जो सब उत्पन्न होता है उसे कर्मज रोग कहते हैं । यह कर्मज रोग तीन दोषोंके विगड़नेसे उत्पन्न नहीं होता है । यह रोग केवल भोग और प्रायश्चित्तादिके द्वारा शान्त होता है । यह चिकित्साध्य नहीं । शास्त्रमें कहा है, कि शास्त्रानुसार यथाविधि रोगका निर्णय कर द्वाहै कर्मसे भी जो रोग नहीं दबता उसे कर्मज रोग कहते हैं ।

“यथाशास्त्रं नृणां तथा व्याधिविहितैः ।  
न रामं वाति यो व्याधिः शोयो कर्मजा बुधे ॥”

( भावप्र० )

दोषज रोग—अनियमित आहार और विहारदि द्वारा वायु, पित्त और कफ द्रुपित हो कर जो सब रोग उत्पन्न करता है उसे दोषज रोग कहते हैं । इस पर कोई कोई प्रश्न करते हैं, कि पूर्वजन्मकृत प्रबल सुकृत रहनेसे आहार और विहारदिका नियम लड़ने करने पर भी कोई रोग नहीं होता, ऐसा देखा जाता है । अतएव दोषज व्याधिका कारण भी पूर्वजन्मकृत कर्म है, इसमें जरा भी संदेह नहीं । तब फिर इसे दोषज व्याधि किस तरह कह सकते ? इस प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि पूर्वजन्मकृत दुष्कर्म दोषज व्याधिका मूल कारण है सही, पर अनियमित आहार विहार द्वारा भी रोगोंकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसी लिये उसको दोषज व्याधि कहते हैं ।

कर्मदोषज रोग ।—यदि दोष थोड़ा द्रुपित हो और उससे अति प्रबल रोगकी उत्पत्ति देखी जाय, तो उसे कर्मदोषज रोग कहते हैं । प्रबल दुष्कर्म ही इस रोगका मूल कारण है । दोषकी अव्यताके कारण रोगकी अव्यता होना उचित था, लेकिन ऐसा न हो कर प्रबल रोग उत्पन्न होता है । दुष्कृत क्षय होनेसे यह रोग भी क्षय होता है । इस रोगमें स्वल्प दोष ही उक्त दोषका कारण है । अर्थात्, अल्प दोषकी भी रोगोत्पत्तिक

कारण कहा गया है । अतएव दोष और कर्म इन दोनोंसे उत्पन्न होनेके कारण इसे कर्मदोषज रोग कहते हैं ।

दुष्कर्मका क्षय होनेसे दुष्कर्मकृत रोगोंका, उपयुक्त औषधके सेवनसे दोषज रोगका तथा दुष्कर्म और रोगक्षय होनेसे कर्मदोषज रोगोंका क्षय होता है । उपयुक्त औषधके सेवनसे दोषज रोगोंका क्षय होता है, इसका तात्पर्य यह कि दोषज व्याधिका मूल कारण दुष्कर्म है, औषध बनानेमें जिन सब द्रव्योंकी आवश्यकता होती है । उनके अभावजनित क्लेश भोग द्वारा तथा कण्ड, तिक्त, कपाय आदि मनके अप्रीतिकर द्रव्य भक्षणादिजनित क्लेश भोग द्वारा दुष्कर्मका ह्रास होता है । इसके बाद औषधके सेवनसे रोगोंके प्रत्यक्षोभूत हेतुका अधोत्क्षुपित दोषका क्षय हुआ करता है ।

रोग साध्य, असाध्य और याध्यके भेदसे तीन प्रकारका है । इनमेंसे फिर साध्य रोगके भी दो भेद हैं, सुखसाध्य और कष्टसाध्य । जो रोग चिकित्सा द्वारा प्रशमित होता है उसे साध्य, जो चिकित्सासे आरोग्य नहीं होता उसे असाध्य और जो रोग चिकित्सा द्वारा स्पृगित रहता है तथा चिकित्सा नहीं करनेसे प्राण नाश होता है उसे वाय्यरोग कहते हैं । यत्नपूर्वक खंभे लगानेसे जिस प्रकार गिरता हुआ घर खड़ा रह जाता है, उसी प्रकार औषधादि द्वारा सुचिकित्सित होनेसे वाय्य रोगोंका भी शरीर रक्षा पाता है ।

रोगोत्पादक दोषके प्रकोपसे अन्याय जो सब विकार उत्पन्न होते हैं उनका नाम उपद्रव है । (भावप्र० पूर्व०५)

रोग, रोगके कारण और उनके निरूपणादिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

पुरुषमें सुख दुःखका संयोग होनेसे ही उसको रोग कहते हैं । यह दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक । यह तीन प्रकारका दुःख सात प्रकारके रोगोंमें परिणत होता है । सात प्रकारके रोग ये सब हैं—१ आदिबलजात, २ अन्मबलजात, ३ दोषबलजात, ४ स्वघातबलजात, ५ कालबलजात, ६ दैवबलजात और ७ स्वभाबलजात ।

आदिबलजात रोग दो प्रकारका है—मातृदोषजात



यदि हमेशा आश्रय किये हुए है, तो सर्वथा सभी प्राणियों को पीड़ित रहना पड़ेगा। यदि वायु, पित्त और कफ भिन्न हीन तथा उबरादि रोग भी भिन्न है, ऐसा कहा जाय तो उबराके समय अन्य प्रकारका लक्षण न दिखाई दे कर केवल वायु, पित्त और कफका लक्षण ही क्यों दिखाई देता है। इसलिए वायु, पित्त और कफको ही उबरादि रोगका कारण कहा है। इसकी मोमांसामें कहा गया है कि वायु, पित्त और कफमें ही उबरादिरोग दिखाई देता है सही, पर उसमें हमेशा नहीं रहता। जिस प्रकार बिजली, हवा, वर्षा और वज्र आकाशके सिया दूसरी जगह नहीं दिखाई देते यद्यपि वे आकाशमें हमेशा नहीं रहते, किसी कारण द्वारा आकाशमें उदय होते हैं, उबरादिरोग भी उसी प्रकार अन्य कारणसे वायु, पित्त और कफको आश्रय कर दिखाई देता है। तरङ्ग या बुदबुद जिस प्रकार जलसे भिन्न नहीं है यद्यपि जल रहने पर भी उसमें निरपचिन्धन तरङ्ग या बुदबुद नहीं रहता अन्य कारण द्वारा यह जलमें उत्पन्न होता है, उबरादिरोग भी उसी प्रकार अन्य कारण द्वारा वायु, पित्त और कफमें उत्पन्न होता है।

किसी प्रकार स्वाभाविक नियमका लङ्घन करने अथवा श्रुत्युक्त प्रभावसे वायु, पित्त और कफके मध्य एक या एकसे अधिक दोष बढ़ता है। यह वर्द्धित दोष उसी प्रकार किसी कारण द्वारा कुपित होता है। पीछे यह कुपित दोष जब शरीरके किसी एक देशका आश्रय लेता है, तब एक देशगत रोग उत्पन्न होता है। सर्वाङ्ग वशात होनेसे उबरादि सर्वाङ्गगत रोग हुआ करता है। दोष कुपित हो कर चाहे शरीरके एक देशका आश्रय करे चाहे सारे शरीरका, दोषका प्रकोपमाल ही रक्तका प्रकोप होता है। रक्तके कुपित होनेसे ही यह और अधिक वेगवान् हो उठता है। इसी कारण प्रायः सभी रोगोंमें उबराका लक्षण दिखाई देता है अर्थात् शरीर उष्ण और धमनी वेगवती-सी मालूम होती है।

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्रप्ति ये पांच रोगज्ञानके कारण हैं।

जिससे दोष कुपित हो कर रोगोत्पादन कर सकता

है, उसे निदान कहते हैं। विप्रकृत और सन्निकृतके भेदसे निदान दो प्रकार हैं। विरुद्ध-आहार विहारादिको विप्रकृत अर्थात् दूरवर्त्तिनिदान तथा कुपित यातादि दोषको सन्निकृत अर्थात् निकटवर्त्तिनिदान कहते हैं।

रोग विशेष दिखाई देनेके पहले जिन सब लक्षणों द्वारा भावी रोग अनुमान किया जाता है उसका नाम पूर्वरूप है। पूर्वरूप भी दो भागोंमें विभक्त है, सामान्य और विशेष। जिस पूर्वरूप द्वारा वायु, पित्त और श्लेष्मा इन तीन दोषोका कोई भी विशेष लक्षण न दिखाई दे कर किसी भावी रोगमात्रका अनुमान किया जाता है, उसे सामान्य पूर्वरूप कहते हैं। फिर जिस पूर्वरूप द्वारा भावी रोगका दोषभेद तक अनुमान किया जा सकता है उसे विशिष्ट पूर्वरूप कहते हैं। यह विशिष्ट पूर्वरूप स्पष्ट रूपमें दिखाई देनेसे उसे रूप कहते हैं। वस्तुतः जिन सब लक्षण द्वारा उत्पन्न रोग जाना जा सकता है उसका नाम रूप है।

निदान विपरीत या रोग विपरीत अथवा दोनोंके विपरीत कार्यकारक औषध विशेषके सेवन तथा उसी प्रकार आहार विहारदि द्वारा रोगका उपशय होनेसे उसकी उपाशय कहते हैं। इसके विपरीतका नाम अनुपशय है। इस उपशय और अनुपशय द्वारा रोगका गूढ लक्षण निर्णय करता होता है। दोष जब कुपित हो कर शारीरिक अवयव विशेषमें अवस्थान-वा-विचरणपूर्वक रोगोत्पादन करता है, तब उसे सम्प्रप्ति कहते हैं। संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और कालानुसार यह सम्प्रप्ति भिन्न भिन्न हुआ करती है। ८ प्रकारके उबरा, ५ प्रकारके गुहम और १८ प्रकारके कुष्ट आदि विभेदका नाम संख्या है। त्रिदोषज और त्रिदोषज रोगके कुपित दोषोंमेंसे कौन दोष किस परिमाणमें कुपित हुआ है, यह जाननेके लिये प्रत्येक दोषका लक्षण विचार कर जो अवयव विभाग किया जाता है उसका नाम विकल्प है। ऐसे रोगोंके मिलित दोषोंमें जो दोष अपने निदान द्वारा कुपित होता है यही प्रधान है तथा उस कुपित दोषके संसर्गसे अन्य दो दोष जब कुपित होते हैं तब यह अप्रधान कहलाता है। जो रोग सभी निदानों द्वारा उत्पन्न होता है तथा

त्रिगुणः पूर्णरूप और रूप सम्पूर्णरूपसे दिव्यां देता है यह रोग बनवान् है । फिर जो अल्प निदान द्वारा उपपन्न हो कर अल्पमात्र पूर्णरूप और रूप प्रकाश करता है उसे हीनबल समझना होगा ।

ये सभी रोग साधारणतः शोषण और आगन्तुक दो नामोंमें विभक्त हैं । पहले जो रूप भेद कह भाये है वे रोगों को अ.गोके अल्पभुं क हैं । जो सब रोग वायु, पित्त और कफ इन तीन शोषोंमेंसे पूषण् एक एक वा मिश्रित दो भयथा तीन शोषमें उपपन्न होते हैं, उन्हें शोषण कहते हैं । एक शोषके कुपित होनेसे यह दूसरे शोषको भी कुपित कर आलता है, इस कारण कोई भी रोग एक शोषण नहीं होता, यही साधारण नियम है । तब जो एक दो या तीन शोष रोगका प्रथम उत्पादक होता है, उसके अनुसार रोग भी एकशोषण, द्विशोषण या त्रिशोषण कह- साया है ।

जो सब रोग अग्निपात, अग्निघात, अग्निशाय और भूतप्रेम आदि कारणवशात् इच्छात् उपपन्न होते हैं, उनका नाम आगन्तुक है । अपने अपने निदानानुसार शोष विशेषके कुपित हुए बिना शोषणरोगकी उत्पत्ति नहीं होती । किन्तु आगन्तुक रोगके आरम्भमें ही शोषना में सूक्ष्म होती है, पीछे उसके शोष विशेषे कुपित होता है, यही शोषों प्रकारके रोगोंमें पूषण्ता है ।

प्रकुपित वायु, पित्त और कफ यह त्रिशोष शोषण रोगों- ल्पति विशेषमें विप्रकृत निदान है । विविध हितजनक आहार-विहातादि रूप निदान द्वारा ये तीन शोष कुपित हो कर रोगोत्पादन करते हैं । इसके निवा वतियव उपपन्न रोग और रोगविशेषका निदान होगा है । शैव— उपर सत्तापसे रक्तपित्त, रक्तविरागे उपर, उपर और रक्तविराग इन दोशोंसे राजपपम, प्लोडाशूदिसे उदररोग, उदररोगसे शोष, अरुणो उदररोग वा शुष्म, प्रतिशयापसे काम, कामसे शररोग तथा शररोगसे पानुशोष आदि रोग उपपन्न होने से ज्ञाने है । इन सब रोगोत्पादक शोषोंमेंसे केई केई रोग अन्य रोग उत्पादन करने भी कार्य करानात रहता है तथा केई रोग अन्य रोगोत्पादन कर विवर्तित होता है ।

रोगरत्ना ।

रोग रोगमें पहले अच्छी तरह परीक्षा करनी होती है । परीक्षा करके पीछे उसकी यथाज्ञान विचरमा विशेष है । विकिरस्ताका प्रथम उपाय रोग परीक्षा है । अच्छी तरह रोगका पता न लगनेसे उसकी विचरमा ही नहीं सकता । अनिश्चित रोगका कोई भी औषध फलप्रद नहीं होता बल्कि उसमें अहित हो होता है ।

रोगपरिष्ठाके शास्त्रमें तीन उपाय कहे गये हैं, शास्त्रों पक्षेन, प्रत्यक्ष और अनुमान । पहले रोगीसे कुछ हालत सुन कर शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षणके साथ उसे मिलाया होगा । पीछे अनुमान द्वारा रोगका आगन्तुक शोष और उसका बलाघ्न निरस्य कर लेना होगा । रोगीके निकट वास्तव्य आशनेके समय सभी इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करना आवश्यक है । रोगीके वर्ण, आकृति, परिमाण अर्थात् क्षोणता या पुष्टता और वृत्ति तथा मल, मूत्र, मूत्र आदि सभी रूप्ते ज्ञाने लायक विषय देख कर रोगीके मुखसे उसकी कुल हालत तथा अन्तकुक्षन, रश्मिस्थानमें या अंगुलिकी गिरहके स्फुटन आदि शरीरगत लक्षण सुनना आवश्यक है । पीछे गन्ध ठीक ही था पदाव हो गई है यह परीक्षाके लिये सर्वशरीरगत गन्ध तथा मल, मूत्र, शुक्र और वास्त- पदार्थ आदिको गन्ध सूँघ कर तथा सत्ताप और नाड़ीकी गति स्पष्ट कर प्रत्यक्ष करना होता है । अग्निबल, शारीरिक बल, जल और लयाव आदि विषय कार्य विशेष द्वारा अनुमान करना होता है । शुषा, पिपासा, अकृति, म्लानि, निद्रा और सन्निद्रता आदि रोगीसे पूछ लेना उचित है ।

यदि दो या तीन रोगीके मध्य कौन रोग हुआ है इस- का पता न लगे तो पहले सामान्य औषधका प्रयोग करें । इसमें उपकार वा अक्षरकार समझ कर रोगका निर्णय करना होगा । सूक्ष्म विशेष द्वारा साधवता, मासा- पचना वा ज्वरवता निरस्य करना होता है । रोगीके अविद्यलक्षण उपदिष्ट होनेसे मूल्य विचार करना होती है । रोगीकी आर्द्र, मूत्र, मूत्र, हिडा आदिको विशेष कर- ने परीक्षा करना आवश्यक है ।

रोगोत्पादक शोष—सारे शरीरमें परिष्कृत हो कर जो सब सूक्ष्मसूक्ष्म रश्मिसे देते हैं, उन्हें अविद्यलक्षण

कहते हैं। यथार्थमें जिस किसी लक्षण द्वारा माथी मृत्युका अनुभव किया जा सकता है, उसीका नाम अरिष्ट चिह्न है। चिकित्सकको इस अरिष्ट चिह्नके प्रति विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। यह अरिष्टलक्षण रोगभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारका है। अरिष्टलक्षण दिखाई देनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं रहती, किन्तु फिर भी रोगीका परित्याग करना उचित नहीं। जब तक रोगी जीता है तब तक उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। किस किस रोगमें कैसा अरिष्टलक्षण दिखाई देनेसे रोगीकी मृत्युकी सम्भावना है उसका विषय वैद्यकशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

अरिष्टलक्षण—शरीरके जो सब अङ्ग स्वभावतः जिस प्रकार रहते हैं उनकी अन्यथा होनेसे रोगीकी मृत्यु स्थिर करनी होगी। शुक्लवर्णकी कृष्णता, कृष्णवर्णकी शुक्लता, रक्त आदि वर्णोंका अन्य प्रकारका वर्ण होना, स्थिरकी अस्थिरता, अस्थिरकी स्थिरता, स्थूलकी कृशता इत्यादि प्रकारके स्वभावका विपरीत होनेसे अरिष्ट लक्षण स्थिर करने होते हैं। कहनेका मतलब यह कि शरीर वा स्वभावकी कुछ भी विकृति होनेसे उसे अरिष्ट लक्षण कहा जाता है।

जिन सब रोगीके भोजन नहीं करने पर भी मल-मूत्रकी वृद्धि या भोजन करने पर मलमूत्रका अभाव, स्तनमूल, हृदय या धक्षस्थलमें वेदना, किसी अङ्गका मधोस्थल स्फीत और दोनों ओर कृश अथवा मध्यस्थल कृश और दोनों ओर स्फीत, अर्द्धाङ्गमें शोथ या सार, शरीर शुष्क तथा खर नष्ट, हीन, विकल या विकृत होना या दन्त, मुख, नख आदि स्थानोंमें विषण्ण पुष्पकी तरह चिह्न या ट्टिमण्डलमें भिन्न प्रकारका विकृत रूप मान्द्रम होना या अङ्ग तैलाभ्यङ्गकी तरह दिखाई देना, इत्यादि प्रकारको अरिष्ट चिह्न जानना होगा। अतिसार रोगमें अथचि या दुर्बलता, कासरोगमें तुष्णामिभूतता, क्षीणता, यमन, अचि, रक्तयमन, हाथ, पैर और मुँहका फड़कना आदि लक्षण विशेष अरिष्टजनक हैं।

असाध्य रोगका लक्षण—पहले लिखा जा चुका है, कि साध्य, असाध्य और यात्यके भेदसे रोग तीन प्रकारका है। साध्यरोगकी भी यदि अच्छी तरह चिकित्सा न

की जाय, तो वह असाध्य हो जाता है। वातप्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, अर्थ, भगन्दर, अशमरी, मूदुर्गम तथा उदरी-रोग ये ८ प्रकारके रोग स्वाभाविक असाध्य हैं। बल और मांसक्षय, भ्वास, तुष्णा, शोथ, वमि और ज्वर ये सब उपद्रव या मूर्च्छा, अतिसार और हिक्का उपस्थित होनेसे रोग असाध्य होता है, जिस जिस रोगमें जो जो उपद्रव निर्दिष्ट हैं वे सब उपद्रव दिखाई देनेसे तथा प्रमेह रोगमें चित्तके अरिष्टकी तरह होने तथा अत्यन्त धातु गिरने और अतिशय यन्त्रणा होनेसे यह असाध्य है।

कुष्ठरोग—क्षत अङ्गका विदीर्ण हो कर रस निकलना, आँख लाल और खरमङ्ग होना तथा यमन, विरेचन, नस्य, निरुद्धवस्ति और उत्तरवस्ति इन पांच कर्मोंमें कोई फल न दिखाई देनेसे असाध्य तथा अंशरोग, तुष्णा, अचि, अतिशय वेदना, बहुत रक्त गिरना, शोथ और अतिसार ये सब उपद्रव होनेसे, भगन्दररोगमें वायु, मूत्र, विष्टा और शुक्र ये सब निकलनेसे, अशमरीरोगमें नाभि और कोंपके स्फीत होनेसे तथा पेशाब बंद और अत्यन्त वेदना होनेसे, मूदुर्गमरोगमें गर्भकोंपमें शूल-वेदना, कुक्षिश्रेणमें रक्तके जमा होनेसे तथा योनिमुख समाच्छादित हो कर ये सब लक्षण दिखाई देनेसे यह असाध्य होता है। जो जो रोग जिस जिस उपद्रवसे असाध्य होता है वह उन्हीं शब्दोंमें लिखा जा चुका है।

रोग असाध्य होनेसे वह रोगीसे नहीं कहना चाहिये, बल्कि उसे सामान्य रोग कह कर आभ्यासन देना उचित है। क्योंकि, रोगी यदि जीवनके प्रति इत्ताश हो जाय, तो अनेक साध्य रोग भी असाध्य हो जाते हैं। रोगीके अनुगत, विभ्वस्त और प्रिय व्यक्त उसके पास रह कर आभ्यासपूर्ण प्रियवाक्य द्वारा उसे संतुष्ट रखें। रोगीके निकट बहुत आदमियोंका रहना उचित नहीं। जो घर सूखा, साफ सुथरा हो और जिसमें हवा अच्छी तरह आती जाती हो, वैसे सुन्दर घरमें रोगीको रजना उचित है। रोगीका विद्यावन सूखा और मुलायम रहे।

रोगके उत्पन्न होते ही उसकी यथाविधान चिकित्सा करे। दोष कम होने पर भी उसकी उपेक्षा करना उचित नहीं। क्योंकि रोग अल्प होने पर भी अग्नि, शल और विषकी तरह विकार उपस्थित हो सकता है।

द्वारा चारण करनेमें ही रोग सुगतता पड़ेगा, इसमें  
 वृद्धि नहीं। जिस रोग हुआ है उसे रोगी कहते हैं।  
 यह रोगी निश्चित्य और अविचित्रत्यके अर्थात् दो प्रकार  
 का है। जिस रोगीकी प्रकृति, यथा और चरु  
 आदि इन्द्रियों विहृत न हो कर असाधमें रहती  
 है तथा जो रोगी सुख और दुःखजनक क्रियादिमें विहृत  
 नहीं होता और निश्चित्यवत्ता वाच्य यथा इन्द्रिय दमन  
 करनेमें समर्थ होता है उसे निश्चित्य रोगी कहते हैं।

जो अग्नि अधिक शोथी, अग्निशक्ति, हृत्कोश, प्यायुल्लिख,  
 शोकाभिभूत, अनिद्रित इन्द्रियशोथी तथा निश्चित्यक-  
 र्ण वायानुसार न बन कर अपने इच्छानुसार चलता  
 है उसे अविचित्र्य रोगी कहते हैं। अर्थात् निश्चित्यक-  
 र्ण रोगीको निश्चित्य न करे। (सुभुक्त भाष्यम्)

रोगकारक (सं० लि०) अवाचिजनक, बीमारों पैदा करने-  
 वाला।

रोगकारक (सं० बनी०) पलायुपन्न, बहमकी लकड़ी।

रोगघन (सं० लि०) रोगसे पीड़ित, बीमारोंमें पड़ा  
 हुआ।

रोगघन (सं० बनी०) रोग हतोति हन्-त्वं । र् औप्य।  
 (लि०) २ रोगनाशक, बीमारोंको दूर करनेवाला।

रोगघ्न (सं० पु०) रोगों नाशोति वा च । येत् ।

रोगघ्न (सं० बनी०) रोगविपरीतमें अमिहता।

रोगद (सं० लि०) पीडादायक, दुःख देनेवाला।

रोगद (सं० पु०) १ संज्ञ, चिकित्सा। २ लाघु आदि-  
 में बना हुआ ममात्मा जिसमें मिहृके बर्तनमें आदि पर  
 चढ़ते हैं। ३ यमकृष्ण मृदायम करनेके लिये कुसुम  
 वा बोंके मेलसे बनाया हुआ ममात्मा। ४ दन्तनाशिय  
 जिससे किसी यन्त्र पर रोगनेसे यमक, चिकित्सा और  
 रत भाष्य, पालिका।

रोगदहक (सं० लि०) जिस पर रोगन किया गया हो,  
 पालिकादहक।

रोगनाशक (सं० लि०) रोगदूर, बीमारों दूर करने  
 वाला।

रोगनिदान (सं० बनी०) रोगके लक्षण और अर्थान्तके  
 कारण आदिकी परीक्षण, ममात्मा।

रोगोत्थ (सं० लि०) रोगन किया हुआ, रोगनदार।

रोगपति (सं० पु०) रोगदय पति। उच्यते। जो रोगों  
 कठिन रोग यवों न हो, बिना उपरके यह प्रत्यक्ष नहीं हो  
 सकता। इसलिये उपरको रोगपति कहा है।

रोगपरिमह (सं० बनी०) उग्र रोग होनेपर कुछ प्याय  
 न करके उपका सुहन।

रोगप्रद (सं० पु०) उपरदायक।

रोगमात्र (सं० लि०) रोगों मात्रमें जन्यपि। रोगमुक्त,  
 रोगी।

रोगम् (सं० स्त्री०) रोगाणां भूः स्थानं अवाचिजनित-  
 र्वात् । आरो, दूद।

रोगमार्ग (सं० पु०) रोगाणां मार्गः। आकादि रोगायत्तं।  
 यह रोगमार्ग तीन प्रकारका है, यथा—आयत, मार्गस्थि-  
 रस्थि और कोष्ठ। इसमें आयात रक्तादि धातुगमूद और  
 त्यक् समाना जाता है। यह आयातमार्ग, मार्ग अस्थि-  
 मस्थिस्थानके बीच रोगमार्ग तथा कोष्ठ अस्थिर रोग  
 मार्ग है। (संज्ञ परमाणु ११ अ०) रोग रोगोः।

रोगमुक्त (सं० लि०) रोगाम् मुक्तः। रोगसे मुक्त,  
 बीमारोंसे मुक्तकार।

रोगमुहारि (सं० पु०) मयथरापिकारमें रसीप्यविशेष।  
 प्रसुक्त प्रजाती—पारा, गंधक, विष, लोहा, सिद्ध और  
 तांबा प्रत्येक समभाग और सोदा अर्धभाग ले  
 कर पीस लें और दो दो रसोंकी मालिवा बनाये।  
 अनुपात पाय और अर्धकका रस है। इसके गंधनमें  
 मयथर शीघ्र ही प्रसमित होता है। (संज्ञो)

रोगनाश (सं० पु०) रोगाणां नाशो यत् समागतानां।  
 नाशपत्नरोग।

रोगनश्य (सं० स्त्री०) रोगाणां नशयः। निदानरोग-  
 नश्यक चिक।

रोगविज्ञान (सं० स्त्री०) रोगस्य विज्ञानं। जिन सब  
 उपायोंमें रोगका कुछ ज्ञान होता है उसे रोगज्ञान कहते  
 हैं। अर्थ, रोगों और मरु इन दोनों उपायोंमें रोगका  
 ज्ञान होता है इसलिये यह भी प्रकाशक है। मृत और  
 जिह्वा आदि देहके, आर्त आदि रुमे और दूत आदिको  
 जाननेमें सब मायमें होता है।

(रोगनश्यक) रोग रोगोः।

रोगविनिश्चय ( सं० पु० ) रोगस्य विनिश्चयं । १ रोग-  
निश्चय, रोगका निर्णय करना । २ माधवकृत रोगविनि-  
श्चायक ग्रन्थ ।

रोगशान्तक ( सं० पु० ) रोगान् शान्तयतीति शान्ति-ण्वल् ।  
वैद्य, चिकित्सक । वैद्य रोगको शान्तिविधान करते हैं  
इससे उनका रोगशान्तक नाम हुआ । ( शब्दच० )

रोगशान्ति ( सं० स्त्री० ) रोगमुक्ति, पीडाका अपनोदन ।  
रोगशिला ( सं० स्त्री० ) रोगाय रोगनिवृत्तये शिला । मनः  
शिला, मैनसिल ।

रोगशिल्पिन् ( सं० पु० ) रोगे शिल्पीव । वृक्षविशेष,  
सोनालूका पेड़ ।

रोगश्रेष्ठ ( सं० पु० ) रोगेषु श्रेष्ठः । उच्च ।

रोगह ( सं० स्त्री० ) रोगान् हन्तीति हन् ड । औषध,  
दवाह ।

रोगहराद्रय ( सं० स्त्री० ) रोगहरं द्रव्यं । रोगनाशक वस्तु,  
वह वस्तु या चीज जिससे रोग विनष्ट हो ।

रोगहारिन् ( सं० पु० ) रोगं हरति, ह-णिनि । १ वैद्य ।  
( ति० ) २ रोगनाशक ।

रोगहत् ( सं० लि० ) रोगं हरति ह कित् तुक् च । रोग  
नाशक ।

रोगहेतु ( सं० पु० ) रोगस्य हेतुः । रोगका हेतु, बीमारी-  
का कारण ।

रोगाक्रान्त ( सं० लि० ) व्याधि-पीडित, रोगसे घिरा  
हुआ ।

रोगातुर ( सं० लि० ) रोगसे घबराया हुआ, व्याधिसे  
पीडित ।

रोगाधीश ( सं० पु० ) रोगस्य अधीशः । राजवदमरोग ।

रोगार्त्त ( सं० लि० ) रोगसे दुःखी ।

रोगासन ( सं० पु० ) उच्च ।

रोगाह्वय ( सं० पु० ) कुष्ठौषध, कुष्ठ ।

रोगिणी ( सं० लि० स्त्री० ) रोगिन् देली ।

रोगित ( सं० लि० ) १ पीडित, रोगयुक्त । ( पु० ) २ कुत्सेका  
पामलपन ।

रोगितरु ( सं० पु० ) रोगिणां शोकनाशकस्तदः अशोक-  
वृक्ष ।

रोगिन् ( सं० लि० ) रोगोऽत्यास्तीति रोग इनि । रोगयुक्त,  
पीडित । पर्याय—व्याधित, विष्टत, म्लान, म्लान, मन्द,  
आतुर, अश्वान्त, अभ्यमित, दग्ग, सामय, अपट्ट, आम-  
यावी, ग्यस्तु ।

रोगिया ( हि० पु० ) रोगी, बीमारी ।

रोगियह्वम ( सं० स्त्री० ) रोगिणां वह्वमं प्रियं । १ औषध ।  
( ति० ) २ रोगिप्रिय ।

रोगोदक ( सं० स्त्री० ) रोगजनक उदकं । मैला दुर्गन्धादि-  
युक्त रोगजनक जल ।

रोग्य ( सं० लि० ) १ अपत्य, अहित । २ रोगसम्बन्धा ।  
रोच ( सं० लि० ) रुच्-घञ् । १ रुचिकर । २ आलोकित,  
देखा हुआ । ( अथर्व १७।१।२१ ) ( पु० ) ३ राजभेद, एक  
राजाका नाम ।

रोचक ( सं० पु० ) रोचयतीति रुच-णिच्-ण्वल् । १ क्षुधा,  
भूख । पर्याय—पुञ्जुता, अशना, जिघत्सा, रुचि । ( हेम )  
२ कदली, कोला । ३ राजपलाण्डु । ४ अवदंश, गजक । ५  
एक प्रकारकी ग्रन्थिपर्णी । इसे नेपालमें 'भंटेउर' कहते  
हैं । इसका पर्याय—निशाचर, धनहर, कितव, गण-  
हासक । गुण—मधुर, तिक्त, कटु, लघु, तीक्ष्ण, हृद्य,  
शीतल, कण्डु, कुष्ठ, कफ, घ्रायु, खरभेद, अक्षय्यर, विष  
और द्रवणाशक । ( भावप्र० ) ६ फाचकुप्यादिकारक,  
कांचकी कुप्यी या शीशी बनानेवाला । ( ति० ) ७ रुचि-  
कारक, रुचनेवाला । ८ मनोरञ्जक, दिलचस्प ।

रोचकता ( सं० स्त्री० ) रोचक होनेका भाव, मनोहरता ।  
रोचकद्रव्य ( सं० स्त्री० ) लवणद्रव्य, विट लवण और सौंघय  
लवण । ( वैद्यकनि० )

रोचकिन् ( सं० लि० ) १ क्षुधायुक्त, जिससे भूख लगी हो ।  
२ इच्छाशील, इच्छा करनेवाला ।

रोचन् ( सं० पु० ) रोचयतीति रोचि-ण्वत्वाद्दिवात् ल्यु ।  
१ कुटशालमल, काला सेमर । २ काम्पिल, कमीला ।  
३ भ्येत शिग्रु, सफेद सहिजन । ४ पलाण्डु, व्याज ।  
५ आरवध, अमलतास । ६ करज, कंजा । अड्डोट, डेरा ।  
८ दाडिम, अनार । ९ रोगोंके अधिष्ठाता, एक प्रकारके  
देवता । ( हरि० १६।७ ) १० विष्णुके औरससे दक्षिणा-  
के पुत्रोंमेंसे दूसरा । ये स्वायम्भुव मन्वन्तरके एक  
देवता हैं । ( भागवत ५।१।७ ) ११ स्वारोचिष मन्वन्तरके  
इन्द्र । ( भाग० ८।१।२० ) १२ भारतवर्षके अन्तर्गत एक



पञ्चमका नाम । ( भाष्य ११७ १३ ) १३ कामदेवके पाँच  
 वालीमेंसे एक । १४ मायाद्विर्वासेन एक राजाका नाम ।  
 ( भाष्य ११७ ) १५ रोनी, रोचना । १६ सोमिका । ( शि० )  
 १७ रोचक, कवयेवाला । १८ सोमिजाती, सोमा देने-  
 वाला । "सायण्यर रोचनं सायण्यार्थं महात्मं धर्मयोग्यं  
 सोमं ।" ( हरिव १२६१४ ) १९ सोममान, सुखाने-  
 वाला । २० अनुनाम कहिये गणनेवाला । २१ साठ ।  
 रोचनक ( सं० पु० ) रोचनसोमि रोचि ह्यु, लः क्तः क्तम् ।  
 १ शरीर, शरीरों सोचू । २ गुण्यसोचनी, कमीजा ।  
 ३ संतोषक । ४ रोचन देने ।  
 रोचनकल ( सं० पु० ) रोचनं कविचरं कल्पमन्त्र । सोम-  
 पुत्रक, विज्ञोरा सोचू ।  
 रोचनकला ( सं० स्त्री० ) रोचनं रोचकं कल्पमन्त्रः ।  
 विभिन्ना, ककरी ।  
 रोचनकला ( सं० स्त्री० ) १ सायण्यार्थं सायण्यसोमसो, यह  
 तो प्रजाजनों रहना ही । २ सायण्यार्थं साय कवयेवाला ।  
 रोचना ( सं० स्त्री० ) रोचने वा क्त् ( बहुवचनः ) ।  
 उच्यते इति युष्मदात् । १ ककरीकल, साय ककल ।  
 २ सोचिय । ३ सोचोचना । ४ सायण्यसोचि । ५ गुणाना-  
 नुसार वस्तुदेवकी स्त्री । ( भाष्य ११७ १४ ) ६ साकाज,  
 स्वामी । ७ कृष्णसायण्यो, काला रोचक । ८ संतोषक ।  
 ९ एक पर्यंतका नाम । ( शैव श्लो० ११२०७ )  
 रोचनानुच ( सं० पु० ) एक श्रेष्ठका नाम । ( भाष्य ११३६७ )  
 रोचनानुच ( सं० स्त्री० ) भासोक्तपुत्रक, उच्यते ।  
 रोचनिका ( सं० स्त्री० ) रोचनेके लिये क्तः, टाणि अण-  
 क्तम् । १ संतोषक । २ गुण्यसोचनी, कमीजा ।  
 रोचनी ( सं० स्त्री० ) रोचने इति क्त् 'च'पञ्चम्युरी बहुल-  
 निर्वाण्युत्पत्तौ क्त्म् । १ सामन्तकी सोचनी । २ सोरो-  
 चनः । ३ कलःसिता, मीरसिता । ४ श्लेष्मिहृत्सा,  
 श्लेष्मिहृत्सोच । ५ गुण्यसोचनी, कमीजा । पर्याय-  
 कर्मिणः, कर्मक, कर्म, कर्मक, कर्मणः, कर्मिणः,  
 कर्मिण्यः, कर्मिणी । ( भाष्य ११७ ) ६ कमीजा । ७ सोमिजात-  
 काकला । ( भाष्य ११७ १३ ) ८ सायण्य, सायण ।  
 ९ सायण्ये ।

विरोच । ( भाष्य ११७ १३ ) ३ कल्पके एक अनुचरका  
 नाम । ( शि० ) ४ रोचनमान, कर्मकोजा ।  
 रोचि ( सं० स्त्री० ) १ सोमि, यमा । २ ककट रोनी हुई  
 रोना । ३ रमि, किलक ।  
 रोचिण ( सं० स्त्री० ) सोमिण ।  
 रोचिन् ( सं० स्त्री० ) रोचने इति क्तः क्त्म् । रोचिन्तु,  
 सायण्यसोमि आदिने जगमगना हुआ ।  
 रोचिन् ( सं० पु० ) गुणानुसार विभावस्तुके एक पुत्रका  
 नाम । ( भाष्य ११३ १६ )  
 रोचिन्तु ( सं० स्त्री० ) रोचने लप्ठः क्त्म् ( कर्मण्यु-  
 क्तम् ) । १ १२११३६ इति ह्युत्पत् । १ श्लेष्मिकादि  
 द्वारा जगमगना हुआ । पर्याय-रिष्णु, श्लेष्मिण्यु ।  
 २ ककटपत्र । ३ रोचक, कवयेवाला ।  
 रोचिम् ( सं० स्त्री० ) रोचनेऽनेनेति क्तम् वाहुवचनम्  
 इति । ( उच्य ११३१२ ) यमा, सोमि, यमक ।  
 रोचो ( सं० स्त्री० ) रोचने इति क्तः क्त्म्, वा क्त्म् । हिन्-  
 मोचिका ।  
 रोचप ( सं० स्त्री० ) क्त्म् क्तम् ( बहुवचनः ) । वा  
 १, ११६६ इति कवयसिरोच । १ प्रकाश्य । २ मीरसिचय ।  
 रोच ( का० पु० ) १ दिन, दिग्म । ( भाष्य ) २ प्रति दिन,  
 तिथ ।  
 रोच भाकजान ( नातिर )—सप्रार्, सप्रमदुगाहके सोचो-  
 नक एक वराजा । ये गुणा गरा सामने प्रसिद्ध थे ।  
 इन्द्रोनि १४७६ इ०में दिवसोके तिथरवनी साहजसाकाह-  
 में 'वाग नातिर' नामको एक प्रसिद्ध यवान-पारिका जन-  
 याई थी ।  
 रोचमार ( का० पु० ) १ सोचिका या क्त संवत्के लिये  
 हाथमें लिखा हुआ काम जिनमें कोई कवचर तथा रत्न,  
 कवचाद्य, चंदा । २ क्त विक्रमका भावोजन, विचारन ।  
 रोचमारी ( का० पु० ) सायण्यो, सोमिण ।  
 रोचकमाया ( का० पु० ) १ पर विचार वा कही जिय पर  
 रोचक किये हुआ काम विषया ज्ञान ही, दिनचरोंको  
 पुत्रक । २ प्रति दिनका जग लयमें लिखनेकी कही, कथा  
 सिद्ध ।  
 रोचमसं ( का० क्त० ) १ प्रति दिन, हर रोच । ( पु० )  
 २ लिखनेके लियेहाथमें लिखनेवाली भाषा, बोधवाच ।

रोजविहान ( शेष )—एक मशहूर मुसलमान पंडित और साधु । इन्होंने तफशीर आरापस, नामकी कुरानकी टीका और सफयतु शल मसारिव् आदि कितने प्रन्थ लिखे । १२०६ ई०में ये करालकालके गालमें पतित हुए ।

रोज़ा ( फा० पु० ) १ व्रत, उपवास । २ वह व्रत जो मुसलमान रमजानके महीनेमें ३० दिन तक रहते हैं और जिसका अन्त होने पर ईद होती है ।

रोज़ाना ( फा० कि० वि० ) प्रति दिन, हर रोज ।

रोज़ी ( फा० खो० ) १ रोजका खाना, नित्यका भोजन । २ एक प्रकारका पुराना कर या महसूल जिसके अनुसार ध्यापारियोंके चौपायोंको एक दिन राज्यका काम करना पड़ता था । ३ वह जिसके सहारे किसीको भोजन वल प्राप्त हो, काम धंधा जिससे गुजर हो ।

रोज़ी ( हि० खो० ) गुजरातमें होनेवाला एक प्रकारकी कपास । इसके फूल पोले होते हैं ।

रोज़ीदार ( फा० पु० ) यह जिसको रोजाना खर्चके लिये कुछ मिलता है ।

रोज़ीना ( फा० पु० ) १ रोजका, नित्यका, । २ प्रतिदिनकी मजदूरी, वेतन या वृत्ति आदि ।

रोज़ीविगाड़ ( फा० पु० ) लम्बी हुई रोजीके विगाड़नेवाला, जम कर फाई काम धंधा न करनेवाला ।

रोम् ( हि० खो० ) गवय, नीलगाय ।

रोम्कन—पञ्जाबप्रदेशके डेरा गाजो खाँ जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २८°४१' ३० तथा देशा० ६६°५८' ५०के मध्य सिन्धुनदके बायें किनारे अवस्थित है । जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है । मजारो चल्च जातिके सरदार बेहरामखाने १८२५ ई०में इस नगरको बसाया । वर्त्तमान सरदार द्वारा प्रतिष्ठित विचारशुद्ध और उसके पिता तथा भतीजेका मकबरा देखने लायक है । पशमी रंग वा आच्छादन चलके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है ।

रोम्को—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागेके नवागढ़ राज्यके अन्तर्गत एक द्वीप । यह कच्छउपसागरको नवानगर खाड़ीके मुहाने पर नवानगरसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित है । यहाँ चारण-रमणीके उद्देशसे स्थापित एक मन्दिर है । कहते हैं, कि एक दिन नागरराज शिकार खेलने जंगल गये । यहाँ उन्होंने एक नीलगाय

देख कर उसका पीछा किया । नीलगाय बड़ी तेजीसे भाग कर उसी चारण-रमणीके आश्रममें घुस गई । राजा भी उसका पीछा करते हुए वहाँ पहुँचे । वृद्धा चारण-रमणीको जब मृग दिखला देने कहा गया, तब वह बोली, 'आप चाहे मेरो गरदन ले लें, पर मैं उस आश्रित मृगको नहीं दे सकती ।' इस पर राजाने मृगको बाहर निकाल कर मार डाला । वृद्धासे यह अन्याय देखा न गया, उसने राजाको शाप देकर आत्महत्या कर ली । उसकी अक्षयकीर्तिका स्मरण रखनेके लिये समुद्रके किनारे जहाँ उसका आश्रम था एक मन्दिर बनवा दिया गया । यहाँ जो आलोकमयन है उसे १८६७ ई०में नवानगरके राजाने बनवाया था । आकाश परिच्छन्न रहने पर समुद्रके किनारेसे ७ मील दूरसे इसकी रोशनी दिखाई देती है ।

रोट ( सं० त्रि० ) रूट ( अन्वेष्योऽपि दृश्यते । पा ३।२।७५ ) इति विच् । हिंसा, हिंसा करनेवाला । २ वधक, मारनेवाला ।

रोट ( हि० पु० ) १ गेहूँके आटेकी बहुत मोटी रोटी, लिट । २ मोटी मोटी रोटी या पूआ जो हनुमान आदि देवताओंको चढ़ाया जाता है ।

रोटकवत ( सं० षष्ठी० ) व्रतभेद । ( व्रतप्रकाश )

रोटका ( हि० पु० ) बाजरा ।

रोटास ( रोहितास )—पञ्जाबप्रदेशके भेल्म जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग । लवण पयतके जिस स्थानसे कुहान नदी निकली है उसके समीपवर्ती एक शैलशृङ्ग पर यह अक्षा० ३२°५५' ३० तथा देशा० ७३°४८' ५०के मध्य अवस्थित है ।

अफगान सरदार शेरशाहन जिस समय हुमायूँको भगा कर दिल्लीका सिंहासन अपनाया था उसी समय अर्धान् १५४० ई०में उसने गढ़र जातिका दमन करनेके अभिप्रायसे यह दुर्ग स्थापन किया । उस गिरिपथके सामने अवस्थित एक शैलशृङ्गको परिवेष्टित कर उसने दुर्गके चारों ओर प्रायः ३ मील विस्तृत एक लंबी दीवार खड़ी कर दी । उस दीवारको मजबूत रखनेके लिये जहाँ तहाँ उसको मोटाई ३से ४० फुट तक कर दी गई है । इसका प्रवेशद्वार आज भी ज्योंका त्यों दिखाई देता है ।

विष्णु पुत्रका विषय है, कि सोमाप्राचीरकी मरुतमण  
दुर्गवाटिका कह गये हैं। इस सुश्रुतिपुत्र भूमिका परि-  
माण बरुके २३० दण्ड होमा। इस स्थानका प्राकृतिक  
मित्र कदा ही मनोम्य है।

रोहितामण्ड ( रोहित्त म )—आहावाद् जिलाअर्थात् यह  
विहिदुर्ग। यह अक्षाः २३° २७' ३३ तथा देशाः ८३° ५०'  
पूर्वके मध्य अक्षांशका अक्षरे ३० मील दक्षिणमें अणुविद्युत  
है। जनसंख्या २ हजारके बराबर होगी।

आहावाद् जिलेमें जगद जगद प्राचीन कौलिके अनेक  
विद्वान् रहने पर भी प्रत्यक्षपरिवर्तके लिये ऐसा स्थान  
भीरु कही गी नहीं है। इस स्थानके प्राचीनरक्षके मन्त्ररच-  
ने भीरु विद्वान्को प्रशंसित हैं मद्ये, पर परमात्र दुर्गमें  
हो उमको भीन कौलिका स्पष्ट भाषाया निवृत्ता है।  
सर्वोच्चोत्कर्षका राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितामण्डके  
नाम्ननुसार इस स्थानका नाम रोहितामण्ड हुआ था।  
पौरुष सुश्रुतनामो मन्त्रमें इसका नाम बद्ध कर रोहिता  
मण्ड रखा गया। पहा रोहितामण्ड मूर्ति प्रतिष्ठित थी।  
स्थानीय लोग भक्तिपूर्वक उस मूर्तिको उपासना करते  
थे। मन्त्रार्थ भीरुश्रुतिमें रोहितामण्डकी उक्ति कर महान  
महान कर जाता।

उपरोक्त स्थानका पूर्वोक्त भविष्यति महाराज हरि-  
श्चन्द्रमें उस पौरुषके विषये राजे इस पुत्रोपहासकी रक्षा  
करने था रहे थे। उरुका कौरि विवरण नहीं मिलता।  
पौरुषश्रुतिपुत्रमें १५३३ ई०को रोहितामण्ड इस स्थानको  
मौल्य कर दुर्गमेंस्थापित करवा पादा, किन्तु कुछ समय  
बाद ही यह उस स्थानका परिवर्तन कर रोहिमण्डमें  
दुर्ग बना कर रहने लगे। मन्त्रार्थ अक्षर आदिके विषय-  
पूर्ण भीरु श्रुतके प्रतिक्रिया राजा मानसिद्धके ईश्वरों  
मन्त्रके रीत मन्त्रमें यह दुर्ग मन्त्रवृत्त करने कदा भोक्तव्य  
२० पत्र लिख था। ये पत्र पर दुर्गका मन्त्ररच कर भीरु  
मये अने कायाकारनाई बनाया गये हैं। उनके उपरोक्त  
दुर्गमन्त्रका शक्तिमान् भीरु मन्त्रके मन्त्रमें लिखे हुए दो  
लिखितमन्त्रमें उरुका मन्त्रद्विक विवरण अन्तः प्रकाश  
है।

रोहितामण्ड मीने किश कौलिकेअर्थात् उरुका  
दुर्गका विवरणके पहा है पर दुर्गपरिचयमें ७ मील भीरु

उरुकापरिचयमें ५ मील विष्णु पुत्र होमा। उमकी परिधि  
माणः २८ मील होगी। १८८८ ई०में डा० नूचको इस  
स्थानको ऊँचाई १५३० फुट स्थिर कर गये हैं।

इस दुर्गमें पर कष्टनेके दरु माले हैं। उममें ३  
बड़ा घाट भीरु ७३ घाटों कहलाता है। दुर्गपरिक्रमाके  
मध्य जिनको प्राचीन कौलिकों विख्यात हैना है, उममें  
मानसिद्धके प्रतिष्ठित दो दिग्भूमिद्वार, भीरुश्रुतके दो बरुाई  
मन्त्रजिद, महान मन्त्राव मन्त्रक प्रस्ताव भीरु 'आरुह्यारो'  
नामक राजकार्यालय मन्त्रपर्यन्त जिनका उद्घाटन निरुद्ध  
है।

भविष्यत्प्रदण्डपद्यमें मन्त्रके अन्तर्गत कदादिवाचनका  
उल्लेख है। भौमोलिक विवरणानुसार यह स्थान  
रोहितामण्डके जैसा प्रयोग होता है। ( अक्षाः ३१३६० )  
रोटिका (सि० म्ये०) विषयविशेष, रोटी। यह मैदा, बजरा,  
अने आदिकी बरुाई जाती है। मन्त्राणका रोटी कहने-  
में मीदेकी दो रोटी समको जाती है। भावपदनामों रोटी  
बनायेका मरोका इस प्रकार लिखा है—मूत्रे मीठकी  
पूर कर जलमें मूत्रो। पौरुष मीठ मीठ ताई बना कर  
उममें रोटी मार करे। अन्तर्गत बोवदेकी भाषामें मीठ मीठ-  
में यह मैदा होता है। इसका गुण बलकारक, मवि-  
अनक, अमोका उरुपकारक, धातुपदक, मायुनाशक,  
भीरु गुण है। जिस भाद्रमोको अग्नि प्रकल है उमके  
लिये यह विमोय उरुका है।

ओटी रोटी—ओटी गूरु कर उक अणुओंमें रोटी बनाई  
जाती है, एकीको ओटी रोटी कहने है। इसका गुण  
मविषक, मन्त्राणक, मन्त्र, मन्त्रमन्त्रक, मूत्र, भीरु वाचमन्त्रक,  
बलकारक तथा कर्तव्य, भीरुमन्त्र, अणु, बाण, मीठ,  
मिठ और मन्त्रमन्त्राणक माना गया है।

उरुकी रोटी—मूत्रो उरुके गूरुकी मन्त्रो कहने  
है। इस मन्त्रोमें ओ रोटी बनाई जाती है उमै बल-  
मन्त्रका का उरुकी रोटी कहने है। इसका गुण मन्त्र,  
मन्त्रमन्त्र, मन्त्रमन्त्रक और बलकारक है। यह प्रत्यक्ष  
मन्त्रोके लिये लिखकर है। उरुकी बलकी मन्त्रो  
मिठो कर उमकी मूत्रो मन्त्र दे। पौरुष उमै मूत्रो मूत्रा  
कर जलमें मीठ मीठमें उमै मूत्रो कहने है। इस  
मूत्रोकी रोटी बल और मन्त्रमन्त्रक मन्त्राणक मन्त्राण-  
पदक है। इस रोटीका नाम बर्चरिहा है।

चनेकी रोटी रूखी, कफ और रक्तपित्तनाशक, भारी, विष्टभी तथा नेत्रोंके तकलीफ देनेवाली होती है। तिलकी रोटीमें भी वही संघ गुण हैं।

रोटी ( हि० खी० ) १ गुंधे हुए आटेकी आंच पर सेंकी हुई लोई या टिकिया। यह नित्यके खानेके काममें आती है। इसे फुलका भी कहते हैं। २ भोजन, रखाई।

रोटीफल ( हि० पु० ) १ फल जा खानेमें बहुत अच्छा होता है। २ इस फलका पेड़ जो मंभोले आकारका होता है और दक्षिणमें मन्द्राजकी ओर होता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं।

रोटा ( हि० पु० ) बाजरेकी एक जाति।

रोड़ ( सं० लि० ) १ तुम, संतुष्ट। २ क्षेद, चूर्ण किया हुआ।

रोड़—पञ्जाब और युक्तप्रदेशवासी कृषिजीवि जातिविशेष। पञ्जाबके कर्नाल और अम्बाला जिलेके सोमान्तवर्ती तथा धानेश्वरके दक्षिणस्थ सुविस्तृत धाकजङ्गल प्रदेशमें इन लोगोंका वास है। भारतयुद्धके समय पाण्डवोंने कुरुकुलका समूल निर्मूल करनेकी आशासे जहाँ सेना इकट्ठी की थी वही आमरीन ग्राम इन लोगोंकी आदि वासभूमि है। इस स्थानसे ये लोग धीरे धीरे पश्चिम धमुनाखालके किनारे निम्न कर्णाल और हिन्द आदि नाना जिलोंमें जा कर बस गये हैं।

ये लोग मजबूत और सुडील होते हैं। जाट और इनमें प्रमेद केवल इतना ही है, कि ये शांत, नम्रप्रकृति-के और कृषिकार्यनिरत हैं। जाट जातिको तरह ये लोग युद्धप्रिय वा परखापहारी नहीं होते।

इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई विशेष वंशोपाख्यान नहीं है। अरौड़ा ( पूर्वपञ्जाबप्रदेशमें रोड़ा नामसे गतिष्ठ ) लोगोंकी तरह ये लोग भी अपनेके क्षत्रिय बतलाते हैं। परशुरामके भयसे इन लोगोंने 'आडर' (दूसरी) जाति कह कर परिव्राण पाया था। इस कारण सेभीसे इनकी एक स्वतन्त्र जातिमें गिनती हुई है। युक्त-प्रदेशके अरौड़ा और पञ्जाबके पूर्वाञ्चलवासी रोड़ासे धानेश्वरान्तवासी रोड़ा सम्पूर्ण पृथक् जाति है, इसका

कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता। पाश्चात्य जाति-तत्त्वविदोंने पूर्वाञ्चलवासी रोड़ाजातिसे पश्चिम पञ्जाब-वासी रोड़ोंको अपेक्षातः मजबूत देख कर दोनोंके पृथक् जाति बतलाया है; किन्तु दोनोंके आचार आदि देखनेसे ये एक समझे जाते हैं। सामाजिक आचारमें जाटोंके साथ इनकी कोई विशेष पृथक्ता नहीं है।

मुरादाबासी आमोन ग्रामके रोड़ोंका कहना है, कि वे लोग भी स्थानीय चौहान राजपूतोंकी एक शाखा हैं और समयसे यहाँ आ कर बस गये हैं। दूसरे रोड़ कहते हैं, कि रोहतक जिलेके भाभर तहसीलका बदली ग्राम ही इन लोगोंका आदि वासस्थान है। फिर कोई कोई राजपूतानेके अपना आदि स्थान इतलाते हैं।

इन लोगोंमें सागवाल, माइया, खीची और जगरान आदि कई थोक हैं। विधवा विवाह चलता है।

शाहरानपुरके रोड़ोंका कहना है, कि भारतयुद्धके समय श्रीकृष्णने योगबलसे कौशलग्राममें इनकी सृष्टि की थी। इन लोगोंको विवाहप्रथा जाट और गुजरजाति-सी है; विधवाविवाह चलता है। विधवा देवरसे ही विवाह करता है। ये लोग मछली, मांस, बकरे और सूअरका मांस खाते हैं।

इनमेंसे कोई कोई दल अपनेको तोमर राजपूतवंश-का बतलाता है। दिल्लीके तोमर-राजवंशका प्रभाव होंस होने पर वे लोग नाना स्थानोंमें जा कर बस गये। कोई कोई कहते हैं, कि मुगल बादशाह औरङ्गजेबके शासनसे उत्पीड़ित हो ये लोग दूसरी जगह जा कर बस गये हैं।

विज्नोर रोड़ कहते हैं, कि ये लोग श्रीरामचन्द्रके पुत्र कुञ्जके वंशधर हैं। गत चार राद्दी पहले ये लोग कर्नाल जिलेके फनेपुर पुण्डो नामक स्थानसे यहाँ आये हैं। इस ग्राममें सैयदोंका वास था। आगे चल कर सैयद और रोड़ोंमें विवाद खड़ा हुआ। रोड़ अपने दल-पति महोचाँदके अधीन अग्र्यत जा कर बस गये।

ये लोग विवाह तथा दूसरे दूसरे क्रियाकलावादि सम्प्राप्त हिन्दूके जैसे करते हैं। विधवा देवरसे विवाह कर सकते हैं, किन्तु वह विधवाके इच्छाधीन है। खी-चरितके सम्बन्धमें सर्वज्ञानक प्रमाण मिलने पर जातीय संभासे उसे जातिच्युत करनेकी व्यवस्था है, किन्तु

परमेश्वरगणना कीर्ति निरम नहीं है। कर्मों कर्मों धर्मों  
ममतामें अर्घ्यदण्ड दे कर यह स्वयंज्ञानमें रह जातो है।

रोड़ा ( हिं० पु० ) रूँट या परधरका बड़ा डेन्डा, बड़ा  
कंकड़। २ एक प्रकारका वंजाबी घान जो बिना सींचे  
उग्यन होता है।

रोट ( सं० लि० ) उड़ममगोल, उरपन होनेवाला।

रोन—१ बर्षापूर्वदेनेके धारवाद् जिलात्मगत एक तालुक।  
यह अक्षा० १५° ३०' से १५° ५०' उ० तथा देशा० ७५°  
२६' से ७६° २५' के मध्य अवस्थित है। भू परिमाण  
४३२ वर्गमील और जनसंख्या साठसे ऊपर है। इसमें  
५ नहर और ८४ ग्राम लगते हैं। इस तालुकमें दक्षिण-  
मदाराष्ट्र देवघेके आलूर और मल्लापुर नामक स्थानमें  
दो स्टेजम हैं।

२ एक तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा०  
१५° ४२' उ० तथा देशा० ७५° ४४' पू०के मध्य धारवार  
नहरमें ५५ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या  
७ हजारसे ऊपर है। यहाँ काले पथारके बने ७ प्राचीन  
मन्दिर हैं। उनमेंसे एक मन्दिरमें उरहीर्षी जिलालिय  
पदनेसे मान्य होता है, कि ये सब मन्दिर १६८० ई०में  
बनाये गये हैं।

रोणाहि—अधोपधाप्रदेशके जीजाबाद् जिलात्मगत एक  
नगर। यह धारवा नदीके तट पर अवस्थित है। यहाँ पांच  
हिन्दू और पांच जैन मन्दिर हैं। अधोप-रोहिण्यद्वय देव  
पथ इन नगरको बगल है। बर दीड़ गया है।

रोणीक ( सं० क्री० ) एक देशका नाम। ( भा ४, २, १४४ )

रोणीकीप ( सं० पु० ) उम डेन्डा। मनुष्य।

रोड़ ( सं० पु० ) १ मन्दन, रोना। २ शोक प्रकाशकरण,  
दुःख आदि। बरता।

रोड़ाहट्टर ( सं० क्री० ) स्वयंमण्डल, आकाशका चन्द्रावयव।

रोदन ( सं० क्री० ) रुद-ज्युट्। १ मन्दन, रोना। बर्षाका  
रोदन ही बम है।

“दुर्बलप बधु राजा बरामाँ रोदनं कम्पु।  
बधुं मूर्खस्य मीनस्य” अथवा-मन्त्रं बरम्पु ॥”

( भाष्यन ६२ )

३ अथकविता धेनु यदि मन्दन करे, तो उसके  
मैतलुही बरन उरपन होना है। मूत्र स्थलिके निचे नहीं

रोना स्वादिप। रोनेमें उसके गरक होता है। इसलिये  
रोना ज्ञानमें निषिद्ध कहा है।

“जानिनी मा रुदन्त्येव मा रोदी पुन मान्यम्।

रोदनाभुम्रउनाभू मृतानां नरकं प्रुषम् ॥”

( भाष्य० पु० भाष्यतिस० २० ७० )

“लेप्साभ्रधान्ब्रह्मैर्मुक्तं प्रेती मुदके बवोऽपराः।

अथे न रोदित्तम्यं हि क्रियाः कार्या विधानाः ॥”

( शुद्धित्तव )

रोड़निका ( सं० स्त्री० ) रोड़नं अथु पाटपटवेनासत्यसेति,  
रोड़न दन्। यथास।

रोड़नी ( सं० स्त्री० ) रुचनेऽनयेति रुद-करणे-ज्युट् डीप्।  
दुपलभा, जयासा।

रोड़म ( सं० क्री० ) रुद-मसुन्। १ स्वर्ग। २ भूमि।

रोड़मिया ( सं० लि० ) स्वर्ग और मरुतका पूरणकारी।

“यथा पृथिवीः पृथिव्यु” ( अक् १, १८, १५ भाष्य )

रोड़ती ( सं० स्त्री० ) रोड़म् गौरादित्वात् डीप्। १ स्वर्ग।  
२ भूमि।

रोड़स्वय ( सं० क्री० ) रोड़ती देवो।

रोड़ा ( हिं० पु० ) १ कमागतको खोरो, धनुषको पतंगिका।

२ सितारके परदे बांधनेकी बारोक तौत।

रोड़ित्तव ( सं० क्री० ) रुद-त्तव। रोड़नीय, रोने लायक।

रोड़ ( सं० लि० ) रुच-गुम्। रोचकारी, रोचनेवाला।

रोड़थ ( सं० लि० ) रुच-त्तव्य। रोचनीय, रोड़ने योग्य।

रोध ( सं० पु० ) रुचि जलमिति रुच-पणाद्यम्।  
१ कितारा, तट। रुच-घम्। २ रोपण, कक्षापट।  
३ बारी।

रोधक ( सं० लि० ) रुचिघ्नोति रुच-ज्युट्। रोधकर्ता,  
रोकनेवाला।

रोधरु ( सं० लि० ) रोधं करोति रु-कित्-रुपम्। १ शैथ-  
कर्ता, रोकनेवाला। ( पु० ) २ गाढ रीपतरमेंदेरी  
पैतानीमयं रीपतरम्। ( धरतरं देता )

रोधयक ( सं० लि० ) रोधनशीलानि यथापि वासु।  
नदीके किनारेका दूट या भंगरी।

रोपन ( सं० लि० ) रुचिघ्नोति रुच-ज्युट्। १ रोधकर्ता,  
रोकनेवाला। ( क्री० ) रुच भाषे ज्युट्। २ रोध,  
रुकापट। ३ दमन।

रोधवक्रा ( सं० स्त्री० ) रोधने वक्रा । नदी ।  
 रोधस् ( सं० स्त्री० ) रुग्णदि चार्थादिकमिति रुध ( सर्वधा-  
 त्त्व्याऽनुत् । उण् ५।१८८ ) इति असुन् । नदीमौद, नदीका  
 किनारा ।  
 रोधस्वत् ( सं० लि० ) १ उच्चकूलयुक्त । ( पु० ) २ नदी ।  
 ( ऋक् १।३८ ११ )  
 रोधस्वती ( सं० स्त्री० ) नदी । ( भागवत ५।१६।१८ )  
 रोधिन् ( सं० लि० ) १ रोधनशील, रोकनेवाला । ( पु० )  
 २ वृक्षभेद ।  
 रोधोवक्रा ( सं० स्त्री० ) रोधसा वक्रा । नदी ।  
 रोधोवती ( सं० स्त्री० ) रोधोऽव्यस्याः रोधस्-मनुप-  
 लोप । नदी ।  
 रोधोवप्र ( सं० पु० ) वेगवान् नद ।  
 रोध्य ( सं० लि० ) रोधयोग्य, रोधनीय ।  
 रोध्र ( सं० स्त्री० ) रुग्णतेऽनेन रुध वाहुलकात् रन् । १  
 अषराध, कसूर । २ पाप । ३ लोध्र, लोघ ।  
 रोध्रपुष्प ( सं० पु० ) रोध्रस्यैव पुष्पमस्य । १ मधूकवृक्ष,  
 महुष्का पेड़ । ( स्त्री० ) २ रोध्रफूल, लोघका फूल ।  
 ३ चक्रयुक्त सर्पभेद, एक प्रकारका सांप जिसके ऊपर  
 चक्र-सा दाग हो ।  
 रोध्रपुष्पक ( सं० पु० ) १ लोघका फूल । २ शालिधान्य,  
 शालि धान । ३ सर्पजातिभेद, एक प्रकारका सांप ।  
 रोध्रपुष्पिणी ( सं० स्त्री० ) रोध्र इव पुष्पतीति पुष्प णिनि-  
 लोप । घातकीवृक्ष, घौका पेड़ ।  
 रोध्रयुग्म ( सं० स्त्री० ) शारय और पट्टिका नामक दो  
 प्रकारका लोघ ।  
 रोध्रशूक ( सं० पु० ) रोध्रपुष्पकार, शूकशालि, लोघके  
 फूलके आकारका जी । ( वाग्भट्ट ६ अ० )  
 रोध्रादिगण ( सं० पु० ) लोघ आदि करके गणभेद ।  
 द्विविध लोघ, पलाश, कृष्णशालमली, सरलकाष्ठ, कट्फूल,  
 कदम्ब, अशोक, पलवाडू, परिपेलव और मोचा ये सब  
 रोध्रादिगण हैं । इसका गुण—भेद, कफ और घानिदोष-  
 नाशक, पुरीवादिका स्तम्भन, वर्ण्य और विपनाशक ।  
 ( वाग्भट्ट चरक्या १५ अ० )  
 रोना ( हिं० क्रि० ) १ रोदन करना, पीड़ा, दुःख या  
 शोकसे व्याकुल हो कर मुंहसे विशेष प्रकारका स्वर

निकालना और नेलोंसे जल छोड़ना । २ दुःख करना,  
 पछताना । ३ चिढ़ना, घुरा मानना । ( पु० ) ४ रंज, दुःख ।  
 ( वि० ) ५ थोड़ी-सी बात पर भी दुःख माननेवाला,  
 रोनेवाला । ६ रोनेका सा, मुहरंमी । ७ वात धात पर  
 घुरा माननेवाला, चिड़चिड़ां ।  
 रोनी घोनी ( हिं० वि० स्त्री० ) १ रोने धोनेवाली, शोक  
 या दुःखकी चेष्टा बनाये रहनेवाली । ( स्त्री० ) २ रोने  
 धोनेकी वृत्ति, शोक या दुःखकी चेष्टा, मनहूसी ।  
 रोप ( सं० पु० ) रूप्यतेऽनेनेति रूप विभोहे, घञ् । १ वाण,  
 तीर । रुह णिच्-घञ् । २ रोपण, स्थापित करना । ३  
 इहराव, रुकावट । ४ मोहन, बुद्धि फेरना । ५ छिद्र,  
 सूराह ।  
 रोप ( हिं० पु० ) हलकी एक लकड़ी जो हरिसके छोर  
 पर जंघेके पार लगी रहती है ।  
 रोपक ( सं० लि० ) १ वृक्षरोपणकारी, पेड़ लगानेवाला ।  
 २ स्थापित करनेवाला, उठानेवाला । ३ स्थित करने-  
 वाला । ४ सोने चांदीकी एक तौल या मान जो सुवर्णका  
 ७०वां भाग होता है । रूपक देखा ।  
 रोपण ( सं० स्त्री० ) रूप-स्युट् । १ जनन, जमाना, लगाना ।  
 २ प्रादुर्भाव । ३ विमोहन, मोहित करना । ४ ऊपर रखना  
 या स्थापित करना । ५ स्थापित करना, खड़ा करना ।  
 ६ अजनविशेष । ( पु० ) ७ पारद, पारा । ८ घुसामन  
 वृक्ष । ९ क्षतादिपूणे, घावका सूखना या उस पर पपड़ी  
 बंधना । १० घाव पर किसी प्रकारका लेप लगाना ।  
 ( लि० ) ११ रोपक, लगानेवाला । रोपक देखा ।  
 रोपणचूर्ण ( सं० स्त्री० ) रोपणस्य चूर्णं । नेत्राञ्जन-  
 विशेष । प्रस्तुत प्रणाली—छपड़ेकी शिला पर अच्छी  
 तरह पीस कर जलमें छोड़ दे । पीछे पेंदीमें जमे हुए  
 चूर्णको फेंक कर जल ले ले । यह जल सूख कर जब  
 पपड़ीकी तरह हो जाय, तब उसे चूर कर त्रिफलाके  
 रसमें तीन बार भावना दे । अनन्तर दशवां भाग कपूर  
 डालनेसे रोपणचूर्ण प्रस्तुत होता है । इस चूर्णका नेत्र-  
 में अञ्जन देनेसे सभी प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं ।  
 ( भावप्र० रोगाधि० )  
 रोपणका ( सं० स्त्री० ) पश्चिमेद, मैना ।  
 रोपणाञ्जन ( सं० स्त्री० ) १ कपाय और स्नेहसंयुक्त अञ्जन ।

२. निम्न रूप्य द्वारा, मञ्जन । ( मञ्जन मञ्जनविधि )

रोपणी ( सं० स्त्री० ) नेताञ्जनविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—  
रमाञ्जय, धूत, जार्जोपुत्र, मैगमिल, समुद्रकेन, सैन्धव,  
निम्नविष्टो तथा मिर्च इनका समान भाग ले कर मधुके  
साथ पीते । किम्बदन्तीरोमके मतमें इसका मञ्जन  
देनेसे नेत्रघात, श्लेष्म और कण्डू मष्ट होता है तथा गिरे  
हुए नेत्ररोम फिरसे दृष्टि हो जाने है । पुनर्नयाकी  
दृष्टिमें पीय कर उमकी मञ्जन देनेसे कण्डू, मधुमें पीय  
कर देनेसे नेत्रघात, घृतमें पीय कर पुनर्नयन द्वारा देनेसे  
निमित्त तथा काँजोके साथ देनेसे स्त्रीषो दोष दूर होता  
है । इन्हों सब प्रक्रियाओंके रोपणी कहते हैं ।

( भाव० नेत्रोपाधि० )

रोपणीपट्टी ( सं० स्त्री० ) नेताञ्जनविशेष, छातोंमें लगाने-  
का एक मञ्जन । इसके बनावेका तरीका—रसाञ्जन,  
हृष्टिा, दाहकृष्टिा, मातली तथा निम्बका पत्ता, इन सबों  
को मोक्षके समयमें पीय कर ट्रेड मटर परिमाणकी गोली  
बनाये । इससे जो मञ्जन पैदा होता है उसके लगाने-  
से स्त्रीषो दूर होना है । ( भाव० नेत्रोपाधि० )

रोपणीपर्णिका ( सं० स्त्री० ) कुसुमामिध नेताञ्जन मधुपर्णिका  
भेद ।

रोपणीय ( सं० लि० ) रूप-अनीवर, या रह-निष् अनी-  
वर । रोपणयोग्य, लगानेके कायिक ।

रोपणा ( द्वि० लि० ) १. जमाना, लगाना । २. भङ्गाना,  
उद्धारना । ३. कोई वस्तु लेनेके लिये हथेली या कोई  
बरतन सामने करना । ४. पोंपेके एक स्थानसे उलाह  
कर दूसरे स्थान पर जमाना, पीया जमीनमें गाढ़ना ।  
५. बीज रखना, पैना ।

रोपनी ( द्वि० स्त्री० ) रोपनेका काम, धाम आदिके पोंपे-  
के गाढ़नेका काम ।

रोपिण्यु ( सं० लि० ) रह-निष्-मुष्, या रूप-निष्-  
मुष् । रोपणकारी, लगानेवाला ।

रोपि ( सं० स्त्री० ) हाथन धेरना, बहुत रुके ।  
( मञ्ज २१०११६ )

रोपि ( सं० लि० ) १. लगाया हुआ । २. उड़ाया हुआ,  
महा-विद्या हुआ । ३. मोहित, छागण । ४. स्थापित,  
रखा हुआ ।

रोपित ( सं० लि० ) स्थापनकारी, स्थापित करनेवाला ।  
लगानेवाला, जमानेवाला ।

रोपुणी ( सं० स्त्री० ) रोपणविधि । ट्रेड, मूलाय बरने-  
याता, रोदनेवाला ।

रोप्य ( सं० लि० ) रोपणयोग्य, रोपनेके लायक ।

रोप्यानिरोप्य ( सं० पु० ) धान्याविशेष, एक प्रकारका  
धान ।

रोष ( ध० पु० ) वृद्धवृद्धकी धार, दहदहा ।

रोषदार ( ध० लि० ) जिसको रोषसे तेज और प्रताप  
प्रकट हो, रोषदायवाला, प्रमादवाली ।

रोम ( सं० क्ली० ) १. जल, पानी । २. तेजपत्र, तेजपत्ता ।  
३. लोम, देहके बाल, रोषी । ४. छिद्र, मूलाय । ५. जन-  
पदविशेष । रोम शाब्दक रूपसे ।

रोमक ( सं० क्ली० ) रोमके कायगोति के क. १. पांशु स्वयं,  
जार्जमरी ममक । २. भयम्काम्भेद, सुषक । रोमके  
स्यार्थे वन् । ( पु० ) ३. रोमनगर । ४. इन देनका मनुष्य ।  
५. यज्ञार्थके पश्चिम प्रांतका एक प्राचीन नगर ।

( भाषण २५०११५ )

“भोष्ठीकान्धवाभारम रोमकान् पुष्यारकान् ।”

( भाषण २५०११५ )

मण्डुपुराणमें ( ८१२० ) तथा कुमारिकालन्दमें  
( ११५२२ ) इन देनके उरण रखता उल्लेख है । ५. महा-  
निम्ब । ( वैदिक० ) १. एक उपोत्थपिडागत ।

रोमकन्द ( सं० पु० ) रोममुक्त कन्धी मूलमन्त्र ।  
विष्टहातु ।

रोमकपलन ( सं० स्त्री० ) रोमकं पलनमिति कार्या० ।  
एक नगरका नाम । कीर्ति इमें भण्डेकराष्ट्रद्वारा और कीर्ति  
कनकनाम्नितोपक मानते हैं ।

रोमकनीक ( सं० पु० ) जगज, मूलयोग । ( वैदिक० )

रोमकमिडाग ( सं० पु० ) रोमकाधारका जिन्ना हुआ  
एक उपोत्थपि प्रभ्य ।

रोमकाधार्य ( सं० पु० ) एक विशाल उपोत्थपि ।  
शाक्यमहिना और घराहनिहिरष्टक हायपरकर्म इनका  
उत्थेक है ।

रोमकायम ( सं० पु० ) एक मधुकायका नाम ।

( रत्नमं० पु० ३१२ )

रोमकूप (सं० पु०) रोमणां कूपः। लोमविवर, शरीरके  
वे छिद्र जिनमेंसे रोम निकलते हुए होते हैं।

रोमकेशर (सं० पु०) रोमणां केशरमिव। चामर, चंवर।

रोमगर्त (सं० पु०) रोमणां गर्तः। रोमकूप, लोमछिद्र।

रोमगुच्छ (सं० पु०) रोमणां गुच्छः। चामर, चंवर।

रोमगुच्छक (सं० पु०) चामर, चंवर।

रोमगुत्स (सं० पु०) चामर, चंवर।

रोमरावत् (सं० त्रि०) १ रोमयुक्त, रोमवाला। २ पूछ-  
वाला।

रोमरक्षरी (सं० स्त्री०) अरोमा स्त्री।

रोमत्यज् (सं० त्रि०) लोमनाशक।

रोमद्वार (सं० पु०) रोमकूप देखो।

रोमद्वीप (सं० पु०) कृमि, किरमिजो।

रोमन् (सं० स्त्री०) रौतीति रु (नामन् लोमन् व्य मन्  
रोमन्ति।) उष् ४।११०) इति ममिन् प्रत्ययेन साधुः।  
१ शरीरजाताङ्कुर, रोमां। पर्याय—लोम, अङ्गज, त्वग्ज,  
चर्मज, तनूच्छद। (राजनि०)

शरीरके रहस्यस्थान अर्थात् गोपनीय स्थानमें जो  
रोमां उत्पन्न हो उसे स्पर्श नहीं करना चाहिये। (कर्मपु०  
१५ म०) २ जनपदविशेष। ३ उस देशका वासी। (पु०  
३ भूमि। (भारत ६।६।१५५)

रोमन कैथलिक (अं० पु०) ईसाइयोंका प्राचीन सम्प्र  
दाय। इसमें ईसाकी माता मरियमकी तथा अनेक सन्त  
महात्माओंकी उपासना चलती है और गिरजोंमें मूर्तियां  
भी रखी जाती हैं।

रोमन्थ (सं० पु०) सौंगवाले चौपायोंका निगले हुए  
चारोंको फिरसे मुँहमें ला कर धीरे धीरे चबाना, पागुर।

रोमपाट (सं० पु०) ऊनी कपड़ा, बुशाला आदि।

रोमपाद् (सं० पु०) अङ्ग देशके एक प्राचीन राजा। इनका  
उल्लेख वाल्मीकीय रामायणमें (बाल० सर्ग ६) है।  
कहते हैं, कि यह राजा बड़ा अत्यायी और अत्याचारी  
था। इनके पापोंसे एक बार भयंकर अनादृष्टि हुई। राजाने  
शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुला कर उपाय पूछा। उत्तरमें सबने  
ऋष्यश्रृंग मुनिको लाकर उनके साथ राजकन्या शान्ताका  
विवाह कर देनेकी राय दी। धैर्याओंको चेष्टासे ऋष्य-

श्रृंग मुनि लाये गये और खूब वृष्टि हुई। तब राजाने  
अपनी कन्या शान्ताका उनसे विवाह कर दिया।

रोमपुलक (सं० पु०) रोमणां पुलकः। रोमहर्ष, रोमाञ्च।

रोमफला (सं० स्त्री०) त्रिन्विज, डेढ़सी।

रोमवद्ध (सं० त्रि०) १ जो रोयोंसे बंधा या युता हो।

(पु०) २ वह वस्त्र जो रोयोंसे बंधा या युता हो।

रोमभूमि (सं० स्त्री०) रोमणां भूमिरिव। त्यक्,  
चमड़ा।

रोममूहन् (सं० त्रि०) रोमयुक्त मस्तकविशिष्ट, जिसके  
शिरमें बाल हों।

रोमस्तासार (सं० पु०) उद्द, पेट।

रोमरन्ध्र (सं० स्त्री०) रोमकूप, शरीरके वे छिद्र जिनमेंसे  
रोम निकले हुए होते हैं।

रोमराजि (सं० स्त्री०) रोमणां राजिः। १ रोमावलि,  
रोयोंकी पंक्ति। २ रोयोंकी वह पंक्ति जो पेटके बीच  
बीच नाभसे ऊपरकी ओर जाती है।

रोमलता (सं० स्त्री०) रोमणां लतेव, रोमावलि, रोम-  
राजि।

रोमलतिका (सं० स्त्री०) नाभिके ऊपर स्त्रियोंके  
लोमकी रेखा।

रोमलवण (सं० स्त्री०) शाम्भर लवण, शाकंभरी नमक।

रोमवत् (सं० त्रि०) रोमन् अस्त्यर्थे मनुष्यस्य वः  
नस्य लोपः। रोमविशिष्ट, रोमावाला।

रोमवल्ली (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

रोमवाहिन्य (सं० त्रि०) रोमां फाटनेके योग्य तेज धार-  
वाला।

रोमविकार (सं० पु०) रोमणां विकारः। रोमाञ्च।

रोमविक्रिया (सं० स्त्री०) रोमाञ्च, आनन्दसे रोमांका  
उभर आना।

रोमविध्वंस (सं० पु०) १ लोमनाशकारी। २ खटमल।

रोमविवर (सं० स्त्री०) रोमणां विवरं। लोमकूप।

रोमवेध (सं० पु०) एक प्राचीन प्रश्रकार।

रोमश (सं० पु०) रोमाणि सन्त्यस्येति रोमन् (लोमादि  
पामादिपिच्छादिभ्यः शनेत्रजः। पा ५।१।१००) इति शः।  
१ मेघ, मेड़ा। २ पिण्डालु, रतालु। ३ कुम्भी। ४  
शूकर, सूशर। ५ ऋषियशेष। इस ऋषिका एक एक



रोम गिरमेंमें एक एक इन्प्रवृत्ति होता था । इस प्रकार इनके सब समी रोम गिर जायेगे, तब इनकी परमायु रोम होगी । सपनों परमायु घोटके दिनोंके लिये ज्ञान कर इन्होंने इनके लिये कोई घर नहीं बनाया, केवल चर्चकालमें ये घारावाला देवकर्मके लिये गिर पर कट ( घटार ) रण कर तयस्था करते थे । (भागवत ६(१५) विमोच विपयना प्रहरीवर्षां पुत्राणके भ्रौंशुणजसमयएहमें लिखा है ।

( ऋ० ) १ उपस्थ, मोचेका मध्य भाग । ( ति० )

० अथगत रोमविनिष्ट, तिभके बहुत रोये हैं ।

रोमनायका ( सं० खो० ) देवतादृष्ट, एक प्रकारका गुण या पीषा ।

रोमनायक ( सं० पु० ) रोमकी फलमरुप । इण्डियनरुस, डे'दसी ।

रोमनामुलिका ( सं० खो० ) हरिद्रा, दन्दी ।

रोमनासिद्धान्त—रोमनामुनिदत्ता बनाया हुआ एक ज्योतिष-ग्रन्थ ।

रोमना ( सं० खो० ) रोमाणि सभ्यरुपया इति रोमन्ना, टापू । १ दुग्ध दूध । २ श्यामनी, दूधस्वणिकी कर्षा । ( भृक् ११(१६) ३ कर्षटिका, कर्शुर । ४ अल्पदे नामक एक विप्रेला जोक । ( मुभु.प.० १३ म० ) ५ मांसरोहणी ।

रोमनायक ( सं० खो० ) रोमां शोतनं । रोमका उज'संग, बाल काटना ।

रोमयुक्त ( सं० खो० ) रोमयुक्तं युक्तं यस्य । स्पोणियक, पुनेट ।

रोम साम्राज्य ( रोमक-साम्राज्य )—प्राचार्य-सभ्यताके आदर्शोक्त सुनायोन रोम नगरमें रोम तथा मेडिन जाति-को सीमाहोमनिके साथ साथ जोये पीष और राजनयके प्रतिष्ठाप्रभावरों राज्यसमृद्धि परिपृष्टिके साथ ब्रह्मजा जो बड़ी राज्यमगदू बाहित हुई थी, यही रोमकी ३री जगःशुभो रोमसाम्राज्यके नाममें परिचित हुआ ।

पुरातन जमानेमें यह पीषा हुआ रोमकसभ्य के भागीनि विद्वान् था और इस समय ये सब विभिन्न देश किन् किन् राजाओंके द्वारा का प्रसन्नयके प्रतिनिधिपोंके साधारणपरिचालन हुआ उरकी मूवी कोये हो जनी है —

द्वैतरीय राज्य ।

लेटिन नाम  
प्रिडानिया—  
गालिया—प्रान्स, वेजलियम, हायेएड, और स्वीडर-  
सैएडका कुछ भंज ।  
दिसपानिया—स्पेन और पुर्नगाल ।  
बलियारिस—बेल्जियारिक द्वीपसुत्र ।  
सिसिलिया—सिसिली ।  
इटालिया—इटली ।  
रेटिया—ओटरलैएड और मधु दहूरीका कुछ भंज ।  
मिण्डेलिमिया—जर्मनसाम्राज्यका दक्षिणांश ।  
जार्मानिया—विश्नुना नदीके पश्चिम किनारे तक जर्मन साम्राज्य और पीनएडका कुछ भंज और डेनियूबके किनारे तक मद्रिया राज्य ।  
पानोनिया—डेनियूब नदीके पश्चिम किनारे तक मधु-दहूरी प्रदेश ।  
डाकिया—भिस नदीके पूर्ववर्ती मधु दहूरी प्रदेश और मूय और डेनियूब नदीके बीचका रुमानिया राज्य ।  
मोर्दिकम—डेनियूब नदीके दक्षिण किनारेके पियना नगरके समीपवर्ती प्रदेशसे आदिपारिक समुद्र तक ।  
इलिरिकम्—आदिपारिक सागरसेवहुन्वयसी मधु-दहूरी प्रदेश, मेट्रिमिरी और मुकीका कुछ भंज ।  
एथिरस—मास और इलिरिकमके मध्यवर्ती मुकी प्रदेश ।  
कमिकन, सार्डिनिया, सायवग और मोट हीन—मू-मध्य सागरका मध्य ।  
आकार्वा—प्रोसत्यय ।  
मार्किडोनिया—मुकीका कुछ भंज ।  
घार्सिया—बुल्गेरिया और फ्रान्सागिनोयक मन्तक मुकरक विभाग ।  
सॉगिया—सर्बिया और मुकीका कुछ भंज ।  
एथिया का मन्तक राज्य  
मासिया, लिडिया, कारिया,—इजिप्टन सागरतीर-वर्ती मासन प्रदेश ।

विथनिया और पेट्रस—दृष्टसागरके दक्षिण और पश्चिमोत्तरके दोनों प्रदेश ।

कांसैनेससटोरिका—यूरोपिय रूसियाका क्रिमिया-विभाग ।

कलकिस, इथेरिया, अलथानिया—काकेसस ( कोहे-काक ) पहाड़के दक्षिण और अर्मेनियाके उत्तर और कृष्णसागरसे कास्पीय भील तक विस्तृत भूखण्ड ।

फ्रिजिया, पिसिडिया, गेलसिया, लाइकोनिया, कापाडोकिया और अर्मेनिया माइनर—पश्चिमोत्तरके अन्तर्गत ।

अर्मेनिया—असोरियाके उत्तर ।

असोरिया, मेसोपोटामिया, बाबिलोनिया, काल्डिया-राज्य, अररिया पिट्रियाराज्य, सिरिया और पार्थिया—लिभाण्ट-उपसागरके किनारेसे पारसके पश्चिमाङ्ग, अरबके उत्तर और अर्मेनियाके दक्षिण तक फैला हुआ भूखण्ड ।

अफ्रिकाके अन्तर्गत राज्य ।

भीरिटानिया, न्यूमिडिया, अफ्रिका ( राजधानी कार्थेज ) लिबिया और इजिप्टस नामक भूमध्यसागरके किनारेके अफ्रिकाका नदीय प्रदेश । ये सब राज्य भाग इस समयके मोरोक्को, अलजिरिया, ट्यूनिसी, ट्रिपोली, यार्का और इजिप्ट ( मिस्र ) राज्यका कुछ अंश हैं कर गठित हुआ था ।

इस समय यूरोपके प्रदेशोंमें जो पर्वत और नदियां दिखाई देती हैं, उस समय भी वे सब उसी भावसे मौजूद थीं । विस्सुवियस, प्द्रम्बेाली और पटना नामक आग्नेय गिरिके अग्न्युद्गमने उस समय रोम-राजधानीकी कल्पित कर दिया था । अत्यन्त प्राचीन हाकुलेनियम और पम्पियाई नगर विस्सुवियसके उवल्लत घातय मिलाधसे और उत्तम भस्मोत्ति भर गया था । दो वर्ष तक उसका चिन्ह तक न था । इस समयका रोमराज्य इमानुयेलके प्रासनकालमें उस लुप्तप्राय दोनों नगरोंकी अतीत कीर्ति प्रकट हुई थी । कुछ दिनों तक यहां अग्न्युद्गम नहीं था । सन १६०५ ई०से फिर धीरे धीरे अग्न्यु-

द्गम दिखाई देने लगा । गत सन १६२८ ई०में भी अग्न्युद्गम हुआ था ।

इस प्राचीन समृद्ध रोमराज्यके वाणिज्यप्रभावकी याद करने पर मनमें अभूतपूर्व विस्मय जागरित हो उठता है । जिस समय जलद्वारा वाणिज्य करनेका कोई द्रुतगामी ढोमर न था, उस समय रोमकने भूमध्य-सागरके वक्षस्थल पर नावों पर चढ़ मिश्रसे भारत और पारस्यकी चोजे' अपने देशमें ले आते थे । गध, हृण, भाण्डाल और चर्वर जिस समय पश्चिम पश्चिमा-के पाश्चात्य जातिमात्रके लिये भयके कारण हो उठे थे, उस समय निडर रोमजाति अपने वाहुबलसे उस दुर्दम-नीय पश्चिमा वासियोंका धमन कर अश्रुपुष्प भावसे तुर्कोंके बीच खुश्कीकी राहसे कारोबार करते थे । युद्धकालमें जैसे रोमक क्षिप्रहस्त थे, वैसे ही अलखशत्रु बनानेमें भी यह कम न थे ।

रोमराजधानीमें भारतीय मणिमुकाका यथेष्ट आदर था । यह बात पुस्तकोंके पढ़नेसे छान होती है, इसी कारण समुद्रमें चलनेवाली बड़े बड़ी नावोंके चलानेमें भी यह बड़े कुशल और धर्मशील थे । उस समय डांड और पालकी सहायतासे जहाज समुद्रमें चलता था । कार्थेजिनीय सरदार हानिबलके रोम-आक्रमणके समय और रोम-सेनापति सिपियोके यूनानी-आक्रमण-कालमें ऐसा डांड और पालसे चलनेवाले जहाजें व्यवहृत हुए थे, ऐसा उल्लेख पाया जाता है । इतिहासमें रोमकोंकी कर्मात्मिका यथेष्ट परिचय दिया गया है ।

इटलीके अन्तर्गत टाय्जर नदीके किनारे रोम ( Roma ) नगरी इस विस्तृत साम्राज्यकी राजधानी थी । यहां ईसासे दो शताब्दी पहले ईसाकी १५वीं शताब्दी तक कारीगरों, शिल्प, वाणिज्य और सङ्गीतादि कलाविद्याकी जैसी उन्नति हुई थी, वैसे यूरोपकी किसी राजधानीमें किसी विषयकी उन्नति देखी नहीं जाती । रोमका "कालोसियम" महल कारीगरों या स्थापत्य विद्याका चरम निदर्शन ( नमूना ) है । यह जगत्के सातों आश्चर्योंमें एक है ।

वर्तमान जगत्की उन्नतिके साथ-साथ इटलीमें भी नाना विषयोंकी उन्नति हुई । किन्तु इस समय रोमनो-

का येना जीर्णोद्धारण मही है। इस समय रोम निम्नोक्त है। रोमको राज्यके क्षेत्रगतमे १२वीं राज्य भी रोम-मगरमे शामिल प्रभावके अन्तर्गत रहने पर भी पूर्वे मनुष्यकी गौरवशुद्धि और भी कार्य होता दिग्दर्श मही दे रहा है।

इतिहास ।

रोमका आदिम इतिहास माना प्रचारमे अनिश्चित आनुवंशिक प्रमाणोंसे परिपूर्ण है। इससे सरल-का भोजन निकालना बड़ा ही कठिन काम है। जो ही, इन सब किस्मे बहामियोंके विलम्बे ज्ञानमे लायक लक्ष्य भरे पड़े हैं।

बड़ा गया है—प्रतिष्ठा गाह्नरके अन्तर्गत प्रवर्तमान का माना ही जानिके बाद रोमको सर्वप्रथम प्रतिष्ठा हुई। जब तक प्लानो कीरोने प्रवर्तमानमें घेरा डाला था, तब तक आन्ध्रदेशके भीतरमे रोमिनासके मनीमे उत्पन्न पुत्र इतिहास ( २५००० ) प्रवर्तमानके भाग निकला। उसीमे स्वयंसे पहले रोमनगरमें आ कर यहां बसने कायम करनेकी बलवता थी। प्रवर्तमानके भागमे समय यह बनने प्रियपुत्र आन्ध्रदेशके दिनेटव नामके गाह्नरके देवताओंकी और-प्रवर्ते भुवनविद्यमान सार्वभौमिक या मित्रतामें सरलको देनी की मुक्तिमें मायमें लाया था। जब यह रोमिनासके विचारें पहुंचा, तब यह वहांके राजा रोमिनास द्वारा सम्भालित हुआ। सोचे रोमिनासने इतिहासके साथ अपनी प्रियपुत्रीका विवाह कर दिया। इतिहासके अन्तमें पत्नीका साथ आर करनेके लिये उन्नीके काम पर रोमिनास नगर रहता था।

इतिहासके साथ विवाह केलेके पदमें रोमिनासके मनुष्यकीके अतिरिक्त हात्तीके साथ विवाहकी बात चले ही थी। हात्तीके उक्त विवाह सम्बन्ध ही जानिके अन्तमें अन्ध्रदेशके राजा इतिहास पर सुख ही अन्ध्रदेश कर दिया। सुखमे इतिहासके हाथ हात्तीके साथ गया। इसके सोच ही बाद हात्तीके अन्ध्रदेशके-के लिए इतिहास पर अन्ध्रदेश किया। इस समय यह एक एक दिन इतिहास मनुष्यकीके कामका महीके उन्नीके मनुष्यके हो गया। इस समयमें यह "सुखिरे इतिहास" का नाम देवताके नाममें पुत्रिक हुआ था।

उसके पुत्र आन्ध्रदेशके या मनुष्यके ३० वर्षके बाद रोमिनासके रोमके १५ मीन दक्षिण पूर्वी अन्ध्रदेशके पर्वत-निचल पर "अन्ध्रदेश" या लम्बी क्षेत्र पुत्री नामके एक नगरीका निर्माण किया। कामका यह रोमिनास प्रदेगमें एक विधाननगर ही उठा और सारे रोमिनास नगरीका शासन करने लगा। आन्ध्रदेशके बाद इतिहासके १२ राजाओंमे यहाँका राजत्व किया। इस पंजाका अन्तिम राजा प्रवर्तमान मनुष्यीर और मनु-ल्लिप्त नामक दो पुत्रोंका छोटा बर पत्नीकेपाती हुआ। छोटे भाई मनुल्लिप्तके मित्रतास पर मणि-कार जमाया। बड़े भाई मनुमोटर शासक स्वभावका था, इससे उन्ने इसका पुत्र विरोध मही किया।

इस आन्ध्रदेशके कि कहीं भागे चल कर बड़े भाई का एकलौता पुत्र राज खीन न लेये, उसका प्राण संसार कर दिया। नौवादाय मनुल्लिप्तके ही इस निन्दुरा-चारणमे भी भागा दूर न हुई। इसके बाद बड़े भाईको एकलौती पुत्री रियासितभियाके एक देव-मन्दिरमें सेविकाके रूपमें मन्त्रीके लिये मिरकूमाटी बना दिया। फलतः यह आशीर्षन अनुष्टा ही रही। किन्तु मन्त्री ( मनुल्ल ) नामक देवताके भीतरमे इसके ही यमज पुत्र हुए। मनुल्लिप्तके जीव ही इसके मन्त्र लगे गये। कामारमन हुक्मेके अन्तर्गतमें रिया-सितभियाके अन्तमें प्राण पत्रा दिये, उसके हीनी पुत्र एक हिंसेके ही एक मायके छोड़ दिये गये। यह हिंसेके पानोंमें बहने बहने पत्नीके पर्वतके विचारें जा कर लगे। यहाँ अन्ध्रदेशके पेट्टे दण्ड मग कर यह हिंसेके उन्ने मगा। इससे हीमे स्वयंके विचारें भिन्न पड़े। इसी समय पर्वतके आदिम जन्म के लिये विचारें पर भाई। आदिम ( रोमके ) हीने लक्ष्मीके पानों कीदमें मे भाई और उन्नीके अन्तमें दूध पिना पिना कर पानमें गयो। मिया इसके मन्त्री देवताके यादत एक विद्विपा महद लक्ष्मीके लोके ला कर विधाने लगे।

समयमें एक दिन पत्नीके साथके एक मन्दिरके ही अन्ध्रदेशके विषयमें देव विद्या और उन हीने मनुमोटरके उठा कर अपनी पत्नीकी पालन करनेके लिये दे दिया। ये हीने मनु मनुल्लिप्त और रोमिनासके

नामसे प्रसिद्ध हुए। ये दोनों बालक उस गड़रि के बच्चोंके साथ पलने लगे। इन गड़रियोंके साथ न्यूमीटरके गड़रियोंका भगड़ा हो गया। इस समय कीशलसे रोमाशको उसके पितामह न्यूमीटरके समीप उपस्थित कर दिया गया। किशोरवयस्क रोमाशको देख कर न्यूमीटरका हृदय चारसत्य प्रेमसे परिपूरित हो गया। उम्र और चेहरा देख कर न्यूमीटरने रोमाशको अपना नाती होनेका सन्देह हुआ। अन्तमें उनकी जीवन-कथा सुन कर उनकी विश्वास हो गया, कि यह निश्चय ही मेरा दीहित (नाती) है। अन्तमें रोमुलस भी अपने बालक पिता यानी उस भेडिहारके साथ न्यूमीटरके सम्मुख उपस्थित हुआ।

न्यूमीटर दोनों नातियोंको पा घर खुश हुआ और उन दोनों कुमारोंने अपने भाईके क्रिये हुए निष्ठुरा आचरणका बदला चुकानेका संकल्प कर लिया। उन्होंने अपने विश्वासपात्र कर्मचारियोंके साहाय्यसे आमुलियासको मार डाला और अपने पितामह न्यूमीटरको उसकी गद्दी पर बैठाया।

रोमुलास और रोमासने अपने पहलेके वासस्थान अर्थात् शेरनीकी माँदके निकट एक नगर बसानेकी इच्छा प्रकट की। यह विचार होने लगा, कि नगर कहाँ और कैसे बनाया जाय। इस विषय पर दोनों भाइयोंमें वाद-विवाद होने लगा। रोमुलासने पेलेटाइन पर्वत पर और रोमासने आयेनटाइन पर्वत पर नगर निर्माण करनेकी इच्छा प्रकट की। अन्तमें यह निश्चित हुआ, कि इस भगड़ेका फैसला देवताओं द्वारा कराया जायगा। दोनों अपने-अपने देवताके निकट जा कर मनमें ध्यान उठा कर सारा दिन बैठे ही रह गये। अन्तमें एकदिवस देखे और दूसरेने १२ देखे फिर भेडिहारोंमें परामर्श कर निश्चय किया गया। जीत रोमुलासकी ही हुई।

रोमुलासका राजत्वकाल ७२१-७१७ ईसवी पूर्व।

इस तरह रोमुलासने देवताकी कृपा पा कर नगरकी सीमा निर्धारित करनेके लिये यहाँकी यात्रा की। उसने एक हलमें एक बैल और एक गायको जोत कर पेलेटाइन पर्वतके चारों ओर हराई फेराई या हलचिह्नसे चिह्नित किया। यही चिह्न रोमनगरीके चारों ओरकी

सीमा निर्दिष्ट हुआ। हलचिह्नसे चिह्नित इस नगरका नाम हुआ "पमेरियम"।

पेलेटाइन पर्वत-शिखरके आदिम रोम नगरका नाम हुआ "रोमा क्रोयडेटा" या चौकीन रोम। पिछले समयमें इस नगरकी परिधि सात पर्वतोंके शिखरों पर फैली थी। जो है, आदिम रोम नगर ईसासे ७५३ वर्ष पूर्व २१वीं अप्रैलको प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद रोमुलास रोमके चारों ओर चहारदीवारी उठाने लगा। यह चहारदीवारी बहुत छोटी थी। इस पर हंसी उड़ाने हुए रोमासने कहा—“इस तरहकी बालकीचित चह रदीवारीसे कोई लाभ नहीं।” यह कह रोमास कूद कर एक ही छलांगमें चहारदीवारीकी पार कर गया। इस तरह रोमासको चहारदीवारी लांघते देख रोमुलास क्रोधसे अधीर हो उठा और उसने रोमासको प्राण दण्डकी आज्ञा दी और यह हुक्म जारी किया कि आजसे जो इस चहारदीवारीकी लांघेगा उसे प्राण-दण्ड दिया जायेगा।

जो है रोमुलासके बसाये इस चहारदीवारीसे घिरा रोम नगरमें अधिक आदमी नहीं बसे। यह देख रोमुलासने फेपिटालाइन पर्वतशिखर पर हत्यारे और भागे हुए अपराधियोंके रहनेके लिये एक जेलखाना बनवाया। यह जेलखाना अपराधियोंसे कुछ ही समयमें भर गया। किन्तु वंशवृद्धिके लिये उनको क्षियां न दी गई। क्योंकि कोई भी ऐसे अपराधके अपराधी हुयोंसे अपनी पुत्रीका विवाह करना नहीं चाहता था। अन्तमें इनके लिये बलपूर्वक कन्या लेनेका संकल्प होने लगा।

इसके अनुसार रोमुलासने कनसस नामके देवताके पूजातसवकी घोषणा कर दी। इसमें लेटिन और सेवान् सर्वसाधारण निमन्त्रित किये गये। सभी नर-नारी तमाशा देखनेके लिये इस उत्सवमें आने लगे। उत्सवमें खूब नर-नारियोंके एकत्र होने पर उसमें आई सभी कुमारी अनुदाओंकी रोमक युवकोंने धरण कर लिया। कन्याओंके पिता इस काण्डसे अपमानित हो घर लौट राजाके साथ युद्धकी तय्यारी करने लगे।

किनानो, माण्टेमनी और फाष्टुमेरियम नामक

मेडिन नामके अधिपतिवर्ति रोमनोंके विरुद्ध मरु नामक विवा, जिन्नु जीव ही थे पराजित हुए। रोमु-  
लासने जिनामके राजा माओनको मरने दणों मार  
दाया और लूटी हुई मरुस्थितों 'जुविरर' के मरुस्थितों  
रम दिया।

भारतमें सेवान्न राज्यके अन्तर्गत बगुरेणके पराक्रम-  
नामके राजा टारटुसने समग्र्य वीरगाहिनिवीकी ले  
कर युद्धभी गाता की। इस तरह सेने वदुमर्यक  
मिनिकोंके साथ युद्धमयुद्धा युद्ध करना भयभय  
साम्प्र रोमुलासने जिनेमें प्रवेश किया। इससे पहले  
रोमुलासने केविटा लास पराजितके पारों और रक्षाका  
उचित प्रवण किया था। टार्विवास नामक एक सेना-  
पतिउने उमने केविटा लासकी रक्षाका भार दे रमा था।  
जिन्नु इस सेनापतिकी कन्या टार्विवा सेवान्न मैथीके  
कानमें मीनेका कुण्डल पहने देख गिमुण्य ही उठी।  
उमने सेवान्न सेनापतिके पास दूत भेज कर बहना  
दिया, कि "तुम लोग अपने कानोंके कुण्डल देना  
आकार बने तो मैं जिनेमें तुम आनेका उपाय बतला  
दूंगा।" सेनापतिने टार्विवाकी बात स्वीकार कर ली।  
आपने राजके समय भूयप्रिया टार्विवाने मरुका दूर-  
यात्रा मंगल दिया। कीटियोंकी धोलीही तरह सेवान्न  
वीर्य जिनेमें घस आई। जब टार्विवाने अपना पुर-  
कार मांगा तो, फीजोंने साथ मुझे से उने उचित पुर-  
कार दिया। यह जीव ही परतीकगामी हुई। उनी  
समयमें राजप्रीहियोंकी इस पराजित भीवे गिराया  
जाता था।

दूसरे दिन रोमनोंके केविटा लासको रक्षाके लिये  
अन्य फीजोंकी तुमजित किया। पेटेटारन और बेवे-  
दासासको हीयको उपर्यकामें भीरन युद्धागत प्रवणित  
दुमा। कुछ देर तक भीरन युद्ध होयके बाद अभि-  
भवय कीते सिरनेकी मों। उम समय रोमुलासने  
सममें मनेकी को, यदि मुझमें विजय पाऊंगा,  
तो जुरिररका एक मन्दिर बनवा दूंगा। इसके  
बाद रोमन सैनिक दूधने उमाराही युद्ध करने  
लगे। येने समय जिवाके लिये युद्ध हो रहा था मरु  
करदना कन्याके ना कर युद्धमेंसे सेवान्न सैनिकों-

से युद्ध बन्द करनेका अनुरोध करने लगी। रमपोकी  
प्रार्थना पर हीन उपाय नहीं दे सकता। सेवान्नने  
रोमनोंके सामने मरुतु रन इस विवाह-सम्बन्धकी और भी  
दृढ़ कर दिया। रोमन रोमुलासके अर्थात्में वेनेटाएन  
पदाप्त पर रहने लगे। उपर सेवान्न टारटुस देनिवासके  
अर्थात् केविटासास पर्यत पर रहने लगे। इन दोनों  
राज्योंके बीचकी उपर्यकामें सेनेटाका अधिपतन होता  
था। इसके साथ ही 'कोरम' की प्रतिष्ठा हुई। ये दोनों  
राज्य बगुरेण दिनों तक स्वामी न रह सके। कुछ मातहायी  
मेडिनोके हाथ टारटुस मारा गया। इसके बाद इन दोनों  
राज्यों पर अनेके रोमुलास ही शासन करने लगे। कुल  
३६ वर्ष तक रोमुलासने राज्य किया। एक दिन रोमु-  
लास पोर्टुसपुल नामक स्थानमें कन्यास मामिपम् प्रजा-  
पुत्रका निरोधन कर रहे थे, येने समय आकाशमें मूर्ध-  
प्रदण दिगाई दिया। तुल हो एक मृतक दिगाई दिया  
और उनी मृतकके साथ रोमुलासके पिता मार्स एक  
अन्तिमय पुत्रक रथ पर रोमुलासकी बैठा कर स्वर्गगामी  
हुए। दूसरे दिन कोई उसकी देख न सका।

शुभाशुभप्रवणका राजरक्षण।

( ७१५ १०१ ईसापूर्व )

रोमुलासको मृत्युके बाद रोमने परमहावी और  
पामि'कप्रदनुमा पणालियरकी राजा मनीमोत किया।  
उहीने परतीकगामी टारटुस देनिवासकी पुनर्से सयना  
विवाह किया। इसने शासिकके साथ ३६ वर्ष तक  
राज्य किया। यह रोम आश्रायके सर्वप्रथम पराजित-  
प्रयोक्त ही।

नुमाके मारुण्यके दिनकर सिकने ही काम लिये।  
उमने पञ्जाबकी मृद कर उचोतिपनासकी उन्नति की।  
उमने मरुस्थितों मीमा निर्धारित कर उने टार्विवास  
नामक देवताके अर्वात्त मीव दिया। उमने जितिन  
नामक देवताके एक देवताका मन्दिर बनवाया था। युद्धके  
समय ही इस मन्दिरका दण्डाका मृदुता था और  
शासिकके समय यह दण्डाका मरु बन्द रहता था।

शुभाशुभप्रवण।

( ६०३ ६४२ ई० पू० )

नुमाकी मृत्युके बाद मरुण्यमरुस्थितय राजा मनीमोत

हुए। इसका राजत्वकाल शान्तिके वजाय युद्धविप्रद्वेषे परिपूर्ण था। इनमें आलया लङ्काका ध्वंस ही सर्वापेक्षा प्रसिद्ध घटना है।

रोमन सैनिकोंमें हेरेथियस नामका एक आदमी था। एक ही गर्भसे इसके दो भाई और यह पैदा हुए थे। इसी तरह आलवान नामक सैन्यदलके स्यूरीथियस नामक एक गर्भजात तीन भाई थे। ऐसा स्थिर हुआ कि इन तीन भाइयोंमें द्रुह युद्ध होगा। इस द्रुह युद्धमें हेरेथियसके दोनों भाई मारे गये। अन्तमें हेरेथियसने एक एक करके तीनों भाइयोंकी धराशायी कर दिया।

जिस समय विजयोद्घासके साथ हेरेथियस अपने नगरमें प्रवेश कर रहे थे, ऐसे समय राहमें उसको देख उसकी बहन जोर जोरसे रोने लगी, क्योंकि मृतभाइयोंमें एक भाईसे उसका प्रेम हो गया था। इस समय नगरमें प्रवेश करते देख अपने प्रेमीको न देख वह चिन्तित हो उठी, यह जान कर वह रोमकवीर क्रोधित हो उठा। उसने तलवारकी चोटसे अपनी बहनको मार डाला। इस अपराधमें वहाँके विचारकोंने उस रोमकवीरको फाँसी पर चढ़ा दिया था। इस काण्डसे रोमनोंकी भीषण शिक्षा मिली थी।

इसके बाद टाल्लसने फिउनी और पट्रास्कानोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। अलवान रोमनोंके अधीन युद्धक्षेत्रमें गये। किन्तु अब तक रोमकसैन्य पट्रास्कानोंके साथ घोरतर युद्धमें प्रवृत्त था, तब तक अलगान पहाड़ पर छिपे खड़े थे। इस काण्डसे क्रोधित हो टाल्लसने अलवाको ध्वंस करनेका हुक्म दिया। शीघ्र ही अलवानगर ध्वंस हुआ। वहाँके अधिवासी बाल-वृद्ध-वनिता-को ले फिलियन पर्वत पर रोमकोंकी प्रजा बन कर रहने लगे। इस तरह टाल्लसने युद्धमें फाँसे रह कर ३१ वर्ष तक राजत्व किया था।

आल्कास मरिथियस ( ६४२ ई० पू० )

टाल्लसकी मृत्युके बाद सुमाका नामी सेवाइन-वासी अंकास-मरिथियस राजा मनोनित हुआ। उसने सिंहासनारूढ़ होते ही पदाङ्गधर्मांशुकरण कर सर्वधर्मा सुष्ठानको पुनर्जीवित किया। किन्तु लेटिन नगरके अधिवासियोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हो उसको शान्तिमङ्ग करना

पड़ा। युद्धमें उसने कई लेटिन नगरों पर अधिकार कर लिया। २५ वर्ष तक राजत्व कर अंकास परलोकगामी हुआ। इसके बाद प्रिस्कास राजा हुआ।

व्यूथियस टार्कुइनयास प्रिस्कास ( ६१७-५७९ ईसवी पूर्व )।

वह पल्टर ( ज्येष्ठ ) टार्कुइन नामसे विख्यात हुआ। रोमके पाचवाँ राजा टार्कुइन माता पट्रास्कन और पिता यूनानी था। उसके पिता डेमारेटस् करिन्थ नगरके एक धनशाली व्यक्ति थे। डेमारेटस्ने पट्रास्कानवंशकी एक कन्यासे विवाह कर पट्रास्कानमें टार्कुइन वंशकी प्रतिष्ठा की। डेमारेटस्के ज्येष्ठ पुत्र टार्कुइनने टानार्कुइल नामी एक उच्चवंशीय रमणोके साथ विवाह किया। यह रमणी अत्यन्त उच्चामिलापिणी थी। टार्कुइन बहुत जल्द अङ्कास मरिथियस् और रोमवासी सबसाधारणके मिय-पाल हो उठा। अङ्कास मरिथियस्ने उसके पुत्रोंके लिये शिक्षक नियुक्त किया। इसके बाद अङ्कास मरिथियस्की मृत्युके बाद रोमवासी प्रजा ने टार्कुइनको सिंहासन पर बैठाया।

टार्कुइनका राजत्वकाल कई तरहकी प्रसिद्ध घटनाओंसे पूर्ण हुई। इसने सेवान्नोंको हटा कर उनके कलेथिया नामक नगर पर अधिकार कर लिया और अपने भतीजे इत्रेरियसकी वहाँका शासक नियुक्त किया। इसने लेटियस प्रदेशके कई नगरों पर भी अधिकार कर लिया था।

इन सब कामोंके सिवा इसने कितने ही लोकहित-कर कार्य किये थे। इसने सबसे पहले कैपिता लाइन और अमेस्टाइन नामके दो पर्वतोंके बीचके जलाशयका जल निकलवा कर वहाँ पत्थरकी गैद्याई कर फोरम और सार्कास नामके दो महल बनवाये। इसकी गैद्याई ऐसी अच्छी हुई थी, कि हजारों वर्षके बाद आज उसका एक टुकड़ा भी उससे मस नहीं हुआ है। इसके वनाये 'सार्कास मेक्सियम' नामक रङ्गालयमें कई तरहके स्त्री-काशील दिखाये जाते थे। छिनिका कहना है, कि इसने कैपिटालाइन पर्वत-शिखर पर एक विराट् सोध प्रस्तुत किया था। सिवा इसके इसने राज्यके शासन प्रणालीमें कई तरहका संस्कार किया था। इसी समय चार मेष्टल कुमारीके बदले ६ कुमारी नियुक्त हुईं।

टार्कुइन सर्नियस टाल्लियस नामक ग्रामके

पुत्रको बहुत प्यार करता था। इस लड़केका शैशवकाल बहुत घटनाओंसे पूर्ण है। एक दिन सर्मियसके विछोनेमें भाग लग गई। विछोना जलने लगा। इसी पर यह बालक सोया हुआ था। विछोनेसे भागकी लपट उठी सही, किन्तु लड़केको स्पर्श न कर सकी। यह देख कर टाकुइनपत्नी टार्नाकुइलने विस्मित भावसे कहा, यह बालक अपनी अवस्थामें सम्राट् होगा। उस समयसे उस बालकको पोष्यपुत्रकी तरह पालन करने लगे और अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया।

भूतपूर्व राजा अङ्कास मर्शियसके पुत्रोंने देखा, कि गवियसमें यही दामाद राजसिंहासन अधिकार करेगा। इसलिये उसने राजाको गुप्त रूपसे मार डालनेके लिये दो आदमी नियुक्त किये। इनमें एकके ही कुटाराघातसे टाकुइन सांघातिक चोटसे आहत हुआ। किन्तु अङ्कास मर्शियसके पुत्र इस गुप्तहत्याका फल लाभ नहीं कर सके। बुद्धिमती रानी टार्नाकुइलने साधारण प्रजाओं यह प्रचार कर दिया, कि टाकुइनकी चोट सांघातिक नहीं है। यह शोष ही आराम होगा। इधर अपने प्रिय-पोष्यपुत्र सर्मियसको राजकायमें करनेका हृषम दिया। सर्मियस भी प्रसारजनके गुणसे थोड़े ही समयमें प्रताप्रिय हो उठा। किन्तु टाकुइनकी मृत्युका संवाद अधिक दिन तक गुप्त न रह सका। जब टारकुइनका मृत्युसंवाद प्रकाशित हो गया, प्रकाश्यरूपसे सर्मियस राजसिंहासन पर बैठा।

सर्मियस टाडियस (५७८-५३५ ई० पू०)

छठे राजा सर्मियसको साधारणके निर्वाचनके फलसे राजसिंहासन मिला। उसके सब संस्कारोंमें शासन-संस्कार सबसे उत्तम हैं। यहाँका शासन पहले धार्मिक-जाटपंचागत था, किन्तु इसके समयमें यह धनगत हुआ। यहाँके लोगोंमें यह इच्छा चल गयी हुई, कि धन कमानेसे में कुलीन न होऊँगा। रोमका पणनरटार जितना बाणिज्य-रूपसे उत्थन्न धनसे परिपूर्ण होने लगा। सर्मियसने रोमकोको चार भागोंमें विभक्त किया। इसके बाद उसने सबसे पहले मनुमगुमारो कर सम्पत्तिका मूल्य निर्धारित किया। उक्त चारों विभाग धनगत थे। जिनके पास एक लाय या इससे अधिक

रुपयां था, वे सबसे धनी कहे जाते थे। पाँचवीं श्रेणीके लोगोके पास १२५०० रुपया रहता था।

इस शासन-संस्कारके बाद सर्मियसने रोम नगरको सीमा वृद्धि की। पहले 'पंथरिम' नगरकी निर्दिष्ट पवित्र परिधि थी। अब कुइरिनस, मिमिनेल और एस्कुइलेन पर्यंत इस नगरकी सीमाके अन्तर्गत भा गये। इस सीमाके चारों ओर पत्थरकी गैद्याईकी चक्षुर्वीवारी उठा दी गई। इसको लोग सर्मियसकी चक्षुर्वीवारी कहते हैं। इस समय रोमकी परिधि ५ मीलकी हुई। न्यारके बाहरी दरवाजे पर एक मील लम्बा एक प्रकाण्ड स्तूप तैयार हुआ और १०० फुट चौड़ी ३० फुट गहरी एक खाई खोदी गई। रोमके सम्राटोंके शासनकाल तक यही नगरकी सीमा निर्दिष्ट थी। इस घटनाके बाद सर्मियसने लाटियमके अन्यान्स प्रदेसोंके अधिवासियोंको रोममें मिला कर उनको समान अधिकार दिया।

पूर्वोक्त ज्येष्ठ टाकुइनके दो पुत्रोंके साथ सर्मियसको दो कन्याओंका विवाह हुआ। इनमें ज्येष्ठ पुत्र ल्यूशियस निष्ठुर प्रकृति का था; किन्तु उसकी स्त्री अत्यन्त कोमल प्रकृति की थी। छोटा लड़का अर्नास अत्यन्त नम्र और धार्मिक था। फिर भी उसकी स्त्री टालिया अत्यन्त क्रूर प्रकृति तथा उद्यामिलापिणी थी। इस असद्वृत्त तथा विषम प्रकृतिका भोगण परिणाम हुआ। ल्यूशियसने अपनी धर्मशीला पत्नीको मार डाला। इधर टालियाने अपने पतिका प्राणहरण किया। अथर्व ल्यूशियसने बड़ी खुशीके साथ अपनी भन्जपत्नी ल्यूशियसने टालियाके साथ विवाह किया। किसने भी पति और पत्नीकी हत्या पर जरा भी शोक प्रकट न किया।

सर्मियसकी प्रिय पुत्री टालिया पतिका हत्या और मृत्युसे विवाह कर अपने पिताकी हत्याकी क्रिममें लगी। अन्तमें इन दोनों पति पत्नीने सर्मियाका प्राणनाश कर दिया। जिस समय टालिया गाड़ी पर चढ़ कर घर लौट रही थी, उसी समय लड़कुदान सर्मियसकी शयनदृष्ट सड़क पर टटपटा रही थी। कोचपान ने यह देख कर घोड़ेकी रस्सी रोक दी। किन्तु उपयुक्त

कन्याने कोचवानको हुषम दिया, कि तुम पिताकी शपथके ऊपरसे गाड़ी चला ले चलो। ऐसा हो हुआ, गाड़ी के चक्के से शपथके दो खण्ड हुए। इससे निकले हुए रक्तके छोटोंसे टालियाकी पोशाक भोग गई। उसी समयसे इस सड़कका नाम ( Wicked street ) विकेड स्ट्रीट अर्थात् निष्ठुरपथ रखा गया। सर्भियसके मृत-शरीरका कोई सत्कार न हुआ। इसने ४३ वर्ष तक राजस्य किया था।

ल्यूशियस टाकुइनस सुपर्वस। (५३५-५१० ईसाके पूर्व)

ल्यूशियसकी लोग अहङ्कारी टाकुइन कहते हैं। इसने धनिकोंको देशसे निकाल कर उनकी धनसम्पत्ति पर अधिकार करना आरम्भ किया। इसने अपने जीवन मष्ट होनेकी आशङ्कासे देहरक्षक नियुक्त किया था। यह रोम पर भोग अत्याचार करने पर भी विदेशमें एक पराक्रमशाली राजाके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने अकृमियस मानेलियसके साथ अपनी कन्याका विवाह कर लाटियममें प्रभुत्व स्थापित किया। इसके बाद टाकुइनने भलसियानोंके समृद्ध सुयेवा, पमेटिया नगर पर अधिकार कर बहुतेसे धन-सम्पत्ति लूट ली और उसी धनसे कॅपिटालाइन पर्वतके शिखर पर जुपिटर, जुनो, एवं मिनार्भा—इन तीन देवताओंके नाम पर कॅपिटालियम नामक एक चिराट मन्दिर बनवाया। मन्दिरकी बुनियाद छोड़ते समय एक ताजा नरमुण्ड कटा हुआ पाया गया था। इस मन्दिरमें एक भूगर्भस्थ कोठरीमें अनेक पवित्र हस्तलिखित पुस्तकें रखी हुई थीं।

इसके बाद टाकुइनने गैवियार्ड नामक एक लेटिन नगर पर विश्वासघातकतापूर्वक अधिकार किया। इस समय एक देवी घटनासे वह व्यथित हुआ। एक दिन एक सर्प पूजाकी वेदीसे निकल कर यल्लिदान किये हुए बेलकी; वे तड़ी खाने लगा। यह देख टाकुइनने इसका मर्म जाननेके लिये अपने दो पुत्र तथा बहनको यूवाना-के डेलिफ्नीके यहाँ भेजा। इधर टाकुइन जब अर्डिया पर अधिकार करनेके लिये युद्धमें जा रहा था, उस समय उसके पुत्र सेकट्रने लेशियसकी पतिपरायणा स्त्री लुकेशियका सतीच्व नाश किया। एक आधी रात-

को सेकट्रनेने हाथमें नङ्गी तलवार ले कर लुकेशियानी कोठरीमें प्रवेश किया; और कहा—“यदि तुम मेरी बात न मानोगी, तो मैं तुमको मार डालूंगा और बाहर बहूंगा, कि तुम गुलामके साथ व्यभिचार कर रही थी, इसीसे तुमको मैंने मार डाला है।” लुकेशियाने प्राण-भयकी अपेक्षा कलङ्कका अधिक डर माना। सेकट्रसके इस अमानुषिक काण्डके करनेके उपरान्त लुकेशियाने अपने पिता और पतिको बुला कर इसका बदला लुकेशियाने लिये उत्तेजित किया और छातीमें छुरा मार कर इस कलङ्कमलिन अनुत्तम जीवनलीलाका अन्त कर दिया। इस काण्डसे रोमके अधिवासी उत्तेजित हो उठे और उन्होंने राजा तथा उसके परिवारवर्गको देशनिकालका दण्ड दिया। उस समय टाकुइन बाहर युद्धमें प्रवृत्त था। उनका भांजा एलब्रुटसने सैन्यका अधिनायक हो कर टाकुइनके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। राजाकी फौज अत्याचारी राजाकी अधीनता छोड़ कर ब्रुटसके अधीन हुई। टाकुइन शीघ्रतासे रोम लौट आया; किन्तु किसिने नगरका दर-बाजा न खोला। उस समय यह डर डर अपने पुत्रोंके साथ कापेरी नामक स्थानमें जा बसे। यह २५ वर्ष तक राजस्य कर पुत्रके दीय तथा प्रजाकी भोरसे निर्वासित हुआ।

रोममें राजतंत्र प्रणालीकी जगह प्रजातंत्र-शासन कायम हुआ। इस घटनाको अन्त करनेके लिये रोम-वासियोंने ईसाके ५१० पूर्वकी २४ फरवरीको रेजिफिडजियम या फिडगालिया नामक चार्जिकोत्सवका स्थापना किया। किन्तु प्रजातन्त्रप्रणालीके बदले शासनप्रणालीके मूलका परिवर्तन न हुआ। प्रजाके चुने हुए दो महामाण्डलिक नियुक्त हुए। उनका यह पद तीन वर्षके लिये स्थायी हुआ। वे ही साधारणकी सम्मतिसे राज्यशासन करने लगे। ये पिटर और पीछे कन्सल नामसे पुकारे गये।

सन् ५०९ ईसासे पूर्व एलब्रुटस और टाकुइनम कोलेशियस पहले कन्सल नियुक्त हुए। किन्तु टाकुइन वंशोद्भव होनेकी वजह कोलेशियस पीछे रोम परित्याग करने पर बाधन हुए और पिमालेसियम उनही जगह नियुक्त हुए।



इसी समय नियोजित राजा टाकुइन पद्रास हानोंकी महापितासे अपहृत राज्यकी पुनः पानेका उद्योग करने लगा। टाकुइनने अपनी निजी (Private) सम्पत्तिकी पानेका दावा कर दो दूतोंको रोम भेजा। कन्सलोंने यह प्रार्थना न्याय समझ कर पूरी कर दी। किन्तु दूतोंने कई रोमक युवकोंसे पड़वग्न कर टाकुइनको राजा बनानेकी चेष्टा आरम्भ की। एक गुलामने इस चेष्टा या साजिशको प्रकट कर दिया। इस साजिश कारियोंमें पलट्रुटसके दो पुत्र भी शामिल थे। ट्रुटसने अपने पुत्रोंका अपराध क्षमा नहीं किया। इसने सभी साजिशकारियोंकी तरह अपने पुत्रोंके बध करनेका दृष्टम जारी किया। इसलिये ट्रुटसका नाम रोम इतिहासमें अमर है।

टाकुइनने अपनी साजिशको असफल होने देख पद्रासकानोंकी सहायतासे रोमके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। ट्रुटस और मलेरियस भी सैन्य ले कर आगे बढ़े। टाकुइनका पुत्र आर्पास ट्रुटसके साथ हग्नयुद्ध करने लगा। दोनों सांघातिक रूपसे आहत हो घोट्टेसे गिर पड़े। इसके बाद घोरतर युद्ध आरम्भ हुआ। जय-पराजयका निर्णय करना कठिन हो गया। एकवार आधी रातको देववाणी हुई—“रोमन ही जयी हुए हैं।” यह सुन कर पद्रासकान भाग चले। मलेरियस ट्रुटसकी मृत देहको ले कर रोम लौट आये। ट्रुटसके लिये सभी हाहाकार कर गिलाव करने लगे। मलेरियस न्यायके गुणसे सबके मियवाव हुए। इसीलिये उसका नाम पाण्डिकाला अर्पास प्रजाप्रिय हुआ।

इसके बाद दूसरे वर्ष सन् ५०८ ईसासे पूर्वा टाकुइन पद्रासकानके अन्तर्गत ग्लासियानके राजा लार्स पर्सनाके शरणाग्न हुए। पर्सनाने विराट सैन्य ले कर रोमके दूसरे द्विस्तके जेनिक्वुलम नामक किले पर विद्रोह टोक आरम्भ किया। आगने सामने युद्ध करना असम्भव समझ रोमक देशोद्धारके लिये टाइपर नदी परके बने पुत्रकी तोड़ने लगे। होरिगियास लकोलस नामक एक अर्ली-किर योर असाधारण वीरनाके माथ पुलके दूसरे छोर पर झूले मुकाबला करने लगा। इपर रोमक धीर पुत्र

तोड़ने लगे। पुत्र टूट जानेके बाद होरिगियास नदीकी सहाय तीर्थकी वर्षासे प्रदीप्त हो नदीमें फूट पड़ा और उमने कहा—“पिताः टाइपर नदी, मुझको विधिघ्न रोम पहुँचा दे।” तैत्नेमें कुशल होनेकी वजह यह तीर्थकी वर्षासे बचने हुए टाइपरके उस पार आ पहुँचा। इस घटनाकी अमर बनानेके लिये रोमकी सरकारने उसको एक प्रतिमूर्त्ति तय्यार करवाई और सारा दिन यह जितना पैदल चल सके, उतनी भूमि उसको प्रदान की। रोमके इतिहासमें रेजियसकी यह कीर्त्ति स्वर्णाक्षरोंमें लिखी गई है।

इसके बाद पार्सनाने रोम नगर पर चेष्टा डाला खाद्य वस्तुओंकी अभावकी वजह हो जानेकी वजह रोमवासों घबरा उठे। उस समय म्युशियन नामक एक स्वदेशयत्सल पुत्रने रोमकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया। उसने गुप्तदस्ताके चेष्टामें पार्सनाके शिबेमें प्रवेश किया। किन्तु पार्सनाको पहचान न सकनेके कारण उसने राजमन्त्रोंका बध किया। इसके बाद वह पकड़े जा कर पार्सनाके सामने उपस्थित किया गया। जिस समय पार्सनाने कष्ट दे कर उसके प्राणनाशका हुक्म सुनाया, उस समय उसने अपने दाहते हाथकी जलती हुई अग्निशिखा पर फैलाया और यह हंसने लगा। हाथ जल गया, किन्तु उसकी हास्यरेखा उसके मुँहसे विलोम न हुई। उस समय म्युशियनने नीतीकताके साथ पार्सनासे कहा,—“मेरी तब तुमहाला गुप्तदस्ताके लिये ६०० युवक नियत किये गये हैं, उनमें मैं ही पहला हूँ। दूसरे दूसरे युवक भी एक एक करके आयेगे।” हमने दर दर और उसकी कष्टसहिष्णुता तथा साहसको देख पार्सनाने उसे सजुगल रोग पहुँचा दिया। इस अन्तत कीर्त्तिके लिये म्युशियसको ‘मिक्सीला’ या ‘वामवाहु’ नामने पुकारने लगे। इसके बाद रोमके माथ सन्धि कर पार्सना पर लौट आये। रोमकने सन्धिके प्रतिभूत्वरूप १० युवक और १० कुमारीयोंकी पार्सनाके पास भेजा। इनमें क्लिलिया नामकी एक कुमारी टाइपर नदीके तीरे हुए पार कर घर लौट आई। रोमकीने उसे पकड़ कर फिर पार्सनाके पास भेजा। पार्सनाने उसके असीम साहस तथा

प्रतिभा देख कर उसको और उसके साथियों को छोड़ दिया।

इसके बाद टाकुइनने लेटिन नगरवासियोंकी सहायतासे तीसरी बार रोम पर आक्रमण किया। रोमकीने विपद्में फंस कर एक डिरेक्टर नियुक्त किया। कन्सल डिरेक्टर नियुक्त करते थे। छः महीने तक यह पद स्थायी रहता था। डिरेक्टरोंकी सर्वतोमुखी क्षमता रहती थी। एप्टुमियस पहले डिरेक्टर हुए। दोनों ओरकी सेना एजिलास भीलके निकट युद्धसज्जासे सज्जित हुई। इस भयङ्कर युद्धमें रोमक जयी हुए। टाकुइनके पुत्र टाइटस मारा गया। टाकुइन अख्मी हो प्राण ले कर भागा।

इसके बाद टाकुइनने राज्य पानेकी फिर चेष्टा न की। भवकी पार यह वयूमी नामक स्थानमें भाग गया और ४६६ ईसाके पूर्व ई०में उसने इस संसारको परित्याग किया।

शंजलास भीलके युद्धसे डिसेम्बेर तक ४६६—४५२ ईसाके पूर्व।

पेट्रे शियन या अभिजातगण एवं छे वियन या निम्नश्रेणी विरोधसे परिपूर्ण हैं। रोमका राजतन्त्र लुप्त हो जानेके बाद शासनप्रणाली धनिकोंके हाथ आ गई। वे ही कन्सल बनते थे, वे ही विचार करते थे। क्रमशः छे वियनगण, अत्याचारसे पीड़ित हो कर असन्तोष प्रकाश करने लगे। सिवा रोममें ऋण ग्रहण तथा वसूल करनेका नियम भी बड़ा वेदव था। छे वियनोंमें बहुतेरोंकी दरिद्रतायुक्त ऋणग्रस्त धनिकोंकी गुलामी करनी पड़ती थी। राजतन्त्र विलुप्त होनेके बाद राजाकी जो साधारण भूमि थी, उस पर भी पेट्रे शियन स्वच्छापूर्वक दखल जमा कर उसका भोग कर रहे थे, छे वियनोंका उस पर कुछ भी अधिकार न था।

इन सब कारणोंसे छे वियनोंने ईसासे पूर्व सन् ४६४ ई०में रोमके तीन मीलकी दूरी पर एक नया नगर निर्माण करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु उन सबकी फरा लानेके लिये मेटेशियस पत्रिया नामक एक मनुष्य प्रातनिधि नियुक्त हुआ। उसने ईशपकी कथामालासे उद्धार और अन्धान्य शय्यश्रीका किस्सा सुना कर उन्हें

शान्त किया। उन सबोंने कहा, 'हम लोग सब विपदोंमें, यदि समान अधिकार पावें तो लौटें।' उन्होंने कंटिविडन (धर्माधिकार) स्थापित कर अपने प्रति किये गये अत्याचारोंके प्रतिविधानकी चेष्टा की।

इसी समय स्विउरियस-काशियस नामक एक विख्यात पेट्रे शियनने प्लेवियनोंके अनुकूल "एप्रियन ला" या "कूपिविधि" नामका एक कानून तैयार करनेकी चेष्टा की। इस कानूनसे उनका कुछ उपकार हुआ। अर्थात् इस साधारण भूमिके कुछ अंशके छे वियन भी अधिकारी बन गये।

इस समयके रोमके इतिहासमें करिउलेनास और मलसियनोंकी और किसी विशेष घटनाका उल्लेख नहीं है।

मरियास करिउलेनास नामक एक अहङ्कारी पेट्रे शियस युवक छे वियनोंसे घृणा करता था। सन् ४८८ ईसासे पूर्व एक बार दुर्भिक्षके समय रोमके सहायतार्थ एक जहाज अन्न आया। करिउलेनासने उस अन्नसे छे वियनोंकी देनेसे मना किया। इस पर छे वियनोंने उसका संहार करनेकी चेष्टा की। किन्तु कन्सलोंकी चेष्टासे यह बच गया। किन्तु वह युवक उस अपराधमें देशसे निकाल दिया गया। करिउलेनासने निर्वासित हो कर मलसियनोंको रोम पर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित किया। उन्होंने उसको अपनी सेनापति बना कर युद्ध करनेके लिये रोम भेज दिया। करिउलेनासने कितने ग्रामको लूट कर प्रयत्न, प्रतापान्वित हो कर रोम पर आक्रमण किया। रोमके पुरोहित और प्रधान प्रधान सम्प्रान्त व्यक्ति करिउलेनासके पास रोमरक्षा करनेके लिये प्रार्थना करने गये। किन्तु उसने उन सबोंकी प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया। अन्तमें रोमकी रमणियां करिउलेनासकी माता मेडुरिया और स्त्री मलामणियांकी आगे कर रोमरक्षाके लिये करिउलेनासके खेममें गईं। उनके करुणकन्दनसे विचलित हो कर उसने कहा "मातः तुमने रोमकी रक्षा की सही, किन्तु अपने पुत्रको मार डाला।"

इसके बाद वे मलशियनोंकी लौटा ले गये। कुछ लोगोंका कहना है, कि मलशियनोंने इस तथ्यव्यवहार

रो उसकी हत्या कर डालो। कुछ लोगोंका कहना है, कि यह वृद्धावस्था तक जीता रहा और सदा यह यही कहता था—“विदेशियोंमें रहनेका यह वृद्धके सिया दूसरा कोई अनुभव नहीं कर सकता।”

ईसासे पूर्व ४७७ ई०में मियेनटाइनोंके साथ एक युद्ध हुआ। उसमें रोमन जीत गये और कंसल टाइट-मेनेलियासके हुजमसे सारे मियाड नगर समूल विगष्ट हुए। फेवल उन बंकाका एक बालक बच गया था। इतने धार्मिक चाल कर रोमके इतिहासमें क्याति लाभ की।

ईसाके पूर्व सन् ४५८ ई०में एकुरियानोंके साथ एक भयङ्कर युद्ध हुआ। सिनलेनीटसके अद्वितीय रण-कौशलमें रोमकोंने जय प्राप्त किया। जिस समय सिन-सिनेटसको सेनापति चुननेके किये लोग गये थे, उस समय यह चेतनी हल नजा रहे थे। इसके बाद उमकी पत्नी रेसिलियाने उसकी एक साधारण पल्ल दिया। उसी पल्लकी पदन कर वह राजसमागमें पहुँचा और वहाँ डिरेक्टर या रोमका सर्वप्रथम कर्ता नियुक्त हुआ। अस्मा-माय्य प्रतिभाके बल तथा रणकौशलसे शत्रुसैन्यकी पराजित कर जयनालयमें भूषित हो कर वह रोम लौट आया।

इतिहासमें या दस नाम ४२१-४४६ ई० पू०।

ईसासे पूर्व सन् ४७१ ई०में द्रिव्यून पावलिपस भलेराने पावलिपन नामक कानून तैयार किया। इस कानूनके फलसे प्लेबियनोंकी स्वतन्त्रताकी वृद्धि हुई। इसके बाद ईसासे पूर्व ४६२ ई०में द्रिव्यूनके पासटरे-स्टिलियस अर्थात्के प्रस्ताव पर दस आइमियोंकी एक कमिटो संगठित हुई। किन्तु इसका पेट्रेसियनोंके बहुत विरोध किया। अन्तमें ८ वर्षों तक विरोध होनेके बाद तीन गिष्ट जाजियोंकी मूनान देगमें सोलनका कानून संमद करनेके लिये भेजा गया। ये यहाँ दो वर्ष तक रह कर रोम लौट आये। ईसासे पूर्व ४५२ ई०में दस आइमियोंकी एक कमिटो संगठित हुई। यह कमिटो सर्वप्रथां हो कर नासनदण्ड परिचारक करने लगे। इनमें पविपस, पलेडियस और टाइटस जेनिडियस कंसल नियुक्त हुए। इन सर्मांसने दस धाराएँ तैयार कीं। ये सर्मांसमांसने कानूनके रूपमें परिणत हुई।

पूर्वक आइमकी इस धाराओंमें दो और धाराएँ जोड़ दी गईं।

ईसाके ४४६ पूर्ण एकुरियान और सेयाइयोने फिर रोम पर आक्रमण किया। पविपस स्वयं युद्धक्षेत्रमें न जा कर रोममें रह गया। किन्तु उसकी साजिगसे निष्क-सेनापति डेन्टाटस गुनरूपसे मार डाला गया। इनमें १२० वार युद्धमें जय प्राप्त किया था। इसके बाद पविपसने सन्मत्त सेनापति मर्जिनियाकी अलीकिक रूपवती कन्याकी बलपूर्वक हरण करनेके लिये नाना उपायोंका आश्रय लिया। दूसरा उपाय न देव मर्जिनियाने अपना मिय पुत्रीके पक्षधरमें लूटा मार कर उसका उदार किया। पवि-यामके इस तरहके अत्याचारसे प्लेबियन उन्नेजित हो उठे और वे रोमनगरकी परिव्याग कर दूसरी ओर जा कर रहने लगे। यह काण्ड दूसरा है। इस समय पेट्रे-शियन बलने निष्काय हो कर पल्ल भालेरियन और पम-होरेशियन नामक दो मनुष्योंकी प्लेबियनोंके साथ संधि करनेके लिये भेजा। इसके बाद इन दस आइमियोंकी यह सभति विलुप्त हुई और वे ही दोनों मनुष्य कंसल नियुक्त हुए। उन्होंने फिरसे आइमका संस्कार कर प्लेबि-यनोंकी बहुत सुविधाये दीं। इन दस आइमियोंमें पवि-पस कैद कर लिया गया। यह आरतहत्वा कर मीतके मुनपतिन हुआ। अन्याय लोगोंमें किसने आरतहत्वा की और कोई निर्वासित तथा कुछ लोग मार डाले गये। उनको घनसमांसित जन्म कर ली गईं।

ईसाके ४४४ वर्ष पूर्व रोमकी नासन-प्रणालीमें पुनः परिवर्तन हुआ और इनके अनुत्तर दो आइमी मिलि-टो द्रिव्यून या सामरिक विचारक नियुक्त किये गये। पहले कंसल पेट्रेडिशियनोंमें चुने जाते थे, इस समय प्लेबियन बलसे ही सामरिक विचारक मनोनीत हुए।

इतने दिनों तक रोमराज्यकी सीमा निर्दिष्ट थी। अब रोमकोंने पेट्रेरिया पर अधिकार कर वहाँ और अन्याय जाज्योंमें उपनिवेश कायम करनेके लिये चिन्ता करने लगे। इनपय राजकी परिधि फैलने लगी। ईसाके ३६४ वर्ष पूर्व रोमकोंने मियाई राज्यकी सम्पूर्णरूपसे जय प्राप्त कर दिया। दस वर्ष तक भयङ्कर युद्ध करनेके बाद

रोमकोंने विजय प्राप्त की। इसी समय देववाणी प्रचारित हुई, कि जो ६००० फुट सुरङ्ग खोद कर अलघान भौलके जलका संयोग समुद्र-जलसे करा देगा, उसीकी इस युद्धमें विजय होगी। इसके अनुसार रोमके डिरेक्टर फिउरियस कामिल्लासने उक्त सुरङ्ग तैयार की। आज भी वह विद्यमान है। इसके बाद पद्रास्कान राज्यका ध्वंस हुआ। इस युद्धमें विजय प्राप्त कर कामिल्लासने महा आडम्बरके साथ सादे घोड़ेके रथ पर चढ़ कर रोम-नगरमें प्रवेश किया। जूतो देवताही प्रतिमूर्त्तियोंमें लाई गई। इस मूर्त्तियोंके रखनेके लिये एक विराट् मन्दिर बनवाया गया।

इसके ३६१ वर्ष पूर्व कामिल्लास निर्वासित हुआ और गलगण असें रथ सेनाओंको ले कर रोमको ध्वंस करनेके लिये चढ़ आये। अल्लिया नामक स्थानमें घोर-तर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सहस्र सहस्र सैनिक धराशायी हुए। ऐसे समय वृक्षे खुचे लोग पुरोहित और मेडलकुम रिषोंके साथ कैपिटाल पर्वत पर चले गये। गर्तोंने रोमनगरमें प्रवेश कर मार काट मचाते आग लगा कर नगरको भस्म कर दिया। केवल मानिलियासकी साय-धानतासे कैपिटाल शत्रुदस्त्रसे बच गया। इससे वह घोर नामसे पुकारा गया।

अन्तमें १००० स्वर्णमुद्रा पा कर गलगण रोम छोड़ कर चले गये। किन्तु राहमें रोमके सैनिकों द्वारा आक्रान्त हो नष्ट भ्रष्ट हो गये। इसके बाद रोमवासी रोममें लौट कर घरदार बनाने लगे। कामिल्लास लौट कर फिर प्रजातन्त्रका डिरेक्टर नियुक्त हुआ। सन् ३६१ ई० पू०में गलीने फिर रोम पर आक्रमण किया। किन्तु अर्गो नदीके किनारेके युद्धमें मानिलियासकी अद्भुत वीरतासे रोमकी रक्षा हुई। इसके लिये टाकांस नामक गौरवा निवत उपाधि उसको मिली थी। किन्तु अहतश रोम-वासियोंने पाँछे उसको मार डाला। इसी समय पेद्रि-शियन और प्लेवियनोंमें स्वत्व और स्वागत्व पर घोर पाद विवाद उत्पन्न हुआ। पीछे इससे पूर्व ३६७ ई०में प्लेवियन दलके पल सेपसटियस सर्वप्रथम कन्सल हुआ और विचार-कार्यके लिये मिटर या एक नया मजि-

स्ट्रेट नियुक्त हुआ। कुछ समयके लिये प्लेवियन और प्रेट्रिशियनोंमें शान्ति स्थापित हुई।

लेटिन-युद्ध (३४०-३३० ई० पू०)।

इसके बाद लेटियामके प्राधान्य पर रोमके साथ सामनाइट और लेटिनोंके दो युद्ध हुए। प्रथम सामना-इट युद्धमें (३४३-३४१ ई० पू०) रोमकोंने मीने और सामनाइटोंने उनकी अधोनना खोकार कर ली। लेटिनों-ने दून भेज कर कहवाया, कि हम लोगोंमेंसे भी कन्सल और ग्रासक नियुक्त किया जाये। किन्तु रोमवासियोंने इस पर आपत्ति की और इसके फलसे इन दोनोंमें फिर घमासान युद्ध हुआ। (३४० ईसासे पूर्व) सेसेरिस और ट्रेकानान नामके स्थानके युद्धमें रोमक सम्पूर्ण-रूपसे विजयी हुए। इस युद्धमें तीन चौथाई लेटिन मार डाले गये। इस युद्धमें मानिलियास टाकांस सामरिक नियम उलटनेके लिये दू टसकी तरह अपने पुत्रका सर काट लनेका हुषम अल्लानवदनसे दिया था।

२रा सामनाइट महायुद्ध (३२६-३०४ ई० पू०)।

इससे ३३० वर्ष पहले रोमकोंने भलसियानोंके साथ युद्धमें विजय प्राप्त किया। रोमकोंके पुनः पुनः श्रौवृद्धि होते देख सामनाइटोंने यूनानियोंको सहायतासे फिर रोमके विरुद्ध युद्धका घोषणा की। यह युद्ध २२ वर्ष तक चला था। पहले पांच वर्षों तक रोमन ही जीतते गये और सामनाइट हताश हो कर युद्धकी इच्छा परित्याग करनेका सङ्कल्प करने लगे। पीछे ली० पण्डियस नामक एक सामनाइट बोल्के अत्यद्भुत समर-कौशलसे सामनाइटोंका भाग्यचक्र पलटा। उसने "कडाइत कक" नामक गिरिमिड्डमें रोमकोंका इस तरहसे अपमान और ये इस तरह पराजित हुए, कि वैसा रोमक-इतिहासमें कभी विरहाई नहीं देता। पण्डियासके रण-कौशलसे रोमकोंको चारवाहिनियां पहाड़के पथमें सम्पूर्ण रूपसे घिर गईं। अवश्यम्भावी विनाश देख कर रोमकोंने युद्धपूर्वक आत्मसमर्पण किया। पण्डियासने भी दया कर रोमसैन्य और सेनापतियोंके प्रति सद्बुध्वहार किया। दोनों कन्सलों और दोनों सेना-पतियोंने खोकार किया, कि हम लोग सामनाइटोंको रोमकोंके साथ सब विषयोंमें समान अधिकार देते हैं और

१०० रोमक युद्धसदर प्रतिभूत्यरूप सामनाइष्टों के पास रहेंगे। जब यह समाचार रोममें पहुँचा, तब सेनेटके सदस्य इनकी की हुई प्रतिपत्तिके पालन करनेमें सम्मत न हुए। उन्होंने कहा, 'सिनापतिकों के खोद्यत प्रस्तावके पालन करनेमें हम लोग बाध्य नहीं हैं। फिर युद्ध होने लगा। रोमका भाग फिर चमकने लगा। ईसाके ३०४ वर्ष पूर्वा रोमकीने सम्पूर्णरूपसे विजय प्राप्त किया। इसी समय पद्रास्कानोंने पराजित हो कर रोमकी अयो-नता स्वीकार कर ली। मध्य इटलीके अधिवासी भी रोमके साथ सम्मिलित हो गये। ईसाके ३०७ वर्ष पहले रोमका प्रभुत्व मध्य इटली पर सम्पूर्ण रूपसे बढ चुक हो गया।

३। सामनाइष्ट युद्ध ( २६८-२६० ई० पू० )

रोमकी उत्तरोत्तर उन्नति देव कर सामनाइष्टोंने फिर युद्धकी घोषणा की। गल्लोंने चाहा, कि उनकी सहायतामें रोमकीसे युद्ध करें। मथिममस और डेसिपस नामके दो कंसलोंने फौजोंके साथ रणक्षेत्रकी याता की। डेमियाने भयङ्कर युद्ध कर प्राणत्याग किया। मेथिसयमने जपलाभ किया। सामनाइष्ट फिर रोमकीके साथ मिल गये।

इसके दून वर्ष बाद पद्रास्कान तथा गल्लाशिमी-फ़ीलके निकट युद्धमें पराजित हुए। अब रोमकी दक्षिणी सीमा बढने लगी। दक्षिण इटली पूर्वाकी ओर यूनानियों द्वारा उपनिविष्ट हुई थी। इससे यह स्थान मागुना प्रोशियाके नामसे परिचित था। इन स्थानके यामिस्ट्रे लुकानियों द्वारा आक्रान्त हो रोमकीकी सहायताके इच्छुक हुए। रोमकीने उनकी सहायता कर लुकानियोंकी मार भगाया और वहाँ रोमसैन्य कायम किया। इस समय रोमकीकी निकट युद्ध करना पड़ा था। यह ईसाके २८२ वर्ष पहलेकी बात है।

रोमक कंसल देन नाथों पर सब दलबल टेरेंटम नामके सामनेके समुद्रमें रोम लौट रहे थे। टेरेंटानोंने रद्दालयकी जंघो छत्र पर चढ़ कर इन्हें समुद्रपथसे ज्ञाते देना। देर न लगे, सीता देव कर इन सर्वोंने जलसुखकी तट्यागी कर दी। छ नाथों युवा हो गईं। कंसल गालेरियस मारे गये। बाकी सब भाग निवले।

रोमकी मिनेटने इनका कारण जाननेके लिये एक दूत भेजा। किन्तु यह दूत अमश्रोचित अपमानित किया गया। टेरेंटम और रोमके बीच युद्ध छिड़ गया। टेरेंटानोंने यूनानी परिवारासके राजा पिरहासके निकट साहाय्य प्रार्थनाकी पिरहास मन ही मन समूचे इटली देव पर अधिकार कर एक प्रकाण्ट हेलेनिक साम्राज्य स्थापित करनेका सङ्कल्प कर रहा था। सीता देव कर टेरेंटानोंनेकी सहायता देना स्वीकार कर यह एक बड़ी फौज एकत्र करने लगा। ज़ोप ही उसने मित्रों नामक एक सेनापतिकों ३००० पैदल सैनिकोंके साथ टेरेंटम नगरकी भेज दिया। मन्तमें ( २८१ ई० पू० ) उसने २०००० पैदल, ३००० घुड़सवार और २० हाथी ले कर रोमके विरुद्ध युद्धवाता की। टेरेंटममें पहुँच कर उसने रद्दालयका फ़ौड़ाकीतुक बन्द कर दिया और सब युवकोंको युद्धविया सिखाने लगा।

रोमक कंसल गालेरियस निमिनास ससैन्य लुकानियोंसे हो कर चले। पिरहासने कीदालसे रोमक कंसलके पास पत्र लिख कर समय मांगा। कंसलने गर्वित-भावसे उनकी रुद्रदेश लौट जानेका परामर्श दिया। उस समय पिरहासने युद्ध करनेके लिये ये वाला को। मिरिस नदीके किनारे दिहाङ्गिया नामक स्थानमें दोनों ओरकी फौजें आपसमें जूट गईं। पिरहासने पहले घुड़सवार सैन्य ले कर रोमसैन्यों पर आक्रमण किया। रोमक 'लोजन' भीमवेगसे आक्रमणको रोकने लगे। उस समय पिरहासने पैदल सैनिकोंको प्रिचालना की। भयङ्कर युद्ध होने लगा। ७ बार तथा तथा आक्रमण हुआ, किन्तु जब पराजयका निर्णय किया जा न सका। इसके बाद पिरहासने रणक्षेत्रको छोड़ दिया। हाथियोंके पराक्रमकी देव रोमक भाग गये। यह ईसाके २८० वर्ष पहलेकी बातें हैं।

पिरहासने रोमकसैन्योंके घोरत्वकी देव कर कहा था, कि ये रोमक सैन्य मेरे पास होने यामे इनका नेत्रय करना होता, तो मैं पृथ्वीकी जाल लेता। उसने देखा, कि एक और युद्ध होनेसे उसकी भयङ्कता सोचनीय हो जायगी। इससे उसने रोम दून भेज कर यूनानियोंसे माँव की प्रार्थना कराई। किन्तु यूनानियोंकी स्वाभिमता सङ्घर्ष रूपसे प्रकटय किया गया था।

युनानी-दूत सिनियास घण्टा-छटासे सेनेटके सदस्य सन्धि कर लेनेके पक्षपातो थे; किन्तु स्वदेशवरल वृद्ध-कृशियास किकसके उदीयनापूर्ण चापससे सन्धि हो न सकी। उस समय पिरहास धीरे धीरे सेन्यके साथ रोमकी ओर धमसर हुआ। पीछे विपद्का खाल कर शीत-कालके आश्रयके लिये टेरेंटममें आ पहुँचे।

रोमने नि कैदियोंके बदलनेका प्रस्ताव दूत द्वारा पिरहासके पास भेजा। पिरहासने राजीवत सम्मान दिया कर रोमक दूतके क्रोधियासको अभिनन्दन किया। कैमि शियस अत्यन्त सत्यनिष्ठ और विक्रमशाली था। वह अपने हाथों हल चलाता था। पिरहासने उसको हाथ करनेके लिये साम, दाम, वण्ड और भेदसे काम लिया; किन्तु सफलभूत हो न सका। फ्रिविशियन मत्त गज-राजके सूँडके सामने भी अचलरूपसे खड़ा था। पिरहासने निरुपया हो कर कहा, कि रोमक कैदियोंको वह साटानैलिया या शनि उत्सवमें शामिल होनेका हुकम दिया और कहा, यदि 'सेनेट सन्धिके प्रस्त व पर सम्मत न हो, तब कैदी फिर लौट आयेंगे।' सेनेटके सदस्योंने अधिकलित भावसे सन्धिके प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उत्सवके अन्तमें रोमक कैदी फिर पिरहासके कैममें भेज दिये गये।

इसके २७६ वर्ष पहले फिर युद्ध आरम्भ हुआ। अस्कुलम नामक स्थानके युद्धमें रोमक सैन्य फिर पराजित हो गए। ६००० रोमक सैनिक युद्धक्षेत्रमें काम आये। युद्धमें जयी होने पर भी पिरहासको सिधा नुकसानके कोई लाभ न हुआ। इसी समय पिरहासके राज्य पर गल्लोका आक्रमण हुआ, अब यह पुरी बलामें फँसा। श्वर सिसिली-वासियोंने भी उसको सहायताकी प्रार्थना की। इससे घबड़ा कर पिरहासने रोमक कैदियोंको स-सम्मान रोम भेज कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु रोमकी सिनेटने उसे इनकार कर दिया।

पिरहासने सिसिलीमें जा कर आक्रमणकारी काथों जियोंको हराया। किन्तु सिसिलीवासी उसके अत्याचार से प्रपीड़ित हुए। इसके बाद इसाके २७६ वर्ष पहले फिर इटलीमें वह लौट आया और शीघ्र ही रोमकी अधिकृत लेकिनगर पर अधिकार कर अर्थात् रोमके

पार्सिफोन देवीके मन्दिरका धनरत्न अपने व्यवहारमें लाया। इस काण्डमें उसका एक लड़ो लड़ाई नाव या जड़ाज डूब गया। इससे पिरहास पार्सिफोनका निग्रह समझ भनोत्साह हुआ।

दूसरे वर्ष कन्सल एन किडरियसने पिरहासके विरुद्ध युद्धयात्रा की। वेलिभेट्टम नामक प्रसिद्ध स्थानमें दोनों ओरकी फौजें आ कर आपसमें जुट गईं। घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें पिरहासके दो हाथो मारे गये और चार हाथी रोमकी के हाथ लगे। पिरहासको फौजें रणक्षेत्रसे भाग खड़ी हुईं। पिरहास कई सेवक या कर्मचारियोंके साथ युनान भाग गया। अर्गस नगर पर अधिकार करने समय एक खोकी चलाई एक ईंटसे उसको मृत्यु हुई थी।

कुछ ही समयमें रोमकीने समूचे इटली पर कब्जा कर लिया। सबकी दृष्टि रोम पर पड़ी। मिथ्रके राजा टलेमी फिलाडेल्फासने दूत भेज कर मित्रता स्थापित की। रोमके अधिकृत प्रदेशोंके अधिवासी तीन भागोंमें विभक्त हुए।

- (१) रोमवासी या रोमनगरकी ३३ विभिन्न जातियाँ।
- (२) रोमके औपनिवेशिक अधिवासी।
- (३) रोमके अधिकारभुक्त म्यूनिसिपल (स्वायत्तशासन) चालित नगर।

म्यूनिसिपल नगरवासियोंके सदस्योंका पूर्ण अधिकार था और वे रोमवासियोंके साथ वाणिज्य तथा अन्तर्विवाद करोंके अधिकारी थे, सिधा इसके मित्र और सहयोगी छोटे छोटे राज्योंकी भी रोमकशासनकी सुविधा मिली थी। चारों ओर स्वाधीन राज्योंके साथ रोमकीकी मित्रता स्थापित हुई। इस तरह रोमकीका राज्यशासन हृदतर मित्ति पर कायम हुआ। सामाजिक विधि-व्यवस्थाओं भी बहुत अंशमें सुधार प्रणालीक्रमसे प्रतिष्ठित हुईं। शिल्पो और व्यवसायो चोट देनेके अधिकारी हुए। गुलामोंकी भी किसी किसी विषयमें सुविधा दी गई। इसी समय कानूनी और सरकारी कामोंमें सुधार होने लगा। उसके पहले पुरोहित ही कानून और वर्गशास्त्रका अनुशासन किया करते थे। किन्तु क्रेडियसने इस समय सरकारी और सामाजिक कर्तव्यों-

३२ अनुग्रामन सम्बन्धी विधि व्यवस्थाको एक पुस्तक प्रकाशित की। इसमें यह भी लिखा गया था, कि किस किस दिन मरकारो या धर्माधिकरण आदि कार्य होने, या बन्द होने। पुणेहितो'का पवित्र अधिकार कम हुआ।

राज्यगिस्तारके साथ साथ चारों ओर उपनिवेश स्थापित होने लगे। १२ नई जातियां रोमके शासनाधीन हुईं। लिगिका कहना है—ईसाके २७५ वर्ष पूर्व मनुप्रभुमातीमें जाना गया था, कि रोमकी जनसंख्यामें पुन्योकी संख्या ६००० थी। क्रियो'की संख्या निदिष्ट नहीं। रोमकी समृद्धि-सुन कर नाना देशके विद्यदुग्ध रोममें आने लगे। धीरे धीरे लक्ष्मीकी वृद्धिके साथ साथ सरम्भवतोकी वृथा हुई। यूनानों विद्वान् रोममें आ कर रहने लगे। मित्रके विद्वान् भी रोमके परिदृश्य करनेके लिये रोम आने लगे।

भूमध्यसागरके चारों ओरके राज्योंके मध्यमें स्थापित इटलीराज्य इतने दिनों तक शक्ति और समृद्धि अर्जित कर राजकीय जगत्में यथार्थ केन्द्रत्व लाभ कर रहा था। उस सागरके किनारेके राज्यके अधिवासी राजा और प्रजा सभी इटलीके जीर्णोद्धार रोमका प्राधान्य अनुभव कर रहे थे। पिरहासका भागना धीरे यूनानियोंके अधिभूत दक्षिण-इटलीके नगरोंमें रोमका आधिपत्य और वक्ष्यता स्वीकार होनेके पहले भूमध्यजगत्में (Eastern Mediterranean world) इस इटली राज्यकी शक्ति और प्रभा विचलित हो आई। मित्रमें रोमसे मित्रताकी कामना कर आपसमें सन्ध्या कर लिया। यूनानों विद्वत्समाज इस गयोदुभुत और विग्विग्वत्में प्वाति प्राप्त कर रोम-राज्यका इतिहास, राजतन्त्र और लैटिन प्रजातन्त्रके मूल विषयकी उपस्थिति स्थापना करने लगे। पिरहासके लैटिन पर रोमका पूर्ण सम्बन्ध उभोतरह था। उस समय ५० वर्ष तक फिर रोमकी क्रूर वृद्धि पूर्वाश्रयमें न पड़ी।

रोममें जब प्रजातन्त्र कायम हुआ, तब रोम कार्योक्तके साथ सम्बन्धमें यह था। जब पिरहास सिसिलीमें कार्योक्तके साथ युद्धमें प्रयुक्त हुए तब भी कार्योक्त रोमके साथ नई सम्बन्ध पर मिलनाके पासमें दब गया था।

किन्तु उस समय रोमकी धीवृद्धि उत्तरोत्तर होने देव कायज्य ईर्वाग्नि हो उठा। सिसिली द्वीपके ऊपर कार्योक्तका रोमके साथ विवाद उठ पड़ा हुआ। सिसिलीके अन्तर्गत मेसनातगरमें बहुत दिनों तक मैगारिनों (या मज्जलपुत्र) नामक एक प्रबल आक्रुतका पास था। साररापयुज्यके राजा होने इनको जीत कर समूल नष्ट करनेका उद्योग करने लगे। इस समय इन्हीं ने रोमसे सहायताकी प्रार्थना की। रोमका हीरोके साथ मैगो रहनेके कारण पहले सहायता करने पर राजी न हुए। पीछे कार्योक्तियोंकी सहायतार्थ प्रयुक्त देव रोमक इनकी सहायता करने पर राजी हुए। पूर्वोक्त फन्सल कृष्टि यासके पुत्र पविवास कृष्टियास सैन्यके साथ सिसिली चला। इसके पूर्व ही कार्योक्तियन सैन्य मेगारिनोंके सहायतार्थ मेसनातना नगरमें आ पहुँचा था। हीरोने रोमक सैन्यको देव कार्योक्तियोंके साथ मिल कर जलपथ और स्थलसे मेसनातना पर घेरा डाल दिया। रोमक वीरों ने भी इस मिश्रित सैन्यदलसे युद्धकी घोषणा की। यह ईसासे २६४ वर्ष पहलेको बात है। पहले विद्वान्-युद्धका सूत्रपात हुआ।

कार्योक्तियाँ जलपथमें प्रसिद्धि पा चुके थे। पर्वोक्ति किनिकों ने प्राचीनकालसे समुद्र याणत्रयमें रत रहनेके कार्योक्त भारतीय शिल्पियोंसे जहाज बनाने सोच लिया था। इससे उस समय भी कार्योक्तियोंके पास बड़े बड़े जहाज मौजूद थे, किन्तु रोमवोंके पास कुछ भी न था। फिर भी किर्तिक कृष्टियास मेसनातके निकट स्थल युद्धमें प्रयुक्त हुए। रोमकसैन्यके पराक्रमसे यह रात्रिमलिन सैन्य बार बार पराजित हुआ। ईसाके ३६३ वर्ष पहले रोमकवीर हीरोकी राजधानी साररापयुज्य पर आक्रमण करनेके उद्योगों हुए। बहुत बरक नगरोंकी लूटपाट कर तथा जला कर भस्म कर साररापयुज्यकी नदारा-दोबारीके निकट ये पहुँचे। हीरो रोमकोंके साथ सम्बन्ध कर वनपू साहाय्यकारी बनाया गया।

रोमक सैन्योंने हीरोके साथ मैत्री कर कार्योक्तिय फौजोंके साथ युद्धार्थ पर्वोक्तियन नगर पर घेरा डाला। इस नगरमें सिसिलीवासी यूनानियोंका किला था। ईसाके २६२ वर्ष पहले युद्धमें जयलान कर रोमोंने इस

नगर पर अधिकार कर लिया। इस तरह युद्धके तीन वर्ष पहले वे जयलाम कर सिसिलोके अधिकांश पर अधिकार कर बैठे। इस समय कार्थेजिय जङ्गी-जहाजसे इटलीके किनारे लूटपाट कर रोमकी विशेष क्षति करने लगे। यह देख निरुपाय हो कर रोमक जहाज बनानेमें प्रयुक्त हुए। नाना देशोंके लूटनेसे रोमकोंका धनागार भरा पूरा था। शीघ्र ही बड़े बड़े जङ्गीजहाज बनने लगे। पहलेके एक बड़ा फिनिक-जहाज इटलीके किनारे लगा था। इसीको देख कर रोमक शिल्पी जहाज बनाने लगे। जिस दिन इसकी लकड़ी काटी और चिरी गई, उसी दिनसे ६० दिनोंमें १३० जहाजें तैयार हो कर समुद्रमें तैरा दिये गये। शीघ्र ही महाद, फसान आदि उसके चलानेवाले सिखाये गये। समुद्रवक्ष पर रोमके जङ्गीजहाज सर्व-प्रथम चलने लगे।

इसके २६० वर्ष पहले कन्सल कर्णिलियसने १७ सुसज्जित जङ्गीजहाज ले कर युद्धयात्रा की। किन्तु कार्थेजियोंके मुक्ताबले लिपारा नामक स्थानमें सम्पूर्ण-रूपसे पराजित हो कर कैद कर लिये गये। इसके बाद दूसरे कन्सल डुरिलियस वकीये जङ्गी जहाजोंको ले कर युद्धके लिये चले। उसने असामान्य कौशलसे एक नई प्रधाका आविष्कार किया। उसके प्रत्येक जहाज पर एक एक २४ हाथ लम्बे पुल रखे हुए थे। ये पुल जहाजमें रस्सीसे बंधे रहते थे। शत्रुके जहाज जब समीप आता था, तब रस्सी खोल कर पुल जलमें तैरा कर सौं कड़ों आदमी उस जहाज पर चढ़ जाते और उसका समस्त धन लूट लिया करते थे। इस नये आविष्कारके फलसे माइली नामक स्थानके युद्धमें रोमकोंको ३१ कार्थेजिय जङ्गीजहाज हाथ लगे थे और १४ जङ्गीजहाज नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये। कितने ही जहाज रणस्थलसे भाग निकले। डुरिलियस महादभ्यंरसे रोममें पहुँचे। रोशनी की गई, राह फूल पत्तियोंसे सजाई गई थी और बाजे बज रहे थे। ऐसे सजधजसं कन्सलने रोममें प्रवेश किया। युद्धमें पकड़े हुए जहाजके उपकरणों द्वारा 'फोरम'में एक स्तम्भ उसके सम्मानार्थ प्रतिष्ठित हुआ। इसका नाम ट्रपाटा स्तम्भ है। रोमके कापिटालाइन म्यूजियममें यह आज भी रखा हुआ है।

इसके कई वर्ष पीछे अर्थात् ईसासे २५६ वर्ष पूर्व रोमक दोनों कन्सल रेण्डलास और मनेलियस-ने ३३० जङ्गी जहाजोंकी सुसज्जित कर कार्थेजिय सैन्यके विरुद्ध यात्रा की। इससे पहले प्राचीन समयमें किसी समुद्रमें इतने जङ्गी जहाजोंका समावेश नहीं हुआ था। पूर्वोक्त पुलके कौशलसे रोमक-सैन्यने कार्थेजियन जहाजोंको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस युद्धमें केवल २४ जङ्गीजहाज नष्ट हुए थे। किन्तु रोमकों-ने ६३ जङ्गी जहाजोंकी मालमत्ता समेत गिरफ्तार कर लिया था। युद्धमें जयलाम कर रोमक कार्थेजिय नगरोंको लूटने पाटने लगे। इस लूटपाटमें उनको बहुत धनरत्न प्राप्त हुआ। कुछ दिनोंके बाद शीतकालमें माने-लियस अर्द्धक सैन्य ले कर रोममें लौट आये। रेण्ड-लस युद्धक्षेत्रमें रहे। रेण्डलस नित्य नये नगरों पर अधिकार करते कार्थेजिय नगरके समीप पहुँचे। कार्थेजिय भी हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंको ले कर युद्धके लिये आगे बढ़े। इस युद्धमें भी रेण्डलसने विजय पाई। कार्थेजियके १५००० सिपाहियोंने रणस्थल-में प्राण गवां दिये। इसके सिवा ५००० फीजे और १८ हाथी पकड़ लिये गये। रेण्डलस कार्थेजिय नगरों-को लूट पाट कर कार्थेजनगर पर घेरा डालनेकी तरकीब सोचने लगे। उसने शीघ्र ही ट्यूनिस नगर पर अधि-कार कर उसे लूट लिया। ऐसे मौके पर न्यूमिडियगण कार्थेजकी अधीनता अस्वीकृत कर स्वाधीनता लाभ करने-की चेष्टा करने लगे। कार्थेजिय हताश हो रेण्डलससे सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु जयसे उन्मत्त रेण्डलसने उस प्रार्थना पर ध्यान न दिया, इसी समयसे कार्थेजियोंके भागमें परिवर्तन दिखाई दिया। स्पार्ट-रांज जण्टियस ४००० घुड़सवार, १०० हाथी और कई हजार पैदल सैन्य ले कर कार्थेजके सहायताार्थ आ गये। मयदूर युद्ध उपस्थित हुआ। ३००० रोमक-सैन्य रणक्षेत्रमें काम आये। रेण्डलस ५०० सैनिकोंके साथ कैद हुए। बाकी २००० सैनिक अपने शिथिलोंमें भागे। यह ईसासे २५५ वर्ष पहलेकी बात है। रोमकोंके दुर्भाग्य का यहाँ ही अन्त नहीं हुआ। भागी हुई रोमक फीजे जहाज पर चढ़ कर रोमकी यात्रा कर रही थीं, ऐसे



सैन्य भोजन तृकानमें पड़ कर सभी जङ्गलजहाज डूब गये। इसके जहाजियों ने भी सागरमार्गमें स्थान लिया। ६३ जङ्गल जहाजोंमें केवल ८० जहाज रोम लौटे। इसके साथ ही जहाजों भी आई।

इस काण्डसे रोमक निष्ठरसाह नहीं हुए बर' बड़े अनादसे जङ्गी जहाजोंके बनानेमें प्रवृत्त हुए। तीन वर्षोंमें २२० जहाज बने। रोमन फिर जलपथसे चले। २२३ वर्ष पहले रोमक कन्सल कार्थेजके किनारे लड़कत करने लगे। यह युद्धमें विजय प्राप्त कर लौटे। वे उस समय तृकानमें पड़ कर सब जहाज डूब गये। कन्सल अन्तरीपके किनारे यह काण्ड हुआ था।

रोमक सैन्य फिर सिसिलीमें युद्ध करने लगा। २०० वर्ष ईसाके पूर्व रोमक प्रोकन्सल मेटेलस पानामांस नामक स्थानमें एक भोजन युद्धमें जयी हुआ। २०००० कन्सल सैनिक रणस्थलमें मारे गये। १०४ हाथी रोमकोंके हार लगे। इस युद्धमें जयी हो कर बड़े कन्सल फिर २०० जङ्गी-जहाज तैयार किये गये। अब कार्थेज रोमकोंके साथ सन्धि करने पर तैयार हुए। २०१ वर्षके युद्धमें यहाँ की था। रोमक-इतिहासमें इनके सत्पनिष्ठता तथा स्वदेशभोग स्वर्णाक्षरमें लिखे हुए हैं। कार्थेजियों ने अपने दुर्तोंके साथ रेण्डलस की रोम दे दिया और कहा,—यदि आप सन्धि न करा तो मैं ही फिर कार्थेजियन जेलमें चले आये। निर्भीक रोमक मन्त्र हुआ। एजाके मारे पहले रेण्डलस रोमकोंके सत्पनिष्ठताके भीतर घुसता न था। किन्तु कार्थेजियन पडा। धीरे-धीरे रेण्डलसके पाने की ही सत्पनिष्ठता कार्थेजियोंके साथ सन्धि करने पर रोमक

उमकी परवाह न कर बड़े कार्थेज चला गया। यहाँ जानेसे उस पर जो जमानतुरिक भयवाचार हुआ, उसका वर्णन करनेसे हृदय कांप उठता है, रोमके लड़े हो जाने हैं। कार्थेजिय कोषित हो घोर वृत्र'सनाके साथ उसको मार डाला। पहले भाँवोंकी पपनियां काट कर यह भोजन धूपमें डाल दिया गया। पीछे एक बड़े बक्समें घोरी घोने सुर्यां गाड़ कर उसमें घे उमकी हुका देने थे। स्वदेशवत्सल रेण्डलसने पैसे भोजन भयवानारकी साथ करते हुए अपने प्राण गया दिये।

इस निष्ठरताकी योग्यरस कहानी सुन कर रोमक कार्थेजको धंस करने पर दृढ़मति हुए और प्रोग ही उन्होंने इटलीके अन्तर्गत कार्थेजोय नगर लिलिवियम पर घेरा डाल दिया। दूसरी ओर कन्सल क्लिडियसने जलपथसे डेपानन नामक स्थानमें कार्थेजिय जङ्गी-जहाजों पर आक्रमण किया। पहले युद्धमें रोमकोंके जय प्राप्त करने पर जलयुक्त क्लिडियसकी मूर्च्छतासे रोमकोंकी प्रायः हार हो हुई। आर्टिनियस क्लैटिनस उसको जगद कन्सल नियुक्त हुआ। दूसरे कन्सल सि० जुनियस जङ्गीजहाज ले कर लिलिवियम नगरमें रोमक फौजोंके सहायताार्थ आ रहा था। राहमें तृकानमें पड़ कर उसके सब जङ्गीजहाज डूब गये। केवल दो जहाज बच गये थे। इस तरह जैयचिदम्बनसे तीन बार रोमक जङ्गी-जहाज सागरमार्गमें डूब गये। अब रोमकोंने जलयुक्तकी ओरसे मन हटा कर स्थलयुद्धकी ओर ध्यान लगाया।

इस समय कार्थेजमें एक धीरे बुद्धका जन्म हुआ। इसका नाम था कार्थेजियाई। यह इतिहासके प्रसिद्ध है। २०१ ई. पू. में पूर्व पद

अधिकार कर लिया। दो वर्षोंकी अह्वान्त चेष्टासे रोमक फीजें हामिलकरकी एक पैर भी पीछे हटा न सकीं।

रोमक अब समझ गये कि ये जलयुद्धके बिना संश्ल-युद्धमें कार्येजियके साथ प्रतियोगिता कर नहीं सकते। २४२ ईसाके पूर्व कन्सल लुटारियसके फटेलससे २०० जहाज ले कर युद्ध करने चला। हानो नामक सेना-पति कार्येजीय जहाजोंके अध्यक्ष था। इग्रेट्स नामक द्वीपके निकटके युद्धमें रोमकोंने विजय पाई। इस युद्धमें रोमकोंकी सब विषयमें सुविधा मिली। क्योंकि जल-पथ बन्द करने पर कार्येजिसके कुछ भी सहायता नहीं आ सकी। फलतः हामिलकरकी ससैन्य भूली ही मरना पड़ा।

कार्येजियोने निरुपाय हो कर हामिलकरकी रोमके साथ सन्धि कर लेनेकी कहा। ईसाके २४१ वर्ष पहले यह सन्धि हो गई। इससे कार्येजियोंकी सिसिलीका प्रभुत्व और निकटके ट्रापुजोका अधि-पत्य छोड़ देना पड़ा। कैरियोकी उद्दोने छोड़ दिया। सन्धिमें यह शर्त थी, कि कार्येजिय ६० वर्षके भीतर ३२०० तोला सेना रोमकोंकी युद्धके क्षतिपूर्तिके रूपमें देगे। कसिका और सार्डिनिया रोमके अधिकारमें आ गये। किस तरह सिसिली पर शासन करे, रोमक इस विषय पर चिन्ता करने लगे। रोमकी शासन-प्रणालीके अनुसार सिसिलीका शासन होना असम्भव समझ कर उद्दोने सिसिलीमें एक नई शासन-प्रणाली प्रतिष्ठित की। रोमसे एक शासक हर साल निर्वाचित कर भेजा जाने लगा। इसी शासक द्वारा सिसिली देश शासित होने लगा। इसी तरह रोम-साम्राज्यकी प्रथम नींव पड़ी।

इस हामिलकर अपने देशमें लौट आया और बदला चुकानेकी फिक्र करने लगा तथा साथ ही स्पेनमें एक विपुल साम्राज्य-प्रतिष्ठाका आयोजन करने लगा। बहुत दिनोंके बाद रोममें शान्ति स्थापित हुई। युवाके समयसे शतके दिनों तक रणवैयता जेनासका दरवाजा खुला था। रोमके इतिहासमें दूसरी बार इस मन्दिर-का दरवाजा बन्द हुआ। किन्तु अधिक दिनों तक बन्द न रहा। रणभेरीके आह्वानसे फिर शीघ्र ही रण-

वैयताका मन्दिरद्वार खुला। पहले ३३ जातियां मिल कर रोमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई थी। इस समय दो जातियों और इस जातिमें मिल् कर ३५ जातियां हो गईं।

पट्रियाटिक सांगरके पूर्वीय भागमें इल्लियोय वास करने थे। ये जल-डकैतीसे समृद्धशाली हुए थे। इनके उपद्रवोंसे इटलीका किनारा निरापद न था। रोमकी सेनेटने इल्लियोय राजा अग्रनके पास दूत भेज कर इस उपद्रवोंको दूर करनेकी प्रार्थना की। राजाने इस प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया; वरं दूत मार डाला गया। शीघ्र ही रोमक फीजें वहां पहुँची। यह ईसाके २२६ वर्ष पहलेकी घटना है। उस समय वहाँका राजा अग्रन मर गया था। उसकी विधवा रानी टिउटा डिमेद्रियस नामक एक यूनानीके साहाय्यसे राज्य-शासन कर रही थी। डिमेद्रियस रानीने टिउटाको छोड़ कर 'करसाइरा' नामक द्वीप रोमकोंको दिया। टिउटाने निरुपाय हो कर रोमकोंके प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया। इस तरह वहाँकी जल-डकैती दूर हुई। इससे जितनी खुशी यूनानियोंको हुई, उतनी खुशी रोमकोंकी न हुई। उन सबोंने रोमकोंको धन्यवाद-सूचक संवाद ले कर उनके पास दूत भेजा।

इस युद्धके समाप्त न होते होते गलोंसे फिर रोमकोंका युद्ध आरम्भ हुआ। इद्रिययाके अन्तर्गत डैलमन नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। यह ईसासे २२५ वर्ष पहलेकी बात है। समरक्षेत्रमें ४०००० गलसैन्य हताहत हुईं और १०००० फीजें कैद कर ली गईं। रोमकोंने वीआई प्रदेशसे पो-नदोके किनारे तकके देशों पर अधिकार कर लिया। रोमराज्यका आकार चारों ओरसे बढ़ने लगा। उत्तर-अल्पस पहाड़ तक रोमकोंकी जयपताका फहराई।

उस समय हामिलकरने स्पेनमें साम्राज्यका चीज घन किया था। उसकी अद्भुत प्रतिभासे वहाँ राज्यकी सीमा जल्द जल्द बढ़ने लगी। हामिलकरके हृदयमें रोमकोंके प्रति पैरभाव सधँदा गिद्यमान रहता था। उसने अपने नौ वर्षके पुत्रसे अग्निस्पर्श करा कर प्रतिष्ठा कराई थी, कि यह आजीवन रोमकोंके

मनव भोजन नूतनमें पड़ कर सभी जड़ो-जड़ाज दुब गये। इसके जड़ाजियों ने भी सागरगर्भमें स्थान लिया। ४१४ जड़ो-जड़ाजों में केवल ८० जड़ाज रोम लींटे। इसके साथ कुछ 'फॉजि' भी आईं।

इस काण्डसे रोमक गिटरसाद नदीं हूय वरं बड़े उरसाहसे जड़ो-जड़ाजोंके बनानेमें प्रवृत्त हुए। तीन महीनेमें २२० जड़ाज बने। रोमन फिर जलपथसे चले। ईसासे २५३ वर्ष पहले रोमक कस्बल कार्थेजके किनारे लूट पाट करने लगे। यह युद्धमें विजय प्राप्त कर लींटे रहा था, ऐसे समय नूतनमें पड़ कर सब जड़ाज दुब गये। पालिसन अन्तरीयके किनारे यह काण्ड हुआ था।

रोमक सैन्य फिर सिसिलीमें युद्ध करने लगा। २०० वर्ष ईसासे पूर्व रोमक प्रोकन्सल मेटेलस पानामार्स नामक स्थानमें एक भोजन युद्धमें जयो हुआ। २०००० कार्थेजिय सैनिक रणक्षलमें मारे गये। १०४ हाथी रोमकोंके हाथ लगे। इस युद्धमें जयो हो कर बड़े उरसाहसे फिर २०० जड़ो-जड़ाज तैयार किये गये। अब कार्थेजिय रोमकोंके साथ सन्धि करने पर तैयार हुए। रेण्डलस पहलेके युद्धमें घड़ी कीद था। रोमक-इतिहासमें उसके घोरत्व, स्तवनिष्ठता तथा स्वदेशप्रेम स्वर्णाक्षरमें लिखे हुए हैं। कार्थेजियोंने अपने दूतोंके साथ रेण्डलस को रोम भेज दिया और कहा,—'यदि आप सन्धि न करा सकें तो फिर कार्थेजियन जेलमें चले जायें'। निर्भोक रेण्डलस सम्मत हुआ। लज्जाके मारे पहले रेण्डलस रोमकी चहारदीवारीके भीतर घुसता न था; किन्तु कापेयन जाना पड़ा। वोटद्वय रेण्डलसके पाने की ही गरजसे कार्थेजियोंके साथ सन्धि करने पर रोमक तय्यार हुए। किन्तु रेण्डलसने कहा था—'माइवी, मेरे इस मुच्छ शरीरके लिये रोमकोंका गौरव मष्ट कर कामो भी सन्धि न करना। रोमके गौरवसे ही मेरा भी गौरव है।' सेनेटके सम्मेलने कहा—'भाग कार्थेज मत जायें।' इसके बाद सहस्र सहस्र व्यक्तिपेमें कहा, 'विदेशमें बलपूर्वक पकड़े हुए लोगोंके शपथका पाठन न करनेसे पाप नहीं होता। किन्तु मरवमन्थ स्वर्ण-चरसल रेण्डलस यह बात जानता था, कि यहाँ लीट जानेसे मुझ पर अमानुषिक कृत्याचार होगा। फिर भी

उमको परवाह न कर यह कार्येज चला गया। यहाँ जानेसे उस पर जो अमानुषिक कृत्याचार हुआ, उसका वर्णन करनेसे हृदय कांन उठता है, रोंगटे सङ्गे हो जाते हैं। कार्थेजिय क्रोधित हो घोर वृगंसनाके साथ उसको मार डाला। पहले कार्थेजियोंकी पवनिदां काट कर यह भोजन धूपमें डाल दिया गया। बोछे एक बड़े बरसमें घोखे घोखे सुराणें गाड़ कर उसमें ये उसको डुबा देने थे। स्वदेशव्यसल रेण्डलसने ऐसे भोजन कृत्याचारको साथ करते हुए अपने प्राण गँवा दिये।

इस निष्ठु रताकी घोभरस कहानी सुन कर रोमक कार्थेजको ध्वंस करने पर दृढ़प्रतिष्ठ हुए और तोग्र ही उन्हींने इटलीके अन्तर्गत कार्थेजिय नगर लिलिवियम पर घेरा डाल दिया। दूसरी ओर कस्बल क्लिडियसने जलपथसे डेपानन नामक स्थानमें कार्थेजिय जड़ो-जड़ाजों पर आक्रमण किया। पहले युद्धमें रोमकोंके जय प्राप्त करने पर जलयुक्त क्लिडियसकी सूत्रतासे रोमकोंकी प्रायः हार हो गई। भाटिनियस क्लेटिनस उसकी जगह कस्बल गियुक हुआ। दूसरे कस्बल मिन्नुगियस जड़ो-जड़ाज ले कर लिलिवियम नगरमें रोमक फॉजियोंके सहायताार्थ जा रहा था। राहमें नूतनमें पड़ कर उसके सब जड़ो-जड़ाजें हूय गये। केवल दो जड़ाजें बच गये थे। इस तरह दैयचिडम्बनसे तीन बार रोमक जड़ो-जड़ाज सागरगर्भमें डूब गये। अब रोमकोंने जलयुक्तकी ओरसे मन हटा कर स्थलयुद्धकी ओर ध्यान लगाया।

इस समय कार्थेजोंमें एक घोर पुत्रहत्या क्रम हुआ। इसका नाम था—हमिलकार फार्स। यही इतिहासके प्रसिद्ध हानिबलका पिता है। ईसासे २४७ वर्ष पूर्व यह सिसिलीमें कार्थेजिय सैन्यके सेनापति हो कर गया, उस समय यह तदन था। यह युद्धक्षेत्रमें गोधि न जा कर हार्बेटगर्वनके गोखे गोखे सैन्य ले कर गया। इस स्थानमें उठाने पैली बन्दूक रचना को और एक वर्ष तक यही टिका रहा—कि उन्हाके अद्भुत काष्ठीकी शक्त मिल सगी सादरने लगे। इस सुरक्षित श्मूहसे यह घोर घाटे रोमक फॉजियोंकी ओर कीड़ा। रोमक फॉजि उरसको बांधा दे न सकी। हमिलकार फार्स बड़ा और उग्रमें हुना नामके निरटका वधिषर नामक पहानो नगर पर

अधिकार कर लिया। दो वर्षोंकी अज्ञानता चेष्टासे रोमक फीजें हामिलकरकी एक पैर भी पीछे हटा न सकी।

रोमक अब समझ गये कि ये जलयुद्धके बिना सफल युद्धमें कार्येजियके साथ प्रतियोगिता कर नहीं सकेंगे। २४२ ईसाके पूर्व कन्सल लुटारियसके फटेलेससे २०० जहाज ले कर युद्ध करने चला। हानो नामक सेनापति कार्येजीय जहाजोंके अध्यक्ष था। इग्रेट्स नामक द्वीपके निकटके युद्धमें रोमकोंने विजय पाई। इस युद्धमें रोमकोंकी सब विषयमें सुविधा मिली। क्योंकि जलयुद्ध बन्द करने पर कार्येजसे कुछ भी सहायता नहीं आ सकी। फलतः हामिलकरकी ससैन्य भूर्खों ही मरना पड़ा।

कार्येजियोंने निरुपाय हो कर हामिलकरकी रोमके साथ सन्धि कर लेनेकी कहा। ईसाके २४१ वर्ष पहले यह सन्धि हो गई। इससे कार्येजियोंकी सिसिलीका प्रभुत्व और निकटके द्वीपयुक्तोंका अधिकार छोड़ देना पड़ा। कैदियोंको उन्हीने छोड़ दिया। सन्धिमें यह शर्त थी, कि कार्येजिय १० वर्षके भीतर ३२०० तोला सोना रोमकोंको युद्धके क्षतिपूर्तिके रूपमें देंगे। कसिका और सार्डिनिया रोमके अधिकारमें आ गये। किस तरह सिसिली पर शासन करे, रोमक इस विषय पर चिन्ता करने लगे। रोमकी शासन-प्रणालीके अनुसार सिसिलीका शासन होना असम्भव समझ कर उन्हीने सिसिलीमें एक नई शासन-प्रणाली प्रतिष्ठित की। रोमसे एक शासक हर साल निर्वाचित कर भेजा जाने लगा। इसी शासक द्वारा सिसिली देश शासित होने लगा। इसी तरह रोम-साम्राज्यकी प्रथम नींव पड़ी।

इस हामिलकर अपने देशमें लौट आया और बदला चुकानेकी किंमत करने लगा तथा साथ ही स्पेनमें एक विपुल साम्राज्य-प्रतिष्ठाका आयोजन करने लगा। बहुत दिनोंके बाद रोममें शान्ति स्थापित हुई। रोमके समयसे इतने दिनों तक रणवैद्यता जेनासका दरवाजा खुला था। रोमके इतिहासमें दूसरी बार इस मन्दिरका दरवाजा बन्द हुआ। किन्तु अधिक दिनों तक बन्द न रहा। रणभेरीके आह्वानसे फिर शीघ्र ही रण-

वैद्यताका मन्दिरद्वार खुला। पहले ३३ जातियां मिल कर रोमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई थी। इस समय दो जातियों और इस जातिमें मिल कर ३५ जातियां हो गईं।

पड़ियाटिक सागरके पूर्वीय भागमें इल्लिरीय वास करने थे। ये जल-डकैतीसे समृद्धशाली हुए थे। इनके उपद्रवोंसे इटलीका किनारा निरापद न था। रोमकी सेनेटने इल्लिरीय राजा अग्रनके पास दूत भेज कर इस उपद्रवोंको दूर करनेकी प्रार्थना की। राजाने इस प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया; वरं दूत मार डाला गया। शीघ्र ही रोमक फीजें वहां पहुंची। यह ईसाके २२६ वर्ष पहलेकी घटना है। उस समय वहांका राजा अग्रन मर गया था। उसकी विधवा रानी टिउटा डिमेद्रियस नामक एक यूनानीके साहाय्यसे राज्य शासन कर रही थी। डिमेद्रियस रानीने टिउटाको छोड़ कर 'करसाइरा' नामक द्वीप रोमकोंको दिया। टिउटाने निरुपाय हो कर रोमकोंके प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया। इस तरह वहांकी जल-डकैती दूर हुई। इससे जितनी खुशी यूनानियोंको हुई, उतनी खुशी रोमकोंको न हुई। उन सबोंने रोमकोंको धर्म्याद्युक्त संवाद ले कर उनके पास दूत भेजा।

इस युद्धके समाप्त न होते होते गलोंसे फिर रोमकोंका युद्ध आरम्भ हुआ। इद्रियसके अन्तर्गत डेलमन नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। यह ईसासे २२५ वर्ष-पहलेकी बात है। समरक्षेत्रमें ४०००० गल्लसैन्य हताहत हुईं और १०००० फीजें कैद कर ली गईं। रोमकोंने थोआई प्रदेशसे पो-नदोके किनारे तकके देशों पर अधिकार कर लिया। रोमराज्यका आकार चारों ओरसे बढ़ने लगा। उत्तर-अल्पस पहाड़ तक रोमकोंकी जयपताका फहराई।

उस समय हामिलकरने स्पेनमें साम्राज्यका बीज घपन किया था। उसकी अद्भुत प्रतिभासे यहां राज्यकी सोमा जलद जल्द बढ़ने लगी। हामिलकरके हृदयमें रोमकोंके प्रति पैरभाव सर्वदा विद्यमान रहता था। उसने अपने ही वर्षोंके पुत्रसे अग्निस्पर्श करा कर प्रतिष्ठा कराई थी, कि वह आजीवन रोमकोंके

प्रति विद्रोहभाय स्पेनो और घेर चुकानेमें प्राणपणमें  
 बोधा करेगा। हामिल्टनकर लड़कपनसे ही अपने पुत्र  
 हानिबलको युद्धविद्यामें निपुण कर रहा था। हानिबल  
 पिताकी प्रतिभा और रणवाण्डित्य भादि गुणोंमें उप-  
 युक्त अधिकारी था। हामिल्टनकर स्पेनके भीतर भीरे  
 छोड़े राज्यविस्तार कर रहा था। ईसाके २२२ वर्ष  
 पहले एक युद्धमें हामिल्टनकर मारा गया। इससे उसका  
 शमाद हासद्रुबल सेनापति बना। स्पेनमें न्यूकार्थेज  
 नामका इतने एक नगर बनाया। इसका इस समय  
 काउन्टेना नाम है। तदुप वयस्क हानिबल सेनानायकके  
 पद पर अधिष्ठित हुआ। २२१ वर्ष ईसाके पूर्व हास्-  
 ड्रुबल गुमरूपसे एक गुलामके हाथ मारा गया। इस समय  
 हानिबल सेनापति और ग्रासक नियुक्त हुआ। हानिबल  
 के हृदयमें सदा रोम पर आक्रमण करनेकी चिन्ता रहती  
 थी। इसलिये उसने फीजोकी सुनिश्चित करना आरम्भ  
 किया। हानिबल अपने गुणोंसे स्पेनके सभी जातियोंके  
 साहाय्य पानेके अधिकारी बन गये। इस समय यह  
 रोमसे युद्धका कारण दृढ़ रहा था।

पहले हासद्रुबलके साथ सन्धिमें यह टकरा था,  
 कि एप्रो नदीकी पूर्वी सीमा तक रोमकीका अधिकार  
 रहेगा और नदीके पश्चिम पार कार्थेजिय स्पेनकी  
 सीमा रहेगी। किन्तु हानिबलने इन सर्घिकी भस्वीकार  
 कर दिया और ईसाके २१६ वर्ष पूर्व अपने राज्यके बाहर  
 मैगादम नगर पर आक्रमण कर ८ मासके युद्धके  
 बाद अधिकार कर लिया। रोमक मित्त-राज्योंके सहाय-  
 तार्थ इतने दिनों तक कुछ न कर सके। रोमकीने  
 हानिबलसे संघि तोड़नेका कारण पूछनेके लिये दो बार  
 भूत भेजे। हानिबलने उनका स्थाक और घर फोंडे उतार  
 नहीं दिया।

इसका अन्तिम युद्ध ( २१६ ईसाके १०० )

हानिबल मैगादम पर अधिकार कर जीमकासकी  
 पतल न्यूकार्थेज लौट आया। इसमें ईसाके २१८ वर्ष  
 पहले विराट् सैम्य के कर पराक्रम्य रोमराजके ध्वंस  
 करनेके लिये माना की। युद्धयात्राके पहले इसी स्पेन  
 कीत कार्थेजकी रक्षाका युद्ध प्रसंग कर दिया था।  
 अपने छोटे भाई हासद्रुबलकी स्पेन-रक्षाका भार दे कर

कार्थेजकी रक्षाके लिये मैजिकोंके साथ अक्रिया भेज  
 दिया। सब प्रसंग कर हानिबल ईसाके पूर्व २१८  
 ई०के वसन्त ऋतुमें ६०००० पैदल, १२००० घुड़मवार  
 और कई हाथी ले कर इटली चला और पांच महोनेमें  
 पिरिनीज पर्वत पार कर रोम नदीके किनारे जा पहुंचा।  
 पिरिनीज पर्वतके पहाड़ी जातियोंके साथ युद्ध करनेमें  
 उनकी बहुतेरी फौजें नष्ट हुई थीं। रोमकीने हानि-  
 बलको युद्धार्थ आने देख करमल पो-कालियाम  
 सिपियोकी फौजोंके साथ उसके रोमके लिये भेजा।  
 किन्तु कर्मल सिपियोके मेसालिया पहुंचनेके पहले  
 ही हानिबल रोम-नदी पार कर अनासके निकट पहुंच  
 गया। सिपियोने हानिबलकी यहाँ रोकना असमभव  
 समझ रोम लौट आया और अपने भाई मेसियम  
 सिपियोकी स्पेन पर अधिकार कर लेनेके लिये भेजा।  
 इसी कौशलसे पिछले समयमें रोम हानिबलके हाथ बन  
 गया था। पर्यंकि हानिबलकी स्पेनसे सहायता मिलने  
 तो यह सद्दज ही रोमका ध्वंस कर देता।

हानिबल विराट् सैम्योके साथ बड़ी सैन्यसे अनास  
 पर्वतसे होता हुआ इटलीकी ओर आने लगा और जीम  
 ही सिंसाव्वाहन गलके निकट पर्वतसे नीचे उतरवकामें  
 उतरा। उसको एकाएक इस तरह सैन्य आते देख  
 रोमक विचलित और भयभीत हुए। अन्ततः पर्वतकी  
 पार करने समय हानिबलके बहुतेरे सैनिक मर गये।  
 उपत्यकामें पहुंच कर जब उसने अपने सैनिकोंकी  
 संमाला तब उसको दिशाई दिया, कि उसको विराट् फौजों  
 ने केवल २०००० पैदल, ६००० घुड़मवार बाकी बच गये  
 हैं। उसने कुछ दिनों तक विधाम कर मैजिकोंकी हानि  
 दूर की।

इस रोमक फौजों का कर उनके मामने उर्द गार्।  
 टिजिनस और ट्रेवियामें दो मोचन युद्ध हुए। हानि-  
 बलके न्यूमिडिया घुड़मवारोंके भीम-पराक्रममें रोमक  
 फौजें विरत-विरत हो कर भागी। सिपियो मुदमर-  
 रूपमें मादत हो कर पीछे लौट प्रागण्डिवरकी पहरे-  
 कोपारीमें भा छिपा। हानिबल को नदीकी पार कर  
 मुजार्थ जा पहुंचा। किन्तु रोमक फौजों माग लड़ी  
 हुई। उस समय दूसरे कर्मल सेनानिगस सिपियो-

के सहायताार्थ पहुँच गये। रोमक फौजों ने हानिबल-को ललकारा। दोनों ओरसे भोपण युद्ध होने लगा। हानिबलकी रणनिपुणताके कारण विशाल रोमक फौज पराजित हुई। किन्तु शीतकालके आ जानेसे हानिबल रोमकी ओर आगे बढ़ न सका। भोपण शीतके कारण हानिबलके बहुतेरे सैनिक मर गये। एक छोड़ कर सब हाथी मर गये। उस समय शीत बितानेके लिये यह फिसली नगरमें चला गया।

सर्भियस और क्रुमिनियस वर्त्तमान वर्षके कन्सल नियुक्त हुए। पलेमिनियस फिर फौजोंको ले कर हानिबलसे युद्ध करने चला। किन्तु हानिबलके कौशलसे यह फौजोंके साथ गिर गया। यह गिरिसड्डके एक छोटे पथसे ट्रामिसिन भौलके किनारे पहुँच अपनी फौजोंको एकत्र कर रहा था, ऐसे समय पीछेसे शत्रुओंने हमला कर दिया। फलतः कितने ही फौजें मृत्यु-मुखमें पतित हुईं। कन्सल भी मारा गया। कितने ही सैनिक भीलमें कूद कर डूब गये। इस युद्धमें हानिबलके १५०० सैनिक काम आये थे। हानिबलने १५००० रोमक सैनिक कैद कर लिये। हानिबलने कंधल रोमक फौजोंका कैद कर इटलो आदिके सैनिकोंको आदरके साथ छोड़ दिया। उसका उद्देश्य था, कि अग्याग्य जातियोंकी सहायभूति अर्जन कर रोमका उच्छेद साधन किया जाये। इसीलिये उसने इस नीतिसे काम लिया। यथार्थमें बहुतेरी जातियोंके लोग हानिबलकी असीम प्रतिभाको देख उसके पक्षपाती बन गये। किन्तु एक विदेशी आक्रमणकारीके प्रति बहुतेरोंने विश्वास न किया। इस युद्धमें विजय प्राप्त कर हानिबल रोमकी ओर अग्रसर होता, किन्तु उसका दूसरा उद्देश्य था। यह पूर्वकी ओर अग्रसर हो कर तलवार और अग्नि द्वारा बहुत नगरोंको ध्वंस करने लगा। इस समय उस के पास २६००० पैदल थे। किन्तु रोमक-सहयोगी राजाओंकी सहायतासे ७००००० सैनिक एकत्र कर सकते थे। हानिबल फौजोंके साथ आपुलियाके अन्तर्धनसे पूर्ण प्रदेशमें जा कर लट्पाट कर रोमके सहयोगी राजाओंका सर्धनाश करने लगा। उसकी धारणा थी, कि इस तरह उपद्रव करने पर रोमके विरुद्ध कितने ही

लोग उसको सहायता देंगे। इस समय इमिलियस पलास और टेरेंटियस भारी कन्सल नियुक्त हो सैन्य आपुलिया प्रदेशमें गये। उनकी अनुपस्थितिमें रोमकी ओर एक सैन्य एकत्र कर कमिश्नरिया से जुरिसा द्वारा फेवियस मेक्सिमसको डिरेक्टर नियुक्त किया। फेवियसने कौशलसे हानिबलको पराजित करना निश्चय किया।

हानिबल अपिनाइन पर्वतकी पार कर कम्पेनियाकी समतल भूमिके समुद्र नगरोंको लूटने और ध्वंस करने लगा। फिर भी फेवियस आग्ने सामने युद्ध करनेमें देर करने लगा। फेवियसने कम्पेनियाके गिरिसड्ड पर अधिकार कर यह स्थिर किया, कि इसी पर्वत-पथ पर हानिबलको बिनष्ट करूँ। किन्तु अद्भुत कौशलसे हानिबल इस विपद्से बच गया। उसने पहले ही कम्पेनियाको लूट कर बहुतेरे पैल और गाथोंको पकड़ लिया था। रात्रिके समय उसने २००० पैलोंके दोनों सींगोंमें कपड़ा लपेट तेलसे भिगा आग लगा कर मशालके सादृश बना दिया और अपने सैनिकोंको हुषम दिया, कि इन पैलोंको रोमकी फौजोंके सामने भगाओ। पैल अपने सींगोंमें आग जलते देख भड़क भड़क कर उधर उधर दौड़ने लगे। रोमक असांख्य मशालोंका अपनी तरफ आते देख विचलित हुए, मनमें सोचने लगे, कि हानिबल एकाएक रात्रिके आक्रमण करना चाहता है। इससे अपनी रक्षा न देख रोमक वहाँसे भागे। हानिबलने भी इस अवसर पर वे-रोक गिरिसड्डको पार कर आपुलियाकी समतल भूमि पर पहुँच शीतावासके लिये जिरोनियम नामक स्थानमें अपना खेमा खड़ा किया। यह (२१६ ई० पू०) शीतकाल यहाँ बिता कर वसन्त आने पर समर सज्जा करने लगा। किन्तु खाद्य द्रव्यके अभावमें वह वहाँसे कानि नामक स्थानमें चला गया और उसने रोमक फौजोंके सामने अपने खेमा खड़ा किये।

पूर्वके दोनों कन्सल ८०००० पैदल और ६००० घुड़सवार ले कर हानिबलके सामने आये। हानिबलके पास ४०००० पैदलोंसे अधिक फौज न थी। किन्तु उसके पास १०००० घुड़सवार मौजूद थे। अकिदियस नदीके दक्षिण मैदानमें युद्ध हुआ। यह कानिका युद्ध

मुक्तविषयता है। हानिबलके सुदृढस्वभाव भीमबलमें युद्ध करने लगे। रोमकी विशाल फौजें सम्पूर्ण रूपमें गढ़ हुईं। इस तरह रोमक फौजें पराजित हुईं।

हानिबल यदि श्रद्धा करता, तो रोमको इसी समय जीत लेना, किन्तु उसने ऐसा न किया। इसलिये बहुतेरे ऐतिहासिक उसकी नीतिको निन्दा करने हैं।

हानिबलने भी सहयोगी राजाओंको रोमके हाथमें बसानेके लिये सैन्य भेज कर साहाय्य करने लगा। हानिबल सामनियमसे चला कर कर्षैनिया पहुँचा और यहाँका प्रसिद्ध नगर कापुमा अधिकार कर लिया। भगव्यासियोंने तनिक बाधा न दे नगरका द्वार खोल दिया और उसका अभिनन्दन किया। यहाँ ही उसने शीतकाल बितानेके लिये सेम खड़े किये। यहाँ तक ही ज्यूलिक युद्ध का आदि काल है। इसी समय हानिबलने मर्त्य भावमें साफल्य लाभ किया था।

गुदका सम्प्रकाश ( २१५-२०० ईगने पूर्व )

घाणित्य-समृद्धि, विलासयैभय, शिल्पविज्ञानकी उन्नति और साधारण पेथव्यमें कापुमा रोमकी मयेसा किमी तरह कम न था। रोमके रमिक और विषयता ऐतिहासिकने रहस्यच्छत्रसे लिखा है, कि विलास वायुके सुखस्वयंसे हानिबलको फौजोंमें अनेकानमें दृढ़ता और उद्यमको भी दिया था। जो ही, हानिबल भी रोमके सहयोगियोंको महायताके लिये इच्छाके एक छोटेसे दूतसे छोड़ तक देनामें अधिकतर फीलाने लगा। ईसासे २१५ वर्ष पहले फिर महासमर उपस्थित हुआ। फेवियम और सेमोनियस नामके दोनों कम्बल गुदको तय्यारो करने लगे। हानिबलने भी रिफटा पर्वत पर दृढ़को रचना की। यहाँ वह इतनीपामी साहाय्यकारी राजाओंको प्रतीक्षा करने लगा। कार्थेजसे भी सुदृढकारीके लिये वह प्रतीक्षा कर रहा था। इस समय मोला नामक स्वामीमें एक छोटा युद्ध हुआ। इसमें उसके बहुतेरे सैनिक मारे गये। रिफटामें नष्टरूपान करने समय वह 'पारो' औरसे साहाय्य प्राप्त करने लगा। आकिडन पति रिफटापरी और साहाय्य राजपुत्र होमोजिममसे हानिबलके समोर दृढ़ भेज साहाय्य करना कहा। इस तरह और इनमें

दिनोंके बाद दो प्रबल राजा रोमके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये नैवार हुए।

ईसाके २१४ वर्ष पहले फेवियम और मर्सेलस फिर कम्बल नियुक्त हुए। हानिबल भागुलियासे रिफटा जा कर कापुमा नगरीको रक्षा करनेका उपाय सोचने लगा। यह पिउडोली अधिकार करनेका साहस्य कर रहा था, ऐसे समय टरेण्ट्यु नगर पर अधिकार करनेका मौका द्रोत पड़ा। इसके अनुसार वह शीघ्र उस ओर चला। रोमक सैन्य भी यहाँ पहुँच अपने दुर्गको रक्षा करने लगा। हानिबल फिर शीतकाल बितानेके लिये भागुलिया चला गया। ईसासे २१३ वर्ष पहले शीतकालमें सिसिलीमें युद्ध आरम्भ हुआ। कार्थेजोप सैनिकोंने आ कर सिसिलीमें युद्ध छोड़ा किया। कुछ रोमक फौजें सिसिलीमें पहुँचो थीं। इनमेंमें टरेण्ट्याम्के दो अधिपानियोंने विश्वासघातकता पूर्वक हानिबलसे नगर मौव देनेका संकल्प किया। किन्तु किलेमें रोमक फौजोंके रहनेके कारण हानिबल कुछ भी नहीं कर सका।

साहाय्ययुद्धके राजा होरे रोमकीका मित था। किन्तु उसका पुत्र होरेनियस मित्र प्रवृत्तिका आदर्श था। उसने रोमके विरुद्ध कार्थेजको सहायतामें युद्ध करनेका संकल्प किया था। १५ महोने राजतय करनेके उपरान्त वह एक युव शासकके हाथ मारा गया। साहाय्ययुद्धमें प्रजातन्त्रको स्थापना हुई। रोम और कार्थेज—ये दोनों इस पर अधिकार कर लेने पर तुल गये थे। किन्तु रोमकोंके प्रबल होनेसे हानिबलके भेजे क्षे कार्थेजोप प्रतिनिधि एगिमाइडस् और दिगोकेटिम भाग कर लिभोएटिनी नगरको प्रस्थापन किया। इसी समय कम्बल गममल् फौजोंके साथ तिमिलीमें पहुँचा ( २१४ ई० पू० ) वह शीघ्र ही लिभोएटिनीमें हानिबलके देशों प्रतिनिधिसे संधि युद्ध करनेके लिये चला। उसने इस युद्धमें विजय प्राप्त कर लिभोएटिनी पर अधिकार कर लिया। उसने अधिपानियोंको क्षमा किया। किन्तु क्षे सी सैनिकोंको प्रान्दण्ड हुआ।

मर्त्यमने मर्त्य बटु कर स्थल और जलपथमें साहाय्ययुद्ध पर पैदा हुआ। रोमकेने महासमरको साहस्यके लिये नामा तदके मर और कला कीजतकी

अवतारणा की थी। किन्तु भुवनविध्यात गणितज्ञ पण्डित आर्कमिदिसकी प्रतिभाके बलसे रोमकोंकी सारी चेष्टा चिफल हुई। बहुतेरे ऐतिहासकोंका कहना है, कि बड़े-काँचके एक टुकड़ेमें सूर्यकी किरणको एकत्र कर उसने रोमकोंके बहुतेरे जङ्गी जहाजोंको जला दिया था।

मार्सेलसने स्थलपथमें दृढ़ताके साथ उस स्थान पर घेरा डाला। एक दिन जब साइराक्यूजके दुर्गके सैनिक भोजनोत्सवमें प्रवृत्त थे, मार्सेलस अद्भुत कौशलसे उस धनान्धकारको पार कर सीढ़ी लगा कर किलेकी चहार-दीवारीको लॉघने लगा और उसने एकाएक आक्रमण कर पपिपोलाई पर अधिकार कर लिया। श्वर महा-रसाहसे नगरके दूसरे किनारे पर लूट होने लगे। पपि साइडस शीघ्र ही इस किलेको छोड़ कर आकराडिना और यूरेक्स किलेमें जा छिपा। मार्सेलसने युरेक्स पर अधिकार कर आकराडिना पर घेरा डाला। हिमिटकी और हिप्रोकटिसके अधीनस्थ कार्योत्रीय सैन्य दुर्ग रक्षार्थ मौके पर पहुँचा। किन्तु महामारीके कारण बहुतेरे कार्योत्रीय सैनिकोंकी मृत्यु हुई। मार्सेलसने विजय-प्राप्त कर किले पर अधिकार कर लिया। नगरव-भियोने नगरका द्वार खोल दिया। रोमक-सैन्य नगर लूटने लगे।

जब रोमक-फौजें भीषण षोलाहलके साथ नगर लूट रही थी, उस समय आर्कमिदिस एकाग्रचित्तसे ज्योमेट्रीकी प्रतिष्ठा लिख कर उसे साबित कर रहे थे। एक रोमक-सैन्य द्वारा पृष्ठे जाने पर भी एकाग्र होनेसे उसने कुछ जबाब न दिया। उससे रंज हो कर उसने उसका मस्तक काट दिया था। मार्सेलसने इसके लिये अत्यन्त दुःखी हो कर विलाप किया था और महासमारोहसे उसकी क्रम दे कर सन्तप्त परिवारको अर्ध-साहाय्यमें बहुत धन दिया। आर्कमिदिसने समाधि स्तम्भमें उनके उद्भासित रेखागणितके सिद्धान्तोंकी प्रतिकृति और वृत्तसूचि-च्छेदकी चित्रावली अङ्कित की गई।

साइराक्यूजने प्राचीनकालके वाणिज्यज्ञात विलास-वैभवमें विशेष प्रसिद्धि लाभ की थी। शिल्प-विक्रियत भुवनमोहन चित्रावलीमें और रमणीय भास्कर्य सुदु-मार कावकाव्यमें इसको चित्रशालिका अमरावतीकी उपमास्थल थी। मार्सेलसको नगर लूट कर आशातीत

धनरत्न मणिमुक्ता हाथ लगा और वह शिल्पज्ञात अपूर्व चीजें रोमके देव-मन्दिरकी सजानेके लिये ले गया। इसके पहले पुराने जमानेमें किसीने शिल्पविक्रियत भास्कर्यचित्रावली संग्रह करनेकी चेष्टा न की।

श्वर ईसाके २१२ वर्ष पूर्व दोनो कन्सल क्लडियस और क्यूकियस कापुआका उद्धार करनेके लिये चले। हानिबलके सामने आ जानेसे वे पीछे हटे। हानिबल टरेण्टमके किले पर फिर अधिकार करनेके लिये वहाँ चला। वहाँ उसने (२११ ई० पू०) शीतका समय बिताया। दोनो कन्सलोंने इस सुयोगमें कापुआ पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प किया और दो ओरसे फौजें नगरको घेर लिया। यह समाचार पा कर हानिबल तेजो-से वहाँ लौट आया और भीतरसे फौजें भी उसको सहायता देने लगे। बाहर और भीतरसे आक्रमण करके भी हानिबल रोमकोंको तितर बितर नहीं कर सका। इस समय यह रोम पर अधिकार कर लेनेकी गरजसे रोमकी ओर भागे बढ़ा। देवते देवते यह रोमके सिहद्वारवाजे पर आ उपस्थित हुआ। उसको देख कर रोमके अधिवासी डर तो गये, किन्तु लड़ाई करनेसे पीछे न हटे। उस समय नगरके भीतर भी बहुतेरे सैनिक थे। उधर फतियसने कापुआके घेरेको सुव्य-वस्था कर कुछ फौजोंको ले कर रोमकी ओर याता की। हानिबल रोम-आक्रमणमें असफल हो कर उसके चारों ओरके स्थानोंको लूटने लगा। अन्तमें यह हताश हो कर लौटने पर बाध्य हुआ। विद्रोहियोंकी प्राणदण्ड हुआ; सम्ग्रान्त व्यक्ति कैद कर लिये गये और बाकी अधिवासी गुलाम बना कर बेच दिये गये। अतुल पेश्वर्ष और विलासवैभवपूर्ण कापुआ नगरी शमशान-के रूपमें परिणत हुई। यह २११ ई०के पूर्वकी घटना हुई।

इसके बाद रोमक-कन्सल मार्सेलसने सलापिया नगर पर अधिकार कर लिया। किन्तु हाडेनार्ड नामक स्थानमें फावियसको हार हुई। जो हो, रोमकी फिरसे उत्तरोत्तर उन्नतिमें विद्रोही सहयोगी फिर रोमकी शरण-में आने लगे। ईसाके २०६ वर्ष पूर्व ग्रीष्मकालमें साम-नाइट और लुकानियन रोमके साथ फिर मिलतायुद्धमें



बंध गये। इधर किलेकी फौजोंको विध्वंसघातकृत्यामे  
डेग्रेटम गगर रोगनोंके अधिकारमें आया। कावियसके  
रणकीगलसे रोकक बाह्यद्वार शतकायं होने लगे। हानि-  
बलने सब मामनेके युद्धमें विपदकी आगझू आन गगर  
आदिकी नृदने हुए दक्षिण इटलीमें गेमे अज्ञा किये और  
हासद्रु बलके साहाय्यकी प्रत्यागामें दिन गिनने लगे।  
इसी तरह ईसाके २०७ वर्ष पूर्ण इटलीमें प्युनिक युद्धका  
अन्त हुआ।

दोनो सिपिओकी मृत्युके बाद हासद्रु बल तेजीसे  
भाईकी सहायताके लिये इटलीकी ओर चला। ईसाके  
२०७ वर्ष पहले यह अगस्त परंतकी पार कर इटलीकी  
समभूमिमें उतरा। इस वर्ष सुडियस निरा और पम  
लिमियम कम्सल नियुक्त हुए। निरा दक्षिण इटलीमें  
हानिबल पर आक्रमण करने चला और लिमियम हास  
द्रु बलकी गति रोध करनेके लिये आरिमिनियम की ओर  
चला। गल हासद्रु बलकी सहायता करने लगे। यह  
द्वेष निरा यहाँका आक्रमण छोड़ कर हासद्रु बलकी ओर  
७००० फौजोंको ले कर चला। यह बात हानिबलकी  
मालूम न होने पाई। सात दिनोंमें २५० मीलका पथ तय  
कर लिमियमके साथ निरा मिल गया। कार्येजिय  
भी इन दोनोंके आनेकी बात जानने थे। एक दिन विध्याम  
कर दोनों कम्सल-युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। लुमुल-  
युद्ध होने लगा हासद्रु बल अत्युत्त रणकीगलसे युद्ध  
करने लगा। मोमकर्मों हासद्रु बलके अति हठयुक्त  
और भयदुर युद्धमें साहस महान् रोकक घराणाघो होने  
लगे। पीछे हटना ही जयकी आशा छोड़ हासद्रु बलने  
पीछेताग्रे काटने मारते हुए अपने प्राण दे दिये। उयकी  
पीठ पर अन्धका एक नो निरुद्ध न था। कम्सल मोरो  
हासद्रु बलका कटा निर ले कर हानिबलके रोमकी ओर  
मन्वीय गया। मोरोने यहाँ पहुँच कटे हुए निरकी  
हानिबलके रोममें फेंक दिया। सब हानिबलकी अपने  
साक्षीदरकी मृत्यु पर बड़ी गोक हुआ। उमने कहा  
था—'मैं जानता हूँ, कि कार्येजका दुर्भाग्य सब निरुद्ध  
है।'

मेरोरसके युद्धमें रोकक निर इटली पर कायम हुए।  
हानिबल अगस्तुस युद्ध तथा स्वदेश जाता अमन्दा रामध

कर विभिन्न स्थानोंकी फौजोंकी पक्ष कर पर्यंत परि-  
युक्त युद्धियाँ नामक स्थानमें युद्धताके गगन रोमा लड़ा  
कर ४ वर्ष तक विध्याम करता रहा। इस बार प्युनिक  
युद्धका रङ्ग अङ्क बदल गया। अक्रिका और स्पेनमें युद्ध  
होने लगे। पहले कहा गया है, कि सिपिओने (२२२ ई०  
के पूर्व) स्पेनमें प्राण त्याग किया। उसका सुविरत  
पुत्र सिपिओ इस समय जवान हो कर तरणाईमें ही  
ग्रीष्मयोदीमें साक्ष्यों हो उठा।

युद्धका तीसरा या अन्तिम समय (२०६-२०१ ई०के पूर्व)

रोमयाही उसकी देयताका परपुत्र कह कर  
सम्बोधित करने थे और इसके लक्षणमें उनके  
मनमें भी ऐसी ही धारणा थी, कि देयता उसकी  
सारे कार्योंमें सलाह दिया करने हैं। इसके बादका  
रोम-इतिहास इसकी उज्ज्वलशीतिले चमक रहा  
है। ईसाके २१२ वर्ष पहले टिजिनागके भीषण युद्धमें  
उसने अपनी सख्त वर्षकी आयुमें ही पिताकी प्राण-  
रक्षा की थी। कानिके युद्धक्षेत्रमें भी उसने ट्रिस्पूनके  
रूपमें युद्ध किया था। इस समय यह अगियास ह्येडि-  
यनाके साथ स्पेनमें सौम्यपरिपालन करने लगे। इस  
समय प्रोक्सासलका पद खाली हुए २४ वर्षकी अवस्थामें  
सिपिओ उक्त पदके प्राप्ति हुआ। ईसाके २१० वर्ष पहले  
यह स्पेनमें भा उपस्थित हुआ। सिपिओने मगरा-  
धिकार कर कैदियोंके प्रति सहृदयवद्दत किया। उसका  
वीरत्व और सद्गुणवद्दत देन स्पेनके मर्यादोंने  
कार्येजका पक्ष छोड़ कर उसका पक्ष ग्रहण किया।  
इसके बाद मण्टोवियस और इण्डिविलिस नामक दो  
प्रकारके राजाओंने सिपिओका आश्रय प्रदान कर  
लड़ाई करना सारना किया। स्पेनके सभी अधिपतियों  
रोमकी जयपथति कर सिपिओकी तरफमें गये। ये  
सिपिओके पौरुष तथा सद्गुणवद्दतने मुग्न हो गये।

सिपिओ सब अक्रिकाके कार्येजियोंकी पराजयकी  
चिन्ता करने लगा। ग्रीष्म ही उसने यहाँ जा कर  
सुडियसियाके राजाओंमें सद्गुणवद्दत स्थापित किया।  
सिपिओको आकारमण्डन प्राज्ञता और बुद्धिमत्ताकी  
मुग्न हो कर सभी मित्तनाम्नमें बंध गये। सिपिओ  
(ईसाके २०६ वर्ष पूर्व) रोममें जा कर कम्सल-पद प्राप्त

करनेके प्रार्थी हुआ। दूसरे वर्षके लिये कन्सल पद पर नियुक्त हो उसने अफ्रीका जा वहाँके प्लूनिक्स लड़ाईका अन्त करना चाहा। किन्तु प्रवीण दोनों कन्सलोंने इसमें सम्मति नहीं दी। तब सिपियोने सिसिली पर विजय-प्राप्त करनेको इच्छा प्रकट की। किन्तु सेनेटने फौज भेजनेमें अविच्छा प्रकट की। सिपियोका अद्भुत साहस देख कर बहुतेरे रोमक घोर स्वेच्छापूर्वक लड़ाईके लिये अग्रसर हुए। सेनेट इन युवकोंकी इच्छाओंको दबा न सकी। सिपियो सिसिलीमें लड़ाईका उद्योग करने लगा। इधर उसके शत्रु उसको लौटा लानेके लिये सेनेटको उत्तेजित करने लगे। सिपियो यूनानी साहित्यमें अनुरक्त और धार्यन्त विलासी था। इसलिये पुराने रोमवासी उसको अच्छी दृष्टिसे देखते न थे। उसके शत्रुओंने समाचार दिया, कि सिपियो सिसिलीमें बैठ कर विलास-प्रवाहमें प्रवाहित हो रहा है, इससे उसको शीघ्र वापस बुला लेना चाहिये। किन्तु सेनेटको उसको लौटा लाने का साहस न हुआ। इसलिये जान करके लिये उसने एक कमीशन नियुक्त किया। कमीशनने वहाँ जा कर उसके युद्धोद्योग और अभिनव रणकौशल देख कर विस्मित हृदयसे भूयसी प्रशंसा की। उस समय सेनेटने उसको आनेके बदले अफ्रीकामें जा कर युद्ध करनेकी आज्ञा प्रदान की। इसके अनुसार (ईसासे २०४ वर्ष पहले) सिपियो लिलिवियमसे अफ्रीकाके उटिका नामक स्थानमें चला गया। कार्येजीय सैनिक सिपियोके पहले प्रतिद्वन्द्वी जिंसागो हासद्रुवलकी अधीनतामें परिचालित हुए थे और उसका साम्राज्य साइफाससके साहाय्यार्थ कार्येजके पक्षमें युद्ध करने लगा। २०३ ईसाके पूर्व रीतिके अनुसार युद्ध आरम्भ हुआ। मैसिनिसाने पूर्वाके सौहृद्यके अनुसार सिपियोका पक्ष ग्रहण किया।

घोर अन्धेरी रातमें सिपियोने कार्येजीयके खेमे पर आक्रमण किया और आग लगा दी। सारे खेमे जल कर भस्म हो गये। बहुतेरे कार्येजीय-सैन्य तलवार और आगके मुखमें पतित हुए। हासद्रुवल फिर एक बार सैन्य ले कर साइफाससकी सहायतामें युद्ध करने लगा। किन्तु सिपियो और मैसिनिसाकी सम्मिलित फौजोंने उन सबोंको पूर्णरूपसे पराजित किया।

साइफाससकी प्रेमिका साफोनिसावा कैद कर ली गई। मैसिनिसा बहुत दिनों तक इसका प्रभावशाली था। इस समय इसको कैद कर उसने इसके साथ विवाह कर लिया; किन्तु इस बातको सिपियो नहीं जानता था। किन्तु उसने मनमें अनुमान किया, कि पीछे इस विवाहके फलसे मैसिनिसा अपने सासुर हासद्रुवलका पक्ष ले लिया, इसीलिये उसने उस कन्याको उसके हाथ सौंप देनेकी बात कही। मैसिनिसा साफोनिसावाकी वास्तव्यमें प्रेम करता था। इससे उसको कैद कराना उपयुक्त न समझ उसको जहर खिला दिया। इस तरह साफोनिसाका अन्त हुआ। कार्येजीयोंने सिपियोके पराक्रमसे तंग आ कर रोमसे चले आनेके लिये हानिबल और मागोरके पास दूत भेजे। हानिबलने १५ वर्ष तक इटलीमें युद्ध कर एक छोरसे दूसरे छोर तक अधिकार कर लिया था। हानिबलके स्वदेश लौटने पर रोमक बड़े खुश हुए। हानिबलके साथ युद्ध करनेसे रोमकोंके ३००००० सैन्य विनष्ट हुए थे। धनरत्न जो छुट गया था, उसकी इयत्ता नहीं। रोमकोंने उसके पहले ऐसे घोर पुद्घपको देखा न था।

अश्लील पितृभक्त पुत्रने पिताकी आज्ञा पालनके लिये जो महाव्रत उठाया था, उसका किञ्चित्सा पूरा कर हानिबल लम्बो सांस ले जटाज पर बैठा। उसके कार्येजमें पहुँचते ही कार्येजीय नये बलसे बलवान् हो उठे; किन्तु हानिबलने वहाँकी अवस्थाका पर्यावेक्षण कर युद्धसे सन्धि ही करना उचित जाना। किन्तु युद्धोन्मत्त सिपियोकी कड़ो सन्धि शर्तोंको कार्येजीय सैन्य स्वीकृत नहीं कर सका। हानिबल स्वयं उपस्थित हो किसी किसी शर्तको बदल देना चाहा; किन्तु सिपियोने उस पर जरा भी ध्यान न दिया। फलतः लड़ाई छिड़ गई। (२०२ ईसाके पूर्व) जेमा नामक स्थानमें दोनों फौजोंका भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्धमें सिपियोकी ही विजय हुई। २०००० कार्येजीय सैनिकोंके रक्ताक्त परिपूरित नरमुण्डोंसे युद्धस्थल भयङ्कर हो उठा। २५००० कार्येजीय कैद कर लिये गये। हानिबलने बड़े कष्टसे अपना प्राण बचाया।

फिर युद्ध करना असम्भव समझ हानिबलने सन्धिके

प्रस्ताव किया। मिथिभोनी सन्धिबन्धन पदलेकी अपेक्षा भी अधिक कठोर हुई। किन्तु दूसरा उपाय न था। किन्ती तरह सन्धि (२०१ ई०पू०के पूर्व) हो गई। कर्षे-जीव अतिक्रमों स्वाधीनता से राज्य करने लगे। उनके अध्याय प्रयास सभी अविफल होने लगे। यह भी स्थिर हुआ, कि वे बिना रोमकी सहायता के युद्धविग्रह भी न कर सकेंगे। सभी हाथी रोमकी सौँर देने लगे। मैसिनिसाकी ये श्रुतिज्ञियाका राजा स्वीकार करेगे। युद्धकी क्षति-पूर्तिमें १०००० रोममुद्रा ५० वर्षोंमें रोमके देने लगे।

इस तरह रोम बाहुबलसे पवित्रम प्रदेशोंके मार्शनीम अधिपति हो गया। इस समय द्विपिपत्रयो सिकन्दरके उत्तराधिकारियोंके द्वारा संस्थापित यूनानी राज्योंकी अथवा अथवा शोषणोय हो गई थी। जो मिरिया राज्य सिन्धुनदीसे इतिपन सागर तक फैला था, उमके बहूनेरे प्रदेशोने अधीनता स्वीकार कर ली थी। पनिया-माइरके राजे मिरियाका शासन बसोकार कर स्वाधीन बन गये थे। फ्राजिया और गलेजियामें माल प्रबल हो उठे थे। माइसिया नामक एक नया राज्य बायन हुआ था। इसकी राजधानी पार्गामास थी। पार्गामासके राजाने बाहुबलसे त्रितीय प्यूनिक लड़ाईके समय रोमके साथ मिलता स्थापित की थी।

इस समय ३रा अतिभोवास् मिरियाके राजा था। उसने पापियाओकी पराजित कर 'पेट्ट' या महाराजकी उपाधि ग्रहण की थी। इस समय टलेमीयनीय यूनानी राजा मिथ्रके सिंहासन पर बैठा था। इसने भी विरहासके समय दूत भेज कर मित्रताकी सन्धि कर ली थी। किन्तु ईसाके २०५ वर्ष पूर्व ५थे टलेमीनी मोन होने पर कासक-सत्ता टलेमी पविकेसिस सिंहासन पर बैठा। उसके अतिवेमि मिरिया और मारिदुनके भाइयको मान्यता कर रोमक-सत्ताके माहादुवकी प्रार्थना की थी। इतिपन मार्गमें रोडसका प्रजासत्त समुद्रिक लक्ष्मी अतिशय बड़ा जाता था। इस संस्थापक लक्ष्मी मारिदुनके भाइयको मान्यता रोमके साथ मित्रता की थी। मारिदुनिय इस समय प्रबलतममें पराजितकारी राजा समक्य जाता था। सुदुहा राजा

५थी किलिय इस समय इस देशका शासनकाल पर चालन कर रहा था। यह ईसाके २२० वर्ष पूर्व १० वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठा। यूनान देशमें इसका राज्य बहुत दूरमें फैला था। किन्तु उस समय यूनानमें 'पविकियन लिग' और 'इटोलियन लिग' नामके दो नये सम्प्रदायोंका अस्तित्व हुआ था। पयोग्म और स्पार्टां तब तक अपनी स्वाधीनताको रक्षा कर रहे थे। किन्तु इनका पूर्वगौरव मरित हो गया था। जब प्राय और प्रतीप्यकी पेली अथवा थी, तब रोमके साथ मारिदुनकी प्रतिअभिपत्ता चल रही थी।

गविरलोय, सिरीय और गलेजिया-मुद्र (२१४-१८८ ई० पू०)

पहले दो कदा जा युवा है, कि दूसरे प्यूनिक युद्धके समय मारिदुनके राजाने कर्षे-जका साथ दे रोमके साथ माल सागरल किया था। द्विमेतिपन नामक एक विधायकगतक यूनान विद्रोही इतिरोय प्रदेशमें रोमकी द्वारा पितारिडन हुआ था। यह किलियकी राजतमामें जा कर राजाका विशेष नियोग बन गया। नियोग ही वर्षों, एक परामर्शदाता बन चुका था। किलिय मदा उमकी रायके मुताबिक कार्य करता था। द्विमेतिपन युद्धके किलियके अन्तःकरणमें रोमके प्रति विद्रोहनायकों उद्येजना फैला दी थी। ईसाके २१४ वर्ष पूर्व किलियने पर जहूरी जहाजोंको ले कर अरिक्त पर अधिकार कर लिया और बागलेमिया पर घेरा बाल दिया। किन्तु रोम-सैन्यके भा जानेने यह यहाँ छोड़ दिया। इसके बाद तीन वर्षों तक घेरा घटना न हुई। फिर २११ ईसाके पूर्व जब 'इटोलियन लीग'में रोमके साथ अस्तित्व कर लिया। तब यह किलियके विद्रोहो बन गया। यह पविकियन लिग किलियके साथ मिल गया। इटोलियन-लीग पहले किलियके साथ मारिदुन करने पर बाध्य हुआ। फिर अतिक्रमों रोम जब युद्धमें लिग था, तब रोमने जो किलियके साथ मारिदुन कर ली थी। यह ईसाके २०५ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस तरह मारिदुनोय पहले युद्धका अथवा हुआ। किन्तु दोनो पक्षमें ही इस नामक लिय था, कि यह मारिदुन अधिक दिनों तक टिक न सकेंगे। मिथिभो जब तक अतिक्रमों प्रविष्ट रोमके साथ लड़ाईमें कौनो था, तब तक किलियने हाजिरबकी

सहायतामें ४००० सैनिक भेजे थे। इजियनसाम्रज्यमें प्राधान्यलाभ करनेके लिये यह सारे यूनान पर कब्जा कर रहा था। इसलिये रोडसके प्रजातन्त्र और पार्गाभासके राजा आटालस पर उसने शीघ्र ही आक्रमण किया। ये दोनों ही रोमके मित्रतासूत्रमें आवद्ध थे। फिलिपने लड़ाई आरम्भ करनेसे पहले सिरियाके राजा अन्तिओकासके साथ सन्धि कर ली थी। इससे रोम निश्चिन्त न रह सका। इस तरह दूसरी बार माकिदनीय लड़ाई आरम्भ हुई। ईसाके २०० वर्ष पूर्व फिलिपने पहले पर्थेन्स पर आक्रमण किया। इस पर पर्थेन्सकी सहायता करनेके लिये रोमक कन्सल सालपेथियस गलचा कई जङ्गीजहाजोंके साथ आया। यह देख कर फिलिप पर्थेन्सवासियों पर भयानक अत्याचार करने लगा, किन्तु प्रकाश्य लड़ाईमें किसी पक्षी जय-पराजय न हो सकी। गलचाके वाद मिलियस कन्सल नियुक्त हुआ। यह ईसाके १६६ वर्ष पूर्वाकी घटना है। यह भी फिलिपका कुछ विगाड़ न सका। इसके एक वर्ष बाद प्लेमेनियस कन्सल नियुक्त हो कर नये उद्योगसे लड़ाई करने लगा। उसने शीघ्र ही थेसाली पर कब्जा कर फोлис और लोफिसमें शान्तकाल बिताया। इसके दूसरे वर्षमें गिनेा सेफालेमें या 'कुकुरमस्तक' नामक स्थानकी लड़ाईमें माकिदनीय २२ युद्धका अन्त हुआ। रोमक पहले बड़ी विपद्में फँसे थे, पोछे इटालियन घुड़सवारोंके भोमपराक्रमसे रक्षा हुई। माकिदनीय फौजें भी (Phalanx) अमित विक्रमके साथ युद्ध करने लगीं। ८००० माकिदनीय फौजें बाहत और ५००० फौद हुईं; किन्तु रोमकोंके ७००से अधिक सिपाही नष्ट नहीं हुए। फिलिप अथ सन्धि करने पर वाध्य हुआ। ईसाके १६६ वर्ष पहले यह सन्धि हुई। इसके अनुसार फिलिपको यूनानसे फौजें हटा लेनी पड़ी। जङ्गीजहाज रोमकोंके हाथ सौंप देने पड़े और फिलिपको इस बातकी प्रतीक्षा करने पड़ी, कि रोमके बिना वह किसी देशसे यह मित्रता न करेगे। लड़ाईकी क्षतिपूर्तिमें १००० रुपये रोमकोंकी मिले।

प्लेमेनियसने यूनानकी शीघ्र रोमके शासनाधीन कर देना उचित न समझ यूनानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की।

पोछे पांच वर्ष तक यूनानमें रह कर शासनकी चागडोरकी सम्भाल कर बड़ी धूमधामसे रोम पहुँचा। रोममें उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस समय सिरियाके राजा अन्तिओकस पशियामाइनर पर घेरा डाल कर यूनान पर आक्रमण करनेकी तयारी कर रहा था।

इधर यूनानके इटालियन बौद्धत्वके कारण फिलिप और अन्तिओकस्को रोमके विरुद्ध उमाड़ रहे थे। किन्तु फिर फिलिप रोमके सामने शिर उठा न सका। अन्तिओकस् और नेविसने इटालियनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस समय हानिबल अपने दंशसे निर्वासित हो सिरियाकी राजसत्तामें उपस्थित हुआ। वहाँकी सेनेटने रोमके विरुद्ध शिर ऊँचा फनेका उद्योग करनेके अपराधमें इसे देशसे निकाल दिया था। सिरियाके राजाने यहाँ आनन्दके साथ हानिबलको अपना प्रधान सेनापति बनाया। अन्तिओकस थेसालीके सुप्रसिद्ध दिमेतियस नामक सुरक्षित किलेमें पहुँचा। ईसाके १६१ वर्ष पूर्व रोमकोंने उसके विरुद्ध दुष्ट-घोषणा की। कन्सल इलियस ग्लेब्राने भी थेसालीको यात्रा की। अन्तिओकस् थार्मॉपली नामक गिरिपथ पर सैन्य ले कर पड़ा था। इस तरह उसने रोमकोंके मध्य पशियामें जानेका रास्ता रोक रखा था। किन्तु रोमक दूसरे एक पथसे सिरियाकी फौजोंके पोछे आ पहुँचे। यह देख सिरियाका फौजें भाग बड़ी हुईं। अन्तिओकस् यूनानकी विजयसे निराश हो कर अपने देश पशियामें लौट आया। ईसाके १६० वर्ष पूर्व हानिबलको परास्त करनेवाला सिपिओ आफ्रिकेनासः भाई पल-सिपिओ और स्त्री लेलियास कन्सल नियुक्त हुआ। पल-सिपिओकी अन्तिओकस्के विरुद्ध युद्धमें जानेकी प्रार्थना करने पर सेनेटको उसकी योग्यतामें सन्देह हुआ। फलतः सेनेटने उसको आह्वान न दी। किन्तु सिपिओ आफ्रिकेनासके भी माँके साथ जानेको बात सुन कर सेनेटने पोछे आह्वान दे दी।

इधर अन्तिओकस् एक विराट सैन्योका संगठन कर पार्गाभास राज्यको लूट रहा था। रोमक फौजें हेलेन्पन्तको पार कर उसके सामने पहुँच गईं। मिवाइलस पर्यंतके नीचे मेगनिसिया नामक स्थानमें लड़ाई आरम्भ हुई। रोमकोंके लोकाभयदूर पराक्रमसे अग्निश्चि

प्रस्ताव किया। मिरिमीकी सन्धि, जो पहलेकी सन्धि भी अधिक कठोर हुई। किन्तु दूसरा उपाय न था। क्रिस्ती तरह सन्धि (२०१ ईसाके पूर्व) हो गई। क. रोमीय सन्धिकारमें स्थायीताकी स्थापना करने लगे। उनके अन्वय प्रथा समी अर्थपर लीने गये। यह भी स्पष्ट हुआ, कि ये बिना रोमकी सहायके युद्धविग्रह भी न कर सकेंगे। समी दार्थी रोमकी सौदा देने देंगे। मैसिसियाकी ये श्रुतिविषयका राजा स्वीकार करेंगे। युद्धकी क्षति-पूर्तिमें १०००० रोम्यमुद्रा ५० वर्षोंमें रोमको देने देंगे।

इस तरह रोम बाहुबलमें पश्चिम प्रदेशोंके सार्धनीय अधिपति हो गया। इस समय दिग्विजयी सिकन्दरके उत्तराधिकारियोंके द्वारा संस्थापित यूनानी राज्योंकी भवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। जो मिरिया राज्य सिन्धुनदीमें इजिप्टन सागर तक फैला था, उसके बहुतेरे प्रदेशोंने अधीनता स्वीकार कर ली थी। पनिया-माइलरके राजे मिरियाका शासन अस्वीकार कर स्थायी बन गये थे। फ्राइजिया और गलेसियामें राज्य प्रबल हो उठे थे। मासिया नामक एक नया राज्य ब्रायन हुआ था। इसकी राजधानी पार्गामास थी। पार्गामासके राजाने साइप्रसमें द्वितीय प्लुनिक लड़ाईके समय रोमके साथ मित्रता स्थापित की थी।

इस समय ३२ अन्तिमोकास मिरियाके राजा था। इनके पश्चिमियोंकी पराजित कर 'मेट' या महाराजकी उपाधि प्रदान की थी। इस समय टलेमीपत्नीय यूनानी राजा मिथ्रके सिंहासन पर बैठा था। इसने भी पितृ-हास्यके समय दून भेज कर मित्ताकी सन्धि कर ली थी। किन्तु ईसाके २०५ वर्ष पूर्ण ४५५ टलेमीकी मृत होने पर राजक-सम्राट् टलेमी पविषकेसिन्धु सिंहासन पर बैठा। उसके प्रतिपक्षमें मिरिया और मासिदूनके सन्ध-सदस्यों साइडुस कर रोमक-सम्राट् थे, साइडुसकी मर्णाता की थी। इजिप्टन सम्राटमें रोडरस प्रतापन समुद्रिक लक्ष्मी अन्तिमोय कदा ज्ञाता था। इस मन्वयन लक्ष्मी सन्धिदूनके सन्धसदस्यों साइडुसके रोमके साथ मित्रता की थी। मिरियाका इस समय अन्धकारमें पराजितराजकी राजा समन्ता ज्ञाता था। सुदूर राजा

५५५ मिरियाप इस समय इस देसका शासनकाल परिपालन कर रहा था। यह ईसाके २२० वर्ष पूर्ण १७ वर्षोंको अन्धकारमें सिंहासन पर बैठा। यूनान देसमें इसका राज्य बहुत दूरमें फैला था। किन्तु उस समय यूनानमें 'पकिवान मिग' और 'इटोसियन मिग' नामके दो नये मन्वयवीर्य अन्धकारन हुआ था। परोस और स्पार्टा तब तक अपनी स्थायीताकी रक्षा कर रहे थे। किन्तु इनका पूर्वांगीय मन्वय हो गया था। जब प्रायः और प्रतोच्छाकी पेशी भवस्था थी, तब रोमके साथ मासिदूनकी प्रतिवन्धिना चल रही थी। मिरिदोन, मिरिय और गलेसिय-दूद (२१४ ईसाके पूर्व)

पहले ही कदा जा सुझा है, कि दूसरे प्लुनिक युद्धके समय मासिदूनके राजाने कार्य-जका साथ ही रोमके साथ जन्म साभल किया था। द्विमेसियन नामक एक विभवसाधक यूनान विद्रोही इतिरीय प्रदेशमें रोमकी द्वारा विनाशित हुआ था। यह किन्विकी राजसमन्ती जा कर राजाका विशेष मित्रता बन गया। मित्रता ही पेशी, एक परामर्शदाता बन चुका था। मिरिया तथा उसकी सन्धके मुनासिक कार्य-जका था। द्विमेसियन युद्धके किन्विके अन्तःकरणमें रोमके प्रति विद्वन्भावकी उत्तेजना फैला दी थी। ईसाके २१४ वर्ष पूर्ण किन्विके कई जूरी जहाजोंके ले कर अरिदम पर अधिकार कर लिया और सायटोनिया पर घेरा डाल दिया। किन्तु रोमके सन्धके सा ज्ञानेन यह वही लौट भाया। इसके बाद तीन वर्षों तक वेरि घटना न हुई। फिर २११ ईसाके पूर्व जब 'इटोसियन लीग'ने रोमके साथ अन्धकार कर लिया। तब यह किन्विके विद्रोही बन गया। जब पकिवान मिग किन्विके साथ मिल गया। इटोसियन-लीग पहले किन्विके साथ सन्धि करने पर बाधर हुआ। फिर मसिदूनमें रोम जब युद्धमें मिल था, तब रोमने भी किन्विके साथ सन्धि कर ली थी। यह ईसाके २०५ वर्ष पूर्णकी घटना है। इस तरह मासिदूनकी पहले युद्धका अन्तमान हुआ। किन्तु कैसी पेशी ही इस समय अन्धकार किया था, कि पर सन्धि अधिक दिनों तक टिक न सकेगी। मिरिमी जब तक सन्धिकारमें प्रतिवन्धनीयताके साथ लड़ते हैं किंता था, तब तक किन्विके अन्धकारको

सहायतामें ४००० सैनिक भेजे थे। इजिप्टनसागरमें प्राधान्यलाभ करनेके लिये वह सारे यूनान पर कब्जा कर रहा था। इसलिये रोडसके प्रजातन्त्र और पार्गांमासके राजा आटाल्यास पर उसने शीघ्र ही आक्रमण किया। ये दोनों ही रोमके मित्रतासूत्रमें आवद्ध थे। फिलिपने लड़ाई आरम्भ करनेसे पहले सिरियाके राजा अन्तिओकासके साथ सन्धि कर ली थी। इससे रोम निश्चिन्त न रह सका। इस तरह दूसरी बार माकिदनीय लड़ाई आरम्भ हुई। ईसाके २०० वर्ष पूर्व फिलिपने पहले पथेन्स पर आक्रमण किया। इस पर पथेन्सकी सहायता करनेके लिये रोमक कन्सल साउपेशियस गलवा कई जङ्गीजहाजोंके साथ आया। यह देख कर फिलिप पथेन्सवासियों पर भयानक अत्याचार करने लगा, किन्तु प्रकाश्य लड़ाईमें किसी पक्षी जय-पराजय न हो सकी। गलवाके वाद मिलियस कन्सल नियुक्त हुआ। यह ईसाके १६६ वर्ष पूर्वकी घटना है। यह भी फिलिपका कुछ विगाड़ न सका। इसके एक वर्ष बाद प्लेमेनियस कन्सल नियुक्त हो कर नये उद्योगसे लड़ाई करने लगा। उसने शीघ्र ही थेसाली पर कब्जा कर फोलिस और लोकिस्में शान्त-काल बिताया। इसके दूसरे वर्षमें जिना सेफालेमें या 'कुङ्कुरमस्तक' नामक स्थानकी लड़ाईमें माकिदनीय २२ युद्धका अयसान हुआ। रोमक पहले बड़ी विपद्में फंसे थे, पीछे इटालियन युद्धसवारोंके मोमपराक्रमसे रक्षा हुई। माकिदनीय फौजें भी (Phalanx) अमित विक्रमके साथ युद्ध करने लगीं। ८००० माकिदनीय फौजें बाहत और ५००० फीद हुईं; किन्तु रोमकोंके ७००से अधिक सिपाही नष्ट नहीं हुए। फिलिप अब सन्धि करने पर बाध्य हुआ। ईसाके १६६ वर्ष पहले यह सन्धि हुई। इसके अनुसार फिलिपको यूनानसे फौजें हटा लेनी पड़ी। जङ्गीजहाज रोमकोंके हाथ सौंप देने पड़े और फिलिपको इस बातकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, कि रोमके बिना वह किसी देशसे यह मित्रता न करेगा। लड़ाईके क्षतिपूर्तिमें १००० रुपये रोमकोंकी मिले।

प्लेमेनियसने यूनानकी शीघ्र रोमके शासनाधीन कर देना उचित न समझ यूनानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की।

पीछे पांच वर्ष तक यूनानमें रद्द कर शासनकी घागडारकी सम्भाल कर बड़ी धूमधामसे रोम पहुंचा। रोममें उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस समय सिरियाके राजा अन्तिओकस पशियामाइनर पर घेरा डाल कर यूनान पर आक्रमण करनेकी तयारी कर रहा था।

इधर यूनानके इटालियन अीद्धत्यके कारण फिलिप और अन्तिओकस्को रोमके विरुद्ध उभाड़ रहे थे। किन्तु फिर फिलिप रोमके सामने शिर उठान न सका। अन्तिओकस् और नेविसने इटालियनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस समय हानिबल अपने देशसे निर्वासित हो सिरियाकी राजसगामे उपस्थित हुआ। वहांकी सेनेटने रोमके विरुद्ध शिर ऊंचा करनेका उद्योग करनेके अपराधमें इसे देशसे निकाल दिया था। सिरियाके राजाने यहां आनन्दके साथ हानिबलको अपना प्रधान सेनापति बनाया। अन्तिओकस थेसालीके सुप्रसिद्ध दिमेत्रियस नामक सुरक्षित किलेमें पहुंचा। ईसाके १६१ वर्ष पूर्व रोमकोंने उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। कन्सल इलियस ग्लेबाने भी थेसालीकी याता की। अन्तिओकस् थार्मोपली नामक गिरिपर्व पर सैन्य ले कर पड़ा था। इस तरह उसने रोमकोंके मध्य पशियामें जानेका 'राम्ता' रोक रखा था। किन्तु रोमक दूसरे एक पक्षसे सिरियाकी फौजोंके पीछे आ पहुंचे। यह देख सिरियाकी फौजें भाग लड़ी हुईं। अन्तिओकस् यूनानकी विजयसे निराश हो कर अपने देश पशियामें लौट आया। ईसाके १६० वर्ष पूर्व हानिबलकी परास्त करनेवाला सिपिओ आफ्रिकेनासके भाई पल-सिपिओ और सी लेलियास कन्सल नियुक्त हुआ। पल-सिपिओकी अन्तिओकस्के विरुद्ध युद्धमें जातेकी प्रार्थना करने पर सेनेटको उसको योग्यतामें सन्देह हुआ। फलतः सेनेटने उसकी आज्ञा न दी। किन्तु सिपिओ आफ्रिकेनासके भी भाईके साथ जानेकी बात सुन कर सेनेटने पीछे आशा दे दी।

इधर अन्तिओकस् एक विराट सैन्यका संगठन कर पार्गांमस् राज्यको लूट रहा था। रोमक फौजें 'हेलेस-पन्तको पार कर उसके सामने पहुंच गईं'। सिवाल्लम पर्वतके नीचे मेगनिस्त्रा नामक स्थानमें लड़ाई आरम्भ हुई। रोमकोंके लोक-भयङ्कर पराक्रमसे अनिश्चिन्

प्रस्ताव किया। सिगिभोको मरिचिअरुस पदवीकी भवेता भी अधिक कठोर हुई। किन्तु दूसरा उपाय न था। क्रियां तब मरिचि (२०१ ईसाके पूर्व) हो गईं। कथे जोय अधिकारमें लायेजाने से राज्य करने लगे। उनके अग्रजप्राय सभी अधिकार छोड़े गये। यह भी स्पष्ट हुआ, कि ये बिना रोमकी आज्ञाके युद्धविग्रह भी न कर सकेंगे। सभी क्षात्री रोमकी सौव देने हींगे। मैनिगियाकी ये भूमिद्विपाका राजा अधिकार करेंगे। युद्धकी क्षतिपूर्तिमें १०००० रोमयुद्धा ५० वर्षोंमें रोमको देने हींगे।

इस तरह रोम बाह्यरूपमें पश्चिम प्रदेशोंके साधीनीय अधिपति हो गया। इस समय द्विगियजयो निकन्दरके कर्णसचिकारियोंके द्वारा संस्थापित यूनानी राज्योंकी भावस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। आ गिरिया राज्य सिन्धुनदी इतिपन सागर तक फैला था, उसके बहुतेरे प्रदेशोंमें अधीनता स्वीकार कर ली थी। एजिया-माइनरके राजे गिरियाका शासन अन्वोकार कर लायेजाने बन गये थे। कार्थिजिया और मेटेजियामें गठ प्रबल हो उठे थे। माहसिया नामक एक नया राज्य बरपन हुआ था। इसकी राजधानी पार्थोमाना थी। पार्थोमानाके राजाने बाह्यद्वारामें शिबीय एगुनिक लड़हारेके सामय रोमके साथ मित्रता स्थापित की थी।

इस समय इत मरिचिभोकासु गिरियाके राजा था। हमने पार्थियानोंकी पराजित कर 'मेट' या महाराजकी उपाधि ग्रहण की थी। इस समय टलेमीथीजोय यूनानी राजा मिथरके सिंहासन पर बैठा था। हमने भी पिर-हामके समय दूत भेज कर मित्रताकी मरिचि कर ली थी। किन्तु ईसाके २०५ वर्ष पूर्व अये टलेमीकी मीन होने पर बालक-सम्राट् टलेमी पविरेलिस सिंहासन पर बैठा। उसके मरिचिदोमे गिरिया भीर मरिचिदुनके आक साधकी साहजुा कर रोमक-सम्राट् के साहाय्यकी प्रार्थना की थी। इतिपन साम्राज्य में मरिचिदुन प्रजासक म-गु-दिक मरुतमें मरिचिदुन के राजाका राजा था। इस मरिचिदुन लक्ष्मी मरिचिदुनके मरिचिदुनकी साहजुासे रोमके साथ मित्रता की थी। मरिचिदुनका इस समय मरिचिदुनकी पराजितकारी राजा मरिचिदुन था। सुसुरा राजा

यहाँ किनिय इम समर इम देशका शासनरूप परि शासन कर रहा था। यह ईसाके २२० वर्ष पहले १७ वर्षोंको अरस्थामें सिंहासन पर बैठा। यूनान देशमें इसका राज्य बहुत दूरमें फैला था। किन्तु उस समय यूनानमें 'पकिपाल लिय' और 'इटीनियन लिय' नामके दो नये समरवायोका अग्रजुपान हुआ था। वोग्म भीर स्पार्टा तब तक मरिचि लाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। किन्तु इनका पूर्वागौरव मरिचि हो गया था। तब मरिचि और प्रतीक्यकी ऐसी मरिचिथा थी, तब रोमके साथ मरिचिदुनकी मरिचिदुनता बन रही थी।

मरिचिदुनके, शिबीय और मरिचिदुन-दुन (२१४ एन ई ५०)

पदवी हो कहा जा युद्ध है, कि दूसरे एगुनिक युद्धके समय मरिचिदुनके राजाने कथे तबका साथ दे रोमके साथ जन साधल किया था। दिमेतिपन नामक एक विध्वंसकारक यूनान विद्रोही इतिपय प्रदेशमें रोमकी द्वारा गिरादुन हुआ था। यह किनियको राजसमयमें जा कर राजाका विशेष विदवात बन गया। विदवात ही वर्षों, एक परामर्शदाता बन चुका था। किनिय मरुा उसकी साधके मुताबिक कार्य करना था। दिमेतिपन युद्धके किनियके अन्तःकरणमें रोमके प्रति विद्रोहाचकी उल्लेखना फैला दी थी। ईसाके २१४ वर्ष पूर्व किनियमें कई जहूी जहाजोंके से कर मरिचिदुन पर अधिकार कर गिरिया और भावलेगिया पर घेरा डाल दिया। किन्तु रोमक-मैथरके भा जानेसे यह तहरी लीट भाया। इनके बाह्य तोन वर्षों तक वेरि घटना न हुई। फिर २११ ईसाके पूर्व जब 'इटीनियन लिय'में रोमके साथ अग्रजुपन कर लिया। तब यह किनियके विद्रोहो बन गया। तब पकि-पाल लिय किनियके साथ मिल गया। इटीनियन-लिय परने किनियके साथ मरिचि करके पर बाधक हुआ। फिर मरिचिदुनके रोम जब युद्धमें मिले तब रोमने मो किनियके साथ मरिचि कर ली थी। यह ईसाके २०५ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस तरह मरिचिदुनके परने युद्धका अन्तगाल हुआ। किन्तु दोनो युद्धमें ही इस समय अत्यन्त विधा था, कि यह मरिचि मरिचि दिने मरु रिक-न कथेगी। मरिचिदुने तब तक मरिचिदुनकी मरिचिदुन रोमके साथ लड़हारेमें फैला था, तब तक किनियमें इतिपनकी

सहायतामें ४००० सैनिक भेजे थे। इजियनसाम्रिकों में प्राधान्यलाम करनेके लिये यह सारे यूनान पर कब्जा कर रहा था। इसलिये रोडसके प्रजातन्त्र और पार्गामासके राजा आटाल्यस पर उसने शीघ्र ही आक्रमण किया। ये दोनों ही रोमके मित्रतासूत्रमें आवद्ध थे। फिलिपने लड़ाई आरम्भ करनेसे पहले सिरियाके राजा अन्तिओकासके साथ सन्धि कर ली थी। इससे रोम निश्चिन्त न रह सका। इस तरह दूसरी बार माकिदनीय लड़ाई आरम्भ हुई। ईसाके २०० वर्ष पूर्व फिलिपने पहले प्थेरस पर आक्रमण किया। इस पर प्थेरसकी सहायता करनेके लिये रोमक कन्सल सालपेशियस गलवा कई जङ्गीजहाजोंके साथ आया। यह देख कर फिलिप प्थेरसवासियों पर भयानक अत्याचार करने लगा, किन्तु प्रकाश लड़ाईमें किसी पक्षी जय-पराजय न हो सकी। गलवाके बाद मिलियस कन्सल नियुक्त हुआ। यह ईसाके १६६ वर्ष पूर्वकी घटना है। वह भी फिलिपका कुछ विगाड़ न सका। इसके एक वर्ष बाद प्लेमेनियस कन्सल नियुक्त हो कर नये उद्योगसे लड़ाई करने लगा। उसने शीघ्र ही थेसाली पर कब्जा कर फोलिस और लोकिसमें शीतकाल बिताया। इसके दूसरे वर्षमें जिनेा सेफालेमें या 'डुकुरमस्तक' नामक स्थानकी लड़ाईमें माकिदनीय ररे युद्धका अयसान हुआ। रोमक पहले बड़ी विपद्में फँसे थे, पीछे इटालियन पुडुसवारोंके भोमपराक्रमसे रक्षा हुई। माकिदनीय फौजें भी (Phalanx) अमित विक्रमके साथ युद्ध करने लगीं। ८००० माकिदनीय फौजें बाहत और ५००० फँद हुईं; किन्तु रोमकोंके ७००से अधिक सिपाही मर नहीं हुए। फिलिप अथ सन्धि करने पर बाध्य हुआ। ईसाके १६६ वर्ष पहले यह सन्धि हुई। इसके अनुसार फिलिपको यूनानसे फौजें हटा लेनी पड़ी। जङ्गीजहाज रोमकोंके हाथ सौंप देने पड़े और फिलिपको इस बातकी प्रतीक्षा करना पड़ी, कि रोमके बिना वही किसी देशसे यह मित्रता न करेगा। लड़ाईकी क्षतिपूर्तिमें १००० रुपये रोमकोंकी मिले।

प्लेमेनियसने यूनानकी शीघ्र रोमके शासनाधीन कर देना उचित न समझ यूनानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की।

पीछे पांच वर्ष तक यूनानमें रह कर शासनकी चागडोरकी सम्भाल कर बड़ी धूमधामसे रोम पहुँचा। रोममें उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस समय सिरियाके राजा अन्तिओकस पशियामाइनर पर घेरा डाल कर यूनान पर आक्रमण करनेकी तयारी कर रहा था।

इधर यूनानके इटालियन आंदोलनके कारण फिलिप और अन्तिओकसकी रोमके विरुद्ध उमाड़ रहे थे। किन्तु फिर फिलिप रोमके सामने गिर उठा न सका। अन्तिओकस और नेविसने इटालियनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस समय हानिबल अपने देशसे निर्वासित हो सिरियाकी राजसत्तामें उपस्थित हुआ। वहाँकी सेनेटने रोमके विरुद्ध शिर ऊँचा करनेका उद्योग करनेके अपराधमें इसे देशसे निकाल दिया था। सिरियाके राजाने यहाँ आनन्दके साथ हानिबलको अपना प्रधान सेनापति बनाया। अन्तिओकस थेसालीके सुप्रसिद्ध दिमेत्रियस नामक सुरक्षित किलेमें पहुँचा। ईसाके १६१ वर्ष पूर्व रोमकोंने उसके विरुद्ध दुष्-घोषणा की। कन्सल इलियस ग्लेबाने भी थेसालीकी यात्रा की। अन्तिओकस थामॉपली नामक गिरिपथ पर सैन्य ले कर पहुँचा था। इस तरह उसने रोमकोंके मध्य पशियामें जानेका रास्ता रोक रखा था। किन्तु रोमक दूसरे एक पथसे सिरियाकी फौजोंके पीछे आ पहुँचे। यह देख सिरियाकी फौजें भाग खड़ी हुईं। अन्तिओकस यूनानकी विजयसे निराश हो कर अपने देश पशियामें लौट आया। ईसाके १६० वर्ष पूर्व हानिबलको परास्त करनेवाला सिपिओ आफ्रिकेनाससे भाई पल-सिपिओ और सी लेलियास कन्सल नियुक्त हुआ। पल-सिपिओकी अन्तिओकसके विरुद्ध युद्धमें जानेकी प्रार्थना करने पर सेनेटको उसकी योग्यतामें सन्देह हुआ। फलतः सेनेटने उसको आज्ञा न दी। किन्तु सिपिओ आफ्रिकेनासके भी भाईके साथ जानेकी बात सुन कर सेनेटने पीछे आधा दे दी।

इधर अन्तिओकस एक विराट सैन्योका संगठन कर पार्गामस राज्यकी लूट रहा था। रोमक फौजें हेल्लेस्पन्तको पार कर उसके सामने पहुँच गईं। सिपाइलस पर्वतके नीचे मेगानिसिया नामक स्थानमें लड़ाई आरम्भ हुई। रोमकोंके लोक-मयद्दर पराक्रमसे नशिश्चिन



मिथियाको पालि' धर्म हूँ' । ५३००० मिथीय पालि' हटाहट हूँ' और रोमकीके केंपन ४०० मिथीही काम आये। उपाय न देय भक्तिमोक्षमे मन्त्रिको प्राथना की। रोमकीको जनों' हे दुर्गे—( १ ) यह उगम वर्णनके पवित्रमके मारे प्रदेन रोमकीको प्रदान करेया अधीन यह केवल पतिना सादरकरा हो राजा रहेया। (२) ११ वर्ष के भीतर भक्तिमोक्षम् १५००० कराया इतिपूर्तिस्वरूप रोमकीको देया। ( ३ ) उसे मनी रणहस्तो और जड़ी मद्राज रोमकीको देने पड़ेगे। ( ४ ) हानिबन्धको फेद कर रोमकीके हाथ मीय देना पड़ेगा। भक्तिमोक्षमे मन्त्रिकोको मोंघार कर लिया। हानिबन्ध यहाँसे भाग फोग होय पहुँचा। यहाँसे यह विवाहमिथियाको राज मना- में जा पहुँचा था।

एक मिथियो अनुज धन समुह ले कर मद्राजमा- रोहमे रोम भेजा। उसके मारने जैसे भक्तिा पर विजय करने पर 'भक्तिरेनाम' को उपाधि पाई थी, येमे हो उसको पतिना जय करने पर "मन्त्रियातिहारा" को उपाधि मिली। इसके बाद विद्रोही इटोलियनीको दृष्ट देनेसे रोमक भ्रमभर हुए। ईसाके १८६ वर्ष पूर्व कस्मल कलविषय मोषिन्मोमे युवान जा कर यहाँके प्रसिद्ध नगर यम्रीनिवा पर अधिकार कर लिया। इटोलियनीने निराशा हो कर मन्त्रिकी प्राथना की। मन्त्रिके अनुसार भवनी स्थापना भी कर सब तरहसे रोम के अधीन हुए। इटोलियनीने सुदकी इतिस्वर ५०० डेलेट्ट रोमको दिये। इस तरह प्रसिद्ध इटोलियन मोगको क्षमताका हाम हुआ। मोषिन्मोके मद्रोयोगी कस्मल मन्त्रियस भवनी इस समय पतिनामाधनके सचिदरके साधोमे जाति स्थापन करनेके लिये मीयट द्वारा भेजा गया था। किन्तु उसके हृदयमे विभिन्नता और अधीनता कल्पनी हो उठी थी। इनलिये मीयटके आदेशको अधीन न कर उसने मन्त्रिकोको साथ युय भिन्नता कर दी। उससे पहले किमी कस्मलमे विना रोमकीके अधीनके किमीके साथ युय विना न था। कस्मलमे मीयट अनुज विजयके साथ मन्त्रिकीके हरा कर बहुत धनराश हाथ किया। किन्तु रोमकीने उस समय पतिनाके उपाय हुए इन्कीके मीयट मन्त्रिक-

प्रमाणो न काम कर सके. अधीन हो दिया। यहाँसे पार्थिवमके राजा युमिम्मेके पार्थिविभ, मादमिया और मिथियाके नामनको बगदोर दे दी और पेरियाका अधिद भाग मेडियन प्रशासनके अधीन कर दिया। मन्त्रियस १८९ ईसाके पूर्व महामन्त्रिके रोम मीट भाया। विष्णुपति पतिनामिहीने इस पत्नीको सुन- तान मद्रुकी तरह ) केवल धन लूटनेका दूतम यह कह कर मिथ्या को ही।

मन्त्रिके मन्त्रियन और रोमके युय ( २०० ईसाके पूर्व )

मिथि रोमके रोमक पतिना छोटे छे टे युयमे धन- ररन लूट रहे थे, उम समय परिणम यूरोपमे उरोक आतिथोमे मीयन लड़ाई चल रही थी। इन्काके उपाय ये मद्रोके किनारेके लड़ाई-विनाम् मद्र और डिगा रिमी मानिया हानिबन्ध नामक मय कर्मोमोय मोगावनिकी उभेकनासे रोमके विद्वत् मद्र पारल कर्म पर उपाय हुए थे। २०० वर्ष ईसाके पूर्व मद्रोमे रोमाविष्णु राजासहितवा और तन्मन्त्रिके वई स्थान लूटने हुए लड़ाईको घोषणा की।

मिथियो द्वारा अधिहन स्पेन रोमकीको शासन तथा कथम हो गई थी। स्पेन देन को मोगीन विजय हो कर दे रोमक-मिटर वा मन्त्रिके द्वारा नामिन होना था। किन्तु उत्तर और पश्चिममें अनेक युयविषय आतिथो ने इस समय भी रोमका अधीनता मोकट मद्रो' को थी। मय स्पेनके मेडियेविम युमंगानके मन्त्रिके- निषन और केर-डेविम तथा मन्त्रिके मन्त्रिके मन्त्रिके रात कलेमे थे। रोमकीने मन्त्रिके कथायके लिये परकाय मार दूत रोमिक रोममे सुरासिन रगे थे और इसके साथे यन्त्रके लिये कविवासाके मारने पहले कर यय कलेको प्रया चलाने गई। रोमक शासन रोमके कथावि- माय यययुय हो रहा है, यह देन कर यहाँके अधिवासी विद्रोही हो उठे। यमनक यम पतिनाम केने विद्रोह युय करनेके लिये स्पेन भेजे गये। यह १५५ ईसाके पूर्वके घटना है। मारी देनमे रोमके विद्वत् मन्त्रिके विना, किन्तु मद्रोकी शासनदूतमना और यमनिमुक्ततासे मिर रोमक शासन हुए हुआ।

रोमक-शासन-प्रणाली और सैन्य व्यवस्था ।

इस समयके रोमकी 'कनष्टिडिशन' या शासन-व्यवस्थाका संक्षेपमें वर्णन करना चाहिये । पहले प्रिवियन, पिट्रे शियनोंके विरोधकी घटनाओंका उल्लेख किया गया है । इस समय प्रिवियन पिट्रे शियनोंकी धरावरीमें किसी तरह काम न थे । २रे प्युनिक-युद्धके बादसे दोनों दलमें कोई विरोध नहीं हुआ । क्योंकि प्रति वर्ष दो कन्सल और दो सेन्सर प्रिवियनोंकी ओरसे नियमित रूपसे निर्वासित किये जाते थे । पिट्रे शियनोंके किसी किसी काल्पनिक उत्कर्षके सिवाय और कोई सुविधा नहीं थी । प्रत्येक रोमवासि भिन्न भिन्न सरकारी काम करनेके बाद कन्सल हो सकते थे । किन्तु जो नीचे ओहदे पर काम नहीं करते, उनमें अधिक गुण रहने पर भी वे कन्सल नहीं हो सकते थे । सिर्फ प्रसिद्ध सिपियोंको मुकररीमें इस नियमका ध्वंसाकार हुआ था । ईस्वी-सन् १७६के पूर्व 'डेफस आनालिस' नामक एक आईन बनाया गया । उसके अनुसार 'कोयेटरशिर' या निम्नतम मजिस्ट्रेट पद पर अधिष्ठित व्यक्तिको उमर २८ वर्ष, उनसे नीचे इडाइलशिपकी ३७, प्रिटरशिपकी ४० तथा कन्सल पदके लिये ४३ वर्ष ठहराई गई । जो उक्त पद पर नियमानुसार कार्य करते थे, वही एक समय कन्सल हो सकते । उपरोक्त मजिस्ट्रेटगण दो भागोंमें विभक्त थे—राज्यचिह्नार्कृत पयूरिडल तथा कन्सल, प्रिटर आदि तथा नन पयूरिडल मजिस्ट्रेट या डिफटेटर आदि ।

१। कोयेटरगण राज्यका चेतन वांटेते और राजस्व वसूल करते थे ।

२। इडाइलगण और पब्लिक वर्कस डिपार्टमेण्ट या सरकारी पुराकार्यके निर्वाहक थे ।

३। प्रिटर और कन्सल ( या राजकीय मजिस्ट्रेट ) प्रिटरगण सेनेट-सभा करते, व्यवहारशास्त्र बनाते और सामरिक शासनके अधिकारी थे । प्रत्येक प्रिटरके ६ लिक्चर रहते थे । पहले सिविल विचार या नागरिक विचार-कार्यके लिये एक प्रिटर नियुक्त होते थे ।

४। कन्सलगण उच्चतम मजिस्ट्रेट थे । वे राज्य-शासन और सामरिक-विभागकी परिचालना किया करते थे । वे सेनेट-सभा करते तथा साधारण सभाका

अधिवेशन कर सकते थे । वे ही सेनेटके समापति थे । इनके अलावा जनताकी सम्प्रतिके अनुसार वे सैन्य-विभागके सर्वप्रथम कर्ता थे । वे ही प्रकृत प्रस्तावमें सैन्योंके दण्डमुण्डके कर्ता थे । उनमेंसे हरएकके अधीन १२ लिक्चर रहते थे । उपरोक्त मजिस्ट्रेट प्रति वर्ष ही निर्वाचित होते थे । इनके अधीन कमी कमी प्रोक्न्सल और प्रोप्रिटरगण नियुक्त होते थे । साधारणतन्त्रके परवर्ती कालमें कन्सलोंका शासनका उ समाप्त होने पर वे प्रोक्न्सलके रूपमें वैदेशिक शासनकर्ता नियुक्त होते थे ।

५। दूसरे प्युनिक-युद्धके पहले तक डिफटेटर शिपका विशेष प्रचलन था । किन्तु रोमकी प्राधान्य युद्धके साथ साथ इस असाधारण पदकी उतनी आवश्यकता न थी । किन्तु कन्सल किसी युद्ध-विपद्के समय डिफटेटरकी क्षमता पाते थे ।

(६) सेन्सर—प्रत्येक पांच वर्ष पर दो सेन्सर नियुक्त होते थे । किन्तु १८ महोनेसे अधिक कोई उक्त पद पर कार्य कर नहीं सकता था । इनके कार्य विशेष प्रयोजनोय और दायित्वपूर्ण थे । इनके कार्य तीन भागोंमें विभक्त थे—

(१) इनके सर्वप्रथम कार्य मर्तुमशुमारो और उसको रिपोर्ट तैयार कर प्रत्येक प्रजाकी सम्पत्तिका मूल्य निर्धारण करता था । पीछे सम्पत्तिके अनुसार अधिवासियोंका ध्रेणो-विभाग किया जाता था । पहले कदा गया है, कि सार्डियस टालियसने इस प्रथाका सर्वाप्रथम चलाया था ।

(२) सेन्सरोंके दूसरे कार्य—अधियासियोंके चरित तथा व्यवहारके प्रति दृष्टि रखना । इस विषयमें वे अपने कर्तव्य ज्ञानके ऊपर निर्भर करते थे । किसीकी अनुरोध रक्षा तथा प्रशंसाकी परवाह नहीं करते थे । वे व्यक्तिगत और साधारण असद्व्यवहारके लिये दण्ड-विधान किया करते थे । सेन्सरगण उच्च ध्रेणोंके लोगोंको निन्द्यश्रीमें लाते, सेनेटके सदस्योंको दोषके कारण इटाने और साधारणको राजकीय सुविधासे वञ्चित कर सकते थे ।

(३) सिधा इसके थे सेनेटके परामर्शसे राज्यशासनकी



अन्तमें रमणियोंकी ही जीत हुई। वे नाना रंगोंके कपड़ोंकी पहन तथा खर्णालङ्कारसे भूषिता हो कर स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने लगीं।

इस समय सिपियो अफ्रिकेनास और सिपियो पश्चिमाटिकास दोनों भारी साधारण लोगोंकी दृष्टिमें गिर गये। फेटोकी कुचेष्टाले नेडियस नामक एक द्रिव्यूनने छोटे सिपियो पर लूटे हुए धनके अव्यय करनेका अभियोग लगाया। इस अपराधमें उसको बड़ा कठोर दण्ड होता, किन्तु प्रसिद्ध प्राकासके बुद्धिबलसे छोटे सिपियो बच गया।

फिर द्रिव्यूनो द्वारा सिपियो अफ्रिकेनास अभियुक्त हुआ। जब उससे उसके अभियोगके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा गया, तब इसका कुछ भी उत्तर न दे कर रोमके प्रजातन्त्रके लिये अपनी को हुई कीर्तियोंकी ओजसिनी भाषामें वर्णन करने लगा। सिपियो जोरसे कहने लगा—“मैंने भुवनविषयात् जैमाके युद्धमें हानिबलको पराजित किया था। आज उसका धार्मिकोत्सवका दिन है।” सिपियोके ओजस्यो भाषणसे अदालतके सभी लोग उठ कर केपिटाल पर पूजा करनेके लिये चले गये। अदालतमें केवल विचारक ही रह गया। इसके बाद सिपियो भी अदालतका नियमवन्धन तोड़ कर अरुहक्ष रोमको छोड़ अपनी जन्मभूमिमें जा कर रहने लगा। रोमसे सम्बन्ध विच्छेद कर वाको जिन्दगी उसने वहीं बिताई। ईसाके १८३ वर्ष पूर्ण उसकी मृत्यु हुई। मृत्युके समय उसने कहा था, कि मेरी शयनेद अरुहक्ष रोमको भूमिमें न बफनाई जाये।

हानिबलने भी इसी समय प्राणत्याग किया। जब सेनेटने हानिबलको मार डालनेका विचार किया था, तब सिपियोने सेनेटके उस हुषमको रद्द बनाया था। सिपियोका अन्तिमोक्तसभामें हानिबलके साथ जो कथोपकथन हुआ था, वह इतिहासमें प्रसिद्ध है। सिपियोने हानिबलसे पूछा—“कहो, किसको श्रेष्ठ सेनापति कहते हो?” हानिबलने उत्तर दिया,—“दिविजयी सिकन्दरको।” सिपियोने फिर पूछा दूसरा कौन? उत्तर मिला—“पिरहास” फिर सिपियोने कहा,—“तीसरा कौन?” हानिबलने कहा,—“तीसरा स्वयं मैं।”

यदि आप मुझको हरा देने, तब आप कौन होते? हानिबलने हँस कर कहा था—“आपको हरा कर मैं सिकन्दर और पिरहाससे भी बड़ जाता।” ये दोनों आपसमें एक दूसरेको सम्भ्रम गये थे। पहले कहा जा चुका है, कि हानिबल विषाइनियाकी राजसभामें रहने लगा था। किन्तु वहाँ रोमकोंके समागम होनेकी आज्ञासे उसने विषयान कर आत्महत्या कर ली थी।

ईसाके १८४ वर्ष पूर्व फेटो सेनर हुए। इस समय इसने रोमके भीतर बहुतेरे संस्कार किये। विलासिता दूर करनेके लिये उसने विलासिताकी सामग्रियों पर दूना कर बढ़ाया। सिवा इसके सेनेटके कई अकर्मण्य सदस्योंको उनके पदसे हटाया। किन्तु वयःवृद्धिके साथ साथ उसकी शक्ति कम होती गई। अन्तमें उसने यूनानो साहित्यकी आलोचनामें अपना ध्यान बढ़ाया। यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक और प्रौढ-वैका था।

तोषरा माकिदनीय युद्ध, एफियान और प्यूनिक-युद्ध।

( १७६-१४६ ई० पू० )

रोम पश्चिम यूरोपमें प्राधान्य स्थापित और एशियाके पश्चिम भागमें प्रतिनिधित्व कर शान्तिसं दिन बिता रहा था। ऐसे समय फिर युद्ध आरम्भ हुआ। ईसाके १७६ वर्ष पूर्ण माकिदनीयपति फिलिपकी मृत्यु हुई और उसका लड़का पर्सियस सिंहासन पर बैठा। फिलिपने मृत्युके पहलेसे ही रोमके साथ फिर युद्धका आभ्यास किया था। पर्सियस जब राजा हुआ, तब उसका खजाना भरा था। विपुल सैन्य संग्रह करनेके लिये पशियाई राजे यूनान, हेसियन, इल्लिरियन और केलटिक जातियोंके साथ उसने मित्रता कर ली थी। रोमक भी चुप बैठे न थे। प्रन्सव आभ्यासनोंको वे देख रहे थे। इस समय पर्सियस रोमके मित्र पार्गात्रासके राजा यूनिसके प्राणनाशकी चेष्टा करने पर १७२ वर्ष ईसासे पूर्ण युलमयुद्ध युद्ध होने लगा। पर्सियसके अधीनमें प्रकाण्ड सैन्यबल संगृहीत हुआ। ओट्टे सियाका राजा कोटिस् उसका प्रधान सहायक बना। रोमकोंने भी युद्ध आरम्भ किया। किन्तु तीन वर्ष तक रोमक कुछ कर न सके। श्वर पर्सियस ही जीतने लगा। इसलिये बहुतेरी जातियां भा

मा: कर तमिः वसये मिलने लगी । अन्तमें ईसाके १६८ वर्ष पढ़ने रोममें वर्सावसय पलास मुसु बरनेके लिये भेजे गये । दोनो 'कॉलेज' विदुषा नामक स्थानमें लुट गये । रोमकीके मोरन साधननके कालमें वर्सावसय पढ़ने दोनो भीर पाँडे सन्तानोदिस अरि यहाँमें सेमाधुःसक भाग गया । अन्तमें यह पढाया गया और उनमें भास्वमंगवत किया ।

ईसाके १६७ वर्ष पूर्ण पलास इटली पहुँचा । उनमें विपुल धन सञ्चालि था कर रोमके राजानेकी भर दिया । साहिर्दलिया पर विजय कर रोमने भूस्वयसागरके पूर्वी किनारे पर भी सार्वात्मोम प्राप्ताय प्राप्त किया था । उस समयके साइरट गो रोममें जाँव उठने थे । प्रबलता परिक्रम लीग वर्सावसके पास प्रदल कामके अगलापमें दृष्टिगत हुआ । १ हजार ३५०० वर्किया १६ वर्ष तक रोममें कीर् धे । १६ वर्षोंके बाद जब वह कीर्त्तमे लुटे, तब उनमें केवल ३०० ही जोरिग बचे थे । बाँकी ३०० सामानुषिक अन्धाकारके कारण मर गये । इस घटनामें विराट हो कर अनेक विद्रोहो हो उठे । उनमें धार्मिकरुम नामक एक दामोपुत्रने अन्तमेंकी वर्सावसका वंशधर बट कर साहिर्दलोय राजतिसहायनका दाया किया और ( १४ ई० पू० ) क्रिस्तिप नाम एक बर सिंहासन पर बैठ गया । पहले इसी बहुत कुछ ज्ञाता था । रोमक मिटर लुटेरिदवम इसके हाथमें पराजित हुए । बिगुल एक वर्ष भी राजप्य करते न करते मेरोलम द्वारा यह कीर् बर दिया गया ।

पट्टिक्कवको क्षात्रिक कृत्तकाःपोतासे परिक्रामोने उन्नेजित हो गयां पर भास्वमय कर दिहने ईसाके १४७ वर्ष पढ़ने ही रोमक कमिधर मिश्रामेके लिये नृनाम भेजे गये । बिगुल जो साहिर्दलोय विद्रोह मर गया । अन्तमें द्वारा भास्वमय हुआ । कमिधरने भाग कर क्याया । तब मेरोलमे वरि विद्वत्त पु लोपणा कर ही । मेरोलमेके अन्तमें परिक्रम रोमपति विद्रोह लने । योडे कर्त्तव्यता कीर् बर लिये गये । इसके प

अधिकावक हो करिष्ण मगरमें पौत्रो हो एक कुटु दिनी तक मुसु किया । अन्तमें अग्निपमने करिष्ण मगर पर पेश बाला । बिगम पराजित हो बर भाग गया । यहाँके अधिकाज अधिपामिदीने भाग बर ज्ञान बसाई । अग्निप ने मगरमें मुग कर बहने नाम जारी बर दिया और बालक भीर मिरीओ सुवाम बना कर देव दिया । इसके बाद उन साधोत करिष्ण मगरकी धन सञ्चालि लुटे गी किट भाग लगा कर भस्म कर दिया गया । करिष्णमगर साधोत पूरवोके निजानेमुक्कका एक मसूना था । साँस मगर अल कर राखका डेट बन गया । इस तरह भुपम-विषयात यह मगर अन्तमेंभूत हुआ । नृनाम सन्तानता यो बर रोमकीके अन्तर्गत हुआ ।

१। प्लुजिद दुस भीर कार्थेजका अन्त ( १४६ ई० पू० )  
 दानिधनके निर्वांगमके बाद कार्थेजोय ईसाके १४१ वर्ष पढ़ने मरिष्के अन्तुमार कार्थे करने गने गाने थे । ये लुटेनेके विपुल गौरवकी पुनरुत्था कर रहे थे । इस-लिये ये रोमकी सेनेटकी साँवके कटि बन गये ।

सेनेट मुसुका कारण दुँदुमे लगी । परनाक्रममें स्पुनिडिजे राजा मेगिनिर्राके साथ कार्थेजोपका भगडा देने लगा । यह रोमका मिलतात था । इसलिये सेनेटने कार्थेजकी अन्त करनेके लिये जीम ही युद्धपोपणाका परामर्श दिया । बिगुल सेनेटने मन्तानि लटी ही । उस समय सेनेट साहिर्दलोय ही दून कार्थेजको भागवता ज्ञाननेके लिये यहाँ भेजे गये । यहाँ ज्ञाने पर सेनेट कार्थेजका धनपोअर्पण देव जल गया । रोम भीर बर इसी कार्थेज अर्पणके लिये रोमकवासिदीको उन्ने-जित करना भास्वम किया । अन्तमें सेनेटने इसकी बात

... काय बरना मुक किया ।  
 साधारण कार्थेजोय  
 ३०० मुसुकी-  
 मन्तु  
 अन्त

सामान या पंजिन आदि ला कर रोमकोंके हथाले किया । निर्दय रोमकोंका कलेजा इससे भी ठण्डा न हुआ । अब रोमकोंके कहा, कि "तुम लोग कार्येज छोड़ कर दूसरे स्थानमें जा बसे। क्योंकि, यह नगर ध्वंस किया जायगा।"

निर्दय कार्येजियोंसे अब नहीं रहा गया । अब हताश और निरुपाय हो कर उन्होंने घोरताके साथ लड़ कर मर जाना ही उचित विचार किया । शीघ्र ही नगरका दरवाजा बन्द कर सारे इटालियनोंको उन्होंने मार डाला और ये इस अन्यायी शत्रुके साथ युद्ध करनेका दृढ़ संकल्प कर स्वदेशवत्सल कार्येजियोंको उत्तेजित करने लगे । कारीगर दिन रात अस्त्र-शस्त्र बनाने लगे । स्त्रियां अपने बाल काट धनुष पर भुण्ण चढ़ाने लगीं । आवाज वृद्ध वनिता स्वदेशवातसल्यके मोहनमन्त्रसे वीक्षित और प्रणोदिन हो कर अननरत युद्धविद्या सीखने लगे । कार्येज मानो एक प्रकाण्ड अस्त्रागार बन गया । इमिलियस पलासके ज्येष्ठ पुत्र कर्नेलियस सिपिओ ससैन्य कार्येज पहुँचा । हासद्रुबल नामक एक निर्वासित सेनापतिने कार्येजियोंकी अधिनायकता स्वीकार कर ली । कार्येजियोंके दो आक्रमणोंसे रोमक तिलर बितर हो गये । केवल सिपिओके रणकौशलसे [कौजे] नष्ट होनेसे बच गईं । सिपिओने मित्र पर अधिकार कर कार्येजमें अन्न आदि आनेवाले पथकी रोक दिया । कार्येजीय अद्वितीय घोरतासे आत्मरक्षा करने लगे और शीघ्र ही ५०० जङ्गी-जहाज तय्यार कर जलयुद्धकी तय्यारी करने लगे । यह देख रोमक डर गये । सिपिओका प्रमाद बढ़ गया । जलयुद्ध होने लगा । सात दिन घोर जलयुद्ध होने पर अन्तमें सभी जङ्गी-जहाज नष्ट हुए । इसके बाद सिपिओने दृढ़तापूर्वक कार्येज पर घेरा डाला और रातको रोमकोंके कथन बन्दर पर कब्जा कर कार्येजकी ऊँची चहारदीवारीको पार कर भीतर प्रवेश किया । नगरमें हृदयविदारक क्राण्ड होने लगे । जाघामाघसे कार्येजीय शत्रु-देह भक्षण कर अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करने लगे । सभी जगह तलवारोंकी झनकार सुनाई देती थी । प्रत्येक राजपथके बड़े बड़े महलोंमें कार्येजीय नरनारियां अपने-अपनोंके सामने अपनी इहलीला संघरण करने

लगीं । अग्निदेउ उन गगनचुम्बी इमारतोंको अपने तेजसे जलाने लगे । नर-नारियोंका रक्तप्रवाह वेगवती नदीकी तरह समुद्रमें जा कर मिल गया । इस तरह यह उन्नत और ऐश्वर्यपूर्ण महानगरी महाशमशाणके रूपमें परिणत कर दी गई । आज भी उसका ध्वंसावशेष उस समयकी भयानक घटनाकी याद दिला देता है ।

इसके १४६ वर्ष पहले जुलाई महोनेमें कार्येजका ध्वंस हुआ । सिपिओने रोममें लौट कर बड़े समारोहसे विजयोत्सव मनाया । उसने भी हानिबलजेता सिपिओकी तरह अफ्रिकेनासकी उपाधि धारण की । बाकी कार्येज-राज्य अफ्रिकाके नामसे रोमकोंके शासनके अन्तर्गत हो गया । प्राच्यवाणिज्यके प्रधान केन्द्र करिन्थ और प्रतीच्यवाणिज्यका निलय कार्थेज—ये दोनों वाणिज्य प्रधान नगर रोमकोंके हाथसे विनष्ट हुए । इस समयसे ही रोमके जोते देशोंमें साम्राज्यका सूत्रपात होने लगा ।

स्पेनका युद्ध (१५३-१३० ई० पूर्व)

इस समय स्पेन देशके शासनकर्ता सिम्प्रोनियस प्राकासके सद्बुध्यवहार और सुशासनसे घट्टां शान्तिमय शासन प्रवृत्त हुआ था । किन्तु इसके १५३ वर्ष पूर्वसे गेट्टा नगरके अधिवासिधोंने नगरको चहारादीवारी बनाना आरम्भ की । फलतः रोमकोंने इस कार्यमें बाधा उपस्थित की । इसलिये स्पेनमें बहुवर्षाभ्यापी युद्धका सूत्रपात हुआ । केन्टेरेरियोने सेगुडाका पक्ष ग्रहण किया । कालवियस नोविलियोंके युद्धमें उनका कुछ भी बिगाड़ न सका । पीछे क्लुवियस मार्सेलसने उन सबोंको पराजित कर सन्धि स्थापित की । इसके बाद सालपिसिपस गलवाने न्युसिटानिया पर आक्रमण किया । किन्तु यह स्पेनियाईों द्वारा विशेषरूपसे पराजित हुआ । पीछे न्युसिनियम लुकासने उसके सहायक बन फिरसे न्युसिटानिया पर आक्रमण किया । किन्तु उन्होंने सन्धिके लिये गलवाके पास दूत भेजा । उस समय गलवा न्युसिटानियोंकी सपरिवार निर्भय-रूपसे अपने खेममें आनेकी कहा । ये उसकी बात पर विश्वास कर खेममें चले भाये । यह विश्वासघातकता कर उन सबोंको मार डाला । बहुतेरे आदमी निर्दयतासे मार डाले गये । केवल निरिपियस और अन्याय कर

भा कर पर्सियासने मिलने लगे। कानूनमें ईसाके १६८ वर्ष पहिले रोमसे पर्सियासने पलायन युद्ध करनेके लिये भेजे गये। दोनों फौजों विघ्ना नामक स्थानमें टुट गईं। रोमकोंके सौंपन आक्रमणके फलमें पर्सियास पहिले पैदा और पीछे अम्फिपोलिस और यहांसे मेसाघे तक भाग गया। अन्तमें यह पकड़ा गया और उसने भारतसमवपन किया।

ईसाके १६७ वर्ष पूर्वा पलायन इटली पहुंचा। उसने विपुल धन सम्पत्ति ला कर रोमके पलायनको भर दिया। मारिद्विनाय पर विजय कर रोमने भूमिपक्षपातके पूर्वी विस्तार पर भी मार्सीयोस प्राचास्य लान किया था। उस समयके सम्राट् भी रोममें कांप उठने थे। प्रबलतम पर्सियान लोग पर्सियासके पक्ष ग्रहण करनेके अग्रगण्यमें दृष्टित हुआ। १ हजार उपाय साधन पर्सियान १६ वर्ष तक रोममें कैद थे। ११ वर्षोंके बाद जब यह कैदसे छुट्टे, तब इनमें केवल ३०० ही जीवित बचे थे। बांकी ७०० अमानुषिक अत्याचारके कारण मर गये। इस घटनासे विश्व हीा कर अनेक विद्रोहो हीा उठे। उनमें आम्ब्रुसस नामक एक दासोपुत्रने अपनेको पर्सियासका वंशधर कह कर मारिद्विनाय राजसिंहासनका दावा किया और ( १४६ ई० पू० ) किलिग नाम रख कर सिंहासन पर बैठ गया। पहले हमने बहुत कुछ ज्ञाता था। रोमक मिटर सुपेरिट्रियस इसके हाथमें पराजित हुए। किन्तु एक वर्ष भी राजस्य करने न करने मेंदेखस द्वारा यह कैद कर लिया गया।

एम्ब्रुससको क्षणिक हतकारागसि पर्सियानोंने उन्नेजिन ही स्याटों पर आक्रमण कर दिया। किन्तु ईसाके १४७ वर्ष पहिले दो रोमक कमिश्नर इस भगड़ेको मिटा देनेके लिये युवान भेजे गये। किन्तु गोप ही करिष्य मारि स्यातीमें विद्रोह मच गया। स्याटी पर्सियानों द्वारा आक्रामत हुआ। न मित्रगर्भने भाग कर अपनी प्राण बचाया। तब सेनेटने पर्सियान लोगके विरुद्ध युद्धको घोषणा कर ही। मिशरसमन्वित्के साथ युवान पहुंचे। पर्सियान सेनापति बिटोनस युद्धक्षेत्रमें अस्मिपन न हो गये। पीछे अर्थापवा नामक स्थानमें पकड़े जा कर कैद कर लिये गये। इसके बाद पर्सियाने पर्सियान लोगके

अधिनायक हो करिष्य नगरमें फौजोंही रख कुछ दिनों तक युद्ध किया। कर्मण्ड मर्मियसने करिष्य नगर पर घेरा डाला। शिवस पराजित हो कर भाग गया। यहांके अधिकारों अधिवासियोंने भाग कर ज्ञान बचाया। मर्मियस ने नगरमें घुस कर बसले आम जारी कर दिया और बालक और स्त्रियोंको युवान बना कर बेच दिया। इसके बाद उस प्राचीन करिष्य नगरकी धन सम्पत्ति लूटी गई फिर भाग लगा कर भरस कर दिया गया। करिष्य नगर प्राचीन युद्धोके जिनगीनेपुण्यका एक नमूना था। तारा नगर जल कर राखका टेर बन गया। इस तरह भुवन-विषयात यह नगर अन्तोभूत हुआ। युवान स्यततता गों कर रोमकोंके अन्तर्गत हुआ।

३। न्यूमिडियन और कार्थेजका ध्वंग (१४६ ई० पू०)  
 हागिथलके निर्वासनके बाद कार्थेजीय ईसाके ३०१ वर्ष पहिले सन्धिके अनुसार कार्य करने लगे ज्ञाने थे। ये लन्देनके विपुल गौरवको पुनरुत्थार कर रहे थे। इस-लिये ये रोमकी सेनेटकी भावके कटि बन गये।

सेनेट युद्धका कारण ढूंढने लगे। घटनाक्रमसे न्यूमिडिके राजा मैसिनिसाके साथ कार्थेजीयका अगड़ा होने लगा। यह रोमका मित्रराज था। इसलिये सेनेटने कार्थेजको ध्वंग करनेके लिये शीघ्र ही युद्धघोषणाका परामर्श दिया। किन्तु सेनेटने सम्मति नहीं दी। उस समय सेनेट भाद्रि कितने ही दृढ कार्थेजको अग्रस्था जाननेके लिये यहां भेजे गये। यहां जाने पर सेनेट कार्थेजका घनधेअर्थ देख जल गया। रोम हीर कर इसने कार्थेज ध्वंगके लिये रोमकरागिष्योंको उन्ने-जित करना भारतम किया। अन्तमें सेनेटने इसकी बात पर ध्यान दिया।

जब सेनेटने कार्थेजको लंग कटवा शुरू किया। सेनेटने भाषा की,—प्रतिभूलक... रोममें रने जाये। कार्थेजमें ही... की रोममें भेज दिया। किन्तु रोम... नहीं हुए। उनको तो कार्थेजका... हुआ, कि रोमकोंने कहा, कि तुम... ही। कार्थेजीय हम पर भी साम... २००००० अन्व-नाम, २००० पदार्थोदारो

सामान या वज्रिन आदि ला कर रोमकोंके हवाले किया। निर्दय रोमकोंका कलेजा इससे भी ठण्डा न हुआ। अब रोमकोंके कहा, कि "तुम लोग कार्येज छोड़ कर दूसरे स्थानमें जा बसे। क्योंकि, यह नगर ध्वंस किया जायगा।"

निर्दोष कार्येजियोंसे अब नहीं रहा गया। अब हताश और निरुपाय हो कर उन्होंने घोरताके साथ लड़ कर मर जाना ही उचित विचार किया। शीघ्र ही नगरका दरवाजा बन्द कर सारे इटालियनोंको उन्होंने मार डाला और वे इस अन्यायी शत्रुके साथ युद्ध करनेका दृढ़ संकल्प कर स्वदेशवत्सल कार्येजियोंको उत्तेजित करने लगे। कारीगर दिन रात अस्त्र-शस्त्र बनाने लगे। स्त्रियां अपने बाल काट घनुप पर धुण चढ़ाने लगीं। आशाल युद्ध बनिता स्वदेशवात्सल्यके मोहनमन्त्रसे दीक्षित और प्रणोदिन हो कर अनवरत युद्धविद्या सीखने लगे। कार्येज मानते एक प्रकाण्ड अखागार बन गया। इमिलियस पलासके ज्येष्ठ पुत्र कर्नेलियस सिपिओ ससैन्य कार्येज पहुँचा। हासद्रुबल नामक एक निर्वासित सेनापतिने कार्येजियोंकी अधिनायकता स्वीकार कर ली। कार्येजियोंके दो आक्रमणोंसे रोमक तितर बितर हो गये। केवल सिपिओके रणकारणसे 'फौजे' नष्ट होनेसे बच गईं। सिपिओने मिन्न पर अधिकार कर कार्येजमें अन्न आदि आनेवाले पथको रोक दिया। कार्येजीय अद्वितीय घोरतासे आत्तरक्षा करने लगे और शीघ्र ही ५०० जङ्गी-जहाज तय्यार कर जलयुद्धकी तय्यारी करने लगे। यह देख रोमक डर गये। सिपिओका प्रमाद बढ़ गया। जलयुद्ध होने लगा। सात दिन घोर जलयुद्ध होने पर अन्तमें सभी जङ्गी-जहाज नष्ट हुए। इसके बाद सिपिओने दृढ़तापूर्वक कार्येज पर घेरा डाला और रातको रोमकोंके कथन बन्दर पर कब्जा कर कार्येजकी ऊँची चहारदीवारीको पार कर भीतर प्रवेश किया। नगरमें हृदयविदारक काण्ड होने लगे। खाद्याभावसे कार्येजीय शव-वेद भक्षण कर अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करने लगे। सभी जगह तलवारोंकी फलकार सुनाई देती थी। प्रत्येक राजपथके बड़े बड़े महलोंमें कार्येजीय नरनारियां अपने अर्खोंके सामने अपनी इहलीला संवरण करने

लगीं। अनिन्दे उन गगनचुम्बी इमारतोंको अपने तेजसे जलाने लगे। नर-नारियोंका रक्तप्रवाह वेगवती नदीकी तरह समुद्रमें जा कर मिल गया। इस तरह यह उग्रत और पेशेःपूर्ण महानगरी महोत्सृजानके रूपमें परिणत कर दी गई। आज भी उसका ध्वंसावशेष उस समयकी भयानक घटनाकी याद दिला देता है।

इसके १४६ वर्ष पहले जुलाई महीनेमें कार्येजका ध्वंस हुआ। सिपिओने रोममें लौट कर बड़े समारोहसे विजयोत्सव मनाया। उसने भी हानिबलजेता सिपिओकी तरह आफ्रिकेनासकी उपाधि धारण की। बाकी कार्येज-राज्य अफ्रिकाके नामसे रोमकोंके शासनके अन्तर्गत हो गया। प्राच्यवाणिज्यके प्रधान केन्द्र करिन्थ और प्रतीकवाणिज्यका निलय कार्येज—ये दोनों वाणिज्य प्रधान नगर रोमकोंके हाथसे विनष्ट हुए। इस समयसे ही रोमके जीते देशोंमें साम्राज्यका सूत्रपात होने लगा।

स्वैनका युद्ध (१५३-१३० ई० पूर्व)

इस समय स्पेन देशके शासनकर्ता सेम्प्रोनियस प्राकासके सद्बुद्ध्यवहार और सुशासनसे वहाँ शान्तिमय शासन प्रवर्तित हुआ था। किन्तु ईसाके १५३ वर्ष पूर्वसे मेडा नगरके अधिवासिधोंने नगरकी चहारदीवारी बनाना आरम्भ की। फलतः रोमकोंने इस कार्यमें बाधा उपस्थित की। इसलिये स्पेनमें बहुवर्षीय्यापी युद्धका सूत्रपात हुआ। केण्टेपेरियनोने सेगुडाका पक्ष ग्रहण किया। कालवियस नेविलियोंके युद्धमें उनका कुछ भी बिगाड़ न सका। पीछे क्विडियस मार्सेलसने उन सबोंको पराजित कर सन्धि स्थापित की। इसके बाद सालपिसियस गलवाने ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु यह स्पेनियाईों द्वारा विशेषरूपसे पराजित हुआ। पीछे ल्युसिनियस लुकासने उसके सहायक बन फिरसे ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु उन्होंने सन्धिके लिये गलवाने पास दूत भेजा। उस समय गलवा ल्युसिटानियोंकी सपरिवार निर्भयरूपसे अपने खेममें आनेको कहा। वे उसकी बात पर विश्वास कर खेममें चले गये। यह विश्वासघातकता कर उन सबोंको मार डाला। बहुतरे बादमी निर्दयतासे मार डाले गये। केवल भिरियेपस और अन्यान्य कई



भा ४४ वर्षों परसे मिलने लगी । अन्तमें ईसाके १६८ वर्षों परहे रोमसे वर्मास्यसक पलाय युद्ध करनेके लिये भेजे गये । दोनों कीजिं विघ्नना नामक स्थानमें युद्ध गरं । रोमकीके भीरुप आक्रमणके फलमें वर्मास्यसक पहले पैहा और चौथे शम्भुपौलिस और एडमिं रोमियोंके एक भाग गया । अन्तमें यह पक्ष गवा और उसने भारतमगधन किया ।

ईसाके १६७ वर्ष पूर्वा पलाय इत्यो पदुंघा । उसने विपुल धन संग्रहित ला कर रोमके पक्षानेको नर दिया । मार्गदर्शना पर विजय कर रोमने भूमध्यसागरके पूर्वी किनारे पर भी मार्शमीय प्राचान्य लाभ किया था । उस समयके सम्राट् भी रोममें बांघ उठने थे । प्रबलतम एफियाल लोग वर्मास्यसके पक्ष प्रदण करनेके अघराधमें दृष्टिग दृष्टा । १ हजार ३ धान सम्पन्न एफियाल १६ वर्षों तक रोममें कैद थे । १६ वर्षोंके बाद जब यह कैदमें सुटे, तब इनमें केवल ३०० ही शोभित बचे थे । बांकी ७०० समानुविध गत्याचार्ये कारण मर गये । इस घटनासे विश्व ही कर अनेक विद्रोहो हो उठे । उनमें धानिद्रुकस नामक एक दाम्योपुत्रने अघनेकी वर्मास्यसका घनघर बह कर माकिदोनोप राजसिंहासनका दाया किया और ( १४६ ई० पू० ) किनिय नाम एक बर सिंहासन पर बैठ गया । पहले इसने बहुत कुछ जोगा था । रोमक विद्रु सुकेटिरियस इसके हाथमें पराजित हुए । किन्तु एक वर्ष भी राजतय करने न करने मेंदोनस द्वारा यह कैद कर दिया गया ।

एफिद्रुकसकी शानिक हनकार्योगमें एफियालीने उलोहित हो स्वार्थों पर आक्रमण कर दिया । किन्तु ईसाके १४७ वर्ष पहले दो रोमक कमिधर इस अगड़ेकी निशानेके लिये पलाय भेजे गये । किन्तु जोग ही करिष्य गादि अघातीमें विद्रोह मघ गया । स्वार्थों एफियाली द्वारा आक्रमण हुआ । कनिद्रुकीने भाग कर अरना प्राल बघाया । तब सेनेटेने एफियाल लोगके विद्रु युद्धको घोषणा कर दी । मेडारमस-नीत्यके साथ पलाय पदुंघे । एफियाल मेलापति बिटोन्स युद्धमें अकिण्त न हो गये । अंते अकार्यका नामक स्थानमें परदुं जा कर कैद कर लिये गये । इसके बाद दिवसमें एफियाल लोगके

अभिनायक हो करिष्य नगरमें पौत्रोही एक कुण दिनी तक युद्ध किया । अरना प्रमिष्यसने करिष्य नगर पर घेरा डाला । दिवस पराजित हो कर भाग गया । अघांके अघिकांन अघियासिघीने भाग कर जान बघाया । अरिष्य में नगरमें घुस कर रहने नाम जारी कर दिया और बायक और गिरीको गुनाम बना कर बेच दिया । इसके बाद उस प्राचीन करिष्य नगरकी धन समिति लुठी गई फिर भाग मगा कर अरना कर दिया गया । करिष्यनगर प्राचीन पुराणके मिलनैपुपका एक मधुना था । सारा नगर अर कर रायका देर बन गया । इस तरह भुपध-वियथात यह नगर अरुओमून हुआ । युनाय स्वयम्तना ग्यो कर रोमकीके अन्तर्गत हुआ ।

१४ प्पुनिक युद्ध और कार्येजका अंग ( १४६ १४६ ई० पू० )

हासिबलके निर्माणनके बाद कार्येजोप ईसाके १४६ वर्ष पहले सगिषके अनुसार कार्ये करने गये जाने थे । ये लुइंगके पिपुन गौरकी पुनकदार कर रहे थे । इन-लिये ये रोमकी सेनेटेकी भावके कटि बन गये ।

सेनेटे युद्धका कारण बूढ़ने लगी । घटनाक्रमने म्पुमिदिबे राजा मैतिनिसाके साथ कार्येजोपका अंगड़ा होने लगा । यह रोमक मित्रता था । इसलिये केटीने कार्येजकी धर्म करमेंके लिये जोग ही युद्धघोषणाका परामर्श दिया । किन्तु सेनेटेने म्पुमि गरीं दो । उस समय केटी भादि वितने ही दूत कार्येजकी अघणा जाननेके लिये यहां भेजे गये । यहां जाने पर बंदेश कार्येजका धनधेअर्य देण अर गया । रोम और कर इसने कार्येज धर्मके लिये रोमकपासियोंको उने-जित करना आरम्भ किया । अन्तमें सेनेटेने इसकी बल पर ध्यात दिया ।

अब सेनेटेने कार्येजकी संघ करना मुक किया । सेनेटेने आहा दो,—मिपुलकण ३०० सम्राट् कार्येजोप रोममें रने जाये । कार्येजने इसे लोकार कर ३०० युद्धी-की रोममें भेज दिया । किन्तु रोमवादे इसके भी म्पुदुब मरी हुए । उनको भी कार्येजका धर्म बना था । पल हुआ, कि रोमकीने कहा, कि तुम मेला अर-अर्य एक दो । कार्येजोप इस पर भी समत हुए । इन्हीने २००००० अघ-अर्य, २००० पहाड़ीगाणे तीरनेका



भाद्रमिथीन भाग कर अन्वो ज्ञान बसाया। निरिधेयम रोमकोंको इस निर्दयता और विध्वंसपालनका बदला मुकाम पर लैवार हुआ। यह पदमे भेद्रिहार था, पीछे 'एकी' कर जीविका-निर्वाह करने लगा। किन्तु रोमकोंके इस भयवाचार्त्तमे यह स्वदेशवारमन्त्रमे प्रबोधित हो उठा। तथा लक्ष व्यक्ति उसके अधीनमें युद्ध करने लगे। निरिधेयस प्रकाशयुद्ध न कर युद्धयुद्ध करने लगा। बहुते लड़ाईमें उसके पराक्रममे रोमक फौजें पराजित हुईं। पीछे ईसाके १४५ वर्ष पूर्ण रोमसे फेबियस मेसियमस उसके साथ लड़ाई करनेके लिए भेजा गया। उसने निरिधेयको विशेषरूपमे पराजित किया। यह लड़ाई म्यून्टियनके नाममे प्रसिद्ध हुई।

जो हो, उसमे भी लड़ाईका विराम नहीं हुआ। एक दल रोमक-सैनिक उत्तर स्पेनमें सेन्टिप्रिक्नोंके साथ और दूसरा दल दक्षिण-स्पेनमें निरिधेयस और न्युमिडानियाको फौजोंके साथ लड़ाई करने लगे। ईसाके १४९ वर्ष पूर्ण निरिधेयस फेबियसको एक गिरि-मट्टमें पन्द कर दिया। उसके बाहर जानेका पथ रुक गया। फेबियसने दूसरा उपाय न देख निरिधेयसमे मित्रताज बना कर मन्थि करली। किन्तु सेमेटने यह मन्थि लोकार नहीं की। फिर लड़ाई आरम्भ हुई। अन्तमें, निरिधेयसको मौत हो जानेमे स्पेनिसाई कम और हो गया। इसके बाद जुनियस झुटमने इन स्थानोंमें नागिन स्थापित की। किन्तु कन्टिबेरिवकीके साथ उस समय भी लड़ाईका अन्त न हुआ। ईसाके १३७ वर्ष पूर्ण इरिथियस मानसिगस म्यून्तियनरतन फौजों द्वारा गिर गया और दूसरा उपाय न देख उसने मन्थि कर ली। किन्तु रोमरने फिर इस मन्थिकी अलोकार कर दिया। अन्तमें (१३५ ईसाके पूर्ण) मिर्सिमे अन्तिके नाम स्पेन भेजा गया। मिर्सिमेने उसके मर्तों पर घेरा जाला। स्पेनोप फौजों कोयानके साथ युद्ध कर मर्तोंमे रक्ष करमे लगे। अन्तमें इन मर्तोंको आरक्षणपर्याप्त करना पड़ा। मिर्सिमेने मर्तको बहादुरीवाचार्त्तों मोह कर अधिकांशियोंको युद्धमके रूपमें घेरे दिया।

वर्ष १३४-१३६ ई० पू०)

म्यून्तियनरतन युद्धके समय रोममें भीषण भूकम्प-

विप्लवका मूलगत हुआ। यहाँ गुलामीके या ज्ञानमे रोमके हृदय और अन्तर्जीवि-समाजमे अन्धकारका श्रेय प्रवाहित होने लगा था। इधर गुलाम भी कान प्रकाशके निर्दय व्यवहारमे ध्वंसयाप हो रहे थे। अन्तमे हुए शर्मोंकी जीविकाका कोई स्थायी संकल्प न था। सिन्तियोमें गुलामोंकी संख्या अत्यधिक हो उठी थी। यहाँके पलायनेवाले भूस्वामी हेरोकलसने गुलामोंकी भक्ति निर्दयतामे दृष्ट किया था। इससे कोई ४०० गुलामोंने मून्तियस नामक एक सिन्थियाके गुलामके अधीन पला पर आक्रमण किया और मोपल क्लवा-चार कर नगरको अधिकांशियोंकी मार डाला। मून्तियस मरतक पर राजमुकुट धारण कर सिन्थियामें पर जा बैठा। यह समाचार वा कर ७०००० गुलाम और दासियोंमें आ कर उसका साथ दिया। रोमके सिद्धने रोम के कर उन पर आक्रमण किया। किन्तु गुलामोंके सामने यह उदर न सका और पराजित हो कर भागा। अन्तमें (१३४ ई०के पू०) फेबियस उसके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा गया। यह भी गुलामोंकी पराजित करनेमें अक्षम था हुआ। किन्तु अन्तमें कन्सल क्विन्तियसने आ कर युद्धमें गुलामोंको हराया। २०००० हज़ार गुलाम मार डाले गये। बाकी गुलामों पर पड़ा दिये गये। मून्तियस कैद कर रोम भेजा दिया गया। किन्तु यह हीमे यह मर गया।

इस समय रोमका एजिपतलण्डमें एक प्रकाशक राज्य हो गया। पार्थीयसके राजा भटलस क्रिओमिटरने निर-सन्तान होनेकी चिन्तनमे अपने विदाल राज्य और विपुल धन-आण्डारकी रोमराज्यके नाम मर्तोपननामा लिप दिया। यह १३३ ईसाके पूर्णकी घटना है। किन्तु उप-के पिता औरदुहितरने इनके राज्यमें बड़ी मर्तोंको मर्तों को। रोमक कन्सल निमियसने लक्ष उसके द्वारा पराजित और निर्दल हुआ (१३१ ई० पू०)। किन्तु दूसरे वर्ष अरिष्टिनिस रोमकेसैन्य द्वारा पराजित कर कैद कर दिया गया और पार्थीयस राज्य रोमराज्यमें मिला लिया गया (१३० ई० पू०)। इस समय मून्तियस, एजिपत और अन्तिके इन मोह महादेशीमें रोमके राज्य-भोग बड़ाई गये। यह महाशय राज्य १० भागोंमें विभक्त-

हुं। १ सिसिली, २ सार्डिनिया और कर्सिका, ३-४ स्पेनके दो प्रदेश, ५ गलिया सिसालपिना, ६ माकिदनिया और एरिया, ७ इल्लिरिकम, ८ अफ्रिका या कार्थेज, ९ एशिया या पार्गामस, १० द्रानसाल-पाइन गल या भ्रिनसिया। रोमके प्रजातन्त्रने यह विशाल राज्य लाभ किया सही, किन्तु धन वृद्धिके साथ साथ विलासवृद्धिमें राज्यसमृद्धि नष्ट होने लगी। रोमके राज्यशासन विययमे' आभ्यन्तरिक बिगड़ होने लगे। जो रोमयासी स्वदेशप्रमत्त प्रणीत हो दिग्विजय करनेमें समर्थ थे, इस समय वे प्रेम भोगविलासमें परिणत हुए। वे त्यागधर्मको छोड़ कर भोगके धर्ममें प्रवृत्त हुए। बीरवंत रोमक तलवार छोड़ कर हाथमें धंशी ले उसको तानमें मस्त रहने लगे।

रोमके इस अन्तर्विग्रहके समय टाइबेरियस और केयस प्राक्सने विशेष प्रसिद्धि लाभ की थी। ये दोनों भाई विख्यात सेम्प्रोनियन प्राकासके पुत्र और हानिबल जेता सिपिओ अफ्रिकेनासके नाती थे। इनकी माता कर्निलिया-ने अपने पुत्रोंको सर्वतोभायसे सुशिक्षा प्रदान की थी। इसीलिये उस समय इन दोनों भाइयोंने रोम राज्यके युवक-समाजमें ऊँची ख्याति पाई थी। ज्येष्ठ भाईके गुण पर मोहित हो सेनेटके प्रधान सदस्य पपियास हड्रियसने उसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया था। फिर टाइबेरियसकी बहन सेम्प्रोनियाके साथ छोटे सिपिओ अफ्रिकेनासका विवाह हुआ था। इस तरह ये दोनों भाई हर तरहसे रोम राज्यमें प्रसिद्ध हो गये थे। टाइबेरियस (ईसाके पूर्व १३७ वर्ष) कोयष्ट के पद पर नियुक्त हुआ। पट्रुरियाके बीचसे जाते समय उसने रोमके कृषक सम्प्रदायको हालत खराब देख उनका संस्कार करना निश्चय किया। इसके अनुसार यह (१३३ ईसाके पूर्व) ट्रेविउनेटके पद पर नियुक्त हुआ। उसने ओजस्वी भाषामें वहाँके कृषकोंकी दुर्दशाकी बात सेनेटमें कही और ३६७ वर्ष ईसाके पूर्व-घाली लिसिनियस या कृषिसम्बन्धी कानूनको संस्कार कर वहाँ प्रवर्तित करनेकी प्रार्थना की। जो है, कृषि सम्बन्धी कानून उस समय प्रवर्तित हुआ। अथ प्राक्सने प्रस्ताव किया, कि पार्गामासके दिये हुए

धन भाण्डारसे कृषकोंकी दशा सुधारी जाये। इस तरह प्राकासने सेनेटके सदस्योंके अधिकार पर हस्तक्षेप किया। क्योंकि प्रदेश-शासन और कोषागार (खजाना)की व्यवस्था सेनेटके सदस्योंके हाथ थी। इस प्रस्तावसे यह वहाँके धनिकोंके अश्रद्धा भाजन हो उठा।

इस तरह रोममें पहले पहल अन्तर्जातीय विवाद या शत्रु-युद्धकी सृष्टि हुई। रोमके राजाके निर्वासन करनेके वाद ऐसी घटना नहीं हुई थी। रोमके नये सम्प्रदायके इस तरह जयलाभ करने पर भी वे प्राकासके पर्यारित "पम्पेरियन" कानूनकी रद्द करनेके साहसी नहीं हुए। प्राकासके पद पर कार्वी नामक एक आदमी नियुक्त हुआ। इस समय प्राकासके बहनोई छोटे सिपिओ-ने अफ्रिकेनास स्पेनसे लौट कर अपने सालिकी मृत्यु पर हर्ष प्रकट किया। यह देव सर्वसाधारणकी दृष्टिमें यह गिर गया। सिपिओ इस समय साधारणके हितके लिये प्रवर्तित पम्पेरियन कानूनका प्रतिवाद करने लगा और त्रिविधन-सम्प्रदायके अधिकारमें हस्तक्षेप करने लगा। प्राकासके पद पर प्रतिष्ठित कार्वीने 'फोरम'-में खड़े हो कर कड़ो भाषामें सिपिओकी प्रजाका शत्रु कह कर तिरस्कार किया। सिपिओके फिर प्राकासकी मृत्युसे आनन्द प्रकट करते ही सम्मिलित प्रजाने उसे-जित हो कर कहा—“अत्याचारीको दूर करो।” दूसरे दिन सवेरे देला गया, सिपिओकी मृत्युदेह शय्या पर लेट रही है। कार्वीने सिपिओको मार डाला है, लोगोंको ऐसा सन्देश होने लगा। किन्तु इस काण्डसे धनी-सम्प्रदाय डर गया। कार्वी इस समय सारे इटली-वासियोंको सम्प्रनिर्वाचनमें सम्मति देनेका अधिकार प्रदान करने पर अन्याय्य स्थानोंके अधिवासी (१२६ ईसाके पूर्व) रोममें एकत्र हुए। कार्वीका प्रस्ताव धर्षा करनेके श्रमिप्रायसे ट्रिव्युन जुनियस पेन्नासने रोमके प्रवासियोंसे शीघ्र ही रोम परित्याग कर अन्यत्र चले जानेका हुजूम दिया। किन्तु टाइबेरियन प्राकासके कनिष्ठ भ्राता केयास प्राकासने इसका प्रतिवाद किया। यह कार्वी और उनके अन्याय्य मित इटालियनोंके पक्षमें निर्वाचनाधिकार प्रदान करनेमें तत्पर हुए। पेन्नास इसकी प्रतिकूलताकरण करने लगे। यह देव कर इटलीयासी

साइमियोने नाम का लवनी नाम बसाई। मिथियेसस रोमकोंको इस विद्वत्ता और विद्यासंपादनका वाक्यना सुनने पर विचार हुआ। वह पहले सिद्धार था, पीछे उन्हें ही बर जोविता-निर्वाह करने लगा। बिजुस रोमकोंके इस अग्रधानामें यह स्वदेशाग्रमन्त्रमें प्रवीण हो उठा। लक्ष लक्ष व्यक्ति उसके सपोसमें युद्ध करने लगे। मिथियेसस प्रकाशयुद्ध न कर सुनपुष्ट करने लगा। बहुतेरे लक्षोंमें उसके पराक्रमसे रोमक फौजें पराजित हुईं। पीछे ईसाके १४५ वर्ष पूर्ण रोममें फेवियस में निवासमें उसके साथ लड़ाई करनेके लिए भेजा गया। उसमें मिथियेसको विशेषकरमें पराजित किया। यह लड़ाई स्पूमलियसके नामसे प्रसिद्ध हुई।

जो ही, उसमें भी लड़ाईका विषय महो हुआ। एक दिन रोमक-पैलिक उत्तर स्थानमें फेवियसमें ही साथ हीर दूसरा दल दक्षिण-स्वपेक्षमें मिथियेसस और लुसिडानियाकी फौजोंके साथ लड़ाई करने लगे। ईसाके १४१ वर्ष पूर्ण मिथियेसस फेवियसमें एक गिरि-सदृष्टमें मर कर दिया। उसके बाद जानेका पथ बंद गया। फेवियसमें दूसरा उपाय न देस मिथियेससमें मिथिराज बना कर सन्धि कर ली। बिजुस रोममें यह सन्धि स्वीकार नहीं की। फिर लड़ाई भारीम हुई। अन्तमें मिथियेससकी मौत हो जानेमें स्थितिवाह कब और हो गया। इसके बाद लुसिडस प्रुटसमें इस स्थानमें शासित स्थापित की। बिजुसके स्थितिरामोंके साथ इस समय भी लड़ाईका अन्त न हुआ। ईसाके १३७ वर्ष पूर्ण इटलियस साम्राज्यमें स्पूमालियस फौजों द्वारा मार गया और दूसरा उपाय न देस उसमें सन्धि कर ली। बिजुस रोममें फिर इस भविष्यकी अन्धकार कर दिया। अन्तमें (१३४ ईसाके पूर्ण) मिथियो अफ्रिके नाम स्थान भेजा गया। मिथियोने इनके नगरों पर घेरा डाला। स्थानीय फौजों कोसकके साथ युद्ध कर नगरों परा कर लीं लगे। अन्तमें उस नगरोंके आस-पस-पस कर लीं पड़ा। मिथियोने नगरको बर्हाद-प्राणोंकी मोह कर सविशालियोंकी भूमिमें कर लीं देव दिया।

वृत्तः सुमपुष्ट ( १३४-१३२ ई० पू० )

शुभकराजस सुद्धे समय रोमकी अफ्रिक साम्राज्य-

विजुसका स्वराज्य हुआ। यहां गुलाबीके भा प्रारंभ रोमके स्वक और धर्मस्थिति समाप्तमें अग्रमन्त्रका खोन प्रवादित होने लगा था। एकर सुधार भी लक्ष प्रकाशके विद्वत् व्यवहारमें स्वव्यय हो रहे थे। अन्तमें हुए दामोनी जीविताका फौजें सपोस सम्बंध था। मिथियोने गुलाबीको संभार अस्वधिक हो उठी थी। यहांके एकादेशमें भूधामो देवोक्तिमने गुलाबीकी भवि विद्वत्तामें दृष्ट दिवा था। इसमें कोई ४०० गुलाबीने युनाम नामक एक मिथियोके गुलाबीके सपोस एका पर आक्रमण किया और मोयल अस्वा-पार कर नगरके अधिवासियोंको मार डाला। युनाम मन्त्रक पर राजसुद्ध धारण कर सिंहासन पर जा बैठा। यह समाचार वा कर ७००० गुलाबी और द्वांसियोंने आ कर उत्तरका साथ दिया। रोमके मिथियो रोम हो कर उन पर आक्रमण किया। बिजुस गुलाबीके सामने यह टहर न सका और पराजित हो कर भागा। अन्तमें ( १३४ ई०के पू० ) कन्सिलियस उसके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा गया। यह भी गुलाबीको पराजित करमें अन्तमर्ष हुआ। बिजुस अन्तमें कन्सिलियसमें आ कर सुद्धमें गुलाबीको दहाया। २०००० हजार गुलाबी मार डाले गये। बाकी युद्धों पर अज्ञा दिने गये। युनाम कैद कर रोम भेज दिया गया। बिजुस शह होमें यह मर गया।

इस समय रोमका राज्यालपद्धमें एक प्रकाश राज्य हो गया। पार्थियासके राजा अटलस तिमोसिरसमें सि-सम्पन्न होनेके पक्षमें अपने मित्राज राजव और विजुस धन-आलुकारको रोमवासके नाम सपोसनामा लिख दिया। यह १३२ ईसाके पूर्णको घटना है। बिजुस उत्तरके दिशा ओसिडियसमें इनके सम्पत्तमें बड़ी महदुहो मर गईं मं। रोमक कन्सिलियसमें अन्तमें अन्त पराजित और निर्दम हुआ ( १३२ ई० पू० )। बिजुस दुन्दे वर्ष अफ्रिकियस रोमके लिये द्वारा पराजित कर कैद कर दिया गया और पार्थियास राजव रोमवासमें भिजा दिया गया ( १३१ ई० पू० )। इस समय गुलाबी, पार्थिया और अफ्रिका इस तीन महादेशोंमें रोमकी राज्य-शक्ति बड़ी हो गई। यह प्रकाश राज्य १० भागोंमें विभक्त-

हुंआ। १ सिसिली, २ सार्डिनिया और कर्सिका, ३-४ स्पेनके दो प्रदेश, ५ गलिया सिसालपिना, ६ माकिदोनिया और पफिया, ७ इलिरिकम, ८ अफ्रिका या कार्थेज, ९ एशिया या पार्गामस, १० द्रानसाल-पाइन गल या प्रभिनसिया। रोमके प्रजातन्त्रने यह विशाल राज्य लाभ किया सही, किन्तु धन वृद्धिके साथ साथ विलासवृद्धिमें राज्यसमृद्धि नष्ट होने लगी। रोमके राज्यशासन विषयमें आभ्यन्तरिक विग्रह होने लगे। जो रोमयासी स्वदेशमेंसे प्रणोदित हो दिग्विजय करनेमें समर्थ थे, इस समय वे प्रेम भोगविलासमें परिणत हुए। वे त्यागधर्मका छोड़ कर भोगके धर्ममें प्रवृत्त हुए। वीरव्रत रोमक तलवार छोड़ कर हाथमें धंशी ले उसकी तानमें मस्त रहने लगे।

रोमके इस अन्तर्विग्रहके समय टाइबेरियस और केयस प्राकसने विशेष प्रसिद्धिलाभ की थी। ये दोनों भाई विख्यात सेमप्रोनियन प्राकासके पुत्र और हानिबल जेना सिपिओ अफ्रिकेनासके नाती थे। इनकी माता कर्निलिया-ने अपने पुत्रोंको सर्वोत्तमभावेसे सुशिक्षा प्रदान की थी। इसीलिये उस समय इन दोनों भाइयोंने रोम राज्यके युवक-समाजमें ऊँची ख्याति पाई थी। ज्येष्ठ भाईके गुण पर मोहित हो सेनेटक प्रधान सद्स्य पपियास हृदयसने उसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया था। फिर टाइबेरियसकी वहन सेमप्रोनियाके साथ छोटे सिपिओ अफ्रिकेनासका विवाह हुआ था। इस तरह ये दोनों भाई हर तरहसे रोम राज्यमें प्रसिद्ध हो गये थे। टाइबेरियस (इसके पूर्व १३७ वर्ष) क्रोयक के पद पर नियुक्त हुआ। पट्रुवियाके बीचसे जाते समय उसने रोमके छपक सम्प्रदायको हालत खराब देख उनका संस्कार करना निश्चय किया। इसके अनुसार यह (१३३ ईसाके पूर्व) ट्रेविउनेटक पद पर नियुक्त हुआ। उसने भोजनस्वी भाषामें वहाँके छपकोंकी दुर्दशाकी बात सेनेटमें कही और ३६० वर्ष ईसाके पूर्व-पाली लिस्तिनियस या कृपिसम्बन्धी कानूनको संस्कार कर वहाँ प्रवर्तित करनेकी प्रार्थना की। जो है, कृपि सम्बन्धी कानून उस समय प्रवर्तित हुआ। अथ प्राकसने प्रस्ताव किया, कि पार्गामासके दिये हुए

धन भाण्डारसे छपकोंकी दशा सुधारी जाये। इस तरह प्राकासने सेनेटक सद्स्योंके अधिकार पर हस्तक्षेप किया। क्योंकि प्रदेश-शासन और कोषागार (खजाना)की व्यवस्था सेनेटक सद्स्योंके हाथ थी। इस प्रस्तावसे वह वहाँके धनिकोंके अश्रद्धा भाजन हो उठा।

इस तरह रोममें पहले पहल अन्तर्जातीय विवाद या गृह-युद्धकी सृष्टि हुई। रोमके राजाके निर्वासन करनेके बाद ऐसी घटना नहीं हुई थी। रोमके नये सम्प्रदायके इस तरह जयलाभ करने पर भी वे प्राकासके प्रवर्तित "पब्लियन" कानूनकी रद्द करनेके साहसी नहीं हुए। प्राकासके पद पर कार्यों नामक एक आदमी नियुक्त हुआ। इस समय प्राकासके वहनोई छोटे सिपिओ-ने अफ्रिकेनास स्पेनसे लौट कर अपने सालेकी मृत्यु पर हर्ष प्रकट किया। यह देव सर्वसाधारणकी दृष्टिमें बह गिर गया। सिपिओ इस समय साधारणके हितके लिये प्रवर्तित पब्लियन कानूनका प्रतिवाद करने लगा और प्लिबियन-सम्प्रदायके अधिकारमें हस्तक्षेप करने लगा। प्राकासके पद पर प्रतिष्ठित कार्वीने 'फोरम'-में खड़े हो कर कड़ो भाषामें सिपिओको प्रजाका शत्रु कह कर तिरस्कार किया। सिपिओके फिर प्राकासकी मृत्युसे आनन्द प्रकट करने ही सम्मिलित प्रजाने उसे जित हो कर कहा—“अत्याचारीकी दूर करो।” दूसरे दिन सबेरे देखा गया, सिपिओकी मृगदेह शम्पा पर लोट रही है। कार्वीने सिपिओको मार डाला है, लोगोंको ऐसा सम्बेद होने लगा। किन्तु इस काण्डसे धनी-सम्प्रदाय डर गया। कार्वी इस समय सारे इटली-वासियोंको सम्प्रनिर्वाचनमें सम्मति देनेका अधिकार प्रदान करने पर अग्रगण्य स्थानोंके अधिवासी (१२६ ईसाके पूर्व) रोममें एकत्र हुए। कार्वीका प्रस्ताव धर्षा करनेके शर्मिप्रायसे ट्रिब्यून जुनियस पेन्नासने रोमके प्रवासियोंको शीघ्र ही रोम परित्याग कर अन्यत्र चले जानेका हुक्म दिया। किन्तु टाइबेरियन प्रकामके कनिष्ठ भ्राता केयास प्राकासने इसका प्रतिवाद किया। यह कार्वी और उनके अग्रगण्य मित इटालियनोंके पक्षमें निर्वाचनाधिकार प्रदान करनेमें तत्पर हुए। पेन्नास इनकी प्रतिफलताचरण करने लगे। यह देव कर इटलीयासी



दूर भेज देनेकी उसकी इच्छा हुई। इसके अनुसार उसने जुगार्थाकी सिपियोकी सहायताके लिये एक छोटी फौजके साथ स्पेन भेज दिया। वहाँ उसको पराक्रम और प्रतिभाको देखकर सिपियोने उसको प्रशंसापत्र दिया था। किंतु मिसिप्साके दोनों पुत्र हिम्भासल और अविर्थल उसको ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखने लगे। मिसिप्साने अपने दोनों कुमाराँके रक्षकरूपसे जुगार्थाको नियत कर दिया। इसके बाद मिसिप्सा परलोक सिंघारा। किंतु हिम्भासलके विरुद्धाचरण करने पर जुगार्थाने उसे मार डाला। यह ईसाके ११७ वर्ष पूर्वाकी घटना है। इसके बाद जुगार्थाने छोटे भाई अविर्थलको भी मार डालनेकी चेष्टा की थी। अविर्थल लड़ाईके लिये तैयार हुआ। अविर्थलने जुगार्थाके विरुद्ध शिकायत कर अपनी राज्यरक्षाके लिये रोमकी सेनेटसे सहायता मांगी। इस पर रोमसे कमिश्नर भेजे गये। कमिश्नरोंने आ कर दोनों भाइयोंकी बंटवारा कर दिया। किंतु रिश्तखोर कमिश्नरोंने जुगार्थासे रिश्त ले कर अच्छा या उपजाऊ अंश जुगार्थाको दे दिया। इस पर भी जुगार्था सन्तुष्ट न हुआ और (ईसाके ११२ वर्ष पूर्व) सिरा नामक किले पर आक्रमण कर उसने मिसिप्साके पुत्र अविर्थलको मार डाला। इस किलेमें जुगार्थाने कितने ही इटालियनोंकी भी मार डाला। इस पर रोमके द्रिब्यू न मेमियसने सेनेटस जुगार्थासे लड़ाई करनेकी सलाह दी। इस पर घेष्टिया और स्कारस लड़ाई करनेके लिये न्यूमिडिया भेजे गए। किंतु उनको बहुत रिश्त दे कर जुगार्थाने रोमकी राजी कर लिया। इसने इनके हाथ सेनेटकी ३० हाथी और कुछ घन भेजा था। यह रिश्तखोरों छिप न सकी। केसियस नामक एक उदारचेता धार्मिक पुरुष जुगार्थाको बुलानेके लिये न्यूमिडिया भेजे गये। जुगार्था पावाही देनेके लिये ही बुलाया गया था। जुगार्था रोममें लाया गया। जुगार्था जब सभामचनमें गवाही देने जैसे खड़ा हुआ, वैसे ही एक द्रिब्यू नने उसे रोका। द्रिब्यू नने उन दोनों घेष्टिया और स्कारससे रिश्त ली थी।

जुगार्था कुछ दिनों तक रोममें ही रह गया। यहाँ उसकी किसी साजिशमें शामिल देण कर सेनेटने इटली छोड़ देनेकी आज्ञा दी। रोमसे जाते समय सेनेटके

सदस्योंके गार्हताचरणका उल्लेख कर उसने कहा था,—  
“ये स्वार्थी नीचांशय सभ्य उपयुक्त खरीददार पाने पर रोमकी बेंच सकते हैं। रोमका पतन अथप्रथममाघी है।”  
इसके बाद ईसाके ११० वर्ष पूर्वा जुगार्थाके साथ युद्ध होने लगा। पहले पेट्रुमियस अलबिनस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। किंतु उसके असफल होने पर उसका भाई अलास उस पद पर नियुक्त कर भेजा गया। किंतु अपनी अनवधानतासे वह शत्रु द्वारा घेर लिया गया और अपमानजनक सन्धि कर रोम लौट आया। सेनेटने सन्धिको अस्वीकृत कर मेटलासको युद्ध करनेके लिये न्यूमिडिया भेजा। इधर जिन्होंने जुगार्थासे रिश्त ली थी, वे सब देशसे निकाले गये। मेटलासके साधुचरित्रको देख कर जुगार्था रिश्त दे कर सन्तुष्ट करनेमें हताश हुआ। मेटलासने जुगार्थाको वारंवार पराजित किया। जुगार्थाने दूसरा उपाय न देख बहुनेरे हाथी और घन दे कर सन्धि कर लेनेकी प्रार्थना की। मेटलासने अपने खेममें उसकी आने कहा। जुगार्थाको पैसा साहस न हुआ। इससे फिर युद्ध होने लगा।

पूर्वकथित मेरायस इस समय मेटलासके अधीन युद्ध कर रहा था। यह अपनी रणनियुग्ता तथा सद् व्यवहारसे सबका प्रियपाल बन गया था। इस समय माथा नामी एक सिरोय रमणीने उसको शीघ्र ही एक ऊँचा पद पानेकी अविश्वदायी की थी। यह सुन कर उसने रोमके कप्तल पद प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। मेटलसने पहले आज्ञा न दी। किंतु पीछे उसकी रोम जानेकी आज्ञा दे दी। मेरायासने सबकी सहायतासे यह पद पा लिया। किंतु शीघ्र ही यह न्यूमिडिया युद्ध करनेके लिये भेजा गया। इधर यह समाचार पा कर मेटलस युद्धसे विरत हुआ। मेरायासके न्यूमिडिया पहुँचने पर रोमक सैनिक बड़ी बहादुरीके साथ लड़ने लगे। मेरायासने एक एक करके जुगार्थाके सभी सुरक्षित किलों पर अधिकार कर बहुत घन संप्रदा कर लिया। इस समय सहा नामक एक प्रतिभाशाली रोमकसैनिक मेरायासके अधीन युद्ध कर रहा था। इसीकी कूटनीतिके फलसे मेरायास जुगार्थाको पराजित करनेमें समर्थ हुआ था।



उत्कोत्तित हो उठे और अंतर्निर्गत नामक स्थानके अधि-  
वासियोंमें मग्न धारण किया । विष्णु विद्वत्प्रसंगि  
निवसने शोभ हो विद्वोद बनन किया ।

इस समयमें साधारणके लिये केवल प्राजापत्य  
द्वारे आरुह्य हुए । यह आर्तिनिपाके प्राजापत्ये जिन यह  
कर ( १२५ ई० पू० ) अहमनात् रोममें लौट आया और  
१२६ ई० पू० द्विष्णुन विष्णुक हुआ । उसमें साधारणके  
दिशाओं मेंनेटकी क्षमता पटा कर समस्त और राउप-  
नामानके मूलतः संस्कृतमें ज्ञान गवाया । इतिहासी  
उत्पत्तिके लिये और रोमवासियोंके दिशाओं केवाम  
प्राजापत्ये की कानून बनाये । यह अपने नाम द्वारा बनाये  
कानून 'पर्वे विवम' को पुनः प्रचलित कर सर्वसाधारण-  
के विषयात् हो उठा । अतः यह १२२ ईसाके पूर्व किर  
द्विष्णुन विष्णुक हुआ । इस समय कात्रमिषस पत्रेकम  
कर्मण्य विष्णुक हो कर केवासको महापता करने लगा ।  
उन्हीं केवास प्राजापत्ये लामो इटाहित्योकी रोमकी  
गदद निर्माण अधिकाटप्रारंभ किया । रोनेटके प्राजाप-  
की प्रतिगति देख कर उसके विद्वत् निमिषस प्रामाण्य  
साधक एक पत्नी मरुभ्यती विष्णुक किया । हुआस  
पदके उरके मगके अनुसार हो कार्य करता था ।  
विष्णु केवासके सहायतामें उपनिषस कपोपनके लिये  
जाने वा मीला नेत्र हुआसने कट्टीरे लीगोकी केवासके  
विद्वत् उत्कोत्तित किया । केवास प्राजापत्य जब रोम लौट  
आया, वह पहिली तरह उसके प्रति साधारणकी महादु-  
भूति लगी दिशाई थी । यह और उसके मिल कर काम  
पुनः द्विष्णुन पदके लिये समेदवार मडे हुए । विष्णु  
पदकोभूत मडी हो गये । उनके विरोधियोंमें मरुभ्यती  
प्रथम की और वे कर्मण्य विष्णुक हुए । ईसाके १२१ वर्ष  
पूर्व केवासके प्रातर्भोने साधारण्य साध कर प्राजापत्यके  
वशासे मर कानूनीकी रूढ़ बनाया आरम्भ किया और  
संकेदके लिये मरुभ्य प्राजापत्य तथा प्रजापत्यकी पदानामके  
मग्न लोचन किया । इत्ये दोनो कर्मण्य विद्वत्प्रसंगी  
समयका प्रथम यह प्राजापत्य और प्रजापत्यके विद्वत् साधा-  
रणकी उत्कोत्तित करने लगे । प्रजापत्ये अपने मरुभ्योको  
प्राजापत्यके साथ मिल कर प्रजापत्यके विद्वत् मग्न धारण  
किया । इस तरह यह विद्वत्प्रसंग पुनर्गण हुआ । इस

समय दोनो कर्मण्य अन्तर्के साथ साहित्यप्रसंगी प्रजाप-  
त्य पर आक्रमण करनेके लिये मडे । प्रजापत्ये अपने पुत्रको  
सहितके लिये रोनेटमें भेजत । विष्णु रोनेटके मरुभ्योके  
उत्त मार जाना । इत्ये कर्मण्योके आक्रमणके कर्मो  
पदाक्रम साथ गया और प्राजापत्य महापत्य मरुभ्योके  
बच कर एक विष्णुन लोचनेके साथ साहित्यनिवस पुत्रके  
निकट टावरलक्ष्यको पार कर एक कर्मो जा पहुँचा ।  
यहाँ प्राजापत्ये अपने लोचरमें अपनेकी मार करनेके  
लिये कहा । प्रजापत्य उस लोचरमें अपने साहित्यको मार  
कर मारनेको भी मार जाना ।

प्राजापत्य दोनो भावोंके जितने कानून बनाये हुए  
थे, उन सबको इस लोचनेमें रूढ़ कर दिया । इत्येकी  
ओ भूमि दो गार्थ थी, ये सब रोनेट द्वारा निहान भी गयीं ।  
पुनार्थोपगुद ( १२५ ई० पू० ) ।

रोनेटके इस भववासाके समय साधारणकी औरीमें  
एक नवम प्रतिनिधिका प्राप्ताभाय हुआ । इसका नाम  
मेरावास था । मित्रियों अन्तिमेंमासने इत्येका कर्तव्य  
देन कर कहा था, कि यह वास्तव हम लोचोंके समकथा  
होता । यह अपने समय पर ईसाके ११६ वर्ष पूर्व द्विष्-  
पत्योकी सोरगे द्विष्णुन विष्णुक हुआ । यह प्रथम प्राची  
रोनेटके सामने साधारणके अनुष्ठान मग प्रदर करनेमें  
प्रथम लोच मगभोग्य ल हुआ । इस पर रोनेटके मरुभ्योके  
द्वारा पणकथावा । इस पर उसने कर्मण्य मरुभ्योको  
केद कर दिया । इस तरह यह रोममें विद्वत् विष्णुन  
तथा क्षमतामग्न्य हो गया । उसमें विष्णुन लोचमग्न  
मित्ररको लोचोके लक्ष्यमें विचार किया था । इस समय  
अन्तिजाके लोच विद्वत्के मिश्रणके विषय पर मरुभ्यो  
मग रही थी । पूरु राजाके मित्रियाकी लोचमें कर्द  
उसके मोग पुत्रोंमें मरुभ्यो कीट दिया । विष्णु हुए ही  
दिनेके और दोनो प्राचीको लोचमग्न्य हो जाये । मित्रिया  
अन्तिजा लोचो लोचमग्न्यके अधिकाती बन गये ।  
उन दोनो मरुभ्योके मित्रियोंके साथम ल था । विष्णु एक  
मरुभ्यो एक मरुभ्य लोचमग्न्य था । इत्येका मग्न्य  
लुगण्य । विष्णु मित्रियाके लोचो प्रतिगति देख कर  
अन्तिजा लोचमग्न्यके लोच मारण वामन किया, लोचो  
मरुभ्ये मरुभ्योके लोचमग्न्य लोच, यह मग्न्य कर लोचो

दूर भेज देनेकी उसकी इच्छा हुई। इसके अनुसार उसने जुगार्थाकी सिपियोको सहायताके लिये एक छोटी फौजके साथ स्पेन भेज दिया। वहाँ उसके पराक्रम और प्रतिभाको देखकर सिपियोने उसको प्रशंसापत्र दिया था। किन्तु मिसिप्साके दोनों पुत्र हिम्मासल और अविर्बल उसको ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखने लगे। मिसिप्साने अपने दोनों कुमारोंके रक्षकरूपसे जुगार्थाकी नियम कर दिया। इसके बाद मिसिप्सा परलोक सिंधारा। किन्तु हिम्मासलके विरुद्धाचरण करने पर जुगार्थाने उसे मार डाला। यह ईसाके ११० वर्ष पूर्वाकी घटना है। इसके बाद जुगार्थाने छोटे भाई आधिर्वलको भी मार डालनेकी चेष्टा की थी। आधिर्वल लड़ाईके लिये तैयार हुआ। आधिर्वलने जुगार्थाके विरुद्ध शिकायत कर अपनी राज्यरक्षाके लिये रोमकी सेनेटसे सहायता मांगी। इस पर रोमसे कमिश्नर भेजे गये। कमिश्नरोंने आ कर दोनों भाइयोंको बंधारा कर दिया। किन्तु रिश्बनखोर कमिश्नरोंने जुगार्थासे रिश्बत ले कर अच्छा या उपजाऊ अंश जुगार्थाकी दे दिया। इस पर भी जुगार्था सन्तुष्ट न हुआ और (ईसाके ११२ वर्ष पूर्व) सिरा नामक किले पर आक्रमण कर उसने मिसिप्साके पुत्र आधिर्वलकी मार डाला। इस किलेमें जुगार्थाने कितने ही इतालियनोंकी भी मार डाला। इस पर रोमके ट्रिब्यून मेमियसने सेनेटस जुगार्थासे लड़ाई करनेकी सलाह दी। इस पर वेष्टिया और स्कटास लड़ाई करनेके लिये न्यूमिडिया भेजे गए। किन्तु उनको बहुत रिश्बत दे कर जुगार्थाने रोमकी राजी कर लिया। इसने इनके हाथ सेनेटकी ३० हाथी और कुछ धन भेजा था। यह रिश्बतखोरी छिप न सकी। कैसियस नामक एक उदारचेता धार्मिक पुरुष जुगार्थाकी बुलानेके लिये न्यूमिडिया भेजे गये। जुगार्था गवाही देनेके लिये ही बुलाया गया था। जुगार्था रोममें लाया गया। जुगार्था जब समाभयनमें गवाही देने जैसे खड़ा हुआ, जैसे ही एक ट्रिब्यूनने उसे रोका। ट्रिब्यूनने वन दोनों वेष्टिया और स्कटाससे रिश्बत ली थी।

जुगार्था कुछ दिनों तक रोममें ही रह गया। यहाँ उसको किसी साम्राज्यमें शामिल देव कर सेनेटने इटली छोड़ देनेकी आज्ञा दी। रोमसे जाते समय सेनेटके

सदस्योंके गर्हिताचरणका उल्लेख कर उसने कहा था,— "ये स्वयंही नीचांशय सभ्य उपयुक्त खरीददार पाने पर रोमको वैच सकते हैं। रोमका पतन अवश्यभवायी है।" इसके बाद ईसाके ११० वर्ष पूर्वा जुगार्थाके साथ युद्ध होने लगा। पहले पेट्रुमियस अलविनस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। किन्तु उसके असफल होने पर उसका भाई अलास उस पद पर नियुक्त कर भेजा गया। किन्तु अपनी अनवधानतासे वह शत्रु द्वारा घेर लिया गया और अपमानजनक सन्धि कर रोम लौट आया। सेनेटने सन्धिको अस्वीकृत कर मेटलासको युद्ध करनेके लिये न्यूमिडिया भेजा। इधर जिन्होंने जुगार्थासे रिश्बत ली थी, वे सब देशसे निकाले गये। मेटलासके साथुचरितकी देख कर जुगार्था रिश्बत दे कर सन्तुष्ट करनेमें हताश हुआ। मेटलासने जुगार्थाको बंधारं पराजित किया। जुगार्थाने दूसरा उपाय न देख बहुतेरे हाथी और धन दे कर सन्धि कर लेनेकी प्रार्थना की। मेटलासने अपने खेममें उसको आने कहा। जुगार्थाको पेसा साहस न हुआ। इससे फिर युद्ध होने लगा।

पूर्वकथित मेरायस इस समय मेटलासके अधीन युद्ध कर रहा था। वह अपनी रणनिपुणता तथा सद् व्यवहारसे सबका प्रियपात्र बन गया था। इस समय माथी नाम्नी एक सिरिय रमणोंने उसकी शोभ ही एक ऊँचा पद पानेकी भविष्यवाणी की थी। यह सुन कर उसने रोमके कंसल पद प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। मेटलासने पहले आज्ञा न दी। किन्तु पीछे उसकी रोम जानेकी आज्ञा दे दी। मेरायासने सबकी सहायतासे यह पद पा लिया। किन्तु शोभ ही यह न्यूमिडिया युद्ध करनेके लिये भेजा गया। इधर यह समाचार पा कर मेटलास युद्धसे विरत हुआ। मेरायासके न्यूमिडिया पहुँचने पर रोमक सैनिक बड़ी बग़ावुरीके साथ लड़ने लगे। मेरायासने एक एक करके जुगार्थाके सभी सुरक्षित किलों पर अधिकार कर बहुत धन संग्रह कर लिया। इस समय सहा नामक एक प्रतिभाशाली रोमक-सैनिक मेरायासके अधीन युद्ध कर रहा था। इसीकी कूटनीतिके फलसे मेरायास जुगार्थाकी पराजित करनेमें समर्थ हुआ था।

तुलापौर्णिमा बाराबार पराक्षिप्त हो कर भी भरणे अत्युत्त  
 पोषाणको मद्दुर्गम पदक बहुत बढी फोडि रह्यो कर ली ।  
 यह देख कर बोधामको सहा मामा प्रलोमान भीर  
 जीसत्यमे हाथमि कर लेदेका उपाय करने लगा । भयमि  
 रोमकोके कृत्-प्रलोमानमि फोस कर बोधाममि भरणे  
 दासाइको जेठोसमि बाप कर रोमकोके हाथमि गयो । दिवा ।  
 महा समयी ले कर बडो खुनोके साथ मेरावासके  
 मेमेमि पढ्यो । यह १०१ ईसाके पूर्वको घटना है ।  
 मेरावास इन काममि संतुष्ट होमे पर भी सज्जानके इन  
 काममि संयोगित हुआ । महा युवामो साहित्यके  
 सुप्रसिद्ध भीर विद्यामि थे । किन्तु कुछ विद्यामि उम-  
 को अतिशय पण्डित देख रोमक समक उडे । ईसाके  
 १०४ वर्ष पूर्व मेरावास तुलापौर्णिमा जेठोसमि बाप कर  
 रोममि बडे समारोहमि लीर भाग । मेरावासके जन्ममि  
 सहाको हो तुलापौर्णिमा पकड़नेवाला बह कर उत्तीके  
 मलेमि जयमाता पदना । मेरावास दुसरी बार भी कर्मक  
 नियुक्त हुए ।

विपमि भीर इत्युक्तोके साथ पुत्र ( १११-१०१ ई० पू० )

इस समय वास्तिक भीर इतिहासके दो परा-  
 क्षमण समयम सारदाय अन्तम वर्षके उत्तर भागमि  
 पदुपायको तरह सिध कर इत्यो पर साक्षमण करमेका  
 प्रयोग करने लगे । ये विपमि भीर इत्युक्त जर्मनवंशके  
 है । किन्तु पौरो केन्द्रिक जाति भी इस समयदायके  
 साथ मिल गई थी । यह प्रमणजोड समयम सारदाय  
 भरणे स्त्री-युवमके साथ देस देसगतमि प्रमण कर रहा  
 था । इस युवमि १००००० महापुरु भीतिक थे । कर्ममिमे  
 इस सारदायको अभावक बहाउमे उर कर गोम उमके  
 दिवस मेका भेका । किन्तु इत्युक्तमि इस समयदायके साथ  
 रोमक फोडि बाराबार पराक्षिप्त लगा फोस होमे लगे ।  
 ईसाके १०१ वर्ष पूर्व कर्ममि सुविद्यम विद्याका  
 विद्यामिमे साथ बाराबार पराक्षिप्त हुआ । इत्ये बाप  
 के विपमक समक सहाकाय संकल सुपमि पराक्षिप्त भीर  
 मारा लगा भीर दुसरे पर सहामि अतिव्यक्तम  
 इस सारदायको पराक्षिप्त हुआ । भीर देह कर विपम  
 मारा । बहुनेमे रोमा मारी गये । इत्ये कर ईसाके  
 १०५ वर्ष पूर्व फोडि कर्ममि विपमक साहित्यम भीर

साहित्यम विद्यामि विद्यमि देवम ले कर इस सारदायके  
 माममि भा उडे । समयम सारदायके इन रोमक-गीतियो  
 भी भीम पराक्षममे बढयो वृद्धी तरह काटना साक्षर  
 किया । हाविजनके बाप येमी मार काटको मराने गरी  
 हुं थी ।

रोमकोमे देवाके १०३ वर्ष पूर्व इस विपमके समय  
 मेरावासका रोमको बार कर्ममि नियुक्त किया ।  
 किन्तु पापावर इत्योके भीर साथ म बह लोममे सुम  
 कर मृत्युमे भीर साथ लगामे लगे । इपर मेरावास पद  
 मं रोमा एकत्र कर उमको विपममे पढामे लगा । इत्ये  
 उम समय मेव्य विद्यामि बहनेमे सुधार भी दिये । पौरो  
 ( १०२ ईसाके पूर्व ) मेरावास पौरो बार कर्ममि नियुक्त  
 हुआ । उम समय विपमि विर मक प्रदुर्गमि हुआ । मेरा  
 वास फोडोके साथ पहा पढ्योका भीर उम सहाको  
 सुप्रसिद्ध करमेके विधे इत्ये भुवज्यासागतमे पौरो तरह  
 पक मारी या महर सोदवार । पापावर दो दुमीमि विपम  
 हो कर इत्योके पाता को द्युत्तम मेरावासको भीर कीडे  
 पढ्यो मिकमदिवार मारक स्थानमि भोपल मूढ हुआ ।  
 मेरावासको सुप्रसिद्ध पौरोमे पदुर्गम युवावममे विपमि हुं  
 थी । उम इत्युक्त इस वर्षमे जा रहे थे, तब उम पर  
 रोमक रोमा पदावर टूट पडो भीर सुरी तरहमे इत्युक्त  
 मारे भीर काटे गये । मूषेको प्रमर किरणमे जादुल हो  
 इत्युक्त मारे । पौरोमे रोमक रोम मारी लगे । रोमम  
 काटक हुआ । प्राया मनी मार करने गये भीर दो बाको  
 बडे उदोमे भी सारमरदाय कर बापमे मारा मारी दिये ।  
 गोमकटमे वहीवमो उमको विपमि पति-युवको इस तरह  
 पराक्षिप्त होमे देस किन्तु सहामिमे मार कर मर  
 साक्षमरदाय करने लगे । सहाकाय सुपुत्र भुवज्यासागतमे  
 जा विपम । मेरावास सुपमि तब कर रोममे लीर भाग ।  
 येमे समय उमकी पद सुपुत्रममि मर कर की विपम  
 पतिवरी बार कर्ममि नियुक्त हुए ।

इपर विपम सहाकाय काटको तरह सहाकाय पदममि  
 इत्योके भीर कीडे । इत्युक्तमि विपमको सहाकाय  
 विपमके रोम सहाकोके समयम सहाकाय भरणे मेमे सहा  
 किया । १०१ ईसाके पूर्व । १०५ ईसाके भीर मर-  
 पुत्र सुपुत्र सहाकाय हुआ । मेरावासके कृत् जीसत्यमे विपम

हार गये। इनके १४००० सैनिक मारे गये और ६०००० सैनिक कैद कर लिये गये और गुलाम बना कर बेच दिये गये। किन्तु इनकी खिर्चा कैद न हुई वरं लक्ष लक्ष रमणियां आत्महत्या कर यमलोक सिधारीं। मेरायासने इस तरह असामान्य प्रतिभावलसे और अभूतपूर्व रण-कौशलसे रोमक सौभाग्यसूर्यको राहु मुलसे धवाया। रोमघासी भी देवाराधना करते समय उसकी पूजा और तर्पण करनेसे न भूले। यह रोमका ३रा उद्धारकर्ता कह-लाया। पीछे मेरायास बड़े समारोहसे विज्योत्सव कर औरवान्वित चित्तसे रोममें वापस आया। यह ६३वीं बार फिर कन्सल नियुक्त हुआ। इससे पहले और कोई भी रोम-अधिवासी इतना सम्मानित नहीं हुआ था। बड़े बड़े पेटिहासिकोंका कहना है, कि इस यशःसूर्यके मध्याह्नकालमें मेरायासकी यदि मूर्ति हो जाती, तो अच्छा होता। क्योंकि ऐसा होने पर उस यशोरथिका अस्तगमन रूप दुर्दिन देखना न पड़ता।

दूसरा गुलाम-युद्ध ( १०३-१०१ ई० पू० )।

इस समय गुलामोंका बड़ा भारी विद्रोह खड़ा हुआ। चार वर्षायावी इस गुलाम युद्धने देशका बड़ा अनिष्ट किया। लुकानास और सार्डिनियास कस्त्राके अधीन की बार रोमक फौजे गुलामोंसे पराजित हुईं। सालडि-यस नामक एक दैवज्ञने अपनी असमान प्रतिभाके बलसे शीघ्र ही २०००० पैदल और २००० घुड़सवार सैन्य पढ़ा लिया कर अपना नाम द्राफ्फन रख लिया। यही नहीं, उसने राज्याभिषेकोत्सव भी कर लिया। ३४र गुलाम दो दलोंमें विभक्त हुए और आधेनी तथा आधे-निउने पश्चिम दलके राजा होने पर भी द्राफ्फनका प्राधान्य स्वीकार कर लिया। द्राफ्फनकी मृत्युके बाद अधेनियो गुलामोंका राजा हुआ। एकुदलियस सिसिलीमें भेजे गये। उन्होंने लडाईमें विजय-प्राप्त कर अपने हाथों आधे-नियोको रोमके आसिफियेटरमें सिंहाशाठुलके साथ युद्ध करनेमें नियुक्त किया। किन्तु हिंसा जन्तुके साथ लडाई कर निष्ठुर रोमवासियोंके चित्तयिनोद करनेकी अपेक्षा वे आपस होमें लड़ कर मर गये। यह ६६ वर्ष ईसासे पूर्वकी घटना है।

इस समय रोमकी शासन-प्रणालीमें फिर विप्लव

उपस्थित होनेकी सूचना मिली। मेरायास शासन और सैन्य विभागमें एकाधिपत्य करनेके लिये सज्ज्व करके लगा। किन्तु उसकी शासन क्षमता और वक्तुता शक्ति कुछ भी न थी। इसलिये साटार्निनास और ग्लिसिया नामक दो वाग्मियोंको हाथमें कर अपने काममें लगा। साटार्निनास ट्रिव्युन बर्दा पर नियुक्त हुआ और पम्पे-रियन कानून चला कर गल प्रदेशकी भूमिकी मेरायासने फौजोंमें बांट देना चाहा। इस आर्दनकी एक शर्त थी, कि इसके प्रयत्नका प्रस्ताव यदि सर्वसम्मतिसे पास हो, तो सेनेटके सदस्य इसका पालन करने पर शपथ घड़ होंगे और जो असम्मत होंगे वे सदस्यपदसे च्युत होंगे। मेटलास मेरायास—दोनों सेनेटकी सर्वसम्मतिसे यह कानून बनाया। केवल मेटलास अपने स्वोद्धत शपथ पालन करने पर तैयार न हुआ। इस सम्बन्धमें मेटलास और मेरायासके पक्षमें घोरतर मनमुटाव उपस्थित हुआ। विरोधियोंके अत्याचारसे रोम राजधानी जर्जरित हो उठी। इस तरह राष्ट्रविध्वन कुछ समय तक चलनेके बाद प्रधान प्रधान नेताओंके पदाधिकार कम हो गया। उस समय सभीके निर्वाचनमें फंस गये। निर्वाचनमें दंगा फसाद होने देख सेनेटने मेरायासके विरोधियोंको धवानेके लिये तथा राजरक्षा करनेके लिये आदेश दिया। उस समय साटार्निनास तथा ग्लिसियाकी हताज हो आत्म-समर्पण करना पड़ा। सेनेटके उनकी राजद्रोहिता पर विचार करने समय प्रजाने उन्हें मार डाला।

सेनेटके साथ विवाद करनेमें, प्रजादलकी पराजय और मेरायासके ६ बार कन्सल नियुक्त होनेमें प्रजाके स्वाधिकारहासके साथ साथ रोमकी प्राचीन प्रजातन्त्रके अनेक परिवर्तन हुए। मेरायास ६ बार कन्सल पद पर सेनेटके अनुमोदित ऊपर ही ऊपर नेतृपरिचर्तनमें अन्तराय उपस्थित हुआ। इस लम्बे नेतृत्वमें मेरायासने साटार्निनास प्रवर्तित सामयिक संस्कारपद्धतिका अनुकरण कर एक एक सेनापतिके अधीनमें साधारण सेनादल नियुक्त किया। यह सब सैनिक अपने अपने सेनापतियोंकी बात या आहवा पालन करनेके अधिकारी होंगे। साधारण सैनिकोंमें यंगमर्त्यादा या अर्थगर्त्याका



इधर पम्पियास ध्वावो उत्तर-इटलीमें जीतने लगा। प्रबल युद्धके बाद आस्कालाम नगर पर अधिकार हो गया। विपक्षियोंके अधिकारशेन हथियार छोड़ कर अधीनता स्वीकार कर ली। उस समय जूटियास सिल्वेनोस और पेपिरियस कार्वो नामक दोनों द्विव्यूनने "लेख जूटिया-पेपेरिया" नामक एक कानून बनाया। यह ८६ ईसाके पूर्वकी घटना है। इससे जिस कारणसे युद्धकी उत्पत्ति हुई थी, वह कारण दूर हुआ। अतएव बहुतेरे विपक्ष रोमक-दलमें आ गये। इस युद्धमें इटलीका सम्भ्रान्त नया सम्प्रदाय निर्वासित हो गया। अन्तमें ३५ जातियाँ और १५ विभिन्न इटलीवासियोंको रोमके साथ समान निर्वाचन-अधिकार मिला। इसके बाद सामनाइट और लुकानियोंने कुछ दिनों तक रोमके विरुद्धाचरण किया था। सामनियमके युद्धमें सहाने दोनोंकी शक्ति क्षीण कर दी थी। इसके बाद सारे इटलीके रहनेवाले रोमकी प्रधानता स्वीकार कर एकमें मिल गये।

इस अन्तर्निष्पलवका अन्त होने पर भी पूर्वतन कलह-सूत्र पर फिर वाद-विवाद होने लगा। स्वाधिकार प्राप्त नया इटली-सम्प्रदाय रोमक सदस्योंकी पक्षपातिता और निर्वाचन विषयमें अपने पक्षमें राजकीय शक्तिका अलगाव कर घोरतर प्रतिवाद करने लगा। सदस्योंकी घोर प्रतिवृन्दितासे सेनेटसभाका रूप बदल गया था। साम्प्रदायिक वाद-विवाद, आपसमें शत्रुताभाव और प्रजाका चिरन्तन प्रसिद्ध और राजग्राह्य हृदय-भेदी मर्गवीड़ासे समूचा रोम पीड़ितोंके करुण क्रन्दनसे परिपूरित हुआ। अर्धानाश और अन्नाभावके कारण प्रजा ध्वंस होने लगी। रोमके इस कष्टने वहाँकी सभी श्रेणीके लोगों पर अपना प्रभाव जमाया था।

पहला यद्युद्ध (८८-८६ ईसाके पूर्व)

इस गड़बड़ीके दूर होते न होते मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध लड़ाईकी घोषणा की गई। इस समय पण्टसके राजा ईडे मिथ्रिडेटिस या यूटरके साथ रोमका युद्ध अनिवार्य हो गया। पहलेकी लड़ाईमें सहाने जैसे पराक्रम और रणप्रतिभा दिखाई थी, उसकी वृत्त कर ही संवैति उसको इस बार कन्सल नियुक्त किया (८८ ईसाके पूर्व)।

किन्तु युद्ध मेरायास इस पक्षके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगा। सिवा इसके उसने सालपिसियस रुफास नामक एक वयवृत्ता-कुशल और क्षमताशाली व्यक्तिको लूटो हुई धन सम्पत्तिका प्रलोभन दे कर अपने पक्षमें कर लिया। ऐसा कर यह अपने उद्देश्यकी सिद्धि-का उपाय खोजने लगा। सालपिसियसने मेरायासकी मिथ्रिडेटिक युद्धमें अधिनायकत्व प्रदान करनेके लिये एक नया कानून बनाया। सेनेटके सदस्योंने इसकी रोकनेके लिये "जाट्रिशियम" घोषणा की। इसके अनुसार उस समय कोई कानूनी कार्य नियम विरुद्ध कहा जाता था। किन्तु सालपिसियस बलपूर्वक यह रद्द करने पर उतारू हुआ। उसने अपने ३ हजार अलक्रोडोंका एक "पण्टीसेनेट" दल कायम किया और यह इनके साहाय्यसे बलपूर्वक कन्सलोंकी फौरमसे निकाल कर अपनी अभीष्टसिद्धि पर उद्यत हुआ। पम्पियस भाग गया। उसका पुत्र और सल्लाका दामाद कुइएटस मारा गया। सल्लाने अपने फौरमके निकटके मेरायासके घरमें टुक कर अपनी जान बचाई और प्राणके भयसे पूर्वतन "जाट्रिशियम" प्रत्याहार किया।

सल्ला रोम छोड़ कर कम्पनियाके निकट नोला नामक स्थानमें अवस्थित अपने सैन्योंके साथ मिल गया। इधर सालपिसियस और मेरायासने रोम पर अधिकार कर लिया। मेरायास मिथ्रिडेटिक युद्धमें कन्सल नियुक्त हुआ और उरुने सल्लाके सैन्यदलका नेतृत्व ग्रहण कर नोलामें प्रतिनिधि भेजे। यह प्रतिनिधि नोलामें सल्लाकी फौजोंके चलाई ईंटोंके टुकड़ोंसे मर गया। अब सल्लाने अपनी फौजोंकी रोमके विरुद्ध चलाया। इस तरह सल्ला फौजोंके साथ रोम पर अधिकार करने चला। मेरायासने उसकी गतिमें बहुत रुकावटें डालीं, किन्तु यह विफल हुआ। अन्तमें सल्लाने रोम पर अधिकार कर लिया। मेरायास पुत्रके साथ भाग चला। सल्लाने रोम पर अधिकार कर लिया था; किन्तु रक्तपात लूट तराज न होने दी। सालपिसियस अपने गुलामके विभवासाघातसे पकड़ा और मार डाला गया। इस समयसे रोमका राजनैतिक घटनाश्रोत दूसरे प्रणालीसे प्रवाहित हुआ। इस समय अर्थात्









उसके सारे इटालियनों और रोमकोंकी मार डालनेकी बाह्य जारी कर दी। ८०००० रोमक एक दिनमें मार डाले गये। मिथिडेटिसके जयलाभसे यूनानियोंने रोमकी अधीनताको तोड़ कर विद्रोही हो उसकी सहायताके लिये यात्रा की। इस समय सह्याने फीजीके साथ यूनानके अन्तर्गत पपिरासमें आ कर एघेन्स और पिरियास पर घेरा डाल दिया। कुछ ही समयमें सह्याने एघेन्स पर अधिकार कर उसे लूटा पाटा।

मिथिडेटिसके सेनापति आर्थेलास विशाल सैन्य ले कर ध्यूटियामें सह्याके सामसे आ डडा। चोरेनिया नामक स्थानमें भयङ्कर युद्ध होने लगा। किन्तु इस समय एक नयी विपद्बुका सूत्रपात हुआ। मेरायासकी ओरसे एक सैन्य ले कर भालेवियस फ्लाकसको एक दल फौजके साथ यूनानमें मिथिडेटिस और सह्याके साथ ही युद्ध करनेके लिये भेजा गया। फिमिन्ना नामक सेनापतिके साजिशसे फ्लाकस मार डाला गया। पोछे फिमिन्ना सेनापति हो कर मिथिडेटिसके विरुद्ध कई युद्धोंमें परास्त किया (८५ ई०के पू०)। इधर आर्कमिनास नामक स्थानके युद्धमें सह्याने आर्थेलासको पूर्णरूपसे पराजित किया। उस समय मिथिडेटिसने सन्धि की प्रार्थना की। यह ईसाके ८४ वर्ष पूर्वकी घटना है। इसके अनुसार मिथिडेटिस पश्चिमी खण्डके जीते हुए प्रदेशोंको रोमकोंको दे दिया और ७० सुसज्जित जङ्गीजहाज रोमकोंको दिये। युद्धके क्षतिस्वरूप उसने २०० टालेण्ट प्रदान किये। सह्याने सन्धि कर मेरायास द्वारा भेजे हुये फ्लाकसके हत्याकारी सेनापति फिमिन्नासे युद्ध करनेकी तयारी की। यह देव फिमिन्नाकी सेनायें उसे परिवर्त्याग कर सह्याकी फीजीसे मिल गईं। फिमिन्नाने आत्महत्या कर ली। इसके बाद सह्या इटलीकी ओर बढ़ा। सह्याने पश्चिममें विजय प्राप्त करते समय अंगर सम्पत्ति हस्तगत कर ली थी। सिवा इसके यह युद्धमें फंसे रहने पर भी यूनानके टिउस नगरसे म्पेलिकन नामक विराट पुस्तकालय रोम ले आया था। इस पुस्तकालयमें गरिष्ठल और धिउफ्राएसके ग्रन्थ सुरक्षित थे।

ईसाके ८२ वर्ष पूर्व पस्तकालमें ४० हजार सैनिक और बहुसंख्यक पारिवर्षिकोंके साथ सह्या प्राण्डुसियामें

उतरा। उस समय दल सिपियो और नोर्वानास कन्सल थे। सिन्ना और सिसालपाशन, गलोंके प्रो-कन्सल १५वर्षों, सह्याके साथ युद्ध करनेके लिये सैन्य संग्रह कर रहे थे। किन्तु सिन्ना अपने विद्रोहियोंके हाथ मारा गया। मेरायासका दल नेतृहीन हो कर भी सह्याके साथ युद्ध करनेका आयोजन करने लगा। २००००० फीजिं मेरायासके दलको और युद्ध करने लगीं। किन्तु सह्या ४०००० फीजिंके साथ प्राण्डुसियामें उपस्थित था। किन्तु मेरायासका सैन्य दल, अधिनायक और शिक्षाके आभावसे कापुआ, टिनाम और पिनेटिके युद्धमें पराजित हो कर तितर बितर हो गया।

कन्सल नोर्वानास कम्पनीयके युद्धक्षेत्रमें पराजित हो कर रोडस द्वीपमें चला गया। इधर कार्थे और छोटा मेरायास रोमके कन्सल निद्रुक हुए। ईसासे ४२ वर्ष पूर्व सह्याके सैन्यके साथ छोटे मेरायासका साकि-पोटंस नामक स्थानमें युद्ध हुआ। मेरायासने परास्त हो कर मिनेटि नामक स्थानमें आश्रय ग्रहण किया। मिनेटिके उद्धारके लिये दो युद्ध हुए। इस समय पम्पी और कार्विमिटलास सह्याको ओरसे कार्वीके साथ युद्ध करने लगे। सह्या वे-रोक रोममें जा चुका। कार्वी पराजित हो कर अफ्रिका भागा। किन्तु सामनाइट और लुकानियन सह्याके विरुद्ध युद्धार्थ रोमकी ओर दौड़े। कलिनगेट नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। सामनाइट-सेनापति पण्टियास फ्रासकी अद्भूत धीरताके कारण पराजित हुआ और मारा गया। कन्सल मर्शियस नामक रणक्षेत्रमें सह्याके नृपति आर्द्रेसके कई सहस्र सामनाइट और लुकानियन कैदियोंका शिर फाट लिया। इस घटनासे मिनेटि किलेके सैनिकोंने आत्मसमर्पण किया। छोटा मेरायासने आत्महत्या कर ली। लुकानियन निर्दय भावसे मारे गये। सह्या अब इटलीका एकमात्र कर्ता हो गया। उसने मेरायासके पक्षपाती सभी आर्द्रेसियोंके कटे शिर लानेकी आज्ञा जारी की और इसके लिये पुरस्कारका लोभ दिव्याया। इसके अनुसार भीषण लोभ-दर्पण दृश्यका अगिनय होने लगा। २०० सेनेटके सदस्य, ४६ कन्सल, १६०० विचारक और १५०००० रोमवासियोंके शोणित श्रोतसे रोममें भीमरस दृश्य उपस्थित हुआ।



पर आक्रमण कर उसको तंग कर दिया था। उस समय निरुपाय हो कर मिथ्रिडेटिसने एक दल सैन्य संग्रह कर हेलिस नदीके किनारे मरेना पर आक्रमण किया। इस बार मरेना पराजित हो कर फ्रिजिया भागा। उस समय मिथ्रिडेटिसने कापाडोकिया आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया। इस समय (८२ ईसाके पूर्व) गाविनियासने सहाकी आशासे एशिया जा कर मरेनासे युद्ध बन्द करने कहा। इस पर मिथ्रिडेटिसने पूर्ण सन्धिकी शर्तोंके अनुसार कापाडोकिया छोड़ दिया और वह अपने घर लौट आया। इसी तरह दूसरे मिथ्रिडेटिसयुद्धका अन्त हुआ।

तीसरा या महामिथ्रिडेटिक युद्ध (७४ ई०के पूर्व ०)

मिथ्रिडेटिस रोमकोंको अभिसन्धि जान कर भीतर ही भीतर युद्धकी तय्यारी करने लगा। मेरावास पक्षीय सेनापति स्पेनके साटारियास और हजारों जल-डाकू उसके दलमें आ मिले। इसी समय मिथ्राइनियाके राजा ३रे निकोमिडस अपनी मृत्युके समय अपना सम्बन्ध राज्य रोमके प्रजातंत्रके नाम सौंपा गया। किन्तु निकोमिडसकी नाइसा नाम्नी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न लड़केको गद्दी पर बैधानिके लिये मिथ्रिडेटिसने साहाय्य करने लगा। इसके सम्बन्धमें भीषण युद्ध हुआ।

रोमक सैनिक लुकालस और अरिलियासकहा उनके विरुद्ध युद्धके लिये भेजे गये। मिथ्रिडेटिसने पहले सन्धि विधाएनियो पर अधिकार कर लिया। अंतमें मिथ्रिडेटिसको पराजित किया और उसको मित्रिकास नामक स्थानमें घेर कर खाद्य द्रव्यकी आमाद रपत रोक दिया। उस समय वह अपने राज्यमें लौट आया। किन्तु लुकालसने उसका पीछा कर उसको फिर पराजित किया। मिथ्रिडेटिसने अपने दामाद अर्मोनियाके राजा टाइमनेसके मिलित सैन्य ले कर रोमक-सेनापति फेरियासको सम्पूर्णरूपसे पराजित किया। इसके बाद (६७ ईसाके पूर्व) रोमक सेनाध्यक्ष, ट्रियारियस जिला नामक स्थानमें भयङ्कर युद्धमें पराजित हुआ। रोमकोंके घेरे और युद्धसामग्री शत्रुके हाथ लगी।

इधर लुकालासके विपक्षियोंको रोममें प्राधान्यताम करने पर उन्होंने लुकालासको रणक्षेत्रसे लौट आनेकी आशा भेज दी। उससे लुकालासकी सैन्य विद्रोही हो

उठी। इस अवसर पर मिथ्रिडेटिस और टाइमनेसने फिर पण्टास और कापाडोकिया पर अधिकार कर लिया। लुकालासके विपक्षियोंने उसके वदले प्लिमिओको कम्सल नियुक्त कर युद्धक्षेत्रमें भेजा। किन्तु वह शत्रुपक्षका कुछ भी बिगाड़ न सका। मिथ्रिडेटिस (६७ ईसाके पूर्व) फिर अपने सिंहासन पर बैठा। इसी समय पम्पो मिथ्रिडेटिस युद्धके सेनापति होनेके कारण लुकालासने अपना पद परित्याग किया।

जल डाकुओंके साथ युद्ध।

इस समय भूमध्यसागरके जल इकैतोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया था। सिरिया, साइप्रस और फीतहीयके सभी आदमी इस काममें लित थे। उन सर्पोंने ध्व-सायिक जहाजोंको लूटने पाटनेसे बहुत धन संग्रह किया था। उनके पास एक हजार जङ्गीजहाज और बहु-तरी सुशिक्षित फौजे तथा मल्लाह थे। वे प्रबल-पराक्रान्त हो उठे थे। उन्होंने अद्रिया बन्दरमें कई रोमक जहाजोंको जला दिया तथा अष्टेनियासकी दुहिता तथा पुत्रकी पकड़ लिया था। इस पर रोमसे मर्भिलियस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। ईसाके ६७ वर्ष पूर्व ट्रिप्पून नेविनियस 'लेफस नेवेनिया' नामका एक कानून बना कर भूमध्य-सागरके युद्धादि-निर्वाह करनेके लिये एक क्षमताशाली शासनकर्ताके नियोगका नियम बनाया। इसके अनुसार २०० जङ्गीजहाज तैयार हुए। पम्पो इन सब जहाजोंके अधिनायक बन कर युद्ध करने चला और ३ महोनेके भीतर उसने उन जल-डाकुओंको परास्त किया। २०००० जल डाकू कैद कर लिये गये। किन्तु पम्पोने इनको जानसे न मार कर इनसे एशिया-माइनर और अन्यान्य स्थानमें उपनिवेश स्थापित कराया। इसके बाद पम्पोने सिलिसिया नामक स्थानके जल-डाकुओंके सुरक्षित किलोंका ध्वंस किया। ईसाके ६६ वर्ष पूर्व ट्रिप्पून मनिलियसने 'लेफसमानिलिया' नामका कानून बना कर पम्पोको मिथ्रिडेटिक युद्धको अध्यक्षता सौंपी। सिसिरो और जूलियस सीज़रने पम्पोका पक्ष संवर्धन किया था। समाचार पाते ही पम्पोने एशिया जा कर लुकालाससे सेनापतित्व प्रदण किया और कौंसलसे पार्थिव नरपतिको हाथमें कर सहीन्य मिथ्रिडेटिसके



मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने भोजस्यो भाषाओं में सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वषतृता दी थी।

वह गैचिनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें केपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सल्ला द्वारा तोड़ी गई थी। सोजरके इस कामसे प्रजाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। फेचेल्लासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ पिगाड़ न सकी। इस तरह सोजर, मेरायास, सल्ला और मार्टिनास आदिने प्रजापक्षीय धीरोंको विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टाल्लियास सिसिरो सोजरके सहकर्मों रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सरोसियासके प्राणदण्डकी आज्ञाके समय डिक्रेटर सल्लाके विरुद्ध भोजस्यनी भाषाओं में वक्तृता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दोलन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिया नाम्नी एक वेश्याके प्रेम-फांसामें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वक्तृताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्सल पद पाया। इसी समय एक और द्रिष्टिकून, कन्सल क्लियसम्बन्धीय एक कानून बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुपिटरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर उर्ध्वो नयम्बरकी सेनेटके सदस्योंकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटोलान् अव सैन्य संहार कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके

साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन पराजित हुआ और मारा गया। सिसिरोके बुद्धिबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये केटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवीमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको बिना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पो रोममें आ कर दो विपद्में फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूँ—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागीर देनेकी प्रतिज्ञा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दो जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पो कींगलसे प्रनिष्ठा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सोजरसे उसने मिलता स्थापित की। सोजर इस समय स्पेन और ल्यूसेटानियाके युद्धमें विजय प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सोजर और क्रासस इन तीनोंकी मिलता पहले 'ट्रायभिमरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यथार्थमें ये तीन पुरुष ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सोजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सोजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और कम्पिनियाके भूमिदण्डकी पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सोजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पीके पदिया-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सोजरने पम्पीके साथ मिलता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहितिका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सोजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका मित्रपात्र हो उठा। सोजर रोम-साम्राज्यके प्राधायक्यताम कर हीग्यबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। द्रिव्युत मेडिनियासकी अनुकूलतासे यह सिसाल-पाइन-गल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। यहाँ एक बड़ी

विशद स्थलपथसे याता की। मिथ्रिडेटिसने मस्त्रिकी प्रार्थना की। किन्तु इस प्रार्थना पर पर्पाने जरा भी ध्यान न दिया। तब मिथ्रिडेटिस अर्मेनिया भाग और पर्पाने द्वारा सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ। पीछे मिन्ने-रिपम्बके हुँवेंच दुर्गमें रह कर उसने फिर सैन्यसंग्रह कर लिया। किन्तु इस बार उसका दामाद टाइब्रेनसने उसकी सहायता न की। मिथ्रिडेटिस सैन्यके साथ पस्कोरसके निकटके अपने राज्यमें भाग गया।

पर्पाने उसका पीछा न कर टाइब्रेनस पर आक्रमण किया। टाइब्रेनसका पुत्र पिताने बगावत कर पर्पानेकी ओर हो गया। साथ ही अर्मेनियाके सभी नगरवासियों ने पर्पानेकी अधीनता स्वीकार कर ली। निरुपाम हो कर टाइब्रेनसने पर्पानेके सामने आत्मसमर्पण किया। पर्पाने उसके साथ सद्रुव्यवहार कर ६००० टेलेण्ट ले कर उसकी अर्मेनियाका राजा स्वीकार करना चाहा। सिरिया, फिनीकिया, मिस्रिया और कापाडोकिया रोमके अधि-कारमें आया। पर्पाने इसके बाद मिथ्रिडेटिसके विशद यात्रा की। राहमें आशरियन और अरुवेनियनोंके साथ उसका युद्ध हुआ। दोनों जातियोंने उसकी पशुवता स्वीकार कर ली (६५ ईसाके पूर्व)। किन्तु मिथ्रिडेटिसका अनुसरण कष्टसाध्य समझ कर लॉट कर उसने पेट्रासमें रोमक शासन कायम किया। इसके बाद पर्पाने सिरियाराज्यके धर्मसाधरोपमें जो सब स्थापित राज्य उद्भूत हुआ था, उस पर अधिकार करने लगा। अन्ति-ओरुस एजियाटिकस राज्यकयुत हुआ और उसका राज्य अधिकृत हुआ। इस तरह सारा सिरिया और उसके निकटके देशोंमें रोमक शासन प्रतिष्ठित कर (६३ ई०के पूर्व) पर्पाने फिनीकिया और पलेस्ताइन देशमें यात्रा की। इस समय हिकानाम और अरिष्ठा-पुलास नामक पलेस्ताइनके पुरोहित दोनों नरपति युद्धमें मर चुके हुए। पर्पाने हिकानामका पत्न लेने से अरिष्ठा-पुलासने शर्म ही आत्मसमर्पण किया। किन्तु राजाके पराजित होने पर भी जेरुजेन्मवासियों पहली प्रज्ञानि रोमकोंकी अधीनता स्वीकार न की। तब प्रासके घेरेके बाद जेरुजेन्म पर अधिकार हुआ। पर्पाने उस पवित्र-रुम मन्दिरमें (Holy of Holies) प्रवेश किया। इससे

पहले पवित्र पहरी पुरोहितके सिवा इस मन्दिरमें कोई घुस न सकता था। पर्पाने हिकानामको पुरोहितके सिद्धासन पर प्रतिष्ठित कर अरिष्ठापुलासको कैद कर रोम-की यात्रा की। इस समय उसने मिथ्रिडेटिसकी मृत्युका समाचार मिला। मिथ्रिडेटिस मृत्युके पहले विराट सैन्य दल संगठन पर हानिबलकी तरह इटली आक्रमणका संकल्प कर रहा था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र फार्नासिसने कुछ दिनों तक विपक्षता की थी। पीछे उसने पस्कोरसका राजा बन रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली और डिमो-टेरस, गैलेशिया और एरिओ वाजेन्स कांपोडोकियाका करद राजा बना। पर्पाने जीते हुए देशोंमें ३६ नये नगर प्रतिष्ठित किये। इसी समय रोमकी पूर्वी सीमा दूर तक फैली।

रोमके शाही प्रदेशोंमें रोमकी विजय यैतपन्ती फेर-राने पर भी विशेष कोई उन्नति नहीं हो सकी। गैथियन और मानिलियन कानूनों द्वारा सैनिकी क्षमता कम हो गई थी। प्रजा अपनी अयनति देण फ्रासेसकी मुलापेक्षी हुई। साधारण पक्षके मध्य रोममें जुलियस सीज़रकी प्रतिभा व्याप्त हुई। यह रोममें प्रधानता लाभ कर गौरव-पथ पर चढ़ने लगा। उसने ईसाके १०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। यह पर्पानेसे ६वर्ष छोटा था। उसके चाचाकी पुत्री जुलियाके साथ विषयात मैतापासका विवाह हुआ। सीज़रने अपने सिरगाकी कन्या कर्निलियाके साथ विवाह किया था।

रोमका तत्कालिक इतिहास (६६-६१ ई० पूर्व)

सन्धाने सीज़रकी प्रतिभा देख कर कहा था, कि एक दिन इस नये सभ्रदायका प्राधान्य इस बालक द्वारा हो प्राप्त होगा। सीज़रने बचपूजाक्रिममें भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने रोमके अलकारिकोंसे जिज्ञा लाभ की थी। आपत्तीनिवमने उसकी आराधना की थी। मैतापासके पत्रदा पुनः जीवन करना ही सीज़रका उद्देश्य था। अपने व्यवहारसे यह सर्वताधा-रणा विषयात्त हो उठा था। ईसाके ६८वर्ष पूर्व उसने कोपेटका पद प्राप्त किया। किन्तु इसी समय उम्बेरी पत्नी कर्निलिया और मैतापासकी विषया पत्नी जुलिया

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजसो भाषामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वधवृत्ता दी थी।

वह गेविनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें कैपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सल्ला द्वारा तोड़ी गई थी। सोजरके इस कामसे प्रज्ञाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। कैचेल्लासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ विगाड़ न सकी। इस तरह सोजर, मेरायास, सल्ला और मार्टिनास आदिने प्रजापक्षीय चीतोंको विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टाल्लियास सिसिरो सोजरके सहकर्मियों रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सरोसियासके प्राणदण्डकी आशाके समय डिक्टेटर सल्लाके विरुद्ध ओजसिनी भाषामें वधवृत्ता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दोलन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरकी प्रजासभेत ध्वंस करनेके लिये घेरल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिटा नामी एक वेश्याके प्रेम-फांसामें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वधवृत्ताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्सल पद पाया। इसी समय एक शोरद्विषुन, कन्सल एपिसाम्यन्धोय एक कानून बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुवितरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर उर्वी नवम्बरकी सेनेटके सदस्योंकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटोलान् अब सैन्य सांग्रह कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके

साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन पराजित हुआ और मारा गया। सिसिरोके बुद्धिबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये कैटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवोमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको विना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधो बनाया।

पम्पो रोममें आ कर दो विपद्में फांसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस्त पक्षका अवलम्बन कर—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागीर देनेकी प्रतिष्ठा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। जब पम्पो कीशालसे प्रतिष्ठा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सोजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सोजर इस समय स्पेन और द्यूसेटानियाके युद्धमें विजय प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पो, सोजर और क्रासस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायमिरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यद्यार्थमें ये तीन पुत्र ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सोजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सोजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पोकी प्रार्थना पूरी की और कम्पिनियाके भूमिदण्डकी पम्पोकी सेनाओंमें बांट दिया। सोजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पोके पतिया-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सोजरने पम्पोके साथ मित्रता हट कर देनेके लिये अपना दुहितारा विवाह पम्पोके साथ कर दिया। सोजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका प्रियपाल हो उठा। सोजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यताम कर सैन्यबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। द्रिव्युत मेडिनियासकी अनुकूलतासे यह सिसाल-पाइन-गल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। वहाँ एक बड़ी



विशुद्ध रूपलपघसे यात्रा की। मिथ्रिडेटिसने मन्थिकी प्रायंता की। किन्तु इस प्रायंता पर पम्पनी जरा भी ध्यान न दिया। तब मिथ्रिडेटिस अर्मेनिया भागा और पम्पनी द्वारा सम्पूर्ण रूपसे पराजित हुआ। पीछे मिनी-रियसके दुमेष दुर्गमें रह कर उसने फिर सैन्यसंग्रह कर लिया। किन्तु इस बार उसका साम्राज्य टाइब्रेनसने उसकी मशायता न की। मिथ्रिडेटिस सैन्यके साथ यफ़ोरसके निकटके अपने राज्यमें भाग गया।

पम्पनी उसका पीछा न कर टाइब्रेनस पर आक्रमण किया। टाइब्रेनसका पुत्र पितासे बग़ायत कर पम्पनीकी ओर हो गया। साथ ही अर्मेनियाके सभी नगरवासियों ने पम्पनीकी अधीनता स्वीकार कर ली। निरुपग्रह हो कर टाइब्रेनसने पम्पनीके सामने आत्मसमर्पण किया। पम्पनीने उसके साथ सदृश्यवहार कर ६००० टेटेष्ट ले कर उसकी अर्मेनियाका राजा स्वीकार करना चाहा। सिरिया, फिनीकिया, मिलिशिया और कापाडोकिया रोमके अधिकायमें आया। पम्पनीने इसके बाद मिथ्रिडेटिसके विशुद्ध यात्रा की। राहमें आशघेरिमन और अलधेनियनोंके साथ उसका युद्ध हुआ। दोनों जातियोंने उसकी वशयता स्वीकार कर ली (६५ ईसाके पूर्व)। किन्तु मिथ्रिडेटिसका अनुसरण कष्टसाध्य समझ कर लौट कर उसने पट्टासमें रोमक शासन कायम किया। इसके बाद पम्पनी मिरियाराज्यके ध्वंसावशेषमें जो सब स्थापित राज्य उद्भूत हुआ था, उस पर अधिकार करने लगा। अन्तिमोरस एशियाटिकस राज्यच्युत हुआ और उसका राज्य अधिष्टत हुआ। इस तरह सारा सिरिया और उसके निकटके देशोंमें रोमकशासन प्रतिष्ठित कर (६३ ई०के पू०) पम्पनीने फिनीकिया और पलेस्ताइन देशमें यात्रा की। इस समय हिर्कानास और अरिष्टाबुलस नामक पेलेस्टाइनके पुरोहित दोनों नरपति युद्धमें मर चुके थे। पम्पनीके हिर्कानासका पक्ष लेने से अरिष्टाबुलसने भी प्रीति ही आत्मसमर्पण किया। किन्तु राजाके पराजित होने पर भी जेडजेडमयासो यहूदी प्रजाते रोमकीकी अधीनता स्वीकार न की। तीन मासके घेरेके बाद जेडजेडम पर अधिकार हुआ। पम्पनीने उस पवित्र-तम मन्दिरमें (Holy of Holies) प्रवेश किया। इसमें

पढ़ले पवित्र यहूदी पुरोहितके सिवा इस मन्दिरमें कोई घुस न सकता था। पम्पनीने हिर्कानासको पुरोहितके सिद्धासन पर प्रतिष्ठित कर अरिष्टाबुलसको कैद कर रोमकी यात्रा की। इस समय उसको मिथ्रिडेटिसकी मृत्युका समाचार मिला। मिथ्रिडेटिस मृत्युके पहले विराट सैन्य दल संगठन कर हानियलकी तरफ इटली आक्रमणका संकल्प कर रहा था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र फार्नासिसने कुछ दिनों तक विपक्षता की थी। पीछे उसने यफ़ोरसका राजा बन रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली और डिमो-टेरस, गेलेशिया और परिओ वार्जेनस कांपोडोकियाका कर्तृ राजा बना। पम्पनीने जीते हुए देशोंमें ३६ नये नगर प्रतिष्ठित किये। इसी समय रोमकी पूर्वी सीमा दूर तक फैली।

रोमके बाहरी प्रदेशोंमें रोमकी विजय वैतन्ती कह-राने पर भी विशय कोई उन्नति नहीं हो सकी। गेवियन और मानिलियन कानूनों द्वारा सेनेटकी क्षमता कम हो गई थी। प्रजा अपनी अवनति देख पासेसकी मुलापेसी हुई। साधारण पक्षके मध्य रोममें जुलियस सीजरकी प्रतिभा ध्यात हुई। वह रोममें प्रधानता लाभ कर गीर्य-पथ पर चढ़ने लगा। उसने ईसाके १०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। वह पम्पनीसे ६५ वर्ष छोटा था। उसके चाचाकी पुत्री जुलियाके साथ विषयात मैतयासका विवाह हुआ। सीजरने अपने सिन्नाकी कन्या कर्मिलियाके साथ विवाह किया था।

रोमका तत्कालिक इतिहास (६६-६३ ई० पूर्व)

सल्लाने सीजरकी प्रतिभा देख कर कहा था, कि एक दिन इस नये सम्राट्यका प्राचाप्य इस कालक द्वारा हो हास होगा। सीजरने वस्तुतात्कामे भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उमने रोडसके अलफारिकीने जिज्ञा लाभ की थी। भाषणनियन्त्रण उसकी सात्त्विका की थी। मैतयासके पक्षता पुनः जोषित करना ही सीजरका उद्देश्य था। अपने व्यवहारसे वह सर्वसाधारणता प्रियपात्र हो उठा था। ईसाके ६२वर्ष पूर्व उमने कोथेष्टका पद प्राप्त किया। किन्तु इसी समय उसकी पत्नी कर्मिलिया और मैतयासकी विषया पत्नी जुलिया

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजस्वी भागामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वधवृत्ता दी थी।

वह गेविनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठभूषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासको प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें कैपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सहा द्वारा तोड़ी गई थी। सोजरके इस कामसे प्रजाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। कैविलासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ विगाड़ न सकी। इस तरह सोजर, मेरायास, सिला और मार्टिनास आदिने प्रजापक्षीय धोरोंकी विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टाल्लियास सिसिरो सोजरके सहकर्मों रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सरोसियासके प्राणदण्डकी आशाके समय डिक्रेटर सल्लाके विरुद्ध ओजस्विनी भागामें वक्तृता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दोलन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिया नाम्नी एक वेश्याके प्रेम-फांसामें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वधवृत्ताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्सल पद पाया। इसी समय एक और द्रिष्टान्त, कन्सल क्लियाम्बन्धोय एक कानून बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुपिटरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर ८वीं नवम्बरकी सेनेटके सार्वस्योकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटोलाइन अब सैन्य संहार कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके

साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन पराजित हुआ और मारा गया। सिसिरोके युद्धबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये कैटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे द्वेषमन्दिमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंकी बिना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पी रोममें आ कर दो विपद्में फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूँ—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंकी जागीर देनेकी प्रतिष्ठा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पी कीशलसे प्रतिष्ठा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये फ्रांस और सोजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सोजर इस समय स्पेन और ल्यूसैटानियाके युद्धमें विजय प्राप्त कर रोममें लौट आया और यह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सोजर और फ्रांसस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायमिरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यद्यार्थमें ये तीन पुष्ट ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सोजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सोजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और कम्पिनियाके भूमिदण्डको पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सोजरकी मध्यस्थतामें सेनेटकी वाध्य हो कर पम्पीके पनियान-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सोजरने पम्पीके साथ मित्रता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहित्राका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सोजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका प्रियपात्र हो उठा। सोजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यलाभ कर होम्बल ददानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। द्रियून मेरिनियासकी अनुकूलतासे वह सिसाल-पाइन-गल और इल्लिरिकन प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। यहाँ एक बड़ी

विद्युत् स्पन्दपथसे याता की। मिथ्रिडेटिसने मन्थिरी प्रार्थना की। किन्तु इस प्रार्थना पर पर्णाने जरा भी ध्यान न दिया। तब मिथ्रिडेटिस अर्मेनिया भाग आया पम्पो द्वारा सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ। पीछे मिनेरियमके दुर्भेद्य दुर्गमें रह कर उसने फिर सैन्यसंग्रह कर लिया। किन्तु इस बार उसका दामाद टाइमनेसने उसकी सहायता न की। मिथ्रिडेटिस सैन्यके साथ पस्कोरसके निकटके अपने राज्यमें भाग गया।

पम्पोने उसका पीछा न कर टाइमनेस पर आक्रमण किया। टाइमनेसका पुत्र यितामे वगायत कर पम्पोकी ओर ही गया। साथ ही अर्मेनियाके सभी नगरवासियों ने पम्पोकी अधीनता स्वीकार कर ली। नियुक्त हो कर टाइमनेसने पम्पोके सामने आत्मसमर्पण किया। पम्पोने उसके साथ सद्ब्यवहार कर ६००० टैलेण्ट ले कर उसकी अर्मेनियाका राजा स्वीकार करना चाहा। सिरिया, फिनिकिया, मिलिजिया और कापाडोकिया रोमके अधीकारमें आया। पम्पोने इसके बाद मिथ्रिडेटिसके विद्युत् यात्रा की। शहरमें आधेदिन और अर्धेदिनयोंके साथ उसका युद्ध हुआ। दोनों जातियोंने अपनी पर्यता स्वीकार कर ली (६५ ईसाके पूर्व)। किन्तु मिथ्रिडेटिसका अनुसरण कष्टसाध्य साधक फिर लौट कर उसने पस्कोरसने रोमक शासन कायम किया। इसके बाद पम्पो सिरियाराज्यके धर्मसावशेषमें जो सब स्वाधीन राज्य उद्भूत हुआ था, उन पर अधिकार करने लगा। अन्ति ओरुस एजियाटिकस राज्यकयुक्त हुआ और उसका राज्य अधिकृत हुआ। इस तरह सारा सिरिया और उसके निकटके देशोंमें रोमक शासन प्रतिष्ठित कर (६३ ईसाके पूर्व) पम्पोने फिनिकिया और पलेस्ताइन देशमें यात्रा की। इस समय हिकानास और भरिष्ठा-पुत्तम नामक वेलेष्टारनके पुरोहित दोनों नरपति युद्धमें मरत हुए। पम्पोके हिकानासका पक्ष लेने से भरिष्ठा-पुत्तमने जीप ही आत्मसमर्पण किया। किन्तु राजाके पराजित होने पर भी जेफ़ेज़मवासो पहली प्रजाति रोमकी ही अधीनता स्वीकार न की। तीन मासके घेरेके बाद जेफ़ेज़म पर अधिकार हुआ। पम्पोने उस पवित्र-तम मन्दिरमें (Holy of Holies) प्रवेश किया। इनमें

पहले पवित्र यहूदी पुरोहितके सिवा इम मन्दिरमें कोई गुस न सकता था। पम्पोने हिकानासको पुरोहितके सिद्धामन पर प्रतिष्ठित कर भरिष्ठापुत्तमकी कैद कर रोमकी यात्रा की। इस समय उसकी मिथ्रिडेटिसकी मृत्युका सामाचार मिला। मिथ्रिडेटिस मृत्युके पहले विराट सैन्य दल संगठन कर हागियलकी तरफ इटली आक्रमणका संकल्प कर रहा था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र फार्नासिसने कुछ दिनों तक विपन्नता की थी। पीछे उसने पस्कोरसका राजा बन रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली और मिथ्रिडेस, गेलेजिया और एरिओ वार्जेनस कापोडोकियाका कर्तु राजा बना। पम्पोने जीते हुए देशोंमें ३६ नये नगर प्रतिष्ठित किये। इसी समय रोमकी पूर्वी सीमा दूर तक फैली।

रोमके बाहरी प्रदेशोंमें रोमकी विजय पैतृगतो केदराने पर भी विशेष कोई उपति नहीं हो सकी। मेसियन और मानिलियन कानूनों द्वारा सैनिकी क्षमता कम हो गई थी। प्रजा अपनी भयनति देण फ्रांसिसकी मुन्वापेसी हुई। साधारण पक्षके मध्य रोममें तुलियस सीजरकी प्रतिभा व्याप्त हुई। यह रोममें प्रधानता लाभ कर गौरव-पथ पर चढ़ने लगा। उसने ईसाके १०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। यह पम्पोसे ६५ वर्ष छोटा था। उसके चाचाकी पुत्री तुलियाके साथ विवाह मैतायासका विवाह हुआ। सीजरने अपने सिन्गाकी कन्या कर्निलियाके साथ विवाह किया था।

रोमका उत्तमाधिक इतिहास (६६-६९ ई० पूर्व)

सन्धाने सीजरकी प्रतिभा देण कर कहा था, कि एक दिन इस नये सम्प्रदायका प्राचाम्य इम बालक द्वारा ही प्राप्त होगा। सीजरने पणनृत्तान्तिकमें भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने रोड्मके मलफारिकोंमें शिक्षा लाभ की थी। माप्लोनियमने उसकी भातापना की थी। मैतायासके पक्षदा पुनः जीवित करना ही सीजरका उद्देश्य था। अपने व्यवहारसे यह सर्वसाधारणता प्रिययात हो उठा था। ईसाके ६८ वर्ष पूर्व उसने कोयेष्टा पद प्राप्त किया। किन्तु इसी समय उसकी पत्नी कर्निलिया और मैतायासकी विषया पत्नी तुलिया

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजस्वी भावामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वधवृत्ता दी थी।

वह गेविनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान वृष्टपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें केपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सल्ला द्वारा तोड़ी गई थी। सीजरके इस कामसे प्रज्ञाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। केपेलासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ पिगाड़ न सकी। इस तरह सीजर, मेरायास, सल्ला और मार्टिनास आदिने प्रजापक्षीय धोरोंको विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टाल्लियास सिसिरो सीजरके सहकर्मों रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके ६० वर्ष पूर्व आर्पिन्याम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेपसरोसियासके प्राणदण्डकी आज्ञाके समय डिक्रेटर सल्लाके विरुद्ध ओजस्विनी भावामें वधवृत्ता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दोलन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिता नामी एक वेश्याके प्रेम-फांसामें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसाकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वधवृत्ताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्सल पद पाया। इसी समय एक और वृष्टपुत्र, कन्सल क्विन्तिलियनस एक कानून बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशको नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने क्विन्टिलियनके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर दूरी नगरके सेनेटके सार्वस्विकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटो लाइन अब सैन्य संग्रह कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसको फौजीक

साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन पराजित हुआ और मारा गया। सिसिरोके युद्धबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये केटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवोमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको बिना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पो रोममें आ कर दो विपद्में फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूँ—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने पशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागोर देनेकी प्रतिज्ञा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागोर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पी कीशालसे प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सीजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सीजर इस समय स्पेन और ल्यूसैटानियाके युद्धमें विजय प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सीजर और क्रासस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायभिरैट' नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि ये तीन पुरुष ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सीजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सीजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और कम्पिनियाके भूमिदण्डको पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सीजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पीके पशिया-विजय-कार्यका सुमर्धन करना पड़ा। इसके बाद सीजरने पम्पीके साथ मित्रता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहितिका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सीजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका मित्रपात हो उठा। सीजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यलाभ कर हीयबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। ट्रिब्यून मेटिनियासकी अनुकूलतासे यह सिसाल-पारन-गल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक यह इस पद पर था। यहां एक बड़ी

विनाल सौम्य सुनिश्चिन करने लगा। जिन गल्लोंने एक दिन इटलीका बहुत अनिष्ट किया था, उन गल्लोंका यह दमन करनेको बात सोचने लगा।

उक्त तत्वमीर समिति या ट्रायम्बरेटके बुलाने पर सिस्सिरो उनके दलमें सम्मिलित नहीं हुआ। इसलिये ट्रिब्यून पोप्लुडियामने सिस्सिरोसे प्रवृत्ताचरण करनेकी चेष्टा की। ईसाके ६२ वर्ष पूर्व सीजरकी खोका "वीना डिया" प्रतीपलक्षमें पुकारोंका आना निषेध रहने पर भी क्लडियाम स्त्री वेगमें स्त्री मण्डलोंमें घुस गया था। क्लडियामके अभियोगके सम्बन्धमें सिस्सिरोकी गवाही देने पर उसके साथ विरोधका कारण उपस्थित हुआ। विनागकोंके अधिचारसे क्लडियामकी छुटकारा मिला था। क्लडियामने एक कानून बनाया, कि जिसने विना मामला चलाये रोमकोंको फांसी दिलायाया है, यह निर्वासित किया जायगा। इसलिये सिस्सिरो रोम छोड़ कर यूनायन चला गया। यह ईसाके ५८ वर्ष पूर्वको घटना है। इस कावर्षमें क्लडियामने तत्वमीर-समितिको राय नहीं ली। पहले पगो द्वारा कौटुम्हिकताको छोड़ देनेके फलसे पगोके साथ उसकी प्रवृत्ता उत्पन्न हुई। पगोने इसका बहुत बुरा होनेके लिये यह चेष्टा की, कि किसी तरह सिस्सिरो फिर रोममें बुला लिया जाय। पगोकी मनस्कामना पूर्ण हुई। सैनेटने उस तो बुलानेके लिये दूत भेजा और ईश्वरकी कृपासे यह एक बार फिर रोम लौट आया। रोममें सिस्सिरोके लौटने पर उसकी कल्याण-कामनाके लिये लुपिटर-मन्दिरमें पूजा चढ़ाई गई। यह ४५ सितम्बर मन् ५७ ईसाके वर्षकी घटना है।

सीजरकी चौथी यात्रा (५५ वर्ष ईसाके पूर्व)।

ईसाके ५६ वर्ष पूर्व सीजरने गूटानी प्रदेशमें सेनेटी जातिके विरुद्ध यात्रा की और वहाँसे कैले और बोलन प्रदेशोंके निरुद्धके मरिनी और मेनापाई जातिकोंके तुर्षेय दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सीजर रात नदीके किनारे केन्टिक जातिके साथ युद्धमें जित हुआ। इस युद्धमें जर्मनोंकी सीजरने पूर्णरूपसे पराजित किया। जयप्राप्त कर सीजरने दून दो दिनोंमें राइन नदी पर एक पुल तैयार कर राइन नदीको पार किया। यहाँमें लौट कर बोलन और सेलाग्नो नामक स्थानोंके अधिवासियोंकी

हरा कर रोममें यह लौट आया। सीजर इसी समय गूटेन पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प कर कैलेके निरुद्ध-यसों इटियास नामक स्थानोंमें जहाज पर चढ़ कर माउथ फोरलैण्ड नामक स्थानमें उतरा। गूटेन भीम-पराक्रमसे युद्ध करके भी पराजित हुए।

सीजरकी पांचवीं और छठी यात्रा (ईसाके ५४ वर्ष पूर्व)।

इस बार ५ लीजन ले कर सीजर गूटेनमें आया। गूटेन मिडलनेसस और एसेसस प्रदेशके अधिपति बेमि-भेलनासको सेनापति बना कर युद्ध करने लगे। गूटेन कई युद्धोंमें पराजित हुए। उन्होंने रोमक सैनिकों पर आक्रमण किया सही; किन्तु वे सीजरके साथ युद्धमें पराजित हो कर भाग गये। किन्तु शोष ही विश्रेही हो कर वे स्वाधीनताकी चेष्टा करने लगे और बहुतेरे रोमक सैनिकोंको उन्होंने मार डाला। सीजरने सिरसान्यायन गलसे दो दल सैनिक एकत्र कर गल्लोंको पराजित कर फिर विद्रोहियोंको भागने यत्नमें किया। जर्मनोंने जर्मनी साहाय्य किया था। इससे सीजरने फिर राइन नदी पार कर जर्मनोंको हराया। गल्लोंने फिर रोमकोंके विरुद्ध प्रवृत्तयेगसे अन्न चारण किया।

सीजरकी ७वीं यात्रा (ईसाके ५२ वर्ष पूर्व)।

मसिङ्गेटोरिषस नामक एक प्रसिद्ध घोर गल्लोंका सेनापति बना। इसके प्रबल-प्रभावके कारण सीजरके ६ वर्षोंकी विजयविभूति पर पानी फिर जानेका उपक्रम हो गया था। गल्लोंका यह सेनापति घर्गाण्डो प्रदेशके एलसिया नगरके किलेमें जा कर डूरा। बहुतेरे गल्ल-सैनिकोंने रोमक सैनिकोंकी घेर लिया। इस विपद्के समय सीजरने प्रभूत साहस तथा अनुल बल-विक्रममें गल्लोंको छिन्न भिन्न कर दिया। एलसिया सीजरके अधि-कारमें आ गया। गल्लोंके सेनापति कौटु कर लिया गया।

सीजरकी ८वीं यात्रा (५१ ईसाके पूर्व)।

सीजरने इस यात्रामें समूचे गल्ल देश पर अधिकार कर वहाँ रोमक-शासनकी प्रतिष्ठा की। प्रत्येक प्रदेशमें शासन-व्यवस्था और 'कर' निर्धारित कर यह रोम सौहार्द करनेकी तैयार हुआ। इस तरह नी वर्ष तक लगातार

युद्ध कर, सौजरने, रोम-साम्राज्यकी उत्तरी सीमाकी बहुत दूर तक बढ़ा दिया।

इसके ५४ वर्ष पहले क्लासस पांचवें राजाओंके साथ युद्ध करनेके लिये सिरिया गया। किन्तु सूखता-वशात् २०००० रोमक उनके हाथ पराजित हुए तथा मारे गये। उनके कटे शिर पाचिय-राजके दरवारमें भेजे गये। क्लाससकी मृत्युसे पम्पी और सौजर रोमके अधिनायक थे। कुछ ही समयमें इन दोनोंमें परस्पर विद्वेष हो गया। सौजरकी कन्या और पम्पीकी पत्नी जुलियाकी मृत्युसे इनका सम्बन्ध और भी क्षीण हो गया। सभीके मुंहसे सौजरकी गल-विजयकी बात पम्पीको असह्य हो गई थी। इसके बाद पम्पी डिक्टेटरका पद प्राप्त कर सार्वभौम आधिपत्य-लाभ करनेकी चेष्टा करने लगा।

इस समय बड़ी शराजकता फैली। माइलोनने कन्सल हो कर क्लडियसको मार डाला। सौजरकी कन्या जुलियाके मर जानेके बाद पम्पीने नेटेलस सिपियोकी कन्या फर्गिलियासे विवाह किया। अपने भ्रतुरको शीघ्र ही उसने कन्सल पद पर नियुक्त किया। किन्तु सौजरकी कन्सल-पदका प्रार्थी होना देख कर पम्पीने एक कानून बनाया। इसके अनुसार किसी भी पदके प्रार्थीको रोममें रह कर उसे पद प्राप्त ही प्रार्थना करने होगी। कोई भी नियुक्तिकी तारीखसे ५ वर्षसे अधिक एक प्रदेशमें शासक न रह सकेगा। इसी समय सिपियोने एक आज्ञा प्रचारित की, कि "सौजर अमुक दिनकी अपने पदसे इस्तेफा दाखिल न करेगा, तो वह रोमका शत्रु समझा जायेगा।" सेनेटने नव-नियुक्त कन्सलोंको डिक्टेटरकी क्षमता प्रदान की सही; किन्तु दिव्यून आण्टोनियस और काल्पुसो इसके विरुद्ध आज्ञाका प्रतिवाद करनेमें रोमसे निकले गये। इसके बाद युद्धरूपसे सौजरके खेममें जा कर उन्होंने उससे सहायता मांगी। फलतः फिर एक बार युद्ध-विवाद उठ खड़ा हुआ। सेनेटने पम्पीकी सेनापति बनाया।

यशुद ( ईसके ४६-४५ वर्ष पूर्व )।

सौजरने सेनेटका दृढ़ सङ्कल्प देख सैन्य-समावेश कर उन सैन्योंका मत जानना चाहा। फौजीने एक वाक्य-

से उसकी आज्ञा पालन करनेकी प्रतिज्ञा की। यह इटलीकी उत्तरी सीमाकी रविकने नदीको पार कर थोड़े सैनिकोंको ले इटलीकी ओर तेजीसे दौड़ा; सौजर-विजय प्राप्त करने करते पिसिनामको पीछे छोड़ कर्फिनियाममें पहुँचा। इसी स्थानमें पम्पीका सेनापति सफलत्व खड़ा था। पम्पीका सेनापति अहोवार्थास, बहुतेरे सेनेटके सदस्य और कई प्रतिभय व्यक्ति कैद कर लिये गये। सौजरने इन पर कठोरताका व्यवहार नहीं किया। इससे सौजर पर साधारणका भाव अच्छा हो गया।

सौजरके दरबार जोतने पर पम्पी तथा प्रजातन्त्रके प्रतिनिधि भयभीत हो निकर्सवियमूद्ध हो गये। सन्ध्याके घनान्धकारमें पम्पी रोम छोड़ कर भाग गया। भयसे वह खजानेसे धन-तक लेना भूल गया। कश्माल, सेनेटके सदस्य और बहुतेरे विख्यात मनुष्य भी पम्पीके साथ भागे। जहाजकी कमीसे सौजरने उन सबोंको पीछा न किया। अतः रोम छोड़ कर कोई तीन महीनेमें सौजरने सम्पूर्ण इटलीके प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। अब सौजर रोमका सर्वोपरि-स्वामी हो गया। केवल दिव्यून मेटेलासने उसके पवित घन-भाण्डारमें हस्तक्षेप किया था। सियाँ इसके सौजर शीघ्र ही रोमका अद्वितीय गधीभ्वर हो गया। सौजर लेपिडस पर रोम रक्षाका भार अर्पण कर तथा अष्टिनियसको फौजीके साथ इटली-रक्षाका भार सौंप कर पम्पी पक्षके सेनापतियोंको पराजित करनेके लिये स्वेन चला। उसने किउरिोंको और भालेथियासको सिसिली और सार्डिनियाकी रक्षा करनेके लिये भेजा। इन दोनोंने 'बनायास ही दोनों' स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ये पम्पी-पक्षीय सेनाओं पर विजय प्राप्त करनेके लिये अफ्रिका चले। किन्तु किउरिओ पम्पीको सहयोगी मरेटिनियरके राजा जुवाके हाथ मार डाला गया।

इधर सौजरने मसेलियामें जा कर देखा, कि यहाँके अधिवासी शोचनता स्वीकार करने पर राजी नहीं हैं। इस समय सौजर द्रोथोमियास और प्रुटसको उक्त स्थान पर घेरा डालनेकी आज्ञा दे कर 'ससैन्य स्वेन चला। पम्पीके दोनों लेफिटेनेण्ट अफ्रिनियास तथा पेद्रियासने



सोजरके प्रतिनिधि अएटनीके आत्मश्लाघापुर्ण राज-नीति अचलभ्रम कर रोमकी प्राचीन शासनपद्धतिके प्रलय-साधनमें आगे बढ़ जाने पर भी सिसिरो उसके प्रतिद्वन्द्विताचरणमें पराङ्मुख नहीं हुआ। उसने अदम्य उत्साहसे अपनी भोजसिनी वधवृत्ता द्वारा सेनेट-का पुनर्गठन करनेका प्रयास पाया। साधारण प्रजा और प्रादेशिक शासक, प्राचीन नीतिका पक्षपाती बन कर आएटनीके अचलभ्रित शासन प्रथाका घोरतर प्रति-वाद करने लगे। सेनेटमवनमें या फोरममें सिसिरोकी वधवृत्ता और साधारणके प्रतिवाद उस प्रवर्चित घटना-स्रोतकी दूसरी ओर फिरान सका। इस तरह दोनों पक्षकी लड़ाई प्रायः एक वर्ष तक चलती रही। ईसाके ४३ वर्ष पूर्ण फिर एक बार अन्तविध्वक्की सूचना मिली।

दूसरी प्रपञ्च-समिति ( ४३-२६ ई० पू० )

इस वर्षके शरत्कालमें आएटनी १७ लीजन सैन्य ले कर इटली पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगा। सभी इस यात्रासे डर गये। इस पर वर्षके अश्वत्थ महानेमें आएटनीने सेनेटकी वकालतकी नामङ्कर कर सहायोगी लेपिडासकी सहायतासे बीस वर्षके छोटे भाई अफ्टे-मियानको कन्सल मनोनीत किया और इस तरह उसने दूसरी लघुशरीर समितिका संगठन किया। इससे प्रजा-पक्षमें भयकी मात्रा अत्यधिक बढ़ गई। इस समितिका शासनकार्य भी वैसा होता न था। सोजर-की तरह यह समिति अपने हाडुव्यवहारसे प्रजाको राजी नहीं रख सकी थी। परं सत्ताकी तरह कठोर शासन कर साधारणकी अप्रीतिमाजन बन गई। इसके बाद प्रेस् क्विपशन जारी करके उन्होंने सिसिरो आदि नये दलके लोगोंकी फाँसी पर चढ़ा कर अपना पक्ष सुदृढ़ कर लिया। दूसरे वर्ष अएटनी और अफ्टेमियानकी सम्मिलित सेनाके साथ फिलिपीमें घुटस् और केसास-का युद्ध हुआ। इस युद्धमें घुटस्के चलाये प्रजातन्त्र पक्षीय सेनादलके पराभव होनेसे प्रजातन्त्रकी प्राचीन पद्धति-प्रतिष्ठाकी एही सही आशा भी विलुप्त हो गई।

ईसाके ४० वर्ष पूर्व उक्त दोनों पित्रयी सेनानायकों-में मनमुटाव हो गया। किन्तु प्राण्डुसियाममें जो सन्धि

हुई थी, उससे यह मनमुटाव शीघ्र ही दूर हो गया। इस तरह रोम-साम्राज्य नररकपातरूप कलङ्क-कालिमासे बच गया।

इस सामेलनसे दोनोंकी मित्रता दृढ़ हो गई। इस पर आएटनीने अफ्टेमियानकी बहुत अफ्टेमियाके साथ विवाह कर आपसका सम्बन्ध और भी दृढ़ कर लिया। इन तीनों शीरोंने आपसमें रोम-साम्राज्यकी बांट कर अलग अलग शासन करना आरम्भ किया। आएटनीने रोम साम्राज्यका समूचा पूर्वांश अपने शासनमें कर लिया। अफ्टेमियानकी इटली और समग्र पश्चिमाञ्चलका शासन मिला और लेविउस अफ्रिकाके जीते हुए प्रदेशोंको ले कर ही शान्त रहने पर बाध्य हुआ।

अफ्टेमियानने ३६ वर्ष ईसाके पूर्व लेविडासकी अफ्रिकासे किरिंयाई (Circii) प्रदेशमें निर्वासित कर दिया। मुण्डरनदेशमें पराजित सैफ्टस पम्पियास द्वारा अतुल धनरत्न एकत्र कर वहाँके लोगोंके भयका कारण हुआ था। अफ्टेमियानने लेविडास-विजयसे छुट्टी पाते ही उसकी समूल नष्ट किया। ईसाके ३५ वर्ष पूर्व पम्पियासकी मृत्यु हो गई। उस समयसे अफ्टेमियान पश्चिम-साम्राज्यभागका एकमात्र अधीश्वर हो गया। उसकी राजशक्तिके कष्टक-स्वरूप दूसरी कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

शीघ्र ही उसकी आएटनीकी शक्तिपरीक्षाके सुयोग प्राप्त हुआ। सुललालसाते लुम्ब आएटनीकी स्वेच्छा-चरिता कर्मवीर अफ्टेमियानके मनके मुनाधिक नहीं हुई। ईसाके ३२ वर्ष पहले आएटनीने अनानुषिक अत्याचार और व्यभिचारसे सर्वसाधारणके हृदय पर एक और दाहण चोट पड़वाई। उसने मित्र सिंहासनकी समु-ज्वल करनेवाली उलमी कन्या, योराङ्गना क्लियोपेट्राके मन मुग्ध करनेवाले रूप पर मुग्ध हो कर अपने प्रियतमा पत्नी अफ्टेमियाको परित्याग किया। एक ओर आएटनीने जैसे जीवनपणसे प्राप्त की आराध्य प्रणयप्रतिमा गान की, दूसरी ओर जैसे ही उन्होंने अफ्टेमियाके अपमानसे और दुःखसे उसके भाई अफ्टेमियाके हृदयमें दाहण प्रतिदिर्सानि प्रज्वलित कर दी। अफ्टेमियान अपने बहनोईकी उचित दण्ड देनेके लिये प्रभुन हुआ।



संज्ञा के विरुद्ध इत्येडा नामक स्थानमें विनाल फौजे पठा दी। किन्तु सोजरका दिवारा चमका था। इससे डगने जीव हो उनकी भी पराजित किया। दोनों लेफ्ट-नेटों ने बाध्य हो कर आत्ममर्षण किया। सोजरने दया कर उन दोनों की छोड़ दिया और उनकी फौजों को अपनी फौजमें मिला लिया। अब सोजर पश्चिम स्पेनके भारोके विरुद्ध चला। भारोने भी जीव हो पराजित हो कर कर्होया नामक स्थानमें आत्ममर्षण किया। इस तरह ४० दिनोंमें ही स्पेन पर विजय प्राप्त कर सोजर गल देग्री चला। मसेलिया नगर अब तक अधिकारमें आया न था। किन्तु सोजरका भागा सुग किलेके किलेदारोंने भयभीत हो कर आत्ममर्षण कर दिया।

इस सोजरकी अनुपस्थितिमें लेगिडासने मरे बनाये एक कानूनके अनुसार मोलरको विक्टोर नियुक्त किया। किन्तु केवल स्याहद दिनों तक इस पद पर रह कर स्पेञ्चानुसार कामचला हुआ। सार्थिलियस मेरिवाने भी कामचला पद पाया। ग्यारह दिन ही विक्टोर पद पर रह कर सोजरने कई लोकहितकर कार्य किये थे। इसाके ४६ वर्ष पूर्ण दिसम्बर महीनेमें सोजर पम्पीका पीठा करने लगा। इस पम्पीने यूनान, मिस्र और एशियामण्डलके अनेक राज्यों से बड़े विनाल फौजें एकत्र कर लीं। मियुलास उसके सेनापति हुआ। निश्चय ही सोजर फिर भी सैन्यके साथ प्राणुस्त्रियमसे पविशस चला। आयसस नदीके किनारे सोजर और पम्पीकी फौजें एकत्र हुईं। सोजर बाकी फौजोंके लिये इस तरह चिन्तित हुआ कि यह अगले एक दिन रातको एक छोटी नाव पर चढ़ कर पश्चिमादिक् समुद्रके बीननं हो कर प्राणुस्त्रियमको चला। रातमें अल्टोनियस बाकी फौजोंको ले कर सोजरके पास मिला। पम्पीके पास सैनिक अधिक थे; फिर भी उसने सोजर पर आक्रमण न किया। सोजरने एक शार्प गोदका बर भगना गोदों फौजोंने ही पम्पी पर घेरा डाल दिया। एक दिन आचानक पम्पीने बड़े पैमाने सोजर पर आक्रमण कर उनकी फौजोंको तिर कर विहार कर दिया। तब सोजर जीव ही उस स्थानको छोड़ कर मेन्साली चला। मेन्सालीके फार्मिगान का फार्मिया नामक स्थानमें भयदु

युद्ध हुआ। इसाके ४८ वर्ष पूर्ण वर्षी आगस्वकी सैन्य-संख्या अधिक होने पर भी पम्पी सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ।

इस तरह सोजरने अपनी अश्व्य शक्तिसे उत्तर, पूर और पश्चिम रोम-साम्राज्यका पकृषिपयत्र स्थापित कर अपने हाथसे वृहत् सामन्यदृष्ट परिचालन किया था। अपने वाहकलसे रोम-साम्राज्य पूर्वमें इप्रटिम नदीके किनारे तक और कर्नेन्स तक, उत्तरमें राइन नदी डेम्पुब और प्लन नदी तथा पश्चिममें अटलाण्टिक महासागर तक फैला हुआ था।

उसने प्रादेशिक शासनकर्ताओंका कार्यालय काम कर अपने जमानेको लूटनेका पथ रोक दिया। उसने प्रादेशिक शासकोंका राजस्वका अधिकार और ट्रान्सपेरेन्स गल्लोंको रोमवासियोंका अधिकार दे कर समग्र इत्योको रोममें मिला लिया। सिवा इसके उसने समग्र इटलीमें एक तरहका स्थायतशासनपद्धति चलाई थी।

इसाके ५३ वर्ष पहले पार्वी द्वारा कर्होके युद्धमें कासस ही जो हरया हुई थी, उसका बदला चुकाने और पार्वीकी राजशक्ति क्षीण करनेके लिये सोजरने बारम्बार घोरवाहिनियोंको लेकर रणयात्राका आयोजन किया। प्रजातन्त्रका नया सम्प्रदाय सोजर द्वारा भयनामित और लांछित हो कर मार्गको वेदनासे ज्वलित हुआ था। इस युद्धका आश्रय देण वर यह सम्प्रदाय ईर्ष्या और भी जल मुन गया। उस सम्प्रदायके लोग जले हृदयमें सोजरका सर्वनाश करनेके लिये आगे बढ़े। जिस दिन सम्प्रदायके समय सोजर पूर्ण दिनाको विजय करनेके लिये तैयार हो रहा था उस समय मूटस आदि भयनामित पुरुष उसके सामने आये। विनासनातक मूटमने सोजरके शेर कलेजेमें सुता भोंक कर उसके हृदयमकी भयलोल्ला स्तन कर दी। इसाके ४४ वर्ष पहले १५ वर्षी मार्सकी यह घटना है। इस दिवसे सष्टे-मियात द्वारा पश्चिमास रणक्षेत्रमें साइटोके पराजित होनेको सारोग २ मिनटकर। मन् इसाके ३३ वर्ष ६० तक रोम साम्राज्यमें घोरतर आराजकता फैली थी। इस १४ वर्षके शासन-विहीन रोम साम्राज्यका विजय इतिहासमें अविचल रूपसे अद्विष्ट है।

सौजन्यके प्रतिनिधि अएटनीके आत्मश्लाघापूर्ण राज-नीति अवलम्बन कर रोमकी प्राचीन शासनपद्धतिके प्रलय-साधनमें आगे बढ़ जाने पर भी सिसिरो उसके प्रतिद्वन्द्विताचरणमें पराङ्मुख नहीं हुआ। उसने अद्भ्य उतसाहसे अपनी भोजखिनी वफवृत्ता द्वारा सेनेट-का पुनर्स्थापन करनेका प्रयास पाया। साधारण प्रजा और प्रादेशिक शासक, प्राचीन नीतिका पक्षपाती बन कर अएटनीके अवलम्बित शासन प्रथाका घोरतर प्रति-वाद् करने लगे। सेनेटमचनमें या फोरममें सिसिरोकी वफवृत्ता और साधारणके प्रतिवाद् उस प्रवर्धित घटना-स्रोतको दूसरी ओर फिरा न सका। इस तरह दोनों पक्षकी लड़ाई प्रायः एक वर्ष तक चलती रही। ईसाके ४३ वर्ष पूर्ण फिर एक बार अन्तर्विप्लवकी खूबना मिलो।

दूसरी प्रपञ्ची-समिति ( ४३ २५ ई० पू० )

इस वर्षके शरत्कालमें अएटनी १७ लीजन सैन्य ले कर इटली पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगा। सभी इस यात्रासे डर गये। इस पर वर्षके अक्षुब्ध महीनेमें अएटनीने सेनेटकी वफावर्षोंकी नामसूची कर सहयोगी लेपिडासकी सहायतासे दोस वर्षके छोटे भाई अष्टे-मियानको कन्सल मनोनित किया और इस तरह उसने दूसरी त्रयभरीर समितिका संगठन किया। इससे प्रजा-पक्षमें भयको मात्रा अत्यधिक बढ़ गई। इस समितिका शासनकार्य भी वैसा होता न था। सौजन्यकी तरह यह समिति अपने सौख्यव्यवहारसे प्रजाकी राजी नहीं रख सकी थी। परं सत्ताकी तरह कठोर शासन कर साधारणकी अप्रीतिमाजन बन गई। इसके बाद प्रेसू क्विण्टन जारी करके उन्होंने सिशियो आदि नये दलके लोगोंकी फाँसी पर चढ़ा कर अपना पक्ष सुदृढ़ कर लिया। दूसरे वर्ष अष्टनी और अष्टेमियानकी सम्मिलित सेनाके साथ फिलिपीमें झुटसू और केसास-का युद्ध हुआ। इस युद्धमें झुटसूके चलाये प्रजातन्त्र पक्षीय सेनादलके पराभव होनेसे प्रजातन्त्रकी प्राचीन पद्धति-प्रतिष्ठाकी रही सही आशा भी विलुप्त हो गई।

ईसाके ४० वर्ष पूर्व उक्त दोनों विजयी सेनानायकों-में मनमुटाव ही गया। किन्तु प्राण्डुसियाममें जो सन्धि

हुई थी, उससे यह मनमुटाव शीघ्र ही दूर हो गया। इस तरह रोम-साम्राज्य नररकपातरूप कलङ्क-कालिमासे बच गया।

इस सम्मेलनसे दोनोंकी मित्रता दृढ़ हो गई। इस पर अएटनीने अष्टेमियानकी सहन अष्टेमियाके साथ विवाह कर आपसका सम्बन्ध और भी दृढ़ कर लिया। इन दोनों तीनों आपसमें रोम-साम्राज्यको बाँट कर अलग अलग शासन करना आरम्भ किया। अएटनीने रोम-साम्राज्यका समूचा पूर्वांश अपने शासनमें कर लिया। अष्टेमियानको इटली और समग्र पश्चिमाञ्चलका शासन मिला और लेपिडास अफ्रिकाके जीते हुए प्रदेशोंको ले कर ही शान्त रहने पर बाध्य हुआ।

अष्टेमियानने ३६ वर्ष ईसाके पूर्व लेपिडासको अफ्रिकासे किसियाई (Circeii) प्रदेशमें निर्वासित कर दिया। मुएडरनक्षेत्रमें पराजित सैण्टस परिप-यास द्वारा अतुल धनरत्न एकत्र कर वहाँके लोगोंके भयका कारण हुआ था। अष्टेमियानने लेपिडास-विजयसे छुट्टी पाते ही उसको समूल नष्ट किया। ईसाके ३५ वर्ष पूर्ण परिपयासकी मृत्यु हो गई। उस समयसे अष्टेमियान पश्चिम-साम्राज्यभागका एकमात्र अधीश्वर हो गया। उसकी राजशक्तिके कष्टक-स्वरूप दूसरी कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

शीघ्र ही उसकी अएटनीकी शक्तिपरीक्षाका सुयोग प्राप्त हुआ। सुखलालसासे लुब्ध अएटनीकी स्वेच्छा-चारिता कर्मवीर अष्टेमियानके मनके मुताबिक नहीं हुई। ईसाके ३२ वर्ष पहले अएटनीने अमानुषिक अत्या-चार और व्यभिचारसे सर्वसाधारणके हृदय पर एक भीरु दायण चोट पड़ुं चाई। उसने मित्र सिंहासनको समु-ञ्जल करनेवाली टलेमी-कन्या धीराङ्गना हिमोपेट्राके मन मुग्ध करनेवाले रूप पर मुग्ध हो कर अपनी मियतमा पत्नी अष्टेमियाको परित्याग किया। एक ओर अएटनीने जैसे जीवनपणसे प्रायकी आराध्य प्रणयप्रतिभा प्राप्त की, दूसरी ओर वैसे ही उन्होंने अष्टेमियाके अपमानसे और दुःखसे उसके भाई अष्टेमियानके हृदयमें दाहल प्रतिद्विंशानि प्रचलित कर दी। अष्टेमियान ययने बहनोंकी उचिच दण्ड देनेके लिये प्रस्तुत हुआ।

इस युद्धोंके लिये आस्ट्रीको सेनेटों पदकयुक्त भीरु पूर्व साम्राज्यके भाषिपरवसे पदकयुक्त होनेकी घोषणा की और रामो क्लिभोपेट्राके विरुद्ध रोमक फौजोंको भेजनेकी आज्ञा प्रकाशित की। इसके अनुसार मकु-मियान रोमक फौजोंका सेनापति बना। इसके ३२ वर्ष पूर्व २११ सितम्बरकी अष्टिव्यास रणक्षेत्रमें दोनों ओरसे घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। आस्ट्रीको युद्धमें पराजित हो कर जान ले कर भागा। किन्तु शत्रुके हाथसे सम्मानग्रन्थ कर म करने पर आस्ट्रीकी भीरु क्लिभोपेट्राके वात्मदृष्ट्या कर ली। यह ३० ईसाके पूर्वको घटना है।

अष्टिव्यासके रणक्षेत्रमें आस्ट्रीकोके स्वर्णको कूर्ण करने-वाला डिफेंडर सोजरके भाईका पोता अष्टेनियस सोजर इस समय रोमक जनसाधारणके मुख्य हो गया। अष्टेनियानने सेनेटकी रायसे राजासन ग्रहण किया। सेनेटने उसके अनुभवोंको देख उसको "अगएस" की उपाधि दी थी।

अष्टेनियानने एक नगण्य पानदानमें जन्मग्रहण किया था। उसकी पंजीपाधि अष्टेनियान थी। उसका पितामह मिलेटली नगरके एक सामान्य नागरिक था। पीछे उसकी चाथाने गोद ले लिया। इससे यह उंस पंजीको सोजर उपाधिले विभूषित हुआ। उस समय से यह इतिहासमें अष्टेनियस सोजरके नामसे परिचित हुआ।

सन् २८-२७ ईसाके पूर्व तक अगएसने राजतन्त्र पर पैठ कर प्रशासककी फिर प्रतिष्ठाके साथ उसको अनु-करण कर ही सम्पन्न प्राप्त किया था और प्रादेशिक नगरोंमें अखंडशक्ति स्थापना कर स्वयं उन राजाओंका अधिनायक बन कर सामंतीम भाषिपरवका विस्तार किया था। उसको चलते यह प्राप्त प्रजातीके अनु-सार (Constitution of principate) रोम साम्राज्य २७ ईसाके पूर्वसे २८४ ईस्वी तक नामित हुआ था।

केवल एक वर्ष इस विराट् साम्राज्यका अधीन-र हो कर उसने अपने पूर्वके अधिनायकोंके सामंतीम भाषिपरवका स्मरण कर समझ लिया, कि प्रजाका मनो-रक्षण ही धेष्ठ धर्म है। स्पष्टवाचिताका दास बन कर प्रजाका विज्ञेयनाशन करना बड़ा ही महिंम बर्न

है। इससे अपना भी केवल दानिके कीर्ति प्राप्त नहीं भतः जिनसे प्रजा सुखसे रहे, इस विषय पर अग्र-रचना ही राजाका एकमात्र कर्तव्य है। ऐसा विचार कर अगएसने स्पष्टवाचिताके राजसिंहासन त्याग दिया और जिस बन्धकीक नतिके प्रभावसे यह ४३ ईस्वीके पूर्वसे रोमकी नासनदण्ड धारण करता चला आया था, उसे "रोमके साधारण प्रजापुत्रके भीर सेनेटके सदस्योंके कर्तव्यधर्ममें साधारणतन्त्रका भार भंग किया।" उसने यह कदम कर अग्रसर प्रदण कर लिया। इसके बाद फिर रोमराज्यमें सेनेट, एसेम्बली और मन्त्रि-ष्ट्रेमोका कार्य प्रवर्धित हुआ। इस तरह अष्टेनियान रोमका "स्वाधीनतादाता" (Restorer of Commonwealth and Champion of freedom) कहा गया। उसकी सुसम्पन्न शासनप्रणालीकी लोग "Maximus Augustus" कहते थे। ख्रिस्तियानताके राजतन्त्रकाल तक इस भौतिकुल प्रणालीसे ही रोमराज्यका शासन हुआ था। जुलियान सोजर बाहुचलसे रोम-पासियोंके निम्न भौतिकुलवृद्धि कर जो नहीं कर सका था, अगएस सोजर अभावसे ही शान्ति और महिंम-पुन-के बलसे यह सुसम्पन्न कर गया।

अगएस जीवित समयमें जो सब विषय काटवर्णनमें परिणत नहीं कर सका, उन सबको काटवर्णन परिणत करनेका भार अपने गोदके पुत्र टार्पेटियासको मी-या गया। उसने अपने गोदके पुत्रको पहले ही राजतन्त्रकी प्रतिष्ठा दे दी थी। भाईन प्रवर्धन और प्रयत्नित विधि-संस्थापिदार (Consul and tribu- nian) प्राप्त करनेके समय टार्पेटियासने राजसत्कार-में पण्डित प्रतिपत्ति बढ़ा ली थी। अगएसके जीवित समयमें उसके काटवर्णन प्रतिपाद करनेके लिये एक साधुमोक्षी भी लड़ा होनेका साक्ष्य नहीं हुआ।

उसके पुत्र टार्पेटियासने अपनी शान्ति-पुष्टिके पण्डितों ही कर प्रजातन्त्रके सारे अर्थितोंका शोध किया। देवने देवने कर्माध्याय, मन्त्रिष्ट्रेमो, कर्मा-न्त्र, मिटर, इत्यादि, ट्रिब्युनेट, सुरेष्टर जादि पद या उसके पदाधिकारके काटवर्णनमान्य रह गये। कीर्ति करनेकी तरह अग्रको अमनता प्रयोग करनेमें समय नहीं हुआ।

टाइबेरियासकी मृत्युके बाद ३७ ई०में काली-गुलाने साम्राज्याधिकार पाया। वह दुर्बल, कोपन स्वभाव, गणित और हानशून्य उन्माद प्रकृतिका मनुष्य था। उसके बाद ३१वीं ई०में यथाक्रम निर्वाच हुडि यूस, ५४ ई०में नरपिशाच निरो; ६८ ई०में गालवा, ६६ ई०में ओथो और पंशुपकृति, निष्ठुर अत्याचारके धामोद-प्रिय मिटेलियासने रोमका राज-पद अधिकार किया। इसके बाद उक्त वर्षके अन्त समयमें मेस्पेसियानने मसनद पर बैठ कर इटली नगरवासी और पश्चिम साम्राज्य विभागके प्रदेशवासी लेटिन जातियोंसे सभ्य मनोनीत करनेकी आहवा जारी की। इससे रोमकी सेनेटकी शक्ति कुछ अधिक बढ़ गई। इसके बाद ७१ ई०में ड्राइएटस, ८१ ई०में कापुकुस डोसिटियान, ९६ ई०में नेर्वा, ९८ ई०में ट्रिजान और १७७ ई०में हाड्रियान-ने क्रमसे रोमके राजपदको अलङ्कृत किया था। उन सबोंने मेस्पेसियानकी प्रवर्तित प्रथाका अनुसरण कर रोमीय सेनेटका प्रयत्न खर्च कर दिया था। रोमकीने स्वेच्छा और सहानसे जिस सरकारका अनुमोदन कर एकके हाथमें राज्य-भार सौंपा था, उन्हींके अत्याचारसे भीतरमें घृणा प्रकाश करने पर भी बाहर तोपामोद करने पर बाध्य हुए थे। किन्तु वे शताब्दी लुप्त स्वाधीनता-समुद्रिकी बिलकुल भूल न सके।

अगष्टस्के बादसे हाड्रियान तक राजाओंके अधिकार कालमें रोमका वाह्यमादम्बर बहुत बढ़ गया था। इस समयसे ही प्रिन्सेप्सोंकी छोड़ रोमकी अन्याय्य शक्तियां हास होने लगीं। अगष्टस, टाइबेरियास और क्लैवियान—इन तीनों सम्राटोंके शासनकालमें राजशक्ति और शासन-भार उनके ऊपर ही छोड़ दिया गया था। किन्तु जब अन्याय्य शासकशक्ति शिथिल होने लगी, तब रोमराज्यका एक आमूल परिवर्तन अथप्रथमभावी हो उठा। अगष्टस् टाइबेरियस कृतनीतिके पलसे और निलिप्तभावसे छिप कर राजशक्तिका प्रभाव देखता था, केलिगुआ क्लैवियस और नोरोने उस तरहके छिपे तौरसे न देल अधीत इस नीतिकी पूर्णाके साथ छोड़ कर प्रकाश्यरूपसे शासन-कार्यमें, राजस्वविभागमें, सामरिक-विभागमें और धार्मिक राजशासन सम्बन्धमें प्रिन्सेप्सोंका सर्वमय कर्तृत्व

स्थापन किया। लिगेट, प्रिफेट प्रोकि ओरेट और छोड़े हुए मुलाम ( Freedmen ) उसके अधीनमें रह कर सरकारका कार्य करने लगे। इस तरह शक्ति वृद्धिके साथ साथ प्रिन्सेप्सकी मर्यादा बढ़ गई। धीरे-धीरे यथाथमें यह राज्येश्वर हो उठा।

अगष्टस् दोनहोन प्रजाकी तरह अपेक्षाकृत छोटे मकानमें रह कर सामान्य और सरलभावसे जीवन बिता गया है। किन्तु बादके शासकोंने पेश्वर्य-मदसे मत्त हो कर उस सरलताकी पदमर्यादाको तोड़ दिया। वे सभी राजाकी तरह चमक-दमकके पक्षपाती हो गये। नोरोके राजत्वकालमें यह पूर्णरूपसे प्रकाश हो गया। रोमक-सम्राटोंके राज्यकार्य निर्याह करने योग्य भावश्य कीय उपयोगी द्रव्य राजसरकारमें विरतजमान थे। उसके ही यत्नसे एक अलग राजमहल बना। महलके रक्षक इसकी बड़ी यत्नसे रक्षा करते थे। वह मण्डलमें घिर कर सम्राटकी तरह गर्वके साथ विवरण करता था और उसके मध्यमयमें रोज ही एक न एक वस्त्र धुआ करता था। उसके घर जाने पर इस अवस्थामें बहुत परिवर्तन हुआ। यथोक्ति उसके बादके गल-कुलीय वंशीय मेस्पेसियान आदि सम्राट द्रजन, हाड्रियान, आण्टोनिनास उस सुख-समुद्रिकी अनुभवानामें न डूब कर अपेक्षाकृत सरलतासे जीवन बिता गये हैं। कालीगुला या नोरोकी तरह वे अन्याय्य तोपामोद प्रिय न थे। उनके इस सरल और सट्टव्यवहारके परिवर्तनसे रोममें एक नये युगका सूत्रगत हुआ। सामरिक और राज्यशासन पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित हो कर उत्तरोत्तर उन्नत हुआ। कालीगुला और नोरोके शासन कालमें वे सेनाविभागकी ओरसे 'इम्प्राटेर' कह कर सम्मानित हुआ करते थे और पीछे सेनेटने उनको शक्ति दे दी। एकाएक इस तरहके उनके भाव परिवर्तनसे रोममें कीर्तभावान्तर द दिखाई देने पर भी रोमके बाहरी प्रदेशोंमें उसका यथेष्ट आभास मिला था। स्पेनमें लोजन द्वारा गालवाके सम्मानसे ही रोममें नये युगकी अवतारणा हुई थी। उसी समयसे ही यथाथमें प्रिन्सेप्सोंकी निर्वाण सम्मति लीजनसे न लेने पर भी वास्तवमें उनकी आहवासे ही राजा राजशक्ति-सम्पन्न होने थे और राजशक्तिकी

इस युद्धोंके निधे आष्टनीको सेनेटने पदच्युत भीरुपूर्ण साम्राज्यके भाषिपरचरने पदच्युत होनेकी घोषणा की थीरतनी क्रिस्तोपेट्राके विरुद्ध रोमक फौजोंको भेजनेकी आज्ञा प्रचारित की। इसके अनुसार मनु-मिथान रोमक फौजोंका सेनापति बना। ईसाके ३३ वर्ष पूर्ण होती सितम्बरकी अष्टमिदिना रणक्षेत्रमें दोनों ओरसे घोर संघर्ष उपविद्यत हुआ। अष्टमी गुरुदिवस पराजित हो कर जान ले कर भागा। किन्तु प्रत्येक हाथसे सम्भाररक्षा कर म सकने पर आष्टनी और क्रिस्तोपेट्राके आत्मदृष्टया कर ली। यह ३० ईसाके पूर्वकी घटना है।

अष्टमिदिनाके आष्टनीके स्वर्णकी चूर्ण करने-वाला डिपटेटर मोजरके भाईका पोता अष्टमिदिनस सोजर इस समय रोमक जनसाधारणके पृथ्वी हो गया। अष्टमिदिनाने सेनेटको रायसे राजासन प्रदण किया। सेनेटने उसके अनुमयोंको देव उसको "मगाएम" को उपाधि दी थी।

अष्टमिदिनाने एक नगण्य स्तनदानमें जन्मप्रदण किया था। उसकी घंटीपाषि अष्टमिदिनस थी। उसका विनामद मिलेटली नगरके एक सामान्य नागरिक था। सोचे उसकी चायाने गोद ले लिया। इससे यह उस घंटीकी भीतर उपाधिते विभूषित हुआ। उस समय से यह इतिहासमें अष्टमिदिनस सोजरके नामसे परिचिन हुआ।

सन् २८-२७ ईसाके पूर्व तक मगएसने राजतण पर धेठ कर प्रजातण्यको फिर प्रतिष्ठाके साथ उसको मनु-करण कर ही राज्यका शासन किया था और प्रादेशिक नगरोंमें अरुहराज्यकी स्थापना कर कार्य उन राजाओंका अधिनायक बन कर सामंतीय भाषिपरचरता विस्तार किया था। उसको गेल्डर पद शासन प्रजातीके अनु-सार (Constitution of principate) रोम साम्राज्य ६७ ईसाके पूर्वमें २८४ ईस्वी तक शासन हुआ था।

केवल एक वर्ष इस विराट् साम्राज्यका अधिभार ही कर उतने मयमें पूर्णके अधिनायकोंके सामंतीय भाषिपरचरता स्वरुप कर मगए विद्या, वि. प्रजाका मनी-रक्षण ही भेष्ट धर्म है। स्पेय्यावारिभाषा द्वारा बम कर प्रजाका विद्वेचभाषन बनना पड़ा ही गदित कर्म

है। इसने अपना मो संवत् दानिके कीर्ति स्थाप नहीं मता जिमसे प्रजा सुखसे रहे, इस विषय पर मंगए रखना ही राजका एकमात्र कर्तव्य है। ऐसा विचार कर मगएसने स्पेय्यासे राजसिंहासन स्थाप किया और जिस अनीतिक शक्तिसे प्रभायसे यह पद ईके पूर्वसे रोमका शासनदण्ड धारण करता चला आया था, उसे "रोमके साधारण प्रजापुत्रके भीर सेनेटके सदस्योंके कनूय्याघोनोंमें साधारणतन्त्रका भार अपने दिया।" उसने यह कह कर मगएर प्रदण कर लिया। इसके बाद फिर रोमराज्यमें सेनेट, एनेमर्यों और मन्त्रि-द्वे सोका कार्य प्रचरित हुआ। इस तरह अष्टमिदिनस रोमका "स्थापीनतादाता" (Restorer of Common wealth and Champion of freedom) कहा गया। उसको सुसम्पन्न शासनप्रजातीकी लोग "Maximus Augustus" कहने थे। यार्तिक्रिसियानके राजतण काल तक इस मोतिकुल्य प्रणालीसे ही रोमराज्यका शासन हुआ था। क्रिस्तोपेट्रा सोजर बाहुबलसे रोम-पासियोंके निष्ठ मोतिविज्रिण कर जो नहीं कर सका था, मगएस सोजर अनायास ही शान्ति और महिगुणा-के बलसे यह सुसम्पन्न कर गया।

मगएम जीवित समयमें जो मंग विषय कर्तव्यधर्म परिपन्न नहीं कर सका, उन सर्वोंके कर्तव्यमें परिपन्न करनेका भार अपने गोदके पुत्र टार्वेरियासको सौंप गया। उसने अपने गोदके पुत्रको पहले ही राजमन्त्रि-की प्रतिमा दे दी थी। भारने प्रवचन भीर प्रचरित पिपिता संस्थापिकार (Consular and tribu- nian) प्राप्त करनेके समय टार्वेरियासने राजमन्त्रि- में पधेष्ट प्रतिपत्ति बड़ा की थी। मगएसके जीवित समयमें उसके कर्तव्यका प्रतिवाद करनेके निधे एक साइमोका भी लड़ा होनेका साक्ष्य नहीं हुआ।

उमके पुत्र टार्वेरियासने अपनी शान्ति- सुदिके घनपत्ती ही कर प्रजातण्यके मारी अधिदाओंका लोच किया। देवने देवने कमिनिद्या, मन्त्रिद्वे मी, कन्वर, मिटर, इन्डर, प्रिन्सेट, कुरटर आदि पद था। उमके पदामिनिदिके कर्तव्य आत्ममात्र रह गये। कीर्ति पदनेकी तरह मंगको धर्मताका प्रयोग करनेमें समय नहीं हुआ।

पर अल'टस होते देखते हैं। उन्हीं नरपतियोंके राज्य कालसे ही रोम-साम्राज्यके सामरिक और राजकीय शान्तिको पूर्ण प्रतिष्ठा हुई और धीरे धीरे यह उत्तरोत्तर बढ़ गई थी। उस समयसे 'इम्पिरियल' और 'सेनेटोरियल' प्रदेश-विभाग विलुप्त हुआ। राजकीय तथा सम्राट् के अपनत्वका अलगाव दूर हुआ। इसके बाद सेनेटर सामरिक और राजकीय कार्योंमें स्वाधिकार-विच्युत हुए। जो कुछ बाकी था, वह विख्यात धीरे अरेलियनके (२७०-२७५ ई०में) यहाँसे पूर्ण हुआ। उसमें राज्यशासनका बडोर दण्ड अपने हाथमें ले कर प्राचीन प्रथाका सम्पूर्णरूपसे विलुप्त किया। उसने अपने अधिकारकालमें रोम सरकारमें डारथोक्लिसियानके अनुकरण पर राजशाक्तिको पराकाष्ठा दिखलाई थी और प्राच्यनगरोंकी समृद्धिका अनुकरण कर अपने राज्य समृद्धिको गाम्भीर्य-वृद्धि की थी।

रोम-साम्राज्यका संक्षिप्त इतिहास।

पहले ही कहा जा चुका है, कि जुलियस सीज़रने रोमसाम्राज्यकी सीमा बढ़ा कर नाना विपरीतका संस्कार किया था। किन्तु रात दिनके युद्धविद्युत्की शान्तिका कोई उपाय नहीं कर गया। महानुभाव अगष्टस् इसका उपाय कर गया था क्योंकि यह फूंक फूंक कर पैर रखता था। रोमीय प्रजातन्त्रके निर्वाचित सेनापतियों तथा स्वयं सोबर दक्षिण और पश्चिमके भूखण्डों पर विजय कर गया। फलतः अफ्रिकाके मरुप्रदेश तथा अटलाण्टिक-महासागरके सिवा रोम-राज्यसीमा और अधिक नहीं बढ़ सकी। सीज़रने गल-विजय की थी सही; किन्तु उसका भतीजा अगष्टसने ही इन सब नगरोंमें सुसम्बद्ध शासनपद्धति-विस्तार और राजशाक्तिका पतन किया था और उसी तरह राजकीय विधिसे ही वह रोमराज्यकी सीमारक्षामें तत्पर हुआ था।

इससे २५वर्ष पहले न्यूमिडिया-राज्य प्राचीन अफ्रिका प्रदेशके अन्तर्भूक्त और उसके निकटका इजिप्त नगर एक स्वतन्त्र प्रदेशके रूपमें गिना जाने लगा। स्पेनके उत्तर-पश्चिमके रहनेवाली असभ्य पहाड़ी जातियोंकी जीत कर लूसिटानियाका शासन-विस्तार किया गया था। इसीके २७ वर्ष पूर्व अगष्टसने आकुरटा-

निया, गलडुमेनुसिस और बेलजिका प्रदेशकी राज्यभुक्त कर खुफसारनसे जर्मनसागरके किनारे तक सीमा बढ़ा दी थी। इसके बाद उसने दक्षिणके मिसिया (६ ई०में) रिटिया (१५ ई०में) और गालिया-बलजिका भादि प्रदेश अधिकार कर सुशासन प्रतिष्ठा द्वारा शान्तिस्थापन करनेकी चेष्टा की थी। ६० ई०में मेदसकी पराजयके बाद वह राइनको पार कर सामने आगे बढ़ नहीं सका। उसके पंशघर टाश्चरियस शिलभा ट्यूटरने घरे सिसकी विपत्तिका बदला चुका कर जर्मनीकासकी लौटनेकी आज्ञा दी और १७ ई०में उत्तर डेन्यूबके मार्समर्नो प्रदेशके राजा मार्योवोबासके साथ सन्धि कर उसने अपने पिताके निर्दिष्ट अपने पक्षकी सुरक्षाका बन्धोवस्त करनेमें मन लगाया था। इसके अनुसार राइन नदीके किनारे उत्तर और दक्षिण जर्मनीमें डेन्यूबकी सीमा पर और पानोनिया और मिसियाके चारों ओर रोमीय लीजन प्रतिष्ठित किये गये थे।

अगष्टस् रोम साम्राज्यकी शान्ति और समृद्धि प्रतिष्ठित कर गया। इसके बादके बादशाह सभी सुदक्ष थे। ये अप्रतिहतरूपसे राज्यशासन कर गये हैं। गेयास, क्लडियाम और नीरो दुर्बुद्धिके कारण तथा उसके बत्याचारसे रोम और इली उल्पीयुद्धित हो उठे थे। राज्यके अन्य किसी स्थानमें उनकी दाल न गली। नीरोकी मृत्युके बाद, प्रतिद्वन्द्वी बादशाहोंके विरोधजनित युद्धमें रोम-साम्राज्यकी शक्ति हुई थी, उसकी पूर्ति मेसेसियान कर गया था। ओथो, मिटेलियास और मेसेसियानके परस्पर युद्धके अथसर पर ६६ ७० ई०में सिमिलिसका विद्रोह उपस्थित हुआ। द्राजस, हाड्रियान और दोनों आष्टोनियास अपनी अपनी बसाधारण शक्तिके रोम-साम्राज्यके विध्वंसिनीनी शक्तिके पुनराविर्भाव करनेमें समर्थ न होने पर भी सुशासन तथा शान्ति-स्थापनमें सफल हुए थे। क्लडियास वृद्धकी जीतनेके लिये अस्सर हुआ था। आफ्रिकाला (७८ ८४ ई०में) यहाँकी उत्तर-देग जीत कर "हाड्रियानकी चहारदीवारी" बना गया था। १०७ ई०में वर्षर जातिके आक्रमणसे डर कर द्राजस निम्न डेन्यूब प्रदेशमें गया और वंशने डाकिया-राज इमेबालासकी पराजित कर उसका राज्य छीन

राज्यके लिये राजाको सेव्य वा ही निर्भर रक्षता पड़ना था। इस तरह जर्मन और सीरीह लीजनके अभिमतके अनुसरण मिलेनिघात और भेयैसियन सम्राट् पद पर प्रतिष्ठित हुए थे सीमिनियने सिवारियाणा डाटमें रोमकी संगठनमें शुभ भवने राज्यकार्यमें सामरिक प्रभाव (Military character) का परिचय दिया था। सम्राट् मैर्काके (मोह) दसक पुन विघ्नान पौर और पोटा द्राजनसे ही सामरिक विभागके सम्पूर्ण मालिक या "इम्पारेटर" पदने प्राचीन शासनपद्धतिके सिम्बोलकी शक्ति को भी पार कर दिया था।

सम्राट् हाड्रियानके बाद क्रमसे भाट्टोनिनास पयास (१३८ ई०में), मार्क म् उरेलियस (१६१ ई०में), मार्कस भाट्टोनिनास (१६१ ई०में), कोनाडियस (१८० ई०में), पार्टीगापस (१६९ ई०में), डिड्यायस सुथियानास (१६३ ई०में) और सेप्टिमियास सेभेरासने (१६३ ई०में) रोमक सिंहासन पर बैठ कर राजकार्यको परिवर्तनना की थी। ये सभी 'टाइरेट' नामसे पुकारे गये थे।

गामबा, मिटेनियाम और भेयैसियनने सम्राट् पद पर अभिषिक्त हो कर ही अपनी अपनी जगमभूमित रोममें भा कर संगठनको राय की। द्राजन और हाड्रियान दूसरे प्रदेशके उत्पन्न थे। इनमें द्राजन सम्राट् पद प्राप्त करके भी एक वर्ष तक रोममें न जाया; किन्तु हाड्रियानने संगठन द्वारा अभिनवित होनेके पहले सिरियामें "इयैरियाम" प्रहण किया था। इसलिये यह संगठनके सामने विनीत भावने समामायेगा करने पर बाध्य हुआ था। द्राजन और मार्कास सीरियियामकी विगत-निर्वाहक विषय कीसि, सुबन्धोवक्त और प्रतिष्ठापक हई थी। अन्तः प्रावश्यक समर्थ कर रोममें हटा कर दूसरे स्थानमें राज-पाट परिवर्तन करनेके व्यवस्था हुई थी। सेप्टिमियासके सिवा भेयैसियनने सीरियियाम तकके राजे संगठनके साथ मिल कर मनीष सुन्दर राज्यकार्य-संगठन करने थे। किन्तु अन्तः या कर युवामी दुर्गन्तभावकी निरासे प्रभावसे जब रोमकीके सामरिक शक्ति बढ़ गयी तब से अन्तर्गतमें प्रहण हुए। समयके सुनाधिक पक्ष रोमके राजकीय शासनपद्धतिके (Imperial system of government) की आवश्यकता हुई। इनके अनुसार

हाड्रियान इसके लिये उद्योगो हुआ था। उसकी इस भागीष्ट सिद्धिके द्वारा राज्यके शासनविभागकी बहुत उन्नतिकी भागा थी, किन्तु ऐसी न हुई। परन्तु इनके द्वारा साम्राज्य शक्तिकी बहुत कमी हो गई थी।

मार्कास सीरियियामको सुन्दरे डामोड्रिया निहासनके अधिहार तक (१८०-२०८ ई०में) रोमको प्राचीन सगठन-पद्धतिके सम्पृक्थियत साधित हुआ था। पार्थिकस सेभेरास सिक्न्दर माथिसमार, बाल्थियाम, टामिस्टम मादि बादशाहके द्वारा राजपर्य पर निर्भर नित होने पर भी सेभेरास सिक्न्दरके सिवा उन्में और कोई लीजनना अनुगतय लाभ कर न सका। ईसाकी ३री शताब्दीमें रोमक बादशाह प्रधानता सेनासंघके नियंत्रण द्वारा ही मनोमोत होने थे। ये सब बादशाह सीमागत प्रदेशवासियो नगण्य व्यक्तिके सम्मान हैं। श्री पेश्चर्पगर्भसे मस हो कर दूसरेकी मर्मदेशनाको समकथने समर्थ नहीं होते थे। अतयाचार और निष्पत्ता उनके अंगका अभ्युत्पन्न बनी थी। सामान्यिक अस्वाचारसे ये स्वाधारणता पोषित कर अपनी अपनी पागय प्रवृत्तिको गोरतार्थ करने थे। इन सब गीव प्रवृत्तिके राजाकी संगठन सदा अरक्ष्य, लाष्टिन और विवृष्टित होते थे। जो राज्यशासनके उपयोग और द्वायान् ये थे भी संगठनको सारकारो काममें हस्तक्षेप नहीं करने देते थे। सेप्टिमियस सेभेरास अदिहायाही था। संगठनके अभिमत (Formal confirmation) न ले कर उसने राज्यकार्य भारत प्रहणका पथ प्रगल्भ किया। रोममें रह कर उन्में ही "मोडरमस" उपाधि प्राप्त और कनेरनेमें बैठ कर नामन और विचार कार्य समुपाधन कर महलकी पदार्थ-दीवारिके मोनर उन कार्याके पूर्ण करनेकी व्यवस्था की थी। अन्तमें यह प्रिेटोरियामके स्थलीके सिन्केकुही ही बादशाहके अन्वयन राजकार्यकारीके कामे नियोजित कर गये। इसने उनके अन्तर्गत प्रभुत्वका परिचय मित्यक्त है। उसकी निम्नलिखिते वही पद्धति बादशाहकी "Dominus" उपाधि प्राप्त गयी है।

सन् २३६ ई०में सिमियामने अनुपद्व और रोम-साम्राज्यके अधिधारणसे हन हेम्बर प्रथादिन प्रदेशीके उत्पन्न कई सुदृश सम्राट्की ऊपर ऊपर रोम निहासक

पर अलं हत होते देखते हैं। उन्हीं नरपतियोंके राज्य कालसे ही रोम-साम्राज्यके सामरिक और राजकीय शान्तिकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई और धीरे धीरे वह उधरोत्तर बढ़ गई थी। उस सागयसे 'इम्पिरियल' और 'सेनेटोरियल' प्रदेश-विभाग विलुप्त हुआ। राजकीय तथा सम्राट् के अपनत्वका अलगाव दूर हुआ। इसके बाद सेनेटर सामरिक और राजकीय कार्योंमें स्वाधिकार-विच्युत हुए। जो कुछ बाकी था, वह विख्यात घोर औरेलियनके (२७०-२७५ ई०में) यत्नसे पूर्ण हुआ। उसने राज्यशासनका बडोर दण्ड अपने हाथमें ले कर प्राचीन प्रथाका सम्पूर्णरूपसे विलुप्त किया। उसने अपने अधिकारकालमें रोम सरकारमें डारथोक्रेसियानके अनुकरण पर राजशक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाई थी और प्राच्य नगरोंकी समृद्धिका अनुकरण कर अपने राज्य समृद्धिकी गाम्भीर्य-वृद्धि की थी।

रोम-साम्राज्यका अक्षिप्त इतिहास।

पहले ही कहा जा चुका है, कि जुलियस सीज़रने रोमसाम्राज्यकी सीमा बढ़ा कर नाना विपरीतका संस्कार किया था। किन्तु रात दिनके युद्धविघ्नकी शान्तिका कोई उपाय नहीं कर गया। महानुभाव अगष्टस इसका उपाय कर गया था क्योंकि वह फूंक फूंक कर पैर रखता था। रोमीय प्रजातन्त्रके निर्वाचित सेनापतियों तथा स्वयं सीज़र दक्षिण और पश्चिमके भूखण्डों पर विजय कर गया। फलतः अफ्रिकाके मरुप्रदेश तथा अटलाण्टिक-महासागरके सिंघा रोम-राज्यसीमा और अधिक नहीं बढ़ सकी। सीज़रने गल-विजय की थी सदी; किन्तु उसका भतीजा अगष्टसने ही इन सब नगरोंमें सुसम्बद्ध शासनपद्धति-विस्तार और राजशाक्तिका पतन किया था और उसी तरह राजकीय विधिले ही वह रोमराज्यकी सीमारक्षामें तत्पर हुआ था।

इससे २५ वर्ष पहले न्यूमिडिया-राज्य प्राचीन अफ्रिका प्रदेशके अन्तर्भूक और उसके निकटवर्ती इजिप्त नगर एक सतन्त्र प्रदेशके रूपमें गिना जाने लगा। स्पेनके उत्तर-पश्चिमके रहनेवाली असम्प-पहाड़ी जातियोंकी जीत कर लूसिटानियाका शासन-विस्तार किया गया था। इसाके २७ वर्ष पूर्व अगष्टसने आक्टुटा-

निया, गलुनेनुसिस और गेलजिका प्रदेशकी राज्यभुक्त कर सुफसाइनसे जर्मनसागरके किनारे तक सीमा बढ़ा दी थी। इसके बाद उसने दक्षिणके मिसिया (६ ई०में) रितिया (१५ ई०में) और गालिया-बलजिका आदि प्रदेश अधिकार कर सुशासन प्रतिष्ठा द्वारा शान्तिस्थापन करनेकी चेष्टा की थी। ६५ ई०में मेक्सकी पराजयके बाद वह राइनकी पार कर सामने आगे बढ़ नहीं सका। उसके बंशधर टार्वेरियस शिलभा ट्यूटरने वर्गेंसिसकी विपत्तिका बदला चुका कर जर्मनीकासकी लीडनेकी आग्रा दी और १७ ई०में उत्तर-डेन्यूबके मार्कमिन्नी प्रदेशके राजा मार्कोवोनासके साथ सन्धि कर उसने अपने पिताके निर्दिष्ट अपने पक्षकी सुरक्षाका बन्धोवस्त करनेमें मन लगाया था। इसके अनुसार राइन नदीके किनारे उत्तर और दक्षिण जर्मनीमें डेन्यूबकी सीमा पर और पानोनिया और मिसियाके चारों ओर रोमीय लीजन प्रतिष्ठित किये गये थे।

अगष्टस रोम साम्राज्यकी शान्ति और समृद्धि प्रतिष्ठित कर गया। इसके बादके बादशाह सभी सुदृक्ष थे। ये अप्रतिहतरूपसे राज्यशासन कर गये हैं। गेयास, क्लिडियास और नीरो दुर्बुद्धिके कारण तथा उसके आत्याचारले रोम और इटली उन्वीडित हो उठी थी। राज्यके अन्य किसी स्थानमें उनकी दाल न गली। नीरोकी मृत्युके बाद, प्रतिद्वन्द्वी बादशाहोंके विरोधजनित युद्धमें रोम-साम्राज्यकी जी क्षति हुई थी, उसकी पूर्ति मेसेसियान कर गया था। मोथो, मिटेलियास और मेसेसियानके परस्पर युद्धके अवसर पर ६६ ७० ई०में सिमिलिसका विद्रोह उपस्थित हुआ। द्राजस, हाड्रियान और दोनों आक्टोनियास अपनी अपनी असाधारण शक्तिले रोम-साम्राज्यके विभयविजयिनी शक्तिके पुनराविर्भाव करनेमें समर्थ न होने पर भी सुशासन तथा शान्ति-स्थापनमें सफल हुए थे। क्लिडियास वृद्धकी जीतनेके लिये अगष्टस हुआ था। आफ्रिकाला (७८ ८४ ई०में) यहाँकी उत्तर-देश जीत कर "हाड्रियानकी चहारदीवारी" बना गया था। १०७ ई०में वर्षर जातिके आक्रमणले डर कर द्राजस निर्र डेन्यूब प्रदेशमें गया और उसने बाकिया-राज इन्वेवालासकी पराजित कर उसका राज्य छीन



लिया। उस समयमें २५६ ई० तक उक्त प्रदेश रोमके अधिकारमें था। बादनाह द्रुजानोने माराथिया-विद्रिया प्रदेशकी सीमासमाप्तमें लिखा लिया था।

मार्कॉस औरेलियासके शासनकालमें ( १५२ ई० १६५ ई०) मार्थीयरी आदि भयङ्कर जातियों सोमारतमें आ कर रोम राज्य पर आक्रमण करने लगीं। ये धीरे धीरे उत्तर अष्टमूष प्रदेशकी यात्रा कर प्रथमसे सिरिया, गीरि-काम और पालमिया प्रदेशको लूट पाट और ध्वंस कर आक्रमणको पार कर इटलीमें आ टरलियत हुई। इन सिद्ध-जित् बर्षोंके साथ रोमकी भीड़ धर्म तक युद्ध करना पड़ा।

सन् १८० ई०में मार्कॉस औरेलियासकी मृत्यु हुई। उस समयमें २८४ ई० तक साम्राज्य युद्धविपद और ज्ञातन विद्रुजायें रोम-साम्राज्यमें घोर विषयाय उपस्थित हुआ। विद्रु गैस्टिनियास सेमेरास, डेलियास कुशियाम, औरेलियन और प्रोवास आदि रणदुर्महद बादनाहोंके बहोर ज्ञानसमें रोम ध्वंस होनेसे बच गया था। २९१ ई०में सेमेरासकी मृत्युके बादसे २८४ ई०के डायोक्लिनियनके राज्यसिद्धत तक लगभग २३ बादनाह आक्रमणके विहासन पर चड़े थे। इनमें कैपल तीन बादनाहोंको जोगनीय मृत्यु हुई थी। डिनियस मध-जातिके नाग युद्ध करने समय मारा गया था। आले विजानने सुसुर पूर्वकी और कीरुमें वध कर आघकार-पूर्ण जोदतका अयमान किया था और कुशियासने उगी दूर्ध्विककी महानारोमे अरना जीवन को दिया था।

राजकुट्ट आहरेकीर्नो ज्ञानके क्षयकारी इन सब अनिमानी बादनाह 'दाहरेट' नाममें पुकारे गये थे। कीमोडानने अरको बुद्धिके दोबरी और अरदाचारको रोम राज्यमें विद्रुजना उपस्थित कर र्हे। चारों ओरमें जन्म होने उहाके प्रायमानको सिद्धा की। उहाकी बहुत मुक्तिका भेदकाको विषया वसी और कुशियास पति-सातको द्विचोप दरिलीना राजको नमिहान भाईके प्राय-हाकिन करने लगे। आरको विषेदरमें महत्तमें अने समय बादनाहकी मोहाम गुणपात्रके हाथ मारा गया। सन् १४४ ई०की ३१वीं दिनाचरकी मुक्तिना विद्रुजिय को गई।

कीमोडानकी मृत्युके जगहाने जोर प्रकट न कर उसको जगह पर निकेशु पाटिनायकको बैधाना पाहा। दग समय अयतन बरसात सोसियाम फाटकी उरका प्रतिशरुकी बन कर मिहासन अधिहार करनेकी वेष्ट करने लगा। विद्रु सकलता न मियो और सको ध्वंसको प्राप्त हुए।

कीमोडानकी मृत्युके बाद ( १४३ ई०की २८वीं मार्चकी) तीन मी "प्रियोरीय पाटिस" नामक रारा दीनिकोने गुणरूपसे महल पर आक्रमण कर पाटिनायक को मार डाला था। उस समय पृथेन गिरिया और इल्लिरियाके रोमीय सेनादुर्मने प्रियोरीय सेनादुर्कके पाटिनायकको मार डालने पर जोर प्रजान किया और इस घुटे मार्गसे प्राप्त भाईको मुक्तिमुक्त स्थांकार मरी किया। उस समय ये भग्ने भग्ने बहोर अधिनायकोंके मधीनमें रह कर उपरोक्त हत्याकारियोंको दण्ड देनेके लिये भागे बड़े। पृथेनके लीजनके नायक कुशियास राज्यायनाम, सिरियाके सेनापति और गिर सेनियाम गाहर और पामोनिया सेनादुर्कके अध्यक्ष सिरिगियामने सेरास पाटिनायकको मृत्युका बर्ना सुकाने आ कर नायकमें प्रविषोमी हो कर मिहासन पानेकी आज्ञायें युद्धका आधीन किया। लुणहुनाम रकोनीमें हेडेम-पेट्ट और साहलिसियाके युद्धमें और येजदको मगरके घेरेके समय मोरन युद्धमें साहलियानाम और नागर-परिवाहित प्रतिगस रोमक ईजिप्ट अग्ने नायकके साथ मार डाले गये। पृथेन उत्तराद्रित हुई। धीराम-गनी गैस्टिनियाम सेमेरासने इम तरह प्राधुकोहा नाज कर मिहासन पर अधिहार कर लिया। विजान मोतियान पाणिमियन अग्ने अधिहारके समय प्रोटि-नायके काइ "प्रोटोरियन निकेशु" हुआ था। उक्त पाटि-नियनके मिया इमके वंदके अधिहारकारोंमें प्रनाम और उपरिपात नामक दूतने को ब्राह्मणविद्वै बैठा हुए। उनको सेवकीसे मान्य होना है, कि उक्त समय रोमकी राजकीनने पूर्णता प्राप्त की थी।

प्रथम वरकोके विषयमें सेमेरासने सीमापारकी कुशिया सेना अग्ने वर राजकीय पाणिपत्र किया। ये वरको रोमकी मध्याकी रोमे पर भी अधिहारकी थी,

फिर भी नाना सद्गुणोंसे परिपूर्ण थी। इस राज-महद्वीके गर्भसे काराकल्ला तथा जेटा नामके दो चरित-हीन और पाशव प्रकृति प्रतिमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ। सन् २०८ ई०में ६० वर्षका बुद्धा सेमेरास अपने दोनो पुत्रको साथ ले कर घुटेन पर विजय करने गया। किन्तु 'रणमें' विजय-प्राप्त करके भी दोनो पुत्रोंके असद्-प्यवहारसे वह भग्नमनोरथ हुआ। काराकल्लाने उसके अन्तिम दिनोंमें उसे मार डालनेकी साजिश की। किन्तु शिब्वेस्त लीजनकी सतर्कतासे उसकी रक्षा हुई। सेमेरासने अपने कठोर शासनसे अपने पुत्रोंकी उत्पीड़ित क्रिया तथा डराया धमकाया। इससे भी उनके चरित-का संस्कार न हुआ। अन्तमें ६५ वर्षकी अवस्थामें इयार्क नगरमें उसने यह शरीर त्याग दिया। मृत्युके समय उसने सैनिकोंके सामने अपने पुत्रसे कहा था, कि तुम लोग इस सेनासङ्घके ही पुत्र हो। किन्तु दुर्भाग्य-पशतः इन्होंने आपसमें मेल नहीं रखा।

सम्राटकी मृत्युके बाद सैन्यदलने दोनो भाइयोंको सम्राट फह कर विधोषित किया। यह दोनो राजसिंहासन पर बैठनेके लिये राजधानीको चले। अभी गल और इटलीकी भी पार न कर सके थे, कि इन दोनोमें परस्पर मनमुटाव पैदा हुआ। राजधानीमें पहुंच कर उन्होंने राज्यारोहण किया। किन्तु इन दोनोने आपसमें राज्यका विभाग कर लिया। पिताका पेसा भादेश भी था। उद्येष्ट भ्राता काराकल्लाको यूरोप और पश्चिम अफ्रिका मिला और गेटाने पशिया और मिस्रप्रदेश ले कर अलेक्जेंड्रिया और अन्तिओकमें राजधानी कायम की। दो केन्द्रोंमें राजपाट प्रतिष्ठित होनेसे फिर आन्तर्जातिक-विवादका सूत्रपात हुआ। दोनोंमें परस्पर ईर्ष्यानि प्रचलित हो उठी। यह देख माता जुलियाने दोनोंमें मेल करा देनेके लिये अपने घर दोनोंको बुलाया। किन्तु फल यह हुआ कि काराकल्लाने गुप्त हथियारोंकी लगा कर गेटा-को मरवा डाला।

भाईको मार कर काराकल्लाने अपने प्राणकी आशङ्का बता कर सेना तथा देवमन्दिरके सामने अपने प्राणकी मिश्रा मांगी। सेनेट और सेना द्वारा आभ्यासन पाने पर मृत सम्राटका सत्कार कर यह २१२ ई०में पदेश्वर अर्धोश्वर बन गया।

गेटाकी मृत्युके १ वर्ष बाद यह राजधानी छोड़ कर पूर्व विभागके प्रदेशोंमें शान्तिस्थापनके लिये चला। इसके शासनके समय पूर्व राज्यमें अत्यन्त और अनाचारकी मात्रा बहुत बढ़ गई थी। अलेक्जेंड्रियामें भीषण दहया-काण्ड साधित हुआ। ओपिलियास माकिनादा दीयानो (Civil) विभागका और माइभेण्टस् सामरिक विभागका सर्वप्रथम कर्त्ता हुआ। सम्राटका मर जाना ही उसके लिये काल हो गया। बात फुट गई। यह बात मालूम हो गई कि काराकल्लाने ही अपने भाईको मरवा डाला है। इससे इसका सैन्य घोर घोर क्रमका साथ छोड़ने लगा। माकिनादा भविष्यदाणोके आधार पर साम्राज्य होनेकी चेष्टा करने लगे। सन् २१७ ई०की ८वीं मार्चकी घड़ेसासे कडही आते समय अपने एक रक्षक मासि यालिमके हाथ काराकल्ला मारा गया।

काराकल्लाकी मृत्युके बाद तीन दिनों तक रोमराज्यका सिंहासन शून्य था। इसके बाद श्रेष्ठ प्रिफेक्ठ अडेभेण्टास-की इच्छासे सर्वोंने माकिनादाको राजसिंहासन पर बैठाया। किन्तु कुछ ही समयके बाद माकिनादाने अपने पुत्र हायाडुमेनियासनासको अण्टेनिनास नाम और राजोपाधि दान कर राजसिंहासन पर बैठा दिया। उसका अभिप्राय था, कि बालककी मोहन मूर्त्तिले मुग्ध हो कर सेनाओंका चित्तहरणपूर्वक अपने संगवपुर्ण सिंहासनको सुदृढ़ कर लूँ। उसने इसी उद्देश्यसे राजमाता जुलियाकी अन्तिओकके राजप्रासादसे निकाल दिया। इस रमणीने बहुत धन रत्न ले कर अपनी सोइमियास और मामयो नामी विधवा कन्याओंको सङ्गमें ले कर पमासातमें पहुंच कर सोइमियासके पुत्र यासियानासको सम्राट बनाया। इसकी उसने काराकल्लाके विवाहित स्त्रीमात पुत्र कह कर घोषणा कर दी। सेनाओंने मिस्रा-के घनसे पुष्ट हो कर यासियानासको अन्तिओकस् नामसे सम्राट स्वीकार कर लिया। माकिनाम गाली पड़ा। कुचक्रमें पड़ कर यह अन्तिओकके निकट इभ्यके युद्धमें पराजित हुआ। उसके साथ दश वर्षके पुत्र डियाडुमे-नियानासका भाग्य चूर्ण हो गया। शत्रु मित ममो यिन्नेगाकी शरणमें आये। काराकल्लाके फलित पुत्र यासियानास पमेसाके सूर्यमन्दिरकी देवमूर्त्तिके नाम

दिया। उस समयसे २५१ ई० तक उक्त प्रदेश रोमके अधिकारमें था। बादमात्र प्राप्तमाने आराविया-प्रदिप्रा प्रदेशकी रोमशासनाश्रममें मिला दिया था।

मार्कास जीरेनियामके शासनकालमें ( १६२-१७५ ई०) मार्कोमन्नी आदि सामन्त जातियां सीमांतमें था कर रोम राज्य पर आक्रमण करने लगीं। ये छोटे छोटे उल्लूक प्रदेशकी पार कर मजाने इरिया, सीरिया और पामनिया प्रदेशकी लूट पाट और ध्वंस कर आक्रमणकी पार कर इत्यादिमें था उपस्थित हुईं। इन धैरेनिक धर्मोंके साथ रोमकी वीर्य धर्म तक युद्ध करना पड़ा।

सन १८० ई०में मार्कास जीरेनियामकी मृत्यु हुई। उस समयमें २८४ ई० तक सामान्य युद्धविषय और ज्ञातन विभूत्योंमें रोम साम्राज्यमें घोर विपदाय उपस्थित हुआ। विस्तृत सेरिथियाम सेमेराम, डेसियाम प्रुडियाय, जीरेनियन और प्रोवास आदि रणधूमद बादनाहोके बडोर ज्ञानमने रोम धर्म हीमेंसे बच गया था। २९१ ई०में सेमेरसकी मृत्युके बादसे २९४ ई०के डामीरियानके राज्यारोहण तक लगभग २२ बादनाह समयमें सिद्धासन पर बैठे थे। इनमें केवल तीन बादनाहोकी प्रोयोप मृत्यु हुई थी। इजियस गण-जातिके साथ युद्ध करने समय मारा गया था। माले-विद्याने मृत्यु पूर्वकी और किईमें पड़ कर अथकार-पूर्ण अयोग्यता अज्ञान विद्या था और प्रुडियासने उन्नी दुईसकी महामारीमें जाना जीवन गी दिया था।

राजकुट्ट साहस्यारिने ज्ञानमें शयकारी इन सब अभिमानो बादनाह 'डाइरेट्ट' नाममें पुकारे गये थे। कौमोडासने मरने सुविद्ध रोमके और बादनाहारने रोम राज्यमें विभूत्यों उपस्थित कर दीं। पानी कीरने लक्ष्मी उराने मानमानकी सेवा की। उरानो बहम मुक्तिप्राप्त मेदनाकी विपदा पत्नी और प्रुडियाय पति-नासकी प्रियोप-परिचोका समकी नृसिद्धा मार्के प्राण बलिदान करने लगे। अन्तही सिरेटसने मन्त्रमें समे समय बादनाहकी मोक्षाय सुगणककके साथ मारा गया। सन् १९४ ई०की ११वीं दिनांककी मुक्तिप्राप्त निर्दिष्टिके की गईं।

कौमोडासकी मृत्युमें अज्ञानमें शोक प्रकट न कर उसकी प्रणय पर विकेन्द्र वादिनाथमकी देवता पत्नी। उस समय अथगत कर्मस्य सोसियाम पत्नीकी उल्लूक प्रविष्टकी बच कर सिंहासन अधिकार करनेकी चेष्टा करने लगा। विस्तृत सकयला न मिली और सने धर्मको प्राप्त हुए।

कौमोडासकी मृत्युके बाद ( १९३ ई०की २२वीं मार्चकी) तीन मी "प्रिटीरोप मार्सेस" नामक एक नीतिधने मुक्तपत्तये महान पर आक्रमण कर वादिनाथम की मार डाला था। उस समय पृथक विरिया और इतिरिकायके रोमोप सेनापुत्रने प्रिटीरोप सेनापनके वादिनाथमकी मार डालने पर शोक प्रकान दिया और इस मुदे मार्गमें प्राप्त धर्मकी मुक्तिपुत्र स्वोकार नहीं किया। उस समय ये धर्म भगने बडोर अभिमानधोके सधोममें रह कर उदरीक हरवाकारिधोकी दृष्ट दूनेके जिये भागे बड़े। पृथकके सीजनके नामक प्रुडियाय धाद्विनाम, सिरियाके सेनापति और गिरा रोसियाय मारगर और पानोनिया सेनापनके अथवा सेरिथियामने सेतस वादिनाथमकी मृत्युका बन्दा सुझाने था कर आपनमें प्रियोपो की कर सिंहासन पानेकी आत्मीय युद्धका भावोक्तन किया। सुगणनाम रणोपमें हेरेत-पेट्ट और मार्डियियाके युद्धों और येडवरो अन्तके घेरेके समय भीवन युद्धों आद्वयविनाम और नागर-परिवादिन प्रियोप रोमके हीनिक करने नापके साथ मार डाले गये। पृथकी रणप्रतिन हुई। धीतम-गनी सेरिथियाम सेमेरसने इस तरह जन्म भोडा नाज कर सिंहासन पर अधिकार कर दिया। विद्याय नीतिप्राय पाणिपिन अन्तये अधिकारके समय प्रुडि नामके वाद् "प्रिटीरोप प्रियेन्ड" हुआ था। उक्त वादि-मिदमके मिया हमके धर्मके अधिकारकालमें मराम और उपस्थित नामक दुमने दो अथवाविद्वैत पैदा हुए। उनको लेपकोरी नामक होना है, कि उक्त समय रोमकी राजनीतिने पूर्णतः प्राप्त की थी।

प्रथम परकीके दिवसमें सेमेरसने वीरवत्तामी दुर्गिता होमा काली एक अन्तिका पाणिपदक दिया। ये हमकी रोमकी साम्राज्य होने पर भी चरितहीन थीं,

फिर भी नाना सद्गुणोंसे परिपूर्ण थी। इस राज-  
महिषीके गर्भसे काराकला तथा जेटा नामके दो चरित-  
हीन और पाशव प्रकृति प्रतिमूर्त्तिका आधिर्भाव हुआ।  
सन् २०८ ई०में ६० वर्षका बुढ़ा सेमेरास अपने दोनों  
पुत्रको साथ ले कर वृटेन पर विजय करने गया। किन्तु  
रणमें विजय-प्राप्त करके भी दोनों पुत्रोंके असद्-  
ध्वंसकारसे यह भयमनोरथ हुआ। काराकलाने  
उसके अन्तिम दिनोंमें उसे मार डालनेकी साजिश की।  
किन्तु शिंक्ल लीजनकी सतर्कतासे उसकी रक्षा हुई।  
सेमेरासने अपने कठोर शासनसे अपने पुत्रोंको उत्प्रेक्षित  
क्रिया तथा डराया धमकाया। इससे भी उनके चरित-  
का संस्कार न हुआ। अन्तमें ६५ वर्षकी अवस्थामें  
इयार्क नगरमें उसने यह शरीर त्याग दिया। मृत्युके  
समय उसने सैनिकोंके सामने अपने पुत्रसे कहा था,  
कि तुम लोग इस सेनासङ्घके ही पुत्र हो। किन्तु दुर्भाग्य-  
वशतः इन्होंने आपसमें मेल नहीं रखा।

सम्राटकी मृत्युके बाद सैन्यदलने दोनों भाइयोंको सम्राट  
कह कर विधोषित किया। यह दोनों राजसिंहासन पर  
बैठनेके लिये राजधानीको चले। अभी गल और  
इटलीकी भी पार न कर सके थे, कि इन दोनोंमें पर-  
स्पर मनमुटाव पैदा हुआ। राजधानीमें पहुंच कर  
उन्होंने राज्यारोहण किया। किन्तु इन दोनोंने आपसमें  
राज्यका विभाग कर लिया। पिताका पैसा आदेश भी  
था। ज्येष्ठ भ्राता काराकलाको यूरोप और पश्चिम अफ्रीका  
मिला और गेटाने, एशिया और मिस्रप्रदेश ले कर गले  
कजेट्टिया और अन्तिओकमें राजधानी कायम की। दो  
क्षेत्रोंमें राजपाट प्रतिष्ठित होनेसे फिर आन्तर्जातिक  
विषादका सुलपात हुआ। दोनोंमें परस्पर ईर्ष्यानि प्रचलित  
हो उठी। यह देख माता जुलियाने दोनोंमें मेल करा  
 देनेके लिये अपने घर दोनोंको बुलाया। किन्तु फल यह  
 हुआ कि काराकलाने गुप्त हत्यारोंकी लगा कर गेटा-  
को मरवा डाला।

भाईको मार कर काराकलाने अपने प्राणकी धाराडू  
बता कर सेना तथा देवमन्दिरके सामने अपने प्राणकी  
मिर्शा मांगी। सेनेट और सेना द्वारा आश्वासन पाने  
पर मृत सम्राटका सत्कार कर यह २१२ ई०में पक्षेधर  
अयोधर बन गया।

गेटाकी मृत्युके १ वर्ष बाद यह राजधानी छोड़ पर  
पूर्व विभागके प्रदेशोंमें शान्तिस्थापनके लिये चला। इसके  
शासनके समय पूर्व राज्यमें अत्यन्त गोर अनाचारकी  
मात्रा बहुत बढ़ गई थी। अलेक्जेंड्रियामें भोवण दृष्ट्या-  
काण्ड साधित हुआ। ओपिलियाम माकिनाश दीयानी  
(Civil) विभागका और आइभेलेटस् सामरिक विभाग-  
का सर्वमर्ष कर्त्ता हुआ। सम्राटका मर जाना ही उसके  
लिये काल हो गया। बात फुट गई। यह बात मालूम हो  
 गई कि काराकलाने ही अपने भाईकी मरवा डाला है।  
इससे इसका सैन्य धीरे धीरे इन्फका साथ छोड़ने लगा।  
माकिनाश भविष्यद्वाणीके आधार पर साम्राज्य होनेकी  
चेष्टा करने लगे। सन् २१७ ई०की ८वीं मार्चको पडेसासे  
कडही आने समय अपने एक रक्षक मासिंयालिसके  
हाथ काराकला मारा गया।

काराकलाकी मृत्युके बाद तीन दिनों तक रोमराज्यका  
सिंहासन शून्य था। इसके बाद श्रेष्ठ प्रिफेक्ठ अडेभेण्टास-  
की इच्छासे सर्वोंने माकिनाशको राजसिंहासन पर  
बैठाया। किन्तु कुछ ही समयके बाद माक्लिनाशने अपने  
पुत्र डायानुसनेनियानासको अडेनिनास नाम और  
राजोपाधि दान कर राजसिंहासन पर बैठा दिया। उसका  
अभिप्राय था, कि बालककी मोहन मूर्त्तिसे मुग्ध हो कर  
सेनाओंका चित्तहरणपूर्वक अपने संग्रहपूर्ण सिंहा-  
सनको सुदृढ़ कर लूँ। उसने इसी उद्देश्यसे राजमाता  
जुलियाको अन्तिओकके राजमासादसे निकाल दिया।  
इस रमणोने बहुत रत्न ले कर अपनी सोइमियास  
और मामयो नामी विधवा कन्याओंकी सङ्गमें ले कर  
एमासासमें पहुंच कर सोइमियासके पुत्र यासियानासको  
सम्राट बनाया। इसको उसने काराकलाके विधाहित  
खोजात पुत्र कह कर घोषणा कर दी। सेनाओंने मिसाय-  
के घनसे पुष्ट हो कर यासियानासकी अन्तिओकस नामसे  
सम्राट स्वीकार कर लिया। माक्लिनास थालो पड़ा।  
कुचक्रमें पड़ कर यह अन्तिओकके निकट इम्बिके युद्धमें  
पराजित हुआ। उसके साथ दस वर्षके पुत्र डियानुसने-  
नियानासका भाग्य चूर्ण हो गया। डायु मिस सभी  
विजेताको शरणमें आये। काराकलाके कल्पित पुत्र  
यासियानास वधेसाके सूर्यमन्दिरकी देवमूर्त्तिके नाम

पर इत्यागायानम कलिभोदास नाम इत्येते सुष्ठवे  
बाद गीम-मन्त्राद्यका भाषीभ्यः हुआ। यह मन्त्र २१८  
ई०की ७वीं सूक्तकी घटना है।

मौरिमियासका पुत्र राजा हुआ और मौरिमियाका पुत्र  
अलेक्जन्डर उनका सहायगी बन कर राजसंसारका  
कार्य करने लगा। किन्तु गया सघाट् भागने भाईकी  
होनासे कातर हो कर उसके प्राणमात्रकी रक्षा करने  
लगा। मिटोरियाण मार्गमदल बालक अलेक्जन्डरको  
प्राणरक्षाके निचे अग्रसर हुआ। एक दिन यह मिटो-  
रिया दृश्ये उसकी राजपथमें ला कर निष्ठुरतासे मार  
झाला (२२२ ई०की १०वीं मार्चकी)। सेनामीने  
माक्रियासकी मारनेवाला १७ वर्षीय अलेक्जन्डरको राज-  
सिंहासन पर बैठाया। इसके अनुसार अलेक्जन्डर-  
मेरुम नामसे सघाट् बन गया। अलेक्जन्डरने दुर्गाव-  
धानसमये सीरने समय राशन नहीं पर शायी सेनामी  
की पत्रन कर माक्सिमोन नामक एक व्यक्तिकी एक  
सौ सेना पत्रन करने तथा उसकी सिखाने पढानेका  
कार दिया। यह अनुभव धीरे धीरे प्रधान सेनापतिके  
पर पर पहुँच गया। इस समय सघाट् के अत्याचारमें  
बोधित हो कर सेनामीने सघाट्को मार डाला। इसमें  
बाद माक्सिमोनकी नहीं पर बैठाया। यह मन्त्र २३५  
ई०की ११वीं मार्चकी घटना है।

माक्सिमोन सेनावासी एक विशालसेनाका था।  
इसमें ऊँचा पर था वह 'टारिड'को तरह शायंसाय-  
रजका सर्वस्य नर सेना बादा। आर्यभट्टनाथके अनुसार  
उसने देवमन्दिरकी पूजामें भी नहीं कर ही  
प्रतिमाके निजद मन्त्रिमार्गसे पैदल यात्रा करने  
इसके धर्मशास्त्र इस कल्पमें साम्राज्यका प्र-  
त्येक विषय उदा। विरारुम कल्पमें अक्रिया  
श्रीरामायण मन्त्रिवाक्यके अर्थमें माक्सिमोन  
मार डाला। अन्तमें कर्णके सुदृष्टीके मन्त्रि  
दिवीके कर्णधर्मों वरु कर करने पत्रिक  
अधिक विद्वत्कल्पिण रज्जुवासी  
दृष्ट मन्त्रि'कामना सद्गुण'की बातें  
अन्तमालन करने लगा। इसमें  
कानकी बोलाए और इन्द्रकी कर्णधर्म

काम्य हुई। मिटोरिया मारु'म सेनास्यके नायक मिटो-  
रियानाम तपस्वी रहा बलोके निच निमुक्त हुआ।  
उसने अपने अत्याचारसे बादादाका विषयगत बन कर  
सेनेट और नगरवागियों पर अत्याचार प्रमुख चारम  
किया। किन्तु प्रजाविद्रुयमें उसकी भयना ज्ञापन हो  
देना पड़ा। उस समय सेनाकी अर्थका सोम दे कर दोनो  
मार्क्षियोंने राज्यको सुदृष्ट बनाया। किन्तु इसमें विद्रोह  
होई फल नहीं हुआ। मन्त्र २३७ ई०की १२वीं जुलाईकी  
मौरिमियासका नामनकर्ता कापित्रियामसने भारत  
कार्यक्रमदेश पर आक्रमण किया। कनिष्ठ मर्क्षियान  
रणक्षेत्रमें मारा गया। यह सुन कर दृष्ट मर्क्षियानने  
आक्रमणरथा कर ली। इसमें कुल ३६ दिन ही राज्य  
किया था।

इसके दोनो मर्क्षियानकी मृत्युमें सेनेटके सदस्य  
शामान्यरूप प्रयाहित करने लगे। सेनेटने माक्सिमोन  
सीर बालकितामसे सघाट्के पर पर निमुक्त किया।  
माक्सिमोन राज्यके विद्रोह मुक्त कार्यमें लिन रहने  
लगा और सुवासी और कनिष्ठ मर्क्षियानस राजर्विधि  
प्रभाव विस्तार करने लगा। माक्सिमोनने मौरिमिया  
उत्तम ज्ञानिकी पराजित कर सेनानायकत्वका पदोप  
परिचय दिया था। किन्तु अरु इस दोनो मर्क्षियान विद्रो-  
धोत्तममें मल ही कर 'द्विमर्क्षियान' पूजा दान करनेमें  
सम्य थे, नव अरुणवासी एक जनसंघने उन सुखशास्त्रिकी  
दृष्ट कर पौरवार कर नदा--"मर्क्षियान सेनापतीके  
श्रीरामायण मन्त्रि'कामना सद्गुण'की बातें

सी सेना है। यह इस जनमार्गकी विचार  
विचार की। उन सेनामीने दृष्ट  
मर्क्षियानके मर्क्षियान  
विचारियान

थे। ऐसे समय प्रिटोरिया गार्ड्स दलने आ राजमहल-  
में घुस कर अधीश्वरके गहनोंको उतार कर मार डाला।

यह सन् ३२८ ई०की १५वीं जुलाईकी घटना है।

इस तरह एक एक करके छः सम्राट् कुछ महीनेमें ही  
विद्रोही प्रजाके हाथसे मार डाले गये। गार्डियान प्रजा  
पुत्रकी छुपासे राजतण्ड पर बैठा सही, किन्तु उसकी  
माताके छुपापालन छोड़ा उसके बाल्यकालमें ही आधिपत्य  
विस्तार करने लगा। ये प्रजाके प्रति अत्याचारपरायण हो  
कर भी निश्चिन्त नहीं हुए। अन्तमें उन्होंने बालक सम्राट्  
की दोनों गांछें निकाल लीं। उस समय (२४३ ई०)  
सम्राट् ने प्राणके भयसे भाग कर प्रधान मन्त्रीको शरण-  
में जा कर प्राणमिक्षा पाई। उनके विश्वस्त परामर्श-  
दाता और प्रिटोरिय मिफेस्ट मिसिथियासने सम्राट् की  
ओरसे मिसोपोटामिया-आक्रमणकारी पारस्यके राजा-  
को पराजित किया और उस घटनाका स्मरण रखनेके  
लिये उसने २४२ ई०में जानासके मन्दिरका दरवाजा  
खोल दिया।

पारस्यकी फौजोंको भगा कर सम्राट् ने उनका पीछा  
किया और उन्हें यूफ्रेटिससे टाइपीस तक भगा कर  
सेनेटको अपने सचिवकी प्रजर शुद्धिका परिचय दिया।  
किन्तु आरुस्मात् मिसिथियासकी मृत्युसे अधीश्वर  
गार्डियानकी समृद्धिका लोप हुआ। उसने अरब देशीय  
प्रसिद्ध डाकू फिलिपको प्रिफेस्ट पद पर नियुक्त किया।  
उसने इसको नियुक्त कर आप ही आप अपनी मृत्युको  
शुलाया। फिलिप डाकू था ही, साम्राज्यकी हृदय जाने-  
के लिये उसने अधीश्वरके विरुद्ध सैनिकोंको भड़काया।  
उत्तेजित सैनिकोंने भायोरास नदीके किनारे सम्राट् को  
मार कर फिलिपकी सम्राट् बनाया।

फिलिप पूर्वसे आ कर रोमके सिंहासन पर बैठा।  
उसने रोमवासियोंके हृदयसे अपनी नीच वंशोद्भवता  
दूर करनेके लिये पवित्र क्रीड़ाओंका प्रचलन किया। अग-  
ष्टसके बाद कृष्टियास, डोमिसियान और सेमेरसके सिवा  
और किसीने इन क्रीड़ाओंका प्रचलन नहीं किया था।  
उसके शासनकालके सन् २४६ ई०में मिसिनार्म लीजनों-  
के भीतर घोर विद्रोह फैला। मारिनास नामक एक  
सेनापति इस विद्रोहका नेता बना। उस समय सम्राट् ने

डिसियास नामक एक सेनेटके सदस्यको इस विद्रोहका  
दमन करनेके लिये भेजा। डिसियासकी जानेकी इच्छा  
न थी, किन्तु वह राजाके आदेशसे गया। वहां जा कर  
विद्रोहियोंके कहनेसे सम्राट् के विरुद्ध उसने अन्ध  
धारण किया। फौजोंने उसको ही राजमुकुट पहना कर  
आगे किया। फल हुआ, कि मेरोनाके युद्धमें फिलिपको  
पराजित कर डिसियासको ही रोमका अधीश्वर बनाया।  
डिसियासने कई मास निर्गिन्न राज्य कर सीमागत  
आक्रमणकारी गथ जातिको दण्ड देनेके लिये यात्रा की  
और वह डेन्यूथके निकट आ उपस्थित हुआ। इधर एक  
दल डाकिया प्रदेशको लूटने लगा और मिसियाकी अन्त्य-  
तम राजधानी मारसियानापोलिस पर घेरा डाल कर  
बर्बरोंने बहुत धन सम्पत्ति लूट ली। गथ सेनापति  
निभा डिसियासको दलबल सहित अग्रसर होते देण भाग  
गया। गथ लोगोंने पीछे हट कर येसके निकटके हिमास  
पर्वतके पादमूलस्थ फिलिपोपोलिस नगर पर घेरा  
डाला। डिसियास उनका पीछा करके भी आगे जा  
न सका। शत्रुदलने एक दिन अचानक अधीश्वरके  
खेमे पर आक्रमण किया। रोमकसेन्य तितर-बितर  
हो गया। फिलिपोपोलिस शत्रुओंके हाथ चला गया।  
डिसियासने नये उद्यमसे फिर सेना एकत्र कर उनको  
उचित दण्ड देने तथा रोमके प्रणष्ट गौरवका  
उद्धार करनेके लिये चेष्टा की। इस बार उनको रोमकी  
अवनतिका प्रधान कारण मालूम हुआ। सारे रोममें  
रिश्तनखोरीका बाजार गर्म था। मर्चलालसासे रोमकी-  
का मस्तिष्क विह्वल हो गया था और रौतिनोनि हीना-  
वस्थापन्न थी। अधीश्वरने इस जातीय अवनतिकी  
मूलतः संस्कार करनेके लिये मलेरिनानको नियुक्त  
किया। किन्तु गथ जातिके बारंबार आक्रमणसे अधी-  
श्वरको इसे मूलसे नष्ट करनेका अवसर नहीं मिला।  
सिसिया प्रदेशके फोरम द्रेथोनियाई नामक नगरके  
निकट दोनों ओरसे विकट युद्ध हुआ। अधीश्वर पुत्रके  
साथ मारा गया।

रोमीय लोगोंने भग्नमनोरथ ही कर डिसियासके पुत्र  
दृष्टिलियामासको सम्राट् बनाया (२५१ ई० दिसम्बर)  
और गाल्लास दूसरे राजकादर संमालनेके लिये

पर इलागायालस भन्तिभोकास नाम इम्पिके युद्धके बाद रोम-साम्राज्यका अधीभ्वर हुआ। यह सन् २१८ ई०की ७वीं जूनकी घटना है।

सोइमियासका पुत्र राजा हुआ और मामियाका पुत्र अलेकसन्दर उसका सहयोगी बन कर राजसंसारका कार्य करने लगा। किन्तु नया सम्राट् अपने भाईकी ईर्ष्यासे कातर हो कर उसके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगा। प्रिटोरियान गार्डेसदल बालक अलेकसन्दरकी प्राणरक्षाके लिये अग्रसर हुआ। एक दिन यह प्रिटोरिया दलने उसको राजपथमें ला कर निष्ठुरतासे मार डाला (२२२ ई०की १०वीं मार्चकी)। सेनागोने माक्रिनासको मारनेवाला १७ वर्षके अलेकसन्दरको राजसिंहासन पर बैठाया। इसके अनुसार अलेकसन्दर-मेरस नामसे सम्राट् बन गया। अलेकसन्दरने दुर्भाग्य-वशात्ससे लीटने समय राइन नदी पर अपनी सेनाओंको एकत्र कर माक्सिमोन नामक एक व्यक्तिको एक नई सेना एकत्र करने तथा उसको सिखाने पढ़ानेका भार दिया। यह मनुष्य धीरे धीरे प्रधान सेनापतिके पद पर पहुँच गया। इस समय सम्राट्के अत्याचारसे पीड़ित हो कर लोगोंने सम्राट्को मार डाला। इसके बाद माक्सिमोनकी गद्दी पर बैठाया। यह सन् २३५ ई०की १६वीं मार्चकी घटना है।

माक्सिमोन घूसपासी एक किसानवंशका था। इसने ऊँचा पद पा कर 'टाररेण्ट'की तरह सर्वसाधारणका सर्वस्व लूट लेना चाहा। अर्थलोलुपताके कारण उसने देवमन्दिरकी पूजामें भी कमी कर दी और प्रतिमाके निकट सज्जितअर्घ्यसे पैट पालन करने लगा। उसके धर्मनाशक इस कार्यसे साम्राज्यका प्रत्येक व्यक्ति विगड़ उठा। फिर्सडूस नगरमें क्रिष्णाके प्रोफेसरल गार्डियानाशके अधीन साजिश करनेवालोंने मार डाला। अस्सो वर्षके युद्धने गार्डियानाश विद्रोहियोंके बहकावेमें पड़ कर अपने पवित्र जीवनकी अमृत जातिविक्रयमन्त्रिण रक्षणात्ममें कटुचित कर डाला। यह गार्डियानाश सद्रुद्रिसे राजसिंहासन पर बैठ कर राज्यशासन करने लगा। उसके पुत्र छोटे गार्डियानकी पोतला और दृढ़तासे काथेंद्र नगरमें राजधानी

कायम हुई। प्रिटोरिया गार्डस सेनादलके नायक मिटो-त्रियानाश नगरकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त हुआ। उसने अपने अत्याचारसे वादशाहका प्रियपात बन कर सेनेट और नगरवासियों पर अपना प्रभुत्व कायम किया। किन्तु प्रजाविद्रुहमें उसको अपना जीवन खो देना पड़ा। उस समय सेनाको अर्घ्यका लोभ दे कर दोनों गार्डियानोंने राज्यको सुदृढ़ बनाया। किन्तु इससे पिटोर कोई फल नहीं हुआ। सन् २३७ ई०की ३री जुलाईकी मीरियानियाका शासनकर्ता कापिलियानसने अर्धसैन्य कार्यप्रदेश पर आक्रमण किया। कनिष्ठ गार्डियान रणक्षेत्रमें मारा गया। यह सुन कर पूर गार्डियानने आत्महत्या कर ली। इसने कुल ३६ दिन ही राज्य किया था।

इधर दोनों गार्डियानकी मृत्युसे सेनेटके सदस्य जानन्दार्थ प्रयाहित करने लगे। सेनेटने माक्सिमास और बालविनासको सम्राट्के पद पर नियुक्त किया। माक्सिमास राजशुल्के विरुद्ध युद्ध कार्यमें लित रहने लगा और खुदागी और कवि बालविनास राजविधिका प्रभाव विस्तार करने लगा। माक्सिमासने सौरमतीय और जर्मन जातिकी पराजित कर सेनानायकत्वका पथेष्ट परिचय दिया था। किन्तु जब इन दोनों सम्राट विजयोत्सवमें मत्त हो कर 'देवमन्दिरमें पूजा दान करनेमें मस्त थे, तब अकस्मात् एक जनसंघने उस खुशगामिकी गद्ग कर चोत्कार कर कहा--"गार्डियन घंटापरकी ले कर तीन सम्राट् बनाये जाये।" दोनों सम्राटोंने अपनी थोड़ी सी सेना ले कर इस जनसमाजकी तितर-चितर कर देनेकी व्यर्थ चेष्टा की। उन लोगोंने पूर गार्डियानके पौत्र और कनिष्ठ गार्डियानके भतीजे गार्डियानकी सीजर नाम दे कर सबके सामने उपस्थित किया। इस पिटोरिके समाप्त होने पर रोम आत्मरक्षा करने पर तैयार हुआ।

रणजयो उदक स्वभाववाले माक्सिमासके साथ विशाल रोमसाम्राज्यमें सुशासन विस्तार करनेके लिये बालविनासका मनोमाश्रिय उपस्थित हुआ। समग्र नगर विद्रोहोत्साहन-प्रोत्साहमें उग्रमत्त हुआ था। दोनों सम्पूट, राजभंगभयुरकी निर्मोक्त कौशलरितीति विधायक कर रहे

थे। ऐसे समय प्रिटोरिया गार्डस् दलने आ राजमहल-  
में घुस कर अधीश्वरके गहनोंकी उतार कर मार डाला।  
यह सन् ३२८ ई०की १५वीं जुलाईकी घटना है।

इस तरह एक एक करके छः सम्राट् कुछ महानियों ही  
विद्रोही प्रजाके हाथसे मार डाले गये। गाडियान प्रजा  
पुत्रकी हत्यासे राजतन्त्र पर घैटा सहो, किन्तु उसकी  
माताके हत्यापात खोजा उसके वाय्यकालमें ही आधिपत्य  
विस्तार करने लगा। ये प्रजाके प्रति अत्याचारपरायण हो  
कर भी निश्चिन्त नहीं हुए। अन्तमें उन्होंने वालरु सम्राट्  
को दोनों बांधे निकाल लीं। उस समय (२४३ ई०)  
सम्राट् ने प्राणके भयसे भाग कर प्रधान मन्त्रीको शरण-  
में जा कर प्राणमिक्षा पाई। उनके विश्वस्त परामर्श-  
दाता और प्रिटोरिय प्रिफेक्ट मिसिथियासने सम्राट् की  
ओरसे मिसोपोटामिया आक्रमणकारी पारस्यके राजा-  
को पराजित किया और उस घटनाका स्मरण रखनेके  
लिये उसने २४२ ई०में जानासके मन्दिरका दरवाजा  
खोल दिया।

पारस्यकी फौजोंको भगा कर सम्राट् ने उनका पीछा  
किया और उन्हें यूफ्रेटिससे टाइग्रिस तक भगा कर  
सेनेटको अपने सचिवकी प्रणय बुद्धिका परिचय दिया।  
किन्तु आरुस्मात् मिसिथियासही मृत्युसे अधीश्वर  
गाडियानकी समृद्धिका लोप हुआ। उसने शरव वैशेष  
प्रसिद्ध डाफ् फिलिपको प्रिफेक्ट पद पर नियुक्त किया।  
उसने इसको नियुक्त कर आप ही आप अपनी मृत्युको  
बुलाया। फिलिप डाफ् था ही, साम्राज्यको हड़प जाने-  
के लिये उसने अधीश्वरके विरुद्ध सैनिकोंकी भड़काया।  
उत्तेजित सैनिकोंने आद्योरास नदीके किनारे सम्राट् को  
मार कर फिलिपको सम्राट् बनाया।

फिलिप पूर्वसे आ कर रोमके सिंहासन पर बैठा।  
उसने रोमवासियोंके हृदयसे अपनी नीच वंशोद्भवता  
दूर करनेके लिये पवित्र क्रीड़ाओंका प्रचलन किया। अग-  
एसके बाद कृष्टियास, डोमिसियान और सेमरसके सिवा  
और किसीने इन क्रीड़ाओंका प्रचलन नहीं किया था।  
उसके शासनकालके सन् २४६ ई०में मिसिनार्ने लोजनों-  
के भीतर घोर विद्रोह फैला। मारिमास नामक एक  
सेनापति इस विद्रोहका नेता बना। उस समय सम्राट् ने

डिसियास् नामक एक सेनेटके सदस्यको इस विद्रोहका  
दमन करनेके लिये भेजा। डिसियासकी जानेकी इच्छा  
न थी, किन्तु वह राजाके आदेशसे गया। वहां जा कर  
विद्रोहियोंके कहनेसे सम्राट् के विरुद्ध उसने अन्न  
धारण किया। फौजोंने उसको ही राजमुकुट पहना कर  
आगे किया। फल हुआ, कि मेरोनाके युद्धमें फिलिपको  
पराजित कर डिसियासको ही रोमका अधीश्वर बनाया।  
डिसियासने कई मास निर्गिण राजत्व कर सीमान्त  
आक्रमणकारो गथ जातिको दण्ड देनेके लिये यात्रा की  
और वह डेन्यूवके निकट आ उपस्थित हुआ। इधर एक  
बल-डाकिया प्रदेशको लूटने लगा और मिसियाकी अन्य-  
तम राजधानी मार्सियानापोलिस पर घेरा डाल कर  
वर्षोंने बहुत धन सम्पत्ति लूट ली। गथ-सेनापति  
निभा डिसियासको दलबल सहित अग्रसर होते देख भाग  
गया। गथ लोगोंने पाँछे हट कर थेसके निकटके हिमास  
पर्यंतके पादमूलस्थ फिलिपोपोलिस नगर पर घेरा  
डाला। डिसियास उनका पीछा करके भी आगे जा  
न सका। शत्रुदलने एक दिन अद्यानक अधीश्वरके  
खेमे पर आक्रमण किया। रोमकसेन्य तितर-बितर  
हो गया। फिलिपोपोलिस शत्रुओंके हाथ चला गया।  
डिसियासने नये उद्यमसे फिर सेना एकत्र कर उनको  
उचित दण्ड देने तथा रोमके प्रणय गौरवका  
उद्धार करनेके लिये चेष्टा की। इस बार उनको रोमकी  
अवनतिका प्रधान कारण मालूम हुआ। सारे रोममें  
रिभतखोटीका बाजार गर्म था। अर्थलालसासे रोमकों-  
का मस्तिष्क विह्वल हो गया था और रीतिनैति हीना-  
यस्थापत्र थी। अधीश्वरने इस जातीय अवनतिका  
मूलतः संस्कार करनेके लिये मलेत्तियायनको नियुक्त  
किया। किन्तु गथ जातिके बारंबार आक्रमणसे अधी-  
श्वरको इसे मूलसे नष्ट करनेका अवसर नहीं मिला।  
सिसिया प्रदेशके फोरम ट्रेथोनियाई नामक नगरके  
निकट रोमों ओरसे विकट युद्ध हुआ। अधीश्वर पुनः  
साथ मारा गया।

रोमीय लोगोंने अन्तमनोरथ ही कर डिसियासके पुत्र  
दिएलियासको सम्राट् बनाया (२५१ ई० दिसम्बर)  
और गाल्लास दूसरे राजकादर संमालनेके लिये



७  
५  
३

नियुक्त हुआ। इस्ते गण-सभोंके विरुद्ध प्रश्न धारण करनेमें इननया ही कर उन्हें धन दे कर सन्तुष्ट किया। इन दुर्दिनके समय मध्यमावृष्टिदियानासकी मृत्यु हुई। लोगोंने गाल्लसके प्रति सन्देश किया, किन्तु विरिध करे अपत्ति नहीं की। उन लोगोंने उनके सन्तुष्टियों पर मोहित हो कर उसकी ही सम्राट् के पद पर अभिरुचि किया।

गण-सभोंने रोमका प्रभाव खर्च तथा वर्तमान सम्राट् की दुर्बलता ईन नया वर्षर दल पहाड़ी सौतीकी तरह रोमसाध्वनमें आ डुला। पातोनियाके शासनकर्त्ता पमिलियानासन राजाके निश्चेष्ट भावकी उपेक्षा कर खर्च करने सेनाओंको ले कर इन वर्षरोंकी डेल्फ्युव नदीके उस पार कर दिया। सेनाने उसकी अद्भुत योरताको देख उसको सम्राट् बनाया।

सम्राट् गाल्लान यह समाचार पा कर विद्रोही सेनाओंको और सहयोगीको समुचित दण्ड देनेके लिये स्पेन्ट्रो-रफेनेत्रमें उपस्थित हुआ। किन्तु सम्राट् को सेनामें विद्रोहिमें मिल गई। फल यह हुआ, कि पुन के साथ सम्राट् गाल्लान मारा गया। इसी समयसे प्रदुलका स्वस्थान हुआ। यह २५३ ई०को घटना है।

उक्त वर्षकेमें महानेमें पमिलियानासन राजसभान पाया। दर सेदेदेके हाथ शासनविनायका मार अपेण कर मरने रोमसभ्य-सभके अभिप्रायसे उत्तर और पूर्वकी ओर वर्षरिननोंही दण्ड देनेके लिये सेनापतिरव प्रहण का किया। किन्तु उसका यह उद्देश्य कार्यामें परिणत नहीं हुआ। क्योंकि गाल्लानने इससे पहले ही भाटेरियान की सैन्य संग्रह करनेके लिये गल और जर्मनीमें भेजा था। भाटेरियान सैन्य ले कर लौट आया। इन दोनोंमें संघर्ष होनेमें पहले पमिलियानास सेनाओं द्वारा मारा गया।

सन्मर भाटेरियान ३० वर्षकी अवस्थामें साम्राज्यका अर्धाभार हुआ। किन्तु पुत्र गाल्लियेनासके हाथ राजकार्यका कुछ भार अपेण कर निश्चरत हुआ। इससे राज्यमें घोर विद्रोहला उपस्थित हुई। फ्राट्स, गण, मानेमरी और पारसीवालोंके दारदार आक्रमणसे विन्वित हो कर राजा लय गुडे करनेके लिये पूर्वकी ओर

सैन्य ले कर अपसर हुआ। या। सेनापति पसथूमासने गल राज्यकी रक्षा की और आतेरियानके प्रजादर्शन परास्त किया। वर्षरोंके गाल्लियेनास सन्तुष्ट नहीं हुआ। काले सेनेद भोपण पड़पत्तमें फंसी पा। उसके के समीप सहस्र आटेमनी सैनिकोंके मार्कोमन्को राजतनया पीपाका पाचिपार

जब गण-जाति बाढ़की तरह युक्त पाट कर ध्वंस कर रही थी, तब पारस्य गुसरूपसे अमेंनियाके राजा खुनको अधिभूत प्रदेशों पर कब्जा कर लिया। पारस्यके पुत्रने क्रोधित हो कर युफ्रेटिस नदीके दोनों ओरके दोनोंको उजाड़ बना दिया। नदीके बदला चुकानेके लिये युफ्रेटिस नदीके किनारे नदीको पार करते हो पारस्यराजकी सेना पराजित कर कैद कर लिया (२१० ई०)। विषयात बोर डिमोस्थेनिस कायागीरिका सिजोरियाकी रक्षा कर रही थी। शत्रु सवार हो कर रोमसम्राट् का खाल विवर उस खालकी भूसेसे भर कर पारस्य विरुद्ध स्वरूप राजा यमें गड़वा दिया।

गाल्लियेनास अपने पिताकी मृत्यु उठा। अब वही राज्यका एकमात्र अर्धाभार चामितागुणसे, कवित्वशक्तिसे और उच्च समी उस पर प्रसन्न रहते थे। किन्तु उसके प्रकृतिका सम्राट् कमी बैठा न था। उसके राज्यने क्रमशः वैदेशिकोंके आक्रमणसे कमजोर किया। पूर्ववर्णन रोमसाम्राज्यको हिनने अलेक्सण्डरियामें गृहविवाद उठ आया हुआ हीपमें बाकुओंके प्रादुर्भावसे राजदर इसौरियामें द्विद्विग्यानास शत्रुताकारण करने चर तक इस तरहके विद्रोहसे तलक तक एक महामारीके कारण रोमसाम्राज्य उठा। यह देख सम्राट् की बड़ा जोर सण्डियाके आधेसे अधिक अधिकारी

भर गये। उस प्रजामण्डलीने "स्वेच्छाचारी राजाके पाप-से राज्यका क्षय होता है" समझ औरोलोलासको सम्राट् बना कर आइंडाके रणक्षेत्रमें गाल्लियेनासको हराया। आधी रातकी सम्राट् गुप्तचरों द्वारा मारा गया था। मरते समय सम्राट् राजपरिच्छद् और वेगभूया पाणियाके सेनानायक क्लडियासको दे कर राजसिंहासन पर बैठाइनेकी व्यवस्था कर गया। इसके अनुसार क्लडियास राजसिंहासन पर बैठा। मिलान हाथमें कर और औरोलोलासको मार कर उसने सेनाओंका संस्कार किया था। किन्तु गद्य और बर्गरीके साथ सौरमतीय तथा अन्यान्य जर्मन जातियोंने जल और स्थलसे युद्ध कर रोम-साम्राज्यको विध्वंस करना आरम्भ किया था। क्लडियासने रोमको इनसे बचाया था। फिर नाइसेसके युद्धमें क्लडियासने युद्धविद्याका यथेष्ट परिचय दिया था।

इसी समय सम्राट् के प्रधान शत्रु टेट्रिक्लासने पश्चिमाञ्चलमें और जेनोवियाने पूर्व प्रदेशमें राज्य स्थापन करनेकी चेष्टा की। पहले तो यह उन सर्वोंको दण्ड देने पर तैयार न थे, किन्तु पीछे यह मिसिया धूस, माकिडोनियाके युद्धमें विजय लाभ कर रोगाक्रान्त हो शिरमियास नगरमें मर गया। मरते समय यह औरेलियानकी राजसिंहासन का अधिकारी बना गया। फिर भी उसके भाई कुइएटिलियसने १७ दिनके लिये आकुइलेइया नगरमें राजच्छत्र शिर पर धारण किया था। औरेलियानके मानसे शत्रु-दल डेन्यूबके दूसरे पार भाग गया।

शिरमियास नगरवासी किसानकुलका सामान्य सैनिक रह कर सौभाग्यसे लियान सम्राट् बन गया। उसके राज्यकालके चार वर्ष ६ महीनेमें "गधिक युद्ध" का अन्त हुआ था। जर्मनजातिने अपने क्रिये दुष्कर्मीका उपयुक्त दण्ड भोगा था। एकुटाइन प्रदेशके शासनकर्ता टेट्रिक्लास राजसिंहासनलाभका प्रयासी हुआ। इसको सम्राट् ने विद्रोही होने पर पकड़ कर कैद कर लिया था। आएडोनियासकी न्याहद्वारोसे हार्थ्यूलास स्तम्भ तक सम्राट् शान्तिविस्तार कर निश्चित हुआ था। यह २९१ ई०की घटना है।

इसके बाद सम्राट् ने उसी वर्षमें ही पामिरा और पूर्व प्रदेशोंकी अधीश्वरी जेनोवियाके विरुद्ध युद्धकी

तैयारी की। यह राजकुलकामिनी रूप और गुणोंसे अलंकृत थी। यह यूनाय, सिरिया और मिश्रदेशकी भाषा अच्छी तरहसे जानती थी। उसके पति घोर-श्रेष्ठ ओडेनाथास सेनेटसे मिरियाका शासक नियुक्त किया गया था। स्वामीके मर जाने पर नैवियाने ही सब प्रदेशोंका शासन कार्य किया था। और तो क्या, पारस-राज तथा रोम-सम्राट् गाल्लियानासको भी उसके हाथसे पराजित होना पड़ा था। इस समय उसने अपने राज्य-सोमा विधिनया सोमान्तसे युफ्रोसिसके किनारे तक विस्तार कर ली थी। शक्यशाली मिश्रराज्य उसके अधीन हुआ था।

सम्राट् औरेलियानके विधिनिया पहुँचने पर सबोंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली। आनकिरा और तियाना पदानत हुए। किन्तु जेनोवियाने युद्धकी तैयारी की। अन्तिमोक्त और पमेसारके युद्धमें (२७२ ई०में) पराजित हो कर जेनोविया तीसरो पार युद्धकी तैयारी करने लगी। उसके मिश्रविजयी सेनापति जावदास तथा उसने स्वयं युद्धकी परिचालना की थी। एधर सम्राट् के विश्वस्त सेनापति प्रोवासने एक रणवादिनी ले कर मिश्रको जीत लिया। उस समय रानी जेनोवियाने अपने किलेमें आश्रय लिया। उम समय पामिरा नगरी का समुद्रगौरव रोमसे कुछ कम न था। सम्राट् ने पामिरा पर घेरा डाला। पारसके राजाके मर जानेसे साहाय्यकी आशा न रही। एधर मिश्र विजय कर प्रोवास पहुँच गया। यह देख रानी जेनोविया भाग पड़ी हुई। किन्तु पीछा करनेवाले सैनिकोंने उसको पकड़ लिया। सम्राट् ने रानीकी बहादुरी पर वश्यता दिखाई च सम्राट् के वहांसे आने ही पामिरावासियोंने विद्रोह कर वहांके शासकको मार डाला। यह समाचार पा कर सम्राट् लौट आया और उसने पामिराका ध्वंस किया था। पामिराकी आबाल-वृद्ध बनिता सभी तलवारके शिकार हुए थे। यहांसे जा कर उसने मिश्रके विद्रोहका दमन किया। दलपति फार्मांस मारा गया। विजयगीरपसे उभस होने पर भी सम्राट् ने कैदी राजाओंके प्रति बसन्त-प्रयत्न नहीं किया। जेनोवियाकी उसने टिमोन्को बगोचेमें रखा था और उसकी कन्याओंका बियाह

भार मिला। गालेरियसको टेन्यूयके किनारेके प्रदेशोंका शासनभार मिला। माक्सिमियानने इटली और अफ्रिकाका अधिकार विस्तार किया। ह्यप्य अधोभर टारमोहिसियन ग्रेस, मिग्न और पशियाके घनघाम्य पूर्ण राज्योंका शासनभार ले कर निश्चिन्त हुआ।

टारमोहिसियन अनुलिनाम-वंशोप एक सेनेटेरे सदस्यके गुलामका पुत्र था। यह बुद्धि और वाहूबलसे अनुल सम्पत्तिका अधोभर हुआ। राजा हो कर एक वर्षके बाद ही सन् २८६ ई०में यह माक्सिमियानको अपना सहयोगी बना लिया। इसके बाद दूसरे वर्ष उसने पार्गार्दीयासके विद्रोहियोंका दमन किया। इस समयसे रोम-साम्राज्यके चारों ओर विद्रोहान्ति प्रचलित हो उठी। यर्षतजानि रोमकसीन्य, राजकरके रसिद् करनेवाले और स्वयं राज्योभरोंके अपूर्व अत्याचारोंसे प्रपीडित गल जाति विद्रोही हो उठी। पण्डामके किनारे पर फ्राडू ऑपनिवेशिकोंने अफ्रीकी मारम्भ की। अफ्रिका, यूनान और एजियाके किनारे दिन रात लूटतराज हो रही थी। येसी विशृङ्खलतामें पुली नगरमें अवस्थित मेनापीय सेनाध्यक्ष कारोसियसने इङ्गलिशप्रणाली पार कर घूटेन पर अधिकार कर लिया : यह सन् २८६ ई०की घटना है।

टारमोहिसियन और माक्सिमियान हताश हुए। किन्तु फिर क्षीर्ण सौजरीको सहयोगिता प्राप्त कर उन्होंने नयबलसे चलवान् हो कर घूटेन पर आक्रमण किया। कनस्तांसियस इस सैन्यका अधिनायक हुआ था। सन् २६२ ई०के बुले नगरके युद्धमें कारोसियस पराजित हुआ और उसकी फौजोंने आत्मसमर्पण किया। इसके बाद कनस्तांसियसने फिर जलयुद्धका आयोजन किया। इनमें मन्त्री आलेष्टसने राजाकी मार कर सन् २६४ ई०में घूटेन पर अधिकार कर लिया। रोमक मिफेथड असह्यिमोडसने जङ्गलदाओंसे अलेष्टसको मार गिराया। घूटेनवासो राजमरु हो बंध पड़े।

टारमोहिसियनने प्रोपासकी तरह रोम-साम्राज्यकी मिति हृद्द करनेका सङ्कल्प कर रोमान्यके चिलोंकी मजदूर किया। मिश्रमे पारस तक भेजे बाड़े किये गये। अन्तिमोफ, यमैसा और दमकरसमें मन्त्रमार स्थापित

हुए। इस तरहका आयोजन करनेसे गण, भारशाल, मेपिधि, थालेनओ चादि-वर्षर जातिमोका बल, बुर्य हुआ था और वे रणक्षेत्रमें यमसदन सिपारे। मालेमन्नी लङ्गे और विद्रोहोसारके युद्धोंसे स्तागिसवासके हाथमे पराजित हुआ। गलवारो मालेमन्नी जातिसे उपद्रव बच गये।

मिश्र विजयके बाद यह पारस्यविजयके लिये चला। रोम-साम्राज्यके नतुयिभागकी एकत्र कहिनियां उन्नती सहायताके लिये मेजनेकी व्यवस्था हुई। गलेरियास साथ साथ चला। पारस्यके राजा मारोवने माना स्थानोंसे सैन्य संग्रह किया, किन्तु कोर शृंगलायक व्यवस्था नहीं कर सका। युद्धमें असमर्थ हो कर यह मिसियाकी मरुभूमिमें भाग गया। गलेरियासने उसके परिवारवर्ग ( स्त्रीपुत्रादि ) को बड़े बल और सम्मानके साथ रणक्षेत्रमें रखा था। अन्तमें सन्धिदा प्रस्ताव हुआ। पारस्यकी रोमकी अधोभरता स्वीकार करनी पड़ी। इस्तिलीन, जायदिसिन आजानिन और काहुँइन प्रदेश और इवेरियाका शासन रोम-अधोभरके हाथ लगा। इस पर रोम और पारस्यके बीच मित्रताकी सन्धि हुई। तिरिदिसिने भी गिताकी सम्पत्ति पाई। इसके बाद यह अलमेसियाके अन्तर्गत सलेना नगरमें गया। यह सन् ३०५ ई०की श्लो गईकी घटना है। इसी दिन उसके सहयोगी मन्वतम अधोभर मेक्सिमियान धरती मिलान राजधानीमें इसी तरहकी घोषणा प्रचारित कर स्वयं लुकातिया नामक गण्डमाममें जा कर निश्चिन्त हुआ।

टारमोहिसियन और मेक्सियनके राजहत्यासे अयसर प्रदण करते ही रोमराज्यमें फिर मिष्टङ्का उत्थित हुई। कनस्तांसियस और गलेरियस सर्वप्रथम कर्तृत्व प्राप्त कर भी सुशासनकी प्रतिष्ठा कर न गये। गलेरियस और कनस्तांसियसने पूर्वकी तरह मगष्ट्रकी उपाधि धारण कर ली। गलेरियसने अपने मन्त्रि मेक्सिमिन-ओर इटलीके सेनापति मेमेरेसकी सौजर बना कर पार विनाशोंमें साम्राज्यकी बाँट दिया। उसने नामक लिया था, कि ऐसा करनेसे भारतकी व्यवस्था ठीक हो जायगी। किन्तु उसकी समक गलत निकली।

पश्चिम विभागमें कनस्तान्ताइन और अफ्रिका और इटलीमें माफसेण्टियासने विद्रोही बन कर अपने अधीनस्थ देशों पर कब्जा कर लिया। कालेडोनियामें बर्बरोंको पराजित कर अधीश्वर कनस्तान्सियस मर गया। यह ३०६ ई०की घटना है। उस समय गलेरियसने राज्यकी विभक्त द्वाा देव कर अपने पुत्र कनस्तान्ताइनको सौजनकी उपाधि दे कर उसके विभागका शासक बनाया और पूर्णकथित सेभेरसको अगष्टसकी उपाधि दी।

कनस्तान्ताइनकी इस तरह सीमायुद्ध होते देव मेक्सिमियानके पुत्र और गलेरियासके दामाद माफसेण्टियासके राजभ्रयलामकी आशासे इसी वर्गकी २०वीं अश्वत्थरकी उत्कण्ठित रोमकोंको अपने पक्षमें ला कर रोममें विद्रोह ध्वजा फहराई। पुत्रके प्रति स्नेहाधिक्ययश युद्ध मेक्सिमियानने विद्रोहियोंका ही पक्ष ग्रहण किया। यह देव कितने ही रोमक उसके साथ आ गये। इस तरह उसका पक्ष और भी मजबूत हो गया। अधीश्वर सेभेरस अपने सहायोगीके परामर्शके अनुसार राजधानीकी ओर चला। किन्तु उसके जाने पर नगरका दरवाजा बन्द हो गया। उसकी सेनाओंने सेभेरसका साथ छोड़ दिया। यह देव वह राभेन्नामें भाग गया। वहाँ मेक्सिमियानकी फौजोंने उस पर आक्रमण किया। इस तरह सेभेरस पकड़ा जा कर मार डाला गया। इसके बाद मेक्सिमियानने आल्पस् पर्वतमालाके पार कर सन् ३०७ ई०की ३१वीं मार्चकी दरवारमें कनस्तान्ताइनको बुला कर अगष्टस उपाधि और अपनी कला फटाकी दान किया।

सेभेरसके मारे जानेका समाचार पा कर रोमकोंको बृहद देनेके लिये गलेरियास, इल्लिरिकामसे अपनी फौजोंको ले कर रोमकी ओर चला। किन्तु नार्नी नामक स्थानमें पहुंचने पर फौजोंने उनका साथ छोड़ दिया। इससे वह भाग गया। यह सन् ३०८ ई०की घटना है। इस समय निम्नलिखित छः अधीश्वरोंने रोम साम्राज्यका शासन किया था—मेक्सिमियानके अधीन कनस्तान्ताइन और मेक्सण्टियस और गेलेरियसके अधीन लाइसिनियस और मेक्सिमिन। युद्ध अधीश्वर मेक्सिमियानने

अपने पुत्रके लिये समग्र परित्रम-विभागको हस्तगत कर लेनेकी सजिा की। कनस्तान्ताइनके फ्राडू जातिकी परास्त करनेके लिये राइन नदीके किनारे अग्रसर होने पर युद्ध अधीश्वरने अर्ध दे कर सेनादलको बंधीभूत किया। कनस्तान्ताइनकी जयतुम सैन्यके सामने युद्ध करनेमें असमर्था हो मेक्सिमियानने मार्शाएल नगरमें आश्रय लिया। विपक्षिणोंने नगर पर अधिकार कर लिया। कनस्तान्ताइनके आडोसे सन् ३१० ई०की फरवरी महीनेमें उन्होंने उसे मार डाला। इसके एक वर्ष बाद सन् ३११ ई०की मई महीनेमें अत्यधिक मद्य पीनेके कारण पीड़ित हो कर गेलेरियसने परलोक पयान किया।

गेलेरियसके मृत्युके बाद इस बात पर लिसिनियास मेक्सिमिनमें विरोध पैदा हुआ, कि किसका प्राधान्य हो। अन्तमें मेक्सिमिनने प्राच्य-विभागके एगियाखण्ड और लिसिनियासने यूरोपखण्ड पर अधिकार कर लिया। हेलस्पण्ड और थ्रेसीय वफरास दोनोंकी अधिकृत सीमा निर्दिष्ट हुई। इसी समय रोम-राजकी उन्नति-विधानके लिये लिसिनियास और कनस्तान्ताइन एक मत हुए। किन्तु मेक्सिमिन और मक्सण्टियस एक दल हो कर छिप कर अन्तर्जातिक विप्लवकी कुटिल कल्पना करने लगे।

अधीश्वर महात्मा कनस्तान्ताइन प्रथमने ३०६ और ३१२ ई०में फ्राडू और आलेमनी जातिकी सम्पूर्णरूपसे निर्जोय कर दिया। इसके बाद सन् ३१५ ई०में यह इटलीवासीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर तुरीण रणक्षेत्रमें उन्हें परास्त किया था। दोनों ओरसे भयङ्कर युद्ध होनेके बाद उनकी हार हुई थी। इसने उपरान्त उसने मेरोना पर घेरा डाला। मेक्सण्टियसके सेनापति प्यारिसियास पम्पियानास नगरकी रक्षामें लयलोन था। दोनों ओरके भयङ्कर युद्धके बाद पम्पियानास पराजित हुआ।

सम्राट कनस्तान्ताइन इस समय लिसिनियासके साथ अपनी बहन कनस्तान्मियाका विवाह कर देनेका शायोजन किया। सन् ३१३ ई०के मार्च महीनेमें दोनों मिलान नगरमें एकत्र हुए। दोनों विवाहकार्यमें फंसे थे, ऐसे समय उन सबकी रणक्षेत्रमें जाना पड़ा था। कनस्तान्ता-

एक क्रान्ति जातिके, बीसहत्तर-निवारणार्थ राशन तट पर गया और लिस्सिनियाम विद्रोही मेक्सिमिनके दण्डको न्यून करनेके लिये पैन्तोनो नगर पर अधिकार कर इसी वर्षके १७वीं अक्टूबरको हिराकियामें परस्पर सम्मेलन हुए मेक्सिमिन परास्त हो कर निकोमिडियामें भाग गया। यहां उसकी मृत्यु हुई।

सन् ३१४ ई०में कनस्तान्ताइन और लिस्सियानाम रोमीय जगत्के एकमात्र अधीश्वर हुए। दोनों अधीश्वर बन्दूकसे उच्चजित हो कर एकाधिपत्यकी भांगाले आपसमें युद्धप्रवृत्त करने लगा। कनस्तान्ताइनके अत्यन्त बदनोई यासियानाको सौजूरको उपाधि और इत्योका शासन-भार मिला। इससे लिस्सियानासका हृदय विद्वे पानिले जल उठा। यह अपने अधीनस्थ अपराधियोंको दूसरे दो बादशाहोंको विचारार्थ देनेमें असमर्थ हुआ। इस पर घोर युद्ध हुआ। सन् ३१५ ई०में ८वीं अक्टूबरको पानो नियाके अन्तर्गत कियालिस नगरके निकट घोर लड़ाई होनेके बाद लिस्सियानास पराजित हो कर आक्रियात्तें पूर्वसमें भाग गया। निरौक्त स्थानके मारिंया रणक्षेत्रमें दूसरी लड़ाई हुई। लिस्सियानासकी सेना रातिके पतान्धकारमें इस बार भी लखी हुई।

दो बार लगातार पराजयसे लिस्सियानासको शीघ्र ही हल कर कनस्तान्ताइनकी दया हुई। उसने सन्धि कर आपसके मनोमालिन्ध्यको दूर करनेका यत्न किया। किन्तु युद्धके इतिपूरण स्वरूप पानोनिया, डालमामिया, आक्रिया, मारिदोनिया और यूनाय पश्चिम साम्राज्यमें मिला लिये गये। एल्पास और छोटे कनस्तान्ताइन पश्चिमके सौजूर नियुक और कनिष्ठ लिस्सियानास पूर्व राज्याका सौजूर हुआ।

इस घटनाके ८ वर्ष बाद सन् ३२३ ई०की ३री जुलाई को कनस्तान्ताइन अपने सहयोगी लिस्सियानासके साथ-साथ करने पर उतारवा हो उठा। हेमस नदीको पार कर उसने मोमथेगसे अपने हाथ पर आक्रमण किया। लिस्सियानास भारतदेशमें धनमय्य हो पैन्तोनो किल्लेमें छुके गया। किन्तु पदाति यह कालसिद्धमें उसके बाद निकोमिडियामें भागा। अन्तमें बदन कनस्तान्तिपाके बदनोई अधीश्वर कनस्तान्ताइनने अपने बदनोई लिस्सिया-

नाससे रोम-साम्राज्याका अधिकार निकाल लिया। इसके साथ ही उसके अधीनके शासनकर्ता मारिं निया-नासको अस्तित्व होना पड़ा। लिस्सियानास घेरेसो-निका नगरमें गजरबन्द हुआ। पीछे राजद्रोहियोंके सार-राधमें उसकी यमसूदन जागा पड़ा। आरभोस्तिनियने सुशासन-व्यवस्थाके लिये जिस रोम-साम्राज्यकी चार भागोंमें विभक्त किया था, यह आज ३७ वर्षके बाद सन् ३२४ ई०में रोम साम्राज्य एक छत्राधीन हुआ। राज-विभागोंके एक हो जानेसे और राजकार्यकी सुविधाके लिये उसने स्थानसे कनस्तान्तिपोल नगरी स्थापन किया और अलेक्सन्दर सेमेरेस जो मृत्यु या ईसाचर्मका प्रथम दे गया है, यह उसको सम्पूक प्रतिष्ठा कर गया।

अधीश्वर कनस्तान्ताइनके दो पत्नियां थीं। पहली मिनाभिताके गर्भसे एकमात्र कोन्त्यास और दूसरी पत्नी कष्टाके गर्भसे कनस्तान्ताइन दूसरे, कनस्तान्तिपास और कनस्तान्तासने जन्मग्रहण किया। कनस्तान्तिपासको सौजूरको उपाधिके साथ यह प्रथमका शासनभार देनेमें कृपासका हृदय विद्वे पानिले जल उठा। इस समय राजने जीवन-नाशके मन्त्रालयमें पदग्रहणकारी बहू कर कृपास पकड़ा और मार डाला गया। अधीश्वर कनस्तान्ताइनने प्रथम अपने जीवनके बीस और तीस वार्षिक राजनोभोत्सव मन्थन कर सन् ३३७ ई०में २२वीं मईको निकोमिडियाके आइरियन राजमहलमें देहत्याग किया। इसके बाद उनका पत्नी कष्टाके गर्भसे उत्पन्न नोमो पुत्र राज्यके अधिकारी हुए। २२वें कनस्तान्ताइनकी यह राजधानी, कनस्तान्तिपासकी भूसे और पूर्वी नगर तथा कनस्तान्तासकी इत्यो, आक्रिया और इजिरिकाम मिले। इसी समय नाशेयके पीछे और हरमूजका पुत्र मापुर प्राच्य रोमराज्य पर अधिकार कर अपने शासनका विस्तार कर रहा था। कनस्तान्तिपास प्राच्यपक्ष युद्ध करके जो उभे हटा न सका। सन् ३४८ ई०के निहाल-मुहमें रोमक पराजित हो कर भागे। 'सो समय मास-का पीजीने पार्थिककी महापत्नी को गो।

इसी समय मन्सेमेटोके अधीन एक पारक्यके पूर्वी भाग उपग्रह कर रहे थे। पारक्यराजने दूसरा उपग्रह म देष रोम-साम्राज्यके साथ गन्धि कर नी। इधर साय-

द्रोही कनस्तान्ताइनने कनिष्ठ भाई कनस्तान्सके धन-  
ऐश्वर्यको बढ़ते देख ईर्ष्यान्वित हो कर उस पर आक्रमण  
कर दिया। उसके आनेसे डर कर कनस्तान्सके द्वारा  
भेजी हुई फौजोंने छलसे कनस्तान्ताइनको ले जा कर उन  
सर्वीको मार डाला। यह ३४० ई०की घटना है। इसके  
ढोक दश वर्ष बाद अर्थात् सन् ३५० ई०में मार्नेण्टियास  
नामक एक राजद्रोहीने मार्शेलियानासकी उच्छेदनासे  
कनस्तान्सको मार डाला। कनस्तान्सियासने माथ्रेण्टि-  
यासको नहीं छोड़ा। सिलिओकस पर्वतके निकटके  
युद्ध मार्नेण्टियास सन् ३५३ ई०में मारा गया।

सन् ३५० ई०में कनस्तान्सियास एकछल राजा हो  
गया। सन् ३५१ ई०को ५वीं मार्चको उसने गाल्लासके  
साथ अपना कन्या कनस्तान्तिनाका विवाह कर दिया  
और उसको राजकार्यके सुप्रबन्धमें लगाया। सन्  
३५३ ई०में कनस्तान्सियासका राज्य निष्कण्टक होने पर  
भी गाल्लासका अत्याचार दिनों दिन बढ़ने लगा। यह  
देख सम्राट् ने उसकी क्षमताको कम कर देने चाही।  
उसने कौशलसे अपनी कन्याका प्राण-संहार कर दामाद-  
को छलसे मिलानमें बुला कर चर्वासियो नामक सेना  
पतिके साहाय्यसे पेटोमियो नामक स्थानमें कैद कर  
लिया। इसके बाद उसने पोला नामक स्थानमें कैद कर  
उसको भयव्यङ्गनासे मुक्त कर दिया। इस समय उन्हींने  
मतीजोंको मार डाला। केवल साइप्रसो यूसिविपाको  
बोचमें रख जुलियास पपेग्लस नगरमें निर्वासित किया  
गया। यह वहाँ ही रहने लगा। किन्तु उसकी वहाँ  
अधिक दिनों तक रहना न पड़ा। साम्राज्ञीको वहाँसे  
उसका विवाह कनस्तान्सियासकी बहन टेलनासे हो  
गया। अब यह सोजरको उपाधिके साथ आल्पस पर्वतके  
दूसरे किनारेके प्रदेशोंका शासक बनाया गया। इसके  
सम्बन्धमें उसकी मिलानमें आ कर अधीश्वरसे भेंट  
करती पड़ी। यहाँ २४ दिन रह कर यह मृत-राज्यके  
शासन करने लगी। यह ३५५ ई०की घटना है।

सन् ३५७-५६ ई०में सम्राट् कनस्तान्सियास पूर्व  
विभागका पर्यवेक्षण करने आ कर कादी, सौरमतीय  
और लिमिगेन्सिस आदि जातियोंको बर्धमें लाया।  
थेपोक वर्षमें उसको सापुरके साथ युद्ध करना पड़ा।

इसो युद्धमें उसके पुत्रके कलेजेमें बाण धंस जानेकी  
वजह मृत्यु हो गई। इससे उसने श्रुतिपूरण-स्वरूप  
आमिदा नगरको ध्वंस किया। इससे रोमकीने उरोजित  
हो कर उसके विपक्ष युद्धकी घोषणा की। इस समय  
बर्गरेने सापुरका साथ छोड़ दिया। इससे उसका बल  
कम हो गया। सन् ३६० ई०में रोमकीने शिन्नाडा और  
मिसिपोटामिया पर अधिकार कर लिया और मोर्थाके  
युद्धमें हार कर सापुर भाग गया। इसके बाद अधीश्वर  
कनस्तान्सियासने अपने सेनापतिके कार्यसे असन्तुष्ट  
हो कर स्वयं डेय्यूबके किनारेसे पूर्वकी ओर दाता की।  
थेशादे-किले पर घेरा डालनेके समय वर्षाकाल आ जाने-  
से अधीश्वरने अन्तिओकमें लौट कर छावनी बनाई।

राजनीतिक विशृङ्खलामें गिर कर अधीश्वर  
कनस्तान्सियास फ्राङ्क आलेमन्नी शदि जर्मनीके  
असम्भ्य अधिवासियोंको गलराज्यके अधिकांश प्रदेश  
छोड़ देने पर बाध्य हुआ। इस समय नाना शास्त्रविद्  
जुलियान गलका शासक हुआ। इसने युद्धविद्यामें  
निपुण न होने पर भी ३५७-३५६ ई०में कई युद्धोंमें  
जर्मनीके बर्गरेको पराजित कर राइन नदीके दूसरे  
किनारे तक रोमराज्यकी सीमाका विस्तार किया।

जुलियानकी यह प्रतिभा और सौभाग्य अधीश्वरको  
आँवोंमें कौटा बन गया। उसने शीघ्र ही उसके पास आशा  
भेजी, कि द्रिप्यूनके समीप अपनी चार लीवन भेजो।  
इससे सेनाये बिगड़ गईं। वे पारस्यके कठिन क्लेशोंकी  
सहने पर राजी न हुईं। उन्होंने अधीश्वरकी आशाका  
अमान्य कर जुलियानके लिए जीवन उत्सर्ग करना सोचकर  
किया। वे बलपूर्वक राज-प्रासादमें घुस कर जुलियानकी  
आश्रकें साथ पकड़ कर ले आये और सिंहासन पर  
बैठा कर उसको अधीश्वर होनेकी घोषणा प्रचारित की।  
इसके सम्बन्धमें दोनों ओरसे घोर युद्ध होने लगा।  
जुलियानने सन् ३६१ ई०में बासिल नगरके समीप अपने  
सेनावलकी दो भागोंमें विभक्त कर सेनापतिने विद्याकी  
रिटिया और मोरिरामके बीचसे और जोभियान और  
जोभिनासकी आल्पस पार कर उत्तरी इटलीमें जानेकी  
याहा दी। इसके बाद यह स्वयं डेय्यूब नदी द्वारा  
विपुल-वाहिनियोंकी शिरमियाममें टा कर उनसे मिल

गया। इधर वनस्तान्त्रियाम अपनी फौजोंके साथ वध पर्यटनमें अत्यधिक कुतन्त्र हो गया। दाक्षिण पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम-दिशाओंमें स्वाम्य्य मङ्ग होने पर मोप-सुप्रान नगरके भीमें ही वध पीड़ित हो गया। २४ वर्ष राजहय भोग कर ४५ वर्षकी अवस्थामें इसी रोगसे उसकी मृत्यु हुई। मृत्युके पहले यह युवक जुलियानकी सप्राट बना गया।

जुलियान राजसिंहासन पर बैठ कर सत्कारी कामोंमें वितन हो संस्कारोंमें प्रवृत्त हुआ। यह पहलेकी तरह मूर्खपुत्रक था। इसने ईसाई उसके शासनकालमें अपना विस्तार कर न सके। यह जेफसलेमके प्राचीन मन्दिरके संस्कार कर पारस-विजय करनेके लिये आगे बढ़ा। माओगा मालका किलेकी ध्वंस करन के बाद पारसवाले दुतावा होने पर भी रोमकोंके विपक्षता-करण करनेसे बाज न आये। सन् ३६३ ई०के २६वें जून को जुलियान स्वयं युद्धक्षेत्रमें अवतारण हुआ। विपक्षियोंके गलावे (बहुजा) अत्रसे यह मूर्च्छित हो गया। संज्ञा प्राप्त होने पर छोड़े पर चढ़ कर यह फिर युद्ध करने चला। किन्तु हाकुरोंने उसकी मृत्यु निकट समझ उसके इस कामसे रोक दिया। मृत्यु-दण्ड पर उसने एशानिकश्रेष्ठ विकास और माक्सिमसके साथ 'आत्मा की प्रवृत्ति' विषय पर विचार किया था।

जुलियानकी मृत्युके बाद रोमीय सैन्यके अधिनेता पोर जोसियानने सेनाओंके आग्रहसे राजपद ग्रहण किया। किन्तु उसको अधिक दिनों तक राज्यसुभोग करना न पड़ा। सन् ३६४ ई०के १०वें फरवरीको अत्यधिक मघ पानी और भोजन करनेसे उसका दाह-स्तागा नगरमें मृत्यु हो गई। उसकी मृत्युके बाद रोम-साम्राज्य १० दिन तक गाली था। निर्वाचन करनेसे थालेस्टिनियानने २६वें फरवरीको सप्राट पद प्राप्त किया था। उसने एक वर्षकी मार्या महोत्समें अपने ध्याता थालेस्टिनियानको कनस्तान्तिनोपोलिस राजधानीके साथ राजा भाग समर्पण किया और स्वयं मिलानमें रह कर इतिहासकार, इरली, मल भादि पश्चिमोत्त राज्यों पर शासन करने लगे। इस समय सन् ३६५ ई०के सितम्बर महोत्समें जुलियानके विरुद्ध रोमीय प्रोडोपियासके

विद्रोह और उस समयके जर्मन-युद्धने उसकी विरोध रूपसे तंग कर दिये। रोमीय युद्धके समय प्रोडोपियासके अग्रगण्य प्रोडोपियास नगरमें अपने लुट्रियन सैनिकोंको विस्तार करनेके समय मगके आधिपत्य उसकी जिम्मे फट गई। इसीसे उसकी मृत्यु हो गई। यह ३७५ ई०की घटना है। उसका भाई थालेस्टिन और तीन वर्ष तक प्राच्य सिंहासन पर बैठ कर सन् ३७६ ई०में मघ युद्धमें पराजित हो शत्रुके हाथ मारे गया।

थालेस्टिनियानकी मृत्युके समय उसको उद्येष्ट पुत्र प्रोसियान थिमस प्रामादने था। यह राजपदका अधिकारी था, पर सेनापति प्रोडोपियासने एण्डोवमें अपने समीले भाई द्वितीय थालेस्टिनियानको राजा होनेकी घोषणा की। तब प्रोसियान चार वर्षके छोटे भाईको सौतेली माके तरबाव घानमें मिलान नगरमें एक वर्ष आवासके बादके प्रदेशों पर शासन करनेके लिये चला। सन् ३७५-३८३ ई० तक प्रोसियानके ३७-३६२ ई० तक थालेस्टिनियानकी और सन् ३६४-२८७ ई० तक थालेस्टिनियानकी राज्यकाल है। मल: ३७५-२८७ ई० तक रोमजगत् तीन सम्राटों द्वारा शासित हुआ था। थालेस्टिनियानके जीवनकालमें पूर्व भागमें रोमकोंका प्रभाव अक्षुण्ण था। उसकी मृत्युसे ही पार्थियन रोम-साम्राज्यके अन्त:पतनकी कल्पना की जाती है।

मघ जातिके हाथसे थालेस्टिनियानकी मृत्यु होनेके बाद पूर्व रोमराज्य उरसन्तम्राय देण कर सप्राट् प्रोसियान अपने चाचाकी सहायताके लिये भा उपस्थित हुआ। अन्त:पतन ही अपने चाचाकी मृत्युसे व्यथित हो कर मायी-विप्लवके निवारण करनेके लिये एटेल और मल-विजय निर्वामित पुत्र थिमोसियानकी अग्रोदश बनाया। सन् ३६५ ई० तक प्रथम थिमोसियानस ही रोम साम्राज्यका एकमात्र अग्रोदश था।

थिमोसियानस नामका एक सेनापति सन् ३६६ ई०में थालेस्टिनियानकी हत्या कर स्वयं युजिनियानस नाम एक पश्चिम साम्राज्यका अग्रोदश बन गया। राज्याप-हारक युजिनियानको पराजित कर थिमोसियानस रोम-साम्राज्यका एकमात्र अग्रोदश ही गया। इसीमें लुडो-पियास अग्रोदश ही कर मूर्खपुत्रक धर्मका मान किया था। सन् ३६५ ई०में १७वें जनवरीको मिलान नगरमें

पिओडोसियासकी मृत्यु हुई। उसके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र आर्केडियासने पूर्ण राज्याका भाग ले कनस्तान्तिनोपलमें राजधानी की और छोटे पुत्र ओनोरियास पश्चिम विभागका अधीश्वर बना।

सन् ३९५-ई०में ओनोरियास पश्चिम राजधानीके सिंहासन पर बैठा सही, किन्तु उसमें राजकीय प्रतिभा न रहनेसे उसके राज्यमें घोरतर विशृङ्खला उपस्थित होने लगी। अफ्रिकामें गिल्डोर-विद्रोह, आलारिक और रादागाइसके इटली आक्रमण, जर्मन द्वारा गल राज्य उत्सादन, एलिकोर और रूफिनियासके पडुवन, गंध जातिका पराभव, अलारिककी मृत्यु, कनस्तान्ताइनके अम्युदय और पतन, एलिकोरकी हत्या आदि घटनाओंसे रोम साम्राज्यका बल घटने लगा था।

ओनोरियासके बाद हीनबोथर्य निम्नोक्त कई राजे पश्चिम अधीश्वर सिंहासन पर बैठे थे। सन् ४२४ ई०में तृतीय थालेस्टिनियन राजसिंहासन पर बैठा। इसके बाद ४५५ ई०में मेक्सिमास, इसी वर्गमें अवितास, सन् ४५७ ई०में मेजोरियानास, ४६१ ई०में सेमेरास, ४६७ ई०में पन्थिमियास, ४७२ ई०में ओलिवियास, ४७३ ई०में ग्लिसेरियस, ४७४ ई०में जुलियास नेपोस और ४७५ ई०में सेमूलास अगष्टस पश्चिम रोम-साम्राज्यके सिंहासन पर बैठे। अन्तिम अधीश्वरके बाद सन् ४७६ ई०में प्रजातन्त्रके हाथ रोम-साम्राज्यका शासन-भार अर्पण करनेसे पश्चिम साम्राज्यका अन्त हो गया। ओनोरियासके शासनकालमें अगष्टलासके आधिपत्य तक आठिला और हण जातिके उपद्रवसे समग्र पश्चिम रोम-राज्यका विध्वंस हुआ था। प्रजातन्त्रके अम्युदयसे अन्यान्य शासनसमितिकी अपेक्षा खृष्टधर्माध्यक्ष पोपका ही आधिपत्य बढ़ गया था। पोपगेगरी दो घेरेट या 'प्रथम' के समयमें धर्मशास्त्रिक पर विजय पाई।

पोप शब्दमें वस्तुतः विवरण देखो।

महात्मा थियोडाससके पुत्र आर्केडियसने सन् ३९५ ई०में पूर्ण विभागका शासनाधिकार प्राप्त कर सन् ४०८ ई० तक राजशासन किया। इसी समय गार्नासका विद्रोह हुआ। इसके बाद उसका पुत्र द्वितीय पिओडोसियस सन् ४०८से ४५० ई० तक और मार्सि-

यन और आर्केडियास तनया फूलचेरियाने ४५० ई०से ४५७ ई० तक राज्यशासन किया। इसके उपरान्त निम्नलिखित राजे राज्यसिंहासन पर बैठे थे।

- | नाम                       | सन्  |
|---------------------------|--|
| १ लिओ प्रथम               | ४६६-४७४  |
| २ लिआ द्वितीय             | ४७४-४७४  |
| ३ जेनो                    | ४७४-४९१ यह द्वितीय लिओका गाप है।   |
| ४ आनाष्टासियास            | ४९१-५१८ यह साइलेस्टियारी उपाधिसे विभूषित था।   |
| ५ जस्टिन प्रथम या ज्येष्ठ | ५१८-५२७।   |
| ६ जस्टिनियन               | ५२७-५६५ यह जेष्ठिका भतीजा है।  |
| ७ जेष्ठिन द्वितीय या छोटा | ५६५-५७८ इसके अधिभारके समय इसलागधर्मके प्रवर्तक महम्मदका जन्म हुआ।                        |
| ८ टाचेरियास द्वितीय       | ५७८-५८२ इसने कनस्तान्ताइनकी उपाधि धारण कर राज्य-शासन किया था।                            |
| ९ मरिस                    | ५८२-६०२ यह कापाडोकियावासी था और अन्तमें गुप्त शत्रु द्वारा मारा गया।                     |
| १० फोकास                  | ६०२-६१० अन्तिम वर्गमें शत्रुके हाथ मारा गया।   |
| ११ हेरोक्लियास            | ६१०-६१४  |
| १२ हेरोक्लियास द्वितीय    | ६११-६४१ यह ११ संघर्षका पुत्र था। इसने कनस्तान्ताइन नाम रखा था।                           |
| १३ हेरोक्लिओनास           | ६४१-६४१। १२ संघर्षका भाई, निर्वासित किया गया।  |
| १४ कनस्तान्स द्वितीय      | ६४१-६४८। हेरोक्लियास कनस्तान्ताइनके पुत्र।   |
| १५ कनस्तान्ताइन           | ६४८-६८५ उपाधि प्रमोनेट स।  |
| १६ जस्टिनियन द्वितीय      | ६८५ ई०में राज्याधिकार ६९५ ई०में नियमित ७०५ ई०में पुनः राज्याधिकार और ७१५ ई०में मारा गया। |
| १७ लिओप्टिनास             | ६९५ ई०में शासनाधिकार और ६९८ ई०में राज्यसे भगाया गया।                                     |
| १८ थ्याप्सिमार टाचेरियास  | ६९८ ई०में राज्याधिकार और ७०५ ई०में राज्यच्युत किया गया।                                  |



११ फिलिपिनास पार्लियस ७११ ई०में राज्यारोहण और ७१३ ई०में मरा ।

२० मनाषासियस डिगोय ७१३ ई०में सिद्धान्तप्रति, ७१६ ई०में राज्यन्युन और ७१६ ई०में मृत्युके द्वारा मारा गया ।

२१ थियोडोसियास तृतीय ७१६ ई०में राज्यप्रति; ७१८ ई०में राज्य त्याग ।

२२ लिओ तृतीय ७१८-७४१ ई० यह हमसैरीय देनवासो सन्तान था ।

२३ कनस्तान्ताइन (५म) ७४१-७५१ ई० ।

२४ लिओ ४थ ७५१-७६० इस्ती उपाधि 'छात्रारे' थी ।

२५ कनस्तान्ताइन (६थ) ७६० ई०में इस्ते माता इरेणके सहयोगसे राज्यशासन किया, अन्तमें ७६७ ई०में गुप्त घातकों द्वारा मारा गया ।

२६ इरेणे ७६७-८०२ २५ संव्ययकी माता, अन्तके वर्ष में राज्यसे बहिष्कृत की गई ।

२७ निसैफोरस ८०३-८११ ई० ।

२८ थोरेसियास ८११ ई०में राज्यधिकार और २७ संव्ययकका पुत्र । इस्ती वर्षमें इस्ते राज्य त्याग किया ।

२९ मारकेल ८११ ई०में राज्यधिकार और ८१३ ई०में राज्यच्युत ।

३० लिओ (५म) ८१३ ई०में सिद्धान्त अधिकार और ८२०में गुप्त मृत्युके द्वारा मारा गया । यह आर्मेनिया था ।

३१ मारकेल (२थ) ८२०-८२६ यह "दो छोमार" या तोतूला नामसे प्रसिद्ध था ।

३२ थियोफिलानस ८२६-८४२ ई० ।

३३ मारकेल (३थ) ८४२ ई०में राज्य प्राप्त कर ८६७में मारा गया ।

३४ फातिम ८६७-८८५ ई० यह 'माविदोमिया' नामसे परिचित था ।

३५ लिओ ६ठा ८८६-९११ ई० यह दार्शनिक था ।

३६ सतेकमस ९११-९१२ ई० यह ६३ लिओका भाई था इस्ते मनाषा कनस्तान्ताइन समक्ष मर राज्य दिया ।

३७ कनस्तान्ताइन (७म) 'पोकॉइरीजेनिटस' ९११ ई०में

राज्याधिकार, किन्तु पितामह रोमानास द्वारा ९१६ ई०में राज्यच्युत, अन्तमें ९४५-९५१ ई० तक फिर सिद्धान्तलाभ और राज्य प्राप्त ।

३८, ३९, ४०, ४१ रोमानास (१म) या लेकथिनस और उसके तीन पुत्र मृत्युके कारण, छिफन और कनस्तान्ताइन ८म, इन्होंने यथाक्रम ९१६, ९२१ और ९२८ ई०में प्रासनाधिकार प्राप्त किया और ९४४ और ९४५ ई०में राज्यच्युत हुए ।

४२ रोमानास (२थ) या छोटा ९५६-९६३ यह ६३ कनस्तान्ताइनका पुत्र है ।

४३ निसैफोरस (२थ) या (फोकस) ९६३ ई०में सिद्धान्त पर बैठे और ९६६ ई०में गुप्तघातक द्वारा मारा गया ।

४४ जान जिमिस्केस ९६६-९७६ ।

४५, ४६ पासिल (२थ) और कनस्तान्ताइन (९म) ९७६-१०२५ और कनस्तान्ताइन (१०म), पीट्र १०२५-१०२८ ई० ।

४७ रोमानास (३थ) १०२८-१०३४ यह आर्गारामके भाससे परिचित ।

४८ मारकेल (४थ) १०३४-१०४१ यह 'पाफलागोणोप' के नामसे विख्यात ।

४९ मारकेल (५म) १०४१ ई०में राज्यारोहण और १०४३ ई०में राज्यसे भगाया गया । यह कालफेके नामसे प्रसिद्ध था ।

५०, ५१ जोरे और कनस्तान्ताइन (१०म) १०४२-१०५४ ।

५२ 'थियोडोटा-१०५४-१०५६ यह मन्त्राट जोरेकी बहन थी ।

५३ मारकेल (६थ) १०५६ ई०में राज्यधिकार प्राप्त हुआ और १०५७ ई०में हमने छोड़ दिया, इका कनस्तान्ताइन नाम थोडिमोटिकास ।

१०५७ ई०में राज्यारोहण १०५८ ई०में विस्था-

५५

- किया। इसके बाद, १०६७ ई० तक रोमराज्य  
 वैदेशिकके भागमणोंसे घोर विग्रहबुला उप-  
 स्थित हुई।
- ५६ यूडोकिया और रोमानस (३य) १०६७-१०७१ ई०।
- ५७ माइकेल ७म (या आन्ट्रानिकास १म) और  
 कनस्तान्ताइन १२वां एकत्र १०७१ ई०।
- ५८ माइकेल ७म् इसी वर्षमें ही एकेश्वर सम्राट् हुआ।  
 सन् १०७८ ई०में उसको स्वच्छापूर्वक सिंहा-  
 सन परित्याग करना पड़ा।
- ५९ निसेफीरस (३य) या (वोदानियस) सन् १०७८  
 ई०में साम्राज्य पद प्राप्ति और १०८१ ई०में  
 सिंहासन च्युति।
- ६० आलेक्सिसस (१म) या (कामेनास) १०८१-१११८।
- ६१ जन्नको मुेनास १११८—११४३ ई०।
- ६२ मनुएल कोमैनास ११४३-११८० ई०।
- ६३ आलेक्सिसयास (२य) या (कोमैनास) ११८० ई०  
 में राज्याधिकार, किन्तु ११८३ ई०में राजच्युत  
 और मारा गया।
- ६४ आन्ट्रोनिक्स (१म) कोप्रैनास ११८३ ई०में राज्य-  
 प्राप्ति और ११८५ ई०में शत्रुके हाथ मारा गया।
- ६५ आइजक (१म) (अञ्जोलास) ११८५ ई०में राज्यधि-  
 कार और ११९१ ई०में राज्यच्युति किन्तु १२०३-  
 १२०५ ई० तक फिर राज्यशासन। इसी समय  
 हिन्दूस्थानमें दासवंशने पठान सरदार कुतुब-  
 उद्दीन द्वारा दिल्ली राजधानीमें पठान शासन  
 प्रतिष्ठित हुआ।
- ६६ आलेक्सिसयास (३य) अञ्जोलास सन् ११९५ ई०में  
 सिंहासनारोहण और १२०३ ई०में राज्यच्युति  
 और १२०५ ई०में पुनः शासनभार प्राप्ति।
- ६७ आक्सिसयास (४य) अञ्जोलास १२०३ ई०में पिता  
 अञ्जोलासके सहयोगसे राज्यशासन किया।  
 किन्तु शीघ्र ही १२०४ ई०में मारा गया।
- ६८ आलेक्सिसयास (५म) अञ्जोलास मार्चफेले  
 १२०४ ई०में सिंहासन अधिकार और इस समय-  
 के बाद ही शत्रु द्वारा रक्षित घातकके हाथ  
 उसकी जीवन-लोलाका शेष हुआ।

- कनस्तान्तिनोपोसके लेटिनजातिके सम्राट्।
- ६९ बालडुइन (१म) १२०४-१२०६ ई० यह क्राएडार जाति  
 के एक काउण्ट था।
- ७० हेनरी १२०६-१२१६ ई०
- ७१ पिटर कुटिर १२१०-१२१६ ई०
- ७२ रायट १२१६-१२२८ ई०
- ७३ बालडुइन (२य) १२२८ ई०में राज्याधिकार प्राप्त  
 कर १२६१ ई० तक राज्यशासन किया। अन्तमें  
 माइकेल पैलिओलोगास द्वारा उक्त वर्षमें उस-  
 को राज्यसे बाहर कर दिया गया।
- इस समय किस नगरमें राजधानी कायम कर चार  
 युतानी सम्राट् रोमसाम्राज्यके कुछ अंश तक स्वतन्त्र  
 भागसे शासन करते रहे—
- थिओडोर लास्कारिस (१म) १२०६-१२२२ ई०। जान  
 डुकम डालेसिम १२२२-१२५५ ई०। थिओ  
 डोर डुकस लास्कारिस १२५५-१२५६ ई०।
- जान लास्कारिस १२५६ ई०में सिंहासन प्राप्त किया सही;  
 किन्तु उसको अधिक दिनों तक राज्य भोग न  
 करना पड़ा। १२६० ई०में उसको राज्यच्युत  
 कर पैलिओलोगासवंशीय राजोंने रोमसाम्राज्य  
 पर अपना प्रभाव फैलाये।
- पैलिओलोगासवंशीय युतानी सम्राट्।
- ७४ माइकेल १२६० ई०में राजा हुआ। १२६१ ई०में  
 उसने कनस्तान्ताइन पर विजय प्राप्त कर  
 १२८२ ई० तक राज्य किया था।
- ७५ आन्ट्रोनिकास (२य) १२८२-१३३२ ई० माइकेलने  
 इस समय १२६५-१३२० ई० तक इसके सद्-  
 योगीके रूपसे राज्यशासन किया।
- ७६ आन्ट्रोनिकास (३य) १३२८ और फेले १३३२  
 ई०में दो बार राजा हुआ। १३३२ वर्षसे  
 १३४१ ई० तक इमने राजत्व किया था। यह  
 तुर्क जातिके साथ युद्धमें चाहत और पराजित  
 हुआ। इसके पुत्र जान पैलिओलोगास साम्राज्य  
 उत्तराधिकार हुआ था।
- ७७ जान (१म) १३४१-१३६१ ई०, राज्याधिकारके समय  
 यह नौ वर्षका बालक था। इसलिये इसकी

माताभानने राज्ञी चलायेके लिये अपने स्वामी-  
के परमहितैषी मित्त ज्ञान काण्टाकुजेनकी राउप-  
परिदर्शक (Revealer) निमुक्त किया । इस  
पर्यं उसका प्रभाव देग कर ईंग्लिषत हो गल-  
मौनै उमकी राशद्रीदी और धर्मद्वेषी होनेकी  
भोषणा की और उन्हीं उसकी माताकी पैद  
कर लिया । पीछे उसने हेमोटिका नगरमें अपने  
मन्त्रक पर राजछत्र धारण किया । किन्तु  
उसकी सेनामौनै उमका साथ छोड़ दिया ।  
इस पर सापीय यह भसम्य ज्ञातिफी जरणमें  
चला गया । इधर नीसेनापति बापोकीकास  
और धर्माध्यक्ष ज्ञान (John of Aprille  
Patriarch) राजाका मालिक हुआ । राजामें  
घोर अत्याचार और बलाघार फैले गया ।  
नीसेनापति मारा गया । राजामें घोर विष्ट-  
हूला उपस्थित होते देग रामी भानने काण्टा-  
कुजेनकी नियामनकी दृष्टाया रद्द करनेके  
लिये धर्माध्यक्ष जानसे प्रार्थना की । बदलेमें  
जानने उसको राजा और धर्मक्युतका डर  
दिषाया । इसी गड़बड़में काण्टाकुजेनने सेना-  
के साथ भा कर कनस्तान्तिनोपोल पर गेट  
डाल दिया । रानोंने यह समाचार सुन कर  
उसके पदान्त हुई । भाग्यमणकारीमें अपनी  
कन्याके साथ राजकुमार जानका विवाह कर  
दिया और स्वयं उसके संरक्षक बन गया । यह  
१३४७ ई०की घटना है ।

इस तरह ६ वर्षों तक घोर अत्याचार  
होते रहनेके बाद काण्टाकुजेनके राजामें जाति  
उपस्थित हुई । किन्तु भाग्यनिकागके संशयपर  
अब राजा न रहे, कीजानने काण्टाकुजेन ही राजा  
के अर्थात्वर बन गया । अब ज्ञान अपने राजा  
प्राप्त करनेके लिये सिद्धोद्धारण करनेमें प्रयत्न  
हुआ । काण्टाकुजेनके अनुपुद्दोत यूरोपोव  
मुर्सी रोनामोंने उसकी पराजित किया । उन्  
समय काण्टाकुजेनने बालक अर्थात्वरके साथ  
पुनः मित्त जानेकी आज्ञासे निरास हो कर

अपने पुत्र माथिमो काण्टाकुजेनने मरपोपो  
राजकार्य चलाना चाहा । सन् १३५५  
ई०में उसने राजकार्यसे अगसर प्रदण कर  
अपने पुत्रके हाथ शासन-भार संपर्ण किया ।  
माथिमोकी सन् १३५६ ई०में सिंहासन त्याग  
करने पर बाध्य होना पड़ा ।

७८ मेनुएल १३६१-१४२५ ई०

७६ जॉन (२य) मेनुएलके साथ १३६६ ई०में शासन-  
भार प्रदण और सन् १४०२ ई०में राज्या-स्वाग  
किया ।

८० जॉन (३य) १४२५-१४४८ ई०

८१ कनरतान्मारन १४४८ ई०में साम्राज्य सिंहासन  
पर आरोहण किया और १४५३ ई० २३वीं मईको  
मुर्सीसेना द्वारा कनस्तान्तिनोपोल अर्थात्  
किया गया और विजयके समय यह मारा गया ।

रोमसाम्राज्यका अन्तकाल ।

राज्यक समुग्नन रोमजाति उद्यमसे इतने दिनों तक  
घोरे घोरे शिश विस्तृत रोमराजाने परिपुष्ट हो समय  
सम्पन्नगन्तुको प्रकाशित किया था, उस सुमहान् राज-  
तन्त्रका किस तरह हास हुआ, रोमका राजपरित और  
इतिहासकी आलोचना करने पर उसका एक पूर्णचित्र  
प्रकाशित हो सकता है । बसंत पीरसे रोमके सेनामौ-  
ने राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर प्रजामें जो अथ उरगन  
किया था, उनसे रोमराज्यकी भित्त मजबूत हुई थी ।  
निपिओ, सहा, सांतरकी अद्भूत योद्धा और रणमें जय  
करनेके समयकी मूर्तिन नदरहा उन समयकी सुमन्य  
तथा अद्भूतमय जातिवीके ऊपर साधितरय स्थापित  
करने पर समर्पण हुई थी । उन पर रोमके राजनीतिक  
प्रभाव, पदनेकी सेनेट, परमेरकी, कमिमिया और मन्त्रि-  
पुंमो आदि राजकीय विधिमें अविष्टन-राज्यमें सुनासन  
प्रतिष्ठा होगे पर भी सभी विभागके आगनकर्ता प्रजाके  
सर्वमय दृष्टनेमें बाध न आते थे । उन्हीं रोमका अन्तकाल  
प्रभाव प्रजापरीकी किरादपरमे जता दिया था । उन  
समयका सम्पूर्ण सम्पन्नगन्तु रोमजातिके मयों मयों  
अभिय और विचलित रहता था ।

अधीश्वर आण्डसको राजविधिके परिवर्तनसे रोम-साम्राज्यमें शान्ति-राज्य-प्रतिष्ठाताकी आशा समुद्रित होने पर भी यथार्थमें अराजकता और अत्याचारके सिवा और कुछ नहीं देखा जाता था। क्योंकि, वहाँका राजवंश परम्परागत न था। धीरे-धीरे प्रतिभासे लब्धप्रतिष्ठित सेनानायकगण अधिकांश स्थलमें सम्राट् पद नियोजित होते थे। कभी वे अर्धके लोभसे सम्मान्तवंशीय धनी सन्तानोंको सिद्धासन पर बैठानेमें इच्छा नहीं करते थे। राजसिंहासनकी इस तरह दुरवस्था देख अधीश्वर घनलालसामें स्वतः ही दधेच्छाचारी "Tyrant" हुए थे। 'वरन्व' के लूटनेके लिये सदा युद्धविग्रह किया करते थे और उनके अधीनस्थ सेनामें भी राज्य जीतने पर घन अपहरण करनेकी आशासे उद्दुत्त हो कर प्राणपणसे युद्ध कर वीरताकी पराकाष्ठा दिखाती थी।

रोमराज्यके इस निदायक आधिपत्यकालमें एरोइक, प्लेटोनिष्ठ, आकाडेमिक और इपिक्यूरियास आदि विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायका अभ्युदय हुआ था। वे अर्धलिप्सा और जीवद्विंसा तिलाञ्जलि दे कर जीवात्माकी मङ्गलकामनामें शान्ति-सुखके उद्देश्यसे दौड़ रहे थे। संसारकी बड़ी भङ्गटोसे अलग हो कर उन्होंने राजाकांशा त्याग कर दी और एक सम्राट् मनोनीत कर उसके हाथ समग्र साम्राज्यका शासनभार सौंप दे निदिवन्त मनमें ज्ञानकी चर्चामें समय बिताने लगे। एरोइक वैशेषिककी तरह आणविक और भौतिक सिद्धांतमें (Contemplation of original matters) मत्त रहता था। प्लेटोका शिष्य सम्प्रदाय आत्माका अविनश्यत्व (Immortality) प्रतिपादन करनेमें सवेष्टित था। आकाडेमिक सांख्यकी तरह प्रत्यक्षीभूत जगत्की वस्तुसत्ता स्वीकार न कर तर्क और प्रामांसािके सागरमें गोता लगाता (Lost in Scepticism) था और एपिक्यूरिये सम्प्रदायने चार्वाकके मतानुसार परमेश्वरकी ऐसी शक्ति आरोप करनेमें अस्वीकार (Denied the prudence of a supreme power) कर दिया। इन्द्रियचर्णीय राजाओंके शासनकालमें विभिन्न सम्प्रदायके धर्ममन्दिरोमें विविध सम्प्रदायके दिव्य उपहारोंकी रक्षाका उचित प्रबन्ध था। अतः यह

कहानी ही होगी, कि ज्ञानवृद्धिके साथ हृदय और नृयंस प्रकृति रोमकोंके हृदयमें क्रोमन् और कमनीयताने आश्रय लिया था। वही उग्र और प्रचण्डप्रकृतिके रोमक क्रमशः नरहत्याजनित पापपट्टमें डुबकियां लगा कर अपनी आत्माको कलुषित करनेसे शज भाये। वे भार्जिल, सिसरो आदिके ज्ञानगर्भ उपदेशोंका अनुसरण पर भाव और भाषानुशीलनमें लगे। चित्तकी शान्तिके कारण उसने अब युद्धविग्रहमें मन धरवा करना अनुचित समझा सिवा इसके व्यवसाय वाणिज्यमें अनुल पेश्वर्यासम्पन्न हो कर वे प्राच्यसमृद्धि हृदयमें पोषण करते थे। सुव-सम्पदसे मत्त हो कर वे आलसी हो गये और इसलिये धीरे धीरे जातीय उद्यमसे हाथ धोने लगे। रोमीय नगर-वासियोंको अपरिमित समृद्धिराशि देव कर वैदे शिक वर्गोंने बार्ददार उन स्थानीका ध्वंस किया था। इटली बाल्कनसलिलमें निमज्जित होने पर भी गल, स्पेन, ब्रटेन आदि यूरोपीय प्रदेश शक्तिहीन नहीं हुए। फिर भी अर्धके दास हो कर रोमक जातिकी गौरव रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। ऐतिहासिक गिनतने लिखा है—

"But though the tranquil and plentiful state of the Empire was felt and confessed by the provincials as well as the Romans, though the latent causes of decay and corruption might escape the eye of contemporaries, yet Rome was gradually declining and slowly verging towards dissolution. A secret poison had been introduced by the long peace and lethargic inactivity into the bowels of the Empire. Military spirit no longer existed; the fire of enterprise was extinguished, and the commanding genius of Rome forsook the polluted habitations of a luxurious and effeminate people. The improvements of arts, whilst it refined, had gradually enervated the country; the splendour of their cities served only to allure the impending rapacity of hardy race of Barbarians.

ज्ञानोन्नतिके साथ रोमराज्योंके हृदयमें भी स्वजाति-प्रियताका प्रभाव बढ़ गया था। सम्राट् द्राइयान और

अरुओनाइन अपने व्यापारयज्ञ ही कर इनकाय गुनामके छुटकारेके नये कानूनका प्रचार किया । ये छुट कर राजागुप्त स्वामकी राजाके विशेष विभ्रान्तके साथ दिन बिताने लगे । इस तरह गुनामके छुटकारेसे रोमक होनचोगे हो गये थे । राज्यविपत्ता और आपसकी प्रतिद्वन्द्विता फिर उनके मनको लुभा न सकी ।

समय साम्राज्यमें काव्य और साहित्यको उन्नतिके लिये पूर्वीक तीनों सम्राटोंने यथासाध्य चेष्टा की थी । सुदूर गृहनराज्यके उत्तरी किनारेके प्रदेश अन्तर्द्वारशास्त्राध्ययनका केन्द्रस्थान बन गया था । डेल्फ और सार्न नदीके किनारे होमर और मॉरिज्यकी भोजसिनी गीत प्रतिध्वनित होती थी । यूनानियोंमें पद्यार्थ-विद्या और उद्योगिय आलोचनामें शीर्षस्थान अधिकार कर लिया था । टल्मी और गालेनका नाम आज भी प्राच्य और प्रतोरुप जगत्में उनकी स्मृति जगा रही है । लुसियानकी कवित्व-प्रतिभा अर नहीं । पूर्वपुरगोकी यैसी असाधारण प्रतिभा ले कर रोममें और किन्हीं अन्य प्रदेश नहीं किया । नौकियोंमें सुवकाका स्थान प्राण किया था ।

ईसाकी तीसरी शताब्दीके मध्य भागमें उरमाह-सम्पन्न वाहनारथ रोम जातिके शीघ्र भवसाह और संपन्नन लक्ष्य कर पूर्वाश्रयवासी निश्चित गुलाम लक्ष्मीनामने कदा था—

'In the same manner (says he) as some children always remain pigmies, whose infant limbs has been too closely confined, thus our tender minds, fettered by the prejudices and habits of an unjust servitude, are unable to expand themselves, or to attain that well proportioned greatness which we admire in the ancients, who living under a popular government, wrote with the same freedom as they acted' (Gibbon, Chap. I.)

इस तरह दर्शन और कान्यान्देरी जिनमें ही लोगोंकर मन बाधत हो गया, उनमें ही थे पूर्णपुराणके शीर्षकीर्षीके छोड़ कर कोमला-कन्याविद्याकी भाव्य हीं कर काव्य हुए ।

उक्त निरुत्तमता और सम्यक् समुत्तत पारमार्थिकीरे साथ कारंवार युद्धमें रोमकीका उत्तरीतर बंधुएर होने लगा । चिरजानुता एक काल ये दोनों ही भद्रकी रक्त करणमें समर्थ नहीं हुए । पारसवासीके घोस्येक और धर्मयत् विपूरित होनेके साथ-साथ रोमकीके भी आन्तरिक प्रभाव और धर्मप्रापता प्रमत्ता ही होत-लेख ही रही थी । इसी समय रोमकीके अधिपत्य पीलेस्पाकने ईसाई धर्मके प्रतिष्ठाता महात्मा ईगामसाह भाग्य साक्षात् प्रचार कर धन-श्रेयस रोमकीके हृदयमें गाम्निगारि प्रथाहित कर रहे थे । सम्राट् कन्स्तान्टाइन प्रथम और थियोडोसियागने ईसाईधर्मकी विगल प्रतिष्ठा प्राप्त कर मूर्च्छिपूजाका बनावार बन्द कर दिया ।

ईसासनकी ८१० शताब्दीके अन्तमें सम्राट् सारि-मनके अश्वघुष और उत्तरीक सादानुतिर्षे मगुंथ यूरोपमें ईसाईधर्मका प्रचार हुआ था । ईसाई-धर्मका प्रभाव पश्चिम-साम्राज्यमें जिन तरह फैला था, पूर्वाश्रयमें वैसा प्रभाव फैला नहीं था । रोमक ईसाई-धर्ममें साम्या कायम कर छोड़े छोड़े स्वयं ही धर्मप्रोत्तमें प्रवाहित हुए थे । रोमूनाम अफल्डामके ४७६ ई०में राजागम छोड़नेके जितने ही प्रजाजनका प्रचार होने लगा, उनमें ही नवधर्ममें दीक्षित ईसाई नम्युदायका भाविपत्य रोममें फैल गया । ईसाई रोमक प्रभाके सुनिश्चयके सुकरी लौकिक राज्यमें राजाके बहने धर्मगुहकी ही आन्तरिक प्रभावका सफल्य कला बना आया । धर्म प्रचार और धिन्कारके साथ साथ कसने ये रोमक-साम्राज्यमें 'सामगुह' बन कर प्रक्षिप्त हुए ।

गुलाम विद्या ( संतु ) और वेग बन्द रहे । इस नये धर्मकलसे रोमक प्रभार्वमें हीनबल ब होने पर भी धर्मोपनिषदिकी दीमलताये उनकी उरुय विचरुतिर्षाके निधिय ही गों । युद्धविद्यामें थे मगुंथी-कर्म अन्वयक और मनिष्ठिय ही गये । ऐंमं माय मन् ५७७ ई०में महा नगरमें इसकाय धार्मिक अश्वघुष हुआ । जोर ही अरववासी कविय इसकाय धर्मके शीर्षिया हुए । सुवीर्य कानी धर्मगुह और मगुंथके धर्मिनायक हुआ । इस्ने कलसे अरब और मोरारोकी नये कथन और बहने कायम, निरिद्या, विद्या, अर्थक

और सुदूर स्पेन राज्य पर अधिकार कर लिया। हतवीर्य रोमक इसके साथ युद्धमें पराजित हुए। ईसाईयोंको भी इस समय इनके हाथ बड़ा कष्ट भोगना पड़ा था।

महम्मद और मुहलमान देखो।

मुसलमानी साम्राज्यके विस्तारके साथ साथ खलीफोंका आधिपत्य हुआ। एलोफा मुलेमानके राजत्वके समय अरबोंने सन् ७१६ ई०में कनस्तान्तिनोपोल पर घेरा डाला और फ्रांस पर आक्रमण किया। स्थान स्थानमें खलीफाके अधीनस्थ शासनकर्त्ता या सेनापति स्वतन्त्र राजपाट स्थापित करते लगे (७८१ ई०से ६६० ई० तक)। देखते देखते इतना बड़ा रोमराज्य खण्ड खण्ड मुसलमानी राज्योंमें परिणत हुआ। इसी समय अर्थात् ईस्वीसन्को १०वीं शताब्दीमें तुर्क जाति बड़ी प्रभावसम्पन्न हुई थी। उनके बलवीर्यसे रोमक नष्ट भ्रष्ट और श्रीहीन हो उठे। सालजुक वंशीय तुर्क-सरदार तुगलक बेग और जाफर पारस जीत कर खलीफोंको सहायता करने लगे। सरदार अलबार्स लामने यूनानकी रानी युडोसियाको परास्त कर राजदण्ड हाथमें कर लिया और उक्त रानी और सम्राट् रोमानास डाइओजेनिसको कैद कर लिया (१०६४ ई०)। इसके बाद १०-२ ई०में मालिक शाहने पशियामाइनर और लेरुसलाम पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ६०की १३वीं शताब्दीके शुरुमें मुगल-सरदार चङ्गेज खाने और अन्तमें तैमूरलङ्गने रोमसाम्राज्यको लूट-पाट कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसके बाद सन् १४४८ ई०में तुर्कके हाथ रोमसम्राट् कनस्तान्ताइनकी मृत्युके साथ साथ रोम साम्राज्यका अन्त्य होने लगा। (पारस्य, तुर्क, कनस्तान्तिनोपोल, सिरिया आदि शब्दोंमें विशेष दृष्टव्य)

रोम नगर और उष्ण मन्तल्य।

रोम नगर ही रोमसाम्राज्यकी प्रधान राजधानी है। यूरोपके अन्तर्गत इटली राज्यमें प्रवाहित टाइबर नदीके किनारे समुद्र तटसे प्रायः १४ मील पर अवस्थित है। अक्षांश ४१°५३'५२" उ० और देशांश १२°२८'४०" पू०। टाइबर नदीके दोनों किनारे प्रमोक्ष निम्न पार्वत्य प्रदेश पर यह नगर स्थापित है। यहांके भूतत्त्वकी बाली-घना कर, देवनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि यह स्थान

एक समय समुद्रके निकट था। समय पा कर समुद्रके उभर पल्लिमय वेलाभूमिके निकटके किसी ज्वालामुखी पर्वतके अन्त्युद्गम और गलित घातवद्भावसे परिष्कात हो कर इधर उधर असमान भावसे फेंके हुए स्तूप राशियों समाच्छादिन हो गया। पीछे बड़ी विभिन्न प्रान्तरस्तरोंमें रूपाभरित हो कर एक एक छोटे छोटे पहाड़ोंके रूपमें परिणत हो गया। इस तरहके कितने ही शीलशिखरों और उसके सानुमय भूभागमें इतिहास-प्रसिद्ध रोमनगरी प्रतिष्ठित हुई थी।

लागो, प्राकियायो और रोमके निकटकी आलयांन शैल, ध्रुवीयोंमें कितने ही ज्वालामुखीका मुँह (Craters) दृष्टि-गोचर होता है। इन सब पर्वतोंसे अपेक्षाशून्य आधुनिक युगमें भी बालुकादि और घातवन्निष्पाद्य वाहर हो रहा है। भूगर्भनिहित गमन मृत्पात, प्रोक्ष्य धानुनिर्मित शय्यादि, मनुष्योंकी हड्डियां उसके प्रमाण हैं।

रोम नगरकी जमीन तीन भागोंमें विभक्त है—१ टाइबर नदीके 'गाम्पे' किनारे अवस्थित समतल और उपरधका भूमि। यह समुद्रसेकृतज पल्लिमय प्रान्तरसे परिपूर्ण है। २ उक्त समतलक्षेत्रीपर आग्नेय-गिरिजात शैलमय भूभाग और ३ टाइबर नदीके दक्षिणी किनारेके जलकुलान और भाटिकन पर्वतमालाके मध्यवर्ती सानु-नय समतल भूखण्ड।

प्राचीनतम कालमें यह स्थान समुद्रगर्भमें था। अभी भी यहां उसके बहुत नमूने पाये जाते हैं। मुन्दर मोन-हरो बालुकारेणु और मृदुनाण्ड बनानेवाली मट्टी उसके प्रमाण और उद्भेदननीय वस्तु हैं।

उपरोक्त तीन तरहके आग्नेयस्तर (Volcanic deposits) और पल्लिमय भूमि (Alluvial deposits) के सिवा आग्नेयताइन और विद्रव्य रैलमालाके एक तरहके स्तूपके परधरका स्तर दिखाई देता है।

पालेटाइन शैलके समीपके जिन देशोंमें धनिमय रक्त-धर्ण भरुमराशि गिरि थीं, सम्भवतः एक बनमाला पर गिरी होगी। कारण उभर दग्ध भस्मगणिके प्रदाहसे विम-र्दित और दग्ध हो कर वृक्षोंकी लकड़ियां कोयलेमें परिवर्तन हो गई हैं। इन तरहके बहुतेरे नमूने दिखाई देते हैं। इन सब नूना पर्वतके स्थान स्थानमें इन तरहके परधर

को अनेकाने स्तर दिखाई देता है। वही कदों को बलेके रूप में परिणत रूप कृशमागादि भी मध्ययुगके साथ सुरक्षित देखे जाते हैं। रोमुनासके प्रसिद्ध रोमकी गटार दोगामे इन तरटके प्रकार ( Conglomerate of tufa and charred wood ) गठित। इसको "दराजित कांक" ( Scale cast ) विनागके कृशायुगके पूर्ण निदर्शन विद्यमान है। एक समयमें जो उपरवकायलो जलाभूमि-पूर्ण सीट दुर्गम था ( Dionys. ii 50, Ov. Fast. vi. 401 ), पिछले समय यही जलमग्नितरिभूत्व सुरम्भ प्रकृतमें पर्यवेसित हुई थी। प्राचीन रोमराज्याके स्थापकविद्या (कारोगरी) का श्रेष्ठतम निदानभूत भूगर्भलेख जलप्रवाहोके ( Cloacae ) द्वारा इन सब दूषित जल-राजिकी निकाल कर उन स्थानको कृषिकेत और उद्यान तथा उपवन आदिके लिये उपयोगी बनाया गया है। (Varro Lang. Lat. IV. 149)। एक समयमें बुद्धाप-रत्नो जो शैलजिपर प्रमादिसे समाच्छादित थे और प्रत्येक पर्वत-जिपरके अधिवासियोंमें प्राणको रक्षाके लिये ऊँचे पर्वत पर एक ग्राम्यदुर्ग ( Village forts ) बनाया था, उन्होंने उन समयके जन्तुओंके भाकनपत्ते भागनेकी वजहसे लिये उस पर्वतके निम्न भागको दुर्ग-रोट और दुर्गम बनानेकी चेष्टा भी की थी। एक मरुभार के दशावसाधोच होनेको वसत उन सब पार्ष्वभूमिको अत्यन्त अल्प रचना उभित न जान पड़ा। श्रेणीयत्त सुदूरवसय अद्भुतिका समुद्रिते इस समय रोमकीकी भूमि बनना हो सरकारका उद्देश्य हुआ। उनके अमोघ वाचनसाधनमें तथा कारोगरीकी पराकाष्ठा दिखानेमें सफल हुए। उसकी यह अद्भुत कीर्ति ( Gigantic engineering works ) जगत्के इतिहासमें एक अती-रिक्त घटना है।

इस समय रोमवासियोंके उत्साहसे अत्युत्त पर्वत-जिपर सन्तप्त बना कर पत्तोंके उपयुक्त अधिवकायों परिलक्षित किया गया और दुर्गम लूटा और पर्वतगत काट कर सुगम दायुमा और सोडिका बनाई गईं। मध्ययुगमें भी (Militar bases) यह कारोगरी या वास्तु-विद्या सनातनाभावसे विद्यमान थी। ईसापूर्वकी १५वीं शताब्दीमें क्षात्र न सिद्धिगमकी मोमामें केरिशास्त्र

भाष्य ( Capitoline Arc ) उनके लिये मनुष्यके अन्तर्गत संरक्षणाविका तक सुरीय मोमान-धेको का सोडिका बनाई गई थी।

मध्ययुगमें रोमसाक्षात्प गण्डलके स्थापक विदे-तनमें जो मोमानपदेवा समुद्रित हुई थी, भाग भी पर समशीतोष्ण दिखाई देती है। रोम गवनेमेटके मत्त १८८६ ई०में लिये गये "Piano regolatore" नामक प्रस्तावके अनुसार स्थापकवकाय धीरे धीरे सुगम्यप्र हो रहा है। मध्ययुगमें जो शैलजिपर तोड़ कर सन्तप्त अधिवकायोंमें परिणत किया गया था और प्रजाती पथसे स्थिर जल दहा कर जो उपरवकायों साधारणके पासयोग बनाई गई थी, वर्तमान पुर्वविभागीकी विन्दु-पथवकायों से समी एक समपूर्ण सन्तप्त प्रकृतमें ( uniform level ) पर्यवेसित करनेका आवास हुआ है। और फिर अमेरिका देशके नगरीका टंग पर ( Chessboard plan ) को तरट भीट्टे वीकीन राक्षना बना कर तथा रोमनगर बसाया गया।

बाईबाय अग्निदाह होने रहनेके कारण रोम नगरी-के अन्तर्भूत होने रहनेसे इयको प्रातमोमानह हो गई है। इससे यह डोक करना कठिन हो गया है, कि प्राचीन रोम राजधानी किम स्थानमें किम स्थान तक थी।

वर्तमान रोमकी भाषेहा प्राचीन रोमी शैलरत्न साधियव था। उस समय रोम नगरके बीचमें-सीर पारो औरके स्थानोंमें मनेरिया उपरका उत्तमा प्रकीर्त न था। किन्तु इस समय बड़े जैरोंका है। प्राचीनकायों केवल सुगमनायोवत् जल ही ( Campagna ) स्थापकके लिये मणित था। यह स्थान उस समय बनो अधिव रहनेसे वहाँको व्याप्योग्यनि माना उपायों पर भव मणित थी। किन्तु यह कदा जा गरी मरुभा, कि इससे ही उस समयमें साह मत्त उपर रोमका प्रादुर्भाव न था। पाठेशान और अन्यत्र शैलजिपर पर फर्मि-देवोंके उद्देश्यसे स्थापित देवियों पर और वस्तुगताने पर्वत पर मेकादियिको वृष्टि सीर सनातनत्व दक्ष उपवन दर्शन करनेसे सना ही सन्तप्त रोम प्राकृत्यव उदीपन कर देता है। ईसापूर्वके ४वीं शताब्दीमें ही रोमकी जनसंख्या अत्यन्त बढ़ने लगी। इससे पर्ये

यहाँकी भूमिके अस्वास्थ्यकर होनेका ही अनुमान होता है। (Monografia di Rome vol iii, 1878.) पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त शताब्दीमें रोम नगरमें प्रायः २५ लाख मनुष्योंकी बस्ती थी। उस महासमृद्धशाली रोम नगरीने भी उस समयके उपयोगी सीधमालासे विभूषित हो समग्र सम्प-जगत्के सामने रोम साम्राज्यके कोर्सिगौरवका विकास किया था।

उस समयके रोम नगरमें Tufa Lapis Albanus, Lapis Gabinus, Silex, Lapis Tiburtinus, Pulvis puteolanes (Pazzolana) प्रभृति पत्थरकी अट्टालिकायें बनी थीं। विद्वैरिवास, ग्लिनी आदि लेखकीने अपने अपने ग्रन्थोंमें इन सब पत्थरों तथा उसकी जोड़ाइयोंके मसलोंका उल्लेख किया है।

सूदांषक और पत्रायेकी पकथी ईंटोंका उस समय विशेष व्यवहार था। फिर किसी समयमें प्राचीन रोमकी कोई प्रसिद्ध अट्टालिका या चहारदीवारी ईंटोंकी बनी न थी। केवल चहारदीवारी, जोड़ाई तथा नौधों आदिमें कङ्करीट (Concrete) किया जाता था। गोप मजबूत करनेके लिये ईंटका टुकड़ा पत्थर और सिमेण्टका अधिक व्यवहार होता था। रोमकीने सिमेण्ट तैयार करनेमें विशेष पारदर्शिता प्राप्त की थी।

ईसाके १०० वर्ष पहले सबसे पहले रोम नगरमें मरमर पत्थरका प्रचलन हुआ। विख्यात याम्नी क्रोससने यूनानी भोगविलासके रसास्वादनमें उत्सुक हो कर ६२ वर्ष ईसासे पूर्व अपने पालेटारन शैलके महलमें हाइमेसियाना मर्मरका स्तम्भ तैयार किया था। इसके कुछ समय बाद अघोश्वर अगएस्तके शासनकालमें मर्मर पत्थरका आदर सब जगह फैल गया। और तो क्या, साधारण तथा राजघरानोंमें उसी चिकने मरमरका ही व्यवहार होने लगा।

स्तम्भादि बनानेमें यहाँ सदा मरमरका ही अधिक प्रचलन था। यह पत्थर रंगके अनुसार स्थान विशेषमें भलग शलग नामोंसे परिचित था। किन्तु देश या स्थानके नामानुसार यह चार भागोंमें विभक्त था। लूणा मन्दीके किनारेका उच्चमर Marmor Lunense,— कोमता डो डेटार करिगियनस्तम्भ इसी पत्थरसे बना

है। २ पथेन्सके निकटके हाइमेडास शैलका तम्प्यार किया Marmor Hymettium, मिडुलेिका S Pietro स्तम्भ और S. Maria Maggiore मन्दिरके भीतर ४२ स्तम्भ इन पत्थरके खुदे हुए हैं। इसका रंग धूसर और इसमें नील रंगकी पतली पतली रेखायें हैं। लूणाके मरमर पत्थरकी अपेक्षा इसका दाना बहुत मोटा है।

३ पथेन्स नगरके निकटके पेण्टेलिकास पर्वतका Marmor pentelicum,—इसका दाना बारीक और सफेद रंगका है। मेटिकानके कुमार अगएस्तकी मूर्ति इस पत्थरसे ही काटी गई। भास्करको देवमूर्ति या मनुष्य-मूर्ति तम्प्यार करनेके लिये इस देगी मरमरका ही आदर था। ४ पेरोंस डोपका सुन्दर Marmor parium पत्थर इसका गठन Crystal पत्थरकी तरह है।

विभिन्न धर्मोंके पत्थरोंको एकत्र जोड़नेमें रोमक कारीगर जिस मसाले और सिमेण्टका व्यवहार करते थे, उस पर विचार करनेमें विस्मित होना पड़ता है। चहारदीवारी या मूढ़नी नीचेके किसी स्थानमें जब गुद-भारकी आवश्यकता होती थी, तब उस स्थानमें उसीको अनुरूप गुदत्थका पत्थर चैदाया जाता था। पूर्वकथित कोलोसियाम प्रासादमें द्वायकी आवश्यकता होनेके कारण जोड़ाईके पौगलमें इस तरहकी अनेक अटिलतायें दिखाई देती हैं। सिवा इसके उस समयके ईंटोंका जुड़ाईकी पराकाष्ठा भी दिखाई दी थी। २७ वर्ष ईसाके पहले पाम्थमोन प्रासादको नौधमें या दीवार विशेषमें मरमर लगानेके लिये तिकोणाकार ईंटकी गधनी या जोड़ाई हुई थी। संभरासके समयमें और उसके बादके सनयमें पलावीय युगापेक्षा छोटी ईंटोंका व्यवहार हुआ था। एन छोटे ईंटोंकी जुड़ाई मसालाके गुणसे ऐसी मजबूती हुई थी, कि आज भी उसके नमूने प्रदत्तस्वविद्दोंके चिन्तको कर्णप करनेमें समर्थ हुई हैं। ईंटोंकी बनी कोर्सियोंकी एक किहरिस्त नीचे दी जाती है—

नाम	सारीन	ईंटका परिमाण।
जुलियन सीजरका रोष्रा	४४	ईसासे पूर्व १॥ फुट
एम्पियार पाम्थमोन	२७	" १० "
टारपेरियासके मिटोरोप	२३	" १.१॥ "



बोपमेका स्वर दिवार देता है। बड़ी बड़ी कोपलेंके रूपमें परिष्कृत क्षय दूध-साधारि भी भववयके साथ सुरक्षित देखे जाते हैं। रोमुलसके प्रसिद्ध रोमकी वाहार बोपानी इन सरहके प्रस्तर (Conglomerate of tufa and charred wood) गठित। इसको "स्कालि कारिक" (Scalae carci) किताबके पुराणवयके पूर्ण निष्कर्षण विद्यमान है। एक समयमें जो उपरवकायली जलामूमि-पूर्ण भीर दुर्गम था (Danys, ii 50, Or Fast, vi. 401), विच्छेद समय यही जलजनिवस्थित्य सुरम्य प्रभुतामें पर्यवसित हुई थी। प्राचीन रोमराज्यके स्थापकविद्या (कारोमरी)का ध्येष्ठतम निदानभूत भूगर्भलघु जलप्रवाहोंके (Cloucae) द्वारा इन सब भूवित जल-राजिकी निकाल कर उक्त स्थानकी कृत्रिम और उदात्त तथा उपवन आदिके लिये उपयोगी बनाया गया है। (Vatro Lang, lat, IV. 119)। एक समयमें युद्धाय-स्त्रको जो शीलनियर प्रामादिके ममाच्छादित थे और प्रत्येक परांत-निवाहके अधिवासियोंमें प्रामकी रक्षके लिये जंघे पर्यंत पर एक प्राम्यदुर्ग (Village forts) बनाया था, उन्हींमें उस समयके जलबोके आकमणसे आगरीकी बनानेके लिये उक्त परांतके निम्न भागकी दुरा-रोह और दुर्गम बनानेकी विद्या भी की थी। एक सरकार के आगनाधान होनेकी पत्रद उन सब पार्यव भूमिको मजदू बनवा रहना उचित न जान पड़ा। अधीनयद सुदूरवय अर्द्धनिका समुद्रिसे इस समय रोमकीकी भूवित करना ही सरकारका उद्देश्य हुआ। उनके आगेष कार्य-साधनमें तथा वासोपरीकी पराकृष्टा विद्यानमें अममर हुए। उसकी यह मनुभुत कारिणी (Gigantic engineering works) जगत्के इतिहासमें एक अजी-रिक्त पत्रका है।

इस समय रोमवासियोंके उरसाहमें मरुभुत पर्यन-जिबर मजदूर बना कर कर्मोंके उपयुक्त अधिरवकायमें परिष्कृत किया गया और दुर्गम शूद्रा और परांतगत काट कर सुगम आनुमा और मोडिवा बनाने गईं। मध्ययुगमें भी (M. H. Jones) यह कारोमरी का वास्तु-विद्या समानभावमें विद्यमान था। ईसाब्दी १४वीं कागरीमें उक्त म मजिदूमकी मोमामे के पिताकाह

आर्क. (Capitoline Arx) जानेके लिये बपूकोके आन्तर्य सेट्टमारिया तक सुवीर्ण मोरान रोमो का मोडिवा बनाने गई थी।

मध्ययुगमें रोमराज्यउप मण्डलके स्थापक जिंके-तनमें जो सीसापरैवा समुद्रित हुई थी, भाउ भी वह समझीरसे दिवार देनी है। रोम मयनमेंलटके मर १८८६ ई०में किये गये "Piano regulator" नामक प्रस्तावके अनुसार स्थापककार्य भीरे भीरे सुममम हो रहा है। मध्ययुगमें जो शीलनियर तोपु कर मजदूर अधिरवकायोंमें परिष्कृत किया गया था और प्रजासी पगने स्थिर जल पहा कर जो उपरवकायें मा-गारलके धानपोग बनाने गई थी, परांतगत पुर्णकिंगमकी विच्छे-ष्यमणसे थे सभी एक समूहमें समतल प्रामरी (uniform level) पर्यवसित करनेका भावात हुआ है। और फिर अमेरिका देशके मगरीका टंग पर (Chessboard plan) को सरह चौड़े गौकीन रास्ता बना कर मवा रोममगर बसाया गया।

बाइबार मणिहाएड होने रहनेके कारण रोम मगरीके अन्वीमूत होने रहनेसे इसकी आगममोमलए हो गई है। इसमें यह टोक करना कठिन हो गया है, कि प्राचीन रोम राजधानी किस स्थानमें किस स्थान तक थी।

परांतगत रोमकी अधिष्ठा प्राचीन रोममें शीलनका आधिपत्य था। उस समय रोम मगलके बोभने और घातों मोरके तथानीमें मयेदिया उपरका उनका प्रकीन म था। किन्तु इस समय बड़े मोरोंका है। प्राचीनकायरी केवल सुवनालोपयद जल हो (Campagna) स्थापकके लिये प्रसिद्ध था। यह स्थान उस समय बस्ती अधिर रहनेसे पहाकी स्वास्थ्योगनि नामा उगायी पर मज-गठित थी। किन्तु यह बड़ा गा मदी मकता, कि इसमें ही उस समयमें भाऊ तक उपर रोमका मनुभुत न था। पार्लेमान और मयमम शीलनियर पर कर्मि-दियोंके उद्देश्यमें स्थापित सेदिकी पर और परमुरममन परांत पर मेकाडिगकी मूर्ति और मज्जालाई कृत उपवन दुर्गम करनेमें लगा ही मनेमें रोम प्राकलका उद्योग कर देता है। ईसावयके ४वीं मज्जालाई ही रोमकी जनसंख्या मजरी बढ़ने लगी। इससे पहले

हैं, इनमें सर्वोत्तम मित्र मित्र मूर्तियां प्रतिष्ठित की गई हैं। मिनार्मा मेडिकाके मन्दिरका गठन देख कर यद्यो मनमें आता है, कि वह किसी समयमें किसी पुराने महलका स्नानागार होगा। सिया इसके सह्राष्टर घास भवन, सम्राट् ट्राइवेरियस-कृत सेनानिवास या छावनी (praetorian camp), २७ ईसास पूर्व पत्रिया विनिर्मित सुप्रसिद्ध 'Pantheon' प्रसाद या देवमन्दिर और उसके निकटके बड़ी हालान (Thermae of Agrippa) और Firemen's barrack, Golden House of Nero और जुलियस सीजर द्वारा प्रतिष्ठित Septa Julia आदि और भी बहूनेरी अट्टालिकायें नमूनेके रूपमें पाई गई हैं।

रोमके पुराने क्रीडामण्डप और रङ्गालयोंमें सर्वस, मक्सिमस, सर्कस फ्लमिनियस, कैलिगोलाका सर्कस आदि उल्लेख किया जा सकता है। लिविने १७६ ईसासे पूर्व ५०० ए० मिलियस लेगिटासके रङ्गालयका उल्लेख किया है। ५६ ५२ ईसासे पूर्व पामीने पत्थरके एक रङ्गमञ्चकी प्रतिष्ठा की थी। रत्नान्वय देतो।

खूटान-सम्प्रदायके अभ्युदयसे इसीसन् ४थीने १२वीं शताब्दीके बीच नाना स्थानोंमें ईसाई-मन्दिर स्थापित हुए थे। देशी शिल्पकी पराकाष्ठास्वरूप सम्राट् निरोके राज्यकालमें ग्लोटिवास लाटरनासकृत लोरोरन प्रासाद बना। सम्राट् कनस्तान्ताइनके राज्यकालमें भाटि कन प्रासादशुद्धका पतन हुआ था। पीछे मानुमानिक १२०० ई०में पोप इनोसेण्ट और पीछे १२७७ १२८० ई०में ड्रे निकोलसने बहुत यज्ञके साथ इसके आकारको बदल दिया था। कुजरिनल प्रासाद, यह इटलीके राजा इमानुएलके राजभवनके रूपमें शुद्ध हुआ है।

फ्लोरेण्टाइन युग।

सन् १४५०-१५५० ई० तक रोमकी फ्लोरेण्टाइन युग कहा जाता है। इस समय मिनो दो फिलोले या Mino di giovanni, Bramante, Baldassare Peruzzi आदि प्रसिद्ध कारीगरोका आविर्भाव हुआ था। इनके जीवनकालमें रोमीय शिल्पकलाविद्याने जोरवृद्धान अधिकार किया था। इसके बाद मिंगनेला (१५०७-१५७३), कार्लोमदाना (१५५६-१६३६), बार्निनी

(१५६८-१६८०), कार्लोफएटाना (१६३४-१७१४ ई०) आदि कारीगरोंको कारीगरी विद्याके उत्कर्ष साधनमें अप्रसर होने पर भी उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। उस समय रोतवासो स्थापत्य-सौन्दर्यको भूल कर माइकेल आञ्जेलोके चित्रनैपुण्य पर मोहित हो रहे हैं। इसके बाद सुदक्ष राफेल, फनिष्ठ ब्राएटानो या दा सञ्जालीजक सान्सोमिनो आदि चित्रकारगण (artist) अपने अपने मनके अनुसार कल्पनायुक्त प्रामाद निर्माण करनेमें प्राचीन स्थापत्य शिल्पका अवसाद हुआ था।

वर्तमान युग।

फ्लोरेण्टाइन युगके अन्तमें घोर घोर बड़े कारीगरोंके अभ्युदय होने पर भी चित्रविद्याके प्राधान्य और उत्कर्षताने रोमीय शिल्पशिल्पके बदले सूत्र कलाविद्याका वाध्य ग्रहण किया। सङ्गीतशास्त्र और चित्रविद्याका यथेष्ट आदर बढ़ने लगा।

ई०सन्की १७वीं और १८वीं शताब्दीमें रोमकोंके पसन्द करनेकी शक्तिका लोप हो गया। इन समय Cosmati या Renaissance युगका शिल्पचातुर्य आज कलकी अट्टालिकाओंकी परिजीमित नहीं कर सकता है। सामान्य रूपसे अट्टालिकाओंकी गंधार होने पर भी वास्तुशिल्पकोंके सरल गामोर्षकी रक्षा नहीं हुई है। १६वीं शताब्दी इसमें कितने ही परिवर्तन दिखाई देने हैं। सन् १८७० ई०में रोम राजधानीके रूपमें पुनः व्यवहृत होने पर राजकर्मचारी फिर कारीगरी विद्याकी उन्नतिमें लगे। कोसोपरि स्थापित Cassa di Risparmio नामक प्रासाद और टाइवर नदीके किनारेकी कई अट्टालिकायें Strozzi और फ्लोरेण्टाइन प्रासादके ढङ्ग पर बनी हैं। विद्याज्ञा निकोसियाकी एक अट्टालिका, प्रोमेट्टर "पालाडो गिरीद" प्रसादके और मिचेल्लोस्ट्रेज, मिनिसके एक सुन्दर प्रासादके ढङ्ग पर निर्मित हुए थे। सिया इसके राजपुरोयोंके यज्ञसे S. Paolo fuori le Mura के चमलिका आदि प्राचीन कौत्सियोंकी मरम्मत हुई थी। इन समय यहाँका म्युजियम और नितमन्दिर (Galleries) देखनेकी चीज है।

कानून और साहित्य।

रोमकीने सम्बन्धनामार्गमें अप्रसर हो कर सम्बन्धनातिके



हैं, इनमें सर्वोच्च मित्र मित्र मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं। मिनामा मेडिकाके मन्दिरका गठन देव कर यही मन्त्रमें आता है, कि यह किसी समयमें किसी पुराने महलका स्नानागार होगा। सिवा इसके सल्लाएर पास भवन, सम्राट् ट्रावेरियस-वृत्त सेनानिवास या छावनो (Praetorian camp), २७ ईसासे पूर्व पत्रिणा विनिर्मित सुवसिद्ध 'Pantheon' प्रसाद या देवमन्दिर और उसके निकटके बड़ी दालान (Thermae of Agrippa) और Firemen's barrack, Golden House of Nero और जुलियस सीजर द्वारा प्रतिष्ठित Septa Julia आदि और भी बहुतेरी अट्टालिकायें नमूनेके रूपमें पाई गई हैं।

रोमके पुराने कोझामण्डप और रङ्गालयोंमें सर्वस, मरिसिमस, सर्वस फ़ुमिनियस, केलिओलाका सर्वस आदि उल्लेख किया जा सकता है। त्रिमिने १७६ ईसासे पूर्व पम० ९० मिलियस लेविडासके रङ्गालयका उल्लेख किया है। ५६-५२ ईसासे पूर्व पम्पीने पत्थरके एक रङ्गमञ्चकी प्रतिष्ठा की थी। रङ्गाय देखो।

खुदान-सम्राट्पके अम्युदयसे इसीसन ४५से १२वीं शताब्दीके बीच नाना स्थानोंमें ईसाई-मन्दिर स्थापित हुए थे। देशो शिल्पको पराकाष्ठास्वरूप सम्राट् निरोके राज्यकालमें फ़्लोविदास लाटरनासकृत लोडोरन प्रासाद बना। सम्राट् कन्स्तान्ताइनके राज्यकालमें नाटि कन प्रासादगृहका वतन हुआ था। पीछे मानुमानिक १२०० ई०में पोप इनोसेन्ट और पीछे १२७७-१२८० ई०में ३रे निकोलसने बहुत यशके साथ इसके आकारकी बदल दिवा था। सुनरिनल प्रासाद, यह इटलीके राजा इमानुएलके राजभवनके रूपमें गृहीत हुआ है।

फ्लोरेण्टाइन युग।

सन १४५०-१५५० ई० तक रोमको फ्लोरेण्टाइन युग कहा जाता है। इस समय मिनो दो फिलोले या Mino di giovanni, Bramante, Baldassarre Peruzzi आदि प्रसिद्ध कारीगरोंका शास्त्रिण्य हुआ था। इनके जीवनकालमें, रोमीय शिल्पकलाविद्याने शोभमान अधिकार किया था। इसके बाद भिगनोला (१५०७-१५७२), कार्लोमदाना (१५५६-१६३६), टार्विनी

(१५६८-१६८०), कार्लोफ़ेण्टाना (१६३४-१७१४ ई०) आदि कारीगरोंकी कारीगरी विद्याके उत्कर्ष साधनमें अप्रसर होने पर भी उसको रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। उस समय रोमवासी स्थापत्य-सौन्दर्यको भूल कर माइकेल बाञ्जेलीके चित्रनैपुण्य पर मोहित हो रहे हैं। इसके बाद सुदृश राफेल, फनिष्ठ आण्टोनो या दा सङ्गालोजक सान्सोभिनी आदि चित्रकारगण (artist) अपने अपने मनके अनुसार कल्पनाविज्ञान प्रामाद निर्माण करनेमें प्राचीन स्थापत्य शिल्पका अवसाद हुआ था। वर्तमान युग।

फ्लोरेण्टाइन युगके अन्तमें घोर घोर कई कारीगरोंके अम्युदय होने पर भी चित्रविद्याके प्राधान्य और उत्कर्षतामें रोमीय स्थूलशिल्पके बदले सूक्ष्म कलाविद्याका आश्रय ग्रहण किया। सङ्कीर्तनाश्रय और चित्रविद्याका यथेष्ट आदर बढ़ने लगा।

ई०सनकी १७वीं और १८वीं शताब्दोंमें रोमकींके पसन्द करनेकी शान्तिका लोप हो गया। इस समय Cosmati या Renaissance युगका शिल्पशास्त्र्य भांज कलकी अट्टालिकाओंको परिशोभित नहीं कर सकता है। सामान्य रूपसे अट्टालिकाओंको गंधार होने पर भी वासिलिकाओंके सरल गाम्भीर्यकी रक्षा नहीं हुई है। १६वीं शताब्दी इसमें कितने ही परिवर्तन दिखाई देने हैं। सन् १८७० ई०में रोम राजधानीके रूपमें पुनः व्यवहृत होने पर राजकर्मचारी फिर कारीगरी विद्याको उन्नतिमें लगे। फोसोपरि स्थापित Cassa di Risparmio नामक प्रासाद और ट्रावर नदीके किनारेकी कई अट्टालिकायें Strozzi और फ्लोरेण्टाइन प्रासादके ढङ्ग पर बनी हैं। पिपाज्जा निकोमियाको एक अट्टालिका, प्रमेएटर "पालाञ्जो गिरीद" प्रासादके और मिलेल्होरेन्, गिनिसके एक सुन्दर प्रासादके ढङ्ग पर निर्मित हुए थे। सिवा इसके राजपुरगीके यद्यपि S. Paolo fuori le Mura के यमलिका आदि प्राचीन कौत्सियोंकी मरम्मत हुई थी। इस समय यहाँका श्रुतिपथ और चित्तमन्दिर (Gallerie) देखनेकी चीज है।

कान्स भी वास्तव्य।

रोमकीने सम्प्रदायानाममें अप्रसर हो कर सन्ध्यागतिके



जो पेटके बीचो बीच नामसे ऊपरकी ओर गई होती है। पर्याय—रोमलता, रोमाली, लोमराजि। यह रोमा-यली जचानीके शुक्रमें होती है। (१४मञ्जरी)

रोमाभ्रयफला ( सं० खी० ) रोमाभ्रयं फलमस्याः ।  
किञ्चिदिष्टाभ्रं च, किञ्चिरीटा नामका पीषा ।

रोमोद्गति ( सं० खी० ) रोमनां उद्गतिः उद्गमः । रोमाञ्च, पुलक ।

रोमोद्गम ( सं० पु० ) रोमनामुद्गमः । रोमाञ्च, रोमोद्गमार्थं ।  
हर्ष या भयसे खड़ा होना ।

रोमोद्ग्रेद ( सं० पु० ) रोमनामुद्ग्रेदः । रोमाञ्च, रोमहर्ष ।  
रोमिल्लवेङ्कटपुष्प—तर्कभाषाभाषके प्रणेता ।

रोयाँ ( हि० पु० ) बाल जो सब दूध पिलाने वाले प्राणि-  
योंके शरीर पर छोड़े या बहुत उगते हैं, लोम ।

रोर ( सं० खी० ) १ बहुत-से लोगोंके मुँहसे निकल कर  
उठी हुईं ऊँचो सम्मिलित ध्वनि, कलकल । २ घमासान,  
हलचल । ३ बहुत-से लोगोंके रोने चिल्लानेका शब्द ।

( ति० ) ३ प्रणवड, तेज । ४ उपद्रवी, अत्याचारी ।

रोरचण ( सं० स्त्री० ) अतिशय जम्द, घोर शब्द ।

रोरा ( हि० पु० ) १ चूर गांजा । २ रोर देखो ।

रोरी ( हि० स्त्री० ) १ हलदी चूनेसे बनी हुई लाल रंगकी  
शुक्नी जिसका तिलक लगाते हैं । २ चहल पहल,  
धून । ( वि० ) ३ सुन्दर, खचिर । ( पु० ) ४ लह-  
सुनिया नाम, एक प्रकारका रत्न ।

रोरक ( सं० स्त्री० ) अनपद्भेद ।

रोरुदा सं० स्त्री० रुद-यद् रोरुद-अ-टाप् । अत्यन्त  
रुदन और विलाप ।

रोल ( सं० पु० ) १ दरा अदरक । २ तालीशपल, तेज-  
पत्ता ।

रोल ( हि० पु० ) १ पानीका तोड़, यहाय । २ खानीकी  
तरहका एक औजार जिससे बरतनकी नक्काशीकी  
जमीन साफ की जाती है । ( स्त्री० ) २ रोह कौला-  
हल । ४ शब्द, ध्वनि ।

रोलदेव सं० पु० एक चित्तकर । (कथावर्तिष्ठा० १०।३७)

रोलम्ब ( सं० पु० ) रीतीति रु-विच्, रोः कृञ्च सञ्  
लम्बति स्थानान् स्थानान्तरं गच्छतीति रोलम्ब-ः।

स्रमर, भीरा । ( वि० )

रोलर ( अ० पु० ) १ तुलकनेवाली वस्तु, येलन । २  
छापेखानेमें स्पाही देनेका येलन । यह सरेस और गुड़  
मिला कर बनता है । इसी पर स्पाही लगा कर टाइपों  
पर फेरी जाती है ।

रोलर क्रेम ( अ० पु० ) येलनकी क्रमानो । इसमें रोलर  
लगा कर स्पाही तथा टाइपों पर फेरते हैं । यह छोड़िका  
एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेवदार छद्म  
लगी होती है । ऊपर काठकी दो मुटिया होती हैं  
जिन्हें पकड़ कर सिल पर स्पाही पीसते और अक्षरों  
पर फेरते हैं ।

रोलर मोल्ड ( अ० पु० ) सरेसके येलन ढालनेका मांचा ।  
यह दो प्रकारका होता है,—( १ ) चाँगा, जिसमें बेलन  
ढेक कर निकाला जाता है । येलन डालने समय इसमें  
पीसी ब्रिटिया तथा रेडोका तेल लगा दिया जाता है  
जिसमें मोल्डमें सरेस न पकड़ ले । ( २ ) दो पाँका  
जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं । इन्हें स्नोल देनेसे  
रोलर सहजमें निकल आता है ।

रोला ( सं० पु० ) एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें  
११+१३के विधामसे २४ मात्राप होती है । किसी  
किसीका मत है, कि इसके अन्तमें दो शुभ अक्षर आने  
चाहिए । पर इसे सब कोई नहीं मानते हैं ।

रोला ( हि० पु० ) १ शोरमुल, कौलाहल । २ घमासान  
युद्ध । ३ जुटे बरतन माननेका काम, चाँका परतन  
करनेका काम ।

रोली ( हि० स्त्री० ) चूने हन्रीसे बनी हुई लाल शुक्नी  
जिसका तिलक लगाते हैं । थी, इसके बनानेका तरीका—  
लोहकी कड़ाहीमें चूनेका पानी भर कर उसमें हलदी,  
बटाई और सोना मलानेका सुहागा थाल कर अग्नि पर  
पकाते हैं । पीछे सुया कर छान लेते हैं ।

रोयना ( हि० कि० ) १ रोना देखो । ( वि० ) २ बहुत जल्दी  
रोनेवाला, बहुत जल्दी घुरा माननेवाला । ३ हँसो या  
खेलमें भी घुरा मान जानेवाला, चिढ़नेवाला ।

रोयासा ( हि० वि० ) जो रोने पर तैयार हो, जो रो  
देना चाहता हो ।

रोयासा ( सं० स्त्री० ) इच्छा ।

रोयन ( फ्रा० वि० ) १ जल्ता हुमा, प्रदीप्त । २ प्रकार-



जो पेटके बीचो बीच नामिते ऊपरकी ओर गई होती है। वर्षाय—रोमलता, रोमाली, लोमराजि। यह रोमा-यनी जवानिके शुक्रमें होती है। (१४मन्वरी)

रोमाश्रयफला ( सं० खी० ) रोमाश्रय फलमस्याः।  
किंकिरिष्ठाश्रुप, किंकिरीटा नामका बीया।

रोमाश्रुति ( सं० खी० ) रोमां अश्रुतिः अश्रुमः। रोमाश्रु, पुलकः।

रोमोद्गम ( सं० पु० ) रोमनामुद्गमः। रोमाश्रु, रोमोका-  
हर्ष या भयसे खड़ा होना।

रोमोद्भेद ( सं० पु० ) रोमनामुद्भेदः। रोमाश्रु, रोमहर्ष।  
रोमिह्लयेद्वृष्टमुष—तर्कभाषाभावके प्रणेत।

रोयाँ ( हि० पु० ) बाल जो सब दूध पिलाने वाले प्राणि-  
योंके शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं, लोम।

रोर ( सं० खी० ) १ बहुत-से लोगोंके मुँहसे निकल कर  
उठी हुईं ऊँची समिलित ध्वान, कलबल। २ घमासान,  
हलचल। ३ बहुत-से लोगोंके रोने चिल्लानेका शब्द।

( ति० ) ३ प्रचण्ड, तेज। ४ उपद्रवी, अत्याचारी।  
रोरचण ( सं० खी० ) अतिशय जघ्, घोर शब्द।

रोरा ( हि० पु० ) १ चूर गांजा। २ रोर देखो।  
रोरी ( हि० खी० ) १ हलदी चूनेसे बनी हुई लाल रंगकी  
बुकनी जिसका तिलक लगते हैं। २ सहल पहल,  
धून। ( वि० ) ३ सुन्दर, खचिर। ( पु० ) ४ लह-  
सुनिया नाम, एक प्रकारका रत्न।

रोरक ( सं० खी० ) जनपद्भेद।  
रोरदा ( सं० खी० ) रुद-यद् रोरद-अ-टाप्। अत्यन्त  
रुदन और विलाप।

रोल ( सं० पु० ) १ दरा बदरक। २ तालीशपल, तेज-  
पत्ता।

रोल ( हि० पु० ) १ पानीका तोड़, यहाय। २ रक्षानीकी  
तरहका एक औजार जिससे बरतनकी नषकाशिकी  
जमीन साफ की जाती है। ( खी० ) २ रोह कोला-  
हल। ४ शब्द, ध्वनि।

रोलदेव ( सं० पु० ) एक चित्तकर। ( कृपाविरत्या० १०।३७ )  
रोलम्ब ( सं० पु० ) रीतीति, रु-विच, रोः कुञ्ज सन्  
लम्बति स्थानान् स्थानान्तरं गच्छतीति, रो-लम्ब-। च्।  
झमर, मौँदा। ( वि० )

रोलर ( अ० पु० ) १ हुलकनेवाली यस्तु, येउन। २  
छापवानेमें स्थाही देनेका येलन। यह सरस और शुष्क  
मिला कर बनता है। इसी पर स्थाही लगा कर टारपों  
पर फिरो जाती है।

रोलर फ्रेम ( अ० पु० ) येलनकी कमान। इसमें रोलर  
लगा कर स्थाही तथा टारपों पर फेरते हैं। यह लोहेका  
एक हलका या घेत होता है जिसमें एक पेन्डार छड़  
लगी होती है। ऊपर काठकी दो मुठिया हांतों हैं  
जिन्हें पकड़ कर सिल पर स्थाही पीसते और भातों  
पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड ( अ० पु० ) सरसके येलन डालनेका मांचा।  
यह दो प्रकारका होता है,—( १ ) चौंगा, जिसमें बेलन  
ढेक कर निकाला जाता है। बेलन डालने समय इसमें  
पीसी खड़िया तथा रेडोका तेल लगा दिया जाता है  
जिसमें मोल्डमें सरस न पकड़ ले। ( २ ) दो फाँका  
जिसके पल्ले अलग अलग होने हैं। इन्हें खोल देनेसे  
रोलर सहजमें निकल आता है।

रोला ( सं० पु० ) एक छन्द। इसके प्रत्येक धरणमें  
११ + १३के विश्रामसे २४ मात्राय होती है। किसी  
किसीका मत है, कि इसके अन्तमें दो शुद्ध वयश्च आने  
चाहिए। पर इसे सब कोई नहीं मानते हैं।

रोला ( हि० पु० ) १ भोरमुल, कोलाहल। २ घमासान  
युद्ध। ३ जूटे बरतन मांजनेका काम, चीका परतन  
करनेका काम।

रोली ( हि० खी० ) चूने हलदीसे बनी हुई लाल बुकनी  
जिसका तिलक लगते हैं। श्री, इन्के बनानेका तरीका—  
लोहेकी कड़ाहीमें चूनेका पानी भर कर उसमें हलदी,  
खटाई और सोना मलानेका सुहागा डाल कर धमिन पर  
पकाते हैं। पीछे लुहा कर छान लेते हैं।

रोयना ( हि० वि० ) १ राना देखो। ( वि० ) २ बहुत जन्दी  
रोनेवाला, बहुत अल्दी पुरा माननेवाला। ३ हँसो या  
तेलमें भी घुसा मान जानेवाला, चिट्ठनेवाला।

रोयासा ( हि० वि० ) जो रोने पर सँवार हो, जो रो  
देना चाहता हो।

रोयासा ( सं० खी० ) १ उडा।  
रोयान ( का० वि० ) १ जलता हुआ, प्रदीप्त। २ प्रकाश-





जो पेटके बीचो बीच नाभिसे ऊपरकी ओर गई होती है। पर्याय—रोमलता, रोमाली, लोमराजि। यह रोमा-  
 घली जवानीके शुरुमें होती है। (रुग्मन्जरी)  
 रोमाश्रयकला ( सं० खो० ) रोमाश्रयं कलमस्याः ।  
 किञ्चिदिष्टाभ्युप, किञ्चित्शो नामका पीथा ।  
 रोमाद्रति ( सं० खी० ) रोमां उद्रतिः उद्रमः । रोमाञ्च,  
 पुलक ।  
 रोमोद्गमः ( सं० पु० ) रोमामुद्गमः । रोमाञ्च, रोमांका  
 हर्ष या भयसे खड़ा होना ।  
 रोमोद्भेद ( सं० पु० ) रोमामुद्भेदः । रोमाञ्च, रोमहर्ष ।  
 रोमिह्ववेदुटमुष—तर्कभाषामावके प्रणेता ।  
 रोयाँ ( हिं० पु० ) बाल जो सब दूध पिलाने चाले प्राणि-  
 योंके शरीर पर घोड़े या बहुत उगते हैं, लोम ।  
 रोर ( सं० खी० ) १ बहुत-से लोंगोंके मुँहसे निकल कर  
 उठी हुई ऊँचो समिलित ध्वनि, कलकल । २ घमासान,  
 हलचल । ३ बहुत-से लोंगोंके रोने चिल्लानेका शब्द ।  
 ( वि० ) ३ प्रकण्ड, तेज । ४ उपद्रवी, भयवाचारी ।  
 रोखण ( सं० ह्री० ) बहिर्गम्य शब्द, घोर शब्द ।  
 रोरा ( हिं० पु० ) १ चूर गांजा । २ रोर देखो ।  
 रोरी ( हिं० खी० ) १ हलदी चूनेसे बनी हुई लाल रंगकी  
 धुकनी जिसका तिलक लगाते हैं । २ चहल पहल,  
 धून । ( वि० ) ३ सुन्दर, यशस्वर । ( पु० ) ४ लह-  
 सुनिया नाम, एक प्रकारका रत्न ।  
 रोसक ( सं० ह्री० ) जनपदभेद ।  
 रोसदा ( सं० खी० ) रद-यद् रोसद-अ-टाप् । अत्यन्त  
 रुदन और विलाप ।  
 रोस ( सं० पु० ) १ दरा अदरक । २ तालीशपत्र, तेज-  
 पत्ता ।  
 रोस ( हिं० पु० ) १ पानीका तोड़, पहाय । २ रवानीकी  
 तरहका एक आजार जिससे बरतनकी नक्काशीकी  
 जमीन साफ की जाती है । ( खो० ) २ रोस कोला-  
 हल । ४ शब्द, ध्वनि ।  
 रोसद्वय ( सं० पु० ) एक चित्रकर । ( कथाश्रित्या० १०३० )  
 रोसध्व ( सं० पु० ) रीतीति य-विच्, रोः कुञ्जन् सन्  
 लम्पति स्थानान् स्थानान्तरं गच्छतीति रो-लम्भ-भच् ।  
 प्रमद, भीरा । ( तिका० )

रोसर ( अ० पु० ) १ दुलकनेवाली वस्तु, खेलन । २  
 छापेवालेमें स्याही देनेका खेलन । यह सरसे और गुड़  
 मिला कर बनता है। इसी पर स्याही लगा कर टारपीं  
 पर फेरी जाती है ।  
 रोसर क्रम ( अ० पु० ) खेलनको क्रमान्ती । इसमें रोसर  
 लगा कर स्याही तथा टारपीं पर फेरते हैं। यह लोहेका  
 एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेचदार छड़  
 लगी होती है। ऊपर काठकी दो मुठिया होती हैं  
 जिन्हें पकड़ कर सिल पर स्याही पीसते और बक्षतों  
 पर फेरते हैं ।  
 रोसर मोगड़ ( अ० पु० ) सरसेके खेलन ढालनेका मांचा ।  
 यह दो प्रकारका होता है,— ( १ ) चौंगा, जिसमें खेलन  
 डेल कर निकाला जाता है । खेलन ढालने समय इसमें  
 पीसी खड़िया तथा रेड्डीका तेल लगा दिया जाता है  
 जिसमें मोगड़में सरसे न पकड़ ले । ( २ ) दो फाँहा  
 जिसके पल्ले बलग अलग होते हैं । इन्हें खोल देनेसे  
 रोसर सहजमें निकल आता है ।  
 रोसा ( सं० पु० ) एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें  
 ११ + १३के विग्रामसे २४ मात्राप होती है। किसी  
 किसीका मत है, कि इसके अन्तमें दो गुरु अवश्य आने  
 चाहिये। पर इसे सब कोई नहीं मानते हैं ।  
 रोसा ( हिं० पु० ) १ शोरमुल, कोलाहल । २ घमासान  
 युद्ध । ३ जूठे बरतन मांजनेका काम, चौका परतन  
 करनेका काम ।  
 रोसी ( हिं० खी० ) चूने हल्दीसे बनी हुई लाल धुकनी  
 जिसका तिलक लगाते हैं। थो, इसके बनानेका तरीका—  
 लोहेकी कड़ाहीमें चूनेका पागो भर कर उसमें हलदी,  
 खटार और सोमा गलानेका सुदागा डाल कर अभिन पर  
 पकाते हैं। पीछे सुखा कर छान लेते हैं ।  
 रोयना ( हिं० वि० ) १ रोना देखो । ( वि० ) २ बहुत अल्सी  
 रोनेवाला, बहुत अल्सी पुरा माननेवाला । ३ हँसी या  
 खेलमें भी पुरा मान जानेवाला, चिढ़नेवाला ।  
 रोयासा ( हिं० वि० ) जो रोने पर तैयार हो, जो रो  
 देना चाहता हो ।  
 रोसीसा ( सं० खी० ) रुडा ।  
 रोशन ( फा० वि० ) १ जल्ता हुआ, प्रदीप्त । २ प्रकाश-



विश्वास नहीं करता यह मूर्ख है। जैसे अहद्वारविमूढ़ व्यक्तिको ऐशिक ऐश्वर्यमें कोई अधिकार नहीं है। उस अहद्वार और जीवन्मृत व्यक्तिके संग्रह भी जय मृतवत् आचरण करेंगे, तब जीवित और शान्ती ही उस सम्पत्ति के प्रकृत उतराधिकारी समझे जायेंगे इस संस्कारके यशस्वी हो कर उसने बहुतसे मूर्खों लोकोका काम तमाम करनेका हुक्म दे दिया था। यहाँ तक कि उसने तथा उसके चार पुत्रोंने दस्युवृत्ति द्वारा अमीर उमरा आदि धनाढ्य मुसलमानोंका यथासर्वस्व लूट लिया था। लूटके मालका पांचवां हिस्सा वह एक जगह जमा रखता था और जरूरत पड़ने पर उसे अपने विश्वस्त अनुचरोंके बीच बांट देता था।

दस्युवृत्तिमें लिप्त रह कर भी ययाजिद या उसके चार पुत्र कभी भी धर्मपयसे भ्रष्ट नहीं हुआ था। वे स्वयंके सब संयमी और जितेन्द्रिय थे, कभी भी कोई कुकार्य नहीं करते थे। वे एकेधरोपासनाकारीका न कभी धन लूटते और न उन्हीं किसी प्रकारको तकलीफ ही देते थे। इस्लाम धर्मके क्रियाकर्मीमें बड़े फट्टर थे। नित्य ५ बार नमाज पढ़ते थे। और तो यया, एकेधरमें विश्वास करनेवालेके सिवा दूसरे हाथका मारा हुआ पशुमांस तक भी नहीं खाते थे। एक दिन ययाजिदने अबदुल्लासे कहा, कि यैग्यर महम्मद घणित सरियात् रातिकी समाप्त, तरिकात् तारकाके समाप्त, हविकत् चन्द्रके समाप्त और मारिफत् सूर्यके समाप्त हैं। आत्माको उज्ज्वल करनेके लिये मारिफत् मिश और दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस्लाम धर्मका सरियात् या पञ्चाङ्ग साधन हर एक मुसलमानका कर्त्तव्य है। नित्य एधरका नाम जपना, मजन करना तथा तसबिया और तहलील करना मुसलमानका कर्त्तव्य है।

ययाजिदके बनाये हुए कई उपदेश ग्रन्थ मिलते हैं। वे सब ग्रन्थ अरबी, पारसी, हिन्दी और पेगू (अफगानी) भाषामें हुए हैं। उसका 'मकशुद्-अल मुमेनिन' ग्रन्थ अरबी भाषामें रचा गया है। उस ग्रन्थमें लिखा है, कि परम पिता परमेश्वरने मिर्थांजी जबरार्ले द्वारा उसे पैदा प्रेमके शिक्षा दी थी। उसका 'घावर-अन-रियान' नामक ग्रन्थ उपरोक्त चार भाषामें लिखा है। इसमें

ययाजिदके प्रति सपं परमेश्वरके उपदेशकी बात है। हालनामा उन्हींके धर्ममतका इतिहास है। यह धर्ममत बहुत कुछ सुफिमतके जैसा है।

ययाजिदके इस नये धर्ममतमें विश्वास करके बहुतसे अफगान उसके शिष्य हो गये। काबुल, कंधार, सुसुफं जै आदि प्रदेशवासीने उसका मत प्रहण कर एक नतिक-सम्पन्न अफगान-सम्प्रदायकी सृष्टि की। वे उद्यत साम्रदायिकगण उस समयके समृद्ध मुगल साम्राज्यके विरुद्धाचरण करनेसे बाज न आये। सम्राट् अकबर-शाहके शासनकालसे ले कर शाहजहाँकी समृद्धिके शेष तक रोशेनियोंने दिल्लीश्वरका प्रतिपक्षताचरण किया था। ययाजिदके जीते जो इस सम्प्रदायने बड़े उन्नति की थी। उस समय उन्हींने धर्मगुरु ययाजिदको अपना अधिनायक बना कर अकबरके शान्तिमय राज्यका शान्तिभङ्ग किया था। अफगानिस्तानके अन्तर्गत भातापुरमें ययाजिदका मकबरा मौजूद है।

ययाजिदके उमार शैब, कमाल उद्दीन, नूरउद्दीन और जलाल-उद्दीन नामक चार पुत्र तथा कामाल-यागुन नामक एक कन्या थी। मियां ययाजिदकी मृत्युके बाद जलाल उद्दीन धर्मगुरु बन कर गद्दी पर बैठा। १००७ हिजरीमें गजनोंके अधिकार करने पर वह अकबर द्वारा भेजे गये सेनापतिके हाथ मारा गया। उसके मरने पर उमार शैबका लड़का मियां आहादाद् गद्दी पर बैठा। १०३७ हिजरीमें जहांगीरके सेनापतिने नवागढ़ दुर्गमें उसका काम तमाम किया। शिष्यमण्डली उरी आहादा या एधरका अवतार मानती थी।

बादमें आहादाद्का लड़का अबदुल्ला काबिर गद्दी पर अधिकार हुआ। शाहजहाँकी समाप्ति तकको पड़ोस काबिर था। १०४३ हिजरीमें उसका देहान्त हुआ। लाज पेगा-घरमें दफनाई गई। इसके बाद मुगलके पट्टधरतर्क एक एक कर ययाजिदवंशका लोप हुआ। शाहजहाँके जमानेमें नूरउद्दीनके पुत्र मिर्जा दौलताबाद सुटमें मारा गया। जलालउद्दीनके एक पुत्र करिमदादने मुगल-सेनापति सैयद चौक कीजलसे १०४८ ईमें मयन्गोलो शेर की। दूसरा लड़का अन्नादाद सौ रसीदफानो उपाधिके साथ दक्षि-



विश्वास नहीं करता यह मूल है। जैसे अहट्टारविमूढ़ व्यक्ति को ऐशिक पेश्वयमें कोई अधिकार नहीं है। उस अहट्टार और जीवन्मृत व्यक्तिके वंशधर भी जब मृतवत् वाचरण करेगे, तब जीवित और ज्ञानी ही उस सम्पत्ति के प्रकृत उत्तराधिकारी समझे जायेंगे इस संस्कारके यशस्वी ही कर उसने बहुतसे मूर्ख लोगोंका काम तमाम करनेका हुकुम दे दिया था। यहां तक कि उसने तथा उसके चार पुत्रोंने दस्युवृत्ति द्वारा अपनी उमरा आदि धनाढ्य मुसलमानोंका यथासर्वस्व लूट लिया था। लूटके मालका पांचवां हिस्सा यह एक जगह जमा रखता था और ज़रूरत पड़ने पर उसे अपने विध्वस्त अनुचरोंके बीच बांट देता था।

दस्युवृत्तिमें लिप्त रह कर भी यवाजिद या उसके चार पुत्र कभी भी धर्मपथसे भ्रष्ट नहीं हुआ था। ये सबके सब संयमी और जितेन्द्रिय थे, कभी भी कोई कुकार्य नहीं करते थे। वे एकेधरोपासनाकारीका न कभी धन लूटने और न उन्हें किसी प्रकारकी तकलीफ ही देने थे। इसलाम धर्मके क्रियाकर्तमें बड़े कष्टर थे। नित्य ५ बार नमाज पढ़ते थे। और तो क्या, एकेधरमें विश्वास करनेवालेके सिवा दूसरे हाथका मारा हुआ पशुमांस तक भी नहीं खाते थे। एक दिन यवाजिदने अबदुल्लासे कहा, कि पैगम्बर महम्मद घर्णित सरियात् रात्रिकी समान, तरिकात् तारकाके समान, हकिफत् चन्द्रके समान और मारिफत् सूर्यके समान है। आत्माको उज्वल करनेके लिये मारिफत् मिश्र और दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलाम धर्मका सरियात् या पञ्चाङ्ग साधन दर एक मुसलमानका कर्त्तव्य है। नित्य ईश्वरका नाम जपना, भजन करना तथा तसबिया और तहलील करना मुसलमानका कर्त्तव्य है।

यवाजिदके बन्नाये हुए कई उपदेन ग्रन्थ मिलते हैं। ये सब ग्रन्थ अरबी, पारसी, हिन्दी और पैगू (अफगानी) भाषामें हुए हैं। उसका 'मकशुद-अल मुमेनिन' ग्रन्थ अरबी भाषामें रचा गया है। उस ग्रन्थमें लिखा है, कि परम पिता परमेश्वरने मिर्जाजी अबराह्म द्वारा उसे पैगामे मकी शिक्षा दी थी। उसका 'यापर-अल-रियान' नामक ग्रन्थ अरबोके चार भाषामें लिखा है। इसमें

यवाजिदके प्रति स्वयं परमेश्वरके उपदेनकी बात है। हालनामा उन्हींके धर्ममतका इतिहास है। यह धर्ममत बहुत कुछ सुफिमतके जैसा है।

यवाजिदके इस नये धर्ममतमें विश्वास करके बहुतसे अफगान उसके शिष्य हो गये। काबुल, कंधार, सुसुफं जै आदि प्रदेशवासीने उसका मत प्रष्ट कर एक शक्ति-सम्पन्न अफगान-सम्प्रदायकी सृष्टि की। ये उन्नत साम्प्रदायिकगण उस समयके समृद्ध मुगल साम्राज्यके विरुद्धाचरण करनेसे बाज न आये। सम्राट् अकबर-शाहके शासनकालसे ले कर शाहजहाँकी समृद्धिके शेष तक रोशिनियोंने दिल्लीश्वरका प्रतिपक्षताचरण किया था। यवाजिदके जोते जो इस सम्प्रदायने बड़े उन्नति की थी। उस समय उन्हींने धर्मगुरु यवाजिदको अपना अधिनायक बना कर अकबरके शान्तिमय राज्यका शान्तिमय किया था। अफगानिस्तानके अन्तर्गत भातापुरमें यवाजिदका मकबरा मौजूद है।

यवाजिदके उमार शेर, कमाल उद्दीन, नूरउद्दीन और जलाल-उद्दीन नामक चार पुत्र तथा कमाल-वानुन नामक एक कन्या थी। मियां यवाजिदकी मृत्युके बाद जलाल उद्दीन धर्मगुरु बन कर गद्दी पर बैठा। १००७ हिजरीमें गज़नीके अधिकार करने पर यह अकबर द्वारा भेजे गये सेनापतिके हाथ मारा गया। उसके मरने पर उमार शेषका लड़का मियां आदादाद गद्दी पर बैठा। १०३७ हिजरीमें जहाँगीरके सेनापतिने नयागढ़ दुर्गमें उसका काम तमाम किया। शिष्यमण्डली उसे आदाद या ईश्वरका अवतार मानती थी।

बाबू आदादादका लड़का अबदुल्ला फारिद गद्दी पर अधिकार हुआ। शाहजहाँकी समामें उसकी पढ़ी जातिर थी। १०४३ हिजरीमें उसका देहात हुआ। त्याग पैगामे यरमें दफनाई गई। इसके बाद मुगलके पड़वन्तसे एक एक कर यवाजिदधर्मका लोप हुआ। शाहजहाँके जमानेमें नूरउद्दीनके पुत्र मिर्जा दीलनाबाद युद्धमें मारा गया। जलालउद्दीनके एक पुत्र करिमदादने मुगल-सेनापति सेयद गार्के कीदालसे १०४८ ईमें मयनीला शेर की। दूसरा लड़का अबदुल्लाद पर रसाद्वानो उपाधिके साथ दाहि-



पैतृदासिक प्रसिद्धि की बात नहीं सुनी जाती। शेषोक पर्यन्त सम्राट् फर्दखसियरने सारा हरियाणा विभाग अपने मन्त्री रुकन उद्दौलाको प्रदान किया। पीछे रुकनने भी वह सम्पत्ति फौजदार खां नामक एक बेलु-विस्तानवासी उमरावको दे दी और १७३२ ई०में उसे फर्दख नगरकी नवाबी मसमन्द पर अमिषिक किया। नया नवाब राजतन्त्र पर बैठ कर वर्त्तमान हिसार, रोहतक और मुहगांव जिल्लेके कुछ अंश तथा पतियाला और फिन्दू राज्यके कुछ अंशका शासन करने लगा। उसके लड़केने १७६० ई० तक ये रोहटोक राज्यभोग किया था। पीछे दिल्ली साम्राज्यके अघःपतनके सोध उसकी भी तकदीर फूटी निकली। आलमगोरकी हत्या और सम्राट् शाह आलमके नाममात्रके राजा होनेसे राज्यमें अराजकताका लक्षण सूचित होने लगा। दूसरे वर्ष पानोपतकी लडाईमें महाराष्ट्रजत्तिके अघःपतनके साथ साथ मुगलशक्तिका भी हास हुआ। फर्दख नगरके नवाबने प्रतिपालककी सुरपस्थासे अपने को दुर्दशाप्रस्त समझा। वह सामर्थ्य होन हो नाममात्रके लिये मसमन्दकी शोभा बढ़ने लगा। इस समय सौभाग्याशेषी सिरासरदारोंने वसुधृत्ति और बार्थ-लालसाका परित्याग कर राजपाट स्थापनकी ओर ध्यान दिया। इससे नवाब दिनों दिन कमजोर होता गया। आखिर १७६२ ई०में भरतपुरके जाटसरदार जबाहिर सिद्दने उसे राज्यसे निकाल भगाया।

इसके प्रायः २० वर्ष बाद उत्तर-भारतके हरियाणामें माना प्रकारकी विश्वद्वला उपस्थित हुई। नवाब फौजदारके पुत्र कुछ समयके लिये पैतृक सम्पत्ति अधिकार कर फिरसे राज्यशासन करने लगा। अनन्तर नज़फ खानि यह स्थान जीत कर अपने एक अनुचरको प्रदान किया। पीछे सरद्वानाकी रानी बेगम समरुद्दा स्वामी घालटर रिनहाईट इसके कुछ अंशोंका जगौर तीर पर भोग करने लगा। १७८४ ई०में महाराष्ट्रगज इन सब विश्वद्वलाओंसे राज्यरक्षा करनेमें समर्थ हुए सही, किन्तु सुसमृद्ध सिन्धु राजशक्ति सिधोंका दमन न कर सका। सिधोंने बार बार आक्रमण कर स्थानीय अधिवासियोंको तंग कर डाला। अन्तमें सिन्धुराजने हरियाणा

विभागका अधिकांश कैथल और फिन्दूके सरदारको समर्पण कर उभद्रवसे परित्याग पाया।

इसो समय सौभाग्याशेषी सैनिक जाज़ टामस हरियाणाका अपराध हस्तगत कर स्वयं राज्यशासन करने लगा। उन्होंने म्जाजके निकट जज़ागढ़ नामक स्थानमें और हिसार जिल्लेके हाँसीमें दो दुर्ग बना कर अपना अधिकार मजबूत कर लिया था। १८०२ ई०में फरासी सेनानायकके प्रथोम परिचालित महाराष्ट्रद्वलेन टामसकी राज्यसे निकाल भगाया। दूसरे वर्ष अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकने जटद्र से शिवालिक पादमूल पर्यन्त अंगरेज शासनभुक्त कर लिया।

इस समय कैथल और फिन्दूके सरदार जिल्ला उत्तरांश अधिकार कर बैठे थे। अंगरेजराजने म्जाजके नवाबको दक्षिण, दाद्रि और बहादुरगढ़के नवाबकी पहिन्म तथा दुजामाके नवाबकी मध्यभाग शासन करनेके लिये दे दिया। शेषोक नवाब सिल और भट्टि जातिके बार बार आक्रमणसे तंग आ कर जब राज्य चलानेमें असमर्थ हुए, तब १८०१ ई०में यहाँ सुभृद्गला स्थापनके लिये अंगरेजों सेना भेजी गई। इस समय वर्त्तमान जिल्लाका कुछ परगना अंगरेजोंके अधिनारभुक्त हो गया था। १८१८ ई०में कैथलराजकी मृत्युके बाद तथा १८२० ई०में फिन्दूके सरदार कुछ भूभाग हस्तगत कर रोहतक जिला संगठित हुआ। उसी साल हिसार और जियां विभाग रोहतकसे निकाल लिया गया और १८१४ ई०में पानोपत ( वर्त्तमान कर्नाल ) जिला स्वतन्त्र शासनभुक्त किया गया।

१८६२ ई० तक दिल्लीराजघानोंके अंगरेज रेसिडेण्टके अधीन एक पोलिटिकल एजेण्ट यहाँका शासन करने रहे। पीछे यह मुकप्रदेशके साधारण राजनिगमके शासनाधीन किया गया। १८१७ ई०के गद्दमें यह जिला अंगरेजोंके हाथसे जाता रहा। फर्दख नगर, फाफ्ट और बहादुरके नवाबने मुहगांव हिसारवासी विभिन्न मुसलमान-सम्प्रदायके साथ मिल कर यहाँ आधिपत्य जमाया। पीछे जियां और हिसारके भट्टि-सरदारोंने उनसे मिल कर रोहतक पर आक्रमण किया और उसे लूटा। दिल्ली अंगरेजोंके हाथ आनेके बाद पंतामी सेनाद्वलकी सहा-





ऐतिहासिक प्रसिद्धि की बात नहीं सुनी जाती। शेषोक वर्षों सम्राट् फर्दखसियरने सारा हरियाना विभाग अपने मन्त्री रकन उद्दौलाको प्रदान किया। पीछे रकनने भी यह सम्पत्ति फौजदार को नामरु एक बेलु-विस्तानवासी उमरावको दे दी और १७३२ ई०में उसे फर्दख नगरकी नवाबी मसनद पर अभिषिक्त किया। नया नवाब राजतन्त्र पर बैठ कर वर्त्तमान हिसार, रोहतक और गुरुगांव जिलेके कुछ अंश तथा पतियाला और भिन्द राज्यके कुछ अंशका शासन करने लगा। उसके लड़केने १७६० ई० तक ये रोकटोक राज्यभोग किया था। पीछे दिल्ली साम्राज्यके अधःपतनके साथ उसकी भी तबदीर फूटी निकली। आलमगीरकी हत्या और सम्राट् शाह आलमके नाममात्रके राजा होनेसे राज्यमें अराजकताका लक्षण सूचित होने लगा। दूसरे वर्ष पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्रगणिके अधःपतनके साथ साथ मुगलगणिकी भी ह्रास हुआ। फर्दख नगरके नवाबने प्रतिपालककी दुरवस्थासे अपने को दुर्दशाग्रस्त समझा। यह सामर्थ्य होने हो नाममात्रके लिये मसनदकी शोभा बढ़ने लगा। इस समय सौभाग्याशेषी सिखसरदारोंने दस्युवृत्ति और गधं-लालसाका परित्याग कर राजपाट स्थापनकी और ध्यान दिया। इससे नवाब दिनों दिन कमजोर होता गया। आखिर १७६२ ई०में भरतपुरके जाटसरदार जवाहिर सिन्हेने उसे राज्यसे निकाल भगाया।

इसके प्रायः २० वर्ष बाद उत्तर-भारतके हरियानामें नाना प्रकारकी विच्छिन्ना उपस्थित हुई। नवाब फौजदारके पुत्र कुछ समयके लिये पैतृक सम्पत्ति अधिकार कर फिरसे राज्यशासन करने लगा। अनन्तर नज़फ खानि यह स्थान जीत कर अपने एक अनुचरको प्रदान किया। पीछे सरदानीकी रानी बेगम समरुका स्वामी पालटार रिनहाईट इसके कुछ अंशका जगौर तीर पर भोग करने लगा। १७८४ ई०में महाराष्ट्रगण इन सब विच्छिन्नाओंसे राज्यरक्षा करनेमें समर्थ हुए सही, किन्तु सुसमृद्ध सिन्धु राजगणके सिलोंका दमन न कर सकी। सिन्धोंने बार बार आक्रमण कर स्थानीय अधिवासियोंको तंग कर डाला। अन्तमें सिन्धुराजने हरियाना

विभागका अधिकारण कैथल और भिन्दके सरदारको समर्पण कर उपद्रवसे परित्याग पाया।

इसो समय सौभाग्याशेषी सैनिक जाज़ टामस हरियानाका अपराध हस्तगत कर श्यं राज्यशासन करने लगा। उन्होंने काज़रके निकट जज़गढ नामक स्थानमें और हिसार जिलेके हाँसीमें दो दुर्ग बना कर अपना अधिकार मजबूत कर लिया था। १८०२ ई०में फरासी सेनानायकके अधीन परिवर्तित महाराष्ट्रदलने टामसको राज्यसे निकाल भगाया। दूसरे वर्ष अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकने शत्रु से शिथिलक पादमूल पर्यन्त अंगरेज शासनभुक्त कर लिया।

इस समय कैथल और भिन्दके सरदार जिलेका उत्तरांश अधिकार कर बैठे थे। अंगरेजराजने भाज़रके नवाबको दक्षिण, दाद्री और बहादुरगढ़के नवाबको पश्चिम तथा हुजामाके नवाबको मध्यभाग शासन करनेके लिये दे दिया। शेषोक नवाब सिल और भट्टि जातिके बार बार आक्रमणसे तंग आ कर जब राज्य चलानेमें असमर्थ हुए, तब १८०१ ई०में यहाँ सुभद्रल्ला स्थापनके लिये अंगरेजों सेना भेजी गई। इस समय वर्त्तमान जिलेका कुछ परगना अंगरेजोंके अधिभारभुक्त हो गया था। १८१८ ई०में कैथलराजकी मृत्युके बाद तथा १८२० ई०में भिन्दके सरदार कुछ भूभाग हस्तगत कर रोहतक जिला संगठित हुआ। उसी साल हिसार और शिवां विभाग रोहतकसे निकाल लिया गया और १८१४ ई०में पानीपत (परामान कर्गल) जिला स्वतन्त्र शासनभुक्त किया गया।

१८६२ ई० तक दिल्लीराजघातोंके अंगरेज रैसिडेण्टके अधीन एक पोलिटिकल एजेण्ट यहाँका शासन करते रहे। पीछे यह युक्तप्रदेशके साधारण राजनियमके शासनाधीन किया गया। १८५७ ई०के ग्दरमें यह जिला अंगरेजोंके हाथसे जाता रहा। फर्दख नगर, आम्बर और बहादुरके नवाबने गुरुगांव हिसारवासी विभिन्न मुसलमान-सम्प्रदायके साथ मिल कर यहाँ आधिपत्य जमाया। पीछे गिर्वां और हिमारके भट्टि-सरदारोंने उनसे मिल कर रोहतक पर आक्रमण किया और इसे लूटा। दिल्ली अंगरेजोंके हाथ आनेके बाद पंजाब सेनादलही सदा-



उठाये लड़ा है। मुलतानपुर और काङ्गरासे जो चौड़ा रास्ता लेह्यारखम्ब तक गया है वह इसी रास्तेके ऊपरसे चन्द्रा और भागा नदीकी उपत्यकाको पार कर धारा लाचामें मिला है। दिसम्बर महीनेको छोड़ कर अभी सभी समय यह रास्ता जाने आने लायक रहता है।

रोहन (हि० पुं०) एक प्रकारका पेड़। इसे सूहन और सूमी भी कहते हैं। यह पेड़ बहुत बड़ा होता है और दक्षिण तथा मध्यभारतके जंगलोंमें बहुतायतसे होता है। इसकी लकड़ी मकानोंमें लगती और मैन, कुरसी आदि सजावटके सामान बनानेके काममें आती है। होरकी लकड़ी बहुत कड़ी, मजबूत, टिकाऊ, चिकनी तथा ललाई लिये काले रंगकी होती है। गिशिर ऋतुमें इस पेड़के पत्ते झड़ते हैं।

रौहना (हि० कि०) १ घड़ाना, ऊपर करना। २ अपने ऊपर रखना, धारण करना। ३ सवार कराना।

रोहन्त (सं० पुं०) रह्यादिति नह (चहिनन्दीविप्राधिभवः पिदाधिपि। उष् ३।१२०) इति इच्। १ वृक्षभेद, एक पेड़का नाम। २ वृक्षमाल, पेड़।

रोहन्ती (सं० स्त्री०) रह भच्, विस्वात् ङीप्। १ लता-भेद। २ लतामाल।

रोहरी—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक उप विभाग। कोहिस्तान ले कर इसका भूपरिमाण ५४१० वर्गमील है। इसके पश्चिम और उत्तर सिन्धु नदी, उत्तर-पूर्व और पूर्वमें बहवलपुर और जयसल्मेर राज्य तथा दक्षिणमें रौरपुर जिला है। मौरपुर नगर इसका विचार-सदर है।

रेजिस्तान नामक मरुप्रदेश और शिकारका समतल प्रान्त ले कर यह विभाग संगठित है। बीच बीचमें बन-माला परिशोभित गण्डशैलधेनी गोमा दे रही है। एक समय सिन्धुनदी उन सब गण्डशैलके पार्श्व हो कर बरोर नगर तक विस्तृत थी। पीछे किसी प्राकृतिक परिवर्तनसे झोत गति बरकर शैलकेके मध्य हो कर लौटी है। शायद सिन्धुनदीक्षिण बाहुकाराजिके विकारसे ही यह शैलमाला बनी है। रेजिस्तान विभागकी रेन नदी एक समय मूलसिन्धु रूपमें बड़ी तेजीसे बहती थी। अभी मन्दगति हो जानेसे उसकी चौड़ाई घट गई है तथा

दोनों किनारा बाहुकापूर्ण मरुप्रान्तरमें बदल गया है। पतझिन खेतीबारीकी सुविधाके लिये यहाँ बहुत-सो नहरें हैं। उनमेंसे पूर्व-नारा १३ मील, लुएडी १६ मील अगोर १६ मील, दहर २६ मील, मसु ३२ मील, कोराई २३ मील, महारो ३७ मील और वैद्गरो १६ मील, लम्बी है। इन सब नहरोंसे स्थानीय जमींदार फिर ५७ नहर काट कर अपने अपने इलाकेमें ले गये हैं।

यहाँ मट्टीके बरतन, सूती कपड़े और चूनेका विस्तृत कारवार है। घोटकी और रौरपुर घर्नी नगरमें फर्सी, नासदानो, फीची और रसोईके बरतन तैयार होते हैं। यहाँसे तरह तरहके अनाज, सजीमिट्टी, चून, तेल, पराम, रेशमी घख, नील और पाषोपयोगी फलादिकी विभिन्न स्थानोंमें रफ्तानो होती है। नार्थवेधन रेलवेके खुल जानेसे व्यवसाय वाणिज्यमें बड़ी सुविधा हुई है।

सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षां २७° ४' से २७° ५०' उ० तथा देशां ६८° ३५' से ६९° ४८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १४६७ वर्गमील और जनसंख्या ८५ हजारसे ऊपर है। इसमें रोहरी नामक १ शहर और ६६ ग्राम लगते हैं। यहाँकी प्रधान उपज धान, उवार और गेहूँ है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षां २७° ४१' उ० तथा देशां ६८° ५६' पू०के मध्य सिन्धुके बायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या हजारके करीब है। प्रवाद है, कि १२६७ ई०में सैयद मुकन उद्दीन शाहने इस नगरको बसाया। मुसलमानी जमानेमें यहाँ बहुत-सो मसजिदें बनी थीं। उनमेंसे १५६४ ई०में सत्ताट् अकबर शाहके अधीनस्थ शासनकर्ता फते रहाने नामा जिल्ला और कायकार्य-सामन्वित जमा-मसजिदु तथा १५६३ ई०में मीर मुशान शाहने इद्गाह मसजिदकी प्रतिष्ठा कराई थी।

१५६५ ई०में स्थानीय कलहोड़ा-राज मीर महमदने अपने मित रौरपुराधिपति मीर धलीमुलाने पैगमर गद्गमदकी दादाका एक बाल पाया। उसने उस ईप-स्मृतिकी रक्षार्थ नगरसे उत्तर 'बार मुचारक' नामक एक चौकीन धामामय बनवाया। उस मसजिदके मध्य-स्थलमें हीरे पत्थरसे बड़े हुए एक सोनेके टखनेमें यह



सुरभि-कन्या । ( कालिकापु० ) १४ नव चर्पाया कन्या, नी चर्पाकी कन्या ।

‘ अष्टवर्षा भवेद्वीरी नववर्षा च रोहिणी ।’

( उदाहरण )

१५ पञ्चवर्षीया कन्या, पांच चर्पाकी कुमारी । रोगियों-का रोग नाश करनेके लिये इस कुमारीकी पूजा करनेकी व्यवस्था देखी जाती है ।

‘ रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा काशिका स्मृता ।’

( देवीभाग० ३१२६।४२ )

‘ रोहिणी रोगनाशाय पूजयेद्विष्वन्तरः ।’

( देवीभाग० ३१२६।४८ )

रोहिणीकी पूजा निम्नोक्त मन्त्रसे करनी होनी है ।

‘ रोह्यन्ती च बीजाणि प्राग्जन्मशक्तानि ये ।’

या देवी सर्वभूतानां रोहिणी पूजयाम्यहम् ॥’

( देवीभाग० ३१२६।५६ )

इस कुमारीकी पूजा करनेसे अनेक प्रकारकी सुख-सम्पद प्राप्त होती है । १६ हिरण्यकशिपुकी कन्या । ( भास्व ३१२२०।१८ ) १७ अश्विनो आदि सत्साईस नक्षत्रों-के अन्तर्गत चौथा नक्षत्र । पर्याय—रोहिणी, प्राणी । यह नक्षत्र शक्रटाकार और पञ्चानारात्मक है । प्रजा इस-के अधिष्ठात्री देवता है । इस नक्षत्रमें घृषराजि होती है ।

रोहिणी ( नक्षत्र ) चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रियतमा है । चन्द्रमाकी सत्साईस स्त्री होने पर भी ये हमेशा रोहिणी के निकट रहने से । शेष स्त्रियां इससे असन्तुष्ट हो दक्ष के पास गईं और कुल घृषाभत उन्हें बह सुनाया । दक्ष घृषे विगड्डे और उन्होंने चन्द्रमाको प्राय दिया । रोहिणी-के कारण चन्द्रमा दक्षके अभिज्ञापसे घृषरोगमाकात्मक हुआ । ( कालिकापु० )

यह नक्षत्र उद्वर्ष्यमुख, और सर्वजातिका है । शत-पद्मकानुसार इस नक्षत्रमें नामकरण होनेसे इसके चार मादमें “ओ, घ, धो, धु” इन चार अक्षरोंका आदि नाम होगा । ( कालिदासहृत राविक्रमनि० )

पांच नक्षत्रयुक्त शक्रटाकार रोहिणी नक्षत्र यदि प्रकानित हो, तो निम्नलिखित ३ दण्ड ३८ पल बोल गया है, ऐसा जानना होगा ।

इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे जात बालक कुजाल, कुन्दीन, सुचारुदेह, धनी, मानो और कामुक होता । ( फोरोप० )

अष्टोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे मूर्खकी दृष्टा तथा विशेषोत्तरी मतसे चन्द्रकी दृष्टा होती है । नक्षत्रके परिमाणादि अनुसार भोग्यभुक्तादिका निरूपण किया जा सकता है ।

भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी अर्धात् जन्माष्टमीके द्विन रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे जयन्ती-योग होता है । यह रोहिणी नक्षत्र रात्रिकाल पर कर यदि दूसरे दिन भी रहे, तो जब तक रोहिणी नक्षत्र रहेगा, तब तक उपवास करना होगा है । रोहिणी रहने पर पाएण नहीं करना चाहिये । जन्माष्टमी देखो ।

१८ गलरोगभेद, गलेका एक रोग । इसके निदान और चिकित्साका विषय नायप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है । गलरोग १८ प्रकारका है । उनमेंसे रोहिणीके पांच भेद हैं ।

निदान—दूषित वायु, पित्त, कफ और रक्त जब गलेमेंके मांसको दूषित कर कण्टरीयकारी मांसाद्भू र उत्पादन करता है, तब उसे रोहिणी रोग कहते हैं । इस रोगमें प्रायः रोगीका जीवन नष्ट होता है ।

यातज रोहिणीका लक्षण—यातज रोहिणी रोगमें जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनाविगिष्ट कण्टरीयकारक मांसाद्भू र उत्पन्न होता है तथा रोगी म्लानात्य प्रादि यातजनित उपद्रवोंमें पीड़ित रहता है ।

पित्तज लक्षण—पित्तजन्य रोहिणी रोगमें मांसाद्भू र जन्ती निकलता है तथा अत्यन्त दाढ़ और पाचयुक्त होता है । इस रोगीकी जीभ जोरसे ज्वर आता है ।

कफज लक्षण—कफजन्य रोहिणी रोगमें मांसाद्भू र गुथ, स्थिर और अल्पवाक्यगिष्ट होता है, तथा कण्ट-रोगत बंद हो जाता है ।

रक्त्तपावज लक्षण—विद्रोयज रोहिणी रोगमें उक्त तीन दोषोंके सभी लक्षण दिव्यारं देते हैं तथा मांसाद्भू र गम्भीररपाकी होता है । ये सब लक्षण दिव्यारं देनेमें रोगीकी जान पर धतरा है, ऐसा जानना होगा ।

रक्तज लक्षण—रक्तजन्य रोहिणी रोगमें जीभके नीचे



सुरभि-कन्या । ( कालिकापु० ) १४ नव वर्षीया कन्या, नौ वर्षीकी कन्या ।

“अष्टवर्षा भवेत्तरी नववर्षा च रोहिणी ।”

( उद्गाहल्य )

१५ पञ्चवर्षीया कन्या, पांच वर्षीकी कुमारी । रोगियों-का रोग नाश करनेके लिये इस कुमारीकी पूजा करनेकी व्यवस्था देखी जाती है ।

“रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता ।”

( देवीभाग० ३१२६।४२ )

“रोहिणी रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्तरः ।”

( देवीभाग० ३१२६।४८ )

रोहिणीकी पूजा निम्नोक्त मन्त्रसे करनी होनी है ।

“रोहिण्यै च कीर्त्तयामि प्राग्जन्मशक्तिनि वै ।

या देवी गर्वभूतानां रोहिणी पूजयाम्यहम् ॥”

( देवीभाग० ३१२६।५६ )

इस कुमारीकी पूजा करनेसे अनेक प्रकारकी सुख-सम्पद प्राप्त होती है । १६ हिरण्यकशिपुकी कन्या । ( भारत ३१२२०।१८ ) १७ अश्विनी आदि सप्तारिंस नक्षत्रों के अन्तर्गत चौथा नक्षत्र । पर्याय—रोहिणी, प्राणो । यह नक्षत्र शकटाकार और पञ्चतारात्मक है । प्रजा इसके अधिष्ठात्री देवता है । इस नक्षत्रमें घृषराशि होती है ।

रोहिणी ( नक्षत्र ) चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रियतमा है । चन्द्रमाकी सत्तारिंस स्त्री होने पर भी ये हमेशा रोहिणीके निकट रहते थे । श्रेय रिपवां इसके असन्तुष्ट हो दक्ष के पास गई और कुल घृत्ताभत उर्ध्वे षट् सुनाया । दक्ष षड् विगड् और उर्ध्वेनि चन्द्रमाको ज्ञाप दिया । रोहिणीके कारण चन्द्रमा दक्षके अभिजापसे यक्षमरीगात्मानत हुक । ( कालिकापु० ) ।

यह नक्षत्र उदुर्ध्वमुख, और सर्वज्ञातिता है । ज्ञात-पद्मकानुसार इस नक्षत्रमें नामकरण होनेसे इसके पार पाइमें “ओ, घ, घो, गु” इन चार अक्षरोंका यादि नाम होना । ( कालिकापु० ३१२६।५६ )

पांच नक्षत्रयुक्त शकटाकार रोहिणी नक्षत्र यदि प्रकाशित हो, तो विश्वलम्बता ३ दण्ड ३८ पल कील गया है, ऐसा जानना होगा ।

इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे जात बालक कुशल, दृष्टीम, सुचारुदेह, धनी, मानो और कामुक होता । ( कोटीप० )

अष्टोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे सूर्यकी दगा तथा विजोत्तरी मतसे चन्द्रकी दगा होती है । नक्षत्रके परिमाणादि अनुसार भोग्यशुकादिका निरूपण किया जा सकता है ।

भाद्रमासकी कल्याणमी अर्धात् जन्माष्टमोके द्विन रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे जयन्ती-योग होता है । यह रोहिणी नक्षत्र रात्रिकाल वा कर यदि दूसरे दिन भी रहे, तो जब तक रोहिणी नक्षत्र रहेगा, तब तक उपवास करना होता है । रोहिणी रहने पर पारण नहीं करना चाहिये । जन्माष्टमी देखो ।

१८ मलरोगभेद, गलेका एक रोग । इसके निदान और चिकित्साका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है । मलरोग १८ प्रकारका है । उनमेंसे रोहिणीके पांच भेद हैं ।

निदान—दूषित वायु, पित्त, कफ और रक्त जब गलेमेंके मांसको दूषित कर कण्ठरोगकारी मांसाद्भूर उत्पादन करता है, तब उसे रोहिणी रोग कहने हैं । इस रोगमें प्रायः रोगीका जीवन नष्ट होता है ।

यातज रोहिणीका लक्षण—यातज रोहिणी रोगमें जीमके चारों ओर अत्यन्त घेदनायिणिष्ट कण्ठरोगकारक मांसाद्भूर उत्पन्न होता है तथा रोगी म्लमात्य आदि यातजनिन उपद्रवोंसे पीड़ित रहता है ।

पित्तज लक्षण—पित्तजन्म रोहिणी रोगमें मांसाद्भूर जल्दी निकलता है तथा अत्यन्त दाह और पाकगुण होता है । इस रोगीको जोर नोरसे उबर जाता है ।

कफज लक्षण—कफजन्म रोहिणी रोगमें मांसाद्भूर गुथ, स्थिर और अव्ययकमिणित होता है, तथा कण्ठ-श्लेथ र्द हो जाता है ।

सन्निपातज लक्षण—त्रिदोषज रोहिणी रोगमें उक्त तीन दोषोंके सभी लक्षण दिखाई देने हैं तथा मांसाद्भूर गम्भीरपाकी होता है । ये सब लक्षण दिखाई देनेसे रोगीकी जान पर घतरा है, ऐसा जानना होगा ।

रक्तज लक्षण—रक्तजन्म रोहिणी रोगमें जीमके गोचे





लाल होती है। सब मछलियोंमिसे यह श्रेष्ठ होती है। इसका गुण थोड़ा उष्ण, बलकर, घातनाशक तथा वीर्य-वर्द्धक माना गया है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय और गुण—रक्तोदर, रक्तमुच, रक्ताक्ष, रक्तशक्ति, छ्मणपक्ष, भस्मश्रेष्ठ और रोहित। यह मरस्य सत्रपेक्षा श्रेष्ठ होता है। गुण—सुख्यवर्द्धक, अर्दितरोगनाशक, कुल कषाय, मधुररस, यायुनाशक और थोड़ा विचकारक। (भाप्र०)

हारितमें लिखा है, कि यह मछली सियार खाती तथा स्वप्ररहित होनेसे शीपनीय और लघुपाक होती है।

“शैवाजाहारभोजित्वात् स्वप्नस्य च विवर्जनात्।

रोहितो दीपनीयश्च लघुपाको महावज्रः॥”

(हारित १।११ अ०)

५ राजा हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम। (देवीभाग० ७, २५।११) ६ एक प्रकारका मृग। ७ रोहितक नामका पेड़। ८ कुसुमका फूल, बरैका फूल। ९ रक्तवर्ण, लाल रंग। १० एक नदीका नाम। (जैनश्रि० ५।४।२) ११ गन्धर्वोंकी एक जाति। (लि०) १२ रक्तवर्णविशिष्ट, लाल रंगका।

रोहितक (सं० पु०) रोहितस्य स्वार्थे कन्। १ रोहितका पेड़, रोहिड़ा। यह पेड़ सफेद और लाल दो प्रकारका होता है। पर्याय—रोहो, प्लोहशूल, दाड़िमपुष्पक, रोहो-तक, रोहिण, कुशात्मलि, दाड़िमपुष्प, सदाभसून, फूट-शात्मलि, विरोचन, शात्मलिक। गुण—कटु, स्निग्ध, कषाय, शीतल, छ्मि, घ्रण, एडोहा और रक्तगत रोग नाशक। (राजनि०) २ हरिणविशेष। ३ कुसुमका पेड़। ४ एक देशका नाम। रोहितक देशो।

रोहितकारण्य (सं० ह्री०) एक स्थानका नाम। (भारत उद्योगर०)

रोहितकूट—एक पर्वतका नाम। (जैनश्रि० १।१।१२) रोहितकूल (सं० ह्री०) जनपदभेद। (पंचविंशति १।१३।१२)

रोहितकूलीय (सं० ह्री०) रामभेद। रोहितगिरि (सं० पु०) पर्वतभेद। रोहितपुर (सं० ह्री०) रोहितक नगर। हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वने यह नगर बसाभा। रोहितगढ़ देशो।

रोहितयन् (सं० लि०) रक्तकमुक्त, लाल रंगका। (शाम्भयन १।५।५)

रोहितयस्तु (सं० ह्री०) एक नगरका नाम। (सुहितविक०)

रोहितघाट (सं० पु०) अग्नि। रोहिता (सं० स्त्री०) रोहित-टाप्, (वर्षादनुदात्ताव्ययभातो नः। पा ५।१।१६) इति पाश्चिमी ङोप्, तकारस्य नकारा-देशश्च न। रामादि द्वारा रक्तवर्ण, क्रोधसे लाल। रोहिताक्ष (सं० पु०) रक्तचक्षुः। रक्तलोचन, लाल आँख।

रोहिताङ्ग—एक देशका नाम। रोहित देशो। रोहितान्नि (सं० लि०) रक्त चिह्नविशिष्ट, लाल चिह्नका। रोहिताश्व (सं० पु०) रोहितोऽश्वो यस्य। १ अग्नि। २ राजा हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम। ३ एक प्राचीन गढ़का नाम जो शोन नदीके किनारे पर था।

रोहितिका (सं० स्त्री०) रोहितो वर्णोऽस्त्वस्या इति रोहित-उन्, टाप्। रामादि द्वारा रक्तवर्ण, क्रोधसे लाल। रोहितोय (सं० पु०) रोहित पय स्वार्थे ङ। रोहितवृक्ष, रोहिड़ा।

रोहितभ्य (सं० पु०) अग्नि। रोहित (सं० पु०) अचक्ष्व रोहतीति यह आशयक णिनि। १ रोहितकवृक्ष, रोहिड़ा। २ अश्वत्थवृक्ष, पोपल-का पेड़। यटवृक्ष, बड़का पेड़। रोहि मछली। ५ एक प्रकारका मृग। ६ रोहित घास।

रोहितखण्ड—सुव्रतदेशके छोटे लाटके स्थान एक शासन विभाग। यह अक्षा० २७°३५'से २६°५८' उ० तथा देशा० ७८° २'से ८०° २८' पू०के मध्य आरक्षित है। भूपरिमाण १२८०० वर्गमांल है। चित्तौड़, सुरदाबाद, बदाऊँ, बरेली, पिलिमित और शाहजहाँपुर जिला इसके अन्तर्गुं क हैं। इसके उत्तरमें दिमात्य, दक्षिण पश्चिममें गङ्गा और पूरबमें अजयप्रदेश है। यहाँकी भाषाहवा बहुत म्यास्थवकर है। ईंध और धान प्रधान कस्तक है। फिर गेहूँ, धाना, रई तथा बाजरा नादि भी कम नदी उपजता।

इस विभागमें १८ प्रधान नगरके मिया और मो २८ छोटे छोटे नगर तथा ११३२० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या



मान था। यह कन्धारका पस्तिवाग कर कानिहारमें आ कर बसे गया था। १७१० ई०में रहमतका जन्म हुआ।

१७४० ई०में रोहिलखण्ड नामक बड़ा देगमाग अथी महम्मदके अधिकारभुक्त हुआ तथा सम्राट् उसीको यहाँका शासनकर्त्ता माननेकी बाध्य हुए। ५ वर्ष राज्यशासन करनेके बाद १७४५ ई०में अयोध्याके खैदर सफ्दरजङ्ग के साथ उसका युद्ध हुआ। इस समय सम्राट् महम्मदने यजीरकी पक्ष लिया था, इस कारण अलौमहम्मद उसकी पक्षता स्वीकार करनेकी बाध्य हुआ। यह नजरबंदीकी तीर पर दिल्लीमें रहे जाने पर भी उसके अधीनस्थ दुर्दैव अफगानोंने अत्याचार और उपद्रव करना शुरू कर दिया। सम्राट् ने अलौकी सरहिन्दका शासनकर्त्ता बना कर अफगानोके हाथसे मुद्रकारा पाया।

१७४८ ई०में अबदालीके भारत-आक्रमणकी तैयारी देख कर अली महम्मदने फिरसे रोहिलखण्ड हस्तगत कर लिया तथा बड़ी होशियारीसे यह राज्यशासन चलायाने लगा। शासनविशुद्धताकी सुदृढ़ कानके कुछ समय बाद ही १७४६ ई०में उसका देहांत हुआ। उस समय उसका बड़ा और मझला लड़का कमदुल्ला और अबदुल्ला खाँ अबदालीके साथ कन्धारमें था। इस कारण बाकी धार नायालिंग लड़कोंके हाथ राज्यभार न सौंप कर अलीने अपने चचा रहमत खाँकी 'हाफिज' सधात् राज्य का प्रधान अन्विभायक और रहमतके शातिघ्नता दुएडी कीकी सेनापति बनाया।

अली महम्मदकी मृत्युके बाद उसके विषयात सेनापति धार विजनीरके जागीरदार नाजिर खाँके दुएडी खाँकी कन्यासे विवाह किया और नाजिर उद्दीला नाम धारण कर विजनीरमें स्वतन्त्र राजपाठ बसाया। मध्य अन्तर्देशमें बहुसंख्यकी अफगान कायमजङ्गने फर्रुखाबादमें अपना प्रभाव फैला कर अफगान-शासनका विस्तार किया था। इस समय यजीर सफ्दरजङ्गने उनका धर्म स्वरु करनेकी इच्छासे पहले सेनापति कुनुब उद्दीनकी भेजा। दुएडी खाँ परिचालित रोहिताके हाथसे कुनुब मारा गया। पीछे सफ्दरने कायम-जङ्गकी सहायतासे १७५० ई०में रोहिलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। बदाऊँकी लड़ाईमें हाफिज रहमत और दुएडी

खाँके हाथसे कायम-जङ्ग यमपुर सिधारा। अब सफ्दरने रोहिलखण्ड पर आक्रमण न कर कायमके पुत्र अहमद खाँ पर फनेयाबादमें चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें विशेषरूपसे अयमानित, लाडिउन और पराजित हो सफ्दर प्राण ले कर भागा। पीछे अफगानोंने इलाहाबाद तक लूटा।

इस अयमानसे क्रुद्ध हो सफ्दर महाराष्ट्र सेनापति मलहार राव होलकर और जयाप्पा सिन्धेकी म्हापतासे पुनः रणक्षेत्रमें उतरा। अहमद खाँ रहमत और दुएडी खाँसे सहायता पा कर युद्धकी तय्यारी करने लगा। १७५५ ई०में महाराष्ट्र सेनाने रोहिलखण्डमें घुम कर अहमद खाँको परास्त किया। इस प्रकार अहमद खाँ फिरसे फर्रुखाबादके निहासन पर बैठा।

इस समय फयजुल्ला खाँ, अबदुल्ला खाँ, हाफिज रहमत और दुएडी खाँके बीच राज्यविभाग ले कर भगवा पड़ा हुआ। भागिर चारोंने ही मिल कर अलीकी सम्पत्ति भागसमें बाँट ली। १७५४ ई०में मन्तो गाजी उद्दीन द्वारा सम्राट् अहमदशाहकी राज्यव्युति तथा सफ्दरजङ्गकी मृत्यु और सुजा उद्दीला की अयोध्या-मसनद् प्राप्तिसे रोहिता जातिका अट्टपूर्य धीरे धीरे अग्रगण्यसे ढक गया। १७५६ ई०में अबदालीने श्री धार भारत-धर्म पर चढ़ाई कर दी। इस बार उसने पूर्वाञ्चित नाजिर उद्दीलाको सेनापति और प्रधान मन्त्री बनाया। गाजी उद्दीनकी यद् अयनति अच्छी न लगी। यह मराठोंकी सहायतासे उसका सर्वांगान करनेतुल गया। १७५८ ई०में मराठासेनाने नाजिर उद्दीलाको रोहिलखण्ड मार मगाया। इससे भी संतुष्ट न हो कर भागिर उन्होंने १७५६ ई०में नाजिरको तख्त परसे उतार दिया। हाफिज रहमत तथा अन्यान्य रोहिला-सरादारोंने मराठोंकी गति रोकनेमें असमर्थ हो सुजा उद्दीलाकी सहायता मांगी। उसी सालके गवम्बर माममें मिलित सेनादलसे द्वार खा कर महाराष्ट्रीय दल चमग हुआ। महाराष्ट्रीय-सेनाके मागनेके सीर भी कई कारण थे। १७५६ ई०के सितम्बरके महोनेमें अबदालीने ४घो बार भारतधर्म पर आक्रमण करनेके लिये पञ्जाबमें पदार्पण किया। पञ्जाब उस समय मराठोंके



हाफिज रहमत्के साथ महाराष्ट्रदलका सन्धि-प्रस्ताव चलता देण हेष्टिसकी बहुत फिक हुई । उन्होंने अयोध्या के वजोरा पक्ष लेने और अङ्गरेजोंका स्वार्थ साधनेके लिये सेनापति सर रायट बेकारके अधीन एक दल अङ्गरेजी सेना भेजी । मराठोंको रोहिलखण्डके भगाना ही उनका मुख्य उद्देश था । सेनापक्ष बेकारने सुजा उद्दोलके साथ शर्त करके दो दल अङ्गरेज, छः दल सिपाही और एक दल कामानयाही सेना ले कर १७७३ ई०के मार्च मासमें अयोध्यासे रोहिलखण्डकी यात्रा कर दी । अयोध्याकी सेना और अङ्गरेजों-सेना रोहिलोंको मद्द देगो, इस आज्ञा पर सुजा-उद्दोलाने हाफिज रहमत्को पत्र लिखा तथा मराठोंके विरुद्ध युद्धचोषणा करनेका संकल्प किया । इस प्रस्ताव पर हाफिज रहमत् सहमत न हुए । सेनापति बेकारने जब देखा, कि हाफिजने जायिता खां और महाराष्ट्रका पक्ष लिया, तब वह दल-पक्षके साथ रामघाटकी ओर अग्रसर हुआ । वहाँ नदीके दूसरे किनारे महाराष्ट्रगण ससैन्य रहते थे । हाफिज रहमत् गठनापूर्वक आज तक महाराष्ट्र या सुजाके दलमें शामिल न हुआ था । महाराष्ट्र-सेनापतिने समय न को कर बलपूर्वक उसे वजोभूत करनेकी चेष्टा की । उन्होंने नदी पार कर हाफिज रहमत्के निगरिके सामने रोहिला-दुर्ग पर आक्रमण कर दिया, किन्तु व अङ्गरेजोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार न हुए ।

इस २१वीं मार्चको हाफिज रहमत् बीई उपाय न देत सुजाके प्रस्तावको मान कर उम्के इलम मिल गया । इससे मराठोंकी पीछे हटना पड़ा । कई बार आक्रमणका भय दिना वर उन लोगोंने सुजा और अङ्गरेजोंको उदरविहिन किया था । आशिर मई मारामें वाशि पाठयों महाराष्ट्र-सरदारीके बीच मनोमालिन्घ हो जानेसे उन्होंने बाध्य हो कर उत्तर भारतवर्षको छोड़ दिया । इससे वजोरा और अङ्गरेजोंके सिनारें चमक उठे । महाराष्ट्र हाफिजका बिलकुल लोप हो गया । इस भोषण विषादसे महाराष्ट्रीय सरदार तितर-बितर हो गये । उन लोगोंने जो लायते अधिक अन्जारीदी-सेना और १० करोड़ तन्ना वसूल किया था उसीको आपसमें बांट कर महाराष्ट्र-सरदार चुन हो बैठे । इसी समयसे महाराष्ट्र-शक्तिका अयसान हुआ ।

इस युद्धमें वजोराका लजामा खाली हो जानेके कारण उसने मराठोंसे अपना प्राप्य मांगा । हाफिज रहमत् देनेको राजी न हुआ, इससे उसके विरुद्ध युद्ध टान देनेका हुकुम हुआ । किन्तु सुजाने युद्ध करके राजकीय खाली करना न चाहा । इस पर हेष्टिसने धाराणमीकी सन्धिके अनुसार उसे ५० लाख रुपये दे कर श्लाहाबाद और बोरौ परीद लिया । इसके बाद रोहिलोंको मार भगाने की कोशिश होनी लगी । वजोराके इनमें अपनी सम्मति दी राही, पर सेना एक भी न भेजी ।

१७७४ ई०में सुजाने मराठोंको दोबारासे भगा कर जायिता खां तथा अन्याय सरदारोंसे मेल कर लिया । किन्तु जीम ही उसका मन बदल गया । उसने रोहिल्ला-कोंका दमन करनेके अभिप्रायसे पुनः रोहिलसकी सहायता प्रार्थना की । सेनापति बेकार उसकी मद्दमें भेजे गये । बातकी बातमें अंगरेजों-सेना अयोध्या-प्रान्तमें जा घमकी । कर्नल चम्पियनके निकट संधिका प्रस्ताव भेज कर भी हाफिज रहमत् प्राप्य रुपये देनेको राजी न हुआ । जब युद्ध अथशयमायी हो उठा । उसी वर्षको २३वीं अप्रिलको ग्राहजहाजपुर जिलेके गौरन-कटरामें युद्ध छिड़ा । रण-क्षेत्रमें हाफिज रहमत्के साथ फरीष दो हजार रोहिलोंने प्राण विसर्जन किये । इसके बाद फयजुल्ला खांने रोहिलोंका नेतृत्व प्रदण किया मही, पर वह युद्धमें असमर्थ हो रामपुर, नराई और पीछे गहवालके पर्वतसानुदेशमें भाग गया और वहीसे सम्पिका प्रस्ताव लिख भेजा । जूनमासमें अंगरेज और वजोरा सेनाको पराजित सोमान्त पर उपस्थित देण दरके मारे उसने सन्धिकी शर्तें मंजूर कर ली ।

अंगरेजी सेना और वजोराके वहांसि चले जाने पर फयजुल्ला पांच हजार रोहिल्ला ले कर रामपुर भाया और राज्यशासन करने लगा । बाकी रोहिला-सेना सरदारके साथ रोहिलखण्डकर परिव्रयाण कर जायिता खांके इलाकेमें रहने लगी । इस युद्धमें रोहिला जातिके ऊपर जो अत्याचार किया गया था वह महामति बाईरकी १७८६ ई० ४थी अप्रिलको घण्टनामें तथा लाई मेकलेके विपरणमें शाक साक लिखा है ।

रोहिता ( सं० क्रो० ) कमानामक घाम । इसकी जड़ सुगन्धित होती है ।



पीपल मूल, चर्द, चीतामूल, सोंठ, शारङ्गीनी, इलायची, तेजपत्र, हरीतकी, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक १ पलके; बांदाज चूर्ण कर ऊपरसे डाल देना होगा। पीछे उसे एक बरतनमें रख कर उसका मुह अच्छी तरह बंद कर दे; और एक मास तक उमी अथस्थायी छोड़ दे; बाद एक मासके उसे आलोड़न कर छान ले। यह अरिष्ट दिनके समय २ या ३ बार करके छाटांकर भर सेवन करना होगा। इसके सेवनसे ह्रीहा, गुल्म, उदरो आदि रोग प्रशमित होते हैं।

( मीपउपरला० श्रीहायशदधि० )

रोहुन ( हि० पु० ) रोहन नामका पेड़।

रोह ( हि० स्त्री० ) १ एक प्रकारकी बड़ी मछली। इसका मांस धति स्वादिष्ट होता है। इसके सिरेको लोग अरपत खादीष्ट बनाते हैं। इसके ऊपर सेहरा होता है। २ एक पृथ्वी जो पूर्वा हिमालयमें विशेषतः दार्जिलिङ्गमें होता है। सोंठ ( हि० स्त्री० ) १ रींद्नेका भाव या क्रिया। २ चक्र गत।

रौदन ( हि० स्त्री० ) रौंद्नेकी क्रिया या भाव, मर्दन।

रौंदना ( हि० क्रि० ) १ पैरोंसे कुचलना, मर्दित करना। २ लातोंसे मारना, मूब पीटना।

रौंमा ( हि० पु० ) १ केवॉव। २ केवॉवके बीज। ३ लोबिया, सोड़ा। ४ लोबियाके बीज।

रौ ( फा० स्त्री० ) १ गति, चाल। २ पानीका बहाव, तोड़। ३ चाल, ढंग। ४ किसी बातको धुन, किसी कामके करनेको भौंक। ५ वेग, भौंक।

रौ ( हि० पु० ) एक प्रकारका पेड़।

रौषम ( सं० लि० ) रुषम-मण्। १ रुषम सम्बन्धी। २ सुवर्णनिर्मित, सोनेका बना हुआ।

रौषमण्येय ( सं० पु० ) १ रुषमणीके गर्मसे उत्पन्न। २ प्रयुग्म।

रौक्षक ( सं० पु० ) रुक्षके शोलमें उत्पन्न एक श्रुषिक नाम।

रौश्य ( सं० स्त्री० ) रुक्षत्व भावः रुक्ष-मण्। रुक्षता, रुक्षा-पन।

रौगम ( सं० पु० ) १ तेल। २ लाख आदिका बना हुआ पका रंग जो चीजों पर चमक आदि लानेके लिये चढ़ाया जाता है।

रौगनी ( सं० वि० ) १ तेलका। २ रौगन केरा हुआ, जिस पर लाख आदिका पका रंग चढ़ाया हो।

रौचनिक ( सं० लि० ) १ गौरोचन या रौली सम्बन्धी, गौरोचन या रौलीसे रंगा हुआ। ( स्त्री० ) २ दांतकी जड़का चमड़ेके समान कठिन मिला।

रौच्य ( सं० पु० ) रुचेरपत्तमिति रुचि पपण्। १ विव्य-इष्ट धारण करनेवाला संन्यासी, रौच्य मनु। रुचि प्रजापतिके पुत्रका नाम रौच्य था। ( मत्स्यपु० ३ अ० )

रौच्य तेरहवें मनु थे। इस मन्वन्तरमें सुपर्वा आदि देवता, इन्द्र दिवस्पति तथा धृतिमान्, अथप, तत्त्वदर्शी, निरस्तुक, निर्मांड, सुतपा, जिप्रक्षय, धिवर्तेन, विचित्र नयकृत, निर्भय, वृद्ध, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि और सुखा ये सब मनुके पुत्र हैं। ( मार्कण्डेयपु० )

२ विव्यकाष्ठदण्ड, येलकी लकड़ीका दंड। ३ मन्वन्तरविशेष। ( मार्कण्डेयपु० १००३६ )

रौजन ( फा० पु० ) १ छिद्र, सुरास। २ गवाक्ष, मोगा। ३ दरार, दरज।

रौजा ( सं० पु० ) १ बाग, बगीचा। २ बड़े पीर, बाद-शाह या सरदार आदिको ऊपरके ऊपर बनी हुई इमारत

रौद्रीय ( सं० पु० ) एक व्याकरण-सम्बन्धीका नाम।

रौतापन ( हि० स्त्री० ) १ राय या रायतकी स्त्री, ठकुरा-इन। २ स्त्रियोंके लिये आदर सूचक सम्बोधन।

रौताई ( हि० स्त्री० ) १ राय या रायत होनेका भाव। २ राय या रायतका पद, ठकुराई, सरदारी।

रौद्र ( सं० स्त्री० ) रुद्रकेशं या रुद्री देवता एवम् रुद्र-मण्। १ शूद्रारादि रमके शन्तर्गत रसविशेष। इसका पर्याय उम्र है। यह रस मोक्षका आश्रय है। इस रसका विषय साहित्यदर्पणमें इस प्रकार लिखा है,—इस रसका स्थायिभाव शीघ्र है, वर्ण लाल है, अघिष्ठाती देवता रुद्र हैं, शत्रु इसका आलम्बन है, यह शत्रुओंकी घेष्टा है तथा उदीपन, मुष्टिप्रहार, पतन, 'विह्वलच्छेद', भयहारण, संग्राम और सम्भ्रमादि द्वारा उदीप होता है। ध्रुविक्षेप, मोष्टनिर्देश, बाहुस्फोटन, तर्जन, मानापदात्मकपन ये सब रसके अनुभाव हैं, भाषेय, मूर्ध्मन्दिनादि उग्रता, वेग, रोमाञ्ज, स्नेह, वेग्यु, मन्त्रा, मोह और श्रमर्षादि इसका अन्विष्टारिभाव है। ( फा० २० ३१२३१ )





रौप्यादिक ( सं० त्रि० ) रुघ्रादिगण सम्बन्धीय ।

रौधिर ( सं० त्रि० ) रुधिर-अणु । रुधिरसम्बन्धीय ।

रौनक ( अ० खी० ) १ वर्ण और शाकृति, रूप । २ प्रकृ-  
हृता, विकाश । ३ शोभा, छटा, चहल-पहल । ४ क्षीति,  
धमक-धमक ।

रौप्य ( सं० खी० ) रूप्यमेव अणु । रूप्य, चांदी । यह एक  
खनिज पदार्थ है तथा अष्टधातुओंमें गिना जाता है । इस  
धातुसे नाना प्रकारके अलङ्कार और औषधादि बनने हैं ।  
स्नायविक दुर्बलताजनित रोगमें आयुर्वेद मतसे स्वर्ण  
या लौहके योगसे रौप्यघटित औषध प्रयोगकी विधि है ।  
डॉक्टर परमारसन उस औषधकी उपकारिताके सम्बन्धमें  
प्रशंसा कर गये हैं ।

षण्मास्य षया प्रतीच्य जगत्में बहुत पहलेसे रौप्य-  
का आदर और व्यवहार चला आता है । वैदिक ब्राह्म-  
णादि युगमें भी ऋषिगण सोने और चांदीका व्यवहार  
जानते थे । पुराणादि और मन्वादि स्मृतियोंमें चांदीका  
उल्लेख देवतोंमें आता है । रघुतिकारोंने ब्राह्मणके पक्षमें  
शूद्रसे रौप्यदान प्रहणकी व्यवस्था की है । इस दानसे ये  
पतित नहीं हो सकते । ये सब रत्न उस समय ब्राह्मण-  
गण देवसेवाके लिये निर्दिष्ट रखते थे ।

विशेष विवरण चांदी ४२२में देता ।

रौप्यगिरि—प्राचीन विदेह राजाके अन्तर्गत एक शैल ।

रौप्यमय ( सं० त्रि० ) रौप्य-स्वरूपे तयम् । रौप्यस्वरूप,  
चांदीका ।

रौप्यमुद्रा ( सं० खी० ) रौप्यधातुसे प्रस्तुत राजचिह्ना-  
ङ्कित रौप्यचक्र या चतुष्कोण राण्ड, चांदीका सिक्का,  
हंपया ( Silver Coinage ) अंगरेजोंके शासनकालमें  
आज कल जिस प्रकार रौप्यमुद्रा या रूपया ( १६ आना  
या ६४ पैसके बराबर ) प्रचलित है, मुसलमानोंके जमाने-  
में भी उस प्रकार सिक्का प्रचलित था, लेकिन उसका  
परिमाण आज कलके समान न था । प्राचीन हिन्दू-  
राजाओंके समय माना प्रकारकी स्वर्ण और रौप्यमुद्रा  
प्रचलित थी । भारतवर्षमें विभिन्न राजाओंके अधिकार-  
में छेनीदे कटी हुई या सांचिमें ढलाई जो सब मुद्रा प्रच-  
लित हुई थी वनमें कुछ न कुछ जादू भयश्चरि मन्त्री रहती  
थी । १८६८ ई०में सज्जन मेजर सेकस्टन ( Surgeon

major Shekton ) एक पत्रिकामें १०२ प्रकारकी स्वर्ण  
मुद्रा, ३२ प्रकार हून या पगोडा, १ प्रकार अर्द्धपगोडा,  
२४ प्रकार सोनेका फानाम ( परिमाण २ ईंस ५ ई प्रेन )  
और २१ प्रकार वैदेशिक स्वर्णमुद्रा तथा रौप्यके मध्य  
४५६ प्रकारके रूपये, २३ प्रकारकी अठली, ६ प्रकारके  
फानाम और १ दमड़ी सिक्केकी खादका पार्यपर निर्देश  
कर गये हैं ।

अबुल फजलकी ऐलानीसे मालूम होता है, कि १५४२  
ई०में हुमायूँसे दिल्लीका सिंहासन छीन कर शेरशाहने  
पहले पहल अपने नाम पर सिक्का चलाया था । उस  
शेरशाही मुद्राकी एक पीठ पर इस्लाम-धर्मका निजाना  
और दूसरी पीठ पर पारसी भाषामें शेरशाहका नाम  
लिखा था । उसके पहले भारतवर्षमें अरवदेशीय चांदी-  
का इरहाम, स्वर्ण, दिनार और तथिका कुलस प्रचलित  
था । पठान और मुगल आधिपत्य विस्तारके साथ साथ  
ये सब मुद्राये भी इस देशमें लाई गईं । प्राचीन हिन्दू  
और जाह-राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा उसी विधवके दिन  
एक तरह लोप-सो हो गई थी ।

विशेष विवरण मुद्रातरंग २४२में देता ।

सम्राट् अकबरने शेरशाही सिक्काका संस्कार कर  
चीकोन रौप्यजाली सिक्का चलाया । उसका यजन  
११० माशा था । उसे 'चारपारी' सिक्का भी कहते थे ।  
यद्यपि, इसके चार कोनेमें महम्मद, गांधर्वकर, मोमर  
और मोस्तमानका नाम तथा दिनारमें अलीका नाम खुदा  
था । उस समय भारतके मित्र मित्र स्थानोंमें निम्न  
निम्न तरहका माशे भरका सिक्का प्रचलित रहनेसे मुद्रा-  
विशेषता यजन ठीक करना बड़ी ही अनुविधा थी ।  
अध्यापक फोल्डूकने अकबरशाहके राज्यकायकी कुछ  
परिष्कार स्वर्ण और रौप्यमुद्राका यजन टै कर उसका  
औसत १५.५ प्रेन स्थिर किया । अर्थात् एक एक सिमुद  
रौप्यमुद्रा १७४४ प्रेनकी अकबरशाह द्वारा चलाई गईं  
थी । जहांगीर, शाहजहाँ और औरङ्गजेबके समय जो सब  
मुद्रा चलाई गईं हैं उनका यजन भी १७.५ प्रेन था । महम्मद  
शाहके जमानेमें सूत, दिन्नी, अहमदाबाद और बंगाल-  
में उतने ही यजनकी मुद्रा ढलाई गईं थी । अन्वय मुगल  
जमानेकी अकबरी, जहांगीरी, शाहजहाँकी, औरंगजेबी,

रीढ़रमके माय हास्य, शुकुन और भवानक हसके माय विरोध है। ( कर्तव्य २० ३१४४६ )

( पु० ) रूढ़व्यापनिति रूढ़-भान् । २ रूढ़मेज, मू, घाम । वर्षाघ-घर्म, प्रकाज, घोष, जातप । इसका मुन-पट्ट, मू, रूढ़े मूच्यां और मूल्यानाजक, दाद और रीढ़वर्षजनक तथा बहुरोगवर्षक ।

उभोनिघमें रीढ़के ७ नाम देणमें आते हैं, जैसे—जट्ट, पिङ्ग, रीढ़, घोरावण, कालसंश्लि, मणिनामा और ह्य ।

प्रतिवर्ष एक एक रीढ़ अधिवति होता है । जिस प्रकार राजा, मन्त्री आदि प्रतिवर्ष एक एक होता है उसी प्रकार इन मान रीढ़मेंसे एक एक हुआ करता है । जिस वर्षमें कौन रीढ़ अधिवति होगा, मणना द्वारा उमका निघर करना होता है ।

"रूढा मणितो रीढो धेराजः कालसंश्लिः ।

मणिनामा ह्यो रीढः एत रीढा मनीनिघा ॥"

( ज्योतिष )

किसी किसी प्रथम 'दत' इस नामकी जगद 'प्राण-दाद' नाम लिखा है ।

इस रीढ़का फल इस प्रकार लिखा है,—जिस वर्ष विद्वान् मीढ़ होता है उस वर्षमें प्रशासन, भजेत रोगी और सब जमेंकी उदवति होगी है । जट्ट रीढ़ होनेसे प्राणादि विरोग और मानवकी मरद मरदका ह्येन । भनि नामक रीढ़ होनेसे उष्ण्य द्वारा पृथवी शुष्क तथा जोषोंकी मालाप्रकारका रोग, रीढ़ नामक रीढ़में गिलोडेग माला रोग और मलादि वीरु, मोर नामक रीढ़में मतिमय उष्ण्य तथा बहुविध रोग । काल नामक रीढ़में उष्ण्यमें मनी जोर वीरु तथा मलादि माला प्रकारका रोग होता है । ( ज्योतिष )

३ हेमय धनु । ४ यम । ५ कर्तिकेय । ६ वृहस्पति-के १० संवत्सरेमें ५३वीं वर्ष । ७ संसुमेद । ८ अर-क्षेभकामेद । इन वर्षमें रीढ़ मरु बहुवृत्तमय है । ९ ज्ञानिविषेण । १० भाद्र कल्प । इसका मणिनामी देवता ह्य है । इस काल मरुका रीढ़ नाम द्रुम है । ११ मयमेद । १२ विङ्गमेद । ( वि० ) ह्य मन् ।

१३ तीद्र, तीद्र । १४ भोवण, घोरनाक । १५ ह्य-मायको । १६ ह्यका उपासक ।

रीढ़क ( सं० ह्ये० ) ह्येय ह्ये ह्ये ( बुधमणिह्ये ह्ये । वा ५११११८ ) इति ह्ये । ह्ये ह्ये ह्ये ह्ये ह्ये ।

रीढ़कर्मन् ( सं० वि० ) रीढ़ कर्म पश्य । १ भोवण कर्म, मयंकर काम बरमेवाला । ( ह्ये० ) २ भोवण कर्म, मयंकर काम ।

रीढ़रंघु ( सं० पु० ) भाकानके पूर्व-दक्षिण मार्गमें शुकके समभागके समान बनिन या कपामो, ह्य या कला मारुवर्षी हिरयोसे मुक और भाकानके तीन भाग तकमें मान करीवामला एक रंघु ।

रीढ़मन ( सं० पु० ) कलिज्योनिघके मनुवार एत मन्-का नाम । इस मन्में मम जेसेसे यह दक्षिण वापिष्ठ होता है । ( सं० मरीच )

रीढ़ता ( सं० स्त्री० ) रीढ़रय मायः मन्-रूप । १ रीढ़रय, मयद्रुवा, उपासमान । २ प्ररुडता, प्रगला ।

रीढ़रुर्ग ( सं० वि० ) रीढ़ रूर्ग पश्य । भोवण माहर्ग और येष्टवाला, मयंकर रूपका ।

रीढ़रयानो— जैममाप्रदायमेद । ( ह्यवि० ११७८ )

रीढ़रुद ( सं० ह्ये० ) रीढ़रुप मरुतविदेवम्य पार । भाद्रा मरुतका पारमेद ।

रीढ़मनन् ( सं० वि० ) रीढ़ ममोदरय । भवानक मनोवुद्ध निहुर गितवाला, मू, ह ।

रीढ़ाम ( सं० वि० ) ह्य और मणिमरुवर्षोय ।

रीढ़ापण ( सं० पु० ) ह्यके रोगमें उदरम पुण ।

रीढ़ाके ( सं० पु० ) २३ मातामंके छंदीकी मंका हो कुल मिला पर ह्य३६८ हो मरुके है ।

रीढ़ाव्य ( सं० पु० ) पुणपुण और उमके मंमके पद राह्य ।

रीढ़ि ( सं० पु० ) ह्यके मोगमें उदरम पुण ।

रीढ़ी ( सं० स्त्री० ) रीढ़-रूप । १ ह्यकी पत्नी, पत्नी । महाभावा व्यामुद्रादेवो ह्य नामक महादेवका रूर्ग किये था, इसीमें ये महादेवी नामसे प्रसिद्ध हुई थीं । ( वरहमिह वि० मरीच )

२ माण्यारमरुकी ह्ये प्रविषीमें पदवी धृति ।

रीढ़ीमाय ( सं० पु० ) ह्यका पत्नी ।

रीष ( सं० पु० ) रीषमण्यरु रीष ( कर्तव्य २० ३१४४६ ) वा ५११११९ ) इति ह्ये । रीषका मणना ।

रौप्यादिक ( सं० लि० ) रुचादिगण सम्बन्धीय ।

रौघिर ( सं० लि० ) रुघिर-अण् । रुघिरसम्बन्धीय ।

रौनकः ( अ० खी० ) १ वर्षं और आकृति, रूप । २ प्रकु-  
लता, विकाश । ३ जीमा, छटा, चहल-पहल । ४ क्षीति,  
चमक-दमक ।

रौप्य ( सं० खी० ) रूप्यमेव अण् । रूप्य, चांदी । यह एक  
खनिज पदार्थ है तथा अष्टधातुओंमें गिना जाता है । इस  
धातुसे नाना प्रकारके बलह्वार और धौपचादि बनते हैं ।  
स्नायविक दुर्बलताजनित रोगमें आयुर्वेद मतसे स्वर्ण  
या लौहके योगसे रौप्यचटित औषध प्रयोगकी विधि है ।  
डाक्टर एमार्सन उस औषधकी उपकारिताके सम्बन्धमें  
प्रशंसा कर गये हैं ।

परा प्राक्य धरा प्रतीच्य जगत्में धरत पहलसे रौप्य-  
का भाद्र और ध्यरहार चला आता है । वैदिक ब्राह्म-  
णादि युगमें भी ऋषिगण सीने और चांदीका व्यवहार  
जानते थे । पुराणादि और मन्वादि स्मृतिमें चांदीका  
उल्लेख देखनेमें आता है । स्मृतिकारोंने ब्राह्मणके पक्षमें  
शूद्रसे रौप्यदान प्रहणकी व्यवस्था दी है । इस दानसे ये  
पतित नहीं हो सकते । ये सब रत्न उस समय ब्राह्मण-  
गण देवसेवाके लिये निर्दिष्ट रखते थे ।

विशेष विवरण चांदी वर्धमें देता ।

रौप्यगिरि—प्राचीन विदेह राजाके अन्तर्गमन एक शैल ।

रौप्यमय ( सं० लि० ) रौप्य-स्वरूपे मयद् । रौप्यस्वरूप,  
चांदीका ।

रौप्यमुद्रा ( सं० खी० ) रौप्यधातुसे प्रस्तुत राजचिह्ना-  
ङ्कित रौप्यचक्र या चतुष्कोण पाण्ड, चांदीका सिक्का,  
हंपया ( Silver Coinage ) अंगरेजोंके शासनकालमें  
क्षेत्र कल जिस प्रकार रौप्यमुद्रा या हंपया ( १६ गाना  
या ६४ पैसके बराबर ) प्रचलित है, मुसलमानोंके जमाने-  
में भी उस प्रकार सिक्का प्रचलित था, लेकिन उसका  
परिमाण आज कालके समान न था । प्राचीन हिन्दू-  
राजाओंके समय गाना प्रकारकी स्वर्ण और रौप्यमुद्रा  
प्रचलित थी । भारतवर्षमें विभिन्न राजाओंके अधिकांश-  
में ऐनोसे कटी हुई या सांचिमें ढलाई जो सब मुद्रा प्रच-  
लित हुई थी उनमें कुछ न कुछ पाद् अथवा मिली रहती  
थी । १८६८ ई०में सर्जन मेजर सेकल्टन ( Surgeon

major Shekton ) एक पत्रिकामें १०२ प्रकारकी स्वर्ण  
मुद्रा, ३२ प्रकार हूप या पगोडा, १ प्रकार अर्द्धपगोडा,  
२४ प्रकार सोनेका फानम ( परिमाण २ ईसे ५ ई प्रेन )  
और २१ प्रकार वैदेशिक स्वर्णमुद्रा तथा रौप्यके मध्य  
४५६ प्रकारके रूपये, २३ प्रकारकी बठजी, ६ प्रकारके  
फानम और १ दमड़ी सिक्के की खादका पार्थपर निर्देश  
कर गये हैं ।

अबुल फजलकी रिपोर्टसे मान्य होता है, कि १५४२  
ई०में हुमायूँसे दिल्लीका सिंहासन छोन कर शेर्शाहने  
पहले पहल अपने नाम पर सिक्का चलाया था । उस  
शेर्शाहकी मुद्राकी एक पीठ पर इस्लाम-धर्मका निशाना  
और दूसरी पीठ पर पारसी भाषामें शेर्शाहका नाम  
लिखा था । उसके पहले भारतवर्षमें भरवदेशीय चांदी-  
का इरहाम, स्वर्ण, दिनार और तबिका कुलस प्रचलित  
था । पठान और मुगल आधिपत्य विस्तारके साथ साथ  
ये सब मुद्राये भी इस देशमें लाई गईं । प्राचीन हिन्दू  
और शक-राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा उसी विधुवके दिन  
एक तरह लोप-सो हो गई थी ।

विशेष विवरण मुद्रावर्ध वर्धमें देता ।

सम्राट् अकबरसे शेर्शाहकी सिक्का संस्कार कर  
घोकोन रौप्यजलाती सिक्का चलाया । उसका घजन  
११० माशा था । उसे 'गारयारी' सिक्का भी कहते थे ।  
पर्यंकि, इसके चार कोनेमें महमद, आयुषकर, भोगर  
और मोसमानका नाम तथा दिनारमें कनीका नाम मुद्रा  
था । उस समय भारतके भिन्न भिन्न स्थानमें निम्न  
निम्न तरहका मासे भरका सिक्का प्रचलित रहनेसे मुद्रा-  
विशेषता घजन ठीक करना बड़ो ही अनुविधा थी ।  
बन्ध्यापक कोलमूरुने अकबरशाहके राज्यकाउकी कुछ  
परिष्कार स्वर्ण और रौप्यमुद्राका घजन ले कर उसका  
मासत १५-५ प्रेन स्थिर किया । यथांय एक एक हिन्दू  
रौप्यमुद्रा १०४४ प्रेनकी अकबरशाह द्वारा चलाई गई  
थी । जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेबके समय जो सब  
मुद्रा चलाई गईं वे उसका घजन भी १०-५ प्रेन था । महम्मद  
शाहके जमानेमें सूत, दिल्ली, महमदाबाद और बंगाल-  
में उतने ही घजनकी मुद्रा ढाली गई थी । अनवर मुगल  
जमानेकी अकबरसे, जहांगीर, शाहजहाँ, आदिलशाही,

रीडराके मलय हास्य, अद्भुत और मवातक रूपके साथ विशेष है। ( अर्धवत् २३२४२ )

( पु० ) अद्भुतवाचिनि रद्-भाष्य । २ अद्भुत, पूव, घण । वर्षीय-घर्म, प्रकाश, योग, भावण । इमका गुण-वद्, वर, श्वेद मूर्च्छा और मृत्तानामाक, दाद और वैषयगतमक तथा मनु रोगवर्कः ।

वर्णनियमं रीडके ७ नाम देशांमें माते है, जैसे-उत्तर, विह्वल, रीड, घोराच, कालरंजिन, मन्निनामा और ह्य ।

प्रतिपद्य एक एक रीड अधिपति होता है। जिस प्रकार राजा, मन्त्री आदि प्रतिपद्य एक एक होता है उसी प्रकार इन मात रीडमेंसे एक एक हुआ करता है। जिस वर्षमें कीन रीड अधिपति होगा, मजना द्वारा उसका निघर करना होता है।

"उत्तरा विह्वले रीडे घोराचः कालरंजिनः।

मन्निनामा ह्यो रीडः एव रीडाः मन्निनामा ॥"

( ज्योतिष )

किमी किमी प्रथम 'दत्त' इस नामकी जगह 'माप-दाद' नाम लिखा है।

इस रीडका फल इस प्रकार लिखा है-जिस वर्ष विह्वल रीड होता है उस वर्षमें प्रजापति, सौके रोगों और मक जंजीरोंकी उपपत्ति होती है। उत्तर रीड होनेमें मालादि विषरोग और मातपत्री तरह तरहका ज्वर, कर्ण मातक रीड होनेमें उष्ण तथा पृथ्वी मृत्का तथा जेठोंकी माताप्रकारका रोग, रीड नामक रीडमें विषोद्वेग माता रोग और मलादि चोड़ा, और नामक रीडमें कतिमय उष्ण तथा बहुविध रोग, काल नामक रीडमें उष्णवर्षे मनी ज्ञेय चोड़ित तथा मलादि नामा प्रकारका रोग होता है। ( ज्योतिष )

- ३ देवग्न चतु । ४ घण । ५ कर्मिषेय । ६ पृथ्वरि-के १० रीडराकेमेंसे ५४वां वर्ष । ७ चेतुसेद । ८ काल-देवसेदेद । इस वर्षमें रीड मनु बहुवपयतया है। ९ जर्मिषेय । १० आदा मलय । इसका अधिपती देवका मद् है। इस कारण आदाका रीड मलय हुआ है। ११ मातसेद । १२ विह्वलेद । ( ति० ) वद् मद् ।

१३ तीव्र, तेत । १४ मीचन, पाहनाक । १५ वद्-मभयवो । १६ वद्वा उभातक ।

रीडक ( सं० ज्यो० ) वद्के वद् रीड ( कुमकादिमें वद् ) का आभास है ) रवि मनु । वद् द्वारा किया हुआ ।

रीडकर्मण ( सं० ति० ) रीड' वंमं पश्य । १ मीचन कर्म, मर्षकर काम करेवाला । ( ज्यो० ) २ मीचन कर्म, मर्षकर काम ।

रीडचतु ( सं० पु० ) आकाशके पूर्वा-दक्षिण मार्गमें वृद्धके आत्मानके मानन जगिन या कपामो, मनु या कथा माह्वयणं किरांसे मुक्त और आकाशके मोम जगन तर्हमें ममन करनेवाला एक चतु ।

रीडमल ( सं० पु० ) कालिन्जरोविषके अनुसार एक मलका नाम । इस मलमें जगन जेठमें यह रवित पाविष्ठ होता है। ( कर्मवरीय )

रीडता ( सं० स्त्री० ) रीडम्य भावा तल-टापू । १ रीडम्य, मधुकरता, उदायतादन । २ प्रकटका, प्रकरता ।

रीडवर्षण ( सं० ति० ) रीड' वर्धमं पश्ये । मीचन माहति और वेधावाला, मर्षकर करत ।

रीडवर्षामो- जैनमहाप्रथमसेद । ( रवितम० ११२८ )

रीडवाद ( सं० ज्यो० ) रीडम्य मक्षरविशेषक वाद । आदा मक्षरका वादोद ।

रीडमल ( सं० ति० ) रीड' मनोवरप । मवातक मनोमुक्त मिष्टु क विषावाला, म्दूर ।

रीडान ( सं० ति० ) वद् और कर्मिषेय-योग ।

रीडावण ( सं० पु० ) वद्के मीचमें उष्णन पुण्य ।

रीडाक ( सं० पु० ) २३ मातामोके छंदोंकी संज्ञा जो पुन मिला कर ४३३६० ही मार्ये हैं ।

रीडाव ( सं० पु० ) पुण्यपुत्र और उसके धंनके एक शतक ।

रीड ( सं० पु० ) वद्के मीचमें उष्णन पुण्य ।

रीडी ( सं० स्त्री० ) रीड-रीय । १ वद्की वर्षा, मारपी । महात्म्या आमुदवादिनामे वद् नामक महादेवका रीडर विद्या था, इसीसे ये मारपीकी नामसे प्रसिद्ध हुई थी। ( अर्धवत् २३२४२ )

२ मातवासरको ही धुनिमेंसे वद्की धुनि ।

रीडोमल ( सं० पु० ) वद्का घाँ ।

रीय ( सं० पु० ) रीडवर्षण' रीय ( किरादिमेंसेद ) का आभास है ) रवि म्, मा, वेधका मलय ।

रौप्यादिक ( सं० लि० ) रघ्यादिगण सम्बन्धीय ।

रौघिर ( सं० लि० ) रघिर-अण् । रघिरसम्बन्धीय ।

रौनक ( अ० खी० ) १ वर्ण और धातुति, रूप । २ प्रकु-  
लता, विकाश । ३ प्रोभा, छटा, चहल-पहल । ४ क्षीति,  
चमक-द्रमक ।

रौप्य ( सं० स्त्री० ) रूप्यमेव अण् । रूप्य, चांदी । यह एक  
खनिज पदार्थ है तथा लघुधातुओंमें गिना जाता है । इस  
धातुसे नाना प्रकारके अलङ्कार और औषधादि बनते हैं ।  
स्नायविक दुर्बलताजनित रोगमें आयुर्वेद मतसे स्वर्ण  
या लौहके योगसे रौप्यचटित औषध प्रयोगकी विधि है ।  
डॉक्टर एमार्सन उस औषधकी उपकारिताके सम्बन्धमें  
प्रशंसा कर गये हैं ।

षण् प्राच्य षण् प्रतीच्य जगन्में ध्रुत पहलेसे रौप्य-  
का आदर और व्यवहार चला आता है । वैदिक ब्राह्म-  
णादि युगमें भी ऋषिगण सोने और चांदीका व्यवहार  
जानते थे । पुराणादि और मन्वादि स्मृतियोंमें चांदीका  
उल्लेख देखनेमें आता है । स्मृतिकारोंने ब्राह्मणके पक्षमें  
शूद्रसे रौप्यदान प्रहणकी व्यवस्था की है । इस दानमे ये  
पतित नहीं हो सकते । ये सब तब उस समय ब्राह्मण-  
गण देवसेवाके लिये निर्दिष्ट रखते थे ।

विशेष विवरण चांदी अधरमें देता ।

रौप्यगिरि—प्राचीन विदेह राजाके अन्तर्गत एक शैल ।

रौप्यतप ( सं० लि० ) रौप्य-स्वरूपे तपद् । रौप्यस्वकण,  
चांदीका ।

रौप्यमुद्रा ( सं० स्त्री० ) रौप्यधातुसे प्रस्तुत राजचिह्न-  
हित रौप्यचक्र वा चतुष्कोण संष्ट, चांदीका सिक्का,  
रूपया ( Silver Coinage ) अंगरेजोंके शासनकालमें  
आज कल जिस प्रकार रौप्यमुद्रा या रूपया ( १६ आना  
या ६४ पैसेके बराबर ) प्रचलित है, मुसलमानोंके जमाने-  
में भी उस प्रकार सिक्का प्रचलित था, लेकिन उसका  
परिमाण आज कालके समान न था । प्राचीन हिन्दू-  
राजाओंके समय नाना प्रकारकी स्वर्ण और रौप्यमुद्रा  
प्रचलित थी । भारतवर्षमें विभिन्न राजाओंके अधिकांश-  
में ऐनोसे कटी हुई या सार्चिमें टलाई जो सब मुद्रा प्रच-  
लित हुई थी उनमें कुछ न कुछ पाई भवश्र मिथी रहती  
थी । १८६८ ई०में सर्जन मेजर सेकण्टन ( Surgeon

major Suckton ) एक पत्रिकामें १०२ प्रकारकी स्वर्ण  
मुद्र, ३२ प्रकार हण वा पगोडा, १ प्रकार अर्ध पगोडा,  
२४ प्रकार सोनेका फानम ( परिमाण २ ईंच ५ ईंच प्रेन )  
और २१ प्रकार वैदेशिक स्वर्णमुद्रा तथा रौप्यके मध्य  
४५६ प्रकारके रूपये, २३ प्रकारकी मठजो, ६ प्रकारके  
फानम और १ दमट्टी सिक्को को खादका पार्थिव निर्देन  
कर गये हैं ।

अबुल फाजलकी लेखनसे मालूम होता है, कि १५४२  
ई०में हुमायूँसे दिल्लीका सिंहासन छीन कर शेरशाहने  
पहले पहल अपने नाम पर सिक्का चलाया था । उस  
शेरशाही मुद्राकी एक पीठ पर इस्लाम-धर्मका निदाना  
और दूसरी पीठ पर पारसी भाषामें शेरशाहका नाम  
लिखा था । उसके पहले भारतवर्षमें भरवदेशीय चांदी-  
का इस्लाम, स्वर्ण, दिनार और तथिका कुलस प्रचलित  
था । पठान और मुगल आधिपत्य विस्तारके साथ साथ  
ये सब मुद्रायें भी इस देशमें लार् गईं । प्राचीन हिन्दू  
और शक-राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा उसी विप्लवके दिन  
एक तरह लोप-सो हो गई थी ।

विशेष विवरण मुद्रातर अर्धमें देता ।

सम्राट् अकबरसे शेरशाही सिक्का संस्कार कर  
चौकोन रौप्यजाली सिक्का चलाया । उसका यजन  
११० माशा था । उसे 'चारपारी' सिक्का भी कहते थे ।  
योंकि, इसके चार कोनेमें महम्मद, आवूँकफर, मोमर  
और मोसमानका नाम तथा दिनारमें अलीका नाम मुद्रा  
था । उस समय भारतके सिंध सिंध स्थानमें मिन्न  
मिन्न तरहका मासो भरका सिक्का प्रचलित रहनेसे मुद्रा-  
विशेषता यजन ठीक करना बड़ी ही असुविधा थी ।  
अध्यापक कोलब्रूजने अकबरशाहके राज्यकालकी कुछ  
परिष्कार स्वर्ण और रौप्यमुद्राका यजन ले कर उम्मा  
भोसत १५-५ प्रेन स्थिर किया । अर्थात् एक एक मिगुद  
रौप्यमुद्रा १७४४ प्रेनकी अकबरशाह द्वारा चलाई गई  
थी । जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेबके समय जो सब  
मुद्रा चलाई गईं वे उसका यजन जो १७५ प्रेन था । महम्मद  
शाहके जमानेमें सूए, रिन्को, अहनदापाद और बन्नाल-  
में टतने हो यजनकी मुद्रा लाई गई थी । अन्तय मुगल  
जमानेकी अकबरसे, जहांगीरसे, शाहजहाँ, आलमगिरी,



तथा तावेका ढव्वा एवं त्रिवांकुर्त्तमं फानम और चक्रम्  
सिका चलता था ।

रौप्यायण ( सं० पु० ) रुप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुण्य ।

रौप्यायणि ( सं० पु० ) रुप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुण्य ।

रौम ( सं० क्ली० ) कमायां लघणाकरे भयं, कमा अण् ।  
शाम्भरिलघण, सांभर नामक ।

रौमक ( सं० क्ली० ) शाम्भरिलघण, सांभर नामक । कम  
नदीसे यह नामक उत्पन्न होता है, इसलिये इसे रौमक  
कहते हैं । ( भावप्र० )

रौमकौय ( सं० त्रि० ) रौमक चतुर्षु अर्थेषु ( कृशावा-  
दिभ्यश्चण् । पा ४।२।८० ) इति छण् । १ रौमदेशका  
रहनेवाला । २ रौमप्रदेश । ३ रौमकदेशके पास ।  
४ रौमकदेशसे निवृत्त ।

रौमण्य ( सं० त्रि० ) रौमण देशका रहनेवाला या रौमन-  
देशमें उत्पन्न । ( पा ४।२।८० )

रौमलघण ( सं० क्ली० ) रौम-लघणमिति । शाम्भरिलघण,  
सांभर नामक ।

रौमशीय ( सं० त्रि० ) रौमज चतुर्षु अर्थेषु ( कृशावादिभ्य-  
श्चण् । पा ४।२।८० ) इति छण् । १ रौमश देशवासी ।  
२ रौमशमें उत्पन्न । ३ रौमशदेशके पास । ४ रौमश-  
देशसे निवृत्त ।

रौमहर्षणक ( सं० त्रि० ) रौमहर्षणसंयुक्त ।

रौमहर्षणि ( सं० पु० ) रौमहर्षण ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न  
पुण्य ।

रौम्यायण ( सं० पु० ) महादेव । ( महाभारत १२।१७ ) बभ्रु-  
यचनका प्रयोग करनेसे अग्निका अनुचर भावदेयता  
समझा जाता है ।

रौव्ये ( सं० पु० ) रुक्मस्तुविशेषस्तस्यायमिति रुक्-राण् ।  
१ नरकविशेष, रौव्ये नरक । इस नरकका नाम शचीस  
नरकमेंसे पांचवां कहा गया है । यह दो हजार योजन  
विस्तृत है । यह नरक बड़ा भयानक है । जो कूट-  
साक्षी तथा मिथ्यावादी हैं वही इस नरकका भोग करते  
हैं । ( मार्कण्डेय विनायुषनामाश्रय ) नरक शब्द देखो ।

( त्रि० ) २ चञ्चल, बात पर दृढ़ न रहनेवाला ।  
३ पूर्ण, बेदमान, कपटी । ४ घोर, भयंकर । ५ रुक् मृग-  
सम्बन्धी । ( मनु २।४१ ) ( क्ली० ) ६ सामभेद ।

( ऐत०ब्रा० १।१७ )

रौव्ये—शैवधर्मप्रवर्तक एक आचार्य । अभिनवगुप्तने इनका  
नामोल्लेख किया है ।

रौव्यक ( सं० क्ली० ) रुक्पा हृतं ( कृशावादिभ्यो इण् । पा  
४।२।१२८ ) इति रुक्-पुम् । रुक् द्वारा हृत ।

रौरुकिन् ( सं० पु० ) रुक् प्रवर्तित सम्प्रदायभेद ।

रौरु ( हि० पु० ) १ हता, जोर । २ ऊपम, हलचल ।

रौरान ( फा० वि० ) रौशन देवो ।

रौरानदान ( फा० पु० ) रौशनदान देवो ।

रौरानो ( फा० स्त्री० ) रौशनो देवो ।

रौराम्भेन् ( सं० पु० ) आतर्दुर्गणके प्रणेता पाचस्मातिके  
भाई और प्रमोदके पुत्र । ये एक अद्वितीय पण्डित थे ।

रौस ( फा० स्त्री० ) १ गति, चाल । २ बागकी पटरी,  
बागकी फवारियोंके बीचका मार्ग । ३ रंग ढंग, तौर  
तरीका ।

रौसलौ ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी चिकनी उपजाऊ  
मिट्टी, ढाकर ।

रौसा ( हि० पु० ) रौसल देवो ।

रौहाल ( हि० स्त्री० ) घोड़ेकी एक चाल । २ घोड़ेकी एक  
जाति ।

रौहिक ( सं० त्रि० ) रुह इव ( भद्रुष्यदिभ्यश्चण् । पा ४।२।१०८ )  
इति इयाधे ठक् । रुहके समान ।

रौहिण ( सं० क्ली० ) रौहिणमेव स्याथे अण् । दिनमानका  
नवममुहूर्त । एकोद्दिष्टभाद्रमें पूर्वाह्नकी एकोद्दिष्टभाद्र  
आत्म करके रौहिणकालका सङ्गन नहीं करना चाहिये ।  
अर्थात् उतने समयके भीतर भाद्र समाप्त करना होगा ।  
यदि सङ्गयमुहूर्तके बाद रौहिण तक तिथिनाम हो तथा  
दूसरे दिन तोन मुहूर्त तक यह तिथि रहे, तो पूर्ण दिन  
भाद्र होगा । किन्तु दोनों दिन यदि सङ्गयमुहूर्तसं लाम  
हो, तो दूसरे दिन भाद्र होगा । ( भाद्रतत्त्व )

( पु० ) रुह-इनन्-स्यार्थे अण् । २ चन्दन वृक्ष ।

रौहिणक ( सं० क्ली० ) सामभेद । ( भाष्यः १।६।२१ )

रौहिणायन ( सं० पु० ) रौहिणश्च गोत्रापर्यं ( रौहिण्य भन्वा-  
दिभ्यश्चण् । पा ४।२।११० ) इति अट्टराशे फम् । रौहिण-  
का गोत्रापर्य ।

रौहिणि ( सं० पु० ) १ सामभेद । २ रौहिणका गोत्रापर्य ।

रौहिण्ये ( सं० पु० ) रौहिण्या अट्टराशिमिति रौहिणो





तथा तांबेका द्युशा एवं तियांकुदमें फानम और चमम्  
सिका चलता था ।

रीप्यायण ( सं० पु० ) दृष्यके मोतमें उत्पन्न पुष्टय ।

रीप्यायणि ( सं० पु० ) दृष्यके मोतमें उत्पन्न पुष्टय ।

रीम ( सं० स्त्री० ) कमावां लयणाकरे भयं, कमा भण् ।  
शाम्भरिलयण, सांभर नामक ।

रीमक ( सं० स्त्री० ) शाम्भरिलयण, सांभर नामक । कम  
नदीसे यह नामक उत्पन्न होता है, इसलिधे इसे रीमक  
कहते हैं । ( भावम० )

रीमकीय ( सं० त्रि० ) रोमक चतुर्षु अर्थेषु ( कृशाखा-  
दिभ्यश्चष् । पा ४।२।८० ) इति छण् । १ रोमदेशका  
रहनेवाला । २ रोमप्रदेश । ३ रोमकदेशके पास ।  
४ रोमकदेशसे निवृत्त ।

रीमण्य ( सं० त्रि० ) रीमण देशका रहनेवाला या रोमन-  
देशमें उत्पन्न । ( पा ४।२।८० )

रीमलघण ( सं० स्त्री० ) रीम-लघणमिति । शाम्भरिलयण,  
सांभर नामक ।

रीमशीय ( सं० त्रि० ) रोमश चतुर्षु अर्थेषु ( कृशाखादिभ्य-  
श्चष् । पा ४।२।८० ) इति छण् । १ रोमश देशवासी ।  
२ रोमशमें उत्पन्न । ३ रोमशदेशके पास । ४ रोमश-  
देशसे निवृत्त ।

रीमहर्षणक ( सं० त्रि० ) रोमहर्षणसंयुक्त ।

रीमहर्षणि ( सं० पु० ) रोमहर्षण ऋषिके मोतमें उत्पन्न  
पुष्टय ।

रीप्यायण ( सं० पु० ) महाद्वेय । ( महाभारत १३।१७ ) बहु-  
पचनका प्रयोग करनेसे अग्निका अनुचर अर्पदेयता  
सम्भा जाता है ।

रीष्य ( सं० पु० ) यद्वर्जस्तुविशेषस्तस्यायमिति यद-छण् ।  
१ नरकविशेष, रीष्य नरक । इस नरकका नाम इजोस  
नरकीमेसे पांचवां कहा गया है । यह दो हजार योजन  
विस्तृत है । यह नरक बड़ा भयानक है । जो कूट-  
साक्षी तथा मिथ्यायात्री हैं वही इस नरकका भोग करते  
हैं । ( मार्कण्डेय पितृपुत्रनामाध्याय ) नरक शब्द देना ।

( त्रि० ) २ यज्ञल, बात पर दृढ़ न रहनेवाला ।  
३ धूर्त, बेमान, कपटी । ४ घोर, भयंकर । ५ यद मृग  
सावधयो । ( मनु २।४१ ) ( स्त्री० ) ६ सामभेद ।  
( ऐत०मा० ३।१० )

रीष्य—रीष्यधर्मप्रवर्तक एक आचार्य । अग्निपयगुप्तने इनका  
नामोल्लेख किया है ।

रीष्यक ( सं० स्त्री० ) यद्वया हृतं ( कुशाखादिभ्यो ङम् । पा  
४।३।१८ ) इति यद-ङुम् । यद द्वारा हृत ।

रीमकिन् ( सं० पु० ) यदक प्रवर्तित सम्प्रदायभेद ।

रीला ( हिं० पु० ) १ हला, शेर । २ ऊचम, हलचन्द्र ।

रीशन ( फा० वि० ) रोशन देतो ।

रीशनदान ( फा० पु० ) रोशनदान देतो ।

रीशनो ( फा० स्त्री० ) रोशनो देतो ।

रीशमैन् ( सं० पु० ) आतद्वृत्तर्षणके प्रणेता वाचस्पतिके  
भाई और प्रमोदके पुत्र । ये एक अहिनीय पहिदत थे ।

रीस ( फा० स्त्री० ) १ गति, चाल । २ बागकी पट्टी,  
बागकी पवारियोंके बीचका मार्ग । ३ रंग ढंग, तीर  
तरीका ।

रीसन्नी ( हिं० स्त्री० ) एक प्रकारकी चिकनी उपजाऊ  
मिट्टी, डाकर ।

रीसा ( हिं० पु० ) रीषां देतो ।

रीहाल ( हिं० स्त्री० ) घोड़ेको एक चाल । २ घोड़ेको एक  
जाति ।

रीहिक ( सं० त्रि० ) यह इय ( मनु एतदिभ्यश्चष् । पा ४।३।१०८ )  
इति इयाथे ठक् । यहके समान ।

रीहिन ( सं० स्त्री० ) रोहिनमेव स्वार्ये भण् । दिनमानका  
नयममुद्धरं । एकोद्विधभ्रातृमें पूर्वोद्धरं एकोद्विधभ्रातृ  
भ्रातृमा करके रोहिनकालका लक्षण नहीं करना चाहिये ।  
अर्थात् उतने समयके भीतर भ्रातृ समाप्त करना होगा ।  
यदि सङ्घयमुद्धरंके बाद रोहिन तक तिथिलाम हो तथा  
दूसरे दिन सोन मुद्धरं तक यह तिथि रहे, तो पूर्ण दिन  
भ्रातृ होगा । किन्तु दोनों दिन यदि सङ्घयमुद्धरं लाम  
हो, तो दूसरे दिन भ्रातृ होगा । ( भाद्रपच )

( पु० ) यह-इनन्-स्वार्ये भण् । २ चन्दन वृक्ष ।

रीहिनक ( सं० स्त्री० ) सामभेद । ( लाक्षा १।६।३७ )

रीहियायन ( सं० पु० ) रोहिनस्य गोलापत्यं ( रोहिय मन्वा-  
दिभ्यश्चष् । पा ४।३।११० ) इति अयत्तशार्थे ङम् । रोहिन-  
का गोलापत्य ।

रीहियि ( सं० पु० ) १ सामभेद । २ रोहिनका गोलापत्य ।

रीहियेय ( सं० पु० ) रोहियया अयत्तमिति रोहियी



मातृकान्यासमें इस वर्णका ककुद्देगमें न्यास करना होता है । काश्यके आदिमें इस शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहिये, करनेसे विपत्ति होती है ।

लंकाल ( अ० पु० ) एक प्रकारका मोटा बट्टियां कपड़ा । यह प्रायः घुंठा हुआ होता है ।

लंकाल ( हि० पु० ) सिंद, शेर ।

लंकोई ( हि० स्त्री० ) द्रव्यदक देखा ।

लंग ( फा० स्त्री० ) १ जाग देता । ( पु० ) २ लंगड़ागन ।

लंगड़ ( फा० वि० ) लंगड़ा देखा । ( पु० ) २ लंगर देता ।

लंगड़ा ( हि० वि० ) १ जिसका एक पैर बेकाम या टूटा हो । २ जिसका एक पाया टूटा हो । ( पु० ) ३ एक प्रकारका बहुत बट्टिया कलमी आम । यह प्रायः बनारसमें होता है ।

लंगड़ाना ( हि० कि० ) चलनेमें दोनों या चारों पैरोंका ठोक ठोक और धराधर न बैठना बल्कि किसी एक पैरका कुछ रुक या रुक कर पड़ना, लंग करने हुए चलना ।

लंगड़ी ( हि० स्त्री० ) १ एक प्रकारका छन्द । ( वि० ) २ बली, जोरावर । ३ जिस स्त्रीका एक पैर बेकाम या टूटा हो ।

लंगर ( फा० पु० ) १ लोहेका बना हुआ एक प्रकारका बहुत बड़ा फांटा । इस फांटिके बीचमें एक मोटा लंबा छड़ होता है और एक सिरे पर दो, तीन या चार टेढ़ी भुकी हुई नुकीली शंखाएँ और दूसरे सिरे पर एक मजबूत कड़ा लगा हुआ होता है । इस फांटिका व्यवहार बड़ी बड़ों नावों या जहाजोंके जलमें किसी एक ही स्थान पर ठहराये रखनेके लिये होता है । इसके ऊपर कड़ेमें मोटा रस्सा या जंजीर आदि बांध कर देने बीच पानीमें छोड़ देते हैं । जब यह तन्ममें पहुँच जाता है तब इसके टेढ़े अंकुड़ जमीनके पंकड़ परधरोंमें मड़ जाते हैं जिससे नाव या जहाज उसी जगह रुक जाता है और जब तक वह फिर खींच कर ऊपर नहीं उठा लिया जाता तब तक नाव या जहाज भागे नहीं बढ़ सकता । २ रस्सी या तार आदिसे धंधो और लटकती हुई कोई गरीबी । इसका व्यवहार कई प्रकारकी बन्नीमें और विशेषतः बड़ी घड़ियों आदिमें होता है । येना

लंगर प्रायः निम्नतर एक ओरसे दूसरी ओर बाँटा जाता

रहता है । कुछ कलोंमें यह ऐसे पुरजीका भार टीक रखनेमें व्यवहार किया जाता है जो एक ओर बहुत भारी होते हैं और प्रायः इधरउधर हटते बढ़ते रहते हैं । बड़ी घड़ियोंमें जो लंगर होता है वह चांगो दो हुई कमानीके जोरसे एक सीधी रेखामें इधरसे उधर चलता रहता है और घड़ीकी गति ठोक रहता है । ३ जहाजोंका मोटा बड़ा रस्सा । ४ लकड़ीका यह कुंदा जो किसी दरवाई गायके गलेमें रस्सी द्वारा बांध दिया जाता है । इसके बांधनेसे गाय इधर उधर भाग नहीं सकती । उसे डेंडुर भी कहते हैं । ५ चाँदीका बना हुआ तोड़ा जो पैरमें पहना जाता है । इसको बनायट जंजीरकी-सी होती है । ६ लोहेकी मोटी और भारी जंजीर । ७ पदलवानोंका लंगोट । ८ अंधकोश । ९ किसी पदार्थके नीचेका वह भाग जो मोटा और भारी हो । १० कमरके भाग । ११ यह स्थान जहाँ बहुतसे लोगोंका भोजन एक साथ पकता हो । १२ कपड़ेके वे टाँके जो दूर दूर पर इसलिये डाले जाते हैं, जिसमें मोड़ा हुआ कपड़ा बांधया एक साथ सोय जानेवाले दो कपड़े, अपने स्थानसे हट न जाय । इस प्रकारके टाँके पत्ती सिलाई करनेसे पहले डाले जाते हैं इसीसे इसे कच्ची सिलाई भी कहते हैं । १३ यह पका हुआ भोजन जो प्रायः हर रोज किसी निश्चित समय पर दोनों ओर दूरदूरी आदिको बाँटा जाता है । १४ यह स्थान जहाँ दोनों ओर दूरदूरी आदिको बाँटनेके लिये भोजन पकाया जाता है । १५ यह उमड़ी हुई रेखा जो अंधकोशके नीचेके भागमें शुरू हो कर गुदा तक जाती है, सोपन । १६ यह स्थान या व्यक्ति आदि जिसके द्वारा किसीकी किसी प्रकारका आश्रय या सहारा मिलता हो । ( वि० ) १७ जिसमें अधिक शोक हो, भारी । १८ नटघट, दीठ । १९ लंगड़ा देना ।

लंगरखाना ( फा० पु० ) यह स्थान जहाँसे दूरदूरीकी बना बनाया भोजन बाँटा जाना हो ।

लंगरगाद ( फा० पु० ) किनारे परका यह स्थान जहाँ लंगर डाल कर जहाज ठहराये जाते हैं ।

लंगूर ( हि० पु० ) १ बंदर । २ पूँछ, हुमा । ३ एक विशेष प्रकारका बंदर । यह मध्यारण्य बंजरमें बड़ा होता है और इसको पूँछ बहुत लम्बी होती है । इसके मारे



अक्षां १३° ४२' ३०" ३० तथा देशां ७५° ३८' ५०" मद्र-  
नदीके किनारे तरिकेरी रेलवे स्टेशनसे १२ मीलकी दूरी  
पर अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। राजा  
वज्रमुक्त रायकी सुप्राचीन राजधानी रत्नपुरी इसके  
पास ही अवस्थित है। वैद्येहली नगरमें विचार-सदर  
प्रतिष्ठित।

लकवा ( अ० पु० ) एक वातरोग। इसमें प्रायः चेहरा  
टेढ़ा हो जाता है। यह चेहरेके सिवा और और अंगोंमें  
भी होता है और जिस अंगमें होता है उसे बिलकुल  
वेकाम कर देता है। इस रोगमें शरीरके घानतन्तुओंमें एक  
प्रकारका विकार आ जाता है। जिससे कोई कोई अंग  
हिलने डोलने या अपना ठोक ठोक काम करनेके योग्य  
नहीं रह जाता। इसे फालिज भी कहते हैं।

लकसी ( हिं० खी० ) फल आदि तोड़नेकी लग्नी।  
इसके ऊपरी सिरे पर लोहेका चन्द्राकार फल या एक  
तिरछी छोटी लकड़ी बंधी रहती है। इसी लग्नीकी  
दायमें ले कर ऊपरी सिरेमें बंधी हुई छोटी लकड़ी या  
फलकी सहायतासे ऊंचे वृक्षोंके फल आदि तोड़ते हैं।  
लकाटी ( हिं० खी० ) एक प्रकारकी बिल्ली जिसके  
नरोंके अङ्कुरीशोमेंसे एक प्रकारका मुरक निकलता है।  
लकार ( सं० पु० ) लक्ष्मणके कार। लक्ष्मण वरुण,  
लकार यही अक्षर।

"अनुज्ञा विगतज्ञो कुलजा कृत्वा सुशीलसम्पत्ता।

पद्मनकारा भार्या पुरयः पुण्योदयालम्बने ॥" (उद्भट)

लकि—१ पञ्जाबप्रदेशके बन्तू जिलेकी एक तहसील।  
भूपरिमाण १२६६ वर्गमील है। यह अक्षां ३२° १६'  
से ३२° ५१' ३०" तथा देशां ७०° २५' १५" से ७०° १८'  
४५" पू०के मध्य अवस्थित है। कुराम और तोची-  
विषीत उपत्यकाका दक्षिण प्रांत ले कर यह तहसील  
संगठित है। यहां मारयात नामक एक जातिकी बास है।  
उन लोगोंकी प्रधानताके कारण पार्श्वपक्षी स्थानवासी  
इसे मार्यत विभाग कहते हैं। किन्तु लकि नगरमें राज-  
कीय सदर प्रतिष्ठित रहनेसे सरकारों नियन्त्रणमें इसका  
लकि नाम रखा है।

यह स्थान बलुई है, इस कारण फसल अच्छी नहीं  
लगती। गम्भीला आदि पहाड़ी नदियोंके सिवा यहाँ

जलका कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं है। अधिकांश नदियोंमें  
घर्षाके सिवा और किसी समय जल नहीं रहता। जहाँ  
बालू कम है वहाँ अधिवासी एकत्र हो कर रहते हैं। यहाँ  
एक एक गाँव कहलाता है। घर्षाका पानी जमा रखनेके  
लिपे प्राग्वासी बड़े बड़े गड्ढे खोद रगते हैं। पीछे  
घर्षाके बाद उसी पानीको खेत आदि पटानेके काममें  
लाते हैं। कई प्रांमोंके बीच एक तालाब रहता है, किन्तु  
बर्षा मिट्टी रहनेके कारण यह स्थायी नहीं होता। उस  
समय अधिवासी एकमात्र गम्भीला नदीसे शय्या १०से  
१५ मील तक दूरपक्षी पर्वत मध्यस्थित जलसात या  
पुष्करिणीसे जल लाते हैं। गर्दों या थैलकी पीठ पर  
जलका मशक लाद खियां हो जल लाती हैं। कमी कमी  
वे स्वयं ही डो कर लाती हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर और मार्यत या लकि तहसील-  
का विचारसदर। यह अक्षां २३° ३८' ३०" तथा देशां ७०°  
५६' ५०"के मध्य अवस्थित है। इस नगरके दूसरे किनारे  
पूर्वतन ईशानपुर नामक नगर था। १८४४ ई०में सिख-  
गवर्मेण्टके राजल-संभारक फते जहाँ विधानाने यहाँ दुर्ग  
स्थापन कर एक नगर बसाया। गम्भीला नदीकी प्रवल  
बाढ़से नगर डूब जाने तथा कुराम गम्भीला-सङ्गमस्थ  
पाड़ीसे उत्पन्न मच्छड़ोंके उपद्रवसे राजकर्मचारी उस  
राजधानीको उठा कर दूसरे किनारे बलुई-भूमि पर ले  
गये। यहाँ पहले मीनारेल, सोयेद्यापटेल और कीपद-  
खेल नामक तीन प्रांम थे। ईशानपुरके अधिवासी भी  
पीछे यहाँ आ कर बस गये। इस प्रकार कई प्रांमोंके  
अधिवासियोंके एकत्र हो जानेसे यह एक समृद्धिनाली  
नगर बन गया। १८७४ ई०में यहाँ म्युनिसिपलिटो  
स्थापित हुई है। तमोसे नगर बहुत खाफ सुधरा है।  
यहाँएक अस्पताल और एक घनाफुलर स्कूल है।

लकि—सिन्धुप्रदेशके करांची जिलेका मगत गिरिधेनी।

हिं० देवा।

लकि—बर्षा-मे सिन्धुसोके जिझारपुर जिलेका एक नगर।  
हिं० देवा।

लकीर ( हिं० खी० ) १ कलम आदिके द्वारा शय्या और  
किसी प्रकार कनी हुई यह सोधी भावति जो बहुत दूर  
तक एक ही सोपमें चलती गई हो, रखा। २ घासी।



जाना जाय या जिसके द्वारा पहचाना जाय उसे लक्षण कहते हैं। यह लक्षण दो प्रकारका है, इनरमेदानुभावक और व्यवहारप्रयोगक। (न्यायमत)

रूप, तन्त्रि, और समासका नियामक अधिधान तथा अनभिर्ज्ञाका अभिधानसूत्रक ही लक्षण पदवाच्य है। लक्ष्मं लक्षार्थके अभिनिवेशको लक्षण कहते हैं। समान और असमान जातीय व्यवच्छेद ही लक्षणाद्य है।

३ दर्शन। ४ सोमिति, लक्ष्मण। ५ सारस पक्षी। ६ सामुद्रिकके अनुसार शरीरके अंगोंमें होनेवाले कुछ विशेष चिह्न जो शुभ या अशुभ माने जाते हैं। ७ शरीरमें होनेवाला एक विशेष प्रकारका काला दाम जो बालकके गर्भमें रहनेके समय पूर्व या चन्द्रग्रहण लगनेके कारण पड़ जाता है। ८ शरीरमें दिखाई पड़नेवाले वे चिह्न आदि जो किसी रोगके सूचक हों। अंगरेजीमें इसे Symptoms कहते हैं।

लक्षणक (सं० पुं०) लक्षणयुक्त, जिसमें कोई लक्षण हो। लक्षणज्ञ (सं० त्रि०) लक्षण जानातीति ज्ञा-क। लक्षणवेत्ता, जो लक्षणसे ज्ञानकार हो।

लक्षणत्व (सं० स्त्री०) लक्षणस्य भावः त्व। लक्षणका भाव या धर्म।

लक्षणलक्षणा (सं० स्त्री०) लक्षणाभेद। अक्षणा देती। लक्षणवत् (सं० त्रि०) लक्षण विद्यमानेऽस्य मनुष्य मस्य वा। लक्षणविशिष्ट, लक्षणयुक्त।

लक्षणसन्निपात (सं० पुं०) १ अद्वैपात। २ द्वय विशेषमें कोई चिह्न या निदान अंकित करना।

लक्षणा (सं० स्त्री०) लक्ष (लक्ष्मन् च। उष्य १।०) इति नस्तस्याङ्गामश्च, लक्षणमस्त्वर्थेति भच्, ततश्चाय्। १ हंस्ती। २ सारसो। ३ अस्त्राविशेष। ४ ग्रन्थसम्बन्ध। तात्पर्यकी अनुपपत्तिके कारण (तात्पर्यका बोध नहीं होता, इस कारण) ग्रन्थार्थका जो सम्बन्ध है, उसे लक्षणा कहते हैं।

केवल शब्दार्थ ले कर अर्थबोध या शब्दबोध करनेमें अनेक जगह तात्पर्यकी उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् तात्पर्यका बोध नहीं होता, इस कारण लक्षणा स्वीकार करनी होती है। लक्षणा स्वीकार करनेसे तात्पर्य मात्तम करनेमें कोई रुद्ध नहीं होता। सूदजमें इस लक्षणासाक्षिक बल मात्तम हो जाता है।

पहले लिखा जा चुका है, कि तात्पर्यका अर्थ प्रदान करनेके लिये अन्वयसम्बन्धका नाम लक्षणा है। यही इसका उदाहरण देनेमें स्पष्ट हो जायगा। 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' गङ्गामें घोष रहता है, यह एक वाक्य है, गङ्गा कहनेसे प्रवादयुक्त जलरूप समझा जाता है। प्रवादयुक्त जलमें घोष नहीं रह सकता। चादमी जमीन पर रहता है जलमें रहना असम्भव है। अतएव यहाँ पर शब्दार्थको कोई प्रतीति नहीं होती अर्थात् गङ्गामें वास करता है, इससे कोई अर्थहीन समझा गया। अतः इन सब स्थानोंमें अर्थबोधके लिये लक्षणादिक स्वीकार करनी होती है। लक्षणा स्वीकार करनेसे तात्पर्य आसानीसे मात्तम हो जाता है। 'गङ्गामें घोष रहता है' ऐसा वाक्य कहा गया है। जलमय गङ्गामें रहना जब असम्भव है तब क्या गङ्गाके समीप है? इसका पता लगानेसे पहले तो देखा जाता है। अतएव गङ्गा शब्दका अर्थ लक्षणा द्वारा गङ्गातोर कहनेमें और कोई गोलबाल न रह जाता तथा इससे तात्पर्यकी भी उत्पत्ति होगी है। इनलिये यहाँ पर तात्पर्यकी उत्पत्ति होनेके कारण शब्दबोधमें भी कोई व्याघात न पहुँचा। अतः गङ्गाके किनारे अन्वयसम्बन्धका लक्षणा हुई। इस प्रकार जहाँ जहाँ तात्पर्यका अर्थ ले कर अर्थ मात्तम किया जायगा, यहाँ लक्षणा होगी।

शब्दशक्तिप्रकाशिकामें लिखा है, कि—  
"अत्रत्या पांडित्यस्वार्थानि निरूपयन्तिशक्तिः।  
रक्षणा विविधात्यागिज्ञेयस्यैवत्यर्थेण॥" (शब्दशक्ति)  
शब्दशक्तिप्रकाशिकाके मतसे यह लक्षणा जटितस्वार्थानि, अज्ञतस्वार्थानि, निरुद्धा और आधुनिकादिके भेदमें अनेक प्रकारकी है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि—  
"अन्वयार्थको तदुक्तो यत्प्रत्योऽर्थः प्रतीतेः।  
स्तेः प्रतीतेनाशानी अन्वयव्यतिरिक्ता॥"

(साहित्यदर्पण २।१३)  
जहाँ मुख्य अर्थका बोध न हो वर तद्व्युक्त अर्थान् मुख्यार्थयुक्त हो कड़ि (प्रतिबन्ध) या प्रतीजनान्तिकके लिये जिस शक्ति द्वारा अन्य अर्थकी प्रतीति होती है उसका नाम लक्षणा है।





इन दोनों श्रेणियों का यथाक्रम द्वार्यात्मिक नाम अति-  
व्याप्ति और अश्रव्याप्ति है। अतिव्याप्ति—अतिशय सम्बन्ध  
या अतिरिक्त सम्बन्ध। सम्बन्धयोग्य स्थलको अतिक्रम  
कर अर्थात् जिसके साथ सम्बन्ध होना उचित है उसके  
साथ न हो कर दूसरेके साथ होनेसे अतिव्याप्ति-श्रेण  
होता है। सम्बन्ध योग्य स्थलको अतिक्रम करना, ऐसा  
कहनेसे यह न समझना होगा, कि सम्बन्धयोग्य स्थलमें  
विलकुल सम्बन्ध रहेगा ही नहीं। सम्बन्धयोग्य स्थलमें  
सम्बन्ध रह कर भी यदि सम्बन्धके अयोग्य स्थलमें  
सम्बन्ध हो, तो अतिव्याप्तिश्रेण हुआ करता है।

उक्त स्थलमें द्युत्पत्तिके अनुसार गमनशील गो  
पशुमें गो शब्दका प्रयोग होनेमें कोई भी बाधा नहीं होती,  
किर गमनशील मनुष्यादिमें भी गो शब्दका प्रयोग हो  
सकता है। गमनशील मनुष्यादि गोशब्दका सम्बन्ध-  
योग्य स्थल नहीं है। इस अयोग्य स्थलमें सम्बन्ध होनेके  
कारण अतिव्याप्तिश्रेण होता है।

अव्याप्ति शब्दसे असम्बन्ध समझा जाता है। किसी  
वर्णके साथ शब्दका सम्बन्ध न रहेगा यह असम्बन्ध है।  
अतएव जहाँ पर सम्बन्ध रहना उचित है वहाँ सम्बन्ध  
नहीं रहनेसे दो असम्बन्ध सम्बन्ध समझना होगा। जैसे  
शयान या उपविष्ट गो पशु भी गो है, उस अवस्थामें भी  
उसके साथ गो शब्दका सम्बन्ध रहना उचित है, परन्तु  
गो शब्दके द्युत्पत्तिलभ्य अर्थके अनुसार शयनादि  
अवस्थामें गो पशुके साथ गो सम्बन्ध नहीं रह सकता  
इस कारण अव्याप्तिश्रेण होता है। गो शब्दको यौगिक  
कहनेसे उक्त प्रकारका अतिव्याप्ति और अव्याप्तिश्रेण  
होता है। अतएव गो शब्द यौगिक नहीं कहें।

कोई कोई प्रत्यय किया करने योग्य तक समझा  
जाता है नहीं, किन्तु सभी प्रत्यय नहीं। साधारणतः  
क्रिया कर्ता ही समझा जाता है। यहाँ पर डोल् प्रत्यय-  
का अर्थ क्रियाकर्ता है। इसलिये अव्याप्तिश्रेण होता है।  
क्रिया करने योग्य तक ही डोल् प्रत्ययका अर्थ है, यह  
यदि मान लिया जाय, तो प्रश्न यह हो सकता है, कि  
पाचक व्यक्ति जिन समय पाक नहीं करता उस समय  
भी उसे पाचक कहेंगे। क्योंकि, उस समय पाक  
नहीं करनेसे भी उसमें पाक करनेकी योग्यता है। इसी

प्रकार जयान या उपविष्ट गो पशु उस समय यद्यपि  
गमन नहीं करता, 'तो भी गमन करनेकी योग्यता उसमें  
है। इस कारण जयनादिकालमें भी गो शब्दका प्रयोग  
हो सकता है। सुगरा गो शब्दके यौगिक होने पर भी  
अव्याप्तिश्रेण नहीं होता। इसके उत्तरमें यही कहना  
है, कि उक्त प्रकारसे थोड़ा बहुत अव्याप्ति श्रेणका परि-  
हार भले हो हो सकता है, पर अतिव्याप्तिश्रेणका परि-  
हार तो किसी हालतसे नहीं हो सकता। अतएव गो  
शब्दको कृद् मानना होगा।

गमनकर्ता यह शब्दार्थ (गमधातु और डोल् प्रत्यय-  
का अर्थ) गोशब्दका द्युत्पत्ति निमित्तमात्र है; किन्तु  
प्रवृत्तिनिमित्त नहीं। गोशब्दका प्रवृत्तिनिमित्त गोत्व-  
जाति है। जिस अर्थका भयलम्बन कर शब्द द्युत्पन्न  
होता है या शब्दकी द्युत्पत्तिके अनुसार जो अर्थ पाया  
जाता है उसे द्युत्पत्तिनिमित्त तथा जिस अर्थका भय-  
लम्बन कर शब्दकी प्रवृत्ति अर्थान् प्रयोग होता है  
उसे प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं। अतएव गोत्व-  
जाति या गोत्वजातिविशिष्ट व्यक्तिमें गो शब्द-  
का प्रयोग होता है, इस कारण उस अर्थमें गो शब्दका  
सङ्केत स्वीकार किया गया है। यह सङ्केत गो इस वर्णों  
यलीगत गो शब्दका घटक है, गम् धातु या डोल् प्रत्ययगत  
नहीं। पाचक शब्द यौगिककृद् नहीं है। क्योंकि,  
पाचक उस वर्णालोकके किसी अर्थविशेषमें सङ्केत नहीं  
है। अथवा सङ्केत अर्थान् पच् धातु युग् प्रत्ययके  
सङ्केत द्वारा ही पाचकत्वरूप अर्थको अवगति हो सकती  
है। गमुशब्दका सङ्केत स्वीकार करनेका कोई कारण  
नहीं। इसलिये पाचक शब्द कृद् नहीं, यौगिक है।

पहले जिस सङ्केतका उल्लेख किया गया है, यह  
सङ्केत दो प्रकारका है, भाषात्मिक और भाषुनिक। जो  
सङ्केत बहुत दिनोंसे चला आता है, जो निरव दे उसे  
भाषात्मिक तथा जो सङ्केत बनादिकालमें नहीं चला  
आता, बीच बीचमें परिवर्तित हो गया है उसे भाषुनिक  
कहते हैं। भाषात्मिक सङ्केतका दृष्टता नाम शक्ति और  
भाषुनिक सङ्केतका पत्तिनाया है। गोगवयादि सङ्केत  
भाषात्मिक तथा धैरमैतदि सङ्केत भाषुनिक है।  
भाषात्मिक सङ्केत शक्तिके अनुसार जो शब्द जो अर्थ



चलनिवासी शाहू राजपूतोंकी पराजित और घनी-भूत किया था। सम्राट् महम्मद शाह लोहोने इस समय जब राजपूताने पर आक्रमण कर दिया, तब राणा उसके विरुद्ध खड़े हो गये। येदोनोर-दुर्गके सामने मुसलमान-सेनाके साथ राजपूतसेनाकी मुठभेड़ हुई। सैफुद्दीन पठान-सेना युद्धक्षेत्रमें घेत रही। जो कुछ बच गई वह द्वार स्वीकार जान ले कर भागी।

लक्षके राज्यकालमें विधर्मी मुसलमानोंने हिन्दूके पवित्र तीर्थ गयाधाम पर चढ़ाई कर दी। धर्मक्षेत्र गयापुरीका मुसलमान-कब्रुसे उद्धार करनेकी कामनासे राणा इलबलके साथ उस ओर खाना हुए। इस युद्ध-यात्राके साथ तीर्थयात्रा करना भी उनका उद्देश्य था।

बहुत दिन राज्यशासन कर जब लक्षसिंह वृद्ध हुए, तब मेवाड़के भावी राणा चण्डकी जामाता परण कर मारवाड़पति रणमहर्षि विद्याद प्रस्तावके साथ नारियल भेजा। उस समय चण्ड राजसभामें उपस्थित नहीं था, किसी जरूरी काममें बाहर गये हुए थे। भतपथ युद्ध राजाने कहीं रणमहर्षि सुस्ता न जायें, इस भयसे नारियलको ले लिया। उस कन्याके गर्भसे मुकुलजीका जन्म हुआ। मुकुलजीने जब पांचवें वर्षमें कदम बढ़ाया, तब राणा उसके ऊपर प्रजा-पालनका भार सौंप कर जंगल चले गये। जितेन्द्रिय घोर चण्ड बालक मुकुलका पक्ष ले कर राजकार्य चलाते लगे।

लक्षसिंह सनातन हिन्दूधर्मके विरुद्धाचारी इस्लाम धर्मावलम्बियोंके विरुद्ध गयाधाम गये। वहीं मुसलमानोंके हाथमें उनकी मृत्यु हुई।

मदाराराणा लक्ष गिलोभान्तिकी बड़ी सहायता कर गये हैं। अला उद्दीनेने विजातीय विद्वेषमें जिस मेवाड़-राज्यको शंभुजानभूमिमें परिणत कर दिया था, राणाने उस मठभूमिमें अमरापुरी सद्गुण एक नगरी बसा दी। उस नगरीकी सुन्दर सुन्दर सीधमाला और मन्दिरसे परिशीमित कर दिया। बहुत रूपया खर्च करके उद्दीने एक सुन्दर प्रासाद और एकेश्वरकी उपासनाके लिये एक बड़ा मज्जन-मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर आज भी विद्यमान है। स्थानीय लोगोंका जलाभाष दूर करनेके लिये उद्दीने उक्त प्राचीर परिधिष्ठित कुछ दिग्गी स्तूपया कर राज्यकी शोभा बढ़ाई।

राणाके मनेक सन्तान सन्तति थी। चण्ड ही राख-से बड़े थे। किन्तु उन्हें पितृसिंहासन नहीं मिला था। भाज बल धनुषा, पानोर और धाराबलीके नाना प्रान्तवासी लूणायन् और बुलायन्-वंशीय सरदार लक्षके यथाधर कहलाते हैं।

लक्ष ( सं० खी० ) लक्षयतीति लक्ष-भच्-टाप् । लक्ष, एक लाखकी संख्या।

लक्षान्तपुरी ( सं० खी० ) एक प्राचीन नगरका नाम।

लक्षि ( सं० खी० ) वरुनी देवी। २ लक्ष्म्य देवी।

लक्षिन ( सं० खी० ) लक्षक । १ आलोचन, विचारण हुआ। २ दृष्ट, देखा हुआ। ३ अंकित, बतलाया हुआ।

४ लक्षणाश्रय, जिस पर कोई लक्षण या चिह्न बना दो।

५ अनुमित, अनुमानसे समझा या जाना हुआ। ( पु० )

६ पद अर्थ जो शब्दको लक्षणागतिके द्वारा ज्ञान होता है।

लक्षिन्य ( सं० खी० ) निर्देश्य, बतलाया हुआ।

लक्षितलक्षणा ( सं० खी० ) लक्षिने लक्षणा। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षण। जहां लक्षिन अर्थमें लक्षण होती है उसीको लक्षितलक्षणा कहते हैं। अणुष्णा देवी।

लक्षिता ( सं० खी० ) लक्षक, स्त्रियां टाप् । परकीयान्तर्गत नायिकाभेद, वह परकीया नायिका जिसका गुण प्रेम उसकी सचियोंकी माल्य हो जाय। यह नायिका पुत्रुर्जाभावनिपुण है।

उदाहरण—

"वद्भूतं वद्भूतं वद्भूतं वद्भूतं वद्भूतं वद्भूतं ।"

वद्भूतं वद्भूतं वा विरुद्धव्य गोपनीयः ।" (रामकवी)

लक्षी ( सं० खी० ) एक वर्णाश्रुत, इसके प्रत्येक चरणमें आठ रमण होते हैं। रती गंगीद्वय, गंगाघर और गंजन भी कहते हैं।

लक्षीमराय—लक्षीशरण देवी।

लक्ष्मी—युक्तप्रदेशान्तर्गत एक जिला और नगर।

लक्ष्मण देवी।

लक्ष्मन् ( सं० खी० ) लक्ष्मणदेवने लक्ष्मणे इति वा लक्ष-मानिन् । १ चिह्न, निजान। २ प्रधान, मुख्य।

लक्ष्मण ( सं० खी० ) १ चिह्न, लक्षण। २ नाग। ३ सारवर्ण।

( पु० ) ४ बुधराज दुर्बोधनके एक पुत्रका नाम। ( खी० )

५ धार्विण्य, जिम्में शोभा और कान्ति हो।

प्रतिपादन करता है, अनादिबालसे उस शब्द का उस अर्थमें प्रयोग होता है। आधुनिक मन्त्रों वा परिभाषाके अनुसार जो शब्द जो अर्थ प्रतिपादन करता है, उस अर्थमें उस शब्दका अनादिबालसे प्रयोग नहीं होता। यद्यपि, आधुनिक मन्त्रों वा परिभाषा अतिविशेषके इच्छानुसार परिवर्तित हुआ करती है। परिभाषाकी सृष्टि होनेसे पहले पारिभाषिक अर्थबोध बिलकुल असम्भव है।

रुद्र शब्द देखो।

इस प्रकार रुद्र शब्दकी सिद्धिके लिये लक्षणा स्वीकृत हुई है। गौडशब्दसे स्युतासिल्लव्य अर्थात् गमनशील मनुष्यादि न समझ कर गो-वधु तथा कुशल शब्दसे हुआप्रतीत न समझ कर दक्ष यैसा अर्थ समझा जाता है। इस प्रकार जहाँ जहाँ रुद्र शब्दकी सिद्धि होगी वहाँ लक्षणा होगी। प्रयोजन सिद्धिका विषय पहले ही लिखा जा चुका है।

साधारण भाषणमें लक्षणाका लक्षण कहा गया। यह लक्षणा फिर कई प्रकारकी है। साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश और सरस्वतीकण्ठाभरण आदिमें इसका विषय विशेष भाषणमें लिखा है। उपादानलक्षणा और लक्षणलक्षणा आदि भेदमें भी यह लक्षणा अनेक प्रकारकी है।

वाच्यार्थोंमें अन्वयबोधके लिये अर्थान् वाच्यकी अर्थबोधक अन्वयसिद्धिके लिये जहाँ मुख्य अर्थ न ले कर दूसरा अर्थ लिया जाता है, वहाँ पर यह लक्षणार्थका उपादान हेतु हुआ है, इस कारण इसको उपादानलक्षणा कहते हैं। (साहित्यदर् २।१७)

जहाँ दूसरेकी अन्वयसिद्धिके लिये मुख्य अर्थ अपना अर्थान् अर्थान् स्वार्थ परिचयाम करता है वहाँ यह लक्षणा होती है। यह लक्षणा उपलक्षणके कारण हो हुआ करती है, इसलिये इसका नाम लक्षणलक्षणा हुआ है। यह लक्षणा सारोप्य और अन्वयसत्ताके भेदसे दो प्रकारकी है। (साहित्यदर् २।१६)

इस सब लक्षणोंका भेद शब्द और वाच्यार्थों ले कर धातोमिथ हुआ है। शब्द और वाच्यार्थ देखो।

साध्यादीन—१ प्रथमप्रदेशके सिद्धती सिद्धिका एक शब्द सोल। भूषणप्रमाण १५८३ वर्गनीय है। २ अनादिबालके अन्वयार्थ एक बड़ा शब्द।

लक्षणादीह ( सं० श्लो० ) शीघ्र विरोध। शब्दके अन्वयार्थों तरकीब—लक्षणमूल, हस्तिशर्णं पञ्चानुमूल, रिक्त, तिर्यकता, विप्लव, विधामूल, मुक्त, अन्वयम्वामूल प्रत्येक १ सोला, तीह १२ सोला, इन सबको अन्वयों तार मूल कर यह शीघ्र विचार करे। इसका अनुमान भी भी गणु है। शीघ्र शीघ्र करने वाद्य धीमोंके साथ दूध धीम चादिए। यह शीघ्र बतकर है। इसका व्यवहार करनेमें शिष्योंके कल्याणस्य निवृत्त हो कर पुत्रप्रसव होता है। याज्ञीकरणाधिकारमें यह एक उत्तम शीघ्र है।

( भेषजसत्ता वा शोडशर्षिक )

लक्षणिन सं० श्लो० ) १ लक्षणा वा चिह्नयुक्त, जिसमें कोई लक्षण वा चिह्न हो। २ लक्षणज, लक्षण जनने वाला।

लक्षणोप ( सं० पु० ) लक्षणा द्वारा ज्ञातव्य या बोधव्य, लक्षण द्वारा जाना हुआ।

लक्षणोद ( सं० श्लो० ) जेधमें चिह्न वा लक्षणयुक्त।

लक्षण्य ( सं० श्लो० ) १ लक्षणयुक्त, जिसमें कोई लक्षण हो। २ लक्षणार्थ, लक्षण जाननेवाला। ३ दीवर्गकिसम्पन्न जादूरी पुत्र। (दिवा० ४०४।२०)

लक्षदत्त ( सं० पु० ) राजभेद, एक राजाका नाम। ( कथासरित्सा० ५।१५८ )

लक्षपुर ( सं० श्लो० ) एक प्राचीन नगरका नाम। ( पं० ५।१६ )

लक्षसिंह ( राजा )—मेवाड़के एक राजा, वीरचन्द्रहारीके पौत्र और क्षेमासिंहके पुत्र। ये करीब करीब १३८३ ई० में विजुसिंहासन पर बैठे। राजगार प्रद्वन करने ही इन्होंने विजयपुरमें पदानुसरण करके विजयविक्रामसुम्नका जोग करनेके लिये पहले मारवाड़राज्यके ऊपर दृष्टि डाली। विजयपटका पहचानि दृग्गं अचिन्तार कर उसे लहम लहम कर खाया तथा अपनी विजयकीसिद्धिके अक्षयकाम स्वरूप उसके ऊपर बेइतोर-दुर्ग बनाया। इस समय उसके अधिपति मोहन प्रदेशके सप्तर्षी शत्रुनामक स्थानमें घोड़ी और चीतकी पाल निकली। उन पालने घोड़ी निकाल कर इन्होंने राज्यका समृद्धिगीष ही गुना बढ़ा दिया था।

मगधर राजा लक्ष्मी शरर राज्यके अन्तर्गत अन्वय-

चलनियासी शाहू राजपूतोंकी पराजित और धनी-भूत किया था। सम्राट् महम्मद शाह लोदीने इस समय जब राजपूताने पर आक्रमण कर दिया, तब राणा उसके विरुद्ध खड़े हो गये। येकनौर-दुर्गके सामने मुसलमान-सेनाके साथ राजपूतसेनाका मुठभेड़ हुई। सैफुद्दीन पठान-सेना युद्धक्षेत्रमें सेत रहो। जो कुछ बच गईं यह द्वार स्वीकार जान ले कर भागी।

लक्षके राज्यकालमें विधर्मी मुसलमानोंने हिन्दूके पवित्र तीर्थ गयाधाम पर चढ़ाई कर दी। धर्मक्षेत्र गयापुरीका मुसलमान-कब्रलूसे उद्धार करनेकी कामनासे राणा दलदलके साथ उस ओर रवाना हुए। इस युद्ध-यात्राके साथ तीर्थयात्रा करना भी उनका उद्देश्य था।

षष्ठ दिन राज्यशासन कर जब लक्षसिंह घूट्टे हुए, तब मेवाड़के भावी राणा चण्डकी जामाता बरण कर मारवाड़पति रणमहने विवाह प्रस्तावके साथ नारियल भेजा। उस समय चण्ड राजसभामें उपस्थित नहीं था, किसी जरूरी काममें बाहर गये हुए थे। अनपय पूछ राजानं कहीं रणमह गुस्ता न जाये, इस मयसे नारियलको ले लिया। उस कन्याके गर्भसे मुकुलजोका जन्म हुआ। मुकुलजोने जब पांचवें वर्षमें कदम बढ़ाया, तब राणा उसके ऊपर प्रजा-पालनका भार सौंप कर जंगल चले गये। जितेन्द्रिय घोर चण्ड बालक मुकुलका पक्ष ले कर राजकार्य चलाने लगे।

लक्षसिंह सनातन हिन्दूधर्मके विरुद्धाचारी इस्लाम धर्मावलम्बियोंके विरुद्ध गयाधाम गये। यहीं मुसलमानोंके हाथसे उनकी मृत्यु हुई।

महाराणा लक्ष जिलोमन्तिकी बड़ी सहायता कर गये हैं। अला उद्दीनने विजातीय विद्वेषसे जिस मेवाड़-राज्यको शनशानभूमिमें परिणत कर दिया था, राणाने उस मधुभूमिमें अमरापुरी सृष्टन एक नगरी बना दी। उस नगरीको सुन्दर सुन्दर सीधमाला और मन्दिरमें परिशीलित कर दिया। बहुत रूपवा धर्मके उद्देश्यने एक सुन्दर प्रासाद और पर्येधरकी उपासनाके लिये एक बड़ा मञ्ज-मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर आज भी विद्यमान है। रुधानीय टोगीका अलाभाय दूट करनेके लिये उद्देश्यने उच्च प्राचीर परिचिहित पुष्ट दिग्गी खुदवा कर राज्यकी शोभा बढ़ाई।

राणाके अनेक सन्तान सन्तति थी। चण्ड ही सप-से बड़े थे। किन्तु उन्हें पितृसिंहासन नहीं मिला था। आज बल भगुणा, पानोर और आरायल्लोके नाना प्राग्वचासो नृणायत् और दुलायत्-पंगीय सरदार लक्षके वंशधर कहलाते हैं।

लक्षा (सं० खी०) लक्षपतीति लक्ष-भच्-टाप् । लक्ष, एक लाखकी संख्या।

लक्षान्तपुरी (सं० खी०) एक प्राचीन नगरका नाम। लक्षि (सं० खी०) लक्ष्मी देवी। २ लक्ष्म देवी।

लक्षिन (सं० खी०) लक्ष क। १ आलोचिन, विचारारुभा। २ दृष्ट, देखा हुआ। ३ अक्षित, बतलाया हुआ।

४ लक्षणाध्य, जिस पर कोई लक्षण या निद्व बना हो। ५ अनुमित, अनुमानसे समझा या जाना हुआ। (पु०)

६ यह अर्थ जो शब्दकी लक्षणात्मिकके द्वारा ज्ञान होता है।

लक्षितव्य (सं० खी०) निर्देश्य, बतलाया हुआ।

लक्षितलक्षणा (सं० खी०) लक्षिने लक्षणा। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षण। जहां लक्षित अर्थमें लक्षण होती है उसीकी लक्षितलक्षणा कहते हैं। लक्षणा देवी।

लक्षिता (सं० खी०) लक्ष क, स्त्रियां टाप् । परकीयान्तर्गत नायिकाभेद, यह परकीया नायिका जिसका गुण प्रेम उसकी सचिवीकी मालूम हो जाय। यह नायिका पुंशुक्लीभावनिपुण है।

उदाहरण—

"वद्भूतं वद्भूतं वद्भूतं वद्भूतं वद्भूतं वा भूयत् ।

वद्भूतं वद्भूतं वा विदललाय गोपनीयः ।" (लक्ष्मी)

लक्षो (सं० खी०) एक वर्षावृत्त, इसके प्रत्येक चरणमें आठ रण होते हैं। इसे गंगोद्व, गंगापर और संज्ञन भी कहते हैं।

लक्षोमराय—लक्ष्मीमराय देवी।

लक्ष्मी—सुखप्रदानांतर्गत एक जिला और नगर।

लक्ष्मी देवी।

लक्ष्मन् (सं० खी०) लक्ष्मणदेवने लक्ष्मणे इति वा लक्ष-मन्तिन् । १ विह, निजान। २ प्रधान, मुख्य।

लक्ष्मण (सं० खी०) १ विह, लक्षण। २ माग। ३ मारण।

(पु०) ४ कुत्तराज दुर्वाचनके एक पुत्रका नाम। (खी०)

५ धीविनिष्ठ, द्विसर्ग शोभा और कान्ति हो।

लक्ष्मण—रामायणोक्त एक अद्वितीय वीर और रघुकुल-  
निलंब धीरामण्ड्रके छोटे धैरात्रये भारे । सुमित्तके  
गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण इनका एक नाम सौमिति भी  
था । लक्ष्मणयुद्धमें इन्होंने इन्द्रविजयको मेघनादकी मारा था ।

मध्याह्नतमावधनेमें लिखा है, कि अत्यन्त सुलक्षण  
सम्पन्न होनेके कारण इनका नाम लक्ष्मण हुआ था ।

“भास्वत्प्रभरो नाम अरुणस्य” अथ मध्याह्नियतम् ।

एतद्गुणं लक्ष्मणस्यैव सुदृशमानम् ॥

( मध्याह्नतमा० १३।४५ )

रामायणके बालकाण्डमें लिखा है, कि लक्ष्मण राम  
पण्ड्रके प्राण समान थे । राम जब धैर्यते तब ये भी धैर्यते  
थे, जहाँ राम जाते, लक्ष्मण भी उनके साथ ही लेते थे,  
सो जाने पर पैरके समीप धैर्यते थे । आश्रम छायाकी  
तरह भारेके अनुगामी थे । रामके प्रसादके सिवा और  
किसी उपादेय तापने उनको मृति नहीं होती थी । राम  
जब छोड़े पर आंग्रेटकी निकलते, तब लक्ष्मण भी धनुष-  
याण हाथमें लिये उनके प्राँररक्षक रूपमें पीछे पीछे  
चलते थे । जिस दिन विभ्रामितके साथ राम ताड़कादि  
राक्षसका वध करनेके लिये निविष्ट वनपधसे जा रहे थे  
उम दिन भी काकपक्षपर लक्ष्मण उनके साथ थे । भ्रान्त-  
मतिके विषयमें उनकी जितनी प्ररसा की जाय, भीड़ों  
है । हम समय वनपधमें जाने समय दोनों भारेकी  
बान-बष्ट होती थी, हम कारण महामुनि विभ्रामितने  
बष्ट दूर करनेके लिये एक मन्त्रकृत किया । पीछे दोनों  
भारपेमें गीतमाधम जा कर मन्त्रन्यास उचार किया  
अनन्तर जनक-अपनमें जा कर नियन्त्रा धनुष गोट्टा ।  
तामने सीताका और लक्ष्मणने ऊर्मिभ्राका पाणिमरण  
किया । ऊर्मिभ्राके गर्भसे लक्ष्मणके भद्रुद और अष्ट  
केतु मातक दो पुत्र हुए ।

रामका अनिर्गक संवाद सुन कर मनमें मानन्त्र सागर-  
में गोते घाले थे, पर लक्ष्मणके चेहरे पर कदा भी प्रस-  
रणा न थी, ये नीरव ही कर रामको छायाकी तरह पीछे  
चलते थे । राम बन्धनभावी न्यायाका हृदय मन्त्रों  
तरह जानते थे । समिपेद संवादमें सुनी ही उन्होंने  
महसे पढ़ते लक्ष्मणकी भातिहून कर कहा, “मैं  
और राजा सुहारे लिये ही पादशक हूँ ।” पर ३.

लक्ष्मणके दोनों पात्र प्रसन्नताके सारे मान हो गये  
लक्ष्मण बन्धनभावी थे नहीं, पर रामके प्रति अब उन्हें  
अन्याय शयहार करता, तब ये क्षमा करना नहीं जानते  
थे । जिस दिन कीर्षेवीने भागियेकमतोयमन-प्रकृत राम-  
पण्ड्रकी सुहृदुतुला वनवासकी भाशा सुनाई, उस दिन  
रामकी मृति दृशन्त्र वैशापकी धोरे मृति हो उठे ।  
लेकिन लक्ष्मणने क्रुद्ध हो मधुपूर्ण गेतीले इनका पीडा  
किया था ।

इस अन्याय आदेशकी ये नहीं न कर सके । राम-  
चन्द्रने जिन्हें शकुण्डितन विराते क्षमा कर दिया है,  
लक्ष्मण उन्हें क्षमा न कर सके । रामका वनवास ही कर  
इन्होंने बीजाल्याके समाप्ते बहुत बष्टन की थी । भातिर  
क्रुद्ध ही रामस्त अयोध्यापुरीको तष्ट करना चाहत ।  
इन्होंने रामको कर्षांमपुत्रिकी प्रस्ता नहीं की, इस  
गर्हित आदेशका पाटन करना पमं मज्जुन नहीं है, इस  
प्रकार उन्हें बार बार समझाया था ।

लक्ष्मण रामके साथ वन चले । इन भारमरवामी  
देवताके लिये किन्तोंने विन्याय नहीं किया । पदां मकं कि  
सुमित्ताने भी विदाय-काण्डमें पुत्रके लिये भांगू मरी  
पहाया था, बन्धक हृष्ट और स्त्रीदाय बगलसे लक्ष्मणकी  
कहा था, ‘पुन ! जाओ, स्वच्छन्द मनसे वन जाओ, राम-  
की श्रुतभके समाप्त देगना, सीताकी मेरे समान मानना  
तथा वनकी अयोध्या समझना ।’ इस प्रकार आदेश है  
पर सुमित्ताने लक्ष्मणकी विदा किया था ।

भारपवसोपनने जो कुछ कहीला थी, उमका भागिद  
भाग लक्ष्मणके ऊपर था । लक्ष्मणने बड़े माहादुराँद  
उसे अपने निर पर ले लिया था । पहाड पर पुनित  
पन्थकटाजिसे पुत्र तोड़ कर रामपण्ड्र सीताके बन्धीकी  
सुजाते थे, पमनी उठा कर सीताके साथ मन्त्राकिमों  
दगान करने थे अथवा गोदापरीगौरवध वेनके धर्ममें  
सीताकी जाय पर मन्त्रक रथ कर सुगले गीते थे ।  
एवर मीक-संय्यारी लक्ष्मण संताये मन्त्री कीड कर पनी-  
नाला बगाने थे, कमी हाथमें कुत्रा ले कर भाषा-  
कारने की कमी मीक और पैदरन सुता मेकर  
पयमोमिग मतोकर

कलसोमें जल भर कर लाते थे। फिर कभी चित्तकूट पर्वतकी पर्णालालासे सरोवर-तट जानके पंचकी चिह्नित करनेके लिये ऊंची तरुशाय्या पर कपड़े बांध देते थे। कभी कौमल खामके अंकुर और वृक्षपर्णसे रामकी जटया बना कर उनकी वाट जोड़ते थे। कभी वे कालिन्दी पार करनेके लिये पेड़े बनाने और उस पर सीताके घैटनेके लिये सुन्दर आसन बिछा देते थे। इन संवसो रनेद्वीपरने भ्रातृसेवामें अपनी निजसाक्षा को दो थी। रामचन्द्रने पञ्चनदी जा कर लक्ष्मणसे कहा था, "इस सुन्दर तरु-राजिपूर्ण प्रदेशमें पर्णालालाके लिये एक उत्तम स्थान चुनो।" लक्ष्मणने कहा, 'आपको जो स्थान पसन्दमें आये, वही दिखा ला दीजिये। सेवकके ऊपर चुननेका भार मत दीजिये।' रामचन्द्रने जब यह स्थान बता दिया, तब लक्ष्मण खंता हाथमें लिये जमीनकी चीरस करने लगे।

एक दिन काले सांघोंसे भरे हुए गभीर अरण्यमें भूम और राहको थकावटसे सीताका चेहरा उदास देख राम बहुत दुःखित हुए। वे भी दुःखमयी रातका कष्ट सह न सके। वे लक्ष्मणको अयोध्या लौट जानेके लिये बार बार कहने लगे, "तुम अयोध्या लौट जाओ, शोककी अवस्थामें सात्वयना दे कर मेरी माताओंका पालन करना।" रामकी ऐसी कातलोकितसे दुःखित हो लक्ष्मणने कहा, "मैं पिता, सुमित्रा, अशुभ, यहाँ तक कि स्वर्गकी भी तुमसे बढ़ कर नहीं समझता।"

यहाँ एक दिन दशाननको बहन सूर्यपत्नी भारी और रामकी प्रेममिथारिणी हुई। रामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया। संवसो, जितेन्द्रिय और अनाहार-हिष्ट लक्ष्मणकी रमणीप्रेम बिलकुल अच्छा न लगा। उन्होंने सूर्यपत्नीके नाक कान काट कर उसे निलंजनाका पुरस्कार दिया। सूर्यपत्नीको प्रार्थनासे राहस्य सेना-पति वारकूपण यहाँ आ धमका। दोनों भारीके मुकीले तीरसे राहसीका निर्मूल हुआ। सूर्यपत्नीके मुखसे सीताके रूपलावण्यकी बात सुन कर दशानन हड़का-रण्य भाया और सीताकी हर ले गया। स्वर्ण-मृगद्वय-धारी मारीच रामके शरसे वमपुर तिपाटा।

कवच मरत, जटायु भी मरत; लक्ष्मणने समाधि-

स्थल शोद्ध कर कवच और जटायुका रक्षण किया। दिन-रात उन्हें जरा भी चीन नहीं—पन आते समय इन्होंने कहा था, "देवी सीताके साथ मैं गिरिमानुदेनमें विहार करूँगा, जागरित हों या निद्रित, उनका काम मैं ही कर दूँगा, पंता, दुःखार और घबुर हाथमें लिये मैं उनके साथ साथ घुमूँगा।" पनपासके श्रेय वर्णमें उन पर विपशुका पहारा टूट पड़ा; रावण सीताकी हर ले गया। सीताके शोकसे राम पागल हो गये। भारीका यह दारुण कष्ट देख कर लक्ष्मण भी पागलकी तरह सीताकी इधर उधर खोजने लगे। रामकी आहासे वे गोदावरीके किनारे उन्हे खोजने गये।

इसके बाद दनु नामक ज्ञापप्ररत परके बहनेसे राम लक्ष्मणके साथ पन्थाके किनारे सुप्रोवकी खोजमें गये। सुप्रोवने राजकुमारको आते देव हनुमानकी उनके पास भेजा। हनुमानने उनका परिचय पूछा और बड़े सम्मान-पूर्वक कहा, "आप दोनों माई दिग्गिजयोते मात्स्य होने हैं, तब फिर आपने चौर और बरकल वर्षों पारण दिया है? आपकी बड़ी बड़ी भुजा सब भूषणोंसे भूषित होने योग्य थी, पर एक भी भूषण नहीं दिखाई देता, तो क्यों? यह सुन कर लक्ष्मण बहुत दुःखित हुए। जो निरविक मीनभावसे स्नेहाद्रि हृदय यहन करने आये हैं, आज वे स्नेहके उन्ध और भावकी शोक न मके। परिचय देनेके बाद उन्होंने कहा, 'दनुके कहनेमें आज हम दोनों माई सुप्रोवके शरणापन्न होने आये हैं। जिन रामने शरणा गतीको अकृष्टित चित्तसे प्रचुर धन दान किया है, तिभू-धन-विश्यात वशरचके ज्येष्ठ पुत्र मेरे शुद्ध पद जगत्-पूज्य रामचन्द्र आज पागराधिपतिकी शरण लेनेके लिये यहाँ पड़े हैं। सर्वलोक जिनका माधय वा कर ह्यनार्थ होता था, जो प्रजापुत्रके शुक और पायक थे, आज वे माधय-मिश्रा करके सुप्रोवके निषट उपस्थित हैं। वे शोकामिभूत और आर्त्त हैं, सुप्रोव निदय हो प्रगत हो कर उन्हे शरण देंगे।' इतना कहने कहने लक्ष्मणका विरलिनन्द मधु बहने लगा। ये ही कर मीन हो गये। रामकी कुरवस्था देख कर वे निकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, उनका हृद घरित आर्त्त और बहण हो गया।

शोक-व्यनमें हनुमानसे संतोषने कहा था, 'अह, मध



लक्षण—रामायणोक्त एक अतिशय घोर और सुशुद्ध-  
निष्ठ धीरामचन्द्रके छोटे पैमानेय भाई । सुमिताके  
गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण इनका एक नाम सुमिति भी  
था । लक्ष्मणके इन्होंने इन्द्रविजयो मेघनादकी मारा था ।

अप्यन्त रामायणमें लिखा है, कि अश्वत्थ सुलक्षण  
मयम्न होनेके कारण इनका नाम लक्ष्मण हुआ था ।

‘मत्पादुमहो नाम जगत्पथं यत् सुलक्षणम् ।

सुहृत् स च सुहृत्मातेन सुरमाता ॥

( अमृतमरामो २३।४५ )

रामायणके बालकाण्डमें लिखा है, कि लक्ष्मण राम  
चन्द्रके प्राण रामान थे । राम जब वीरते तथ ये भी वीरते  
थे, जहाँ राम जाते, लक्ष्मण भी उनके साथ ही लेते थे,  
सो जाने पर वैरके समीप बैठते थे । आञ्जन छायाकी  
ताड़ भाईके अनुगामो थे । रामके प्रसादके सिवा और  
किसी उपाधेय वाचसे उनकी मुक्ति नहीं होती थी । राम  
जब घोड़े पर आसोटको निकलते, तब लक्ष्मण भी घनुय-  
याण हाथमें लिये उनके शरीररक्षक रूपमें पीछे पीछे  
चलते थे । जिस दिन विभ्यामितके साथ राम ताड़कादि  
राक्षसका वध करनेके लिये निविष्ट यनपथसे जा रहे थे  
उम दिन भी काकपथपर लक्ष्मण उनके साथ थे । ब्राह्-  
मणिके विषयमें उनकी प्रकृतो प्रदंसा की जाय, भोजी  
है । इस समय यनपथमें जाने समय दोनों भाइयोंकी  
अन-वष्ट होयो था, इस कारण महामुनि विभ्यामितने  
बष्ट शूर करनेके लिये एक मन्त्रदान किया । पीछे दोनों  
भारवमें गौतमाधम जा कर भद्रव्याजा उदार किया  
मन्त्रतर जनक भवनमें जा कर निषका धनुष मोड़ा ।  
रामने गीताका और लक्ष्मणने ऊर्मिलाका पाणिमरण  
किया । ऊर्मिलाके गर्भसे लक्ष्मणके अर्जुन और चन्द्र-  
केतु नामक दो पुत्र हुए ।

रामका अभिप्रेत संवाद सुन कर रामने मानन्द सागर-  
में गोत्रे राखे थे, पर लक्ष्मणके धैर्य पर जरा नो प्रस-  
न्ना न भी, ये नीरव ही कर रामकी छायाकी तरद पीछे  
पीछे चलते थे । राम स्वल्पमात्रो छायाका हृदय अच्छी  
तरद जानते थे । अनियेक संवादमें सुयो हो उद्योगे  
मरते पड़ते लक्ष्मणकी धार्मिकता कर कदा, ‘मैं जोयन  
और राज्य सुन्दारी लिये ही पैदा हुआ हूँ ।’ पद सुन कर

लक्ष्मणके दोनों मान प्रसन्नताके मारे लाज हो गये  
लक्ष्मण स्वल्पमात्रो थे सद्यो, पर रामके प्रति अर कमें  
अन्याय अथवा करता, तब ये शमा करना ‘मैंने’ जानते  
थे । जिस दिन किये योने अनियेकमतोरअन्य प्रकृत राम  
चन्द्रकी सुशुभ्य यनवासकी भाशा सुनाई, उम दिन  
रामकी मुक्ति दृष्टात् वैरायकी धोमें मुक्ति हो उठी ।  
लेकिन लक्ष्मणने क्रुद्ध हो मधुपर्णो गतोंसे इनका पीडा  
किया था ।

इस अन्याय भाईनाकी ये मदन न कर सके । राम-  
चन्द्रने जिन्हें अकुटिलता विधासे क्षमा कर दिया है,  
लक्ष्मण उन्हें क्षमा न कर सके । रामका यनवास ही कर  
इन्होंने बीजलयाके रामने बहुत बदन की थी । बाविर  
क्रुद्ध हो समस्त अयोध्यापुरीको नष्ट करना चाहा ।  
इन्होंने रामकी कर्त्तव्यमुक्तिकी प्रशंसा नहीं की, इस  
महित भाईनाका पावन करना धर्म मङ्गल नहीं है, इस  
प्रकार उन्हें बार बार समझाया था ।

लक्ष्मण रामके साथ यन चले । इन भारतवर्षको  
द्वैताके लिये किसीने विनाश नहीं किया । यहाँ तक, कि  
सुमितामें भी विदाय-कालमें सुलके लिये चाँचू तैरी  
पहाया था, वनिक दृष्ट और स्नेहादृष्टके लक्ष्मणकी  
कदा था, ‘तुन ! जाओ, स्वच्छन्द मनसे यन जाओ, राम-  
की हजरदके समान द्वैतना, मोशाकी मेरे समान मानना  
तथा यनकी अयोध्या समझना ।’ इस प्रकार उद्देश दे  
कर सुमित्रने लक्ष्मणकी विदा किया था ।

भारवपथोपनमें जो कुछ कहीरता थी, उनका अधिक  
भाग लक्ष्मणके ऊपर था । लक्ष्मणने बड़े आहादपूर्वक  
उने यनने गिर पर ले लिया था । पहाड पर सुदित  
अन्यतरामित्रे पुत्र होउ कर रामचन्द्र सीताके कर्त्तकी  
सजाते थे । यनको उठा कर सीताके साथ मन्त्राकिर्तमें  
रत्नान करने थे साथया मोषादरामोरथ मेंके धर्म  
सीताकी साथ पर मन्त्रक रथ कर सुयसे मोते थे ।  
इपर मोन-संन्यासी लक्ष्मण संन्यासे सद्यो और कर पर्या-  
नाया बनाने थे, कानो हाथमें कुटार ही कर मन्त्रा-  
मन्त्राया कारण थे, कनो भैरु और देवका मूत्रा मोर  
इकट्ट कर मन्त्र मन्त्राके इवयथा करने थे । कनो  
मोनाका-कनो चार्त्तना रामकी पञ्चमोमित्र सद्योपर्य

कालसीमें जल भर कर लाते थे। फिर कभी चित्रकूट पर्वतकी पर्णाशालासे सरोवर-तट जानके पथकी चिह्नित करनेके लिये ऊंची तरुशाखा पर कपड़े बांध देते थे। कभी कौमल छामके अंकुर और गृहपर्वणसे रामकी श्रद्धा बना कर उनकी वाट जोड़ते थे। कभी वे फाल्गुनी पार करनेके लिये पेड़ बनाते और उस पर सीताके घैठनेके लिये सुन्दर आसन बिछा देते थे। इन संवसो स्नेहवोरने भ्रातृसौवर्गमें अपनी निजहासा लो दी थी। रामचन्द्रने पञ्चयती जा कर लक्ष्मणसे कहा था, "इस सुन्दर तरु-राजिपूर्ण प्रदेशमें पर्णाशालाके लिये एक उत्तम स्थान चुनो।" लक्ष्मणने कहा, 'आपको जो स्थान पसन्दमें आये, वही दिखाला दीजिये। सेवकके ऊपर चुननेका भार मत दीजिये।' रामचन्द्रने जब यह स्थान बता दिया, सब लक्ष्मण संता हाथमें लिये जमीनकी चौरस करने लगे।

एक दिन काले सांघोंसे मरे हुए गभीर अरण्यमें भूल और राहकी धकावटसे सीताका चेहरा उदास देख राम बहुत दुःखित हुए। वे भी दुःखमयी रातका कष्ट सह न सके। वे लक्ष्मणको अयोध्या लौट जानेके लिये बार बार कहने लगे, "तुम अयोध्या लौट जाओ, शोककी अवस्थामें साह्यना दे कर मेरी माताओंका पालन करना।" रामकी ऐसी बातसे कितने दुःखित हो लक्ष्मणने कहा, "मैं पिता, सुमिता, शत्रुघ्न, यहां तक कि स्वर्गकी भी तुमसे बढ़ कर नहीं समझता।"

यहां एक दिन दगानतकी बहन सूर्यणया भारी और रामकी प्रेममिथारिणी हुई। रामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया। संवसो, जिनैन्द्रिय और अनाहार-हित लक्ष्मणकी रमणीय प्रेम बिलकुल अच्छा न लगा। उन्होंने सूर्यणयाके ताक काम काट कर उसे निलंबनाका पुरस्कार दिया। 'सूर्यणयाको प्रार्थनासे राक्षस सेनापति परद्रुपण यहां आ धमका। दोनों मांरके जुहल्ले तीरसे राक्षसीका निर्मूल हुआ। सूर्यणयाके मुकसे सीताके रूपलावण्यकी बात सुन कर दगानत दण्डकारण्य आया और सीताकी हर ले गया। स्वर्ण-मृगमय-धारी मारीच रामके शरसे यमपुर लिपारत।

कवच मरत, जटायु भी मरत; लक्ष्मणने समाधि-

स्थल खोद कर कवच और जटायुका रक्षक करिवा। दिन-रात उन्हें जरा भी चैन नहीं—यन आने समय इन्होंने कहा था, "देवी सीताके साथ मैं गिरिसानुदेनमें विहार करूंगा, जागरित हों या निद्रित, उनका काम मैं ही कर दूंगा, चंता, कुठार और धनुष हाथमें लिये मैं उनके साथ साध घुमूंगा।" वनवासके शेष पर्वमें उन पर विपदका पहाड़ टूट पड़ा; रावण सीताकी हर ले गया। सीताके शोकसे राम पागल हो गये। मांरका यह दारुण कष्ट देख कर लक्ष्मण भी पागलकी तरह सीताको इधर उधर खोजने लगे। रामकी आहासे वे गोदावरीके किनारे उन्हे खोजने आये।

इसके बाद हनु नामक जापप्रसन्न पक्षके बहनेसे राम लक्ष्मणके साथ पश्याके किनारे सुमीयकी शोचमें गये। सुमीयने राजकुमारकी आने देख हनुमान्को उनके पास भेजा। हनुमान्ने उनका परिचय पृष्ठा और बड़े सम्मान-पूर्वक कहा, "आप दोनों मांर दिग्बिजयोसे मान्य होते हैं, तब फिर आपने चोर और दनकल वर्षों पारण किया है? आपकी बड़ी बड़ी भुजा सब भूतणोंसे भूमि होने योग्य थी, पर एक भी भूयण नहीं दिखाई देता, सो क्यों?" यह सुन कर लक्ष्मण बहुत दुःखित हुए। जो चिरदिन मौनभावसे स्नेहाद्रि हृदय पहन करने आये हैं, आज वे स्नेहके छन्द और भाषाको रोक न सके। परिचय देनेके बाद उन्होंने कहा, 'हनुके बहनेने आज हम दोनों मांर सुमीयके शरणायथ होने आये हैं। जिन रामने शरणा गतीकी अकुण्ठित चित्तसे प्रसुर धन दान किया है, त्रिभु-यन-विषयात वनरपके उपेक्ष पुत्र मेरे गुण पद अगन्-पुत्र रामचन्द्र आज पानराधिवतिकी शरण लेनेके लिये यहां पड़े हैं। सर्वलोक जिनका आश्रय पा कर हनार्थ होता था, जो प्रजापुत्रके रक्षक और पालक थे, आज वे आश्रय-मिश्रा करके सुमीयके निकट उपस्थित हैं। वे शोकामिभूत और मर्च हैं, सुमीय निरचय ही प्रसन्न हो कर उन्हें शरण देंगे।' शमा बहने बहने लक्ष्मणका विरमिदय अधु बहने लगा। ये ही कर मौन हो गये। रामकी दुरपस्था देख कर ये किर्कस्यविशुद्ध हो गये, उनका हृद चरित भारी और कटण हो गया।

शोक-व्यनमें हनुमानसे सीताने कहा था, 'लक्ष्मण

मुझमें बड़ बर रामके प्यार है।' राधिकाके खेतसे विद्वत्  
 लक्ष्मण तिस दिन मुठरीयमें मृतकज्य हो गये थे, उस  
 दिन राम जानू जायतकी जिग्य प्रवार श्यामो रक्षा  
 करती है, उसी प्रकार छोटे भाई लक्ष्मणकी सपनी गोदमें  
 बिठा कर उसकी रक्षा करने थे—राधिकाका अमल्य  
 जार रामकी पोटकी छिन्न निम्न कर रहा था। राम उस  
 भोट जरा भी टूटि न फेर कर सधुपूर्ण मंत्रोंसे लक्ष्मण-  
 की रक्षा कर रहे थे। अन्ततः धानर खेताके लक्ष्मणकी  
 रक्षाका मार प्रदण करने पर थे मुझमें प्रवृत्त हुए।  
 राधिका भाग चला। पोटै रामनद्रणे मृतकज्य  
 ब्रह्माकी मणि मुकुमलभायमें आलिङ्गन कर कहा, 'तुमने  
 जिग्य प्रकार यन्त्रे मेरा अनुगमन किया था, आज मैं भी  
 उसी प्रकार वनालय तक मुद्राया अनुगमन करूँगा।  
 तुमदारे बिना मैं जीवन धारण नहीं कर सकता। देन  
 देतामें खी खीर मिल सकता है, पर वेसा कोई देन  
 देतामें नहीं आता, जहाँ तुमदारे समान भाई, मरतो भी  
 सहाय मिलता है। भाई! उठो, लात खोलो, मेरा दुःख  
 क्षो। जब कभी मैं पर्यंत पर था यन्त्रे शोकाच, प्रदण  
 और विषण्ण होता था, तब तुम ही प्रबोध पापयसे मुझे  
 माग्यता देते थे। कभी पर्यो इस प्रकार नीरव हो  
 गये हैं ?'

रामावली मुझमें वीरवर लक्ष्मण बलधोपे और  
 सादसका सच्छा परिचय दे गये हैं। सद्योगी सेनापति-  
 के रूपमें मुझ करनेके सिद्धा इन्होंने अपने मुक्तवत्स  
 अतिक्रिय, इन्द्रजिम् आदिकी वनपुर भेजा था। मेघनाद-  
 की मारना उनका सङ्कल्प था। भीरु पर्यं मनाहाती और  
 अतिशुद्ध नहीं होनेसे इन्द्रजिम्की फीरे मार नहीं सकता,  
 पेसा कर था। लक्ष्मणने वनवासकालमें उस वनवा  
 पालन किया था। तादुहा-निषण्णकालमें विध्यानित्र प्रदण  
 मन्त्र हो उस भनग्न श्रेणके निवारणका सहाय  
 हुआ था।

रामके अ ब्राह्मणमें लक्ष्मणने कभी भी मुझ नहीं  
 मोड़ा। स्वाधनरूत हो वा म हो, लक्ष्मण मर्गादा मीन-  
 गतपरी उरता पालन कर गये हैं। सङ्गोंका विनाग  
 कर शिरा दिन रामने शीलाकी विपुल वीरसंपर्णके मध्य  
 ही कर पैरुत आये कहा था, उस दिन सीता मच्छली

मानो मर गई थी, उनका सर्वाङ्ग व शिथल हो रहा था।  
 लक्ष्मण यह दृश्य देव कर परचित हो गये, किन्तु रामके  
 कार्मका उद्देशि प्रविषाद नहीं किया। जब सशोध्य  
 परीक्षाके समय सीता अग्निमें कूढ़ पणके लिये तैयार  
 हो गईं, मय उद्देशि लक्ष्मणने विना यन्त्रे कहा।  
 लक्ष्मणने रामका अनिषण्ण समग्र कर सातन-शेतीमें  
 विना बनाया, जरा भी प्रतिषाद नहीं किया। धाम् स्नेह-  
 से ये स्वीय अन्तरवद्भुज्य हो गये थे। सीताका उदार  
 कर राम सपोष्याके राजा हुए। लक्ष्मणने सानुमलि-  
 यन्त्राः उनके शिर पर उत धामा था। ये सङ्घर्षमें  
 मर्दकी सहायता करने थे। कुछ दिन बाद प्रताकी उर  
 सीताके चरितसम्बन्धमें संवेद हुआ, तब रामने उद्देशे बन-  
 पाम देनेकी सलाह दी। लक्ष्मण यह सुनमार से कर  
 परमासाध्या सीतादेवीको पाल्मोकिंके आश्रममें रख  
 भाये। इस समयसे लक्ष्मणकी शिथलवृत्ति हुई। अर-  
 मेष पक्षके समय ये ही महाभूमिके आश्रमसे सीतादेवी-  
 की लाने गये। सीताके पागाल-प्रवेणके बाद एक दिन  
 पाल्मपुत्रण भा कर रामचन्द्रने मिले। उस समय राम-  
 चन्द्रने लक्ष्मणकी द्वारपाल बनाया और कहा कि मन्त्रा-  
 युद्धमें किसीकी मृतने न देना। अक्षयमा शौरमूर्ति  
 दुर्वासा रामचन्द्रने मिलने भाये। लक्ष्मणने रामचन्द्र-  
 की आज्ञा सुना कर उद्देशे अंतर जागेसे रोकता। दुर्वासा  
 नाव देनेको तैयार हो गये। इस पर रामने अनुमति  
 देनेके लिये लक्ष्मणने पर्यं प्रवेण किया। प्रतिषण्ण  
 रामने लक्ष्मणको मिल्दा की। लक्ष्मणने मरु-रू-रूने  
 मूढ़ कर प्राण गेयाये।

अध्यात्मतामायामें लक्ष्मणको 'शैव' का भवना  
 कहा है।

लक्ष्मणके चरित्रमें शांत्वा सुदयकारकी मद्रिया देवी  
 जाती है। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा, 'अली  
 मित्राली हुई मच्छलीकी तरह मैं आपके बिना क्षण मर्दकी  
 नहीं टहर सकता।' उद्देशे यनवासकी साक्षात्की आगम्य  
 तथा रामके विष्-भादेन पालनकी परमविद्वत् मद्रिया था।  
 इस पर रामने लक्ष्मणसे कहा था, 'मूषका इस कार्यकी  
 देवनाशिका कल नहीं माग्यता। साधव्य कार्यका मर  
 कर परिचितो मर्दकलित पर्यो कार्यसहाय बरु

जाय, तो उसे देवका कर्म समाप्तना चाहिये । देखो, किकेयी हमेंगासे मुझे भरतके समान मानना आती थी, पर वह जो मेरी जानी दुश्मन हो गई सो क्यों ? यह स्पष्ट देवका कर्म है, इसमें मनुष्यका कोई चारा नहीं ।" लक्ष्मणने उत्तरमें कहा, 'अति दीन और धनक व्यक्तिकी देवकी दोहाई देते हैं। पुत्रपकार द्वारा जो देवके प्रतिकूल पड़े होते, वे आपकी तरह अवसन्न न हो जाते। मृदु-व्यक्ति ही सर्वदा वष्ट भोगते हैं—"मृदुनि परिभूषते।" धर्म और सत्यका बहाना कर पिता जो घोर अन्याय करते हैं, वह क्या आपकी मालूम नहीं ? आप देवकृत्य हैं, मृदु और दान्त हैं तथा शत्रु भी आपकी प्रशंसा करते हैं । ऐसे पुत्रको किस अपराधसे धर्ममें भगा रहे हैं ? आप जो धर्म करनेके लिये छटपटा रहे हैं, उस धर्मको मैं अधर्म समझा। छोके पशयत्ती हो कर निरपराध पुत्रकी वनवास देना—यही क्या सत्य है, क्या इसीको धर्म कहते ? मैं आज ही अपने बाहुबल पर नयोध्याके सिंहासन पर बैठंगा । देवू तो सहो, कौन मुझे रोकता ? आज पुत्रपकारके अंकुशसे उद्दाम देव-दस्तीको मैं अपने कानू बरूंगा । जिसे आप देवकुल बतलाते हैं, उसे आप आसानीसे प्रत्यापमान कर सकते हैं, तब फिर किस लिये अकिञ्चित्कर देवकी प्रशंसा कर रहे हैं ?'

लक्ष्मण दृढ़, पुत्रपक्षित और विपदमें निर्भीक थे । विपद पड़ने पर वे हताश नहीं होते थे । विराध राक्षसके हाथमें सोताकी निःसहायभावमें पतित देव "दाय, आज माता किकेयीकी आज्ञा पूरी हुई" ऐसा कह कर रामचन्द्र अवसन्न हो गये थे । लक्ष्मणने माइकी उम अवस्थामें देव कुञ्ज सराकी तरह निद्रासत छोड़ कर कहा, 'शत्रुके समान पराक्रमी हो कर भाप धर्म बनायकी तरह प्रतिताप कर रहे हैं ? आर्ये, हम लोग दुष्ट राक्षसका वध करें।'

शैलविदे लक्ष्मणने पुत्रजीवन लाभ कर जब देवा, कि राम उनके नीकसे अप्योद हो अधूर्ण नैमोंसे दिव्योंकी तरह विलाप कर रहे हैं, तब उन्नी कातर अवस्थामें लक्ष्मणने इस प्रकार पीयूषहोम मोह्यमानिके लिये रामका तिरस्कार किया था । विरदकी अवस्थामें

रामकी एकान्त विह्वलता देव उन्हींमें व्यथित चित्तसे 'आप उरमाहशुभ्य न होयें' 'आपकी इस प्रकार दुर्बलता दिव्याना उचित नहीं' 'पुत्रपकार अव्ययन कीजिये' इत्यादि प्रकार उपदेन दे कर रामसे कहा था, "देवताओंके धमनलाभको तरह पशु-तपस्या कृच्छ्र साधन करके मदारान्न दानरधने आपकी पाया था । यह सब मैंने भरतके सुबसे सुनी है—आप तपस्याके फलस्वरूप हैं। यदि विपदमें पड़ कर आप जैसे धर्मात्मा सत्ता न पर सकें, तो साधारण आदमी किस प्रकार सत्ता करेगा ?"

राम जानते हीं या न जानते हीं, जिस विज्ञाने अन्याय किया है, लक्ष्मणने उसे क्षमा न की, यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। दानरधकी गुणराशि उर्दे अच्छी तरह मालूम थी, मोघकी उत्तमनासे वे चाहे जो कुछ कहें, पर दानरध पुत्रप्राप्तके प्राणत्याग करेंगे, इसका भी उर्दे पहले ही अनुमान हो चुका था । फिर भी वे दानरधकी फटकारनेसे वाज नहीं आये । सुमन्तने विद्याय काळमें जब लक्ष्मणसे पूछा, 'बुमार ! पितासे कुछ कहना भी है ?' इस पर लक्ष्मण बोले, 'राजसे कहना, उर्देमें रामको क्यों वन भेजा, निरपराध अपेष्ट पुत्रका धर्म परिवर्तन किया, बहुत सोचने पर भी मुझे समझमें आया । मैं महाराजके चरित्रमें निरुत्पन्न कोई निर्वर्शन नहीं देख पाता । मेरे घाता, वधु, भर्ता और पिता, सभी रामचन्द्र हीं ।'

भरतके प्रति उर्दे माटी रुंदे था । किकेयीके पुत्र भरत माताके भावसे अनुप्राणित होगे, इस गच्छाव-में उनकी अटल धारणा थी । केल्ल रामके उर्देमें वे भरतके प्रति कठोर धारणा प्रयोग नहीं करते थे । विशु जब अरापद वेनापण्ड अमन्य एन भरत रामके घरणोंमें लट गये, तब लक्ष्मणका संदेह दूर हुआ और लक्ष्मणके माइके मृगवृ हो गये । एक दिन जीव-कालकी रातकी पाटा गुर पड़ रहा था । विदिया अपने अपने चींभसेमें सिक्कू गई थी । उन्नी रामच भरतके लिये लक्ष्मणके प्राण रो उठे । उर्देमें रामने कहा, 'यह मोम शीत सन्न कर धर्मात्मा भरत आपकी मर्दिके लिये तपस्या कर रहे हैं । रात्र, जोग, मान, विनास सबों पर सन्न मात कर विदयाहाटी नरक्ष इस

भोग्य शोचकान्दो शक्तो जगो वर सो खे है । पावि-  
 मयका निमन पावक कर प्रतिदिन खेन रातिको भरत  
 मारवुमि रनाम करले है । विरसुगोचित राजकुमार  
 उत ममप किम प्रकार रनाम करले हीमि ।"

एन लक्ष्मणने हो गहले भरतके प्रति इतना मोघ  
 दिखलाया था । किन्तु तिम दिन उर्दे' रामभने भावा,  
 कि ये मन मनमें पून कर रामको तिम प्रकार सेवा  
 करले है, सवोप्याची महासमुद्रिके मध्य रू कर मो  
 भरत उमो प्रकार रामको भाकिमें छच्छू भावन कर रहे है,  
 उमो दिनसे भरतके प्रति जो कुछ उनका पुत भाव था,  
 यह जगता रहा, उनका स्वर खेदाद्र' और विमप्र हो  
 गया । किन्तु कैकेयीकी उर्देने कनो मो धुमा गहो'  
 किया । एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा था "देगएय  
 जिसके भ्राता है, साधु मरत जिसके पुत है, यह  
 कैकेयो पैवो मिच्छुए पयो हुरै ?"

अलक्ष्मण उपस्थित हुआ, किन्तु सुसोचका कही'  
 गया गहो' । उसने राम द्वारा बालों मारे जाने पर  
 प्रतिष्ठा की थी; कि यह शोकाको शोचनेमें मदद देगा ।  
 लक्ष्मणने सोचपूर्वक कहा, 'ममथसुपमो' एन मूर्खो  
 सुसोच उपकार वा कर मंगुपकारको सवदेखा करता है ।  
 इतका मजा अन्न पलाका है । रामने उनका मोघ ज्ञान  
 कर सुसोचके पास भेत दिया । सुसोचकी भागे कर्तव्य-  
 की बात पार किया कर लक्ष्मणने उसे जो सब बातें  
 कही थीं, उनमें संभवतः कुछ ये हैं—

"जिस मलसे बाटा भाषा है, यह पव संकुचित गहो'  
 हुआ है । सुसोच ! तुमने जो प्रतिष्ठा को है, उसका पयो  
 गहो' पालन करना, तथा बाजीके पयका अनुसरण करना  
 पारहता ?" किन्तु लक्ष्मणका भावित ज्ञान कर रामने एक  
 'पुनवच' सोच कर लक्ष्मणको सावधान कर दिया । भात  
 उम निपकशाहीका विनाम कहेगा । बाजोका पुन  
 अहूद यमो बागरीहो ले कर जानकीहो शोच करेगा ।

केवल बागमें हो ये सामुद्र म हुर, हाथमें तौर धनुष  
 ले कर मैदार हो गये । रामदाचिगति उरही कीउने  
 लता और भरने मनेमेंके विविध काङ्क्षामानहो  
 त्राद कर एतमद्रके उर्देजले भव दिया । पैर  
 मुहकी नेत्रजिबी सगामे तो कउर पयव

उम बधनको उर्देने किम प्रकार मता किया था, ज्ञान  
 कर भावयै हो सकता है । मारोम राक्षसने रामके  
 मरका अनुसरण कर विपन्न कएउने 'हा मरनाम' हू  
 कर चोरचार किया था । सोताने क्याकुण हो कर इयो  
 ममप लक्ष्मणको रामके पास जाने कहा । लक्ष्मण रामको  
 भासा उठा कर जानेको राजो न हुर । उर्देने सोचयो  
 समझा नर कहा, कि कुछ मारीव एत कर रहा है और  
 कोई बात गहो' है । रामजो कुनयपूर्वक है । किन्तु  
 सोताने क्यामोकी विपश्चानुमाने सातगुण हो अनुपूर्व  
 भीर मोघ भरो मारोने लक्ष्मणको कहा, "गू मरतका  
 पर है, मच्छमन कालिदास है, केवल मेरे मोभके जिये  
 रामके पीछे पीछे भाषा है, अगर राम पर कोई विपशु  
 पयो तो मैं भागमे मूद मरु'गो, यह सुन कर लक्ष्मण  
 कुछ ममप स्तम्भित और विमूढ़ हो लझे रहे । मोर  
 और लडासे उनके कपोल लाल हो गये । उर्देने कहा,  
 'देवो ! तुम मेरे निरह देवोस्वरूप हो, सुगहरे प्रति मुके  
 कुछ मो रदना उचित गहो' । जियोकी पुँउ स्वभागतः  
 हो भेदकारी होती है । ये विमुक्तपनी, मूरा भीर धनरा  
 होती है । सुगहरी बात तनकीहोउके सद्ग मेरे कानोमें  
 पुन रही है,—मिस्वर हो मेरो मूरधु उपस्थित हो गा,  
 पारो मोर मगुम लक्ष्मण दिखाई देने है ।" इतना यह  
 कर लक्ष्मण पहासे भव दिया । जगोके ममप उर्देने  
 सोताने कहा था, "विनासाक्ष ! ममो ये मर पमदेवता  
 सुगहरी रता करे' और पर लकीर जो मैं वांग देता है,  
 उसे कनो पार न करना ।"

लक्ष्मणका पुनवोचिच पारित सवेन सनेत्र था । उरही  
 पीछेपुन महिमा सर्वत्र बतावित थी,—गुण मोहालहा-  
 का लरद सुनिर्मल और सुवर्णित मो । सवय  
 जब मोताकी भावजगमारीसे ले जा रहा था, तब  
 मोतामे मूरधु मंथे पारये थे । उन भावुवनीको  
 रमा था । उमै देव कर लक्ष्मणने  
 मोताके वरुमें कनो  
 पय

गियोंके नूपुर और काञ्चीका खिलासमुगर-निखान सुन कर लक्ष्मण लजित होते थे। यह लज्जा प्रकृत पीछयकी लक्षण थी। चरितवान् साधुका इस प्रकार लज्जा स्थाभाविक था। जब मन्दिह्लाक्षी नमिताङ्गवष्टि तारा लक्ष्मणके पास आई,—उसका विशाल श्रोणो स्वलित काञ्चीका हेमसूत्र उनके सामने मृदुतरङ्गित हो उठा, तब लक्ष्मणसे शिर झुका लिया था। इन सब गुणोंसे वे देवताके समान पूजनीय थे, इसमें जरा भी संशय नहीं।  
**लक्ष्मण**—कई एक ग्रन्थकार और पण्डित। १ मुरवंश टीकाके रचयिता। २ एक ग्रन्थकार। इन्होंने चूडामणि सार, देवप्रतिविधिलास और रमलग्रन्थ नामक तीन ग्रन्थ लिखे। ३ परमहंससंहिताके रचयिता। ४ समस्पर्णिकके प्रणेता। ५ वैद्यकयोगवन्द्रिका या योगचन्द्रिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ये वृत्तके पुत्र तथा नागनाथ और नारायणके शिष्य थे। ६ मदाभाषादर्शिकके प्रणेता। इनके पिता का नाम था मुरारि पाठक। ७ पद्यामृत तरङ्गिणीधृत एक कवि। ८ मृच्छकटिकोकाके प्रणेता, लहावीक्षिकके पिता और शङ्कराक्षिकके पुत्र।

**लक्ष्मण**—१ एक हिन्दू-महाराज। कोसामके शिलाफलकमें यही सम्यक् उल्लेख देखा जाता है। २ कच्छप्रशासकशोष एक राजा, घयनामनके पिता। ये १०वीं सदीके मन्तमें विद्यमान थे। ३ बङ्गालके सेनवंशीय एक राजा। ये राजा केशवसेनके पीत और नारायणके पुत्र थे। ऐतिहासिक अशुल फजलने नारायणको 'नजिब' नामसे और सेनवंशके शोष स्वाधीन राजा कह कर उल्लेख किया है। लक्ष्मणसेन और बभ्रसेन देखो।

**लक्ष्मण आचार्य**—१ अष्टाङ्कचक्रवर्तीके प्रणेता। २ जगमोहन नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता। ३ पादुकासहस्र, विरोधपरिहार और वेदार्थविचारके प्रणेता।

**लक्ष्मणकवच** (सं० कृ०) १ लक्ष्मणकी स्तुति करनेका एक स्तोत्र। २ धुरणोविशेष।

**लक्ष्मण कथि**—कृष्णप्रयासचमूके रचयिता। २ चम्पू-रामायण मुद्रकाण्डके प्रणेता।

**लक्ष्मणकुण्डक** (सं० कृ०) एक तीर्थका नाम।

**लक्ष्मणगढ़**—राजपूतानेके जयपुर राज्यके शोषराष्टी सिन्धु-संगम एक नगर। जयपुर राज्यके मघोदय सामन्त

शोहर-वंशीय सरदार राय राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा १८०६ ई०में यद् नगर बसाया गया। यह नगर दुर्ग आदिसे परिभ्रमि तथा जयपुर नगरके अनुकरण पर बना है। यहाँ घनो महाजनोकी कई एक सुन्दर सुन्दर मठालिका है।

**लक्ष्मणगढ़**—राजपूतानेके मन्डवार सामन्त राज्यके भगवन्त एक नगर। यह मन्डवार नगरसे २३ मीलकी दूरी पर दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले यह स्थान तीर नामसे परिचित था। राजा प्रतापसिंहने दुर्ग बनानेके बाद इस स्थानका नाम बदल कर लक्ष्मणगढ़ रखा। नजफ याने इस दुर्ग पर हमला किया था।

**लक्ष्मण गुप्त**—कोशमोरवासी एक शैवशास्त्रिक। ये अराल और मट्टनारायणके शिष्य थे। तथा ६५० ई०में मौजूद थे।

**लक्ष्मणचन्द्र**—कोरगांवके एक हिन्दू-सामन्त राजा। इनकी उपाधि राजानक थी। ये त्रिगर्ष (जालंधर) राज जयचन्द्रके मघीन राज्य करते थे। इनकी माता लक्ष्मिका त्रिगर्ष-राजपुङ्गव द्वयचन्द्रकी लक्ष्मी थीं। कोरगांवके शिष्यवैद्यनाथ मन्दिरमें इनकी प्रशस्ति उत्कीर्ण देखी जाती है।

**लक्ष्मण ठाकुर**—गिरिकोके एक राजा तथा महाराज शिष्यसिद्धके पूर्वापुत्र।

**लक्ष्मणतोर्ध**—पुराणोक्त एक प्राचीन तीर्थ। इस नदीके जलमें स्नान करनेसे प्रयोग पुण्यलभ होता है। नारदपुराण ७५ अध्यायमें इस तीर्थमाहात्म्यका वर्णन है।

यह दक्षिण-भारतमें प्रवाहित कावेरी नदीके एक शाखा है। कुर्गताम्यमें प्रवाहितसिन्धुहिल कुर्गतामके पार्यङ्गसे निकल कर उत्तर-पूर्वको ओर महितुर-राज्य होता हुई कावेरी-सङ्गममें मिलती है। यहाँके नदीमें सात बांध हैं जिससे बेल परलेमें बड़ी सुविधा हो गई है। इन सब बांधोंमें दानामोद बांध सबसे बड़ा है।

उत्पत्ति स्थानसे कुछ दूर पर्यन्त पर आनेसे प्रशस्तिमें एक बड़ा जलप्रपात दिखाई देता है। यही प्रपात लक्ष्मण-तोर्ध नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ प्रति वर्षमें हजारों आदमी स्नान करने आते हैं। जिस परसे इस तीर्थमें माना होता है यह बड़ा ही विश्वप्रसन्नक है। एवंके दक्षिण-

भीषण शीतकाल की रातको जमोन परं सो रहे हैं। पारि-  
प्रज्वका नियम पालन कर प्रतिदिन शेष रातिको भरत  
सरयूमें स्नान करते हैं। चिरसुखोचित राजकुमार  
उस समय किस प्रकार स्नान करते होंगे।"

इन लक्ष्मणने ही पहले भरतके प्रति इतना क्रोध  
दिखलाया था। किन्तु जिस दिन उन्हें समझमें आया,  
कि वे वन वनमें घूम कर रामकी जिस प्रकार सेवा  
करते हैं, शयोध्याकी महासमृद्धिके मध्य रह कर भी  
भरत उसी प्रकार रामकी भक्तिमें छच्छ साधन कर रहे हैं।  
उसी दिनसे भरतके प्रति जो कुछ उनका घुरा भाव था,  
वह जाता रहा, उनका स्वर स्नेहाद् और विनम्र हो  
गया। किन्तु कैकेयीको उन्होंने कभी भी क्षमा नहीं  
किया। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा था "दशरथ  
जिसके स्वामी हैं, साधु भरत जिसके पुत्र हैं, वह  
कैकेयी ऐसी निष्ठुर क्यों हुई?"

शरत्काल उपस्थित हुआ, किन्तु सुग्रीवका कहीं  
पता नहीं। उसने राम द्वारा वाला मारे जाने पर  
प्रतिज्ञा की थी, कि वह सीताकी खोजनेमें मदद देगा।  
लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक कहा, 'भ्रायसुखमें रत भूर्ख  
सुग्रीव उपकार पा कर प्रत्युपकारकी अवहेला करता है।  
इसका मजा जल्द चखाता हूँ। रामने उनका क्रोध शान्त  
कर सुग्रीवके पास भेज दिया। सुग्रीवकी अपने कर्त्तव्य-  
की बात याद दिला कर लक्ष्मणने उसे जो सब बातें  
कही थीं, उनमें क्रोधसूचक कुछ ये हैं—

"जिस पक्षसे बाली गया है, वह पक्ष संकुचित नहीं  
हुआ है। सुग्रीव! तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका पर्वो  
नहीं पालन करता, क्या बालीके पक्षका अनुसरण करना  
चाहता?" किन्तु लक्ष्मणका चरित्र जान कर रामने एक  
'पुनश्च' जोड़ कर लक्ष्मणको सावधान कर दिया। आज  
उस मिथ्यावादीका विनाश करूँगा। बालीका पुत्र  
महद्द अभी बानरोंको ले कर जानकीको खोज करेगा।

केवल बातसे ही वे सन्तुष्ट न हुए, द्वापयमें तोर घनुप  
ले कर तैयार हो गये। बानराधिपति डरसे कांपने  
लगा और अपने गलेमें के विचित्र क्रोड़ामाल्यकी तोड़  
ताड़ कर रामवन्दके उद्देशसे चञ्चल दिया। ऐसे तेजस्वी  
युवकको तेजस्विनी सीताने जो कठोर वचन कहा था,

उस वचनकी उन्होंने किस प्रकार सह्य किया था, जान  
कर आश्चर्य हो सकता है। मारीच राक्षसे रामके  
स्वरका अनुकरण कर विपन्न कण्ठसे 'हा लक्ष्मण' कह  
कर चीत्कार किया था। सीताने व्याकुल हो कर उसी  
समय लक्ष्मणको रामके पास जाने कहा। लक्ष्मण रामकी  
आशा उठा कर जानेको राजी न हुए। उन्होंने सीतासे  
समझा कर कहा, कि हुए मारीच छल कर रहा है और  
कोई बात नहीं है। रामजी कुशलपूर्वक हैं। किन्तु  
सीताने स्वामीको विपदाशङ्कासे ज्ञानशून्य हो अश्रुपूर्ण  
और क्रोध भरी आवाँसे लक्ष्मणको कहा, 'तू भरतका  
चर है, प्रच्छन्न ज्ञातिशत्रु है, केवल मेरे लोभके लिये  
रामके पीछे पीछे आया है, अगर राम पर कोई विपदा  
पड़ी तो मैं आगमें कूद मरूँगी' यह सुन कर लक्ष्मण  
कुछ समय स्तम्भित और विमूढ़ हो खड़े रहे। क्रोध  
और लज्जासे उनके कपोल लाल हो गये। उन्होंने कहा,  
'देवो! तुम मेरे निकट देवीस्वरूप हो, तुम्हारे प्रति मुझे  
कुछ भी कदना उचित नहीं। स्त्रियोंकी बुद्धि स्वभावतः  
ही भेदकारी होती है। वे विमुक्तधर्मा, क्रूर और चपला  
होती हैं। तुम्हारी बात ततलीदंशकसे सद्गुण मेरे कानोंमें  
घुस रही है,—निश्चय ही मेरी मृत्यु उपस्थित हो गई,  
चारों ओर अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं।" इतना कह  
कर लक्ष्मण वहाँसे चल दिये। जतिके समय उन्होंने  
सीतासे कहा था, "विशालाक्षि! अभी ये सब वनदेवता  
तुम्हारी रक्षा करें" और यह लक्ष्मण जो मैं जाँच देता हूँ,  
उसे कभी पार न करना।"

लक्ष्मणका पुत्रोचित चरित्र सर्वत्र सतेज था। उनको  
पौष्यदूत महिमा सर्वत्र अनाविल थी,—शुभ्र शोफालिका-  
को तरह सुनिर्मल और सुपवित्र थी। रावण  
जब सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब  
सीताने कुछ आभूषण गोचे गिराये थे। उन आभूषणोंकी  
सुग्रीवने संप्रद कर रखा था। उसे देख कर लक्ष्मणने  
कहा था, 'मैंने हार और कैयूरको सीताके वननमें कभी  
नहीं देखा, इसलिये उसे नहीं पहचानता हूँ,  
केवल उनके दोनों पैरोंके नुनुरको। यथेति, पद्मवन्दना  
कालमें उसे अक्षर देना करना था।" किण्कणिकाकी  
गिरिगुहास्थित राजधानीमें प्रवेश कर गिरिवासिनी राम-

गियोके नूपुर और काञ्चीका विद्यासमुपार-निसन मुन कर लक्ष्मण लज्जित होते थे। यह लज्जा प्रकृत पीरुवकी लक्षण थी। चरितयान् साधुका इस प्रकार लज्जा स्वामाविक था। जब मन्विह्वलाज्ञी नमिताङ्गवष्टि नारा लक्ष्मणके पास आई,—उसका विद्याधरोणी स्थलित काञ्चीका हेमसूत्र उनके सामने मृदुतरङ्गित हो उठा, तब लक्ष्मणसे शिर फुका लिया था। इन सब गुणोंसे ये देवताके समान पूजनीय थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।  
 लक्ष्मण—कई एक ग्रन्थकार और पण्डित। १ मुद्रवंग टोकाके रचयिता। २ एक ग्रन्थकार। इन्होंने चूडामणि साद, देवप्रविधिविलास और रमलप्रथ नामक तीन ग्रन्थ लिखे। ३ परमहंससंहिताके रचयिता। ४ रामस्वार्णवके प्रणेता। ५ वीचकयोगचन्द्रिका या योगचन्द्रिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ये दत्तके पुत्र तथा नागनाथ और नारायणके शिष्य थे। ६ महाभाष्यदर्शके प्रणेता। इनके पिता का नाम था मुरारि पाठक। ७ पद्यामृत तरङ्गिणीधृन एक कवि। ८ मृच्छकटिकोकाके प्रणेता, ललाटोक्षितके पिता और शङ्कर दोक्षितके पुत्र।

लक्ष्मण—१ एक हिन्दू-महाराज। कोसामके शिलाफलकमें यही सम्बन्ध उल्लेखित देखा जाता है। २ कच्छरघात-पंशीय एक राजा, यज्ञरामनके पिता। ये १०वीं सदीके मन्तमें विद्यमान थे। ३ बङ्गालके सेनवंशीय एक राजा। ये राजा केशवसेनके बाल और नारायणके पुत्र थे। ऐतिहासिक मयुल फजलने नारायणको 'नजिय' नामसे और सेनवंशके शेष स्वाधीन राजा कह कर उल्लेख किया है। जदमणनीय और वन्देय देवो।

लक्ष्मण आचार्य—१ स्रष्टाकुचगुप्ततीके प्रणेता। २ जगमोहन नामक ज्योतिर्मन्थके रचयिता। ३ पादुकासहस्र, विरोचपरिहार और वेदार्थविचारके प्रणेता।

लक्ष्मणकवच (सं० कृ०) १ लक्ष्मणकी स्तुति करनेका एक स्तोत्र। २ धरणीविरोध।

लक्ष्मण कवि—कृष्णप्रिलासवर्णके रचयिता। २ चम्पू-रामायण मुद्रकाण्डके प्रणेता।

लक्ष्मणकुण्डक (सं० कृ०) एक तीर्थका नाम।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके जयपुर राज्यके शेखावाडी जिला-त्तर्गत एक नगर। जयपुर राज्यके सर्वोन्मथ सामन्त

शोकर-पंशीय सरदार राय राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा १८०६ ई०में यह नगर बसाया गया। यह नगर दुर्ग आदिसे परिदक्षित तथा जयपुर नगरके अनुकरण पर बना है। यहां घनी महाजनकी कई एक सुन्दर सुन्दर भट्टा-टिका है।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके अजयपुर सामन्त राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अजयपुर नगरसे २३ मीलकी दूरी पर दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले यह स्थान तौर नामसे परिचित था। राजा प्रतापसिंहने दुर्ग बनानेके बाद इस स्थानका नाम बदल कर लक्ष्मणगढ़ रखा। नजक यानि इस दुर्ग पर हमला किया था।

लक्ष्मण गुप्त—काश्मीरवासी एक शैवदर्शनिक। ये उतरल और भट्टनारायणके शिष्य थे। तथा १५० ई०में मीरू थे।

लक्ष्मणचन्द्र—कीरगांवके एक हिन्दू सामन्त राजा। इनकी उपाधि राजानक थी। ये खिगरी (जालम्बर) राज जय चन्द्रके म्प्रीन राज्य करने थे। इनकी माता लक्ष्मणिका खिगरी-राजपूत्र इन्द्रचन्द्रकी लड़की थी। कीरगांवके नियवैवनाथ मन्दिरमें इनकी प्रजापति उदकीर्ण देवी जाती है।

लक्ष्मण क्राकुर—गिरिजाके एक राजा तथा महाराज नियसिंहके पूर्वजुगप।

लक्ष्मणतार्थ—पुराणोक्त एक प्राचीन तीर्थ। इस नदीके जलमें स्नान करनेसे अरोग पुण्यलभ होता है। नारद-पुराण ७: अध्यायमें इस तीर्थमाहात्म्यका वर्णन है।

यह दक्षिण-भारतमें प्रयागिन कावेरी नदीका एक शाखा है। कुर्गराज्यमें प्रसिद्धिसिग्गिहित कुट्टिप्रामके पार्श्वदेशसे निकल कर उत्तर-पूर्वकी ओर महिगुर-राज्य होता हुई कावेरी-सङ्गममें मिली है। यहांकी गर्शमें सात बांध हैं जिससे गेह पटानेमें बड़ी सुविधा हो गई है। इन सब बांधोंमें हानागोद बांध सबसे बड़ा है।

उत्पत्ति रदानसे कुल दूर पर्वत पर भांनेने मन्त्रगिदिमें एक बड़ा जलप्रपात दिखार देता है। यही प्रपात लक्ष्मण-तार्थ नामसे प्रसिद्ध है। यहां प्रति वर्षमें हजारों भादमी स्नान करने माने हैं। जिस पर्वत इस तीर्थमें माना होता है वह बड़ा ही विश्वव्रजनक है। पर्वत दक्षिण-



भीषण शीतकाल की रातकी जमीन पर सो रहे हैं। पारि-  
प्रययका नियम पालन कर प्रतिदिन शेष रात्रिको भरत  
सरयूमें स्नान करते हैं। चिरसुखोचित राजकुमार  
उस समय किस प्रकार स्नान करते होंगे।"

इन लक्ष्मणने ही पहले भरतके प्रति इतना क्रोध  
दिखलाया था। किन्तु जिस दिन उन्हें समझमें आया,  
कि वे वन वनमें घूम कर रामकी जिस प्रकार सेवा  
करते हैं, शयोध्याकी महासमृद्धिके मध्य रह कर भी  
भरत उसी प्रकार रामको भक्तिमें छुट्टा साधन कर रहे हैं।  
उसी दिनसे भरतके प्रति जो कुछ उनका खुरा भाव था,  
वह जाता रहा, उनका स्वर स्नेहाद्रु और चिन्तन हो  
गया। किन्तु कैकेयीको उन्होंने कभी भी क्षमा नहीं  
किया। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा था "दशरथ  
जिसके स्वामी हैं, साधु भरत जिसके पुत्र हैं, वह  
कैकेयी पेसी निन्दुकर क्यों हुई?"

शरत्काल उपस्थित हुआ, किन्तु सुग्रीवका कहीं  
पता नहीं। उसने राम द्वारा वाली मारे जाने पर  
प्रतिज्ञा की थी, कि वह सीताको खोजनेमें मदद देगा।  
लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक कहा, 'भ्राभ्यस्तुषमं रत मूर्खं  
सुग्रीव उपकार पा कर प्रत्युपकारकी अवहेला करता है।  
इसका मजा जन्म चलाता हूँ। रामने उनका क्रोध शान्त  
कर सुग्रीवके पास भेज दिया। सुग्रीवको अपने कर्त्तव्य-  
की बात याद दिला कर लक्ष्मणने उसे जो सब बातें  
कही थीं, उनमें क्रोधसूचक कुछ थे हैं—

"जिस पथसे वालो गया है, वह पथ संकुचित नहीं  
हुआ है। सुग्रीव! तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका धर्मो  
नहीं पालन करता, क्या वालीके पथका अनुसरण करना  
चाहता है? किन्तु लक्ष्मणका चरित्र जान कर रामने एक  
'पुनश्च' जोड़ कर लक्ष्मणको सावधान कर दिया। आज  
उस मिथ्यावादीका विनाश करूंगा। वालीका पुत्र  
भङ्गद भी पानरोंको ले कर जानकीको खोज करेगा।

केवल बातसे ही वे सन्तुष्ट न हुए, हाथमें तीर धनुष  
ले कर तैयार हो गये। पानराधिपति डरसे कांपने  
लगा और अपने गलेमेंके विचित्र क्रोड़ांमाल्यको तोड़  
ताड़ कर रामचन्द्रके उद्देशसे च्य दिया। ऐसे तेजस्वी  
युवकको तेजस्विनी सीताने जो कठोर वचन कहा था,

उस वचनको उन्होंने किस प्रकार सहा किया था, जान  
कर आश्चर्य हो सकता है। मारोच राक्षसने रामके  
स्वरका अनुकरण कर विपन्न कहतेसे 'हा लक्ष्मण' कह  
कर चीत्कार किया था। सीताने व्याकुल हो कर उसी  
समय लक्ष्मणको रामके पास जाने कहा। लक्ष्मण रामकी  
आज्ञा उठा कर जानेको राजी न हुए। उन्होंने सीतासे  
समझा कर कहा, कि दुष्ट मारोच छल कर रहा है और  
कोई बात नहीं है। रामजी कुशलपूर्वक हैं। किन्तु  
सीताने स्वामीकी विपदाशङ्काले ज्ञानशून्य हो अधुपूर्णा  
और क्रोध भरी आँखोंसे लक्ष्मणको कहा, "तू भरतका  
चर है, प्रच्छन्न छातिशत्रु है, केवल मेरे लोभके लिये  
रामके पीछे पीछे आया है, अगर राम पर कोई विपदा  
पड़े तो मैं आगमें कूद मरूंगी, यह सुन कर लक्ष्मण  
कुछ समय स्तम्भित और विमूढ़ हो खड़े रहे। क्रोध  
और लज्जासे उनके कपोल लाल हो गये। उन्होंने कहा,  
'देवी! तुम मेरे निकट देवीस्वरूप हो, तुम्हारे प्रति मुझे  
कुछ भी कहना उचित नहीं। स्त्रियोंको बुद्धि स्वभावतः  
ही भेदकारी होती है। वे विमुक्तधर्मा, क्रूरा और चपला  
होती हैं। तुम्हारी बात तत्तलीहशोलके सद्गुरु मेरे फानोंमें  
घुस रही है,—निश्चय ही मेरी मृत्यु उपस्थित हो गई,  
चारों ओर अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं।" इतना कह  
कर लक्ष्मण वहाँसे चल दिये। जिनके समय उन्होंने  
सीतासे कहा था, "विशालाक्षि! आभा ये सब वनदेवता  
तुम्हारी रक्षा करें" और यह लीर जो मैं खोंच देता हूँ,  
उसे कभी पार न करना।"

लक्ष्मणका पुढोचित चरित्र सर्वत्र स्तुत था। उनकी  
पीठपूजा महिमा सर्वत्र अनाविल थी,—शुभ शोकालिका-  
को तरद सुनिर्मल और सुपवित्र थी। रावण  
जब सीताको आक्रान्तमार्गसे ले जा रहा था, तब  
सीताने कुछ आभूषण तोड़े गिराये थे। उन आभूषणोंको  
सुग्रीवने संप्रद कर रखा था। उसे देख कर लक्ष्मणने  
कहा था, 'मैंने हार और कैयूरको सीताके वदनमें कभी  
नहीं देखा, इसलिये उसे नहीं पहचानता हूँ,  
केवल उनके दोनों पैरोंके नुतुरको। क्योंकि, पद्मन्दना  
कालमें उसे अक्षर देखा करता था।" किरिन्द्याकी  
गिरिशुशस्थित राजधानीमें प्रवेश कर गिरिवारिनी रम-

वेशी राजाके सम्बन्धनाथ स्वयं उपस्थित हुए। उनके साथ एक भो सिपाही न गया था। शत्रुकी नाय पर चढ़ते ही वे चन्द्रीभावमें चन्द्रश्रीप लाये गये। यहां कारागृहमें रहने समय एक दिन रामचन्द्र उनसे मिले। इस समय लक्ष्मणमाणिक्यने उन्हें शुरी तरह घायल किया था। इस पर उन्होंने क्रोधसे अधीर हो लक्ष्मणके प्राण लेनेका हुकुम दे दिये। राजाका हुकुम फौरन तामिल किया गया।

लक्ष्मणमाधुर कावस्य—लक्ष्मणोरस्य वीर वैद्यसर्वथ्य नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ये अमरसिंहके पुत्र थे। लक्ष्मणराजदेव—चेदीराज्यके कलचूड़ी-वंशीय एक राजा तथा केयूरवर्ष १म युवराजदेवके पुत्र। पिताके रवर्ग सिंघासने पर ६५० ई०में वे राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राजकन्या राहड़से विवाह किया था। उनकी लड़की योग्यादेशीके साथ पश्चिम-चालुक्यराज विक्रमादित्यकी शादी हुई थी। राजदीहित २य सैलपने ६७३-६६७ ई० तक प्रभूत प्रतापके साथ राज्यशासन किया था।

विलहरिकलकसे मालूम होता है, कि राजा लक्ष्मण-राजदेव कोशलाधिपतिकी हरा कर पश्चिमप्रदेन जीतने की गये थे तथा गुजरातमें सोमेश्वरलिङ्गकी उपासना की थी।

लक्ष्मण चन्द्रोपाध्याय—एक बंगाली कवि। इन्होंने सग-पतः चन्द्रिष्ठत अध्यात्मरामायणका बंगलाशुभाक्ष किया था। इस रामायणकी दो सी वर्षकी पुरानी पुस्तक मिली है।

लक्ष्मण वेदांताचार्य—न्यायप्रकाशिका नामकी धीमाय्य टीकाके रचयिता।

लक्ष्मण शास्त्री—शमरकोयठ्याण्णका प्रणेता तथा विश्व-श्वर शास्त्रीके पुत्र।

लक्ष्मणसिंह—शतकोटीमण्डलके प्रणेता।

लक्ष्मणसेन—बंगालके सेनवंशीय एक राजा। ये चन्द्राल सेनके पुत्र थे। इनके समयमें मुसलमानों सेनाने बंगाल पर आक्रमण किया था। चाणक्यवर्षीयकलिकाके प्रणेता झुनपारिण, हलायुध, पशुपति, शिवदेव और धोषी कविने इन्होंनेकी समाधिं रह कर समाधी उद्वयन किया था। इन सब पण्डितोंके संगम होनेसे शत्रु

भी एक मुकवि हो गये थे। पद्यायलीमें इनकी बनाई बहुत-सी कविता उद्धृत हुई हैं। प्राचीन ताम्रलिपिमें ये दक्षिणाग्निचिह्नवी थे ऐसा उल्लेख देया जाता है। जब महम्मद-ई बलतिवारने पद्मार्ण किया, उस समय भूम लेनेवाले पण्डितोंकी प्रतीचनासे युद्धे राजा किस प्रकार राज्य छोड़ कर जगन्नाथ दर्शनके बहाने भाग गये यह बात किमोंसे छिपी नहीं है। कुन्दग्राहमें ये कुन्दपदतिर्सेत्कारक नामसे विख्यात है।

गेनराजवंग देसों।

लक्ष्मण सोमयाजिन्—सौताराम विहारकाव्यके प्रणेता तथा योगेशिष्टाङ्कके पुत्र।

लक्ष्मणसामो—कादमीरके मन्दिरमें प्रतिष्ठित लक्ष्मण-मूर्ति। (राज० ५१२७६)

लक्ष्मणा ((सं० ग्री०) लक्ष्मणमस्त्यस्या इति अशौ चादित्यात् टाप्। १ अथेतकएकारो। २ सारसो, सारस पशुकी मादा। ३ एक जड़ी जो पुनदा मानी जाती है। यह जड़ी पर्वतों पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चंदनकी सी बूँदें होती हैं। इसका कन्द रुफेद होता है और चर्से धीरघके काममें आता है। इसका संस्कृत पर्याय—लक्ष्मणाकन्द, पुत्र-कण्डी, पुत्रदा, नागिनी, नागह्व, नागपत्नी, गुलिनो, मञ्जिका, अश्रपिच्छदा, पुच्छदा। गुण—मधुर, शीतल, स्त्रीव्यथतानाशक, रसायन, बलकर और तिदीप-नाशक। (राज०)

मद्रदेशके राजा वृहत्सेनकी कन्या। यह हज्याग्रीसे ब्याही गई थी और उनको भाट परदानियोंसे ६० थी। (भागवत० १०।१८।२०) ५ दुर्योधनकी बेटीका नाम। इस कन्याका जब स्वयंवर हुआ तब धोरुणके पुत्र नाम्बने इसे हर कर विवाह किया।

(भागवत० १०।१८।१)

६ जयाका पेड़। ७ सुपुद्गुन्दरुह।

लक्ष्मणाचार्य (सं० पु०) दशः प्रथमकारका नाम।

लक्ष्मण भाचार्य देसों।

लक्ष्मणाजटा (सं० ग्री०) महद्वणामुत्र।

लक्ष्मणादित्य राजपुत्र—एक कवि। ये भीमेश्वरके शिष्य थे। कविकल्पदरपामे इनके बनाये श्लोक उद्धृत हैं।

पार्ष्वमें दुरारोह पर्वतशृङ्ग और घाम पार्ष्वमें गभीर नदीको फाई है। इन्हीं दोनोंके मध्यवर्ती पधसे वाली जाते जाते हैं। अन्त्यमनस्क होनेसे गिरनेकी सम्भावना है। मिश्रुक और संन्यासी राहकी पगलमें तरह तरहके रूप बना कर बैठे रहते हैं जो यात्रियोंके और भी मयके कारण है।

लक्ष्मणदास—श्रीसूक्तभाष्यके रचयिता।

लक्ष्मणदेव—तर्कभाषासारमञ्जरी प्रणेता माधवदेवके पिता।

लक्ष्मणदेशिक—एक प्रसिद्ध तान्त्रिक पण्डित। ये वारेन्द्र ब्राह्मण विजय आचार्यके पीत और श्रीकृष्णके पुत्र थे। इन्होंने काञ्चोवोयोज्जु नदीपदानपद्धति, कुण्डप्रखण्डपविधि, ताराप्रदीप, शारदातिलक, शबशांघिचिन्तामणि नामक शारदातिलकटीका और तन्त्रप्रदीप नामकी ताराप्रदीपटीका लिखी।

लक्ष्मणद्विवेदिन्—उपसर्गाधीतकत्वविचार, द्विकर्मवाद और सारस'ग्रह नामक व्याकरणके प्रणेता।

लक्ष्मणनायक—एक नायक-सरदार। ये १८१० ई०में बालघाटके अन्तर्गत परशुवड़ा नामक स्थानमें एक जनपद स्थापन कर गये हैं।

लक्ष्मण पण्डित—सारचन्द्रिका नामक राघवपाण्डवीय टीका और सूक्तिमुक्तावलीके रचयिता।

लक्ष्मणपति—गौरीजातकके प्रणेता।

लक्ष्मणप्रसू (सं० स्त्री०) लक्ष्मणस्य प्रसूजाननी। सुमिता।

लक्ष्मणमट्ट (सं० पु०) गीतगोविन्दकी टीकाके प्रणेता।

लक्ष्मणमट्ट—१ काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता चण्डिदासके एक मित्र। ग्रन्थकारने अपनी टीकामें बन्धुवरकी पंडितारिका परिचय दिया है। २ पद्यरचना और रत्नमालाके प्रणेता। ३ महभारतकी टीकाके प्रणेता। जहां तक सम्भव है कि ये भारतभावदीपके प्रणेता नालकण्ठके गुरु थे। ४ हीरकलपद्रुमके प्रणेता नारायणमट्टके पुत्र। इन्होंने बाघेल-सरदार राजा भावसिंह देवके आदेशानुसार उक्त ग्रन्थ संकलन किया। ५ आचाररत्न, आचारसार, गुरुशतकटिप्पण और गोत्रपवररत्नके रचयिता। रामलक्ष्मणमट्टके पुत्र, नारायणमट्टके पीत और रामेश्वरमट्टके प्रपौत्र थे। ६ लक्ष्मणमट्टीय नामक वैदन्तग्रन्थके रचयिता।

लक्ष्मणमणिषय—बङ्गालके प्रसिद्ध वारभूजोंसे एक भुलुआमें इनकी राजधानी थी। मेघनाके पूर्वावर्ती अनेक परगनों पर इनका आधिपत्य था।

बङ्गालके इस भूयांदाके प्रभाव और प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्ती प्रचलित हैं। उनका अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि एक दिन आदिशूर चंडीय बङ्गज कायस्थ श्रेणीमें उत्पन्न राजा विश्वभर राय चन्द्रप्रायके अन्तर्गत सीताकुण्ड तीर्था जा रहे थे। रातमें उन्हें रात हो गई। मेघनाके एक चौरवाल्के चरमें लङ्क डाल कर रात भर वहीं रहे। स्वप्नमें राजाने देखा कि भगवान् कह रहे हैं, "तुम आज जिस स्थानमें सो रहे हो, उनके चारों ओरके स्थानों पर तुम्हारा अधिकार होगा।" प्रातःकाल होने पर उन्होंने स्वप्नको ईश्वरका आदेश ही समझ लिया। उस स्थानको जीतनेका सङ्कल्प कर वे अरणोदयकालमें ही खाना हुए। प्रशांत नदीमें दिङ्गनिरूपण न कर सकनेके कारण वे इधर उधर भटकते रहे। इसी कारण राजाने उस स्थानका भुल वा भुलुआ नाम रखा।

प्रवाद है, कि १०वीं माघ अथवा १२०५ ई०में यह घटना घटी थी। इसके पहले ही महम्मद इ-वख्तियार खिलजीने बङ्गाल पर आक्रमण कर दिया था। प्रवाद-वर्षितकालनिर्ययमें विश्वास नहीं होने पर भी लक्ष्मणमणिषयको वंशलतासे मालूम होता है, कि राजा विश्वभरकी ११वीं पीढ़ीमें राजा लक्ष्मणमणिषय उत्पन्न हुए थे। विश्वभरकी मृत्यु और लक्ष्मणके जन्म, दोनोंमें ३५० वर्षका अन्तर है।

इधर ऐतिहासिक प्रमाणसे भी जाना जाता है, कि १५८६ ई०में चन्द्रदीपपति राजा कन्दर्पनारायण जीवित थे। राजा लक्ष्मणमणिषय उन्हींके समसामयिक थे। कन्दर्पनारायणकी मृत्युके बाद बालक रामचन्द्रराय राजा हुए। बालक रामचन्द्रकी लक्ष्मणमणिषय बुरी निगाहसे देखते थे। कई कारणोंसे क्रुद्ध हो उन्होंने भुलुआ पर चढ़ाई करनेके लिये जंगी जहाजोंकी सजाने-का हुकुम दिया। तदनुसार उनका दलबल अग्रशरले कर मेघना नदीको पार कर गया और लक्ष्मणको खबर दी गई। भुलुआ-राज फोड़े भागड़का न कर प्रति-

वेशी राजाके सम्बन्धनार्थ स्वयं उपस्थित हुए। उनके साथ एक भो सिपाही न गया था। शत्रुकी नाव पर चढ़ते ही ये वन्दीभावमें बन्दरहोप लाये गये। यहां कारागृहमें रहते समय एक दिन रामचन्द्र उनसे मिले। इस समय लक्ष्मणमाणिक्यने उन्हें बुरी तरह घायल किया था। इस पर उन्होंने क्रोधसे अधीर हो लक्ष्मणके प्राण लेनेका हुकुम दे दिये। राजाका हुकुम फौरन तामिल किया गया।

लक्ष्मणमाधुर कायस्थ—लक्ष्मणोत्सव और वैद्यसर्वस्व नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ये अमरनिहंके पुत्र थे। लक्ष्मणराजदेव—चेदोराज्यके कलचूड़ी-वंशीय एक राजा तथा कैयूरवर्ष १म शुकराजदेवके पुत्र। विलाके स्वयं सिंघारने पर १५० ई०में ये राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राजकन्या राहड़ाले विवाह किया था। उनकी लड़की योग्यादेवीके साथ पश्चिम-चालुक्यराज विक्रमादित्यकी शादी हुई थी। राजर्दीहित २य तैलपने ६७३-६६७ ई० तक प्रभूत प्रतापके साथ राजवशासन किया था।

विलहरिकलकसे मालूम होता है, कि राजा लक्ष्मण-राजदेव कोदालाधिपतिको हरा कर पश्चिमप्रदेश जीतने को गये थे तथा गुजरातमें सोमेश्वरलिङ्गकी उपासना की थी।

लक्ष्मण वन्दोपाध्याय—एक बंगाली कवि। इन्होंने राम-यतः यन्निष्ठकृत अष्टधात्मरामायणका बंगलानुवाद किया था। इस रामायणको दो सर्ग चर्चकी पुरानी पुस्तक मिली है।

लक्ष्मण वंशान्ताचार्य—न्यायप्रकाशिका नामकी धीमाय्य टीकाके रचयिता।

लक्ष्मण श्यामो—शमरकीपट्टापावाके प्रणेता तथा विदे-श्वर शारदोके पुत्र।

लक्ष्मणसिंह—शतकीटोमएडलके प्रणेता।

लक्ष्मणसेन—बंगालके सेनवंशीय एक राजा। ये बङ्गाल सेनके पुत्र थे। इनके समयमें मुसलमानी सेनाने बंगाल पर आक्रमण किया था। चातक्यवर्षावकलिकाके प्रणेता शालपाणि, इत्यायुध, पशुपति, त्रयदेव और धीरो कविने इन्हींकी सभामें रद कर सनाको उद्भवल किया था। इन सब कवित्तोके संनयं दोनेमे साथ

भो एक मुकवि हो गये थे। पद्यागलीमें इनकी बनाई बहुत-सी कविता उद्धृत हुई हैं। प्राचीन तादन्नियिमें ये दक्षिणातिथिविजयो थे येमा उल्लेख देवा जाता है। जब महम्मदई बलतिवारने पदापण किया, उस समय भूस लेनेवाले पंढितोकी प्रतीचनासे गुट्टे राजा फिस प्रकार राज्य छोड़ कर जगन्नाथ दर्शनके बढाने भाग गये यह बात किमोसे ठिपों नहीं है। बुलनारवमें ये बुलपञ्जतिसंस्कारक नामसे विख्यात है।

सेनराजोत देवो।

लक्ष्मण सोमयाजिन्—गीताराम-विहारकायके प्रणेता तथा मोर्णिएनडूरके पुत्र।

लक्ष्मणस्वामी—काश्मीरके मन्दिरमें प्रतिष्ठित लक्ष्मण-मूर्ति। (राज० ४१२७)

लक्ष्मणा ((सं० खी०) लक्ष्मणमस्त्यस्या इति शरी आदित्यात् टाप। १ श्वेतकण्टकारी। २ सारसी, सारस पक्षीकी मादा। ३ एक जड़ी जो पुत्रदा मानो जाती है। यह जड़ी पर्यती पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होने हैं और उन पर लाल चंद्रको सी बूंदें होती हैं। इसका कन्द रुफेद होता है और यही औषधके काममें जाता है। इसका संस्कृत पर्याय—लक्ष्मणाकन्द, पुत्र-कन्दा, पुत्रदा, नागिनी, नागाहा, नागपत्नी, तुलिनो, मञ्जिका, अन्नयिन्दुच्छरी, पुच्छदा। गुण—मधुर, शीतल, खीयन्ध्यातानाजक, रसायन, बलकर और लिदोप-नाजक। (राम० ७)

मद्रदेनके राजा गृहसेनकी कन्या। यह कृष्णजीने श्याही गई थी और उनकी साठ पररानियोंमेंसे एक थी। (भाग० १०।२५।२०) ५ दुर्वापनकी बेटोका नाम। इस कन्याका जब स्वयंवर हुआ तब धोहृष्णके पुत्र साम्बने इसे हर कर विवाह किया।

(भाग० १०।२५।१)

ई तयारा पैट। ७ मुपुइन्दरश।

लक्ष्मणाचार्य (सं० पु०) एक प्रख्यातका नाम।

लक्ष्मण भावायं देवो।

लक्ष्मणाजटा (सं० खी०) लक्ष्मणामूट।

लक्ष्मणादित्य राजपुत्र—एक कवि। ये हेमिन्द्रके जिय थे। कविकलाभरणमें इनके बताने उनीक उद्धृत है।

लक्ष्मणोदरः— लक्ष्मण की प्रार्थना राजधानी। इसका दूसरा नाम गौड़ था। गौड़ेश्वर मंदिर ज लक्ष्मणसेन (दूसरे-के मतसे सेनवंशीय अंतिम राजा लक्ष्मणनिवा) ने गौड़ राजधानीको अच्छी तरह सज्ज कर उसका 'लक्ष्मणावती' नाम रखा था। तत्परवर्त्ती मुसलमान पति-हासिक भी इस नगरका 'लक्ष्मणोदर' नामसे उल्लेख कर गये हैं। १२४३ ई०के कुछ वाद मिनहाजने इस नगरमें वास किया था। लक्ष्मणावतीका तोरणद्वार तथा अन्यान्य हिन्दू और मुसलमान-कीर्तिका निदर्शन आज भी जो गौड़राजधानीमें विद्यमान है उसका संक्षिप्त विवरण गौड़में लिखा जा चुका है। वर्त्तमान प्रन्तत्त्व-विद्को अध्ववसायसे इस प्राचीन जनपदके लुप्त इति-हासका अनेकांश बहलाहसेन और लक्ष्मणसेन आदि सेनवंशीय राजाओंके जीवन इतिहासके साथ साथ उद्घाटित होता है। उसका विस्तृत विवरण बङ्गालके इतिहासमें दिया जायगा।

गौड़, बङ्गाल और सेनराजवंश देखो।

लक्ष्मणोद ( सं० लि० ) लक्ष्मणोद देखो।

लक्ष्मण्य (सं० पु०) लक्ष्मणके पुत्र। ( ऋक् १०३११० )

लक्ष्मणी ( सं० स्त्री० ) लक्षा करनेका पथ।

लक्ष्मी ( सं० स्त्री० ) लक्ष्मिनि पश्यति उद्योगिनिति लक्षि ( लक्ष्मिन् च। उष् ३११६० ) ई प्रत्ययो मुहायपदच। विष्णुपत्नी। पचाय—पद्मालया, पद्मा, कमला, श्री, हरिप्रिया, इन्दिरा, लोकमाता, क्षीराश्वितनया, रमा, जलधिजा, भार्गवी, हरिवल्लभा, दुग्धाधिपतनया, क्षीरसागरसुता। ( कविकल्पलता )

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लक्ष्मीका उत्पत्ति-विषय इस प्रकार लिखा है,—एक दिन नारदने नारायणसे लक्ष्मीकी उत्पत्ति और पुजादिका विषय पूछा। नारायणने कहा था कि, "सृष्टिके पहले रासमण्डलस्थित परमात्मा श्रीहृण्यके वामभागसे लक्ष्मीदेवी उत्पन्न हुई। वे अत्यन्त सुन्दरी और तप्तकाञ्चनवर्णाभा थीं। उनका अङ्ग शीतलमें सुव्र-जनक, उष्ण और मोक्षकालमें शीतल, कटिदेश क्षीण, दोनों स्तन कठिन और नितम्ब अति विशाल था। यह देवी शिथरपीवना थी तथा उनका वर्ण श्वेत चम्पकके समान था। मुसलमण्डल शारदीय कौटिल्यपूर्णचन्द्रकी प्रभाकी

भी मात धरता था। दोनों ही प्रसूयणीक। छ। के विकसित पद्मशो भी तिरस्कार धरते थे। यह देवी उत्पन्न होते ही ईश्वरकी इच्छासे दो रूपोंमें विभक्त हो गईं। दोनों ही मूर्त्ति रूप, वर्ण, तेज, वयस, प्रभा, यश, यत्न, भूपण, गुण, हास्य, दर्शन, वाक्य, मधुरस्वर और नीतिये एक सी थीं। उनका नाम शंघिता और लक्ष्मी रखा गया। हृण्यकी चामांशसम्भूता मूर्त्ति लक्ष्मी तथा दक्षिणांशसम्भूता देवी राधिका कहलाई। राधिकाने उत्पन्न होते ही श्रीहृण्यकी कामना की। पीछे लक्ष्मीने भी हृण्यकी प्रार्थना की। श्रीहृण्यने इस प्रकार दोनोंसे प्रार्थित हो दोनोंका ही अभिप्राय पूर्ण किया था। इसके बाद श्रीहृण्य दक्षांशसे द्विभुज और वामांशसे चतुर्भुज इन दो भागोंमें विभक्त हुए। पीछे द्विभुज मूर्त्तिमें हृण्यने राधिकाको प्रदण किया और खीय चतुर्भुज नारायणमूर्त्ति ले कर लक्ष्मीकी प्रार्थना पूरी की। लक्ष्मीदेवी स्नायध दृष्टिसे समस्त विषय पर लक्षा रखती हैं, इस कारण वे महालक्ष्मी कहलाई। इस प्रकार द्विभुज हृण्य राधिकाकान्त तथा चतुर्भुज नारायण लक्ष्मीकान्त हुए थे।

श्रीहृण्य राधिका और गोपियोंके साथ गोलोकमें रहे तथा चतुर्भुज नारायण लक्ष्मीदेवीके साथ वैकुण्ठमें गये। हृण्य और नारायण दोनों ही स्वर्गांशमें एक-से हैं। यह लक्ष्मीदेवी शुद्धसत्त्वस्वरूपा हैं। वैकुण्ठयम दो उनका पूर्णाधिष्ठान निर्दिष्ट है। वे प्रेमसे नारायणकी श्रावण कर सभी रमणियोंमें प्रधान हुईं। यह लक्ष्मीदेवी शिथरकी सम्पत्तिरूपिणी स्वर्गलक्ष्मीरूपमें, पाताल और मर्त्यमें राजाओंके निकट राजलक्ष्मीरूपमें, गृहिण्य-गृहमें शुद्ध-लक्ष्मीरूपमें, फलांश द्वारा गृहिणी और सम्पद् रूपमें, गोगणकी प्रसूति सुरभिरूपमें, यज्ञकामिनी दक्षिणां रूपमें, क्षीरोदसागरकी कन्या रूपमें, चन्द्रसूर्यमण्डलमें, रत्नमें, फलमें, नृपपत्नीमें, दिव्य स्त्रीमें, गृहमें, समस्त शस्त्रमें, वस्त्रमें, परिष्कृत स्थानमें, देवप्रतिमामें, मङ्गलप्रदमें, माणिक्य और मुक्ता आदिमें शोभा रूपमें अवस्थान करती हैं। जहां जहां सामान्य रूपकी भी शोभा देखनेमें आवी है, वहां लक्ष्मीदेवी अवस्थित हैं, ऐसा जानना होगा। क्योंकि, लक्ष्मीदेवी ही एकमात्र शोभाकी धारका हैं। बिना उनके अवस्थानके शोभा रह नहीं सकती। लक्ष्मी

देवी जहां विराजित नहां रहती हैं वहां हतप्रो दिव्यार्थि देती हैं।

लक्ष्मीदेवी पहले वैकुण्ठधाममें नारायणसे पूजी गईं। पीछे प्रजा और महादेवने उनकी पूजा की। अनन्तर क्षीरोदसागरमें विष्णुने, भारतमें स्वायम्भुव मनुने, मान-वेन्द्र, भ्रवीन्द्र, मुनीन्द्र और सांघुघृहिंगणने तथा पातालमें नागोंने यथाक्रम उनका पूजन किया था। पहले प्रह्लादे भाद्रमासकी शुक्लाष्टमीसे समस्त पक्ष भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की थी। तभीसे त्रिलोकमें यह पद्धति प्रचलित है।

वैत, पीप और भाद्रमासके शुद्ध और मङ्गलजनक दिनमें विष्णुने उनकी पूजा की। पीछे त्रिलोकवासियों भी इन तीनों महानोंमें लक्ष्मीदेवीकी पूजा करने लगे। मनुने पीपमासके सप्तमिदिनमें प्राङ्गणके मध्य लक्ष्मीका पूजन किया। धीरे धीरे यह पूजन भी संसारमें प्रचलित हो गया। इसके बाद राजेन्द्र, मङ्गल, बेदार, बलदेव, सुपल, ध्रुव, इन्द्र, चलि, कश्यप, दक्ष आदिने उनकी पूजा की थी।

इस प्रकार यह सर्व सम्पूर्णव्यपिणी सकल वैश्वर्षकी अधिष्ठाती देवी लक्ष्मी सर्वदा सर्वत्र समी लोकोंसे यन्त्रित और पूजित होती है। लक्ष्मीदेवी वैकुण्ठमें पूर्णभावमें तथा चराचर ब्रह्माण्डमें अंशभावमें विराजित हैं।

नारायणसे लक्ष्मीदेवीकी उत्पत्ति आदिका विवरण सुन कर नारदके मनमें एक महा संशय उपस्थित हुआ। यह संशय दूर करनेके लिये उन्होंने भगवान्से प्रश्न किया कि, लक्ष्मीदेवी रासमण्डलमें आविर्भूत हुईं, किन्तु उनका नाम सिन्धु-तनया क्यों पड़ा? समुद्र मथ कर देवताओंने किस प्रकार लक्ष्मीकी प्राप्ति? आप यह संशय दूर कर ह्यार्थ करें।

भगवान्ने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'नारद! पहले दुर्वासा मुनिके अभिशापसे जब देवराज, देवगण और मरुतवासियों समी धीमत्त हुए, तब लक्ष्मीदेवी रुध हो परम दुःखितामनःकरालसे स्वर्गादिका परित्याग कर वैकुण्ठधाम गईं और महालक्ष्मीमें लीन हुईं। एक दिन देवराज इन्द्र अतिशय कामोन्मत्त भावमें रमाका शृङ्गार कर रहे थे। इसी समय अकस्मात् दुर्वासा मुनि शूद्रकी पूजा

करनेके लिये वहां जा पहुंचे। देवेश्वरने मुनीन्द्रकी देव कर शानदान्य व्यवस्थामें प्रणाम किया। इस पर महासुनि दुर्वासाने उन्हें आशुर्वाद् दे कर पारिजातपुत्र प्रदान किया और कह दिया कि यह पुत्र सफल पापनाशक और सब प्रकारका मङ्गलनिदान है। उन्होंने यह भी कहा, कि जो भक्तिपूर्वक धीदरिके चरणोंमें नियोजित यह पुत्र मस्तक पर धारण न करेगा, वह स्वर्गके साध धीमत्त होगा।

उस समय इन्द्र अत्यन्त कामोन्मत्त थे। उन्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका कुछ भी ध्यान न था। अनप्य दुर्वासाके चले जाने पर उन्होंने भ्रमजनक यह पुत्र पेरारणके मस्तक पर फेंक दिया। पेरारण उस पुत्रको मस्तक पर धारण करते ही इन्द्रका परित्याग कर जंगल चला गया। इन्द्र उसी समय स्वर्गोंके साध धीमत्त हुए। इन्द्रकी धीमत्त होते देव रमा भी उर्ध्वं टोप चली गईं, तब इन्द्रकी मीढ़ टूटी, ये होजमें भाये।

इन्द्र दड़े दुःखित हो भगवायती गये। भगवायती जा कर उन्होंने पुरीकी निरामन्दमय, जन्तुओंसे परिपूर्ण, दीन-मायापन्न तथा बन्धु पाण्डपवर्जित देवा। पीछे दूतके मुँहसे कुल पूस्तागत सुन कर ये देवताओंके साध ब्रह्माके निकट गये। ब्रह्माकी जब कुल हाल मालूम हुआ, तब ये इन्द्रसे कहने लगे, 'देवेश्वर! तुम मरत प्रपत्ति हो। निरस्तर्धीके आश्रयमें तुमने उज्ज्वल दीनिकी धारण किया था, तुम लक्ष्मी सद्गनी शर्चाका स्वामी हो। निर गो तुम सर्वदा पराई स्त्रीमें फँसे रहते हो, पहले तुम गौतमके शापसे भगवान् हो गया था, निम्न पर भी तुमने पर स्त्री-रमण नहीं छोड़ा। जो पर स्त्री-रमण करता है, उसकी धी और यश नष्ट होता है। इत्यादि प्रकारने इन्द्रकी तिरणकार कर लोकपितामहने फिरसे कहा, 'तमो तुम भगवान् विष्णुकी आराधना करो, ये तुम्हें लक्ष्मी-प्राप्तिका उपाय बतला देंगे।'

अनन्तर इन्द्र नारायणके उद्देशसे बहोर तपस्या करने लगे। तपस्यासे भ्रमन्त हो कर नारायणकी लक्ष्मीकी सिन्धु-वन्द्यारूपमें जन्म लेने कहा। पीछे लक्ष्मीके पानेके लिये देव दानवोंने मिल कर समुद्र-मथन किया था। इस समुद्र-मथनसे इन्द्रने रमाया परचरिणी लक्ष्मीकी प्राप्ति। नारायणकी आशामें उनके निरतारने

सिन्धुक्रान्त्यारूपमें लक्ष्मी प्रादुर्भूत हुई थी। समुद्रसे उत्पन्न हो कर लक्ष्मीने देव भादिकी घर विद्या। लक्ष्मीकी कृपासे इन्द्र राज्य और धीयुक्त हुए थे। उस समय सबोंने मिल कर लक्ष्मीदेवीका रतव किया था।

( महावैवर्तपु० ३२-३६ अ० )

लक्ष्मीचरित।

लक्ष्मी किस किस स्थानमें रहती है और कहाँ कहाँ नहीं रहती है उसका विषय पुराणादिमें इस प्रकार लिखा है,—यह लक्ष्मीचरित परम-पवित्र है। जो भक्ति पूर्वक उसे सुनते हैं उनका दुःख दूर होता है। लक्ष्मी-देवी जब समुद्रसे उत्पन्न हुई, तब गङ्गिरा, मरीचि भादि ऋषियोंने उनका पूजन और स्तव कर कहा था, 'माता! आप देवताओंके घर और मर्त्यलोक जाइये। जगज्जननी लक्ष्मीने देवताओंसे यह वचन सुन कर उन्हें कहा, 'मैं ब्राह्मणोंकी सलाहसे देवताओंके घर और मर्त्यलोकमें अवश्य जाऊँगी। हे सुनीन्द्रगण! भारतवर्षमें मैं जिनके घर जाऊँगी सो ध्यान दे कर सुनो।

मैं पुण्यवान् सुनीतिह गृहस्थ और राजाओंके घर स्थिरभावमें रह कर उन्हें पुत्रके समान प्रतिपालन करूँगी। गुरु, देवता, माता, पिता, वान्धव, अतिथि और पितृलोक जिनके प्रति रुष्ट हैं मैं उनके घर नहीं जा सकती। जो व्यक्ति हमेशा चिंता करता रहता है तथा जो सर्वदा भयभीत, शत्रुमस्त है, जो अटपट पातकी, ऋणमस्त या अतिशय कृपण है उन सब पापियोंके घर मैं पदार्पण नहीं करूँगी। जिस व्यक्तिने दीक्षा नहीं ली है, जो सर्वदा शोकपीडित, मन्दबुद्धि, खोके घसी-भूत है, जिसकी स्त्री और माता वेश्या है, जो कट्टुभाषी है, दमेश कलह करता है, जिसके घर हमेशा कलह होता है, जिसके घरमें स्त्रियाँ प्रधान है, उनके घर मैं प्रवेश नहीं करूँगी। जो व्यक्ति हरिपूजा और हरिकी गुण गान नहीं करता अथवा जो हरिकी प्रशंसा करना नहीं चाहता, जो व्यक्ति कन्या-विक्रय, आत्म-विक्रय और वेद विक्रय करता है वह नरहत्याकारक और हिंसक है, उसका घर नरकके समान है। यहाँ मैं कदापि नहीं जाऊँगी। जो व्यक्ति कृपणता, दोषसे दूषित हो कर माता, पिता, भार्या, गुरुपत्नी, गुणपुत्र, अनाथा, मगिनी,

कन्या और आश्रयरहित वान्धवोंका पोषण न करे सर्वदा धनसञ्चयमें लगा रहता है, मैं कभी भी उनके घर नहीं जाऊँगी।

जिस व्यक्तिके देवता अग्रिष्ठित, पत्न मलिन, मस्तक कृश, प्रास और हास्य विरुद्ध है तथा जो मूर्ख मूर्खविद्या त्याग करते समय मूर्खादि त्याग करनेवालेकी देखता है, जो भोग पैरकी धो कर वा पैरकी न धो कर सोता है, जो नंगा सोता है, जो शाम वा दिनकी शयन करता है उसके घरमें कभी भी पदार्पण नहीं करूँगी। जो व्यक्ति पहले शिरमें तेल लगा कर पीछे दूसरे अंगमें लगाता है, जो तेल लगा कर विष्टमूल त्याग करता, प्रणाम करता वा फूल तोड़ता है, जो नाभूमसे तृण काटता और जमीन कोड़ता है, जिसके शरीर और पैरमें मैल रहता है, उस पर मेरी कृपा नहीं रहती। जो व्यक्ति जान बूझ कर आत्म वृत्त वा परवृत्त ब्राह्मणकी या देवताकी वृत्ति धरण करता है, उसके घरमें मेरा स्थान नहीं। जो मन्दबुद्धि, शत्रु, दक्षिणाविहीन, यज्ञकारक और पापी है तथा मन्त्र और विद्या द्वारा जोविका-निर्वाह करता है, जो प्रामयाजी, चिकित्सक, पाचक और देवल, जो क्रोधवशता विवाह-कर्म या अन्य धर्मकार्योंमें बाधा पहुंचाता है तथा दिनकी मैथुन आचरण करता है, मैं इन सब व्यक्तियोंके घर नहीं जाती। ( महावैवर्तपु० गणेशखंड०, २१, २२ अ० )

पद्मपुराणमें लिखा है, कि एक दिन केजावने में कृष्ण पर सुजसे बैठी हुई लक्ष्मीसे पूछा था, 'देवी! तुम कहाँ पर निश्चल हो कर रहती हो।' उत्तरमें लक्ष्मीने विष्णुसे इस प्रकार कहा था—

"मेरुस्थले सुलोचिनीं क्षत्र्मीं वृक्षानि केसवः ।

केनोपायेन देवि त्वं शृण्वान्मवति निभता ॥

श्रीकृत्वा ।

सुनज्ञाः पारायता यत्र शृदिषी यत्र चोन्ज्वला ।

अकृत्वा वसतिर्धनं तत्र कृष्ण वषाम्भरम् ॥

धान्यं सुवर्णं वदन्तं तपकुला रजयोपमाः ।

अन्नन्वैवागुर्वं यत्र तत्र कृष्ण वषाम्भरम् ॥"

( लान्दपु० लक्ष्मीचरित )

जहाँ सफेद कवृत्तर रहते हैं, जहाँ शृदिषी सुन्दरी और कलहहीना है, यहाँ मैं अवस्थान करती हूँ। जहाँ धन





“श्वेतचन्द्रवर्णामा गुलटभ्या मनोहरा ।  
सरस्वतीर्षाकोटीन्दुप्रभा प्रच्छादितानना ॥”

( महावैवर्त्तपु० प्रकृतिल० ३५ अ० )

किन्तु दूसरी जगह इन्हें गौरवणी कहा है । जिस  
ध्यानसे लक्ष्मीपूजा होती है उस ध्यानके अनुसार ये  
गौरवर्णा हैं । ध्यान—

“पाशाक्षमालिकाम्बोजवृष्टिभिर्षाम्बोन्मयोः ।  
पद्मासनस्था ध्यायेद्य श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ॥  
गौरवर्णां मुरुपाञ्च सर्वालङ्कारमूषिताम् ।  
रीङ्गमपद्मप्रमकरां परदां दक्षिणेन ह ॥”

स्कन्दपुराणोक्त ध्यान—

“हिरण्यवर्णां हरिणीं मुवर्षां रजतस्रजम् ।  
चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदसमावहाम् ॥  
गौरवर्णान्ति द्विशुभां वितपद्मोपरिस्थिताम् ।  
विष्णोर्वैष्णवप्रसादाच्च जगच्छोभाप्रकाशिनीम् ॥”

आश्विनी पूर्णिमाके दिन कोजागरी लक्ष्मीपूजा  
और कार्तिकी अमावस्याके दिन दीपान्विता लक्ष्मी-  
पूजा होती है । दीपान्विता और कोजागरी शब्दमें देखो ।

२ दुर्गा । ३ सम्पत्ति, दीलत । ४ शोभा, सौन्दर्य ।  
५ ऋद्वधवीपथ, ऋद्धि नामकी ओपधि । ६ पृथ्विनामीपथ,  
वृद्धि नामकी ओपधि । ७ फलवानपृथ, वह पृथ जो  
फलता हो । ८ सोताजीका एक नाम । ९ वीरस्त्री ।  
१० स्थलपत्तिनी, थलकमल । ११ हरिद्रा; हल्दी । १२  
शामीपृथ । १३ द्रव्य, चीज । १४ मुका, मोती । १५ मोक्ष-  
की प्राप्ति । १६ पद्म, कमल । १७ श्वेत तुलसी, सफेद  
तुलसी । १८ मेघशृङ्गी, मेढासिंगी । १९ एक वर्णवृत्त  
जिसके प्रत्येक चरणमें दो रगण, एक गुरु और एक लघु  
अक्षर होता है ।

लक्ष्मी—एक विदुषी स्त्री-कवि । लक्ष्मी देलो ।

लक्ष्मीक (सं० लि०) १ लक्ष्मीपत्त, धनवान् । २ सौभाग्य-  
शुक, भाग्यवान् ।

लक्ष्मीकशच—एक मन्त्रोपच जो पहना जाता है । सागम-  
स्नान, कूर्मपुराण और स्कन्दपुराणमें इसका विषय  
लिखा है ।

लक्ष्मीकान्त (सं० पु०) लक्ष्म्याः कान्तः । १ नारायण ।  
२ फहोलेय-लक्ष्मीकान्त नामक एक देवता ।

लक्ष्मीकान्त न्यायभूषण (भट्टाचार्य)—रूपपद्धतिके प्रणेता ।  
इन्होंने छण्णनगराधिप राजा गिरिशचन्द्रके कहनेसे प्रायः  
६५ वर्ष पहले यह ग्रन्थ बनाया था ।

लक्ष्मीकुमार ताताचार्य—लघुभाष्य-प्रकाशिका और सार-  
चन्द्रिकाके रचयिता ।

लक्ष्मीकुलार्णव (सं० पु०) एक तन्त्रका नाम ।

लक्ष्मीगृह (सं० स्त्री०) लक्ष्म्याः गृहं भावासस्थान ।  
१ रकोत्पल, लाल कमल । २ लक्ष्मीवेश्म, लक्ष्मीका  
घर ।

लक्ष्मीचन्द्र मिश्र—शैवकल्पद्रुमके प्रणेता ।

लक्ष्मीजनाईन (सं० पु०) १ लक्ष्म्या सहितो जनाईना ।  
शालग्रामशिलाविशेष । इसके लक्षण—एक ओर चार  
चक्र, नवीन नीरदतुल्य अर्धात् घोर छण्णवर्ण तथा वन-  
मालारहित शालग्राम शिलाकी लक्ष्मीजनाईन कहते  
हैं । ( महावैवर्त्तपु० प्रकृतिल० और देवीभाग० ६।२५।१६ )  
२ लक्ष्मी और नारायण ।

लक्ष्मी रोड़ी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी संकर रागिणी ।  
इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं ।

लक्ष्मीताल (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्ततालः । १ श्रीताल-  
युक्त । २ संगीतमें १८ मात्राओंका एक ताल । इसमें  
१५ आघात और तीन षाली होते हैं ।

लक्ष्मीत्व (सं० स्त्री०) लक्ष्मी भावे त्व । १ लक्ष्मीका  
भाव या धर्म । २ पेश्वर्ष्य ।

लक्ष्मीदत्त—१ सहमचन्द्रिका-टीका और विद्याप्रदीपिका-  
टीकाके रचयिता । २ पाण्डवचरितकाव्यके प्रणेता  
तथा लक्ष्मीनारायणके पुत्र ।

लक्ष्मीदत्त आचार्य—धाकाश-निरूपण नामक न्यायग्रन्थ ।  
वचनभूषण (वेदान्त) तथा पदार्थशैपिका और संस्र  
नामक ध्याकरणके प्रणेता ।

लक्ष्मीदास (सं० पु०) योगशतक ग्रन्थके प्रणेता ।

लक्ष्मीदास—१ अनुमान-लक्ष्मणके प्रणेता । २ योग-  
शतक नामक ग्रन्थकर्ता । ३ केरलवासी एक कवि ।  
इन्होंने शुक्रसम्देश-काव्य रचा । ४ भास्कराचार्यश्री  
सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थकी गणिततत्त्वचिन्तामणि  
नामक प्रसिद्ध टीकाके प्रणेता । ये याचस्पति मिश्रके

पुत्र और केन्द्रयके पीत थे । इन्होंने १५०१ ई०में अपना ग्रन्थ समाप्त किया ।

लक्ष्मीदेव—मद्रुकके समसामयिक एक परिष्कृत । धीरुण्ट-चरित काश्यमें इनका उल्लेख है ।

लक्ष्मीदेवी ( सं० स्त्री० ) मिथिलाराज चन्द्रसिंहकी महिषी । ये लछिमा और लखिमा नामके मगहर थीं । विद्याचन्द्र आदि ग्रंथके प्रणेता मिस्रक मिश्र और मिताक्षरा-टोकाके रचयिता बालभद्र उग्रों द्वारा गाले पोसे गये थे । रानीने स्वयं परिष्कृतोंके साहाय्यमें मिताक्षरा-व्याख्यान नामक प्रसिद्ध मिताक्षरा-टोका लिखी ।

लक्ष्मीधर ( सं० पु० ) १ पविषणो छन्दका दूसरा नाम । २ विष्णु ।

लक्ष्मीधर—१ एक कवि । पद्यावलीमें इनका उल्लेख है ।

२ द्वाविड्यासी एक ब्राह्मण । भोजप्रबन्धमें इसका विषय वर्णित हुआ है । ३ अत्रद्वार सुकावलीके प्रणेता ।

४ चक्रवाणिकाथ्य और मलयर्णनकाव्यके रचयिता ।

५ विक्रमलटोकाके प्रणेता । पृथरत्नाकरादर्शमें इनका नामो-ल्लेख है । ६ स्मृतिकल्पद्रुम या बृहस्पकाण्डके रचयिता । ७ गणितप्रदीपके प्रणेता । ये मागनाथके भाई और निम्बदेवके पुत्र थे । ८ पद्मभाषाचन्द्रिकाके रचयिता ।

ये कौण्डभट्टके शिष्य और यशोभरभट्टके लङ्के थे ।

९ इतिहासिकाके प्रणेता तथा धीरुण्टके पुत्र और विद्याधरके पीत । १० विद्वज्जिविधिविध्वंस नामक ग्रन्थके रचयिता । ये मण्डदेवके पुत्र और धामनके पीत थे ।

लक्ष्मीधर आचार्य—नामचिन्तामणि, न्यायभास्कर और भगवन्नामकौमुदीके रचयिता । ये विठ्ठलाचार्यके पुत्र थे । मनग्तानन्द रघुनाथपति और धीरुण्ट सरस्वतीसे इन्होंने विद्या सोखी ।

लक्ष्मीधर—कवि-अद्वैतमकरन्द और न्यायमकरन्दके रचयिता ।

लक्ष्मीधर शैशिक—भानन्दहरिकी टोकाके बनानेवाले ।

लक्ष्मीधर भट्ट—१ कुण्डकारिकाके रचयिता । २ हृदय-फल्यतरुके प्रणेता । ये कान्यकुब्जाधिपति राजा गोविन्द-चन्द्र देवके मन्त्री और मदास्ताम्बियप्रदिक् हृदयधरके पुत्र थे । इनके रचे तीन और ग्रन्थप्रथम मिलने हैं,—

दानकल्पतरु, राजधर्मकल्पतरु और व्यवहारकल्पतरु । ये ग्रन्थ समाप्त । उक्त कल्पतरुके ही अर्द्ध हैं ।

लक्ष्मीधरसिंह—पिलाग नामक व्याकरणके प्रणेता । इन्होंने विशेषणद्वयवैयर्थ्य नामक न्यायशास्त्र भी बनाया ।

लक्ष्मीनाथ ( सं० पु० ) विष्णु ।

लक्ष्मीनाथ—गोपालाचर्यनन्दिकाके रचयिता ।

लक्ष्मीनाथ भट्ट—१ विद्वत्कार्यप्रदीपके प्रणेता रावण भट्टके पुत्र और नारायणके पीत । १८०० ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया । २ एक परिष्कृत । वृत्तमालिकके प्रणेता चन्द्रशेखर इनके लङ्के थे ।

लक्ष्मीनाथ मिश्र लोनावतीटोका और सिद्धांतनिरो-मणि-टोकाके प्रणेता ।

लक्ष्मीनाथ जर्मन—दिशुपाल-बध्याशयार्थके रचयिता । ये नारायण जर्मनके पुत्र और धंशीधर जर्मनके पीत थे ।

लक्ष्मीनारायण—१ उपशमाय, कानोस्तोत्र, शृणाष्टक, देव्याष्टक, गौराजनपचारक्षणविविक्ति, पांशुट्टासि-प्रकाश, शातःस्वयणाष्टक, भारतीयौराजन, मद्गुण्डनक, मदनमुण्डपटिका, रामचन्द्रपञ्चरत्नी, रामपञ्चरत्नीकल्प-लतिका, विषयवासिनीदशक, विश्वेश्वरनौराजन, विष्णु-गौराजन, शंभुराष्टक, नियमनक, निपस्तोत्र, मूर्च्छापट्टपत्री आदि ग्रन्थके प्रणेता । २ तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्यान नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता । ३ द्वापिठारिकाकके प्रणेता । ४ लघुसंभद्र नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता । ५ धृतशेष-टोकाके प्रणेता ।

लक्ष्मीनारायण—कुर्गाराज्यके दीवान । ये जातिके ब्राह्मण थे । १८३७ ई०में तालुकेदेगवानी गौडगण विद्रोहो हो उठे । धीरे धीरे यह विद्रोहकी माग दक्षिण-कानाहा दीतो हुई कुर्गाराज्यमें फैल गई । इन समय भक्तभर नामक एक राजद्रोहीके उकसाने पर दीवान लक्ष्मीनारायण भंगरेडोंके दुन्दन बन धेरे, किन्तु विद्रोहको कुर्गाराज्यके साहाय्यसे शीघ्र ही दीवानकीका दपन करने लगा ।

लक्ष्मीनारायण ( सं० पु० ) लक्ष्मणाधिपति नारायण । १ ज्ञानब्रामनिर्वाचितेय । जित्त ज्ञानब्राम-निर्वाका एक और धार चक्र, धीर कल्पवर्ण और वनमाता विभूति

लक्ष्मीधरसिंह—पिलाग नामक व्याकरणके प्रणेता । इन्होंने विशेषणद्वयवैयर्थ्य नामक न्यायशास्त्र भी बनाया ।

लक्ष्मीनाथ ( सं० पु० ) विष्णु ।

लक्ष्मीनाथ—गोपालाचर्यनन्दिकाके रचयिता ।

लक्ष्मीनाथ भट्ट—१ विद्वत्कार्यप्रदीपके प्रणेता रावण भट्टके पुत्र और नारायणके पीत । १८०० ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया । २ एक परिष्कृत । वृत्तमालिकके प्रणेता चन्द्रशेखर इनके लङ्के थे ।

लक्ष्मीनाथ मिश्र लोनावतीटोका और सिद्धांतनिरो-मणि-टोकाके प्रणेता ।

लक्ष्मीनाथ जर्मन—दिशुपाल-बध्याशयार्थके रचयिता । ये नारायण जर्मनके पुत्र और धंशीधर जर्मनके पीत थे ।

लक्ष्मीनारायण—१ उपशमाय, कानोस्तोत्र, शृणाष्टक, देव्याष्टक, गौराजनपचारक्षणविविक्ति, पांशुट्टासि-प्रकाश, शातःस्वयणाष्टक, भारतीयौराजन, मद्गुण्डनक, मदनमुण्डपटिका, रामचन्द्रपञ्चरत्नी, रामपञ्चरत्नीकल्प-लतिका, विषयवासिनीदशक, विश्वेश्वरनौराजन, विष्णु-गौराजन, शंभुराष्टक, नियमनक, निपस्तोत्र, मूर्च्छापट्टपत्री आदि ग्रन्थके प्रणेता । २ तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्यान नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता । ३ द्वापिठारिकाकके प्रणेता । ४ लघुसंभद्र नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता । ५ धृतशेष-टोकाके प्रणेता ।

लक्ष्मीनारायण—कुर्गाराज्यके दीवान । ये जातिके ब्राह्मण थे । १८३७ ई०में तालुकेदेगवानी गौडगण विद्रोहो हो उठे । धीरे धीरे यह विद्रोहकी माग दक्षिण-कानाहा दीतो हुई कुर्गाराज्यमें फैल गई । इन समय भक्तभर नामक एक राजद्रोहीके उकसाने पर दीवान लक्ष्मीनारायण भंगरेडोंके दुन्दन बन धेरे, किन्तु विद्रोहको कुर्गाराज्यके साहाय्यसे शीघ्र ही दीवानकीका दपन करने लगा ।

लक्ष्मीनारायण ( सं० पु० ) लक्ष्मणाधिपति नारायण । १ ज्ञानब्रामनिर्वाचितेय । जित्त ज्ञानब्राम-निर्वाका एक और धार चक्र, धीर कल्पवर्ण और वनमाता विभूति



लक्ष्म्याराम ( सं० पु० ) लक्ष्म्या आरामः । एक धनका नाम ।

लक्ष्य ( सं० स्त्री० ) लक्ष्मणे यदिति लक्ष्यम् । १ शर-  
वेधस्थान, वह जगद या वस्तु जिस पर किसी प्रकार-  
का निशाना लगाया जाय । पर्याय—लक्ष्य, शरव्य,  
प्रतिकार, वेध, घेघ । २ वह जिस पर किसी प्रकारका  
आक्षेप किया जाय । ३ ध्यात, बाधा । ४ अनुमय,  
वह जिसका अनुमाय किया जाय । ५ अर्थोंका एक  
प्रकारका संहार । ६ अमिलपित पदार्थ, उद्देश्य । ७  
वह अर्थ जो याच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य इन तीनों प्रकारके  
शब्दोंकी लक्षण-शक्तिके द्वारा निकलता है उसे लक्ष्य  
कहते हैं । अक्षया देखो । ( त्रि० ) ८ दर्शनीय, देखने  
योग्य ।

लक्ष्यक्रम ( सं० त्रि० ) १ जिस अज्ञात प्रणालीके द्वारा  
उद्दिष्ट वस्तुका आकार और इङ्गित जाना जाय । २  
काण्योक्तिमें अनिर्दिष्टबोधक ज्ञान जिसके प्रकाश करनेकी  
आवश्यकता नहीं रहती ।

लक्ष्यकृत्य ( सं० स्त्री० ) १ चिद्वागुत्थोलन ज्ञान, वह ज्ञान  
जो चिह्नोको देख कर उत्पन्न हो । २ वह ज्ञान जो दृष्टान्त-  
के द्वारा उत्पन्न हो ।

लक्ष्यना ( सं० स्त्री० ) लक्ष्यस्य भावा तल टाप् । लक्ष्यका  
भाव या धर्म, लक्ष्यत्व ।

लक्ष्यभेद ( सं० पु० ) चिह्नितस्थान विच्छिन्नकरण, एक  
प्रकारका निशाना जिसमें जोशोसे चल्ते या उड़ते हुए  
लक्ष्यको भेदते हैं । अर्जुनने आकाशमार्गमें स्वस्त मरुत्य-  
चिह्नको चतुर्भुजे पिकड किया था ।

लक्ष्यधीरो ( सं० स्त्री० ) लक्ष्यधीरो । १ मनुष्य-जीवनको  
उद्देश्यसाधक पन्था, वह उपाय या कर्म जिससे जीवन-  
का उद्देश्य सिद्ध होता हो । २ प्राल्लोचका मार्ग, देव-  
यान पन्थ ।

लक्ष्यवेधिन ( सं० त्रि० ) निम्नविद्धकासे, लक्ष्य वेध करने-  
वाला ।

लक्ष्यसुम ( सं० त्रि० ) मोद तोष्टनेवाला ।  
लक्ष्यद्व ( सं० त्रि० ) लक्ष्यं दन्ति इम किम् । १ लक्ष्यभेद  
कारी, उड़ते या तेजोसे चलते हुए पदार्थों या जीवों पर  
टोका निशाना करनेवाला । ( पु० ) २ शीर ।

लक्ष्यार्थ ( सं० पु० ) वह अर्थ जो लक्ष्यसे निकले ।

लखतार—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत  
एक देशो सामन्त राज्य । यह अक्षां २२° ४६' से २३°  
३०' तथा देशां ७१° ४६' से ७२° ३' पू०के मध्य अवस्थित  
है । भूपरिमाण २४८ वर्गमील और जनसंख्या १५  
हजारसे ऊपर है । इसमें ५१ ग्राम लगते हैं । राजस्व  
७० हजार रुपयेसे उपादा है । खान और लखतार नामक  
दो भूसम्पत्ति तथा अक्षयवाद् जिलेके कुछ ग्राम ले कर  
यह राज्य संगठित है ।

यहाँ एक भी नदी या पहाड़ नहीं है । अधिकतर  
स्थान समतल है । रई और धान ही यहाँका प्रधान  
उपज है । घेर और बोरानेणोके मुसलमान स्थानीय  
कवाससे एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार करते हैं ।  
धानको कुम्हार-जातिका मृगु निल्य प्रशंसनीय है । उपर-  
के सिवा यहाँ और किसी प्रकारका रोग नहीं दिखाई  
देता । यह स्थान बहुत स्वाम्यप्रभू है ।

यहाँके सरदार तृतीय श्रेणीके सामन्त कहलाते हैं ।  
१८०७ ई०की सन्धिसे अनुसार ये लोग भी अंगरेजोंकी  
अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए । इत्याहाबादके राजा  
साहब चन्द्रसिंहजीके लड़के अनापसिंहजीको लखतार  
तालुक धाराधरा राज्यसे मिला था । अनपसिंहने १६०४-  
१५ ई०के मोतार धान तथा आम पानके देश वारिपारसे  
छोन लिये । वर्तमान सरदार उन्हींके धनपर हैं । शकर  
इनको उपाधि है । जुनागढ़के नवाब और अंगरेजोंको  
कर देना पड़ता है ।

लखन ( द्वि० स्त्री० ) लखनेको शिवाया भाव ।

लखनऊ—१ अयोध्या प्रदेशके बम्बईप्रदेशके अधीन एक  
विभाग । यह युक्तप्रदेशके छोटे लाटके अन्तर्गत स्थित है ।  
अक्षां २५° ४६' से २८° ४२' ३०' तथा देशां ७९° ४१'  
से ८१° ३४' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण  
१२०५१ वर्गमील है । इसमें ४४ शहर और १०१५७  
ग्राम लगते हैं । लखनऊ शहर सबसे बड़ा है । लखनऊ  
उताय, रावबरेली, मीनापुर, हरदोई और मंडी जिला  
से कर यह विभाग संगठित है । जनसंख्या ३० लाखके  
करीब है ।

२ एक विभागका एक जिला । यह अक्षां २६° ३०'

२. कासाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली— पारा, हरिताल, प्रत्येक दो भाग ; खपड़ा, रंगा, फान्ते- लीह, अबरक, तांबा, कांसा, गंधक, प्रत्येक द्रव्य ८ तोला ले कर अच्छी तरह पीसे और फेसरके रसमें भावना दे कर इलायची, जायफल, तेजपत्र, लपङ्ग, यमानो, जोरा विकट्ट, त्रिफला, प्रत्येक एक एक भाग मिलावे। यामें चनेके समान गोली बना कर छायामें सुखा ले। अनु- पान शीतल जल है। इसके सेवनसे सभी प्रकारके कास शीघ्र नष्ट होते हैं। औषधसेवनकालका पथ्य— मछली, मांस, दूध और स्निग्ध भोजन। साग, खट्टा, मोठा खाना मना है। यह औषध क्षयकास, श्वास, एलीमफ, पाण्डु, गोघ, शूल, प्रमेह, और अर्श आदि रोगोंमें भी विशेष उपकारक है। (रसेन्द्रसारसं० कासाधि०)

३ वातव्याधिनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली— कृष्ण अबरक, पारा, गंधक, विजयंद, नागवेला, शतमूली, भूमिकुम्भाण्ड, काले धतूरेका बीज, हिजलबीज, वृद्धदारक- बीज, गोक्षुरबीज, सिद्धिबीज, जातोफल, जैती, कर्पूर प्रत्येक २ तोला, सोनेकी भस्म २ माशा, इन्धे एक साथ अच्छी तरह पीस कर चनेके बराबर गोली बनावे। अनु- पान त्रिफलाका जल वा दोषके बलावल अनुसार स्थिर करना होगा। यह औषध पुष्टिकारक, घटकर तथा चातुष्पाधि, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह आदि रोगनाशक है। (रसेन्द्रसारसं० वातव्याधि रोगाधिका०)

४ रसायन और वाजोकरण रोगाधिकारमें औषध- विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कृष्ण अबरकका चूर्ण ८ तोला, पारा, गंधक, कर्पूर, जायफल, जैती, वृद्धदारकबीज, धतूरेका बीज, सिद्धिबीज, भूमिकुम्भाण्ड, शतमूली, विज- यंद, गोषयल्ली, गोषरक, हिजलबीज, प्रत्येक २ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र चूर्ण कर पानके रसमें मर्दन करे और ३ रस्तीकी गोली बनावे। इस औषधके सेवनसे घोर सन्निपात, अठारह प्रकारके कुष्ठ, बीस प्रकारके प्रमेह, नाडोम्रण आदि रोग नष्ट होते हैं।

औषध सेवनके बाद दूध, दही, मांस, घुरा आदि पान करनेसे कामकी वृद्धि होती तथा वृद्धा जवान होना है। शुभशय और लिङ्ग निधिल कमी भी नहीं होता। मतवाले दाधीके समान बलवान् हो कर रोज सौ स्त्रीके

साथ संभोग कर सकता है। इससे नेत्रकी वृद्धि भी होती है। महाहमो नादके उपदेशसे जगन्पति भग- पान् वासुदेव इस रसका सेवन करे लाख स्त्रीके बलम- हुष थे। (रसेन्द्रसारसं० रसायनाधिका०)

लक्ष्मीघेष्ट (सं० पु०) लक्ष्मीयुकी घेष्टः। ताडपुत्र। लक्ष्मीश (सं० पु०) लक्ष्म्याः इशः। १ विष्णु। २ आश्रवृक्ष, आमका पेड़। (लि०) धनवान्, समीर। लक्ष्मीशसूरि—जैन सूरिभेद। ये परमाराध्यके पुत्र और मन्त्रदेवताप्रकाशिका नामक ग्रन्थके रचयिता विष्णु- देवके पिता थे।

लक्ष्मीश्रेष्ठां (सं० स्त्री०) स्थलपयिनी। (पंचकनि०) लक्ष्मीश्वर सिंह—मिथिलाके एक राजा। ये ऊषाहरण नाटकके प्रणेता, हर्षनाथके प्रतिपालक थे।

लक्ष्मीसख (सं० पु०) १ लक्ष्मीके प्रियपात या परपुत्र। २ राजा या घनी व्यक्ति।

लक्ष्मीसनाथ (सं० स्त्री०) रूप और पेशवर्षशाली। लक्ष्मीसमाह्वया (सं० स्त्री०) लक्ष्म्यासह आह्वयों पक्ष्या। सीता।

लक्ष्मीसहज (सं० पु०) लक्ष्म्या सहजातः इति जनक, क्षोराब्धिजातत्वात्स्य त्वात्त्वं। चन्द्रमा।

लक्ष्मीसागर सूरि—एक जैन सूरि। इनका जन्म १४०८ ई०में हुआ था। इनके शिष्य शुभश्रीलघुनिने पञ्च- शतीप्रबन्धसम्बन्ध और स्नातृपञ्चाशिका आदि ग्रन्थकी रचना की थी।

लक्ष्मीसिंह—रंगपुरके एक राजा। इनकी माताका नाम कमलेश्वरी था। (देशावली)

लक्ष्मीसिंह नरेन्द्र—आसामके इन्द्रवंशीय एक राजा। १७५१ ई०में ये सिंहासनसे उतारे गये।

लक्ष्मीसूक्त (सं० स्त्री०) धीसूक्त। भीष्मके श्लो। लक्ष्मीसौन (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक पक्षिकी नाम। (६६।१७३)

लक्ष्मीस्तोत्र (सं० स्त्री०) लक्ष्मीदेवीका स्तव। लक्ष्मेश्वर (लक्ष्मीश्वर)—बम्बई प्रेसिडेन्सीकी दक्षिण मराठ एजेन्सीके मिराज राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° ७' १०" उ० तथा देशा० ७४° ३०' ४०" पू०के मध्य अवस्थित है। यह एक पुराना देवमन्दिर है।

लक्ष्म्याताम ( सं० पु० ) लक्ष्म्या आताम । एक वनका नाम ।

लक्ष्य ( सं० स्त्री० ) लक्षाने यदिति लक्ष्यं प्यत् । १ शर-  
वेधस्थान, यह जगद या वस्तु जिस पर किसी प्रकार-  
का निशाना लगाया जाय । पर्याय—लक्ष्य, शरव्य,  
प्रतिकार, वेध, वेध । २ यह जिस पर किसी प्रकारका  
आक्षेप किया जाय । ३ ध्याज, बाधा । ४ अनुमय,  
यह जिसका अनुमय किया जाय । ५ भयोंका एक  
प्रकारका संहार । ६ अमिलयित पदार्थ, उद्देश्य । ७  
यह अर्थ जो वाच्य, लक्ष्य और ध्यङ्ग इन तीन प्रकारके  
शब्दोंकी लक्षण-शक्तिके द्वारा निकलता है उसे लक्ष्य  
कहते हैं । अश्रवा देतो । ( त्रि० ) ८ नृशनीय, देखने  
योग्य ।

लक्ष्यकम ( सं० त्रि० ) १ जिस अक्षत प्रणालीके द्वारा  
उद्दिष्ट वस्तुका आकार और इन्द्रिय जाना जाय । २  
काष्ठीकिर्तमें अनिर्देश्यबोधक ज्ञान जिसके प्रकाश करनेकी  
आवश्यकता नहीं रहती ।

लक्ष्यहरय ( सं० स्त्री० ) १ चिह्नानुशीलन ज्ञान, यह ज्ञान  
जो चिह्नोंकी देख कर उत्पन्न हो । २ यह ज्ञान जो दृष्टान्त-  
के द्वारा उत्पन्न हो ।

लक्ष्यना ( सं० स्त्री० ) लक्ष्याय भावा तल-टाप् । लक्ष्याका  
भाव या धर्म, लक्ष्यत्व ।

लक्ष्यभेद ( सं० पु० ) चिह्नितस्थान विच्छिन्नकरण, एक  
प्रकारका निशाना जिसमें तेजोसे चलते या उड़ते हुए  
लक्ष्याकी भेदते हैं । अर्जुनने आकाशमार्गमें श्वेत मरुत्य-  
चिह्नको धारणयत्ने पित्त किया था ।

लक्ष्यबोधो ( सं० स्त्री० ) लक्ष्याबोधो । १ मनुष्य-ओषधको  
उद्देश्यसाधक पन्था, यह उपाय या कर्म जिससे औषध-  
का उद्देश्य निन्द होता हो । २ प्रत्यक्षीकका मार्ग, देव-  
पान पथ ।

लक्ष्यशेषिन् ( सं० त्रि० ) चिह्नविदकाते, लक्ष्य शेष करने-  
वाला ।

लक्ष्यसुप्त ( सं० त्रि० ) नीद सोइनेवाला ।

लक्ष्यद्वन्द्व ( सं० त्रि० ) लक्ष्या इत्थि द्वाव क्विप् । १ लक्ष्याभेद  
कारी, उड़ने या तेजोसे चलने हुए पदार्थों या जीवों पर  
होक निशाना करनेवाला । ( पु० ) २ शौर ।

लक्ष्यार्थ ( सं० पु० ) यह अर्थ जो लक्षणासे निकले ।

लखतार—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत  
एक देगो सामन्त राज्य । यह अक्षा० २२° ४१' से २३°  
३० तथा देशा० ७१° ४६' से ७२° ३' पू०के मध्य अवस्थित  
है । भूपरिमाण २४८ वर्गमील और जनसंख्या १५  
हजारसे ऊपर है । इसमें ५१ ग्राम लगते हैं । राजस्व  
७० हजार रुपयेसे उपादा है । घान और लखतार नामक  
दो भूसम्पत्ति तथा अजयपुराद जिलेके कुछ ग्राम ले कर  
यह राज्य संगठित है ।

यहां एक भी नदी या पहाड़ नहीं है । अधिकांश  
स्थान समथल है । रई और घान ही यहांका प्रधान  
उपज है । घेर और बोरप्रैणोके मुसलमान स्थानीय  
कवाससे एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार करते हैं ।  
घानको कुम्हार-जातिका मूल गिल्ग प्रशमनीय है । उपर-  
के सिवा यहां और किसी प्रकारका रोग नहीं दिग्गई  
देता । यह स्थान बहुत स्वाध्वप्रद है ।

यहांके सरदार तुनीय श्रेणीके सामन्त कहलाते हैं ।  
१८०७ ई०की सन्धिसे अनुसार ये लोग भी अंगरेजोंकी  
अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए । स्वाहाबादके राजा  
सादर चन्द्रसिंहजीके लड़के अनवरसिंहजीके लखतार  
तालुक धारणुग राज्यसे मिला था । अनवरसिंहने १६०४-  
१५ ई०के मोतर घान तथा अन्न पासके देन भारतियासे  
छोन लिये । वर्तमान सरदार उद्दीके पंगपर हैं । मकर  
इनको उपाधि है । जुनागढ़के नवाब और अंगरेजोंको  
कर देना पड़ना है ।

लखन ( द्वि० स्त्री० ) लखनेकी क्रिया या भाव ।

लखनऊ—१ अयोध्या प्रदेशके कमीशनके अधीन एक  
विभाग । यह युक्तप्रदेशके छोटे लालके जामनापीन है ।  
अक्षा० २५° ४६' से २८° ४२' उ० तथा देशा० ७१° ४१'  
से ८१° ३४' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण  
१२०५१ वर्गमील है । इसमें ४४ नगर और १०१५०  
ग्राम लगते हैं । लखनऊ नगर सबसे बड़ा है । लखनऊ  
उनाय, रावबदेई, सोतापुर, हर्षोई और पैरा जिल्ला  
ले कर यह विभाग संगठित है । जनसंख्या १० लाखके  
बरोबर है ।

२ एक विभागका एक जिला । यह अक्षा० २६° ३०'

२ कासाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—  
पारा, हरिताल, प्रत्येक दो भाग; खपड़ा, रांगा, कान्ते-  
लौह, अवरक, तांबा, कांसा, गंधक, प्रत्येक द्रव्य ८ तोला  
ले कर अच्छी तरह पीसे और केसरके रसमें भावना दे  
कर इलायची, जायफल, तेजपत्र, लपड़ा, यमानो, जीरा  
लिकट्ट, लिफला, प्रत्येक एक एक भाग मिलावे। बादमें  
चनेके समान गौली बना कर छायामें सुखा ले। अनु-  
पान शीतल जल है। इसके सेवनसे समी प्रकारके  
कास शीघ्र नष्ट होते हैं। औषधसेवनकालका पथ्य—  
मछली, मांस, दूध और स्निग्ध भोजन। साग, घड़ा,  
मोठा खाना मना है। यह औषध क्षयकास, श्वास,  
एलीमफ, पाण्डु, शोथ, शूल, प्रमेह, और बर्षी आदि  
रोगोंमें भी विशेष उपकारक है। (रसेन्द्रसार० काषाधि०)

३ वातव्याधिनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—  
एण्ड अवरक, पारा, गंधक, विजयवंद, नागधला, शतमूली,  
भूमिकुम्भाएड, काले धतूरेका बीज, हिजलबीज, वृद्धदारक-  
बीज, गोक्षू रबीज, सिद्धिबीज, जातीफल, जैती, कर्पूर  
प्रत्येक २ तोला, सोनेकी भस्म २ माशा, इन्धे एक साथ  
अच्छी तरह पीस कर चनेके बराबर गौली बनावे। अनु-  
पान लिफलाका जल या दूधके बलबल अनुसार स्थिर  
करना होगा। यह औषध पुष्टिकारक, बलकर तथा  
वातव्याधि, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह आदि रोगनाशक है।  
(रसेन्द्रसार० वातव्याधि रोगाधिका०)

४ रसायन और वाजोकरण रोगाधिकारमें औषध-  
विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—एण्ड अवरकका चूर्ण ८ तोला,  
पारा, गंधक, कर्पूर, जायफल, जैती, वृद्धदारकबीज,  
धतूरेका बीज, सिद्धिबीज, भूमिकुम्भाएड, शतमूली, विज-  
यवंद, गोपधल्ली, गोखरू, हिजलबीज, प्रत्येक २ तोला,  
इन सब द्रव्योंकी एकल चूर्ण कर पानके रसमें मर्दन करे  
और ३ रस्तीकी गौली बनावे। इस औषधके सेवनसे  
घोर सन्निपात, अठारह प्रकारके कुष्ठ, बीस प्रकारके  
प्रमेह, नाड़ीघ्नण आदि रोग नष्ट होते हैं।

औषध सेवनके बाद दूध, दही, मांस, सुरा आदि  
पान करनेसे कामकी वृद्धि होती तथा वृद्धा जवान होता  
है। शुक्रस्य और लिङ्ग जिघ्रित कभी भी नहीं होता।  
मंतवाले हाथोंके समान बलवान् हो कर रोज सौ स्त्रीके

साथ संगोग कर सकता है। इससे नेत्रकी वृद्धि भी  
होती है। महारतों नादके उपदेशसे जगत्पति भग-  
वान् वासुदेव इस रसका सेवन कर लाख स्त्रीके बलम-  
हुए थे। (रसेन्द्रसार० रसायनाधिका०)

लक्ष्मीवेष्ट (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्ती वेष्टः। ताडुनी।  
लक्ष्मीश (सं० पु०) लक्ष्म्याः शः। १ विष्णु।  
२ आश्रयण, आमका पेड़। (त्रि०) घनवान्, बमीर।  
लक्ष्मीशसूरि—जैन सूरिभेद। ये पत्ताराधकके पुत्र और  
मन्त्रदेवताप्रकाशिका नामक ग्रन्थके रचयिता विष्णु-  
देवके पिता थे।

लक्ष्मीश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) स्थलपद्मिनी। (पैरनि०)  
लक्ष्मीशर सिद्ध—मिथिलाके एक राजा। ये ऊपारण  
गाठकके प्रणेता, हर्षनायकके प्रतिपालक थे।

लक्ष्मीसख (सं० पु०) १ लक्ष्मीके मियपात या परपुत्र।  
२ राजा या धनी ध्यक्ति।

लक्ष्मीसनाथ (सं० स्त्री०) रूप और चेश्वर्यशाली।  
लक्ष्मीसमाह्वया (सं० स्त्री०) लक्ष्म्यासह आह्वयं यस्याः।  
सीता।

लक्ष्मीसहज (सं० पु०) लक्ष्म्या सहजातः इति जन इ,  
क्षोराधिजातत्यादास्य तयास्य। चन्द्रमा।

लक्ष्मीसागर सूरि—एक जैन सूरि। इनका जन्म १४०८  
ई०में हुआ था। इनके शिष्य शुभशीलगणिने पञ्च-  
शतीप्रबन्धसम्बन्ध और स्नातृपञ्चाशिका आदि ग्रन्थकी  
रचना की थी।

लक्ष्मीसिद्ध—रंगपुरके एक राजा। इनकी माताका नाम  
कमलेश्वरी था। (देशायली)

लक्ष्मीसिद्ध नरेन्द्र—आसामके इन्द्रवंशीय एक राजा।  
१७५१ ई०में ये सिंहासनसे उतारे गये।

लक्ष्मीयुक्त (सं० स्त्री०) श्रीयुक्त। भीयुक्त देलो।  
लक्ष्मीसेन (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक पृथकिका  
नाम। (६६१७३)

लक्ष्मीस्तोत्र (सं० स्त्री०) लक्ष्मीदेविका स्तव्य।  
लक्ष्मीशर (लक्ष्मीशर)—बम्बई में सिद्धिस्तोत्रीके दक्षिण मराठ  
पंजेसोके मिराज राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा०  
१५° ७' १०" उ० तथा देशा० ७४° ३०' ४०" पू०के  
मध्य स्थित है। यह एक पुराना देवमन्दिर है।

लक्ष्म्याराम ( सं० पु० ) लक्ष्म्या आरामः । एक घनका नाम ।

लक्ष्य ( सं० स्त्री० ) लक्षाने यदिति लक्ष ण्यत् । १ शर-  
वेधहथान, वह जगद या वस्तु जिस पर किसी प्रकार-  
का निशाना लगाया जाय । पर्याय—लक्ष्य, शरण्य,  
प्रतिकार, वेध, वेध । २ वह जिस पर किसी प्रकारका  
आक्षेप किया जाय । ३ ध्याज, बाधा । ४ अनुमय,  
वह जिसका अनुमाय किया जाय । ५ भूलोंका एक  
प्रकारका संहार । ६ कमिलपित पद्मार्थ, उद्देश्य । ७  
वह अर्थ जो चाक्य, लक्ष्य और ध्यङ्ग इन तीनों प्रकारके  
शब्दोंको लक्षण-शक्तिके द्वारा निकलता है उसे लक्ष्य  
कहते हैं । अण्णो देखो । ( लि० ) ८ श्रुशनीय, देखने  
योग्य ।

लक्ष्यमम ( सं० लि० ) १ जिस अज्ञात प्रणालीके द्वारा  
उद्दिष्ट वस्तुका आकार और इङ्कित जाना जाय । २  
काष्ठीकिर्मिं अनिर्देश्यबोधक ज्ञान जिसके प्रकाश करनेकी  
आवश्यकता नहीं रहती ।

लक्ष्यहरय ( सं० स्त्री० ) १ चिह्नानुशीलन ज्ञान, यह ज्ञान  
जो चिह्नोंको देख कर उत्पन्न हो । २ यह ज्ञान जो दृष्टान्त-  
के द्वारा उत्पन्न हो ।

लक्ष्यना ( सं० स्त्री० ) लक्ष्यस्य भावः तल टाप् । लक्ष्यका  
भाव या धर्म, लक्ष्यस्य ।

लक्ष्यभेद ( सं० पु० ) चिह्नितस्थान विच्छिन्नकरण, एक  
प्रकारका निशाना जिसमें तेजोसे खलते या उड़ते हुए  
लक्ष्यको भेदते हैं । मनुजने आकाशमार्गमें स्थल मरत्य-  
चिह्नको धारणपथसे विद्व किया था ।

लक्ष्यधीवी ( सं० स्त्री० ) लक्ष्याधीवी । १ मनुष्य-जीवनको  
उद्देश्यसाधक पन्था, यह उपाय या कर्म जिससे जीवन-  
का उद्देश्य सिद्ध होता है । २ प्रदल्लोका मार्ग, देव-  
यान पथ ।

लक्ष्यधेधिन् ( सं० लि० ) निह्वयिदकाते, लक्ष्य वेध करने-  
वाला ।

लक्ष्यधुम ( सं० लि० ) मोद तोड़नेवाला ।  
लक्ष्यध्व ( सं० लि० ) लक्ष्यं दन्ति दन विप् । १ लक्ष्यभेद  
कारी, उड़ते या तेजोसे धलते हुए पदार्थों या जीवों पर  
होक निशाना करनेवाला । ( पु० ) २ शीर ।

लक्ष्यार्थ ( सं० पु० ) यह अर्थ जो लक्षणासे निकले ।  
लखतार—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड विभागके अन्तर्गत  
एक देशो सामन्त राज्य । यह अक्षां २२° ४६' से २३°  
३० तथा देशां ७१° ४६' से ७२° ३' पू०के मध्य अवस्थित  
है । भूपरिमाण २४८ वर्गमील और जनसंख्या १५  
हजारसे ऊपर है । इसमें ५१ ग्राम लगते हैं । राजस्व  
७० हजार रुपयेसे ज्यादा है । धान और लखतार नामक  
दो भूसम्पत्ति तथा ब्याजदावाद जिलेके कुछ ग्राम ले कर  
यह राज्य संगठित है ।

यहां एक भी नदी या पहाड़ नहीं है । अणिकान्त  
स्थान समतल है । दर और धान ही यहाँका प्रधान  
उपज है । घेर और घोराप्रेणोंके सुसलमान स्थानीय  
कवाससे एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार करते हैं ।  
धानको कुम्हार-जातिका मृन्मूल्य प्रशंसनीय है । उषर-  
के तिया यहाँ और किसी प्रकारका रोग नहीं दिगाई  
देता । यह स्थान बहुत स्वाच्छमद् है ।

यहाँके सरदार लुनीय श्रेणोंके सामन्त कहलाते हैं ।  
१८०७ ई०की सन्धिसे अनुसार ये लोग भी अंगरेजोंको  
बाधोन्ता खोकार करनेको बाध्य हुए । एलाहाबादके राजा  
साहब चम्पसिंहजीके लड़के अणयसिंहजीको लखतार  
तालुक भ्रातृभ्रातृ राज्यसे मिला था । अणयसिंहने १६०४-  
१५ ई०के मोतर धान तथा भान पानके देन भारतियासे  
छोन लिये । परमान मरदार उद्दीके घंणपर हैं । मरदार  
इनको उपाधि है । जूनागढ़के नवाय और अंगरेजोंको  
कर देना पड़ता है ।

लखन ( लि० स्त्री० ) लखनेकी क्रियाया भाय ।

लखनऊ—१ अणोप्या प्रदेशके बर्मादेशके अणोन एक  
विभाग । यह युक्तप्रदेशके छोटे राज्यके शासनाधीन है ।  
अक्षां २५° ४६' से २८° ४२' ३० तथा देशां ७१° ४६'  
से ८१° ३४' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण  
१२०५१ वर्गमील है । इसमें ४४ शहर और १०१५०  
ग्राम लगते हैं । लखनऊ शहर मयमे बसा है । लखनऊ  
उनाय, राबबरेली, रांतापुर, हरदोई और रंती जिला  
ले कर यह विभाग संगठित है । जनसंख्या ६० लाखके  
करीब है ।

२ एक विभागका एक जिला । यह अक्षां २६° ३०'



ई २७' ६' ३० तथा देना ० ८०' ३४' से ८१' १३' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६६७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हरदोई और सोतापुर, पूर्वमें वाराणसी, दक्षिणमें रायबरेली और पश्चिममें उनाव जिला है।

इस जिलेका अधिकांश स्थान उर्वर तथा श्यामल शस्यसे परिपूर्ण है। वीध बीचमें प्राम और वनमाला-विराजित विस्तीर्ण मैदान रणक्षेत्रकी अतीतकीर्ति घहन कर जनसाधारणके हृदयमें घोरकीर्तिका उद्घोषण कर देता है। स्थानीय नदीमालाकी बालुकामय सैकत भूमि भूर तथा अनुर्वर पारी जमीन ऊपर कहलाती है। गोमती और साइनदी शाखा-प्रशाखामें फैल कर यहां बहती हैं। इनमेंसे वेहता, नागया, लोनी और काँका नदी ही प्रधान हैं।

इस जिलेका उतना प्राचीन इतिहास नहीं है। शाहजुहान द्वारा परास्त (११६४ ई०) प्रसिद्ध कन्नौज-राज जयचान्दके शासनकालसे पहले लखनऊ नगर प्रतिष्ठा नहीं हुआ। इस विभागमें औपनिवेशिक राज-पुत्रोंके आगमन-प्रसङ्गकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि मुसलमानों आक्रमणके बाद ही यहां नाना राज-पुत्र शाखायें बस गई थीं।

मुसलमान जातिके अस्त्युदयसे पहले जनवार, परिहार और गौतम यहां आ कर बस गये थे। जनवार जातिका इतिहास भर और बहराइच जातिके साथ मिला है। गौतमोंकी प्राचीन क्रियदन्तीका अनुसरण करनेसे ज्ञात होता है, कि ये लोग कन्नौजराजवंशके साथ संश्लिष्ट थे तथा बाई जातिने इस देशमें आ कर भी कन्नौजराजकी प्रधानता स्वीकार नहीं की थी। जनवार और चौहान राजपूत दिल्लीभरके सर्धान इस प्रदेश पर आक्रमण करने आये और उन्होंने नाना स्थानोंमें उपनिवेश स्थापन किया।

पठान राजाओंके आगमन तथा घर्मनाजके भयसे बहुतेरे राजपूत परिवार यहां भाग आये। ये लोग धीरे धीरे एक एक स्थान जीत कर यहांके सरदार हो गये। मोहल, लालागञ्ज और निषेधन परगनेमें अमेडिया और गौतमोंने इसी प्रकार प्रभुत्वलाभ किया था। ११वीं सदीके मध्यभागमें शेखोंने अमेठी परगनेसे अमे-

डियाओंको भगा कर अपनी गोटी जमाई। उन लोगोंके अधीन इकोनावासी जनवारोंने यहां आ कर उपनिवेश स्थापना था।

बाई और चौहानने विजानोर जीता। इसके बाद बाई लोगोंने कन्नौरी जीत कर अपना प्रभाव फैलाया था। जनवार और राइकराड्गण मोहन-भीरस नामक स्थानमें आ कर बस गये। इसके बाद निकुम्भ, गार्हरवाड्, गौतम और जनवारगण मलिहाबाद परगनेमें धीरे धीरे फैल गये। जनवार और चौहानोंके सहोना आक्रमण और जीतनेके बाद जनवारोंने उत्तरमें कुर्सी और देवाको फतह किया। अनन्तर उन्होंने कुर्सीसे कल्याणी नदीके उत्तर तौर पर्यन्त भूभाग पर अपना अधिकार जमाया था। पीछे बाई लोगोंने उनसे देवाको छीन लिया।

इसके बाद मुसलमानोंका भूमिपान शुरु हुआ। १०३० ई०में सबसे पहले सैयद मसाउदने इस स्थान पर चढ़ाई की। किन्तु यह मुसलमान-प्रभाव फैला न सका। पर हां किसी किसी परगनेके प्राचीन नगरादिमें मुसलमानोंकी टूटी फूटी कीर्तिका निदर्शन देखनेसे मालूम होता है, कि उसने जिस जिस स्थान हो कर जिलेमें प्रवेश किया था, वहां वहां उसके अनुचरोंने गांव बसा दिये थे। मोहनलालगञ्जके नराम और अमेठी ग्राममें यह छावनी खाल कर दलबलके साथ बसा रहा। समस्त नगरमें उसका सद्द था। छावनी छोड़नेके बाद सेनादलको सद्दसे वहां आ कर रहनेका साहस न हुआ।

अनन्तर शाहजुहानके जमानेमें १२०२ ई०को तिलको-पुद्गय महम्मद-इ-बन्तियारने इस स्थान पर चढ़ाई कर दी। उसके समयकी कोई कीर्ति वहां नहीं है। अधिक समय है, कि उसने मसिहाबादके निकटवर्ती बन्तियार नगरकी प्रतिष्ठा कर इस नगरमें एक पठान उपनिवेश स्थापना ही, किन्तु ये सब पठान कन्नौरीके बाई-राजा साधनाके विरुद्ध युद्ध करके वहां पठान प्रभाव फैला कर दूसरे जगह उपनिवेश स्थापन न कर सके।

१३वीं सदीके मध्यभागमें ही वहां मुसलमानोंके उपनिवेश प्रतिष्ठित हुआ। औपनिवेशिकके मध्य परगनोंके फसमन्दावासी शेख और सलिमाबादके सैयद ही प्रधान

थे। इसके बाद किट्वाडाके शोभानि आ कर अपना प्रभाव फैलाया। इसके बाद अन्यान्य मुसलमान-सम्राट्वाय कुर्सी और देवास होना हुआ यहाँ बस गया था। प्रवाद है, कि ये मुसलमानगण सखिचमे यहाँ भागे थे।

सखिचमे मुसलमान लोग बार बार इस जिलेके नाना स्थानोंको आक्रमण करके भी स्थायी प्रभुत्व लाभ न कर सके। ये लोग सखार मसाउदके सेनापति ग्राह घेगवे अधीन पहले देवा नगरको आक्रमण कर लखनऊ होते हुए मण्डियाँ तक बढ़े थे। यहाँ ग्राह घेग हिन्दुओंके परास्त और निहत्त हुआ। निकटवर्ती एक ग्राममें उसका मकबरा मौजूद है। उसकी घोट्टी बहुत ऊँची है, इस कारण लोग उसे नी-गजापोर कहते हैं। पीछे यहाँ मुसलमान-शासनकत्तां नियुक्त होनेके बाद क्रमशः देवास, कुर्सी और लखनऊसे ककोरो परगना तक विस्तृत स्थानोंके प्रमादिमें मुसलमान-उपनिवेश बसाया गया। ये लोग धीरे धीरे एक एक स्थान जीत कर यहाँका सरदार कहलाने लगे।

स्थानीय प्रवादसे जाना जाता है, कि राजपूत और मुसलमान भीषणघेगिर्कोंके पहले यहाँ भर, अरख और पासी नामक त्रिभुजोंकी कुछ जातियोंका वास था। भयोधयामें मूलायंगी राजाओंका प्रभाव जब लुप्त हुआ तब भरोंने इस प्रदेशको लूटा। यहाँके घने जंगलमें आर्धमायि तपस्या किया करते थे। इस कारण कोई कोई बन-स्थानीय लोगोंके निकट परम पुण्य-स्थान समझा जाता था। ये सब भ्रवि त्रिस त्रिस स्थानमें रहते थे, वह सभी नगरेष्वयमें परिणत होने पर भी उन्हीं भ्रवियोंके नामसे पुकारे जाते हैं। मण्डियाँन-मण्डल भ्रविके नामसे, मोहन मोहनगिर गोष्वायोंके नामसे, जगोर जगद्वेय योगीके नामसे तथा देवा देवल भ्रविके नामसे प्रसिद्ध हुआ। भर-इर्कीने उन सब भ्रवियोंका भाषम लूट कर १६वीं सदीमें सई नदीके तीरवर्ती भूनामोंका शासन किया था।

ये लोग किलन नामक पहाड़ी जातिकी तरह तहाँ प्रदेशसे यहाँ भागे थे। साज भी मरहिटोंका अन्धाधरीय यहाँके नामा प्रामांमे पड़ा है। श्रीरज-राजघंजने प्रभवे भयपतनसे पहले भरोंका दमन करनेकी कीर्तिश की थी।

राजा जयचंदने भन्दा, उदन शीर बनाकर राजपूत जातिकी सहायतासे बिजनोरके निकटस्थ नाघयन पर हमला कर दिया। ये यहाँके पातोराज विगलोक पराजित कर सत्ताया और देवा तक अग्रसर हुए। पामी और मरखोने मलिदाबाद तथा ककोरो और बिजनोरके दक्षिण सर्-तीरवर्ती सारैन्दो तक अपना दखल जमाया था। इरके पहले यहाँ भर जातिका अधिकार और प्रभाव विस्तृत था।

पासी और भरभगण यहाँके आदिम अधिकायी हैं। ये लोग दुर्द्वे और शरापी होने हैं। मन्वाय्यो अधियासियोंको शराब पिला कर ये लोग उनका सर्वस्व लूट लेते थे। भर जातिके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक किबदन्ती प्रचलित है। ११८ ई०में राजा तिलकचंद्देम ही यहाँ भरराजघंशका प्रभाव फैला। बराच नगरमें उसकी राजधानी थी। उसने दिल्लीवतिका हरा कर दिल्ली पर अधिकार जमाया। उसके यंशमें ६ राजाओंने दिल्लीसे प्रयोप्या पर्यंतशास्य तक राज्यशासन किया था। इन यंशके राजा गौविन्दचंद्की स्त्री भीमादेवी राज्यशासन कर १०६३ ई०में परलोकवासिनी हुई। मरते समय उन्हीं अपनी सगति अपने घर्मांगु हरगोविन्दके दान कर दी थी। उक्त हरगोविन्दके यंशने १५ पीढ़ी तक यहाँका शासन किया था।

लखनऊ नगर और सेनाधाम, ककोरो, मलिदाबाई और अमेठी यहाँका प्रधान नगर और याचिज्यकेन्द्र हैं। रबी, शरीफ और हंसगिनकादि धान काको उपजता है। नाय द्वारा यहाँका याचिज्य उतना नहीं चलता। अधिराज रेलवेय और पको सड़कसे पैदागढ़ी द्वारा ही चलता है। सेतापुर, पैजाबाद और कामपुर जाने आनेके लिये जो सड़क गई है वह प्रायः ५ सौ मील लम्बी है। इसके सिवा कुर्सी, देवा, सुल्तानपुर, गोतांग्र और अमेठी हो कर सुल्तानपुर, मोहनवालय हो कर रायवरेडी, सई नदीका सुन्दर पुन धार कर मोहन और उनाय जिलेके रून्नाबाद और मलिदाबाईसे हरदोई जिलेके जालिदल्य नगर तक सड़क गई है। इन सभी सड़कोंसे लखनऊ नगर से सहज है। निकट कुछ सड़कें यहाँमे मन्वाय्य जिलेके प्रधान प्रधान

नगरोंमें गई है। उनमेंसे जो सड़कें महोनासे कुर्सी और देवा होती हुई बारायंकी तक; गोसाईं गञ्ज और मोहन-लालगञ्ज होती हुई कानपुरके राजघरमें तक; यनिपुरसे मोहन और औरस तक; साईं नदीके पक्केका पुल पार कर मोहन-औरसके उत्तरसे रहिमायाद तक तथा लखनऊसे पिजनोर तक गई है, ये ही प्रधान हैं। जिलेकी उत्तरीयक सभी सड़कें पक्की हैं। यहाँके समय उन पर कौचड़ जमने नहीं पाता। सभी स्थानोंमें नदीके ऊपर पक्केका पुल है।

अयोध्या-रोहिलखण्ड रेजवय इस जिलेके मध्य हो कर दौड़ गया है। इसकी तीन शाखाएँ पूर्व-दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्वकी गई हैं। एक लखनऊसे बारायंकी और खर्चरा-नीरवत्सी बहरामघाट तक जा कर फैजाबाद-से पारानसी पर्यंत आई है। दूसरी शाखा लखनऊसे कानपुर तथा तीसरी फकीरी और मलिहाबाद नगर होती हुई हरदोई नगर पार कर शाहजहानपुर, बरेली और मुरादाबाद तक चली गई है। लखनऊ नगर ही व्यवसाय धाणिज्यामें प्रसिद्ध है। दूसरे दूसरे नगरोंमें सामान्य तौरसे धाणिज्य चलता है।

इस जिलेमें ६ शहर और ६३२ ग्राम लगने हैं। जनसंख्या ८ लाखके करीब है। हिन्दूकी संख्या सैकड़ें पीछे ७८, मुसलमानकी २० तथा बाकीमें दूसरी दूसरी जातियाँ हैं। विद्याभिक्षामें यह जिला बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिला कर दो सौसे अधिक स्कूल हैं। कालेजकी संख्या ६ है जिनमेंसे एक लखनऊ शहरमें पांच कालेज हैं। स्कूल और कालेजको छोड़ कर २५ अस्पताल हैं।

३ लखनऊ जिलेकी मध्य तहसील। यह अक्षा० २६° ३६' से २७° ३०' तथा देशा० ८०° ३६' से ८१° ६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६० वर्गमील और जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। इसमें ३२७ ग्राम और ३ शहर लगते हैं।

४ अयोध्या प्रदेशकी राजधानी। यह अक्षा० २६° ५२' ३०' तथा देशा० ८०° ५६' पू० गोमती नदीके दोनों किनारे अवस्थित है। यह नगर बलकछाले ६६६ मील, पारानसीसे १६६ मील और बारायंसे ८८५ मील दूर पड़ता है। समुद्रतलसे इसकी ऊँचाई ४०३ फुट है। यह

नगर युक्तप्रदेशमें सबसे बड़ा है तथा अंगरेजाधिकृत भारतीय नगरोंमें चौथा है। जनसंख्या तीन लाखके करीब है।

बम्बई, कलकत्ता और मद्रासको छोड़ कर भारतीय सभी नगरोंमें यह मनोरम है। मुसलमानों भयनके धाधिरमें यह उत्तर-पश्चिम भारतकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। अंगरेजोंके हल्लमें आनेके बाद भी यहाँ उस विभागका विचार-सदर प्रतिष्ठित है। यहाँ सम्भ्यता और उन्नतिकी पराकाष्ठा यथेष्ट विद्यमान है। सङ्गीतविद्यालय, व्याकरण शिक्षासमिति और इस लक्ष्यधर्मकी आलोचनाके लिये कई एक साम्प्रदायिक विद्यालय आज भी स्थानीय समृद्धिका परिचय देते हैं।

गोमती नदीके दोनों किनारे बड़े बड़े मकान हैं जिनसे नगरकी शोभा और भी बढ़ गई है। नगरकी सीमा पार करनेसे नदीके किनारे दूरवर्षापी उद्यानयात्रिका स्थानीय सौन्दर्यकी माला और भी बढ़ाती है। नगरके एक छोरसे दूसरे छोर तक जानेके लिये गोमती नदी पर चार पुल बने हैं। उनमेंसे दो स्थानीय मुसलमान राजाओंके पत्नसे तथा १८५६ ई०में अंगरेजोंके हल्लमें आनेके बाद अंगरेजोंके उद्योगसे बाकी दो पुल बनाये गये थे। नदी पर जो हालका बना हुआ पुल है उसे पार करनेसे जगमगाता हुआ मर्मर-सा सफेद सुन्दर महल दृष्टिगोचर नहीं होता। उस समय फलकूतके भारसे कुके हुए श्यामल पृष्ठोंसे समाप्त उद्यान-वार्तिका ही लोगोंको दृष्टि पर पड़ती है। इस प्रकार कुछ दूर नदीमें जानेसे नयाव आसफ-उद्दौलाका प्राचीन परधरका पुनर्दिखाई देता है। उसीके वाम भागमें मच्छियमन दुर्गका सुशुद्ध प्राचीर है। उस प्राचीरके भीतर लक्ष्मण टीला नामक प्राचीन नगरभाग है। इसके बगलमें ही नाना अट्टालिकादिसे परिष्कृत आसफ उद्दौलाका प्रतिष्ठित प्रसिद्ध श्मशानाड़ा है। यहाँसे कुछ दूर भागे बढ़ने पर इतिहास-प्रसिद्ध तुमा-ममजिद मिलती है। उस मसजिद पर चढ़नेसे नगरका कुन-भाग दिखाई देता है। इसके पाम दो नदीके किनारे रेसिडेन्सी भवनका भग्नप्राचीर है। यहाँका स्मृति-कोस (Memorial Cross) आज भी दुर्गके द्वारमें

१८५७ के गद्दर और अंगरेजों की घोरदब-कहानोंका परि-  
चय देता है। इस सुविस्तृत प्राङ्गणके सामने नदीके  
किनारे स्थापित छत्रमञ्जिल नामक विष्णुवात प्रासाद है।  
इस प्रासाद पर जो सोनिका छत है उस पर सूर्यकी

किरण पड़नेसे दूर स्थानवासीकी उसकी चमक दिखाई  
देती है। इसके पास ही बाई ओर ही मसजिद है। दोनों  
मसजिदके बाचमें फौसरहाग नामक महल है। यहाँ अयो-  
ध्वाराजवंशके सिंहासनचतुन बंशपर रहते थे।



सखनऊ-गिरु ।

मुगल-साम्राज्यके अन्तिम समयमें भी अयोध्याके  
पञ्जीरयंशकी प्रधानताके समय लखनऊमें राजधानी  
कायम हो गई। उक्त मुसलमान-राजवंशने यथाक्रम  
रोहिलखण्ड, इलाहाबाद, कानपूर, गाजीपुर और इस  
विभागमें शासन किया था। इसके बाद सैयत्तोंके  
वंशजोंने इसका उपभोग किया। इसके पहले यहाँ  
प्राक्ष्ण और कायस्थोंका प्रभाव था। मच्छिभवन दुर्ग-  
प्राकारके भीतर लक्ष्मणटीला नामक उष्ण भूमि ही उस  
प्राचीन जनपदका निदर्शन है। प्रवाद है, कि यहाँ  
अयोध्या-राज रामचन्द्रके भाई लक्ष्मणने शेरनागके  
पवित तीर्थके समीप अपने नाम पर लक्ष्मणपुर नगर  
बसाया था। उस पवित तीर्थके ऊपर मुगल बादशाह  
औरङ्गजेबने एक मसजिद बनवा दी। किन्तु लक्ष्मण-  
पुरकी पवित स्मृति आज भी लखनऊवासीके हृदयसे  
दूर नहीं हुई है।

शैल या लखनऊके शेरनाग नामक प्रसिद्ध मुसल-  
मान-राजवंशने ही पहले अयोध्याको जीत कर अपनी  
प्राधिका जमाई। पीछे रामनगरके पठानोंने गोल इरवाजा  
तक मुसलमान शासनदृष्ट पविचालित किया था।

इसके ठीक पूरबमें शैलीकी अधिकार-सीमा थी। उन्हीं-  
ने ही ध्वजनायक मच्छिभवन दुर्ग बनवाया था। पीरे  
घोरे उस दुर्गके चारों ओर भाषादी हो गई। मुगल-  
बादशाह अकबरबादके समय यही भाषादी लखनऊ  
बढ़लाने लगी। राजा टोडरमलके पैमाइश-विवरणमें  
गोमतो-तीरवर्ती समृद्धिका उल्लेख है। भारत-भू-भक्त-  
बरो पढ़नेसे मान्य होना है, कि यहाँ मुसलमान-साधु  
शैव मीनाजादका मकबरा था। लोग उनकी पूजा  
करनेके लिये यहाँ जाया करते थे। उस समय यहाँ  
सैकड़ों प्राक्ष्णका बास था। सम्राट् अकबरबादने उन  
लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये साग दान्ये दे कर धान-  
पेय-पत्र कराया। उनके पहले यहाँको कोई विविध  
समृद्धि न थी। उनके उद्योगसे और पीछे सैयत्त अत्रो  
वां और भासक इहाँलाके अन्वयसापरसे इस नगरकी  
घोरे घोरे धोरुद्धि हुई थी। प्राचीन नगरभाग उहाँ  
परामान चर है, यह तथा चकसे मंलभ नगरका इति-  
पान सम्राट् अकबरबाद द्वारा बनाया गया है। इनके  
सिया उन्हीं अन्वय स्थानोंका अङ्ग-मीष्ट करनेके  
लिये बहुत दान्ये खर्चा किये थे। उनके पुत्र मिर्जा

सलीम शाह (जहांगीर) ने वर्तमान दुर्गसे पश्चिम 'मिर्जापुर' को स्थापना की थी। अनन्तर अयोध्या-राजवंशके पहले और किसी भी मुगल-बादशाहने प्रासादादि बना कर इस नगरको जोमाको नहीं बढ़ाया।

नैनापुरका सुप्रसिद्ध पारमिक घणिकू सेयूत् खां वाणिज्य करनेके लिये यहाँ आया था। किन्तु यहाँ युद्ध-ध्वयमाप द्वारा उसका साथ चमक उठा। यह मुगल बादशाहकी कृपासे १७२२ ई०में अयोध्याका शासन-घाँ हुआ। लखनऊ नगरमें उसने राजधानी बनाई। तभीसे अयोध्यामें इस स्थायी राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई है। यह यहाँ पीछे अयोध्याका यज्ञोत्सव ही गया था।

सेयूत् खांके यज्ञोत्सवने राज्यसमृद्धिसे गौरवान्वित हो लखनऊ नगरकी बड़े बड़े सुन्दर महलोंसे सुशोभित कर दिया था। स्वयं सूबेदार सेयूत् खां मच्छिमयनके पश्चात्तागमें एक छोटा-सा महलमें रहता था। दुर्गके दक्षिण-पश्चिम जहाँ अंगरेजोंका अस्त्रागार (Ordnance Stores) है उस स्थान पर यहाँके सेख राजामो' द्वारा निर्मित दो सुभाषीन भट्टालिकाका निदर्शन पाया जाता है। सेयूत् खां जब सूबेदार हो कर यहाँ आया तब उनमेंसे एकमें भाड़ा दे कर रहता था। यह तीन तीन महीनेमें भाड़ा चुकाता जाता था; किन्तु उसके यज्ञोत्सवने भाड़ा देना बंद कर दिया। आखिर नवाब आसफ उद्दौलाने उस भट्टालिकाको राजसम्पत्ति बतला कर जप्त कर लिया।

सेयूत् खां जब पहले पहल यहाँ आया था, तब शीत लीम करे बार उसके विरुद्ध झट्टे हो गये थे, पर कुछ कर न सके। आखिर ये उस गौरवरकर बलघोर्षा देगा कर स्वयं उससे अधीन हो गये। मृत्युसे पहले सेयूत् खां अपने शत्रु कुलकी निर्मूल कर अयोध्या विभागमें एक स्थायीग देना बसाया था। पुत्रायस्थामें भी उसके बलघोर्षाका हास नहीं हुआ था। हिन्दू लीम उससे युद्ध-कीनामने पराजित और भयभीत होते थे। प्रसिद्ध हिन्दू-वंश भगवन्तसिंह रवीच उससे झट्टयुद्ध कर मारे गये। अपने अधीनस्थ गैरमदल और अधोपक्षके शिक्षा पुनस्ते उर समय उसने विरोध प्रतिष्ठा लाभ की थी।

उसका दामाद और उत्तराधिकारी नवाब साफ़र जुद्ध (१७३३ ई०में) दिल्लीमें यज्ञोत्सव पर नियुक्त था। उसने बाह्यमायाकी दुर्घर्ष पाई जातिकी भयभीत रहनेके लिये नगरसे ३ मील दक्षिण जलालाबादमें दुर्ग बनवाया तथा लक्ष्मणपुरके प्राचीन दुर्गका पुनः संस्कार कर उसका मच्छिमयन नाम रखा। उस दुर्गके जिवर पर एक मछली स्थापित रहनेसे उसका यह नाम हुआ था। उसने नगरमें बहनेवाली नदीके ऊपर दो पुल बनवानेकी कोशिश की थी। पीछे आसफ उद्दौलाने यहाँसे उसका आरम्भ किया हुआ कार्य शेष हुआ था। पर्वणि उसका लड़का सुभाउद्दौल (१७५३ ई०में) बरसत-युद्धके बाद फिजाबादमें ही रहता था। उसके लखनऊ नगरमें न रहनेके कारण नगरकी कोई धार्ष्टिक न हुई।

अयोध्याके इस नवाबवंशके प्रथम तीन राजे ही योदा और प्रसिद्ध राजनैतिक थे। उन्होंने अंगरेज, महाराष्ट्र और रोहिला तथा दिल्लीके प्रधान प्रधान अमात्योंके विरुद्ध युद्ध कर अच्छा नाम कमाया था। लंगतार युद्ध-युद्धमें लित रहनेके कारण ये राज्यशासनके सिवा राज्यके स्थापत्य-शिलरकी कोई उन्नति न कर सके। केवल सामरिक विभागकी उपयोगी दुर्गमाला, कूप मीर सेतु आदि वजानेमें उन लोगोंका चित्त आग्रह था।

चाँधे नवाब आसफ उद्दौलाने लखनऊका राजनैतिक चित्त परिवर्तित हुआ। उसने अङ्गरेजोंसे मेल कर लिया। अंगरेजों सेनाकी सहायतासे उसने रोहिलपण्डकी जीत कर वाराणसी तक अपना अधिकार फैलानेकी चेष्टा की। इस प्रकार धीरे धीरे अपने भगना बल मजबूत कर लिया। बहुत रुपये खर्च करके उसने पुनः और मसजिद बनवाई तथा लखनऊ नगरको गौरवकीर्ति और स्थापत्यविद्याका प्रष्ट निदर्शन प्रसिद्ध इमामबाड़ा नामक प्रासाद स्थापन किया। यह प्रसिद्ध भट्टालिका यद्यपि दिल्ली और आगरेके इमामबाड़े की तरह मुसलमानोंके गंग पर नहीं बनी है, तो भी 'कमिदरबाजा' नामक मसजिदके साथ संलग्न रहनेके कारण इसका स्मिर्द्धाँ देखने लायक है। इसका गठन साधारण तथा मार्मतीर्णपूर्ण है। इसमें शीर और इटली गठनकी बहुत कुछ सफ़रवगा देखी जाती है। १७४४ ई०में जब यहाँ महाभारतका भारी प्रकीर्ण

था, उस समय बेचारी क्षुधित प्रजाको भग्न जल भादि मिलता और इसके बदले उन लोगोंसे इमामबाड़ा बनानेमें काम लिया जाता था। कहते हैं, कि अर्थाभावके कारण नगरके बितने मान्यगण्यने भी इसमें काम किया था। दिनको कहीं लोगोंसे पहचाने न जाये, इस लाजसे ये होपहर रातको अपने मजदूरी लेते थे। उस इमामबाड़ेका एक प्रकोष्ठ १६७ फुट X ५२ फुट लम्बा है। उसके बनानेमें करीब एक करोड़ रुपया खर्च हुआ था। उसमें चमकौले और प्रमासगमन जो सब चाटनिलय चितित हुए थे, अभी फेयल उनका चिह्नमात्र रह गया है। मूलद्रव्य स्थापनयुद्ध या अणुहृत होनेके कारण लोगोंको देखनेमें नहीं आता। उक्त स्थान दुर्गसोमाके मध्य रहनेसे अभी वृष्टि-सरकारने उसमें अन्नादि रखनेकी व्यवस्था की है। आश्चर्यका विषय है, कि अटालिका काष्ठका कोई शिल्प देखनेमें नहीं आता। फारुसैन साहब इसके गुप्त्यकी वही तारीफ कर गये हैं।

इमामबाड़ेको छोड़ करमीरबाजा भी आसफ उद्दीलाको एक प्रधान कीर्ति है। इसके बाद दुर्गके पश्चिमस्थ नदी-तीरस्थ हीलतगाना नामक प्रसाद है। वहाँ पीछे सरकारी रेसिडेन्सोंमें परिणत हो गया था। गोमती-तीर यहाँ यह सुवृहत् अटालिका लखनऊका एक गौरवस्थ है। नवाब सयादुल्-अजी जब फरदतुल्लयम नामक सुरभ्य प्रसादमें जगता बामभवत उठा ले गया, तब इस अटालिकामें अंगरेज-रेसिडेन्ट रहने लगे। नगरके यदिमांगमें तथा नदीके दूसरे किनारे नवाब आसफ उद्दीला-प्रतिष्ठित विद्यापुर नामक प्रसाद है। नवाब बहादुर जब निकारको बाहर निकलने, तब इसी प्राय-भयतमें था कर रहते थे। पताज्ञान नगरके दूसरे दूसरे स्थानों में इन नवाबके उद्योगने निर्मित और भी बिनती अटालिकायें मौजूद हैं। ये सब अटालिकायें लगनऊ नहरका गौरव बढ़ाती हैं।

इस समय सेनापति जूट 'वार्डनेन' Martiere नामक सुप्रसिद्ध विद्यालय स्थापन किया। यह बिल्डिंग इटली-दंग पर बनाया गया था। पीछे बड़ी मुसलमानवाज उले चीन न ले, इस भयने इसके मध्य

स्थापयिताकी दृष्टी गाड़ दी गई। किन्तु गिरादी-विद्रोहके समय मुसलमानोंने मकबरा छोड़ कर दृष्टीको बाहर निकाल दिया।

आसफ उद्दीलाके शासनकालमें लखनऊ-इस बार बहुत मड़कीला दिमाई देता था। इस समय राज्यसोमाकी वृष्टिके साथ साथ राजस्वकी भी वषेष्ट वृद्धि हुई थी। नवाब आसफ उद्दीला बहुत उदार और जीहीन थे। उसीमें यह अपना गजाना खाली कर गये। पाश्चात्य ऐतिहासिकोंका कहना है, कि यूरोप या भारतमें आसफ उद्दीलाके गौरवमय कीर्तिरुलाएका मुकामला कीर्ति भी राजा नहीं कर सकता। उनके उच्चाभिवापने उन्हें साधारण सोमासे बाहर कर दिया था। उस समयका प्रसिद्ध मुसलमान-राजा टीपू सुल्तान या निजाम जिनसे दाघी या हीरकादि सम्पत्तिमें उनके समान ऐश्वर्यवान् न हो सके, इस खोर उनका विरोध लक्ष्य था। अपने लड़के यमीर पाँके (जिनसे मि० घेरीके हस्वापरायमें चूतार दुर्गमें बन्दी रह कर मयलीला सम्परण की थी) के पियाहमें उर्दोने बारातके साथ १२ मीं दाघी भेजे थे। उस समय खालीके शरीर पर करीब २० लाख रुपये का हीरा जवाहर आदिका भन्डार भोगता था।

यह अनुल सम्पत्ति उर्दोने भारतीय प्रजाका गून घूम कर संभ्रम की थी। Ten nantका विवरण बढ़नेसे इसका पता चलता है। उर्दोने लगनऊके मध्यगममें लिखा है— 'I never witnessed so many varied forms of wretchedness, filth and vice' अर्थात् ऐसी भोगन पाप बन्धु कालिमाहित नगरी मैंने कभी नहीं देखी। उस समय राजा मिर्जा आलमसके ज्ञानित प्रदेनको छोड़ कर आसफ उद्दीलाका साथ मध्योत्तरा राज इननामूमिमें परिणत हो गया था।

आसफ उद्दीलाके लड़के सयादुल्-अजी का (१७८०) में अङ्गरेजी सेनाका आध्यक्षतायामें नियुक्त हो कर ऐश्वर्यतुल्यके भोगविनामकी व्यवस्था देत रहा था। सयादुल्-पूर्वपुत्रोंके तरह बतयोंमें जातीय गौरवको पुष्टि न करके भोगविनासमें डूबता हो गया था। यह

घड़ौरेजोंके हाथ अपना संपत्तिका भाषा सौंप कर  
अपजिद ले कर ही आत्मवृत्ति करता था। मसजिद,  
कूप, दुर्ग, सेतु आदि निर्माण द्वारा राज्यकी धीरेधीरे न  
करके उसने भोगविलासके लिये कई मकान बनवाये  
थे। ये सब मकान नये भाव और नई प्रणालीसे बनाये  
गये थे। तत्परवर्ती राजानोंके जमानेमें भी इस  
प्रकारके मकान बनानेकी चेष्टा की गई थी। उनमें यूरो-  
पीय कारीगरों दिवारें देनी थी।

जिस सयादतू पां और उसके वंशधरोंने एक  
सामान्य शासकत्वमें रह कर यह स्वीमाय धरन किया  
था। इमामबाग, चकू और बाजारान्तिके प्रतिष्ठाता जो  
श्रीकीन आसक उद्दीला केवल एक प्रासाद ले कर संतुष्ट  
था, उस वंशमें सयादतू अली बहुतसे प्रासाद बनवा कर  
भोगविलासकी पराकाष्ठा दिया गया है। इस वंशमें  
बसौर उद्दीन हद्दीने अपरिमित धन खर्च करके राजपरि-  
वार और राजमहलियोंके लिये कई एक अत्युत्कृष्ट  
प्रासाद बनवाये थे। उसकी विवाहिता मिर्जा जिस  
प्रासादमें रहती थीं यह छत्रमखिल नामसे प्रसिद्ध था।  
कैसर-पसन्द और अन्याय महलोंमें उसकी रक्षिता रम-  
णियां रहती थीं। ज़ाहमखिल नामक प्रसिद्ध भवन-  
प्राङ्गणमें उसके कौतूहल उद्दीपनार्थ जंगली पशु रये  
जाते थे। नवाब फहरखण्ड, हज़ूरबाग, बिबियापुर  
और अन्यान्य प्रासादमें रहता था। यपाजिद अलीज़ाह-  
ने ३६० रमणियोंसे विवाह न करके उन्हें आधितारूपमें  
अने बेगम महलमें रखा था। उनमेंसे हर एकके  
लिये प्रासादके समान अट्टालिका बनाई गई थी।

सयादतू अली खानि फरहखण्ड नामक प्रमोदभवन  
बनवा कर राजप्रासाद परिवर्तन किया था। उसने  
दिग्गुप्तोंकी हस्तोंके पूर्वजसे लगभग दिलरुग तक  
नगरके बाहर कई एक छोटे छोटे प्रासाद बनवा दिये थे।  
ये सब प्रासाद वर्तमान सैनाध्यायके उत्तरमें अवस्थित  
हैं। उन महलोंसे नदीतट, नगर और आर-पामके स्थानों-  
का सीम्बद्ध हुआ बढ़ गया था। पीछे यपाजिद अलीने  
नदीके किनारे कैसरबाग नामक लक्ष्मणमठमें द्वैयपुरी  
सङ्गना नामा जिलापूर्व अत्युत्कृष्ट अट्टालिका बनवा कर  
उसीकी संपत्ता शासकत्व बनाया। उसने पूर्वाक जैन-

रल मार्टिनसे इस प्रासादका तीरवर्ती कुछ भंग करवा  
था। पीछे बहुत रुपये खर्च कर उस सुन्दर हस्तका  
संस्कार करा उसे अभिन्न और अभिलषित प्रासादमें  
पर्यवसित किया था। उसका राजदरवार-घर अर्थात् जहाँ  
सुविस्तृत नामा जिलानैपुण्य-अष्टित राजसिंहासन प्रति-  
ष्ठित था, यह लालचारद्वारी या कसर-उप-सुन्दरान बह-  
लाता था। यपाजिदके शासनकालमें लखनऊ नगरी  
चित्त वैचिक्ताकी चरम सीमा तक पहुँच गई थी। जिस  
दिनसे इस सुसलमान-राज्य प्रांते अंगरेजोंके हाथ आत्म-  
समर्पण किया तथा जिस समयसे लखनऊ नगरमें अङ्ग-  
रेज रेसिडेण्टके रहनेकी व्यवस्था हुई, उसके बादसे ही  
जब कभी नवीन नवाबका राज्याभिषेक होता, तब अङ्ग-  
रेज-रेसिडेण्ट का कर उसे सिंहासन पर बैठाते थे तथा  
इस प्रदेशमें अपनी राजशक्तिकी प्रयत्नता जतानेके लिये  
उसे राजनजर देते थे।

सयादतू अली खानका लड़का गाज़ी उद्दीन ईदर १८१४  
ई०में अयोध्याके राजपद पर बैठा। यही इस वंशमें प्रथम  
राजनामका अधिकारी हुआ था। उसने अपने पिताके  
अनुष्ठित मोतोमहल गुण्यके चारोंबगल मोतोमहल  
प्रासाद बनवाया। नदीके प्राचीन तीका-सेतुके उभय  
तीरवर्ती मुबारक-मखिल और शाह-मखिल नामक  
प्रासाद उसीके अनुभवसे संस्कार हुआ था। शाह-  
मखिल प्रासादमें यह रोमक-सम्राटोंकी तरह दुरन्त जंगली  
पशुओंका रणहीनक देखने में। लखनऊ राज्यवर्गके  
अवसान तक इस प्रासादमें भयावह पाजय-युद्ध हो रहा  
था। इसके मिया गाज़ी उद्दीन हद्दीने भी-बाहर  
सुप्रसिद्ध 'छत्रमखिल-कलान' और 'छत्रमखिल खुर'  
बनवाया था।

धरने मकरदेके लिये उसने मोमतीके किनारे ज़ाह  
नगर नामक एक मन्दिर निर्माण किया था। बचपनमें  
यह इस्लाममें रहता था। उस पर अपने पिता और माताके  
लिये उसने दो मकरदे भी बनवाये थे। अलकी सुविधा-  
के लिये उसने एक गहर कटवानेकी चेष्टा की थी।  
उनाका निर्माण नगरके पूर्व और दक्षिणमें ब्राह्मणों  
देवा जाता है। अर्थात्भयके कारण यह उर्ग शेर न कर  
सका था। बदन-रतून अर्थात् मदमत्त-पदविद्वेषावित

हस्तिम स्तूपके ऊपर उसने एक बड़ी मट्टालिका बनवाई थी। पहले एक मुसलमान उस पदचिह्नको भरबसे इस देशमें लाया था। वही उसको एक ऊँचे स्थान पर स्थापन कर एक मुसलमान तीर्थरूपमें घोषित कर गया है। गाजी उद्दीनके आग्रहसे उसका माहात्म्य बढ़- बढ़ गया। १८५७ ई०के गदरमें यह पत्थर स्थानान्तरित किया गया था, इस कारण तमोसे यह कदम रसूलके मन्दिरमें प्रतिष्ठित न हुआ।

गाजी उद्दीनके पुत्र नासिर उद्दीन ईदर १८२७ ई०में वित्त-सिंहासन पर अभिविक्त हो राजकार्य चलाने लगा। ज्योतिःशास्त्रमें ऐकान्तिक आसक्तिके कारण उसने बहुत रुपये खर्च कर 'तारायाक्षी कोठी' नामक एक वेधालय कोला था। विषयात अङ्कुरेज-ज्योतिर्विद्व कर्नल विल-कापस उसके कर्मचारिरूपमें नियुक्त रह कर उक्त वेधालयके यन्त्रादिका परिदर्शन करते थे। १८४७ ई०में कर्नल विलकापसको मृत्युके बाद बयाजिद अलीगाने उस वेधालयको बंद कर दिया। सिपाही-विद्रोहके समय विद्रोहियोंके उपद्रवसे उक्त वेधालयमें जितने यन्त्रादि थे सभी टूट फूट गये। विद्रोहि दलके नेता और परामर्शदाता फैजाबादवासी मौलवी अमरुतला शाह इस समय यहां आ कर बस गया। विद्रोहियोंकी उभाड़नेके लिये यह अपने प्राङ्गणमें सभा किया करता था।

नासिर उद्दीन ईदरने उपरोक्त वेधालयको छोड़ कर हरात नगरमें एक बड़ी 'करवला' भी बनवाई थी। उसी करवलामें यह दफनाया गया था।

नासिर उद्दीनकी मृत्युके बाद उसका चचा महम्मद अली गान १८३७ ई०में सिंद सन पर बैठा। उसने अपने कीर्तिरत्नम हुसेनाबादका इमामबाड़ा बनवाया। यह ही नागोंमें विमल है। लखनऊ दुर्गका प्रसिद्ध कमी दरवाजा गोमती-तीर्थघाटी प्रदानपघसे इस इमामबाड़ाके घडियाङ्गणमें चला आया है। यहां रास्तेसे कुछ पश्चिम खड़ा हो कर देखनेसे दाहिनी ओर आसरा उद्दीनका इमामबाड़ा और कमी-दरवाजा तथा बाईं ओर हुसेनाबादका इमामबाड़ा और अमम मसजिद इच्छिगोर होती है। इन सब मट्टालिकाओंका समावेश देव कर

अनेक स्थापत्ययित् मुन.क.ष्टसे कह गये हैं, कि स्थापत्य निलयका ऐसा अत्युत्कृष्ट निर्दर्शन भारतवर्षमें बहुत थोड़ा है।

राजा महम्मद अलीगाने अपने इमामबाड़ेमें आनेके लिये उत्तमशिल्पसे दुर्गके मध्य होता हुआ इमामबाड़ा तक एक लम्बा चौड़ा रास्ता निकाला था। उस रास्तेके किनारे एक दिग्गो भी खोदी गई थी। उसने दिग्गोकी सुमामसजिदकी अपेक्षा अपिक्तर उरुष्ट प्रभावोसे सनिर्मित इमामबाड़ेको बगलमें एक मसजिदकी भौपे डाली थी। अकालमें उनकी गृह्यु हो जानेसे उसका निर्माणकार्य पूरा न होने पाया। तमोसे यह उमो हालतमें पड़ा है। उसने 'सातपण्ड' नामक एक और दुर्गस्वम् बनानेका उद्योग किया था। उसके चार पण्ड बनाये जानेके बाद यह हम लोकसे चल् बसा। यह भी अपूरा ही पड़ा है।

आमनर लखनऊके शत्रुपुं राजा आमजाद अलीगाने (१८४१ ई०)ने कानपुर तक पकी मरुत, हजमतगधमें अपना मकबरा और गोमतीका लौटमेनु बनवाया। राजा गाजी उद्दीन ईदरने उस सेनुकी इन्तरेउसे लानेका हुकुम दिया था। उसके पहुंचनेमें पहले ही गाजीका देहान्त हो चुका था। पीछे उसके लड़के नासिर उद्दीनने देसिदेम्सीके सामने उसे स्थापन करनेका प्रस्ताव किया था, किन्तु गदोंमें स्वम् खड़ा करना मद्दज न था, इस कारण यह प्रस्ताव स्थगित रहा। नासिर आमजाद अलीने उसको प्रतिष्ठा की।

अधोप्याराजघण्टके अगितम राजा याजिद अलीगाने १८४७ से १८५६ ई० तक लखनऊ सिंहासनको संभाल कर लिया था। उनका बनाया कीरतबाग नामक प्रमोदउद्यान नगरमें सबसे बड़ा और सुन्दर होने पर भी यह जन-साधारणके निरुक्त प्रशंसामात्र न हो गया था। १८४८ ई०में उसका जवाहरम्भ तथा १८५० ई०में उसका निर्माणकार्य शेष हुआ। उसके बनानेमें करीब ८७ लाख रुपये खर्च हुए थे।

वेधालयके सम्मुखस्थ उत्तर-पूर्व द्वार ही कर प्रदेन करनेमें दरीबकी दरले द्वितीयवाया नामक प्रामाण द्वार पार करना होता है। इन प्रामाण्ये लक्षणोंके वातो-



अङ्कुरजोंके हाथ अपनी सम्पत्तिका भाषाँ खींच कर अग्रजिष्ट ले कर ही आरम्भकृत करता था। मसजिद, कूच, दुर्ग, सेतु आदि निर्माण द्वारा राजपते श्रीशुद्धि न करके उमने भोगविलासके लिये कई मकान बनवाये थे। ये सब मकान नये भाग और नई प्रणालीसे बनाये गये थे। तन्परवर्ती राजाओंके जमानेमें भी इस प्रकारके मकान बनानेकी चेष्टा की गई थी। उनमें यूरोपीय कारीगरी दिखाई देती थी।

जिस सयादतू खाँ और उमने घंशघरोंने एक सामान्य वासभवनमें रह कर यह स्त्रीभाग्य अर्जन किया था। इमामबाड़ा, चकू और बाजारदिक्के प्रतिष्ठाता जो शीकीन आसक उद्दीला केवल एक प्रासाद ले कर संतुष्ट था, उस घंशमें सयादतू अन्नी बहुतसे प्रासाद बनवा कर भोगविलासकी परकाष्ठा दिखा गया है। इस घंशमें बसीर उद्दोन ईदरने अपरिमित धन खर्च करके राजपरिचार और राजमहिषियोंके लिये कई एक अत्युत्कृष्ट प्रासाद बनवाये थे। उसकी विवाहिता स्त्रियाँ जिस प्रासादमें रहती थीं यह छत्रमखिल नामने प्रसिद्ध था। केसर-पसन्द और अन्यान्य महलोंमें उसकी रक्षिता रमनियाँ रहती थीं। शाहमखिल नामक प्रसिद्ध भवन-प्राङ्गणमें उसके कौतूहल उद्दीपनार्थ अंगली पनु रवे जाते थे। नयाब फदरतुपधम, हजरवाग, बिबिवापुर और अन्यान्य प्रासादमें रहता था। ययाजिद अलीशाहने ३६० रमणियोंसे विवाह न करके उन्हीं धात्रितारुपमे अर्धने बेगम महलमें रखा था। उनमेंसे हर एकके लिये प्रासादके समान अष्टाङ्गिका बनाई गई थी।

सयादतू अन्नी खाने फरहनुपधम नामक प्रमोदभवन बनवा कर राजप्रासाद परिवर्तन किया था। उमने हिन्दुओंकी बस्तोंके पूर्वाङ्गने लयाधन विलगुन तक नगरेके बाहर कई एक छोटे छोटे प्रासाद बनवा दिये थे। ये सब प्रासाद वर्तमान सेगानियामके उत्तरमें स्थितियन हैं। उन महलोंसे नरीकूच, नगर और आग पासके क्वापोंका सौन्दर्य दृता बढ़ गया था। पीछे ययाजिद अलीने नदोंके किनारे फैलरवाग नामक नन्दनकायममें देवपुरी सद्गम नामा गिलगुर्ग अत्युत्कृष्ट अष्टाङ्गिका बनवा कर उसीको अपना वासभवन बनाया। उमने पूर्वाङ्क जैन

रंल मारिगले इस प्रासादका नौरयची कुछ भंश कतेरा था। पीछे बहुत रूपसे पर्व कर उस सुरम्य हम्बका संस्कार कर उसे अनिनय और अभिलखित प्रामादमें पर्यवसित किया था। उसका राजदरबार-घर अर्थात् अद्द सुविस्तृत नामा गिलानेपुण्य-मण्डित राजसिंहासन प्रतिष्ठित था, यह लालवागद्वारी या फसर-उप-सुलतान कहलाता था। ययाजिदके शासनकालमें लखनऊ नगरी पिल पैचिवाकी घरम सोमा तक पहुँच गई थी। जिस दिनसे इस सुसलमान-राज्य अने शंभरजोंके हाथ आरम समर्पण किया तथा जिस समयसे लखनऊ नगरीमें अङ्कुरेज रेसिडेण्टके रहनेकी व्यवस्था हुई, उसके बादसे ही जब कभी नयोन नयावका राज्याभिषेक होता, तब अङ्कुरेज-रेसिडेण्ट भा कर उसे सिंहासन पर पैठाते थे तथा इस प्रदेशमें अपनी राजशक्तिकी प्रचानत्रा जतानेके लिये उसे राजनजर देते थे।

सयादतू अन्नी खाँका लघुका गाजी उद्दोन ईदर १८१४ ई०में अयोधवाके राजपद पर पैठा। यही इस घंशमें प्रथम राजनामका अधिकारी हुआ था। उसने अपने पिताके अनुष्ठित मोतोमहल गुरुप्रजे खाँसे वगल मोतोमहल प्रासाद बनवाया। नदीके प्राचीन तीका-सेतुके उन्नय तीरवर्ती गुवारक-मखिल और शाह मखिल नामक प्रासाद उसीके अनुवर्तले संस्कृत हुआ था। शाह-मखिल प्रासादमें यह रोमक-सम्राटोंको तरह दुरन्त जंगली पनुर्धोंका रणकीतुक द्रवते थे। लखनऊ राजघंशके व्यवसान तक इस प्रासादमें भागवद पाणव-गुद हो रहा था। इसके मिवा गाजी उद्दोन ईदरने बीनी-बाहर सुवसिज 'छत्रमखिल-कलाम' और 'छत्रमखिल खुद' बनवाया था।

जबने मकबरेके लिये उमने गोमतीके किनारे शाह नजक नामक एक मन्दिर निर्माण किया था। बनघनमें यह इस्लाम रहता था। उम पर अर्धने पिता और माताके लिये उमने दो मकबरे भी बनवाये थे। अन्नीकी सुविधाके लिये उसने एक महद कटपासकी चेष्टा की थी। उमका मिर्जान नगरके पूर्व और ह्जिनमें आज भी देखा जाता है। अर्धनायके कारण यह उम शेष न कर सका था। बदन-रगुल अर्धान्नु महम्मद-पद्मिहसभावित

द्वित्रिम स्तूपके ऊपर उसने एक बड़ी अट्टालिका बनवाई थी। पहले एक मुसलमान उस पदचिह्नकी अवस्था इस देगमें लाया था। वही उसकी एक ऊँचे स्थान पर स्थापन कर एक मुसलमान तीर्थरूपमें घोषित कर गया है। गाजी उद्दीनके आग्रहसे उसका माहात्म्य बहुत बढ़ गया। १८५७ ई०के गद्दरमें यह पत्थर स्थानास्तरित किया गया था, इस कारण तभीसे यह कदम रसूलके मन्दिरमें प्रतिष्ठित न हुआ।

गाजी उद्दीनके पुत्र नासिर उद्दीन हैदर १८२७ ई०में विष्णु-सिंहासन पर अभिषिक्त हो राजकार्य चलाये लगा। ज्योतिःशास्त्रमें ऐकान्तिक आसक्तिके कारण उसने बहुत रुपये खर्च कर 'तारायाली कोठी' नामक एक वेधालय कोला था। विषयात अङ्गरेज-ज्योतिर्विद्वद् बर्नैल बिलकाषस उसके कर्मचारिक्रममें नियुक्त रह कर उक्त वेधालयके यन्त्रादिका परिदर्शन करते थे। १८४७ ई०में कर्नल बिलकाषसकी मृत्युके बाद बयाजिद् अलीशाहने उस वेधालयको बंद कर दिया। सिवाही-विद्रोहके समय विद्रोहियोंके उपद्रवसे उक्त वेधालयमें जितने यन्त्रादि थे सनी टूट फूट गये। विद्रोहि दलके नेता और परामर्शदाता फैजाबादवासी मौलवी बलदरउद्दा शाह इस समय यहाँ आ कर बस गया। विद्रोहियोंकी उमाङ्गनेके लिये यह अपने प्राङ्गणमें सभा किया करता था।

नासिर उद्दीन हैदरने उपरोक्त वेधालयको छोड़ कर हरादत नगरमें एक बड़ी 'करघला' भी बनवाई थी। उसी कदमलामें यह दफनाया गया था।

नासिर उद्दीनकी मृत्युके बाद उसका बच्चा महम्मद् अली शाह १८३७ ई०में सिंध सत पर बैठा। उसने अपने कीर्तिस्तम्भ हुसैनाबादका इमामबाड़ा बनवाया। यह दो भागोंमें विभक्त है। मलनऊ दुर्गका प्रसिद्ध कमी दरवाजा गोमती-तीरपछी प्रजासत्तपक्षसे इस इमामबाड़ाके यहिःप्राङ्गणमें चला आया है। यहाँ रास्तेसे कुछ पश्चिम खड़ा हो कर हैदरनेने दाहिनी ओर भासक उद्दीलाका इमामबाड़ा और कमी दरवाजा तथा बाँईं ओर हुसैनाबादका इमामबाड़ा और जूमा मसजिद् इन्धियाघर होती है। इन सब अट्टालिकाओंका समारोह देख कर

अनेक स्थापत्यवित् मूलक.पठने कह गये हैं, कि स्थापत्य निष्पत्ता ऐसा अत्युत्कृष्ट निर्माण भारतवर्षमें बहुत घोड़ा है।

राजा महम्मद् अलीशाहने अपने इमामघाटोंमें भावनेके लिये छत्रमञ्जिलसे दुर्गके मध्य होता हुआ इमामबाड़ा तक एक लम्बा चौड़ा रास्ता निकाला था। उस रास्तेके किनारे एक दिगो भी खोदी गई थी। उसने दिहोकी जुमामसजिद्की अपेक्षा अधिकतर उत्कृष्ट प्रणालीसे स्निर्गित इमामघाटोंकी बगलमें एक मसजिद्की नीचे डाली थी। अकालमें उनकी मृत्यु हो जानेसे उसका निर्माणकार्य पूरा न होने पाया। तभीसे यह उम्मीदालयमें पड़ा है। उसने 'सातमण्ड' नामक एक और दुर्गस्तम्भ बनानेका उद्योग किया था। उसके पार मण्ड बनाये जानेके बाद यह हम लोकसे चल बसा। यह भी अपूरा ही पड़ा है।

बगलतर लखनऊके चतुर्थ राजा आमजाद् अलीशाह (१८४१ ई०) ने कानपुर तक पत्नी मशरूफ, हजरतगद्दरमें अपना मकबरा और गोमतीका लीदलेतु बनवाया। राजा गाजी उद्दीन हैदरने उस सेतुकी इन्तज्जालसे लानेका हुकूम दिया था। उसके पहुंचनेसे पहले ही गाजीका देहान्त हो चुका था। पीछे उसके लड़के नासिर उद्दीनने रेमिडेगस्तीके सामने उसे स्थापन करनेका प्रस्ताव किया था। किन्तु तदोर्मै स्तम्भ खड़ा करना मद्दज न था, इस कारण यह प्रस्ताव खणित रहा। आखिर आमजाद् अलीने उसको प्रतिष्ठा की।

अधोध्याराजपुत्रके अग्रिम राजा पाजिद् अलीशाहने १८४७ से १८५६ ई० तक लखनऊ सिंहासनको प्रभुत्व किया था। उसका बनाया कैमरबाग नामक प्रसिद्धिदान नगरमें सबसे बड़ा और सुन्दर होने पर भी यह जन-साधारणके निकट प्रशंसामात्र न हो सका था। १८४८ ई०में उसका कारोत्सव तथा १८५० ई०में उसका निर्माणकार्य शेष हुआ। उसके बनानेमें खर्च ८० लाख रुपये खर्च हुए थे।

वेधालयके सामुद्रमध्य उभर-पूर्व द्वार हो कर प्रवेश करनेसे इरॉककी परले जिन्नीखाना नामक जामाद् द्वार पर करना होता है। इस प्रस्तावसे राजकीय दासो-

रसप हुआ करता था। यहाँसे दक्षिणकी ओर घूम कर एक आख्यायिका द्वारा पार करनेसे चीनीवागमें जाया जाता है। यहाँ चीनी काँचके वातादिने उद्यानमोगकी बसल'द्वत कर रखा है। यहाँसे नन्दावृत्ति रमणी मूर्तियोंसे परिनिमित्त एक प्रयोगद्वारा अतिक्रम करनेसे हजरतबागमें पहुँचते हैं। यह नया प्रतिवृत्तियाँ १८वींमें अनाजित वृत्तीयोप रचितसे बनाई गई हैं। हजरतबागके दक्षिण चांदीवाली, चारदारी और पासमुकाम या बादशाह-मंजिल है। इस बादशाहीकी भेज एक समय चांदीसे मड़ी हुई थी। बादशाह मजिद सपाद्व'अली खाँ द्वारा प्रतिष्ठित होने पर भी याजिद अलीनाहने उसे अपने नयमासाद चित्रके अन्तर्भूत कर लिया। उसके वाम-भागमें और भी कितनी अट्टालिकायें हैं' जिनमेंसे राज-क्षीरकार आजिम उद्दा खाँका चाँदलधर्म नामक पास-मयन उल्लेखनीय है। नयाव याजिद अलीने चार लाख रुपयेमें इसे खरीदा था। इस अट्टालिकामें प्रधान वेगम और राजमहियो रहते थीं। सिपाहो विद्रोहके समय इस प्रासादमें रह कर उसकी एक वेगमने विद्रोहिदलकी सदातार्थ बुरबाव लगाया था। इसके पासवाले अस्तयल-में अन्नरेज बन्दो रखे गये थे।

इसके पार्श्वस्थ-पथकी बगलमें वृक्ष हैं। उस वृक्ष-का तला मर्मर पथरका बंधा हुआ था। मेलके दिन नयाव फकीरके घंशमें पीजा कपड़ा पहन कर यहाँ बैठे रहते थे।

पृथ्वीकी ओर खालीद्वारा साथ रुपया खर्च कर बनाया गया था। उसे पार करनेमें फीसखयाका प्रकृत उद्यान-प्राद्वृष देवनेमें जाता है। इसके पारों और अगतःपुर कानिनिषोंका प्रासाद है। इस प्रासाद-प्राद्वृषमें प्रतिवर्ष भादोके महोत्समें मेला लगया है। इस मेलेमें लखनऊवासी बधा दिव्यु बधा मुसलमान सभी जमा होते हैं। इसके बाद प्रखरनिर्मित बागदारी है। यह अमी वृद्धमज्जमें परि-पत हो गया है। पश्चिमका लाठीद्वारा पार करनेसे 'हीरत-पमन्' नामक प्रसिद्ध प्रासाद मिलता है। उसे नासिर उद्दीन हीरके मरती वीरान उद्दीनने बनवाया था। उसका ऊपरों भाग अन्न'मोलाद्वारा स्वर्यामय अन्नारण्यमें आख्यायिका है। नयाव याजिद अलीनाहने

उसे हस्तगत कर भारती प्रियतमा स्त्री मसुकर-अ सुन-तानकी रहनेके लिये दिया था। पीछे एक दूसरा शिबी-माना पाठ करनेसे दर्शक राजपथ पर पहुँचना है।

लखनऊ मंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद यहाँके स्थापत्यनिष्ठाकी गौरवभाषक और किसी भी प्रकारकी अट्टालिका न बनाई गई। केवल कुछ क्षीरप्य विचित्रसाल्य, विद्यालय और राजकार्यालय बनाये गये थे। बल-रामपुरके महाराज सर दिग्विजयसिंह के, श्री. एस. भा-ने रेसिडेन्सकी बगलमें एक अल्पताल बनाया दिया है।

उपरोक दोनों इमानवाड़े, छत्रमजिल, फीसरवाग और अयोध्या राजवंशपारोंके धन्याय प्रासादोंको छोड़ कर यहाँ सपाद्व'अली खाँ, मुसिदजादो, महम्मद अली नाह और गाजो-उद्दीन हीरका समाधिमन्दिर देखने लायक है। एतद्दिग्गम बहुत स्त्री उद्यानवाटिका, हवाखाना, देवमन्दिर, मसजिद और धनादा नगरवासियोंका धाम-भयन भी स्थापत्यनिष्ठासे परिपूर्ण है। १८वीं सदीकी पृणित स्थापत्यकवि जब इन्ग्लैण्डसें, नूट,को गई, तब उम-ने भारतमें प्रवेश किया। भोगविलासलोत्पु मुसलमान-राजोंने उसको खूब अपनाया। परन्तुस्थापत्यनिष्ठा पामु'सन्ने इस नगरके स्थापत्यनिष्ठाका अंशग चो किया है,—No caricatures are so ludicrous or so bad as those in which Italian detail are introduced. १८५६ ई०की ३वीं फरवरीकी मंगरेजराजने अयोध्याप्रदेशको जल पर लखनऊके राजा याजिद अली नाहकी कलकत्तेका मूढातोखर्षी मुचीपोता नामक न्यायमें नजरबंद रखा। उसी समयमें १६वीं सदीकी लखनऊके अंतिम नयावकी मृत्यु हुई।

विगरी-विदीर ।

मीरतनगरमें निपाटी-विद्रोहवधि पथकनेके दो माम बद् १८५७ ई०की २री मार्चकी सर हेमरी लादेवत नया-चिष्टन अयोध्याप्रदेशके चोक कमिश्नर नियुक्त हुए। उम समय लखनऊ दुर्गमें ३२ मंगरेज सेनाबद्, एक दल वृत्तीय बमालवादी स्त्रीय, ७ मगरके देवो अयोध्यादेवो सेना-दल तथा १३, ४८ और ७१ मगरके देवो पराति मगरके मनोय को दल सेनादल तथा स्थापत्य इत्युक्तके पराधिक, एक दल सामरिक पुलिस-सेना, दो दल देवो क्रमाकवादी

और एक दल अयोध्याके इरेगुलाका पदातिक रहता था। तात्पर्य यह कि, उस समय यहां ७५० अंगरेज और प्रायः ७००० भारतीय सेना थी। अमिल मासके आरम्भमें ही देवी सिपाहियोंमें विद्रोपनाथ दिखाई दिया। इस समय अंगरेजोंने जो जालिनाग्रका उपाय अयलम्बन किया था, उसका बदला चुकानेके लिये सिपाहियोंने ४८ नम्बर पदातिक दलके सार्जनका घर जला दिया। सर हेनरी लारेन्सने उपस्थित विपद्की आगडूा कर रेसिडेन्सीको सुरक्षित करने और रसद जुटानेकी व्यवस्था कर ली। ३०वीं अमिलको ७ नम्बर अयोध्याके इरेगुलाका सेनादल काद्रिभ्रममें गायकी चर्चों मिली जान कर उसे काटनेसे इनकार भला गया। फिर भी उन्हें भुलाया दं कर सेनापतिकी आज्ञा माननेकी बाध्य किया गया। ३री मईकी हेनरीने उन लोगोंके अत्यन्त छीन लेनेका हुकुम जारी किया। तदनुसार सभी देवी सिपाहियोंसे हथियार छीन लिये गये।

१२वीं मईकी सर हेनरी लारेन्सने एक दरवार करके जनताका हिन्दुमायामें ममका दिया, कि अंगरेजों का शासन हिन्दु और मुसलमानके लिये बहुत लाभदायक है। अतएव सबोंकी अंगरेजों जासनाका पक्षगती हो उसीकी अनुगामी होना चाहिये। उसके दूसरे दिन सबेरे मोरटेके दरवाकाएडका संवाद जब लगनऊ नगर पहुँचा, तब सेनादलमें बड़ी सनसनी फैल गई। ११वीं मईकी सर हेनरी लारेन्सने अयोध्याके सेनादलका कर्तृत्व लाभ कर रेसिडेन्सीमें यूरोपीय नर नारीको रखा और दुर्ग तथा मच्छिभयनकी सुरक्षित कर दिया। ३०वीं मईकी रातको लगनऊ नगरमें विद्रोहप्रति जो इनने दिनोंसे सुलग रही थी, एकएक घघक उठो। ७१ नम्बराके सेनादल तथा अत्यान्त दलके लोगोंने मिल कर मध्य में की कोठोंमें भाग लगा द्ये तथा घके लोगोंकी मार दाना। दूसरे दिन सबेरे यूरोपीय सेनादलने उन्हें आक्रमण कर पीछे हटा दिया। किन्तु ७ नम्बरके अध्यातोदिन विद्रोहदिनमें मिल कर सोनापुरकी ओर रवाना हुए। १२वाँ जून तक लगनऊनगर अंगरेजोंके अधिकारमें रहा सही, पर अयोध्याके दूसरे दूसरे मंज विद्रोहियोंके हाथ ली।

११वीं जूनको सामरिक पुन्डिस और देवी पुन्डिसपर विद्रोही सेनादल गुलामगुला अंगरेजों पर मोला बरसाने लगे। दूसरे दिन देवी पदातिक दलने उन्हें साघ दे कर नगरकी गथ धाया। २० जूनको कानपुर विद्रोहिश्लके हाथ लगा जान कर सिपाही लोग फूले न समाये। २६ जूनको ७००० हजार विद्रोहियोंने फैजाबादके पयसे आगसर हो रेसिडेन्सीसे भाठ मोल दूर किनदाट ग्राम पर चढ़ाई कर दी। सर हेनरी लारेन्स युद्धके लिये आगसर हुए। किन्तु ये शत्रुके सामने बहुत देर तक ठहर न सके। द्वार लीकार कर लौट आये। उन्हेंने शत्रुपक्षका बल अधिक देख कर मचीमयनकी छोड़ दिया और रेसिडेन्सीको बलपुष्टि करनेके लिये यहां कुल सेना इकट्ठी की। १ली जुलाईको शत्रुदल रेसिडेन्सीको घेर कर मोला बरसाने लगा। २रे शत्रुपक्षका एक मोला सर हेनरीके सोनेकी कोठरोंमें घुसा जिससे घे घुरो तरह घायल हुए और ४थो जुलाईको इसी यन्त्रणासे परलोक सिपारे। अनन्तर मेजर यांकम सिमिल विभागके और मिगेडिया इन्जिनिस सामरिक विभागके मध्यस्थ हुए। २०वीं जुलाईको शत्रुओंने फिरसे अंगरेजों पर हमला कर दिया। दूसरे दिन मेजर यांकम मारे गये। अब कुल अधिकार मिगेडिया इंगलिजके हाथ रहा। १० और १८ अगस्तको लगानारांही आक्रमण करके भी शत्रुदल अंगरेजोंको परास्त न कर सका। रेसिडेन्सीमें जो अंगरेज थे, इदोसे मद्द मिलनेकी आशा न देग दनाग हो रहे थे। इसी समय आठम और हाथलकके आनेको खबर सुन कर धैर्योग बहुत उदमाहित हुए। २२वीं सितम्बरकी हाथलकने घानमयागमें पहुँच कर यहांके विद्रोहियोंको दमन किया। २५ सितम्बर तक शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए ये रेसिडेन्सके दरवाजे पर पहुँचे। उसके परेते ही शत्रुओंके हाथने अंतगल मोन मारे गये थे। शत्रुदलने अंगरेजोंकी शक्ति कमजोर देग कर फिरसे नगर पर घावा बोल दिया। आठम और हाथलकने बड़ी योग्यतामें दिन रात युद्ध कर नगरकी रक्षा की थी।

अष्टमर घाम तक अंगरेज लोग अमीन इत्यादिने युद्ध कर आगसरण करने रहे। १०वीं अक्टूबरकी सर

रमय हुआ करता था। यहाँसे दक्षिणकी ओर चूम कर एक भाष्यादित द्वार पार करनेसे चीनोबामे जाया जाता है। यहाँ चीनो कांपके पाकादिने उद्यानभोगहो बन्दहन कर रखा है। यहाँसे नन्वाहनि रमणो मूर्तिसे पत्तोमित एक प्रयोगद्वार भक्तिरम करनेसे हजरतवागमें पहुँचते हैं। यह नल प्रतिवृत्तियाँ १८वींमें समाजित यूरोपीय रुचिसे बनाई गई हैं। हजरतवागके दक्षिण चण्डीवाली, पारछारी और सांसमुकाम वा वादनाह-मंजिल है। इस कारछारीकी मेज एक समय चांदीसे मढ़ी हुई थी। बादनाह मंजिल सपोद्म अली सां द्वारा प्रतिष्ठित होने पर भी याजिद् अलीशाहने उसे अपने नयप्रामाद् चितके बन्तमुक कर लिया। उसके बाम-भागमें औरभी कितनी बटालिकाये हैं जिनमेंसे राज-होकार भाजिम उल्ला सांका चांदलह्मो नामक पास-भयन उल्लेखनीय है। नवाब याजिद् अलीने चार लाख रुपयेमें इसे खरोदा था। इस बटालिकामें प्रधान वेगम और राजमहिषी रहती थीं। सिपाहो विद्रोहके समय इस प्रासाद्में रह कर उसकी एक वेगमने विद्रोहदिलकी सदातायें दरबार लगाया था। इसके पासपाटे बस्तयल-में अद्दरेज बन्दो रने गये थे।

इसके पार्श्वस्थ-पथकी बगलमें वृक्ष है। उस वृक्ष-का तला मर्मर पत्थरका बंधा हुआ था। मेलके दिन नवाब पकीरके घेजमें पोला कपड़ा पहन कर यहाँ बैठे रहते थे।

पूर्वकी ओर शालीद्वारा लाख रुपये खर्च कर बनाया गया था। इसे पार करनेसे कैसरवागका प्रकृत उद्यान-प्राङ्गण देखनेमें आता है। इसके चारों ओर अमृतपुर कामिनिषोका प्रामाद् है। इस प्रासाद्-प्राङ्गणमें प्रतिवर्ष भादोंके महीनेमें मेला लगता है। इस मेलेमें लखनऊवासी बया दिग्गु बया मुसलमान सभी जमा होने हैं। इसके बाद प्रस्तरनिर्मित वागद्वारी है। यह सभी बङ्गमञ्चे परि-पन्न हो गया है। पश्चिमका लावाद्वार पार करनेमें 'कैसर-पगन्द्' नामक प्रसिद्ध प्रामाद् मिलता है। उसे सासिर उद्दीन हीरके मन्त्री टीमान उद्दीनाने बनवाया था। उसका ऊपरों भाग अद्द गोलाकार स्वर्णमय आभारवासे भाष्यादित है। नवाब याजिद् अलीशाहने

उसे हस्तगत कर अपनी मियतमा स्त्री मसुक-उप सुन-तानकी रहनेके लिये दिया था। पीछे एक दूसरा जिनो-वागा पाट करनेसे दर्शक राजपथ पर पहुँचता है।

लखनऊ बंगदेशोंके अधिकांशमें भागके बाद यहाँके स्वापरवगिनलकी गौरवनापक और किसी मो प्रसारको बटालिका न बनाई गई। केवल कुछ क्षात्प्य विहिरसा-ल्य, विद्यालय और राजकायालय बनाये गये थे। हम-रामपुरके महाराज सर दिग्विजयसिंह के, सी, एम, भां-ने रेसिडेन्सकी बगलमें एक अस्पताल बनवा दिया है।

उपरोक दोनों इमामबाड़े, छतमखिल, कैसरवाग और अयोधवा राजवंशवासीके अन्त्या प्रारसोंकी छोड़ कर यहाँ मनाद्म अली सां, मुसिद्मनाद्म, महरगद्म अली शाह और गाजो-उद्दीन हीरका समाधिनिर्दिष्ट देखने लायक है। पतङ्गिन बहुत सी उद्यानवाटिका, हवाबाना, देवमन्दिर, मसजिद् और पनादः नगरवासियोंका वाग-भयन भी स्वापरवगिनलसे परिपूर्ण है। १८वीं सदीकी वृणित स्वापरवगिज जब इङ्ग्लैण्डसे आरुकी गई, तब उस-ने भारतमें प्रयोग किया। भोगविलासलोडुव मुसलमान-राजोंने उसको खूब अपनाया। प्रगतक्यानुसन्धिपरु फायुसनने इस नगरके स्वापरवगिनलका हल्लेख यों किया है,—No caricatures are so ludicrous or so bad as those in which Italian detail are introduced. १८५१ ई०की ७वीं फरवरीकी अंगरेजराजने अयोधवाप्रदेशकी जल पर लखनऊके राजा याजिद् अली शाहकी कटकनेका गङ्गातीरवर्षी मुर्चातीना नामक स्थानमें नजरबंद रखा। उसी मयनमें १९वीं मरीकी लखनऊके अंतिम नवाबकी मृत्यु हुई।

विवादी-विशेष ।

मोरहममरमें सिपाहो-विद्रोहयह्नि प्रपरेयके दो मास बाद १८५७ ई०की २री मार्चकी सर हेनरी स्टार्लेग तथा मिष्टन अयोधवाप्रदेशके चीफ कमिश्नर नियुक्त हुए। इस समय लखनऊ दुर्गमें ३२ अंगरेज सिपाह, एक दल यूरो-पीय कमानवाहो सैन्य, ७ महरके देशी भाष्योद्दी गीग-द्वय तथा १३, ४८ और ७१ महरके देशी पदाति महरके समीप दो दल सिपाह तथा कमानोप हेतुमक पदार्थ, एक दल साविक पुजिद्म बीना, दो दल देशी कमानवाहो

मुजफ्फरपुर जिलेके बीच यह खोजी है और जीवान तथा पासियाइ नामक दो जलघाटसे कलेयर पुष्ट कर दक्षिणकी ओर दरभंगा-मुजफ्फरपुर रास्तासे ७८ मील दक्षिण बाघमती नदीमें मिल गई है। उक्त रास्ता नदीके ऊपर लोहेका पुल हो कर गया है। वर्षाकालमें इस नदीसे सीतामढ़ी तक नौका पर जा सकने है। राजपति, दुमड़ा, घेलादी, जयपुर और राजलण्ड मीलकोठी इस नदीके किनारे हैं।

लखना (दि० क्रि०) १ लक्षण देख कर अनुमान कर लेना।

२ देखना।

लखनोर-रोहिलखण्डके रामपुर राज्यान्तर्गत एक नगर।

पहले यहाँ कटारिया जातिके राजधानी थी। आज कल यह शाहाबाद् कहलाता है। यहां प्राचीन कीर्तिके अनेक ध्यस्त निदर्शन पड़े हैं।

लखनोर-बङ्गालका एक प्राचीन राजनगर। प्रसिद्ध

मुसलमान ऐतिहासिक निरुद्धाजके वर्णनसे जाना जाता है, कि याजनगर, यद्वा, कामरूप और निरहुत यह विस्तोर्ण भूलण्ड एक समय लक्ष्मणावती या गौड़राज्य नामसे परिचित और लक्ष्मणसेनके अधिहारमुपत था। लक्ष्मणावती प्रदेश गङ्गा द्वारा दो भागोंमें विभक्त था। इनमेंसे पश्चिमी भाग राङ्ग और पूर्वी भाग 'यखिन्द्' (यखिन्द्) कहलाता था। उसी राङ्गमें लखनोर नगरी अवस्थित थी।

अबुल फजलकी भाईन इ-अकबरोंमें लिखा है, कि बङ्गालसेनने उत्तर-राङ्गमें घोरभूम जिलेके अन्तर्गत लक्ष्मणनगर नामसे एक प्रसिद्ध नगर बसाया था। तब-काल-इ-नासिरो भावि मुसलमान-इतिहासमें उम्मीकी 'लखनोर' कहा है। आज कल यह 'गगर' नामसे प्रसिद्ध है।

लखनीती (लक्ष्मणावती) -युक्तप्रदेशके गद्दरानपुर जिलान्तर्गत नाबुर तटसीलका एक प्राचीन नगर। अग्नी यह अर्धसाबरघामने पड़ा है और भोजपुर हो गया है। प्राचीन कीर्तिके निदर्शन-स्वरूप यहां एक टूटा टूटा किला मौजूद है।

इन नगरमें तथा इसके उपकण्ठरिधन पांच प्राचीन पहलनेमें मुर्के जातिकका एक द्रविणयन खता भाता था। बहुत दिनों तक दो लोग यहां बङ्गरोद और समुद्रिहीन

हो कर रहे। पीछे १८वीं सदीके शेर भागमें उन लोगोंमें क्रमशः अरना दल मजबूत कर लिया। १७१४ ई०में गद्दरानपुरके महाराष्ट्रीय शासनकर्ता बापू सिन्धे उन लोगोंका दमन करनेके लिये तुल्य गये। भाषिण जागी रामस्यके अधीन प्रैरित साहाय्यकारो सेनादलमें जा कर दुर्ग प्राचीनको तोड़ फोड़ डाला। तुर्क लोग भारतसम्पन्न करनेको याध्य हुए।

लखनीती-बङ्गालकी एक प्राचीन नगरी।

अरनयावती देना।

लखनवी (दि० पु०) लखी खपेका अधिपति, जिसके पाम लखी खपेको मंगल हो।

लखनीनात (दि० पु०) ममुत।

लखमोयर (दि० पु०) विष्णु।

लखर (दि० पु०) काकहासिमीका पेट्ट। इस आकील भी कहने हैं।

लखलखा (पा० पु०) १ कोई सुगन्धित द्रव्य। २ एक विशेष प्रकारका बना हुआ सुगन्धित द्रव्य। यह प्रायः मिट्टी पर गुलाब-जल छिड़क कर भाषया इसी प्रकारके और द्रव्योंसे तैयार किया जाता है। इसे सुंघा कर घेटीन आदमीको होजमें लाते हैं।

लखाहाण्डाई-दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक छोटी नदी।

लखान-आमान प्रदेशके ओहट्ट जिलेकी सीमा पर स्थित एक बड़ा गांव यह पासिबरीयको मोचे अवस्थित है। यहां हर सप्ताहमें दो दिन हाट लगता है जिसमें पहाड़ी फल और सननेका सौग वहाड़ी चन्दुव' बेचने भाते हैं।

लखाना (दि० क्रि०) १ दिग्गजाना। २ अनुमान कर देना, समझ देना।

लखि-बम्बई-प्रेसिडेन्सीके गिरणु प्रदेशान्तर्गत एक गिरिधेनी। यह बन्धुचिखानकी दाना या प्राङ्गुई वर्धन धेनीसे मिली हुई। इसकी लम्बाई प्रायः ५० मील और ऊँचाई १५००से २००० फुट है। यह अक्षा० २६° ३० तथा देशा० ६७° ५' पू०के मध्य पड़ती है। इस वर्धनमें बहुतसे गल्प सोने हैं। संथान नगरके समीप यह वर्धनमें अरनाः सिन्धुनदका समनद भूमिमें बरिण्य हो गई है। वर्धनबर्धन' बर्डी कदी' सीमा, रसांजन और तांका पाया जाता है।

कागिन कायेन्ने अधीनस्थ सेनादल कानपुरसे आलम-  
 रंग पहुंचा । कायेन्ने यहाँसे कन्नका या कर लख-  
 नऊका उद्धार करनेकी इच्छासे मित्र भिन्न स्थानसे सैन्य  
 संबन्ध करने लगे । १३वीं नवम्बरको उन्होनें दलबलके  
 साथ जालमयेग पर चढ़ाई कर दी । कुछ समय युद्ध  
 करनेके बाद जय दल परास्त हुआ । मननर ये दिवसुग  
 प्रारम्भको कक्षा कर मार्टिनेपरकी ओर बगसर हुए ।  
 यहाँ द्विपारस्य दिव्रोही सिवाही दल रहता था । उक्त  
 स्थानको जीत कर कायेन्ने पालकी पार किया और  
 १६वीं नवम्बरको जगदलके प्रधान केन्द्र सिकेन्नायाग  
 पर हमला कर दिया । यहाँ योनों दलोंमें घोर युद्ध होनेके  
 बाद विद्रोहीदल परास्त हुआ । अंगरेजोसेना दुर्गको  
 अधिकार कर बडे उम्माहसे मोतोमहल तक अगसर हुई ।  
 हायलक रेसिडेन्सोसे निकल कर दलबलके साथ उनसे  
 मिले ।

इस प्रकार विजयी द्वितीय साहाय्यकारी सेनादल  
 लखनऊ नगर पहुंचा राहो, पर अङ्गरेजोंके लिये नगरको  
 रक्षा करना असम्भवना हो उडा । इस पर सर कागिन  
 कायेन्ने जल को जवर्सेन चढ़ाई दीष कर अङ्गरेज पुष्टय,  
 स्त्री और बालबच्चोंको यहाँसे कन्नका भेज देना चाहा ।  
 तद्नुसार ये २०वीं नवम्बरको दलबलके साथ अगसर  
 हुए । रेसिडेन्सो पर पुनः प्रलूक कक्षा हुआ । राहमें  
 सर दीनो हायलककी मृत्यु हुई । आलमबागमें ये दफ-  
 नाये गये ।

अध रातके अथ कानपुरको ओर बढ़े । केवल सर  
 जेम्स भाउड्रम ३५०० सेना ले कर आलमबागकी  
 रक्षा करने रह गये । ये प्रधान सेनापतिकी बात जोड़  
 रहे थे । इसी समय मौका देग विद्रोहिदलने नगरके  
 चारों ओर घेर लिया । ये लोग आलमबागके लिये चारों  
 सीमाको घुड़ करने लगे । प्रायः ३० हजार निश्चि  
 निपाही और ५० हजार मोलदोपर नगरके चारों ओर  
 प्रायः २० मील तक फैल गये थे । उन लोगोंके पास  
 १०० कमान थी ।

१८५८ ईसवी २०ीं मार्चको सर कागिन कायेन्ने  
 फिर लखनऊकी यात्रा कर दी । उन्होंने दिवसुगकी  
 जीत कर मार्टिनेवाकी रक्षाके लिये कमानदाही सेना-

की सज्जा रमा । ५ मार्चको मिरोडिपर कायेन्ने  
 राज द्वारा भेजे गये ३ हजार युवा और ३ हजार मू-  
 रेजो सेना ले कर यहाँ इट गये । वाउड्रम भी दलबलके  
 साथ मोमना पार कर फौजाबादकी ओर बन गये ।  
 इस समय सिपाही दलने दक्षिण-पूर्वसे उन पर भड़ों  
 कर दी । एक सप्ताह (१६ १५ मार्च तक) शीतोने प्र-  
 मान युद्ध चलता रहा । भागिर विद्रोहिदलको हार  
 हुई । अङ्गरेजोंने एक एक उन लोगोंके समी सुरक्षित  
 स्थान जीत लिये । विद्रोहि दल लखनऊसे भाग गया ।  
 पोछे सेनागति कायेन्ने अयोध्याके सेनादलको विगम  
 कर उनका संस्कार करने लगे । उसी सालको १८वीं  
 अक्टूबरको लाठे फीनिङ्गने सत्रोक यहाँ या कर उपर  
 नगरका पुनः संस्कार कार्य देना था ।

इस नगरमें नामा प्रकारका निल-यागिन्य बचना  
 है । उनमेंसे ज्यो, रेशम और जयाहरका कार्या हो प्रसिद  
 है । कर्मोरो यगिकोंने यहाँ शाउ बनानेका कारखाना  
 खोला है । कांचके बरतन और कागज बनानेको कद  
 भी है ।

निष्ठा-विभागमें मार्टिनेपरकी छोड़ कर लखनऊका  
 फीनिङ्ग कालेज प्रसिद है । यह कालेज १८६४ ईमें  
 स्थापित हुआ है । विभागीय कमिश्नर इस कालेजके  
 समायित है । इसके सिवा अमेरिकन मिसनके अर्धन  
 ७ और इङ्गलिश चर्च मिसनके अर्धन ५ विद्यालय हैं ।  
 सातुक्दारके लडकिके पढ़नेके लिये भी एक स्वतन्त्र  
 स्कूल है जो कॉलियम स्कूल (Colvin School) कह-  
 लाता है । इसके सिवा नारमन स्कूल, जुबोर्दा  
 स्कूल, सिकेन्ना स्कूल और प्रारमरो स्कूल भी हैं ।  
 बालिका-स्कूल जो अर्धन कुर्तोर-मिडिलमें है १८५६ ईमें  
 स्थापित हुआ है । पाषणत और सङ्गोत शिक्षाके लिये  
 यहाँ बहुतसे उम्नायिके अर्धन विद्यालय परिवर्तित  
 होना है । लखनऊका शीनो रङ्गमण देखने लायक है ।  
 यहाँसे ५ अङ्गरेजो और १८ दिव्रो समापार-पल नि-  
 कल्ये है । नहरमें जिनमे प्रेस है उनमेंसे नवतकिनोर  
 प्रेस हो मजहूर है ।

लखनऊ—लखनऊ नरुकी एक जाला । यह नैपालकी  
 पारंगमनासे निवृत्त कर इराया गांवके पास हींभी हीं

मुजफ्फरपुर जिलेके बीच यह नदी है और प्रौरान तथा यासियाड़ नामक दो जलधारासे कलेवर पुष्ट कर दक्षिण की ओर दूरभद्रा-मुजफ्फरपुर रास्तासे ७८ मील दक्षिण बाघमती नदीमें मिल गई है। उक्त रास्ता नदीके ऊपर लोहेका पुल हो कर गया है। वर्षाकालमें इस नदीसे सोतामट्टो तक नीका पर जा सकते हैं। राजापति, दुमड़ा, धेलाही, जरपुर और राजगण्ड नीलकण्ठी इस नदीके किनारे हैं।

लखना (हि० क्रि०) १ लक्षण देव कर अनुमान कर लेना। २ देवता।

लखनौर—रोहिलखण्डके रामपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। पहले यहाँ कटारिया जातिको राजधानी थी। आज कल यह शाहाबाद कहलाता है। यहाँ प्राचीन कौशिके अनेक ध्यस्त निर्दान पड़े हैं।

लखनौर—बङ्गालका एक प्राचीन राजनगर। प्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक मिगहाजके वर्णनसे जाना जाता है, कि याजनगर, पद्म, कामरूप और निरहृत यह विस्तोर्ण भूखण्ड एक समय लक्ष्मणावती या गौशुराज्य नामसे परिचित और लक्ष्मणसेनके अधिकायभुवन था। लक्ष्मणावती प्रदेश पद्मा द्वारा दो भागोंमें विभक्त था। इनमेंसे पश्चिमी भाग राट्ट और पूर्वी भाग 'वरिन्द' (घरेन्द्र) कहलाता था। उसी राट्टमें लखनौर नगरी अवस्थित थी।

अधुन फजलकी आर्न इ-अकबरीमें लिखा है, कि बहालसेनने उत्तर-राट्टमें योरभूम जिलेके अन्तर्गत लक्ष्मणनगर नामसे एक प्रसिद्ध नगर बसाया था। तब-काल-इनासिरी भादि मुसलमान इतिहासमें उन्को 'लखनौर' कहा है। आज कल यह 'नगर' नामसे प्रसिद्ध है।

लखनौती ( लक्ष्मणावती )—युद्धप्रदेशके, जहरानपुर जिलाअन्तर्गत माकुर तहसीलका एक प्राचीन नगर। अनी यह धरंसावहवामें पड़ा है और भीन्नष्ट हो गया है। प्राचीन कौशिके निर्दान स्वरूप यहाँ एक टूटा फूटा बिल्दा मौजूद है।

इस नगरसे तथा इसके उपरान्तस्थित पांग प्रामोंमें पहिलेसे मुर्ख जातिका एक उगनवेन चला आता था। बहुत दिनों तक ये लोग यहाँ बसवाये और सञ्चिह्न हो

हो कर रहे। पीछे १८वीं शदीके शेष भागमें उन लोगों-ने बगना: अपना दूध मजबूत कर लिया। १७९४ ई०में जहरानपुरके महाराष्ट्रीय शासनकर्ता बापू सिन्धे उन लोगोंका दमन करनेके लिये तुल गये। भाविर जार्ज टामसके अधीन प्रेषित साहाय्यकारो सेनादलने जा कर युग प्राचीनको तोड़ फोड़ डाला। 'तुर्क लोग भारतमम-पण करनेको पाद्य हुए।

लखनौती—बङ्गालकी एक प्राचीन नगरी।

अरमणावती देखो।

लखनौती ( हि० पु० ) लखनौ रूपका अधिपति, जिसके पास लखनौ रूपको सम्पत्ति हो।

लखनौतात ( हि० पु० ) मसुद्र।

लखनौवर ( हि० पु० ) विष्णु।

लखन ( हि० पु० ) काकडासिंगीका पेट। इसे अरकोल भी कहते हैं।

लखनौ ( का० पु० ) १ कोई सुगन्धित द्रव्य। २ एक विशेष प्रकारका बना हुआ सुगन्धित द्रव्य। यह प्रायः मिट्टी पर गुलाब-जल छिड़क कर अथवा इसी प्रकारके और द्रव्योंसे तैयार किया जाता है। इसे सुंघा कर बेटीज मादमीको होजमें लागे हैं।

लखनौ—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक छोटी नदी। लखनौ—आमाम प्रदेशके अर्धद्वीप जिलेकी सीमा पर स्थित एक बड़ा गांव यह गामिकासीवको मोर्चे अवस्थित है। यहाँ हर सप्ताहमें दो दिन हाट लगता है जिसमें बहाड़ी खन और मननेग लोग पहाड़ो यन्त्रुय' बेचने आते हैं। लखनौ ( हि० क्रि० ) १ दिवनाता। २ अनुमान कर देना, समझ देना।

लखि—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके सिन्धु प्रदेशअन्तर्गत एक गिरिधेनी। यह बलुबिन्धानकी हाना या अर्द्धी परान्त धेनीसे मिली हुई। इसकी लम्बाई प्रायः ५० मील और ऊँचाई १५००में २००० फुट है। यह अक्षा० २६° उ० तथा देशा० ६७° ५' पू०के मध्य पड़ती है। इन परान्तमें बहुतसे गरम सोने' हैं। सेवान नगरके समीप यह परान्तमें बगना: सिन्धुनदीका समतल भूमिमें परि-प्लव हो गई है। परान्तपरान्त' बर्तौ कर्तो' सोमय, रगतान और लंका पाया जाता है।





एक गमोर पर्वत गहर है। दिसङ्ग नदीने जहां नागाश्रील छोड़ा है वहाँ यह अवस्थित है।

यहांका इतिहास बहुत कुछ आसामके इतिहासके साथ मिला है। आसाम अधिकार करनेकी इच्छासे पूर्वाञ्चलवासी राजे ब्रह्मपुत्रकी पार कर पहले लखिमपुरमें घुसे थे। कहते हैं, कि बंगालके पालराजाओंने एक समय यहाँ अपना प्रभाव फैला कर हिन्दू-उपनिवेश स्थापन किया था। उसके बाद बंगालके चारभूया राजाओंने आरंभकालसे प्रपीड़ित हो कर विषाद-विरहित इस निविड़ प्रदेशमें आ कर एक उपनिवेश बसाया। आज भी ब्रांसकाटा और लखिमपुर नगरके पास जो दिग्गी है, यह उनकी कौर्सीकी घोषणा करती है। ज्ञानधर्मोय चूटियाओंने पहलेसे ही आसाम ब्रजा कर रगा था। ये चारभूयाओंकी यहांसे भाग कर सुपर्णधी नदीके किनारे रहते थे; किन्तु यह राज्यसंभोग उनके भागमें अधिक दिनों तक बढ़ा न था। १३वीं सदीमें आहम राजाओंने आसाम अधिकार कर प्राधान्य स्थापन किया। चूटियांने इस समय कुछ समयके लिये अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखनेकी चेष्टा की; किन्तु इसमें वे फलही भूत न हुए—वासके दरङ्ग जिलेमें भाग भाये। यहाँ जिस स्थान पर वे रहते थे यह आज चूटिया कहलाता है।

ये आहमण्य भी ज्ञानजातिके हैं। ये पोट्टुनायके पार्षत्य भूभागसे बलबलके साथ भागे बड़ कर पश्चिमकी ओर आसाममें भाये। यहाँ बलसंचय करके धीरे धीरे एक दुर्द्वर्ष जाति हो उठे। इस समय उन्होंने अपने बाहुबलसे ब्रह्मपुत्र प्रवाहित उपर्यक्तभूमिमें अपना अधिकार फैलाया। मुगलमन्नाट औरङ्गजेब द्वारा भेजे गये सेनापति मोरङ्गलाकी उम्होंने परास्त कर बंगालसे भाग दिया। इस वंशके प्रतापी राजा अद्रिमिहके नासनकालमें आसाम-राज्यने शान्ति और समृद्धि विराज करती थी।

आहम और आगम देखो।

राजा गौरीनाथके राज्यकालमें ही लखिमपुरमें आहम-वंशकी शासनदायिका स्थापित हो गयी। अमजोर राजा गौरीनाथ पाणिपोंके पक्षधरमें पड़ कर राज्यच्युत और गिम्न आगाममें निर्वासित हुए। उसके बाद अहमोंने यह समूह राजधानी गृह कर दी। इस समय

मोपामारिया या मटक जाति ब्रह्मपुत्र नदीके दाहिने किनारे पर स्वाधीनता स्थापन कर अपना प्रभाव फैलायी थी तथा उन्होंने अमजोर मरिया-विभागकी लूट कर तहस-नहस कर डाला। उस अराजक राज्यमें किसी प्रकार शृङ्खला स्थापित नहीं हुई। राज्यपदात्क बड़े गोसांई कुछ भी प्रामाण्य अथवा व्यवस्था न कर सके। प्रजा उपद्रव और अत्याचारके हाथमें छुटकारा पानेके लिये राज्य छोड़ भाग गई। अक्सर या कर अराजकने उपयुक्ति लखिमपुर पर आक्रमण कर दिया। युद्धविग्रहमें बहुत मनुष्य फटे मरे। प्रजाओंने निरपराय हो कर भी लखिमपुर नगरके सामने फिर युद्धका आग्रह किया। दुर्द्वर्ष प्रत्यक्षसे सामने हतबल रिभाया लड़ी न रद्द सही। यह द्वार था कर भागने लगे, लेकिन गिजपीने पीछा कर उनकी समूल गृह कर डाला।

१८२५ ई०में ब्रह्मसैन्य लखिमपुरसे अगाथा गया सही, पर लखिमपुरके अट्टलने अत्याचारका श्रेष्ठ संमनापसे प्रवादित होने लगा। अंगरेजराजने नाममात्र आहम पर अधिकार किया। ये आज भी इस देशमें सुशासनकी व्यवस्था नहीं कर पाये हैं। दिग्गुट्ट उपविभागके अंतर्गत मटक विभाग उम समय देगी सरकारके अधीन शासित होता था। १८३६ ई०में जब बूट्टे सरदारकी मृत्यु हुई, तब उनके पंजपरने अंगरेजराजके प्रस्तावानुसार राज्यशासन करना अन्वेषण कर दिया। अतः ये पदच्युत हुए। इस साल अंगरेजराजने उमर-लखिमपुर और निवसागर विभाग राजा पुल्करसिंहसे छीन लिया। क्योंकि, यह राजा राज्यशासनमें निष्कर्मा था तथा उसका बर्जाधारी प्रजाओं पर अत्याचार कर छत्राना यत्न करता था। इस अराजकतामें पहाड़ी धर्मभ्य जातिने उमर-राजकी लूट कर जगजगत् कर डाला। इस समय मरिया नगरमें एक धर्मो सरदार स्थानीय शासनकर्ताके रूपमें राजकार्यकी परिष्कृतता करना था। १८३५ ई०में अंगरेजराजने एक सेनानायकके अधीन मरिया नगरमें एक बल सिपाही रखा। उसके पार एवं बाद अचानक एक दिन पहाड़ी धर्मोंने पहाड़ों में समस्त भूमिमें उमर कर अंगरेज-सेनापति और पारि-टिकल एजेंट मेजर होपारटके साथ सिपाहियोंकी मार

प्राण। गोष्ट १८३१ ई०में मंगरेजराजने साम्राज्यप्रदे-  
न का पूरा शासनकार सयना कर पहाड़ी प्रायु का आनन्दन  
रोहनेके लिये मूक होगिया वी। तभीसे यहाँ जाति बरज  
कायम हुआ।

आमर, सादम, दकला, काछादी, सामनी, कुकी,  
लाकड़, मल्लिपुरी, मरक, सुटिया, मिजिर, मिनामी, मागा,  
गेवाली, रामा, मन्धाल, टिम्पो आदि सामन्य जातियां  
इस जिलेके पहाड़ी प्रदेशमें पास करतो हैं। औपनिवे-  
निक हिन्दुकीमिरे प्राधन, राजपूत, कायस्थ, अमरपाल  
बनिया और कलिया ( ये लोग सामन्य और पहाड़ी  
आसाम-राजाकी पुरोहितार्ह करते थे। आज काल सभी  
धर्मोचारी कर आना मुक्तता प्यताते हैं। ये लोग यहाँ  
साम्युद बहसते हैं ) आदि जातियां तीजसूद हैं।

इस सुदूर पूर्वप्रान्तमें इमलाम-धर्म नहीं फैला।  
मुगल-सम्राट् के समय मुसलमानों सेना आसाम प्रदेशमें  
धुमने पर भी जलवायुका प्रभोप सदन न कर सके।  
उन्हे यह देश छोड़ देनेकी बाध्य होता पड़ा। आहम  
राजाओंने राजसमुष्टि बढानेके इच्छासे कई पर मुसल-  
मान कारीगरको राजधानीमें ला कर बसायन किया।  
इस समय टाकासे भी कुछ मुसलमान नुकानदार  
सवित्रपुर आ कर रहने लगे। ये सभी काराङ्गिरीके मत्तय-  
सही थे। मरन या मोषाकारोगण इस समय वील्पावधमें  
में दक्षिण हुए हैं। जल्लिउपायक साम्राज्यराजाओंके  
अपवाचारसे इस वील्पाव-सम्प्रदायमें बड़े बर विद्रोह उप-  
स्थित हुआ। अन्तमें वील्पावोंने दो प्रधानता पारे।

यहाँके सवित्रासिपौबी अथवा उतनी मराह नहीं है।  
नमक, अन्तोन आदि कई द्रव्योंकी छोड़ ये अणुको उरुकी  
कोसे मिकन कर उपजाने हैं। सूती कपड़ेके अलावा  
यहाँके लोग रेशमी कपड़े भी बुनते हैं। यहाँ दो तरहका  
रेशम पैदाहोता है। इसका कोडा पशुना या सूँगा  
कहलाता है। जिसका नाम कर रेशमी कपड़े मिकन  
करतो हैं। कई बाजारोंमें विप्रु धालने हैं।

यहाँके चारके बगोमें बटिया बाय होतो है। बाय  
मना सूती कपड़, सूँगा और अंडों केमो कपड़, मिहो  
का बरज, पाटी, चहाटे, इर और मोन यहाँमें प्रसुर  
पवित्रालमें बंगाल भेजा जाता है। सदिनामें मिट्टि मर-

कारकी देस-रामों हर साल एक भेजा लगता है। बजबने-  
में सुबहके, दिन मूद और बाजार जाने आनेके लिये रेश  
मनाई गई है। इस देसपामें गवा स्टोमर और लपौरे  
पहाँका पालिउप लयस्ताय चलता है। इस जिलेमें एक  
नहर और ११२३ गाँव लगते हैं।

२ उत-जिलेके उत एक उपविभाग। यह उत-  
सवित्रपुर कहलाता है। मू-विमान १२४५ वर्गमील है।  
इसके उत्तरमें दकला और मोरीरीय तथा दक्षिणमें प्र-  
पुर मर है। सवित्रपुर नगर इसका मर है। जनसंख्या  
८४८२४ है।

३ उत-सवित्रपुर उपविभागके सामगंन एक बड़ा  
गाँव। यह असा २३' ५३' उ० तथा देना ८०' ४३' पू०-  
के बीच सुयर्ष भौमदीकी मट्टिगातान जालाके किनारे  
बायस्थित है। यहाँ मंगरेज राजको एक टापुनी है।

सवित्रपुर—१ अषोष्पामदेशके सेरो जिलेकी एक महमोख।  
यह असा २३' ४३' से २८' ३०' उ० तथा देना ८०'  
१८' से ८१' १' पू०के बीच पडतो है। इसका भूविमान  
१०३५ वर्गमील है। सेरो, भोतगा, भूर, पैना और कुकडा-  
मैलानो परमो इसके अन्तर्भुक्त है। जनसंख्या  
३६३३६ है।

२ सेरो जिलेका प्रधान नगर और सवित्रपुर महमो-  
का मर है। यह असा २३' ५३' उ० तथा देना ८०' ४३'  
पू०के मध्य उत नदीके दाहिने किनारे एक मोन दूरी  
बायस्थित है। यहाँ पालिउपका कारीकार प्रोगे चलता है  
इसलिये यह बड़ा समृद्धिजालो हो गया है।

सन्तोरी (सर्वसोपुर)—आसामके व्यापारका जिलेके दक्षिण  
एक बड़ा गाँव। यह असा २२' ५३' उ० तथा देना  
१०' ५१' पू०के मध्य मारी पहाड़के उत पारसुममें अर-  
स्थित है। यहाँ मेषकाङ्कके प्रसिद्ध अमीशरका प्रान्त  
है। यहाँ जो बायक और बालिकाको पाठजाता है उसका  
मर्ष इहाँमें चलता है। जनसंख्या ४४४४ है। इ-  
द्विधा बरमोने १८५१ ई०में यहाँ एक कपड़ेका बा-  
भाना सोला था।

सन्तोरी (सर्वसोपुर)—आसामप्रदेशका एक गाँव। यह  
काछाट जिलेके पूर्व बराह और चिरो नदीके बीच पर  
बसा हुआ है। गोपनी सवित्रपुरके महाप्रान्तकी एक क-  
हने है।

लघेरा—लाभमें न्यूनी और निरनीना बनानेवाली एक जाति । सम्भवतः संस्कृत लाक्षाकारक शब्दके अपभ्रंशसे लघेरा शब्द बना है । इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें बहुत सी कियदन्तियां प्रचलित हैं । इस जातिके लोग अपनेकी पट्टयाम् जातिकी एक शायत तथा उनके समान कायवेष जानिसे उत्पन्न मानते हैं । एक और उपाख्यानसे पता चलता है, कि पार्वतीके विवाहकालमें देवादिदेव (महादेवने विमालयको कन्याके दायकी न्यूनी बनानेके लिये पार्वतीके शरीरका मैल ले कर इस जातिकी सृष्टि की । उसमें यह भी लिखा है, कि ये पहले पट्टयंगी राजपूत थे । पाण्डवोंका विनाश करनेके लिये कुरुराजने जो जनुशूद्र बनाया था उसमें दुर्षयंगको इन लोगोंने मदद पहुंचाई थी । इस कारण ये लोग पीछे निन्दित और समाजजन्यत हुए । नभोमें ये उर्मा लायकी तिज्रा रत कर अपने जीविका चलाते हैं ।

इसमें विषया विषाद प्रचलित है । इच्छा करनेसे ये विषाद रंधन भी तोड़ सकते हैं । सभी शराब पीते और मांस खाते हैं । विहारमें ये लोग लहरी कहलाते हैं । लघोट ( हि० पु० ) शूद्र देवो ।

लघोटा ( हि० पु० ) १ चंदन, बेमर आदिसे बना हुआ अंगाराम । २ एक प्रकारका छोटा डिब्बा । यह प्रायः पीतलका बना है और इसमें गिरयां प्रायः मिश्रूर आदि सोमायकी सामग्री रखी है । इसके टकनेमें प्रायः प्रोजा भी लगता होता है । ३ लिखापट ।

लघोरी ( हि० स्त्री० ) १ शरारती एक प्रकारकी छोटी पतली ईंट । इस तरहकी ईंट प्रायः पुराने मकानोंमें ही पाई जाती है । सब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है । इसे नीचेहोई ईंट भी कहते हैं । २ एक प्रकारकी भीरीका घर जो यह मिट्टीसे घोंके षोनोंमें बनाती है, शूंगीका घर । ३ किसी देवताको उसके नियन्त्रणकी एक लाव पत्तियां या फल आदि चढ़ाना ।

लगन ( हि० स्त्री० ) १ लगने या नदी प्रसंग करनेकी क्रिया या भाव । २ लगन होनेकी क्रिया या भाव ।

लग ( हि० क्रि० वि० ) १ लगना, लगाने । २ पर्यन्त, तक । ( स्त्री० ) १ लगन, लगाने, प्रेम । ( अण० ) ३ लिये, घालने ।

लगड़ ( सं० रि० ) घाट ।

लगदग ( हि० क्रि० वि० ) लगभग देवो ।

लगण ( सं० पु० ) एक प्रकारका रोग, इसमें पनक पर एक छोटी, चिकनी, कटो गाँठ हो जाती है । इस गाँठों न तो पौड़ा होता है और न यह पक्की है ।

लगत ( सं० पु० ) उद्दान्तज्योतिके प्रणेता एक ज्योतिषीका नाम । इनका दूसरा नाम लगध भी था ।

लगदी ( हि० स्त्री० ) यह बिरौता जिन बन्नेवाली स्त्रियां बनोंके नाँवे इसलिये बिद्या कर उन्हें अपने पास सुलाती है, कि जिसमें उनके मलमूरसे और बिरौने राख न होने पाये, कपरो, पोतटा ।

लगन ( हि० स्त्री० ) १ लगनेकी क्रिया या भाव, लगाने । २ किसी मोर प्यान लगानेकी क्रिया, प्रशिक्षण किसी एक मोर लगना, ली । ३ प्रेम, मुदरन । ( पु० ) ४ ये दिन जिनमें विषाद आदि होते हैं, महालगन । ५ विषादके लिये स्थिर किया हुआ कोई शुभ मुहूर्त, ब्यादका मुहूर्त या सारन । ६ लगन देवो ।

लगन ( फा० पु० ) १ कोई बड़ी घाटी जिनमें खाटा गूँघने या मिट्टई आदि रहते हैं । २ ताँबे, पीतल आदिकी एक प्रकारकी घाटी जिनमें रख कर सोमरानी जलाई जाती है । ३ मुसलमानोंमें विषादकी एक रीति । इसमें विषादसे पहले पालियेमि मिट्टारवाँ आदि भर कर परके लिये भेजी जाती है ।

लगनपत्री ( हि० स्त्री० ) विषाद समयके निर्घणकी विद्वान् जो कन्याका पिता परके पिताकी भेजता है ।

लगना ( हि० क्रि० ) १ हो पदाधिके तल भावसमें मिलना, एक चीजकी मजद पर दूसरी चीजकी मजदना होना, मरना । २ एक चीजका दूसरी चीज पर मोटा, जडा, टाँका या चिपकाया जाना । ३ सम्मिलित होना, सम्मिल होना । ४ किसी पदार्थका दूसरे पदार्थमें समागम होना, मिलना । ५ उत्पन्न होना, उभरना, उगना । ६ किसी पदार्थके तल पर पडना । ७ भाषण पडना, शब्द पहुँचाना । ८ कदाचित होना, पावम होना । ९ भाषण वा स्थितिमें कुछ होना । १० छोटा या प्रायः आदि पर पहुँच कर टिकना या टकना । ११ खप होना । लगे होना । १२ लगनेसे रखा या लगाना आना, मिलानेसे रखा

आना । १३ जल पड़ना, मान्दम होना । १४ धारम्मा होना, मुक्त होना । १५ कामके लिये भावप्रवृत्त होना, अहरी होना । १६ मङ्गना, मङ्गना । १७ प्रमाप पङ्गना, भागर होना । १८ हिरो प्रकाशकी प्रवृत्ति भादिका धारम्मा होना । १९ उरर मङ्गना, उरराना । २० किमो पदार्थका किमो प्रकाशकी जलन या चुनचुनहट भादि अंगण करना । २१ किमो घेसे कार्यका धारम्मा होना तिसामे बहुतसे लोगोके पक्ष होनेकी भावप्रवृत्त हो । २२ भाप पदार्थका पङ्गनेके समय जल भादिके प्रमाप या मानकी भाविकताके कारण बरतनके तलमें जल आना । २३ किमो शीतके ऊपर लेप किया जाना, पोता जाना, मला जाना । २४ आतो होना, चलना । २५ एक व्याजना दूसरो व्याजके साथ रणपु जाना । २६ उपयोगमें आना, काममें आना । २७ जूरी बाजो पर रमा जाना, दीव पर रमा जाना । २८ समीप पहुँचना, पास जाना । २९ गङ्गना, चुनना । ३० किमो कार्यमें प्रवृत्त या तत्पर होना । ३१ पीछे पीछे चलना, साथ होना । ३२ दातण नियम होना, देना निरियत होना । ३३ भादित होना, निहित होना । ३४ बंद होना, मुदना । ३५ गी, गींग, बकते भादि दूध देनेवाले पशुधोका दूध जाना । ३६ सख्य होना, निमतना । ३७ छेपुआनी करना, छेपुआपु करना । ३८ काममें आने घोप होना, होक बैठना । ३९ भागेप होना । ४० हिमाव होना, गणित होना । ४१ प्रयत्नित होना, जलना । ४२ स्परो करना, हुना । ४३ बन्दमें आना, मुनना होना । ४४ जहाजका छिउले पानीमें भागना किमादेकी जमाने पर पड़ जाना । ४५ एक जहाजका दूसरे जहाजके सामने या बराबर आना । ४६ किमो स्थान पर पङ्ग होना । ४७ दान लीका आना । ४८ पावका गीप कर चड़ाया जाना । ४९ होना । ५० पीनता, विपना । ५१ धारदार शीतकी धारका तेज दिया जाना । ५२ किमो शीतका विरोधना—आनेकी शीतका अन्वयन होना, पचना, मङ्गना । ५३ साममें रटना, लफमें रटना । ५४ बन्दे नियम स्थान या कार्य भादि पर पहुँचना । ५५ संभोग करना, मीनन करना ।

संगम ( दि० कि० वि० ) प्राप, बरोप करीव ।

संगमन ( दि० ली० ) लगीके धे सिद्ध जो उपायके लिये बन्दमें लीके आते हैं ।

संगमि—एक पदार्थकी जगति ।

संगम ( ध० वि० ) बहुत दुबका पनना, मीन सुदुमर । संगमाना ( दि० कि० ) संगमोका जल दूसरेके बरतना, दूसरेकी संगमोमें प्रवृत्त करना ।

संगमातर ( दि० कि० वि० ) एकके बाद एक, निरन्तर-सिलेधार ।

संगम ( दि० पु० ) १ लगेने या संगमोकी क्रिया या भाव ।

२ पद स्थान जहां पर मजदूर भादि सुल्कानेके लिये अपने मिरका बोक उतार कर रखते हैं । ३ किमो मजानके ऊपरी भागमें तिला हुआ कोई पैसा स्थान जहांसे कोई पक्ष आ जा सकता हो, भाग । ४ मूनि पर संगमोवाया पद कर जो सेनिहरोकी मोरने जमींशर या सरकारकी मिलना है, राजग । ५ पद स्थान जहां पर भायें आ कर टटारा करने हैं ।

संगमना ( दि० कि० ) १ एक पदार्थके लगेके साथ दूसरे पदार्थका तल मिलाना, मजदूर पद मजदूर रखना । २ किमो पदार्थके तल पर कोई चीज आना, रणपुना, चिपकना या गिराना । ३ दो पदार्थोके परस्पर संलयन करना, जोड़ना । ४ उपयोगमें लाना, काममें लाना । ५ आरोपित करना, अभिगोम लगाना । ६ किमोके पीछे या साथ नियुक्त करना, जानित करना । ७ किमोकी कोई नई प्रवृत्ति भादि उत्पन्न करना । ८ पैसा चापे करना तिसामे बहुतसे लोग एक या समिनित हो । ९ गणित करना, हिमाव करना । १० एक शीत पर दूसरो शीत मीना, टोचना, चिपकाना या जोड़ना । ११ दातण निरियत करना, पद में करना कि रतना भावपु दिया जाव । १२ प्रयत्नित करना, जलना । १३ समीप रखना या मङ्गना, बराबर या निरन्तरमें रखना । १४ मनु-मव करना, मान्दम करना । १५ एक शीत या किमो उप-युक्त स्थान पर पहुँचना । १६ समिनित करना, जानित करना । १७ लभं करना, जव करना । १८ भापना करना, छोट पहुँचाना । १९ टोक स्थान पर बैठना, जड़ना । २० दूध भादि आरोपित करना, जमाना । २१ गीप करना, पीनता । २२ मङ्गना, मङ्गना । २३ मगापित करना, कायम करना । २४ किमो दिनमें आने भावकी बहुत दूर दूरी शीत मजबूत, किमो बालक

अभिमान करना । २५ नियत स्थान या कार्य पर पहुँ-  
चना । २६ गी, भैस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुमोको  
दूहना । २७ बंद करना । २८ अंग पर पहनना, भोटना  
या रखना । २९ किसी चीजका विशेषतः यानकी चीजका  
अभ्यस्त करना, परधाना, सजाना । ३० गाड़ना, घँसना ।  
३१ जूयको बाजी पर रखना, दाँव पर रखना । ३२ अपने  
साथ या पीछे ले चलना । ३३ परीक्षेके समय चीजका  
मूल्य कहना, दाम आँकना । ३४ किसी प्रकार साथमें  
सम्बन्ध करना । ३५ किसी कार्यमें प्रयुक्त या तत्पर  
करना, नियुक्त करना । ३६ स्पर्श करना, छुमाना । ३७  
किसीके मनमें दूसरेके प्रति दुर्भाव उत्पन्न करना, कान  
भरना । ३८ बट्टेमें लेना, मुजरा करना । ३९ समाप  
पहुँचाना, पास ले जाना । ४० धारदार चीजको धार  
तेज करना, सान पर चढ़ाना । ४१ अंकित करना,  
विक्षिप्त करना । ४२ पाल खींच कर चढ़ाना । ४३ जहाज-  
को छिछली या किनारेकी जमीन पर चढ़ाना ।  
४४ फीलाना, विछाना । ४५ संभोग करना, मैथुन करना ।  
४६ करना । ४७ एक जहाजको दूसरे जहाजके सामने या  
बराबर ले जाना ।

लगाम ( फा० खी० ) १ इस ढाँचेके दोनों ओर बंधा हुआ  
रस्सा या चमड़ेका तस्मा जो सवार या हाँकनेवालेके  
हाथमें रहता है । सवार या हाँकनेवाला इसी रस्से या  
तस्मेकी सहायतासे घोड़ेको चलाता, रोकता, इधर उधर  
मोड़ता और अपने घुममें रखाता है, बाग, रास । २ लोहे-  
का यह कटिहार ढाँचा जो घोड़ेके मुँहके अंदर रखा  
जाता है और जिसके दोनों ओर रस्सा या चमड़ेका  
तस्मा आदि बंधा रहता है ।

लगाव ( हि० खी० ) १ नियमित रूपसे कोई काम करने या  
कोई चीज देनेकी क्रिया या भाव, बंधी । २ वह जो किसी  
की ओरसे भेद लेनेके लिये भेजा गया हो, यह जो  
किसीके मनकी बात जाननेके लिये किसीको ओरसे गया  
हो । ३ वह जिससे परिचयका व्यवहार हो, मैत्री ।  
४ लगनेकी क्रिया या भाव, लगाव । ५ लगन, प्रीति ।  
इत्नारा, वज, मिलनिला । ७ रास्तेमें बोनका यह स्थान  
जहाँसे तुमको लोग जूमा गेजमेंके स्थान तक पहुँचाये  
जाते हैं, टिकाव ।

लगाव ( हि० खी० ) १ लग, लगन । २ सम्बन्ध,  
मेल जोल ।

लगाविका ( सं० खी० ) एक छन्दका नाम । इसके प्रत्येक  
चरणमें चार अक्षर होते हैं । पहला और तीसरा चरण गुण  
और बाकी दो लघु होते हैं ।

लगाव ( हि० पु० ) लगे होनेका भाव, वास्ता ।

लगावट ( हि० खी० ) १ सम्बन्ध, वास्ता । २ प्रेम, प्रीति,  
मुद्वेषत ।

लगावना ( हि० क्रि० ) लगाना देना ।

लगिन ( सं० खि० ) लग-कर्मणि क्त । मङ्गल्युक्त ।

लगुद् ( सं० पु० ) १ दृष्ट, ढंढा, लाठी । २ लीहमय अन्न-  
भेद, एक विशेष प्रकारका लोहेका ढंढा । इसकी आकृति  
और परिमाण आदिका विषय भूकलीतिमें इस प्रकार  
लिखा है,—यह प्रायः दो हाथका होता चादिपे । इसका  
निचला भाग पतला और मूँद मोटी तथा लोहेमें बांधी  
रदनी चादिपे । इसका व्यवहार प्राचीनकालमें पैदल  
सैनिक अश्वोंके समान करते थे । ३ लाल कपेट ।

लगुल ( हि० पु० ) जिभ्र, लिंग ।

लगौही ( हि० वि० ) जिने लगन लगानेकी कामना हो,  
रिक्वायना ।

लगा ( हि० पु० ) १ लंबा बाँस । २ यह लंबा बाँस जिस-  
के सहारेने छिछले पानोंमें नाव मजाने है, लगो ।  
३ घाम या कोषण आदि हटानेका एक प्रकारका फरसा  
जिसमें दूनेकी जगह एक लंबा बाँस लगा रहता है ।  
४ यूरोपि फल आदि तोड़नेका यह लंबा बाँस जिसके आगे  
एक अंकुश लगो रहती है, लकनी । ५ धार्य आरम्भ  
करना, काममें हाथ लगाना ।

लगो ( हि० खी० ) लंबा बाँस । लगा देना ।

लगवट ( हि० पु० ) १ बाग, जगान । २ एक प्रकारका  
धीना । यह सामान्य धीनेसे बड़ा होता है । इसे निवार  
करना विषयवा जाता है । यह प्रायः ६ फुट लंबा होता  
है । इसकी धीनी पर एक अंशोत्तरे पहिर्गा बंधी रहती  
है । इसीकी लकड़वाला भी कहते हैं ।

लगा ( हि० पु० ) लगा देना ।

लगो ( हि० खी० ) लगाने देना ।



“छानना दिव्यं कृत्वा गणनपरतया दिनेः ।

पश्चिमांगेन दयदय शेष्य पन्ननुत्पत्ते ॥”

(श्लोभिःभारम०)

जिम मामके जिम लानके जितने दिनोंकी रवि-  
भुक्ति गणना करनी होगी उस लम्बफालको दूना कर  
गुणनाफालको मासकी अतोम संगणामे पुनः गुना करे ।  
गुणतफल जितना हो उसे ६०से भाग दे । पीछे भाग-  
फालकी दृष्ट और भागावजिष्टको पल समझना होगा ।  
इस प्रकार प्राप्त दृष्टपल भगोष्ट दिनकी रविभुक्ति  
होगा ।

इस तरह रविभुक्ति स्थिर करके दिवानाममें जगम  
प्रथम करनेसे या प्रश्न होनेसे दोनों लम्बको रविभुक्ति  
जानी जाती है । रात्रिजालमें जगम या प्रश्न होनेसे  
मस्तलम्बकी रविभुक्ति जानना मयश्चक है । इस  
प्रकार निर्दिष्ट दिनके उदय या अस्त लम्बकी रविभुक्ति  
बाद देनेसे लम्बका भयजिष्टमोग्य भंज जो रहेगा, उसके  
साथ दूसरे दूसरे लम्बका मान क्रमशः योग करना  
होगा । जब देखा जाय, कि इष्ट दृष्टपलादि समष्टोहल  
लम्बमानके मध्य शेष लम्बके दृष्टपलादिमें अन्तर्निहित  
हुआ है तथा शेष लम्बके पाले लम्बके दृष्टपलादिको  
अतिक्रम किया है, तब जानना चाहिये कि उक्त शेष लम्ब  
ही इष्ट दृष्टके उचित लम्ब अर्थात् लानमें ही जगम या  
प्रश्न हुआ है ।

एक उदाहरण देनेसे यह अच्छी तरह समझने का  
जायगा । १२६६ ई०की २२ जेठकी ६ बजे रातको एक  
लङ्केका जगम हुआ । उस लङ्केका कौन लम्ब होगा,  
यह स्थिर करनेमें पहले रविभुक्ति स्थिर करनी होगी,  
अथवा मासकी कृत्वादिमें सूर्यका उदय तथा वृद्धिक  
रात्रिमें अस्त हुआ है । इस बालकका रातमें जगम होने  
से अस्तलम्ब मानना होगा । दिनमें जगम होनेसे दिवा-  
लम्ब और रातमें होनेसे अस्तलम्ब मानना होता है, यह  
पहले ही कहा जा चुका है ।

वृद्धिक लम्बका मान ५४०१२० विपल है । उस  
रातका अथवा मास ( बंगला ) ३२ दिनका हुआ है ।  
अतएव उक्त लम्बमानको ३२ घटा भाग देनेसे  
प्रत्येक दिनकी रविभुक्ति मान्य हो जायगी । एक

मासकी दिनसंख्या जितनी हुई है उस संख्या द्वारा  
उक्त दैनिक रविभुक्तिको गुना करनेसे उस दिनकी रवि-  
भुक्ति पाई जाती है । यहां पर दैनिक रविभुक्तिको बाद  
दे कर निम्नोक्त प्रकारसे लम्बमान स्थिर किया जा  
सकता है । जैसे—

$$\frac{\text{वृद्धिक लम्बमान } ५४०१२०}{\text{मासकी दिनसंख्या } ३२} = ० \text{ द } १० \text{ पल } ३८ \frac{३}{८} \text{ वि०}$$

दैनिक रविभुक्ति ० । १० ॥ ३८  $\frac{३}{८}$  विपल । + दैनिक  
रविभुक्ति २२ जगमरात्री = ३१५४५८०४५ अनुपल । उस  
दिन अङ्करेको ६।३७ मिनटमें सूर्य अस्त हुए है । अतएव  
६ बजे रातको जगम होनेसे सूर्योस्तके २ घटा २३ मिनट  
बाद जगम हुआ है, ऐसा स्थिर करना होगा । इसकी  
दृष्ट पलादिमें परिणत करनेसे ५५५७३० विपल होता  
है । अतएव उस समय रात्रिजाल दृष्टपलादि होगा ।

पूर्वोक्त नियमानुसार वृद्धिक लम्बमान ५४०१२०  
से उक्त २०थी जेठकी रविभुक्ति ३५४५८०४५ घटनाने  
१।४५२१।१५ वृद्धिक लम्बका भयजिष्ट मोग्यमान रहेगा  
उसके साथ दूसरा दूसरा लम्बमान जोड़ना होगा । इस  
प्रकार जोड़ करने करते जब देखा जाय, कि समष्टोहल  
लम्बमानके मध्य जिम रात्रिमें जगमवृष्ट पतित हुआ  
है, उस समय उस रात्रिमें लम्ब हुआ है, ऐसा स्थिर  
करना होगा । यदि वृद्धिक लम्बके भयजिष्ट मोग्यमान-  
के मध्य जगम दृष्टपलादि समय पतित होता, तो इसका  
परवर्ती लम्बमान फिर जोड़ना नहीं होगा ।

यहां पर वृद्धिकमोग्य लम्बमान—१।४ ५२१।१५  
घनुर्नलमान—१।१३२।००

गमदि—३।२।४१।१५

पहले ५५५७३० विपल जगमदृष्ट निम्नोक्त हुआ है ।  
वृद्धिकमोग्य लम्बमान अतिक्रम कर घनु लम्बमानके  
मध्यपरिचालनेसे लङ्केके भूमिष्ठ होनेसे घनुर्नलमान उम-  
का जगम हुआ है, ऐसा स्थिर हुआ है । यदि जगम ६ बजे  
रातको जगम पले कर २ बजे रातको जगम पले, तो दूसरा  
दूसरा लम्बमान क्रमशः जोड़ना पड़ेगा ।

इसी नियमसे लम्ब स्थिर करना होता है । दिनको  
जगम होनेसे सूर्योदयकालमें अस्तपरिणत करना होता है ।





रविस्थित नक्षत्रके अनुसार क्षमनरीक्षा।—यदि दोषहर दिनको जन्म हो, तो रवि जिस नक्षत्रमें है, उस नक्षत्रमें अर्थात् उस नक्षत्रघटित जिस राशि अथवा रविस्थित नक्षत्रसे सप्तम नक्षत्रमें जो राशि होती है वह राशि जन्म-लग्न होगी। दोषहर दिनके बाद जन्म तक रविभोग्य नक्षत्रसे द्वादश नक्षत्रघटित जो राशि होगी, उसीको जन्मलग्न समझना चाहिये। संख्याके बाद दोषहर रातको जन्म होनेसे रविभोग्य नक्षत्रसे सत्तरह या उन्नीस नक्षत्र तथा दोषहर रातके बादमें ले कर सूर्योदयसे पूर्व तक चौबीस नक्षत्रघटित जो राशि होगी यही लग्न होती है। चन्द्रराश्याधिप और रविभोग्य नक्षत्र ये दोनों नियम कहे गये। इन्हीं दोनों नियमोंसे अकसर लग्न निरूपण करते देखा जाता है तथा इनके अनुसार लग्न स्थिर किया जाता है। (पृष्ठज्जातक)

जन्मलग्नमें यदि शीर्षोदय हो, तो गर्भस्थ जिशु मन्त्रक द्वारा, पृष्टोदय होनेसे पाद द्वारा तथा श्रोत्रोका उदय हो, तो हस्त द्वारा भूमिष्ठ होता है। फिर यदि जन्म-लग्नमें शुभग्रहकी दृष्टि या योग रहे, तो सुख और यदि पापग्रहकी दृष्टि या योग रहे, तो कष्टसे प्रसव होगा, ऐसा ज्ञानना चाहिये। इस पर मनित्थ नामक एक उद्योतिचिह्न कहते हैं, कि लग्नवति या लग्नका नवांगपात यदि यकी हो अथवा यदि कोई यकी-ग्रह लग्नमें रहे, तो विपरीत भावमें अर्थात् हस्तपदादि द्वारा गर्भस्थ जिशु धार निकलता है। पृष्ठज्जातकके टोकाकार अष्टोत्पत्तका कथना है कि जीर्णोदय लग्नमें गर्भस्थ जिशु ऊर्ध्वशीर्ष, ऊर्ध्वमुख और निम्नपृष्ठ हो कर तथा पृष्टोदय लग्नमें अधोमुख ऊर्ध्वपृष्ठ हो कर जन्म लेता है।

मेघ, मूर या सिंह इनके अन्वयमें लग्नमें यदि जन्म हो, तथा उसमें यदि जनि या मङ्गल रहे, तो गर्भस्थ जिशु नाक्षीघटित हो कर उत्पन्न हुआ है, ऐसा ज्ञानना होगा। लग्नका उदित अर्थात् जन्म राशिके स्वरूप होगा, उस राशिमें जन्मरुका जो मङ्ग निकलित होता है, यही मङ्ग नाक्षीघटित था, ज्ञानना होगा। जन्मलग्न राशि और लग्नकी अर्थात् स्वरूप राशि बलवान् होती है, उन् राशि-के अक्षरके अन्वय अथवा अन्वयको कथना करनी होगी। लग्न या अर्थात् राशि चरसंज्ञक होनेसे घरके बाहर,

परदेगमें, राहमें या और किसी जगह तथा स्थिरसंज्ञक राशि होनेसे अपने घरमें स्वस्त्यर्थात् भारतीय घरमें प्रसव होगा, ऐसा ज्ञानना चाहिये।

दीर्घचित्वा द्वारा लग्नका भ'ठ निरूपण—स्नेहमय चन्द्र यदि राशिके सारगममें रहे, तो प्रदोष तेजसे भरा था, यदि मध्य भागमें रहे, तो माघा तेज था और यदि घे शेव भागमें रहे, तो प्रदोषमें घोड़ा तेज था, ऐसा ज्ञानना होगा। कोई कोई कहते हैं, कि चन्द्रके पूर्णापूर्णात्यमेदमें तेजका रहना स्थिर किया जाता है, किन्तु यदि प्रदोषकी वकी दृग्घ हो रही हो, तो ज्ञानना चाहिये, कि लग्नके प्रारम्भमें प्रथम भागमें जन्म हुआ है। उन् वकीमेंसे माघी दृग्घ होनेसे लग्नके मध्यभागमें तथा अधिकांश दृग्घ होनेसे शेव भागमें जन्म हुआ है, स्थिर करण होगा।

लग्न ही ज्ञातकका शरीर है, इस कारण लग्न परीक्षा अच्छी तरह करना उचित है। ज्ञातकके लग्नमें किस किस विषयका विचार किया जाता है उसका विषय नीचे लिखा जाता है।

लग्नमें देहका परिमाण, रूप, वर्ण, माहृति, शरीर-चिह्न, यत्न, गुण और निर्गुण, सुख और दुःख, प्रवास और स्वदेशवास, सखल और दुर्धन, काम, धरित, स्वभाव, आरोग्य, परीक्षा, मान, शिष्टय मिष्ट, ययोगान अर्थात् मायुका स्पृष्ट परिमाण, आति, बलेन, भागिनेययु, पुंस्त्रीविचार, श्रेष्ठा, कृत्, लपन और तिकादि रम, विनामही, मातामह, पुत्रका भाव, जन्मको मृत्यु, वैध, मालिका पुत्र, सासकी माता, विनामहको सम्पत्ति, स्वदेशभाव और विदेशभाव, मन्त्रक, मृत्तिका गार और कीर्ति, इन सबका विचार करना होता है। अर्थात् इन सबका विचार करनेमें लग्नमें ही देवना होता है।

ज्ञानकालरूपमें जिया है, कि लग्न और लग्नघनि दोनों ही बलवान् होनेसे लग्ननाशितय कामकी वृद्धि तथा दुर्धन होनेसे फलको हानि होती है। इस प्रकार अन्वय भावस्थयमें ही भावराशि और भावघनिके शुभाशुभके अनुसार शुभाशुभकी कथना करनी होगी।

एक लग्नके ऊपर हो सभी भावपत्त निर्धार करता है लग्नमें गोलमान होनेसे सभी फल गोलमान हो जाते हैं।



रविस्थित नक्षत्रके अनुसार लग्नातीक्षा।—यदि दोषहर दिनकी जन्म हो, तो रवि जिस नक्षत्रमें है, उस नक्षत्रमें अर्थात् उस नक्षत्रघटित जिस राशि अथवा रविस्थित नक्षत्रसे समान नक्षत्रमें जो राशि होती है वह राशि जन्म-लग्न होगी। दोषहर दिनके बाद ग्राम तक रविभोग्य नक्षत्रसे द्वादश नक्षत्रघटित जो राशि होगी, उसीको जन्मलग्न समझना चाहिये। संख्याके बाद दोषहर रात-को जन्म होनेसे रविभोग्य नक्षत्रसे सत्तर या उन्नीस नक्षत्र तथा दोषहर रातके बादमें ले कर सूर्योदयसे पूर्व तक चौबीस नक्षत्रघटित जो राशि होगी वही लग्न होती है। चन्द्रराश्याधिप और रविभोग्य नक्षत्र ये दोनों नियम फरे गये। इन्हीं दोनों नियमोंसे अक्षर लग्न विरूपण करते देखा जाता है तथा इसीके अनुसार लग्न स्थिर किया जाता है। (पूरुष्मातक)

जन्मलग्नमें यदि शीर्षोदय हो, तो गर्भरूप जिशु मस्तक द्वारा, पृष्ठोदय होनेसे पाद द्वारा तथा क्षीणका उदय हो, तो हस्त द्वारा भूमिष्ठ होता है। फिर यदि जन्म-लग्नमें शुभग्रहकी दृष्टि या योग रहे, तो सुख और यदि पापग्रहकी दृष्टि या योग है, तो कष्टसे प्रसव होगा, ऐसा जानना चाहिये। इस पर मन्त्रिय नामक एक श्रौतविद्वद् कहते हैं, कि लग्नवति या लग्नका नयांनपात यदि यकी हो अथवा यदि कोई यकी-ग्रह लग्नमें रहे, तो विपरीत भावमें अर्थात् हस्तपदादि द्वारा गर्भरूप जिशु बाहर निकलता है। पुरज्जातकके टीकाकार महोरपत्रका कहना है, कि शीर्षोदय लग्नमें गर्भरूप जिशु ऊर्ध्वोदर, ऊर्ध्वां मुख और निम्नपृष्ठ हो कर तथा पृष्ठोदय लग्नमें अधो-मुख ऊर्ध्वोपृष्ठ हो कर जन्म लेता है।

मेघ, श्लेष या सिंह इमके अन्वयमें लग्नमें यदि जन्म हो, तथा उसमें यदि शनि या मङ्गल रहे, तो गर्भरूप जिशु माहोपेक्षित हो कर उत्पन्न हुआ है, ऐसा जानना होगा। लग्नका उदित नयांन जिस राशिके स्वरूप होगा, उस राशिमें जातकका जो अङ्ग निरूपित होता है, वही अङ्ग माहोपेक्षित या, जानना होगा। जन्मलग्न राशि और लग्नकी नयांन स्वरूप राशि बलवान् होती है, उस राशि-के मङ्गलरूप स्थान प्रसव-स्थानकी कल्पना करने होगी। लग्न वा नयांन राशि धरदक्षक होनेसे धरके बाहर,

परदेगमें, राहमें या और किसी जगह तथा स्थिरसंज्ञक राशि होनेसे अपने घरमें स्वसम्पत्की व आत्मीय घरमें प्रत्य होगा, ऐसा जानना चाहिये।

दीर्घवृत्त द्वारा लग्नका अंश निरूपण—स्नेहमय चन्द्र यदि राशिमें स्यात्सममें रहे, तो प्रदीप तेलसे भरा था, यदि मध्य भागमें रहे, तो आधा तेल था और यदि घे शेष भागमें रहे, तो प्रदीपमें घोड़ा तेल था, ऐसा जानना होगा। कौं कोई कहते हैं, कि चन्द्रके पूर्णापूर्णावधेदसे तेलका रचना स्थिर किया जाता है, किन्तु यदि प्रदीपकी बत्ती दग्ध हो रही हो, तो जानना चाहिये, कि लग्नके प्रारम्भमें प्रथम भागमें जन्म हुआ है। उस बत्तीमेंसे आधी दग्ध होनेसे लग्नके मध्यभागमें तथा अधिकांश दग्ध होनेसे शेष भागमें जन्म हुआ है, स्थिर करल होगा।

लग्न हो जातकका प्रारोह है, इस कारण लग्न परीक्षा अच्छी तरह करना उचित है। जानकरके लग्नमें किन्तु किस विषयका विचार किया जाता है उसका विषय मौखे लिखा जाता है।

लग्नमें देहका परिमाण, रूप, वर्ण, आकृति, प्रारोह-चिह्न, यश, गुण और नियुक्त, सुख और दुःख, प्रवास और स्वदेशवास, मृत्यु और पुर्ण्य, ज्ञान, धर्म, व्यवसाय, आरोग्य, प्रशंसा, मान, इन्द्रिय शक्ति, शयोमान अर्थात् आयुका अङ्क परिमाण, ज्ञानि, श्रेष्ठ, मागिनेयपत्र, पुर्ण्यविचार, धैर्य, कष्ट, लयन और तित्तादि रस, वितामरी, मातामह, पुत्रका भाग्य, शत्रुकी मृत्यु, वैध, साधिका पुत्र, समासकी माता, पितामहकी सम्पत्ति, स्वदेशमाग्य और विदेशमाग्य, मस्तक, मूर्तिका-गार और शक्ति, इन सबका विचार करना होता है। अर्थात् इन सबका विचार करनेमें लग्नमें हो देहका होता है।

जातकालट्टारमें लिखा है, कि लग्न और लग्नवति दोनों ही बलवान् होनेसे लग्नमाहोदय काजकी दृष्टि तथा पुर्ण्य होनेसे फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार अन्त्याय माघरघनेमें ही माघराशि और माघवतिके शुभाशुभके अनुसार शुभाशुभकी कल्पना करने होगी।

एक लग्नके ऊपर हो वामी अन्त्याय निर्दिष्ट करता है लग्नमें शीघ्रमात होनेसे सभी फल शीघ्रमाग्य हो जाते हैं।



भीर मङ्गलके रहनेसे जातक भ्रम्रायु होता भीर उसे विकृति होती है। यदि मेष, वृष जपया कर्कट लग्न हो भीर यहाँ पूर्ण या ब्रह्मचर्य चन्द्र रहे, तो जातक रूप-यान्, नियन्त्रण, गुणवान्, धनी, गर्वित भीर भाग्यावान् होता है। उक्त तीस राशिके छोड़ कर लग्नजात चन्द्रके क्षीण होनेसे तथा उसके साथ भयथा उसके सातवें में किसी शुभग्रहके महो रहनेसे जातकालक मस्तिन, असुर्य, समनजीव और दुबला पतला होता है। उसकी भयस्था पदलती रहती है अर्थात् कमी हास और कमी वृद्धि होती है। उस चन्द्रके उभय पार्श्वमें भयथा उसके सातवें जनि और मङ्गलके रहनेसे जातक भ्रम्रायु होता भीर उसकी मातृरिति होती है।

शुभग्रहसे दृष्ट हो कर मङ्गलका यदि लय रहे, तो जातक तेजस्यो, उग्र-स्वभाववाला, साहसी, बलवान्, क्षामिक और धीर होता है। उस मङ्गलके समममें वृहस्पतिके रहनेसे वह ऐश्वर्यशाली और राजके समान होता है। किन्तु पापदृष्ट होनेसे इसका विपरीत फल होता है। अर्थात् जातक कलहमिय, क्षतगरीर या स्वक्क्षीणविशिष्ट, भ्रू-वेष्टाश्रित, इन्द्रियासक्त, क्षोषी, मध-मांसप्रिय, चक्षुर, विकलाङ्ग, मलिन, उदर या क्षमरोगी और अनादि गुरारोगी हुआ करता है।

लग्नमें सास कर मिथुन और कर्वालयमें बुधके रहनेसे जातक्यकिक, विधेवद, सुखसुर, मिष्टभाषी धंधुर्भोटा दितकारी, कौतुकी, धनी, मद्रता, यविक या ज्ञानवेत्ता होता है। किन्तु लग्नरूप बुध, जनि या मङ्गलके द्वारा दृष्ट होनेसे जातक वाचाय, निष्पयापादो, मन्दमति-मन्त्र, गठ, अविश्रामो, प्रवक्षक, कपटी और नीर होता है।

मकर जिन साथ किसी लग्नमें वृहस्पतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान, व्यवसायिक, विविध ज्ञानरत्न-सम्पन्न, सद्बुधेश, लोकाप्य, राजसम्मानित, भाग्यावान् और ऐश्वर्यशाली होता है।

लग्नमें शुकके रहनेसे जातक विनासो, गुणवान्, सुन्दरी स्त्री भयथा बहु ललनायुक्त, शिल्पज्ञानविनास, मद्रोत और कालशास्त्रमिय, मद्राशापी और प्रयुक्तचित्त पाता होता है। यदि बुद्धि लग्न हो तथा शुकमें शुक और बुधराशिके वृहस्पतिके रहे, तो सुदय सुन्दर होता है तथा

उसकी शिवा संपाद सुन्दरी होती है। किन्तु लग्नगत शुक पापयुक्त हो या पापसे देना जाय, तो वह भीषण-मिय, मोघामोदक, मयमयी, मद्राशक्त और परमोत्तम होता है।

यदि बुद्धि, धनु, बुध या मीनराशि लग्न हो और लग्नमें जनि रहे, तो जातक क्षीणायु, ऐश्वर्यशाली तथा बहुशोकप्रतिपालक होता है। मत्तान्तरमें वृष, मिथुन या वश्यालग्नमें जनि रहनेसे उक्त प्रकारका फल हुआ करता है। उस जनिके समममें यदि वृहस्पतिके रहे, तो मानव परम ऐश्वर्यशाली होता है। किन्तु लग्नगत जनिके स्वय राशिके रहनेसे मानव पश्चिमतोन, अशोभक, स्वययुक्त, मर्दान्धा व्याधिपीडित, मोघानय और सुखविहीन होता है। मेषसे कर्वा पर्यन्त इन छः राशिके मध्य कोई राशि लग्न होनेसे तथा यहाँ राहुके रहनेसे मानव स्वय मद्ररिष्टिमें मुक्तिलग्न करता है। इग्नया विपरीत होनेसे राहु मनुष्य फल देता है। शंभु लग्नमें रहनेसे लग्नाधीन फलका हास होता है। लग्नस्थित मद्र जिन प्रकार फल-प्रद होता है उसी प्रकार लग्नाधिपति द्वारा भी फल निर्णय किया जाता है।

लग्नाधिपत्य—लग्नाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक भाग्यावान्, रियुक्तवी, बहु परिजनयुक्त तथा भयसे वस्तु-वर्गमें धेष्ट होता है। लग्नाधिपके द्वितीय स्थानमें रहनेसे मनुष्य भयसे मरन और परिधमसे धन कमाता है। लग्नाधिपके तृतीय स्थानमें रहनेसे जातक क्षामिक, अमिमामो, क्षाता, क्षाति या मनिवासीको घनतापन्न तथा समपन्न होता है। चतुर्थ स्थानमें रहनेसे वह विभू मद्ररि, उन्नत वादन, उन्नत वासस्थान और सुविनय करता है। पंचिाधमें ही उने मद्ररता प्राप्त होती है। लग्नाधिपके षष्ठम स्थानमें रहनेसे मानव सामन्तियुक्त, मद्रस, विनाममिय, कर्वाजातिकरिणिष्ट और बुद्धि-मान होता है। श्रेष्ठ स्थानमें रहनेसे योद्धा, मद्ररुजि या वध-व्यव होता है। किन्तु शुभग्रहदृष्ट होनेसे मामा या वाचासे महापत्नी यास्त्री सम्पत्तता है। लग्नाधिपके सप्तम स्थानमें रहनेसे योद्धाव्यवस्थामें लक्ष्य अधिक मन्-साम, पारमर्यादका परिचर्य, विद्वान्माला और मन्-घृष्टि होती है तथा जातक अशो बुद्धिके क्षीणसे अशक्त

इस कारण लग्नका जन्मों तरह विचार करना परमा-  
पर्यक है, लग्न स्थिर नहीं होनेसे जातकके जीवनका  
शुभाशुभ नहीं जाना जा सकता। लग्नसे राशिचक्रके  
प्राधान्य गृहको द्वाद्वादश लग्न कहते हैं। जैसे—लग्न, घन,  
सोदर, मेषु, पुत्र, रिपु, पत्नी, निधन, धर्मकर्म, आय और  
व्यय, इन द्वाद्वादश गृहको द्वाद्वादश लग्न कहते हैं। जैसे घन  
लग्न, सोदर लग्न, मेषु लग्न, इत्यादि। किन्तु राशिमें  
रविके उदय कालक्रम लग्न ही प्रधान है। उसीको प्रधान  
लक्ष्य करके अन्यान्य विषयोंका विचार करना होता है।  
लग्नमायफलका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है।

जो जो भावपति लग्नसे अथवा भावस्थानसे छूटे,  
आठवें और बारहवेंमें रहे, तो उस उस भावोत्पन्न फलकी  
हानि होती है। अतएव किसी भावका शुभाशुभ विचार  
करनेमें देखना होगा, कि वह भावपति लग्नसे तथा  
भावस्थानसे कहाँ है। यदि दोनों स्थानसे शुभ स्थानमें  
स्थित हो, तो उस भावफलका सम्पूर्ण फल तथा शुभा  
शुभ स्थान हो, तो फलका भी शुभाशुभ होता है।

गृहजातकके टीकाकार अष्टोत्पलका मत है, कि  
फेवल छठे स्थानको छोड़ कर अन्य स्थानका शुभप्रद  
भावशुद्धिकर हुआ करता है। छठे स्थानका अशुभप्रद  
अशुभप्रद होने पर भी जन्तुनाशक होता है। लग्नसे  
छटा, आठवाँ और बारहवाँ स्थान दुःस्थान है। उस  
स्थानका प्रद वा भावपति अशुभप्रद होता है। अतएव  
प्रदका छटा, आठवाँ और बारहवाँ सम्बन्ध होनेसे ही  
फलकी न्यूनता कमाना करना होगा। इसमें विशेषता  
यह है, कि जैसा ऊपर कह आये है, शुभ और स्वामिप्रद-  
के योगसे शुभफल हुआ करता है, लेकिन छठे, आठवें  
और बारहवें स्थानके सम्बन्धमें विशेष विधि यह है,  
कि उनका विपरीतक्रमसे विचार करना होता है अर्थात्  
शुभप्रदके इस स्थानमें रहनेसे अशुभ और अशुभप्रदके  
रहनेसे शुभ होता है।

आरत सम्मरिधि।—मेघ लग्नमें यदि जन्म हो कर  
लग्नमें चन्द्र, मङ्गल तथा मकर मिथ अन्य किसी राशिमें  
शनि और रवि रहे, तो जातकालककी तीन दिनके भीतर  
मृत्यु होती है। यदि वृष लग्नमें जन्म हो तथा यह  
लग्न गृहस्थिति या शनिसे छठे स्थानमें रहे अर्थात् शनि

और गृहस्थिति घनुराशिमें हो एवं आठवें स्थानमें मङ्गल  
रहे, तो जातककी चौदह दिनमें मृत्यु होगी। विषुव  
लग्नमें जन्म हो कर कर्कटमें शनि, सप्तममें रवि रहनेसे  
मिथुनलग्नरिधि होती है। कर्कटलग्नमें जन्म हो कर  
तुला या कुम्भमें यदि गृहस्थिति तथा यह राहु या मङ्गल-  
से देखा जाय, तो कर्कट लग्नरिधि। यदि सिंहलग्नमें  
जन्म हो तथा चन्द्रलग्नमें रहे और मकर मिथ अथ  
राशिमें शनि और रवि हों, तो सिंहलग्नरिधि। यदि  
कन्या लग्नमें जन्म हो तथा उस लग्नमें चन्द्र तथा गृह-  
स्थितिके केन्द्रमें शनि रहे, तो कन्यालग्नरिधि; तुलालग्न-  
जात व्यक्तिके छठे घरमें शुक्र तथा लग्नमें चन्द्र रहे, तो  
तुला लग्नरिधि। गृहचक्र लग्नजात व्यक्तिके कर्कटमें  
चन्द्र, घनुराशिज्जात व्यक्तिके लग्नमें गृहस्थिति तथा  
मङ्गलमें शनि रहे; मकरलग्नजात व्यक्तिके मेघमें चन्द्र  
और सिंहमें रवि, कुम्भलग्नजात व्यक्तिके चतुर्थमें चन्द्र  
या कन्या अथवा तुलामें शुक्र, मीनलग्नजात व्यक्तिके  
लग्नमें चन्द्र और वृश्चिकमें शनि रहनेसे लग्नरिधि  
होती है। ये सब रिधि होनेसे जातककी मृत्यु हुआ  
करती है।

प्रत्येक लग्नको सूक्ष्म कर पड़ यों किया जाता है।  
यह यों इस प्रकार है, लग्न, होरा, द्रुपान, सप्तमं,  
नवांग, द्वादशांग और त्रिंशांग। इसके सिवा लग्नका  
स्फुटसाधन करनेसे और भी सूक्ष्म होना है। बिना  
स्फुटके अंग सूक्ष्म नहीं होता। सिंहलग्नमें जन्म  
हुआ है, कहनेसे स्फुटसाधन किया जाता है। इसमें  
सिंहलग्नके कितने अंग और कितनी कलायें जन्म हुआ  
है, सो मालूम होता है। स्फुटसाधन देखो।

लग्नफल—यदि मेघ, मिथ वा घनुराशि न हो और उस  
स्थानमें रवि रहे, तो जातक गृहस्थ, धर्मपालक, मेषुमी-  
का हितकारी, उदार, वयवान, कर्तृत्व्यागिमानी, क्षमा-  
शील, मानी, उदारचित्त, दाम्निक और उपांगिनापी  
होता है। किन्तु कर्कट अथवा तुलालग्न होनेसे  
तथा उस लग्नके ८ अंगके मध्य रविके रहनेसे एक  
चक्षु, नेत्ररोग और निराशा होता है तथा जातकशक्ति  
प्रायः आत्मस्वार्थी, घृणारहित और पुत्रहीन होता है।  
उस रविके दोनों पार्श्वमें अथवा उसके सातवेंमें शनि

भीर मङ्गलके रहनेसे जातक भ्रम्यायु होता और उसे विभूति होती है। यदि मेष, वृष अथवा कर्कट लग्न हो और यहाँ पूर्ण या बलवान् चन्द्र रहे, तो जातक रूपवान्, शिष्यदर्शन, गुणवान्, धनी, गार्हान् और भाग्यायु होता है। उक्त तीन राशिके छोड़ कर लग्नजात चन्द्रके क्षीण होनेसे तथा उम्मेके साथ अथवा उसके साथधैर्म क्रिसो शुभप्रदके नहीं रहनेसे जातकालक, मलिन, असुख्य, भ्रमणशील और दुबला पतला होता है। उसकी भयङ्ग्या पदलती रहती है अर्थात् कमी हास और कमी वृद्धि होती है। उस चन्द्रके उभय पार्श्वमें अथवा उसके साथधैर्म जनि और मङ्गलके रहनेसे जातक भ्रम्यायु होता और उसकी मातृरिति होती है।

शुभप्रदसे दृष्ट हो कर मङ्गलका यदि लग्न रहे, तो जातक तेजस्वी, उग्र-स्वभाववाला, साहसी, बलवान्, दाम्बिक और घोर होता है। उस मङ्गलके सप्तममें वृक्ष्पतिके रहनेसे यह ऐश्वर्यशाली और राजाके समान होता है। किन्तु पापदृष्ट होनेसे इसका विपरीत फल होता है। अर्थात् जातक कलहप्रिय, क्षतशरीर या श्वक् शोषविशिष्ट, भू-रक्षेष्टाश्रित, इन्द्रियासक्त, क्षोधी, मद्य-मांसप्रिय, चञ्चल, विकलाङ्ग, मलिन, उदर या दम्भरोगी और अनादि गुणरोगी हुआ करता है।

लग्नमें पास कर मिथुन और कर्कटलग्नमें युक्तके रहनेसे जातक्यक्ति, सिद्धवद, सुखसुद, मिष्टभाषी बंधुभोजी दितकारी, कौतुकवी, धनी, सफल, पवित्र या ज्ञान्यवेत्ता होता है। किन्तु लग्नरूप शुभ, जनि या मङ्गलके द्वारा दृष्ट होनेसे जातक पाचाल, मिष्टभाषी, मन्त्रजि-मन्त्र, शठ, भविष्यासी, प्रवक्षक, कपटी और घोर होता है।

मकर जिन अथ क्रिसो लग्नमें वृहस्पतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान्, स्वधर्मानुरज, विविध ज्ञानरसान-गण्य, सपुत्रप्रेष्ट, लोकपूज्य, राजसाम्राजित, भाग्यायु और ऐश्वर्यशाली होता है।

लग्नमें शुकके रहनेसे जातक विनासी, गुणवान्, सुखी ग्नी अथवा बहु लग्नायुक्त, मिलनशत्रुविनाशक, मन्त्री और बाध्यताश्रयिण, सहायको और प्रदुष्टविध वाला होता है। यदि बुद्धि लग्न ही तथा उसमें शुक और बुधराशिके वृहस्पतिके रहनेसे जातक सुखी तथा

उसकी शिष्या सर्वाङ्ग सुखी होती है। किन्तु लग्नगत शुक पापयुक्त हो या पापसे देहा जाय, तो यह भीषमङ्गमिय, नीचामोदक, अदानी, क्लेशमल और दरशनीय होता है।

यदि बुद्धि, धनु, कुम्भ या मीनराशि लग्न हो और लग्नमें जनि रहे, तो जातक दीर्घायु, ऐश्वर्यशाली तथा बहुलोकप्रतिपालक होता है। मत्तान्तरमें वृष, मिथुन या वृश्चालग्नमें जनि रहनेसे उक्त प्रकारका फल हुआ करता है। उस जनिके सप्तममें यदि वृहस्पति रहे, तो मानव परम ऐश्वर्यशाली होता है। किन्तु लग्नगत जनिके अथ राशिके रहनेसे मानव पान्तिहीन, क्षोभित, दुःखयुक्त, सर्वशून्य श्याचिपीडित, नीचाराय और सुखविहीन होता है। मेषसे कर्कटपर्यन्त इन छः राशिके मध्य कोई राशि लग्न होनेसे तथा यहाँ राहुके रहनेसे मानव अथ महारिष्टसे मुक्तिप्राप्त करता है। इयथा विपरीत होनेसे राहु अशुभ फल देता है। शंभु लग्नमें रहनेसे लग्नाधीन फलका हास होता है। लग्नस्थित मरु जिन प्रकार फलप्रद होता है उसी प्रकार लग्नाधिराजि द्वारा भी फल निर्णय किया जाता है।

अन्तर्धितकर्म—लग्नाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक भाग्यायु, विपुत्रवी, बहु परिजनयुक्त तथा अपने अशुभगमें श्रेष्ठ होता है। अन्तर्धितके द्वितीय स्थानमें रहनेसे मनुष्य अपने धर्म और परिधर्मसे धन कमाता है। लग्नाधिपके तृतीय स्थानमें रहनेसे जातक दाम्बिक, अभिमानी, सारा, झानि या प्रतिवासीकी घनापायन तथा भ्रमपरत होता है। चतुर्थ स्थानमें रहनेसे यह विपु मन्त्रालि, उल्लभ वादन, उल्लभ वागव्यापन और सुविमान करता है। पंचममें ही उसे मन्त्रज्ञता प्राप्त होती है। लग्नाधिपके षष्ठ्य स्थानमें रहनेसे मानव वागव्यापन, अलस, विकलमनिय, कर्माकारणविशिष्ट और बुद्धिमान होता है। ईष्ट स्थानमें रहनेसे शोच, शत्रुवृद्धि या कथ वृत्तन होता है। किन्तु शुभप्रददृष्ट होनेसे माना वा वाचार्थ महापत्नी धर्मकी अर्थापत्ता है। अन्तर्धितके सप्तम स्थानमें रहनेसे विधवाश्रयिणमें एकसे अधिक स्थान, वागव्यापनका परिधर्म, विद्वान्मत्त और मन्त्र-बुद्धि होती है तथा शतह अर्थकी बुद्धिके शोषण अथवा



मनिष्ट करता है। किसी व्यवसाय द्वारा घन और प्रतिपत्ति मिलती है। लग्नाधिपके आठवें स्थानमें रहनेसे मानव रग्न, अन्वयायु, शोकास, अघात और सर्वदा विपदापन्न होता है। किन्तु लग्नाधिपति यदि शुभ और बलवान् हो, तो उसे खीघन या कोई सम्पत्तिलाम होता है। लग्नाधिपके नवम स्थानमें रहनेसे जातक भाग्यवान्, विद्यान्, शास्त्रानुसारी, धार्मिक या पोतषणिक होता है। दशम स्थानमें रहनेसे मान्य, उच्चपद, कार्यसफलता और किसी समाजकी प्रधानता लाम होती है। गारहवे स्थानमें रहनेसे बहुमित्र, प्रचुर अर्थोपार्जन, उरसाह, वृद्धि और उत्तम वाहन लाम होता है। लग्नाधिपके बारहवें स्थानमें रहनेसे दुर्भावना, बन्धनभय, ब्रूण, निर्वासन, क्षीणदेह, शोक और गुरुगन्तु होता है।

द्वितीय पतिके लग्नमें रहनेसे मनुष्य धनी और सीमाग्य शाली होता है; तृतीयाधिपतिके लग्नमें रहनेसे बहुस्रमण और वासस्थानका परिवर्तन, परिजन द्वारा घेष्टिन, कुल-भेष्ट और पराक्रमशाली, चतुर्थाधिपके रहनेसे बन्धुवाहन और स्थावरसम्पत्तिका लाम; पञ्चमाधिपतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान्, विद्यानुसारी, पुत्रवान्, विलासप्रिय, प्रफुल्लित और अपने यशका भूषणस्वरूप, षष्ठाधिपतिके रहनेसे ज्ञेययुक्त, शत्रु द्वारा पीडित, अन्वयायु और सर्वदा अनुसूय, सप्तमाधिपतिके लग्नमें रहनेसे घोड़ी उमरमें विवाह, यागिज्यकुशल और विदेशयात्रा; अष्टमाधिपतिके रहनेसे विपद्, शोक, अन्वयायु या दीर्घस्थाप्यो पीडा; नवमाधिपतिके रहनेसे जातक भाग्यवान्, बुद्धिमान्, धर्म-परायण, विद्या या यागिज्य द्वारा धनी और बहुस्रमण-शाल, दशमाधिपतिके रहनेसे मानव क्षमताशाली, गण्य-मान्य और कीर्तिशाली; एकादशाधिपतिके रहनेसे प्रचुर भाय, बहुमित्र और पद पदमें उरसाह तथा द्वादशाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक अपत्यधी, दमेगा विपदापन्न और बन्धायु होता है।

लग्न और लग्नपति शुभ प्रद द्वारा घेष्टिन होनेसे जातक सीमाग्यशाली और यशस्वी होता है। इसी प्रकारमें लग्नका फल विचार करना होता है।

(दीर्घा, मातृकी) इत्यादि)

(पु०) लग्न-क. निपातान्त्सायु, यद्वा लसज्ज-क.

तस्या मर्यं । २ स्तुतिपाठक, धैर्यजन । पर्याय—प्रातःवे स्तुतिप्रयत्न, वृत् । (अष्टापर) ३ विवाह, शादी । ४ विवाहके दिन, सहालग । ५ विवाहका समय । (लि०) ६ लग्ना हुमा, मिला हुमा । ७ लज्जित, शरमिन् । ८ भासक । लग्नक (सं० पु०) १ प्रतिभू, यह जो जमानत करे, जामिन । २ एक राग जो हनुमत्के मतसे मेघरागका पुत्र माना जाता है ।

लग्नकङ्कण (सं० पु०) यह कङ्कण या मङ्गलसूत्र जो विवाहके पूर्व पर और कन्याके दाहमें बांधा जाता है ।

लग्नकाल (सं० पु०) लग्नस्य कालः । लग्नका समय । लग्नकुण्डली (सं० स्त्री०) फलित ज्योतिषमें यह शक या कुण्डली जिससे यह पता चलता है, कि किसके जन्मके समय कौन कौनसे प्रद किस किस राशिमें थे, जन्मकुण्डली ।

लग्नप्रद (सं० पु०) १ दृढसंश्लिष्ट । २ लग्नस्थित प्रद । लग्नदण्ड (सं० पु०) गाने या बजानेके समय स्वरके मुखर अंशों या धृतियोंकी आपसमें रह दूसरेसे मलग्न न होने देना और सुन्दरतासे उनका संयोग करना, लाग्नाट । लग्नदिन (सं० स्त्री०) लग्नस्य दिनः । लग्नका दिन, विवाहके लिये निश्चित दिन ।

लग्नदिवस (सं० पु०) लग्नदिन ।

लग्नदृष्टि (सं० स्त्री०) लग्नमें नक्षत्र भादिकी दृष्टि ।

लग्नदेयी (सं० स्त्री०) पुराणपरिणत परधरकी गामी या गाय ।

लग्नपत्र (सं० पु०) लग्नस्य पत्रम् । यह पत्रिका जिसमें विवाह और उससे सम्बन्ध रखनेवाला दूसरे दृष्टियोंका लग्न स्थिर करके, प्योरेवार लिखा जाता है ।

लग्नपत्रिका (सं० स्त्री०) लग्नपत्र देखा ।

लग्नफल (सं० पु०) लग्नविशेषमें जन्मके लिये जोषका शुभाशुभ फलमोग ।

लग्नबेजा (सं० स्त्री०) लग्नस्य बेजा । लग्नकाल, लग्नका समय ।

लग्नायु (सं० स्त्री०) फलितज्योतिषमें यह आयु जो लग्नके अनुसार स्थिर की जाती है ।

लग्नका (सं० स्त्री०) लग्नका, गंगी स्त्री ।

लग्नकाधम (सं० पु०) एक मटकका नाम । (दरन्ज० १०)



लघुनाशन्यं ( सं० पु० ) लघुः कारमर्षः । षट्फलवृक्ष, फट्टलका वेषु ।

लघुविपरी ( सं० स्त्री० ) प्राचीनकालका एक प्रकारका वाजा । इस वाजिमें बजानेके लिये तार लगे होते थे ।

लघुकीमुद्रा ( सं० स्त्री० ) परद्राप्रका बनाया हुआ सिद्धान्त-कीमुद्राका संक्षिप्त व्याकरण ।

लघुकम ( सं० पु० ) द्रुतगमन, जल्दी जल्दी चलनेकी क्रिया ।

लघुक्रिया ( सं० स्त्री० ) क्षुद्र या तुच्छ कार्य ।

लघुसद्विधा ( सं० स्त्री० ) लघुसद्विधा, छोटोला । पर्याय—भासन्ती ।

लघुमर्तरं ( सं० स्त्री० ) प्राचीन चंद्रभेद । जैन शब्द देखो । लघुगन्नाधर ( सं० पु० ) उद्दामय रोगमें प्रयोज्य चूर्णकभेद, वह चूर्ण या ओषधि जो पेटको बीमारीमें आती काम दे ।

लघुगण ( सं० पु० ) लघुगणः । अभिवृत्त, पुण्या और हस्ता इन तीन नक्षत्रोंका समूह ।

लघुगर्ग ( सं० पु० ) लघुगर्गः इव । १ त्रिकण्टकमत्स्य, देंगल या त्रिकण्टक नामकी मछली । २ वीरा नामकी मछली ।

लघुगोधूमं ( सं० पु० ) हल्गोधूम, छोटा गेहूँ । यह स्निग्ध, गुरु, घृण्य, कफघ्न, आमशोषकर, मधुघ्न, वीर्य और पुष्टि-कर माना गया है । ( राजनि० )

लघुचन्दन ( सं० स्त्री० ) काष्ठामुष्ट, अग्न नामक सुगन्धित लकड़ी ।

लघुचित्त ( सं० स्त्री० ) लघु चित्तं यस्य । क्षुद्रचित्त, जिसका मन बहुत ही दुर्बल या चञ्चल हो ।

लघुचिन्ता ( सं० स्त्री० ) चित्तकी स्पैय हीनता, मनके बहुत ही दुर्बल या चञ्चल होनेका भाव ।

लघुचिन्तानिर्गम ( सं० स्त्री० ) रसोपधविशेष ।

लघुचिन्तिता ( सं० स्त्री० ) मृगवीर्य, सफेद रश्मिपत्र ।

लघुचेतम् ( सं० स्त्री० ) लघुचेतो यस्य । जिसके विचार बहुत ही तुच्छ और घुरे हों, मोघ ।

लघुच्छदा ( सं० स्त्री० ) मदाजनापरी, बड़ी सतावर ।

लघुच्छेद्य ( सं० स्त्री० ) जो सहज हीमें काटा या ध्वंस किया जाय ।

लघुजम् ( सं० पु० ) लघा नामक पक्षी ।

लघुजाह्नल ( सं० पु० ) लापक पक्षी, लघा नामक पक्षी ।

लघुनर ( सं० स्त्री० ) अति लघु, हलका ।

लघुता ( सं० स्त्री० ) लघु-भावे तल् टाप् । १ लघु होने का भाव, छोटापन । २ तुच्छता, हलकापन ।

लघुतिक ( सं० स्त्री० ) मुग्धासंग ।

लघुतुपक ( सं० स्त्री० ) तमंचा, पिस्तौल ।

लघुत्तमापवर्त्य ( सं० पु० ) यह सबसे छोटी संख्या जो दो या अधिक संख्याओंमेंसे प्रत्येकको पूरा पूरा भाग दे सके ।

लघुत्य ( सं० पु० ) १ लघु होनेका भाव, लघुता । २ तुच्छता, हलकापन, छोटापन ।

लघुदन्तो ( सं० स्त्री० ) लघुः क्षुद्रा दन्तो । क्षुद्रदन्ती-पृक्ष, छोटी दन्ती । दन्ती देती ।

लघुदुग्धुमि ( सं० पु० ) लघुदुग्धुमिः । एक प्रकारकी छोटी दुग्धुमि, जुग्गी ।

लघुद्राक्षा ( सं० स्त्री० ) लघुः क्षद्रा द्राक्षा । कौकलीद्राक्षा, किशमिदा ।

लघुद्वारयती ( सं० स्त्री० ) घरसमान द्वारयती नगरी ।

लघुनाममण्डल ( सं० स्त्री० ) मण्डलात्मक शकभेद ।

लघुनामकर्म ( सं० पु० ) जैनियोंके अनुसार यह कर्म जिससे जीवका शरीर न तो बहुत भारी होना ही और न हलका होता ही बल्कि साधारण सम विमल होता है ।

लघुनामन् ( सं० स्त्री० ) लघु लघुचर्णामुपतं नाम वस्य । अमुष्ट, अग्न नामक सुगन्धित लकड़ी ।

लघुनारायणोपनिषद्—एक उपनिषद्का नाम ।

लघुपञ्चक ( सं० स्त्री० ) लघुपञ्चक देतो ।

लघुपञ्चमूल ( सं० स्त्री० ) लघु क्षुद्रं पञ्चमूलं । क्षुद्रपञ्चमूल पाचन । शालिपर्णी, पिटवग, कटार्थ, कटेदरो और गोपक इन पाँचोंको अड़ोंको लघुपञ्चमूल कहते हैं । यह पाचन, लघु, स्वादु, बलकर, पित्तानिलनाशक, नारदुग्ध, पुष्टि, प्राहक, उष्य, भ्यास और भस्मरानाशक माना गया है । ( भावप्र० )

लघुपण्डित ( सं० पु० ) एक नैयायिक । इन्होंने लघुपण्डित-तोष नामक म्यायशास्त्र लिखा । लघु भावार्थ देतो ।

लघुपतनक ( सं० पु० ) १ द्रुत पतनशोच, यह जो औरती गिर गया हो । २ द्रुतपतनके अनुसार एक काक ।

लघुपत्रं ( सं० पु० ) कमीला ।  
 लघुपत्रक ( सं० पु० ) लघुनि पत्राणि यस्य कप् ।  
 कमीला ।  
 लघुपत्रकला ( सं० स्त्री० ) लघु उद्गारिका, छोटा मूलर ।  
 लघुपत्री ( सं० स्त्री० ) लघुनि पत्राणि यस्याः टोप् ।  
 अश्वत्थपृष्ठं, पीपलका पेड ।  
 लघुपरागर ( सं० पु० ) १ स्मृतिशास्त्रभेद । २ ज्योतिषभेद ।  
 लघुपर्णी ( सं० स्त्री० ) १ मूत्रां, मरोङ्कली । २ शतमूली,  
 सताथर ।  
 लघुपाक ( सं० पु० ) लघुः पाकः यस्य । यह पाच-पदार्थ  
 जो सहजमे पच जाय ।  
 लघुपीकित् ( सं० पु० ) पीनाधान्य, पेना नामक कृमि ।  
 लघुपातित् ( सं० त्रि० ) १ जीम पवनगोल, जन्तु गिरे-  
 वाला । ( पु० ) २ काक, कौया ।  
 लघुपाण्डुरेषुक ( सं० पु० ) द्वोपांतर एजूरिका, एक  
 प्रकारको एजूर जो भिन्न भिन्न द्वोषोमिं होतो है ।  
 लघुपिच्छिल ( सं० पु० ) लघुः पिच्छिलः । मूकण्डुंशरक,  
 लिसेडा ।  
 लघुपुलस्त्य ( सं० पु० ) पुलस्त्यका बगया द्रुमा एक  
 धर्मनाम् ।  
 लघुपुष्य ( सं० पु० ) लघुनि क्षुद्राणि पुष्याणि यस्य ।  
 भूमिकदम्ब, भुंरं कडंब ।  
 लघुमयस ( सं० त्रि० ) आलस्यो ।  
 लघुकल ( सं० पु० ) लघु उद्गारक, छोटा मूलर ।  
 लघुबदर ( सं० पु० ) लघुः क्षुद्रो बदरः । छोटा  
 बेर । पर्याय—सूक्ष्मफल, बहुकर, सूक्ष्मफल, दुर्बरी,  
 मधुर, हरदार, निविमिष । एकं बेरका गुण—मधुरागल,  
 कफपातनादाक, रघिकर, विनाय, कुष्ठ विस्तारि, दाह  
 गौर शोथनाशक । ( रात्रि० )  
 लघुबदरो ( सं० स्त्री० ) भूबदरो, भुंरं बेर ।  
 लघुबुद्धपान ( सं० स्त्री० ) ललितविहगर मयका एक  
 संज्ञितं विपणन ।  
 लघुप्यास—मृतिपलमनाटकके रचयिता ।  
 लघुप्राज्ञो ( सं० स्त्री० ) लघुः । इन्द्रा प्राज्ञो । इन्द्रप्राज्ञी,  
 छोटी प्राज्ञो ।  
 लघुनरयो ( सं० स्त्री० ) चिञ्चोदक, येँच साग ।

लघुमय ( सं० पु० ) १ निम्न पद, छोटा मोहरा ।  
 २ निरुद्ध प्रथम ।  
 लघुमागयन ( सं० स्त्री० ) मागयनपुराणका एक चूर्णक ।  
 लघुभाष ( सं० पु० ) १ हलका । २ मङ्गलभाष, यह  
 काम जो आसानीमे हो जाय ।  
 लघुमुक्त ( सं० त्रि० ) लघु, लघुपाकद्वयं मुक्ते भुञ्ज-  
 क्ति । १ लघुपाक द्रव्यभोजनकारी, भाय खायेवाला ।  
 २ अल्पमीठी, थोड़ा खानेवाला ।  
 लघुभोजन ( सं० स्त्री० ) यह भोजन जो महत्तमे जीव  
 छोड़े समयमे परिवारक हो ।  
 लघुननि सं० त्रि० छोटी मनश्चाला, मूर्ख ।  
 लघुनग्य ( सं० पु० ) लघुः क्षुद्रो मग्यः । क्षुद्रानिमग्य,  
 छोटी गनिशारी ।  
 लघुमानं ( सं० पु० ) लघु, स्वयं मानं यस्य । तीतर  
 नामक पक्षी ।  
 लघुनांसो ( सं० स्त्री० ) गम्यमांसो, छोटी जटामांसी ।  
 लघुमान ( सं० पु० ) माषिकाका यह मान या अन्य रोष  
 जो माषकको किमी दूररी स्त्रोमे बातचोत करने देय  
 कर उरयय होता है ।  
 लघुमूक ( सं० स्त्री० ) शीतगणितके अनुसार एक दिमाक ।  
 लघुमूकक ( सं० स्त्री० ) लघुमूकं यस्य कप् । हृष-  
 मूलक, छोटी मूली ।  
 लघुयम ( सं० पु० ) तन्मायक एक स्मृति ।  
 लघुगानि ( सं० स्त्री० ) एक छोटी गानि ।  
 लघुग्या ( सं० स्त्री० ) १ कारयेत्तक, करैलेकी बेन । २  
 धनग्या, धनकमूद ।  
 लघुलव ( सं० स्त्री० ) लघुगोत्रं लीपे इति लो ब्रह्म । १  
 उगोद, लव । २ पीना बाला या लामक नामकी घास ।  
 लघुनीलिका ( सं० स्त्री० ) लोनीका भाग ।  
 लघुपासम् ( सं० त्रि० ) परिच्छिन्न नीट सूक्ष्मवातावर्ति-  
 पातकारी, सास नीट दाला करदा परतनेकाम ।  
 लघुविद्यन ( सं० पु० ) द्रुमनामक, मंत्र ज्ञाना ।  
 लघुपिच्छ ( सं० पु० ) पिच्छुर्लघुनि स्मृतिवितेर ।  
 लघुपूणि ( सं० त्रि० ) मोष कापांयनारी, छोटा काम  
 करनेकाम ।

लघुवेधिन (सं० लि०) जीम वेधकारी, जल्द वेधने वा छेदनेवाला।  
 लघुसंज्ञा (सं० स्त्री०) सूत्रोत्सर्ग, पेनाब करना।  
 लघुसङ्ग (सं० पु०) क्षुद्रसङ्ग, घीणा।  
 लघुनामी (सं० स्त्री०) शमीपूषमेद, एक प्रकारका पेड़ जो सेमरके पेड़के समान होता है।  
 लघुगान्धिपुराण—एक छोटा उपपुराण।  
 लघुजिघर (सं० पु०) संगीतमें एक प्रकारका ताल।  
 लघुजिघपुराण—एक उपपुराण।  
 लघुनीत (सं० पु०) निस्तोड़ा।  
 लघुसख्य (सं० लि०) लघुप्रकृतिक, नीच क्षभाषका।  
 लघुसदाफल (सं० स्त्री०) लघु, सदा फलं यस्याः सा लघुसदा फला। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।  
 लघुसमुत्प (सं० पु०) यह राजा या राज्य जो लड़ाईके लिये जल्दी तैयार किया जा सके।  
 लघुसार (सं० लि०) लघुः अल्पः सारो यस्य। अल्प-सारयुक्त, जिसमें थोड़ा सार हो।  
 लघुसुररीन (सं० स्त्री०) आयुर्वेदके अनुसार एक प्रकारकी चूर्णोपच।  
 लघुस्थानता (सं० स्त्री०) चञ्चलता।  
 लघुहस्त (सं० पु०) लघुः क्षिप्रकारी हस्तो यस्य। शीघ्र-वेधी, वह जो बहुत जल्दी जल्दी वाण चला सकता हो।  
 लघुहस्तता (सं० स्त्री०) लघुहस्तस्य भावः तल्-टाप्। लघुहस्तका भाव वा धर्म, जल्दी जल्दी वाण फेंकना।  
 लघुहस्तवत् (सं० लि०) लघुहस्त-सदृश, तेज वाण फेंकनेके समान।  
 लघुसारित (सं० पु०) दारितकाचि-वर्धितं =मृत्तिशाल-मेद।  
 लघुसद्व (सं० लि०) संवर्धितवत्, अधिक विकसित।  
 लघुसोमपुष्पा (सं० स्त्री०) लघु है लघुसङ्ग। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।  
 लघुसद्व (सं० स्त्री०) १ लघुसदा फला, लघुसदा। २ लघुसदाके अनुसार एक लघुसदा फल।  
 लघुसङ्ग (सं० स्त्री०) लघुसङ्ग, लघुसङ्ग, लघुसङ्ग।  
 लघुसङ्गता (सं० स्त्री०) १ जो लघुसङ्गता का सके। २ लघुसङ्गताका भाव, लघु लघुसङ्गता।

लघुदुम्बरिका (सं० स्त्री०) छोटा गूलर।  
 लघुसञ्जोर (सं० स्त्री०) एक प्रकारका मंजोर।  
 लघुसखि (सं० पु०) मत्तिसंधि-प्रयत्नितं स्मृतिभेद।  
 लघुसङ्गसुभटाहा (सं० स्त्री०) लघु, उदुम्बरिका, छोटी गूलर।  
 लघुगान्ध (सं० लि०) लघुः मानन्वो यस्य। १ लघु-शान्दयुक्त, कम मजावाला। (पु०) २ मन्व मानन्, कम मजा।  
 लघुगान्धरस (सं० पु०) १ रसोपविशेय। बनानेका तरीका—पाण, गंधक, लोहा, विष, मग्न प्रत्येक एक भाग; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, मंगरैवे और अमलघेतके रसमें सात बार भावना दे कर दो रसोकी गोली बनाये। अनुपान पानका रस है। इसके सेवनसे पाण्डु, अरुचि, मग्नाग्नि, प्रहणी, उजर और घातदृश्य आदि रोग मति शीघ्र दूर होते हैं।

(संन्द्रशास्त्र० पाथ्यभोगाधि०)

२ घातध्याधि रोगोक्त भौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पाण, गंधक, लोहा, मग्न, विष, प्रत्येक एक भाग; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, मंगरैवे और अनारके रसमें प्रत्येकको पांच बार भावना दे कर अनारके काढ़े में गोली बनाये। दोषके मुताबिक अनुपान ठीक करना होता है। इस भौषधका हस्तो माह करनेसे मग्न और दाहके साथ घातध्याधि जाती रहती है।

(संन्द्रशास्त्र० घातध्याधिरोगाधि०)

लघुशार्पसिद्धांत (सं० पु०) शार्पसिद्धांतका संक्षिप्त ग्रन्थ।

लघुशार्पसिद्धांत (सं० लि०) लघु अल्प लघुपाकं प्रथं वा अल्पानि अल्प-जिनि। लघुमोगी, कम जानेवाला।

लघुशार्पसिद्धांत (सं० लि०) लघुः आहारा यस्य। १ लघु-मोगी, कम जानेवाला। (पु०) लघुमोग्रन, थोड़ा जाना।

लघुशार्पसिद्धांत (सं० स्त्री०) लघु, अल्प। १ लघुसद्वका, लघुसद्वकी। २ लघुसद्वका फल। ३ लघुसद्व, अल्पसद्व। ४ लघुसद्वकी।

लघुशार्पसिद्धांत (सं० पु०) १ एक लघुशार्पसिद्धांत-ग्रन्थ। (संघर्षि ११११४)

२ लघुशार्पसिद्धांत-ग्रन्थ। (स्त्री०) ३ लघुश, लघुश।

लघुशार्पसिद्धांत-ग्रन्थके लघुश।

लङ्कायुद्ध ( सं० खी० ) १ सुकेश राक्षसकी माता और विद्युत्केशकी कन्याका नाम । ( रामायण ७।४।२३ )

२ सन्ध्याकी कन्याका नाम ।

लङ्कानाथ ( सं० पु० ) १ रावण । २ विभीषण ।

लङ्कानायक ( सं० पु० ) लङ्कानायक ।

लङ्का ( सं० खी० ) रमन्तेऽस्यामिति रम् दाहुलकात् कः रस्य लत्वम् ( उष् ३।४० ) टाप् । राक्षःपुरी, रावणका राज्य ।

ज्योतिःशास्त्रके मतसे यह लङ्का पृथिवीके वामभागमें अवस्थित है ।

“लङ्कादुर्गस्ये यमकोटिरस्याः प्राक्पश्चिमे रोमकपत्तनञ्च ।

अथस्ततः सिद्धपुरं मुदेकसौम्येऽप्य याम्ये बहवनाप्रत्तच ॥”

( विद्वान्तिरोरामण )

अग्निपुराणमें लिखा है, कि लङ्कापुरी तीस योजन विस्तीर्ण है । इस पुरीके प्राकार सोनेके बने हैं । दक्षिण-समुद्रके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है । उस पर्वतके शिखर पर मध्यम समुद्रके समीप स्वर्णाने बहुत परिश्रम करके इन्द्रके लिये यह पुरी बनवाई । इस पुरीमें चिड़िया भी नहीं जा सकती हैं । राक्षस सुकसे इस पुरीमें बास करते थे । ये अमरावतीके सद्गश इस लङ्का-नगरीको पा कर भयानक डराधर्य हो गये थे ।

“विशद्वयोजनवीस्तीर्णा स्वर्णप्राकारतोरण्याम् ।

दक्षिणस्योदधेस्तारे त्रिकुटो नाम पर्वतः ॥

शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमाम्बुधिषन्निधौ ।

पतत्रिभिश्च दुष्प्रापां टङ्कद्विजां चतुर्दिशम् ॥

शकार्यं मत्कृता पूर्वं प्रयत्नात् षड्वत्सरेः ।

बन्तु तत्र दुर्दर्भाः सुखं राक्षसपुत्रवाः ॥

लङ्कादुर्गं समासाय शश्यां शश युदनाः ।

दुरापर्णा भविष्यन्ति राक्षसेर्वाहुभिर्हृत्वा ॥”

( अग्निपु० कविलदर्शन नामाध्याय )

रामायणमें लिखा है, कि दक्षिण सागरके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है । उस शिखर पर अमरावती-सद्गश लङ्का नामक एक विशाल पुरी है । यह सुन्दर पुरी सोनेकी दीवार और छतोंसे घिरी है । उसके सभी दरवाजे सोने और बेट्टीमणिके हैं । सभी स्थान यन्त्रोंसे सुसज्जित हैं । राक्षसोंके रहनेके लिये विश्वकर्माने बड़े

पत्तसे इस पुरीको बनाया है । राक्षस इस पुरीमें रह कर अत्यन्त दुर्दर्भ हो गये थे । पीछे विष्णुके भयसे उन्होंने इस पुरीका परित्याग कर पातालमें भाग्य प्रदण किया । कुछ दिन यह पुरी बिना राक्षसके रही ।

पीछे कुबेर विश्रवाकी आह्वाले लङ्कापुरीके अधोध्वर हो वहाँ रहने लगे । इसके बाद जब रावण तपोबलसे बल-पात्र हो उठा और उसे यह मालूम हुआ, कि लङ्कापुरी हमारे पूर्वपितृदुर्वाको निवासभूमि है, तब उसने लङ्का छोड़ देनेके लिये कुबेरके पास एक दूत भेजा । कुबेर रावणके भयसे पुरीको छोड़ चले गये । रावण लङ्काका अधोध्वर हुआ । ( रामायण उत्तरका० ) रावण देखो ।

रामचन्द्र कपिसैन्यको साथ ले सीताके उद्धारके लिये लङ्का गये थे । वह लङ्का कहाँ है, उसका वर्त्तमान नाम क्या है, उसको उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उसका प्राचीन और आधुनिक इतिहास क्या है, उसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं :—

वर्त्तमान देशी और विदेशी भौगोलिकगण एक खरसे कहते हैं, कि अभी जिसको हम लोग सिंहल वा सिलोन कहते हैं उसीका प्राचीन नाम लङ्का है । किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं जंचता, बहुत पहले होसे हम लोगोंके पुराणादि-शास्त्रकारगण लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप जानते थे । महाभारत और पुराणादिमें यह विशेषभावमें वर्णित है ।

“विश्वान् बर्णवान् म्लेच्छान् वे च क्षत्रानिवाशिनः ॥”

( महाभारत, वन, ५१ अ० २२ श्लो० )

“क्षत्रा कात्ताजिनारचेव शैभिका निष्काटस्था । २०

श्रृपमाः सिद्धारचैव तथा काश्रीनिवाशिनः ॥” २०

( मार्कण्डेयपुराण ५८ अ० )

फिर भागवत ५।१६।३०, वृहत्संहिता १।४।५ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप बताया है ।

रामायणमें दक्षिणदेशीय स्थानादिका उल्लेख करते समय लिखा है—मलय-पर्वतके बाद ताम्रपर्णी नदी है । यह नदी समुद्रमें गिरी है । इस नदीको पार करनेसे पाण्ड्यनगर मिलता है । उस नगरका पुरदार सोनेका बना है । इसके ५५ समुद्र पड़ता है । समुद्र पार करनेसे

लघुपर्वण ( सं० ति० ) शीघ्र वेधकारक, जल्द वेधने या  
पेड़नेवाला ।

लघुपट्टा ( सं० स्त्री० ) मूलोत्सर्ग, वेगाव करना ।

लघुपद्म ( सं० पु० ) क्षुद्रपद्म, घोंघा ।

लघुपामो ( सं० स्त्री० ) शमीपुष्पभेद, एक प्रकारका पेड़ जो  
सैमरके पेड़के समान होता है ।

लघुगान्धिवपुण—एक छोटा उपपुराण ।

लघुनिघर ( सं० पु० ) संगीतमें एक प्रकारका ताल ।

लघुनिघपुराण—एक उपपुराण ।

लघुगीत ( सं० पु० ) गितमोड़ा ।

लघुसख्य सं० ति० ) लघुप्रकृतिक, नीच स्वभावका ।

लघुगदाफला ( सं० स्त्री० ) लघु सदा फलं यस्याः सा  
लघुगदा फला । लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर ।

लघुसमुत्प ( सं० पु० ) यह राजा या राज्य जो लड़ाईके  
लिये जल्दी तैयार किया जा सके ।

लघुसार ( सं० ति० ) लघुः अत्याः सारो यस्य । अल्प-  
सारयुक्त, जिसमें थोड़ा सार हो ।

लघुसुदर्शन ( सं० स्त्री० ) भायुर्वेदके अनुसार एक प्रकार-  
की शूर्पापथ ।

लघुस्वामता ( सं० स्त्री० ) चञ्चलता ।

लघुहस्त ( सं० पु० ) लघुः क्षिप्रकारी हस्तो यस्य । शीघ्र-  
घेयी, यह जो बहुत जल्दी जल्दी वाण चला सकता हो ।

लघुहस्ताता ( सं० स्त्री० ) लघुहस्तस्य भागः तल्-टाप् ।  
लघुहस्तका भाग या धर्म, जल्दी जल्दी वाण फेंकना ।

लघुहस्तयान् ( सं० ति० ) लघुहस्त-सङ्ग, तेज वाण  
फेंकनेके समान ।

लघुहारित ( सं० पु० ) हारितश्रुति-प्रयत्नित श्रुतिगाल-  
भेद ।

लघुहृदय ( सं० ति० ) चंचलचित्त, अस्थिर चित्तवाला ।

लघुदेमदुग्धा ( सं० स्त्री० ) लघुहं मदुग्धा । लघुदुम्बरिका,  
छोटा गूलर ।

लघुहृत्प ( सं० स्त्री० ) १ हलका करना, छोड़ना । २ गणित-  
के अनुसार एक तरहका भङ्क ।

लघुकि ( सं० स्त्री० ) लघुः क्लिप्ता । लघुकथन, कम  
बोचना ।

लघुपावना ( सं० ति० ) १ जो सदाश्रमे उड़ सके । २  
इत्यं व्याख्ययामग्रन्थ, पृष्ठ लघुहस्त ।

लघुदुम्बरिका ( सं० स्त्री० ) छोटा गूलर ।

लघुवज्रोर ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका भङ्क ।

लघुशक्ति ( सं० पु० ) अतिश्रुति-प्रयत्नित श्रुतिभेद ।

लघुवपुद्मराहा ( सं० स्त्री० ) लघु उदुम्बरिका, छोटा  
गूलर ।

लघुमानन्द ( सं० ति० ) लघुः मानन्दो यस्य । १ अल्प  
आनन्दयुक्त, कम मजावाला । ( पु० ) २ अल्प आनन्द,  
कम मजा ।

लघुमानन्दरस ( सं० पु० ) १ रसोपविविधेय । बनानेका  
तरोका—पारा, गंधक, लोहा, विष, अन्न प्रत्येक एक  
भाग ; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, भङ्करीके और  
अमलपेतके रसमें सात बार भावना दे कर दो रसोहो  
गोली बनाये । अनुपान पानका रस है । इसके सेवनसे  
पाण्डु, महचि, मग्नाग्नि, प्रद्वी, ज्वर और यातुश्लेष्म  
आदि रोग अति शीघ्र दूर होते हैं ।

( रतेन्द्रशरत्० पाण्डुरोगार्थि० )

२ यातुश्लेष्म रोगोक्त औषधिविधेय । प्रस्तुत प्रणाळी—  
पारा, गंधक, लोहा, अन्न, विष, प्रत्येक एक भाग । मिर्च  
८ भाग, सोहागा ४ भाग, भङ्करीके और अनारके रसमें  
प्रत्येकको पांच बार भावना दे कर अनारके काढ़ेमें गोली  
बनाये । दोषके मुताबिक अनुपान ठीक करना होता  
है । इस औषधका इस्तेमाल करनेसे घम और दाहके  
साथ पानश्लेष्म जाती रहती है ।

( रतेन्द्रशरत्० वातश्लेष्मार्थि० )

लघुशार्पसिद्धांत ( सं० पु० ) शार्पसिद्धांतका संक्षिप्त  
प्रणय ।

लघुशान्ति ( सं० ति० ) लघु अल्पं लघुपाकं द्रव्यं वा  
अथवा अल्प-गणित । लघुमोक्षो, कम खानेवाला ।

लघुशान्ति ( सं० ति० ) लघुः आहारः यस्य । १ लघु-  
मोक्षो, कम खानेवाला । ( पु० ) लघुमोक्षत, थोड़ा खाना ।

लघुशो ( सं० स्त्री० ) लघु शोष्णम् । १ लघुशुष्कता, बहुत  
छोटी । २ बेर नामक फल । ३ लघुका, अक्षरणा ।  
४ हस्तिकोली ।

लघु ( सं० पु० ) १ एक पालिका नाम । ( पर्यायिणीशास्त्र )  
२ लघु नामक द्वीप । ( स्त्री० ) ३ कवि, कवय ।

लघुक—मङ्कके भाई ।

लङ्कायुद्ध ( सं० खी० ) १ सुकेता राक्षसकी माता और विद्युत्केशकी कन्याका नाम । ( रामायण भा० २३ )

२ सन्ध्याकी कन्याका नाम ।

लङ्कनाथ ( सं० पु० ) १ रावण । २ विभीषण ।

लङ्कनायक ( सं० पु० ) लङ्कनाय देखा ।

लेङ्का ( सं० खी० ) रमन्तेऽस्यामिति रम् बाहुलकान् कः लस्य लत्वं ( उष्य ३।४० ) टाप् । राक्षःपुरी, रावणका राज्य ।

ज्योतिःशास्त्रके मतसे यह लङ्का पृथिवीके वामभागमें अवस्थित है ।

“लङ्काकुलम्भे यमकोटिरस्याः प्राक्परिचमे रोमकपत्तनम् ।

अपस्ततः सिद्धपुरं मुनेरौम्येऽप्य याम्ये बहुवनप्रसरत् ॥”

( सिद्धान्तशिरोमणि )

अग्निपुराणमें लिखा है, कि लङ्कापुरी तीस योजन विस्तीर्ण है। इस पुरीके प्राकार सोनेके बने हैं। दक्षिण-समुद्रके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस पर्वतके शिखर पर मध्यम समुद्रके समीप स्वष्टाने बहुत परिश्रम करके इन्द्रके लिये यह पुरी बनवाई। इस पुरीमें चिड़िया भी नहीं जा सकती हैं। राक्षस सुबसे इस पुरीमें बास करते थे। ये अमरावतोंके सहस्र इस लङ्का-नगरीको पा कर भयानक दुःखार्घ्य हो गये थे।

“त्रिशद्वयोजनवीस्तीर्या स्य प्राकारतोरेष्णाम् ।

दक्षिणस्योदधेस्तारे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥

शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमाम्बुविषत्तियो ।

पतत्रिभिश्च दुष्प्रापां टक्किल्लां चतुर्दिशम् ॥

शकार्यं मत्कृता पूर्वं प्रपन्तात् बहुवत्सरेः ।

भवन्तु तत्र दुर्दर्भाः सुखं राक्षसपुङ्गवाः ॥

लङ्कादुर्गं समासाय श्वष्पां शश्वदनाः ।

दुताधर्षा भविष्यन्ति राक्षसैर्बाहुभिर्भृवाः ॥”

( अग्निपु० कपिलदर्शन नामाध्याय )

रामायणमें लिखा है, कि दक्षिण सागरके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस शिखर पर अमरावतों-सहस्र लङ्का नामक एक विशाल पुरी है। यह सुन्दर पुरी सोनेकी दीवार और खारसे घिरी है। उसके सभी दरवाजे सोने और चतुर्दामणिके हैं। सभी स्थान यन्त्रोंसे सुसज्जित हैं। राक्षसोंके रहनेके लिये विश्वकामने बड़े

पलसे इस पुरीकी बनाया है। राक्षस इस पुरीमें रह कर अत्यन्त दुर्दर्भ हो गये थे। पीछे विष्णुके भयसे उन्होंने इस पुरीका परित्याग कर पातालमें आश्रय ग्रहण किया। कुछ दिन यह पुरी बिना राक्षसके रही।

पीछे कुबेर विधवाकी आहासे लङ्कापुरीके अधीश्वर हो यहाँ रहने लगे। इसके बाद जब रावण तबोबलसे बलवान् हो उठा और उसे यह मालूम हुआ, कि लङ्कापुरी हमारे पूर्वपितृरूपोंकी निवासभूमि है, तब उसने लङ्का छोड़ देनेके लिये कुबेरके पास एक दूत भेजा। कुबेर रावणके भयसे पुरीको छोड़ चले गये। रावण लङ्काका अधीश्वर हुआ। ( रामायण उत्तरका० ) रावण देखा ।

रामचन्द्र कपिसैन्यको साथ ले सीताके उद्धारके लिये लङ्का गये थे। वह लङ्का कहाँ है, उसका वर्त्तमान नाम क्या है, उसको उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उसका प्राचीन और आधुनिक इतिहास क्या है, उसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं;—

वर्त्तमान देशों और विदेशों भौगोलिकगण एक खरसे कहते हैं, कि अभी जिसको हम लोग सिंहल या सिलोन कहते हैं उसीका प्राचीन नाम लङ्का है। किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं जंचता, बहुत पहले हीसे हम लोगोंके पुराणादि-शास्त्रकारगण लङ्का और सिंहलकी दो स्वतन्त्र द्वीप जानने थे। महाभारत और पुराणादिमें यह विशेषभावमें वर्णित है।

“सिंहशान् बर्णागन् म्लेच्छान् ये च लङ्कानिवाधिनः ।”

( महाभारत, वन, ५१ अ० २२ श्लो० )

“लङ्का काशाजिनारहेच भौक्षिका निकटास्तथा । २०

श्रृयमाः सिद्धारचेव तथा काशीनिवाधिनः ॥” २०

( मार्कण्डेयपुराण ५८ अ० )

फिर भागवत ५।१६।३०, बृहत्संहिता १।४।५ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लङ्का और सिंहलकी दो स्वतन्त्र द्वीप बताया है।

रामायणमें दक्षिणदेशीय स्थानादिका उल्लेख करते समय लिखा है—मलय-पर्वतके बाद ताम्रपर्णी नदी है। यह नदी समुद्रमें गिरी है। इस नदीको पार करनेसे पाण्ड्यनगर मिलता है। उस नगरका पुरातन सोनेका बना है। इसके ११ समुद्र पड़ता है। समुद्र पार करनेसे



स्वामरके मध्य अगस्त्यनिघेजिन महेश्वर पर्यंत देखनेमें  
आयेगा। उसके दूसरे किनारे सी योजन पिस्वुग मनि-  
जय प्रमायुक्त एक द्वीप है। उसी द्वीपमें रायज रहता था।  
जैसे—

“० ० मन्मदस्व महोदयः ।  
इत्यवधोदित्यवद्वःस्वमस्वयुवित्तमम् ॥  
एतद्वेनाम्बनुशाशाः प्रसन्नेन महोदयना ॥  
ताम्ररथी माहदुशी कठिनय मदानशम् ।  
या पन्दनरभेभ्रिभेः प्रबद्धनदीपपरिष्वी ॥  
कान्तेषु पुत्रयो कान्तं समुद्रमगमार्ते ।  
एतो हेममयं दिव्यं मुजामाविष्विपुवितम् ॥  
सुक्तं क्वाटं पापत्वानो गना द्रवयय यानयाः ।  
एतः समुद्रमाहाय सम्प्रभाषोर्पनिधयम् ॥  
अगस्त्येनाम्बो एष यामरे विनिघेजिनः ।  
विपणतुवगः भीमान् महेश्वरः पर्यंतःसमः ॥  
जात्रमगमयः भीमान् अत्रमादो महायोषयम् ।  
द्वीपस्वरूपान्ते गारे मातपोजनवित्त्वयः ॥  
एष सर्वात्मना सीता माहितव्या विदोयतः ।  
ते हि देवास्तु दम्पत्य राषयस्य दुरात्मनः ॥”

(द्विकल्पकाव्य ४१ श्लो० १५-२४ श्लोक)

मलय पर्यंतका वर्तमान नाम पद्विमप्रघाट है। इस  
पर्यंतके जिस स्थानसे ताम्रपर्णी उदयन हुई है उस  
स्थानको हमी भी अगस्त्यादि कहते हैं। (Cald-  
well's Dravidian Grammar, Intro, p. 48) ताम्र-  
पर्णी नदी तिनचोली प्रदेश होती हुई समुद्रसे मिली है।  
इस नदीके किनारे समुद्रके पास जो पाण्ड्यनगर  
स्थापित था उसको प्राचीन बरही और भीक भीगोलिक  
'कोलके' और 'कोयल' तथा निरुद्वय स्वामरके 'कोल-  
किकन' कहते थे। समुद्रको पार करनेमें महेश्वर पर्यंत  
मिलता है। यही सिंहलद्वीपका वर्तमान मादगल्ल पर्यंत  
होता है। जिस समयकी बात लिखी जाती है मादूम  
होता है, कि उस समय ताम्रपर्णी नदी-प्रवाहित भूमिषण्ड  
दक्षिणांगमें बहुत दूर तक पिस्वुग था। इस नदीकी पार

करनेसे ही सिंहलद्वीप ज्ञाया जाता था, इस कारण  
सिंहलद्वीपको पीपानिकवानामें ताम्रपर्णी कहते थे। पीपके  
प्राचीन पुगविदोंका कहना है, कि पाण्ड्यनगर मुक्ता  
मिलनेके कारण प्रसिद्ध था। किन्तु महाभारतके मन्त्रो  
लोग सिंहलद्वीपके निरुद्वयसी समुद्रमें मुक्ता निकालते  
थे। राजसूययज्ञके समय सिंहलद्वीपके लोगोंने ही राजा  
सुषिष्ठिरको मुक्ता उपहारमें भेजा था।

“समुद्रधारं वेदुष्यं” मुक्तामत्स्यतापेयम् ।

मन्तरच कुषोत्सव शिरसाः समुद्रारव ॥”

(गणपत ११।१६)

रामायणमें ही दूसरी जगह लिखा है, कि दनुमानादि  
बानरगण सीताकी तलाश करते करते दक्षिणदिग पार  
कर एक अज्ञातपूर्व पर्वतगहरमें पहुँचे थे। उस स्थान-  
का नाम शशयिल था। इसके चारों ओर दुर्गम पर्वत-  
श्रेणी थी। यहाँ आ कर बानरगण ह्लागत और पय-  
घ्नास्त हो गये। उन्होंने पहले सुमीपसे सुना था, कि  
महेश्वर पर्यंतके बाद समुद्रके दूसरे किनारे शयपनिषाम  
लड्डुद्वीप है; किन्तु इस स्थानका नाम उन मन्त्रोंने पहले  
कभी नहीं सुना था। बहुत जोर करते करते इस भाण्डूर  
गहरके मध्य एक योजन जानेके बाद उन्हें एक रमणीय  
स्थान मिला। यह स्थान नील, वैदूर्यमणि और परिशीले  
परिपूर्ण था। सोने और चांदीके विमान यहाँ जोमा दे  
रहे थे। सभी घर चांदीके बने थे, उनकी विपुक्तियां सोने-  
की थीं (इत्यादि)। उन मन्त्रोंने थोड़ी ही दूर पर एक  
तपस्विनीकी देखा। उसी तपस्विनीमें उन्हें कुछ बातें  
मालूम हुईं—

“जयो नाम महामेवा माधारी बानररंभ ।

सेनेदं निर्मितं त्वं मायया कायने वनम् ॥

पुत्रा दानवगुणवानो विपकमां वसुम् ६ ।

यद्दुर्वर्तसहस्राणि तपसाज्जया महामने ॥

विशामाहारं लेभे सर्वभीष्टानां धनम् ।

विषाय सर्वं वक्ष्यामि तां कामे शरत्सदा ॥

उत्तम श्रुतिषु वातं कश्चिदस्मिन् मद्राणे ।

तन्मन्त्रसि देवतां यच्छं दानवपुङ्गवम् ॥

विश्वमेवास्मिन् एतन् जयानेवः पुण्डरीक ।

इच्छा मन्त्रादा वक्षं हेमायै वनगुणाम् ॥”

(द्विकल्पका ११ श्लो० १०-१४ श्लोक)

० “केलु”कल्ल समुद्रका वर्तमान नाम मन्तर-उदयनगर है।  
(Lassen)

महा नेत्रवाणी मायावी मयदानवने मायाबलसे इस काञ्चनमय वनभूमिको बनाया है। 'वे पहले दानवोंके विश्वकर्मा थे। उन्होंने इस मंहविषमें हजार वर्ष तपस्या करके पितामह ब्रह्मासे वर पाया था। उस वरसे उन्हें औशनस रचित संमी प्रकारका शिल्पशास्त्र प्राप्त हुआ। इस प्रकार वे सर्वशक्ति-सम्पन्न और स्वसृष्ट भोग्य विषयके भोक्ता हो कर कुछ समय सुखपूर्वक इस वनमें रहे। उससे समय हेमा नाम्नी अप्सरामें वे आसक्त हो गये, इस कारणे देवराज इन्द्रने वज्र द्वारा उन्हें मार डाला था। पीछे ब्रह्माने हेमाको यह अनुत्तम वन प्रदान किया।

महावंश नामक पालि-ग्रन्थके मतसे सिंहलद्वीपके एक विभागका नाम मय है। वर्त्तमान आदमशृङ्ग वा धोपादशील और उसके निकटस्थ स्थानको बहुतेरे मय-राज्यके अन्तर्गत मानते हैं। (Tenent's Ceylon, vol 1, p. 337 n.) चण्डी महावंशमें सिंहल, नागद्वीप और ताम्रपर्णीको एक द्वीपका पर्याय बतलाया है, पर यह बौद्धमत बहुत कुछ असङ्गत-सा प्रतीत होता है। क्योंकि, पहले ही महावंशके प्रणेठाने सिंहल नामको ले कर गोलमाल कर रखा है। उनका कहना है, कि पहले इस स्थानका नाम सिंहल नहीं था। ब्रह्म-राजकुमार विजयसिंहने जब इस द्वीपको जीता, तब उन्हींके नामानुसार इस स्थानका नाम सिंहल हुआ। किन्तु उस समयसे बहुत पहले यह स्थान जो सिंहल कहलाता था, वह महाभारतमें कई जगह लिखा है। इसके सिवा ताम्रपर्णी (सिंहल) और नागद्वीप, वे दोनों जो स्वतन्त्र हैं वह सभी पुराण पढ़नेसे मालूम होता है।

रामके कपि-सैन्यको ले कर समुद्र तट पर पहुँचनेके बाद नलने १०० योजनका एक सेतु बनवाया था। इससे जाना जाता है, कि समुद्र-तटसे लङ्काका किनारा १०० योजन अर्थात् ४०० कोस था।

कोई कोई कहते हैं, कि रामेश्वर-द्वीपने सेतु आरम्भ हुआ था। कोई कोई वर्त्तमान धान्मस् विजको ही नल-निर्मित सेतु बतलाते हैं। किन्तु यह आधुनिक लोगोंकी कल्पनामात्र है। रामेश्वर-द्वीपसे नल सेतु हो सकता है, पर वर्त्तमान आदम विजको हम लोग नलसेतु नहीं मान सकते। जिन सब सङ्कीर्ण स्थानोंकी बहुतेरे उस नल-

सेतुका प्रस्तरखण्ड मानते हैं, वे समुद्र छोनसे फेंके गये बालू या रेतोले पत्थर (Sand-stone)-मात्र हैं। भूतत्त्व-विज्ञाने परोक्षा कर देखा है, कि वे सब खण्ड निताप्त आधुनिक समयके हैं। (Ouden Nieuw Oost Indian, Ch XV, p. 218.) इसके पास ही समुद्रके निर्मल जलमें बहुतां प्रयाल देखे जाने हैं। आगे चल कर प्रयाल उन सब खण्डोंमें मिल कर द्वीपाकारमें परिणत होगे। बहुतेरोंका कहना है, कि पहले सिंहलद्वीप भारतवर्षके साथ मिला था। विशेषतः वर्त्तमान रामेश्वर-द्वीपसे सिंहलका किनारा १०० योजन नहीं है।

५वीं सदीमें पालि-ग्रन्थ महावंश पहले पहल रचा गया। उस महावंशके मतसे सिंहलका दूसरा नाम लङ्का है। किन्तु उस समय (७वीं सदीमें) प्रसिद्ध चीनपरिभाषक यूएनचुवंग सिंहलद्वीप गये थे। उन्होंने सिंहलद्वीपको लङ्का नहीं कहा है। वे लिख गये हैं, कि, "सिंहलद्वीपके दक्षिण पूर्वमें एक पर्वत है। उसी पर्वतको लोग लङ्का कहते हैं। वहाँ यक्ष आदि वास करते हैं।" अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि यूएनचुवंगके समयमें भी सिंहलद्वीपको कोई भी लङ्काद्वीप नहीं कहता था। सिंहलद्वीपसे बहुत दूर दक्षिण-पूर्वमें लङ्का नामक एक सामान्य पर्वत रहने पर भी समस्त सिंहलको हम लोग रामायणिक लङ्का नहीं कह सकते। सिंहलमें लङ्का पहाड़ है यह सुन कर ही यदि कोई सिंहलको लङ्का कहे, तो काश्मीरके अन्तर्गत जो लङ्का-द्वीप है उसे तो बहुतेरे पेशवक रावणकी लङ्का कह सकते हैं। केवल एक नामका मेल पानेसे प्राचीन जनपदादिकी अवस्थिति नहीं जानी जा सकती। उस स्थानके भूतत्त्व, चतुःसोमा और उत्पन्न द्रव्यादिके साथ वर्त्तमान निर्दिष्ट स्थानादिके भूतत्त्वादिका सादृश्य होनेसे मले ही उस प्राचीन जनपदादिका बहुत कुछ पता चक सकता है।

लङ्काके सम्बन्धमें पहले ही कहा जा चुका है, कि हम लोगोंके प्राचीन शास्त्रोप-मतानुसार लङ्का और सिंहल दो स्वतन्त्र द्वीप थे। अभी देवना चार्दिये, कि किस स्थानको हम लोग लङ्का कह सकते हैं।

मन्विपुराणमें लिखा है—

“विष्णुस्वोदरेस्वीरि विष्णुः प्राकारासोऽप्याम् ।  
दक्षिणस्वोदरेस्वीरि विष्णुः नाम वर्षतः ॥  
दिसरे तस्य शोऽस्य मन्वमेऽमुषिर्वाग्भयो ।  
वर्षर्धिमथ दुष्प्रागं [दक्षिणस्वो] चतुर्दिशि ॥  
प्राकारं मन्वृता पृथं मन्वृताः सुवस्वरेः ।  
वस्वन्व तत्र दुष्प्रागं मन्वृताः राक्षसपुत्रयाः ॥”

दक्षिण-सागरके किनारे त्रिकुट नामक पर्वत है। उस पर्वतके मध्यनिगर पर समुद्रके समोप ३० योजन विस्तीर्ण स्वर्णप्राकार और तोरणादिके परिष्णोमित लङ्का-पुरी है। इस पुरीमें पक्षिणग भी नहीं घुस सकने। पूर्वकालमें इन्द्रके लिये सेरुद्धों वषं कठिन परिश्रम करके हमने (विश्वकर्मा) इस पुरीको बनाया है। हे दुर्दं-प-राक्षसगण उस स्थानमें सुकसे बास करो।

रामायणमें भी लिखा है,—

“दक्षिणस्वोदरेस्वीरि विष्णुः नाम वर्षतः ॥ २२  
सुवेष इति नाम्बन्वो वितीषो राक्षसेभ्यराः ।  
दिसरे तस्य शोऽस्य मन्वमेऽमुषिर्वाग्भयो ॥ २३  
नकुनेरि दुष्प्रागे दक्षिणस्वो चतुर्दिशि ।  
विष्णुस्वोदरेस्वीरि ततोऽयमनापता ॥ २४  
स्वर्णप्राकारासोऽप्या हेमजोऽप्यसृता ।  
भवा लङ्कानि नगरी रक्षात्नेन निमिता ॥” २५

( उत्तरकाण्ड धूम सर्ग )

हे राक्षसगण ! दक्षिण-सागरके किनारे त्रिकुट नामक पर्वत है। उसके समान सुवेल नामका पहाँ पक और पर्वत है। उस पर्वतका मध्यम निगर मेघके जैसा है। जगके चारों ओर बड़े बड़े पहाँन रहनेसे यहाँ पक्षी भी नहीं जा सकने। मैंने (विश्वकर्मा) उस निगर पर इन्द्रके आदेशसे लङ्कापुरी बनाई है। यह पुरी तीस योजन लम्बी और एक सौ योजन चौड़ी है। चारों ओर शीशेकी दीवार हीड़ गई है। सभी दरवाजे मोमेके बने हैं।

फिर दूसरी जगह लिखा है।

मन्विपुराण त्रिकुटक मन्वृते चतुर्दिशि विष्णुः ।  
वस्वन्व तत्र दुष्प्रागं मन्वृताः राक्षसपुत्रयाः ॥

ततोऽयमनापता विमलं प्राकारं नम  
निमिता तस्य दिसरे दक्षिणस्वोदरे ॥  
दक्षिणस्वोदरेस्वीरि ततोऽयमनापता ।  
हा पुरी मोदुरे वर्षोः पापदुराम्पुत्रकर्मिणोः ॥  
वस्वन्वनेन शालेन राक्षसेन च शोभते ।  
प्राकारेभ्य विमलेभ्य कक्षा पराम्बु निधा ॥”

( लङ्काकाण्ड ३६ सर्ग )

जिसका महोच्च निगर भाकाजरी सुना है, वह त्रिकुट पर्वत पुष्पसमाच्छन्न होनेके कारण सुवर्णामय-सा मालूम होता है। यह गिरि सी योजन विस्त्रुण है और देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता है। उसीके निगर पर रायणपालिका लङ्कापुरी है। यह लङ्कापुरी सी योजन लम्बी और बीस योजन चौड़ी है। यह नगरी पापदु-र्णों मेघसङ्ग, सुवर्ण और रजत प्रासादयुक्त तथा विमानोंसे विभूषित है।

रामायणके मतसे लङ्कामें निम्नलिखित उद्भिद्ध इत्यन्त होते हैं।

“पद्मकाशोककण्डुप्रसाकण्डप्रवहाकृष्णा ।  
शमालकण्डवस्त्रुणा नागनागप्रमाहृता ॥  
दिव्यतेरुर्धुनेर्गोषेः सतर्षणैः प्रपुष्पिषीः ।  
विश्वकः कश्चिदारेभ्य पाटनेभ्य चाम्पवता ॥”

( लङ्काकाण्ड ३६ सर्ग )

चम्पक, शोकी, पकुल, शाल, तमाल, पनस, काग-केदार, द्विस्ताल, बाहुँन, कदम्ब, सप्तपर्णी, पिलक, कर्णिकार और पाटल ।

माहरुताचार्यने लिखा है,—

“तंकाशुठकं त्व वदोदयः स्वाम्  
तदा दिनादं वमकोटियुष्मान् ।  
मन्वृता विष्णुस्वोदरेऽप्याः  
स्वोदरेके राक्षसेभ्य तदेव ॥  
वस्वन्व तत्र दुष्प्रागं मन्वृताः  
प्राय ही दिशि स्वार्थं प्रमोदितेभ्य ।  
तन्मन्व मन्वृताः मन्वृताः  
स्वोदरे तस्यैः कश्चि मन्वृताः ॥”

( मेघदूतम् ३१४-३१६ )

अब लङ्कामें सुवर्णयुक्त होता है, यह (उसके लम्बी लम्बी

पूर्वमें) यमकोटिमें मध्याह्न, सिद्धपुरमें सूर्यास्त और रोमकपत्तनमें दोपहर रात्रिकाल होता है। यमकोटि उज्जयिनीसे ठीक पूरव नन्वे अर्धशांश दूरमें अवस्थित है। फिर लङ्का यमकोटिके ठोक पश्चिममें है, उज्जयिनी पश्चिममें नहीं है।

स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डके मतसे लङ्का देशमें ३६००० ग्राम हैं।

"पश्चिमव सहस्राणि लङ्कादेशः प्रकीर्तितः।"  
(कुमारिकाखण्ड ३७ अ०)

सूर्यसिद्धान्तके मतसे लङ्का भारतवर्षका एक नगर है।" (सूर्यसिद्धान्त १२।३६)

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे—यवद्वीपके बाद मलयद्वीप है। इस मलय नामक द्वीपके अन्तर्गत पर्वतके ऊपर लङ्कापुरो है।

"तथाच मलयद्वीपं मेरुमेव सुसंस्कृतम् ।  
मण्डिराकारं स्फीतमाकरः कमलस्य च ॥  
अनेकयोजनाविष्टे चित्रसानुदरीयते ।  
तस्य कूटतटे रम्ये हेमभाकारोरणे ॥  
निम्बूद्वयद्विविन्ना हर्मप्रसादभाञ्जिनी ।  
शतयोजनविस्तीर्यां त्रिशद्व्योजनमायता ॥  
नित्यममुदिता स्फीता कंका नाम महापुरी ।  
सा कामरूपिण्यां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम् ॥  
आवातो वल्लहसानां तद्विद्याद्दिविद्विषाम् ॥"

(ब्रह्माण्डपुराण अनुपल्लास ५३ अ०)

जनसाधारण लङ्काको स्वर्गलङ्का कहते हैं। रामायणमें एक जगह लिखा है,—

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सतराज्योपशोभितम् ।  
सुवर्षरूप्यकद्वीपं सुवर्षकरामंविषतम् ॥" (कि० ४०।३०)

उक्त श्लोकसे भी ज्ञाना जाता है, कि यवद्वीपके पास ही सुवर्ण और रूप्यक द्वीप हैं। अतएव ब्रह्माण्डपुराणके साथ रामायण बहुत कुछ मिलता है।

सूर्यसिद्धान्तमें लङ्काको भारतवर्षका एक नगर कहा है, पूर्वकालमें भारतमहासागरीय द्वीप भी भारतवर्षमें ही गिना जाता था। ब्रह्माण्ड आदि पुराणोंमें लिखा है—

"मङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च ।  
सहस्रद्वीपं कुण्डद्वीपं बराहद्वीपमेव च ॥ १४

एवं पङ्कते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः ॥ ४१  
भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ॥"

(ब्रह्माण्डपुराण ५८ अ०)

अतएव ब्रह्माण्डपुराणके मतानुसार मलयद्वीपके अन्तर्गत लङ्कापुरी कहनेसे पौराणिक मतमें यह भारतवर्ष भिन्न नहीं है। अतएव सूर्यसिद्धान्तके साथ मतभेद नहीं होता है।

यवद्वीपको अभी सब कोई 'जावा' कहते हैं। भारत-महासागरमें इस द्वीपको अवस्थितिका विषय सबोंको मालूम है, यह कहना अनायश्यक है।

पर हां, यवद्वीपके पास ही लङ्का थी, इसका बहुत कुछ आभास पाया जाता है। फिर ब्रह्माण्डपुराणसे मालूम होता है, कि लङ्कापुरी मलयद्वीपके अन्तर्गत थी। अभी पूर्वा-उपद्वीपके अन्तर्गत श्यामदेशके दक्षिणमें विस्तीर्ण जिस भूमिखण्डको मलय-प्रायद्वीप कहते हैं, यह यवद्वीपके पश्चिममें अवस्थित है। यहाँको मलय-जातिका प्राचीन इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि वे लोग सुमात्रा द्वीपस्य मेनङ्गाबु नामक-स्थानमें पहले रहते थे। यह उन लोगोंका आदिवासस्थान था। उते वे लोग मलय कहते थे।

इस मलय जातिकी भाषा आज भी सुमात्रा आदि द्वीपोंसे लगायत अष्ट्रेलिया तथा पश्चिममें मादागास्कर तक प्रचलित है।" भारतमहासागरके द्वीपोंमें प्रायः एक भाषा प्रचलित रहनेसे यह सङ्गमें मालूम होता है, कि यह मलयवासी मित्र देशीय विभिन्न जातियां पहले एक जातिकी थीं। जोई जाति असम्भावस्थामें रह कर भी कालक्रमसे सम्प और कोई सम्प हो कर भी पुनः अवस्थानेद्वेषे नितान्त असम्प हो गई है।

इन मलयभाषी जातियोंका रक्षः वा राक्षस जाति नामसे रामायणादिमें उल्लेख है। आज भी यवद्वीपके निकट-

\* Crawford's Indian Archipelago, Vol 11, p. 371-2 दक्षिण-देशीय प्राचीन भौगोलिकग्रन्थ इसी मन्त्रयो Chersonesus Area अर्थात् स्वर्णद्वीप कहते थे।

† English Cyclopaedia, Vol, XI, p. 656,

यहाँ क्रोमिय होयमें एक प्रकारकी कृत्रिम भोजन कृत्रिम-  
 पत्तोंके समान ज्ञानि प्राप्त करती है। उन समाका  
 रक। कहने है। उन लोगोंका स्वाभाव भी राक्षसके जैसा  
 है। इसी होयके मध्य लक्षणक नामक एक नगर है।  
 यह नाम भी संस्कृत महाकाण्ड\* अथका अयत्तना-सा  
 मालूम होता है। इन होयके पान ही भाज भी राम,  
 लक्ष्मण, गौत और नम आदि रामायणकी चौरोंके नामा-  
 नुसार कई छोटे छोटे होय मौजूद हैं।

जो ही, प्रजापत्युपायके मतानुसार यह साबित होता  
 है, कि नलयके मध्य ही लक्ष्मपुरी है। रामायणके मतसे  
 इस समयका नाम सुवर्णहोय है। आज बल उसकी  
 सुमाता कहने है।

वर्तमान मानचित्रमें देखा जाता है, कि सुमाता  
 होयके उत्तर पूर्वमें पर्वतकी चोटी पर और समुद्रके  
 समीप 'मोमोलेवा' नामक एक नगर है। यह नगर  
 'स्वर्णलक्ष्मी' अथका अयत्तना-सा मालूम होता है।  
 फिर इस होयके अन्तर्धर्षी होरक अन्तरीय (Diamond  
 Pt.) के समीप एक कन्दरही 'लक्ष्मी' कहने है। आज  
 भी इस होयके उत्तर-पश्चिम काश्मिरि (Golden Mt)  
 है। X इत्यादि प्रमाण द्वारा ज्ञात होता है, कि रामायणकी  
 'लक्ष्मपुरी' अथवा 'सुवर्णहोय' वर्तमान सुमाताहोय  
 समझा जाता था। सुमाता, पयहोय और पञ्जोरिस  
 होयके दक्षिण-पश्चिममें प्रवाहित विस्तारों समुद्रकी  
 आज भी यहाँकी सुगो ज्ञानियाँ 'लक्ष्मी' सागर कहती हैं।  
 इसमें भी लक्ष्मी कहने कुछ स्थान निर्णय हो सकता  
 है। अनेक बार मूमिहम और माग्नेटिकके उपयोग आदि

प्राकृतिक विद्युत्से सुमाताके दक्षिणस्थ विस्तारोंमें मूमिहम  
 समुद्रगर्भागायी हो गया है। प्राचीन लक्ष्मीहमका यही  
 अर्थ आज 'लक्ष्मी' सागर कहलाता है।

यद्यपि इस सुमाताहोयमें हिन्दू ज्ञानि साक्ष भी नहीं  
 रहती और हिन्दूनिर्मित मन्दिरादिका कुछ भी धर्मसा-  
 यरीय नहीं दिखाई देता और न इतिहासमें ही लिखा है  
 फिर भी ऐसे कितने प्रमाण हैं जिनमें हम सोच सक-  
 ष्टसे स्वीकार कर सकते हैं, कि धर्मोपायके भाग-  
 मनेके बादमें भारतवर्षी हिन्दूगण स्वर्णलक्ष्मीके प्राचीन  
 यहाँ आया करते थे। सुमाताके मध्यस्थपर्वत प्राचीन  
 हिन्दू राज्योंकी अनेक मिलाटियियाँ आविष्टत हुई हैं,  
 उनमें भी हिन्दू प्राधान्यके विशेष निदर्शन हैं।

इस होयमें आज भी मद्रा, इन्दगिरि, इन्द्रपुर  
 इत्यादि हिन्दू-प्रदत्त नामक नगर और नदीविशेषोंमें मौजूद  
 हैं। अग्रे मलयज्वालित जिस स्थानकी मयनी आदि  
 मूमि कह कर गौरव करती हैं, पृथिवीके दूसरे दूसरे  
 स्थानोंकी अपेक्षा अहाँ बहुत कुछ सोना पाया जाता  
 था आज भी उस स्थानमेंगी मूमिके निरुद्ध हो कर इन्द्र-  
 गिरि नामक नदी बहती है। उक्त नाम पढ़नेमें भी  
 स्पष्ट मालूम होता है, कि एक समय हिन्दूमौने इस  
 सुमाता होयमें आ कर उपनिवेश बनाया था।

इस होयमें अलकेद्वार नामक शिपिल्लु विद्यमान  
 है। (अध्यायपर २६।१४)

\* भीतापयन्दके बादमें इस अकाशमें बहुतों स्वर्णलक्ष्मी  
 आगो आया जाता बने थे। सुवर्णहोयके अन्तर्धर्षीके  
 निम्नलिखित मयनोंमें यह बहुत कुछ प्रमाणित होता है—

- 1. मूलिभूतिलक्ष्मी कालि दक्षिण सुमाता।
- 2. वेद स्वर्ण स्वर्णमय वेदगर्भानाम य ॥ ४०
- 3. निरयों काश्मिरिहमिहम इत्येता 'रक्ष्मि' अथवा 'हु'
- (सागरपर २४ अ.)
- 4. रामायणके अन्तर्धर्षीके अनेक बार उनेके कुछ कुछ अर्थ  
 बने हैं, पर भी अन्तर्धर्षीमें लिखा है। (सागरपर २४  
 अ. ६०-६२ अन्तर्धर्षी)। इस सुमाताकी अन्तर्धर्षी की बहुत  
 नामक एक ही है। पर रामायणके अन्तर्धर्षीका अर्थ  
 होता है।

\* English Cyclopaedia ( Geography ), Vol 11  
 p. 1045, 111, 701.  
 † महाभारत अथवा अथवा अथवा अथवा  
 \* महाभारत अथवा अथवा अथवा अथवा  
 † महाभारत अथवा अथवा अथवा अथवा  
 (अन्तर्धर्षी ५२ अ.)

२ शाखा, डालो । ३ कुलटा, धमिनारिणो ।  
४ शाकिनी, चुड़ैल । ५ अमवरण, स्पृका । ६ काला  
चना । ७ शिम्बो धान्य । पर्याय—करालत्रिपुटा, कान्तिका,  
कर्मपात्मिका । गुण—रुचिकर, शीतल, पिचनाराक,  
घातकारक और गुरु । (राजनि०)

लङ्कादाहिन (सं० पु०) लङ्का दहति तच्छोलः दह गिनि ।  
हनुमान् ।

लङ्काद्वीप—भास्व-महासागरस्थित एक द्वीप । रामायण-  
के अनुसार राक्षसपति रावण यहां राजत्व करता था ।

लङ्का देखो ।

लङ्काधिपति (सं० पु०) लङ्कायः अधिपति । रावण ।  
लङ्कानाथ—लङ्काद्वीपका अधिपति, राक्षसराज रावण ।  
अर्कचिकित्सा और निवन्धसंग्रह नामक दो वैद्यकग्रन्थ  
इन्होंने लिखे थे ।

लङ्कापति (सं० पु०) १ रावण । २ विभीषण ।

लङ्कापिका (सं० स्त्री०) लङ्कापिका देखो ।

लङ्कापिका (सं० स्त्री०) स्पृका, असवरण ।

लङ्कारि (सं० पु०) रामचन्द्र ।

लङ्कारिका (सं० स्त्री०) विद्विशाक ।

लङ्कावतार—समन्तभद्ररुत एक प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ ।

लङ्काशिन—एक प्रकारका वृक्ष ।

लङ्कास्थायिन् (सं० पु०) लङ्कावत् तिष्ठतीति स्था-णिनि ।  
१ एक प्रकारका वृक्ष । (त्रि०) २ लङ्कावासी, लङ्कामें  
रहनेवाला ।

लङ्किनी (सं० स्त्री०) रामायणके अनुसार एक राक्षसी  
जिसे हनुमान्जीने लङ्कामें प्रवेश करते समय घूसोंसे  
मार डाला था ।

लङ्कण (सं० पु०) लङ्काया इशः पति । १ रावण ।  
२ विभीषण ।

लङ्केश्वर (सं० पु०) १ रावण । कालाग्निरुद्रोपनि-  
षत्, प्राकृत कामधेनु और शिवस्तुति नामक तीन ग्रन्थ  
इसके बनाये हैं । अज्ञानाय देवा । २ लङ्काद्वीपस्थ शिव-  
लिंगभेद ।

लङ्केश्वररस (सं० पु०) कुष्ठरोगाधिकारमें रसोपघ-  
यिष्येय । प्रस्तुत-प्रणाली—पारा, सोना, तांबा, गन्धक,  
हरताल, शिलाजित्त, अमलवैत इन सबोंको एक साथ

तीन दिन मर्दन कर दो दो रत्तीकी गोली-बनावे ।  
अनुपान ग्रहद-धीरवी है । इसके अलावा त्रिफला,  
मंजीठ, वच, पाटल, मूला, कटकी और हल्दीका काढ़ा  
सेवन किया जा सकता है । इसका सेवन करनेसे  
कुष्ठरोगमें बड़ा लाभ पहुंचता है । (सेन्द्रधार० कुष्ठरोगाधि०)

लङ्केश्वरनारिकेतु (सं० पु०) अर्जुन ।

लङ्कादक (सं० पु०) स्पृका, असवरण ।

लङ्कापिका (सं० स्त्री०) लङ्कापिका देखो ।

लङ्कापिका (सं० स्त्री०) लङ्कापिका देखो ।

लङ्कनी (सं० स्त्री०) घोड़ेको एक प्रकारकी लगाम ।

लङ्ग (सं० पु०) लङ्गतीति लङ्ग-गती अच् । १ सङ्ग, साथ ।  
२ विद्ग, उपपति ।

लङ्गक (सं० पु०) उपपति, स्त्रीका पार ।

लङ्गतारु—पहाड़ी त्रिपुराराज्यके अन्तर्गत एक गिरि-  
श्रेणी । इसका प्रधान शृङ्ग फेङ्गपुरे १५८१ और सिम-  
वासिया १५४४ फुट ऊंचा है । एक बार देखो ।

लङ्गदत्त—एक प्राचीन कवि ।

लङ्गीर—आसाम प्रदेशके खासिया पर्वतके अन्तर्गत  
एक सामन्त राज्य । यूचोर नामक एक सरदार यहांके  
अधिकारी है । यहां न्यूनेका कारबार जोरें चलता है ।  
उसोका शुल्क यहांके अधिकारीको राजस्व है । धान,  
चना, लालमिर्च और हल्दी यहांकी प्रधान उपज है ।  
यहां कोयलेकी भी खान है ।

लङ्गल (सं० स्त्री०) १ लाङ्गल, हल । २ लागल नामक  
जनपद ।

लङ्गाई—आसामप्रदेशके श्रोहट्ट जिलागत एक नदी ।  
यह आसामकी सोमाके बाहरसे निकल कर पहले उत्तर  
और पीछे उत्तर-पूर्व बढ़ती हुई त्रिपुरा और लुसाई-  
शीलके बीच हो कर इस जिलेमें जा मिली है ।

लङ्गिम (सं० त्रि०) संयोगके उपयुक्त ।

लङ्गिमप (सं० त्रि०) लङ्गिम देखो ।

लङ्गूल (सं० स्त्री०) लाङ्गूल, पूंछ ।

लङ्गूलिया—दक्षिण भारतके मध्यप्रदेश विभागमें प्रवाहित  
एक नदी । इसे संहरतमें लङ्गल और तेलगू भाषामें  
नागुल कहते हैं । यह गोएडयाना पर्वतके कालाएडी  
नामक स्थानके समीपसे निकल कर तीन पहाड़ी जल

धारा में हो गई है। अन्ततः दक्षिण-पूर्वकी ओर जयपुर राजपूतों की बहती हुई मग्ग्राज प्रेसिडेंसीके विमान-पत्तन और मग्ग्राज जिलेके मोक्षर हो कर चिक्काकोलके दक्षिण समुद्रमें जा गिरी है। यहाँ नदी पर एक सुन्दर पुल है जिग हो कर ब्रिटिश ट्रांक रोड चली गई है। १८३६ ई०के मृत्युके पुर कुण्ड टूट गया है। इस नदीके किनारे सिंगपुर, गिरध, रायगढ़ ( रायगढ़ ), पापनोपुर, पालकोट्टा और चिक्काकोल नगर अवस्थित हैं। सातपुर और मङ्गलपा नामक दो प्राया इस नदीका कन्धेपर पुष्ट करती हैं।

सङ्कर—युक्तप्रदेशके मद्रास जिलान्तर्गत एक गिरियुग। यह ७३१० २१' ५५" उ० तथा देशा० ७८° ४०' पू०के बीच पड़ता है। अभी यह मनायस्थानमें पड़ा है। समुद्रकी तहरी इसकी ऊँचाई ६४०१ फुट है। यहाँ जलसर-वरोहको सुविधा न रहनेसे यह दुर्ग छोड़ दिया गया है। सङ्कर ( सं० लि० ) १ अतिमनकाशी, सांघनेवाला। २ निचम मङ्गलारी, कायदा तोड़नेवाला। ३ सोमा चदि-गांमो, हृदके बाहर जानेवाला। सङ्कन ( सं० वही० ) सङ्क-समुद्र। १ उपवास, भगवाहा, पाका।

“जो सङ्कनमेसाहाउरदिसुते अत्त।  
उपनितामवरोपकामगोक भयोऽन्वार् ॥”

( चक्राधि उपार्थि० )

जयपुरमें पहले उपवास करना होता है। इसमें बात, विषा, कफका परिपाक, अग्निकी दीप्ति, शरीरकी लघुता, उदरका उपनम तथा मोक्षनकी इच्छा होती है। बातज-उपरमे; भय, काष, जोष, काम और परिधमज्जित उपरमें धानुसाज्जित उपरमें तथा राजप्रवसाज्जित उपरमें सङ्कन उचित नहीं है। जो वायु प्रमाण, शुष्कात्, शुष्कात्, मुष-जोषयुक्त, घमयुक्त तथा बालक, वृद्ध, गर्भिणी या सुर्बल है, उनके लिये जो सङ्कन कर्त्तव्य नहीं।

सङ्कनविहितउपरमें भी अधिक सङ्कन द्वारा उपर्युक्त होना अच्छा नहीं। विशेषतः अधिक सङ्कन द्वारा अस्थिमज्जिषे वा शरीर शरीरमें पैदना, काल, मुषजोष, शुष्कता, अस्थि शुष्का, अघोषिद्वय और दग्नेतिद्वयकी सुर्बलता, मनको कष्ट तथा वा अग्नि, अधिक उष्ण

मौल, अग्निमात्र्य आदि माना प्रकारके उपद्रव होने हैं। उपयुक्त परिमाणमें यथासि उपवास करनेमें ही मन्, मूल और वायुका निःसरण, शरीरकी लघुता, घम निर्गम, मुष और उष्णपरिष्कार, तन्त्रा और क्षामिका नाम, आहारमें हवि, एक ही समय क्षुधागुणाहा उदय, अन्तःकरणकी प्रसन्नता तथा विमुक्त उद्गार आदि उपकार दिखाई देते हैं। ( मुष् ५ )

२ प्लवन, सांघनेकी क्रिया। शान्तमें लिप्ता है, कि अग्निका सङ्कन नहीं करना चाहिये।

“न चाग्नि कृष्टदेजीमान मेरुध्वारः कश्चिर्।

न चैव पादरं कुर्वात् सुमेन न भवेत्सुषः ॥”

( धर्मपु० उपनि० १५ म० )

३ अतिक्रम, पार करनेकी क्रिया। ४ छोड़नेकी एक चाल जिसमें यह बहुत तेज चलता है। ५ साधकपर विधि, यह उपाय जिससे किसी काममें साध्य वा सुभीता हो। ६ लघुमोजन, जय आहार। त्रिपां टाप। ७ भयमानता, उपेक्षा, सापरवाही।

“अन्वस्थानि लवकस्य सङ्कना विदेदि वा।

ता नामं वधिषं छोदुं कि पुना निम्मारणम् ॥”

( मार्कण्डेयपु० ११६।११ )

सङ्कनक ( सं० लि० ) १ सांघनेवाला, जिसके द्वारा सांघा ज्ञाय। ( पु० ) २ सैनु, पुत्र।

सङ्कना ( सं० स्त्री० ) भयमानता, उपेक्षा, सापरवाही। सङ्कनोव ( सं० लि० ) सङ्क-भनोवर्। १ सांघनेके योग। २ हल्लेप करनेके योग।

सङ्कनोयना ( सं० स्त्री० ) सङ्कनोय-ता-टाप्। सांघनेका माय वा घर्म।

सङ्कित ( सं० लि० ) सङ्क क। क्तसङ्कन, जो सांघ गया हो सङ्का ( सं० लि० ) सङ्क यत्। सङ्कनोव, सांघनेके योग।

सय ( दि० पु० ) सय करनेकी क्रिया, लयक।

सयक ( दि० स्त्री० ) १ सय करनेकी क्रिया वा माय, लयक। २ यह पुन जिसके रङ्गमें कीर्ति परन्तु श्वनो वा कुक्को हो। ३ एक प्रकारकी माय। यह ६० ७० हाथ लंबी होती है और मङ्गलवादीकी लयक बनती है। इसे बहुत-से लोग मिल कर रेंते हैं।

लचकना (हि० कि०) १ किसी लंबे पदार्थका बोक पड़ने या दबने आदिके कारण बोकसे झुकना, लचका ।

२ स्त्रियोंका कोमलता या नखरे आदिके कारण चलनेके समय रह रह कर झुकना । ३ स्त्रियोंकी कमरका कोमलता या नखरे आदिके कारण झुकना ।

लचका (हि० पु०) एक प्रकारका गोटा ।

लचकाना (हि० कि०) किसी पदार्थकी लचनेमें प्रयत्न करना, झुकाना ।

लचकीला (हि० वि०) जो सहजमें लच या दब जाय, लचकनेयोग्य ।

लचन (हि० स्त्री०) लचक देखो ।

लचनि (हि० स्त्री०) लचक देखो ।

लचलचा (हि० वि०) जो लचक जाय, लचीला ।

लचलचापन (हि० पु०) लचीले होनेका भाव, लचीलापन ।

लचाकेदार (हि० वि०) मजेदार, बढ़िया ।

लचाना (हि० कि०) लचकाना, झुकाना ।

लचारी (हि० स्त्री०) १ लचारी देखो । २ यह कर जो

कोई ध्यक अपनेसे बड़े को देता है, मेंट, नजर । ३ एक प्रकारका गीत । ४ एक प्रकारका आमका अचार जो खाली नामकसे घनता है और जिसमें तेल नहीं पड़ता ।

इसे अचारी भी कहते हैं ।

लच्छ (हि० पु०) १ व्वाज, वहाना । २ यह वस्तु या स्थान जिस पर शस्त्र चलाना हो, निशाना । ३ सी हजारकी संख्या, लाख । (स्त्री०) ४ लक्ष्मी देखो ।

लच्छण (हि० पु०) स्वभाव ।

लच्छना (हि० स्त्री०) लक्षण देखो ।

लच्छमण (हि० वि०) घनवान, धामोर ।

लच्छमी (हि० स्त्री०) लक्ष्मी देखो ।

लच्छा (हि० पु०) १ कुछ विशेष प्रकारसे लगाये हुए बहुतसे तारों या डोरों आदिका समूह, गुच्छे या झुपे आदिके रूपमें लगाये हुए तार । २ मैदकी एक प्रकारकी मिठाई । यह प्रायः पतले लंबे सूतकी तरह और देखनेमें उलझी हुई डोरके समान होती है । ३ एक प्रकारका घटिया केशर जो नोबल या निष्ठुर धेणीके केशरमें घोड़ा-सा बढ़िया केशर मिला कर बनाया जाता है ।

४ किसी चीजके सूतकी तरह लंबे और पतले कटे हुए टुकड़े । ५ इस आकारकी किसी तरह बनाई हुई कोई चीज । ६ एक प्रकारका गहना जो तारोंकी जंजीरोंका बना होता है । यह हाथों और पैरोंमें पहननेका भी होता है ।

लच्छा साख (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी संकर रागिणी ।

लच्छि (हि० पु०) लाखकी संख्या ।

लच्छिनाथ (हि० पु०) लक्ष्मीपति, विष्णु ।

लच्छी (हि० पु०) एक प्रकारका घोड़ा । (स्त्री०) २ लक्ष्मी देखो । ३ सूत, रेशम, ऊन, कलावत्तू इत्यादिकी लपेटी हुई गुच्छी, झट्टी ।

लच्छेदार (फा० वि०) १ जिसमें लच्छे पड़े हों, लच्छोंवाला । २ जिसका सिलसिला जल्दी न टूटे और जिसके सुननेमें मन लगता हो, मजेदार या ध्रुतिमधुर ।

लछन (हि० पु०) रामके छोटे भाई, लक्ष्मण ।

लक्ष्मण देखो ।

लछमन (हि० पु०) १ लक्ष्मण देखो । (स्त्री०) २ लक्ष्मणिया देखो ।

लछमनगढ़—राजपुतानेके जयपुर राज्यके शोलायाटी जिलामें एक नगर । शौकर-सरदार राय राजा लक्ष्मणसहने १८०६ ई०में यह नगर बसाया ।

लक्ष्मणगढ़ देखो ।

लछमनजी—बन्धुभाषाके एक व्याकरणके प्रणेता ।

लछमन-भूला (हि० पु०) १ बदरीनारायणके मार्गमें एक स्थान । यहाँ पहले पुरानी चालका रस्तीका एक लटकीया पुल था जिसे भूला कहते थे । २ रस्ती या तारों आदिके बना हुआ वह पुल जो बीचमें भूलेकी तरह नीचे लटकता हो । ३ एक प्रकारकी लता या वेल ।

लछमना (हि० स्त्री०) लक्ष्मणिया देखो ।

लछमी (हि० स्त्री०) लक्ष्मी देखो ।

लछमी चांद—कुमायूँके चान्दवंशीय एक राजा ।

लछमीनारायण—बनारसके रहनेवाले एक ऐतिहासिक ।

इन्होंने गुल-प-राणा नामक एक तजकिगकी रचना की ।

लछमीराम—एक हिन्दी-कवि । इन्होंने अपनी कवित्वर्यकिके लिये सुककी उपाधि पाई थी ।

लछमीराय—चरदारराज, मलहाररायकी महिषी । १८९४





क्षतके ऊपर इसका रस देनेसे बहुत उपकार होता है। पञ्जावप्रदेशमें भी पूर्वांकरूपसे लज्जावतीके मूल और पत्रका व्यवहार होता है। अथ कुसंस्कारापत्र मनुष्य निर्दिष्ट श्रतुमें पत्रको तोड़ते और जड़को उखाड़ते हैं। इस समय शुभ मुहूर्तमें ये एक उत्सवमनाते हैं। उस मासके प्रथम सप्ताहमें जो मूल उखाड़ा जाता है, वह विचित्र पीड़ा और ज्वरादिमें बहुत उपकारी है। द्वितीय सप्ताहमें उखाड़ा हुआ पत्र मूलादि कामला, अर्श आदि रोगोंमें काम आता है। तृतीय सप्ताहके मूलादि कुष्ठ, घसन्त और Scab रोगमें अति फलदायक है। बौद्धक जिलेमें इसको पत्तियोंको पीस कर कोरण्ड (पोत) पर लगाते हैं। इसके रसमें उतना ही घोड़ेका मूल मिला कर जो अन्न बनाया जाता है वह चक्षुपत्रके त्वग् रोगमें (Cornea) बहुत लाभदायक है। चमड़े पर लगानेसे पहले जलन देती, पीछे लाल हो कर यह स्थान सूज आता है। कुछ समय बाद कुल वेदना जाती रहती है।

रासायनिक परीक्षा द्वारा जाना गया है, कि लज्जालु लताकी पतली पतली जड़में लैकडे पीछे १० भाग tannin रहता है। हीराकसोस (Salt of iron) के साथ मिलानेसे अच्छी काली बनती है।

२ लज्जालुभेद। दुग्धिका शब्द देखो। (त्रि०) लज्जा अस्त्यर्थे आलु। ३ लज्जाशील, लज्जीला।

लज्जावत् (सं० त्रि०) लज्जा विद्यतेऽस्य मनुष्य मस्य वः।

लज्जायुक्त, शर्मीला।

लज्जावती (सं० त्रि० स्त्री०) लज्जाशील, शर्मीला।

लज्जावन्त (सं० त्रि०) १ लज्जावत् देखो। २ लज्जालुका पीषा, लज्जवन्त।

लज्जावान् (सं० त्रि०) लज्जाशील, शर्मादार।

लज्जाशाल (सं० त्रि०) लज्जा पत्र शील यस्य। लज्जायुक्त, जो बात बातमें शरमाता हो।

लज्जाशून्य (सं० त्रि०) निर्लज्ज, जिसे लज्जा न हो, बेहाया।

लज्जाहीन (सं० त्रि०) लज्जाशून्य, बेहाया।

लज्जिका (सं० स्त्री०) लज्जालुका पीषा।

लक्षित (सं० त्रि०) लज्जाके वशीभूत, शर्ममें पड़ा हुआ।

लज्जितभाव—प्रदोंके छः भावोंमेंसे एक भाव। फलित ज्योतिषके अनुसार कोई ग्रह यदि लीनसे पञ्चम ग्रहमें राहुके साथ मिला रहे अथवा रवि या शनि क्रिया मङ्गलके साथ मिल कर लगनादि द्वादश स्थानके बीच किसी स्थानमें रहे, तो वह ग्रह लज्जित कहलाता है। मनुष्यके पुत्र (पञ्चम) स्थानमें लज्जित ग्रह रहनेसे उसके सब सन्तान मर जाते हैं, सिर्फ एक जोषित रहता है।

लज्जिरी (सं० स्त्री०) लज्जालुका, लज्जालु।

लज्जा (सं० स्त्री०) लज्जा, शर्म।

लज्जा (सं० स्त्री०) १ उपहार, उपहोकरन। २ उत्कोच, घूस।

लज्जन् (सं० स्त्री०) शस्त्रभेद।

लज्ज (सं० पु०) लज्जयति शोभते इति लज्ज-ञच्। १ पद, पांव। २ कच्छ, काल। ३ पुच्छ, पूंछ। ४ अनिद्रा। ५ लाम्पट्य, लंपटना। ६ स्त्री, सीता। (स्त्री०) ७ लक्ष्मी।

लज्जिका (सं० स्त्री०) लज्जयति शोभते इति लज्ज-ण्वल्, टाप् अत इत्वं। गणिका, घेरवा, रंडी।

लदंग (हिं० पु०) एक प्रकारका बांस जो बरमामें होता है।

लट (सं० पु०) लटति यथेच्छाया वदति लट्-ञच्। १ प्रमादवचन, बेखबर हो कर कहना। २ दोग। ३ पागल। ४ निबोध। ५ चौर, चोर।

लट (हिं० स्त्री०) १ सिरके वालोंका समूह जो गोचे तक लटके, वालोंका गिरा हुआ गुच्छा। २ एकमें उलझे हुए वालोंका गुच्छा, परस्पर चिमटे हुए बाल। ३ एक प्रकारके सूतकेसे महीन कीड़े जो मनुष्यकी आंतोंमें पड़ जाते हैं और मलके साथ निकलते हैं। इसे चन्ना भी कहते हैं। ४ एक प्रकारका वंत। यह आसामकी ओर बहुत होता है। ५ लपट, ली, अग्निशिखा।

लटक (सं० पु०) लटतीति लट् (कूमशिल्पिकंनवीरपूर्वात्वापि। उष्य २।१२) इति कुन्। दुर्जन, नीच, दुष्ट।

लटक (हिं० स्त्री०) १ लटकनेकी क्रिया या भाव, नोचेकी ओर गिरना सा रहनेका भाव। २ झुकाव। ३ अंगोंकी मनोहर गति या चेष्टा, लुभावनी चाल। ४ दाढ़, जमीन, ढाल।

लटकन (हिं० पु०) १ लटकनेकी क्रिया या भाव, नोचेके ओर गिरता सी रहनेका भाव। २ मनोहर अंग, भंगी।

मुनापनी याव । ३ नमकी या मिरपेचनें मने हुए रलीका सुप्या । यद मोयेकी मोर मुका हुमा दिगता रदना है । ४ मरकनाको एक कसरत । इसमें दोनो पैरोंके मंगुलीमें बेन फामा कर विंशलीकी लपेटने ही मोर विंशलीके ही बल पर मंगुलीमें पैरको ऊपर मोयेके हुए मंगीके बल ऊपरका मारा मरु मोयेकी लटक देते हैं । ५ किमी वस्तुमें मना हुं दूरको वस्तु को मोये लटकती या झुलती हो, लटकनेवाली थीज । ६ नाकमें पटमनेका एक मरकना जो लटकना या झुलना रदता है । यद या तो नाकके दोनो छेदोंके बीचमें पटना जाता है अथवा मधमें मगा रहता है । ७ एक पेड़ जिसमें लाल रंगके फूल लगते हैं और जिसके बोझोंका पानीमें मीमनेसे गीदमा रंग निकलता है । इस रंगसे कपड़े रंगते हैं ।

लटकना ( हि० कि० ) १ किमी ऊँचे स्थानसे लग या टिक कर मोयेकी मोर अथर्वमें कुछ दूर तक पीला रहना, ऊपरसे देखर मोये तक इस प्रकार मगा रहना कि ऊपरका छोरे किमी आघार पर टिका हो और मोयेका निराघार हो, झुलना । २ किमी ऊँचे आघार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या मरु हुए छोरेके अनिश्चित मोर सब भाग मोयेकी मोर अथर्वमें हो, टंगना । ३ ऊँचे आघार पर टिकी हुई वस्तुका कुछ दूर मोये तक या कर अथर्वमें उपर दिखना झोलना, झुलना । ४ लपकना, बलवाना । ५ किमी लम्बी वस्तुका किमी मोर झुलना, मध होना । ६ किमी कामको पूरा बिना हुए पटा रहना, देर होना । ७ कोई काम पूरा न होने या किमी कामका निर्णय न होनेके कारण दुबधामें पटा रहना, झुलना ।

लटकाना ( हि० टिक० ) १ किमी ऊँचे स्थानसे एक छोरे मगा या टिका पर मोर भाग मोयेतक इस प्रकार से जाना कि ऊपरका छोरे किमी आघार पर टिका हो और मोयेका निराघार हो । २ किमीका कोई काम पूरा न करके उमे दुबधामें टांगना, आसर्वमें रहना । ३ किमी ऊँचे आघार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या मरु हुए छोरेके अनिश्चित मोर सब भाग अथर्वमें हैं, एक छोरे या मंग ऊपर टिकाना जिससे कोई वस्तु लतीम पर न गिरे । ४ किमी कामको पूरा न करके उाट रहना, देर परना । ५ किमी लम्बी वस्तुकी किमी मोर झुलाना, लपकाना या मध कराना ।

लटकीला ( हि० पि० ) झुमता हुआ, बल म्नाता हुआ, लपकदार ।

लटकू ( हि० पु० ) एक प्रकारका पेड़ जिसकी छाउकी उशालमेंसे रंग निकलता है ।

लटकीया ( हि० पि० ) लटकनेवाला, जो लटकता हो ।

लटमोरा ( हि० पु० ) १ अशामा, विग्रहा । २ एक प्रकारका जड़हन घान । यद मगाइली निवार होता है और इसका पावल बहुत दिनों तक रहता है ।

लटना ( हि० पि० ) १ एक धक कर गिर जाना, लड़बड़ाना । २ टोला पड़ना, जाकि और उरनाहमें रहित होना । ३ अमरोग जादिसे निश्चित होना, दुबला और बगमोर होना । ४ ल्याहुल होना, विफल होना । ५ अमरी निबडना हो जाना, अथिच काम करमेंके बीच न रह जाना, धक जाना । ६ मरकना, मुनापनी । ७ दिव होना, अनुत्क होना ।

लटपट ( हि० पि० ) लपटा देनेको ।

लटपटाना ( हि० क्रि० ) १ सीधे ढंगसे न चल कर निर्य-  
लता या मद आदिके कारण इधर उधर झुक झुक पड़ना,  
लड़खड़ाना । २ ठीक तरहसे न चलना, चूक जाना ।  
३ स्थिर न रहना, डिगना । ४ लुभाना, मोहित होना ।  
५ लीन होना, अनुरक्त होना ।

लटपर्ण ( सं० स्त्री० ) लटमुत्रं पर्णमस्य । गुडत्वक् ।  
लटा ( हि० वि० ) १ लोलुप, लंपट । २ बुरा, खराब ।

३ तुच्छ, हीन । ४ लुब्धा, नीच । ५ गिरा हुआ, पतित ।  
लटापटो ( हि० स्त्री० ) १ लटपटानेकी क्रिया या भाव ।

२ लड़ाई, झगड़ा, मिर्झत ।  
लटिया ( हि० स्त्री० ) सूत आदिका लच्छा, आंटी ।

लटिया सन ( हि० पु० ) पटसन ।  
लटो ( हि० स्त्री० ) १ बुरी बात । २ झूठी बात, गप ।

३ वेश्या, रंडी । ४ साधुनी, भक्तिन ।  
लटुआ ( हि० पु० ) लटू देना ।

लटुक ( हि० पु० ) लटुक नामका पेड़ और उसका फल ।  
लटुक देना ।

लटुरी ( हि० पु० ) लटुरी देना ।  
लटू ( हि० स्त्री ) लटू देना ।

लटूरी ( हि० स्त्री० ) सिरके धालीका लटकता हुआ गुच्छा,  
केश ।

लटोरा ( हि० पु० ) १ एक प्रकारका छोटा पेड़ । इसकी  
पत्तियां गोल गोल और फल बेरके-से होते हैं । वसंतमें  
इसकी पत्तियां झड़ जाती हैं । यह भारतवर्षमें प्रायः  
सब जगह होता है । फलोंमें बहुत-सा लसवार गुदा  
होता है । फल औषधके काममें आता है और सूखी खाँसी  
को ढीली करनेके लिये दिया जाता है । फारसीमें इसे  
'सपिस्ता' कहते हैं । हकीम लोग मिथो मिठा कर  
इसका लटक सपिस्ता नामक अवलेह बनाते हैं और  
खाँसीमें चारनेके लिये देते हैं । संस्कृतमें भी इसे  
'प्रेलेपाम्तक' कहते हैं । २ एक पक्षी । इसकी गर्दन  
और मुँह काला, डीने नीलापन लिये हुए भूरे और डुम  
काली होती है । इसकी लम्बाई दश इंच होती । यह  
भारतमें स्थायी रूपसे रहता है और प्रायः मैदानोंमें ही  
पाया जाता है । यह तीनसे छः तक बच्चे देते हैं । इसके  
बच्चे भेद होते हैं ।

लट्ट ( सं० पु० ) दुर्जन, दुष्ट आदमी ।  
लट्टनभट्ट—एक प्राचीन कवि ।

लट्टू ( हि० पु० ) गोले बट्टेके आकारका एक खिलौना  
जिसे लपेटे हुए सूतके द्वारा जमीन पर फेंक कर लट्टके  
नचाते हैं । इसके बीचमें लोहेकी एक फील जड़ी होती  
है जिसे पूँज कहते हैं । इसमें डोरी लपेट कर जोरसे  
फेंकते हैं जिससे यह बहुत देर तक चकर खाता हुआ  
घूमता रहता है ।

लट्टूदार पगड़ी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी पगड़ी ।  
इसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छत्रा-  
सा भी निकला होता है । इसे लज्जेदार पगड़ी भी  
कहते हैं ।

लट्ट ( हि० पु० ) बड़ी लाठी, मोटा लंबा डंडा ।  
लट्टबाज़ ( हि० वि० ) लाठी लड़नेवाला, लटैत । २ बड़ी  
लाठी बांधनेवाला ।

लट्टबाज़ी ( हि० स्त्री० ) लाठीकी लड़ाई या मार-पीट ।  
लट्टमार ( हि० वि० ) १ लट्ट मारनेवाला । २ अग्रिम आर  
कठोर, कड़वा ।

लट्टा ( हि० पु० ) १ लकड़ीका बहुत लम्बा टुकड़ा, गहतीर ।  
२ खेत वा जमीन नापनेका वाँस या बह्ना जो धा गजका  
होता है और नापके रूपमें चलता है । ३ घरकी छाजन  
या पाटनमें लगा हुआ लकड़ीका बह्ना, धरन । ४ लकड़ीका  
खंभा । ५ एक प्रकारका गाढ़ा मोटा कपड़ा, गफ मार-  
फोन ।

लट्टायथी ( हि० स्त्री० ) जमीनकी साधारण नाप जो  
लट्टे से की जाय ।

लट्टय ( सं० पु० ) लटनोति लट्ट ( बभ्रु प्रथितरीति । उष्  
१११११ ) रति क्त । १ एक जाति, नटुआ । २ एक प्रकार-  
का राग । ३ तुष्टक, घोड़ा ।

लट्टवका ( सं० स्त्री० ) लट्टवा ।

लट्टा ( सं० स्त्री० ) लट्टव-कन् टाप् । १ एक प्रकारका  
करञ्ज । २ चाथभेद, एक प्रकारका बाजा । ३ गीत पक्षी ।  
४ कुसुम्भ, बालीकी लट । ५ गिल्ली, देहलीज । ६ तुलिका,  
चित्त बनानेकी कूची । ७ धून, कोड़ा । ८ चूर्ण कुन्तल,  
शलक, बालीकी लट । ९ व्यभिचारिणी स्त्री । १० मोठी  
खानेकी चीज़ ।

लुमापनी घाट। ३ बलगो या सिरपे'धने लगे हुए रत्नोंका गुच्छ। यह नीचेकी ओर मुक्ता हुआ दिलना रहता है। ४ मलयाम्मकी एक कसरत। इसमें दोनों पैरोंके अंगुठोंमें बैठ फसा कर पिंडलीको लपेटने हैं और पिंडलीके ही बल पर अंगुठोंसे बैठको ऊपर खींचते हुए अंधोंके बल ऊपरका सारा धनु गोचेको लटका देते हैं। ५ किसी वस्तुमें लगे हुए दूसरी वस्तु जो नीचे लटकती या झूलती हो, लटकनेवाली चीज। ६ नाकमें पढ़नेका एक गद्दा जो लटकता या झूलता रहता है। यह या तो नाकके दोनों छेदोंके बीचमें पढ़ना जाता है अथवा नथमें लगा रहता है। ७ एक पेड़ जिसमें लाल रंगके फूल लगते हैं और जिसके बोजोंका पानीमें मीसनेसे गेढमा रंग निकलता है। इस रंगसे काढ़े रंगते हैं।

लटकना (हि० क्रि०) १ किसी ऊंचे स्थानसे लग या टिक कर नीचेकी ओर अघरमें कुछ दूर तक फैला रहना, ऊपरसे लेकर नीचे तक इस प्रकार गया रहना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो, झूलना। २ किसी ऊंचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग नीचेकी ओर अघरमें हो, टंगना। ३ ऊंचे आधार पर टिकी हुई वस्तुका कुछ दूर नीचे तक आ कर इधरसे उधर दिलना खोलना, झूलना। ४ लचकाना, बलघाना। ५ किसी खड़ी वस्तुका किसी ओर झुकना, नम्र होना। ६ किसी कामका पूरा बिना हुए पड़ा रहना, देर होना। ७ कोई काम पूरा न होने या किसी बातका निर्णय न होनेके कारण दुबधामें पड़ा रहना, झूलना।

लटकवाना (हि० क्रि०) लटकानेका काम दूसरेसे कराना।

लटका (हि० पु०) १ गति, घाट। २ कोई मनुष्य या वाक्य जिसके बार बार प्रयोगका किसीको अभ्यास पड़ गया हो, मग्ननुक्तिवा। ३ बनापटो चेटा, हाथ भाव। ४ मग्नतामयकी छोटी मुक्ति, टोटका। ५ बातचीत करनेमें स्वरका एक विशेष प्रकारसे चढ़ाव उतार, बातचीतका बनापटो टंग। ६ एक प्रकारका चालना गाना। ७ लिङ्ग। ८ किसी रोग या बाधाको नाशिकी छोटी मुक्ति, छोटा मुसल।

लटकाना (हि० क्रि०) १ किसी ऊंचे स्थानसे एक छोर लगा या टिका कर दोर भाग नीचे तक इस प्रकार ले जाना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो। २ किसीका कोई काम पूरा न करके उसे दुबधामें डालना, आसरेमें रखना। ३ किसी ऊंचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग अघरमें हो, एक छोर या अंदा ऊपर टिकाना जिससे कोई वस्तु अनीन पर न गिरे। ४ किसी कामको पूरा न करके डाल रखना, देर करना। ५ किसी खड़ी वस्तुको किसी ओर झुकाना, लचकाना या नम्र करना।

लटकीला (हि० वि०) झूमता हुआ, बल खाता हुआ, लचकदार।

लटकू (हि० पु०) एक प्रकारका पेड़ जिसकी छाटको उबालनेसे रंग निकलता है।

लटकीया (हि० वि०) लटकानेवाला, जो लटकता हो।

लटकीरा (हि० पु०) १ अवागम, चिन्मू। २ एक प्रकारका जड़हन धान। यह अगहनमें तैवार होता है और इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लटना (हि० क्रि०) १ धक धक कर गिर जाना, लड़खड़ाना। २ डोला पड़ना, जाकि और उतराहसे रहित होना। ३ धमरोग आदिसे ग्रिथिल होना, दुबला और कमजोर होना। ४ व्याकुल होना, विकल होना। ५ धममे निकामा हो जाना, शक्ति का काम करनेके योग्य न रह जाना, घट जाना। ६ लजघाना, लुगाना। ७ लिप्त होना, अनुत्क होना।

लटपट (हि० वि०) सटपटा देना।

लटपट (हि० वि०) १ गिरता पड़ना, लड़खड़ाना हुआ।

२ जो सवट या डीक कासे न निकले, टूटा फूटा। ३ धक कर गिरा हुआ, बेबल। ४ जो डीक बंधा न रहनेके कारण टोला हो कर नीचेकी ओर सरक भाया हो, टोना-दाला। ५ जो डीक मग्नमे न हो, अटपट। ६ जो मरेकी तरह गाड़ा हो, लुटपुटा। ७ गिंजा हुआ, जिसमें जिकन या मिलवट पड़ो हो।

लटपटान (हि० क्ति०) १ लटपटानेको क्रिया या माद, लड़खड़ावट। २ मनेहर गति या चाल, लचक।

लटपंथानां ( हि० कि० ) १ सीधे ढंगसे न चल कर निर्य-  
लता या मद् आदिके कारण इधर उधर झुक झुक पडना,  
लड्डझडाना । २ ठोक तरहसे न चलना, चूक जाना ।  
३ स्थिर न रहना, डिगना । ४ लुभाना, मोहित होना ।  
५ लीन होना, अनुरक्त होना ।

लटपणं ( सं० ह्री० ) लटमुप्रं पर्णमस्य । गुडत्वक् ।  
लटा ( हि० वि० ) १ लोलुप, लंपट । २ वुरा, खराब ।  
३ तुच्छ, हीन । ४ लुचा, नीच । ५ गिरा हुआ, पतित ।  
लटापटी ( हि० स्त्री० ) १ लटपटानेकी क्रिया या भाव ।  
२ लड़ाई, झगड़ा, मिड़ंत ।  
लटिया ( हि० स्त्री० ) सूत आदिका लच्छा, आंटी ।  
लटिया सन ( हि० पु० ) पटसन ।  
लटी ( हि० स्त्री० ) १ बुरी बात । २ झूठी बात, गप ।  
३ वेश्या, रंडी । ४ साधुनी, भक्ति ।  
लटुआ ( हि० पु० ) लटू देलो ।  
लटुक ( हि० पु० ) लटुक नामका पेड़ और उसका फल ।

लटुक देलो ।

लट्टरी ( हि० पु० ) लट्टरी देलो ।  
लट्ट ( हि० स्त्री० ) लट्टू देलो ।  
लट्टरी ( हि० स्त्री० ) सिरके बालोंका लटकता हुआ गुच्छा,  
केश ।  
लटोटा ( हि० पु० ) १ एक प्रकारका छोटा पेड़ । इसकी  
पत्तियां गोल गोल और फल घेरकेसे होते हैं । वसंतमें  
इसकी पत्तियां झड़ जाती हैं । यह भारतवर्षमें प्रायः  
सब जगह होता है । फलोंमें बहुतसा लसदार गूदा  
होता है । फल शीघ्रके फाममें जाता है और सूखी खाँसी  
को ढीली करनेके लिये दिया जाता है । फारसीमें इसे  
'सपिस्ता' कहते हैं । हकीम लोग मिर्ची मिला कर  
इसका लऊक सपिस्ता नामक अवलेह बनाने हैं और  
खाँसीमें चाटनेके लिये देते हैं । संस्कृतमें भी इसे  
'प्लेग्मागतक' कहते हैं । २ एक पक्षी । इसकी गर्दन  
और मुँह काला, डेने नीलापन लिये हुए भूरे और दुम  
काली होती है । इसकी लम्बाई दस इंच होती । यह  
भारतमें स्थायी रूपसे रहता है और प्रायः मैदानोंमें ही  
पाया जाता है । यह तीरसे छः एक बड़े देते हैं । इसके  
बड़े भेद होते हैं ।

लट्ट ( सं० पु० ) दुर्जन, दुष्ट आदमी ।

लट्टनभट्ट—एक प्राचीन कवि ।

लट्टू ( हि० पु० ) गोले घट्टेके आकारका एक खिलौना  
जिसे लपेटे हुए सूतके द्वारा जमीन पर फेंक कर लड्डके  
नचाते हैं । इसके बीचमें लोहेकी एक कोल जड़ी होती  
है जिसे गूँज कहते हैं । इसमें जोरी लपेट कर जोरसे  
फेंकते हैं जिससे यह बहुत देर तक चकर खाता हुआ  
घूमता रहता है ।

लट्टूदार पगड़ी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी पगड़ी ।  
इसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छत्रा-  
सा भी निकला होता है । इसे लज्जेदार पगड़ी भी  
कहते हैं ।

लट्ट ( हि० पु० ) बड़ी लाठी, मोटा लंबा डंडा ।

लट्टबाज़ ( हि० वि० ) लाठी लड़नेवाला, लड़ैत । २ बड़ी  
लाठी बाँधनेवाला ।

लट्टबाज़ी ( हि० स्त्री० ) लाठीकी लड़ाई या मार-पीट ।

लट्टमार ( हि० वि० ) १ लट्ट मारनेवाला । २ अग्रिम मार  
कटोर, कड़या ।

लट्टा ( हि० पु० ) १ लफड़ीका बहुत लम्बा टुकड़ा, राहतोर ।  
२ खेत या जमीन नापनेका बाँस या बह्ला जो ५॥ गजका  
होता है और नापके रूपमें चलता है । ३ घरकी छाजन  
या पाटनमें लगा हुआ लफड़ीका बह्ला, धरन । ४ लकड़ीका  
खंभा । ५ एक प्रकारका गाढ़ा मोटा कपड़ा, गफ मार-  
कीन ।

लट्टाबंदी ( हि० स्त्री० ) जमीनकी साधारण माप जो  
लट्टेसे की जाय ।

लट्ट ( सं० पु० ) लटनोति लट ( अभ्रुप्रपिहटीति । उच्-  
१।१११ ) १ गति क्त । १ एक जाति, नटुया । २ एक प्रकार-  
का राग । ३ सुरङ्गम, घोड़ा ।

लट्टवका ( सं० स्त्री० ) लट्टया ।

लट्टा ( सं० स्त्री० ) लट्ट-कन् टाप् । १ एक प्रकारका  
करञ्ज । २ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा । ३ गौटा पक्षी ।  
४ कुसुम्भ. बालोंकी लट । ५ जिली, देहलीज । ६ तूलिका,  
चिल बनानेकी फूँची । ७ धून, जोड़ा । ८ चूर्ण कुन्तल,  
बालक, बालोंकी लट । ९ व्यभिचारिणी स्त्री । १० मीठी  
धानेकी चीज़ ।

लट (हि० पु०) झटू देना ।

लटियल ( हि० वि० ) लाठी बांधनेवाला, लटैन ।

लटैन ( हि० वि० ) लाठी चलावेवाला, लट्टबात ।

लडैल ( हि० स्त्री० ) १ लडार, मित्र । २ सामना, मुका-  
बला ।

लडू ( हि० स्त्री० ) १ सोपनें मुछी हुई या एक दूसरीसे  
लगी हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंको पंक्ति, माला ।  
२ रस्मीका एक तार । ३ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मज-  
रियोंका छोड़के आकारका मुकटा । ४ पंक्ति, पंखार ।

लडुक ( सं० पु० ) जातिविधेय ।

लडुकनेट ( हि० पु० ) १ बालकोंका खेल । २ सहज काम,  
साधारण बान ।

लडुकपन ( हि० पु० ) १ यह अवस्था जिसमें मनुष्य  
बालक हो, बाल्यावस्था । २ लडुकोंका-सा चिलविलापन,  
चंचलता ।

लडुकबुद्धि ( हि० स्त्री० ) बालकोंकी सो समझ, नासमझी ।

लडुका ( हि० पु० ) १ छोड़ो अवस्थाका मनुष्य, बालक ।  
२ पुत्र, पेटा ।

लडुकाबाला ( हि० पु० ) १ संतती, बौलाह । २ पुत्र कलस  
- भाई, परिवार ।

लडुकी ( हि० स्त्री० ) १ छोटी अवस्थाकी स्त्री, बालिका ।  
२ बच्चा, पेटो ।

लडुकीवाला ( हि० पु० ) विवाह सभ्यधर्म कन्याका पिता  
या और कोई संरक्षक ।

लडुकीरी ( हि० वि० स्त्री० ) जिसकी गोदमें लडुका हो,  
जिसके पाम पालने पोसनेके योग्य भवता बच्चा हो ।

लडुकाइना ( हि० कि० ) १ न जमाने या न उदरनेके  
कारण उधर उधर दिल् झोल जाना, भौंका जाना ।  
२ उममगा कर गिरना, भौंका या कर नीचे आ जाना ।

लडुकाइ ( हि० स्त्री० ) लडुकाइनेकी क्रिया या भाव, दग-  
मगाहट ।

लडुन ( सं० स्त्री० ) लडू मनु० । स्पन्दन, झंझना ।

लडुना ( हि० कि० ) १ आघात करनेवाले जालु पर  
आघात करनेवाला व्यापार करना, एक दूसरेकी चोट पहुँ-  
चाना । २ यादविवाद करना, बहस करना । ३ विरोधी  
या प्रतिपक्षीके हाथ पहुँचानेवाले प्रयत्नको निरन्तर करने

और उभे विफल करनेका उद्योग करना, व्यापार भाईमें  
सफलताके लिये एक दूसरेके विरुद्ध प्रयत्न करना । ४ एक  
दूसरेकी गिरानेका प्रयत्न करना, कुदनी करना । ५ एक  
दूसरेकी बजोर ग्रहण करना, मुजत करना । ६ दो  
वस्तुओंका धेगके साथ एक दूसरेसे आ लगना, टकर  
गाना । ७ अनुकूल पड़ना, सुवाकिक उतरना । ८ पूर्ण-  
रूपमें घटित होना, मेल मिल जाना । ९ किसी स्थान  
पर पड़ना, लक्ष्य पर पहुँचना । १० विन्दू, विष्ट  
भादिका डंक मारना ।

लडु जाना ( हि० कि० ) लडुनजाना देना ।

लडुबायर ( हि० वि० ) १ जो लडुकपन लिये हो, अलडू,  
नासमझ । २ मूर्खतामें भरा हुआ, जिसमें मूर्खता प्रबल  
हो । ३ गंधार, अनाड़ी ।

लडुबीरा ( हि० वि० ) लडुपायस देना ।

लडुह ( सं० लि० ) १ मनोर, सुन्दर । २ एक जातिक  
मास ।

लडुहचन्द्र—एक प्राचीन कवि ।

लडुई ( हि० स्त्री० ) १ आघात करनेवाले जालु पर  
आघात करनेकी क्रिया, एक दूसरेकी चोट पहुँचानेकी  
क्रिया या भाव, युद्ध । २ एक दूसरेकी घटकनेका प्रयत्न,  
कुदनी । ३ यादविवाद, बहस । ४ सेनाओंका परस्पर  
आघात-प्रतिघात, संग्राम, उग्र । ५ परस्पर बजोर ग्रहणका  
व्यवहार, कलह । ६ विरोधी या प्रतिपक्षीके व्यवहारसे  
अपनी रक्षा करने और उभे विफल करनेका परस्पर प्रयत्न  
व्यवहार या मामलेमें सफलताके लिये एक दूसरेके  
विरुद्ध प्रयत्न या चाल । ७ दो वस्तुओंका धेगके साथ  
एक दूसरीमें आ लगना, टकर । ८ अनजन, घेरा, दुश्मनी ।

लडुका ( हि० वि० ) १ लडुनेवाला, मोटा, निपाटी ।  
२ बात बातमें लट जानेवाला, फवादी ।

लडुका ( हि० वि० ) १ युद्धमें व्यवहृत होनेवाला,  
लडुईमें काम आनेवाला । २ लडाइ देना ।

लडुना ( हि० कि० ) १ लडुनेका काम दूसरेसे बगाना,  
लडुनेमें प्रवृत्त करना । २ भगडुईमें प्रवृत्त करना, बन्दहके  
लिये उद्यम करना । ३ परस्पर उमखाना । ४ एक वस्तुकी  
दूसरीमें धेग या बटकेके साथ मिला देना, मिश्रना ।  
५ सफलताके लिये व्यवहारसे जाना, मिश्रिके लिये

संचारित करना । ६ लक्ष्य पर पहुंचाना, किसी स्थान पर फेंकना या डालना । ७ लाड़ प्यार करना, प्रेमसे पुचकारना ।

लड़ी ( हि० स्त्री० ) १ सीधमें गुळी हुई या एक दूसरीसे लगे हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंकी पंक्ति, माला । २ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मंजरियोंका लड़ीके आकारका गुच्छा । ३ रस्सी या गुच्छेका तार । ४ पंक्ति, कतार ।

लड्डुआ ( हि० पु० ) मोदक, लड्डु ।

लड्डुवा ( हि० पु० ) लड्डुआ देखो ।

लड्डैता ( हि० वि० ) १ जिसका बहुत लाड़ प्यार हो, लाड़ला, दुलारा । २ प्यारा, प्रिय । ३ जो लाड़ प्यारके कारण बहुत इतराया हो, जिसका स्वभाव किसीके बहुत प्रेम दिखानेसे विगड गया हो, शौल । ४ लड़नेवाला, योद्धा ।

लडोले ( लाटोल )-बड़ीदू, राज्यके बीजापुर उपविभागान्तर्गत एक नगर । यह नगर गायकवाड़के शासनाधीन है ।

लट्ट ( सं० लि० ) दुर्जन, छोटा आदमी ।

लट्टुक ( सं० पु० ) लट्टू देखा ।

लट्टूकेधर—शिवलङ्कमेद । ( शिव० १५४।१६ )

लट्टू ( हि० पु० ) गोल बंधी हुई मिठाई, मोदक ।

लट्टू कई प्रकारके तथा कई चीजोंके बनते हैं ।

लढंत ( हि० पु० ) कुपतीका एक पंच जो मुरगों या जूर-गोशोंकी लड़ाईका अनुकरण है ।

लण्ड ( सं० स्त्री० ) लण्डने उल्लिख्यते इति लण्ड-धर्म । पुरीप, विद्या ।

लण्डन—इंग्लैण्डकी राजधानी । यह टेम्स नदीके तट पर अवस्थित है । यहां प्रासादके समान बहुत-सी भट्टालिकाओं और कल-कारखानोंके रहनेसे यह नगर जगमगा उठा है ।

विशेष विवरण इंग्लैण्ड और ब्रटेन शब्दमें देलो ।

लत ( सं० स्त्री० ) किसी बुरी बातका अभ्यास और प्रवृत्ति, बुरी देव ।

लतखोर ( हि० वि० ) लतखोरा देलो ।

लतखोरा ( हि० वि० ) १ सदा लत खानेवाला; सदा पेसा काम करनेवाला जिसके कारण मार घानो पड़े या

भला बुरा सुनना पड़े । २ नीच, कमीना । ३ दास, किंकर । ४ दरवाजे पर पड़ा हुआ पैर पोंछनेका कपड़ा, पायंदाज । ५ देहली, चौबट ।

लतखो ( हि० स्त्री० ) १ केसारी नामका अन्न । २ एक प्रकारकी जूती जिसमें केवल तला हो होता है ।

लतपत ( हि० वि० ) लतपत देलो ।

लतमर्दन ( हि० स्त्री० ) १ लातोंसे दवानेकी क्रिया, पैरोंसे रौंदनेकी क्रिया । २ पदाघात, लातोंकी मार ।

लतर ( हि० स्त्री० ) बेल, बहरी ।

लतरा ( हि० पु० ) एक प्रकारका मोटा धन्न । इसे 'वरावर' और 'रेवळ' भी कहते हैं । इसकी फलियोंकी तरकारी भी बनाई जाती है ।

लतरी ( हि० स्त्री० ) १ एक प्रकारकी घास या पौधा । यह खेतोंमें मटरके साथ बोया जाता है और इसमें चिपटी चिपटी फलियां लगती हैं । इसके दातोंसे दाल निकलती है जिसे गरोब लोग खाते हैं । यह बहुत मोटा धन्न माना जाता है । इसे 'मोट' और 'खेसारी' भी कहते हैं । २ एक प्रकारकी हल्की जूती जो केवल तेलके रूपमें होती है और मंगूठेको फंसा कर पहनी जाती है ।

लता ( सं० स्त्री० ) ललित देखने या न्यायमिति लत पचाः

यच् टाप । १ वह पौधा जो सूत या गेरीके रूपमें जमीन पर फैले अथवा किसी पट्टी वस्तुके साथ लिपट कर ऊपरकी ओर चढ़े, बेल । पर्याय—पल्लो, बहिर, वेल्लि, मुति, जिम लतामें बहुत-सी शाखाएं इधर उधर निकलती हैं और पत्तियोंका भावस होता है, इसे प्रतालिनो कहते हैं । इसका पर्याय—चौध, गुविमनो, उलप, ( भमर ) अमाधास्याके दिन लता और चौधकी काटना नहीं चाहिए । फाटनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ।

( विष्णुपु० २।१२ म० )

२ कोमल कांड या शाखा । ३ प्रियंगु । ४ पूका ।

५ अदानपर्णी । ६ ज्योतिषमती । ७ लताकस्तूरिका ।

८ माघबोलता । ९ दूर्वा, दूब । १० कैवर्तिका ।

११ मारिवा । १२ जातीपुष्पका पौधा । १३ सुन्दरो स्त्री ।

१४ महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम । ( भारत १।२।१२० ) १५ श्वेत मारिवा । १६ श्वेत मूषिका ।

१७ घृतती । १८ लाल परबलका पौधा । १९ मेघकी



लट (हि० पु०) लट् देगो ।

लटिबल ( हि० वि० ) लट्टो बांधनेवाला, लट्टैन ।

लट्टैन ( हि० वि० ) लट्टो बनानेवाला, लट्टवात ।

लट्टेन ( हि० स्त्री० ) १ लट्टाई, मिंडन । २ सामना, मुका-  
बला ।

लट्ट ( हि० स्त्री० ) १ मोचमें मुछी हुई या एक दूमरीसे  
लगो हुई एक ही प्रकारकी बस्तुओंको पंक्ति, माला ।  
२ रस्मीका एक तार । ३ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मञ्ज-  
रियोंका छट्टोके आकारका मुकुटा । ४ पंक्ति, पंक्ता ।

लट्टक ( सं० पु० ) जातिविशेष ।

लट्टकीबाल ( हि० पु० ) १ बालकोंका खेल । २ सहज काम,  
साधारण बान ।

लट्टकपन ( हि० पु० ) १ पद भयमथा जिममें मनुष्य  
बालक हो, बाल्यावस्था । २ लट्टकीका-सा चिलबिलापन,  
चंचलता ।

लट्टकमुद्रि ( हि० स्त्री० ) बालकोंकी स्त्री समझ, नाममन्त्री ।

लट्टका ( हि० पु० ) १ छोटी भयस्थाका मनुष्य, बालक ।  
२ पुत्र, पेदा ।

लट्टकाबादा ( हि० पु० ) १ संतती, भीलाद । २ पुत्र बल्ल  
भाकि, परिवार ।

लट्टकी ( हि० स्त्री० ) १ छोटी भयस्थाकी स्त्री, बालिका ।  
२ बन्ना, पेटी ।

लट्टकीयाला ( हि० पु० ) विवाह सम्यग्रधमें कन्याका पिता  
या और कोई संरक्षक ।

लट्टकीरो ( हि० वि० स्त्री० ) जिमकी गोदमें लट्टका हो,  
जिमके नाम पालने पोसनेके योग्य भवना बच्चा हो ।

लट्टकपणना ( हि० कि० ) १ न जमने या न उदरनेके  
कारण इपर उपर हिल डोल जाना, भौंका खाना ।  
२ हगमगा बर गितना, भौंका वा बर गोचे आ जाना ।

लट्टकपु ( हि० स्त्री० ) लट्टकपणनेकी क्रिया या भाव, उग-  
मगाहट ।

लट्टन ( सं० स्त्री० ) लट्ट लट्टु । स्पन्दन, डोलना ।

लट्टना ( हि० कि० ) १ भागान करनेवाले जन्तु पर  
भागान करनेका आचार करना, एक दूमरीकी चोट पहुँ-  
चाना । २ यादविवाद करना, बहस करना । ३ विरोधी  
या प्रतिपक्षीके हानि पहुँचानेवाले प्रयत्नको निरकल करने

और उसे विफल करनेका उद्योग करना, आगहार जगड़िसे  
सफलताके लिये एक दूमरीके विरुद्ध प्रयत्न करना । ४ एक  
दूमरीको गिरानेका प्रयत्न करना, बुझी करना । ५ एक  
दूमरीको बजोर जगड़ करना, दुझन करना । ६ दो  
बस्तुओंका धेगके साथ एक दूमरीसे आ लगना, टकर  
खाना । ७ अनुकूल पड़ना, सुवाचिक उतरना । ८ पूर्व-  
रूपमें घटिन होना, मेक मिल जाना । ९ विमोक्षण  
पर पड़ना, लक्ष्य पर पहुँचना । १० विपद्, विष्ट  
आदिका टंक मारना ।

लट्टु खाना ( हि० कि० ) मङ्गलदान देना ।

लट्टवावर ( हि० वि० ) १ जो लट्टकपन लिये हो, अलट्ट,  
नासमझ । २ मूर्खतासे भरा हुआ, भिसेसे मूर्खता प्रकट  
हो । ३ गौरव, अनाड़ी ।

लट्टुबौर ( हि० वि० ) लट्टवावर देना ।

लट्ट ( सं० ति० ) १ मनोद, सुन्दर । २ एक जातिक  
नाम ।

लट्टकचन्द्र—एक प्राचीन कवि ।

लट्टाई ( हि० स्त्री० ) १ भाषात करनेवाले जन्तु पर  
भाषात करनेकी क्रिया, एक दूमरीकी चोट पहुँचानेकी  
क्रिया या भाव, युद्ध । २ एक दूमरीकी पटकनेका प्रयत्न,  
कुझनी । ३ यादविवाद, बहस । ४ सेनाओंका परस्पर  
भाषात-प्रतिभाषा, संग्राम, उंग । ५ परस्पर बजोर जगड़ोका  
प्रयत्न, कलह । ६ विरोधी या प्रतिपक्षीके प्रयत्नसे  
अपनी रक्षा करने और उसे विफल करनेका परस्पर प्रयत्न  
प्रयत्न या मामलेमें सफलताके लिये एक दूमरीके  
विरुद्ध प्रयत्न या चाल । ७ दो बस्तुओंका धेगके साथ  
एक दूमरीसे आ लगना, टकर । ८ मतभंग, घैर, दुश्मनी ।

लट्टाई ( हि० वि० ) १ लट्टनेवाला, घोडा, मित्रादी ।

२ बान बागमें लट्ट जानेवाला, फातादी ।

लट्टाफू ( हि० वि० ) १ युद्धमें प्रयत्न होनेवाला,  
लट्टाईमें काम आनेवाला । २ लट्टाई देना ।

लट्टाना ( हि० कि० ) १ लट्टनेका काम दूमरीसे करना,  
लट्टनेमें प्रयत्न करना । २ लट्टाईमें प्रयत्न करना, कलहके  
लिये उद्यम करना । ३ परस्पर उल्लंघना । ४ एक बस्तुकी  
दूमरीसे धेग या भटकेके साथ मिला देना, मिडाना ।  
५ सफलताके लिये प्रयत्नसे काम, मिडिके लिये

संचारित करना । ६ लक्ष्य पर पहुँचाना, किसी स्थान पर फँकना या डालना । ७ लाड़ प्यार करना, प्रेमसे पुचकारना ।

लड़ी ( हिं० स्त्री० ) १ सीधमें गुळो हुई या एक दूसरीसे लगे हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंकी पंक्ति, माला । २ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मंजरियोंका लड़ीके आकारका गुच्छा । ३ रस्सी या गुच्छेका तार । ४ पंक्ति, कतार ।

लड़ुआ ( हिं० पुं० ) मोदक, लड्डू ।

लड़ुवा ( हिं० पुं० ) लड़ुआ देखो ।

लड़ैता ( हिं० वि० ) १ जिसका बहुत लाड़ प्यार हो, लाड़ला, दुलारा । २ प्यारा, प्रिय । ३ जो लाड़ प्यारके कारण बहुत इतराया हो, जिसका स्वभाव किसीके बहुत प्रेम दिखानेसे बिगड़ गया हो, ग्रीब । ४ लड़नेवाला, योद्धा ।

लडोले ( लाटोल ) बड़ीदू, राज्यके बीजापुर उपविभागान्तर्गत एक नगर । यह नगर गायकवाड़के शासनाधीन है ।

लड़ ( सं० लि० ) दुर्जन, छोटा आदमी ।

लड़ुक ( सं० पुं० ) लड्डू देखा ।

लड्डूकेभर—शिवलड्डूमेद । ( शिव० १५१।१६ )

लड्डू ( हिं० पुं० ) गोल बंधी हुई मिठाई, मोदक । लड्डू कई प्रकारके तथा कई चीजोंके बनते हैं ।

लढेंत ( हिं० पुं० ) कुपतीका एक पंच जो मुरगों या खरगोशोंकी लड़ाईका अनुकरण है ।

लण्ड ( सं० स्त्री० ) लण्डयने उल्लिख्यते इति लण्ड-धम् । पुरीय, विद्या ।

लण्डन—इंग्लैण्डकी राजधानी । यह टेम्स नदीके तट पर अवस्थित है । यहां प्रासादके समान बहुत-सी मठालिकाओं और कल-कारखानोंके रहनेसे यह नगर जगमगा उठा है ।

निशेष विवरण इंग्लैण्ड और बृटेन शब्दमें देखो ।

लत ( सं० स्त्री० ) किसी बुरी बातका अभ्यास और प्रवृत्ति, बुरी देव ।

लतखोर ( हिं० वि० ) लतखोरा देखो ।

लतखोरा ( हिं० वि० ) १ सदा लात खानेवाला; सदा पेसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानो पड़े या

भला बुरा सुनना पड़े । २ नीच, कमीना । ३ दास, किंकर । ४ दरवाजे पर पड़ा हुआ पैर पीछेनेका कपड़ा, पायदाज । ५ देहली, चौखट ।

लतड़ी ( हिं० स्त्री० ) १ केसारी नामका अन्न । २ एक प्रकारकी जूती जिसमें केवल तला ही होता है ।

लतपट ( हिं० वि० ) लयपट देखो ।

लतमटन ( हिं० स्त्री० ) १ लातोंमें दवानेकी क्रिया, पैरोंसे रौंदनेकी क्रिया । २ पदाघात, लातोंकी मार ।

लतर ( हिं० स्त्री० ) घेल, बहुरी ।

लतरा ( हिं० पुं० ) एक प्रकारका मोटा अन्न । इसे 'बराबर' और 'बेबल' भी कहते हैं । इसकी फलियोंकी तरकारी भी बनाई जाती है ।

लतरी ( हिं० स्त्री० ) १ एक प्रकारकी घास या पौधा । यह खेतोंमें मटरके साथ बोया जाता है और इसमें चिपटी चिपटी फलियां लगती हैं । इसके दानोंसे दाल निकलती है जिसे गरीब लोग खाते हैं । यह बहुत मोटा अन्न माना जाता है । इसे 'मोट' और 'बेसारी' भी कहते हैं । २ एक प्रकारकी हलकी जूती जो केवल तेलके रूपमें होती है और अंगूठेको फंसा कर पहनी जाती है ।

लता ( सं० स्त्री० ) ललति वेष्टयते यान्यमिति लत पचाः ।

यच् टाप् । १ यह पौधा जो सूत या गेरीके रूपमें जमीन पर फैले अथवा किसी खटो वस्तुके साथ लिपट कर ऊपरकी ओर बढ़े, घेल । पर्याय—बहुरी, बहुरी, घेलिल, प्रुति, जिस लतामें बहुत-सी शाखाएं इधर उधर निकलती हैं और पत्तियोंका भापस होता है, इसे प्रतालिनो कहते हैं । इसका पर्याय—चौरध, गुन्मिनो, उलप, ( अमर ) अमावास्याके दिन लता और चौरधकी काटना नहीं चाहिए । काटनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ।

( विष्णुपु० २।१२ म० )

२ कोमल कांड या शाखा । ३ प्रियंगु । ४ कृष्ण ।

५ अशनपर्णो । ६ ज्योतिषमते । ७ लताकस्तूरिका ।

८ माघबोलता । ९ दूर्वा, दूब । १० कैयसिका ।

११ सारिका । १२ जातीपुष्पका पौधा । १३ सुन्दरो खो ।

१४ महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम । ( भारत १२।१७।२० ) १५ श्वेत सारिका । १६ श्वेत मूषिका ।

१७ बृहती । १८ लाल परबलका पौधा । १९ मेहकी

बन्धा और श्लेष्मण्डली म्बोका नाम । २० एक प्रकारका छन्द । इसके चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरणमें १८ मात्र होने हैं । पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, सातवां, ग्यारहवां, चौदहवां और सत्तरवां गुण और बाकी छन्दु होता है ।

लताकर (सं० पु०) नाचनेमें हाथ हिलानेका एक प्रकार ।

लताकरज (सं० पु०) लताकरं करजः । १ प्रकारका करज, कंठकरज । संमूल पर्याय—दुग्धशो, योराव्य, वज्रयोजन, धनदासो, काटकाळ, कुयेरासो । इसके पत्तेका गुण कटु, उष्ण, कफ और पातनाशक तथा बीजका गुण क्षीण, पथ्य, शूल, शुम्भ और विपनाशक माना गया है । (राजनि०)

लताकस्मुरिका (सं० स्त्री०) लताक्य कस्मूरो, तद्वन् गण्यत्वान्, ततः स्यात् कन् । दक्षिणमें होनेवाला एक पौधा । पौधकमें इसे तिन, स्यादु, शृष्य, शीतल, लघु, नेत्रोंको दिनकारो तथा श्लेष्मा, लृण्णा और मुणरोगको दूर करनेवाला माना है ।

लताकुज (सं० पु०) लताभोसे छाया हुआ स्थान ।

लतागण (सं० पु०) पौधकमें मृत या डोरोके रूपमें फैलने वाले पौधोंका वर्ग ।

लतागृह (सं० पु० स्त्री०) लतानिमित्त गृह । लताभोसे मंडपको तरह छाया हुआ स्थान ।

लताङ्गो (सं० स्त्री०) कर्षकटङ्गो, काकहामीनी ।

लताजिह्व (सं० पु०) लनेत्र जिह्वा वक्ष्य । सर्प, सर्प ।

लताह (हिं० स्त्री०) लताहू देगी ।

लताहना (हिं० स्त्री०) १ पैरोंसे कुचलना, खींचना । २ लानेसे मारना । ३ छेदने हुए भाद्रमोंके जरों पर गड़े छोड़ कर धीरे धीरे इधर उधर चलना जिससे उसके बदनको घकाघट दूर होती है । ४ हँसान करना, थकाता ।

लतातट (सं० पु०) सतत दीर्घलक्षणा । १ नाटकप्रसू, नाटकीका पेट । २ तालवृत्त ताटका पेट । ३ ज्ञान या ज्ञानका पेट । ४ पुण्यमतिशयम् ।

लतातारा (सं० पु०) दिव्यालक्षणा ।

लतातम (सं० पु०) लनेत्र वक्षः क्षीणरसान् । लतागण । खंभुज वर्णय—नासर्, मन्वक्ष्ण, क्षुम्बिक, शय्य, क्षीण ।

लतानन (सं० पु०) नाचनेमें हाथ हिलानेका एक छन्द । लतापत (सं० स्त्री०) १ पुण्य, कृष्ण । २ लताकी पुल्लो । लतापता (हिं० पु०) १ लता और पत्ते, पेटों और पीरों का समूह । २ पौधोंको हरिपात्री । ३ भङ्गी वृत्ति ।

लतापनस (सं० पु०) लतायां पतसमिप फलमस्य । फल-लताविशेष, तरबूना । पर्याय—चेलाल, नित्रकल, सुलाग, राजनेमिप, माटाए, सेहु ।

लतापर्ण (सं० पु०) विष्णु ।

लतापर्णी (सं० स्त्री०) १ तालमूला । २ मधुरिका, सीक ।

लतापाज (सं० पु०) लताका धावस या समूह, लता-जाल ।

लतापृष्ठा (सं० स्त्री०) लताप्रताना पृष्ठा । समुद्रान्ता ।

लताप्रतानिनी (सं० स्त्री०) लताप्रतानोऽल्पपल्येनि इति ।

जाम्बाप्रचवयो लता । पर्याय—घोरक, मुन्मिनी, उन्न, योरुषा, गरुष, प्रताना, कफ ।

लताफल (सं० स्त्री०) लतायां फलमस्य । परोल, परवल ।

लताशूद्रिका (सं० स्त्री०) शूद्रो लता ।

लताभद्रा (सं० स्त्री०) लताया भद्रा वक्ष्याः । भद्रालोचन ।

लताभयन (सं० स्त्री०) लतानिमित्त भयनं । लतागृह, लताभोका कुंज ।

लतामणि (सं० पु०) लतामृदुनी मणिः । प्रवाल, मृगा ।

लतामण्डप (सं० पु०) लतागृह, छाई हुई लताभोसे बना हुआ मंडप या घर ।

लतामण्डल (सं० पु०) छाई हुई लताभोका घेरा या कुंज ।

लतामदन् (सं० स्त्री०) लतायां मदन् वक्ष्याः । मृद्वी ।

लतामाषयो (सं० स्त्री०) लताप्रताना माषयो । माषयो-लता ।

लताशुभ (सं० पु०) ज्ञानाशुभ, बानर ।

लताशुभ (सं० स्त्री०) घोरा ।

लताशुधि (सं० स्त्री०) लता यदुधिय । मित्रिणा, मन्त्रेण । लताशुधक (सं० पु०) लतायां शोध इत्य धक् । प्रवाल, मृगा ।

लताममन (सं० पु०) लनेत्र रमना वक्ष्य । मन्, मीर् ।

लताक (सं० पु०) लता कर्क, वचनीया वक्ष्य । लताशु-वृत्, ध्याजका पौधा ।

लतालक ( सं० पु० ) हस्ती, हाथी ।

लतालय ( सं० पु० ) लतानिर्मितः आलयः । लतागृह,  
लताभोंसे मंडपकी तरह छाया हुआ स्थान ।

लतावलय ( सं० पु० ) १ लतागृह । २ वह जिसने १५यसे  
मंडलाकारमें लता लगाई है ।

लतावृक्ष ( सं० पु० ) शालकवृक्ष, सलईका पेड़ ।

लतावेष्ट ( सं० पु० ) लतयेष्ट आवेष्टो वेष्टनं यत् । १ काम-  
शास्त्रमें सोलह प्रकारके रतिबंधनोंमेंसे तीसरा । २ एक  
पर्वत जो द्वारकापुरीसे दक्षिणकी ओर पड़ता है ।

( हरिवंश १६५।१६ )

लतावेष्टन ( सं० क्ली० ) एक प्रकारका आलिङ्गन ।

लतावेष्टित ( सं० पु० ) १ लतावेष्ट, सोलह प्रकारके रति  
बंधनोंमेंसे तोसरा । २ एक प्रकारका आलिङ्गन । ३ लता  
द्वारा वेष्टित या घेरा हुआ ।

लतावेष्टितक ( सं० क्ली० ) लतायेष्ट वेष्टितं वेष्टनं यत् कन् ।  
एक प्रकारका आलिङ्गन ।

लताङ्कुतय ( सं० पु० ) लताशालका पेड़ ।

लताशङ्कु ( सं० पु० ) शाल या साखूका पेड़ ।

लताशैल—कामरूपके अन्तर्गत एक गिरि ।

( मन्विष्य ब्रह्मण० १६५।१ )

लतासाधन ( सं० क्ली० ) लतया साधनं । तन्लोक साधन-  
विशेष । इस साधनकी प्रधान अधिकरण स्त्री है, इसीसे  
इसको लतासाधन कहते हैं । इस साधनका विषय मंत्र-  
में इस प्रकार लिखा है—यह साधन यदि करना हो, तो  
पहले एक स्त्रीको ला कर यथाविधि इष्टदेवीकी पूजा करे ।  
पीछे उस स्त्रीके केशमें सी, कपालमें सी, सिन्दूरमण्डल-  
में सी, दोनों स्तनोंमें सी, नाभिदेशमें सी और योनिदेश-  
में सी बार इष्टमन्त्रका जप करे । अनन्तर आसन पर उठ  
कर पुनः तीन सी बार जप करना होगा । इस प्रकार  
हजार बार जप करनेसे इष्टमन्त्रकी सिद्धि होती है ।

अन्य प्रकार—महाराजिकी एक ऋतुमती नारी ला  
कर उसके योनिदेशमें इष्टदेवताकी पूजा करनेके बाद  
जप करे । इस प्रकार तीन दिन पूजा और जप करना होता  
है । पीछे चक्रव्यवहारी १०८ बार जप करके नवपुण्याञ्जलि  
द्वारा फिरसे १०८ बार जप करे । अनन्तर पूर्णाहुति दे  
कर पुनः १०८ बार जप करना होगा । इस तरह अपादि

करनेसे इष्टमन्त्र सिद्ध होता है । मन्त्रसिद्ध होनेसे धन-  
धान, बलवान्, याग्यो और नारियोंका प्रिय होता है ।

( मायातन्त्र १२वां पटल )

इस साधनका विषय अमदाकल्पके १६६वें पटल तथा  
गुप्तसाधनतन्त्रके ४थे पटलमें विशदरूपसे लिखा है ।  
विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं लिखा गया ।

लतिका ( सं० स्त्री० ) छोटी लता, बेल ।

लतियर ( दि० वि० ) जो सदा लात खाता हो, लतखोर ।

लतियल ( दि० वि० ) लतियर देखो ।

लतिहर ( हि० वि० ) लतियर देखो ।

लतिहल ( दि० वि० ) लतिहर देखो ।

लतीफ़ ( अ० वि० ) १ मजेदार, जायकेदार । २ मनोहर,  
बढ़िया ।

लतीफ़ा ( अ० पु० ) १ हास्यरसपूर्ण छोटी कहानी, चुट-  
कुला । २ चमत्कारपूर्ण बात, अनूठी बात । ३ सुहलकी  
यात, हँसीकी बात ।

लतीग्रम ( सं० पु० ) लताया उद्गमः । अयरोह, अधःपतन ।

लता ( हि० पु० ) १ फटा पुराना कपड़ा, चीथड़ा ।  
२ कपड़ेका टुकड़ा, चखण्ड । ३ कपड़ा ।

लत्तिका ( सं० स्त्री० ) लत-घाते (कृतिभिदिलिन्विम्यः कित् । उष्ण  
३।१४० ) इति तिकन्-टाप् । गोघा, गोह ।

लत्ती ( हि० स्त्री० ) १ प्रहारके लिये उठाया या चलाया  
हुआ घोड़े, गद्दे आदिका पैग, पशुओंका पादप्रहार ।  
२ लात मारनेकी क्रिया । ३ कपड़ेकी लंबी धज्जो । ४ बाँस-  
में बंधी हुई कपड़ेकी धज्जो जिसे ऊंचा करके क्यूतर  
उड़ाते हैं । ५ पतंगकी दुम अर्थात् नीचे बंधी हुई कपड़े  
की लंबी धज्जो, पुछिल्ल ।

लथपथ ( हि० वि० ) १ जो भौंग कर भारी हो गया हो,  
तरावीर । २ कीचड़ आदिमें सना हुआ, जो कीचड़की  
लगनेसे भारी हो गया हो ।

लवाड़ ( हि० स्त्री० ) १ जमीन पर पटक कर इधर उधर  
लोटाने या घसीटनेकी क्रिया, चपेट । २ दानि, लुक्सान ।  
३ पराजय, हार । ४ डाँट, अपट, भिड़की ।

लथाइना ( हि० क्रि० ) लथेइना देतो । २ लथाइना देलो ।

लथिया—संयुक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा  
गांव । यह जमानियासे एक मील दक्षिण-पूर्व पड़ता है ।

पहाके इतिहासको बहुतो बर्गो पढ़ गई है। आज उनका एक भी आख्याय नहीं है जिससे पुनः उमकी पूर्ति हो।

राजा मित्रको नामावलीके राजस्वकालमें लक्ष्मण राज्यकी बहुत कुछ धूर्तकी हुई। उन्होंने मुगल सम्राट् जहांगीरकी सहायता या कर वसति-सुरदाहकी हटा कर लक्ष्मणो जातिके वल्लभोर्वाकी पराकाष्ठा देखी थी। तदनन्तर सोकनी और लक्ष्मणो जातिके बीच लगातार कई लड़ाइयां हुईं। अन्तमें सोकनीो हार या कर भाग गये। इस समय काश्मीरपालो मुसलमानोंने लक्ष्मणियोंकी धाम्नी मद्दू पहुंचवाई थी। सोकनीको उस समय यत्नेके लिये क्रोधव विनाश मिला था। इस युद्धमें लक्ष्मणोंने मुसलमानोंको सहायता पाई थी, इस कारण इसकी परम्पानमद्दूमें लक्ष्मणराज उस समय इसलामधर्ममें दीक्षित हुए थे। गर्भोसे ये काश्मीरराजकी राजकर देने का रहे हैं।

१८२२ ई०में मूर कपट लक्ष्मण देवने जाये। उस समय गिलगो या लक्ष्मणके जामनासनिं अहूरेजराजकी अधीनता स्वीकार करना चाहा; किन्तु लक्ष्मणकी उस समयकी समुक्ति देग पर ये राजो न हुए। १८३४ ई०में काश्मीरराज गुलाबसिंहने अपना प्रस्निर दीगता सैन्य ले कर लक्ष्मण पर चढ़ाई कर दी। सेनापति जोरायर सिंह सेनानायक हो कर यथामत्र दो अभियानके बाद लक्ष्मण और यत्नेो प्रदेश पर कब्जा कर बैठे। जयोहाम हो कर सिवा-सेनापतिने लक्ष्मण पर आक्रमण किया। किन्तु युद्धका कोई फल न निकला। सोनी और सोरपो सेनाके साथ युद्ध तथा दारुण पहाड़ी जीतके बाद सिवासेना समुद्र निहत हुई। उसी वर्ष अकगानिम्पानमें एक दूत भंगरेजो सैन्य भी इसी प्रकार नष्ट हो कर निहत हुआ। अहूरेजो-सेनाके जय वंशज पर विजय पाई, तब काश्मीर और उमके अधीनका सभी प्रदेश भंग रेजोके हाथ आया। १८४६ ई०की १६वीं मार्चकी तारीख के अनुसार भंगरेज समर्थने पुनः यह गुलाबसिंहकी सौंन दिया।

१८६६ ई०में भंगरेज-मार्मैलने पहाका-याजिणय विवरण संपन्न करनेके लिये Dr. Chyler की लक्ष्मण भेजा। १८७० ई०में काश्मीर महाराजके साथ अहूरेज

राजप्रतिनिधि लार्ड मेथोकी एक संधि हुई। उन सन्धि-के अनुसार पहाके लिये एक भंगरेज और एक देगो कमिश्नर नियुक्त हुए। ये दोनों एक साथ मिल कर इस कामको चलाने आ रहे हैं। (Dr. Aitchison ह्व Trade Products of Leb 1871 माण्यक प्रथमे पहाके पत्र-द्रव्यकी संवो चीनी विवरणो दो हुई है।)

लक्ष्मण ( हि० जि० ) लाहनेका काम शुरूसे कराया। लक्ष्मण ( हि० वि० ) भारपूर्व, बोम्बसे मरा या मरा हुआ।

लक्ष्मण ( हि० पु० ) १ लाहनेकी गिया या भाय। २ मार, बोम्ब। ३ पहा छत या महाराय जिममें ईंटीकी जोड़नी विना घरन या कड़ीके महारे अधरामें ठहरते हो। ४ ईंटीकी जोड़नी जो विना घरन या लहड़ीके आधारमें ठहरती हो, कड़ीकी जोड़नी। ५ छत आदिका पढाय।

लक्ष्मण ( हि० वि० ) बोम्ब टोनेपाला, पोड पर बोम्ब से कर चलनेवाला।

लक्ष्मण ( हि० वि० ) बोम्ब टोनेपाला, लक्ष्मण।

लक्ष्मण ( हि० वि० ) जिममें तेजो और कुत्तो न हो, काहिल।

लक्ष्मण ( हि० पु० ) कादिली, सुफ्नी।

लक्ष्मण ( मं० श्लो० ) एक प्रकारका वीधा या घाम जिमका साग बना कर खाया जाता है।

लक्ष्मण ( हि० पु० ) १ एक पेड़ जिममें पत्राधमें सत्रो निकाली जाती है। इसका एक भेद जोरासना है। २ जोरा।

लक्ष्मण ( हि० ज्यो० ) १ पानकी धारोकी मधारी। २ पत्राधमें टोनेपाला एक पेड़। इसमें सत्रो निकाली जाती है।

लक्ष्मण—मुगलप्रदेशके देहरादून जिलागतम एक सैन्य-घाम। इस मघतमें अहूरेजोकी एक छापनी है। यह समुद्रतटमें ७४५६ फुट ऊंचा, लम्बा ३० २७ ३० तथा देगा ६८ ८ ५०के मध्य दिगालय पहाड़के सिवा पर मरिष्ठित है। मग्नी सैन्यघामके अन्तर्गत होने पर भी यह अन्तम काटमेस्ट मन्त्रिद्वैके जामनायोन है। यह मघत १८२७ ई०में पौरुष अहूरेजोनाके आरम्भ-धामरूपमें परिष्कृत हुआ। मग्नी मघत और लक्ष्मण अग्नी एक मघत गिना जाता है। मग्नी देखो।

लन्दौरा—युक्तप्रदेशके शहरानपुर जिलेकी तहसील के अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ४८' उ० तथा देशा० ७७° ५८' पू०के मध्य रुड़कीसे २॥ कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। इस नगरमें एक दुर्ग है जिसके चारों ओर एक खाई दी दी गई है। बुद्धार्थ सरदार रामदयाल सिंहके गुजर जातीय आत्मीय खजनोंका यहाँ बास है। सिपाही विद्रोहके समय गुजराते भारी अत्याचार किया था, इस कारण नगरमें आग लगा दी गई थी।

लप (हि० पु०) १ एक प्रकारकी घास। इसे 'गुरारी' भी कहते हैं। २ दोनों हथेलियोंको मिला कर बनाया हुआ संयुक्त जिसमें कोई वस्तु भरो जा सके, अञ्जली। ३ अञ्जली भर वस्तु। (खी०) ४ घेत या लचीली छड़ीको पकड़ कर हिलानेसे उदग्न शब्द या व्यापार। ५ छुरी, तलवार आदिकी चमककी गति।

लपक (हि० खी०) १ उवाला, लपट। २ लीं या लपटकी तरह निकलने या चलनेकी तेजी, वेग। ३ चमक, कान्ति। ४ चलनेका वेग, फुरती।

लपकना (हि० कि०) १ चटपट या तेजीसे चल पड़ना, तुरत दौड़ पड़ना। २ आकषणके लिये दौड़ पड़ना, भाषण। ३ वेगसे गमन करना, तेजीसे जाना या चलना। ४ कोई वस्तु लेनेके लिये भरते हाथ पढ़ाना।

लपकी (हि० खी०) एक प्रकारकी सोपी सिलाई।

लपचा (हि० पु०) सिकिमके पहाड़ोंकी एक जङ्गली जाति। लेन्दा देखो।

लपचाप (हि० वि०) १ चञ्चु, चपल। २ तेज फुर-सोला। ३ चुपचाप न बैठनेवाला, अधीर।

लपटे (हि० खी०) १ आगके दहकनेसे उठा हुआ जलती वायुका स्वरूप, आग ही लीं। २ तपी हुई वायु, हवामें फैली हुई गरमी। ३ गंध, महक। ४ किसी प्रकारकी गंधसे भरा वायुका भौंका।

लपटना (हि० कि०) १ अगोंसे घेरना, आलिङ्गन करना। २ उलझना, फंसना। ३ किसी सूतकी सी वस्तुका दूसरी वस्तुके चारों ओर कई फेरोंमें घेरना। ४ लग जाना, संलग्न होना। ५ लगा रहना, रत रहना। ६ परिघेष्टित होना, घिर जाना।

लपटा (हि० पु०) १ गाढ़ी भीली वस्तु। २ कढ़ी। ३ लपसी, लै।

लपटाना (हि० कि०) १ अङ्गोंसे घेरना, चिमटना। २ आलिङ्गन करना, गले लगाना। ३ परिघेष्टित करना, घेरना। ४ किसी सूतकी-सी वस्तुको कई फेर करके टिकाना या बांधना, लपेटना। ५ संलग्न, सटना। ६ उलझना, फंसना।

लपटीयाँ (हि० पु०) १ एक प्रकारका अञ्जली लृण जिसकी बाल कपड़ेमें लिपट या फंस जाती है और कठिनतासे छूटती है। (वि०) २ लिपटनेवाला, चिमटनेवाला। ३ सटा या लिपटा हुआ।

लपन (सं० स्त्री०) लप्यतेऽनेनेति लप कणे ल्यट्। १ मुख, मुँह। २ मापण, कथन।

लपना (हि० कि०) १ घेत या लचीली छड़ीका एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाये जानेसे इधर उधर झुकना, भौंकेके साथ इधर उधर लचना। २ झुकना, लचना। ३ लपकना, ललचना, हीरान होना, परेशान होना।

लपलपाना (हि० कि०) १ घेत या लचीली छड़ी, टहनी आदिका एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाये जानेसे इधर उधर झुकना, भौंकेके साथ इधर उधर लचना। २ किसी लंबी कोमल वस्तुका इधर उधर हिलना डोलना या किसी वस्तुके अंदरसे बार बार निकलना। ३ छुरी, तलवार आदिका चमकना, झलकना। ४ भौंकेके साथ इधर उधर लपाना, लपाना। ५ किसी लंबी नरम चीजको इधर उधर हिलाना डुलाना या किसी वस्तुके अंदरसे बार बार निकलना। ६ छुरी, तलवार आदिकी निकाल कर चमकाना, चमचमाना।

लपलपाहट (हि० खी०) १ लपलपानेकी क्रिया या भाव, एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाये जाते हुए घेत आदिका भौंका। २ चमक, झलक।

लपसी (हि० खी०) १ भुने हुए आटेमें चीनीका शरबत डाल कर पकाई हुई बहुत गाढ़ी लैई जो खाई जाती है, घोड़े घोसा हलुवा। २ पानीमें गीटाया हुआ भाटा जिसमें नमक मिला होता है और जो जेलमें फंदियोंको दिया जाता है। इसे लपटा भी कहते हैं। ३ गाढ़ी गाढ़ी वस्तु।

लपसा (हि० पु०) पानका एक एक रोग, पानकी गैरर। लपाना (हि० कि०) १ लचीली छड़ी आदिकी भौंकेके

साथ इया उधर लनासा, फटकारना । २ नरम लंबी  
कोठीकी दुःखना । ३ शारी बढ़ाना ।

सपिन ( सं० स्त्री० ) लज भावै का । १ यवन, वान ।  
( हि० ) २ सपिन, बड़ा हुआ ।

सपिना ( सं० स्त्री० ) झाड़ूका नामक पत्तीकी एक  
जाति ।

सपेट ( हि० स्त्री० ) १ सपेटनेकी क्रिया या भाव । २ बंधी  
हुई सपेटमें कपड़ेकी लकड़ी मोटा । ३ किसी मूल, डोरी  
या कपड़ेकी सी यस्तुकी दूसरी यस्तुकी परिधिकी  
सपेटने या बांधनेकी स्थिति, फेरा । ४ उलभन, कंसाय ।  
५ खेंडन, मरोड । ६ किसी मोटी लकड़ी यस्तुको मोटाई  
के चारों ओरका निष्कार, घेरा । ७ कुदतीका एक पेश ।  
जब दोनो सपेटपाते एक दूसरेकी बगलमें सिर निकालते  
हैं और कपड़की दोनो हाथोंमें पकड़ कर भीतर झुकाती  
टांगमें सपेटने हैं तब उमें सपेट कहने हैं । ८ पकड़,  
बंधन ।

सपेटन ( हि० स्त्री० ) १ सपेटनेकी क्रिया या भाव, सपेट ।  
२ खेंडन, मरोड । ३ फेरा, बन् । ४ उलभन, कंसाय ।  
( पु० ) ५ सपेटनेवाली यस्तु, यह यस्तु जो चारों ओर मर  
कर घेर ले । ६ यह कपड़ा जिसे किसी यस्तुके चारों ओर  
पुमा घुमा कर बांधे । ७ यह यस्तु जिसे किसी यस्तुके  
चारों ओर घुमा घुमा कर बांधे । ८ पैरोंमें उलभने-  
वाली यस्तु । ९ यह लकड़ी जिस पर जुवादे पुन कर  
सोधार कपड़ा सपेटने है, मूल, खेंडन ।

सपेटना ( हि० क्रि० ) १ किसी मूल, डोरी या कपड़ेकी-  
सां यस्तुकी दूसरी यस्तुके चारों ओर घुमा कर बांधना,  
घुमाय या फेरके साथ चारों ओर कंसायना । २ झोंगे,  
मूल या कपड़ेकी-सां पैरोंमें सपेट यस्तुकी लकड़ पर लकड़  
माड़ी या घुमाने हुए संकुचित करना, फेरकी सपेट यस्तु-  
की लकड़े या मट्टके ऊपर करना । ३ मूल, डोरी या  
कपड़ेकी-सां यस्तु चारों ओर ले जा कर घेरना, परिधि-  
द्विज करना । ४ हाथोंमें सपेट सपेटकी चारों ओर  
संका कर घेरने करना, पकड़नी कर लेना । ५ पकड़ने  
स्थान, कपड़ करना । ६ मोटे हुए कपड़े भादिके आधर  
करके बंधे करना, कपड़े भादिके आधर बांधना । ७  
उलभनेकी क्रिया, उलभने कंसायना । ८ पैरों में स्थिति

करना कि कुछ बन्ने न पाये, गतिगति बन्ने करना ।  
६ मोठी माड़ी यस्तु पोषना, घेरना करना ।

सपेटनी ( हि० स्त्री० ) जुवादीकी सपेटन नामकी लकड़ी,  
मूल ।

सपेटनी ( हि० वि० ) १ जो सपेटे हो, जिसे सपेट सकें ।  
२ जिसमें मोने चांदीके तार सपेटे गये हों । ३ जो सपेट  
कर बना हो । ४ जो सपेटे हुएने न कहा या बिना  
गया हो, घुमाय किलायका । ५ सपेटका कार्य किया हो,  
मुट ।

सपेटा ( हि० पु० ) सपेट देनेवा ।

सपेटिका ( सं० स्त्री० ) महाभारतके अनुसार एक सपिन  
गोर्धका नाम ।

सपेन ( सं० पु० ) बालरोगीके सपित्तनाम एक देवता ।  
( बालरस्य १०१६ )

सपना ( हि० पु० ) १ सपने लगी हुई यह लकड़ी जिसमें  
देनामी कपड़े पुननेवाले जुवादीके चारोंकी स्थितिमें  
बन्धी रहती है । २ एक प्रकारका मोटा ।

सपिसका ( सं० स्त्री० ) खोपट्ट्यापेशीय, सपिसी । बगलका  
तरीका—सोमै मीदेकी अच्छी तरह भून कर आकरके साथ  
दूधमें डाल दे । पीछे उसकी भाँज पर लकड़ा कर माड़ी  
करे । माड़ी होने पर लकड़ा और सोपसिरी ऊपरमें छोड़  
दे । अच्छी तरह मिश्र हो जाने पर मोने उतार ले ।  
इसीका नाम सपिसका है । इसका गुण दृक्, पक्क, सु-  
दृक्, विषा और वायुनाशक, विनाश, इन्धनघटक, सुह-  
पाक और हृदयकर माना गया है । इसकी मोहनयोग सा  
कह सकते हैं । जब इतना हो है, कि मोहनयोग सुझाये  
बनाया जाता है ।

सपसुद ( सं० स्त्री० ) कुम् ।

सपसुदिन ( सं० ति० ) दृग्गुणक ।

सपसुता ( सं० वि० ) १ सपेट, सपिसासो । २ जोहराई,  
कुनामी ।

सपसुत ( सं० पु० ) सपेटाका एक छोटा भकरना ।

सपसुत सपसुत ( सं० पु० ) किसी प्रकारका आसन,  
छोटे लकड़ा सपिस ।

सपसुत ( सं० पु० ) १ सपेट । २ बान, बीज ।  
एक ( सं० पु० ) सोड़, रोड ।

लंबगुरानया ( हि० खी० ) गहरे बेगनी रङ्गके रतालुकी लता जो भारतवर्षमें कई जगह बोई जाती है । इसको जड़ खाई जाती है ।

लवङ धोधी ( हि० खी० ) १ झुंड मूठका हल्लो, ध्यर्षका गुल गपाडा । २ क्रम और व्यवस्थाका अभाव, गड़बड़ी । ३ बातोंका भुलावा, बेदमाताकी चाल । ४ अन्याय, अनीति ।

लवदा ( हि० पु० ) मोटा घेड़ील डंडा ।

लवदी ( हि० खी० ) छोटी छडी, पतली छडी ।

लवनी ( हि० खी० ) १ मिट्टीकी लम्बी हांडी या मटकी, जो ताड़के पेड़ोंमें बांध दी जाती है और जिसमें ताड़ी इकट्ठी होती है । २ काठकी लंबी डांडी लगा हुआ कटोरा जिससे कड़ाहमें शीरा निकालने हैं, डीवा ।

लवरा ( हि० वि० ) १ झूठ बोलनेवाला । २ गप हांकने वाला, गप्पो ।

लवरी ( हि० वि० खी० ) १ झूठ बोलनेवाली, गप्पी । ( खी० ) २ सिपड़ी देखो ।

लवलपी ( फा० खी० ) बन्दूकके घोड़ेकी कमानी ।

लवादा ( फा० पु० ) १ रुईदार चोगा, दगला । २ वह लंबा डोला पहनावा जो अंगरेखे आदिके ऊपरसे पहन लिया जाता है और जिसका सामना प्रायः खुला होता है, चोगा ।

लवारी ( हि० खी० ) १ झूठ बोलनेका काम । ( वि० ) २ झूठा । ३ चुगलखोर ।

लवालव ( फा० कि० वि० ) मुँह या किनारे तक, छलकता हुआ ।

लवी ( हि० खी० ) ईश्वरका रस जो पका कर खूब गाढ़ा और दानेदार कर दिया गया हो, राव ।

लबेचू ( हि० पु० ) जैन चैश्योंको एक जाति, लमेचू ।

लबेड़ ( हि० पु० ) वेदके विरुद्ध ध्वन या प्रसंग, लोकाचार और दन्तकथा ।

लबेड़ा ( हि० पु० ) मोटा बड़ा डंडा ।

लबेदी ( हि० खी० ) १ छोटा डंडा, नाडी । २ डंडेका घल, जबरदस्ती ।

लबेरा ( हि० पु० ) लसोड़ेका पेड़ या फल, लपेरा ।

लब्ध ( सं० लि० ) लभक । १ प्राप्त, पाया हुआ । २ उपा-

जित, कमाया हुआ । ३ भाग करनेसे आया हुआ फल । ( पु० ) ४ दश प्रकारके दार्म्योंसे एक ।

लब्धक ( सं० लि० ) प्राप्त, पायेवाला ।

लब्धकाम ( सं० लि० ) अभीष्टसिद्ध, जिसकी मनस्कामना पूरी हो गई हो ।

लब्धकीर्त्ति ( सं० लि० ) १ यशस्वी, जिसने कीर्त्ति पाई हो । २ विषयात, नामवर ।

लब्धचेतस ( सं० लि० ) पुनःप्राप्तचित्त, जिसने पुनः ज्ञान-लभ किया हो ।

लब्धजन्मन ( सं० लि० ) प्राप्तिजन्म, जिसने जन्म लिया हो ।

लब्धदत्त ( सं० पु० ) एक व्यक्तिका नाम ।

( फारसिस्वा० ५३१८ )

लब्धधन ( सं० लि० ) धनवान्, हीलनमंद ।

लब्धनामन् ( सं० लि० ) लब्ध नाम यस्य । खयातनामा, नामवर ।

लब्धनाश ( सं० पु० ) प्राप्त वस्तुका नाश, पूर्वधनका विनाश ।

लब्धप्रतिष्ठ ( सं० लि० ) लब्धा प्रतिष्ठा येन । प्रतिष्ठित, जिसने प्रतिष्ठा पाई हो ।

लब्धप्रदानन ( सं० लि० ) मिले हुए धनका सटपात्रकी दान ।

लब्धलक्ष ( सं० लि० ) १ जिसका वार ठीक निशाने पर जा लगे । २ जिसे अगिप्रेत वस्तु मिल गई हो ।

लब्धवर ( सं० लि० ) लब्धाः वरो येन । वरप्राप्त, जिसने वर पाया हो ।

लब्धवर्ण ( सं० लि० ) लब्धा वर्णा यर्णामि येन । विद्वान्, पण्डित ।

लब्धविद्य ( सं० लि० ) लब्धा विद्या येन । विद्वान्, पण्डित ।

लब्धव्य ( सं० लि० ) लभ-तय्य । लाभार्ह, पानेके योग्य ।

लब्धशब्द ( सं० लि० ) लब्धनाम, नामवर, मन्त्रहर ।

लब्धसिद्धि ( सं० लि० ) लब्धा सिद्धिः येन । जिसने सिद्धि पाई हो ।

लब्धा ( सं० खी० ) लभ-क-टाप् । विप्रलब्धा नायिका । विप्रलब्धा देवी ।

लब्धाद् ( सं० पु० ) गणित करने पर जो अंक प्राप्त हो । जवाब ।



संख्यानुष्ठ ( सं० लि० ) संख्या कर्मकादेन । जिसमें संख्या पार्यं हो ।

संख्यायज्ञान ( सं० लि० ) संख्या संयोजनः येन । जिसमें संयोजन या सुदृष्टी पार्यं हो ।

संख्यायमर ( सं० लि० ) जिसमें कार्यमें संयमर प्रदण किया हो, येनमत्त यानेवात् ।

सन्धि ( सं० स्त्री० ) समा-च्छिन् । १. ज्ञान, प्राप्ति । २. दिग्मात्र का ज्ञापक ।

सन्धिप्रम ( सं० लि० ) प्राप्त, उपार्जित ।

संशोध्य ( सं० लि० ) संख्याः उद्यः उपसिद्धिरूप । १. ज्ञात, उत्पन्न । २. जिसमें सीमाय अज्ञान किया हो ।

समान ( सं० स्त्री० ) प्राप्त करना, प्राप्तिल करना ।

समम ( सं० पुं० ) सम (सन्धिविभक्तिः) । उद्य १।११० इति समम् । १. योजनसमनरुत्तु, घोड़ा बाननेकी रस्सी । २. समानता मो कहते हैं । ३. घन । ३. यानक, मागने वाला ।

संश्रय ( सं० लि० ) संश्रय इति सम ( कोरदुग्धात् । ग १।१।६) इति मम् । १. श्वाययुक्त, सुवासिब । २. संश्रय, याने योग्य ।

समक ( सं० पुं० ) समते इति सम ( समाने सात् । उद्य १।११ ) इति म्पुन रूप उत्पत्तं । १. जात, उपवर्ति । २. निजामी, संपत् ।

समसा ( दि० पुं० ) इत्कार, उठया ।

समसिवा ( दि० वि० ) समो मत्पदवात् ।

समसा ( दि० पुं० ) एक प्रकारकी बरमाती घाम, जो कान्ठी चिकनी मिट्टीकी जमीनमें बहुत पार्यं जाती है ।

समपङ्क ( दि० पुं० ) १. माग, बरती । २. पुरानी घामकी लंबी बंदूक । ३. कपूरवातीकी लम्बी । ( वि० ) ४. पत्ता और लम्बा ।

समायुगा ( दि० वि० ) जो भाकारमें कुछ लम्बा हो, लम्बायन स्थिमे ह्य ।

समक ( दि० पुं० ) कुमाकी तरहकी एक घाम जिसमें सुन्दर मद्दक होता है । इसमें 'उदरकुमा' भी कहते हैं और उधरमें भीमपके कर्ममें देते हैं ।

समायुक्त ( दि० पुं० ) समक सेते ।

समरता ( दि० वि० ) १. जिसकी टांगें लम्बी हों । ( पुं० ) २. समान पारी ।

समदीग ( दि० पुं० ) एक प्रकारका लहूनी समार ।

समतद्गु ( दि० वि० ) बहुत लम्बा या लंबा ।

समान—एक जाति । यह बर्षा में सिद्धिभरती अदम्यतया,

घारपाइ आदि जिल्लोंमें रहती है और घारल पंजारी

नामसे प्रसिद्ध है । यह जाति राजपूतानेके माण्ड्यक क्षेत्रमें

यहां आकर बस पाई है । इस जातिके लोग पावन, होयके

मधु, पवार, रणवार और सिद्धे आदि उपाधिधारी हैं ।

बर और बन्धारी उपाधि एक होनेसे विवाद नहीं होता ।

इसके भलाया विवाहमें और कोई अहंकार नहीं है । ये

लोग हिन्दू हैं । सगो सिवा समते हैं, लेकिन येनमूना और

परिच्छद आदि बहुत मंदा होता है । यहां तक, कि समहमें

दो दिन भी खान नहीं करते ।

गोकुलाएमी, दगहरा और देगायी ये बड़ी धूम

धाममें मनाते हैं । विवाह आदि कार्योंमें मांके लोग

लोग ही इनको पुरोहितारं करते हैं । विवाह और सम्ये-

ष्टिके भलाया इनमें और कोई संस्कार नहीं है । इनमें

विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है । सामान्य

आदिने उतरम होने पर प्रमृति ४० दिन तक भोजन

मानती है विवाहमें बरके साथ बारात जानेकी प्रथा नहीं

है सिद्धे को एक भादमी जाने हैं । लारक एक इनके कोई

धर्मगुरु नहीं हैं ।

विवाहित सुख या समकीकी मृत्यु होने पर ये जपकी

जलाते हैं । मृत्युके बाद आत्मीय मन्त्रनके भोजन नहीं

होता । तीसरे दिन ही जाति कुटुंबका भोजन होता है ।

किसी तरहका धाद आदि नहीं होता । भयतमें किसी

विपत्तीकी मोमांता करनेके लिये पंचायत बैठती है ।

समेतावाद—मंशु नहींके किनारेका एक लीन ।

समान—हायुके अंदर एक प्रदेश । इसका संस्कृत नाम

समपाक है । समार सेना ।

सम ( सं० पुं० ) एक जाति ।

सम ( सं० पुं० ) दोबक, चितार ।

समक ( सं० पुं० ) त्रिनितीका एक मन्त्रहाय । गैल संज्ञा ।

समर ( सं० लि० ) १. स्थानवादी, कामुक । ( पुं० )

२. स्थान उपवर्ति, पार ।

समरता ( सं० स्त्री० ) समर होनेका भाव, दुर्गावार ।

सम ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका नाम ।

सम्पाक ( सं० पु० ) १ लम्पट, दुराचारी । २ पुराणो-  
नुसार एक देशका नाम । इसे मुरएड भी कहते हैं ।  
यह देश भारतके उत्तर-पश्चिममें था । ( भारत द्रोणपर्ण  
११६।५२ ) ३ पद्मनाभकृत खरशास्त्रमेद ।  
सम्पाटह ( सं० पु० ) पटहयाद्य, नगाड़ा ।  
सम्फ ( सं० पु० ) प्लुतगति, उछाल ।  
सम्फन ( सं० क्ली० ) उछाल, कूटना ।  
सम्ब ( सं० पु० ) सम्बते इति लघि अवसंसने अच् ।  
१ नर्त्तक, यह जो नाचता हो । २ पति । ३ उत्कोच,  
धूस । ४ अङ्ग । ५ शुद्धरागका एक मेद । ६ एक राक्षस  
जिसे श्रीकृष्णने मारा था । इसीको प्रलम्बासुर भी  
कहते हैं । ७ एक दैत्यका नाम । ( हरिवंश ५३।५२ )  
८ ज्योतिषमें एक प्रकारकी रेखा जो विषुवरेखासे समा-  
नान्तर होती है । ९ एक मुनिका नाम । १० ज्योतिषमें  
ग्रहोंकी एक प्रकारकी गति । ( खो० ११ विलम्ब देखो ।  
( त्रि० ) १२ दीर्घ, लम्बा ।  
सम्बक ( सं० पु० ) सम्ब स्वार्थे कन् । १ लम्ब, लम्बा ।  
२ किसी पुस्तकका एक अध्याय । ३ ज्योतिषमें एक  
प्रकारके योग जो संख्यामें पन्च होते हैं । ४ मुखका  
एक रोग ।  
सम्बकर्ण ( सं० पु० ) लम्बी कर्णों यस्य । १ छाग,  
बकरा । २ अंकोट वृक्ष । ३ राक्षस । ४ हस्ती, हाथी ।  
५ श्येनपक्षी, बाज चिड़िया । ६ शशक, चरगोदा ।  
७ खर, गदहा । ( त्रि० ) ८ दीर्घ कर्णविशिष्ट, जिसके  
फान लंबे हैं ।  
सम्बकेज ( सं० पु० ) लम्बः केज इवाग्रभागे यस्य ।  
१ दीर्घाग्रयुक्त कुशमय विष्टर, लम्बे लम्बे कुशका बनाया  
हुआ आसन ।  
विद्याहके समय घरके बैठनेके लिये विष्टर देना  
होता है । थोड़े कुशकी ले कर उसके अग्र-भागमें धामा-  
पर्त्तसे ढाई बार लपेट दे कर अग्रभागकी नोककी ओर  
खड़ा कर देनेसे विष्टर बनता है । विष्टर देखो । २ दीर्घ  
केजायुक्त, जिसके बड़े बड़े बाल हों ।  
सम्बकेशक ( सं० पु० ) एक मुनिका नाम ।  
सम्बमीव ( सं० पु० ) उद्ध, ऊँट ।  
सम्बजटर ( सं० त्रि० ) लम्बीदर, लम्बा पेटवाला ।

सम्बजिह ( सं० पु० ) एक राक्षसका नाम ।  
सम्बज्यका ( सं० स्त्री० ) ज्योतिषोक्त ज्या रेखा मेद ।  
Sine of co-latitude  
सम्बज्या ( सं० स्त्री० ) सम्बज्यका देखो ।  
सम्बतङ्ग ( सं० त्रि० ) ताड़के समान लंबा, बहुत लंबा ।  
सम्बदन्ता ( सं० स्त्री० ) लम्बा दन्ता इव फलानि यस्याः ।  
१ सैंहली पिप्पली, सिंहल देशकी पिप्पली । ( त्रि० )  
२ यहूद्धानविशिष्ट, जिसके दांत बड़े बड़े हों ।  
सम्बन ( सं० क्ली० ) सम्बते इति सम्ब-स्युट् । १ नामि-  
लम्बत कण्टकादि, गलेका यह दारू जो नामि तक लट-  
कता हो । पर्याय—ललन्तिका । २ अथलम्बन, आश्रय ।  
३ भूलनेकी क्रिया । ( पु० ) लम्बास्तु । ४ कफ ।  
सम्बपयोधरा ( सं० स्त्री० ) १ लम्बमान स्तनयुक्त स्त्री,  
यह स्त्री जिसके स्तन लंबे हों । २ कार्तिकेयकी एक  
मातृकाका नाम ।  
सम्बबीजा ( सं० स्त्री० ) लम्बानि बीजानि यस्याः ।  
सैंहली पिप्पली, सिंहल देशकी पिप्पली ।  
सम्बमान ( सं० त्रि० ) लम्ब-शानच् । लम्बायमान यस्तु,  
चद यस्तु या चीत्र जो लम्बी हो ।  
सम्बस्फिक् ( सं० त्रि० ) लम्बा स्फिक् यस्य । विपुल  
नितम्ब, जिसका चूतड़ चौड़ा हो ।  
सम्बशांश ( सं० पु० ) ज्योतिषके अनुसार अक्षांश रेखा  
विशेष । अंगरेजीमें इसे Complement of latitude या  
Co-latitude कहते हैं ।  
सम्बा ( सं० स्त्री० ) १ लक्ष्मी । २ गौरी । ३ तिकतुम्बी,  
छोटा कट्टु या कद्दू । ४ दक्षकी कन्याका नाम । ( हरिवंश )  
५ स्यापरविषके अतर्गत पत्रविष । ६ हिमालयकी कन्या  
का नाम । ७ लंबा देखो ।  
सम्बाक्ष ( सं० पु० ) एक मुनिका नाम ।  
सम्बानि—बम्बईप्रदेशके पारवाड जिलेमें रहनेवाली एक  
जाति । इस जातिके लोग हमेशा घूमते रहते हैं ।  
सम्बिका ( सं० स्त्री० ) सम्बते या सम्ब-प्लुट्-टापि मत  
इत्थं । ताट्टुर्द सुम्बिह्वा, गलेके अंदरकी घंटी । पर्याय-  
घण्टिका, सुपाध्रवा, गलशुण्डिका, अलिङ्गिका, अलि-  
ङ्गिका ।



यह तद्रूप हो जाय और उसकी सत्ता पृथक् न रह जाय ।  
 ७ चित्तकी वृत्तियोंका सब ओरसे दृष्ट कर एक ओर  
 मयुक्त होना, ध्यानमें डूबना । ८ गूढ़ अनुराग, लगन ।  
 ९ कार्यका अपने कारणमें समाविष्ट होना या फिर कारण  
 के रूपमें परिणत हो जाना । १० स्थिरता, विश्राम ।  
 ११ मूर्च्छा, वैदोशी । १२ वह समय जो किसी स्वरकी  
 निकालनेमें लगता है । यह तीन प्रकारका माना गया  
 है—द्रुत, मध्य और विलंबित । १३ एक प्रकारका  
 पाटा जिससे वैदिककालमें खेत जोत कर उसको मिट्टी  
 को सम या बराबर करने थे । इसका उल्लेख शुक्र  
 यजुर्वेदकी वाजसनेयसंहितामें है । ( स्त्री० ) १४ गानेका  
 स्वर, गानेमें स्वर निकालनेका ढंग । १५ गीत गानेका  
 ढंग या तर्ज, धुन । १६ सङ्गीतमें सम । १७ ला-  
 मञ्जरू, लामत्र नामक तृण । ( त्रि० ) १८ आचरणा  
 त्मक, ढकनेवाला ।

लयन ( सं० स्त्री० ) १ विश्राम, शान्ति । २ आश्रय, विश्राम  
 स्थान । ३ आश्रयमण्डन, पनाह लेना ।

लयपुत्री ( सं० स्त्री० ) लयस्य पुत्रीय, नर्तकी ।

लययोग ( सं० पु० ) तन्त्रोक्त साधनयोगभेद ।

( प्रायशो० २४०, १११ )

लयली-मञ्जु—पारस्योपाख्यानोक्त नोपक नायिकाभेद ।

इनके प्रेम-चित्रके आधार पर बंगला भाषामें एक ग्रन्थ  
 लिखा गया है ।

लयादा—छोटा नागपुर विभागान्तर्गत एक शैलधेनी ।

यह सिंहभूम जिले तक पूर्व पश्चिममें फैली हुई है ।

लपारम्भ ( सं० पु० ) लयस्य आरम्भो यसमात् । नट ।

लयालम्ब्य ( सं० पु० ) लयमादात्म्ये इति लम्ब-अण् । नट ।

लरझराना ( हि० कि० ) झड़झाना देखो ।

लरजना ( हि० कि० ) १ कांपना, हिलाना । २ भयभीत  
 होना, दहल जाना ।

लरजा ( फा० पु० ) १ कंप, धरधराहट । २ एक प्रकारका  
 उबर जिसमें रोगीका शरीर उबर आवे हो कांपने लगता  
 है, जड़ो । ३ भूकम्प, भूचाल ।

लराघर—मध्यभारतकी भोपाल प्रजेन्सीके धार और देवास  
 राज्यके अन्तर्गत एक विभाग । भू-प्रतिष्ठाण ३० वर्गमील  
 है । १८८० ई०में यहाँके जागीरदार रामचन्द्र राव पोयार-

की जब मृत्यु हो गई, तब उनके भतीजेकी प्रासन्निक वृत्ति  
 दे कर यह सम्पत्ति धार और देवास राज्यमें मिला कर  
 ली गई ।

लज ( हि० पु० ) सितारके एक तारका नाम । यह छः  
 तारोंमें पांचवाँ और पीतलका होता है ।

ललक ( हि० स्त्री० ) प्रवल अभिलाषा, गहरी चाह ।

ललना ( हि० कि० ) १ किसी वस्तुकी पानेकी गहरी  
 इच्छा करना, ललबना । २ अभिलाषासे पूर्ण होना, चाह-  
 की उमंगसे भरना ।

ललकार ( हि० स्त्री० ) १ युद्धके लिये उभय स्वरसे आह्वान,  
 प्रचारण, हाँक । २ किसीको किसी पर आक्रमण करने-  
 के लिये पुकार कर उत्साहित करना, लड़नेका बढावा ।

ललकारना ( हि० कि० ) १ युद्धके लिये उभय स्वरसे  
 आह्वान करना, हाँक लगाना । २ किसी पर आक्रमण  
 करनेके लिये किसीको पुकार कर उत्साहित करना,  
 लड़नेके लिये उकसाना या बढावा देना ।

ललबना ( हि० कि० ) १ लालच करना, पानेकी प्रवल  
 इच्छा करना । २ किसी बातकी प्रवल इच्छा करना,  
 लालसा करना । ३ मोहित होना, लुब्ध होना ।

ललचाना ( हि० कि० ) १ किसीके मनमें लालच उत्पन्न  
 करना, लालसा उत्पन्न करना । २ मोहित करना, लुभाना ।  
 ३ कोई अच्छी या लुभानेवाली वस्तु सामने रखा कर  
 किसीके मनमें लालच उत्पन्न करना, कोई वस्तु दिना  
 कर उसके पानेके लिये अधीर करना ।

ललचौदाँ ( हि० वि० ) लालचसे भरा, ललचाया हुआ ।

ललजिह्व ( सं० पु० ) ललन्ती जिह्वा यस्य । १ उद्ग, कंठ ।  
 २ कुङ्कुम, कुत्ता । ( त्रि० ) ३ जीम लपलपाता हुआ ।  
 ४ भयंकर, खूबसार ।

ललदम्बु ( सं० पु० ) ललत् चलदम्बु यस्य । लिम्बाक,  
 एक प्रकारका नौबू ।

ललदेवा ( हि० पु० ) एक प्रकारका घान जिसकी फसल  
 भगदहनमें तैयार होती है ।

ललन ( सं० स्त्री० ) लल-ल्युट् । १ केलि, कीड़ा । २ चालन,  
 चलानेकी क्रिया । ( पु० ) लल्यते ईप्स्यते इति लल-  
 कर्मणि ल्युट् । ३ व्यास बालक, दुन्दरत लड़का ।  
 ४ लड़का, बालक । ५ नायकके लिये प्यारका मुद्द,

मिथ मापक या पति । १ मापक, मापका दिह । ० मिथान, मिथानिका दिह ।

समनस्यम—समनस्यके रहनेवाले एक प्राणम । इनका जन्म सं० १८३३में हुआ था । ये बड़े महात्मा हो गये हैं । इनकी ज्ञानसंग्रहकी बचिका उत्तम है ।

समना ( सं० स्त्री० ) समपति इत्यसि वामान मत्-स्यु-ट्-टाप् । १ कामिनी, स्त्री । २ मित्र, ज्ञान । ३ एक वर्षोत्स जिनके अन्धेक शरणा में भगवत्, भगवत् और दो समन होने हैं ।

समनामिथ ( सं० स्त्री० ) समनानां मिथ । १ होंपि । ( पु० ) २ कदम्ब । ३ कामिनीपान, मिथोका मिथ ।

समनिवा ( सं० स्त्री० ) समना, स्त्री ।

समनिवा । सं० स्त्री० ) समनस्येव स्वार्थे वन् । १ सामि-समनस्येव स्वार्थे वन् । १ सामि-समनस्येव स्वार्थे वन् । १ सामि-समनस्येव स्वार्थे वन् । १ सामि-समनस्येव स्वार्थे वन् ।

समा ( दि० पु० ) १ व्यास या कुमार सत्यका । २ सत्यका, कुमार । ३ सत्यके या कुमारके लिये व्यासका शब्द । ४ मापक या पतिके लिये व्यासका शब्द, मिथ मापक या पति ।

समाई ( दि० स्त्री० ) सामिना, सुनी ।

समाक ( सं० पु० ) मित्र, मित्रे मित्रे ।

समाट ( सं० स्त्री० ) समं ईसां भटति शायति भट-मत् । १ भयवर्षावर्षेण, माया । संकटन वर्षावर्षेण—अनिक, मोषि, महाशुद्ध, भाव, कपालक, भर्तृक, सत्यक । महाशुद्धात्मि-निवा है, कि जिसका समाट उष्ण, विषुव और विषम होता वह निषेध तथा जिसका भयंकरमाहति सा होता वह घनवान होता है । इसी प्रकार मुक्तिविनाश होमेने धार्मिक और निराश होमेने पापी, स्वल्पिकादि देवा और उष्णनिरा रहनेमें घनवान, संकट होमेने कृपण, उष्ण होमेने सुख तथा निम्न होमेने दासी होता है । समाट पर तीव्र देवा रहनेमें ती वर्षकी परमायु, चार देवा रहनेमें १५ वर्षकी परमायु और राजा, देवा तदी रहनेमें ३० वर्षकी परमायु, देवा विष्णु मित्र होमेने पुंसवन, ब्रह्मण्य-मत्र रहनेमें ८० वर्षकी, ५, ३, ७ या अनेक देवा रहनेमें ४० वर्षकी, सु-कल्याणो देवा होमेने ३० वर्षकी, बर्तु और एक देवा होमेने २० वर्षकी परमायु और देवा छोटी होमे-ने कल्याण होती है । ( कल्पसू० )

सामुद्रिकमें भी इसका विवेक विवरण दिया गया जो सामुद्रिकशास्त्रमें समिथ है, ये सवाय एक कर समुद्रकी समुद्र और गुमागुमका नाम कह सकते हैं ।

२ मापका लेख, क्रियात्मक लिखा ।

समाटक ( सं० स्त्री० ) समाटस्य समाट वन् । १ महात्मा समाट । २ समाटमात्र, मन्त्रक ।

समाटस्य ( सं० स्त्री० ) समाटं तपतीति समाटस्य ( अर्थात् तपतीति ) इति वार्त्तुम् । वा १।२।११६ इति वार्त्तुम् । १ समाटनायक, समाट-नायकरी । ( पु० ) २ शूर्प ।

समाट-पटल ( सं० स्त्री० ) मन्त्रकका तल, मापेकी सतह ।

समाटपुर ( सं० स्त्री० ) एक नगरका नाम । ( म ५।४।७४ ) समाटपालक ( सं० स्त्री० ) बपाल, समाट-पटल ।

समाटरेखा ( सं० स्त्री० ) बपालका रेखा, भावरेखा । कहने हैं, कि विधाता ज्ञातकके पक्षे ज्ञानर वासर धर्मोच्छो वातमें उनके समाटमें निह कर देते हैं ।

समाटास ( सं० पु० ) समाटे भस्तिनी यत्प । मिथ । समाटासो ( सं० स्त्री० ) दुर्गा ।

समाटिका ( सं० स्त्री० ) समाटे भयोऽन्यद्वाराः ( अर्थात् अन्तरात् ) इत्यर्थे । वा ५।१।१५ इति वन् । १ मापे पर बांधनेका एक गदना, टोका । २ मापे परका टोका, तिलक ।

समाट्य ( सं० स्त्री० ) उष्ण कपालयुक्त, जिसका समाट कंथा हो ।

समाट्युकेजरी—उष्णकाके केजरीयस्य एक वृक्षा । उदरेका १।१० ।

समाट्य ( सं० स्त्री० ) समाट-सामन्योष्ण, समाटका । समाम ( सं० स्त्री० ) समं निरामे विष्, तत् समनि मातोऽसि अम गणी वन् इत्येव सत्यं । १ विद, मित्रक ।

२ धरत, प्रेक्ष और पत्राका । ३ शूद्र, मीन । ४ सुपन, कर्तव्य । ५ घोड़े का मित्रकी गर्जन परका वाद, मन्त्रक । ६ सुशू, घोड़ा । ७ यमाव । ८ घोड़े का मापके मापे पर-का विद मापार्त्तु दूतने रंगका विद । ९ घोड़ेका गदना । १० वन् । ( ति० ) ११ यमाव, भे उ । १२ कल्पीव, सुपन । १३ समाट रंगका, सुपुं ।

समापक ( सं० स्त्री० ) मापेमें सरेरनेकी माया ।

ललामंगु ( सं० पु० ) शिष्य, लिङ्गेन्द्रिय ।

ललामन् ( सं० स्त्री० ) १ ललाम । २ पुरुष ।

ललामात् ( सं० लि० ) सुन्दर अलङ्कन ।

ललामो ( सं० स्त्री० ) १ कर्णभूषणविशेष, कानमें पहनने-का एक गहना । २ सुन्दरता । ३ लालिमा, सुर्खी ।

ललित ( सं० स्त्री० ) लल-क । १ शृङ्गारभावज क्रियाविशेष ।

शृङ्गाररसमें एक कायिक हाव या अङ्गचेष्टा । इसमें सुकु-मारता ( नजाकत )-के साथ भी, आँख, हाथ, पैर आदि अङ्ग हिलाए जाते हैं । कहीं कहीं भूषण आदिसे सजाने-की ललित भाव कहा है । ( पु० ) लल्यते इप्सते इति लल कर्मणि क । २ पांडुव जातिका एक राग । यह भैरव राग-का पुत्र माना जाता है । इसमें निपाद स्वर नहीं लगता तथा धैवत और गान्धारके अतिरिक्त और सब स्वर कोमल लगते हैं । इसके गानेका समय रात्रिके तीस दण्ड बीत जाने पर अर्धात् प्रातःकाल है । ३ एक विषम वर्ण-धृत । इसके पहले चरणमें सगण, जगण, सगण, लघु ; दूसरे चरणमें नगण, सगण, जगण, शुब ; तीसरेमें नगण, नगण, सगण, सगण, और चतुर्थीमें सगण, जगण, सगण, जगण होता है । ४ कुछ आचार्योंके मतसे एक अलङ्कार । इसमें वर्ण्य वस्तु ( पात )-के स्थान पर उसका प्रतिविम्ब वर्णन किया जाता है ।

( लि० ) ५ सुन्दर, बढ़िया । ६ इप्सित, मनचाहा ।

७ चलित, चलता हुआ ।

ललितक ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

ललितकला ( सं० स्त्री० ) वे कलाय या विद्याय जिनके व्यक्त करनेमें किसी प्रकारके सौन्दर्यकी अपेक्षा हो ।

विशेष विवरण 'कला' शब्दमें देखो ।

ललितकान्ता ( सं० स्त्री० ) ललिता कान्ता च । मङ्गल-चण्डिका, दुर्गा ।

ललितवेश ( सं० पु० ) ललितवेश, एक प्रकारका मन्दिर या धर्मशाला ।

ललितताल ( सं० पु० ) संगीतका एक ताल ।

ललितपद ( सं० लि० ) १ सुन्दर पद्युक, जिसमें सुन्दर पद या शब्द हों । ( पु० ) २ एकमात्रिक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें १६ और १२के हिसाबसे २८ मात्राएँ

होती हैं । अन्तमें दो सुंदर रखे जाते हैं । इसे सार, नरेन्द्र और दौबे भी कहते हैं ।

ललितपुर ( सं० स्त्री० ) एक नगरका नाम ।

( राजतरङ्गिणी ४।१८० )

ललितपुर—१ युक्तप्रदेशके भाँसी जिलेका एक उपविभाग ।

यह ललितपुर और महरोती तहसील ले कर बना है ।

२ भाँसी जिलेकी एक तहसील । यह अक्षा० २४°१६' से २५°१२' उ० तथा देशा० ७८°१०' से ७८°४०' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण १०५८ वर्गमील और जन-संख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है । इसमें ललितपुर और ताल-बहत नामक २ शहर और ३६८ ग्राम लगते हैं । इस तह-सीलके पश्चिम और उत्तर-पश्चिममें वेतया-राज्य है । यहाँकी जमीन काली है ।

३ एक तहसीलका एक शहर । यह अक्षा० २४°४२' उ० तथा देशा० ७८°२८' पू०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है ।

ललितपुरका कोई प्राचीन इतिहास नहीं है । पहले यहाँ असम्भ्य गौड़ जातिका वास था । आज भी विन्ध्य-शैलमालाके शिखर पर उस पहाड़ी जातिका प्रतिष्ठित देवमन्दिरादि उस अतीत स्मृतिका परिचय देता है । पर्व मान समयमें भी पर्वत परके कुछ ग्रामोंमें गौड़ जातिका वास देखा जाता है ।

परवर्तीकालमें यहाँ जब आर्य-उपनिवेश स्थापित हुआ, तब वे गौड़ लोग क्रमशः हिन्दुधर्म पर विश्वास कर इसके अनुयायी तथा थोड़े ही समयके अन्दर शिक्षा और सम्भ्यताके गुणसे उन्नत हो गये । उन लोगोंकी स्थापत्य-विद्याके परिचय-स्वरूप आज भी अट्टालिका और जल-नालियाँ यहाँ विद्यमान हैं । उनके अधःस्तनके बाँध महीवाके चन्देलवंशीय राजोंने यहाँ आधिपत्य फैलाया । बाँदा और हमीरपुरमें उनकी राजधानी थी ।

बाँदा और हमीरपुर क० देखो ।

१२वीं सदीके शेष भागमें इस चन्देल-राजधर्मका अधः-पतन हुआ । उस समय यह स्थान छोटे छोटे सामन्त राज्योंके शासनाधीन हो गया । उन सामन्तोंके विह्वल-के मुसलमान राजोंने प्रधानता स्वीकार नहीं की । उन लोगोंने सम्पूर्ण स्थापनमायसे राज्यशासन किया था ।



उन्हे ललितपुरसे बाणपुर शीर तालबद्धकी ओर लक्ष्मर । राजाकी पराजयसे अधीनस्थ सेनादलने डर कर शान्तमाय धारण किया । इस समय ग्वालियरका विद्रोह-दमन करनेके लिये अङ्गरेजी सेना चन्देरीसे चली जानेकी बाध्य हुई । इधर विद्रोही-दलने फिरसे चन्देरी-राज्यको हस्तगत कर लिया । इसके बाद उसी सालके अषाढमासमें अङ्गरेजी-सेनाने पुनः ललितपुर पर चढ़ाई कर दी । सुन्दरलागण भोम-विक्रमसे युद्ध करके भी आत्मरक्षा न कर सके । आखिर उन्होंने ललितपुर अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया । इस विद्रोहके समय सुन्दर ठाकुर-सरदारोंने आपसमें विद्वेषभाव दिखा कर अपना सर्वनाश कर डाला । सिपाही-विद्रोहके बाद यहां शान्ति स्थापित हुई । अशिक्षित सरदार अंगरेज-गवर्नेमण्टके कठोर शासनसे निवृत्त हो शान्तिमय जीवन वितानेकी बाध्य हुए । तभीसे यहां और कोई उपद्रव न हुआ ।

शहरके निकट ठाकुर-सरदारोंके निर्मित वासभवन और दुर्ग देखे जाते हैं । समी दुर्गका अधिकंश ध्वंसावस्थामें पड़ा है । १८५८ ई०में ललितपुर-विजयके बाद सेनापति सर ह्युरोजने उनमेंसे बहुतोंको तोड़ फोड़ डाला । विन्ध्यशैलश्रेणीके समुद्रत-शिखर पर बहुतसे प्राचीन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखा जाता है । ये सब प्राचीन गौड़-अधिवासियोंकी कीर्ति हैं । वर्तमान जैन अधिवासियोंके उद्योगसे यहां एक सुन्दर मन्दिर बनाया गया है । शहरमें १८७० ई०की म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है । यहांसे चमड़ा और घी दूसरे दूसरे देशों में भेजा जाता है । शहरमें चार स्कूल हैं ।

ललितपुराण (सं० क्री०) बौद्धोंका 'ललितविस्तर' नामक ग्रन्थ जिसमें युद्धका चरित्र लिखा है ।

ललितप्रहार (सं० पु०) अथ प्रहार ।

ललितललित (सं० क्री०) अत्यन्त सुन्दर ।

ललितलोचन (सं० त्रि०) १ सुन्दर वक्ष, उत्तम नेत्र ।

(स्त्री०) २ विधाघर बाणदत्तकी कन्या ।

ललितवनिता (सं० स्त्री०) सुन्दरी स्त्री ।

ललितविस्तर (सं० पु०) बौद्धोंका जीवनचरित-विषयक सुप्राचीन एक बौद्धग्रन्थ । गाथा देवी ।

ललितयूह (सं० पु०) १ बौद्धशास्त्रके अनुसार एक समाधि । २ देवयुद्धभेद । ३ बोधिसत्त्वभेद ।

ललिता (सं० स्त्री०) ललित टापी । १ कस्तूरी । २ दारो, येवाई । ३ नदीविशेष । कालिकापुराणमें लिखा है, कि पुराकालमें ब्रह्मनन्दन यशिष्ठ निमिराजके शापसे तथा राजर्षि निमि भी यशिष्ठके शापसे देहहीन हो गये । यशिष्ठने ब्रह्माके उपदेशसे कामरूपपीठमें सन्ध्याचल पर घोर तपस्या की । विष्णुने तपस्यासे संतुष्ट हो कर उन्हें पर दिया । उस वरके प्रमाथसे यशिष्ठने मन्मथकुण्ड बनाया । इसी कुण्डके पूर्व ललिता नामक मनोहारिणी और दक्षिण-सागत्यामिनी एक नदी है । महादेवजी उस नदीको लाये थे । वैशाखमासकी शुक्ला तृतीयाको इस नदीमें स्नान करनेसे शिवलोकको प्राप्ति होती है । ललिता नदीके पूर्वा किनारे भगवान् नामक एक पर्वत है । उस पर्वत पर भगवान् विष्णु लिङ्गरूपमें विराजित हैं । जो शुक्ला द्वादशको ललितामें स्नान कर इस पर्वत पर भगवान् विष्णुको पूजा करते हैं उन्हें इस लोकमें नाना सुख और परलोकमें विष्णुलोककी गति होती है ।

(काशिकापु० ८२ अ०)

वृद्धीलतमूलके २०वें अध्यायमें इस तीर्थका हाल लिखा है ।

४ पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदिके अनुसार राधिकाको प्रधान भाठ सखियोंमेंसे एक । गोलोक रास-मण्डलमें श्रीमती राधिकाके लोमकूपसे इन सब गायियोंकी उरपत्ति हुई था । (ब्रह्मवैवर्तपु०)

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि जो ललिता हैं वे ही दुर्गा तथा राधिका हैं । इनमें कोई भेद नहीं है ।

५ एक रागिणी जो सङ्गीतदामोदर और हनुमत्के मतसे मेघरागको और सोमेश्वरके मतसे वसन्तरागकी पत्नी है । इसका स्वरामम इस प्रकार है—स, ग, म, घ, नि, स । अथवा स, रि, ग, म, प, घ, नि, स (प्रथम) घ, नि, स, ग, म, घ (द्वितीय) । इसका ध्यान—

“अद्वैतवृत्तद्वयमात्रपकपटा मुनीरकान्तिपुत्रो मुदधिः ।

त्रिनयनवती यस्या प्रभाते विभ्रातरेषा कलितनामदिशा ॥”

(धर्म्मरत्नाकर)



१ एक वर्तमान । इसके अन्तर्गत मर्यादा तमाम, भगवत्, अथवा और समान होने हैं ।

सतिशासन ( सं० ह्री० ) एक प्रकारका मत ।

सतिशासकीयमत ( सं० ह्री० ) एक प्रकारका पौरुषमत ।

सतिशासित्व—काश्मीरके एक राजा । काश्मीरराज तारा-शंकरके दास्योक्त सिपायोंके पर धे काश्मीरके सिंहासन पर बैठे । जिस समय राजा ताराशंकरका स्वर्गवास हुआ, उस समय सतिशासित्व काश्मीरके राज्यमें काश्मीरके एक शासनक थे । सतिशासित्वकी स्वधर्मों को यह सिंहासन गढ़ी था, कि मुझे समझ काश्मीरके शासनका भार मिलेगा ।

काश्मीरके सिंहासन पर बैठने ही सतिशासित्वके समुचे जगत्की ओरने पत्रोंमें कर लिगा । दिग्वि-जयके लिये जब धे मुक्त माला करने थे, तब यह कर समुद्रत उनके अधीन ही जाता था ।

सतिशासित्वके कान्यकुब्जराज यज्ञोपवीत पर हमला किया था । भगवति सेना इसको कर यज्ञोपवीत रण-भूमिमें उतरे । विष्णु यज्ञोपवीतको भगवति सेना राजा सतिशासित्वके प्रतापमयमें मरान ही गई । अन्तमें यज्ञो-पवीत दुर्गा की तपस्य म देव रणक्षेत्रमें भाग गये । इन्हीं कर्त्तव्यनि राजा यज्ञोपवीतकी मर्यामें भवभूति आदि महाकार्य थे । कर्त्तव्य भविष्यकार करनेके बाद राजा सतिशासित्व पूर्वकी ओर दिग्विजयमें भागे बड़े । इन्हीं प्रकार इन्हीं दिग्विजय माला करने भवभी समुदा-विरूप कर दो । दिग्विजयमें प्राप्त हुआ

दुर्गाके यज्ञमें उद्गमन हुए थे । सतिशासित्व कर्त्तव्ये इन्द्रियराज्य में । राजकार्यको भोर उनका कुछ भी ध्यान न था । इसके राज्यकायमें दुराधारकी वृद्धि हुई थी और मर्यादोंकी प्रथाभंग हो गये थी । इसके कारणसे पिता जगत्की ओरने पापकर्मोंके द्वारा जो धन संवध किया था, इस समय पुत्र सतिशासित्व उसका उपनिष कर रहे लगे । धूम हुआ सतिशासित्वने राजाको पितृव्य विषयमें विदुष कर दिया । सोम शपथ पतिव्रतीका आहूत करना धे एक दम भुज गये । भद्र भी और ममताओं ही का आहूत कर पारमें होना था । सतिशासित्व अपने पुर्वज होने लगे कि एक क्षण को स्वर्गको बिना देने उड़ने धीन नहीं पड़ता था । जो राजा सत्यदा दिकितयमें पुरुष रह कर अपने राज्य बढ़ानेमें लगे रहने थे, सतिशासित्व उन्हीं मूर्ख कहता था । इन दुराधारोंका फल यह निकला कि सतिशासित्वके मरणो आदि सचोंमें मरना मरना यह छोड़ दिया । इस राजाने प्राणियोंको दो हुरे मूलि ठान ली थी । इस दुरा-धारों राजाका शासन काश्मीरमें १२ वर्ष तक रहा ।

सतिशासित्व—एक प्राचीन मत । यहाँ सतिशासित्वको विरा-जित है । ( इन्द्रोप० २२ ) अन्वित्वके भी ।

सतिशासन ( सं० ह्री० ) एक प्रकारका मत ।

सतिशासित्व ( सं० ह्री० ) आहूतका यज्ञ । जिस दिग्वि-जयमें पुत्रकी वामनामें या पुत्रके दिग्विजय सतिशासित्व ( पार्ष्णी )का यज्ञ करनी हैं और मृत यज्ञों हैं यज्ञोंक नाम सतिशासित्व है । पूजा द्वां और यज्ञोंको उदगो पर विदुष आदि यज्ञ कर होनी हैं ।

ललिप ( सं० पु० ) जातिविशेष ।

लली ( हि० स्त्री० ) १ लड़कीके लिये प्यारका शब्द ।

२ दुलारी लड़की, लाइली लड़की । ३ नायिकाके लिये प्यारका शब्द, प्रेमिका ।

ललीतिका ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन तीर्थ । यह चम्पा जनपदमें अवस्थित है । ( भारत३५४।१२६ )

लक्ष्यान ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन जनपद ।

( राजतर० ६।१८३ )

लल्लु—भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी । इसका सिद्धान्त आर्य ज्योतिषमें बड़े आदरसे दिखा जाता है ।

लल्लु—विधानमालाके प्रणेता । दुर्धिराज लल्लोपाय्य नामक और एक पद्धतिकार देखे जाते हैं । इनका रचा मृतपत्नीकाधान, स्वर्गद्वारेद्विसत्रप्रयोग और हीतसामान्य ग्रन्थ देखनेसे बोध होता है, कि दोनों एक व्यक्ति थे ।

लल्लु—ज्योतिषरत्नकोष, गणितार्थशास्त्र और गोलाध्याय तथा शिष्यधोवृद्धि-महातन्त्र नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता त्रिविक्रम भट्टके पुत्र । भास्कराचार्यने सिद्धान्त-शिरोमणिके शेषोक्त प्रारंभमें उल्लेख किया है ।

लल्लु—छिन्दवंशीय एक राजा । ये मलहनके पुत्र और वैश्याके पीत थे । इनकी माता अणहिला सुलुकीश्वर-पंशकी थीं ।

लल्लुवाराहसुत ( सं० पु० ) १ लल्लु तथा वाराहके पुत्र ।

२ नक्षत्रसमुच्चयके प्रणेता ।

लल्लुशिक्षित—मृच्छकटिकटीकाके रचयिता । ये लक्ष्मणके पुत्र और शङ्कर दोक्षितके पीत थे । इन्होंने १८२१ ई०में उक्त ग्रन्थ संकलन किया ।

लल्लुशशाही—काबुलके शाहीवंशीय एक हिन्दू राजा । इनका दूसरा नाम था कमलुक । उदुमाण्डपुरमें इनको राजधानी थी । राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि महाराज प्रमाकरदेवके मन्त्री गोपालवर्माने इनके पुत्र तोरमाणको सिंहासनच्युत किया था । ये सुरासान-पति आमरु इवन-सईके समसामयिक थे ।

लल्लुजी लाल—एक हिन्दू ग्रन्थकार ।

लल्लो ( हि० स्त्री० ) जोम, जवान ।

लल्लो चण्णो ( हि० स्त्री० ) चिकनी सुपड़ी बात जो फेवल,किसीको प्रसन्न करनेके लिये कही जाय, ठकुर-सुहाती ।

लव ( सं० स्त्री० ) लृ अप् । १ जातोफल । २ लवङ्ग । ३ लामञ्जक, उरराङ्गुल नामका तृण । ४ ईपत्, बहुत छोड़ी माता । ( पु० ) लवणमिति लृ-अप् । ५ लेश । ६ विनाश । ७ छेदन, कटाई । ८ कालका एक मान, दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेषका अन्य समय । कुछ लोग एक निमेषके साठवें भागको लव मानते हैं । ९ पश्चिमेद, लवा नामकी चिड़िया । १० ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियोंके शरीरसे कतर कर निकाले जाते हैं । ११ गो-पुच्छलोम, सुरागायका पूँछके बाल जो चेंबर बनानेके लिये कतरे जाते हैं ।

लय—रामचन्द्रके पुत्र । रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि रामचन्द्रने सीतादेवीकी गर्भायस्यामें लोकापयादसे भय खा कर उन्हें छोड़ देनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा दी । लक्ष्मण उनकी आज्ञाका पालन करने हुए सीताको ले कर वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आये । यहाँ सीताके यमज दो सन्तान उत्पन्न हुए । इन दो पुत्रोंका नाम लय और कुन पड़ा । वाल्मीकिने इन्हें रामायणका गान सत्त्वा दिया था । जब इन्होंने रामचन्द्रकी सभामें जा कर यह गाना सुनाया, तब रामने इन्हें पहचाना ।

सीता और राम दग्ध देखी ।

लयक ( सं० पु० ) १ छेदक, वह जो छेद करता हो । २ द्रव्यमेद ।

लयङ्ग ( सं० स्त्री० ) लुनाति श्लेष्यादिकमिति लु (वर्त्तवा-दिभ्यश्च । उण् १।११६) इति अङ्गच् । स्वनामस्थान घणिक्-द्रव्यमेद, लौंग । मित्र मिन्न देशमें यह मिन्न मिन्न नामसे प्रसिद्ध है । यथा—महाराष्ट्र और कलिङ्ग—लयङ्ग-कलिका, लयिङ्ग; तामिल—विरमघेर, किरागु; इलङ्ग—अपु, कदवाप्य इत्यु; तैलङ्ग—लयङ्गुत्तु; द्राविड—लयङ्ग मलयालम्—छाङ्ग; शिङ्गापुर—वरल, पारस्य—मैलक, बङ्गाल—लङ्ग, लयङ्ग । संस्कृत पर्याय—देयकुसुम, श्री-प्रसून, लवङ्गक, लयङ्गकलिका, दिव्य, शोषर, लव, धोपुष्प, दचिर, पारिसम्पय, भृङ्गार, जोवाणकुसुम, चन्द्रनूपुर ।

इसके पक्ष मलवार, अफ्रिकाके समुद्र तट पर, अंजो-वार, मलाया, जावा आदिमें होते हैं । लयङ्गकी खेतीके लिये काली मिट्टी और विशेषतः यह मिट्टी जो उजाला-मुनीकी रात हो या जिसमें बान्द्र मिला हो, अच्छी

६ एक वर्षपूर्वत । इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं ।

ललितातन्त्र ( सं० ह्री० ) एक प्रकारका तन्त्र ।

ललितावृत्तियामत ( सं० ह्री० ) एक प्रकारका योपिदुग्रत ।

ललितादित्य—काश्मीरके एक राजा । कश्मीरराज तारा-पोड़के परलोक सिंघारने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर बैठे । जिस समय राजा तारापोड़का स्वर्गवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीरके अन्तर्गत काश्मीरके एक शासक थे । ललितादित्यको स्वप्नमें भी यह विश्वास नहीं था, कि मुझे समस्त काश्मीरके शासनका भार मिलेगा ।

काश्मीरके सिंहासन पर बैठते ही ललितादित्यने समूचे जम्बूद्वीपकी अपने कञ्जेमें कर लिया । दिग्विजयके लिये जब ये युद्ध जाता करने थे, तब डर कर शत्रुदल उनके आघोन हो जाता था ।

ललितादित्यने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर हमला किया था । अगणित सेना इकट्ठी कर यशोवर्मा रणभूमिमें उतारे । किन्तु यशोवर्माको अगणित सेना राजा ललितादित्यके प्रतापानलमें भस्म हो गई । अन्तमें यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देख रणक्षेत्रसे भाग गये । इन्हीं कर्नोजपति राजा यशोवर्माकी समाप्ति भयभूति आदि महाकायि थे । कर्नोज अधिकार करनेके बाद राजा ललितादित्य पूर्वकी ओर दिग्विजयमें आगे बढ़े । इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजय-यात्रा करके अपनी प्रभुना विस्तृत कर दी । दिग्विजयमें इन्हें जो धन प्राप्त हुआ था, उससे इन्होंने कई मन्दिर अग्रहार आदि बनवाये थे । इन्होंने परिहासपुर नामक एक नगर बसाया था और उसमें इन्द्रध्वज नामका एक कोसितसम्म प्रतिष्ठित किया था । यह स्तम्भ परधरका था और ५४ कुट ऊँचा था । इन्होंने ३६ वर्ष ७ महाने ११ दिन राज्य किया था ।

ललितादित्य २५—काश्मीरके एक राजा ।

ललितादित्यपुर (सं० ह्री०) ललितादित्य द्वारा प्रतिष्ठित एक नगर ।

ललितापञ्चमी (सं० स्त्री०) आश्विन महीनेकी शुक्ल पञ्चमी । इसमें ललितादेवी (पार्वती)की पूजा होती है ।

ललितापोड़—काश्मीरके एक राजा । ये जयापोड़की रानी

दुर्गाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । ललितापोड़ बड़े ही इन्द्रियपरायण थे । राजकार्यकी ओर उनका कुछ भी ध्यान न था । इनके राज्यकालमें दुराचारकी वृत्ति हुई थी और वेश्याओंकी प्रधानता हो गई थी । इनके नारकी पिता जयापोड़ने पापकर्मोंके द्वारा जो धन संचय किया था, इस समय पुत्र ललितापोड़ उस हा उचित व्यय करने लगे । धूर्त दुराचारियोंने राजाकी वेश्या-विद्यामें निपुण कर दिया । वीर अथवा पण्डितोंका आदर करना ये एक-दम भूल गये । भट्टुओं और मंसवरों ही का आदर दरबारमें होता था । ललितापोड़ इतने दुष्ट हो गये कि एक क्षण भी स्त्रियोंकी बिना देखे उन्हें चैन नहीं पड़ता था । जो राजा सर्वदा विविजयमें प्रवृत्त रह कर अपने राज्य बढ़ानेमें लगे रहते थे, ललितापोड़ उन्हें मूर्ख कहता था । इन दुराचारोंका फल यह निकला कि ललितापोड़के मन्त्रो आदि सबोंने अपना अपना पद छोड़ दिया । इस राजाने ब्राह्मणोंको दूरी हुई वृत्ति छीन ली थी । इस दुराचारी राजाका शासन काश्मीरमें १२ वर्ष तक रहा ।

ललितापुर—एक प्राचीन नगर । यहाँ ललितादेवी विराजित हैं । ( इहनीश० २२ ) ललितपुर देवी ।

ललितामत (सं० ह्री०) एक प्रकारका मत ।

ललितापट्टी (सं० स्त्री०) भाद्रपण्य पट्टी । जिस तिथिकी स्त्रियां पुत्रकी कामनासे या पुत्रके हिताथ ललिता देवी (पार्वती)का पूजन करती हैं और व्रत रतती हैं उसीका नाम ललितापट्टी है । पूजा कुश और पलाशकी टहनो पर सिंदूर आदि चढ़ा कर होती है ।

ललितासप्तमी (सं० स्त्री०), ललितापण्य सप्तमी । भाद्रमासका शुक्लसप्तमी प्रत्येक विशेष । उक्त सप्तमी-तिथिमें मतका अनुष्ठान किया जाता है, इसलिये इस व्रतका नाम ललितासप्तमीव्रत है । इसे कृष्णशीवत भी कहते हैं ।

ललितोपमा (सं० स्त्री०) एक अर्थालङ्कार । इसमें उपमेय और उपमानकी समता जतानेके लिये सम, समान, तुल्य, लौं, इय आदिके वाचक पद न रख कर, ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे बराबरी, मुकाबला, मित्रता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं ।

ललित्य—पुराणानुसार एक प्राचीन जनपद ।

ललिप ( सं० पु० ) जातिविशेष ।  
 लली ( हिं० स्त्री० ) १ लड़कीके लिये प्यारका शब्द ।  
 २ दुलारी लड़की, लाडली लड़की । ३ नायिकाके लिये प्यारका शब्द, प्रेमिका ।  
 ललीतिका ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन तीर्थ । यह चम्पा जनपदमें अवस्थित है । ( भारतशास्त्र १२६ )  
 लल्लवान ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन जनपद ।

(राजतर० ६।१८३)

लल्लु—भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी । इसका सिद्धान्त आर्य ज्योतिषमें बड़े आदरसे दिखा जाता है ।  
 लल्लु—विधानमालाके प्रणेता । दुर्धिराज लल्लोपाध्य नामक और एक पद्यतिकार देखे जाते हैं । इनका रचा मृतपत्नीकाधान, स्वर्गद्वारेद्विसन्नप्रयोग और हीतसामान्य ग्रन्थ देखनेसे बोध होता है, कि दोनों एक व्यक्ति थे ।  
 लल्लु—ज्योतिषरत्नकोष, गणितार्थ्याय और गोलाध्याय तथा शिष्यधीशुद्धि-महात्मल नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता त्रिविक्रम भट्टके पुत्र । भास्कराचार्यने सिद्धान्त-शिरोमणिके शैलीक ग्रन्थमें उल्लेख किया है ।  
 लल्लुन्द—छिन्द्वर्णशीय एक राजा । ये मलहन्के पुत्र और चैरयर्माके पीत थे । इनकी माता अणहिला सुलुकीश्वर-पेशकी थीं ।

लल्लुवाराहसुत ( सं० पु० ) १ लल्लु तथा वाराहके पुत्र ।  
 २ नक्षत्रसमुच्चयके प्रणेता ।

लल्लादीक्षित—मृच्छकटिकटीकाके रचयिता । ये लक्ष्मणके पुत्र और मङ्कुर दीक्षितके पीत थे । इन्होंने १८२१ ई०में उक्त ग्रन्थ संकलन किया ।

लल्लिवशाही—काबुलके शाहो-गंशीय एक हिन्दू राजा । इनका दूसरा नाम था कमलुक । उदुभाण्डपुरमें इनकी राजधानी थी । राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि महाराज प्रमाकरदेवके मन्त्रो गोपालवर्माने इनके पुत्र तोरमाणकी सिंहासनच्युत किया था । ये खुरासान-पति आमरु इयन-सेईके समसामयिक थे ।

लल्लुजी लाह—एक हिन्दू ग्रन्थकार ।  
 लल्लो ( हिं० स्त्री० ) जोम, जवान ।  
 लल्लो चरणो ( हिं० स्त्री० ) चिकनी सुपड़ी बात जो केवल कित्तोकी प्रसन्न करनेके लिये कही जाय, ठकुर-सुहाती ।

लय ( सं० स्त्री० ) लृ अप् । १ जातीयल । २ लयङ्ग ।  
 ३ लामञ्जक, उरराङ्ग नामका वृण । ४ ईपत्, बहुत छोड़ी माता । ( पु० ) लयणमिति लृ-अप् । ५ लेग ।  
 ६ विनाश । ७ छेदन, कटाई । ८ कालका एक मान, दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेषका अव्य समय । कुछ लोग एक निमेषके साठवें भागको लय मानते हैं । ९ पक्षिभेद, लवा नामकी चिड़िया । १० ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियोंके शरीरसे कतर कर निकाले जाते हैं । ११ गो-पुच्छलोम, सुरागायका पूँछके बाल जो चैवर बनानेके लिये कतर जाते हैं ।

लय—रामचन्द्रके पुत्र । रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि रामचन्द्रने सीतादेवीकी गर्भायस्थामें लीलापवाद्से भय खा कर उन्हें छोड़ देनेके लिये लक्ष्मणकी आज्ञा की । लक्ष्मण उनकी आज्ञाका पालन करने हुए सीताको ले कर वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आये । यहाँ सीताके यमज दो सन्तान उत्पन्न हुए । इन दो पुत्रोंका नाम लय और कुश पड़ा । वाल्मीकिने इन्हें रामायणका गान सिला दिया था । जब इन्होंने रामचन्द्रकी सभामें जा कर यह गाना सुनाया, तब रामने इन्हें पहचाना ।

सीता और राम इन्द्र देसो ।

लयक ( सं० पु० ) १ छेदक, यह जो छेद करता हो ।  
 २ द्रव्यभेद ।

लयङ्ग ( सं० स्त्री० ) लुनाति श्लेष्मादिकमिति लु (वरत्वा-दिभ्यश्च । उण् १।११६) इति अङ्गच् । स्वनामस्तान घणिक्-द्रव्यभेद, लौग । मित्र मिन्न देशमें यह मिन्न मिन्न नामसे प्रसिद्ध है । यथा—महाराष्ट्र और कलिङ्ग—लयङ्ग-कलिका, लयङ्ग; तामिल—पिरमघर, किराम्पु; इलङ्ग—अप्पु, करवाप्प इत्यन्तु; तैलङ्ग—लयङ्गस्तु; प्रायिङ्ग—लयङ्ग मलयालम्—छङ्ग; शिङ्गापुर—वरल, पारस्य—मैथक, बङ्गाल—लङ्ग, लयङ्ग । संस्कृत पर्याय—देवकुसुम, श्री-प्रसून, लयङ्गक, लयङ्गकलिका, दिव्य, शेषर, लय, धोपुत्र, रचिर, पारिसम्भव, भृङ्गार, जोवाण्डसुम, चन्दनपुत्र ।

इसके पक्ष मलवार, मङ्गिराके समुद्र तट पर, अंजो-घार, मलाया, जावा आदिमें होते हैं । लयङ्ग ही मैत्रीके लिये काली मिट्टी और विशोरनः यह मिट्टी जो ज्वालामुखीकी राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी

६ एक वर्षयुक्त । इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं ।

ललितानम्न ( सं० श्लो० ) एक प्रकारका तन्त्र ।

ललितान्वृत्तियावत ( सं० श्लो० ) एक प्रकारका योपिट्टवत ।

ललितादित्य—काश्मीरके एक राजा । काश्मीरराज तारा-पोड़के परलोक सिंघारने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर बैठे । जिस समय राजा तारापोड़का स्वर्गवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीरके अन्तर्गत काश्मीरके एक नासक थे । ललितादित्यको स्वप्नमें भी यह विश्वास नहीं था, कि मुझे समस्त काश्मीरके शासनका भार मिलेगा ।

काश्मीरके सिंहासन पर बैठते ही ललितादित्यने समूचे जम्बूद्वीपको अपने कब्जेमें कर लिया । दिग्विजयके लिये जब ये युद्ध यात्रा करने थे, तब डर कर शत्रुदल उनके अधीन हो जाता था ।

ललितादित्यने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर हमला किया था । भगणित सेना इकट्ठी कर यशोवर्मा रणभूमिमें उतरे । किन्तु यशोवर्माको भगणित सेना राजा ललितादित्यके प्रतापानलमें भस्म हो गई । अन्तमें यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देख रणक्षेत्रसे भाग गये । इहाँ कर्नोजपति राजा यशोवर्माकी सभामें भवभूति भाद्रि महाकायि थे । कर्नोज अधिकार करनेके बाद राजा ललितादित्य पूर्वकी ओर दिग्विजयमें आगे बढ़े । इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजययात्रा करके अपनी प्रभुता विस्तृत कर दी । दिग्विजयमें इन्हें जो धन प्राप्त हुआ था, उससे इन्होंने कई मन्दिर अग्रहार आदि बनवाये थे । इन्होंने परिहासपुर नामक एक नगर बसाया था और उसमें इन्द्रध्वज नामका एक कोसित्सम्म प्रतिष्ठित किया था । यह स्तम्भ परधरका था और ५४ कुट ऊँचा था । इन्होंने ३६ वर्ष ७ महाने ११ दिन राज्य किया था ।

ललितादित्य २५—काश्मीरके एक राजा ।

ललितान्वृत्तपुर ( सं० श्लो० ) ललितादित्य द्वारा प्रतिष्ठित एक नगर ।

ललितान्वृत्तमी ( सं० श्लो० ) आग्निव महानेकी शुद्ध पश्चमी । इसमें ललितादेवी (पार्वती)की पूजा होती है ।

ललितपोड़—काश्मीरके एक राजा । ये तारापोड़की रानी

दुर्गाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । ललितपोड़ बड़े ही इन्द्रियपरायण थे । राजकार्यकी ओर उनका कुछ भी ध्यान न था । इनके राज्यकालमें दुराचारकी वृद्धि हुई थी और देशवाओंकी प्रधानता हो गई थी । इनके नारकी पिता जगपोड़ने पापकर्मोंके द्वारा जो धन संवप किया था, इस संवप पुत्र ललितपोड़ उसका उचित व्यय करने लगे । धूर्त दुराचारियोंने राजाको देशवा-विधामें निपुण कर दिया । योग अथवा पण्डितोंका आदर करना ये एकदम भूल गये । भद्रुओं और मंसखरों ही का आदर धरधारमें होता था । ललितपोड़ इतने दुर्घट हो गये कि एक क्षण भी स्त्रियोंको बिना देखे उन्हें चैन नहीं पड़ता था । जो राजा सूर्यवा दिग्विजयमें प्रवृत्त रह कर अपने राज्य बढ़ानेमें लगे रहते थे, ललितपोड़ उन्हें मूर्ख कहता था । इन दुराचारोंका फल यह निकला कि ललितपोड़के मन्त्री आदि सबोंने अपना अपना पद छोड़ दिया । इस राजाने ब्राह्मणोंको भी दुर्घट्टि छोन ली थी । इस दुराचारी राजाका शासन काश्मीरमें १२ वर्ष तक रहा ।

ललितपुर—एक प्राचीन नगर । यहाँ ललितादेवी विराजित हैं । ( इहलीक० २२ ) ललितपुर देखो ।

ललितान्त ( सं० श्लो० ) एक प्रकारका व्रत ।

ललितान्वृत्त ( सं० श्लो० ) गार्हपत्य पद्यी । जिस तिथिके स्त्रियां पुत्रकी कामनासे या पुत्रके हिताथ ललितान्वृत्त ( पार्वती ) का पूजन करती हैं और व्रत रहती हैं उसीका नाम ललितान्वृत्त है । पूजा कुश और पलाशकी रहनी पर सिंदूर आदि चढ़ा कर होती है ।

ललितान्वृत्तमी ( सं० श्लो० ) ललितान्वृत्तमी । मद्र-मासका शुक्लपक्षमी व्रतविशेष । उक्त व्रतमी-तिथिमें व्रतका अनुष्ठान किया जाता है, इसलिये इस व्रतका नाम ललितान्वृत्तमीव्रत है । इसे कृष्णदीवत भी कहते हैं ।

ललितान्वृत्तमी ( सं० श्लो० ) एक अर्धालङ्कार । इसमें उपमेय और उपमानकी समता जतानेके लिये 'सग, समान, तुल्य, लौ, इव आदिके पाचक पद न रख कर ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे बराबरी, मुकाबला, मिलता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं ।

ललितरथ—पुराणानुसार एक प्राचीन जनपद ।

लघिप ( सं० पु० ) जातिविधेय ।  
 लली ( हि० स्त्री० ) १ लड़कीके लिये प्यारका शब्द ।  
 २ दुलारी लड़की, लाइली लड़की । ३ नायिकाके लिये प्यारका शब्द, प्रेमिका ।  
 ललितिका ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन तीर्थ । यह चम्पा जनपदमें अवस्थित है । ( भारतवर्ष १२६ )  
 ललयान ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन जनपद ।

(राजतर० ६।१८३)

लल्लु—भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी । इसका सिद्धान्त आर्य ज्योतिषमें बड़े आदरसे दिखा जाता है ।

लल्लु—विधानमालाके प्रणेता । बुद्धिराज लल्लोपाख्य नामक और एक पद्यतिकार देखे जाते हैं । इनका रचा मृतपत्नीकाधान, स्वर्गद्वारेष्टिसत्रप्रयोग और हीलसामान्य ग्रन्थ देखनेसे बोध होता है, कि दोनों एक व्यक्ति थे ।

लल्लु—ज्योतिषरत्नकोष, गणितार्थ्याय और गोलार्थाय तथा शिष्यघोषुद्ध-महातन्त्र नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता त्रिविक्रम भट्टके पुत्र । भास्कराचार्यने सिद्धान्त-शिरोमणिके श्लोक ग्रन्थमें उल्लेख किया है ।

लल्लु—छिन्दवंशीय एक राजा । ये मलहनेके पुत्र और घैरयमाके पौत्र थे । इनकी माता अणहिला सुलुकीभर-घंशकी थीं ।

लल्लुवाराहसुत ( सं० पु० ) १ लल्लु तथा वाराहके पुत्र ।  
 २ नक्षत्रसमुच्चयके प्रणेता ।

लल्लुवाराहसुत—मृच्छकटिकटीकाके रचयिता । ये लक्ष्मणके पुत्र और शङ्कर दीक्षितके पौत्र थे । इन्होंने १८२१ ई०में उक्त ग्रन्थ संपन्न किया ।

लल्लुवाराहो—काबुलके शाही-वंशीय एक हिन्दू राजा । इनका दूसरा नाम था कमलुख । उदुभाण्डपुरमें इनको राजधानी थी । राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि महाराज प्रभाकरदेवके मन्त्री गोपालयम्माने इनके पुत्र तोरमाणको सिंहासनच्युत किया था । ये खुरास्तान-पति आमरु इयन-सैईके समसामयिक थे ।

लल्लुजी लाल—एक हिन्दू प्रभुकार ।

लल्लो ( हि० स्त्री० ) जोग, जवान ।

लल्लो चर्पों ( हि० स्त्री० ) चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किस्तीको प्रसन्न करनेके लिये कही जाय, उद्धर-सुदाती ।

ल्य ( सं० स्त्री० ) लू अप् । १ जातीफल । २ लयङ्ग । ३ लामञ्जक, उवराङ्गुश नामका वृण । ४ ईपत्त, बहुत थोड़ी माता । (पु०) लयणामिति लू-अप् । ५ लेख । ६ विनाश । ७ छेदन, बर्दाई । ८ कालका एक मान, दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेषका अल्प समय । कुछ लोग एक निमेषके साठवें भागको लय मानते हैं । ९ पश्चिमेद, लवा नामकी चिड़िया । १० जन, बाल या पर जो पशु पक्षियोंके शरीरसे कतर कर निकाले जाते हैं । ११ गो-पुच्छलोम, सुरागायकी पूँछके बाल जो चैवर बनानेके लिये कतरे जाते हैं ।

ल्य—रामचन्द्रके पुत्र । रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि रामचन्द्रने सीतादेवीकी गर्भावस्थामें लोकापवादसे भय खा कर उन्हें छोड़ देनेके लिये लक्ष्मणकी आज्ञा दी । लक्ष्मण उनही आज्ञाका पालन करते हुए सीताको ले कर वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आये । वहाँ सीताके यमज दो सन्तान उत्पन्न हुए । इन दो पुत्रोंका नाम ल्य और कुज पड़ा । वाल्मीकिने इन्हें रामायणका गान सिला दिया था । जब इन्होंने रामचन्द्रकी समाधिमें जा कर यह गाना सुनाया, तब रामने इन्हें पहचाना ।

सीता और राम इन्द्र देखो ।

ल्यक ( सं० पु० ) १ छेदक, यह जो छेद करता हो ।  
 २ द्रव्यभेद ।

ल्यङ्ग ( सं० स्त्री० ) लुनाति श्लेषादिकमिति लु (तस्या-दिभ्यम् । उण् १।१।६) इति भङ्गच् । सनामस्थान घणिक्-द्रव्यभेद, लौग । मित्र भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है । यथा—महाराष्ट्र और कलिङ्ग—ल्यङ्ग-कलिका, लविङ्ग; तामिल—विरमघेर, किराम्बु; इलघङ्ग—अप्यु, कयवाप इमग्गु; तैलङ्ग—लयङ्गुलु; द्राविड—लयङ्ग मलवोलम्—छङ्गि; शिङ्गापुर—वरल; पारस्य—मेवक, बङ्गाल—लङ्ग, लयङ्ग । संस्कृत पर्याय—देवकुसुम, श्री-प्रसूत, लयङ्गक, लयङ्गकलिका, दिव्य, शैलर, लय, धीपुत्र, रचिर, चारिसम्मय, भृङ्गार, जोषाण्डसुम, सङ्गनपुत्र ।

इसके पक्ष मलयार, अफ्रिकाके समुद्र तट पर, जंजो-यार, मलाया, जाया आदिमें होते हैं । लयङ्गकी बेबीके लिये काली मिट्टी और विदेशनः यह मिट्टी जो ज्वालामुखीकी राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी

मानो जाती है। पहले इसको पनीरीमें एक एक फुटके फासले पर बो देते हैं। इसका विशेषतः ताजा बोज ही बोया जाता है। चार पांच सप्ताहमें बोज उग आते हैं। पौधे जब चार फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब उनको पनीरीसे उखाड़ कर बीस फुटकी दूरी पर पानमें लगाते हैं। जहां यह लगाया जाय, वहांकी भूमि पोली और दोमट होनी चाहिये। मटियार, बालू या बलदलमें उसकी खेती नहीं होती। यदि काली मिट्टीमें बालू मिला हो और उसके नीचे पोली मिट्टी तथा कद्दू पड़ जाय, तो लवङ्गका पेड़ बहुत शीघ्र बढ़ता है। बहुत घनी छाया पौधेको हानो पहुँचाती है। पनीरी पैदानेके समय प्रायः वर्षाका आरम्भ है। पैदाने हुये पौधेको दो तीन वर्ष तक घूपसे बचानेके लिये प्रायः छायाकी जरूरत पड़ती है। आंधीसे बचानेके लिये इसके बागकी घनी भाड़ीसे रूंधाई करनेकी आवश्यकता होती है। कभी कभी इसमें आवश्यकतानुसार पानी भी दिया जाता है। तीसरे वर्ष इसके ऊपरसे छाजन दटा ली जाती है। छठे वर्षसे फूल आने लगता है। बारहवें वर्ष पौधा खूब खिलता है और बीस पचोस वर्ष तक फूलता रहता है। इसके बाद फूलकम आने लगते हैं। कलियां पहले हरी रहती हैं; फिर पोली और भन्तकी गुलाबी रंगकी हो जाती हैं। यही उनके नोड़नेका समय है, ये कलियां या तो बंधी हुई चुन ली जाती हैं अथवा लकड़ियोंसे पीट कर नीचे गिरा दी जाती हैं और फिर उनको इकट्ठा करके सुखा लिया जाता है। यही लवङ्ग है जो बाजारोंमें विक्रता है। कुछ कलियां जो पेड़ोंमें रह जाती हैं, बढ़ कर फूल जाती हैं। फूल जब ऋद्ध जाने हैं, तब नीचेका भाग फूल कर छोटी सी घुंछीके आकारका हो जाता है जिसमें एक या दो दाने होते हैं। यही घुंछी बानेके काममें आती है। लवङ्गकी कलम भी उसकी डालीकी मिट्टीमें दबानेसे तैयार की जाती है। उद्दे को महोनेमें उसमें जड़े, निकल आती हैं। इस प्रकारकी कलम जल्दी फूलने लगती है।

लवङ्गके भयकेसे एक प्रकारका सुगन्धित तेल निकलता है। यह तेल वर्षाहिन तथा कभी कभी हल्दी रंगसा भूंगा जाता है। सुगन्धित द्रव्य (Perfumery) तथा चर्बी, साबन और शराबकी गंध बढ़ानेमें इसका व्यव-

हार होता है। जर्मनराज्यमें कार्बलिक पसिइके साथ यह मिलाया जाता है। ४ औंस लवङ्गका तेल एक गेलन स्फिरिडमें मिलानेसे लवङ्गसार (essence of gloves) बनता है।

बेनकुलेन, पिना, आम्बयना और जंजीवारका लवङ्ग सबसे उम्दा होता है। औपचममें जो सब लवङ्ग व्यवहृत होते हैं उनकी गंध बड़ी कड़ी होती है। नाखूनसे दिवाने पर उनमेंसे तेल निकल आता है। भारतवर्षके बाजारोंमें जो सब लवङ्ग पाये जाते हैं वे पुराने पेड़के हैं। इस कारण किसी विशेष कार्यमें उनका व्यवहार नहीं होता। आरुति, वर्ण और आम्प्युमतिक तेलकी परीक्षा करनेसे ही लवङ्गका प्रभेद सहजमें जाना जा सकता है।

लवङ्ग उत्तेजक, घायुनाशक और उत्कृष्ट गंधयुक्त होता है। दीर्घकालस्वाधो उदरामयमें, पाकस्फुटीकी वेदनामें तथा गर्भावस्था में जो लगातार घमन होता रहता है, उसमें यह विशेष उपकारक है। डा० पेन्सलिन शारीरिक अवसन्नता और अजीर्ण रोगमें दिनको दो या तीन बार लवणका काढ़ा सेवन करनेकी व्यवस्था की है। उनके मतसे साध पाउंट गरम जलमें १ ड्राम लवङ्ग-चूर्णकी सिद्ध कर १ या २ औंस प्रतिवार सेवन करना चाहिये। स्नायविक दुर्बलता और मान्दान्द्यमें चिरायता और लवणका कांघ विशेष उपकारप्रद है। इससे प्यास, घमन, उदरधमान और पेटकी वेदना निवृत्त होती है। गेठियाघात, शिरःपीड़ा और दन्तशूलमें लवङ्गतेल लगानेसे बहुत लाभ पहुँचता है। दक्षीमो मतसे इसका गुण उत्तेजक और श्लेष्मानाशक, विपनाशक तथा मस्तिष्क स्तिग्धकारक माना गया है। यह चक्षुरोगमें हितकर, हृदयका यातना-निवारक, बलकर और पुष्टि-पदक है।

तापिके परतनमें अथवा पत्थर पर पद्मपुके साथ लवङ्ग घिस कर आंघके पलक पर लगानेसे पानीका गिरना और योजकृत्यगोप (Conjunctivitis) बंद हो जाता है। लवङ्गकी दौपेकी बत्तीमें जला कर खानेसे खुसखुसी खांसी दूर होती है। व्यञ्जनादिमें गरम मसालेके साथ और पानमें लवङ्ग सिद्ध कर खानेकी व्यवस्था बद्दालमें अधिक प्रचलित है।

अंगरेजों ने पंचतन्त्रमें लवङ्ग-तैल विशेष Oleum Garrysphylli नामके प्रसिद्ध है। रासायनिक प्रक्रिया-की विशेष परीक्षा द्वारा इसमें Engenol वा Engenic acid, Salicylic acid, Cary ophyllic acid, Garmu-fellie acid और सामान्य मात्रामें tannic acid पाया गया है।

प्रति वर्ष ११०६८४१ रु० लवङ्गकी जंजीवार, आदेन और भारतीय द्वीपसुत्रोंसे बङ्गाल, बर्मा और मालाजमे आमदान तथा यहांसे इङ्ग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड, हॉर्कों, एटसेलमेण्ड, एशियास्थ लुकक, आदेन, फ्रान्स और अन्याय देशोंमें ३६७२५६ रु०की रकमी होती है।

घैठकके मतसे इसका गुण—शीतल, तिक्त, कटु, नेत्रहितकर, दीपन, पाचन, रुचिकर, कफ, पित्त और अस्त्रदीपनाशक, लृणा, छर्दि, आध्मान तथा शूल आशु-चिनाशय, काश, श्वास, ह्रिक्ता और क्षयनाशक।

( भावप्र० राजनि० )

“विरहानलवन्तता तापिनी कपि कामिनी।

अवज्ञानि समुत्सृज्य ग्रहणे राहवे दरो ॥” ( उद्धृत )

लवङ्गक ( सं० ह्री० ) लवङ्ग स्वार्थे कन् । लवङ्ग, लौंग । लवङ्गकन्दपत्री ( सं० खी० ) लघु तालीशपत्र, छोटा तेजपत्ता ।

लवङ्गकलिका ( सं० खी० ) लवङ्ग, लौंग ।

लवङ्गलता ( सं० खी० ) लौंगका पेड़ या उसकी शाखा ।

२ राधिकानी एक सखीका नाम । ३ प्रायः समीसेके माकारकी एक रंगला मिठाई । इसमें ऊपरसे एक लौंग खोसा हुआ होता है और इसके अन्दर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे होते हैं ।

लवङ्गादि ( सं० पु० ) अजीर्णरोगका एक औषध । प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, सोंठ, मिर्च और सोहोग, बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह चूर्ण करे । पीछे अपना मांस और चित्तेके रसमें ७ बार भायना दे । अन्निके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रामें इस औषधका सेवन करनेसे अजीर्णरोग दूर होता है । भैषज्यरत्नावलीमें इसकी मात्रा एक रत्ती बताई है ।

लवङ्गादिचूर्ण ( सं० ह्री० ) ग्रहणरोगाधिकारोक्त चूर्णों-पचविशेष । यह चूर्ण खल्व और घृहृके भेदसे दो प्रकार-

का है । प्रस्तुत प्रणाली—खल्वलवङ्गादि चूर्ण—लवङ्ग, अतीस, मोथा, बेलसोंठ, अकवच, मोचरस, जीरा, घण-फल, लोघ, इन्द्रजी, अतिबला, धनिया, सफेद धूना, कर्कटशृङ्गी, पीपल, सोंठ, वराक्रान्ता, यवक्षार, सैन्धव-लवण और रसाञ्जन इन्हें बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह पीसे और एक साथ मिला दे । इस चूर्णकी मात्रा १० रत्तीसे २० रत्ती, अनुपान चावलका पानी, मधु या बकरीका दूध कहा है । इस चूर्णका सेवन करनेसे अग्निमाद्य, ग्रहणी और अतीसार आदि उदररोग नष्ट होते हैं । घृहृलवङ्गादि चूर्ण—लवङ्ग, अतीस, मोथा, पीपल, मरिच, सैन्धव, हवृषा, धनिया, कायफल, कुट, जपित्ठी, जायफल, मंगरेला, सचललवण, नागेश्वर, चितामूल, विटलघण, तितलीकी, बेलसोंठ, दारचोनी, इलायची, रसाञ्जन, घणफूल, मोचरस, आकनादि, तेजपत्र, तालीशपत्र, पीपल-मूल, धनयमानो, यमानो, वराक्रान्ता, इन्द्रजी, सोंठ, अनारके फलका छिलका, यवक्षार, नोगका छिलका, सफेद धूना, साचिक्षार, समुद्रफेन, सोहागेका लाथा, अतिबला, कूटजमूलाका छिलका, जामुनका छिलका, आमका छिलका, कटकी, अवरक, लोहा, गन्धक और पारा प्रत्येकका समान चूर्ण । इन्हें अच्छी तरह चूर्ण कर एक साथ मिलावे । अनुपान मधु और चावलका पानी है । इसके सेवनसे ग्रहणी, अतिसार और प्रदर आदि रोग नष्ट होते हैं ।

दूसरा तरीका—लवङ्ग, जीरा, रेणुक, सैन्धव, दार-चोनी, तेजपत्र, इलायची, धनयमानो, यमानो, मोथा, त्रिकटु, त्रिफला, सोयां, आकनादि, चिरायता, गोवर्क, जौली, जायफल, दाहहरिद्रा, जटामांसी, रकवर्द्धन, मूरा-मांसी, कचूर, सोंफ, मेथी, सोहागेका लाथा, मंगरेला, यवक्षार, साचिक्षार, अतिबला, बेलसोंठ, कुट, चितामूल, पीपलमूल विङ्ग, धनिया, पारा, अवरक, गन्धक और लोहा, समान भाग चूर्ण ले कर एक साथ मिलावे । मात्रा एक माथेसे ले कर क्रमशः अर्ध तोल तक घटानो चाहिये । यह चूर्ण अत्यन्त अग्निवृद्धिकारक और ग्रहणीरोगनाशक है । इसके सिवा अन्याय उदर-रोगमें भी यह विशेष उपकारी है । ( भैषज्यरत्ना० ग्रहणी-रोगाधि० )



३ ऑरोगाधिकारोक्त औषधमेद् । प्रस्तुत प्रणाली-  
लवण, सोहागेका लावा, मोषा, धषफूल, बेचसोई,  
घनिया, जायफल, सफेद धूना, सोषी, अनारके फलका  
छिलका, जोरा, सैन्धव, मोचरस, सुन्दिमूल, रसाञ्जन,  
अवरक, रांगा, बरकास्ता, रक्तचन्दन, सोई, अतसी, कर्पट-  
शुद्धी, वैर और अनिवला समभाग चूर्ण कर एक साथ  
मिलावे । अनुपान बररीका दूध बताया है । गर्भावस्थामें  
संप्रदप्रद्वणी, अतिसार, उदर और आमरकातिसार होनेसे  
इसका प्रयोग करना चाहिये । इस चूर्णको भंगरैवेके  
रसमें मियो कर तीन दिन तक भायना देना होती है ।

४ गुल्मरोगाधिकारोक्त औषधमेद् । प्रस्तुत प्रणाली—  
लवण, निसोषका मूल, दग्तीमूल, यमानो, सोई, वच,  
धनिया, चितामूल, लिफला, पीपल, कटकी, दाख, चाँ,  
गोपक, यवक्षार, इलायची, यनयमानो ( अजमोदा ) और  
इन्द्रजी इन्हें चूर्ण कर २ तोला भर गरम जलके साथ  
सेवन करे । इससे सभी प्रकारके गुल्म, दर्श, शोथ आदि  
नष्ट होते है ।

लघुद्राविषटी ( स'० खी० ) १ अनिमाग्धरोगाधिकारोक्त  
औषधमेद् । प्रस्तुतप्रणाली—लवण, सोई, मरिच और  
सोहागेका लावा बराबर बराबर चूर्ण ले कर तथा अपामार्ग  
और चितामूलके काढ़ेमें भायना दे कर एक रत्तीकी  
गोली बनावे । इसके सेवनसे मांस आदि कड़ी यस्तु  
पच जाती है । ( मैयज्यरत्ना० भनिमान्याधि० )

२ अज्ञानरोगाधिकारोक्त औषधविशेष । प्रस्तुत  
प्रणाली—लवण, जातोफल, धनिया, कुट, सफेद जोरा,  
बहेड़ा, इलायची, दारचीनी, सोहागा, कीड़ीकी मसम,  
मोषा, वच, अजयाधन, विट्त्वण, सैन्धवलवण, प्रत्येक  
एक भाग । पारा, गंधक, लोहा, अवरक, प्रत्येक आधा  
भाग, इन सब चूर्णोंको एकत्र कर पानके साथ गोली  
बनावे । इसका अनुपान गरम जल बताया गया है । इसके  
सेवनसे प्रद्वणी, आमशोथ, पेटकी वेदना, प्रवाहिका, उदर,  
कफजनितशूल, कुष्ठ, मन्ड, पित्त, प्रवणायु, मन्दाग्नि  
और कोष्ठगतपान आदि रोग जल्द दूर होमें है ।

( रसेन्द्रशा० भवीर्षीरोगाधि० )

लवण ( स'० खी० ) लुभाति प्राग्मिति लु-मन्दादित्वात्  
न्यु, प्रोदगादित्वात् नस्यं । शररसयुक्त द्रव्य, नमक ।

विभिन्न स्थानोय नाम । बर्षई—नमक, मोमक ।  
मराठी—मोडा, गुर्जर—मिट्ट, तामिल—उप्पू ; तेलगु—  
लवणम्, उप्पू ; कनाडी—उप्पू; मलयालम्—उप्पू, लव-  
णम् ; ब्रह्म—श ; शिङ्गापुर—लुणु ; बरब—मिल-  
लुल आजिन, पारस्य—नमक, नामके, खुर्दांमि, नुमके  
तायाम् ; यव—उया ; चोन येन् ; अङ्गरेजी—Sea-salt,  
common salt, table-salt; फेरासी—Sel Commune  
sel de Cuisine, sel Marin; जर्मन—( Chlorantrium  
Kochsalz ; डेनमार्क और स्वडिस—Salt, इटली—  
Chloruro-di-Sodio, Sal commune, स्पेन—Sal )

भारतमें प्रधानतः दो प्रकारके लवणका व्यवहार  
देया जाता है । पहला सादा लवण ( Sodium chlo-  
ride ) और दूसरा कृष्ण लवण वा विट् लवण । विट्  
लवणमें साधारण लवणका भाग रहने पर भी उसमें  
अन्यान्य द्रव्य मिला रहता है । इस कारण यह बहुते  
कुल भेदग्रणयुक्त है । स्थान विशेषमें उस गुणमें  
कमी वेशो देखी जाती है । साधारणतः विट्त्वणमें  
Sulphuret of iron पाया जाता है । क्लोराइड और  
कार्बनेट अथ सोडियमको गरम कर उसमें भायला  
और हरे मिलावेसे जो गुण पाया जाता है, विट्त्वणमें  
प्रधानतः वही गुण रहता है ।

हिन्दूगण स्मरणतातक कालसे ही लवणका व्यवहार  
जानते थे । अथर्वावेद् ७।७६।१, आश्वलायनश्रौतसूत्र  
२।१६।२४, छान्दोग्य उपनिषद् ४।१०।७, शतपथब्राह्मण  
१।४।७।१२, आश्वलायन श्रौतसूत्र १।१।१०, गोमिल  
२।३।१३ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लवणका बहुल-प्रचार देखा  
जाता है । महाभुनि सुभुतने स्वस्त्यं भायुर्वेदनाश्रमें  
लवणके निम्नोक्त भेद बतलाये हैं ।

सुभुतमें लिखा है, कि सैन्धव, सामुद्र, विट्, सीव-  
बर्ज, रोमक और उद्भेद आदि लवण पराक्रमसे उष्ण,  
पायुनाशक, कफ और पित्तकर तथा पूर्वक्रमसे स्निग्ध,  
स्वादु और मलमूलका सञ्चयकर है । सैन्धव, स्वच्छ,  
विट्, पाण्य, साम्बर, सामुद्र, पक्वित्त, यवक्षार, उयक्षार  
और सुयर्षिचा आदि लवणवागे हैं ।

इसका गुण—लवणरस, पाण्यक और संशोषक है । इस-  
से रसोंका विस्लेषण तथा शरीरका श्लेष्म और शैथिल्य

सांघित होता है। इन सब रसोंका विरोधी उष्णगुण-युक्त और मार्मविशोधक तथा शरीररक्षाकी कोमलता-साधक है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे शरीरमें खुजली होती, गोल गोल चकत्ते पड़ जाते, मुँह और नेत्रमें फोड़े निदलते, रक्तपित्त और वातरक्त दोष होता, पुरुषत्वकी हानि होती तथा बड़ी इकार आती है।

सैन्धवलवण—चक्षुको हितकर, मुलप्रिय, रुचिकर, लघु, अग्निवृद्धिकर, स्निग्ध, मधुररस, गृथ्य, शीतल, दोषनाशक तथा उक्त सभी प्रकारके लवणसे उत्कृष्ट और फलदायक होता है।

सामुद्रलवण—परिपाकमें मधुर, अल्प-उष्ण, अविदाही, भेदक, ईषत् स्निग्ध, शूलनाशक और अवपित्त-घर्दक होता है।

सौवर्धलवण—परिपाकमें लघु, उष्णवीर्य, विशद, कटु, गुल्म, शूल और विषन्धनाशक, मुलप्रिय, सुरभि और रुचिकर माना गया है।

रोमक ( पांशुलवण )—तीक्ष्ण, अतिशय उष्ण, स्त्रीसंसांशकिका वर्द्धन कर, पाकमें कटु, वायुनाशक, लघु, विस्वयन्त्री, सूत्रम, मलभेदक और मूलकर होता है। औजिद्रु लवण लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, हृदय और श्लेष्म-सञ्चयकर, वायुका अनुलोमकारी, तिक और कटु, माना जाता है। गुटिकालवण कफ, वायु और रुमिशान्ति-कर, लेखनकर, पित्तघर्दक, अग्निकर, पाचक और भेदक होता है। उपशार ( क्षारमृत्तिकासम्भूत लवण )—यह घालुकेय अर्थात् बालुकाजातके मूलदेशस्य भाकरसे उत्पन्न होता तथा कटु और छेदनकर माना जाता है।

इन सब लवणोंमेंसे सैन्धव, सौवर्धल, विट्, सामुद्र और साम्भर इन पाँचोंकी पञ्चलवण कहते हैं। एक लवण कहनेसे सैन्धव, द्विलवण कहनेसे सैन्धव और सचल, त्रिलवणसे सचल और विट्, चतुर्लवणसे सैन्धव, सचल विट् और सामुद्र तथा पञ्चलवण कहनेसे पाँच लवण जानना होगा। किन्तु चरकमें पञ्चलवणकी उगइ साम्भर लवणके बदलेमें औजिद्रु लवण माना गया है।

(मुमुक्षु एतस्था- ४६ म०)

संस्कृत ग्रन्थमें जिस प्रकार सैन्धव अर्थात् सिन्धु-

देशजात पार्थेय लवण ( Rock-Salt ), समुद्र अर्थात् सूर्यके उत्तापसे सुखाया हुआ समुद्रजलज लवण या फरकच, रोमक अर्थात् यमानंदो जलजात तथा शाकम्भरी या शाम्भर हृदजात लवण, पांशुज और उपासुत अर्थात् लवणाक मृत्तिकासे उत्पन्न लवण, विट्लवण, सी-यर्चल, वा सोड्रल अर्थात् काला नमक, उजिद्रु अर्थात् रैदा या कालर लवण तथा गुटिक आदि लवणोंका उल्लेख है, उसी प्रकार वर्त्तमान रसायन-विज्ञानमें साधारण लवणके भी ( Sodium chloride ) दो विभाग हैं। वे साधारणतः Roc.-Salt और Sea-salt नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतवर्षमें इसके निचा Marsh Salt और Earth Salt नामक भी दो श्रेणीभेद बताये गये हैं।

भारतवासी जनसाधारण साधुधर्मके साथ प्रधानतः जितने प्रकारके लवणोंका व्यवहार करते हैं। नीचे उसकी एक तालिका दी गई है—

१ पञ्जाबी सैन्धव ( लाहोरी और सैन्धवलवण )—यह सिन्धुनदीके दक्षिणमें पाया जाता है। 'कोहाटो' और निमक-सज नामक दोनों प्रकारके लवण सिन्धुनदीके पश्चिमोत्तर भागमें पाये जाते हैं। अलावा इसके हिमालय प्रदेशके मण्डिराज्यमें एक और प्रकारके नमकी क्षामदानी होती है।

२ दिल्लीका "सुलतानपुरी" लवण—यह दिल्लीकी लवणाक मिट्टीकी खान ( Pit-brine Salt )से निकाला जाता है।

३ शाम्भर लवण—राजपूतानाके शाम्भरदके जलसे प्रस्तुत होता है।

४ दिन्दलवण—राजपूतानाके दिन्दुयना विभागकी मिट्टीसे तैयार होता है।

५ कौशिया-लवण—राजपूतानाके पञ्चमद्रा नामक स्थानकी मिट्टीसे उत्पन्न होता है। मध्यभारतमें भी यह लवण प्रचलित है।

६ फलोड़ी लवण—राजपूतानाके फलोड़ी प्रदेशकी मिट्टीसे उत्पन्न।

७ बरागडा-लवण—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गुजरात विभागमें प्रस्तुत होता है।

३ स्त्रीरोगाधिकारोक्त औषधभेद । प्रस्तुत प्रणाली—  
लम्बू, मोहागेका लावा, मोवा, घबकूल, घेडसोड,  
धनिया, जायफल, सफेद धूना, सोया, बनारके फलका  
छिलका, जोरा, सैन्धव, मोचरस, सुन्दिमूल, रसाञ्जन,  
भबरक, रांगा, यराक्रान्ता, रत्नचन्दन, सोंड, अतसी, कर्पूर-  
शुद्धी, नीर और अनिवला समभाग चूर्ण कर एक साथ  
मिलाये । अनुपान बरूरीका दूध बताया है । गर्भावस्थामें  
संप्रदप्रदणी, अतिसार, उबर और आमरकातिसार होनेसे  
इसका प्रयोग करना चाहिये । इस चूर्णको भंगरैवेके  
रसमें मिगो कर तीन दिन तक भायना देने होती है ।

४ शुक्लरोगाधिकारोक्त औषधभेद । प्रस्तुत प्रणाली—  
लवङ्ग, निसोपका मूल, इतीमूल, यमानो, सोंड, घच,  
धनिया, चितामूल, खिकला, पोपल, फटकी, दाज, चाई,  
गोचरु, यवक्षार, इलायची, यनयमानो ( भजमोदा ) और  
इन्द्रजी इन्हें चूर्ण कर २ तोला भर गरम जलके साथ  
सेवन करे । इससे सभी प्रकारके शुक्ल, अर्श, शोथ आदि  
नष्ट होते हैं ।

लघुहार्दिवटी ( सं० खी० ) १ अग्निमाग्धरोगाधिकारोक्त  
औषधभेद । प्रस्तुतप्रणाली—लवङ्ग, सोंड, गरिच और  
सोहागेका लावा बराबर बराबर चूर्ण ले कर तथा अपामार्ग  
और चितामूलके काढ़में भायना दे कर एक रत्तीकी  
गोली बनाये । इसके सेवनसे मांस आदि कड़ी यस्तु  
पच जाती है । ( भैषज्यरत्ना० भग्निमान्यापि० )

२ अजीर्णरोगाधिकारोक्त औषधविशेष । प्रस्तुत  
प्रणाली—लवङ्ग, जातीफल, धनिया, कुट, सफेद जोरा,  
बहेड़ा, इलायची, दारचीनी, सोहागा, कीटोफी, गन्ध,  
मोवा, घच, अजपायन, विट् लवण, सैन्धवलवण, प्रत्येक  
एक भाग । पारा, गंधक, लोहा, भबरक, प्रत्येक आधा  
भाग, इन सब चूर्णोंकी एकत कर पानके साथ गोली  
बनाये । इसका अनुपान गरम जल बताया गया है । इसके  
सेवनसे प्रदणी, आमशोथ, घेटीकी वेदना, प्रवाहिका, उबर,  
कफजनितशूल, कुष्ठ, गन्ध, पित्त, प्रवलायानु, मन्दाग्नि  
और कौष्ठगनदात आदि रोग जन्म दूर होतें हैं ।

( संज्ञा० अजीर्णरोगाधि० )

लवण ( सं० खी० ) लुभाति ज्ञापयति लु-भृदादित्यात्  
ज्यु, पृषोदरादित्यात् पत्यं । क्षाररसयुक्त द्रव्य, नमक ।

विभिन्न स्थानोंप नाम । बम्बई—नमक, मोचक,  
मराठी—मोडा, गुर्जर—मिठु, तामिल—उप्पु; तेलगू—  
लवणम्, उप्पु; कनाड़ी—उप्पु; मलयालम्,—उप्पु, लव-  
णम्; ब्रह्म—श; गिङ्गापुर—लुणु; नरब—मिल-  
लुल भाजिन, पारस्य—नमक, नाफे, खुर्दानि, तुमके  
तायाम्; यथ—उया; चीन येन्; अङ्गरेजी—Sea-salt,  
common salt, table-salt; फरारसी—Sel Commun  
sel de Cuisine, sel Marin; जर्मन—( Chlorantrium  
Kochsalz; डेनमार्क और स्विडिस—Salt, इटली—  
Chloruro-di-Sodio, Sal commune; स्पेन—Sal ।

भारतमें प्रधानतः दो प्रकारके लवणका व्यवहार  
देखा जाता है । पहला सादा लवण ( Sodium chlo-  
ride ) और दूसरा कृष्ण लवण वा विट् लवण । विट्  
लवणमें साधारण लवणका भाग रहने पर भी उसमें  
अन्यान्य द्रव्य मिला रहता है । इस कारण यह बहुत  
कुष्ठ भेजजगुणयुक्त है । स्थान विशेषमें उस गुणमें  
कमी घेशो देखी जाती है । साधारणतः विट् लवणमें  
Sulphuret of iron पाया जाता है । ह्योत्तरार्ध और  
कार्बनेट अथ सोडियमको गरम कर उसमें भावला  
और हरे मिलानेसे जो गुण पाया जाता है, विट् लवणमें  
प्रधानतः वही गुण रहता है ।

हिन्दूगण स्मरणातीत कालसे दो लवणका व्यवहार  
जानते थे; अथर्ववेद ७।७।१, आश्वलायनश्रौतसूत्र  
२।१६।२७, छांद्ोग्य उपनिषद् ४।१।७, शतपथब्राह्मण  
१।४।४।४।२, आश्वलायन श्रौतसूत्र १।८।१०, गोमिल  
२।३।१३ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लवणका बहुल-प्रचार देखा  
जाता है । महाभुनि सुश्रुतने स्वस्त प्रायुधेदनात्ममें  
लवणके निम्नोक्त भेद बतलाये हैं ।

सुश्रुतमें लिखा है, कि सैन्धव, सामुद्र, विट्, सौव-  
र्चन, रोमक और उर्जद्रु आदि लवण पराक्रमसे उष्ण,  
पायुनाजक, कफ और पित्तकर तथा पूर्वोक्तसे स्निग्ध,  
स्वादु और मलमूलका सञ्चयकर है । सैन्धव, लवण,  
विट्, पापय, साम्भार, सामुद्र, पवित्रम, यवक्षार, उपहार  
और सुयधिक आदि लवणयुक्त हैं ।

इनका गुण—लवणरस, पाचक और संशोचक है । इस-  
से रक्तका विश्लेषण तथा जरीरका रुद्ध और शैथिल्य

साधित होता है। इन सब रसोंका चिरोधी उष्णगुण-युक्त और मार्मविशोधक तथा शरीररोगका कोमलता-साधक है। यह रस अधिक मात्रा में सेवन करनेसे शरीरमें खुजली होती, गोल गोल चकत्ते पड़ जाते, मुख और नेत्रमें फोड़े निदलते, रक्तपित्त और वातरक्त दोष होता, पुष्पत्वकी हानि होती तथा बड़ी इकार आती है।

सैन्धवलवण—चक्षु की हितकर, सुक्लप्रिय, रुचिकर, लघु, अग्निवृद्धिकर, स्निग्ध, मधुररस, मृन्ध, शीतल, दोषनाशक तथा उक्त सभी प्रकारके लवणसे उत्कृष्ट और फलदायक होता है।

सामुद्रलवण—परिपाकेमें मधुर, अल्प उष्ण, अविदाही, भेदक, ईषत् स्निग्ध, शूलनाशक और अल्पपित्त-घटक होता है।

सौवर्शलवण—परिपाकेमें लघु, उष्णवीर्य, विशद, कटु, गुल्म, शूल और विषघ्ननाशक, सुक्लप्रिय, सुरभि और रुचिकर माना गया है।

रोमक (पांशुलवण)—तीक्ष्ण, अतिशय उष्ण, स्त्रीसंसांशक्तिका वर्द्धन कर, पाकमें कटु, वायुनाशक, लघु, विस्फन्दी, सूक्ष्म, मलभेदक और मूलकर होता है। औद्भिद्ध लवण लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, हृदय और श्लेष्म-सञ्चयकर, वायुका अनुलोमकारी, तिक्त और कटु माना जाता है। गुटिकालवण कफ, वायु और कृमिशान्ति-कर, छेदनकर, पित्तवर्द्धक, अग्निकर, पाचक और भेदक होता है। उपहार (क्षारमृत्तिकासम्भूत लवण)—यह घालुकेय अर्थात् बालुकाजातके मूलदेशस्थ भाकरसे उत्पन्न होता तथा कटु और छेदनकर माना जाता है।

इन सब लवणोंमेंसे सैन्धव, सौवर्शल, विट्, सामुद्र और साम्मर इन पांचोंको पञ्चलवण कहते हैं। एक लवण कहनेसे सैन्धव, द्विलवण कहनेसे सैन्धव और सचल, त्रिलवणसे सचल और विट्, चतुर्लवणसे सैन्धव, सचल विट् और सामुद्र तथा पञ्चलवण कहनेसे पूर्वोक्त पांच लवण जानना होगा। किन्तु चरकमें पञ्चलवणकी जगह साम्मर लवणके बदलेमें औद्भिद्ध लवण माना गया है।

(गुधृत धृष्ट्या ७६ भ०)

संस्कृत ग्रन्थमें जिस प्रकार सैन्धव अर्थात् सिन्धु-

देशजात पाषाण्य लवण (Rock-Salt), समुद्र अर्थात् सूर्णके उत्सर्पसे सुग्राया हुआ समुद्रजलज लवण या फरकच, रोमक अर्थात् रमानदी जलजात तथा शाकम्भरी या शाम्मर हृदजात लवण, पांशुन और ऊपासुत अर्थात् लवणाक्त मृत्तिकासे उत्पन्न लवण, विट्लवण, सी-यन्चाल, या सोड्रल अर्थात् काला नमक, उद्भिद्ध अर्थात् रेहा या कालर लवण तथा गुटिक नादि लवणोंका उल्लेख है, उसी प्रकार वर्त्तमान रसायन-विज्ञानमें साधारण लवणके भी (Sodium chloride) दो विभाग हैं। वे साधारणतः Rock-Salt और Sea-salt नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतवर्षमें इसके लिये Marsh Salt और Earth Salt नामक और भी दो श्रेणोभेद बताये गये हैं।

भारतवासी जनसाधारण खाद्यद्रव्यके साथ प्रधानतः जितने प्रकारके लवणोंका व्यवहार करते हैं। नीचे उसकी एक तालिका दी गई है—

१ पञ्जाबी सैन्धव (लाहोरी और सैन्धवलवण)—यह सिन्धुनदीके दक्षिणमें पाया जाता है। 'कोहाटी' और निमक-सध्ज नामक दोनों प्रकारके लवण सिन्धुनदीके पश्चिमोत्तर भागमें पाये जाते हैं। अलावा इसके हिमालय प्रदेशके मण्डिडान्यसे एक भी प्रकारके नमककी आमदनी होती है।

२ दिल्लीका "सुलतानपुरी" लवण—यह दिल्लीकी लवणाक्त मिट्टीकी खान (pit-brine Salt)से निकाला जाता है।

३ शाम्मर लवण—राजपूतानाके शाम्मरहृदके जलसे प्रस्तुत होता है।

४ दिन्दलवण—राजपूतानाके दिन्दवना विभागकी मिट्टीसे तैयार होता है।

५ कौशिया-लवण—राजपूतानाके पञ्चमद्रा नामक स्थानकी मिट्टीसे उत्पन्न होता है। मध्यभारतमें भी यह लवण प्रचलित है।

६ फलोड़ी लवण—राजपूतानाके फलोड़ी प्रदेशकी मिट्टीसे उत्पन्न।

७ बरागड़ा-लवण—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गुजरात विभागमें प्रस्तुत होता है।

८ कोट्टणां लवण—बर्मा-उपकूलसे उत्पन्न ।

९ कर्कच और बनवार ( कर्कच ) लवण—मन्द्राज उपकूलमें प्रस्तुत होता है ।

१० पन्ना ( पांनु ) लवण बङ्गालके समुद्रोपकूलमें जो लवण साधारणतः प्रस्तुत होता है ।

११ पारा ( क्षार ) लवण—लवणाक मिट्टीसे जो लवण प्रस्तुत किया जाता है ।

१२ पाक्या या नमक जोर—सौरा (Saltjatre)से जो लवण बनता है ।

१३ नेकुरकुची अधान् लोमरपुल-लवण—इङ्ग्लैण्ड, जर्मनी और फ्रान्स राज्योंसे जो लवण भारतवर्षमें आता है । यह साधारणतः Liverpool Salt कहलाता है । वर्तमानकालमें इसी परिष्कृत लवणको भारत-यामो काममें लाते हैं । कहीं कहीं कर्कच और सैन्धव लवणका भी प्रचार है । कष्टर हिन्दू और हिन्दू-विधवाएँ सैन्धव लवणका ही व्यवहार करती हैं ।

१४ सुफो-लवण—सिंहलद्वीपमें पाया जाता है ।

१५ अयोध्यापुरी-लवण—लोहितसागरके किनारे प्रस्तुत होता है ।

१६ भादेन-लवण—भादेन नगरके समीप पाया जाता है । इस लवणको प्रतिवर्ष प्रायः ३३ हजार टन की आमदनी होती है ।

१७ मरकट और मरकटसैन्धा—पारस्य उपसागरके किनारे तैयार होता है ।

१८ लेनना लवण—तिम्बतदेगमें मिलता है ।

१९ मणिपुर आदि छोटे छोटे देशोंमें मिलनेवाला लवण ।

ये सब लवण भारतवर्षमें प्रचलित रहने पर भी लोमरपुल नहरसे जो 'Cheshire Salt' कलकत्ता, बट्टामान, इङ्गल और ब्रह्मके प्रसिद्ध बन्दरोंमें आता है उसका परिमाण सबसे ज्यादा है ।

भारतवर्षके भूतत्त्वकी भालीयना करनेसे मिट्टीकी तहमें लवणका खनना निर्णय किया जा सकता है । भूव्यवस्था भ्रान्तोई और मेडलीकोटने कोहट, काङ्गडा, बहादुरखेल, मरिच-लवणपर्यन्त और हिमालय सम्निहित विचालित पर्याप्तमागमें प्रयुक्त लवणका भस्त्रिय देखा

था । उन होमोंने चुस्तिन या न्युमुलिटिकस्तरमें-सिन्धि उरीय-युगस्तरमें, पेलियोसोडिक स्तरमें, त्रिपसम् स्तरमें तथा प्राचीन और आधुनिक ट्रासिपारि-युगस्तरमें सैन्धव लवणस्तर ( beds of rock-salt ) पाया था । मात्र भी कोहट आदि स्थानोंको लवणको खानसे सैन्धव लवण निकाला जाता है ।

युगान्तरीय मिट्टीकी तहमें प्राप्त लवणको छोड़ कर भारतवर्षके समुद्र और हृदके किनारे स्थानीय लोगोंके व्यवहार जो नमक प्रस्तुत होता है उसका संश्लिष्य हाल नीचे दिया गया है ।

मन्द्राज—इस प्रेसिडेंसीमें पहले समुद्रके किनारे जलको वाष्पाकारमें परिणत कर लवण तत्पार करते थे । स्थानविशेषमें पारो मिट्टी अधया मरमको जलमें डुबो कर उससे लवण प्रस्तुत करते थे । किन्तु अभी यह प्रथा बिलकुल उठ गई है । प्रथमोक्त प्रणालीसे जो लवण बनता है उसीका स्थानीय लोग व्यवहार करते हैं । इसके सिवा बर्मासे भी कई प्रकारके लवण दूसरे दूसरे देशोंमें भेजे जाते हैं ।

बङ्गाल—पहले मेदिनीपुर-और यशोहर जिलेमें लवण तैयार करनेका कारखाना था । कलकत्तेके निकटवर्ती सोरेकी कल्लोंमें सोरेसे लवण निकाला जाता था ।

विहार और उड़ीसा—उड़ीसामें आज भी धूपमें कारो जलकी सुखा कर नमक तैयार करते हैं । पहले इस्त्रिम उपायसे भी पांजा लवण बनाया जाता था । विहार, भागलपुर और मुङ्गेरके विभागमें लवण तत्पार होता था ।

बेार—यहां लोणारहृदके जलसे तथा भकीलाके मन्तगत पूर्ण विभागके लवणजलपूर्ण रूपमें लवण प्रस्तुत होता था । लेकिन अभी नहीं होता ।

राजपूताना—शाम्भरहृद, दिदयानाहृद और कायोरे-रेवासो हृदके जलसे नमक काको तैयार किया जाता था ।

बर्मा—समुद्रके किनारे जलकी धूपमें सुखा कर बहुत पहले हीसे उपकूलदेगमें लवण प्रस्तुत करते आ रहे हैं । काये उपसागरके किनारे कच्छके रणप्रदेशमें, मिश्रु-प्रदेशमें और यानामें लवण तत्पार करनेके कारखाने हैं ( Thana salt-works ) । अंगरेजराजने लवणका

अधिसंख्य खास कर लेनेके अतिप्रायसे काम्यके नवाबको वार्षिक ४० हजार रुपया क्षतिपूरणस्वरूपा दे कर लवणका व्ययसाय उठा दिया ।

पञ्जाब—यहां प्रधानतः सैन्धव लवण ही निकाला जाता है । सिन्धुनदके दूसरे किनारे घग्गू जिलेके कोहट और कालाबाग तथा लवणगिरि ( salt-range ) में सैन्धव बहुतायतसे पाया जाता है । कालाबाग और लवणगिरिका सैन्धव सिलिडरोय युगस्तरीय काङ्कड़ और कोहटमें मण्डिस्तर ( Mandi deposits ) के जैसा है । पतञ्जिन यहां गुजनाथ जिलेके खारे कूपजलोंसे लवण बनाया जाता है । यह शाम्भरहद-जात लवणसे निष्कृत होता है ।

सुकमदेश—लवणाक्त कूज-जलसे इस विभागके नाना स्थानोंमें लवण तट्यार होता है । किन्तु यह दूसरे दूसरे स्थानोंके लवणके जैसा विशुद्ध नहीं होता । यहांके लवणमें Sodium sulphate, magnisium sulphates, sodium carbonate और nitre मिला हुआ देखा जाता है । सुल्फरशहर और मुजफ्फरनगरमें बहुत थोड़ा नमक तट्यार होता है ।

आसाम—लवणाक्त-कूप तथा जोरहाट और सदिया-के लवण प्रखण्डसे काफी लवण प्रस्तुत होता है । कछोड़, मायापुर और चट्टग्रामके पहाड़ी प्रदेशोंमें भी कूपसे खारे जलसे नमक तट्यार किया जाता है । अशि क्षित और अर्द्ध सभ्य जातियां बांसके चींगेमें खारे जलको फुटा कर लवण बनाती हैं ।

मल्ल—पेरूके टर्सियारी युगस्तरीय पर्वतों पर सैकड़ों लवणके प्रखण्ड हैं । उनसे स्थानीय लोग लवण तट्यार करते हैं । आकायाबसे मार्गुई पर्यन्त समुद्रके किनारे समुद्रके जलसे सामुद्र लवण बनाया जाता है ।

मुसलमान-राजाओंके जमानेमें लवण पर महसूल लगाया जाता था । १८०३ ई०को ३८ घागके अनुसार अङ्गरेज गवर्मेंटने पहले पहल मन पोछे ( ८२  $\frac{२}{७}$  पौंड ) लवण पर १) ४० महसूल स्थिर कर दिया । धीरे धीरे यह ३० ४० तक बढ़ा दिया गया । १८८२ ई०में अग्रधान्य प्रदेशोंको अनेकानेक बङ्गालके लवण पर अधिक

महसूल देल भारतराज प्रतिनिधिने भारवर्षमें तमाम समान महसूल लगा कर मन पोछे २॥०, ४० कर दिया । किन्तु सोमान्त प्रदेशमें गोलमाल हो जानेके डरसे कोहाट और मण्डोकी लवणकी खान पर उन्हीं कोई कर न रखा । केवल कोहाटकी खानसे जो लवण अकगान-सोमान्त पर जाता था उस पर मन पोछे ( सिक्का यजन १०२ पौंड ) ॥० आना कर दिया था । मण्डोकी खान से उत्पन्न हैम-लवण पर उससे अधिक महसूल लगाया था । किन्तु अङ्गरेजी लवणकी अपेक्षा यह भी बहुत कम था । लवणका यह महसूल लेनेके लिये अङ्गरेज गवर्मेंटने देशी राजे, सरदार और जमींदारोंको क्षति-पूरणस्वरूप राजस्वका कुछ अंश माफ कर दिया ।

यागिज्य और कारवारके लिये भारतवर्षमें जितने प्रकारका नमक प्रचलित है, भारत गवर्मेंटकी राज-विवरणियोंमें उसकी एक तालिका देयी जाती है । यह भिन्न भिन्न प्रकारका लवण भिन्न भिन्न श्रेणियोंमें रखा गया है:—

१ खनिज वा सैन्धव लवण (Rock-salt)—कोहट, मण्डो आदि स्थानोंकी खानसे यह नमक नाना स्थानोंमें भेजा जाता है ।

२ हद और कूपज लवण (Lake and pit salt)—शाम्भर, दिदधाना, पंचभद्र और दिल्लीके लवणके कार-खानोंमें यह तट्यार होता है ।

३ सामुद्र लवण (Sea salt और pit-salt) भारतवर्षके समुद्रोपकुल उपवर्षों विभिन्न स्थानोंमें प्रस्तुत होता है ।

४ आनूपलवण ( Marsh-salt )—लवणाक्त जलसे उत्पन्न होता है । दिल्ली आदि स्थानोंकी खारो मिट्टी-को खोदनेमें जो गन्ना धन जाता है उपाके जलसे तट्यार किया जाता है ।

५ खाडिज लवण (swamp salt) समुद्रोपकुल-वर्षों खाडियोंके खारे कीचड़में जमा किया जाता है । समुद्रका जल उन लव खाडियोंमें घुस कर फिर निकलने नहीं पाता । पोछे यह भापे भाप सुख कर मिट्टी के ऊपर दानेदार हो जाता है । यही खाडिज

लक्षण है। यह विद्युत् होता है। उसमें प्रायः २३ भाग Chloride of sodium रहता है।

६ क्षितिज लवण ( Caline efflorescence ) वर्षों शतुके बाद स्थानविशेषमें नमक भापे भाप बाहर निकलता है। उन सब स्थानोंमें कभी भी पृष्ठ नहीं उगता। इस जातिके नमकको युक्तप्रदेशमें खरियार, लोमहा, रेद और कल्लार सोरा कहते हैं।

७ क्षारलवण ( Earth salt )—भारतवर्षमें इसको खारा नमक कहते हैं। ग्वालियर, पतिवाला और मध्य-भारतमें यह लवण उत्पन्न होता है।

८ नमक सौर ( Saltpetre salt )—सोरेसे जो मिश्र लवण बनता है उसीको नमक सौर कहते हैं।

उत्तर और पश्चिम-भारतमें जितनी नमककी खान हैं उनके स्तरोंमें किस प्रकार नमक जमा रहता है, यह देखने लायक है। इनमेंसे लवणगिरिके स्तर विशेष उल्लेखनीय हैं। यह शीलमाला देशां ७१°३०' से ३° पू० तथा अक्षां ३२° २३' से ३०' उ०के मध्य अवस्थित है। सिन्धुसागर दोमायको अधिरथकाभूमि और कोहिस्तान विभाग ले कर लवणशील संगठित है। इसके एक प्रस्त-में भेलम नदी और दूसरे प्रान्तमें सिन्ध नदी बहती है। प्रायः १५२ मील विस्तृत इस पहाड़ी प्रदेशमें जिन गड्ढे स्तरोंमें लवणरसि जमा रहती है, नीचे केवल उनके नाम दिष्टे गये हैं—

नाम	स्तरका मन्त्व
वर्षमान गठित स्तर—	
Debris of gypsum	१५० फुट
चूना परधर स्तर—	
Nammultic limestone	२०० "
कोयलारतर—	
Coal alum-shab marl	२० "
बलुरा परधरस्तर—	
Green sand-stone	६०० "
Blue marl	१२५ "
Red sandstone	३०० "
प्रथमस्तर—	
Upper layer of white gypsum	५ "

Brick red marl	१३० फुट
Brown gypsum	१४० "
Lower layer of white gypsum	२०० "
Salt marl and salt	६०० "

इस लवणगिरिविभागमें प्रधानतः मिश्र-कनि, चार्च कनि, कालायाग कनि और नूपुर कनिसे सैष्यलवण निहाता जाता है।

कोहाटका लवणमय प्रदेश सिन्धुनदीके पश्चिममें अवस्थित है। यह अक्षां ३२° ४७' से ३३° तथा ५२° देशां ७२° ५२' तथा देशां ७०° ३५' से ७२° १८' पू०के बीच पड़ता है। यहां लुटा, मालगिर, नोड, पारक और बहा-दुरखेल नामक स्थानमें खान है। भारतके प्रायः ६० हजार वर्गमील स्थानतथा कन्धहार, बालख और गजनी आदि भूमि गये यह लवण प्रचलित है।

मण्डोकके लवणकी खान हिमालयदेशके मण्डो राज्यमें अक्षां ३२° ३०' तथा देशां ७७° ५०'के मध्य अवस्थित है। गुमा और द्राह्म नामक स्थानमें दो खानें हैं। अंगरेजी राज्यमें मण्डो लवण विक्रय होता है इसलिये मण्डो राजकी करसूचक लवणका लम्बांग अंगरेज-सरकारमें देना पड़ता है। इसके बलायां Delhi-salt works, Cambhar Salt lake, Didwan-salt marsh, Pahlbadra salt works, Luni and Falod salt और Tibet or Lencha salt नामक विभिन्न स्थानोंपर लवणका प्रचलन देखा जाता है।

इसको छोड़ कर आयुषेदमें सज्जी-घार आदि और भी अनेक प्रकारका लवण (Sodium salt) औषधमें व्यवहृत होता है।

पंगालमें प्रथम प्रस्तुत करनेकी प्रणाली।

लवणका प्राणितय अंगरेज-राजमें लुप्त मयनेसे करती है। जो उसको अनुमतिके बिना लवण प्रस्तुत करती है, वे दण्डका भागो होते हैं। पंगालमें जो सब लवण प्रस्तुत होता है, यह अंगरेज-सरकार छोड़ लेती है और उसे भाड गुने या उससे भी ज्यादा क्षाममें प्रजाओंके व्यवहारके लिये देव डालती है। सिर्फ लवणते गये में लुकी ३ करोड़ रु० वार्षिक लाभ होता है। यह सब कार्य करनेके लिये उन्होंने बहुत धन व्यय कर अनेक कार्यालय खोल रखे हैं और उनमें कामचारा नियुक्त कर

दिये हैं। उसके सुशासनके लिये कहीं कहीं अंगरेजराजि भी रसे गये हैं। बंगदेशीय लयणके कारखानोंके ध्य-स्थापक अंगरेज कलकत्तेमें रहते हैं। वे जहां एकत्र हो कर मन्त्रेणो करते हैं, यह "सायटबोर्ड" कहलाता है। इस बोर्डके अधीनस्थ सभी कार्यालयमें एक नियम चलता है। विस्तारके हो जानेके भयसे नव स्थानोंकी लयण-प्रस्तुतप्रणाली न लिख कर सिर्फ तमलुककी लयण प्रस्तुतप्रणाली दी जाती है।

तमलुक नगर कलकत्तेसे २२ कोस दक्षिण रूपनारायण नदीके तट पर अवस्थित है। पहले यह नगर समृद्ध और वाणिज्यमें बड़ा प्रसिद्ध था, लेकिन आज यह व्याति जालि रही। सिर्फ नाममात्र रह गया है। किन्तु लयणके लिये यह नगर सामान्य नहीं है। यहां जो कोठो है उम से हर साल नौ या दस लाख मन लयण प्रस्तुत होता है तथा उससे कम्पनी पचास लाख रुपयेके करीब लाभ उठाती है।

तमलुककी सदर कोठोके अधीन पाँच कार्यालय हैं जिनमेंसे तमलुक, महिषादल, जमालुडा, औरङ्गाबाद तथा सुमसुदकी आदत ही प्रधान और चिख्यात है। फिर प्रत्येक आदतके अधीन छोटे छोटे कार्यालय हैं। इस छोटे कार्यालयको नाम 'हुदा' है। इन सब हुदामें दातोगा, मोहरर, आदलदार आदि मिस भिन्न नामके बहुतसे कर्मचारी नियुक्त रहते हैं। वे कातिकसे ले कर जेठ तक लयण प्रस्तुत करते हैं। कातिकके शुरूमें लयणसमिति (सायट-बोर्ड) के साहब किस आदतमें कितना लयण तैयार करना चाहिये, यह ठोक कर देते हैं। इस निर्दिष्ट परिमाणका नाम 'तायदाद' है। इस तायदादके मुताबिक प्रत्येक हुदेके कर्मचारी अपने अपने हुदेके प्रजाओं या कुलियोंको बुला कर कहते हैं, कि कौन कितना लयण तैयार करेगा और क्या दाम लेगा। पीछे एक स्टांप या छपा हुमा कागज दिया जाता है। इस निर्दारण क्रियाका नाम "सीदापत्र" है तथा जिस कागज पर यह लिखा जाता है यह 'हाथचिट्ठा' कहलाता है। जो इस प्रकार सीदापत्र स्थिर कर हाथचिट्ठा लेते हैं, वे 'मलङ्ग' कहलाते हैं। लयण तैयार करनेमें बहुत कम लाभ होता है। सुतलं केवल यहाँ काम कर कोई अपना गुजारा चला नहीं सकता। मलङ्गी

माल ही लयण प्रस्तुत करनेके अलावा खेतोबारी भी करते हैं। इतने पर भी उनकी गरीबी दूर नहीं होती। सभी बड़े कर्जखोर और अत्यन्त दरिद्र हैं।

तमलुकका लयण यहाँकी भागीरथी, हुलदी, टेंगरा-खाली, रायखाली आदि कई नदीके जलसे प्रस्तुत होता है। इसलिये लयण प्रस्तुत करनेके सभी कार्यालय इन्हीं नदियोंके किनारे बने हैं। मलङ्गी लोग पयोपयुक्त स्थान निर्दिष्ट कर उसे चार भागोंमें बाँटते हैं। उसके एक भाग का नाम 'चातर' है। यह सबसे बड़ा होता है और उसमें लयणकी मिट्टी प्रस्तुत होती है। दूसरेका नाम 'खुरी' अर्थात् कुण्ड है और यह लयणाक्त जल रखनेके काममें आता है। तीसरेका नाम 'मादा' अर्थात् लयण छाननेका स्थान है। चौथा "भूरा घर" अर्थात् लयण पाक करनेका घर है। इन चारों भागकी समष्टिकी 'खालाड़ी' या 'मजङ्ग' कहते हैं। इस प्रकार एक एक खालाड़ीके लिये दो तीन बीघे जमीनकी जरूरत होती है।

पहले ही कह भाये हैं, कि खालाड़ीके भत्यान्व अंशसे 'चातर' बड़ा होता है, उमके लिये एक बोधा या उससे भी अधिक स्थानकी आवश्यकता होती है। मलङ्गी लोग उसे बड़ी सावधानीसे साफ करते हैं और वहाँसे कुछ मिट्टी खोद कर उसके बीच बीचमें तथा चारों ओर बांध देते और इस स्थानको तीन भाग करते हैं। उसके बाद उन तीन खेतोंकी कोड़ कर पट्टेमें चौरस कर लेते हैं। यह चौरस को हुई भूमि भाठ दस दिन तक धूपमें सुलाई जाती है। पीछे उसके ऊपरकी मिट्टी और ईंट-की दोषात्में लेना लगनेसे जैसा चूर्ण उत्पन्न होता है वैसा ही चूर्ण हो जाता है। चूर्ण तैयार होने पर पांच या छः मनुष्य हथर उपर धूम कर उसकी अच्छी तरह रोँदते हैं। अनन्तर एक सप्ताह तक उसे धूपमें सुखा कर खेतसे जमा करते हैं। इसके बाद बाट्टसे चातर स्थिक रहने और धूपकी सहायता पानेसे लयण-भूतिका अच्छी तरह उत्पन्न होती है। बाट्टके जलसे चातर धुल जानेसे तथा कातिक या अगहनके महीनेमें अत्यन्त पर्या या कुदसेसे अथवा मेघसे आकाश टंके रहनेसे लयणोत्पत्तिमें नुकसान पहुँचता है। पूस और माघके महीनेमें जुमारके जलसे हुती नामक कुण्ड परि-



पूर्ण न होनेसे लयण बनानेके काममें हानि होती है।

एक जुरी बनानेमें चार बट्टे जमीन की भावप्रकृता होती है। उस जमीनमें पांच या छः हाथ गहरा, एक हाथ ऊंचा और एक हाथ चौड़ा एक गहटा बना कर एक माटे द्वारा किसी किसी बट्टीके साथ संयुक्त कर देनेसे यह जुरी तैयार होती है। बट्टी उधारके दिन उस मान्हे हो कर जब बट्टीके जसे जुरी भर जाती है, तब मलङ्गी लोग मालेकी बंध कर बट्टी सावधानीसे उस जलकी रक्षा करते हैं। वर्षाके समय जुरी वृष्टिके जलसे भर जाती है। कार्शिक काममें यह जल फेंक कर जुरीको साफ रखते हैं। गाढ़के घारे जलसे उसे भरना ही लयण तैयार करनेका एक प्रधान उपादान है। सावधानीसे यह कार्य नहीं करनेसे सभी परिश्रम व्यर्थ जाता है। चातरकी जुभारके जलसे सिक कर धूममें सुलाने का नाम 'साजन' है, कार्शिक मासमें चातर प्रस्तुत करनेसे क्रमागत तीन मास उसमें लयणमृत्तिका जम सकती है। माघके शेषमें या फाल्गुनके प्रारम्भमें उसे पुनः जुभारके जलसे सिक कर खनन न करने और उसके ऊपरकी मरुन तथा मट्टीको निकरभो मिट्टी जलग न कर देनेसे उसमें लयण-मृत्तिका अच्छी तरह जमने न पाती।

खालाट्टीके तृतीय बट्टीका नाम म.दा है। यह मादा प्रस्तुत करनेके लिये मलङ्गी लोग १२ हाथ परिधिवा और ४॥ हाथ ऊंचा मिट्टीका एक टोला बनाते हैं और उसके ऊपर १॥ हाथ गहरा गहटा/लोड रखते हैं। मिट्टी भरम और बालुकादि द्वारा उसका तल पेसा मजबूत कर दिया जाता है, कि जल उसके भीतर घुस नहीं सकता। पीछे उसके तलमें 'कुट्टी' नामक एक मिट्टीका बरतन रख कर एक बांसकी मलीसे उसका संयोग टोलेके निकटस्थ एक गहड़ेसे कर दिया जाता है। उस गहड़ेका नाम 'गाढ़' है। ३०-३२ कलसी जल उस गाढ़में समा सकता है।

चातरमें लयण-मृत्तिका प्रस्तुत होनेसे मलङ्गी लोग पूर्वोक्त कुट्टीके ऊपर बांसकी एक छतरी और छतरीके ऊपर धोखा बंध रखते हैं। पीछे उस मिट्टीमें मादाका गहटा भर कर वीरने उसकी अच्छी तरह हाथ देते हैं और जुरीमें बलभो बलभो लयणजल उस पर डालने है। इस प्रकार ८० कलसी जल डालनेमें यह लयणकी मट्टी बह कर बांसकी मली द्वारा गाढ़में आ गिरती है।

किन्तु यह जल लयणकी मिट्टीसे मलग नहीं होता। ८० कलसी जलमें से सिर्फ ३॥३२ कलसी जल गाढ़में गिरता है। बांकी जल मिट्टीके साथ मिला रहता है। गाढ़में जलका गिरना बंध होनेसे मलङ्गी लोग उस लयण जलको एक दूसरी कलसीमें रख देते हैं। मादाको पुटो हुई मिट्टी चातरमें डालनेके लिये उसे दूसरी जगह रख नई लयणकी मिट्टीसे उस मादाको भरनेके समिप्रायणे पुनः नई मिट्टी छानना शुरू करते हैं।

लयणको जलमें देनेके घरका नाम भुनरी घर है। यह घर चातरके पास ही बना होता है। उसकी लम्बाई २५-२६ हाथ और चौड़ाई ७ या ८ हाथ होती है। मलङ्गी मात्र ही उस घरको उत्तर-दक्षिणमें लम्बा तथा उसके दक्षिणी भागकी अपेक्षा उत्तरी भाग अधिक ऊंचा बनाते हैं। इसका कारण यह है, कि दक्षिण भागमें ये लोग रहते हैं, इससे अधिक ऊंचा बनानेकी जरूरत नहीं होती। किन्तु उत्तर भागमें लयण-जलका घुन्दा बनाना होता है, इस कारण ऊंचा बनाना जरूरी है। ऊंचा नद बनानेसे उसमेंसे जो धूमा निकलता यह बाहर निकलने नहीं पाता जिससे घरमें रहना कठिन हो जाता है। चूल्हा मिट्टीका बना होता है। उसकी ऊंचाई लोग हाथ होती है। उस चूल्हेके ऊपर कीचड़ देते और कीचड़ पर दोसी या दोसी पचोम-मिन्नीके गुन्पाकार छोटे छोटे मट्टीके बरतन रख छोड़ते हैं। उस बरतनका नाम कुट्टी है। प्रत्येक कुट्टीमें डेढ़ सैर बालू समाती है। उन बरतनों को चूल्हेके ऊपर कीचड़ पर रखनेसे जैसा आकार बन जाता है वह भीचे दे दिया गया है। मलङ्गी-लोग उसे भँट तथा मिस पर यह रखा रहता है उसे भँटवक कहते हैं।

चूल्होंमें भाँच देनेसे कीचड़  
 मूस कर उस परके समी कुट्टी  
 बरतनोंका एक पिण्ड बन जाता  
 है। चार पाँच या छः घंटा  
 उसमें मादा लयण जल पाक  
 करनेसे दो दोकरी लयण तय्यार  
 होता है। यह दोकरी चूल्हेकी  
 पगवमें रखी रहती है। उन  
 दोकरीमें जो जल निकलता है

v  
 vv  
 vvv  
 vvvv  
 vvvvv  
 vvvvvv  
 vvvvvvv  
 vvvvvvvv  
 vvvvvvvvv

यह उसके नीचेकी घास पर पड़ कर लवणके स्थूल गिण्डरूपमें परिणत हो जाता है। उस लवणगिण्डका नाम 'गाछालवण' है। दूसरे लवणकी अपेक्षा यह बहुत निर्मल होता है। कम्पनीने 'गाछालवण' का बनाना बंद कर दिया है। क्योंकि, मलङ्गी लोग यह लवण कम्पनीकी न दे कर दूसरेके हाथ गुणके बेच लिया करते थे।

लवणपाकका एक दूसरा नाम पोक्तान है। कार वानेमें इस पोक्तान शब्दका ही व्यवहार होता है। दो टोकरी लवण पोक्तान होनेसे कम्पनीके आदलदार नामक कर्मचारी आ कर काठकी मुहरकी छाप मार देते हैं। उस मुहरका नाम आदल है। उस आदलसे ही आदलदार नाम पड़ा है।

लवण पर मुहर पड़ जानेसे वह मलङ्गीकी घरीमें रखा जाता है। वहाँ एक दिन और एक रातमें यह सूख जाता है। पीछे मलङ्गी लोग गोलाघरकी मट्टी पर ढेर लगा कर रख देते हैं। दश या बारह दिन गोलाघरमें रखनेके बाद बाहर ला कर गोलाघरके सामने ढेर लगा दी जाती है। उस ढेरका नाम 'बहिरकाड़ी' है। १०।१५ दिन उस झांडीमें रहनेसे लवण सूख जाता है। पीछे पोक्तान-दारोगा आ कर यह लवण मलङ्गीसे घजन कर लेते और उतनेका एक चिट्ठा लिख देते हैं। पहले इसी नियमसे लवण तय्यार किया जाता था।

२ असुरविशेष । त्रय्यापुर देखो । ३ राक्षस-विशेष । ( त्रि० ) लवणेन संष्टः लवण ठक् ( अन्वयात्-ठक् । ५। ५। १२५ ) इति ठको लुक् यद्वा लवणो रसोऽस्त्व-स्मिन्निति अर्थ आद्यच् । ४ लवणरसयुक्त, नमकीन । ५ लावणयुक्त, सुन्दर । लवण—चट्टलके अन्तर्गत गण्डप्राम ।

(अभिप्य० अक्षरपठ १५।५२)

लवणकिशुका ( सं० स्त्री० ) महाज्योतिष्मती । लवणक्षार ( सं० पु० ) लवणस्य क्षारः । खारी नमक । लवणकनि ( सं० स्त्री० ) लवणाकर, नमककी खान । लवणजल ( सं० त्रि० ) लवण जलों यस्य । १ लवणसमुद्र । ( स्त्री० ) लवणं जलं । २ लवणात्क जल, चारा पानी । ३ लवणमिधित जल, यह पानी जिसमें नमक मिला हो ।

लवणजलधि ( सं० पु० ) लवणसमुद्र । ( भागवत ५।१७।२१ ) लवणजलनिधि ( सं० पु० ) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र । ( रामायण ५।३१।६२ )

लवणता ( सं० स्त्री० ) लवणस्य भावः तल-टाप् । लवणका भाव या धर्म, लवणरसयुक्त ।

लवणतृण ( सं० स्त्री० ) लवणरसविशिष्टं तृणं । १ तृणविशेष, अमलौनी घास जिसका साग खाते हैं, उसको लोनिपा भी कहते हैं । संस्कृत पर्याय—लोमतृण, तुनाम्ल, पटु-तृणक, अम्लकाण्ड । गुण—अम्ल, कषाय, स्तनदुग्धनाशक, अम्लशूलिकर । ( राजनि० ) २ कुलफा नामक साग ।

लवणतोय ( सं० त्रि० ) लवणजल, लवणसमुद्र ।

( रामा० ५।०।२१ )

लवणतय ( सं० स्त्री० ) लवणस्य तयं । तीन प्रकारके नमकीका समूह—संधय, विट् और सचल ।

लवणतय ( सं० स्त्री० ) लवणधर्मान्वित, लोणा ।

लवणद्वय ( सं० स्त्री० ) दो प्रकारके नमकीका समूह—सचल और संधय ।

लवणान्तर्य ( सं० त्रि० ) प्रतिदिन लवण-रसास्वादनगोल ।

लवणधेनु ( सं० स्त्री० ) लवणनिर्मिता धेनुः । गायके

रूपमें कल्पित नमकका ढेर । इसके दानका बराहपुराणमें बड़ा माहात्म्य लिखा है जो इस तरह है,—गोबरसे निचे स्थानमें कुशके आसन पर सोलह प्रस्थ नमकका एक ढोका रखे और उसे गायके रूपमें कल्पित करे । चार प्रस्थ और नमक पासमें रख कर उसे उस गायका बछड़ा माने । फिर चार गन्ने रख कर चार पैद, सोना रख कर मुँद और सींग, चांदी रख कर खुद, फल रख कर दाँत, चीनी रख कर जीभ, गन्धद्रव्य रख कर नाक, मषखन रख कर स्तन, तागा रख कर पूँछ, तपिके पत्तर रख कर पीठ, कुड़ा रख कर रोपे और काँसा रख कर दौड़नी कल्पित करे । पीछे इस धेनुके गलेमें घंटी बांधे । तदनन्तर सुगंध पुष्प आदि द्वारा यथायथान पूजन करके इस धेनुकी दो बत्तसे ढक कर ग्राहणकी दान कर दे । संक्रान्ति प्रथम, व्यतीपातादि योग और उत्तम कालमें दान करना उचित है । विधिपूर्वक धेनु दान कर इसकी इक्षिणामें सोना देना होता है । उक्त विधिके अनुसार

इस लयपधेनुका दान करनेसे इहलोकमें विविध सुख और अमनशास्त्रमें शृङ्गलोककी गति होती है।

सवर्णपञ्चन—चट्टलके अन्तर्गत एक नगर।

(महिन्य ब्रह्मवि० १५।६५)

लयणवाटलिका (सं० स्त्री०) लयणकी धली, नाकका स्थान।

लयणपालालिका (सं० स्त्री०) लयणवाटलिका देखो।

लयणपुर (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम।

लयणमास्कर (सं० स्त्री०) घैषकका एक प्रसिद्ध घूर्ण। इसमें तीनों नमक और अन्य कई औषधियाँ पड़ती हैं और यह पेटकी शपच आदि बीमारियोंमें दिया जाता है।

लयणमद (सं० पुं०) लयणस्य मदः। चारो नमक।

लयणमन्त्र (सं० पुं०) लयण उरसर्गाकालीन एक मन्त्र।

लयणमेद (सं० पुं०) सुश्रुतके अनुसार प्रमेद रोगका एक मेद। इस रोगमें वेदायके साथ लयणके समान स्राव होता है। (सुश्रुत नि० ६ म०)

लयणमन्त्र (सं० स्त्री०) दो मुदङ्गेदार वरतनोंके मुँह जोड़ कर बनाया हुआ एक मन्त्र जिसमें कुछ औषधियोंका पाक होता है। इनमेंसे एक वरतनमें नमक भी दिया जाता है।

लयणवर्ष (सं० पुं०) पुराणानुसार कुनडोपके अन्तर्गत एक वर्ष या वर्ष। (लिङ्गपु० ५६।१६)

लयणपाटि (सं० स्त्री०) लयणजल, चारो पानीका समुद्र।

लयणश्यापम् (सं० स्त्री०) घोड़ोंकी एक प्रकारकी महरी पीड़ा। घोड़ा जब बहुत नमक खाता है, तो यामु कुपित हो कर बहुत पीड़ा होती है, इस पीड़ाको लयणश्यापम् कहते हैं।

लयणसमुद्र (सं० पुं०) लयणसागर, चारो पानीका समुद्र। यह पुराणोक्त सात समुद्रोंमेंसे एक है। अन्य पुराणोंमें तो सातों समुद्रोंकी उत्पत्ति समरके पुत्रोंके खोदनेसे या त्रिपद्म राजाके रथके चालनेसे बताया गई है, पर प्रकृत्यैवसंमं लिखा है, कि धोहणकी एक पत्नी विरजाके गर्भसे सात पुत्र हुए जो सात समुद्र हुए। इनमेंसे एक पुत्रके रोनेके कारण घोड़ों देखके सिधे हृत्पत्ता विषोग हो गया। इस पर विरजाने उसे नाश दिया—

'लयणसमुद्र होगा और तेरा जल पीने नहीं पायेगा।' यह १.वा बहुत पीछेकी कविता ज्ञान पड़ती है।

लयणस्थान (सं० स्त्री०) एक जनपद।

लयणा (सं० स्त्री०) लुनाति या लु ल्यु-राप्। १ एक नदीका नाम, लृणो। २ क्षीति, शाना। ३ महात्म्योक्तिपत्नी लता। (रात्रि०;) ४ शुक्रका, सुक्र। ५ चमेरो। ६ लयणशाक, अमनोनी साग।

लयणाकर (सं० पुं०) लयणस्य आकरः। लयणकी शान, यह स्थान जहाँसे नमक निकलता है।

लयणाक्षय—चट्टलके अन्तर्गत एक लयण-प्रसवप।

लयणाचल (सं० पुं०) लयणनिर्मित शयनः। दानार्थ लयणाश्रिमित पर्यत, पहाड़के रूपमें कल्पित नमकका ढेर। लयणका जो पर्यत बना कर दान करते हैं उसे लयणाचल कहते हैं। मत्स्यपुराणमें इस पर्यतदानका विधान इस प्रकार है। सोलहद्वीप नमकका एक टोंका ले कर उसका पर्यत बनाये, सार्धान् उसे पर्यतके आकारमें स्थापित करे। इतने नमकसे जो पर्यत बनाया जाता है वह उत्तम; उसके आधेका बनाया हुआ वह मध्यम; और उससे भी आधेका बनाया हुआ पर्यत सपन कटलाना है। त्रिभू परिमाणका पर्यत बनाया जायगा, उसके चौथाईसे शिफाम् पर्यत बनाये। पर्यतदानके विधानानुसार सुवर्ण आदिसे ब्रह्मादि और शैलकपालादि बना कर विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। पीछे उसे दान कर ब्राह्मणकी दक्षिणा दे और भोजन कराये। इस प्रकार विधिसे अनुसार जो लयणपर्यत दान करते हैं, ये इन लोकमें माना प्रकारका सुवर्णसीताय गीग कर उमालोकमें एक कण तक प्राप्त करते और पीछे उन्हें मुक्ति मिलती है। (मत्स्यपु०)

लयणाघमोदक (सं० स्त्री०) नमकसे बनाई हुई एक प्रकारका भीषण।

लयणागतक (सं० पुं०) लयणस्य अगतकः। १ लयणा-सुरकी मारनेवाले जन्तुन। (रघु १५।५०) २ भीषण।

लयणाश्वि (सं० पुं०) लयणसमुद्र, चारो पानीका समुद्र। (मार्कण्डेयपु० ५५।१०)

लयणाश्विज (सं० स्त्री०) लयणाश्वी लयणसमुद्र जायने

इति जनः । समुद्र लवण, समुद्रसे निकला हुआ नमक ।

लवणाश्मुराशि (सं० पु०) लवणस्य श्मुराशिः । लवण-समुद्रका जलसमूह ।

लवणाम्बु (सं० पु०) लवणजल, समुद्र ।

लवणार (सं० स्त्री०) लवणक्षार, खारी नमक ।

लवणारज (सं० स्त्री०) लवणक्षार, खारी नमक ।

लवणार्णव (सं० पु०) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र ।

लवणालय (सं० पु०) लवणस्य आलयः । लवणासुरकी बसाई हुई मधुपुरी । पीछे यह मधुराके नामसे प्रसिद्ध हुई । (रामा० ४।४।१३४) लवण देखी ।

लवणाश्व (सं० पु०) महाभारतवर्णित एक प्राह्वण ।

लवणासुर—एक असुरका नाम । रामायणमें लिखा है,—सत्ययुगमें दैत्यवंशमें लोलाके गर्भसे मधु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस मधुने महादेवकी कठोर तपस्या कर एक शूल पाया था । महादेवका शूल पा कर मधु बड़ा बलवान् हो उठा । किन्तु मधु दैवबलसे बलवान् होने पर भी परमधार्मिक था, किसीका कोई अनिष्ट नहीं करता था । इसके बाद मधुने पुनः तपस्या कर महादेवसे प्रार्थना की, कि मुझे एक ऐसा घर दीजिये जिससे यह शूल वंशपरम्पराक्रमसे रह जाय । किन्तु महादेवने कहा, कि यह घर तो नहीं मिल सकता, पर तुम्हारा बड़ा लड़का यह शूल पायेगा, इसमें संदेह नहीं ।

विश्वामित्रकी कन्या अनलाके गर्भसे कुम्भोन्मसी नामकी एक कन्या हुई । मधुने कुम्भोन्मसीसे विवाह किया और उसीके गर्भसे लवण पैदा हुआ । क्रमशः लवण बड़ा दुष्ट हो उठा । मधुने जब देखा, कि लवण बड़ा दुष्ट ही हो गया, तब वह शोकातुर हो कर शूल उसे दे परलोक सिधारा । लवण इस शूलके प्रभावसे त्रिलोकका अधिप हो गया । लवणके भीषण अत्याचारसे पीड़ित हो ऋषियोंने रामचन्द्रकी शरण ली । भगवद्भवतार रामचन्द्रने इसका बध करनेके लिये भरतसे कहा । किन्तु शत्रुघ्ने स्वयं उसका बध करनेके लिये प्रार्थना की । शत्रुघ्नको प्रार्थना पर रामचन्द्रने उन्हें ही लवणका बध करने भेजा । लवणके हाथ जब तक शूल रहेगा, तब तक देवदानवादि भी भयों न हों जो उसके सामने लड़ाई करने आयेगे ये महतीमृत,

हो जायेंगे ।" शत्रुघ्नको यह बात अच्छी तरह मालूम थी । इसलिये जिस समय राक्षसके हाथ शूल नहीं था, उसी समय शत्रुघ्ने आ कर उसका काम तमाम किया । देवगण बड़े संतुष्ट हुए और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा कर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे ।

इसके बाद देवीने शत्रुघ्नके समीप उपस्थित हो उनसे घर मांगने कहा । शत्रुघ्ने प्रार्थना की कि, 'देवचिनिर्मित इस लवणासुरकी मनोहारिणी मधुपुरी (मधुरा) जिससे शीघ्र ही जनार्दनकी हो जाय यही घर हमें दीजिये ।' 'तथास्तु' कह कर देवगण चले गये । पीछे शत्रुघ्न वारद वर्ण इसी नगरीमें रह कर अधोध्या लीटें थे ।

(रामायण अयोध्याका० ५३, ८४ म०)

लवणिमन् (सं० पु०) लवणस्य भावः (पर्यट्टादिभ्यः ष्यन् । पा १।१।२२३) इति इमनिच् । लवणका भाव या धर्म ।

लवणोत्तम (सं० स्त्री०) लवणोपु उत्तमं, सैन्धव लवण, सेंधा नमक । यह सब नमकोंसे अच्छा माना जाता है । लवणोत्तमादिवूर्णं (सं० स्त्री०) अर्शरोगमें बड़ा फायदा पहुंचानेवाली एक औषध । इसके बनानेकी तरकीब—सेंधा नमक, चितामूल, इन्द्रजी, करंजका बीधा, नीमकी छाल, इनका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण कर पीछे अच्छी तरह मिला दे । औषधकी माला २ मासा है । इसे मूत्रके साथ खानेसे अर्शरोग आरोग्य होता है ।

(भेदन्वयस्ना० अर्शरोगाधिहार )

लवणोत्तमादिवूर्णं (सं० स्त्री०) अर्शरोगाधिहारमें चूर्णोपधिविशेष । प्रस्तुतप्रणाली—सेंधा नमक, चित्तक, इन्द्रजी, करंजमूल और महापिचुमई मूल, इन सब मूलोंके प्रत्येकका चूर्ण २ तोला ले कर एक साथ अच्छी तरह चूर्ण करे । इस औषधका परिमाण ८ मासा और अनुपान मट्ठा है । अर्शरोगमें यह बड़ा लाभदायक है ।

(चक्रदत्त अर्शरोगाधि०)

लवणोत्थ (सं० स्त्री०) लवणादुत्थितोति बहु-स्था-क । लवणक्षार, खारी नमक ।

लवणोत्था (सं० स्त्री०) ज्योतिषमती लता ।

लवणोरस (सं० पु०) एक नगर । (राजतर० १।३।१।)

लवणोद (सं० पु०) लवणं उदकं यस्य, उत्तरपदस्य चैत्युदकस्यादादेताः । लवणसमुद्र ।

लघनोदक ( सं० पु० ) १ लघनमिथित जल, नर्मक मिला हुआ पानी। २ क्षारमसुद।

लघनोद्देश ( सं० पु० ) लघन समुद्र।

लघन ( सं० श्लो० ) लघु-भाषे न्युट्। १ ऐद्वन, काटना। २ मेघकी कटाई, लुनाई। ३ मेघ काटनेकी मजदूरीमें दिया हुआ भद्र, लीला।

लघना ( दि० क्रि० ) १ पके हुए मसके पीघीली गेतोंसे काट कर पखल करना, लुगना। २ फौना बेला।

लघनि ( सं० स्त्री० ) जनी देली।

लघनी ( दि० स्त्री० ) १ मेघमें मनाजकी पकी फसलकी कटाई, लुनाई। २ यह भन्न जो मेघ काटनेवालोंको मजदूरीमें दिया जाता है।

लघनी ( सं० स्त्री० ) फलवृक्षविशेष, गरीफिका पेड़ या फल।

लघनोप ( सं० त्रि० ) लघु अनोपत्। ऐद्वनीप, काटनेके लायक।

लघन्ये ( सं० पु० ) एक जाति। ( राजतर० ७, १२, १४१ )

लघनाज ( सं० पु० ) काश्मीरके एक प्राणय।

( राजतर० ८, १३, १४० )

लघनी ( सं० स्त्री० ) लघं लेशं लातीति ला-क, गौरादि-स्यात् ङीप्। १ फलवृक्षविशेष, हरफारेवरी नामका पेड़ और उसका फल। पर्षाद—लुगण्यमूला, शम्भु, कोमल पत्रकला। इसके फलका गुण हृद्य, सुगन्धि और कफ-घातनाशक माना गया है। ( राजनि० ) २ एक विषम वर्णयुक्त। इसके प्रथम चरणमें १६, दूसरेमें १२, तीसरेमें ८ और चौथे चरणमें २० वर्ण होते हैं।

लघनीज ( दि० वि० ) लघनय, मल।

लघनेज ( सं० पु० ) १ अल्पत भक्ष्य माता, बहुत थोड़ी मिश्रदार। २ जरा-सा लघाव, मल संसर्ग।

लघपत् ( सं० त्रि० ) क्षणश्यापी, थोड़ी देर तक रहने-वाला।

लघनार्त् ( सं० भाष० ) संक्षेप, सूक्ष्मके लिये।

लघा ( दि० पु० ) लोहरकी जातिका एक पत्थर। यह लोहरसे बहुत छोटा होता है और जमीन पर अधिक रहता है। इसके वंश बहुत लम्बे होते हैं। नर और नारसी देखनेमें बड़े और नरों होता। मादा मूरे रंगके

मंडे दिता है। जाड़ेके दिनोंमें इस चिदिवाके भुंके भुंके झाड़ियों और जमीन पर दिवारी पड़ने हैं। यह पत्थर और फोड़े पाने हैं।

लघाई ( दि० वि० ) १ हाजकी ब्याई हुई गाव, यह गाव जिसका ब्याा मनी बहुत हो छोटा हो। ( स्त्री० ) २ मेघकी फसलकी कटाई, लुनाई। ३ फसल-कटाईकी मजदूरी।

लघाक ( सं० पु० ) लघरथे ऐद्वनार्थ सकनीति भक्त-मच्। ऐद्वनद्रथ, काटनेकी वाज।

लघाजमा ( सं० पु० ) १ किसोके साथ रहनेवाला दलबल और साज सामान, साथमें रहनेवाली मोड़-भाड़ या भसबाब। २ भाव्यरपक सामान, यह सामान जो किसी बातके लिये जरूरी हो।

लघाजमात ( सं० पु० ) सामान, उपकरण।

लघाणक ( सं० पु० ) लघनेऽनेनेति ल ( भाषा लघु-सिन्धिताम्भ्यः। उष् १८२ ) इति भाणक। वातादि ऐद्वनद्रथ, हंसिया।

लघित ( सं० श्लो० ) लघुनेऽनेनेति ल ( अथि लघु-सुन्नगरत् इत्। पा ३।२।८८ ) इति इत्। दात, हंसिया।

लघेरति ( सं० पु० ) एक श्रुतिका नाम। ( मं० काशीपुरी ) लघेरिया—१ मिश्रपदके मिश्रारणुत् जित्तगतमेत एक तालुक। यह भूदा० २७' १५' से ३१' उ० तथा देसा० ६८' २' से ६८' २३' के मध्य अवस्थित है। भू परिमाण २०७ वर्गमोड है।

२ उक्त तालुकका एक गणत। यहां दो फीसदारी भू-सत है।

लघिसागर—प्रांणालकवाके प्रमेता।

लघ ( सं० त्रि० ) ऐद्वनोद्देश, काटनेके लायक।

लघवय—मन्द्रास और बम्पर में सिट्टेगोमें रहनेवाली एक सुलसमान जाति। मलवार उपकूलमें भी इस जातिका पास देखा जाता है। इस जातिके लोग मरक और पारस देशके भी निपेठित सुलसमानोंके सम्मान हैं। अधिक सम्भव है, कि ७वीं सदीमें इराकके शासनकर्ता हमाड-इब्न-युसुफके भस्वाकारों लंग या कर उम देगके मरको और पारसो लंग इस देगमें भा कर बस गये हो। इसके अलावा जो सब मरकी और पारस

मुसलमान बणिक् पश्चिमी-भारतके वाणिज्यके लिये भारत आते जाते थे, उनमेंसे बहुतरे यहाँके अधिवासी हो गये इसी बणिक्सम्प्रदायने १६वीं सदीके प्रारम्भ तक दक्षिण-भारतमें अपनी धाक जमा ली थी। पुर्तगोज बणिकोंके प्रभावसे उक्त मुसलमान बणिक्सम्प्रदायका वाणिज्य धीरे धीरे ह्रास होता गया। भारतवासी ये सब मुसलमान-वंशधर ही अभी लक्ष्य बहलाने हैं। ये खास कर मारवाड़ी और हिन्दी भाषा बोलते हैं।

इनका सुँह और काली काली आँखें देखनेसे मालूम होता है, कि नाना वैदेशिक रक्तके मिलनेसे यह जाति उत्पन्न हुई है। ये स्वभावतः नाटे लेकिन बड़े बलिष्ठ होते हैं। इनका आचार-व्यवहार सराहनीय है। ये साफ सुपरा रहते हैं। चमड़ा, मुक्ता, किमती मत्स्य, चावल और नारियल बेचना ही इनका जातीय-व्यवसाय है।

ये साफाई सम्प्रदायशुक्र और सुन्नी-मतावलम्बी हैं। धर्मकर्ममें इनका पूरा ध्यान रहता है। आधेसे अधिक मनुष्य चमड़ेका कारवार करते हैं। व्यवसायके लिये ये सिन्धुद्वीप तक धावा करते हैं।

लश्कर (फा० पु०) १ सेना, फौज, २ मनुष्योंका भारी समूह, भीड़माहू, ३ जहाजमें काम करनेवालोंका दल, जहाजी आदमी। ४ फौजके टिकनेका स्थान, छावनी। लश्करी (फा० वि०) १ फौजका, सेनासम्बन्धी। २ जहाजसे सम्बन्ध रखनेवाला। ३ जहाज पर काम करनेवाला, खलासी। (पु०) ४ सैनिक, सिपाही। ५ जहाजी-आदमी। ६ जहाजियों या खलासियोंकी भाषा।

लश्कारना (फा० कि०) शिकारो कुत्तोंको शिकार पकड़नेके लिये पुकार कर बढ़ावा देना, लश्कारना।

समुद्र (सं० क्री०) अश्वत्थे भुज्यते इति अग (शशेनकच। जण ३।१७) इति उन्नत्, लशादेश्व धातोः। रस्तोन, लहसुन। पर्याय—महीपथ, घुबान, अरिष्ट, महाकन्द, रस्तोनक, रस्तोन, स्तेच्छकन्द, मूताम, उमगम। लहसुनको जड़ या कन्द प्याजके ही समान तोड़ण और उम्र गंधवाली होती है। इससे बहुत-से आचारवात्त हिन्दू विशेषतः चैत्यत्र नहीं खाते, प्याजकी गांठ और लहसुनकी गांठकी वना-पथमें बहुत अंतर होता है। प्याजकी गांठकीमल छिद्रकोंको तहोंसे मट्टो हुई होती है, पर लहसुनकी गांठ चारो ओर एक रंक्तिमें गुठो हुई फाँटोंसे बनी होती है।

जिन्हें जया कहते हैं। घैद्यकमें यह मांसपर्दक, शुक्र-पर्दक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाचक, सारक, कटु, मधुर, तीक्ष्ण, टूटी जगहको ठीक करनेवाला, कफवातनाशक, कण्टशोधक, गुण, रक्तपिचयर्दक, बलकारक, वर्षाप्रसादक, मेघाजनक, निर्बोका हितकारी, रसायन और हृद्रोग, जोषण-उषद, कुक्षिशूल, गुल्म, अर्घचि, कास, जोष, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमान्य, हृमि, वायु, भ्यास तथा कफनाशक माना जाता है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि लहसुन खानेवालेके लिये खट्टी चीजें, मद्य और मांस हितजनक हैं तथा कसरत, पूष, फ्रीथ, अधिक जल, दूध और गुड़ अहितकर हैं। घैद्यकमें इसके बहुत गुण कहे गये हैं। यह नरकारोके मसालेमें पड़ता है। भावप्रकाशमें लहसुनके सम्बन्धमें यह आख्यान लिखा है,—जिस समय गण्ड इन्द्रके यहाँसे अमृत हर कर लिये जा रहे थे, उस समय उसकी एक बूँद जमीन पर गिर पड़ी, उसीसे लहसुनकी उत्पत्ति हुई।

धर्मशास्त्रके मतसे लहसुन खाना परहम निषिद्ध है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन जातियोंको कदापि लहसुन नहीं खाना चाहिये।

'समुद्रं यज्जनं चैव पलायतुं क्वकानि न।

भमदयोग्यं द्विजातीनामनेन्य प्रमवापि च ॥'

(मनु ५।१२)

लसुन, गुबान, पालाण्डु, कवक और अमेध्यप्रमाद्य अर्थात् विषादि जात यस्तु द्विजातियोंकी भ्रमश्य है। कुल्लुकभट्टने उस श्लोकको टीकामें लिखा है,—'द्विजाति प्रदणं शूद्रव्युदासार्थं' द्विजाति पक्षे पर्युदासार्थं अर्थात् अश्रमस्तार्थं जानने पर शूद्र भी भक्षण न करे। यदि करे तो कोई विशेष शोषावह नहीं होगा। लहसुन द्विजातियोंके भ्रमश्य है, शूद्र द्विजातिमें गिना नहीं जाता। अनप्य शूद्र लहसुन भक्षण कर सकेगा यह शास्त्रका अभिमत नहीं है।

मनु और याज्ञवल्क्यके मतसे यदि कोई द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय-जान वृष कर लहसुन भक्षण करे, तो ये पतित होंगे। अज्ञानतः भक्षण करनेसे केवल चान्द्रायण तथा अन्नतः भक्षण करनेसे उन्हें चान्द्राय-पादि करके पुनः संस्कार करना होगा, नहीं तो ये वाय्य-यद्वापि और पतित होंगे।

(मनु ५।१६-२०, याज्ञवल्क्य १।१२६) पतापड़ देते।

सधुनायनेन—कर्णरोगमें उपकारक एक प्रकारकी भीषण ।  
इसके बगानेका तरीका—तिष्ठनेन १ सेर, बररोफा  
दूध ४ सेर । कर्णार्थ—लहसुन, झोपटा और हरताल  
मिला कर २ पल । इसे कानमें देनेसे यहिरापन जाता  
रहता है । ( भंषणरत्नां )

सधुन (सं० पु०) इमेन ऊनः, रस्य सत्यं, पूषोदादिरवाम्  
सस्य नः प्रकारलोपदय । सधुन, लहसुन ।

सधन ( सं० स्त्री० ) वाष्पन, चाह ।

सधनावर्गो ( सं० स्त्री० ) एक प्राचीन नगर ।

सधना ( हि० क्रि० ) प्रसना देना ।

सधनाय ( सं० पु० ) लक्ष्मण ।

सधनादेवी—एक राजकन्याका नाम । दूसरा नाम लक्ष्मी-  
देवी था ।

सध ( सं० पु० ) स्थापयति मृत्ये नित्यं युनक्तीति सध  
(नर्भनित्यन्तेरिभ्येति) । उष्ण १।१५३ इति यन्त्ररथयेन साधुः ।  
नर्शक, यह जो नाचना हो ।

सधन ( हि० पु० ) धनस्तन देना ।

सध ( सं० पु० ) १ चिपकने या चिपकानेका गुण इत्येयण ।  
२ यह जिसके लगानेसे एक वस्तु दूसरी वस्तुसे चिपक  
जाय, लासा । ३ नित्य लगानेकी बात, भाकरपण ।

ससक ( सं० पु० ) नर्शक, नाचनेवाला ।

ससदार ( फा० वि० ) जिसमें लस हो, लसोला ।

ससना ( हि० क्रि० ) एक वस्तुको दूसरी वस्तुके साथ  
इस प्रकार सटाना कि यह सलग न हो, चिपकाना ।  
समम ( हि० वि० ) जो बरा और चौड़ा न हो, क्षामी ।  
ससुनसा ( हि० वि० ) लसदार, चिपचिपा ।  
समलसाना ( हि० क्रि० ) गोंद या लसदार चीसकी तरह  
चिपकना, चिपचिपाना ।

ससनासाट्ट ( हि० स्त्री० ) लसदार होनेका भाव, चिप-  
चिपाट्ट ।

ससवारो—राजपूताना अलवार-राज्यके अन्तर्गत एक बड़ा  
गाँव । यह अक्षां २७°३३' उ० तथा देशां ७६° ५६' पू०के  
मध्ये रामगढ़नगरमें बरकोय दक्षिण-पूर्व तथा अल-  
वार-राजधानीसे दून कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है ।  
यहाँ १८०३ ई०में विषमगत ससवारोका युद्ध हुआ था,  
जिसमें अङ्गरेजोंके हाथमें प्रसिद्ध महाराष्ट्र-मलिका परा-  
जय हुआ ।

जब सेनापति लार्ड लेकने यह शहर लगी,  
मराठी सेना छिपके बंद रहने दी, तब वे उन्हें रोहनेके लिये  
गुप्तमन्त्र सेनावलकी ले कर गहरो रातमें इस गाँवमें  
घमके । गदनी नयम्बरकी दानों दलमें मुद्रमेष्ट हुई ।  
लेक नाती पराजय भवदयन्मायी समझ कर  
हटे । इसी समय पैदल सेना उनकी सहायन  
पहुँच गई । लार्ड लेक कुछ काल विधाम कर फिर युद्ध  
लिए रणक्षेत्रमें उतरे । इस बार सिन्धु सौम्यने भी  
विक्रमसे अङ्गरेजों पर हमला किया । मराठी सेनामें  
पर्याप्त युद्ध कर भारतमें मोरचकी रक्षा की थी । अन्त  
उन्होंने यह सौम्य गष्ट हो जानेके भयसे लड़ाई बन्द  
की । अङ्गरेजोंकी जीत हुई । उन्हें ७१ कमान और का  
रसद भी मिली ।

लसा ( सं० स्त्री० ) लसनांति लस-अच्, टाप् । हिं  
रक्षी ।

लसिका ( सं० स्त्री० ) लसनांति लस-अच् ततः कन्  
टाप् भत इत्यं । लाला, भूक ।

लसो ( हि० स्त्री० ) १ लस, चिपचिपाट्ट । २ दिल लगने  
वस्तु, भाकरपण । ३ सम्भोग, लगाने । ४ मोक्षका मो  
फावड़ेका डील । ५ दूध और पानी मिला मारण ।

लसोका ( सं० स्त्री० ) १ इधुरता, ईषका रस । २ ए  
नांसमध्यगत रस, मांस और चमड़ेके बीचमें धरनेवा  
रस या पानी ।

लसोला ( हि० वि० ) १ लसदार, चिपचिपा । २ जीम  
युक्त, सुन्दर ।

लसुन ( हि० पु० ) लसुन देना ।

लसुनिया ( हि० पु० ) कदनिया देना ।

लसोटा ( हि० पु० ) एक प्रकारका छोटा पेड़ । इस  
पत्तियों गोल गोल और फल बेरके-से होते हैं ।  
यस्यमध्ये पत्तियों अङ्गुना है और दिग्दुस्वनामें प्रायः म  
पाया जाता है । फलमें बहुत ही लसदार गुण होता  
यह फल भीषणके काममें आता है और शूबी लोगों  
कीभी करनेके लिये दिया जाता है । फलमें ३  
मरिस्तां बन्दे है । इकोन लोग मित्रो मिला कर अन्त  
या चरनेकी बगाने हैं, जो नातोमें चारदके लिये रि  
तला है । रसकृतमें भी इसे इस्तेमालक करते हैं ।





लहर ( हि० पु० ) १ एक प्रकारका बहुत लंबा और चौड़ा टाटा पहनाया, घोसा । २ अंध, निम्न । ३ एक प्रकारका लोहा जिसकी गहरान बहुत लंबी होती है ।

लहना ( हि० पु० ) निमेष, चल ।

लहर ( सं० पु० ) एक जाति । २ काश्मीरके अन्तर्गत लोहर जनपद ।

लहर ( हि० स्त्री० ) १ हवाके भौंकेसे एक दूसरेके पीछे ऊंचो उठती हुई अलकी लानि, बड़ा हिलोरा । २ उमंग, जोग । ३ भावस्थकी उमंग, मौज । ४ नारीके अंदरके विनो उपद्रवका वेग जो कुछ अंतर पर रह रह कर उठाने दो, भौंका । ५ मनकी मौज, मनमें भावसे भाव उठो हुई प्रेरणा । ६ एक गति, इधर उधर मुड़ती हुई टेढ़ी घाल । ७ भाषाओंकी मूज, स्वरका कंप जो वायुमें उत्पन्न होता है । ८ हवाका भौंका । ९ किसी प्रकारकी गंधसे भरी हुई हवाका भौंका, मदक । १० बराबर इधर उधर मुड़ती या टेढ़ी होनी हुई जानेवाली रेखा, चलते सर्पकी-सी कूटिल रेखा ।

लहरदार ( फा० वि० ) जो सीधा न जा कर टेढ़े में दा गया हो, कूटिल या एक गतिसे गया हुआ ।

लहरना ( हि० क्रि० ) लहरना देना ।

लहरपट्टी ( हि० पु० ) पुरानी चालका एक प्रकारका रंगमो धारीदार कपड़ा ।

लहर ( हि० पु० ) १ लहर, तरंग । २ मौज, मंजा । ३ बातीकी यह गत जो भारस्ममें नाचने या गानेके पहले समी रीचने और धानन्द बढ़ानेके लिये बजाई जाती है । इसमें कुछ गाना नहीं होता केवल ताल और स्वरोंकी स्वभाव होनी है । ४ एक प्रकारकी घास ।

लहरा—उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह पाल-सह्य राज्यकी राजधानी है । पाल-नगर देना ।

लहरना ( हि० क्रि० ) १ हवाके भौंकेसे इधर उधर हिलना झोलना, लहरने लगना । २ मनका उमंगमें होना, उल्लासमें होना । ३ भावकी लहरना निकल कर इधर उधर हिलना, दृढ़त्वना । ४ हवाका चलना या पानीका हवाके भौंकेसे उठना और गिरना, बहना या हिलाने मारना । ५ किसी वस्तुके लिये उन्मत्त होना, लयत्वना । ६ झोमिन होना, बिराडना । ७ मींचे न चल कर सर्पकी तरह इधर उधर

मुड़ने या भौंका घाते हुए चलना । ८ हवाके भौंकेसे इधर उधर हिलना झुलना या हिलने झोलनेके लिये छोड़ देना । ९ बार बार इधरसे उधर हिलना झुलना । १० मींचे न चल कर सर्पकी तरह इधर उधर मोड़ते हुए चलाना, पथगतिसे ले जाना ।

लहरि ( सं० स्त्री० ) महातरंग । लहर देना ।

लहरिया ( हि० पु० ) १ ऐसी सामानांतर रेखाओंका समूह जो सीधो न जा कर क्रमसे इधर उधर मुड़ती हुई लंबी, टेढ़ी, मेढ़ी गई हुई लकीरोंकी धोपी । २ यह सादी या पोती जिसकी रंगाई टेढ़ी, मेढ़ी लकीरोंके रूपमें हो । ३ एक प्रकारका कपड़ा जिसमें रंग-बिरंगी टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनी होती हैं । ४ अंगके वस्त्रोंके किनारे बनी हुई घेन । ( स्त्री० ) ५ लहरा अर्थात् पूरबी निर्देशात्मक रूप ।

लहरियादार ( फा० वि० ) जिसमें लहरिया बना हो, जिसमें बहुत-सी टेढ़ी मेढ़ी रेखाएं हों ।

लहरी ( सं० स्त्री० ) लहर, तरंग ।

लहल ( हि० पु० ) एक प्रकारका राग जो दोषक रागका पुत्र कहा जाता है ।

लहलह ( हि० वि० ) १ लहलहाना हुआ, हरा हरा । २ हंसके फूला हुआ, खुसीमें लिखा हुआ ।

लहलहा ( हि० वि० ) लहलहाता हुआ, हरा भरा । २ हंस पुट । ३ भावस्थसे पूर्ण, खुसीमें भरा हुआ ।

लहलहाना ( हि० क्रि० ) १ लहलहावाली हरी पल्लियों भरना, हरा भरा होना । २ सुंदर अतीरका किररी हूँ और मजबूत होना, नरीर पनपना । ३ मजबूत होना, खुसीमें भरना । ४ सुनें पेड़ का पीछेमें किरसे पल्लियों निचलना, पनपना ।

लहलही ( हि० वि० स्त्री० ) लहलहा देना ।

लहलसुन ( हि० पु० ) १ एक केशुमें उठ कर पारों और गिरां हुई लस्यो लस्यो पल्लियोंका एक पीचा । इसकी जड़ नीले गांठके रूपमें होती है ।

विशेष विवरण पृष्ठ २१५ देखें ।

२ मानिकका एक दोष । इसे संस्कृतमें लोनीमक कहते हैं ।

लहलसिपा ( हि० पु० ) भूमिल रंगका एक रत्न वा बहुमूल्य

पत्थर, कट्टाशक। यह नघरक्षोंमें है तथा लाल, पीले और हरे रंगका भी होता है। जिस पर तीन अर्द्ध-रेखाएँ हैं, यह उत्तम समझा जाता है और 'ढाई सूतका' कहलाता है।

लहसुनी हींग (हि० खी०) एक प्रकारकी सुखिम हींग जो लहसुनके योगसे बनाई जाती है।

लहसुवा (हि० पु०) एक प्रकारका माग।

लहाछेद (हि० पु०) १ नृत्यकी क्रियाओंमेंसे चौथी क्रिया, नाचकी एक गति। २ नाचमें तैजी और फरत।

लहार—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यान्तर्गत एक दुर्गाधिष्ठित नगर। यह अक्षा० २५° ११' ५०" उ० तथा देशा० ७८° ५६' ५०" पू०के मध्य सिन्धुनदीके दाहिने किनारेसे तीन कोस पूर्वमें अवस्थित है। १७८० ई०में अहमदजी-सेनाके इस दुर्ग पर चढ़ाई करनेसे दोनों दलोंमें घमसान युद्ध छिड़ा। उस समय दुर्गमें ५०० सेना मौजूद थी। कनेल पपहाम दुर्ग पर घेरा डाल कर गोला बरसाने लगे। इससे मिर्जा किलदार और उनके कुछ अनुचरोंके सिवा और सभी घमपुरको सिपारे।

लहारपुर—१ अयोध्याप्रदेशके सोतापुर जिलान्तर्गत एक परगना। भू-परिमाण १७२ वर्गमील है। लहारपुर नगरसे दो मील पश्चिम केजरीगंज नगर यहाँका प्रधान वाणिज्यक्षेत्र है। इस परगनेके मध्यभागमें १०३० फुट ऊँचो एक अधित्यका भूमि दिखार पड़ती है। यहाँकी मिट्टी कड़ी होती है। वृक्षिकी जमीन उर्बा है।

मुगल-सम्राट् अकबरके समय राजा टोडरमल्लने १३ तल्पोंको ले कर यह परगना लंगडित किया था। गौड़ और जनायार राजपूत यहाँके स्वत्याधिकारी हैं। १७०७ ई०में मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबकी जब मृत्यु हो गई, तब राज्यमें भराजकता रैख गौड़राज चन्द्रसेनने सोतापुर पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने कब्जेमें कर लिया। तभीसे उन्हींके पंशघर इस सम्पत्तिके अधिकारी हैं। स्थानीय जनवार राजपूत कुजी परगनेके सेन्दूर नगरसे यहाँ आ कर बस गये और सेन्दूरी कहलाने लगे। ये गौड़राजवंशसे पहले यहाँ आये हुए थे।

२ उक्त परगनेका एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा० २७° ४२' उ० तथा देशा० ८०° ५५' पू०के मध्य घाघरा

नदीके तट पर मल्लपुर नगर जानेके रास्तेमें अवस्थित है। जनसंख्या १०६६७ है जिसमें आधा हिन्दू और मुसलमान हैं।

इस नगरमें १३ मस्जिद, २ मकबरा, ४ हिन्दूमन्दिर और २ सिख मन्दिर हैं। इसके अलावा यहाँ १ चिकित्सालय और २ स्कूल हैं। रधि-उत्स-स्नानोके महीनेमें यहाँ एक मेला लगता है और बड़ी धूमधामसे मुह्र्रम मनाया जाता है। १३७० ई०में सम्राट् फिरोज तुगलक बहराइचमें सेवद् सलार मसाउद्का मकबरा देलाने आये। उन्होंने ही इस नगरको अपने नाम पर बसाया था। इसके ३० वर्ष बाद लहरी नामक एक पासीने इस नगर पर कब्जा कर इसका नाम लहारपुर रखा। १४१८ ई०में फौजसे प्रेरित मुसलमान सेनापति शैख ताहिर गाजोने पासियोंको समूल निहत्त कर यह स्थान अपने कब्जेमें कर लिया। ११०७ ई०में गौड़ राजपूतगण मुसलमानोंको नगरसे मगा कर खुद राज्यशासन करने लगे। सम्राट् अकबरशाहके राजमन्त्री और सेनापति राजा टोडरमल इसी नगरमें पैदा हुए थे।

लहालोट (हि० कि०) १ हँसोसे लोटता हुआ, हँसीमें मान। २ प्रेममग्न, लुभाया हुआ। ३ खुनोसे भरा हुआ, आनन्दके मारे उछलता हुआ।

लहासन (हि० खी०) यह काली में ई जिम्की कनपटोसे माथे तकका भाग लाल होता है।

लहासी (हि० खी०) १ यह मोटी रस्सी जिससे नाव या जहाज बांधे जाते हैं। २ रस्सी, छोरी। ३ रास्तेमें निकली हुई जड़।

सहिक (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम। बरोड़ देलो।

लहुल (लाहूल)—पंजाबप्रदेशके कांगड़ा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० ३२° ८' से ३२° ५६' उ० तथा देशा० ७६° ४६' से ७७° ४७' पू०के बीच पड़ता है। भू-परिमाण २२५५ वर्गमील और जनसंख्या ७२०५ है। उत्तर-पश्चिममें विस्तृत चम्बा पर्वतमाञ्च और दक्षिण-पूर्वमें फंजांगिरिमालाकी मध्यवर्ती उपरपकामूमि ले कर यह उपविभाग बना है। इसके उत्तर-पश्चिममें चम्बा मील, उत्तर और पूर्वमें लादकके भन्तगन दगम् उप-

विभाग, शिक्षण-प्रणियममें बंगला और दुम्बु तथा दक्षिण-पूर्वमें विपनि विभाग हैं।

हिमालयके शिखर पर स्थित यह उपरवका-भूमि बड़े बड़े पहाड़ोंमें भिरी है। इनमें बोध ही बर चर । और भागा नामकी दो नदियाँ तीव्र धारामें बहती हैं और तादो गोवके पास भावसमें मिल गईं हैं। पीछे पच्छिमा भागमें चम्पामें प्रवेश कर पंजाबकी सम-गल-भूमिमें बह जाती है।

इन दोनों नदीके भरवाहिका प्रदेशके दोनों किनारे हिमालयकी चोटो पहाड़ी हैं। दोनोंमें माट्टस होता है मानो उन्नी भवावह और यनताला समाच्छत्र पर्यन्त-कन्दरायो पहाड़ कर दोनों नदी इस छोटी उपरवकामें बहती है। बड़ा लाया गिरियम समुद्रको तटसे १६२२१ फुट ऊँचा है। उसमें उत्तर पूर्वमें जो सब ग्रीष्मकाला गिर उठायो गहो है, वे भी १६-२१ हजारसे कम ऊँची न होंगी।

इस पहाड़ी उपरवकाया अधिकांश स्थान ही जन शून्य है। मनुष्यके बसनेका कोई उपयुक्त स्थान दिखाने नहीं पड़ता। मगनीके दिनोंमें कुन्दुवासी प्यारे इस विभागमें भेड़ चराने आते हैं। उस समय वे अपने अपने खेतके लिये घर बना लेते हैं। वहाँ वहीं त्याग या बीज-संग्रहस्थियोंके घर और बीजगण्डु दिखाने पड़ते हैं।

पच्छिमीरवर्षी बोरुमारसे भागके किनारे अरुविधम दार्जा तक पालीवधोगी स्थान पर्यन्त नहीं है। इस उपरवका-भूमिके भीधे अधोत् समुद्रतलमें प्रायः १० हजार फुट ऊँचे स्थानमें कुछ प्रामादि दिखाने पड़ते हैं। ११३४५ फुट ऊँची अधिरवका भूमिमें बंगल-भावनक प्राय अपरिणित है। इनके ऊँचे पर इनके मिश्रण और कीड़े प्राय नहीं हैं। ११२५५ और पारदाय गिरियम ही बर तादक और पारदाय तलेवा पर चोटो राक्षता गवा है। भाग भी वलिक हीम इस पक्षमें आते आते हैं।

विषयगत मोर-परिणामक-सुवनसुपङ्ग-उनी-मद्रोमें यह स्थान देखने आते हैं। - पूर्वकालमें यहाँ श्रीरधर्मक प्रादुर्भाव था तथा यह स्थान विरहातादिके अरण्यमें था। १३४० वर्षोंमें मोर राजमें एक राजपुत्रिय सत्ता हुआ, यह यह स्थान विरहातके अधिकांशमें विरल कर लड़ाके अणकभुक्त हो गया। किन्तु समस्त तथा हीमें यह स्थान

विशेषीय अधिकांशमें विरल कर लायोन ही गया, मनुज नहीं। पर ही, इनका अनुमान किया जाता है, कि १५५१ ई०में लद्दाखकी शासनमन्त्रिका मन्कार होनेसे पहले यह घटना घटी थी। कुछ समय तक यह स्थान अङ्ग-सामन्तीके मानदलमें रहा। स्थानीय उक्त सरदारगण समी चम्पारामकी बर देते थे। भाग भी इन सरदारोंका ५५०० घंटा इस प्रदेशका शासन करता है। वे पूर्व-पूर्वमें ही इस समासिद्धा-जागीरदारकी नीर पर मोन करते आ रहे हैं। १७०० वर्षोंमें राजा जगन्निन्दके पुत्र सुप्रसिंहके राजत्वकालमें यह कुन्दुप्रान्तके अधिकांशमें हुआ। राजा जगन्निन्द सुनार-साम्राट् साहजदान और श्रीरुद्रजिन्हके सनसामयिक थे। सुप्रसिंहके अधिकांशमें १८४६ ई० तक लाहलकुन्दुप्रान्तके प्रबलमें रहा। पीछे बर अंगरेज राजके हाथ आया।

यहाँके अधिकांशमेंसे डाहुर उपाधिकायो मानक ही प्रचालन हैं। वे मोन बरनेकी राजपुत्र वनलाके हैं सही, पर मुद्रिया या तिषनीय वृत्त इनके जरीमें उकर हैं। कुलेन नामक पहाड़ी आते भारतीय और मंगोलीय ज्ञानिमें उपरम हुई है। वे सबके सब बीरधर्मोपदेशी हैं। फिर भी वर्तमान डाहुरोंके उद्योगमें यहाँ धीरे धीरे हिन्दु-धर्मको भी मोरो जगतो जा रही है। मोने उपरवका-भागमें कुछ घर प्रामान अधोपात्रके हैं, किन्तु बहुत जगद पुरोहित लोग दोनों धर्मका पालन करते हैं। कहीं कहीं विश्वनीय प्रवाका प्रमंथक दिखाने देता है। धर्मके ऊपर बहुरमें बीरजट प्रतिष्ठित है। उनमेंसे चम्पा और भागा नदीके संगम पर अरुविधम सुपगण्डाल-मठ ही प्रचालन हैं। यहाँके बानिन्द बड़े लंपट और प्रारावी होने हैं। किन्ती, खादेंद्रु और बीररुद्र प्राय ही यहाँका प्रचाल मानिध-स्थान है। अधिकांशो जनक, मोहावा, गदरे, बकरे, भेड़ और घोड़े का स्वरसाय बर लयका मुकरा पड़ते हैं। यहाँ कंठ मूढ पढ़ते हैं। धनके लक्ष्यमें कार्देंद्रुकी वायुका माप ४६" १', अंशमें ५६" १' तथा आसिनीमें ६६" १' पड़ता है। पीछे धीरे धीरे का होता जाता है।

मद्र ( दि० पु० ) एक, सुन ।  
मदर ( दि० पु० ) मद्रास प्रान्त ।  
मदर ( दि० पु० ) पीछे बंगला यह मद्रासप्रान्त में है । पर

पञ्चांग, दक्षिण गुजरात और राजपूतानेमें बहुत होता है। इसके हीरकी लकड़ी बहुत चिकनी, म्याफ और मजबूत होती है और कुर्सी, मेज, बलमारी इत्यादि सजावटके सामान बनानेके काममें आती है।

लहेरा—१ बिहारवासो जानिविशेष। लाहकी चूड़ी बना कर बेचना हो इनका ज्ञातीय व्यवसाय है। इनकी स्वतन्त्र जाति नहीं है, निम्न श्रेणीके विभिन्न सम्प्रदायसे बनी है। लाहका व्यवसाय करनेके कारण इनका लहेरा नाम हुआ है। गङ्गानदीके उत्तरी और दक्षिणी किनारे रहनेसे इनमें तिरहुतिया और दक्षिणिया नामक दो स्वतन्त्र खोब हैं। नूरी-जातिको एक शाखा लाहका गहना बनाती है, इस कारण वह भी लहेरा-श्रेणीमें मिल गई है। जालेरी बेलो।

इन लोगोंके मध्य फाजो और महुरिया नामक दो गोत्र वा श्रेणी-विभाग हैं। सपिण्ड सात पुत्रकी वाद कर ये लोग पुत्र-कन्याका विवाह करते हैं। जवान पुत्र-कन्याका विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होता। किन्तु मकसर बाल्यविवाह ही चरता है। विवाहप्रथा स्थानांय हिन्दू सी है। केवल बरके पिताको तिलक देनेकी व्यवस्था है। इन लोगोंके मध्य बहुविवाह प्रचलित है। पहली स्त्री बांघ होनेसे मर्द दूसरा विवाह कर सकता है।

विधवा सगाई मतसे विवाहित होती है। इस समय वह अकसर देवरसे ही विवाह करती है। यदि दूसरे मर्दसे विवाह करनेकी इच्छा हो, तो कर भी सकता है। स्त्रीका चालचलन बराब होनेसे मंचायत उसका विचार करती है। यदि दोष साबित हो जाय, तो पुत्र उस छोड़ सकता है। स्वजातिके मध्य यदि कोई किसी स्त्रीको कुमार्ग पर ले जाय, तो अपने समाजके प्रयानोंको भंग दे कर समाजमें मिलना है। किन्तु निम्न सम्प्रदायके दूसरे पुत्रमें भासक हो कर यदि वह रमणी पाप-पट्टमें लिप्त हो जाय, तो उसे समाजसे निकाल दिया जाता है।

बिहार प्रदेशके प्रकृष्ट हिन्दूके मध्य पुत्र-कन्याका उत्तराधिकार मिताशरके मतसे प्रचलित है। इन लोगोंमें पञ्जाबको 'चूड़ाचम्' प्रथा देखी जाती है। उससे स्त्रीके संख्यानुसार ही स्त्रीको सम्पत्ति विभक्त होती है। अर्थात् पहली स्त्रीके यदि पदमात पुत्र हो और दूसरीके अनेक, तो मृत पिताकी सम्पत्ति दो भागोंमें बाँटी जाती

है। एक भागका अधिकारी पहली स्त्रीका एकमात्र पुत्र होता है। सम्पत्ति बाँटने समय विवाहित और नोका-स्त्रीका कोई बिचार नहीं रहता।

ये लोग अपनेको कट्टर हिन्दू बतलाते हैं। भगवतीकी बारांछ देवी जान कर उर्दीकी उपासना करने हैं। किन्तु हिन्दूके दूसरे दृमरे देवकी अथवा भी नहीं करते, तिरहुतिया ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। इससे ये लोग समाजमें निन्दनीय नहीं होते। घन्दी और मोराइया नामक प्राम्य-देवताको हरपक गृहस्थ पूजा करता है। इस समय ब्राह्मणकी जकूत नहीं पड़ती। इन दो देवता-की घरका मालिक ही बकरा, बूध, रोटी और मिष्ठानादि चढ़ाता है।

ये लोग समाजमें कोइरी और कूर्मियोंके समान समझे जाते हैं। ब्राह्मण इनके हाथका जल पीते हैं। लामकी चूड़ी और खिलौने बनानेके सिवा ये लोग खेती बारी भी करते हैं।

२ एक जाति जो रेशम रंगनेका काम करती है।

३ पका रेशम रंगनेवाला, रेशमज्ञ।

लहेरियासराय—दरमङ्गा मिलेके दरमङ्गा शहरका एक हिस्सा। १८८४ ई०से सरकारी बंशालत यहाँ पर लगती है। यहाँ ४०० एन० डबल्यू रेलवेका एक स्टेशन भी है। लहोड़ (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्ति।

( पा १३।२८ )

लहा (सं० पु०) १ एक श्रष्टिका नाम। २ उनके पंशघर।

(शरदारपक ३।३।१)

लॉ (अं० पु०) १ ये राजनियम वा कानून जो देग वा राज्यमें ज्ञानि वा सुप्यवस्था स्थापित करनेके लिये बनाये जाय। २ ऐसे राजनियमों वा कानूनोंका संग्रह, व्यवहारशास्त्र, धर्मशास्त्र। जैसे,—दिम्डू लॉ, मह-भदत लॉ।

लॉगडो ( हिं० पु० ) हनुमान्जो।

लॉग प्राइमर ( अं० पु० ) छापेबानेमें एक प्रकारका टाइप, जिसका आकार आदि इस प्रकार होगा है—

'लॉग प्राइमर'।

लॉचना ( हिं० नि० ) १ किसी चीजके इस पारसे उस पार जाना, लॉचना। २ किसी वस्तुको उलझ कर पार करना।

सांघनी उड़ी ( दि० खी० ) मन्त्रालयकी एक कमारन । यह माघपारण उड़ीके ही मन्त्रालय होती है । इसमें विद्येयना यह है, कि इसमें सांघना कुछ स्थान कूट या लपि कर पार किया जाता है ।

सांघ ( दि० खी० ) विजयन, गुप्त ।  
सांघी ( दि० पु० ) एक प्रकारका धान ।  
सांघक ( दि० खी० ) सांघ देना ।  
सांघनी ( दि० खी० ) हमारनी देना ।

सांघ हाउस ( अं० पु० ) एक प्रकारका स्थान या मीनार जिसके सिर पर एक बहुत तेज रोशनी रहती है जिसमें अहाम अहाम आदिस न टकराव या भीर किसी प्रकारकी दुर्घटना न हो, प्रदानसम्भ ।

सांघ माघ-श्री—भाषामके ब्राह्मिणा पर्यंतमालाके अन्तर् एक गिरिधेनी । यह समुद्रकी तटमें ५३७७ फुट ऊंचा है ।

सांघ ( अं० खी० ) १ कनार, अथवा । २ वंकि, सगर । ३ रैनको मड़क । ४ घंटोंको यह वंकि जिसमें सिपाही रहते हैं, बाकि. लेन । ५ रैन, लकोर । ६ व्यपसावसेत, पेना ।

सांघ ( अं० पु० ) रैनवेमें यह संकेत या पत्त जो किसी रैनगाड़ीके आगरेको यह सूचित करनेके लिये दिया जाता है, कि मुझारे आगे वा आगेके लिये रान्ना ग्राहक है । बिना यह संकेत या पत्त पाये यह गाड़ी सामे नहीं बढ़ा सकता ।

सांघ बीव ( अं० पु० ) एक प्रकारका पत्त । यह पेटे टंगसे बना होता है, कि पानीमें डूबना नहीं, तैरता रहता है और डूबने हुए व्यक्तिके प्राण बचानेके काममें आता है । इसे लोहा भा बहने है । यह बरि प्रकारका होता है और प्रायः जहाजों पर रखा रहता है । यदि संयोगसे कोई मनुष्य पानीमें गिर पड़े, तो यह उसकी सहायताके लिये निकल दिया जाता है । इसे पकड़ लेनेमें मनुष्य डूबना नहीं ।

सांघ बीर ( अं० खी० ) एक प्रकारकी भाव जो समुद्रमें लोगोंके प्राण बचानेके काममें सहायता करती है । ये भावे विशेष प्रकारसे बनी हुई होती हैं और जहाजों पर लट-

कनी रहती हैं । जब मूखान या अन्य किसी दुर्घटनामें जहाजके डूबनेकी आशंका होती है, तब ये भावे पानीमें छोड़े जाते हैं । लोग इन पर चढ़ कर प्राण बचाते हैं ।

सांघरी ( अं० खी० ) १ एक स्थान जहां पट्टेके लिये बहुत सी पुस्तकें रखी हैं, पुस्तकालय । २ यह कनारा का भयन जहां पुस्तकोंका संग्रह हो, पुस्तकालय ।

सांघरी ( अं० पु० ) संग्रह देना ।

सांघी ( दि० खी० ) १ उधारे हुए धानीकी सुवा कर गलम बाजूमें धूनेसे बनी हुई कोसे, धानका गावा । २ छिमे निकामत, धुगली ।

सांघी ( का० खी० ) १ एक प्रकारका रैनको कपड़ा । २ एक प्रकारको ऊनी सादर । ३ धाराबकी लतपट ।

सांघ ( दि० पु० ) लीकी, गिमा ।  
सांघ-भय ( अं० पु० ) दयालता ।  
सांघरी ( दि० खी० ) बकड़ा देना ।

सांघरी ( अं० पु० ) यह लटकन जो घड़ीकी या और किसी प्रकारकी घड़नेकी अंतरीमें प्रोमानके लिये लगाया जाता है और नीचेकी ओर लटकता रहता है ।

सांघसाम—सिपुताके अन्तर्गत एक गट्टसाम । यह आस्ताम संमाल रैनधेका एक जंकाग है ।

सांघरीगिरी—भाषामप्रदेशकी जवली शीतप्रानाके लिसनेमें अथ स्थल एक प्राय । यह सरमाकी शाखा हरिनदी नीरवली बौरपाटमें ६ मोल दूर और समुद्रपृष्ठमें १२०० फुट ऊंचा है । यहां एक छोटी कोवलीकी काव है । इस स्थानका कोवला प्रायः अंगरेजों बड़िये कोवलीके समान है । यह बड़िये-सरकारके मानदतमें है । सांघरीगिरी कुनीगाड़ीमें बौरपाट तथा बर कोपला बांधारि करवा भा इसमें बहुत सव्य पड़ता था । इस कारण भाग बज घड़ने कोपला निराला नहीं जाता ।

सांघावाटर—बर्मा में सिन्धुनदीके काठियावाड़ निवासके मानवाड़ प्रांतमें एक छोटा सामान्यस्थल । यहांके मरु-दार बड़िया गावकवाड़की वार्षिक १५०० और सुवा-पट्ट माराबकी २४) साठकर देते हैं ।

सांघरी ( अं० खी० ) सांघरीकी मनुष्यार एक कोवलीकी का नाम । दुर्गासमयपर्यन्तिये 'सांघरी'की नाम । इस समयमें पूजा करनेकी होती है ।

लोकच ( सं० पु० ) लोकच देखो ।

लाक्ष ( सं० त्रि० ) लाक्ष या लक्ष्मी शब्दका अपव्यय ।

लाक्षकी ( सं० स्त्री० ) सीताका एक नाम ।

( पद्यपु० उत्तरार्ध ५५ अ० )

लाक्षण ( सं० त्रि० ) १ लक्षण सम्बन्धी, लक्षणका ।

२ लक्षणवित्, लक्षण जाननेवाला ।

लक्षणि ( सं० पु० ) लक्षणका गोत्रापत्य ।

लाक्षणिक ( सं० पु० ) लक्षणमर्घीने देया वा लक्षण (कद्रु-

क्यादि सूत्रान्तात् ङक् । वा ४।२।६०) इति ङक् । १ लक्षणा-

मिक्, यह जो लक्षणोंका ज्ञाता हो । २ यह छन्द जिस-

के प्रत्येक चरणमें ३२ मात्राएँ हों । ( त्रि० ) ३ जिससे

लक्षण प्रकट हो । ४ लक्षणसम्बन्धी ।

लाक्ष्य ( सं० त्रि० ) लक्षणवित्, लक्षण जाननेवाला ।

लाक्षा—कामरूपके दक्षिणमें प्रवाहित एक नदी । (काशिका-

पु० १७ अ०) रामपालके दक्षिणमें भी यह नदी बहती है ।

( देशवर्णो )

लाक्षा ( सं० स्त्री० ) लक्ष्यतेऽनयेति लक्ष ( गुरोश्च ह्रस्वः ।

पा ३।३।२०३ ) इति अ-टाप्, यद्वा-बाहुलकान् राजतेरपि

सा' कपिलिकादिट्वात् या लट् ( उप् ३।६२ ) रत्त्वर्ण

वृक्षनिर्यासविशेष, लाक्ष, लाह । संस्कृत पर्याय—राक्ष,

अतु, याय, अलक, द्रु, मामय, खदिरिका, रत्ता, रत्नमाता,

पलङ्क्या, कृमिहा, द्रु, मश्याधि, अलकक, पलाशो, मुद्गिणी,

दीप्ति, जम्बुका, गन्धमादिनी, नीला, द्रवरसा, पित्तारि ।

भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध

है । हिन्दी—लाख, लाह; बङ्गला—गाला; गुजरात—लाक;

तामिल—कोमुयुचिकि; नीलङ्ग—कोमलक, लच्छुक, लक्ष;

मलयालम्—अम्बुलु; प्राल—पेजिजक; जिङ्गपुर—लफर;

महाराष्ट्र—लाण; कलिङ्ग—अरण्ड ।

असना, घट, महुआ; पलाश आदि वृक्षोंके छिलकेमें

लाक्षका कीड़ा ( *Coccus lacca* ) रहनेके कारण लाल

रंगका जो निर्यास निकलता है उसीको लाक्षा कहते हैं ।

कोई कोई कहते हैं, कि लाक्षका कीड़ा वृक्षका छिलका

वा कर जो मल त्याग करता है वही जलवायु और वृक्षके

रसगुणसे लाक्षामें परिणत हो जाता है । इस लाक्षा

वा लाहके लिये भारतवर्षके नाना स्थानोंमें खेतो होती

है । वहाँके लोग एक वृक्षके लाक्षा कीट ले कर दूसरे

वृक्ष पर छोड़ देते हैं । उस कीटसे वृक्षके छिलकेमें

नये कीटकी उत्पत्ति होती है । धीरे धीरे यह नूतन कीट-

घण्टा वृक्षको छा लेता है । जब लाक्षाकीटसे वृक्षका

आपाद मस्तक भाच्छन्न हो जाता है, तब यह वृक्ष जीता

नहीं रहता, रसहीन हो कर उसके पत्ते झड़ जाते हैं ।

उसके तनेसे ले कर पत्रत्रयादि तक लाक्षामलसे भावृत

हो कर मलसंयुक्त हरिद्राम लोहितवर्णमें रंग जाता है ।

लाक्षापालनकारी उपयुक्त समयमें यह लाक्षामल परि-

ष्पक हुआ है वा नहीं, जान कर उसे तोड़ लेते और बाजार-

में बेचते हैं । यह लाक्षा देशी घाणिज्यके पण्यद्रव्यमें

गिनो जाती है । उससे नाना प्रकारके खिलौने बनते हैं ।

खिलौने बनानेसे पहले उसे जलमें भिगो रखते हैं । जल

धीरे धीरे लाल हो जाता है । यह लाल जल सुखाने पर

गाढ़ा होता है । पीछे जो लाल रंग पदोंमें जम जाता है

उसे पुनः सुखा कर 'Lac dye' तय्यार करते हैं । यही

घाणिज्यद्रवरूपमें बाजारमें विक्रता है । भयता नामक

सूती काड़ा इसी लाक्षा-रंगसे बनता है ।

भिगोने और परिष्कार करनेके बाद लाल एक छोटे

बीजकी तरह नूण हो जाती है । उसे लाकदाना वा seed-

lac कहते हैं । उन दानोंकी भागकी गर्मीमें पोड़ी रजनके

साथ गला कर जो लाक्षका पत्तर ( shell-lac ) बनाया

जाता है उसका नाम चपड़ा है । सुतामकी जैसी छोटी

और गोल लाक्ष ( Button-lac ) कहलाती है ।

भारतवर्षके स्थानविशेषमें लाक्षकी उत्पत्ति और परि-

ष्पक स्वतन्त्र है । पश्चिम बङ्गाल और भासामके पहाड़ों

प्रदेशमें तथा मध्यप्रदेशके नाना स्थानोंमें लाक्षा बहुतायत-

से पाई जाती है । मुकवदेशमें इसकी खेती बहुत कम देवी

जाती है । पञ्जाब, बम्बई और मद्राज विभागोंमें भी

उतनी नहीं होती । प्रथम कहीं कहीं पर्याप्त और कहीं

कहीं अन्य उत्पन्न होता है । श्याम, सिंहल, पूर्वभारतीय

द्वीपसूत्रोंमेंसे किसी किसी ठीगमें तथा चीन-साम्राज्यमें

बहुत कम लाह उपजती है । इन सब स्थानोंमेंसे श्याम,

भासाम और मद्राजकी लाक्षा सर्वोत्कृष्ट है ।

भारतवर्षमें लाक्षाका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे,

संभयता वैदिक कालसे होना भाषा है । मनुवर्दिता और

महाभारतमें लाक्षाका उल्लेख है । 'दुर्वाचन कर्तृ'क पद्य-



पड़नेसे लाक्षाकीट मर जाते हैं। इसके सिवा पिपी-  
लिकामात्र ही इनके अपकारक हैं। ये सब वृक्ष पर  
चढ़ कर लाक्षाकीटके मादा-कोटर (Female cell) में  
घुस जाते और उस पर रखे हुए मोठा मोमके जैसा  
सफेद छिलका धाने लगती है। इससे कोटरके कीड़े  
परिपुष्ट होने नहीं पाते। वायु और उष्णतासे प्रवृत्तासे  
नष्ट हो जाते हैं। जिस वृक्षमें चिउंटी लगती है उसकी  
लाह पुष्ट हो नहीं सकती। फिर Galleria और Tinea  
श्रेणीके और भी दो प्रकारके कीट इनके शत्रु हैं। ये  
केवल खी-लाक्षाकीटके रंगका अंश और छोटे छोटे  
कीड़ोंको खाते हैं।

रासायनिक परीक्षा द्वारा लाक्षामें विभिन्न पदार्थका  
होना साबित हुआ है। उन सब पदार्थोंमें विशेष विशेष  
गुण रहने तथा उसके स्वतन्त्र स्वतन्त्र कार्यमें व्यवहन  
होनेके कारण वाजारमें उसको विशेष मांग है। अध्या-  
पक हाचेटने विश्लेषण द्वारा देखा है, कि पल्लवमण्डित  
लाक्षामें (Stick lac) ६८ भाग रजन, १० भाग रंग, ६  
भाग मोम, ५१ भाग दूधके जैसा पदार्थ, ६१ भाग  
मांड़ और ४ भाग धूल आदि है। लाक्षाचूर्णमें (cell-  
lac) ८८.५ रजन, १२.१ रंग, ४१ मोम और २ भाग  
दूध तथा Shell-lac-में ६० भाग रजन, १० भाग रंग, ४  
भाग मोम और २८ भाग नाइट्रोजन सम्बन्धीय पदार्थ  
रहता है। उनमारडोरियेनका कहना है, कि Shell lac-  
का रजन नामक पदार्थ अलकोहल और इधरसे मल जाता  
है। फिर उस धूने जैसे पदार्थका कुछ अंश अलकोहलमें  
गलता है, पर इधरमें नहीं गलता। यह दाना देता है  
उसमें लाक्षाकीटकी चर्बी (Unaponified fat) तथा  
मोलिब्ड और मासार्निक एसिड है। कुछ मोम और  
Laccine भी पाया जाता है।

दायादा पत्तर बनानेका तरीका—पहले पल्लवमण्डित  
नाशकी जनिमें पीस कर चूर्ण करना होता है। उसमें-  
से घास भूसा चुन कर फैकना होता है। पीछे उन  
लाक्षके काएटोंकी क्रमशः फल बीजकी तरह छोटा करनेके  
लिये तीन या चार प्रकारके जांतोंमें लगातार पीस और  
चूर्ण कर छननीसे छान लेते हैं। इस प्रकार छानते छानते  
अब केवल लाक्षा चूर्ण मज पर गिरने लगता है घास

भूसा कुछ भी नहीं रहता, तब जिनका उसे उठा कर सू-  
में फटकती है। सूयमें परिष्कार करने समय ये अपरि-  
ष्कार लाक्षाचूर्ण अलग रख कर परिष्कार लाक्षाके दानों-  
को लाहका पत्तर बनानेके लिये उठा रखती है। अपरि-  
ष्कार लाक्षाचूर्ण चूड़िदारोंके यहाँ येव लिया जाता है।  
ये उसे मला कर भारतीय स्त्रियोंके हाथका अलङ्कार  
बनाने है।

इसके बाद उन परिष्कृत दानोंको एक लंबे नलमें भर  
जलमें छोड़ देते हैं। नलके भीतर जल रहनेसे लाहका  
रंग धीरे धीरे जलमें मिल कर लाल हो जाता है। ये सब  
दाने जलमें हिलानेसे मल कर छोटे छोटे दानोंमें परिणत  
हो जाते हैं तथा वर्ण पदार्थ (Colouring matter)  
लाक्षासे एकदम अलग हो जाता है। अगभर उस रंगीन  
जलको घिरानेके लिये एक बड़े चदबच्चेमें २४ घंटे तक  
रख देते हैं। नी उकी तरह चदबच्चेको पेदीमें जव रंग  
जम जाता है, तब बड़ी सावधानीमें ऊपरका जल  
चदबच्चेसे निकाल दिया जाता है। पीछे उस मशिन  
रंगीन पदार्थको अच्छी तरह छान कर एक बरतनमें रखते  
हैं। वहाँ सुखने पर जव यह गाढ़ा हो जाता, तब उसे  
बरतनके आकारमें गण्ड खण्ड करके धूपमें फिर सुखा  
लेते हैं। इसीका नाम 'लाहकाय' है।

उपरोक जलघीत लाक्षाकणको 'Seed lac' कहते हैं।  
उसे आयुनवासमें कागोसागसे तरल करके पात्रमें लगे  
हुए उच्च गालीपथ द्वारा रजन मिलाई जाती है। इससे  
भीतरकी लाक्षा और भी तरल हो जाती है, बरतनमें  
लगने नहीं पाती।

पूर्वकथित बरतनके चारों ओर दूस्नेके कुछ मल सजे  
रहते हैं। उनका ऊपरो भाग ५५ कोणमें झुका होता है।  
भीतर पोल और हमेजा गरम जलसे भरा रहता है।  
जल बहुत धोड़ा गरम होता है, क्योंकि अधिक गरम होने-  
से लाह ठंडा होने नहीं पाती इस कारण वह जम भी  
नहीं सकती। फिर यदि लाह बिलकुल ठंडा हो जाय, तो  
बहुत जल्द बड़ी हो जानेकी सम्भावना है। ऐसी  
अवस्थामें उसमें तरल लाह लगा कर बीचनेसे यह उन  
दूस्नेके रंगोंमें भटक जायगी। अतएव नियमित उत्तम  
जलसे उन दूस्नेके कोने भरे रहने पर एक घादमोंके





भावप्रदायकं मनसो लाक्षा वर्णकर, शीतल, बलकर, स्निग्ध, लघु, कफ, पित्त, भ्रम, हिका, कास, ईश्वर, मण, वरदात, विसर्प, छमि और कुष्ठरोगनाशक है। भैषज्यरत्ना-बलीमें लिखा है, कि नई तथा मिट्टीरहित लाक्षाका प्रयोग करना चाहिये।

“लाक्षा च नूतना प्राक्षा मूत्रिकादि विवर्जिता।”

( भैषज्यरत्ना० )

२ शतपत्री । २ सेवती ।

लाक्षागुग्गुलु—आयुर्वेदोक्त एक प्रकारकी औषधि। प्रस्तुत प्रणाली—लाक्षा, हाड़जोड़ा, भर्जुन-छाल, अभ्यगन्धा प्रत्येक एक तोला और गुग्गुलु ५ तोला ले कर एक साथ मईन करे। पीछे इसका टूटे हुए अंगमें मेलये दे। इससे टूटा हुआ अंग और किसी स्थानका मचकना दूर हो जाता और सम्पूर्ण शरीर बसकी तरह मजबूत होता है।

लाक्षागृह ( सं० पु० ) लाक्षाका वह घर जिसे दुर्वाचनने पांडवीको जला देनेकी इच्छासे बनवाया था। भाग लगनेसे पहले ही सूचना पा कर पाण्डव लोग इस घरसे निकल गये थे।

लाक्षातक ( सं० पु० ) लाक्षोत्पादकस्तकः । पलायका वृक्ष। लाक्षातैल ( सं० ह्यो० ) लाक्षादिभिः पक्वं तैलं । १ पक तैल-विशेष। लाक्ष आदिसे यह तैल तैयार किया जाता है। इसीसे इसको लाक्षातैल कहते हैं। यह तैल दो प्रकारका है,—स्वल्प और गृहत् । प्रस्तुत प्रणाली—

स्वल्पलाक्षातैल—सम परिमाण लाक्षा, हरिद्रा और मज्जीठ द्वारा तैल पका कर उसमें गन्धद्रव्य डाल कर उतारना होता है। यह तैल दाद, गीत और ज्वरनाशक माना गया है। ( मूलनेप )

२ बालरोगधिकारमें, तैलमेद । इसके बनानेका तरीका—तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका काष्ठ ४ सेर, दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ—रास्ना, रक्तचन्दन, पुट्ट, अभ्यगन्धा, हरिद्रा, दाहदरिद्रा, सोर्वा, देवदारु, यष्टिमधु, मूर्धामूल, कटकी और रेणुक सब मिला कर १ सेर, इन सब कल्कों द्वारा यथाविधान तैल पाक करना होता है। इसकी मालिश करनेसे बालकके ज्वरादि गान्य होते और बालको घृष्टि होती है। ( भैषज्यरत्ना० बाष्पयोगविधा० )

दूसरा तरीका—कूटी हुई लाक्ष ३ दाराब, जल १६

शराब, इन्हें २१ बार दोलायत्तमें परिधुत करके १६ शराब प्रदण करे। अथवा लाक्षा ८ दाराब, जल ६४ शराब, पक कर १६ दाराब। पीछे तिलतैल ४ दाराब, लाक्षा-रस वा काष्ठ १६ शराब, दहीका पानी १६ दाराब, कल्कार्थ—सोर्वा, हल्दी, मूर्धामूल, पुट्ट, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, असगंध, देवदारु, मोधा और रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला, यथाविधान पाक करे। पाक मिद होने पर कपूर, जिहारस और नली प्रत्येक २ तोला ले कर ऊपरसे डाल दे। यह तैल ज्वरादि रोगनाशक है। ( सं० पु० )

लाक्षादिनैल—ज्वररोगमें उपकारक तैलीयविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, पुरानी ब्रांजी २४ सेर, कल्कार्थ—लाक्ष, हल्दी, मज्जीठ कुल मिला कर १ सेर। इस तैलकी मालिश करनेसे ज्वर तथा दाह दूर होता है।

महालाक्षादि तैल नामक इस प्रकारका एक और तैल तैयार होता है। इसके बनानेका तरीका—मूर्च्छित तिल-तैल ४ सेर, लाक्षाका काष्ठा १६ सेर ( लाक्षा ८ सेर, ६४ सेर जलमें पाक कर शेष १६ सेर ), दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ—सोर्वा, हरिद्रा, मूर्धामूल, पुट्ट, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, अभ्यगन्धा, देवदारु, रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला। पाक यत्न होने पर कपूर २ तोला, जिहारास २ तोला और नली २ तोला इस तैलमें मिलाये। इस तैलको मालिश करनेसे विषम ज्वर आदि नाना रोग विनष्ट होता है।

लाक्षाके छः गुने जलमें अर्धात् १८ सेर जलमें ३ सेर लाक्षा कूट कर छोड़ दे। तदनन्तर यह जल दोलायत्तसे परिधायित कर सिर्फ १६ सेर जल ले लिये और बाकी छोड़ दे अथवा ८ सेर लाक्षाको ६४ सेर जलमें पका कर उसका एक पाद काष्ठ औषध बनानेमें प्रयोग किया जा सकता है। ( भैषज्यरत्ना० ज्वराधि० )

लाक्षादिधर्म ( सं० पु० ) सुधुनोक्त लाक्षादि गणमेद । दि गण यथा—लाक्षा, रेवन, कूटज, अभ्यमार, कटफल, हरिद्रा, दाहदरिद्रा, निम्ब, सप्तर्ष्यद, मालती और सावमाणा।

( गुभुत सू० १८ प० )

लाक्षाघनैल—मुक्षरोगमें हितकर एक औषधि। इसके बनाने-का तरीका—तिलका तैल ४ सेर, लाक्षाका रस ४ सेर,



माधव शाशके मतसे लाक्षा वर्णकर, शीतल, बलकर, स्निग्ध, लघु, कफ, पित्त, भ्रम, हिक्का, कास, उ्वर, मण, वरक्षत, विसर्प, छमि और कुष्ठरोगनाशक है। मैपत्र्याला-यलीमें लिखा है, कि नई तथा मिट्टीरहित लाक्षाका प्रयोग करना चाहिये।

"लाक्षा च नूतना माक्षा मृत्तिकादि विवर्जिता।"

( मैपत्र्याला० )

२ शतपत्नी । ३ सेवती ।

लाक्षागुणुलु—अयुर्धेदोक एक प्रकारकी औषध । प्रस्तुत प्रणाली—लाक्षा, हाइजोडा, भर्तुन-छाल, अभ्यगन्धा प्रत्येक एक तोला और गुणुल ५ तोला ले कर एक साथ मर्दन करे। पाँछे इसका टूटे हुए अंगमें म्रलेप दे। इससे टूटा हुआ अंग और किसी स्थानका मरुफना दूर हो जाता और समूचा शरीर यज्ञको तरह नजबूत होता है। लाक्षागृह ( सं० पु० ) लाघका यह घर जिसे दुर्घोषतने पांडवोंको जला देनेकी इच्छासे बनवाया था। आग लगनेसे पहले ही सूचना पा कर पाण्डव लोग इस घरसे निकल गये थे।

लाक्षातह (सं० पु०) लाक्षोत्पादकस्तवः । पलाशका वृक्ष । लाक्षातैल (सं० क्री०) लाक्षादिभिः पक्वं तैलं । १ एक तैल-विशेष । लास भादिसे यह तैल तैयार किया जाता है । इसीसे इसको लाक्षातैल कहते हैं। यह तैल दो प्रकारका है—स्वल्प और वृहत् । प्रस्तुत प्रणाली—

स्वल्पलाक्षातैल—सम परिमाण लाक्षा, हरिद्रा और मजीठ द्वारा तैल पका कर उसमें गन्धद्रव्य डाल कर उतारना होता है। यह तैल दाद, शीत और ज्वरनाशक माना गया है। ( गुणधेप )

२ बालरोगाधिकारमें, तैलमेद । इसके बनानेका तरीका—तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका काष्ठ ४ सेर, दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ—रास्ना, रजचन्दन, कुट्ट, अभ्यगन्धा, हरिद्रा, दादहरिद्रा, सोर्वा, देवदारु, यष्टिमधु, मूर्वामूल, कटकी और रेणुक सब मिला कर १ सेर, इन सब कल्कों द्वारा यथाविधान तैल पाक करना होता है। इसकी मालिश करनेसे बालकके ज्वरादि नाश होते और बलकी वृद्धि होती है। ( मैपत्र्याला० बाधेगणिका० )

दूसरा तरीका—कूटी हुई लाघ ३ शराव, जल १६

शराव, इन्हें २१ बार दोलायन्तमें परिधुत करके १६ शराव प्रदण करे। लघया लाक्षा ८ शराव, जल ६४ शराव, पक कर १६ शराव । पाँछे तिलतैल ४ शराव, लाक्षा-रस वा काष्ठ १६ शराव, दहीका पानी १६ शराव, कल्कार्थ—सोर्वा, हल्दी, मूर्वाका मूल, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, अमरगंध, देवदारु, मोघा और रजचन्दन प्रत्येक २ तोला, यथाविधान पाक करे। पाक मिद्ध होने पर कपूर, शिलारस और नलो प्रत्येक २ तोला ले कर ऊपरसे डाल दे। यह तैल ज्वरादि रोगनाशक है। (सर०) लाक्षातैल—ज्वररोगमें उपकारक तैलीयविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, पुरानी शंजी २४ सेर, कल्कार्थ—लाण, हल्दी, मजीठ कुल मिला कर १ सेर । इस तैलकी मालिश करनेसे ज्वर तथा दाह दूर होता है।

महालाक्षादि तैल नामक इस प्रकारका एक और तैल तैयार होता है। इसके बनानेका तरीका—मूर्च्छित तिल-तैल ४ सेर, लाक्षाका काढ़ा १६ सेर (लाक्षा ८ सेर, ६४ सेर जलमें पाक कर घेप १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ—सोर्वा, हरिद्रा, मूर्वामूल, कुट्ट, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, अभ्यगन्धा, देवदारु, रजचन्दन प्रत्येक २ तोला । पाक खतम होने पर कपूर २ तोला, शिला-रस २ तोला और नलो २ तोला इस तैलमें मिलाये। इस तैलकी मालिश करनेमें विषम ज्वर भादि माना रोग विनष्ट होता है।

लाक्षाके छः गुने जलमें अर्थात् १८ सेर जलमें ३ सेर लाक्षा कूट कर छोड़ दे। तदनन्तर यह जल दोलायन्तमें परिधायित कर सिक १६ सेर जल ले लिये और बाकी छोड़ दे अथवा ८ सेर लाक्षाको ६४ सेर जलमें पका कर उसका एक पाद काष्ठ औषध बनानेमें प्रयोग किया जा सकता है। ( मैपत्र्याला० ज्वराधिकार० )

लाक्षादिघर्ग (सं० पु०) सुधुतोका लाक्षादि गणमेद । ये गल यथा—लाक्षा, देवत, कूटम, अभ्यमार, कटफल, हरिद्रा, दादहरिद्रा, निम्ब, समच्छर, मालती और सायमाणा ।

( गुणुत हू० १८ म० )

लाक्षाघर्तल—मुच्छरोगमें हितकर एक औषध । इसके बनाने-का तरीका—तिलका तैल ४ सेर, सायका रज ४ सेर,



मिट्टी मिलती है। कुद्दालसे यह बाटू उठा कर फेंकनेसे यह गड़दा जलसे भरा जाता है। इसी प्रकार कूप, तड़ाग और पुष्करिणी आदि काट कर जल निकलने पर नारियलका छिलका मिगोया जाता है।

यहां बहुतायतसे नारियलका पेड़ होता है। यहां घूँहेकी छोड़ दूसरा जानवर दिखाई नहीं पड़ता। यह नारियलका जागो दुग्धम है। कलुशा और मछली भी बहुत पाई जाती है।

प्रायः हाई सी वर्ष तक यह द्वीपपुत्र कोन्नूर राज्यके शासनाधीन रहा। १५५० ई०में कौलत्तिरी-राज प्रसिद्ध चिरकलने यहांके सरदारको जागीरस्वरूप दिया। इसके बहुत दिन बाद मालद्वीपके सुलतानसे मिनिहोई द्वीप ले लिया गया। १७८६ ई०में उत्तर-द्वीपके अधिपतिपॉने बागो हो कर राजाका अधीनता-बंधन तोड़ महिहुर-राजकी वधुता स्वीकार कर ली। १७६६ ई०में कनाडा विभाग इण्डो-एशिया कम्पनीके हाथ आया। तभीसे यह द्वीप कोन्नूरके नवायजादीकी छाँटाया नहीं गया, सिर्फ उनके राजस्वसे ५२५० रुपये अंगरेजराजने घटा दिये। उसी समयसे यह द्वीपमाला दो विभागमें हो गई है।

१८५५से ले कर १८६० ई० तक दक्षिण द्वीपका खजाना धाडी पड़ जानेके कारण उसे वसूल करनेके लिये न्यासी नियुक्त हुए। तदनन्तर १८७७ ई०में पुना राजस अदा नहीं होने पर उक्त विभाग मलबारके रॉजल्व संग्राहक (Collector of Malabar) के अधीन सौंपा गया था। इससे रिजाया नाखुद हो गई। अङ्गरेज-सरकार उत्तर-विभागमें तथा कोन्नूरके अली राजा अपने अधिकृत विभागमें उत्पन्न नारियलका छिलका वहां काड़ाईसे वसूल करते हैं। ये दोनों ही प्रजामोंसे निर्विघ्न मूल्य दे कर छिलका खरीद करते और उंगकूलके बाजारोंमें ऊँचे मूल्य पर बेच डालते हैं। मूलधनके प्रत्याया हो बचत होती है यह दोनों भापसमें बाँट लेते हैं। अली राजा खुद जहाँका शासक करते हैं, उससे लिये रहें। अङ्गरेज सरकारकी पार्षिक दस हजार रुपया वेनागी देना पड़ता है।

अङ्गरेजराज-शामिल कनाडाके अधीन द्वीपभागमें

नारियलके छिलकेका दाम घटना बढ़ता नहीं है। अङ्गरेज कर्मचारी जावल और नगद रुपये दे कर उसका मूल्य चुका देते हैं। मलबाराजके अधिकृत भूभागमें उमका ठीक उलटा है। यहांके देशी सरदार लोग छिलकेका मूल्य ले कर राजाके साथ बड़ा गोलमाल करते हैं। इससे राजाका बड़ा नुकसान होता है। नारियल, कौड़ो, बटुवका खप्पर आदि द्रव्यसे राजाका वाणिज्य चलता है।

कनाडाके अधीनका द्वीप एक सब मजिस्ट्रेट और मुनसफ द्वारा तथा कोन्नूर द्वीपपुत्र भर्मानोके द्वारा परिचालित होता है। यहांके अधिपति शांतिप्रिय हैं। घाटाविवाद होने पर गाँवके प्रधान द्वारा उसका निबेटा करा लेते हैं।

जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है जिनमेंसे अधिकांश मुसलमान हैं। उपकूलवासी मापिलनामोंकी तरह वे भी पहले हिन्दू थे। उनमें एक ऐसी कियदन्ती है, कि उनके पूर्वपुत्रपगण धार्मिक प्रधान राजा चेरमान पेदमलकी खोजमें मलयालसे मद्राकी ओर बढ़े थे। रास्तेमें इस द्वीपसे टकरा कर जहाज टूट गया और वे लोग यहाँ उतरनेमें बाध्य हुए। यहांके वाशिल्लू पहले हिन्दू थे इसमें सन्देह नहीं। सम्भवतः तीन सौ वर्ष पहले वे इस्लामधर्ममें दक्षिण हुए थे। उनको कन्थाप ही पितृमम्पत्तिकी अधिकारिणी होती है। पुत्रपगण वाणिज्यके लिये या राजकर्मकी खोजमें मलबार उपकूल आते हैं। लड़के भी पिताके साथ हो लेते हैं। इस कारण द्वीपसमुद्रमें खियोंकी ही संख्या अधिक देखी जाती है।

जिपॉ निबंधों वे नगरमें घूमती फिरती हैं। नौका रोनेके मियाँ वे सब काम करती हैं। वे शूघट नहीं देती। यहांके अधिपति मलयालम् भाषा बोलते लेकिन भरवी भाषा लिखते पढ़ते हैं। मिनिहोई द्वीपकी भाषा मालद्वीपी और मलयालम् मिश्रित है। लक्ष्मप्रसाद (सं० पु०) लाक्षायाः प्रसादो पदमाय्। पट्टिका लोप, पटानी लोप।

लक्ष्मप्रसादन (सं० पु०) लाक्षा प्रसादवतीति न सखिनि ल्यु। रकालोप, लाल लोप। पदाय—क्युक् पट्टिका, पटी। (भाष०)



आदान-प्रदान नदी' चलना । बालाजोको प्रतिपूर्ति और तिषपतिकी ध्युद्धोवा मूर्त्ति ही उनकी उपास्य देवी हैं । विवाहादिमें ये लोग शराब पीने हैं ।

स्त्रियां और बाल बच्चे न्यूड़ी बनानेमें सुदपको मदद देने हैं । ये लोग स्थानीय कुनचियोंसे सामाजिक मर्यादा में ऊँचे तथा ब्राह्मणोंसे नीचे हैं । सिमगा, दशहरा, दीवाली पकादेशी और शिवरात्रि पर्यन्त ये लोग उपायासादि करते हैं । जातकर्म और अन्त्येष्टिकी छोड़ कर इनके और कोई संस्कार नहीं है । जातकर्म बहुत कुछ उच्च हिन्दू-सा है । विवाहपर्यन्त स्त्रियां मारवाड़ीभाषामें गाती हैं । ब्राह्मण आ कर कन्यादान करते हैं । सिन्दूर-दान ही विवाहका प्रधान अङ्ग है । विवाहके बाद घर कन्याको अपने घर ले आता तथा आत्मीयकुटुम्बोंकी एक भोज देना है । बालिकाबधू प्रस्तुतकी होनेसे तीन दिन शशीच रहता है । चौथे दिन उसे उबटन लगा कर गरम जलसे नहलवाया जाता है । पीछे स्त्रियां आ कर बालिका-की गोदमें स्थायल, नारियल, पञ्चफल और पान देनी हैं । इसके बाद यह स्वामिसद्वास करने पाती है । एक वर्षसे कम उमरवाले बच्चोंके मरने पर उन्हें गाड़ दिया जाता है । उससे ऊपर होनेसे दाहकर्म होता है । मृतका पुत्र या निकट आत्मीय दाहके बाद क्षीरकर्म करके शुद्ध होते हैं । उस दिन यह अपने हाथमें पाक नहीं करता, किसी आत्मीयके घरमें निचड़ी आ कर रहता है । तीसरे दिन ये मृतकी भस्मराशिकी एकल करते हैं तथा दूदी और भात पाते हैं । दशम दिन ब्राह्मणको बुला कर मृतके उद्देशसे पिण्ड तथा ग्यारह दिन आत्मीय कुटुम्बोंकी एक भोज देते हैं । छः मासमें अर्द्धवार्षिक श्राद्ध तथा वर्षके अन्तमें वार्षिक श्राद्ध होगा है । उस समय भी ये प्रातिभोज देते हैं । महालयके दिन भी ये पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध करते हैं । जातीय पञ्चम्यत सामाजिक विवाहकी निष्पत्ति करते हैं । इन लोगोंमें घाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा विवाह प्रचलित है ।

लाग ( हि० खी० ) १ संपर्क, लगाव, ताल्लुक । २ लगान-पद, लगन । ३ प्रेम, मुहब्बत । ४ युक्ति, तरकीब । ५ प्रति-स्पर्धा, पट्टा ऊपरी । ६ पद लाग आदि जिसमें कोई

विशेष बँगल हो' और जो जल्दी समझमें न आये । ७ जाड़, टोगा । ८ पैर, दुश्मनी । ९ धानकी फूँक बरतैवार किया हुआ रस, भस्म । १० एक प्रकारका नृत्य । ११ भूमि फर, लगान । १२ यह चेज जिससे चेचकका भयवा इसी प्रकारका और कोई टोहा लगाया जाता है । १३ दैनिक भोजनकी सामग्री, रमज । १४ यह नियत घन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों, भादों, नाइयों आदिकी अलग अलग रस्मोंके सम्बन्धमें दिया जाता है ।

लागडाँट ( हि० खी० ) १ प्रकृता, दुश्मनी । २ प्रति-स्पर्धा, नट्टा ऊपरी । नृत्यकी एक क्रिया ।

लागत ( हि० खी० ) यह पक्ष जो किसी चीजकी तैपारी या बनानेमें लगे, कोई पदार्थ प्रस्तुत करनेमें होनेवाला ध्यय ।

लागुङ्ग ( सं० खि० ) १ लगुङ्गुक, जिसके हाथमें लाठी हो । २ प्रहरी, पहरा देनेवाला ।

लाघक ( सं० पु० ) हल्कीमक नामक रोग ।

लाघय ( सं० श्लो० ) लघोर्भावः कर्म वा ( इगन्ताय सपु-श्रीर्त् । वा ५।१।११ ) इति अण् । १ लघुत्व, लघु होनेका भाव । २ अल्पत्व, छोड़ा होनेका भाव, कमी । ३ हाथकी सफाई, कुर्ता । ४ आरोग्यता, मोरोगता, तंदुरुस्ती । ५ नपुंसकता । ( अथ० ) ६ कुर्ताने, सहजमें ।

लाघयापन ( सं० पु० ) एक ग्रन्थकार । इन्होंने एक धीतस्तूल और उसका माध्य प्रणयन किया ।

लाघयिक ( सं० खि० ) संक्षिप्त, छोड़ा ।

लाङ्क ( सं० खी० ) १ कमर, कटि । २ परिमाण, मि-दार ।

लाङ्कापनि ( सं० पु० ) लङ्काका अर्थव ।  
( पा० ५।१।१५८ )

लङ्कापन ( सं० पु० ) लङ्काका गोहापस्य ।  
( पा० ५।१।१६ )

लाङ्ग ( सं० खी० ) धोतीका यह भाग जो शीर्ष जाँघोंके नीचेसे निकाल कर पीछे हो और कमरसे घोंस लिया जाता है, काष्ठ ।

लाङ्गल ( सं० पु० ) लङ्गलानि लगे गनी शब्दका कञ्च् ।



लाक्षारस ( सं० पु० ) लाक्षयाः रसः । महावर जो पानीमें लाव डीटा कर बनता है ।

लाक्षापटी ( सं० स्त्री० ) शीपयशियेय । प्रस्तुत प्रणाली—लाव, भेला, भजयावन, सफेद शपरजिताको छाल, अर्जुनके फल और फूल, विडंग, माखी और गुग्गुलु इन सबको एकत्र चूर्ण कर गोली बनानी होगी है । इस शीपयको घरमें रखनेमें सांप तथा चूहा आदि घरमें पैड नहीं सकता । ( संस्कारस्य पापदुर्गोपाधिक० )

लाक्षाशूक्ष्ण ( सं० पु० ) १ क्षीणाशूक्ष्ण, कोसमका पेड़ । २ पलासका पेड़ ।

लाक्षिक ( सं० त्रि० ) १ लाक्षासम्बन्धी, लावका । २ लाक्षाभाय, लावका बना हुआ ।

लाक्षिय ( सं० पु० ) लक्षका गोलापरय ।

लाक्ष्मण ( सं० पु० ) १ लक्ष्मणका गोलापरय । २ लक्ष्मण-पृक्षसम्बन्धीय ।

लाक्ष्मणि ( सं० पु० ) लक्ष्मणका गोलापरय ।

लाक्ष्मणय ( सं० पु० ) १ लक्ष्मणका गोलापरय । २ घंगालके सेनवंशीय एक राजा । सेनराजवंश देखो ।

लाक्ष्यक ( सं० त्रि० ) लक्ष्यमघोत घेद वा ( कर्कशादि-गुणान्तात् उक् । पा ४।२।६० ) इति लक्ष्य-उक् । यह जो लक्ष्याभ्यास या भेद कर सकता है ।

लाव ( हि० वि० ) १ सौ हजार । ( पु० ) २ सौ हजार-संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००००० ।

( हि० वि० ) ३ बहुत, अधिक । ( स्त्री० ) ४ लावा देखो ।

लावन्सेन—जयसलमेरके एक राजा । इनके पिताका नाम था कर्णसो । पिताकी मृत्यु होने पर लावन्सेन सन् १२७२ ई०में जयसलमेरके राजसिंहासन पर बैठे ।

ये बड़े सोपे सादे थे । इनकी सर्वथा एक प्रकारका उम्माद रोग हुआ करता था । एक दिन माघके महीनेमें गोदड़ बड़े जोरसे चिल्ला रहे थे । लावन्सेनने सभा-सद्योंको बुला कर कहा, 'ये क्यों चिल्ला रहे हैं ?' एक सभा-सद्वने उत्तर दिया कि जाइसे प्याकुल हो कर ये चिल्लाते हैं ।

लावन्सेनने उत्तर दिया, कि इनको कपड़े बतथा दिये जायें । कई दिनोंके पीछे राजाने पुनः उस-का चिह्नाना सुना । तब राजाने अपने उसी सभासद्वको बुला कर पूछा—'कब ये क्यों चिल्लाते हैं क्या इनके कपड़े

अभी तक नहीं बनवाये गये ?' सभासद्वने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! कपड़े तो बन गये ।" लावन्सेन बोले, 'तब ये शोर क्यों मचा रहे हैं । अच्छा इनको रहनेके लिये मकान बनवा दिये जायें ।' इतिहास-लेखक लिखते हैं, कि राजकर्मचारियोंने शीघ्र ही राजाको इस आशंका पालन किया । सोदा जातिकी रानी इन पर अपनी बड़ी प्रभुता रखती थी । रानीने अपने पिताकी राजधानी मगर-कोटसे बहुतदूरे अपने कुटुम्बी बुलाये थे और उनके हाथमें राज्यका एक-एक काम सौंप दिया था । किन्तु एक दिन बिना कारण हो लावन्सेनने उन सबोंको मार डाला ।

इतिहासमें लिखा है, कि इस निर्बोध राजाने चार वर्ष तक राज्य किया था । इनके पुत्रका नाम पुण्यपाल था ।

लावना ( हि० फि० ) लाव लगा कर बरतन, या और किसी चीजमेंका छेद घेद करना ।

लावपती ( हि० पु० ) लवपती देखो ।

लावा ( हि० पु० ) १ लावका बना हुआ एक प्रकारका रंग । इनमें स्त्रियां सुन्दरताके लिये होठों पर लगाती हैं ।

२ गेहूँके पीछोंमें लगनेवाला एक रोग । इससे पीछेकी नाल लाल रंगकी हो कर सड़ जाती है । इसे गैयमा या कुकुहा भी कहते हैं । यह एक प्रकारके बहुत ही सूक्ष्म लाल रंगके कीड़ोंका समूह होता है । ३ एक प्रसिद्ध भक्त । यह मारवाड़ देशमें रहता था ।

लावागृह ( सं० पु० ) लावागृह देखो ।

लाविराज ( हि० वि० ) यह भूमि जिसका लगान न देना पड़ना हो, जिस पर कर न हो ।

लाविराजो ( हि० स्त्री० ) यह भूमि जिस पर कोई लगान न हो ।

लावो ( हि० वि० ) १ लावके रंगका, मटमैला लाल । ( पु० ) २ मटमैला लाल रंग, लावका सा रंग । ( स्त्री० ) ३ लावके रंगका घोड़ा ।

लावरी—बम्बई प्रदेशका सो जातिविशेष । लाहने चूड़ी आदि बनाना ही इनकी उपजोयिका है । उन लोगोंका कहना है, कि उनके पूर्वपुत्रप मारवाड़से आइएनगरे, पारवाड़ आदि दक्षिणात्यके प्रधान प्रधान नगरोंमें जा कर बस गये हैं । ये लोग हिन्दूधर्मावलम्बी हैं । इनमें श्रेणिगत कोई विभाग नहीं है । एक व्यापिकवाले व्यक्तियोंमें

आदान-प्रदान नहीं चलता। बालाओंकी प्रतिमूर्ति और तिखपतिकी प्र्यट्टोवा मूर्ति ही उनकी उपास्य देवी हैं। विवाहादिमें वे लोग गराव पोने हैं।

स्त्रियां और बाल बच्चे चूड़ी बनानेमें पुरुषको मदद देते हैं। वे लोग स्थानीय कुनवियोंसे सामाजिक मर्यादांमें ऊंचे तथा ब्राह्मणोंसे नीचे हैं। सिमगा, दशहरा, दोघाली एकादशी और शिवरात्रि पर्यंति वे लोग उपवासदि करते हैं। जातकर्म और भन्त्येपिको छोड़ कर इनके और कोई संस्कार नहीं हैं। जानकर्म बहुत कुछ उष् हिन्दू-सा है। विवाहकार्यमें शिवांग मारवाड़ीभाषामें गाती हैं। ब्राह्मण आ कर कन्यादान करते हैं। सिन्दूर दान ही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विवाहके बाद घर कन्याको अपने घर ले आता तथा आत्मोपकुटुम्बोंको एक भोज देता है। बालिकाबधू प्रभुमनी दोनोंसे तीन दिन अशीच रहता है। चौथे दिन उसे उबटन लगा कर गत्म जलसे महलयाया जाता है। पीछे स्त्रियां आ कर बालिकाकी गोदमें चायल, नारियल, पञ्चफल और पान देती हैं। इसके बाद यह स्वामिसदवास करने पाती हैं। एक वर्षसे कम उमरवाले बच्चोंके मरने पर उन्हें गाड़ दिया जाता है। उससे ऊपर होनेसे दाहकर्म होता है। मृतका पुत्र या निकट आत्मय दाहके बाद श्राद्धकर्म करके शुद्ध होते हैं। उस दिन यह अपने हाथसे पाक नहीं करता, किसी आत्मोपके घरमें लिचड़ी या कर रहता है। नौसरे दिन वे मृतकी भस्मराजिको एकत्र करते हैं तथा दही और भात खाते हैं। दसवें दिन ब्राह्मणको बुला कर मृतके उद्देशसे पिण्ड तथा भ्यारद्वे दिन आत्मोप कुटुम्बोंको एक भोज देते हैं। छः मासमें अर्द्धवार्षिक ध्याद तथा वर्षके अन्तमें वार्षिक ध्याद होता है। उस समय भी वे जातिभोज देते हैं। महालयके दिन भी वे वितरोंके उद्देशसे ध्याद करते हैं। जातीय पञ्चव्यत सामाजिक विवाहको निषेधित करते हैं। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है।

साग (हि० स्त्री०) १ संवक, लगाय, ताल्लुक। २ लगा-यद, लगन। ३ प्रेम, मुग्धवत। ४ युक्ति, तरकीब। ५ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। ६ यह सांग भादि जिसमें कोई

विशेष कीटाव हो और जो जल्दी समझमें न आये। ७ जाड़, टोना। ८ घेर, दुश्मनी। ९ धानुको फूंक कर तैयार किया हुआ रस, भस्म। १० एक प्रकारका मृत्यु। ११ भूमि कर, लगान। १२ वह चीज जिससे चेचकका अथवा इसी प्रकारका और कोई टीका लगाया जाता है। १३ दैनिक भोजनको सामग्री, रसद। १४ वह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अयमों पर ब्राह्मणों, भाटों, नाइयों आदिको अलग अलग रत्नोंके सम्बन्धमें दिया जाता है।

लागडाँट (हि० स्त्री०) १ शत्रुता, दुश्मनी। २ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। मृत्युको एक क्रिया। लागत (हि० स्त्री०) यह खर्च जो किसी चीजकी तैयारी या बनानेमें लगे, कोई पदार्थ प्रस्तुत करनेमें होनेवाला व्यय।

लागुड़िक (सं० स्त्री०) १ लगुड़युक्त, जिसके हाथमें लाठी हो। २ प्रदरो, पहरा देनेवाला।

लाघटक (सं० पुं०) हलीमक नामक रोग।

लाघय (सं० स्त्री०) लघोर्मायः कर्म या (एगन्वाध सधु-पूर्वात् पा १।१।३३) इति अण्। १ लघुत्व, लघु होनेका भाव। २ अल्पत्व, छोड़ा होनेका भाव, कमी। ३ हाथकी सफाई, पुनर्त्ता। ४ भारोग्यता, मोरोगता, तंदुरुस्ती। ५ नपुंमकता। (अथ०) ६ फुरतोलै, सहजमें।

लाघवायन (सं० पुं०) एक ग्रन्थकार। इन्होंने एक धर्मसूत्र और उसका भाष्य प्रणयन किया।

लाघविक (सं० स्त्री०) संज्ञित, छोड़ा।

लाट्ट (सं० स्त्री०) १ कमर, कटि। २ परिमाण, निरु-दार।

लाट्टाकायनि (सं० पुं०) लाट्टाका अर्थव्यय। (पा० ४।१।१५८)

लाट्टायन (सं० पुं०) लाट्टाका गोलापरव्यय। (पा० ४।१।१६६)

लाङ्ग (सं० स्त्री०) घोतोका यह भाग जो दोनों जाँघोंके बीचसे निकाल कर पीछे छोड़ और कमरसे घोंस लिया जाता है, काष्ठ।

लाङ्गल (सं० पुं०) लङ्गनीति लगे गनी बायल दान् कञ्चय्।

लाक्षारम ( सं० पु० ) लाक्ष्याः रसः । महाघर जो पानीमें लाकल झोटा कर बनता है ।

लाक्षापटी ( सं० स्त्री० ) शीघ्रविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—लाप, भेला, भक्त्यापन, सफेद अपराजिताको छाल, अर्जुनके फल और फूल, विर्यंग, माथो और गुग्गुलु इन सबोंको एकत्र चूर्ण कर गोली बनानो होना है । इन शीघ्रको घरमें रखनेमें मांष तथा चूदा आदि घरमें पैठ नहीं सकता । ( संन्द्रारस पाण्डुरोगाधिक० )

लाक्षापृक्ष ( सं० पु० ) १ शोशापृक्ष, कौसमका पेड़ । २ पलासका पेड़ ।

लाक्षिक ( सं० त्रि० ) १ लाक्षासम्बन्धी, लाखका । २ लाक्षाभाष, लाखका बना हुआ ।

लाक्षेय ( सं० पु० ) लक्षका गोलापत्य ।

लाक्ष्मण ( सं० पु० ) १ लक्ष्मणका गोलापत्य । २ लक्ष्मण-पृक्षसम्बन्धीय ।

लाक्ष्मणि ( सं० पु० ) लक्ष्मणका गोलापत्य ।

लाक्ष्मण्य ( सं० पु० ) १ लक्ष्मणका गोलापत्य । २ पंगालके सेनवंशीय एक राजा । सेनराजवंश देखो ।

लाक्ष्यक ( सं० त्रि० ) लक्ष्मणघाते घंद या ( कर्तृरूप्यादि-सुशान्तात् ठक् । पा ४।२।६० ) इति लक्ष्य-ठक् । घद जो लक्ष्याभ्यास वा भेद कर सकता है ।

लाख ( हि० वि० ) १ सौ हजार । ( पु० ) २ सौ हजार-संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००००० । ( कि० वि० ) ३ बहुत, अधिक । ( स्त्री० ) ४ लाना देखो ।

लाघनसेन—जयसलमेरके, एक राजा । इनके पिताका नाम था कर्णसे । पिताकी मृत्यु होने पर लाघनसेन सन् १२७२ ई०में जयसलमेरके राजसिंहासन पर बैठे । ये बड़े सोपे सादे थे । इनको सर्वथा एक प्रकारका उम्माद रोग हुआ करता था । एक दिन माघके महीनेमें गोवड़ बड़े जोरसे चिल्ला रहे थे । लाघनसेनने सभा-सदोंको बुला कर कहा, 'ये क्यों चिल्ला रहे हैं ?' एक सभा-सदने उत्तर दिया कि जाड़से प्याकुल हो कर ये चिल्लाते हैं । लाघनसेनने उत्तर दिया, कि इनको कपड़े बनवा दिये जायें । कई दिनोंके पोछे राजाने पुनः उस-का चिल्लाना सुना । तब राजाने भयने उसी सभासदको बुला कर पूछा—'अब ये क्यों चिल्लाते हैं क्या इनके कपड़े

धमो तक नहीं बनवाये गये ?' सभासदने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! कपड़े तो बन गये ।" लाघनसेन—रोते, 'तब ये जोर क्यों मचा रहे हैं । अच्छा इनको रुनेके निचे मरान बनवा दिये जायें ।' इतिहास-लेखक लिखते हैं, कि राजकर्मचारियोंने प्रीष्ट ही राजाको इस आश्चर्यपालन किया । सोडा जातिकी रानी इन पर अपनी बड़ी प्रभुता रखती थी । रानीने अपने पिताकी राजधानी अजर-कोटसे बहुतेरे अपने कुटुम्बी बुलाये थे और उनके हाथों राज्यका एक एक काम सौंप दिया था । किंतु एक दिन बिना कारण ही लाघनसेनने उन सबोंको मार डाला । इतिहासमें लिखा है, कि इस निर्बंध राजाने चार वर्ष तक राज्य किया था । इनके पुत्रका नाम पुष्पपाल था । लाघना ( हि० कि० ) लाग लगा कर बरतन या और किसी चीजमेंका छेद घंद करना ।

लाघपती ( हि० पु० ) अलपती देखो ।

लाघा ( हि० पु० ) १ लाखका बना हुआ एक प्रकारका रंग । इमें स्त्रियां सुन्दरताके लिये होठों पर लगाती हैं । २ गेहूँके पीछोंमें लगनेवाला एक रोग । इससे पीछेकी नाल लाल रंगकी हो कर सड़ जाती है । इसे गैदमा या कुकुदा भी कहते हैं । यह एक प्रकारके बहुत ही सूखे लाल रंगके कीड़ोंका समूह होता है । ३ एक प्रसिद्ध मक । यह मारवाड़ देशमें रहता था ।

लाघापृद ( सं० पु० ) लाघापर देखो ।

लाघिराज ( हि० वि० ) यह भूमि जिसका लगान न देना पड़ता हो, जिस पर कर न हो ।

लाघिराजो ( हि० स्त्री० ) यह भूमि जिस पर कोई लगान न हो ।

लाघो ( हि० वि० ) १ लाघके रंगका, मटमैला लाल । ( पु० ) २ मटमैला लाल रंग, लाखका सा रंग । ( स्त्री० ) ३ लाघके रंगका घोड़ा ।

लाघरी—बम्बई प्रदेशवासी जातिविशेष । लाघने चूड़ी आदि बनाना ही इनकी उपार्जिका है । उन लोगोंका कहना है, कि उनके पूर्वपुत्र मारवाड़में मध्वरतण, पारवाट आदि दक्षिणारत्यके प्रथम प्रथम नगरोंमें आ कर बस गये हैं । ये लोग हिन्दूधर्मावलम्बी हैं । इनमें भेजिगत कोई विभाग नहीं है । एक उपार्जिकाके व्यक्तियोंमें

आदान-प्रदान नदो चलता। बाजाओकी प्रतिमूर्ति और विद्यपतिकी ध्येन्द्रोयामूर्ति ही उनकी उपास्य देवी हैं। विवाहादिमें वे लोग श्रावण होते हैं।

स्त्रियां और बाल बच्चे सूड़ी बनानेमें घुघपकी मदद देने हैं। वे लोग स्थानीय कुनवियोंसे सामाजिक मर्यादामें ऊंचे तथा ब्राह्मणोंसे नीचे हैं। सिमगा, दशहरा, दीवाली एकादशी और शिवरात्रि पर्वों में वे लोग उपासादि करते हैं। जातकर्म और अन्येष्टिकी छोड़ कर इनके और कोई संस्कार नहीं हैं। जानकमं बहुत कुछ उष्ण हिन्दू-सा है। विवाहकार्यमें स्त्रियां मातृवाहोभायामें गाती हैं। ब्राह्मण आ कर कन्यादान करते हैं। सिन्दूर-दान ही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विवाहके बाद घर कन्याकी अपने घर ले आता तथा आत्मीयकुटुम्बोंकी एक भोज देता है। बालिकायधू प्रस्तुतकी होनेसे तीन दिन अशीच रहता है। चौथे दिन उसे उषटन लगा कर गरम जलसे नहालयाया जाता है। पीछे स्त्रियां आ कर बालिकाकी गोदमें चावल, नारियल, पञ्चफल और गान देती हैं। इसके बाद वह स्वामिसद्वारास करने पाती है। एक वर्षसे कम उमरवाले बच्चोंके मरने पर उन्हें गाड़ दिया जाता है। उससे ऊपर होनेसे दाहकर्म होता है। मृतका पुत्र या निकट आत्मय दाहके बाद श्राद्धकर्म करके शुद्ध होते हैं। उस दिन वह अपने हाथमें पाक नहीं करता, किन्ती आत्मोपके घरमें लिच्छड़ी खा कर रहता है। नौसरे दिन वे मृतकी भस्मराशिकी एकत्र करते हैं तथा दही और भात खाते हैं। दशवें दिन ब्राह्मणकी पुत्रा कर मृतके उद्देश्यसे पिण्ड तथा ग्यारहवें दिन आत्मीय कुटुम्बोंकी एक भोज देने हैं। छः मासमें अर्द्धवार्षिक श्राद्ध तथा वर्षके अन्तमें वार्षिक श्राद्ध होता है। उस समय भी वे श्राद्धभोज देते हैं। महालयाके दिन भी वे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करते हैं। जातीय पञ्चायत सामाजिक विवाहकी निष्पत्ति करते हैं। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा विवाह प्रचलित हैं।

लाग ( हि० खी० ) १ संवर्ष, लगाव, ताल्लुक । २ लगावट, लगन । ३ प्रेम, मुदरन । ४ युक्ति, तरकीब । ५ प्रतिस्पर्धा, चढ़ाऊपरी । ६ यह खांग आदि जिसमें कोई

विशेष बीगल हो और जो जल्दी समझमें न भाये । ७ जादू, टोना । ८ घेर, दुरमनी । ९ धानकी फूंक बरनैवार किया हुआ रस, भस्म । १० एक प्रकारका मृत्यु । ११ भूमि कट, लगान । १२ यह चेरा जिससे चित्रकला अथवा इसी प्रकारका और कोई टीका लगाया जाता है । १३ दैनिक भोजनकी सामग्री, रसद । १४ यह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अयगरीं पर ब्राह्मणों, भादों, नाइयों आदिकी अलग अलग रस्मोंके सम्बन्धमें दिया जाता है ।

लागडाँट ( हि० खी० ) १ जन्नता, दुरमनी । २ प्रतिस्पर्धा, चढ़ाऊपरी । मृत्युकी एक क्रिया ।

लागत ( हि० खी० ) यह खर्चा जो किसी चीजकी तैयारी या बनानेमें लगे, कोई पदार्थ प्रस्तुत करनेमें होनेवाला व्यय ।

लागुड़िक ( सं० लि० ) १ लगुड़युक्त, जिसके हाथमें लाठी हो । २ प्रहरी, पहरा देनेवाला ।

लाघरक ( सं० पु० ) हल्कीमक नामक रोग ।

लाघय ( सं० स्त्री० ) लघोर्भावः कर्म या ( इगन्ताच सपु-पूर्वात् । या ४।१।१२१ ) इति धन्य । १ लघुत्व, लघु होनेका भाव । २ अल्पत्व, छोड़ा होनेका भाव, कमी । ३ हाथकी सफाई, कुर्ता । ४ आरोग्यता, मोरोगता, तंदुरुस्ती । ५ नपुंसकता । ( अथ० ) ६ फुरतीसे, सहजमें ।

लाघयायन ( सं० पु० ) एक ग्रन्थकार । इन्होंने एक धीतसूत्र और उसका भाष्य प्रणयन किया ।

लाघविक ( सं० लि० ) संक्षिप्त, छोड़ा ।

लाङ्क ( सं० खी० ) १ कमर, कटि । २ परिमाण, मिक्कार ।

लाङ्काकापनि ( सं० पु० ) लङ्काका अर्थव ।

( पा० ४।१।१५८ )

लङ्कायन ( सं० पु० ) लङ्काका गोतायन ।

( पा० ४।१।१६६ )

लाङ्क ( सं० खी० ) घोतोका यह भाग जो दोनों जाँघोंके बीचसे निकाल कर पीछे ही और कमरसे घोंस दिया जाता है, काठ ।

लाङ्कल ( सं० पु० ) लङ्कानि लिंगि गर्भो शकलदात् कञञ्च ।

१ स्वनामवयात् भूमिकरणयन्त्र, जेत जोतनेका हल ।  
पर्याय—हल, मोक्षरप, मोर, हाल, मोर । २ जिद्ग,  
लिङ्ग । ३ चन्द्रमाका भद्रान्नित शृङ्ग । ४ पुण्यविशेष,  
एक प्रकारका फूल । ५ सालवृक्ष, ताड़का पेड़ ।

लाङ्गलक ( सं० पु० ) सुश्रुतके अनुसार हलके भाकारका  
यह पाप जो भग्नदर रोगमें युद्धमें जयचिकित्सा करके  
किया जाना है । ( मुहूर्त्तचि० ८ भ० )

लाङ्गलकी ( सं० स्त्री० ) विपलांगुलिया, कलिपारी नामका  
जहरीला पीषा ।

लाङ्गलप्रद ( सं० पु० ) लाङ्गलां गृह्णाति ( कृत्विङ्गशाङ्गु-  
वहिवीमपरपठपठःपनुःपु । पा ३।२।१ ) इत्यस्य वाचिकीपठयो  
भच् । कृपक, खेतिहर ।

लाङ्गलप्रहण ( सं० स्त्री० ) लाङ्गलघारण, हल लेना या  
पकड़ना ।

लाङ्गलचक्र ( सं० स्त्री० ) लाङ्गलाकारं चक्रं । फलित-  
ज्योतिषमें एक प्रकारका चक्र । इस चक्रकी सहायतासे  
खेतीके सम्बन्धमें शुभाशुभ फल जाने जाते हैं ।

यह चक्र लाङ्गलाकार बनाना होता है इसीसे इसको  
लाङ्गलचक्र कहते हैं । जिस दिन गणना परनी होगी,  
उस दिन स्वर्णाक्रान्त नक्षत्र मानना होगा । सभी नक्षत्रोंकी  
पद्यास्थान विन्यास करके देखा जायेगा, कि उस दिनका  
नक्षत्र किस स्थानमें है । यदि दण्डमें रहे, तो मोको  
हानि, मृपस्य होनेसे स्वामिका भय, लाङ्गल और योषत्वमें  
होनेसे लक्ष्मीलाभ होता है । मतपय लाङ्गल और  
योषत्वस्थित नक्षत्रमें खेती करनेसे शुभफल होता है ।

लाङ्गलदण्ड ( सं० पु० ) लाङ्गलस्य दण्डः । लाङ्गलका  
ईसा, हलकी हरिस । पर्याय—ईसा, ईषा ।

लाङ्गलध्वज ( सं० पु० ) बलराम ।

लाङ्गलपदति ( सं० स्त्री० ) लाङ्गलस्य पदतिः । लाङ्गलरैता,  
यह रैता जो जमीन जोतने समय हलकी फालके धंसनेसे  
पड़ती जाती है । पर्याय—शोता, सीता ।

लाङ्गलफाल ( सं० पु० स्त्री० ) हलकी भंके झुंके गोधे  
सगो हुरं यह लोहेकी खींसीर लंबी छड़ जिसका सिरा  
मुकीला और पैता होता है, कुस ।

लाङ्गलाक्षर ( सं० पु० ) कलिपारी नामका जहरीला  
पीषा ।

लाङ्गलापकर्षिन् ( सं० त्रि० ) १ लाङ्गल अपकर्षान्कर्षती,  
हल जोतनेवाला । ( पु० ) २ मृप, पैषा ।

लाङ्गलापन ( सं० पु० ) लाङ्गलका गोवापन ।

लाङ्गलाहवा ( सं० स्त्री० ) लाङ्गलिया शुप, कलिपारी नामका  
पीषा ।

लाङ्गलि ( सं० पु० ) १ कलिपारी नामका जहरीला पीषा ।  
२ जल-पीपल । ३ मञ्जिष्ठा, मञ्जीठ । ४ पिठवन । ५ कौष्ठ,  
केवाँच । ६ चय्य, चाब । ७ गजपीपल । ८ मृपमक  
नामकी अष्टवर्गोव भोपधि । ९ महाराष्ट्री या मत्तरी  
नामकी लता ।

लाङ्गलिक ( सं० पु० ) लाङ्गलघत् भाङ्गतिरस्यस्वेति  
लाङ्गल टन् । एक प्रकारका स्थायर विप ।

लाङ्गलिका ( सं० स्त्री० ) लाङ्गलमिवाकारोऽस्त्यस्या इति  
टन्-टाप् । लाङ्गलि देवो ।

लाङ्गलिकी ( सं० स्त्री० ) लाङ्गल टन्-डीप् । कलिपारी ।  
पर्याय—मनिजिजा, मनिज्याला, लालका, लाङ्गली,  
गैरी, बीसा, हजिनी, गर्भावातिनी, मनिजिहा, इन्द्रपुण्य,  
मनिमुणी, यहिजिया । इसका गुण कुष्ठ और दुष्टम-  
नाशक माना गया है । ( राजनि० )

लाङ्गलिन् ( सं० पु० ) लाङ्गलमस्त्यन्थेति लाङ्गल-नि ।  
१ बलराम । २ नारिकेल, नारियल । ३ सर्प, साँप ।  
( स्त्री० ) ४ पुराणानुसार एक नदीका नाम । ( भा०  
५१।२६ ) ५ कलिपारी । ६ पिठवन । ७ मञ्जिष्ठा,  
मञ्जीठ । ८ जलपीपल । ९ गजपीपल । १० कौष्ठ, केवाँच ।  
११ चय्य, चाब । १२ महाराष्ट्री नामकी लता । १३ मृप-  
मक नामकी अष्टवर्गोव भोपधि । ( त्रि० ) १४ लाङ्गल  
मिजिष्ठा, हलवाला ।

लाङ्गलिनी ( सं० स्त्री० ) कलिपारी, कलिहारी ।

लाङ्गली ( सं० स्त्री० ) लाङ्गलाकारोऽस्त्यस्या इति लाङ्गली-  
भच् डीप् । लाङ्गलाकार पुण्य, जलज शाकविशेष । पर्याय—  
शाम्दी, सोपविपली, शकुलादानी, जलाती, जयविपली,  
पिसाहा, श्यामादिनी, महस्वमग्धा, कलिपारी । ( राजनि० )  
२ गालपर्णी, सरियन नामका वृक्ष ।

लाङ्गलीत ( सं० पु० ) एक निषलिङ्गका नाम ।

( छिद्युपय ६ भ० )

लाङ्गलीशाक ( सं० पु० ) जल-पीपल ।

लाङ्गलीया ( सं० स्त्री० ) ( एचि परल्पः । पा १।१।६५ ) इति  
सूदस्य वार्त्तिकोक्त्या साधुः । हरिस, हलका लट् ।

लाङ्गुल ( सं० स्त्री० ) लङ्ग ( खड्गिजिजादिभ्यः ङोत्तरो ।

उष् ५.६० ) इति ङलच् यादृलकात् घृडिश्च । १ पूंछ, दुम ।

पर्याय—पुच्छ, लूम, बालहस्त, बालधि, लङ्गुल, लाङ्गुल, लुलाम, आबाल, लज्ज, पिच्छ, बाल । गोपुच्छका

जल मस्तक पर देनेसे पाप धिनष्ट होता है । यह जल

तीर्थमलके समान पवित्र है । ( परारुपाण ) २ शेष, लिङ्ग । ३ कुशूत्र, कौडला ।

लाङ्गुलिन ( सं० पुं० ) प्रशस्त लाङ्गुलमस्त्यस्येति

लाङ्गुल-रनि । १ बानर, बंदर । २ श्रेयम नामक भोज्यधि ।

३ पिठवन । ४ कौंड, केवांच ।

लाङ्गुलिवा—मध्यप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी । सम्भवतः

यही पुराणानुसार लाङ्गुलिनी नदी है ।

लाङ्गुली ( सं० पुं० ) लाङ्गुलिन देशे ।

लाङ्गुलीका ( सं० स्त्री० ) लाङ्गुलाकृतिरस्यस्या इति

लाङ्गुल-ठन् । पृदिनपर्णा, पिठवन ।

लाङ्गुल ( सं० स्त्री० ) १ दुम, पूंछ । २ जिध, लिङ्ग ।

लाङ्गुला ( सं० स्त्री० ) १ केवांच, कौंड । २ पृष्ठपर्णा, पिठवन ।

लाचार ( फा० वि० ) १ विषय, मजबूर । ( कि० वि० )

२ विषय हो कर, मजबूर हो कर ।

लाचारी ( फा० स्त्री० ) लाचार होनेका भाव, मजबूरी ।

लाची ( हिं० स्त्री० ) इलायची देशे ।

लाचीदाना ( हिं० पुं० ) गाली चीनीकी एक प्रकारकी मिठाई ।

यह छोटे छोटे गोल दानोंके आकारकी होती है ।

वही वही इसके बंदर सौंफ या इलायचीका दाना भी भरा होता है ।

इसे इलायचीदाना भी कहते हैं ।

लाज ( सं० स्त्री० ) लाज-अच् । १ उपीर, हास । २ धानका ल पा, नील ।

इसका गुण—मधुररस, जीतघोर्य, लघु, मन्तिस्त्वोपक, मलमूत्रको कम करनेवाला, रुध, बल-कारक, विष, कफ, घमि, शतिसार, दाह, रुक्दोष, प्रमेह, मेह और पिपासानाजक माना गया है । ( भास्य० ) ( पु० ) लाज अच् । ३ शार्दूलपुट्ट, पानीमें भोगा हुआ चावल ।

लाज ( हिं० स्त्री० ) लज्जा, जर्म, दया ।

लाजक ( सं० पुं० ) धानका भूना हुआ लावा, लार ।

लाजतर्पण ( सं० स्त्री० ) लाजघ्नं तर्पणं । लाजनाकुलतर्पणविशेष ।

छोईका बना हुआ एक प्रकारका तर्पण ।

दाह और घमिसे रोगीके अरुदन्त कातर होने पर गुड़ और शहद मिला कर लाजतर्पणका प्रयोग किया जा सकता है ।

छोईको छूष चूर्ण कर यह नैवार करना होता है ।

लाजपेया ( सं० स्त्री० ) लाजेन कृता पेया । यह मांडू जो छोई या लावा उबालनेसे निकले ।

इसका व्यवहार रोगियोंको पच्य देनेमें होता है ।

लाजभक्त ( सं० पुं० ) लाजस्य भक्तः । घचिमक्त, छोई या लावाका पकाया हुआ भात ।

यह रोगियोंको पचपमें दिया जाता है । इसका गुण—लघु, शीतल, मन्तिदीपिकर, मधुर, बलकर, निद्रा और रुचिकर, कफ और पित्तनाजक तथा म्रणजोघनकारी । ( पैयसि० )

लाजमण्ड ( सं० पुं० ) लाजस्य मण्डः । यह मांडू जो छोई या लावा उबालनेसे निकले ।

लाजघंत ( हिं० वि० ) जिसे लज्जा हो, शर्मदार ।

लाजघंती ( हिं० स्त्री० ) लज्जा नामका पीषा, घुर्रं मुर्ग ।

लाजपर्णा ( सं० स्त्री० ) लाजस्य पर्णा इय पर्णा यस्याः ।

असाध्य रूताविशेष, कुंसी जो मफाड़ोके मूतनेसे निकलती है ।

लाजघर्ष ( फा० पुं० ) १ एक प्रकारका प्रसिद्ध कीमती पत्थर ।

इसे संस्कृतमें 'राजघर्षक' कहते हैं । यह जंगली रंगका होता है और इसके ऊपर सुनहले छोटे छोटे होते हैं ।

यह घातज रोगोंके लिये गुणकारी, मनकी प्रसन्न करनेवाला, हृदयके लिये बलकारी और उग्माद् श्वादि रोगोंमें उपकारी माना जाता है ।

आईनेमें सुरमा लगानेके लिये इसको सलाई भी बनती है जो बहुत अधिक गुणकारी मानी जाती है ।

२ बिलायती मोठ जो गंधकके मेलसे बनता और बहुत बढ़िया होता है ।

लाजघर्षी ( फा० वि० ) लाजघर्षके रंगकर, हलका नीला ।

लाजपाव ( फा० वि० ) १ जिसके जोड़का और कोई न हो, अनुपम, बेतोड़ ।

२ जो कुछ जपाव न दे सके, निदस्यर ।

लाजनाकु ( सं० पुं० ) लाजस्य नाकुः । छोई या लावाका ससू ।

छात्रोम ( सं० पु० ) प्राचीनकालका एक प्रकारका होम ।  
इसमें घोड़े या घानका लाया माहुतिमें दिया जाता था ।  
साजा ( सं० स्त्री० ) साज-वज-टापू । १ चायन । २ भृष्ट  
धान्य, लाया । गुण—तृष्णा, छदि, भतीसार, प्रमेह, मेद  
भौर कफनाशक, काम भौर पित्तोपशमक, भग्निकारक,  
लघु भौर शोथल । इसके मांडूका गुण—अग्निकारक,  
दाह, तृष्णा, उषर भौर कतीसारनाशक, भरीर दोषनाशक  
भौर आमपाचक । ( पु० ) ३ मूमि, पूष्यी ।

साजिम ( भ० वि० ) १ जो भयश्च कर्त्तव्य हो । २ उचित,  
मुनासिब ।

साजिमो ( भ० वि० ) जो भयश्च कर्त्तव्य हो, जरूरी ।

साञ्जुल ( सं० स्त्री० ) धान्य, घान ।

साञ्जुन ( सं० स्त्री० ) साञ्जुन-जुट । १ विह, निशान ।  
२ दाग । ३ दोष, कलंक । ( पु० ) ४ रागोधान्य, मट्टा ।

साञ्जुनी ( सं० स्त्री० ) साञ्जुन देखो ।

साञ्जी—मध्यप्रदेशके पालाघाट जिलेकी मुर्दा तहसीलके  
अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २७° ३०' ३० तथा देशा०  
८०° ३५' ५०के मध्य स्थित है । यह नगर चारों ओर  
तालाबसे घिरा है । उत्तरी भाग घने जंगलसे ढका है ।  
यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर और कुछ खंडहर देखे  
जाते हैं । यह प्राचीन साजिम नगरका अवशेष समझा  
जाता है । यहाँ एक किला टूटी टूटी हालतमें पड़ा है ।  
श्रावण १७०० ई०के लगभग गोंड-राजाने यह किला बन-  
वाया था । किलेके अहातेमें साञ्जुहाई नामका कालो-  
मूर्ति प्रतिष्ठित एक देवाल्य है । एक देवीमूर्तिके नामा-  
नुसार ही नगरका नामकरण हुआ है ।

साट ( सं० पु० ) १ किसी प्रास्त या दैतका सबसे बड़ा  
नासक, गयनर । २ बहुत-सी चीजोंका वह विभाग या  
समूह जो एक ही साथ रखा, रखा या नीलाया किया जाय ।

साट ( सं० पु० ) १ एक अनुमान जिसमें शब्द और  
अर्थ एक ही होते हैं, पर अर्थपरों हेर फेर होनेसे  
बाधपूर्णमें भेद हो जाता है । २ यह लंका कांप जो किसी  
मैदानके पानोके बाह्यकी रोकनेके लिये बनाया जाता है ।

साट ( सं० पु० ) देवार्थशेष, वर्तमान गुजरात प्रदेशका  
प्रायः भाग ।

नर्मदा, नदीका मुहाना और मदी नदीके तीरेस्थ

गुजरात तथा पार्वेण विभाग ले कर यह प्राचीन अथवा  
संगठित था । प्राचीन संस्कृत ग्रंथमें यह साट नामसे  
प्रसिद्ध है । मुसलमान भौगोलिक मसूरी ( A D. 910  
vol 1. 381), अलविदघो ( A D. 1020 in Elliot 162 )  
तथा टलेमी ( A D. 150 vol 11 63 ) वैदिक मन्त्रि  
इसका साट, लारिस या लारियक नामसे उल्लेख किया  
है । ये लोग इस जनपदके स्थाननिर्णयके सम्बन्धमें अनेक  
स्थानोंके नाम बतलाते हैं । अलविदघो, मनुवन्दा  
और इयून संयुक्त कहना है, कि घाना और सोमनाथ  
पत्तन ले कर यह साटदेश बना है । मुसलमान पंक्ति,  
सुलेमान काश्चे उपसागरसे ले कर मलबार-उपकूट तक  
सागरांशको साट-समुद्र बता गये हैं । मसूरीमें हीमूर,  
सुपर, थाना और अन्यान्य नगरोंको ले कर साजिम  
( साट ) प्रदेशको सोमा निर्देश की है । वर्तमान प्रत्न-  
तत्त्वविद्दोंका सिद्धान्त है, कि सूरत, भरोच, कीरा और  
बड़ोदाका कुछ अंश ले कर यह साट देश बना था ।

इस स्थानके अधिवासी साट कहलाते थे । ये लोग  
अनहिलवाड़-राजके अधीन थे । किसी कारणसे उन  
लोगों पर अस्तित्व हो राजा कुमारपालने लारोही  
राज्यसे भगा दिया । तभीसे ये भारतपर्यंके नाना स्थानों-  
में जा कर बस गये हैं । राजपूतानेके मरदेशमें, बेरारके  
मैदर विभागमें आज भी इन लोगोंका नाम देखा जाता  
है । परन्तु अभी ये उस प्रकार सुविस्तृत भावमें तथा  
प्राचीन नामसे परिचित नहीं हैं । ये सबके सब दिग्भ्रष्ट हैं ।  
बहुतेरे जैनधर्म भो ग्रहण कर लिया है । राजपूतानेके  
साट व्ययसाय-प्राणश्रममें लिप्त हैं, बेरारके साट देशकी  
कपड़े पुनते हैं । विषयात अन्नपाकारो दाननिर्वाते मन्-  
वार उपकूलमें तथा धुनपर्यंने सिद्धल्लोपमें साटो नामक  
एक प्रकारकी मुद्राका प्रचार देखा था । श्रावण यह  
मुद्रा सुपांचोम साटदेशमें प्रचलित थी । पीछे उम  
नामके अन्नश्रम उमका लाडो नाम हो गया था ।

भाषावर्षी और साटोही मन्दर देखो ।

साट ( दि० स्त्री० ) गीटा और ऊँचा तामा । उपर-  
पदिचम भारतमें बहुत प्राचीन कालमें अनेक प्रकारके  
तमोंसे विराजित हैं । प्राचीन कौत्तिके मादुरी होनेमें वे  
विशेष विषयात और अनसाधारणके मादुरी पम्पु हैं ।  
इसके सिवा इन सब स्तम्भों पर शक्ति प्राचीन अक्षरोंमें

जा सध इतिवृत्त लिखे हैं, वे प्रतनतस्वविद्योके बड़े हो चित्ताकर्षक हैं। उन विद्वानोंने बहु परिधम और आलोचना द्वारा उन लिपिमालाका पाठ कर उनका प्रकृततस्व निर्णय किया है। महामति जेम्स-प्रिन्सेप्सने पहले पहल इस वर्णमालाका आविष्कार किया। यह माला अंगी लाट-वर्णमाला (Lat-character) कहलाती है।

भारतवर्षके विभिन्न देशोंमें इस प्रकारके कितने लाट स्तम्भ अस्तक उठाये गये हैं। उनमेंसे इलाहाबादकी लाट ही प्रसिद्ध है। उस स्तम्भकी एक ढगलमें गुनराजवंशके सामयिक अक्षरोंमें तथा दूसरी ढगलमें बौद्धसम्राट् अशोककी प्रशस्तिके जैसे अक्षरोंमें लिपि खोदी हुई है। दिल्लीकी लाटकी लिपिके साथ कटककी धौली-लिपि और गिज्जरकी पहाड़ी-लिपिकी वर्णमालाका बहुत कुछ सादृश्य देखा जाता है। इसके सिवा उसमें कर्पहिंगिरियोंकी संगतिक अक्षरमालाकी जैसी लिपि भी देखी जाती है। उस लाटमें २६ श्लोक लिखे हैं। उसमें भारतवर्षस्थित जनपदादिका विभाग और उसका नाम, उस समयके राजवंशका विवरण तथा पारस्य और शकजातिका विवरण लिखा है। हस्तिनापुरमें चन्द्रवंशीय राजों की रोजधानी प्रतिष्ठित होने तथा मनु-संहिता या महाभारतमें दूरसेनका कोई विशेष नहीं रहने पर भी हमें उस लिपिके मालूम होता है, कि ईसा जन्मसे पहले ३री सदीमें बौद्धसम्राट् अशोकके राजत्वकालमें यह इलाहाबाद भूभाग एक प्रसिद्ध स्थान समझा जाता था।

२ भीतरा लाट—गाजीपुर जिलान्तर्गत एक स्तम्भ। उसमें इलाहाबाद लाटके जैसे राजवंशका परिषय और पंशतालिका विद्यमान है।

३ दिल्लीलाट—फिरोजस्तम्भ नामसे परिचित। पाठान-राज फिरोज तुगलक ( १३५१-१३८८ )ने इसके ऊपर मोनेका एक कलस लगवा दिया है। तभीसे यह स्वर्णलाट नामसे प्रसिद्ध है। पूर्वकालकी सुप्रसिद्ध भारतीय राजधानी सारे दिल्ली-विभागमें इसके सिवा और कोई प्राचीन निदर्शन नहीं है। यही कीटिल्य विषयके अन्तर्भूत एक अद्भुत कोषिस्तम्भ है। पूर्वकालसे इस स्तम्भके विषयमें नाना किथकितियां प्रचलित हैं,—हिन्दू लोग उसे

भीमकी गदा, - मुसलमान लोग सम्राट् फिरोजकी टट-लनेकी लाटो, कोई-कोई महात्मा अलेकसन्दरका पुत्र विजयभूतिस्तम्भ तथा रोम कोरिपट् भाई प्राचीन भद्र-देज-भ्रमणकारिणण उसे अजोहस्तम्भ जानने थे। पर-वास्तिकालमें यूरोपीय प्रतनतस्वविद्योकी चेष्टासे जय उसका प्रकृत पाठ उद्धृत हुआ, तब लोगोंका सम्देह जाता रहा। यह स्तम्भ पहले यमुनाके दूसरे किनारे सलीरा जिलेके शिवालिक पादभूतस्थ गिजिराबादके समीप था। पीछे यह दिल्ली-द्वारके बाहरमें ला कर गाड़ दिया गया है। डा० कनिङ्गमका कहना है, कि यह स्तम्भ प्राचीन धुधन राजधानीके किसी स्थानमें था। चीनपरिब्राजक यूएन-सुयंग उसको पार्श्ववर्ती बौद्ध विहार और बुद्धमूर्तिते संयुक्त सम्राट् अशोकके समकालीन सुवृद्ध स्तूपाका उल्लेख कर गये हैं। स्थानीय प्रवाद है, कि उक्त प्राचीन देशसे यह स्तम्भ बैलगाड़ी पर चढ़ा कर गिजिराबाद लायी गया था। करीब १३५६ ई०में फिरोजशाह हिन्दूके मुगलसे उसकी निरसलताका हाल सुन बहुत कपड़े लपके करके उसे दिल्ली लाये थे। उन्होंने उसका शिखर सफेद और काले पथरसे सुशोभित कर स्वर्णकलस रखा था। उन समय मोनार-जरिन नामसे प्रसिद्ध था। १६११ ई०में विलियम किश दिल्ली नगरमें आ कर इसके त्यणामकलस और अद्भुतशक्ति स्तूपाका उल्लेख कर गये हैं।

यह लाट अन्यान्य अशोकस्तम्भकी तरह घोर गाल पथरकी बनी है। उसकी ऊंचाई ४२ फुट ७ इंच है। ऊपर भाग ३५ फुट चौड़ा, पालिशदार और चिकना तथा निम्न भाग कृपा है। यह बरोबर आठ मी मान मारो होगी। उन स्तम्भमें दो प्रधान और बहुत-सी छोटी छोटी लिपियां उदकीर्ण हैं। उनमेंसे ईसा-जन्मकी ३री सदीके शीघ्र भागमें बौद्धसम्राट् अशोककी जो लिपि उदकीर्ण है, यही सबसे पुरानी है। यह प्राचीन अक्षरमें लिखी है। उसकी वर्णमाला भारतीय वर्णमालाका स्वयंप्राचीन निदर्शन है। आज भी उसके अक्षर साफ साफ दिखाई देते हैं। वेधन ही एक जगह पथरकी चिट उठाए जातेने उस स्थानकी लिपि नष्ट हो गई है। उसके शीघ्र भागमें एक छत्र पर सम्राट् अशोकका आदेश लिखा है जो इस प्रकार है—'धर्मकी रक्षाके कारण निम्नस्तम्भके ऊपर एक ऐसी शिवालिकक



उत्कीर्ण करो जो बहुत दिन तक रह जाय।" उसके ऊपरी भागके चारों ओर चार और नीचे एक शिलालिपि देखी जाती है। पूर्वमुखी फलकके शेष दृश छत तथा शून्यान्व फलकोंकी लिपि इस दिल्लीस्लामना पार्थक्य सूचित करती है। एक दूसरे फलकमें चौहानराज विनाल ( विप्रह ) देवकी विजयवासा उत्कीर्ण है। उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने हिमाद्रिसे ले कर विन्ध्यगिरि पर्यन्त समस्त भूभाग एकच्छताधीन कर लिया था।

चौहान राजवंशकी गौरवजापक यह लिपि दो छपट्टीमें विभक्त है। उसका अर्द्धश प्राचीन अशोक-लिपिके ऊपर और शेषार्द्ध उसके नीचे उत्कीर्ण है। दोनों लिपि छपट्टीमें ही १२२० संवत् लिखा है। निम्न छपट्टकी वर्णमाला धाधुनिक संस्कृत है। उसमें लिखा है, कि जाकम्मरोराज विनालदेवने ११६६ ई०में यह शिलाफलक खोदवाया। इसी प्रकारका एक दूसरा लाटस्तम्भ मीरटसे दिल्ली नगरमें लाया गया था। सम्राट् अशोकने अपने सुप्रसिद्ध अनुशासनका राज्यके मध्य प्रचार करनेके लिये जो सब स्तम्भ स्थापित किये थे उन्हींमें पर्यन्तों राजन्य और वैश्वेशिक सम्राजकारिणों अपनी अपनी वीरकीर्ति उत्कीर्ण कर गये हैं। उनका नया स्तम्भ खड़ा करनेमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

४ दिल्लीका लौहस्तम्भ—मसजिदके मध्यस्थलमें स्थापित है। ऊंचाई २२ फुट और घेरा १६ इञ्च है। प्रकृतशयनित् प्रिन्सेप्सने उसे ३री या ४थी सताब्दीका बना अनुमान किया है। उसकी गालस्य लिपि 'कन्नौजी नागरी' तथा शून्यान्व मिश्र-वर्णमालामें लिखी है। इसमें हस्तनापुट-राज्यापहारक राजा धूप तथा 'वाहिकारि' जातिका उल्लेख रहनेसे यह ५थी सदीके पीछेका बना मालूम होता है।

५ निगमबोध—यमुनातीरपत्ती यह दिल्लीमें कुछ मोल इतिहासमें विपरल्पने पता चलता है, कि प्रकाशक एक स्तम्भ यहाँ विद्यमान

इसकी ऊंचाई ४२ फुट ७ इञ्च है। इसके गात्रमें जाना प्रकारके कादकार्य हैं।

७ गाजीपुरस्तम्भ—गाजीपुरमें स्थापित एक बौद्ध स्तम्भ। उसकी वर्णमाला पूर्ण संस्कृत नहीं है। इस कारण लोग उसे भासानोरी नहीं समझ सकते। इसके गात्रमें जो शिलाफलक खोदित है वह इत्यादाबाद, दिल्ली आदि स्तम्भोंकी तरह बौद्धस्वामके ऊपर स्थापित हुआ है। उसमें गुप्तवंशीय समुद्रगुप्तने युगराज भर्तृहरि-गुप्तका नाम पाया जाता है।

८ रूपवास शैलस्तम्भ—भरतपुर राज्यके रूपवास-विभागमें एक बड़े पहाड़ पर स्थापित है। यह अस-शुर्ण अथस्थामें पड़ा है। बड़े स्तम्भकी ऊंचाई ३३० फुट और छोटेकी २३० फुट है।

९ धौलीस्तम्भ—एटक जिलेके धौली ग्राममें अथस्थित है। इसमें लाटवर्णमाला तथा बीच बीचमें बलमी और सिवनी-लिपिके अक्षरमाला देखी जाती है। उड़ीसा विभागमें जो सब अजोकरस्तम्भ प्रतिष्ठित हैं वे सभी बाहु-परधरके रने हैं।

१० जूनरस्तम्भ—इसमें दो शिलाफलक उत्कीर्ण हैं। नाताघाटके स्तम्भ पर जो लिपि उत्कीर्ण है वह दिल्ली-स्तम्भ कीर्ति गिनेर वर्णतथ्य शिलाफलकके साथ मिलती जुलती है। गिनेरकी पहाड़ी-लिपिको जैस प्रिन्सेप्सने पाली बनाया है।

हाटलिपि।

महामति कर्नेल टाइने राजस्थानकी प्राचीन कीर्ति और स्तम्भखोदित लिपिमान्ना देण कर मुगलकालमें कहा था, 'पढ़ने इतनासह, प्रयाग, मीरवा, मुनागदकी शैलमाला, बिजली और भारावन्दी शिखर पर स्थापित स्तम्भादि, पर्यन्त गुप्तखोदित लिपिका तथा भारतमें सर्वत्र प्रतिष्ठित जैन और बौद्ध-मन्दिगदिमें उत्कीर्ण शिलाफलकोंका प्रकृत होनेमें हम निश्चय ही भारतवर्षके प्राचीन कीर्तिमान्ना कर सकते हैं।' इस प्रकार महामती जैस प्रिन्सेप्स गाँवर गणेशनाके प्रकृतशयनित् अनुनीयन करने लगे। लाट-उम्हें मालूम हुआ, कि यह मेरुमें बनी है। इसके

तोप्यंस्थान।  
कविने  
गौरवः

६ या

विशेष और अपरापर पद पालि-विभक्ति और प्रत्यययोग-से साधित तथा क्रियापद प्रायः संस्कृतसे लिये गये हैं। मिलसा-स्तम्भमें भी गुप्तवंशीय फलदादिको जैसी भाषा-का प्रयोग है, वे ही पहले पहल मिलसा-स्तम्भकी संख्या निकरूपण कर कालनिर्णय करनेमें समर्थ हुए थे। बौद्ध-स्तम्भादिमें पदविन्यास द्वारा कालमान वर्णित देखा जाता है।

लाटलिपिकी अक्षरमाला प्राचीन ब्राह्मीलिपिके सिवा और कुछ भी नहीं है। स्तम्भके ऊपर छोड़ कर दूसरी जगह ऐसी वर्णमाला नहीं देखी जाती, इस कारण उसे लाटलिपि कहते हैं। अफगानिस्तानकी कपर्दिगिरियोंकी वर्णमाला उससे कुछ बड़ी तथा प्राचीन सेमितिक ढंग पर अङ्कित है। किम्बु कटक, दिल्ली, इलाहाबाद, बेतिया, मुल्दिया और राधिया आदिकी स्तम्भलिपि भारतीय ब्राह्मी है।

ऊपर जितने लाट स्तम्भोंकी बात लिखी गई उनकी वास्तुतः मिग्न मिग्न है। दिल्लीमें फिरोजस्तम्भ नामक जो स्तूप है वह किसोसे भी छिपी नहीं है। यह एक ऊँची अष्टलिकाके ऊपर स्थापित है। इसके ऊपरकी लाटलिपि बहुत प्राचीन है तथा निम्नदिगोमें अपेक्षाकृत परवर्तकालमें संस्कृत अक्षरोंमें छोड़ित एक दूसरा शिला-फलक उरकीर्ण है।

अभी बौद्ध-सम्राट् अशोकके प्रवर्तित जो सोलह लाट-स्तम्भ आविष्टत हुए हैं और उनमें जिन सब राजानु-शासनका हाल दिया गया है उसे नीचे लिखते हैं—

अशोकका अनुशासन और उनका शासन।

१ला—खाद्याद्यं वा यज्ञार्थं पशुहिंसाका निषेध तथा धर्मनैतिको परिपुष्टिका भादेन।

२रा—राज्यमय आयुर्वेद-शिक्षा-प्रचार और विना मूल्यके द्वाकित प्रजाओंकी चिकित्सा-व्यवस्था, राज्ञेकी बगलमें कुर्मा छोड़ना और दृष्ट रोपना।

३रा—प्रियदर्शोंके शासनकालका द्वादनवारिक समा-रोह-प्रचार और पञ्चमवारिक राजानुग्रह या राजमन्त्रि-प्रदर्शन।

४था—प्रियदर्शोंके शासनकालके मत द्वादनवारिक

राज्यशासनके साथ चर्चमान निर्गिरीय राजस्वका साम-जस्य प्रचार।

५वां—बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये धर्मगुरु और प्रचारकनियोग।

६ठा—पतिवैदक, राज्यरक्षक, धर्माधिकरण आदि पदों पर व्यक्तिविशेषको नियुक्त कर राज्यका मङ्गल ध्यवस्था-प्रचार।

७वां—विभिन्न धर्मसम्प्रदायके मत सार्थक्यका साम-जस्य करके प्रेषणमत स्थापनमें राजाका आग्रहज्ञापन।

८वां—पूर्ववर्ती राजाओंके पार्थिव भोगविलासके साथ अपने निरौह आमोदका पार्थक्यनिर्देश और पवित्र साधुपुरुष संदर्शन, शिक्षादान और धर्मगुरु आदि मान-नीयोंकी यथायोग्य सम्मानना दानकी अनुष्ठा।

९वां—धर्म और नीतियिषयक कथा, धर्ममङ्गल, धर्म-सेविका सुख, मित्रुकोंकी दान, सभी पर दया और गुण-जनोंके प्रति मान्यका फलनिर्देश और उसकी कर्तव्यता-के सम्बन्धमें आदेश-प्रचार।

१०वां—'यगो वा क्षिति या' बादकी मोमांसा, अनित्य संसारके अविद्याजनित गर्भका प्रस्थाप्यन और जीव-म्युक्तिका प्रष्ट पन्थानिर्देश।

११वां—धीलो और गिरदार प्रवर्तितमें वर्णित "धर्म-दो ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ दान है।"

१२वां—बौद्धधर्ममें अविद्यासियोंके साथ अनुनय-पूर्णक मताभिप्यक्ति।

१३वां—सारे अनुशासनका सारमर्म और संक्षिप्त उपदेन।

लाट—कुरानके अनुसार एक अपदेयता। महम्मदके समय यागिया और कौरश जानि इस देवताकी उपासना करती थी।

लाटक (सं० लि०) लाटजाति-सम्बन्धीय।

लाटडिण्डोर—एक प्राचीन कवि। क्षेमेश्वरक सुदृष्ट-निलकमें इनका उल्लेख है।

लाटपत (सं० पु०) दारचोनी।

लाटपर्ण (सं० पु०) दारचोनी।

लाटरी (सं० पु०) एक प्रकारकी योजना। इन्द्रा आधोजन विशेष कर किसी सार्वजनिक कार्यके लिये

घन एकत्र करनेके निमित्त किया जाता है और इनमें लोहोंको किङ्कन भाङ्गनायेका मौका मिलता है। इसमें एक निश्चिन्त रथनके टिफ्ट बने जाते हैं और यह घोषणा की जाती है, कि एक धर्ममें इतना घन उन लोहों में बांटा जायगा जिनके नामकी चिन्ते पहले निकलेंगे। टिफ्ट लेनेवालोंके नामको चिन्ते किसी संदूक आदिमें टाल दी जाती है और कुछ निर्वाचित विनिष्ट व्यक्तियोंको उपस्थितियों में चिन्ते निकाली जाती है। जिनके नामकी चिन्ते सबसे पहले निकलती है, उसे पहला पुरस्कार अर्थात् सबसे बड़ी रकम दी जाती है। इस प्रकार पहले निकलनेवाले नामवालोंमें निश्चित घन यथाक्रम बांट दिया जाता है। इसके लिये सरकारसे अनुमति लेनी पड़ती है।

साटाचार्य—एक प्रसिद्ध उद्योगिणी।

साटानुमान (सं० पु०) वह जम्बालदार जिसमें जम्बोंकी पुनर्गति तो होती है, परन्तु जन्मवर्षमें हीर फेर करनेसे मान्यर्ष भिन्न हो जाता है।

साटाघन (सं० पु०) साटाघन।

साटिका (सं० स्त्री०) रौतमेद्। पैदुर्मी, पाञ्चाली, मोटो और साटिका ये चार प्रकारकी रौतियाँ हैं। रचना पद्धतिको ही रौतियाँ कहते हैं।

पैदुर्मी और पाञ्चाली रौतिकी प्रच्यस्थिता जो रौतियाँ हैं उसे साटो कहते हैं। तारपर्यं यह, कि कंचल पैदुर्मी रौतिके अनुसार या पाञ्चाली रौतिके अनुसार रचना न हो कर इसके मध्य भागमें ही रचना होगी यही साटोरौतियाँ हैं। पैदुर्मी और पाञ्चाली इन दोनों ही रौतिके नियमका अनुसरण कर जो रचना होती है, यही साटो रौतियाँ हैं।

इस रौतिये मृदु पदविषयाम होगा मध्य दोष-समाप्तबहुल और युक्तवर्ण अधिक न रहेगा तथा उचित विवेकन द्वारा पुरुष विषयाम होनेमें यह रौतियाँ होगी। विवेकनका प्रयोग इस प्रकार करना होगा, कि वर्णनीये पदार्थके साथ उत्तकी मृदुलि रहे।

पुस्तक लक्षण—उन्मत्त-व्यायुक्त रचना होनेसे साटो-रौतियाँ, अतिव्यवस्थिततासे होनेमें पैदुर्मी, मिथ्यावर्षमें पाञ्चाली तथा मृदु-पदविषयाम करनेमें साटो-रौतियाँ होती हैं। (अभिलेख २०६ पृ०)

साटो (सं० स्त्री०) साटिका रौतियाँ।

साटोय (सं० लि०) साटक, साटजाति सम्बन्धी।

साटोचर—पश्चिम भारतमें स्थित एक शैवस्थान।

साटोघन (सं० पु०) धीनमूलके प्रयोगका एक प्रविधि।

साट (दि० पु०) १ साट देना। (स्त्री०) २ साट देना।

साटो (हिं० स्त्री०) यह लंबी और मोटा बड़ी लकड़ी जिसका व्यवहार चलनेमें सहायके लिये अथवा मारपीट आदिके लिये होता है, छंटा।

साटो—१ वर्षोंके प्रदेशके काठियावाड़ विभागके मोहेन-वाट प्रान्तका एक सामन्त राज्य। यह भारत २१° ४१' से २१° ४५' उ० तथा देना ७१° २३' से ७१° ३२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूविस्तीर्ण ४२ वर्गमील है। यहाँका अधिकांश स्थान पर्वतमालासे पूर्ण है। कहीं कहीं कान्ची मिट्टी दिखाई पड़ती है। इस ऊँची मिट्टीमें कौं, ईला और उरद बहुतायतसे उपजता है। निहटयसी भाग नगर बन्दरमें यहाँके पणवन्द्यकी बरीय बिक्री होती है।

सायनगर-राज्यके प्रतिष्ठानके मकले भाई साहूजीने यहाँके सरदारवंशकी प्रतिष्ठा की। इस वंशके एक डाक्टर-सरदारने यामाको गावकषाड़की भारती करवा प्याड दी। उन्हीं वंशजमें अपनी कन्याकी छत्रोरी नामक भूस्वामिनी थी।

यह सम्पत्ति आज दामनगर नामसे विद्यमान है। गावकषाड़-राज दामाजाने यह सम्पत्ति पाने पर अपने समुदायके राजकर लेना छोड़ दिया। तमोने यहाँके सरदार उक्त सम्पत्तिकी प्रायः निरन्तर ओंग करने आरंभ की। और गावकषाड़राजकी प्रत्येक वर्ष एक घोड़ा भेज दिया करते हैं। उनका वार्षिक राजस्व ७३११० रु० है। इसमेंसे ये घोड़ाके गावकषाड़की तथा जूनागढ़के तथा बलीयक साथ २००० रु० कर देते हैं। उन्हीं दसक मेंके अधिकार नहीं है। जेठेन्द्रके ही विस्तारके अधिकारी होने हैं। यहाँके सरदार वासुदा (१८८४ ई०) मोहेनवासीय राजपूत हैं। ये अजमेर-राजसरदारने चौथी धेनोके नामसे गिने जाते हैं। ये अपने राजपूतों किमी तरहका पणवन्द्य पर महामूल नहीं भुगतते।

२ उक्त सामन्त राज्यका प्रमाण नगर। यह भारत २१° ४३' उ० तथा देना ७१° २५' पू०के बीच पड़ता है। भाग

नगर-गौडाल रेलपथकी धोराजी गावा इस राज्यके बीचो-बीच हो कर चली गई है। नगरसे आध कोस पर इस रेलपथकी एक स्टेशन है। जनसंख्या ५६६७ है। यहाँ धर्मशाला, चिकित्सालय और विद्यालय हैं।

लाड़ (हिं० पु०) बघोंका लालन, प्यार, दुखार।

लाड़—धर्मरूपमें रहनेवाली एक जाति। यह जाति

दक्षिण-गुजराती भी कहलाती है। सम्भवतः यही प्राचीन

लाट जनपदवासी लाट-जातिके वंशधर हैं। इनमें एक

प्रवाद इस तरह है,—उत्तर-भारतसे उनके पूर्वपुत्र

दक्षिण-भारतमें आ कर बस गये थे। ये काले और पीले

रंगके होते हैं। तुलजाभवानी और येल्लमा इनकी प्रधान

उपास्य देवी हैं।

इस जातिके लोग दष्टे कट्टे, मजबूत और सुडील

होते हैं। ये बहुत कुछ शिम्पियाँसे मिलने जुलने हैं।

इनकी आँखें बड़ी बड़ी, तोतेकी जैसी नाक, दोनों हाँठ

पतले और मुँह गोल होता है। इनका आचार-व्यवहार

उच्च धेनीके ब्राह्मण-सा और पहनावा साफ सुथरा होता

है। ये शराब नहीं पीते और न माँस ही खाते हैं। अधि-

कांश निरामियाजी हैं। दूधके लिये सब कोई गाय और

भैंस पालने हैं। शिवाय घंघरा अथवा फँटा बांधती है। ये

आतिथ्य-सत्कार-खूब करते लेकिन सभी बड़े आलसी

होते हैं। इनके क्षत्रिय लाड़ घोऊकी अथवा उतनी

खराब नहीं है। इनर आदि गंधद्रव्य बेचना ही उनकी

प्रधान उपजीविका है।

इनमें नामके, मठावा और कोई उपाधि देवी नहीं

जाती। लड़केके विवाहसे लड़कीके विवाहमें ही अघिा

खर होता है। पयोंक जमारकी दहेजमें रुपये देने पड़ते

हैं। ये सभी धार्मिक होते और ब्राह्मणोंकी बड़ी भक्ति करते

हैं। विवाहादिमें ब्राह्मण ही इनकी पुनोदिताई करते हैं।

ये पण्डरपुर और तुलजापुरमें देवदर्शनको जाते हैं और

हिन्दूके प्रधान प्रधान सब हेयोहारोंमें ही उपवास आदि

क्रिया करते हैं। बनारसमें इनके धर्मगुरुका यज्ञ है। ये

जातिमें गोस्वामी हैं। ये समय समय पर दक्षिणी शिवायकी

मन्त्र देने आते हैं। दूसरी जातिको ये शिष्य नहीं बनाते।

शाडकके जन्मके बाद नामिच्छेद क्रिया जाता है

और तब प्रसूति गहलाई जाती है। पाँचपे दिन पछोपूजाके

बाद जातीय कुटुम्बका भोज होता है। नैरहयें दिन सभी बालककी गोद लेने हैं। इनो दिन उसका नामकरण होता है। इसके बाद तीन महीने तक प्रति सोमवारकी प्रसूति पछोपूजा करती है। इस तरह तीन महीना योतने पर प्रसूति पुत्रको ले कर आस पारसे देवालयमें जाती और देवताको भेंट दे कर घर वापस आती है।

इस दिनसे विवाह पर्यन्त और कोई संस्कार नहीं

होता। विवाहसे एक दिन पहले 'देवयज्ञा' होता है। इसमें

कुन्ददेवताकी पूजा होती है। विवाहके दिन घर और

कन्याको उबटन लगा कर स्नान करवाया जाता है।

पीछे उन्हें एक साथ बैठा कर पुनोदिन मन्त्र पाठ करने

हैं। मिन्दूरदानके बाद विवाह होय होता है। पीछे एक

भोज होता है।

ये लोग मृत-शरीरको जलाते और सिर्फ दूज दिन

तक अर्धाव मानते हैं। ये देवनेमें प्रायः परसे लगते हैं।

समाजमें किसी तरहकी गड़बडी होने पर जातीय

प्रधानोंके विचारसे उसका निबटारा होता। जो इसका

उल्लेख करते थे जातिच्युत होते हैं। पीछे दूज रुपये

देने पर समाजमें लिये जाते हैं।

लाड़कसाव—धर्मरूपमें रहनेवाली एक मुसलमान

जाति। भेड़ा, बफरा आदि मार कर बेचना ही इस

जातिका व्यवसाय है। इस जातिके लोग पहले हिन्दू

थे। मरिपुरराज टोपू सुलतान (१७८५-१७९६ ई०)के

पगारसे सभी इस्लाम-धर्ममें दीक्षित हुए हैं। तबो और

पुश्तिका वेगभूया स्थानीय हिन्दू-सा है। कोई कोई

पुष्प केयब 'दाहिने काममें एक बड़ा कुंडल पहनते हैं'।

शिवाय पुश्तिका मुन्दरी होती और घरसे बाहर आनेमें

नहीं लगती है। यहाँ तक, कि दूकान पर बैठ कर माँस

बेचना है। ये मिनथयो, कामंड, चतुर और यिनयो होते

हैं पर कुछ गंदा रहते हैं।

ये भयने ही समाजमें जादू करते हैं। 'पाटिल'

नामक निर्वाच्य समाजके अध्यक्षता भाडेन नामो

मानते हैं। किसी तरहका सामाजिक गोलमाल होनेसे

पंचायत उभरा निबटारा कर देती है। उसकी मदददेना

करने पर गोदिल सुनाना करते हैं। ये हिन्दू देवदेवी-

की बड़ी भक्ति करते हैं। हिन्दूके देवताकी पूजा आदि

तथा रव्योद्धारमे ये बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाते हैं। कोई भी गोमांस नहीं खाता। काजो इनका विवाह भीर सनाधिषकार्य सम्पादन करते हैं। इनके अलावा अन्त्याय समी विरयोंमें ये हिन्दू-प्रथाकी अनुसरण करते हैं। ये कुरान या कलमा नहीं पढ़ते और न मसजिदमें ही जाते हैं। दूसरे दूसरे मुसलमान सम्प्रदायके साथ घेठ कर रानेमें ये घुणा करते हैं।

साइलान—एक मुसलमान राजा। ये अतद्भरतके प्रजेता कल्याणमण्डके प्रतिपालक थे।

लाइलडा ( हि० पु० ) एक प्रकारका सोप जो प्रायः सूखों पर रद्दा करता है।

लाइलडैता ( हि० वि० ) जिसका बहुत अधिक लाइ हो, प्यारा, दुलारा।

लाइला ( हि० वि० ) जिसका लाइ किया जाय, दुलारा।

लाइली ( हि० वि० स्त्री० ) जिसका लाइ किया जाय, दुलारी।

लाइपागी—बर्बर प्रदेशवासी एक जाति। राजा कुमारपाल द्वारा दक्षिण गुजरातके लाट देनसे भगाये जाने पर ये लोग सम्मयतः यहाँ आ कर बस गये होंगे। ये हिन्दू हैं। इनमें भगवत्पूज, भगव्दाज, मार्ग, गीतम, जमर्दान, कीर्तिक, काश्यप, मीधुप और विष्णामित्र गोल प्रचलित हैं। समोल सधया एक पदयो होनेसे इनमें विवाह नहीं होता। ये हर रोज स्नान और कुन्ददेयताकी पूजा किया करते हैं। इनके अलावा मुल्जजापुरकी भयानीदेयो, सताराके अस्तांत सिंगनापुरके महादेव, पण्डरपुरके बिडोया भादि सोर्षांमें ये सचराचर जाते हैं। इनका लौकिक आचार व्यवहार और वेगभूया स्थानीय ब्राह्मणोंमें मिलता जुलता है। ये साक सुधरे, मेहनती, आतिथेय और चमुर होते हैं। चावल, कपड़ा और तरह तरहका ममाला बेचना हो इनका जातीय व्यवसाय है। मामपासी बहुरे लोइ रेती-बायो करते हैं। समन्ति बहुत लोग फूट लिख कर सरकारो पीकरो करने लगे हैं। त्रिषो पुकरोके साथ दूहलामे सभन बेचती हैं। इसके सिवाय ये सुदक्षयोका सब काम करते हैं।

ये स्थानीय ब्राह्मणोंके समानमें गोच और दुनविषोंके उद्योगिने करते हैं। देशके ब्राह्मण इनकी पुतेहिनार्थ

करते हैं। हिन्दूकी सभी देवदेवीकी पूताने इनकी बड़े भक्ति देगी जाती है। ये हिन्दूके सब रव्योद्धारोके माकने भीर प्रति यषांकी समीतो पूर्णिनामें सब कोंडे अनेक पहनते हैं। इनमें पालयविवाह और बहुविवाह चलता है; किन्तु विधवा-विवाह निषिद्ध है। बालकका अष्टम यषां हो उपनयनका उत्सव काज है। १५से २० वर्ष तक लड़केका विवाह होता है। विवाहका मगर वैदिक नहीं है। ये देगी भायामें ही विवाह भादि कराते हैं। ये शयको जगते हैं। तिक' द्वा दिन तक अनीच रहना है। उसके बाद शुद्ध हो कर जातिमोत्र देते हैं। किमी प्रकारका बगेडा सङ्गा होने पर पंचायत उमका निररैता पर देतो है। अपराधीको जुर्माना किया जाता है। कभी कभी द्योयो जातिमोत्र दे कर छुटकारा पाता है। साइस्युर्षपंगी—बर्बर प्रदेशके भारतवाइ जिलेमें रहनेवाली एक मोच जाति। बकरा भादि काट कर उसका मांस बेचना हो इनका जातीय व्यवसाय है। ये अमुद दिनी बोलने हैं।

इनमें किसी तरहका धेणोविभाग नहीं है। पुत्र उत्पन्न होने पर नामि काटनेके बाद ये जातबालकके मुँहमें रे'को तेलकी चूँई डाल देने है तथा पाँचवें दिन एक बकरा काट कर आत्मीय स्वजनकी मोत्र देने है। तेरहवें दिन अनीचके बाद सब कोई बालकको गोइ लेते तथा नामकरण करते हैं। उसके बाद विवाह तक और किसी तरहका संस्कार नहीं होता। विवाहके दिन बट और कन्या एक उद्य वेदी पर येडाई जाती और गोयके पण्डित कन्या सम्प्रदान करते हैं। मगर पढ़ते मसप ये द्योनोंके निर पर द्दरीये रंग हुमा पावत ठिड़कने हैं। विवाहके उपरान्त आत्मीय स्वजनका मोत्र होता है। मृत्युके बाद ये शयवेदकी स्नानकराते और बिडा कर कपड़ा पहनाते हैं। इसके बाद उसे कुलकी माया और शरैकार भादिसे सुगीमिप कर दूहगाते हैं। तीसरे दिन ये उगी चत्र पर आ कर दूव डालते हैं। यदि कोई अमुन दिनमें मरता है, तो उग घरके सब कोई तीन महोमे तक इन घरकी छाइ दूगये जगद सा कर रहने है। इनका विश्वास है, कि अमुन समयमें मृत्युके लिये जो द्योप होता है, वह इत परमें

रदनेसे गृहस्थित अपर व्यक्तिको निःसन्देह ही स्वर्ण कर सकता है ।

इनमें वाल्यविवाह और बहुविवाह प्रचलित है । विधवा-विवाह निषिद्ध है । सामाजिक किसी भी विधवाकी मीमांसा पंचायत द्वारा ही होती है । इनकी बातकी अवहेला करनेवाला व्यक्ति समाजच्युत होता है ।

ये लोग धार्मिक होते हैं । धर्मकर्मों में इनकी बड़ी श्रद्धा है । बेलगांव जिलेकी सबदत्तो नगरीका बेलगमा डेपोतीर्थ तथा नवलगुण्डके मुसलमान-साधु दल-मालिकका मकबरा ये देखने आते हैं । ब्राह्मणोंके प्रति भी इनकी भक्ति अच्छी है । विवाहादि क्रिया कर्मों में ब्राह्मण लोग भी याजकता करते हैं । इनके कोई धर्म-गुरु नहीं होते ।

लाङ्ग ( हिं० पु० ) १ लड्डू, मोदक । २ दक्षिणी नारंगी । लाट्टिया ( हिं० पु० ) यह बलाल जो दूकानदारमें मिला रहता है और प्राद्वर्कोंको धोवा दे कर उसका माल बिकवाता है ।

लाट्टियापन ( हिं० पु० ) १ लाट्टियाका काम । २ धूनता, चालाकी ।

लाट्टणी ( सं० स्त्री० ) कुलटा स्त्री । लात ( हिं० स्त्री० ) १ पैर, पाँव । २ पैरसे किया हुआ आघात या घार, पादमहार ।

लाद ( हिं० स्त्री० ) १ किसी वस्तुको बेल या गाड़ों पर रख कर एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जानेका कार्य, लादनेकी क्रिया । २ मिट्टीका यह ढाँचा जो पानो निकालनेकी टेँकीके दूसरे ओर लगा रहता है । ३ पेट, उदर । ४ भाँत, भाँतड़ी ।

लादना ( हिं० क्रि० ) १ किसी चीज पर बहुत सी वस्तुएं रखना, एक पर एक चीजें रखना । २ गाड़ों या पशुको भारसे युक्त करना, ढोने या ले जानेके लिये वस्तुओंको भरना । ३ कुत्तो लड़ते समय विपक्षीको अपनी पीठ या कमर पर उठा लेना । ४ किसीके ऊपर किसी बातका भार रखना ।

लादवा—पश्चात् प्रदेशके भन्डाला जिलेकी विष्णुजी तहसीलके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षां २६° ५६' उ० तथा

देशा ७७° ३' पू०के बीच विष्णुजीसे रदौर जानेके रास्तेमें अवस्थित है । जनसंख्या ३५१८ है । यहाँ पहले सामन्त-राज्यकी एक राजधानी थी । १८४६ ई०में सिख युद्धके समय यहाँके सरदार राजा अजितसिंह अहूरेजीके विरुद्ध लड़ते हुए मरे थे । इस कारण सम्पत्ति जप्त कर ली गई है । आज भी दुर्ग और राजप्रसाद तथा अन्याय प्रघान प्रधान अट्टालिका विद्यमान है । ग्युनिसपलिटोके अधीन रहनेसे नगरीकी पूर्वसमृद्धिका किसी तरह हास न होने पाया है । नगरमें एक यन्त्रविद्यालय मिडिल स्कूल और एक चिकित्सालय है ।

ला-दावा ( अ० वि० ) जिसका कोई दावा न रह गया हो, जो अधिकारसे रहित हो गया हो ।

लादिया ( हिं० पु० ) यह जो किसी चीज पर बौक लाद कर एक स्थानमें दूसरे स्थान पर ले जाता हो ।

लादी ( हिं० स्त्री० ) १ कपड़ोंकी यह गठरी जो धोबी गद्दे पर लादता है । २ यह गठरी जो किसी पशु पर लादी जाती है ।

लानंग ( हिं० पु० ) एक प्रकारका अंगूर । यह कुमायूँ और देहरादूनमें अधिकतासे होता है । इससे अर्ध-निकाला जाता और एक प्रकारकी शराब बनाई जाती है । लान ( अ० पु० ) हरी घासका बड़ा मैदान जिस पर गेहूँ आदि खेलेते हैं ।

लानटेनिस ( अ० पु० ) गेहूँका एक रोग जो छोटे-से मैदानमें फैला जाता है ।

लानत ( हिं० स्त्री० ) घिफार, फिटकार ।

लानती ( हिं० पु० ) यह जो संज्ञा लानत मलामत चुननेका सम्पन्न हो, सदा फिटकार चुननेवाला ।

लाना ( हिं० क्रि० ) १ कोई चीज उठा कर या अपने साथ ले कर भ्राना, कोई चीज उम जगद पर ले जाना जहाँ उसे प्रदत्त करनेवाला हो अथवा जहाँ ले जानेवाला रहता हो । २ प्रत्यक्ष करना, सामने रखना । ३ उद्वेग करना, पैदा करना । ४ आग लगाना, जलाना ।

लान्त ( सं० पु० ) तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका संकेत । लान्तकज ( सं० पु० ) जैनियोंके एक प्रकारके देवतामूर्ति का गण ।

मान्डीखानां—मकंगानिलानके मन्तगैत "भीरघाटी" नामक प्रसिद्ध पहाड़ी स्थानका एक गाँव। येना कठिन और दुर्गम स्थान और कहीं भी नहीं है। पूर्वमुगलोंने कदम नामक स्थानमें यह स्थान ३० मील और पश्चिममुगलोंने ७ मील पढ़ना है। गिरिमकटके इन्हीं स्थान पर मान्डीखाना नामक एक गाँव है। यह अक्षां २४° ३' उ० तथा देशां ७१° ३' पू०के बीच पड़ना है और समुद्रको तहसे २४८८ फुट ऊँचा है। इस गिरिपर्वतकी सबसे ऊँची सुरंग मान्डीकोटाल ३३७८ फुट ऊँचा है। यहाँ एक दुर्ग है। भीर गिरिपर्वत ही कर जाने समय बंगोरजी सेना इसी दुर्गमें ठहरती है। दुर्गकी चारोंपुं बगलमें एक मराठा है। यानी तथा यनिहू लोग जाने आनेके समय इसी स्थान पर भोजन खादि करते हैं।

मान्डीकोटालके अंगरेजराजके एक कर्माचारो (Political officer) के अधीन यह संकट स्थित है। पहाड़ी सेना (irregular levies) इनको सहायको परती है। मान्डीकोटालके पास ही विमगाह नामक पर्यटकस्थल है। विगत अफगान-मुगलके समय इस ज़िबर पर आंगरेजण कर स्थानीय अंगरेज-बर्माचारोने अलाहाबाद तक अफगानिस्तानके समस्त क्षेत्रका पर्यवेक्षण किया था।

मान्डीकोटाल पर कर गिरिपर्वतकी चौकड़ें कुछ संतोषी हो गई है। उन्को बन्दरमें मान्डीखाना पास है। यहाँसे कुछ दूर जाने पर अफगानिस्तानका समस्तक्षेत्र पड़ना है।

साब्द—प्राणिनीय वायादिमोक्तः एक शब्द।

( वा ४११२ )

- साय ( सं० पु० ) लय-यम् । कथन, बात ।
- सायवा ( दि० वि० ) १ तिमका पना न लगे, खोवा हुआ । २ गुन, पापक ।
- सायवा ( पा० वि० ) १ तिमि विमो वापकी परवा न हो, वै निरक । २ जो सायवातीसे न रूना हो, अभाववान ।
- सायवाय ( पा० वि० ) सायवा देव ।
- सायवायो ( पा० स्त्री० ) १ सायवा होनेका भाव । २ निरकी । ३ असायवाये, सम्राट् ।
- सायिन ( सं० ति० ) लय निरति । कथनको, कहेवाला ।
- सायु ( सं० पु० ) कर्षण, कर्मी ।

साय ( सं० वि० ) लयमें इति लय-यम् । यद्यपि, यद्वने योग्य ।

साका—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलागत एक जमीनमें समाति। भू परिमाण २०२२ वर्गमील है। १३६ ईसे यहाँके जमीनदारयंज इस सम्पत्तिका भोग करने ला रहे हैं। स्थानीय जमीनदार कुनवार वंशीय हैं।

साकागढ़—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेका एक गिरि-दुर्ग। यह अक्षां २४° ४१' उ० तथा देशां ७१° ३' पू०के बीच विलासपुर नगरसे २५ मील दूर साकाशैव पर स्थापित है। समुद्रकी तहसे यह स्थान ३२०० फुट ऊँचा है। दुर्गके चारों ओर अधिरथकाभूमि, ताम पांगोत्र है जो भगो छोटे से जंगलमें परिणत हो गई है।

इस सुनीतल अधिरथकाभूमिमें एक समय उत्तोल-गढ़के हैदरवंशीय राजे रहते थे । पाँटे थे एतदुर्गमें राजधानी ठठा ले गये। आज भी दुर्ग और चहारदीवारी खादि अमान अवस्थामें पकी है।

साम ( सं० पु० ) लम-रूपे धन् । १ प्राति, मिच्छा । २ फापदा, मुनाफा । ३ उपकार, भलाई ।

सामक ( सं० पु० ) साम लामों कम् । दाम, फापदा । सामकारक ( सं० ति० ) जिनमें साम होना हो, फल-दायक, फापदेम् ।

सामकारी ( सं० ति० ) फापदा-कर्मवाला, फापदेम् । सामभ्रायिक ( सं० पु० ) जिनके अनुसार वह मतम् लाम जो समस्त कर्मोंका शय वा गना हो जाने पर शास्त्राकी सुझावके कारण मान होता है।

सामशायक ( सं० ति० ) जिनमें साम हो, सुपचारो । साममद ( सं० पु० ) यह मद जिनमें मनुष्य अपने आरको लानवाना और दूसरेको हीमनुष्य समझे । सामशिल्पा ( सं० स्त्री० ) पानेकी इच्छा ।

सामशिल्पु ( सं० ति० ) पानेकी इच्छा कर्मीकाया । सामयम् ( सं० ति० ) लामा विद्योन्म्व मनुष्य सत्य वा । सामसुम्, फापदेम् । सामस्यान ( सं० पु० ) सामस्य स्थान । अलहाबादके लयादि शब्द भाषांमें लयमें स्याहवाँ स्थान । इस

स्थानमें लामका विषय विचार करना होता है। इस लिये इसे लामस्थान कहते हैं।

इस्तो, अश्व, यानवाहनादि, उलम मयूषादि, शष्पा, धनरत्नादि, कन्या, वायु, विद्या और अर्थालाम ये सब विषय लामस्थानसे अर्थात् लज्जने ग्यारहवें स्थानका निद्रुच्य करना होता है।

लामान्तराय (सं० पु०) यह अन्तराय कर्म जिसके उदय होनेसे मनुष्यके लाममें विप्र पड़ना है।

लाम्य (सं० ह्रीं०) लम-ण्यत्। लाम, फायदा।

लाम (हिं० पु०) १ सेना, फौज। २ बहुत-से लोगोंका समूह।

लामकायन (सं० पु०) १ लमकका गोलापत्थ। (पा १११६६) २ एक आचार्यका नाम।

लामकायनिन् (सं० पु०) लामकायन जाम्बध्यायी।

लामज (हिं० पु०) एक प्रकारका तृण। संयुक्त प्रदेश, पंजाब और सिंधमें प्रायः वारहों महीने यह पाया जाता है। यह घासकी तरहका और कुछ पीले रंगका होता है इसलिये इसे पीलावाला भी कहते हैं। इसकी जड़के पासका भाग मोटा होता है और उस पर रोप होने हैं। इसका डंठल सीधा होता है जिस पर चिकने, पतले और लंबे पत्ते होते हैं। दौधकमें इसे उफेजक, आमवातमें पत्नीना जानेवाला, रुधिरको साफ करनेवाला, अजीर्ण, कैंसरी झाड़ि दूर करनेवाला और दिशूचिका तथा अथरमें लामकारो माना जाता है।

लामजक (सं० ह्रीं०) १ लामज नामक तृण। लामज देलो। २ घास, उगार।

लामय (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जो प्रायः ऊसर भूमिमें पाई जाती है।

लामा (घं० लामा०)—तिब्बतका बौद्धतिभेद। इन लोगोंके मध्य सर्वश्रेष्ठ बौद्धसंन्यासी दलाई लामा कहलाते हैं। मन्त्रोलियांनि बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर तिब्बतस्थ श्रेष्ठ धर्मपात्रकीका यह नाम रखा था। तिब्बतीय भाषामें घं०लामा शब्दसे श्रेष्ठ तथा मन्त्रोलियाय दक्षिणसे समुद्र समझा जाता है।

राजा चिद्रेङ्गदेवसुम्बने (७२८ ई०में) तिब्बतीय

० तिब्बत-आर्यमें अक्षरों 'च' मनुष्यां।

बौद्धयतिषोके मध्य श्रेणीविभाग करके उनके आचार-व्यवहारकी प्रणाली निर्धारित कर दी। आगे चल कर उस प्राचीन पद्धतिका विलोम हुमा तथा १५वीं सदीके शारम्भमें वर्तमान धर्मपद्धति सापूर्ण पृथक् और स्वाधोन भावमें संगठित हुई। सुप्रसिद्ध लामा त्सेनम्पापाने १४१७ ई०में लामा नगरीमें गान्जुन् सङ्घारण स्थापन किया तथा स्वयं उस मठके सर्वश्रेष्ठ अध्यापक हुए। जनसाधारण उनको दड़ी धर्रा करने थे। उनके प्रति लोगोंकी पैसें अचला भक्ति हो गई थी, कि उनकी सन्तानसन्ततिकी भी ये लोग देवान-समुद्भूत समझते थे। उसी विश्वासके बल उनके पुत्रपौत्रादि आज भी उस मठके अध्यापक हो कर हैं। किन्तु लामा नगरके सर्वश्रेष्ठ बौद्धधर्माचार्य दलाई लामाने तथा तयिब्रह्मणपोके पञ्चैत्र श्रृंखलाके धर्मप्रभावने जनसाधारणका चित्त आकर्षण किया, तब पूर्वोक्ति गान्जुन् मठाधिकारोंकी समस्त प्रतिपत्ति नष्ट हो गई। शेषोक दोनों लामाकी देव-सम्भूत जान कर वे लोग देवताके समान उन्हें मानने लगे।

दलाई लामा जनताके निकट ध्यानो बोधिसत्त्व जैन-देशीके अज्ञसम्भूत वा उन्होंनेके अवतार समझे जाने हैं। लोगोंका विश्वास है, कि बोधिसत्त्व चेतरेजो जब जिस मनुष्यकी देहमें प्रविष्ट हो कर पराध्याममें अथनीपी होनेको इच्छा करते, तभी वे अपने गरीरसे एक अणुर्त ज्योति निकाल कर उस मनुष्यकी देहमें मिला देते हैं। इससे उस मनुष्यकी देहमें देवतापकी आधिर्माय ही जाता है। पञ्चैत्र-श्रृंखला नामक लामा चेतरेजो बोधिसत्त्वके विता अमिताभका अवतार माने जाते हैं।

विषयद्वतो है, कि त्सेनम्पापाने अपने ही प्रधान शिष्योंको पुनः पुनः जन्म-परिभ्रष्ट कर बौद्धधर्मकी पवि-तनारक्षा तथा परिपालनके लिये हुकुम दिया। उन्होंने ही सबसे पहले उन दोनोंको आचार्यमर्पादाकी पृथक्ता और प्रधानता बतला दी। इसी प्रकार उपरोक्त देवान-सम्भूत दोनों लामाकी उत्पत्ति हुई है। Gzongpa की संज्ञा-तालिचारी मान्य होता है, कि गेदुन प्रचने (जन्म १२८६ ई०, मृत्यु १७७३ ई०) सधर्म पहले ग्येत्य सन्-पोछेकी उपाधि प्रदण की थी। आज भी दलाई-लामा



उसी इरासिमें परिचित है। अतएव हमसे वरुष्ट अनुमान  
 होता है, कि मनुज मृत हो मरने परते दुर्लभ साम्राज्यमें  
 अन्तर्माध्यात्मके निकट स्थित हुए थे। आन्तरिक सद्भावम-  
 के महाप्राप्त्यर्थे मृतोत्पत्त्याके संतुष्ट धर्म-अनुभवको उक्त  
 मरणोत्पत्त्या मिला। १४४५ ई०में ये तत्त्वज्ञान-पोषिका  
 सुदृढ़ संसारम स्थायन कर गये हैं। उक्त मरने उपा-  
 ध्यायमें ही जगत् पश्येत् प्रात् पोष्टे नाम धारण कर दुर्लभ  
 साम्राज्योत्तरह् अथवा ऐसी शक्ति पैलायेको कीर्तिना की।  
 अथवा शैवशक्ति प्रवर्तनाको बना कर ये मरनेभूत हुए  
 सही, पर दुर्लभ साम्राज्योत्तरह् धर्म-राज्यमें उनका प्रभाव  
 न पैला और न अनेक अधिष्ठत भूनागमें उनका स्थान या  
 दावेन देववाच्यत्वम् उक्त तरह सम्मानित और प्रति-  
 पादित हो हुआ। केवल निष्पत्तमें दुर्लभ साम्राज्योत्तरह् ये  
 अथवा राजशक्ति कैलासमें समर्थ हुए थे।

५म मधेव्य-प्रात् पोष्टे शीवज्ञान-सिद्धिमें उपाधिनायो  
 थे। उम्होंने मोटराजके साथ विरोधकालमें कुङ्कुभोर  
 नामक दृष्टगौरवकी कोचोत् मोक्षलिपिके पास इन आज्ञा  
 पर एक दूत भेजा था, कि मोटराजधारा दिग्गयो पर  
 सदाई करनेके लिये ये लोग उम्हें मदद पहुँचायेँगे।  
 दिग्गयोके मोटराजके साथ उनका ओ मुक्त हुआ उसमें  
 मोक्षलिपिके निष्पत्त अधिकार कर शीवज्ञानको दे दिया।  
 १४४० ई०में यह घटना घटी। अतएव उसी समयमें सारे  
 विश्वराज्यमें दुर्लभ साम्राज्य अधिकार (temporal

संसारधर्मनिरत सुदृढशक्तिवा यदि पवित्र शीवज्ञानमें  
 विश्वास रहे, तो ये धार्मिक सुदृढ्य कहे जाते हैं। धर्मो-  
 द्देश सुननेका उम्हें अधिकार है। पञ्च-पदेनका धारण  
 कर संसार-बाधों निवारण करनेसे ये उपायक वा शा-  
 मिना, अन्तर्माध्यात्म स्थानस्थान मरने पर पवित्रधर्मों  
 और धार उपदेश धारण करनेमें सन्धी वा सन्धी  
 कहलाते हैं।

धर्मोदात्त निष्पत्तिय समाप्तमें साम्राज्य धार्मिक और  
 साध्यात्मिक शक्तिके साधारणतः है तथा समस्तानुद्धा  
 भोगाधिकारो ज्ञान कर अन्तर्माध्यात्म उक्त साधारणतः  
 प्राप्ति होने हैं। इस कारण उक्त देशके अधिकांश मनुष्य  
 स्वयम्में अन्तर्माध्यात्मको जलाशक्ति दे साम्राज्य निष्पत्त-  
 मरण करते हैं। फिर राजशक्ति और धर्मशक्तिके बहने  
 अनुमानित हो ये साधारणतः साम्राज्यधर्मो शानकी पर  
 पधेव्य अधिकार ( मृतुतुन प्रल ) मा करते हैं। निष्पत्त-  
 नविनाके समग्र उक्त लोगोंको पधेव्य साध्यात्मिकता को भुण-  
 तना पड़ना है। ये सब समस्तानुद्धा च होना रदन हुए मो  
 तिष्पत्तधर्मो प्रत्येक सुदृढ्य धारने अपने प्रथम या प्रियतम  
 पुत्रको साम्राज्य पर नियोग करनेके लिये मरने भेज देते  
 हैं। उक्त लोगोंको अन्तर्माध्यात्म-साध्यात्मिकता विचार  
 होता है तथा ये सुदृढ्यके अरण्य-पोषणार्थ जाता बाधने  
 प्राणुन रहते हैं। अन्तर्माध्यात्म प्रथम पुत्रके अन्तर्माध्यात्म  
 पुत्र को साम्राज्योत्तरह् साध्यात्मिकता है ये दो वा दोमें अधिक पुत्र

के लिये १ जिण्य या शिक्षानवीन और २ दीक्षित जिण्य रहने हैं। ये लोग पुनो हेतका पद पाने हैं तथा ३ महा-  
मन्थ आचार्य वा धर्मगुरु पदाधिकारी होनेकी व्यवस्था  
है। भारतीय बौद्धसमाजमें ध्रमण वा मिश्र और स्वधिर  
या उपाध्याय आदि पद देखे जाते हैं। तिब्बती लामा-  
सम्प्रदायमें भी उसी प्रकार सामान्य बालकसे महामन्थ  
आचार्य पद पानेके भी चार क्रम हैं। उन सर्वोका शिक्षा-  
नवीनबालक दो भागोंमें विभक्त है।

१। 'गै-जेन्' या उपासक। धर्मजीवन बितानेके  
अभिप्रायसे जो मठमें प्रवेश कर शिक्षाकार्यमें प्रती होते  
हैं, यह उपासक दो प्रकारका है, पञ्चमहापातकका  
परिहारा कर धर्ममतानुवर्त्तनकारी व्यक्तिमाल तथा  
संन्यासाश्रमावलम्बी शिष्य। शेषोक्त श्रेणीमें जो १० उप-  
देशका परिपालन तथा साधप्रदायिक परिच्छेदादिकी पहन  
कर इस धर्मपथका पथिक होनेको तट्यार है वे 'रघुवुड्'  
कहलाते हैं। मङ्गोल लोग उन्हें 'स्कावि, चन्दि, चन्द या  
यन्ते और कालमाकगण मांकी कहते हैं।

२। गै-तेपुन या शिक्षाजीवनका प्राथमिक पर्याय।  
इस समय उन्हें ३६ धर्मनियमोंका पालन करना होता  
है। मठके दूसरे दूसरे लोगोंके निकट वे बहुत कुछ उप-  
धर्माध्यक्ष समके जाते हैं। किन्तु बौद्धपतिकी तरह उन-  
का सम्मान नहीं होता।

३। गै-लोङ्ग—धर्माचार्य और मिश्र। २४ वर्षकी  
उमर नहीं होने, तब तक कोई भी यह मर्यादा पानेका  
अधिकारी नहीं। इस समय वे लोग प्रष्टन दीक्षितपति  
समके जाते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें २५२ नियमोंका  
पालन करना होता है।

४। गै-खान-पो—मठाध्यक्ष या उपाध्याय। यहाँ लामा-  
संन्यासप्रतकी चरममोमा है। सर्वाधिक, 'खान-पो'ई  
निश्चित, दीक्षित भीग यतियोंके प्रष्टन गुरु हैं। इस समय  
उन्हें उपरोक्त साधप्रदायिक तीनों विभागके शिक्षकता-  
कार्यमें प्रती रहना होता है। केवल जो वेगोनातिक द्वारा  
अनुप्राणित या बोधिसत्त्वावतार, 'गुनुकु' है तथा आचार्य  
देव कद कर राजाकिसे भूषित हैं, वे ही लाम खान् पो  
के ऊपर रहते हैं। यथार्थमें वे लोग भी पूर्व-कथित  
उपाध्याय वा गुरुके सिवा और कुछ नहीं हैं। बहुत पहले  
हीसे वे राजाकिसम्पन्न देवकपो धर्मयाजकगण

लामा वा आचार्यकी तरह सम्मानित होते आ रहे हैं।  
अन्यान्य मठाधिकारोसे इसका पार्ययनिर्देश करनेके लिये  
वे श्रेष्ठ लामा (Grand Lama) नामसे भी पुकारे जाते  
हैं। केवल बड़े बड़े मठमें ही एक एक खान्-पो रहते हैं।  
निकटस्थ छोटे छोटे लामास्थान और मन्दिरादिके परि-  
दर्शकके रूपमें वे यहाँके सभी कार्यादिका देखरेख करते  
हैं। उनका यह पद बहुत कुछ काथलिक विद्यापीठा-सा है।  
लामाकी दीक्षा-प्रणाली।

रेपुङ्ग, सेरा, गाल्दन् और तपिल्हुन्पो आदि भोट-  
राजस्थ सुप्रसिद्ध संन्यासाश्रममें जिस प्रणाली (गो-  
लुग-प)से लामा-शिष्य बनाया जाता है सोचे उसका  
संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। तिब्बतके अन्याय मठों-  
में अधिकारिगणोंकी आचरित प्रथाका अनुसरण कर  
कार्य करते हैं।

जिस बालकको (वहसन्-छभोङ्) पिता माताने  
लामा बनाना स्थिर कर लिया है यह अपने घरमें आठ  
(छसे बारह वर्ष तक भी) वर्ष तक रहेगा। लेकिन उस  
समय वह मठमें जा कर-पिद्याभ्यास कर सकता है। मठ  
जाते समय उसके गिर पर लाल या हल्दी रंगकी टोपी  
पहनार जाती है। यहाँ पाठाभ्यासके समय शिक्षा-  
मिलानेवा छात्रगुरु शिक्षानुरूपसे उत्तरोत्तर उच्च श्रेणीमें  
पहुंच जाते हैं। वे ड्याग, गो-त्युल् और गै-लोङ्ग  
अध्याय यथाक्रमसे शिक्षागविदा जिण्य, दीक्षित जिण्य  
तथा यति होते हैं और वे बौद्धपतिपदके अधिकारी हो  
कर शिक्षाविभागीय किसी एक विशेष विद्यालयको उत्पत्ति  
करनेके लिये कीर्तिश कर सकते हैं।

यहूतरे बालक ही प्रधान मठमें या संघाराममें लामा  
पद और उमके समान शिक्षा पानेके लिये प्रवेश करनेसे  
पहले गांवके छोटे मठमें प्राथमिक पाठ शिक्षा समाप्त  
करते हैं तथा दीक्षा पानेके समय मठमें इकट्ठे होते  
हैं। सिक्किमके पैमिबोङ्गछि मठमें तथा सिक्कील्लिकके  
निङ्मा-संघाराममें जिस प्रथासे बालकोंकी शिक्षा हो  
जाती है, यह सोचे लिये गई है।

अब कोई बातक हो मठमें शिक्षा पानेके लिये जाता  
है, तो पहले उसके पिताका नाम, कुलमर्यादा और  
पदमर्यादा आदि बातें पूछी जाती हैं। यदि पिता धनवान्  
हो तो वे लड़केको मठमें रख सकते हैं। बालकका परि-

उसी उपाधिसे परिचित है। अतएव इससे स्पष्ट अनुमान होता है, कि गेजुन प्रुच ही सबसे पहले दलाई लामारूपमें जनसाधारणके निकट गृहीत हुए थे। गाःलद्न सङ्घारामके मठाध्यक्ष त्सेनखापाके धंशधर धर्म-श्रुत्वेनको उक्त मर्यादा न मिली। १४४५ ई०में वे तपिलहून्-पोछेका सुगृहव संघाराम स्थापन कर गये हैं। उक्त मठके उपाध्यायते ही शायद पञ्चेन् श्रुन् पोछे नाम धारण कर दलाई लामाकी तरह अपनी ऐसी शक्ति फैलानेकी कोशिश की। अपनी दैवशक्ति जनताको बताने के सफलभूत हुए सही, पर दलाई लामाकी तरह धर्म राज्यमें उनका प्रभाव न फैला और न अपने अधिकृत भूमिभागमें उनका बचन या उपदेश देवपाषयवत् उस तरह सम्मानित और प्रतिपालित हो हुआ। केवल तिब्बतमें दलाई लामाकी तरह वे अपनी राजशक्ति फैलानेमें समर्थ हुए थे।

५म ग्येलच-श्रुन् पोछे लोचङ्ग गैमरसो उद्यामिलापो थे। उन्होंने भोटराजके साथ चिरोघकालमें कुकुनोर नामक हृदयोरवर्ती कोपोट-मोङ्गलियोंके पास इस भाशय पर एक दूत भेजा था, कि भोटराजधानी दिगाची पर चढ़ाई करनेके लिये वे लोग उन्हें मदद पहुंचायेगे। दिगाचीके भोटराजके साथ उनका जो युद्ध हुआ उसमें मोङ्गलियोंने तिब्बत अधिकार कर लोचङ्गको दे दिया। १६४० ई०में यह घटना घटी। अतएव उसी समयसे सारे तिब्बतराज्यमें दलाई लामाका अधिकार (temporal government) विस्तृत हुआ।

पहले लिखा जा चुका है, कि लामागण बोधिसत्त्वके अंशसम्भूत थे। तिब्बतियोंका विश्वास है, कि उनमेंसे कोई कोई नरदेहमें पृथ्वी पर अवतीर्ण होते और कोई स्वर्गीय उद्योति पा कर अंशावताररूपमें पुजित होते हैं। बौद्धधर्मशास्त्र-प्रसिद्ध बोधिसत्त्वोंने जिस प्रकार संसार-धर्मका परित्याग कर प्रप्रव्याप्त अवलम्बन किया था, वे लामागण भी उसी प्रकार प्राचोनदान बौद्धयतियों (मिस्तू)के सङ्घ, धर्मण और अर्हत्-धर्मका पालन करते हैं। मठविहारियों बौद्धमिस्तू-पोगण लामाओंके साथ समधर्मानुशीलनमें रत रहने पर भी जनसाधारणकी निगाहमें उस प्रकार सम्मानके साथ नहीं देखी जाती। वे सब साधारण उपासक समझे जाते हैं।

संसारधर्मनिरत गृहिव्यक्तिका यदि पवित्र बौद्धधर्ममें विश्वास रहे, तो वे धार्मिक गृहस्थ कहे जाते हैं। धर्मोद्देश सुननेका उन्हें अधिकार है। पञ्चोपदेशका पालन कर संसार-कार्य निर्याह करनेसे वे उपासक या उपासिका, प्रज्ञाचर्याका अवलम्बन नहीं करनेसे पवित्रधर्मा और चार उपदेश पालन करनेसे भेन्-घो या भेन्-ना कहलाते हैं।

धर्ममाण तिब्बतीय समाजमें लामागण पार्थिव और आध्यात्मिक शक्तिके आधारभूत हैं तथा सर्वसम्पदका भोगाधिकारी जान कर जनसाधारण उस आचार्यपदके प्रार्थी होते हैं। इस कारण उस देशके अधिकांश मनुष्य वचनमें संसारधर्मको जलाञ्जलि दे लामाका शिष्यत्व-ग्रहण करते हैं। फिर राजशक्ति और धर्मशक्तिके बलसे अनुप्राणित हो ये आचार्यांगण लामापदार्थी बालकों पर यथेच्छ अर्धादण्ड (घन्सुन प्रल) भी करते हैं जिसान्विशेषके समय उन लोगोंकी यथेष्ट क्रायिक ह्जेन भी भुग तना पड़ता है। ये सब अमानुषिक क्रूरता रहत हुए भी तिब्बतवासो प्रत्येक गृहस्थ अपने अपने प्रथम वा प्रियतम पुत्रको लामापद पर नियोग करनेके लिये मठमें भेज देते हैं। उन लोगोंकी अन्यान्य सन्तान-सन्ततिका विवाह होता है तथा वे गृहस्थके भरण-पोषणार्थ नाना कार्याणि व्यापृत रहती हैं। जिसका प्रथम पुत्रके अलावा दूसरा पुत्र भी लामा होना चाहता है वे दो वा दोसे अधिक पुत्र भेज सकते हैं। इस कारण बौद्धप्रधान भोटराज्यमें प्रति छः वा आठ आदमोंके भीतर एक लामा ही गया है। सिक्किममें इस प्रकार १ : १०, लद्दाकमें १ : १३, भूटानमें १ : १०, स्वितीमें १ : ७, सिंहलमें १ : ३०, बर्मामें १ : ३०, तथा उत्तर एशियाकी कालमक जातिमें १५० से २०० तन्मूमें सिर्फ १ लामा विद्यमान देखे जाते हैं।

स्त्रागिनटुन्ट, डी० कनिदम, डी० काभ्येक, मूककुट, स्मिष्ट्ट हुक आदिका तिष्ठन और लद्दाक-विषयण पढ़ने से मालूम होता है, कि तिब्बतकी राजधानी लामा नगरीके बारह मठोंमें तथा उसके आस पासके भूभागमें प्रायः १८५०० लामा हैं। पश्चिम-तिब्बत या लद्दाक विभागकी वर्तमान जनसंख्यामें प्रायः छठवां लामा है। साधारण संन्यासाश्रममें पारमार्थिक उत्कर्ष साधन-

के लिये १ शिष्य या शिक्षानवीश और २ दोषित शिष्य रहते हैं। ये लोग पुत्रो हनका पद पाने हैं तथा ३ महा-मान्य आचार्य या धर्मगुरु पदाधिकारी होनेको व्यवस्था है। भारतीय बौद्धसमाजमें श्रमण या गुरु और स्वधियर या उपाध्याय आदि पद देखे जाते हैं। तिब्बती लामा-सम्प्रदायमें भी उसी प्रकार सामान्य बालकसे महामान्य आचार्य पद पानेके भी चार क्रम हैं। उन सबका शिक्षानवीशकाल दो भागोंमें विभक्त है।

१. लामा गी-ओन्ग या उपासक। धर्मजीवन बितानेके अभिप्रायसे जो मठमें प्रवेश कर शिक्षाकार्यमें प्रती होते हैं, यह उपासक दो प्रकारका है, पञ्चमहापातकका परिहाराय कर धर्ममतानुवर्तनकारी व्यक्तिमात्र तथा संन्यासाश्रमावलम्बी शिष्य। शेषोक्त श्रेणीमें जो १० उपदेशका परिपालन तथा साम्प्रदायिक परिच्छेदादिको पढ़न कर इस धर्मपथका पथिक होनेको तय्यार है ये 'र्यव्युष्ट' कहलाते हैं। मङ्गल लोग उन्हें स्काधि, यन्दि, बन्द्य या वन्ते और कालमाकगण मंत्री कहते हैं।

२. गे तपुख या शिक्षाजीवनका प्राथमिक पयाय। इस समय उन्हें ३६ धर्मनियमोंका पालन करना होता है। मठके दूसरे दूसरे लोगोंके निकट ये बहुत कुछ उपध्याय समझे जाते हैं। किन्तु बौद्धयतिको तरह उनका सम्मान नहीं होता।

३. गे-ओङ्ग—धर्माचार्य और मिश्र। २४ वर्षकी उमर नहीं होगी, तब तक कोई भी यह मर्यादा पानेका अधिकारी नहीं। इस समय ये लोग प्रकृत बौद्धयतिको समझे जाते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें २५३ नियमोंका पालन करना होता है।

४. ध्या खान-पो—मठाध्यक्ष या उपाध्याय। यही लामा-संन्यासप्रतको चरमसोमा है। बर्षािक, 'खान-पो' है शिक्षित, दोक्षित और यतियोंके प्रकृत गुरु हैं। इस समय उन्हें उपरोक्त साम्प्रदायिक तीनों विभागके शिक्षकता-कार्यमें प्रती रहना होता है। केवल जो वैज्ञानिक द्वारा अनुमानित या बोधिसत्त्वव्यवहार, 'चुनुकु' है तथा साचार्य द्वेष कर राजशक्तिसे भूयित है, वे ही लाम खान पो के ऊपर रहते हैं। धर्माचार्यमें ये लोग भी पूर्व-कथित उपाध्याय या गुरुके सिवा और कुछ नहीं हैं। बहुत पहले हीसे ये राजशक्तिसम्पन्न द्वेषरूपी धर्मयामकगण

लामा या आचार्यकी तरह सम्मानित होते या रहे हैं। अन्यान्य मठाधिकारीसे इसका पाठ्यपयनिर्देश करनेके लिये वे श्रेष्ठ लामा (Grand Lama) नामसे भी पुकारे जाते हैं। केवल बड़े बड़े मठमें ही एक एक खान-पो रहते हैं। निकटस्थ छोटे छोटे लामास्थान और मन्दिरादिके परिदार्शिके रूपमें ये यहाँके सभी कार्यादिका देखरेख करते हैं। उनका यह पद बहुत कुछ काथलिक बिशपों-सा है।

लामाकी दीक्षा-प्रणाली।

द्वेषुङ्ग, सेरा, गाल्दन् और तयिलहुन्गो आदि भोट-राजस्थ सुप्रसिद्ध संन्यासाश्रममें जिस प्रणाली (गो-लुगु-पे)से लामा-शिष्य बनाया जाता है सोचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाना है। तिब्बतके अन्यान्य मठोंमें अधिकारीगणोंको आचरित प्रथाका अनुसरण कर कार्य करते हैं।

जिस बालकको (घरसन्-छभोङ्) पिता माताने लामा बनाना स्थिर कर लिया है वह अपने घरमें आठ (छासे बारह वर्ष तक भी) वर्ष तक रहेगा। लेकिन उस समय वह मठमें जा कर-विद्याभ्यास कर सक्ता है। मठ जाते समय उसके शिर पर लाल या हल्दी रंगकी टोपी पहनाई जाती है। यहाँ पाठाभ्यासके समय शिक्षामिलाया छात्रवृन्द शिक्षानुरुपसे उसरोत्तर उच्च श्रेणीमें पहुँच जाते हैं। ये ड्रावा, गो-न्य-उल् और गे-लोङ् मर्धात् यथाक्रमसे शिक्षानविदा शिष्य, दोक्षित शिष्य तथा यति होते हैं और वे बौद्धयतिपदके अधिकारी हो कर शिक्षाविभागीय किसी एक विशेष विद्यालयको उपति करनेके लिये कोशिश कर सकते हैं।

बहुनरे बालक दो प्रधान मठमें या संघाराममें लामा पद और उसके समान शिक्षा पानेके लिये प्रवेग करनेसे पहले गांवके छोटे मठमें प्राथमिक पाठ शिक्षा समाप्त करते हैं तथा दीक्षा पानेके समय मठमें रहते होते हैं। निकटके पैमिओङ्गछि मठमें तथा मिन्कोलिङ्गके निङ्गना-संघाराममें जिस प्रथासे बालकोंको शिक्षा दी जाती है, वह सोचे लिये गई है।

जब कोई बालक दो मठमें शिक्षा पानेके लिये आता है, तो पहले उसके पिताका नाम, कुलमर्यादा और पदमर्यादा आदि बातें पूछी जाती हैं। यदि पिता धनवान् हो तो ये लड़केको मठमें रख सकते हैं। बालकका परि-

शुभ छमोन होने पर भी वह शिक्षाकाल अतिक्रम कर नहीं सकता। इस समयसे उसे कठिन परिश्रमके साथ धर्मशास्त्रादि अध्ययन करना होता है। शास्त्र देखनेके सिया यह शिष्य हर तरहकी गिल्फ या चित्त-विषया सीख सकता है। पाठ याद नहीं करनेसे वह बेतकती मार खाता है। उस समय जो आचार्य गेत्पुत्रकी बौद्धधर्मका गूढ़ रहस्य बता देते हैं, वे 'हसे वै लामा' नामसे इस बालक द्वारा चिरदिन पूजित होते हैं। इस समय अकसर उसकी परीक्षा की जाता है।

एक संघारामके अंदर प्रत्येक मठमें ही एक एक धर्माचार्य रहते हैं। वे श्रेष्ठ लामा कहलाते हैं। सूत्र, विनय और अमिधर्म नामक धर्मशास्त्रके किसी एक विषयमें पारदर्शी न हो सकनेसे कोई भा लामा पद नहीं पाता। लामाओंमेंसे जो जितना धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, वे उतने ही पूंज्य समझे जाते हैं। इस कारण गेत्पुत्रगण भी अपने अपने उपाध्यायकी अध्यापनासे एक एक विषयमें पारदर्शी होते हैं। प्रतिदिन पढ़नेके समय घंटा बजता है। इसी घंटेकी सुन वे पाठशुद्धिं जा कर पाठम्भास करते हैं और अपने आचार्यसे नया पाठ लेते हैं। इस प्रकार आक्षर्यकीय पाठ समाप्त होने पर उनका इस्तदान लिया जाता है। पहले एक बर्गके बाद और पीछे एक या दो बर्गके बाद इस्तदान होता है। दोनों परीक्षामें जब तक पास नहीं होते, तब तक उन्हें 'चाय बनानी और संघके भूले बसिनीकी आजा माननी पड़ती है।

परीक्षाके समय प्रत्येक संघारामके सर्वश्रेष्ठ आचार्य और बसिगण एक घरमें बसा होते हैं। वे सभी सुपचाप बैठते हैं, तथा कमके बीच गेत्पुत्र अड़ा ही कर अपना पाठ पढ़ाता है। अगर पढ़ते समय वह कहीं भूल जाता है, तो गेत्पुत्रसारा वाक्य समीपमें अड़ा हो कर बतला देता है। अपनी परीक्षामें सभी पढ़नेकी पुस्तकें, धर्म कर्मि सुभाषीमें करके तीन दिन बसते हैं, और तीन दिन यह वाक्य की रूपे विधान करने वास्तु हैं। इस तरीके पर वह सुन अपनेया विचार देक सकता है।

जो लामा इस परीक्षामें फलोर्ण नहीं हो सकता, उसको कभी-कालकालके साथ अरुने बाहर का घर छोड़कर दूसरा स्थान मिलना पड़ेगा। जो तीन

वर्ष लगातार पास नहीं होता, वह मठसे बाहर न निकाला जाता है। सिर्फ धनवान्का लड़का ही बहुत रूपे खर्च करने पर मठमें रह कर विद्याभ्यास कर सकता है। निर्धनका लड़का अगर यह फिर पढ़ना चाहे, तो वह साधुचेता युवी हो कर दिन पिताता है, लेकिन उसे संघारामके किसी किसी मठकी दास्यवृत्ति करनी पड़ती है। अगर वह पीछे पारदर्शी हो, तो वह किसी गाँवके मठका लामाचार्य बना दिया जाता है। किन्तु उस समय वह लामाकी तरह प्रतिष्ठित होने पर भी उस पदका यथार्थ अधिकारी नहीं होता।

उपरोक्त परीक्षासे छात्रसंघका परस्पर विचार बढ़ा हो जाता है। उससे छात्रकी किसी शिक्षा की गई है, वह अच्छी तरह जाना जाता है। तिष्ठतके सुप्रसिद्ध दे-पुद्ग, तपित्पुद्गणपी, सेर और गाल्दन् संघाराममें समय समय पर ऐसी विचारसभा बुलाई जाती है। वहाँ करीब चारसे छेकर आठ हजार तक बौद्धयति इकट्ठे हैं। इसको तिष्ठतों भावामें 'मूल्यान्-ब्रिद्ध' कहते हैं। इस सभामें यह भी विचार होता है, कि शिष्योंने धर्मशास्त्र और धर्मतत्त्वका सारमर्म समझा है या नहीं। जहाँ यह सभा बैठती है वह स्थान शालपेड़की ढाली और पथरसे घिरा रहता है। बौद्धयतिके बलाया और कोई भी उस सभामें प्रवेश नहीं कर सकता। उस सभाके बाध सबसे ऊँचे पदपंके आसन पर स्फयवस्-मगोन, उसके नीचे छोटे आसन पर मवान-पो और उससे नीचे गवैये बैठते हैं। उसके चारों ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान सात भागोंमें बँटा रहता है। प्रश्न करनेवाले हल्दी रंगका साफा बांध कर दर्शकमण्डलीके संमक्ष हाथ जोड़ अपना प्रश्न उठाते हैं। एकत्रित छात्रमण्डलीमेंसे जो उस प्रश्नका उचित उत्तर दे सकता है, वही छात्र लामाके आवेष्टसे उच्चश्रेणीमें चढ़ता है।

चर्च मरमें सिर्फ चार बार प्रोथ, शरत्, शीत और वसन्तकालमें यह विचार-सभा बैठती है। इस प्रकार बतइ रूपे तक पढ़ कर सुपण्डित हो सकने पर 'बोससे बौद्धयतिके बाद गेत्पुत्र अपने अध्ययसायके बल गेत्पुत्र बनता है। गेत्पुत्र होनेके समय जिस प्रधाका अनुष्ठान कर उपासक और जोड़ लामाका अभिमत

प्रदण करना पड़ा था, इस समय भी उसे उसी प्रकार मठकी तालिकामें नाम लिखवा कर प्रकृत यति होना होता है। जो यति अपने अध्यवसायके बल पर खुलो विचारसमामें अथवा मठकी प्रधान परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही बौद्धधर्मतत्त्वकी श्रेष्ठ उपाधि पाते हैं। उपाधिपानेके बाद वे सब प्रकार धाचार-मर्यादा पानेके अधिकारी होते हैं।

गे पे तथा रज्-जम पा बौद्धधर्मकी श्रेष्ठ उपाधि है। गे लोङ्ग शिक्षा बलसे 'गे-पे' हो कर विसो एक वैज्ञानिक तत्त्वालोचनानें नियुक्त रह सकत हैं; लेकिन जब तक वे इस पद पर न चढ़ें तब तक उन्हें धर्मशास्त्र हीको आलोचना करना होगा। गे पे उपाधि-प्राप्त बहुत रे बौद्धयति तिष्ठत, माङ्गोलिया-आमदो और चीन राज्यकी गवर्नेण्टको देखरेखने परिचालित संघारामके प्रधान लामा या सख्यत्रस् मगोन पद पर अभिषिक्त हैं। जो मठके आचार्याका पद प्रदण नहीं करते, वे मठमें रह कर तन्त्र शास्त्र पढ़ते हैं। फोछे तन्त्रशास्त्रको अध्ययन परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर सर्वोच्च गान्-लुन् संघारामका 'खुप' पद पाते हैं।

पर जम्-प परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रगण जनसाधारणके बीच हो गिने जाते हैं। वे खुली जगह सर्वोको बौद्धधर्मका उपदेश दिया करते हैं। तिष्ठतके वारह प्रसिद्ध संघारामोंको छोड़ अन्य किसी मठाध्यक्षरे यह उपाधि देनेका अधिकार नहीं है। देवायसम्भूत लामाओंके लिये निर्दिष्ट पद और कार्यावलीमें उनका अधिकार है। राजशक्तिधारी द्वाङ्-लामा पेसे छात्रोंको 'छभोजे' और 'पण्डित'की उपाधि देते हैं। इन दोनोंकी अध्यवस्ती उपाधिका नाम लो-त्स-य है। 'रज्-जम्-प' और 'छभोजे' उपाधि करीब करीब समान है। पे तै-जो कह कर सम्मानित होते हैं। इसलिये देवायसम्भूत लामाओंके नाँचे यथाक्रमसे खान-पो, छभोजे तथा रज्-जम प उपाधिकारी-गण मर्यादासम्पन्न हैं। छभोजे और रज्-जम्-प श्रेणोसे खान् पो चुना जाना है। किसी विसो मठमें खान् पोके सहकारी रूपमें छभोजे नियुक्त देखे जाते हैं। छोटे छोटे मठमें प्रथम लामाका कार्य छभोजे या रज्-जम्-प-ओंके हाथ सौंपा हुआ है।

रमो-छे और मो-च नामक मठमें भोजविद्या और भौतिकविद्या शिक्षाके लिये स्वतन्त्र शाखा प्रतिष्ठित है। जो इस विद्यालयमें रह कर इस विद्यानके गूढ़ रहस्यका मम जानते और परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे डग्-रम्-प कहलाते हैं। वे आयुर्वेद, रसायन, मृततत्त्व आदिकी आलोचना करते हैं। शीवसम्प्रदायकी तरह वे घैराभूवा धारण करते हैं। सम्भवतः तान्त्रिक क्रापालिक-मत अनुसरण कर ही इस सम्प्रदायको उत्पत्ति हुई होगी। इस श्रेणोके अग्र व्यक्त 'डग्-प' या भविष्यद्वक्ता कहलाते हैं और फाङ्गना फूकना और भूतः उतराना या भगाना आदि कार्य दिखाते हैं।

मठकी शासनव्यवस्था।

बड़े बड़े संघाराममें हजारों बौद्धयति वास कर ते हैं। एक नियमका पालन न कर सकनेके कारण लामाओंने चढ़ांका कार्यावली निर्बिरोध चला देनेके लिये एक शासनतन्त्र बनाया है। चढ़ां एक तरह राजतन्त्र ही विद्यमान देखा जाता है। इस पद्धतिका परिचालन करनेके लिये परिदर्शकरूपमें कुछ कर्मचारी नियुक्त हैं। वे चढ़ांका हिसाब किताब करते और आवश्यकता पड़ने पर दुरात् छात्रसंघको भी अपराधके अनुसार दण्ड देते हैं।

कु-पो, कु-कु आदि उपाधिधारी देवानुष्ठूरीत लामा लोग ही इन सब संघारामोंके एकमात्र कर्ता हैं। मङ्गो-लीय बौद्ध-सम्प्रदायमें वे खुर्चिलयन नामसे परिचित हैं। किसी किसी संघाराममें खोन-पो या उपाध्याय ही अध्यक्ष हैं। पे खान्-पो द्वाङ् लामाकी अनुमतिके अनुसार या प्रादेशिक लामा प्रधानोंके आदेशानुसार ही नियुक्त होते हैं। वे एकक्रमसे सिकं सात वर्ष तक एक मठका अध्यक्ष रह सकते हैं। उनके अधान निमोक्त कर्मचारी मठकी सुगुण्डला और सुशासनकी रक्षा करते हैं। वे सभी मठ-घासा यतिओंकी सलाहसे निर्वाचित होते तथा सभी निर्दिष्ट समय तक निर्धारित पदकी मर्यादा रक्षा करनेको बाध्य हैं।

१. लोव-पोन् या अध्ययक—वे संघारामके धर्म और विद्या-शिक्षाके परिदर्शक हैं।

२. छग्-दसो—कोषाध्यक्ष और छात्रांची।

श्रृंग छत्रोत्सव होने पर भी यह शिक्षाकाल अतिप्रमत्त कर नहीं सकता। इस समयसे उसे कठिन परिश्रमके साथ छर्माखादि अध्ययन करना होता है। शास्त्र देखनेके सिवा यह शिष्य हर तरहकी शिल्प या विनयविया सीख सकता है। पाठ याद नहीं करनेसे यह बेंतकी मार खाता है। उस समय जो आचार्य गेत्पुत्रकी बौद्धधर्माका गूढ़ रहस्य बता देते हैं, वे 'स्से वै लामा' नामसे इस बालक द्वारा चिरदिन पूजित होते हैं। इस समय अक्सर उसकी परीक्षा की जाती है।

एक संघारामके अंदर प्रत्येक मठमें ही एक एक धर्माचार्य रहते हैं। वे श्रेष्ठ लामा कहलाते हैं। सूत्र, विनय और अभिधर्म नामक धर्मशास्त्रके किसी एक विषयमें पारदर्शी न हो सकनेसे कोई भी लामा पद नहीं पाता। लामाओंमेंसे जो जितना धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, वे उतने ही पूज्य समझे जाते हैं। इस कारण गेत्पुत्रगण भी अपने अपने उपाध्यायकी अध्यापनासे एक एक विषयमें पारदर्शी होते हैं। प्रतिदिन पढ़नेके समय घंटा बजता है। इसी घंटेकी सुन वे पाठपूजमें जा कर पाठभ्यास करते हैं और अपने आचार्यसे नया पाठ लेते हैं। इस प्रकार भाष्यकीय पाठ समाप्त होने पर उनका इस्तदान लिया जाता है। पहले एक वर्षके बाद और पीछे एक या दो वर्षके बाद इस्तदान होता है। दोनों परीक्षामें जब तक पास नहीं होते, तब तक उन्हें चाय बनाने और संघके धूदे यतिओंकी आज्ञा माननी पड़ती है।

परीक्षाके समय प्रत्येक संघारामके सर्वश्रेष्ठ आचार्य और प्रतिगण एक घटमें जमा होते हैं। वे सभी खुपचाप बैठते हैं तथा उनके बीच गेत्पुत्र सड़ा हो कर अपना पाठ सुनाता है। अगर पढ़ते समय यह कहीं भूल जाता है, तो एक दूसरा बालक समोपमें जड़ा हो कर बतला देता है। पहली परीक्षामें सभी पढ़नेकी पुस्तके इस भांति सुनानेमें करीब तीन दिन लगते हैं और हर दिन यह बालक नौ दफे विभ्राम करने पाता है। इस मीके पर यह पुनः आगेका किताब देख सकता है।

जो बालक इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सकता, उसको बड़ी लामाछनाके साथ घरसे बाहर ला कर छत्रोत्सव समस्पा' उत्सवमध्यम प्रहार किया जाता है। जो तीन

वर्ष लगातार पास नहीं होता, यह मठसे बाहर कर दिया जाता है। सिर्फ घनधानका लड़का ही बहुत रुपये खर्च करने पर मठमें रह कर विद्याभ्यास कर सकता है। निर्धनका लड़का अगर यह फिर पढ़ना चाहे, तो यह साधुचेता युद्ध हो कर दिन विताता है, लेकिन उसे संघारामके किसी किसी मठकी दास्यवृत्ति करनेकी पड़ती है। अगर यह पीछे पारदर्शी हो, तो वह किसी गाँवके मठका लामाचार्य बना दिया जाता है। किन्तु उस समय यह लामाकी तरह प्रतिष्ठित होने पर भी उस पदका यथार्थ अधिकारी नहीं होता।

उपरोक्त परीक्षाले छात्रसंघका परस्पर विचार बढ़ा हो अच्छा है। उससे छात्रको किसी शिक्षा दी गई है, यह अच्छी तरह जाना जाता है। तिष्यतके सुप्रसिद्ध वे-पुद्ग, तपिल्लहनपो, सेर और मालदन् संघाराममें समय समय पर ऐसी विचारसभा बुलाई जाती है। वहाँ करीब चारसे छेकर आठ हजार तक बौद्धयति इकट्ठे हैं। इसको तिष्यती भाषामें 'मूल्यान्-जिट्टु' कहते हैं। इस सभामें यह भी विचार होता है, कि शिष्योंने धर्मशास्त्र और धर्मतत्त्वका सारमर्म समझा है वा नहीं। जहाँ यह सभा बैठती है यह स्थान शालपेड़की छाली और पत्थरसे घिरा रहता है। बौद्धयतिके अलावा और कोई भी उस सभामें प्रवेश नहीं कर सकता। उस सभाके बीच सबसे ऊँचे पत्थरके आसन पर स्वयंस्-मगोन्, उसके नीचे छोटे आसन पर मन्वान-पो और उससे नीचे गवैये बैठते हैं। उसके चारों ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान सात भागोंमें बँटा रहता है। प्रश्न करनेवाले हल्दी रंगका साफा बांध कर दर्शकमण्डलीके समक्ष हाथ जोड़ अपना प्रश्न उठाते हैं। एकजित छात्रमण्डलीमेंसे जो उस प्रश्नका उचित उत्तर दे सकता है, यही छात्र लामाके आदेशसे उच्च श्रेणीमें चढ़ता है।

वर्ष भरमें सिर्फ चार बार प्रीक्ष, शरत्, शीत और वसन्तकालमें यह विचार-सभा बैठती है। इस प्रकार बारह वर्ष तक पढ़ कर सुपण्डित हो सकने पर बौद्धसे श्रीबौद्ध धर्मके बाद गेत्पुत्र अपने अध्ययनके बलगे-लोड्-पद पाता है। गेत्पुत्र होनेके समय जिस प्रथाका अनुसरण कर उपाध्याय और श्रेष्ठ लामाका अभिमत्त

ग्रहण करना पड़ा था, इस समय भी उसे उसी प्रकार मठकी तालिकामें नाम लिखवा कर प्रदत्त यति होना होता है। जो यति अर्पण अर्घ्यवसायके बल पर खुलो विचारसभामें अथवा मठकी प्रधान परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही बौद्धधर्मतत्त्वकी श्रेष्ठ उपाधि पाते हैं। उपाधिपानके बाद वे सब प्रकार आचार-भर्यादा पानेके अधिकारी होते हैं।

मे पे तथा रज्जु-जम पा बौद्धधर्मकी श्रेष्ठ उपाधि है। मे लोङ्ग शिक्षा बलसे 'ये-ये' हो कर किसी एक दैहिक तत्त्वालोचनानि नियुक्त रह सकते हैं; लेकिन जब तक वे इस पद पर न चढ़ें तब तक उन्हें धर्मशास्त्र होके आलोचना करना होगा। मे पे उपाधि-प्राप्त बहुत से बौद्धयति तिष्ठत, माङ्गोलिया-भामदो और चीन राज्यकी गवर्नेण्टको देखरेखमें परिचालित संघारामके प्रधान लामा या स्वयम्भूत मगोन पद् पर अभिषिक्त हैं। जो मठके आचार्यका पद ग्रहण नहीं करते, वे मठमें रह कर तन्त्र शास्त्र पढ़ते हैं। पीछे तन्त्रशास्त्रको वक्ष्यमाण परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर सर्गपूज्य गाःल्दन् संघारामका 'खुप' पद पाते हैं।

पर जम्-प परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रगण जनसाधारणके बीच हो गिने जाते हैं। वे खुलो जगह सर्वोकी बौद्धधर्मका उपदेश दिया करते हैं। तिष्ठतके पारह प्रसिद्ध संघारामोंकी छोड़ अन्य किसी मठाध्यक्षकी यह उपाधि देनेका अधिकार नहीं है। देवाससम्भूत लामाओंके लिये निर्दिष्ट पद और कार्यालयमें उनका अधिकार है। राजशुकिधारी दल्ई-लामा ऐसे छात्रोंको 'छमोजे' और 'पण्डित'की उपाधि देते हैं। इन दोनोंकी मध्यवर्ती उपाधिक नाम लो-रस-य है। 'रज्जु-जम प' और 'छमोजे' उपाधि करीब करीब समान है। ये तै-जा कह कर सम्मानित होते हैं। इसलिये देवाससम्भूत लामाओंके बीच यथाक्रमसे खान-पो, छमोजे तथा रज्जु-जम प पदाधिकारोंगण मध्यवर्तीसम्पन्न हैं। छमोजे और रज्जु-जम प श्रेणोंसे खान् पो चुना जाता है। किसी किसी मठमें खान् पोके सहकारी रूपमें छमोजे नियुक्त देखे जाते हैं। छोटे छोटे मठमें प्रधान लामाका कार्य छमोजे वा रज्जु-जम-प-ओंके हाथ सौंपा हुआ है।

रमो-छे और मो-र नामक मठमें भोजविद्या और भौतिकविद्या शिक्षाके लिये स्वतन्त्र शाखा प्रतिष्ठित है। जो इन विद्यालयमें रह कर इस विधानके गूढ़ रहस्यका मम जानते और परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे डग्-रम्-प कहलाते हैं। वे आगुर्वेद, रसायन, भूततत्त्व आदिकी आलोचना करते हैं। शैवसम्प्रदायकी तरह वे वेदाभ्यास धारण करते हैं। सम्भवतः तान्त्रिक क्रापालिक-मत अनुसरण कर ही इस सम्प्रदायको उत्पत्ति हुई होगी। इस श्रेणीके अग्र व्यक्ति 'डग-प' या भविष्यदक्ता कहलाते हैं और भाङ्गना फूकना और भूत उतारना या भगाना आदि कार्य दिखाते हैं।

मठकी शासनव्यवस्था।

बड़े बड़े संघाराममें हजारों बौद्धयति वास करते हैं। एक नियमका पालन न कर सकनेके कारण लामाओंने यहाँका कार्यालयी निर्बिरोध चलानेके लिये एक शासनतन्त्र बनाया है। यहाँ एक तरह राजतन्त्र ही विद्यमान देखा जाता है। इस पद्धतिका परिचालन करनेके लिये परिदर्शकरूपमें कुछ कर्मचारी-नियुक्त हैं। वे यहाँका हिसाब किताब करते और आवश्यकता पड़ने पर दुर्गुत्त छात्रसंघकी भी अपराधके अनुसार दण्ड देते हैं।

खु-पो, कु-कु आदि उपाधिधारी देवानुश्रुति लामा लोग ही इन सब संघारामोंके एकमात्र कर्त्ता हैं। मङ्गो-लीय बौद्ध-सम्प्रदायमें वे खुर्दिलयन नामसे परिचित हैं। किसी किसी संघाराममें खोन-पो या उपाध्याय ही अध्यक्ष हैं। ये खान्-पो दल्ई लामाकी अनुमतिके अनुसार या प्रादेशिक लामा प्रधानोंके आदेशानुसार ही नियुक्त होते हैं। ये एकक्रमसे सिर्फ सात वर्ष तक एक मठका अध्यक्ष रह सकते हैं। उनके अधीन निम्नोक्त कर्मचारी मठकी सुगृहस्था और सुशासनकी रक्षा करते हैं। वे सभी मठ-घासा यतिओंकी सलाहसे निर्वाचित होते तथा सभी निर्दिष्ट समय तक नियोजित पदकी मर्यादा रक्षा करनेकी बाध्य हैं।

१ लोच-पोन् या अध्यापक—ये संघारामके धर्म और विद्या-शिक्षाके परिदर्शक हैं।

२ छग-दसो—कोषाध्यक्ष और सजांची।



शुभ छत्रोत्थान होने पर भी यह शिक्षाकाल अतिक्रम कर नहीं सकता। इस समयसे उसे कठिन परिश्रमके साथ धर्मशास्त्रादि अध्ययन करना होता है। शास्त्र देखनेके सिया यह शिष्य हर तरहकी शिल्प या चित्र-विद्या सीख सकता है। पाठ याद नहीं करनेसे यह येतकी मार खाता है। उस समय जो आचार्य गेत्पुत्रकी धीरधर्माका गुरु रहस्य बता देते हैं, वे 'हसे वै लामा' नामसे इस बालक द्वारा चिरदिन पूजित होते हैं। इस समय अकसर उसकी परीक्षा की जाता है।

एक संघारामके अंदर प्रत्येक मठमें ही एक एक धर्माचार्य रहते हैं। वे श्रेष्ठ लामा कहलाते हैं। सूत्र, विनय और अमिषमर्ग नामक धर्मशास्त्रके किसी एक विषयमें पारदर्शी न हो सकनेसे कोई भी लामा पद नहीं पाता। लामाओंमेंसे जो जितना धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, वे उतने ही पूज्य समझे जाते हैं। इस कारण गेत्पुत्रगण भी अपने अपने उपाध्यायकी अध्यापनासे एक एक विषयमें पारदर्शी होते हैं। प्रतिदिन पढ़नेके समय घंटा बजता है। इसी घंटेकी सुन वे पाठशुद्धमें जा कर पाठारम्भ करते हैं और अपने आचार्यसे नया पाठ लेते हैं। इस प्रकार भाष्यकीय पाठ समाप्त होने पर उनका इस्तदान लिया जाता है। पहले एक वर्षके बाद और पाँचे एक या दो वर्षके बाद इस्तदान होता है। दोनों परीक्षामें जब तक पास नहीं होते, तब तक उन्हें चाय बनाना और संघके पृष्ठे यतिओंकी आज्ञा माननी पड़ती है।

परीक्षाके समय प्रत्येक संघारामके सर्वश्रेष्ठ आचार्य और यतिगण एक घरमें जमा होते हैं। वे सभी चुपचाप बैठते हैं तथा उनके बीच गेत्पुत्र खड़ा हो कर अपना पाठ सुनाता है। अगर पढ़ते समय यह कहीं भूल जाता है, तो एक दूसरा बालक समीपमें खड़ा हो कर बतला देता है। पहली परीक्षामें सभी पढ़नेकी पुस्तकें इस भाँति सुनानेमें करीब तीन दिन लगते हैं और दूसरे दिन यह बालक भी वृत्ते विश्राम करने पाता है। इस मौके पर यह पुनः आगेका किताब देख सकता है।

जो बालक इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सकता, उसको बड़ी लाजठनाके साथ घरसे बाहर ला कर 'छत्रोत्थानसूत्र' उच्चम-मध्यम प्रकार किया जाता है। जो तीन

वर्ष लगातार पास नहीं होता, यह मठसे बाहर बंध दिया जाता है। सिर्फ धनधान्याका लड़का ही बहुत रुपये खर्च करने पर मठमें रह कर विद्याभ्यास कर सकता है। निर्धनका लड़का अगर यह फिर पढ़ना चाहे, तो वह साधुकेता गृही हो कर दिन बिताता है, लेकिन उसे संघारामके किसी किसी मठकी दास्यवृत्ति करनेसे पड़ती है। अगर यह पाँचे पारदर्शी हो, तो वह किसी गाँवके मठका लामाचार्य बना दिया जाता है। किन्तु उस समय यह लामाकी तरह प्रतिष्ठित होने पर भी उस पदका यथार्थ अधिकारी नहीं होता।

उपरोक परीक्षासे छात्रसंघका परस्पर विचार बढ़ा हो खट्टा है। उससे छात्रकी कैसी शिक्षा दी गई है, यह अच्छे तरह जाना जाता है। तिब्बतके सुप्रसिद्ध वे-पुद्ग, तपिरहूनपो, सेर और गाल्दन् संघाराममें समय समय पर ऐसी विचारसभा बुलाई जाती है। वहाँ करीब चारसे ले कर आठ हजार तक बौद्धयति एकट्ठे हैं। इसकी तिब्बती भाषामें 'मूल्यान्-त्रिद्रु' कहते हैं। इस सभामें यह भी विचार होता है, कि शिष्योंने धर्मशास्त्र और धर्मतत्त्वका सारमर्म समझा है या नहीं। जहाँ यह सभा बैठती है वह स्थान शालपेड़की डाली और पत्थरसे घिरा रहता है। बौद्धयतिके बलाया और कोई भी उस सभामें प्रवेश नहीं कर सकता। उस सभाके बाँध सबसे ऊँचे पत्थरके आसन पर स्थयवस्-मगोत्र, उसके नीचे छोटे आसन पर मंजान-पो और उससे नीचे गवैये बैठते हैं। उसके चारों ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान सात भागोंमें बँटा रहता है। प्रश्न करनेवाले हल्दी रंगका साफा बाँध कर दर्शकमण्डलीके समक्ष हाथ जोड़ अपना प्रश्न उठाते हैं। एकत्रित छात्रमण्डलीमेंसे जो उस प्रश्नका उचित उत्तर दे सकता है, वही छात्र लामाके आवेशसे उच्चश्रीणोंमें चढ़ता है।

वर्ष भरमें सिर्फ चार बार प्रीण, शरत्, शीत और वसन्तकालमें यह विचारसभा बैठती है। इस प्रकार बारह वर्ष तक पढ़ कर सुपरिष्ठम हो सकने पर बीससे बीससे वर्षके बाद गेत्पुत्र अपने अध्ययसायके बल गे-लोत्पद पाता है। गेत्पुत्र होनेके समय जिस प्रथाका अनुसरण कर उपाध्याय और श्रेष्ठ लामाका अमिषम

ग्रहण करना पड़ा था, इस समय भी उसे उसी प्रकार मठकी तालिकामें नाम लिखवा कर प्रकृत यति होना होता है । जो यति अपने अध्यवसायके बल पर खुली विचारसभामें अध्याय मठकी प्रधान परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, ये ही बौद्धधर्मतत्त्वकी श्रेष्ठ उपाधि पाते हैं । उपाधिपानके बाद वे सब प्रकार आचार-मर्यादा पानेके अधिकारी होते हैं ।

ये वे तथा रज्ज-जम या बौद्धधर्मकी श्रेष्ठ उपाधि है । ये लोड्ड शिक्षा बलसे 'चे-ये' हो कर किसी एक वैज्ञानिक तत्त्वालोचनानामें नियुक्त रह सकत हैं; लेकिन जब तक वे इस पद पर न चढ़ेंगे तब तक उन्हें धर्मशास्त्र हांको आलोचना करना होगा । ये वे उपाधि-प्राप्त बहुत दे बौद्धयति तिष्ठत, माङ्गोलिया-आमदो और चीन राज्यकी गवर्नमेंटको देखरेखने परिचालित संघारामके प्रधान लामा या स्त्रयवस् मगोन पद पर अभिषिक्त हैं । जो मठके आचार्यका पद ग्रहण नहीं करते, वे मठमें रह कर तन्त्र शास्त्र पढते हैं । जो छे तन्त्रशास्त्रकी वक्ष्यमाण परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर सर्वापूज्य गाङ्गल्डन् संघारामका 'खूप' पद पाते हैं ।

हर जम्-प परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रगण जनसाधारणके बीच हो गिने जाते हैं । वे खुली जगह सबोंको बौद्धधर्मका उपदेश दिया करते हैं । तिष्ठतके वारह प्रसिद्ध संघारामोंको छोड़ अन्य किसी मठाध्यायी यह उपाधि देनेका अधिकार नहीं है । देवांशसम्भूत लामाओंके लिये निर्दिष्ट पद और कार्यावलीमें उनका अधिकार है । राजशक्तिधारी द्वाई-लामा ऐसे छात्रोंको 'छओजे' और 'परिद्धत'की उपाधि देते हैं । इन दोनोंकी मध्यवर्ती उपाधिका नाम लो-स्स-य है । 'रज्ज-जम' और 'छओजे' उपाधि करीब करीब समान है । ये ती-जां कह कर सम्मानित होते हैं । इसलिये देवांशसम्भूत लामाओंके नीचे यथाक्रमसे खान-पो, छओजे तथा रज्ज-जम पदाधिकारोंगण मर्यादासम्पन्न हैं । छओजे और रज्ज-जम श्रेणोंसे खान पो चुना जाता है । किसी किसी मठमें खान पोके सहकारी रूपमें छओजे नियुक्त देखे जाते हैं । छोटे छोटे मठमें प्रधान लामाका कार्य छओजे या रज्ज-जम-प-ओंके हाथ सौंपा हुआ है ।

रमो-छे और मो-र नामक मठमें भोजविद्या और भौतिकविद्या शिक्षाके लिये स्वतन्त्र शाखा प्रतिष्ठित है । जो इस विद्यालयमें रह कर इस विद्यानके गूढ़ रहस्यका मम जानते और परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे डग्ग् रम्-प कहलाते हैं । वे आयुर्वेद, रसायन, भूततत्त्व आदिकी आलोचना करते हैं । शैवसम्प्रदायकी तरह वे वेगभूया धारण करते हैं । सम्भवतः तान्त्रिक कापालिक-मत अनुसरण कर ही इस सम्प्रदायको उत्पत्ति हुई होगी । इस श्रेणोंके अग्र व्यक्ति 'डग्ग्-प' या भविष्यद्दका कहलाते हैं और भाङ्गना फूकना और भूत उतारना या भगाना आदि कार्य दिखाते हैं ।

मठकी शासनव्यवस्था ।

बड़े बड़े संघाराममें हजारों बौद्धयति वास्त करते हैं । एक नियमका पालन न कर सकनेके कारण लामाओंने वहांका कार्यावली निर्विरोध चलानेके लिये एक शासनतन्त्र बनाया है । वहां एक तरह राजतन्त्र ही विद्यमान देखा जाता है । इस पद्धतिका परिचालन करनेके लिये परिदृशकरूपमें कुछ कर्मचारी नियुक्त हैं । वे वहांका हिसाब किताब करते और आवश्यकता पड़ने पर दुर्गत्त छात्रसंघकी भी अघरायके अनुसार दण्ड देते हैं ।

कु-पो, कु-कु आदि उपाधिधारी देवानुत्पत्त लामा लोग ही इन सब संघारामोंके एकमात्र कर्त्ता हैं । मङ्गोलीय बौद्ध-सम्प्रदायमें वे खुर्बिलयन नामसे परिचित हैं । किसी किसी संघाराममें खान-पो या उपाध्याय ही अध्यक्ष हैं । ये खान-पो द्वाई लामाकी अनुमतिके अनुसार या प्रादेशिक लामा प्रधानोंके आदेशानुसार ही नियुक्त होते हैं । वे एकक्रमसे सिर्फ सात वर्ष तक एक मठका अध्यक्ष रह सकते हैं । उनके अधीन निम्नोक्त कर्मचारी मठकी सुष्ठुझूला और सुशासनकी रक्षा करते हैं । वे सभी मठ-यासा यतिओंकी सलाहसे निर्वाचित होते तथा सभी निर्दिष्ट समय तक निर्घोषित पदकी मर्यादा रक्षा करनेको बाध्य हैं ।

१ लोच-पोन् या अध्यापक—ये संघारामके धर्म और विद्या-शिक्षाके पारदर्शक हैं ।

२ छग्ग्-दसो—कीयाध्यक्ष और वज्रांची ।

३ अर-प वा स्विच-अर-—गाण्डारी ।

४ गे-की तथा भाल मो—हाकिम और सेनाध्यक्ष । यह दो व्यक्ति होते हैं और पुलिस-कर्मचारीकी तरह इधर उधर पहरा देते तथा मठवासियोंके दोष गुणका विचार करते हैं । इनके सहकारी दो हर्-अर हैं ।

५ उम्-सुसे—प्रधान गायक ।

६ कु-अर-—धर्मालयका परिचारक ।

७ छ'भोय-त्रेन्—जल देनेवाला ।

८ ज म—चाय बनानेवाला । इसके अलावा प्रत्येक मठमें ही सम्पादक और परिदर्शक, पाठक, पुरखी, नतिधि सत्कारक, हिंसावर-रक्षक, कर-संग्राहक, चिकित्सक, चितकर, याणिक, यति, भूतके भोक्ता और मातृव्य-दृष्टवादी आदि नियुक्त हैं ।

संघारामोंके कार्यालयी नियमपूर्वक परिचालित करनेके लिये क्लग अलग विभाग निर्दिष्ट हैं । दे-पुङ्ग संघाराममें ७५०० यति वास करते हैं । वे ब्लो-ग साल-गिल्ह-सगो-मड, घ्दे-यडस् और सड्गसुप नामक चार विध्विद्यालयके अधीन हैं । प्रत्येक विद्यालय एक उपाध्याय द्वारा परिचालित होता है । यतिगण प्रादेशिक और जातीय विभागानुसार विभिन्न मठमें स्थान पाते हैं । उस विभिन्न श्रेणीके मध्य करनेका स्थान खम्स-स्वन् ( Provincial messing club ) तथा विद्यालय प्रव-स्वन् ( College ) कहलाता है । प्रथमोक्त स्थानमें यतिगण आहार, शयन और अध्ययन करते तथा शैथिल्यके शोलेमें जा कर वे अपने अपने गुरुके पास अपना पाठ सुनाते हैं । इस संघारामके सबसे बड़े धरामदे ( ठसोगस्-छेन-लठ-जड् )में जनसाधारणको-जानेका अधिकार है ।

सेर-संघाराममें ५५०० यति रहते हैं । उनमेंसे घयेरा, सड्गसुप समुद्र प विद्यालयके प्रत्येकके अधीन एक शाखासंमिति है । गाल्दून् संघाराममें ३३०० बौद्धयति वास करते हैं । येड्-रसे और यर-रसे नामक दो शाखा विद्यालय इसके अन्तर्गत हैं । त्रिपिल्लहूनपोके प्रसिद्ध संघाराममें तीन 'त स्वप्न' या विद्यालय हैं । उनके अधीन प्रायः ४० कर्मचर्य या शिक्षायास देखे जाते हैं ।

बंगालके प्रसिद्ध परिभाजक धीशुक राय शरत्चन्द्र

दास बदापुरने सुप्रसिद्ध त्रिपिल्लहूनपो संघाराममें परि-स्रमण कर उसका ठीक ठीक विवरण संग्रह किया था । उनके सम्पादित Jour - Bud, Text, Socy. India iv, p. 14 (1893) तथा Journey to Lhasa and Central Tibet नामक ग्रन्थमें विशदरूपसे यह विवरण लिखा है । शैथिल्यके ७६ पन्नेमें लिखा है,—तु-न्वम प्रदेशयासी त्रिपिल्लहूनपोके एक देवद्वाराकथ नयोन लामाने १८८१ ई०की १५वीं दिसम्बरको उपवास और त्योहारका दिन समझ कर बौद्धयतिओंके तु-गम्बस्त् पदलामका इरादा किया । अतः उन्होंने कुन खेप लिङ्गसे पञ्चेनकी निमन्त्रण करने मेजा । उन्होंने उक्त संघारामके मध्यस्थ ३८०० यतिओंकी एक एक खपया करके, श्रेष्ठ लामाको उपहार और प्रणामी तथा लामान्विद्यालयमें ( College of Incarnate Lamas ) बहुत धन दिया था । पञ्चेनके पधारने पर सभी बाजे गाजेके साथ उन्हें सम्मानपूर्वक मठके प्रधान प्रकोष्ठमें ले गये थे । वे इस उपासनागृह ( हसो खङ्ग )में आ कर बेदीके ऊपर बैठे और तब उत्सव क्रियाकाण्ड शुरू हुआ । १० बजे रातमें उसका शेष हुआ । पीछे भोज्यद्रव्य, माल्य और अन्नपर द्रव्य ले कर यतिगण अपने अपने मठयास लौट आये । इस दृष्टके बाद उक्त नयोन लामा त्रिपिल्लहूनपो संघाराममें शिक्षानवीशरूपमें रह कर पाठाम्यास करने लगे । पीछे उन्होंने परीक्षा दे कर लामा पद पाया और इस देशमें त्रिपिल्लहूनपो नामसे प्रसिद्ध हुए । वे बौद्धतीर्थ देखनेके लिये भारतवर्षमें आये थे ।

उपरोक्त संघारामके छात्रियासमें दो लामा रहते हैं । उनमेंसे ज्येष्ठ लामा ही छात्रियासकलम मठके परि-दर्शक और मन्दिरके पूतक तथा छात्रमण्डलीके उपदेष्टा हैं । कनिष्ठ लामा केवल भाण्डारकी देखरेखमें रहते हैं । यदि उनके अधीनस्थ मठका कोई छात्र असदाचरण करता है, तो यह दण्डका भागी होता है । हरसाल इन दो कर्मचारीकी बदली होती है । इन सब कर्मचारीकी नियुक्तिके समय स्वतन्त्र प्रमियाका अनुष्ठान होते देखा जाता है ।

प्रति दिन सवेरे मध्याह्न चार बजे एक बालक मन्दिरकी चौटी पर चढ़ कर छठीसपुद् गाता है । यह गान

सुनते ही छात्रमण्डली जाग उठती तथा अपने अपने घरके और छात्रोंकी घंटा बजा कर उठाती है। तब वे सब मुंह और हाथ पैर धो कर कपड़ा बदल लेते हैं। पीछे शिरको उला-गमसे ढक कर तथा हल्दी रंगकी टोपी पहन कर एक कटोरा और मैदकी घौली हाथमें लेते और मंडारी मैदा खाने जाते हैं। उसके बाद वे मन्दिरके प्राङ्गणमें प्रणाम कर मठका प्रदक्षिण करते तथा कोई कोई भञ्जुथ्री मन्दिरमें जा कर ओम ह-प मूच मढ़ि मगल पाठ किया करते हैं।

एक बजे मिग्ट्सेम लामा शिग्ट्सेम स्तोत्र उच्च स्वरसे गाते हैं। उस समय छात्रगण उसी दरवाजे पर आ कर शिरमें पीला साफा बांध कर एक स्वरमें वही स्तोत्र पढ़ते हैं। कुछ देर बाद हविल धा कर द्वार खोल देता और वे सबके सब मन्दिरमें घुसते हैं। भीतर जा कर सब अपने योग्य स्थान पर बैठते और सिकी टोपी घोल गीचे रख देते हैं। उस समय अपनी घौली और कटोरा ठेहुनेके नीचे छिपाये रखते हैं। पीछे प्रधान गायकके देवपदाश्रयभीत गाने पर जब कनिष्ठ मठपरिदर्शक पीला साफा शिरमें लपेट कर लोहेके हथौड़े से खंभेमें चोट देता, तब सब छात्र जलखंडधर जा कर चाय पीते हैं और फिर वापस आ कर अपने अपने आसन पर बैठ जाते हैं। इस जलखंडधरकी स्वतन्त्र व्यवस्था है। जिस नियमसे लड्डुके चाय पीते हैं यह विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ पर लिखा नहीं गया। चाय बांटनेके लिये पांच नौकर नियुक्त हैं। मठके यति दलमें तीन हफे चाय पीते हैं। चंदेमें अधिकांश चाय हा बसूल होती है। कोई कोई धनी, प्रादेशिक शासनकर्ता और चीनके सम्राट् रयोहार आदिमें लामाओंको चाय पिलाते हैं। लामामठकी जिस हंडीमें चायका जल गरम होता है, उसमें करीब दो सौ मन जल भरता है।

मठकी प्रचलित प्रथाका उल्लंघन करने, किसी प्रकारका असौजन्य या असद्व्यवहार दिखलाने अथवा प्रह्लचर्य भंग करनेसे प्रातिमोक्षविधिके अनुसार उसका विचार होता और सजा दी जाती है। सामान्य अपराध होने पर तिरस्कार या लाञ्छना द्वारा छुटकारा पाता है। यदि

कोई एक ही अपराध बारंबार करता है, तो यह अपराध गुप्ततर समझा जाता है और अपराधी उसीके अनुसार सजा पाता है। यदि कोई छात्र शराब पीता या चोरी करता है; तो उसके शिक्षक और छात्रावासके परिचरीक विचारसभासे निन्दक समझे जाते हैं। पीछे दो मनुष्य इस छात्रके पैरमें डोरी बांध कर मन्दिरके बाहर लाते और उसे घेंन मारते हैं। कड़ो मार देनेके बाद वह मठसे बाहर कर दिया जाता है। जो अपनी इच्छासे प्रह्लचर्य भंग कर मठ छोड़ देता है, वह जंगली कहलाता है।

मठके वाहर भी लामाओंका प्रभाव फैला हुआ है। यदि कोई किसीके ऊपर जुनम करता है, तो हैई-हो-सङ्ग या ललाटमें काली रेखा लगानेवाले गैकोर लामागण मठके वाहर आ कर उस जुलमीका दमन कर सकते हैं। ये गैकोर लामागण मठाध्यक्ष अपर दो प्रतियोगियोंको सहायतासे लामा या प्रह्लचर्यामका नियम पालन करते हैं। ये लामा प्राचीन बौद्धसंन्यासियोंकी तरह, सुख-स्पृहावर्जित नहीं हैं। संन्यासिके समान वे अर्धालालसा और भोजनलिप्सात्याग नहीं कर सकते। ये-लुगुप आदि तिब्बतीय प्रधान संधारामके अधीन बहुत-सो भू-सम्पत्ति हैं। उसकी आयसे उनका खर्चा चलता है। इसके अलावा धान कटनेके समय सैकड़ों लामा मठसे निकल कर धान, चाय, नैनू, नमक, मांस आदि मांगते फिरते हैं। जो मिलता है वह मठके मंडारमें जमा रहता है। कोई कोई लामा पुतली बना कर या मूर्त्ति काट कर, छाप मार कर, कोष्ठी बना कर, चिकित्सा कर और भाड़ फूक कर नाना उपायसे अर्थ संचय कर मठका खर्चा चलाते हैं। जो ऐसा नहीं कर सकते; वे मठमें रह कर दूसरा दूसरा काम करते हैं। कोई कोई धार्मिज्य करके संधारामका गौरव बढ़ाते हैं। ये सब धर्माचार्या सूद देनेसे जरा भी बाज नहीं आते। सचमुच वे सुव्यवसायी और देशके महाजन गिने जाते हैं।

भारतीय बौद्धोंका वैशभूवा भारतीय ऋतुओंके अनुसार बना था। जब बौद्धधर्म तिब्बत आदि तुपारमय देशोंमें फैल रहा था, उसी समयसे वैशभूवाका परिवर्तन हो गया है। तिब्बतीय लामा या बौद्धधर्मि भयानक

शीत और मच्छड़से बचनेके लिये जूता, मोजा और पहननेका कपड़ा आदि शीतप्रधान देशका उपयोग करके बनाते हैं। प्राचीन बीहोंका चौरवास और वर्त्तमान लामाओंकी जपमाला, शिरखान, कमरबंद, छोटा कुरता, चोगा, इजाद, पायजामा तथा जूता आदिका मिलान करनेसे मालूम होता है, कि वर्त्तमान युगमें बौद्धधर्ममें कैसा विप्लव उपस्थित हुआ है।

तिब्बतीय लामागण शिरमें जो साफा बंधते हैं, यह ठीक भारतीयके समान है, घोड़ा चीन और मन्चोलीयासे मिलता है। तिब्बतीय लामाओंका विश्वास है, कि लामाधर्मके प्रतिष्ठाता बौद्धमिश्र, पद्मसम्भव है तथा उनके सद्योगी शान्तरक्षित ईसी सन् ८वीं सदीमें भारतसे जो पगड़ी पहन कर तिब्बत आये थे, उसीकी तरह वर्त्तमान टोपी बनती है। पञ्चे नुवे दसन लाल पगड़ी बांध शान्तरक्षित तिब्बतमें आये थे। गे लुग्-प-की छोड़ तिब्बतमें सभी जगह ऐसी पगड़ीका प्रचार था। यह साफा या पगड़ी भारतके शीतप्रधान देशोंमें ध्वजहन करैकी कनकपा टोपी-सी है। रसोड खाया उसी लाल टोपीके बदले पोली पगड़ी प्रचार कर गये हैं। यही गे-लुग्-प सम्प्रदायका पदनावा है।

मठविहारिणी बौद्धमिखारिन यशमीने कपड़े या लोमसे बने हुए एक प्रकारके शिरखानका व्यवहार करते हैं। सम्प्रदायके भेदसे यह शिरखान लाल या काला होता है। सिक्किम, भूटान और हिमालय प्रांतके अनेक देशोंमें जहां वृष्टि नहीं होती, यहाँके अधिवासा बौद्धलामागण गरमीके दिनोंमें पड़की टोपी पहनते हैं। कोई भी पहलेकी टोपी नहीं पहनता। चीनवासीकी तरह ये टोपी खोल कर मागन्तुककी प्रणाम करते हैं। यही कारण है, कि देवमन्दिरमें घुसते समय कोई भी शिर पर टोपी नहीं रखते, सिर्फ कई धर्मकार्यमें टोपी पहननेकी विधि है।

उनके शरीरके कपड़े भी दो रंगके होते हैं। गे लुग्-प सम्प्रदायके आचार्यगण कैसरसे रंगा हुआ कपड़ा पहनते हैं। जब कोई गे लुग्-प आचार्यकी उपदेशकन देने आये, तो उसी तरहका कपड़ा पहन सकता है। उसको छोड़ यह यदि कोई ऐसा पद पहन कर आता

है, तो वह दण्डका भागी होता है। प्राचीन बीहोंकी संघाटी, अन्तर्वासक और उत्तरासंघाटीके साथ तिब्बतीय लामाओंका जान, नम् जार और व्लु गोम् नामक शरीर परका वस्त्र मिलता जुलता है। इसके अलावा शांक और वैष्णवोंकी गांति धे माला जपते हैं। इस मालामें १०८ दाने रहते हैं और उसके दोनों छोरके सूनेमें दश दश करके 'साक्षी' रखते हैं। १०८ बार माला जपनेके बाद एक एक साक्षी ले कर वे मन्त्रसंख्या निश्चय करते हैं। इस हिसाबसे दोनों ओर १० × १० साक्षीमें उनकी १०८०० जपसंख्या होती है। ये दाने भी मिन्न मिन्न प्रकारके होते हैं। सर्वप्रधान तयिलामाके पास मुका, चुन्नी, पन्ना, नीला, प्रवाल, स्फटिक आदि मूल्यवान पत्थरमें बनी माला देखी जाती है। पतङ्गिन सम्प्रदायके और देवाराधनाविरोधसे मालाके दाने अलग अलग होते हैं। गे-लुग्-प सम्प्रदायमें हल्दी रंगके काष्ठकी माला, तम-दिन पूजामें लालचन्दनकी लकड़ीकी तथा छ-रशी उपासनामें सफेद शंखकी, तोग्तिरक उपदेयताओंकी पूजामें यद्राक्ष (Elaeocarpus Janitus), सफेदी हड्डी, अथलोकितकी पूजामें स्फटिककी, पद्मसम्भव और ताम्-दिनकी पूजामें प्रवाल तथा पद्मसैरवकी उपासनामें नर-मुण्डमाला व्यवहृत होती है।

लामा जब माला जप नहीं सकते, तब वे गले या दाहिने हाथमें बांध रखते हैं। माला जपनेके समय प्रत्येक दाना पकड़नेके पहले वे धीमे प्रणव उच्चारण करते हैं। पीछे दाना-पकड़ कर मन ही मन पाठ किया करते हैं। मिन्न मिन्न देयताका जपमन्त्र मिन्न मिन्न है। ये सब लामा बकसर और भी कई एक ढ्रुवोंका व्यवहार किया करते हैं। उनमेंसे भजनचक्र, यज्ञदण्ड, घंटा, करोटीनिमित्त ढका या ढाक, पञ्जनी, कवच, पोथी और शलंकार प्रधान हैं। तयिल हनुपीके प्रधान लामा कर्मा कर्मा जयादिरातका बना फंडहार पहनते हैं। किसी किसीको मिश्रापाठ और सन्ध्यासङ्कष्ट है।

तिब्बतवासी लामाधर्मके लिये प्राण-विसर्जन करने पर भी कर्मकाण्डमें उनकी बहुत आसक्ति देखी जाती है। मठवासी पत, प्रायः पुरोहित, मुद्रावासी तपःपरायण-लामा मिश्र, अथवा कृषिवाणिज्यादि कर्ममें लिन लामा

गण पूंयक् पूंयक् कार्यामिं व्यापुन रह कर जीवनयात्रा निर्याह कर रहे हैं।' इस विभिन्न श्रेणिके लामाओंकी नित्यकर्मपद्धति भी स्वतन्त्र है।

लामानगरीके पीतल पर्वतस्थ श्रेष्ठ लामा-संघाराममें बौद्धयति जिस प्रथाका अवलम्बन कर दैनिक कार्या करते हैं, वही नीचे संक्षिप्तरूपसे लिखी जाती है,—

रात्रिकालमें जब नींद टूटती है, उसी समय यति शय्यास्थाग करते हैं। पीछे विडायन परसे उठ कर परिच्छद पहन कर संयत हृदयसे गृहमध्यस्थ वेदीके समक्ष तीन बार देवोद्देशसे प्रणाम करते हैं। तदनन्तर जीवनयात्रा-निर्याहके उपायकी प्रार्थना कर बुद्ध और बोधिसत्त्वोंके उद्देश्यसे स्तव तथा एकल हो कर कई मंत्र पाठ करें। स्तव और मन्त्र पढ़नेके बाद "ओं खेचरणय ही हीं स्वाहा" यह मन्त्र तीन बार पढ़ कर यतिगण अपने अपने धैर्यको धूके। उनका विश्वास है, कि दिनमें भूमनेसे जो सब जीव कुचला जाता है, वह इसी मन्त्रके बलसे अमरावतीके इन्द्रपुरमें देवरूपमें जन्म लेता है।

इन सब देयाराधनाके बाद यदि रात्रि अधिक रह जाय, तो वे पुनः शय्या पर जा सकने हैं; किन्तु यदि दो या चार दण्ड बाकी रहे, तो उन्हें और नहीं सोना चाहिये। थोड़े समयके लिये 'समोन्न लम्' भजनगीति या मन्त्र पाठ कर रात्रि यापन करें तथा घंटाध्वनिसे जब सब कोई उठे, तो वे भी शय्या स्थग कर शङ्खध्वनि और शिङ्गाध्वनि तक अपना वेशभूषा पहनें। शिङ्गाध्वनि होते ही सभी अपने अपने मठको छोड़ कर 'दो-पूछल' नामक प्रस्तरमण्डपमें उपासनाके लिये जुटे। प्रस्तर आसन पर खड़े हो कर वे "ओम् अर्ध चाघं धिमन्से। उत्सुस्म महाक्रोध हुं फुट्" मन्त्र पाठ कर मनका पाप और कलुष आदिको चिन्ता करें। उससे उनका चित्तपातक दूर हो जाता है। तदनन्तर सुग्पा नामक संज्ञी मिट्टी या साधुनसे अपना हाथ पैर धो डालें। हाथ पैर धोते समय वे विशेष विशेष मन्त्र पढ़ते हैं। मुख आदि धोनेके बाद शीघ्र ही कर वे हाथमें माला ले कर जप करते करते तारादेवी और मञ्जुश्रीके उद्देश्यसे मन्त्र पाठ करते हैं। समय बचने पर कोई कोई अपनी अपनी कुलाधिपति देवीकी स्तुति भी किया करते हैं।

यह सब कार्या करनेमें करीब १५ मिनट लगता है। उसके बाद दूसरी बार शंखध्वनि होनेसे गेलोड यति गण मन्दिरके दरवाजेके सामने तथा गेत्पुल लोग मन्दिरके सामनेवाले आँगनमें खड़े हो कर देवताको प्रणाम करते हैं। पीछे मन्दिरका दरवाजा खुलने पर एक एक करके सभी मन्दिरमें प्रवेश करते हैं। इस समय हाथमें दण्ड ले कर गेको दरवाजे पर खड़े रहते हैं। जब सब कोई अपनी अपनी चटाई पर मर्यादाके अनुसार बैठ जाते, तब तोसरी बार शंखध्वनि होती है। उस समय सभी एक स्वरमें कुछ निर्दिष्ट मन्त्र पाठ करते हैं। पीछे चाय पीते हैं। चाय पीनेके पहले अर्धशूलामा सर्वोंके स्तुतियावय उच्चारण करने पर अपना अपना प्याला बाहर कर देते हैं। मठका शिक्षानवीश या कोई भृत्य उसमें चाय ढाल देता है। पीनेके पहले यतिगण अंगुलीसे दो बूंद जमोन पर गिरा कर बुद्ध, अपरापर देवता और पितरोंको दे कर पीछे आप पीते हैं। मिठाई और मांस खानेके समय भी इसी प्रकारकी व्यवस्था है।

जनसाधारण कौतुहल दूर करनेके लिये नीचे केवल मन्त्रोंका भाष्यार्थ दिया गया।

"खाने पीने चाटने चूसने योग्य च्य पैयादि स्वादिष्ट भोज्यद्रव्य हम ध्यानी बुद्ध और स्वर्गके बोधिसत्त्वोंको भेंट देते हैं। वे इस खाद्य पर कृपा करें। ओम् अः हूं।" तदनन्तर यथाक्रमसे "ओम् गुरु वज्र नैविद्य अः हूं। ओम् सर्व बुद्ध बोधिसत्त्व वज्रनैविद्य अः हूं। ओम् देव डाकिनि श्रीधर्मपाल सपरिवार वज्रनैविद्यः अः हूं।" भूतेश्वरके उद्देश्यसे— "ओम् अग्रपिण्ड असिभ्यः स्वाहा। ओम् हारिते महा वज्रपक्षिणि हर हर सर्वपापविमोक्षि स्वाहा" इत्यादि। जीवमांस होनेसे जीवहिसा और उसका मांस खानेसे जो पाप होता है उसका क्षय करनेके लिये तथा-पशुकी स्वर्गात्मानाके लिये "ओम् अविर खेचर हूं" मन्त्र पाठ किया जाता है। तदनन्तर मठ-भण्डारके खाद्यद्रव्य देनेवालेकी मंगलकामनाके लिये यह मंत्र पढ़ा जाता है— "नमो। समन्तप्रभरागाय तद्भागताय अध्वरुते सम्यक् बुद्धाय नमो मञ्जुश्रिये। कुमारभूताय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय ! तद्वयथा। ओम् रत्नमे निरत्नसे जपे जपे लब्धे महामत्तरक्षिणस्मै परिशोषाय

स्वाहा"। इसके बाद वे और भी कितनी स्तुति किया करते हैं। ये धर्म, निर्वाण, चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, मङ्गल और प्रवृत्ति निवृत्तिकी प्रार्थनामात्र है।

चाय पीनेके बाद धर्मानुवेदकोंकी अर्चना, स्थायियोंकी पूजा, महड्वापण, भैरव तथा तारा, देव-छोग और सङ्कु आदि कुलदेवताओंकी पूजा यथाक्रमसे अनुष्ठित होती है इन सब पूजाओंके करनेमें अधिक समय लगता है इसलिये बीच बीचमें चाय पीनेकी भी विधि है। कुल-देवताकी पूजा करनेके समय मध्य मध्यमें मृत व्यक्तिकी प्रेतात्मा तथा पीड़ित प्यक्तिकी रोगमुक्तिके लिये मङ्गल-कामना की जाती है। पीड़ितकी रोगमुक्ति कामनाका नाम "कुरिकू" पूजा है। अनन्तर अवशिष्ट कुलदेवोंकी पूजा समाप्त कर वे चाय पीते हैं। उसके बाद शेष-राव सविड्ड-पो गान कर समा भंग करते और एक एक करके मन्दिरसे बाहर हो कर अपने अपने घर चले जाते हैं। प्रधान लामा सबके पीछे बाहर होते हैं।

घर आ कर वे अपना अपना अमीष्ट मन्त्र जप और कुलदेवताकी पूजा करते हैं। उसके बाद उक्त देवोंकी भोग चढ़ाते हैं। पूजाके समय "मजेनचक्र" घुमा कर सभी समय ढीक कर लेते हैं। इस समय अगर सूर्यदेव आकाशचक्रमें दिखाई दें; तो सभी अपने अपने कमरेसे बाहर हो कर दोनों हाथ उठा कर "ओम् मरीचोनां स्वाहा" मन्त्र पढ़ कर स्तुति करते हैं। तदनन्तर सबरे करीब नी बजे जब सूर्यकी किरण कड़ी और शीतल घायु गरम हो जाती है, तो फिर एक बार शङ्खध्वनि होती है। तब मठवासी सभी संन्यासी मल्लथागार्थ निर्विष्ट स्थान जाते तथा शीव-कर्मदि कर चापस आते हैं। दूसरी शङ्खध्वनि होने पर सभी पढ़नेवाले आँगनमें जमा होते हैं। इस समय अगर पानी पड़ता रहे, तो सभी एक बरा मड़े पर आ कर पढ़ते हैं। पन्द्रह मिनटके बाद फिर तीसरी शङ्खध्वनि होती है। उस समय सभी वहाँसे मन्दिरमें जा कर पुनः उपासनामें लग जाते हैं। दोपहरके बाद पुनः शङ्खनाद होनेसे वे उसी तरह पहले प्राङ्गणमें और पीछे मन्दिरमें इकट्ठा हो कर उपासना किया करते हैं। इसके बीच वे तीन बार चाय पीने पाते हैं।

सभी अपने अपने कमरेमें भा कर जूत उतार अमीष्ट देवताकी पूजा कर भोग लगाते हैं। उसके बाद मठका भूतव उन्हे खानेकी चीज दे जाता है। अपने अपने भोजन-से थोड़ा निकाल कर वे पितरों तथा हारिती और अपने पुर्वोंको दे कर पीछे भाग खाते हैं। तब यति लोग कुछ समयके लिये अपने अपने कर्ममें व्यस्त रहते हैं। ३ बजेके बाद वे चौथी बार मन्दिरमें इकट्ठा होते हैं। इस समय भी पहलेकी भांति तीन दफे शङ्खध्वनि होती है। इस दफे देवताओंकी भोग चढ़ानेके समय तीन बार चाय पी कर घर लौट आते हैं। शिक्षानवीश और 'पार-पा' यतिगण इस समय घर अ कर पाठाभ्यास करते हैं। ७ बजे पाचवीं बार सम्मिलन होता है। इस समय तीन बार शङ्खनादके बाद सभी पूजादि समाप्त कर तीन बार चाय पीते और तब घर लौटते हैं। रातमें दूसरी बार घंटा बजने पर शिक्षानवीश और दीक्षित यति सम्प्रदाय अपने अपने अध्यापककी अपना पाठ सुनाते और पीछे पाठ लेते हैं। तीसरी बार घण्टा बजने पर सभी सोने जाते हैं।

त्रिह-मा सम्प्रदायके सभी मठोंमें प्रायः ऐसी ही प्रथा चलती है। पृथक्तामें उस उस साम्प्रदायिक मठमें सभी समय शङ्खध्वनि नहीं होती। ५ बजे शङ्खघण्टा बजने पर सब कोई मन्दिरमें इकट्ठा हो कर पूजादि किया करते हैं तथा वहाँ बैठ कर चाय और मुद्दा खाते हैं। सबरे १० बजे चोनदेशीय बुद्बुमि बजाई जाती है। इस समय सभी सङ्घारामके बड़े बरामदेमें इकट्ठा हो कर भोजन करते हैं। बिना भोग लगाये कोई भी नहीं खाता। सन्ध्या समय भी वे शङ्खध्वनि सुन कर इकट्ठा होते और चाय पीते हैं। तदनन्तर चौथी ढाक बजने पर सभी चङ्ग मध पीते हैं। ३म समय महाकालकी पूजा तथा उसके बाद साधारणकी मंगलकामनाके लिये देवपूजा होती है। सन्ध्या समय १०८ दीप जला कर वे स्कन्ध पाग पूजा करते हैं। शुद्ध पद्मसम्भवकी पूजा हो त्रिह-मा साम्प्रदायिक मठकी प्रथा है। यहाँके यति दिनमें भी बार चाय पीते और भोजन करते हैं। सन्ध्या समय पकल होनेके बाद यतिगण फिर एक बार पकल होते हैं। रातमें पकल हो कर वे अन्न और मांस खाते हैं।

गांवके पुरोहित सम्पूर्णरूपसे लामाके महामठका अनुकरण करते हैं। लेकिन पूजा और कर्मकाण्डमें बहुत प्रथक्ता देखी जाती है। रातमें नींद टूटने पर भजन-कालमें बहुतेरे हठयोगका अभ्यास करते हैं। जिनकी नींद रातमें नहीं टूटती, वे प्रातःकाल मुख आदि धोनेके बाद उपरोक्त रूपसे आचारानुष्ठान करते हैं। तदनन्तर वैचार्यना, प्रोत्तार्यना और भोग दे कर वे चाय मूटो खाते हैं। २ बजे समी पेठ भर खाते हैं। ६ बजे शामकी वे पुना कुलदेवता आदिकी पूजा और स्तवादि पाठ करते हैं। रातने १-१० बजे वे शयन किया करते हैं।

तपःपरायण लामा योगी ऐने क्रियाकाण्डका अनुष्ठान नहीं करते। वे पर्वतगुहामें रह कर निरन्तर ईश्वर-चिन्तामें निमग्न रहते तथा प्रकृत संन्यासीके पालनोप-आचार अनुष्ठानको करते हैं। यह योगाभ्यास तीन मास तीन दिन ले कर करना होता है। इस समय 'मूलयोग' सङ्गोने गोंकी चार शाखा ही वे लक्ष्मका जप करते और आध्रममें भिक्षामंत्र पढ़नेके समय लक्ष्मके देवो-इशसे नत होते हैं। वे यज्ञवान-मन्नावलम्बो तथा संन्यासीके हठयोगसाधनकारी हैं। वे सिद्धि पानेकी आशासे यह कार्यानुष्ठान किया करते हैं।

पश्चिम भोटराज्यवासो अधिकांश लामा ही चाणज्य और शिल्प ले कर व्यस्त हैं। वे खेती कर और धान आदि बेच कर जो लाम उठाते हैं, उसीसे मठका खर्च चलता है। बहुतेरे मठके लामाओंके पढ़नेके लिये बर्जा, घमार और तसवीर खींचनेका काम उठा लिया है। कोई गांव गांवमें भिक्षा मांग कर मठका भंडार भरते हैं।

लामा लोग खास कर चावल, दूध, मक्खन, दाल, चाय और मांस खाते हैं। वे बकरा, भेड़ा और गोंका मांस सेवनीय तथा मछली और मुरोका मांस निषिद्ध मानते हैं। गें-लोङ्ग मांस कदापि नहीं खाते। वे सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्यावलम्बन करते हैं। तपिल्लून् पीके प्रधान लामा मांस खाते हैं। प्रसिद्ध लासा-मठके लामागण साधु प्रकृतिके होते हैं। वे शराब नहीं पीते। अन्त्याय जगहोंके लामा चङ्ग मद्य पीते। लासा-मठके लामा लोग भूत आदिकी वृत्तिके लिये मद्य उत्सर्ग करते हैं।

लामा-धर्मकी उत्पत्ति।

कब और कैसे भोटराज्यमें बौद्धधर्मकी प्रतिष्ठाके साथ साथ तंत्रमनसूत्र इस लामाधर्मकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रतिपत्ति फैली थी, इसका विशेष विवरण संग्रह करनेका कोई उपाय नहीं है। ७वीं-८वीं सदीमें यहाँ सबमुच बौद्धधर्मका बीज उगने पर भी तिब्बत जनपद-वासी माल ही चर्वेतराके घोर श्रम्यकारसे आच्छन्न था। भोटराज खोङ्-त्सवान् गम्पो ( ६३६-४१ ई० )-ने अपने बाहुबलसे चीन-राज्यकी पश्चिमी सीमा तक जय कर एक विस्तृत राज्य जोता था। धङ्गव शीय चीन-सम्राट् चैत्सुङ्ग अपने कन्या चेन्छेङ्गके साथ उसका विवाह कर मित्रतापाशमें आवद्ध हुए थे। चीन-इतिहासमें भोटराज खोङ्-त्सवान् गम्पो छित्सुङ्ग पुङ्सान् नामसे प्रसिद्ध हैं। ६४१ ई०में यह घटना घटी। इसके दो वर्ष बाद उन्होंने नेपाल-राज अंशुवर्माकी कन्या म्रू कुट्टीदेवीसे शादी कर ली। दोनों राजकन्याका बौद्धधर्ममें अटल विश्वास था। इसलिये पतिशोके अनुरोधसे राजा भी बौद्धधर्ममें आसक्त हो गये। किसी किसी श्रम्यकारका कहना है, कि उन्होंने बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर पीछे बौद्धराज कन्यासे प्याह किया था। वे अपना दो महिषो-की प्रार्थनासे तथा तिब्बत राज्यमें बौद्धधर्म फैलानेकी इच्छासे बौद्धधर्मग्रन्थका संग्रह करनेमें रुत-संकल्प हुए थे। उन्हींके उद्योगसे भोटराज्यमें बौद्धधर्माचार्य लानेकी व्यवस्था हुई थी। भारत, नेपाल और चीन राज्यके नाना स्थानोंमें भोट-राजदूत जा कर ग्रन्थादि संग्रह करते थे।

उनके आदेशसे जो दूत भारत आये थे उनका नाम था योन मि-सम्भोट। यह ६३२ ई०में भारत आये और ६५० ई०में भोटराज्य लौट गये। उन्होंने भारतमें रह कर ब्राह्मण-लिपिदत्त तथा पण्डित देवचिन्त्सिद्ध (सिंहचोप)-से बौद्धधर्मशास्त्र पढ़ा था। स्वदेश जाते समय वे सैकड़ों बौद्धग्रन्थ साथ ले गये थे। वे उत्तर-भारतीय कुटिल वर्णमाला-मिश्रित त्रिस अक्षरमें पुस्तक लिख ले गये थे उसी अक्षरमें तिब्बतीय भाषामें उन्होंने व्याकरण लिख कर प्रचार किया। सिर्फ तिब्बतीय वर्णमालाका स्वर-सामञ्जस्यके लिये उन्होंने उसी अक्षरमालामें कुछ चिह्नो-



का भाविप्रकार किया था। यही पीछे तिब्बतीय वर्ण-माला कहलाई।

धोमिनने बौद्धधर्मग्रन्थके अनुवादमें सारा जीवन बिताया सही, पर ये यथार्थ धर्मप्रचारक या बौद्धयति न हो सके; किन्तु राजा खोङ्-त्सन गम्पो बौद्धधर्मके प्रतिष्ठिता कह कर बोधिसत्त्व अवलोकितके अवतार माने जाते थे। उनकी पत्नी चीनराजदुहिता वेनछेङ्ग अवलोकितकी पत्नी तारादेवीके नामसे श्वेताङ्गिनी तारा तथा नेपालराजकन्या भ्रूकुटी तारादेवी कह कर पूजिता हुईं। भ्रूकुटी ताराका वर्ण नीला और मूर्त्ति बड़ी ही डरावनी थी। यह रात दिन अपने पति वेनछेङ्गके साथ कलह किया करती थीं इसलिये इसकी उपमूर्त्ति कल्पित हुई है।

सम्भवतः ६५० ई०में राजा खोङ्-त्सन गम्पोके परलोक सिधारने पर उनके पाँच मङ्गलश्रेष्ठ मङ्गलत्सनने राजाके बौद्धधर्मयाजक मत्सरेके प्रतिनिधित्वमें राजा किया। उसके बादसे तिब्बतमें कुसुंस्काराच्छत्रभूतोपासक पामान धर्मका प्रभाव फैला। प्रायः एक सौ वर्ष बाद उक्त वंशमें राजा गि खोङ्-वेवस्मानके राजत्वकालमें पुनः बौद्धधर्मकी प्रधानता हुई। चीनसम्राट् स्त्रङ्ग-स्तोङ्गकी पालित कन्या छिन्-छेङ्गके गर्भसे इस राजकुमारका जन्म हुआ। बौद्धधर्ममें माताकी आसक्ति रहनेके कारण पुत्र भी बौद्धधर्ममें दीक्षित हुआ। उन्होंने कुलपुत्रोद्दिष्ट भारतीय बौद्धयति ज्ञान्तरिक्षितके परामर्शसे भारतवर्षसे गुरु पद्मसम्भवकी लानेके लिये दूत भेजा। पद्मसम्भव उस समय बिहारके नालन्दाप्रदेशमें तान्त्रिक योगाचार्य ज्ञानाममें बड़े प्रतिष्ठित हो उठे थे। कहते हैं, कि गुरु पद्मसम्भवने ज्ञान्तरिक्षितकी भगिनी मन्दारवासि प्याह किया था।

राजाकी सुलाहट सुन पद्मसम्भव फुले न समाये। उन्होंने नेपालराज्य ही कर तिब्बतकी यात्रा की। ई०में उन्होंने राजधानी पहुँच कर अपनी यात्राका विवरण लिखा था। राज्याने उन्हींमें किस तरह और पक्षिणोका प्रभाव नूर किया था, राजाकी हुप कहा था,—“उन लोगोंने प्रभुत्व लिये सब वे किसीका करेगो। मैं

उन्हे' अमय दे कर बड़ा हूँ, कि तुम लोग भी मेरे आर्द्र-से पूजा और बलि पावोगो।” इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि भारतकी अर्द्ध-सम्भ और असम्भ जातिकी जब बौद्धाचार्यने बौद्धधर्ममें दोषित करनेकी कोशिश की थी तब उन्होंने देखा था, कि वे लोग कुसुंस्कारमें तथा पक्षी, पृथ और भूत आदिकी उपासना ले कर इतने मोहित हो गये हैं, कि उनके हृदयसे यह कुसुंस्काररूप कुहसेकी हटा कर निर्वाणमुक्ति और प्रतीत्य-समुत्पादरूप महाधर्मबीजकी बोना बड़ा ही कठिन है। पीछे ये देवद्वयमें पूज्य उन्हीं सब औपण द्वय्य अपदेवताओंकी प्रकृत-देवरूपमें गिन कर “न देवाः सृष्टिनायकाः” वाक्यकी सार्धकताकी रक्षा करनेमें प्रयासो हुए। ये इस बातका प्रचार करने लगे,—“यही सब पिशाच, यक्ष, जाबिनो, योगिनी आदि बुद्धकी मङ्गलमय करुणासे मन्त्रकारी शक्ति विसर्ज्जन कर अगो जीवकी मङ्गलकामनामें लगे हैं। ये अब किसी भी जीवोका अपकरण न करेंगे। वरं जिससे जीवोका मङ्गल और मुक्तिलाभ हो, उसीमें सहायता करेंगे। इसलिये वे साधारणकी पूज्य हैं और उन्हे' बलि देना उचित है।” इस प्रकार जैसे भारतमें बौद्धतान्त्रिकयुगमें साधारणकी चित्रवृत्ति आकर्षण करनेकी इच्छासे द्वाबाहुजालिनी दुर्गा, लोलरसना करालवदना काली, विरफारितनेत्र विरूपाक्ष, रक्तवर्णा भोवण द्वया शीतला, करालर्षद्रा बाराही आदि देवदेवीका आविर्भाव हुआ था, वैसे बौद्धयुग पद्मसम्भवने भी तिब्बत पहुँच कर कुसुंस्काराच्छत्र तिब्बतवासोकी पूर्णतन धर्ममें विश्वास दिलाते हुए उनके हृदयमें बुद्धका प्राधान्य स्थापन कर बौद्धधर्मका बीज बोया था। यह पौत्तलिकमिथित बौद्धधर्म मूलधर्मके साथ मिल कर लामा (ब्लम) वा ब्रह्मचर्य नामसे प्रसिद्ध हुआ। तिब्बतिय भाषामें लामा शब्दसे परम पुत्र समझा जाता

युद्ध पर्य ये अर्धाम् जिनकी महोपसी भूतगण भी यज्ञोभूत हो कर लिये संचार हो गये थे। मर्म और प्रभाव कियेकाएदोंमें लक्षण

वर्चितं लामा या श्रेष्ठ धर्मके पक्षानो ह्यु । उन्हींकी कृपा तथा उत्सवसे ७५६ ई०में तिब्बतके सम-यास नगमें प्रथम बौद्धमठ प्रतिष्ठित हुआ । यह मगधकी ओदण्डपुरीके सुवसिद्ध बौद्धमठके अनुकरण पर बनाया गया था, स्वयं पद्मसम्भवने इस मन्दिरकी नींव डाली थी । यतिवर शान्तरक्षितने प्रतिष्ठाकार्यमें मुख्यको खासी मदद पहुँचाई थी । इसी मन्दिरमें पहले लामा-सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा हुई तथा शान्तरक्षितने वहाँका प्रथम आचार्य वा उपाध्याय हो कर तेरह वर्ष तक कठिन परिश्रमसे धर्मकार्य चलाया था । वे सम्प्रति लामा-समाजमें आचार्यबोधिसत्त्वके रूपमें पूजे जाते हैं । उनको धारणा है, कि प्रसिद्ध बौद्धाचार्य शारिपुत्र, आनन्द, नागाञ्जुन, शुमङ्कर, श्रीगुप्त और ध्यानगर्भ आदिकी तरह वे स्वतन्त्र सम्प्रदायभूक्त थे ।

तिब्बतके वाशिन्धे इस नवप्रवर्तित लामा-मतको धर्म या बौद्धधर्म कहते हैं ; किन्तु सचमुच उसमें प्रकृत बौद्ध धर्मका छायामाल विद्यमान है । तान्त्रिक चोराचारमें यह सम्प्रदायसे गिना जाता है । नाना देवताकी उपासना तथा भौतिक क्रिया और भोजविद्याने उस प्राचीन सूक्ष्मतम धर्मतन्त्रको आश्रय कर उसे नये रूपमें गठित किया है । इस धर्मके विश्वासी लोग "नङ-प" तथा जो इस मतसे वाहर हैं, वे "प्यि-ङ्ङि" कहलाते हैं ।

उपाध्याय शान्तरक्षितके बाद "बल वड्स" ने आचार्यका आसन ग्रहण किया ; यथार्थमें "प्य-ख्रुग जिगसू" सर्वप्रथम दोक्षित लामा हुए थे । शिक्षानवीश शिष्योंमेंसे लामा सगोर वैरोचन ही सर्वापेक्षा सुप्रसिद्ध हुए थे । वे लामा-समाजमें बुद्धके, भ्राता और सहचर आनन्दके अवतार समझे जाते थे । वैरोचनने तिब्बतीय भाषाओं में बहुत से संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद किया था ।

गुरु पद्मसम्भवने लामाधर्म प्रतिष्ठा और प्रचारप्रसङ्ग में जो सब आचारानुष्ठान विधिबद्ध किया था । उसके जाननेका कोई उपाय नहीं है । उनके साम्प्रदायिक पद्योस शिष्य उनके तिरोधानकी कुछ सदो पीछे उनके प्रवर्तित प्रकृत धर्ममत और पद्धति जो सब ग्रन्थ संकलन कर गये हैं ; उसी सम्भवतः उस समयके आचार आदिका वर्णन

है । लेकिन आदि पद्धति अनुसृत तथा भौतिकविद्या-समाश्रित किङ्-म-प सम्प्रदायकी आचारपद्धति देखनेसे सहजमें जाना जाता है, कि पद्मसम्भवने अपनी जन्मभूमि उद्यान तथा काश्मीरमें प्रचलित चोर तान्त्रिक और भोजविद्याप्रसृत महायान-सम्प्रदायका बौद्धमत ही स्थापन किया था । उसमें मन्त्रमूलक शैवधर्म और भूतोपासक योनू या धर्म मिला हुआ था ।

गुरु पद्मसम्भवके जो पद्योस शिष्य थे, वे सभी भौतिक और भोजविद्यामें पारदर्शी थे । वे मन्त्रबलसे भूतोंको वशमें कर तिब्बतमें अपने चलाये धर्ममें बद्धपरि-कर हुए । तिब्बतवासी बौद्धगण पद्मसम्भवके असामान्य तिरोधान और उनके भोजविद्याका प्रमाय देण कर उनकी द्वितीय बुद्धरूपमें पूजा करते आ रहे हैं । आज भी प्राचीन लामासम्प्रदायोंके मठमें उनकी याद प्रकाशकी मूर्त्तिकी उपासना होती है । तिब्बतवासीका विश्वास है, कि गुरु पद्मसम्भवने समय समय पर यह विभिन्न मूर्त्तिकी धारण की थी ।

राजा थि-सोङ्-देत्सन और उनके दो वंशधरके प्रगाढ़ उत्साहसे तिब्बतमें लामाधर्म सुप्रतिष्ठित हो कर धीरे धीरे फैल गया । योनू-या धर्माश्रित तिब्बतवासी आचरित प्रथाका सामञ्जस्यसाधक इस नवीन मतका प्रतिद्वन्द्वी न हुआ, परं राजाके मथसे उसको पुष्टि ही की थी । उन्होंने समझ रखा था, कि इस मतमें शक करनेका कारण नहीं, अधिकस्तु इसमें नई शक्तिका संचार हुआ है । इसी कारण शकतात्मक नवधर्ममें तिब्बतवासीके अनुरक्त होनेसे लामाधर्मकी शोभ ही पुष्टि और वृद्धि हो गई । किन्तु शिक्षाबलसे तिब्बतवासी जितनी मानसिक उन्नति करते गये, उतनी ही लामाधर्म-संस्कारकी आवश्यकता सूख पड़ी । ज्ञानवृद्धिके साथ साथ धर्मपद्धतिकी भी संस्कार होता गया; इसी कारण तिब्बतीय बौद्धधर्मका तीन युग निरूपण कर गये,—१म आदि युग अर्थात् राजा थि-सोङ्-देत्सनके राज्यकालमें लामाधर्मकी प्रतिष्ठाले बौद्धोंकी ताड़ना तक ; २य मध्य-युग या लामाधर्मके संस्कारकाल तक तथा ३य वर्त्तमान लामा धर्म या १७वीं सदीमें धर्माचार्य दलाई लामाका प्राथम्य और राजत्वविस्तार तक ।

८२२ ई०में उल्कीर्ण लासा नगरोंके गिआफालकको पढ़नेसे पता चलता है, कि तिब्बत और चीनवासिगण तीन परम पुरुष तथा पवित्रचेता साधुगण सूर्य, चन्द्र, मङ्ग और ताराओंकी उपासना करते थे, वही यथाधर्म यहाँका आदिलामागुमका निदर्शन गिना जाता है।

७८६ ई०में यि-सोङ् देवसनकी मृत्युके बाद उसके लड़के मुयिन् सान-पो राजा हुए। अधिक दिन उन्होंने राज्य करने भी न पाया था, कि बिप खिला कर इनकी जान ले ली गई। पीछे इनके भाई सदन लोगस सिंहासन पर बैठे। ये बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये कमलजलकी तिब्बतमें लाये थे। उनके लड़के रालप-छन ८१६ ई०में (दूसरेके मतसे 'ची' सदीके शेष भागमें) सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। उनके शासनकालमें नागार्जुन, स्तुदाधु और आर्यादेवकी प्रसिद्ध टीका और धर्मग्रंथोंका भोटभाषामें अनुवाद हुआ। इसके सिवा उन्होंने भारतवासी कुछ बौद्धयतिवियोंको धर्मग्रंथोंका अनुवाद करने नियुक्त किया था। उन यतियोंमें स्वयिर-मतिके शिष्य जिनमित्र, शीलेन्द्रबोधि, सुरेन्द्रबोधि, प्रभावर्मन, दानशील और बोधिमित्रके नाम लल्लेख नीचे हैं।

राजा रालपछनके बौद्धधर्मानुसंगसे ईर्ष्या-परतन्त्र हो उनके छोटे भाई लङ्-दर्म् बौद्धधर्मदेपो हो गये। उन्होंने ८६० ई०में अपने भाईको यमपुर गेज सिंहासन उपनाया। सिंहासन पर बैठे वे लामाओं पर यथेच्छ अटवाचार करने लगे। यहाँ तक कि उन्होंने मन्दिर और मठोंको ध्वंस कर लामा-संन्यासियोंको जोषद्विस्तारको कसाईका कार्य करनेके लिये बाध्य किया था। इसके सिवा इनके हुकुमसे कितने बौद्धग्रन्थ जला दिये गये थे।

बौद्धधर्मके प्रति जो उग्रता घोर विद्वेष था, वह बहुकाल स्थायी न रहा। उनके राज्यकालका तीसरा वर्ष बोलने भी न पाया था, कि लालुङ्वासनी लामा पाल दोर्जे मुन्पोम भाद्रिने अयायह घेजभूषा पहन कर उन्हें मार डाला। लामा पालदोर्जे बाउल जैसा अद्भुत पहनावा पहन कर राजमहलके सामने नाचने लगा। राजा उषी हो उसे देखने भाये, सर्वोद्दी लामाने उन्हें बाणसे बिल कर डाला। राजसेना उसे पकड़नेके लिये दीङ्

पड़ी। वे कालसे रंगे घोड़े पर सवार हो नदी तैर कर भाग गये। जलमें घोड़ेका बनावटी रंग धुद गया, असली रंग दिखाई देने लगा। उन्होंने अपना छत्रघेज फेंक कर नगा सफेद घल पहन लिया। इस प्रकार वे सुगोसे नदी पार कर गये। कुसंहाराच्छत्र तिब्बतवासिने उन्हें दूसरा व्यक्त समझ कर अथवा दैवजकि-सम्पन्न जान कर पीछा करना छोड़ दिया। तोरके आघातसे राजा पञ्चर-की प्राप्त हुए। मरते समय उन्होंने कहा था, "बौद्धधर्म उसरादनरूप पापवृद्धमें लिप्त होनेसे (३ वर्ष) पहले यषी न मुझे मार डाला गया।" राजा लङ्-दर्म्के मृत्युका लीन इस घायलसे बौद्धधर्ममें उनका विश्वास देत उनके बालक पुत्रको लामाओंके प्रति विश्वाचरण करनेका साहस न हुआ। इस प्रकार लामागण गणने छोड़े हुए शक्तिवा पुनरुद्धार कर अपनी प्रतिपत्ति कौलानेमें समर्प हुए थे।

११वीं सदीके प्रारम्भमें भारतके गाना स्थानोंमें एास कर काश्मीरसे कुछ बौद्धयति तिब्बत भाये। उनमेंसे स्मृति, धर्मपाल, सिद्धपाल, गुणपाल, प्रज्ञापाल तथा प्रज्ञापारमिताके अनुवादक सुभूति, श्रोशान्ति भादि यतियोंके नाम उल्लेखनीय हैं। पीछे १०३८ ई०में लामा-धर्मसंस्कारक सुप्रसिद्ध बौद्धार्दा, अनीजने तिब्बतमें पदार्पण किया। वे लामाओंके निकट 'जो-यो-जे' द्वाङ-लद्न अनीज' नामसे परिचित और श्रेयस्काी तरह सम्मानित हुए।

■ भारतवर्षमें वे दीपद्वार भौशन नामसे प्रसिद्ध थे। उनके पिताका नाम कल्याणभी तथा माताका प्रभावती था। भोट-इतिहासके मजसे बद्धानके गौड-रामके भन्तर्गन विक्रमपुरके राजवंशमें ६८० ई०को उनका जन्म हुआ। वे मोदरवस्तु-विद्वान्से भा कर बौद्ध-यतिधर्ममें दीक्षित हुए थे। गुप्तवंशीय वा गुप्तवंशके बौद्धार्थन मुरारिचित चन्द्रकीर्ति, महाभक्तिशाके उपन्याय मतिविर तथा महासिद्धि नारोंके निकट उन्होंने महादानमत और महासिद्धिका अभ्यास किया था। तिब्बत-यातायात्रनें ये मगधके विक्रमभिला सत्तारानके अध्यापकत्वर पर नियुक्त थे। राजा महाभान्तके पुत्र गणपति उनके शनधामदिष्टे थे।

भतीशके प्रधान शिष्य डोम-टीन संस्कृत कदम-सम्प्रदायके प्रधान महन्त हुए थे। यह सम्प्रदाय साढ़े तीन सौ वर्षके बाद तिब्बतके सुप्रसिद्ध गे-लुग प सम्प्रदाय पर्ववसित ही उसी नामसे प्रतिष्ठित हुआ। भतीशके प्रवृत्ति बादम-प-सम्प्रदायके अनुकरण पर अर्द्ध संस्कृत कर ग्यु-प तथा शाक्य प सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई थी।

११वीं सदीके शैव भागमें लामाधर्म की जड़ मजबूत होने पर भी शाक्य प्रभृति स्थानोंमें उसके प्रतियोगी सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। वे सब सम्प्रदाय स्वतन्त्र भावसे पारमार्थिक मण्डल स्थापन कर अपनी पौरोहित्य शक्ति का विस्तार करने लगे। धर्मयात्रकोंकी शक्ति बुद्धिके साथ साथ स्थानीय सरदारोंको शक्ति हास होने लगी। इसी मौकमें चीन और मोङ्गल-जातिगे तिब्बतके नाना स्थानोंमें आ कर अपनी गोटी जमाई।

१२०६ ई०में झाकनमोगलके वंशधर जैनघिज (जेङ्गिस) खाने तिब्बत पर अधिकार किया। उनके वंशधर प्रसिद्ध चीनसम्राट् खुविलई (कुबलाई) खान् चर्चने अशिक्षित और असभ्य प्रधान चीन और मोङ्गलीयराज्यमें

१०३८ ई०में क्षामा नग तमोके साथ जब वे नारिखोरुम पयसे तिब्बत आये, उस समय इनकी अवस्था ६० वर्षकी थी। उन्होंने यहाँ आ कर लामाधर्मका संस्कार करना चाहा। १०५२ ई०में क्षामा-नगरीके निवृत्तवर्ती सफ्टाट् सद्धाराममें उनका देहान्त हुआ। क्षामाभक्तके संस्कारकार्यमें जित हो उन्होंने स्वमतप्रतिपादक कुछ ग्रन्थ लिखे। उन ग्रन्थोंके नाम ये हैं :—  
बोधियपप्रदीप, चर्चासंग्रहप्रदीप, सत्यप्रदानतार, मध्यमोपदेश, संग्रहार्थ, हृदयनिश्चित, बोधिसत्त्वमन्वावली, बोधिसत्त्वकर्मादि-मार्गावतार, शरप्यागतोपदेश, महायानपथापनवर्षासंग्रह, महायानपथापनसंग्रह, सुत्रार्थसमुच्चयोपदेश, दशकुशमर्मोपदेश, बर्मविभङ्ग समाधिसम्भरपरिवर्त, लोकोचरसतकविधि, गुह्यक्रिया क्रम, चित्तोत्पादसम्भारविधिकर्म, शिक्षासमुच्चय भूमिसमय (सुवर्ण-दीपाधिपति राजा धर्मगान्धने दीपद्वार और कमलको जो धर्मशिक्षा दी थी यही उसका सारमर्म है) और विगद्वारखालोक। तिब्बत यात्राकार्यमें दीपद्वार भतीशने अन्तिम ग्रन्थ मगपराज नपयात्रको लिख भेजा था। तिब्बतमें ये बोधिसत्त्व मञ्जुश्रीके भवतार कह कर पूजित हैं।

एक सद्वर्धमप्रतिष्ठाके उद्देशसे प्रसिद्ध शाक्यके श्रेष्ठ लामाको (शाक्य पण्डित नामसे परिचय) अपनी राज-सभामें बुलाया और बौद्धधर्म प्रदण किया। तभीसे यह एक नई शक्ति पा कर राजधर्मरूपमें तमाम फैल गया।

खुविलई खाने अपने धर्मोपदेश शाक्यपण्डितको लामाधर्ममण्डलके मुख्यपद पर अभिविक्त किया तथा उसे चीनराज्यपौरोहित्यके पुरस्कार स्वरूप तिब्बतराज्यका शासनकर्ता बनाया। इसके बाद १२६१ ई०में उन्हींके यत्नसे उक्त पण्डितके भतीजे मतिध्वज फागसप उपाधिके साथ श्रेष्ठ धर्माचार्यके पद पर प्रतिष्ठित हुए। राजाकी छुपासै इन्हें रोमक पापकी तरह अधिकार मिला था।

सम्राट् खुविलई खाने लामाधर्मकी उन्नतिके लिये बहु परिश्रम और अर्धव्ययसे मोङ्गलियाके नाना स्थानोंमें तथा, वेकिन नगरमें एक बहुत बड़ा संघाराम खोला था। उन्हींके उद्साहसे शाक्यपण्डित मतिध्वजने पण्डितोंसे समावृत्त हो लामाधर्मके प्रसिद्ध कर-ग्युका ग्रन्थ मोङ्गलीय भाषामें अनुवाद किया।

परवर्ती मुगल बादशाहोंके अधीन शाक्य-पुरोहितोंकी राजकीय प्रधानता धीरे धीरे बढती गई तथा उन्हींने प्रतिद्वन्द्वी लामासम्प्रदायके विरुद्धाचारी हो उन पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। १३२० ई०में उन लोगोंने दिक्कुङ्गा सुप्रसिद्ध कर-ग्यु-प संघाराम जला डाला था। १३६८ ई०में मिङ्गाराजवंश चीनसाम्राज्यके सिंहासन पर बैठे। उक्त वंशीय सम्राटोंने शाक्य पण्डितोंकी क्षमता बर्धा करनेके उद्देशसे कर-ग्यु प दिक्कुङ्ग और क-दम-प-तपल संघारामके तीनों आचार्यों को तदनु रूप श्रेष्ठ पौरोहित्य-प्राक्त प्रदान की थी।

१५वीं सदीके प्रारम्भमें लामा तसोङ्-ख प ने भतीश-प्रवृत्त संस्कृत-लामाधर्मका पुनः संस्कार कर गेलुग-प नामसे उसका प्रचार किया। इस सम्प्रदायने धीरे धीरे श्रीवृद्धिलास कर तिब्बतमें प्रचलित अन्यान्य सम्प्रदायको कमजोर कर दिया। पांच पीढ़ीके भीतर इस सम्प्रदायके प्रधान धर्मयात्रक तिब्बतके पुरोहितराज कंङ्ग कर विद्ययात हुए। उक्त साम्प्रदायिक प्रधान धर्माचार्य आज भी उसी सम्मानसे भूषित हैं।

लामा तमोङ्गु-ख-प के भतीजे गेदेन डब उक्त सम्प्रदायके प्रधान धर्माचार्य (Grand Lama) हुए। लोमोंके निकट ये भयनारूपमें समझे जाते थे। १६४० ई०में मुगलराज गुमरोराने तिब्बत जीत कर पश्चिम लामाचार्य डंग-पङ्गु-श्री-जङ्गको दे दिया। तमोसे ने लुग-प सम्प्रदायके लामाचार्यगण राजशासकिते भूविन हुए। १६५० ई०में चीन सम्राटने उन्हें तिब्बतका अधिराज कबूल कर मोङ्गुलीय 'दलई' (समुद्र)की उपाधि दी। तमोसे यूरोपीय परिग्राहकोंके निकट ये तथा उनके वंशधरगण दलई लामा नामसे परिचिन हुए हैं। तिब्बतीय समाजमें ये गल-च-रिन-पोछे नामसे प्रसिद्ध हैं।

१६४२ ई०में उन्होंने लासानगरके समीप पहाड़के ऊपर सुप्रसिद्ध पीतल प्रासाद मन्दिर बनवाया। तिब्बतके दूरदूरे दूरदूरे लामा-साधनाधिकगण उन्हें तथा उनके वंशधरोंकी शयलोकितका भयतार मानते हैं। किन्तु राजशासकप्राम लामा डंग पङ्गु अपना शेष जीवन शांतिते बिता न सके। प्रभुत्वस्थापनमें उद्दाम आकाङ्क्षा तथा आश्रयुजातिके विद्रोहसे प्रपीडित हो ये इस लोकेसे चल बसे। छठे लामा चोग-सम्राटके हुकुमसे मारे गये। पीछे उन्होंने अपने हाथमें तिब्बतका कर्तृत्व ले कर सारे राज्यमें धर्मनीति और राजनीतिक सामञ्जस्य विधान करके यहाँ महत्त नियुक्त करनेकी व्यवस्था दी। किन्तु ये लुग-प सम्प्रदाय पश्चिम लामाको चलाई प्रघासे दिनों दिन उन्नति कर रहे थे। इसी समय कुछ चीन-राजतम-चारियोंके तिब्बतमें आने पर भी इस सम्प्रदायके लामा-चार्यगण यथार्थमें राज्यके अधोभर समझे जाते थे तथा समी सम्प्रदायभुक्त लामा उन्हींकी श्रेष्ठ समझते थे।

यह लामाधर्म केवल तिब्बतमें ही नहीं, दूर दूर देशोंमें भी फैल गया। अभी यह पश्चिममें यूरोपीय काफेसससे ले कर पूर्वीमें कामरुट्टक तथा उत्तरमें सुरियात् सावैरियासे दक्षिणमें सिक्किम और युन-नान तक विस्तृत है। इस विस्तृत भूभागमें लामाधर्म विस्तृत होने पर भी यहाँकी अधिवासियोंकी संख्या बहुत छोटी है। किन्तु सब कोई लामाको राजा और धर्मगुरु मानते हैं।

सारे तिब्बत राज्यकी जनसंख्या ४० लाखमें ऊपर नहीं

है। उनमेंसे बहुतेरे लामाधर्मोपासक हैं। पूव भोटवासिगर् योन धर्मसेवा हैं तथा कुछ लोगों ही धर्मको मानते हैं। योन धर्माचारिगण लामाधर्मके भी पृष्ठपोषक हैं।

यूरोपमें बालमक तातार जातिकी वामभूमि मन्ज्या नदीतीर तक लामाधर्मकी अन्तिम सीमा है। तोरगोत् जातिके भागनेके बाद भी यूरोपके रुसराज्यमें इन कीर धेक नदोंके मध्यवर्ती स्थानमें २० हजार घर कालमक तातारका वास था। उनमेंसे परीब लाख मनुष्य लामा-धर्मावलम्बी हैं। तोरगोत् जाति जवन् भागी है, तबसे यह श्वेकरुगी पुरोहित लामाको धेष्ठ नहीं मानते और न उनका आदेश ही पालन करती है। उन लोगोंमें एक धेष्ठ पुरोहित है। आज भी ये लुछछिटा कर उन लोगोंकी धर्म-रक्षाकी व्यवस्था देते आ रहे हैं। आज भी मन्ज्या नदीके किनारे उनकी धर्मशक्ति फैल रही है। कालमाकोंके धेष्ठ पुरोहित अभी भी लामा नामसे पूजित हैं। दलई-लामाको सर्वश्रेष्ठ नहीं मानते पर भी रुस गवर्नमेण्टके नियोजित एक प्रधान लामाके उपदेशानुसार ये लोग अपने धर्मकी रक्षा करने हैं।

इतिहासका अनुमरण करनेसे जाना जाता है, कि पहले मन्ज्या नदीतक दलई-लामाका अधिकार विस्तृत था। उनके निकट दायित्वप्रस्त अनेक बौद्धपुरोहित प्रति वर्ष उन्हें लासानगरमें राजकर भेजते थे। ये सब लामा पुरोहित अभी स्वायत्तार नामसे प्रसिद्ध हैं। तोरगोत्के भागनेके बादसे स्वायत्तरीने कर भेजना बन्द कर दिया। अथशिए उल्लुस (Ulluse)के स्वायत्तार गरी विभिन्न लुसलुमे विभक्त हैं। १८०३ ई०के विवरणसे पता चलता है, कि कालमक जातिकी जनसंख्याका द्वागान पुरोहितप्रधान होने तथा स्वायत्तिसमाजमें प्रभाव फैला कर उनके अर्थात् प्रतिगठित होनेके कारण रुस गवर्न-मेण्टने १८३८ ई०में प्रथम-लामा-जन्मीनमककी महान-यत्नाने उक्त अधीनस्थ प्रभावकी शक्ति दूर लाया। पहले दुष्ट और आत्मो आदर्मी अधोपाज्जनोंमें बलान ही इस पुरोहित-सम्प्रदायका आश्रय लेते थे तथा धर्मप्रान-निपाट बौद्ध-कायमकोंमें धर्मका बहाला कर श्वका संघा करने थे। रुस गवर्नमेण्टने हजारों शकम्पण पुरोहितोंकी सम्प्रदायसे निकाल दिया था।

नेपालमें गुर्खा जातिके प्रादुर्भावमें शीवदिन्द्रधर्मका प्रचार हुआ। बौद्धधर्म होने पर भी उनमेंसे अधिकांश नेपाली बौद्ध ही लामामतावलम्बी हैं। वर्त्तमान भूटान देशमें लामाधर्म पूर्णमालातमें विराजित है। वहाँके तासिस्तुन जिलेमें ५ सौ, पुनाखामें ५ सौ, पारो जिलेमें ३ सौ, तोङ्गसोरमें ३ सौ, टागनामें २॥ सौ और चन्दोपुर (अन्दोपुर) में २ सौ लामा पुरोहित हैं। इसके सिवा पर्वतगुहामें असंख्य लामामन्यासो तथा मठमें बौद्ध-मिश्रणी देखी जाती हैं। मठवासीको छोड़ कर प्रायः ३ हजार लामा-पुरोहित राजकर्म और वाणिज्य व्यवसायमें लित हैं।

सिकिममें लामामत ही राजधर्म है। वहाँके लामा तथा साधारण लोगोंका विश्वास है, कि धर्मात्मा पद्म-सम्भव (गुह रिम-चो ले) लामामत स्थापन करनेके लिये तिब्बत जाते समय इसी देश हो कर गये थे। १७वीं सदीके लामा परिम्राजक लहा-त्सुन छेम्पो तिब्बतसे सिकिम आये थे। उनके विवरणसे मालूम होता है, कि उस समय वहाँके अधिवासी अक्षानाम्भकारमें निमज्जित थे। शायद उनके आनेके बाद सिकिमवासी लामाधर्ममें दीक्षित हुए होंगे। वे यहाँ परिलाणकर्त्ता धर्मात्मारूपमें पूजित होते हैं।\*

१७वीं सदीके शेष भागमें लहा-तसुन छेम्पोकी मृत्यु-बादसे सिकिममें लामाधर्म धीरे धीरे फैल गया तथा थोड़े ही समयमें बौद्धयति और सङ्घाराम सिकिमराज्य आच्छन्न हो गया। अतएव सिकिमवासीको सम्भवता और स्नाहिद्वय तथा लेपूछा जातिको वर्णमालाका उत्पत्ति काल लामाधर्मको सहायतासे परिपुष्ट हुआ है, ऐसा

कहा जाता है। सिकिममें जिङ्ग-भन्व और कर-ग्यु-पं (कर-म-प) सम्प्रदायका प्रभाव ही अधिक है। वहाँ दुक्-प-सम्प्रदायका कोई मठ नहीं देखा जाता।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि तिब्बतमें लामाधर्मके विस्तारके साथ साथ उसके कितने साम्प्रदायिक विभाग संगठित हुए। भारतीय महायान और तान्त्रिक बौद्धमत तथा भोट-जनपदस्थ प्राचीन योन-धर्मको पङ्क कर वहाँके लामामतकी उत्पत्ति हुई है। ७४७ ई०में ओगेन चा उद्यानवासी गुह पद्मसम्भवकी चेष्टासे परि-वर्द्धित होने पर भी वह उन्नी प्रतिष्ठालाम न कर सका। ८६६ ई०में राजः लङ्-दर्मेने बौद्धधर्मका उच्छेद करनेकी कामनासे षोडशेके प्रति विशेष अत्याचार करना शुरु कर दिया। उस समय तिब्बतमें प्रतिष्ठित बौद्धमत धीरे धीरे होनप्रभ हो गया। उसके बादसे ले कर महात्मा अतीश-के शुभागमन तक लामाधर्म फिर उठ कर खड़ा न हो सका। १०५० ई०में अतीश और उनके शिष्य वरोम-स्तोङ्क कदम प सम्प्रदायकी स्थापना कर आदि लामाधर्मके संस्कारक कह कर पूजित हुए। इस शाखामतावलम्बी सुप्रसिद्ध लामा लासोन-ख प ने १४०७ ई०में गाल्-द्वर्ग संघाराम स्थापन कर बौद्धधर्म फैलाना चाहा। १६४० ई०में वही तिब्बतके पारमार्थिक-मण्डलरूपमें गिना जा कर संस्कृत गेलुगप (कदम-प शाखान्तर्भुक्त) सम्प्रदाय नामसे प्रतिष्ठित हुआ। १६४० ई०से यह पारमार्थिक मण्डलेश्वर वर्त्तमान समय तक इस साम्प्रदायिक मत और अपने प्रभावको एक नजरसे देखते आ रहे हैं।

१०६२ ई०में जिङ्ग-म-शाखा प्रतिष्ठित हुई। यह १३वीं सदीके शेष भाग तक अच्छी तरह संस्कृत हो आखिर जिङ्ग माप सम्प्रदायरूपमें प्रधान हो गई है। १५वीं सदीके शेषार्द्धसे ले कर १७वीं सदीके मध्यभाग तक इस सम्प्रदायके शाखारूपमें यथाक्रम ओगेंन-प दोर्जे तक प मिन्दो-लिग-प, ड-दक-प, कर्नो-क-प और लहा-तसुन-प आदि सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है। ये सब सम्प्रदाय जिङ्ग-म-प या प्राचीन असंस्कृत लामा मतसम्बन्धीय शाखा नामसे प्रसिद्ध हैं।

१०७२ ई०में शाक्य मोनने जो शाखा प्रवर्द्धित की, वह शाक्य प-शाखा नामसे फैल गई है। उससे १३वीं सदी-

\* लहा तसुन छेम्पोने दक्षिणपूर्व तिब्बत भूभागके कोङ्गू जिलेकी त्सेङ्गपो (महापुत्र) उपत्यकामें १५६५ ई०को जन्म-ग्रहण किया था। वे वहाँसे सिकिम आते समय राहमें नाना बौद्ध-सङ्घाराम होते हुए १६४८ ई०में लासानगर पहुँचे। यहाँ पहले दलाई-लामा डग-बदके साथ उनको भेंट हुई। वे भारतीय बौद्धाचार्य महात्मा भीममित्रका अवतार कह कर प्रसिद्ध हैं। वर्त्तमान नेमिओङ्गिङ्ग-सङ्घारामके प्रतिष्ठता जिक्मी-प वो उन्हीके अवताररूपमें जन्म लिया था।

के मध्यभागमें जोन-ए-प शाखाकी उत्पत्ति हुई है। १७वीं सदीके मध्य भागमें तारनाथने जोन-ए-प शाखाका मत प्राचान्य स्थापन किया। १५वीं सदीके प्रथमाहर्द्धमें शाषयप शाखासे नोट-प नामक एक दूसरी शाखा संगठित हुई, यह प्रधानता लाम न कर सकी।

११वीं सदीके शेष भागमें मर-प और मिल रस-प शाखा स्थापन कर गये हैं। लामा द्रुग-पो-लहजें उक्त साम्प्रदायिक मतकी प्रतिष्ठा कर जगसाधारणमें उसके प्रवर्तक रूपमें परिचित हुए थे। लगभग ११४२ से १२२० ई०के मध्य काल गु-प सम्प्रदायसे पृथक् और संस्कृतभाषामें दिङ्मन्-प, कर्म-प तथा प्राचीन या उत्तर दुक्-प (२१६० ई०) शाखाकी उत्पत्ति हुई। आखिर १२१० ई०में उक्त दुक्-प सम्प्रदायसे संस्कृतभाषामें मध्य और दक्षिण भोटान्तके लुक-प तथा फिरसे १२२० ई०में उक्त भोटान्त दुक्-पसे आधुनिक या दक्षिण दुक्-प शाखाका

उद्भव हुआ था। १२वीं सदीके शेषभागमें दिङ्मन्-प शाखासे तलुन-प नामक एक और स्वतन्त्र शाखाकी उत्पत्ति हुई। करग्यु-प और शाषयप सम्प्रदायप्रति शाखाएँ मठ संस्कृत लामामत नामसे गणित हैं।

वर्तमान समयमें कोई कोई लामा गुक् पक्षसम्भवकी गुहामें छिपा कर रते हुए प्राचीन धर्मप्रणयकी वीहार्हें दे कर जो सब शाखा-मत प्रचार करनेकी चेष्टा करते हैं, वे सब 'तेर-म' वा गुक्के अभिष्यक्त-साम्प्रदायिक मत शिष्ट-म-प सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माने जाते हैं। इसमें श्रामानो धोन-प और भूतार्हिकी उपासनाके साथ विगुह लामा-मनका समन्वय दिव्यलाया गया है। उपरोक्त विभिन्न सम्प्रदायकी पद्धति परस्पर पृथक् है। उन लोगोंका परिच्छेद और शिरस्त्राण भी अलाहदा है। नीचे दिये गये चित्रोंने उसका पता चलेगा।



मोहनसामा शे-ए-प । कर्-गु लामा । नलरपसामा ।  
लामा उरकेन-म-प, एवे । शिष्ट-मा लामाद्वय । नर्भसामा ।

उपरोक्त सम्प्रदायसमष्टिके विस्तार और प्रतिष्ठाके साथ साथ लामाधर्मराज्यमें भ्रम-रूप मठ और सङ्घ-रामकी प्रतिष्ठा हुई। उन सब विभिन्न शाखा-सम्प्रदाय और उनके अन्तर्भुक्त विभिन्न मठार्हिक विवरण विष्कार हो जानेके भयसे यहाँ पर नहीं दिया गया। सांसारिक

प्रलोभनसे निलसितभाषामें मज्जन्मान करना ही बौद्ध-यतिवैकां प्रपान कर्म है। क्योंकि इससे वे निश्चित मनमें ईश्वरकी उपासना कर सकने हैं। यही कारण है, कि वे लोग निर्जैन और प्रलोभनशून्य निर्गम प्रदेशमें भा कर बानस करने हैं। यही सब यान्त्रिक बार्हिक

सङ्काराम वा मन्दिर कहलाते हैं। लामाधर्म फ़ैलानेके लिये तिब्बत-राज्यमें तथा उसके आस पास चीन, मोंङ्ग-लीय, रुस आदि विभिन्न देशोंमें नाना सङ्काराम और मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। उन सब स्थानोंको भोटभाषाओंमें गोन-प ( निज्ज न स्थान ) कहते हैं। नीचे कुछ विभिन्न देशों प्रसिद्ध सङ्कारामके नाम दिये गये हैं,—

तिब्बत—तापिलह्वणपो, शास्वय, मिन्डो लिङ्, हीमिस ( लादक ), सङ्ख छो लिङ्, पद्म यङ तसे ( पेमि ओङ्गछि ), त-क-तपि रिङ्, फो-दङ्, ल घङ्, दोर्जे लिङ् ( दार्जि लिङ् ), देडाङ्, रि-गोन, व-लुङ्, पन चे, दुप दे, फनजङ्, कचो पल-रि, मणि, से-नोन, पङ गङ्, लहुन तसे, नम-तसे, तसुन ठाङ्, रव-लिङ्, नुव लिङ् दे-बिय-लिङ् । ये सब स्थानके नामानुसार प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा सम-यास, गालद्वन, दे-पुङ्ग, संर र, नम-ग्यल-छोर्-दे, रमो-छे और कर्म-धय, द्येपेरिप-नाय, जन-लछे, छमन मरिन ( १२२२० फुट ऊंचा ), दौर्क्या-लुगु-दोङ्, शाषय वा शास्वय, र-रेङ्ग, तिङ्ग गे, फुन-तयोगसगिलङ्, सम-दिङ् ( १४५१२ फुट ऊंचा ), दि-कुङ्ग ( मि-गुङ् ), स्मिन-मोल-गिलङ् ( मिन्डो लिङ् ), रोजे दग, पयल-रि, पाळु, गुरु-छो-चङ्, रुङ्ग-कर-गु-धोरु, व-छु-छ, गैन-तमि, देर्ज, छाव-मेदा, कार्याक, रिछचे, दोर्जे-यु, मर-पुङ्-ले-र-पुङ्, मेन देलदेम, फु प रोन्, कोन्-देम, भो-लुन्, छमनक, क्योन-स, नरतोन, रिण-छेन-सुन, तसेनचुङ्, ग्यपुन, और देमू आदि प्रधान प्रधान कई सङ्काराम विद्यमान हैं। समूचे तिब्बतके मठाश्रम वा सङ्कारामकी संख्या ३ हजारसे कम नहीं होगी। इन सब प्रसिद्ध सङ्कारामकी बगलमें पविल छोतेन ( चैत्य वा स्तूप ) तथा मेनदीङ् ( स्मृतिस्तम्भ ) विद्यमान देखे जाते हैं।

चीन—युन-हो-कोङ्ग वा प्रसिद्ध फेकिन-सङ्काराम, कु-सै-पान, कुन्मुम ( यहां एक श्वेतचन्दनका वृक्ष है। कहते हैं, कि यह वृक्ष तसोङ्-ख-पाके जन्मकालीन निःस्त्रायित रक्तसे उत्पन्न हुआ था। उसके पत्ते रंग विरंगके हैं। प्रत्येक पत्तेमें नरसिंह तथागतकी मूर्ति अङ्कित है। पाश्चात्य प्रव्रतनस्वविन् हुकने उस पत्तेको देख कर लिखा है, कि उसके पत्तेमें तिब्बतीय घर्णमाला धिन्वस्त है। यह अनैसर्गिक व्यापार सचमुच विस्मय-कर है ) तथा जो-घो-ख-ङ् नामक बड़ा मन्दिर है।

Vol. XX. 68

मङ्गोलिया—उर्ग्यफुरेन और तारानाथ मन्दिर। यहां ३० हजार बौद्धयति तथा कुकु-ओतुन विभागके पांचके सङ्काराममें प्रायः २० हजार लामा रहते हैं।

साइबेरिया—वैकाल हृदके निकटवर्ती सेलिजिनस्क-के उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक सङ्काराम। यहांके मठाचार्य बरियातोंके मध्य खानेया पण्डित नामसे परिचित हैं।

यूरोप—भलगा नदीतीरवर्ती कालमक तातारोंका मन्दिर 'छुकल' कहलाता है। यह साधारणतः तम्बूसे बनाया जाता है। ये सब तम्बू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं :—जहां पुरोहित रहते हैं उसका नाम छुक-ल्लुन-ओपर्गों और जहां देवमूर्ति धीर धर्मसंक्रान्त चित्रा-वली सज्जित रहती है उसका नाम शिचतानीया बुच्छा-नुन-ओपर्गों है। एक एक छुकलमें सौसे ऊपर पुरोहित रहते देखे जाते हैं।

लदाक वा छोटा तिब्बत—हेमि वा हीमिस, लम-युर क, मधोगिलङ्ग ( तुर्किस्तानके मानचित्रमें धोतुलिङ्ग-मठ ), येग छोम, कौडदजोगस, वम ले, मयो, स्पियुग, शेर-गाल, बिय गङ्, गु गे, कनुम-दुव-लिङ्, पोचि और पङा गि।

नेपाल—यहांको निम्न उपत्यकामें कोई सङ्काराम नहीं देखा जाता। उत्तर-दिग्धर्ती अधिह्यका-विभागमें है या नहीं कह नहीं सकते। यहांके बौद्धतीर्थोंमें बहुतेरे लामाओंका वास है।

भूटान—तापि-छोद्-सोङ्ग, पुन-याङ्, उ ग्य न-त-से, वाकरो, वाह, रतम-छोग गैन, क ह-लि, सम-फिन, खा-छागस गैन था, छाल-फुग, फालिमपोङ्ग, पेडोङ्ग आदि। भूटानके महालामा धर्मराज और देवराज तापिछोद्सङ्ग सङ्काराममें वास करते हैं।

सिकिम—सङ्गुछे लिङ्, दुयदि, पेमिओङ्गछि, गण्टोक, तपिदिङ्ग, सेनन, रिनचिनपोङ्ग, रलोङ्ग, मलि, रम-येक, फदुङ्ग ( फोयड ), छेउङ्ग-दोङ्ग, केडसुपेरि, लछुङ्ग, तलुङ्ग ( दो-लुङ्ग ), पण्टछि, फेनसुङ्ग, करतोक, दलिङ्ग ( दौ-गिलड ), यनगङ्ग ( गयङ्-सगड ), बलमड, लछुङ्ग, लहुन-रत्से, सिनिक ( जिमिग ), रिङ्गिम ( श्रद्दगोन ), लिङ्-धेम, रत्सग-नेस, लछेन, लिङ्गोदि, फदुङ्ग ( फग्सग्यांङ ),

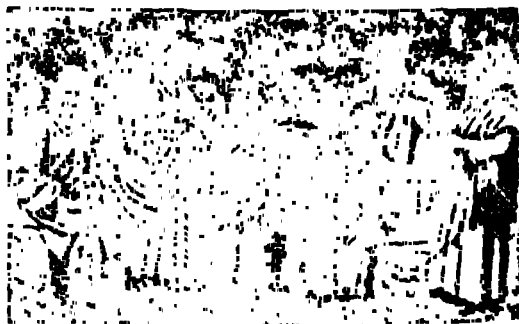


के मध्यभागमें जोन-रूप शाखाकी उत्पत्ति हुई है। १७वीं सदीके मध्य भागमें तारनाथने जोन-रूप शाखाका मत प्राचान्य स्थापन किया। १५वीं सदीके प्रथमाद्धमें शाशवप शाखामें गौर-प नामक एक दूसरी शाखा संगठित हुई, यह प्रथानदा लाभ न कर सकी।

११वीं सदीके शेष भागमें मर-प और मिल रम-प शाखा स्थापन कर गये हैं। लामा ह्यु-पो-लहसे उक्त सांभ्र-दायिक मतकी प्रतिष्ठा कर जगसाधारणमें उसके प्रवर्त्तक रूपमें परिचित हुए थे। लगभग ११४२ से १२२० ई०के मध्य काल यु-प सम्प्रदायसे पृथक् और संस्कृतभाषामें विक्रम-प, कर्म-प तथा प्राचीन या उत्तर दुक्-प (२१६० ई०) शाखाकी उत्पत्ति हुई। आतिर १२१० ई०में उक्त दुक्-प सम्प्रदायसे संस्कृतभाषामें मध्य और दक्षिण मोटान्तके दुक्-प तथा फिरसे १२२० ई०में उक्त मोटान्त दुक्-पसे शोधुनिक या दक्षिण दुक्-प शाखाका

उद्भव हुआ था। १२वीं सदीके शेषभागमें विक्रम-प शाखासे हलुन-प नामक एक और स्वतन्त्र शाखाकी उत्पत्ति हुई। करग्यु-प और शाशवप सम्प्रदायाभिन जाभ्याए भद संस्कृत लामामत नामसे प्रसिद्ध है।

वर्त्तमान समयमें कोई कोई लामा गुठ पद्मसमयकी गुहामें छिपा कर रचे हुए प्राचीन धर्म ग्रन्थकी कीर्तनाएँ कर जो सब शाखा-मत प्रचार करनेकी चेष्टा करते हैं, वे मध 'तेर-म' वा गुठके अभिष्यक्त-साम्प्रदायिक मत मित्र-म-य सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माने जाते हैं। इसमें जमानो धोन-प और भूदाइकी उपासनाके साथ पियुद्ध लामा-मनका समन्वय दिव्यजाया गया है। उपरोक्त विभिन्न सम्प्रदायकी पहचति परस्पर पृथक् है। उन लोगोंका परिच्छेद और निरन्त्राण भी अन्नाहदा है। मोचे दिये गये चिचोसे उसका पता चलेगा।



गोपलनामा शेर-प ।  
लामा उम्पे-प-रठे ।

कर-गु लामा ।  
मिठ-मा लामाद्वय ।

वस्वपनामा ।  
कर्मनामा ।

उपरोक्त सम्प्रदायसमष्टिके विस्तार और प्रतिष्ठाके साथ साथ लामाधर्मशास्त्रमें अत्यन्त मठ और सद्धारणकी प्रतिष्ठा हुई। उन मठ विभिन्न शाखा-सम्प्रदाय और उनके अन्तर्भुक्त विभिन्न मठादिका विवरण विस्तार हो जानेके मयने यहाँ पर नहीं दिया गया। सांसारिक

प्रलोभनसे निन्दितभाषामें भवस्थान करना ही बौद्ध-यतिपोंका प्रथान कर्म है। क्योंकि इससे वे निरिचयन मनसे ईश्वरकी उपासना कर सकते हैं। यही कारण है कि वे लोग निर्जान और प्रलोभनशून्य निर्जन प्रदेशमें भा कर वास करने हैं। यही सब वास्तव्यवादीक

सङ्कराम वा मन्दिर कहलाते हैं। लामाधर्म-फैलानेके लिये तिब्बत-राज्यमें तथा उसके आस पास चीन, मोङ्ग-लिय, रूस आदि विभिन्न देशोंमें नाना सङ्कराम और मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। उन सब स्थानोंको भोटभाषामें गोन-प (निर्जन स्थान) कहते हैं। नांचे कुछ विभिन्न देशी प्रसिद्ध सङ्करामके नाम दिये गये हैं,—

तिब्बत—सपिलहूणपो, शास्वय, मिन्डोलिङ्, हीमिस (लादक), सङ्ख छो लिङ्ग, पद्म यङ तसे (पेमि ओङ्गछि), त-क-तपि रिङ्ग, फो-दङ्ग, लमङ्ग, दोर्जेलिङ्ग (दाजि लिङ्ग), देठाङ्ग, रि-गोन, धू-लुङ्ग, एन चे, दुब दे, फनजङ्ग, कचो पल-रि, मणि, से-नोन, पङ्ग गङ्ग, लहुन तसे, नम-तसे, तसुन ठाङ्ग, रव-लिङ्ग, नुय लिङ्ग, दे-बिय-लिङ्ग। ये सब स्थानके नामानुसार प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा सम-यास, गाःलद्न, दे-पुङ्ग, सेर र, नम-ग्यल-छो-दे, रमो-छे और कर्म-बय, देपेरिप-गय, जन-लछे, छमम मरिन (१२२२० फुट ऊँचा), दौर्ब्या-लुगु-दोङ्ग, शाफ्य वा शास्वय, र-रेङ्ग, तिङ्ग-गे, फुन-तयोगसगिलङ्ग, सम-दिङ्ग (१४५१२ फुट ऊँचा), दि-कुङ्ग (मि-गुङ्ग), स्मिन-मोल-गिलङ्ग (मिन्डोलिङ्ग), रोजे दग, दपल-रि, पाखु, गुय-छो-यङ्ग, रुङ्ग-कर-गु-थोक, कछु-छ, गोन-तमि, देर्ज, छावे-मेडा, कार्याक, रिछचे, दोर्जे-यु, मर-पुङ्ग-ले-रु-पुङ्ग, मेन देलदेम, फु प रोन्, कोन्-देम, भो-लुन्, छमनक, क्योन-स, नरतोन, रिण-छेन-सुन, तसेनचुङ्ग, ग्यपुन, और देसू आदि प्रधान प्रधान कई सङ्कराम विद्यमान हैं। समूचे तिब्बतके मठाधर्म वा सङ्करामकी संख्या ३ हजारसे कम नहीं होगी। इन सब प्रसिद्ध सङ्करामकी बगलमें पवित्र छोतेन (चैत्य वा स्तूप) तथा मेनदोङ्ग (स्मृतिस्तम्भ) विद्यमान देखे जाते हैं।

चीन—युन-ही-कोङ्ग वा प्रसिद्ध पेकिन-सङ्कराम, कुनी-यान, कुम्जुम (यहाँ एक खेतचन्दनका वृक्ष है। कहते हैं, कि यह वृक्ष तसोङ्ग-ख-पाके जन्मकालीन निःश्लाघित रक्तसे उत्पन्न हुआ था। उसके पत्ते रंग बिरंगके हैं। प्रत्येक पत्तेमें नरसिंह तथागतकी मूर्ति अङ्कित है। शास्त्रात्य प्रतनतस्ववित् हुकने उस पत्तेकी खेच कर लिखा है, कि उसके पत्तेमें तिब्बतीय वर्णमाला विन्यस्त है। यह अनैसर्गिक व्यापार सचमुच विस्मय-कर है) तथा जो-घो-ख-ङ्ग नामक बड़ा मन्दिर है।

मङ्गोलिया—उर्घ कुरेन और तारानाथ मन्दिर। यहाँ ३० हजार बौद्धयति तथा कुछ खोतुन विभागके पाँचके सङ्कराममें प्रायः २० हजार लामा रहते हैं।

साधेरिया—वैकाल हरके निकटवर्ती सेलिजिनस्क-के उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक सङ्कराम। यहाँके मठाचार्य बरियातोंके मध्य खानेया पण्डित नामसे परिचित हैं।

यूरोप—भलगा नदीतीरवर्ती कालमक तातारोंका मन्दिर 'छुक्ल' कहलाता है। यह साधारणतः तम्बूस बनाया जाता है। ये सब तम्बू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं।—जहाँ पुरोहित रहते हैं उसका नाम छुक्-ल्लुन-ओपगों और जहाँ देवमूर्त्ति और धर्मसंकात चिन्हावली सज्जित रहती है उसका नाम शिचतानीया बुच्छा-नुन-ओपगों है। एक एक छुक्लमें सौसे ऊपर पुरोहित रहते देखे जाते हैं।

लदाक वा छोटा तिब्बत—हेमि वा हीमिस, लम-युर क, मथोगिलङ्ग (तुर्किस्तानके मानचित्रमें थोत्विलङ्ग-मठ), थेग छोम, कोठद्वोगस, वम ले, मयो, स्थियुग, शेर-नाल, बिय मङ्ग, गु गे, कनुम-दुब-लिङ्ग, पोचि और पङ्ग गि।

नेपाल—यहाँकी निम्न उपत्यकामें कोई सङ्कराम नहीं देखा जाता। उत्तर-दिग्दर्शी अधित्यका-विभागमें है या नहीं कह नहीं सकते। यहाँके बौद्धतीर्थोंमें बहुतेरे लामाओंका वास है।

भूटान—तापि-छो-द-सोङ्ग, पुन-याङ्ग, उ ग्य न-त-से, वाकरो, वाह, रतम-छोग गेन, क ह-लि, सम-भिन, खा-छागस-गेन खा, छाल-फुग, कालिमपोङ्ग, पेछोङ्ग आदि। भूटानके महालामा धर्मेराज और देवराज तापिछोदसङ्ग सङ्कराममें वास करते हैं।

सिकिम—सङ्खुछेलिङ्ग, दुयदि, पेमिओङ्गछि, गपटोक, तपिदिङ्ग, सेनन, रिनचिनपोङ्ग, रलोङ्ग, मलि, रम-थेक, फदुङ्ग (फोमङ्ग), छेउङ्ग-दोङ्ग, केटसुपेरि, लछुङ्ग, तलुङ्ग (दो-लुङ्ग), पपटछि, फेनसुङ्ग, करतोक, दलिङ्ग (दौ-गिलङ्ग), यनगङ्ग (गय-सगङ्ग), बलमङ्ग, लछुङ्ग, लहुन-रत्से, सिनिक (जिमिग), रिङ्गिन (श्रद्धागोन), लिङ्ग-थेम, रत्सग-नेस, लछेन, लिङ्गोद, फदुङ्ग (फग्सग्याङ्ग),

मोहित (मुवमिन्ड), नमछी, पविषा, मड लनाम ।

ये सब मद्दारायामी बौद्धयनिगण निरवनीय विभिन्न सम्प्रदायकी साध्य कर् अने अने साम्प्रदायिक मतकी रक्षा करते बा रहे हैं । धर्मसम्प्रदायकी पृथक ताके अनुसार उनके निर पर लाल और पोली पगडु देवो जाती है । सिक्किम जितने मन्दिर हैं उनका अधिर्वाज सिद्धम सम्प्रदायभुक्त है । केवल नमछी, तापि दिङ्ग, मिनीन और मड मोछे मद्दारायमें छद्मक-प तथा कर्तोक और शैलङ्ग मन्दिरमें नर्तक-प जायामत विस्तारित देखा जाता है ।

पूर्ववर्धित मद्दाराय और मन्दिरकी छोड़ कर तिब्बतके माला स्थानोंमें मन्दिर विराजित हैं । उन सब मन्दिरोंमेंसे लामा नगरीका सुदृग् मन्दिर ही सर्वप्रधान है । मन्दिरकी द्वारमें ते कर गर्भपीठ नरु जगह जगह नामा देवमूर्त्ति देवो जाती हैं जिनमेंसे द्वारपालोंकी साधुति नपुो हो अतायती है । लामाराज्यके पश्चिमदिक् पति विरुपाक्ष, दक्षिण-दिक्पति विरुधर, भूर्त्तिको ईश्वरो देवोमूर्त्ति, दक्षिण तानमा भूतिनी मूर्त्ति, यज्ञवाणि मूर्त्ति, पूर्वदिक्पति धृतराष्ट्र तथा उत्तरदिक्पति यक्षेश्वरके यैश्रवण ; यम, अग्नि, यायु, वरुण, वक्ष, रक्षा, सोम, ब्रह्म, इन्द्र और भूपति नामक दशलोकपालमूर्त्ति आदि देवचित्र विस्मयकर हैं । इनके सिवा यहाँ अग्निताम, अग्नितायु, नागाजुंन, मञ्जुधो, सामन्त-भद्र, एकादजिनरुद्र, अयलोकज, नाभी, एकचिंन ताता-मूर्त्ति, पद्ममन्त्रय, जाम्तरक्षित, भक्तो, यज्ञधर, मरु, मित्र-रः प, नाभपुत्र, अशोभ्य, अशोघसिद्धि, वैरीयम, रक्षासम्प, मरीचि या घाराहीमूर्त्ति, यज्ञमीरयमूर्त्ति, हय गोवमूर्त्ति, विभिन्न शक्ति (बाली) मूर्त्ति, विभिन्न शक्ति, पक्षिणी, गणधर्य, असुर, किन्नर, महोरग, गरुड आदि अस्तंठपुत्र, शोचिसरय, शीताचार्य, पुत्रदेवता, ब्रह्म-देवता तथा शक्तिने, भूतिनी और ताग्लिक हिन्दू देव-देवो मूर्त्ति निरवनीय लामा समाजमें पूजित देवो तानी हैं ।

सामाज्य विभुयनोंके प्रेतोहिष्ठ धात और विरु-दानादि बड़ी धडापूर्वक करते हैं । ये लोग दमराज-की नरकका अविपति कर कर किञ्जास करते हैं ।

मञ्जोय, कलासूत, सङ्गाट, वीर्य, मदारोत्प, तारन, प्रो-पन और अयोचि नामक ८ अग्निनय तथा भवुंर, निर-भुंर, भतत, दृष्टय, उरगल, पत्र और पुण्टरीक नामक ८ शीतलय और तज्जिन्न पृथगोपुष्ट पर, पदांत पर, मन्-देजमें, उज्ज प्रप्रयण और तर्शदिमें प्राया-८२ हकार नरक निरूपित हैं । ये सब नरक 'लोकान्तार' नामसे प्रसिद्ध हैं । नरकसे ऊपर और सिनधनमें नीचे ये प्रे-लोककी कल्पना करते हैं ।

लामायनियोंकी मृतदेह ध्यानी युद्धकी तरह वासन पर घैटा कर गाड़ी जाती हैं । जहाँ उन लोगकी समाधि होनी है, यद् स्थान तीर्थरूपमें गिना जाता है, निम्नप्रलो-के लामाओंको लाज जलाई आती है । पीछे उक्त मरुम या अस्थिको गाड़ कर उसके ऊपर एक एक युद्ध-मूर्त्ति स्थापित कर देते हैं । साधारण व्यक्तिके मरने पर किसी प्रकारका उत्सव नहीं मनाया जाता । कहीं कहीं ये लोग लाशको पदांत पर फेंक देते हैं । कहीं कहीं लाज फेंकनेके लिये द्वीवारमें पिटा दुग्मा समाधिदेश विद्यमान है । मद्दोरीय लामा कभी कभी मृतदेहको गाड़ देते हैं और उसके ऊपर परधरके टुकड़े रख कर जगमृत्पुत्रा संक्षिप्त इगिदास लिख रखते हैं । पदांत पर इस उद्देशसे लाज फेंकी जाती है, जिससे मांस खाये-चाहे पशु पक्षी उसका मांस खाये । कहीं कहीं ये लाजको जलाते भी हैं । छोटे छोटे बच्चोंके मरने पर उनके माता पिता उन्हें रास्तेको बगलमें फेंक देते हैं । स्वपतिमें दाह, समाधिस्थ या नदीके जलमें बहा देने-का नियम है । मृतपुत्रे बाद प्रेतकी मञ्जुकायनासे ये लोग मरुत पडते हैं । एकमात्र लाल पगडु पदमनेवाले सामानो से लोह लामा हो विधाह करते हैं ।

निरवनीय बौद्धधर्मका दूसरा पूजा हाल परिभाजक बीजापावीकी जोषनीमें तथा बौद्धधर्म, प्रतीत्यसमुत्सव, मयधक, भौतिकविद्या, भौतविद्या और तिग्गन शत्रुमें संक्षेपमें दिया गया है । अन्त्येय यहाँ पर इनका उद्देश्य नदी दिया गया ।

१ दरई लामा-नर्तकी गानिका ।

संख्या ।

नाम ।

१ दग्दुन प्र.प ।

- २ द्गोदुन ग्रामत्पो ।
- ३ वसोद नम् ।
- ४ घोन् तान् ।
- ५ ड्ग ड्ङ् च्छोव् सन् ग्यमत्पो ।
- ६ तपडस-इनस ग्यमत्पो ।
- ७ खल् वज्म ।
- ८ भम् दपल ।
- ९ लुङ्ग तोंगस् ।
- १० तपुञ्ज वृमस् ।
- ११ मखम प्रव ।
- १२ फ्रिन् लस् ।
- १३ थुग् वस्तान् ।

इस वंशके प्रतिष्ठाता महालामा गेदुजका, प्रवण स्के-बो निरुट किसो स्थानमें जन्म हुआ। पीछे उन्होंने तमिल-हण-पो सङ्घारामको स्थापना की थी। छठे लामाके चरितदोषसे राज्यच्युत और निरुट होने पर तातारराज गिसिकर लाने पोतल-मङ्के अध्यक्षपद पर छगफोरिलस् ड्ग् घञ्जु-येपे-नयमत्पोको नियुक्त किया। किन्तु घोड़े ही दिनोंमें यह घोषणा कर दी गई कि लिधङ्गनगरमें देपुङ्ग सङ्घारामके एक बौद्धयतिके पुत्ररूपमें कलजङ्ग नामक छठे लामाने जन्म लिया। इस पर चीन-सम्राट्ने उस बालकको कारारुद्ध कर १७२० ई०के युद्धपर्यन्त तातार-राजके नियोजित लामाको ही लासा नगरीके धर्मगुरु-पद पर नियुक्त रखा। १७२८ ई०में नरहृत्पाके अपराधों उन्हींने भोटराजकी तथत परसे उगार दिया और छोटिन सङ्घारामके केशरी रिनपोछेको उनके पद पर अभिविक्त किया। इसके कुछ समय बाद उन्हींने फिरसे अपनी धाक जमाई। उनके राजत्वकालके १७४६ ई०में चीन-राजशासिक तिब्बतसे हटा दी गई।

नववे, दशवे, ग्यारहवे और बारहवे महालामा वच-पनमें ही अपने अपने अभिभावक द्वारा विप त्रिलया कर यमपुर भेज दिये गये। शेषके लामा तरह ही चर्पही अय स्थाम इस लोकसे चल बसे। पीछे १३वे लामा खुव-तसान उस पदके अधिकारी हुए।

मुषविद "वापि" लाम्यवंश।

१ खुग् प लहस त्सस—रतनग सङ्घारामके एक बौद्धयति।

- २ शास्त्रय परिडत ।
  - ३ युन् स्कोन दोर्जेपाल ।
  - ४ कसप्रव गेलिगपालजङ्गपा ।
  - ५ पञ्चेन् सोदनम पधोग् क्तिफ्लडपो ।
  - ६ वेन स प लोजन दोङ्ग प्रव ।
- ये सब बौद्धयति या 'तापि' लामा नामसे प्रसिद्ध थे वा नहीं, कह नहीं सकते। क्योंकि तपिलहणपोका प्रसिद्ध सङ्घाराम १५वीं सरीके प्रथम भागमें प्रतिष्ठित हुआ। अतएव उक्त तालिकाके अन्तिम दो लामाको ही तत्साम-यिक मान सकते हैं। पञ्चेन रिनपोछे उपाधिधारी निम्नोक्त लामागण ही प्रकृत तापि-लामारूपमें सर्वत्र पूजित होते हैं।

- १ लोंजङ्ग छोस् किय थ्यलम्त्पन् ।
  - २ " येपे दपल जङ्ग पा ।
  - ३ " दपल लद्क येपे ।
  - ४ जोंस्तान पहि झिम ।
  - ५ जेंदपाहादन छोस् किय ।
- शास्त्र-साम्प्रदायिक लामाचार्यगण ।

- १ शाषव वसङ्गपो ।
- २ थङ्ग वत्सुन ।
- ३ वन्-करपो ।
- ४ छयङ्करिन स्कोम्प ।
- ५ ड्ङ्गङ्ग ।
- ६ थङ्ग वङ्ग ।
- ७ छङ्गदेरि ।
- ८ गङ्गलेन ।
- ९ लेगम-प-दपल ।
- १० लेङ्ग गे दपल ।
- ११ ओद्-जेर दपल ।
- १२ ओद्-सेर-सेङ्गने ।
- १३ कुनरिन ।
- १४ दौन, चौद-दपन ।
- १५ योन वत्सुन ।
- १६ ओद्-सेर सेङ्गोह्य ।
- १७ र्यल व-सङ्गपो ।
- १८ द्रङ्ग-षवङ्ग दपल ।

१६ सोद-गम-दण्ड ।

२० र्दय-य तस्य पोषे ।

२१ दृढ-य तसु ।

वे मठाचार्यगण आज्ञा भी 'शाष्य पम टेन' कहलाते हैं । भूटानके मठाचार्य महात्मागण कर-शु प मभ्रवाय-के-दक्षिण-दृक् प जायाके अन्तर्भू क है । इन भूटानियोंके ३१ मन्त्रोंके पहले ब्रह्मात्मको उसरी सोमा की नविहार पर आकणन किया । भूटानोद्वलमें कुछ तिथिनीव सैन्य भी थे । उनके अधिनायक दुपगणि वेपनुत नामक एक लामा क्रमशः सेनाभोके ऊपर आधिपत्य फैला कर धर्म-राज्यरूपमें गण्य हुए । उनके मरनेके बाद उनकी आत्माने लोमोंको धारणाके अनुसार आत्मानयरीके जिस शालकके शरीरमें प्रवेश किया था, उसीको भूटान लाया गया । यह लामावतार 'रिनपोछे' और 'धर्मराज' कहलाता है । बालक लामाने राजदण्डपरिचालनके लिये जो अग्नि-भाष्यक नियुक्त किया थे ही देवराज कहलाये ।

भूटानके लामाचार्यगण ।

- १ टन यष्ट नमोर्गल युद्ध भोम वृजि ।
- २ " भिग मेद तंगस प ।
- ३ " छोस् विप ग्गल मत्सान ।
- ४ " भिग मेद द्रु पो ।
- ५ " शाष्य सेष्ट गै ।
- ६ " धम ट् प्छम ग्गल मतयान ।
- ७ " छोम विप द्रु गुग ।
- ८ " भिग मेद तंगस प (द्वितीयवार भयतोषं)
- ९ " " " नोयुं ।
- १० " " " छोम ग्गल ।

इन दशों लामावतारकी स्वतन्त्र जीवनी है । प्रथम लामा विवाहित और महालामा मोनस यन्त्रोंके सम-सामयिक थे । अथनिष्ठ लामागण प्रत्ययर्थायलभ्यो हैं । धर्मराज प्रीणकालमें तपिठा दुर्गमें रहते हैं । यह प्रासाद परवरका बना और गगन संज्ञित है । यहाँ प्रायः ५ गौ बौद्धपति रहते हैं । गंगाववागो लामामों पर ये ही कर्तृत्व करते हैं । गुर्घा-गणमेंसे दृढ उनके शिरोधी नहीं हैं ।

चन्द्रमन्त्रेनायामी, मन्त्रोत्पत्तौके प्रथम धर्मोपपन्न

उर्घा-पुरेन नामक स्थानमें बास करते हैं । ये लोग जैतु-सुन-दम्प नामसे परिचित हैं । लोकावासो मन्त्रोत्पत्तौका विश्वास है, कि सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक लामा शारकाय उन लोमोंके जैतुसुन दम्पियोंके शरीरमें बार बार भयभीत हो धर्म-चिन्तार करते हैं । मन्त्रोत्पत्तौका उर्घा लामा-राम पहले शाष्य-सभ्रवायभुक्त था । पाँछे यह गैलुप साभ्रवायिक मठाभ्रममें परिणत हुआ है ।

सम्राट् कङ्ग-दि'के शासनकालमें (१६६२-१७२३ ई०) पीतनद्वे शीरस्थ कीकी-खातान नगरमें धर्मोचार्य जैतुसु-दम्प रहते थे । उस समय कालमक या श्लिडय जातिके साथ लोकाका अगुवा लडा हुआ । लडोंमें पराए हो कर चीनराजका आश्रय लिया । इस पर कालमाशने चीन-सम्राट के निकट जैतुसुनदम्प और उनके भाई राज-कुमार तुरडेनु पांकी उन्हें प्रत्यर्पण करनेकी प्रार्थना की । किन्तु सम्राट् के राजी नहीं होने पर उन्होंने दुर्ग-लामाको गण्य बनाया । दुर्ग-लामा या उनके प्रति-निधिने विचार करके उक्त दोनों राजकुमारोंको गौ देनेका हुक्म दिया । इससे सम्राट् के साथ कालमाक जातिका युद्ध हुआ । इस समय एक दिन सम्राट् जैतुसुन दम्पसे मिलने गये । जैतुसुनने उनका भयमान किया । राजाने क्रुद्ध हो कर उनका गिर काट डालनेका हुक्म दिया । इन घटनासे लोका लोग विद्रोही हो उठे और जैतुसुनदम्पने यह घोषणा कर दी, कि ये सम्राट् की मृत्युमखुला युद्ध करना चाहते हैं । चीन-सम्राट् ने विद्रोहीकी सूचना देण दुर्ग-लामाको शरण ली । उनके विचारसे वहाँ स्थिर हुआ, कि जैतुसुनदम्पके तोरखों भयतार तिथनमें ही होगी । लोकावासिगण इसी समयसे स्वदेशमे निक घेष्ट पुरोहित होनेसे पश्चिन्त हुए ।

सभी मण्य या परिवचन-तिवतसे ही साधारणतः जैतुसुनदम्पका भयतार भाविभूत होता है । परांतल जैतुसुनदम्पका लाला-नगरीके-बाजारके समीप ज्ञान हुआ था । ये देवदुर्ग सह्यागाममें गैलुप-य लामाके विचारों रूपमें प्रविष्ट हुए । किन्तु उनके वाच्ये धर्ममें बदलाव करने ही लोका लोग उन्हें उर्घा ले गये । उनके साथ देवदुर्ग लामा उनके निष्करूपमें गये थे ।

भयताररूपमें पूज्य पूर्विक धर्मोचार्यके जन्म

उनकी अपेक्षा हीनप्रभाव-सम्पन्न और भी कितने लामा-चार्या हैं। वे ज्योतिःशास्त्र वा देहान्तधारी कह कर पूजित हैं। इस श्रेणीके लामाचार्या तिब्बतमें ३०, उत्तर-मङ्गोलियामें १६, दक्षिण-मङ्गोलियामें ५७, कोकोनोरमें ३५, छियामदी ओर्जे छ्यनमें ५ और पेकिनमें १४ हैं। इन सब देहान्तरप्रविष्ट लामाके मध्य पश्चिम-तिब्बतके सेङ्छेन रिणपोछे, यङ्जिन-लो-प, विल्डुङ, लो-छेन, किय-जर-तिङ्गि, दे-छन-अलिंग, कडला और कोङ तथा खाम विभागमें तु, छम-दो दोर्जे आदि प्रधान हैं।

पेकिनके लामामण्डलकी तिब्बतीय भाषाओं छङ्क्य (शाष्य) कहते हैं तथा यहकि लामाचार्या रोल-पहीके अवताररूपमें पूजित हैं। सम्राट् कङ्ग-हि-के शासनकालमें १६६०से १७०० ई०के मध्य वे दैवशक्तिसम्पन्न हो गये थे। सम्राट् ने उन पर विश्वास कर उन्हें मध्य मङ्गोलियाका धर्माध्यक्ष पद प्रदान किया।

लदाकके अवतीर्ण लामागण कु पौ नामसे प्रसिद्ध हैं। यमदोक हृदयोरस्थ सङ्काराममें एक बौद्ध रमणीने धाचार्वाणिका पद पाया है। वे यज्ञवाराहीकी अवतार मानी जाती थी। मि० बोगल उनसे जा कर मिले थे।

लामाचार्यागण देहत्याग करनेके समय अपने अपने पुनर्जन्मका हाल बतला गये हैं। वे लोग किस प्राममें किस परिवारमें जन्म लेगे-यह भी कह दिया करते थे। किन्तु वर्तमान समयमें उस लामावतारका निर्वाचन और परीक्षा स्वतन्त्र प्रथासे की जाती है। मृत लामा-चार्या किस नामसे अवतीर्ण हो सकते हैं। पहले ११७ विशुद्धवेला लाला एकत्र हो उसका नाम निर्धारण कर लेते हैं। नामनिर्देश करते समय भजन और पूजन होता है। जितने पवित्र नाम उनके मनमें आते हैं उन्हीं वे एक एक कागजके टुकड़े पर लिख एक स्वर्णपात्रमें रख देते हैं। पीछे स्तोत्रगान करते करते ३१से ७१ दिन तक उसमेंसे एक एक कागज निकालते हैं। उन कागजोंके मध्य नव अवतारका नाम पाया जाता है। पेकिनराज 'न'डुडे'की मन्त्रिण्ययाणी पर विश्वास कर महालामा नियुक्त करते हैं। लामाचार्य की निर्वाचन-प्रणालीका गूढ़ रहस्य और उसके प्रकृत तत्त्वका मर्म-दुघाटन अनाद्यर्थक जान कर नहीं लिखा गया।

लामा ( हि० पु० ) घास खाने और पागुर करनेवाला एक जंतु। यह ऊँटकी तरहका होता है। आकारमें यह ऊँटसे कुछ मोटा होता है और इसकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता। यह दक्षिणी अमेरिकामें पाया जाता है। यह बहुत व्युपल, बलवान् और शीघ्रगामी होता है। इसे जब तक हरी घास मिलती है, तब तक पानीकी कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सब उगलियां अलग अलग होती हैं और प्रत्येक उगलीमें एक छोटा मजबूत खुर होता है। इसके रोए बहुत मुलायम होते हैं और इसकी जालका चरसा बहुत होता है, इसीलिए कुत्तोंकी सहायतासे इसका शिकार किया जाता है। जब कोई इसे छेड़ता है, तब यह उस पर धूक देता है जिसका कुछ विषैला प्रभाव होता है। जंगली दशामें इसे ग्वाना और पालतू दशामें लामा कहते हैं। लंबा देखो।

लामो ( हि० पु० ) एक प्रकारका फल। यह प्रायः डेढ़ बालिश लंबा होता है और दिह्लो तथा राजपूतानेकी ओर पाया जाता है। इसकी तरकारी बनार जाती है।

लायक ( अ० वि० ) १ उचित, ठीक, चाञ्चल। २ उपयुक्त, मुनासिब। ३ सुयोग्य, गुणवान्।

लायक ( सं० पु० ) संलग्न, जुड़ा हुआ।

लायकी ( अ० स्त्री० ) १ लायक होनेका भाव या धर्म। २ सुयोग्यता, काविलीयत।

लायची ( हि० स्त्री० ) रसायची देखो।

लायल ( अ० वि० ) राजभक्त।

लायलटी ( अ० स्त्री० ) राजभक्ति।

लार ( हि० स्त्री० ) १ वह पतला लसदार धूक जो कोई बहुत कटु है चीज खाने या मुंहमें कोई दवा आदि लगाने पर तारके रूपमें निकलता है। २ लासा, लुभाव। ३ कतार, पंक्ति। ( कि० वि० ) ४ साथ पीछे।

लारेन्स ( लार्ड Sir John Lawrence Bart. K. C. B )— भारतके एक अंगरेज-राजप्रतिनिधि। १८६३ ई०में लार्ड एलगिन ( Alexander Bruce, Earl of Elin and Kincardine ) की धर्मशास्त्रमें अक्रमात्त खुरपु हो जानेसे तथा ओहवी नामक मुगल-सम्प्रदायकी विद्रोहिता देख कर लण्डनकी मन्त्रिसभा दहल गई और उन्होंने महा मति सरदान लारेन्सको भारतके गवर्नर जनरल और

पाठ्यसूची बना कर भेजा। तदनुसार १८६४ ई० की १२वीं जनरलीको बन्द करनेमें आ कर उन्होंने राजस्वविभाग मार अपने हाथ लिया। भारतमें आ कर ही वे मन्थला नामि मानना भयमान देण कर कुछ निश्चिन्त हुए। क्योंकि उन समय चीनके आन्तर्जातिक युद्ध और पामीरस मुसलमानोंको विद्रोहिया अंगरेजोंके घाणित्यत्वाधर्म बाधा डाल रही थी। उसी सालके अक्टूबर मासमें उन्होंने लाहौरमें शरबार किया और ६ सौ राजाओंसे परिवृत्त हो भारत-राज्यमें क्रिमलें नागि स्थायिन हो उसका स्थाप कर दिया।

इस समय बंगाल-गवर्नमेंट भूदान जातिके उपद्रवसे तंग तंग आ गई थी। इन दुर्दृष्ट अंगरेजोंका धमन करनेके लक्ष्यमापसे इन्होंने मालकाष्ट, डाग्सफोर्ड, रिचार्डसन, गन, पिउ आदि सेनापतियोंके अधीन अङ्गरेज-सेनादलको भिन्न दिशासे भूदान पर आक्रमण करनेका हुक्म दे दिया। तदनुसार अङ्गरेजो-सेना भूदानको मोर बाँड़ पड़ी। नाना स्थानोंमें युद्ध करके भी भूदानवासों अङ्गरेज घाटियोंको परास्त न कर सके। चाँचिर उन्होंने अङ्गरेजोंसे सन्धि कर ली। अङ्गरेज राजने भूदानके देव-राजके जो सब प्रदेश भारत-सोमान्त्युक्त कर लिये थे उसके लिये थे भूदानपतिकी चार्जिक २५ हजार रुपये देनेकी राजी हुए। इससे रक्षककारी भूदान युद्धका अयसान हुआ।

इस समय १८६५ ई०में प्रधान सेनापति सर ए. रोसने पदत्याग किया। उस पद पर सर विलियम रोस-मार्मफिल्ड के, सी, यो, नियुक्त हुए। इन्होंने नरतद्रु, पञ्जाब, सिन्धु-विद्रोह और क्रिमियाके युद्धमें बड़ी वीरता दिखलाई थी।

उसी साल राजप्रतिनिधि लार्देसमें पञ्जाब और अयोध्याको प्रजाओंके हितसाधनमें कोई काम उठा न रमा थी। १८६६ ई०में उद्योगोंमें प्रदा दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। यह घोर घोर ४ मील लंबे और ७० मील चौड़े स्थानमें फैल गया। मद्रासके स्टार हालिने इस समय विशेष उदारताका परिचय दिया था। इस महामारीमें प्रायः ८ लाख आर्मी करानकरानके गानमें फँस गये थे। इस समय १८६७ ई०में महिपुरराजका राज्यधिकार

ले कर महिपुरमें जोधमाल गढ़ा हुआ। महिपुरराजके कई बर लार्ड डब्लोसी, वीनिङ्ग, पंचगिन और लार्देसमें पास नियेदन पत्र भेजा था। लार्देसमें बड़ी गैरिस्ता और सुदिमंताके साथ उसका भार भारत-मन्त्रि (Conservative Secretary of State for India) के हाथ सौंपा। भारत-मन्त्रिने महिपुरराजके उत्तरपुर-को राज्यका अधिकारी उदराया। उनके अधिकारकालमें मित्र और भाविनिनिया-युद्धमें भारतवर्षसे देनी गेता दल बहुत दूर पश्चिम भेजा गया था। उक्त वर्षके भारत-प्रतिनिधिने लगनऊ नगरमें एक राजद्वार बैठाया। उसमें यहाँके उत्तर पश्चिम भारतवासो मालुखार, जमींदार और अयोध्याके प्रजासाधारणने भारतवर्षसे विपरीतियाके प्रति सम्मान और अङ्गरेज-गवर्नमेंटके प्रति राजमार्कका धरम-निदर्शन दिखलाया था।

उसी साल कस्तुराजसेनापतियोंने मध्य-पश्चिमके बीधारा राज्यमें तथा उत्तरकेस्तान प्रदेशमें आ कर यहाँके अमोरेको आश्रय दिया था। अमोरेके लड़के विद्रोही प्रजाओंके साथ मिल कर विद्रोह-सन पर अधिकार करना चाहते थे। रिप्टु कुछ कर न सके, क्योंकि कस्तुराजसे अमोरेकी जामी मद्द मिलती थी। अपने राजदुकी मुद्रक कर अमोरेके कलकता-स्वरूप रसियनोंकी युनारामें स्थान दे दिया। भारतवर्षमें रसियनोंका विपजनक समय कर लार्ड-लार्देसमें अकगानपति और अङ्गरेजोंके मिल होकर महामन्दके पुत धेरअन्नीको बाबुलके मिहामन पर बिठाया। इस प्रकार ये अङ्गरेजजाति और राज्यकी भलाई करनेमें तैयार हो गये। कुछ समय बाद धेरअन्नी राज्यसे निकलने गये तथा एक अकगान-भारतपुरक कम-सेनादलमें भिन्न कर राज्य धामके लिये पदगत करने लगे। इस घोलमालके समय महामति लार्देसमें ही गैरिस्ताके साथ निरपेक्षाता अयन्धन किया था। उनकी इस निरपेक्षा राजप्रतिनिधि राजप्रतिनिधि लोग "an unmasterly in activity" कह कर बड़ी तारीफ करते हैं।

ये भारतवर्षमें प्रजाकी सुगुणिके लिये नदर करवा गये हैं। उन समय इन्होंने भारतवर्षमें हमारा नदर

काटनेका प्रस्ताव किया था, किन्तु राजकीयमें उतने रूपमें न रहनेके कारण वह प्रस्ताव स्थगित रहा। उनके आदेशसे भारतके गवर्नमेंट स्कूलोंमें वाइसिल-ग्रन्थ पाठ्य-पुस्तकरूपमें व्यवहृत हुआ था।

१८६६ ई०में वे भारतके प्रतिनिधिका पद छोड़ कर २७वीं मार्चको इंग्लैण्ड वापस आये। भारतसाम्राज्यीने उन्हें (Baron Lawrence of the Punjab and Grately, in the Country of Southampton), सर्वोदा तथा तरह तरहकी मान्यसूचक उपाधि और पारितोषिक दिया था। १८७८ ई० में उनका देहान्त हुआ।

लॉरेन्स (सर-हेनरी)—एक अंगरेज-सेनापति। इन्होंने गवर्नके समय अयोध्याके विद्रोहिदलके साथ युद्ध करके बड़ी वीरता दिखाई थी। लखनऊके अवरोधकालमें तथा चिनहुतके युद्धमें इन्होंने अंगरेजोंकी स्वार्थरक्षाके लिये आत्मोत्सर्ग कर दिया था। चिनहुतके युद्धमें विद्रोहिदलने जयलान कर रसिडेन्सी पर चढ़ाई कर दी। उन लोगोंका एक गोला हेनरी लॉरेन्सको कमरमें ऐसा लगा कि वे ४थी जुलाईको इस लोकसे चल बसे।

लार्कनौल—पश्चिमी बंगालके पहाड़ी प्रदेशमें रहनेवाली प्रसिद्ध कोलजातिकी एक शाला। ये बड़े दुर्द्धर्ष होते हैं। कोल देखो।

लार्काना—बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिन्धुप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २५ ५३' से २८' ३०" तथा देशा० ६७ ११' से ६८' ३३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५०६१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शंकर और अंपर सिन्धु प्रान्तियर डिप्टिक, पूर्वमें सिन्धु नदी, खैरपुर राज्य और हैदराबाद जिला, दक्षिणमें कराची जिला और पश्चिममें खोशर पर्यंतमाला है। हरकंवा लड़ाक जातिसे जो एक समय लार्काना उपविभागमें रहती थी, जिलेका नामकरण हुआ है।

इस जिलेकी प्राकृतिक शोभा उतनी विचित्रार्थक नहीं है। केवल सिन्धुनदी और पश्चिम नारायनदी तथा नारास गार घाट तकका भूभाग हमेशा हराभरा दिखाई देता है। दूसरे दूसरे स्थानकी जमीन उपर है। यहाँ बहुतसी महरें हैं, इस कारण खेती वारोंमें बड़ी सुविधा है। स्थानीय जमींदार और गवर्नमेंटसे वे सब नहरें कायी गई

हैं। उनमेंसे गवर्नमेंटकी नार नहर सबसे बड़ी है। उसकी लम्बाई ३० मील और चौड़ाई १०० फुट है।

इस जिलेका इतिहास शंकर और कराची जिलेके साथ मिला हुआ है। कलहोरा वंशमें जब आपसमें लड़ाई होती थी, तब एक ब्राह्मण-सुरदार मारा गया था। उसीके क्षतिपूरणस्वरूप लार्कानाका कुछ अंश उसके वंशधरको दिया गया। पीछे तालपुरीने उसे छोड़ कर अपने दुबलमें कर लिया। शाहशुजाके युद्धके बाद तालपुरके मीरोंमें लार्काना उपविभाग बंट गया। पीछे सिन्धु-विजयके साथ साथ यह जिला भी अंगरेजोंके हाथ लगा।

इस जिलेमें ५ शहर और ७०८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। मुसलमानकी संख्या सबसे ज्यादा है। सैकड़ों पीछे ६४ मनुष्य सिन्धी भाषा बोलते हैं। विद्याशिक्षामें इस प्रदेशके चौबीस जिलोंमें इसका स्थान इकौसवां आया है। अमी कुल मिला कर ६०० स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ८ अस्पताल हैं। स्थानीय प्राचीन कौत्सियोंके निदर्शनस्वरूप एक पुराना किला, शाहाल महमूद कलहोरा तथा उनके प्रधान मन्त्री शाहबहादुरका मकबरा विद्यमान है। शाहाल-महमूदके पीछे आदम शाह एक प्रसिद्ध फकीर थे। उनके वंशधरोंने एक समय सिन्धुप्रदेशका शासन किया था।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसमें लार्काना, लखदरिया, कम्बर और रतो दरो तालुक लगते हैं।

३ लार्काना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २७ २७ से २७ ४६' ३०" तथा देशा० ६८ १' से ६८ २८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६७ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें लारकाना नामक १ शहर और ७२ ग्राम लगते हैं। सिन्धु नदीके किनारे गेहूं बहुतायतसे उपजता है। आंगलमें आम और खजूरके पेड़ अनेक देखे जाते हैं।

४ लार्काना तालुकका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २७ ३३' ३०" तथा देशा० ६८ २६' पू० गार-नहरके बाएँ किनारे अवस्थित है। गिकारपुर शहरसे यह ४० मील दूर पड़ता है। इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मनोरम देखकर अंगरेज, क्षमण-



लाल आलू ( हि० पु० ) १ रतालू । २ अर्घई ।

लाल इलायची ( हि० खी० ) बड़ी इलायची ।

इलायची देखो ।

लाल उद्दीन—नजीवाबादके नवाबके भाई । ये १८५७ ई०के गद्दरमें शामिल थे । इसलिये १८५८ ई०के अप्रैल महीनेमें बृटिश-राजके विचाराधीन हुए ।

लालक ( सं० लि० ) १ लालनकारी, प्यार करनेवाला ।

( पु० ) २ एक हिन्दू राजा । इनके पौत्र हथिसिंहकी कन्यासे कलिङ्गराज खारखेल ( मिल्खुराज )ने विवाह किया ।

लालकङ्क—लाल रंगकी कङ्क जातिकी एक चिड़िया ।

लालकञ्चू ( हि० पु० ) गजकर्ण आलू, बंड ।

लाल कलमी ( हि० पु० ) चाँदनी या गुलचाँदनी नामका पीघा या उसका फूल ।

लाल कवि—१ एक भाषा-कवि । ये राजा छत्रसाल हाड़ा कोदेवालेके दरबारमें थे । जिस समय दाराशिकोह और औरङ्गजेब बादशाहोंके लिये आपसमें फतुहामें लड़ रहे थे और जिस युद्धमें राजा छत्रसाल आहत हुए थे, उस युद्धमें ये कवि मौजूद थे । इन्होंने नायिकामेदका 'विष्णु-विलास' नामक एक भाषाका ग्रन्थ भी बनाया है ।

२ एक कवि । इनका नाम बिहारीलाल था । ये जातिके ब्राह्मण थे और टिकमापुरमें रहते थे । इनका छाप नाम 'लाल कवि' था । ये सं० १८८५ में उरपर हुए थे और महाकवि मतिरामके वंशधरोंमें-से थे । ये ही अपने वंशके अन्तिम महाकवि कहे जा सकते हैं ।

३ बनारसके रहनेवाले एक भाट । ये काशीनरेश राजा चैतसिंहके दरबारमें रहते थे । इन्होंने नायिकामेद 'आनन्दरस' और सत्सईकी टीका 'लालचन्द्रिका' नामके दो ग्रन्थ बनाये हैं ।

४ एक भाषा-कवि । ये संस्कृत भाषा में जानते थे ।

इन्होंने ज्ञानषयनीतिका भाषान्तर किया ।

५ एक हिन्दूके विद्वान् । इनका पूरा नाम था लल्लू लाल जो । ये गुजराती थे परन्तु आगरामें रहते थे । संवत् १८९२में इनका जन्म हुआ था । कहते हैं, कि आधुनिक हिन्दूके यही आचार्य थे । इन्होंने संभाविलास, माधव-विलास, प्रेमसागर-धार्मिक, राजनीति आदि कई ग्रन्थ बनाये हैं ।

लालकीन ( हि० पु० ) नानकीन देखो ।

लालकुमारी—दिल्लीके बादशाह जहाङ्गिर शाहकी एक प्रियतमा रखेली । नाँचेनेवालीके गर्भसे इसका जन्म हुआ । जवानीमें भी लालकुमारी वेश्याकी तरह मंह-फिल आदिमें नाचती गाती थी । इसकी सुरीली तान और रूपलायण पर मुग्ध हो कर जहाङ्गिरने इस पर आत्मजीवन समर्पण कर दिया । उसीके अनुग्रहसे यह वेश्या राजकुलान्तराजमें गिनी जान लगी और उसका वंश राजपुरखर्चसे बढ़ा आदर पाने लगा । यहाँ तक, कि बहुत समय लालकुमारीके स्वजन उमरावोंका अनादर कर बेरोक-टोक सब काम करते थे ।

लाल खाँ—भारतके एक प्रसिद्ध गवैये । ये दिल्लीभर अकबर शाह और जहांगीर बादशाहके दरबारमें रहते थे । १६०६ ई०में इन्होंने इहलोला संवरण को ।

लालखानी—उत्तर-पश्चिम भारतवासो एक मुसलमान-सम्प्रदाय । ये पहले राजपूत थे, पीछे इस्लामधर्म ग्रहण करने पर अपने सरदार लाल खाँके नामानुसार लालखानी नामसे परिचित हुए ।

ये अपनेको राजपूतानेके अन्तर्गत राजाओंके बड़े गुजरवंशीय ठाकुर-सामन्त कुमार प्रतापसिंहका वंशधर मानते हैं । कुमार प्रतापसिंहने मेशाड़की लड़ाईमें दिल्ली-भर पृथ्वीराजकी सहायता की । युद्धमें जाते समय उन्हींने रास्तेमें मोना जातिका विद्रोह दमन करनेके लिये कैला और अलीगढ़में डोर-राज्यका साहाय्य किया था, इसलिये राजाने खुशाल राजकन्या उनको ब्याह दो और उन्हें बुलन्द-शहरके आस पासके १५० गाँव पुरस्कार या दहेजमें दिये । उक्त प्रतापसिंहसे ग्यारह पीढ़ों बाद लालसिंहने जन्म लिया । मुगल-सम्राट् अकबर शाहने लालसिंहकी वीरता और राजभक्ति पर प्रसन्न हो कर उन्हें खानकी उपाधि दी । उसी समयसे यह राजवंश लालखानी नामसे परिचित हुआ । लाल खाँके पौत्र इतिमद राय मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबके समय इस्लामधर्ममें दक्षित हुए । इतिमद रायसे सात पीढ़ों नीचे नदरअली खाँ और उनके भतीजे दून्दे खाने बुलन्दशहरके कुमोना दुर्गमें रह कर अङ्गरेज-सेनासे युद्ध किया था । उन्हींने पीछे अपना अपना अधिष्ठत प्रदेश दुर्गादिसे सुरक्षित कर

रखा। मद्रास राजने बादमें यह सम्पत्ति मन्दीरमें रखा गया। इस मन्दीरके एक शक्तिपीठ है। भग्नीपितामो, पद्माम्बीर धर्मपुर आदि स्थानोंमें यह सामन्तपंजा बड़ी प्रतिष्ठाके साथ काम करते हैं। ये आज भी अपनी हिन्दू-मतांश मूले नहीं हैं। कुमार और ठाकुरानी उपाधि तथा विवाह-कार्यमें हिन्दू पद्धति आज भी इनमें चलती है। छिन्नमय्या-नाम्नपंजा इस समय गौड़ा मुसलमान होनेका उद्योग कर रहे हैं।

बदनेरे इन्हें भी मुसलमान नामसे भी पुकारते हैं। इनका भाषा-र शब्दार्थ हिन्दू और मुसलमान दोनों का है। ये इस नामधर्यामें शिक्षित ठाकुरपंजाको छोड़ कर और किसीके साथ पुत्र-कन्याका भादान प्रदान नहीं करते। विवाहके समय कुन्डमवादा और गोलादि पर विशेष लक्ष्य रखते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु संस्कार मुसलमानों का है। विवाहमें कान्ती पुरोहिताई करने दी तथा जयदेव दूकानाई जाते हैं। कोई भी कजमा नहीं पढ़ते। ये हिन्दू-देवदेवोंकी भी पूजा करते हैं।

सातगञ्ज—मुम्बईनगर जिलेकी दाजोपुर तहसीलका एक नगर और वाणिज्यकेन्द्र। यह ११३० २५ ५२ उ० तथा देगा० ८५ १० पू०के मध्य गण्डकके पूर्वी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। यहाँसे बम्बई, तेल्हम, भगान, सोरा आदि स्थानोंकी रपतनी होती है। नगरसे एक मील दक्षिण त्रिम गञ्जघाटसे माल-भस-बाब नाव पर लाया जाता है यह बम्बईघाट कहलाता है। सातगञ्ज—मुम्बईनगरके गोवर्धनपुर जिलास्ततमें एक छोटा नगर। यह कृष्णानु नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है। गारनपुर-सैनानियासमें मुन्डानपुर नामका राजा इसी नगर हो कर गया है। यहाँ एक सुन्दर बाजार है।

सातगञ्ज—मुम्बईनगरके मिर्जापुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह ११३० २५ १ उ० तथा देगा० ८२ २५ पू०के मध्य गण्डकके उत्तरपंजाके ताराघाट पहाड़ पर अवस्थित है। समुद्रको तहमें इसकी ऊँचाई ५०० फुट है। यहाँ एक बाजार है।

सातगञ्ज—मपील्यानके शब्दरानी जिलेकी, इसमें ताराघाट एक नगर। यह ११३० २५ १ उ० तथा देगा०

८१ ० पू०के मध्य पड़ता है। इस नगरके पास ही एक झरनेमें दो दिन हाट लगती है। पहले यहाँ नहराली मन्दर था। १८७६ ई०में यह झरनी नगर उठ कर बना था।

सातगञ्ज—दिनाजपुर जिलास्ततमें एक गण्डकवासी एक प्राचीन परोक्षधाम है।

(भूविष्य० इत्यादि १२३१)

सातगञ्ज—उड़ीसा प्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह जयपुर सामन्तराज्यके उत्तर (अक्षा० १५ ३५ उ० तथा देगा० ८१ १८ पू०)से निकल कर जयपुर और विजा-गावटम जिलेके बीच हो कर बहती हुई बंगालको (अक्षा० १८ १२ उ० तथा देगा० ८४ पू०) साड़ीमें आ गिती है। सातगिरिघर—एक भाषा कवि। ये वैद्यवारेके रहनेवाले प्रामाण्य थे। इनका जन्म-संवत् १८०७ में हुआ था। इन्होंने नायिकाभेदका एक ग्रन्थ बनाया जिसे नायांक कवि उत्तम समझते हैं।

सातगुली—बम्बई प्रदेशके चेलापुर उपविभागका एक प्रसिद्ध भूतना। चेलापुर नगरसे ८ मील उत्तर काशी नदी प्रायः ३०० फुट ऊँचाई परितो है। इस भूतनेके पास एक प्राचीन दुर्ग है। कहते हैं, कि गौड़-नरदार लोग दुर्गमें प्रान्त या कीर्तियोंकी दुर्गकी उत्तरे इस गमीर जन्म-धारामें कैं करे थे।

सातगुण—उत्तर भारतमें रहनेवाली भंगी जातिके एक प्रजाति केवला। ये राजसूत भादप्य किरात नामसे परिचित हैं।

सातगोत्र—मुम्बईनगरके जिलास्ततमें एक बड़ा गाँव। यह पद्मानदीके किनारे अवस्थित है और एक वाणिज्यकेन्द्रमें गिना जाता है।

सातगुण—भारतका एक पदासी जाति। अन्तर्गत वेले। सातधर्म (दि० पु०) एक प्रकारका धर्म। इसका पेश करने छोटा होता है और मीरू प्रांत तथा भारतीमें बहुत पालते पाया जाता है। इसके ऊपरकी लकड़ी मन्दि और दीरकी लकड़ी कुछ कालापन विधि लात होती है। इसे हल ही लात और अन्धी सुमेव निहनती

ये घर लाताया जाता है। एकवन्दन उचरते देती।

लालच (हि० पु०) कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करनेकी इतनी अधिक और ऐसा कामना जो कुछ मही और वेदंगी हो, कोई चीज पानेकी बहुत बुरी तरह इच्छा करना, लोभ।

लाल चक्रवी (हि० पु०) मैसा।

लालचन्द्र—एक भाषा-कवि। कवित्त और कण्डलिया छन्दोंमें इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कृतमय होती थी।

लालचन्द्र (सं० पु०) भाषालालावतीके प्रणेता।

लालचाँच (हि० पु०) शुक, तोता।

लालचाँद—उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इन्होंने फारसीमें एक दीवान बनाया। १८५२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

लालची (हि० वि०) जिसे बहुत अधिक लालच हो, लोभी।

लालचीता (हि० पु०) लाल फूलका चित्रक या चीता। चीता देखो।

लालचीनी (हि० पु०) एक प्रकारका कवूतर। इसका सारा शरीर सफेद और शिर पर लाल छिद्रकियां होती हैं।

लालटेन (हि० स्त्री०) किसी प्रकारका वह घाना आदि जिसमें तेलका खजाना और जलानेके लिये बत्ती लगी रहती है। इसके चारों ओर तेज हवा और पानी आदिसे बचानेके लिये शीशा या इसी प्रकारका और कोई पारदर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाशके लिये ऐसे स्थानों पर होता है जहाँ या तो प्रकाशकी प्रायः एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता होती है या ऐसा जगह स्थायिरूपसे रखनेके लिये होता है, जहाँ चारों ओर हवा भाँया करता है। इसे कंडील भी कहते हैं।

लालड़ी (हि० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका भगाना। यह प्रायः नर्धों और बालियों आदिमें मोतीके दोनों ओर लगाया जाता है।

लालदङ्ग—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २६ ५२ उ० तथा देशा० ७८ २३ पू०के बीच पड़ता है। यहाँ १७७४ ई०में रोहिल्ला-सरदार फ़ैजुल्ला खाने तेलुनाकी लड़ाईमें अंगरेजोंसे हार खा

कर भाग्य लिया था। अंगरेज और अचोघ्याराजकी सेनाने जब इनका पीछा किया, तो इन्होंने कोई उपाय न देख यहाँ अंगरेजोंसे सन्धि कर ली थी।

लालदरवाजा—उत्तर पश्चिम प्रदेशके सहारनपुर और देहरादुन जिलेकी मध्यवर्ती शिवालिक गिरिमालाका एक गिरिपथ। यह समुद्रकी तलसे २६३५ फुट ऊँचा है और अक्षा० ३३ १३ उ० तथा देशा० ७७ ५८ पू०के बीच पड़ता है।

लालदरवाजा—मुंगेरसे बहुत समीप गंगाके तट पर अवस्थित एक रेलवे स्टेशन। यहाँसे मुंगेर कचहरी प्रायः एक मील दूर पड़ती है। गंगा पार करनेके लिये यहाँ जहाज भी लगता है।

लालदाना (हि० पु०) लाल रंगका पीस्तेका दाना, लाल बसबस।

लालदास—अलवारवासी में भोजातिके एक साधु। ये लालदासी नामक वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे तथा १५४० ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कुछ दिन तक पौलीपुर, बङ्गाली और गुरगाँव जिलेके जोड़ी गाँवमें जा कर अपना मत प्रचार किया। बन्दोलीमें रहते समय इनके एक पुत्रकी मृत्यु हो गई। वहाँ उसका संस्कार किया गया। १६४८ ई०में जब इनकी मृत्यु हुई, उस समय इनके एक पुत्र और एक बन्धा जीवित थे।

लालन (सं० स्त्री०) लल-णिच्-न्युट्। अत्यन्त स्नेह करना, प्रेमपूर्वक बालकोंका आदर करना, लाड।

लालन (हि० पु०) १. प्रिय, प्यारा बच्चा। २. कुमार, बालक। (स्त्री०) ३. चिठौजी, पियाल।

लालनपालन (सं० स्त्री०) यत्नपूर्वक प्रतिपालन, भरण-पोषण।

लालनीय (सं० लि०) लल-णिच्-अनीपरं। लालन करनेके योग्य, डुलार या प्यार करनेके लायक।

लालपानी (हि० पु०) शराब, मद्य।

लालपिलका (हि० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कवूतर। इसकी दुम और डेने सफेद होते हैं।

लालपुर—पूरुगिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५ २६ उ० तथा देशा० ८७ २० पू०के मध्य अवस्थित है। पूरुगिया नगरसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें पड़ता है।

रमा। अङ्गरेय राजने बादमें यह सम्पत्ति अयोध्यामें गयी।  
 कामक इस यज्ञके एक स्थितिमें दे दी। अयोध्यामें,  
 पद्मासु कीर धर्मपुर आदि स्थानोंमें यह सामन्तवर्ग बहुत  
 प्रतिष्ठानके साथ काम करते हैं। ये आज भी अपनी दिव्य-  
 मयोंवा भूजे नहीं हैं। कुमार और आकुरवनी उपाधि तथा  
 विद्या-कर्मोंमें दिव्य परति आज भी इनमें चलती है।  
 चित्तवो-जाकार्यन इस समय गीता मुसलमान होनेका  
 उद्योग कर रहे हैं।

बहुतेरे इन्हें भी मुसलमान नामसे भी पुकारते हैं।  
 इनका माघार व्यवहार दिव्य और मुसलमान दोनों का  
 है। ये इसनामधर्ममें दीक्षित आकुरवनीको छोड़ कर  
 और किसीके साथ पुत्र-कन्याका शासन प्रदान नहीं  
 करते। विवाहके समय कुलमंत्रादि और गीतादि पर  
 विशेष लक्ष्य रखते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु संस्कार  
 मुसलमानों का है। विवाहमें कामी पुतोंदितार्थ करते हैं  
 तथा जयदेव इत्यादि आते हैं। कोई भी कठमा नहीं  
 पढ़ते। ये दिव्य-देवदेवोंकी भी पूजा करते हैं।

साहयग—मुक्तपुरके जिलेकी हाजीपुर तहसीलका एक  
 नगर और धर्मपुरके सद। यह २५० २५ ५२ उ० तथा  
 देशां ८५ १० पू०के मध्य गण्डकके पूर्वी किनारे भय-  
 क्षिप्त है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। यहाँसे  
 चमड़े, तेलहन, अनाज, सोरा आदि प्रयोगोंकी उपजती होती  
 है। नगरमें एक मीन दखिन जिन गण्डपाटसे माल-भस-  
 ताव नाव पर लाया जाता है यह बसांतगाट कहलाता है।

साहयग—मुक्तपुरके गोरखपुर जिलेमें स्थित एक छोटा  
 नगर। यह पुराना नामक एक छोटी नदीके किनारे  
 भवस्थित है। गोरखपुर-सेवानियामसे सुलतानपुर  
 जामेका शाखा इसी नगर हो कर गया है। यहाँ एक  
 सुन्दर बाजार है।

साहयग—मुक्तपुरके गोरखपुर जिलेमें स्थित एक नगर  
 यह २५० २२ १ उ० तथा देशां ८२ २५ पू०के  
 मध्य गण्डक उपनदीके तारापाट पहाड़ पर भवस्थित  
 है। गण्डकी तटमें इसकी ऊँचाई ५२४ फुट है। यहाँ  
 एक बाजार है।

साहयग—अयोध्याके जिलेकी, इन्दी  
 तहसीलका एक नगर। यह २५० २३ ३ उ० तथा देशां

८१ ० पू०के मध्य पड़ता है। विद्यया धन आदि प्राण  
 हर्षमें ही दिन हाट लगती है। कामना जो कुछ मदी  
 मन्दर था। १८७१ ई०में यह इतनी बहुत बुरी तरह इच्छा  
 भाया है।

साहयग—दिनासपुर जिलेमें स्थित।  
 एक प्राचीन परीस्थान है। कविता और पण्डितिया  
 (भिक्षु) हैं। इनकी कविता

साहयग—उड़ीसा प्रदेशमें प्रया  
 जयपुर सामन्तराज्यके उत्तर (शैलावतीके प्रजेता।  
 देशां ८२ १८ पू० में निकल पीता।  
 गापटम जिलेके बीच हो कर बहती है।  
 १८ १२ उ० तथा देशां ८४ ५०) होयान बनाया। १८५२ ई०  
 साहयगिधर—एक भाषा कवि।

प्राप्तय थे। इनका जन्म-संवत् ३ बहुत अधिक साहय  
 इन्होंने सायिकामेदका एक साथ बना  
 उत्तम समर्थते हैं।

साहयगनी—इसमें प्रदेशके (५०) साहयगनी जिलेका  
 प्रसिद्ध नगर। शैलापुर नगरसे प्रकारका फूलार। इसका  
 नदी प्रायः ३०० फुट ऊँचाई गिरती है पर साहयगनी जिलेका  
 एक प्राचीन नगर है। कहे हैं, कि इसी प्रकारका यह साहय  
 उदात्त शत्रु या कियोंकी दुर्गकी छतमें कीर जलानेके लिये  
 धारामें फेंकते थे।

साहयग—उत्तर भारतमें रहनेवाली भी  
 पूजन देवता। ये साहय भारतमें प्रसिद्ध  
 परिचित है।

साहयग—मुंबईशाखा जिलेमें स्थित एक  
 पुरानेकी किनारे भवस्थित है और एक वा  
 गिता जाता है।

साहयग—भारतकी एक पहाड़ी जगति।  
 साहयग (दि० पु०) एक प्रकारका  
 कर्म छोटा होता है और मीरु प्रायः  
 यत्न पाया जाता है। इसके ऊपरकी  
 होरकी लकड़ी कुछ कालापन लिये साहय  
 पिन्नेमें रहन हो लाने रंग और अर्थात्  
 है। यह भी कर्मकी तरह मदी पर लगाने  
 विशेष विचार रखकर

लालच (हि० पु०) कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करनेकी इतनी अधिक और ऐसा कामना जो कुछ भरी और भेद भी हो, कोई चीज पानेकी बहुत बुरी तरह इच्छा करना, लोभ।

लाल चकवी (हि० पु०) मैसा।

लालचन्द—एक भाषा-कवि। कविता और कुण्डलिया छन्दोंमें इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कृतमय होती थी।

लालचन्द्र (सं० पु०) भाषालालावतीके प्रणेता।

लालचाँच (हि० पु०) शुक, तोता।

लालचाँद—उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इन्होंने फारसीमें एक दीवान बनाया। १८५२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

लालची (हि० वि०) जिसे बहुत अधिक लालच हो, लोभी।

लालचीता (हि० पु०) लाल फूलका चित्रक या चीता। चीता देखो।

लालचीनी (हि० पु०) एक प्रकारका कपूर। इसका सारा शरीर सफेद और शिर पर लाल छिद्रकियाँ होती हैं।

लालटेन (हि० स्त्री०) किसी प्रकारका वह खाना आदि जिसमें तेलका खजाना और जलानेके लिये बत्ती लगी रहती है। इसके चारों ओर तेल हुआ और पानी आदिसे बचानेके लिये शीशा या इसी प्रकारका और कोई पारदर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाशके लिये ऐसे स्थानों पर होता है जहाँ या तो प्रकाशकी प्रायः एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता होती है या ऐसा जगह स्थायिरूपसे रहनेके लिये होता है, जहाँ चारों ओर हवा भाया करती है। इसे कंडील भी कहते हैं।

लालड़ी (हि० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका भागीना। यह प्रायः नर्तियों और बालियों आदिमें मोतीके दोनों ओर लगाया जाता है।

लालदुर्ग—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलाम्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २६ ५२ उ० तथा देशा० ७८ २३ पू०के बीच पड़ता है। यहाँ १७७४ ई०में रोहिल्ला-सर्वदार फौजुल्ला खाने तैतुनाकी लड़ाईमें अंगरेजोंसे हार खा

कर बाध्य लिया था। अंगरेज और अयोध्याराजकी सेनाने जब इनका पीछा किया, तो इन्होंने कोई उपाय न देख यहाँ अंगरेजोंसे सन्धि कर ली थी।

लालदरवाजा—उत्तर पश्चिम प्रदेशके सहारनपुर और देहरादुन जिलेकी मध्यबर्ची शिवालिक गिरिमालाका एक गिरिपथ। यह समुद्रकी तहसे २६३५ फुट ऊँचा है और अक्षा० ३३ १३ उ० तथा देशा० ७७ ५८ पू०के बीच पड़ता है।

लालदरवाजा—मुँगेरसे बहुत समीप गंगाके तट पर अवस्थित एक रेलवे स्टेशन। यहाँसे मुँगेर कचहरी प्रायः एक मील दूर पड़ती है। गंगा पार करनेके लिये यहाँ जहाज भी लगता है।

लालदीना (हि० पु०) लाल रंगका पोस्तेका दाना, लाल खसखस।

लालदास—अलवारवासी मेभोजातिके एक साधु। ये लालदासी नामक वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे तथा १५४० ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कुछ दिन तक धौलीपुर, बँडोली और गुरगाँव जिलेके डोड़ी गाँवमें जा कर अपना मत प्रचार किया। बन्दोलीमें रहते समय इनके एक पुत्रकी मृत्यु हो गई। यहाँ उसका संस्कार किया गया। १६४८ ई०में जब इनकी मृत्यु हुई, उस समय इनके एक पुत्र और एक कन्या जीवित थी।

लालन (सं० स्त्री०) लल-णिच्-ल्युट्। अत्यन्त स्नेह करना, प्रमत्तक बालकोंका आदर करना, लाड़।

लालन (हि० पु०) १. प्रिय, प्यारा बच्चा। २. कुमार, बालक। (स्त्री०) ३. चिरींजी, पियाल।

लालनपालन (सं० स्त्री०) यत्नपूर्वक प्रतिपालन, भरण-पोषण।

लालनीय (सं० त्रि०) लल-णिच्-अनीयर्। लालन करनेके योग्य, हुलार या प्यार करनेके लायक।

लालपानी (हि० पु०) शराब, मद्य।

लालपिलका (हि० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कपूर। इसकी दुग और डैने सफेद होते हैं।

लालपुर—पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५ २६ उ० तथा देशा० ८७ २० पू०के मध्य अवस्थित है। पूर्णिया नगरसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें पड़ता है।

रवा । यहूदक राजने बादमें यह मन्थलि भन्नामर्दत गा । नामक इन बंदाके एक खासिकी दे हो । भन्नी छिनापी, पद्दारु और धर्मपुर आदि स्थानोंमें यह नाममन्थन बड़ी प्रतिष्ठाके साथ धार्य करते हैं । ये आज भी भयभी दिष्टुः मर्वादा भूते नहीं हैं । कुमार और ठाकुरानी उपाधि तथा विषाद-कासीमें दिष्टुः पञ्चति साह्र भी इनमें चलती हैं । छिनापी-नाम्नार्थन इन समय गोदा मुसलमान होनेका उद्योग कर रहे हैं ।

बहुतेरे इन्हें भी मुसलमान नामसे भी पुकारते हैं । इनका भाष्यर व्यवहार दिष्टुः और मुसलमान दोनों ग्या है । ये इनकामधर्ममें दक्षिण ठाकुरगणको छोड़ कर और किसीके साथ पुन-कल्याण भावान प्रदान नहीं करते । विषादके समय कुलमर्वादा और गोवादि पर विशेष लक्ष्य रखते हैं । विषाद, जन्म और मृत्यु संस्कार मुसलमानों ग्या है । विषादमें कासी पुरोहितानें करते हैं तथा नमस्कार तकनाई जाती है । कोई भी फतमा नहीं पड़ते । ये दिष्टु-देवदेवोकी भी पूजा करते हैं ।

लाहलगढ़—मुसलमानपुर जिलेकी हाजोपुर सहसोयका एक नगर और पार्लयकेन्द्र । यह १११० २५ ५२ उ० तथा देगा० ८५ १० पू०के मध्य गण्डकके पूर्वी किनारे अवस्थित है । जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है । यहाँसे बगधे, तोल्हन, अनास, सोरा आदि प्रणाली स्थितनी होती है । नगरमें एक मीन दक्षिण जिस गण्डपाटसे माल-भार-बाह साथ पर लाया जाता है यह बसुन्तपाट कहलाता है ।

मानसून—मुसलमानके गोदालपुर जिलाभर्तगत एक छोटा नगर । यह बघानू नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है । गोदालपुर-सैनानियाममें सुलनामपुर जालेका राहना इसी नगर ही कर गया है । यहाँ एक सुन्दर बाजार है ।

मानसून—मुसलमानके मिर्जापुर जिलेके अस्तगत एक नगर । यह १११० २५ १ उ० तथा देगा० ८२ २५ पू०के मध्य गण्डकके उत्तरपाट पहाड़ पर अवस्थित है । मनुदको महर्षे इनकी ऊँचाई ५०० फुट है । यहाँ एक बाजार है ।

मानसून—मध्याह्न-उद्देनके रावबोली जिलेकी, इरानी गण्डकीका एक नगर । यह १११० २६ १ उ० तथा देगा०

८१ ० पू०के मध्य पड़ता है । इस नगरके पास ही एक हार्नमें दो दिन हाट लगती है । यहाँके यहां लहसुनेकी मद्ध था । १८७१ ई०में यह इरानी नगर उठ कर बना भाया है ।

मानसून—दिनाजपुर जिलाभर्तगत एक गण्डवाण । यहाँ एक प्रान्तीय परीषदाण है ।

( मन्थन० मध्य० पन्ना १२५ )

लाहलगढ़—उद्देना प्रदेशमें प्रपादित एक नदी । यह जयपुर सामन्तराज्यके उत्तर ( १११० १५ ३५ उ० तथा देगा० ८२ १८ पू० )से निकल कर जयपुर और विना-गापटम जिलेके बीच हो कर बहती हुई धंगालको ( १११० १८ १२ उ० तथा देगा० ८७ ५० ) साझीमें आ गिरी है ।

लाहलगिरिघर—एक भाषा कवि । ये पैसवारके रहनेवाले ब्राह्मण थे । इनका जन्म-संवत् १८०० में हुआ था । इन्होंने साविकामेधका एक ग्रन्थ बनाया जिसे भाषाके कवि उत्तम समझते हैं ।

लाहलगुली—बम्बई प्रदेशके गेहापुर उपविभागका एक प्रसिद्ध भरना । गेहापुर नगरसे ८ मील उत्तर वाली नदी प्रायः ३०० फुट ऊँचाई गिरती है । इस भरनेके पास एक प्राचीन दुर्ग है । कहते हैं, कि गीह-नारदार मोग दुर्गसत गुरु या फीदियोंकी दुर्गकी छतमें इस गनीर जल-धारासे फेकते थे ।

लाहलगुल—उत्तर भारतमें रहनेवाली मीठी जालिने एक पूजित देवता । ये ब्राह्मण भारणव-किराण नामकी परिचित हैं ।

लाहलाण्ड—मुर्शिदाबाद जिलाभर्तगत एक बड़ा गाँव । यह पद्मनदीके किनारे अवस्थित है और एक वाणिज्य केन्द्रमें गिना जाता है ।

लाहलू—आसामकी एक गढ़ाड़ी जालि । मन्थन के । मानसून ( दि० पु० ) एक प्रकारका बंदन । इसका वेद कर्मों छोटा होता है और मीसूर प्रायः तथा मकरमें बर्षा पतनमें पाया जाता है । इनके ऊपरकी सफ़ी मर्कट और हीरकी सफ़ी कुछ कालात्म लिये खान होती है । इन्हीं विषयमें बहुत ही ज्ञान रीत और अच्छी सुनेय विद्वानों है । यह भी बंधनके तरह मर्षे पर लगाया जाता है । विशेष विषय १११०२२२ बन्धने ईपे ।

लालच ( हि० पु० ) कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करनेकी इतनी अधिक और ऐसी कामना जो कुछ मही और बेह मी हो, कोई चीज पानेकी बहुत धुरी तरह इच्छा करना, लोभ।

लाल चक्रवी ( हि० पु० ) मैसा।

लालचन्द्र - एक भाषा-कवि। कविच और कुण्डलिया छन्दोंमें इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कृष्ण्य होती थी।

लालचन्द्र ( सं० पु० ) मांवालीलायतकी प्रणेता।

लालचर्व ( हि० पु० ) शुक, तोता।

लालचौद - उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इन्होंने फारसीमें एक दीवान बनाया। १८५२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

लालची ( हि० वि० ) जिसे बहुत अधिक लालच हो, लोभी।

लालचीता ( हि० पु० ) लाल फूलका चिबक या चीता। चीता देखो।

लालचीनी ( हि० पु० ) एक प्रकारका कचूर। इसका सारा शरीर सफेद और शिर पर लाल छिद्रियां होती हैं।

लालटेन ( हि० स्त्री० ) किसी प्रकारका वह लाना आदि जिसमें तेलका खजाना और जलानेके लिये बत्ती लगा रहती है। इसके चारों ओर तेल जवा और पानी आदिसे बचानेके लिये शीशा या इसी प्रकारका और कोई पारदर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाशके लिये ऐसे स्थानों पर होता है जहां या तो प्रकाशको प्रायः एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता होती है या ऐसी जगह स्थायित्वसे रखनेके लिये होता है, जहां चारों ओर हवा आया करती है। इसे कंबल भी कहते हैं।

लालही ( हि० पु० ) लाल रंगका एक प्रकारका भंगोना। यह प्रायः त्यों और बालियों आदिमें मोतीके दोनों ओर लगाया जाता है।

लालपुर - पुचप्रदेशके विजनीर जिलांतर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २६° ५२' ३०" तथा देशा० ७९° २३' ५०" के बीच पड़ता है। यहाँ १७९९ ई०में रोहिल्ला-सदर के कब्जे में आया था।

कर भाग्य लिया था। अंगरेज और अयोध्याराजकी सेनाने जब इनका पीछा किया, तो इन्होंने कोई उपाय न देख यहाँ अंगरेजोंसे सन्धि कर ली थी।

लालपुरराजा - उत्तर पश्चिम प्रदेशके सहारनपुर और देहरादुन जिलेकी मध्यवर्ती शिवालिक गिरिमालाका एक गिरिपथ। यह समुद्रको तहसे २६३५ फुट ऊँचा है और अक्षा० ३३° १३' ३०" तथा देशा० ७९° ५८' ५०" के बीच पड़ता है।

लालदरवाजा - मुंगेरसे बहुत समीप गंगाके तटे पर अवस्थित एक रेलवे स्टेशन। यहाँसे मुंगेर कवहरी प्रायः एक मील दूर पड़ती है। गंगा पार करनेके लिये यहाँ जहाज भी लगता है।

लालदाना ( हि० पु० ) लाल रंगका पोस्तेका दाना, लाल बसबस।

लालदास - अलवारवासी मेओजातिके एक साधु। ये लालदासी नामक वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे तथा १५४० ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कुछ दिन तक धौलीपुट, बजौली और मुरगाँव जिलेके झीड़ी गाँवमें जा कर अपना मत प्रचार किया। बन्दोलीमें रहते समय इनके एक पुत्रकी मृत्यु हो गई। वहीं उसका संस्कार किया गया। १६४८ ई०में जब इनकी मृत्यु हुई, उस समय इनके एक पुत्र और एक बन्धा जीवित थे।

लालन ( सं० स्त्री० ) लल-णिच्-च्युट्। मरयत् स्नेह करना, प्रेमपूर्वक बालकोंका आदर करना, लाड़।

लालन ( हि० पु० ) १ प्रिय, प्यारा बच्चा। २ कुमार, बालक। ( स्त्री० ) ३ चिरींजी, पिपाल।

लालनपालन ( सं० स्त्री० ) यत्नपूर्वक प्रतिपालन, सरण-पोषण।

लालनीय ( सं० स्त्री० ) लल-णिच्-अनीयर्त्। लालन करनेके योग्य, दुलार या प्यार करनेके लायक।

लालपानी ( हि० पु० ) शराब, मद्य।

लालविलका ( हि० पु० ) लाल रंगका एक प्रकारका कचूर।

इसकी दुम और डैने सफेद होते हैं। लालपुर - पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा २५° २६' ३०" तथा देशा० ८९° २०' ५०" के मध्य में है। पूर्णिया नगरसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें





गाड़नेसे पहले ये पांच बखसे उसे ढक देते हैं। दोनों बाहुके नीचे दो शमाल बांध देने, म-तक एक गमछेम ढक देते और पीछे एक बखसावा चा गमछा पहना कर जमीनमें गाड़ देते हैं। अतन्तर कन्नको मिट्टीसे भर कर उसके ऊपर एक चादर दिछा देते हैं। उसका नाम 'फूलची चादर' है। उस चादरके चार कोनोंमें चार अंगरकें लकड़ी गाड़ते और आग लगा कर उसे भस्म-गाम् कर देते हैं। इसके बाद मुसलमानोंकी संस्कार-प्रथासे ही सभी काम होता है। मृत्युके बाद चार दिन मृत व्यक्तिके घरमें किसी प्रकारकी रोगनी या भाग नहीं जलाई जाती। इन दिनों वे पट्टोन वा किसी आत्मोयके घर भोजनादि करते हैं। पांचवें दिन मृतके घरके सामने एक धाल सुपारी रख कर फूलसे ढक देते हैं तथा उसी दिन स्वजातीय भोज होता है।

ये लोग हिन्दूके अनेक पर्वोंका पालन करते हैं तथा अनेक विषयोंमें हिन्दूकी आचारपरम्परा अनुसरण कर कार्य करते हैं। बीवाली और होली पर्व ये लोग बड़ी धूमधामसे करते हैं। इम दिन ये लोग अपने आदि-पुरुष लालवेगके उद्देश्यसे मिट्टीकी एक पांच गुम्बजवाली मस-जिद् या मकबरा बनाते हैं, उसके सामने मुर्गीकी बलि-दी जाती तथा उसके नाम पर पोलाच, शिरनी और मिष्ठान चढ़ाया जाता है।

पैनिहासिक इतिहासका कहना है, कि इनके उपास्य आदिपुरुष वा कुलदेवता लालवेग शायद उत्तर पश्चिम भारतीय लालमुघ (राक्षस आरण्य किरात) होंगे। किन्तु चाराणसीवासी लालवेगी पौर जहरनी ही (चिस्तिवा साधु लैवद शाह जुदुर) लालवेग मागतो है। पञ्जाबके कमार जिस प्रकार हज़रत दाऊद और रङ्कर पौर अली रंगरेजकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार वहाँके मेहलर लालपौर वा बाबा फरीरकी उपाराना दिया करते हैं। ज्ञानगुरु देखो।

लालवेगी इस्लामधर्ममें दीक्षित होनेके बाद ही किसी मुसलमान साधुको अपना वंशप्रवर्धक मानते आ रहे हैं। उत्तर-भारतसे ये लोग नौकरोकी खोजमें बङ्गाल आ कर बस गये हैं।

लालवेगी—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक नदी।

लालमरेडा ( हिं० पु० ) एक प्रकारका छोटा भाड़। यह भारतक गाम प्रान्तोंमें उत्पन्न होता है। इसके पीछों-से तेल निकलता है जो गडियाके रोगमें दाम धाता है। इसको उँदरबीबी भी कहते हैं।

लालमणि—प्रश्नसुधाकार और मुहूर्तदर्पणके प्रणेता।

लालमणि त्रिपाठी—परिभाषागिरोमणि और विद्या-कौमुदी नामक व्याकरणके प्रणेता।

लालमणि भट्टाचार्य—निर्णयसारके रचयिता।

लालमणि हाट—रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक नगर और प्रसिद्ध बाण्डिय स्थान। यहाँ पटसन, तमाकू आदि द्रव्य बहुत परिमाणमें बेचनेके लिये लाया जाता है।

लालमन ( हिं० पु० ) १ श्रोत्राण। २ एक प्रकारका तोता। (म. १) मारा शरीर लाल, सँगे देने, चीं च मुथावे और दुम काळा होनी है।

लालमाई—बङ्गालके पार्श्वत्य त्रिपुरा जिलेके अन्तर्गत एक शील। यह कुमिह्ला नगरसे २ मील पश्चिम और उत्तर-दक्षिणमें १० मील विस्तृत है। इस शीलश्रेणीकी ऊँचाई कही भी १०० फुटसे अधिक न होगी। इसका अधिकांश स्थान गगीर वनमालासे-समाच्छन्न है। यहाँ लोहे और चाँदीकी खान है। अङ्गरेज-गवर्मेण्टने २१ हजार रुपयेमें मैनामती और लालमाई शीलकी त्रिपुराराजके हाथ बेच दिया है। इस शीलशिखर पर जङ्गलारूढ-स्थानमें एक प्राचीन दुर्ग और कुछ परधरकी प्रतिमूर्त्तियाँ पड़ी हैं। भास्कर-खोदित पत्थरके चित्तोंमें नाम और बराहमूर्त्ति देण कर यूरोपीयगण अनुमान करते हैं, कि ये सब ध्वस्त निदर्शन पर्वतवासी असम्भव अहिन्दू जातिकी कीर्त्तियाँ हैं। किन्तु त्रिपुरा राजधानी कुमिह्लाके इनने समीप रहनेसे यह स्पष्ट अनुमान किया जाना है, कि यह त्रिपुरा-राजवंशके किसी प्राचीन राजाकी ही कीर्त्ति, मूर्त्ति शैवनाम और बराह अवतारके प्रतिपादक हैं। भारतवर्षसे बहुत दूर पूत्य पार्श्वत्य विभागमें जय पहले पहल हिन्दूधर्म फैला, तब ही शायद वह दुर्ग और देवालप आदि बने होंगे। त्रिपुरामें वैष्णवधर्मकी प्रतिष्ठामें शाकधर्मका विलोप हुआ। मालूम होता है, उसी समय त्रिपुरावासीने शक्ति उपासनाके उस पूत्य स्थानकी छोड़ दिया और धीरे धीरे यही जंगलसे दूर गया है।



१६वीं सदी में यूरोप में पहले पहल लालमिर्चकी खेती हुई। वहाँके लोगोका कहना है, कि उसके परवर्त्तिकालमें भारतवर्षमें उरकी आमदनी हुई थी। जयपद पुर्वीगोज-नाविकगण वेष्ट-इण्डजने भारतीय द्वीपोंमें और पीछे भारतवर्षमें लाये होंगे, परन्तु यह विश्व स नहीं होता। क्योंकि जो हिन्दू एक समय सुमत्रा, जावा, बालो और लङ्का आदि द्वीपोंमें उपनिवेश स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे, वे क्या अमेरिकाके निरुदयत्तों मद्दालङ्का द्वीपजात 'लङ्का' नामक यह उद्भिज्ज भारतवर्षमें नहीं लाये होंगे ? गोलमिर्चकी तरह कटु जान कर उस समयके प्रन्धकारोंने अपने अपने ग्रन्थमें उसे 'मरिच' जातिके अन्तर्भुक्त कर लिया था। अधिक सम्भव है, कि गोलमिर्चकी तरह मद्द-गुण-सम्पन्न न होनेके कारण उसका उतना आदर नहीं था। यही कारण है, कि वैद्यक ग्रन्थमें कुमारिच नामसे उसका उल्लेख देला जाना है। लङ्काद्वीपमें उद्वपन्न होनेके कारण इसका लङ्का या लालमिर्च नाम हुआ है। आयुष्यशास्त्रमें इसका गुण—कोषण, विदाहो, अश्वृत्तिकर, अम्लकर, गुग्गुनाक और विष्टम्भी बताया है।

मरिच शब्द देखो।

ऊपरमें लालमिर्चके जातिविभागका उल्लेख किया गया है। अङ्गरेजोंमें जिसको Red Pepper कहते हैं उगका वैज्ञानिक नाम Capsicum annum है। C. hutescens नामक इसकी एक और जाति है। अङ्गरेजोंमें इसे Chilly, Goat pepper, Cayenne pepper, Spur pepper कहते हैं। इस जातिको मिर्च उपरोक्त श्रेणियों छोटी होती है। बङ्गाल और उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें इसको गालमिर्च कहते हैं। किन्तु हिमालयप्रदेशमें यह "बसानी", मलयालममें "चवे-लोभ्यक चोना मरिच और लक्ष्मिग" जिङ्गापुरमें "वास मरिच" नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिण अमेरिका, बंगाल, उडुप्या और मद्राज प्रदेशमें इस जातिकी लालमिर्च बहुतायतसे उपजती है। इसकी सूर्यमुखी मिर्च भी कहते हैं। C. grossum श्रेणीकी लालमिर्च बङ्गाल तथा भारतवर्षके अल्पान्य देशोंमें कमरना वा काफ़ी मिर्च नामसे मशहूर है। यह बहुत तिक्त होती है। लूक इस जातिकी मिर्चकी खेती नहीं करते। किसी किसी उद्यानमें श्रीकोन लोग

इस लालमिर्चकी लगाने हैं। इसके फलोंका रंग सिन्दूरके समान गाढ़ा लाल होता है। इसकी कड़ी उम्रता देख कर मसाले अथवा वाञ्छनादिके साथ नहीं खाते। यूरोपीयगण अकसर छट्टे अचारमें अथवा उसके थोपे निमाल उसमें मसाला भर कर भिनिगारमें डुबो रखते हैं। C. minimum वा C. fastigiatum घानकी तरह छोटी होती है, इस कारण इसको घानीमिर्च कहते हैं। इसके अत्रावा घेर वा घटफालकी जैसी लाल और गोल एक और प्रकारकी लालमिर्च देखी जाती है। चन्द्रमणि नामक छोटी लालमिर्चकी एक और श्रेणी है।

कच्चे, पक्के, सूखे और अचारमें डुबोई हुई सभी प्रकारकी लालमिर्च लोग खाते हैं। तरकारी आदिको भाल करने तथा अचारादिकी गंध बढ़ानेके लिये लालमिर्चका व्यवहार अधिक होता है। बङ्गालमें मिर्चके काढ़ेसे भोलोगुड़की तरह एक प्रकारकी वस्तु बनाते हैं। इसका स्वाद तीता होता है। इङ्ग्लैण्डमें भी लालमिर्चवा यथेष्ट आदर है। सूखी लालमिर्चकी टैकोमें कूट कर अथवा जांतेमें पोस कर पीछे कपड़ेमें छान दोतलमें रखते यह चूर्ण नहीं विगड़ता। कारि पाउडरके साथ उस चूर्णका व्यवहार होता है।

वैद्यकग्रन्थमें लालमिर्चकी कु-नरिच कहा है। यह दोषण, अग्निकर और बलवर्द्धक है। वेदनायुक्त स्थानमें यह मिर्च पोस कर प्रलेप करनेसे यह स्थान लाल हो उठता और पीछे वेदना जाती रहती है। गलेकी घंटी बढ़ने अथवा जीमके तलेमें दाँटा पड़नेसे वहाँ लालमिर्चका घिन् दे, भारी उपकार होगा। सामयिक वा दूषित गलक्षतरोगमें इसके सिद्ध क्रिये हुए अलसे कुह्नी करनेसे वेदनाका नाश होता है। चोना और कतीराके साथ ला मिर्चका लोडिक्स बना कर सेवन करनेसे स्वप्नङ्ग-दोष दूर होता है। गायक और वक्ताओंको यह लोलिङ्ग बहुत प्य है। यह मलेरिया-नाशक और गलगण्ड-निवारक माना गया है। कुत्ते अथवा साँपके काटे हुए स्थानमें लालमिर्चको पोस कर प्रलेप करनेसे विपनाज होता है। मदाव्यपयोग (Delirium Tremens) २० घंटे सेवन करनेसे बहुत उपकार होता है। गरक्षत्रमें एक बोट जलमें ४ ग्राम लालमिर्च सिद्ध कर यह जल लगानेसे



अक्सर ही इस पवित्र तीर्थको देखने धाया करते हैं।  
सर्वीकी धारणा है, कि १३५६ ई०में उक्त मकबरा बना  
था। १६३६ ई०में तर्जान राजवंशीय मीर्जा जानोने इस  
साधुके उद्देश्यसे एक और बड़ा मकबरा बनवाया।  
सिन्धुराज भीर करमभली लालापुरने इसका शर और  
चूडका मुख्य चान्दीके पत्तरसे मढ़वा दिया। इस मक-  
बरेमें शरवी-भाषामें लिखा एक गिलाफाउक है।

लालसिंह—एक मिया-सरदार। ये रावी चान्दुमारोके  
प्रियपाल थे। इस कारण राजमरकारमें इनको मोटी  
अच्छो जम भई थी। राजा जवाहिर सिंहके परलोक  
सिंघारने पर १८६४ ई०में ये ही प्रधान मन्त्री हुए।  
मिवाही-विद्रोहके पहले ये कुछ समयके लिये आगरामें  
नजरबंद थे।

लालसिंह—एक प्रसिद्ध उद्योगियी।  
लालसिरा ( हिं० खी० ) एक प्रकारकी वस्त्र जिसका  
सिर लाल होता है।

लालमीक ( सं० खी० ) पिन्डिल, गिलगिला।  
लाला ( सं० खी० ) लल-णिच् अच् टाप्। मुगलन जल,  
मुँहसे निकलनेवाली लार, धूक। पर्याय—खुणिका,  
स्फन्दिनी, द्रागिका, खणिका, मुखस्राव। ( राजनी० )

लाला ( हिं० पु० ) १ एक प्रकारका संबोधन। इसका  
व्यवहार किसीका नाम लेते समय उसके प्रति अद्भुत  
दिल्लानेके लिये किया जाता है, महाशय। इस शब्दका  
व्यवहार प्रायः पश्चिममें खत्रियों और वनियों आदिके  
लिये अधिकतासे होता है। २ कायस्थ जाति या  
कायस्थोंका सूचक एक शब्द। ३ छोटे प्रिय वस्तुके लिये  
संबोधन, प्रिय आदि विशेषतः बालक। ( वि० ) ४ लाल  
रंगका। लाल देखो।

लाला ( फा० पु० ) पौरतावा लाल रंगका फूल। इसमें  
प्रायः काली परसकस पैदा होती है। इसे गुलेलाला भी  
बहते हैं।

लाला जयनारायण—चण्डीकाव्य और हरिलीलाके प्रणेता।  
ये लाला रामप्रसादके पुत्र थे। रामप्रसाद देखो।

लालाट ( सं० लि० ) ललाट-सम्बन्धीय।

लालाटि ( सं० पु० ) ललाटका मोतापत्य।

लालाटिक ( सं० लि० ) ललाटं पश्यतीति ललाट

( वंश्यां ललाटकुट्टो पश्यति । पा ४।४।४६ ) इति ठक् ।  
१ प्रभुका कपालदर्शी, कार्यक्षम। २ ललाट सम्बन्धीय।  
( पु० ) ३ आश्लेषणविशेष, मिलावट।

लालाटी ( सं० खी० ) ललाट।

लालाडाकुर—आह्निकसंक्षेपके रचयिता धामदेवके प्रति-  
पालक।

लालापाठक—एक भाषा-तथि। ये रुकुम नगरमें रहने  
थे। इनका जन्म सं० १८३१में हुआ था। इन्होंने 'दालि-  
होत' नामक भाषाकी एक उत्तम पुस्तक लिखी।

लालाप्रसेद ( सं० पु० ) लावालेह देखो।

लालाबाबू—एक प्रसिद्ध बङ्गाली-साधु और परम वैष्णव।  
मुर्शिदाबाद जिलेके फार्मी नगरके सुप्रसिद्ध उत्तर-राढीय  
कायरण जमींदार। इष्टवृष्णके वंशमें इनका जन्म हुआ।  
कलकत्तेके उत्तर पाइपाडा प्रायमें उन लोगोंका एक  
वासभवन है। इस कारण ये लोग पाइपाडाके राजा  
कहलाते हैं। लालाबाबू अतुल-देश्यके अधिराजि थे। पर-  
दुःखसे दुःखित हो वे खुले हाथ दान दिया करते थे, इन  
कारण लोगोंने उनका लालाबाबू नाम रखा था। उनके  
पितामह दीवान गङ्गागोविन्द सिंह भारतप्रतिनिधि वारेन  
हेस्टिङ्गके शासनकालमें इष्ट-गण्डिया वम्पनीके दीवान  
थे। गङ्गागोविन्दके पुत्र प्राणहरण ( पीछे दीवान, ने  
अपने बड़े भाई राधाकान्त ( बङ्गेश्वर नयाय सिराज  
उद्दीलाके प्रधान राजस्व संग्राहक ) की देख रेखमें रह कर  
विरय-कर्ममें विशेष दक्षतालाभ किया था। वे पितृ-  
सम्पत्तिके अधिकारी हो उदारताका वषेष्ट परिचय दे  
गये ।

इन्होंने महानुभवके पुत्र लक्षणचन्द्र सिंह उर्फ लाला  
बाबू थे। ये पिताके सद्गुणशाली थे। प्रथम जोधनमें ये  
वर्द्धमान और बटकरीत बलकुटीके दीवान हुए थे। पीछे  
उनकी विपद-वृत्त्या धीरे धीरे घुफनी गई। सुना जाना  
है कि एक दिन शामकी वे अपने महलके ऊपर रहल  
रहे थे। इसी समय एक घोड़िन जो पास ही में रहनी थी,  
जोरसे चिल्ला उठी, "सूर्यास्त हो चला, वासना ( केल्लेहा  
डिलका ) में धाम लगा दो।" यह बात सुन कर साधकके  
प्राण चमक उठे। उन्होंने दह नहीं समझा, कि घोड़िन  
राधके लिये वासना या केल्लेके डिलकेकी जलाना









परिश्रमके कारण उक्त वर्षके अन्तमें आपका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। इतने पर भी जब भारतवर्षकी दुरवस्थाका विवरण इंग्लैण्डमें साधारणकी जतानेकी बात छिड़ी, तब मि० गोबले और आप जाने पर उद्यत हुए थे। वहाँ जा कर बहुत जगहोंमें आपने अपने देशकी दुःख-बहानी कह सुनाई। सुनते ही वहाँके सभी लेबर, डेमोक्रेटिक और सोसैलिस्ट आपके पक्षमें हो गये। फिर वहाँसे यूरोपके अनेक स्थानोंमें और अमेरिका गये। आपके जानेका उद्देश्य एकमात्र वहाँकी शिक्षाप्रणालीको देखना था। वहाँसे पुनः इंग्लैण्ड लौट आये और मि० गोबलेके साथ मिल कर बहुत से राजनैतिक कार्य किये। यूरोप और अमेरिकामें भ्रमण करनेसे आपको वहाँकी अवस्थाके साथ भारतवर्षकी अवस्थाकी तुलना करने का सुयोग मिला। उन देशोंमें उस समय राजनैतिक क्षमताके लिये प्रजाओं और गवर्नमेंटके बीच आन्दोलन चल रहा था, लेकिन भारतमें उसका कुछ भी नामो निशान न था। पाश्चात्य सम्प्रदाया लक्षण यह था, कि जिस देशकी गवर्नमेंट होगी, उस देशके आश्मियोंके लिये उस देशके आश्मियों द्वारा शासनतन्त्र बनाया जायगा। प्रजातान्त्रिक इंग्लैण्ड, राजतान्त्रिक जर्मनी, यथेच्छाचार तांत्रिक रूस और साधारण तांत्रिक फ्रान्स सब मुझकोमैं एक ही लक्षण दिखाई पड़ता था। जब कोई गवर्नमेंट प्रजाके विरुद्ध काम करती थी, तब प्रजा सब मिल कर उस गवर्नमेंटकी धड़ल कर नई गवर्नमेंट स्थापित करती थी।

१९०७ के दिसम्बर महीनेमें सूरतमें जो निखिल भारतवर्षीय स्वदेशी सम्मेलन हुआ था, उसमें आपने कहा था, — 'सम्मिलित भारतका धर्म एक ही स्वदेशी होना चाहिये।' उनको बफ्तता स्वाभाविकमें पढ़ कर सर थो, इवेटसन आदि सिविलियन उनको राजविद्रोही मानते थे और लाड्ड मारलोका ब्याल था, कि लाला लाजपत रायके मातहत बहुत-सी बागो सेनाएं मौजूद हैं, समय पड़ने पर ये सरकारके विरुद्ध उठ खड़ी होंगी। लेकिन सचमुच आप राजविद्रोही नहीं थे। आप कहते थे, कि विद्रोहका मार्ग बहुत खराब है। मैं यह नहीं चाहता। आपको उम्मीद था, कि मिट्टेके सरल, श्याल

और न्यायपर अधिवासी भारतवासीका दुःख सुन कर उनका दुःख छुड़ानेके लिये चेष्टा करेंगे। लेकिन पीछे मालूम हुआ, कि वे लोग आगेका गुण थो धैरे हैं।

लालाजीकी बफ्ततासे गवर्नमेंट इतना डर गई थी, कि प्रजापके लाट सर डि, इवेटसनने भारतके बड़े लाट लाड्ड मिंटो और सेक्रेटरी आय स्टेट लाड्ड मारलोसे सलाह कर १८१८ ई०के रेगुलेशन तीनके अनुसार आपको गिरफ्तार करके बिना विचार किये ही गुप्त कैदखानेमें डाल दिया था। क्योंकि, उनका ब्याल था, कि लालाजीकी कैद करनेसे प्रजाबमें शांति रहेगी, पर इनका फल उलटा ही निकाला। शांतिके बदले समूचे भारतमें अशांति फैल गई।

आपका विश्वास था, कि गवर्नमेंटके मदद पहुंचानेसे भारतवासी एक जाति नहीं हो सकते हैं और न उनके दबावसे भारतीयोंकी उत्तेजना घट सकती है। आपका उपदेश यह था, कि भारतीयोंका एकमात्र धर्म स्वदेशीय ही होना चाहिये और उसीके लिये उन्हें जीना और मरना चाहिये।

लालाजीने हिन्दू समाज-संस्कार करनेके लिये बड़ी चेष्टा की थी। आप कहते थे, कि मुसलमानों और क्रिस्तानियोंकी हिन्दू बनानेका कुछ प्रयोजन नहीं है। हिन्दुओंके पुराने शास्त्र और वर्तमान अवस्थाके अनुसार समाज-संस्कार करके सबको एकान्त्र करना चाहिये। आप राजनैतिक या सामाजिक परिवर्तन इंग्लैण्डके अनुसार नहीं चाहते थे। भारतकी अवस्थानुसार जैसे-जैसे चक सकता है आप वैसा ही परिवर्तन चाहते थे।

१९०६ ई०में कलकत्ता-एडिजेशन नेशनल कांग्रेसके आप समावृत्ति नियुक्त हुए थे। उस समय आपने कहा था, — होनहार तथा बूढ़े मनुष्योंकी बात माननी-चाहिये, शरीर होना उचित नहीं। हिन्दू, मुसलमान और पारसी लोगोंके लिये यह एक बुरा दिन होगा जबकि वे लोग अपना बाल-चलन छोड़ यूरोपीयोंका अनुसरण करेंगे।

आप बहुत-सी स्कून्-पुस्तकें लिख गये हैं, जिनमें १८-वी तथा भारतके अनेक देशभक्तों और शवतार तथा धर्मप्रचारकोंका चरित लिखा है। आप भारत, यूरोप

लोकभ्युदय (सं० पु०) लोकस्य अभ्युदयः । लोकसमूह-  
का अभ्युदय, जनताको उन्नति ।

लोकायत (सं० क्लो०) लोकेषु आयतं विस्तोर्णमिव ।  
१ चार्वाकशास्त्र । इस दर्शनमें परलोक या परीक्षवाद्का  
खण्डन है । २ वह मनुष्य जो इस लोकके अतिरिक्त  
दूसरे लोकको न मानता हो । ३ किसी किसीके मतसे  
'दुर्मिल' नामक छन्दका एक नाम ।

लोकायतन (सं० पु०) १ चार्वाक । २ जो चार्वाकके  
नास्तिक मतका अनुसरण करता हो ।

लोकायतिक (सं० पु०) लोकायतं शास्त्रमस्त्यस्येति,  
लोकायत-उत्त्वं । १ चार्वाक । २ बौद्धमेद । ये लोग  
नास्तिक लोकायतके मतानुसार चलते हैं, इसीसे इनका  
लोकायतिक नाम पड़ा है ।

लोकायन (सं० पु०) नारायण ।

लोकालोक (सं० पु०) लोकयतेऽसौ इति लोकः, न लोकयते-  
ऽसौ इति आलोकः ततः कर्मधारयः । स्वनामधेयात् पर्यत  
विशेष । पर्याय—चक्रवाड । यह पर्वत सावित्रीया  
पृथिवीको घेरन कर प्राकारकी तरह खड़ा है । इस पर्वत-  
के किसी स्थानमें सूर्यालोक दिखाई देता है और किसी  
स्थानमें नहीं दिखाई देता है । इसलिये इसका लोका-  
लोक नाम पड़ा है ।

इस पर्वतका विषय देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा  
है—भगवान्ने नारदसे कहा था, 'नारद! शुद्धसागरके चर  
पर लोकालोक नामक पर्वत है । यह पर्वत लोक (प्रकाश-  
मान) और अलोक (अप्रकाशमान) इन दो स्थानोंके  
विभागके लिये कल्पित हुआ है इस कारण इसका लोका-  
लोक नाम पड़ा है । मानसोत्तर और मेरु दोनोंके मध्य-  
वर्ती समस्त भूभाग सुवर्णमय और दर्पणको तरह निर्मल  
है । यहाँ देवनाके छोड़ और कोई प्राणी नहीं रहता ।  
यहाँ जो कुछ वस्तु रखी जाती है, वह सेना हो जाती  
है । यही कारण है, कि यहाँ कोई नहीं आता । परमेश्वरने  
उस पर्वतको तीन लोकके सीमास्थानमें रखा है । सूर्य  
प्रभृति भ्रुवावधि उद्योतिप्रान्त प्रदेशको किरणें उसीके  
अधीन तोनों लोकमें जाती है । कभी भी उसे  
छोड़ कर बाहर नहीं निकल सकता । यह पर्वत  
इतना ऊँचा और विस्तृत है, कि प्रशंको गति उतनी

दूर जनि नहीं पाती । ऋषिगण इस लोकालोकका  
परिमाण पचास कोटि योजन इस भूमण्डलका चतुर्थांश  
वतलाते हैं । आत्मयोनि प्रह्लाने इस पर्वतके ऊपर चारों  
ओर ऋषभ, पुष्पकूट, वामन और अपराजित नामक चार  
दिग्गज स्थापन किये हैं । ये सब दिग्गज सारे संसार-  
की रक्षा करते हैं । भगवान् हरि इस स्थानमें सभी  
लोगोंको भलाईके लिये निरांशसम्भूत दिक्पालोंके योग्य  
सख्यगुण और ऐश्वर्यकी वृद्धि कर विष्वक्सेनादि अनु-  
चरोंके साथ चतुर्भुज मूर्त्तिमें विराजित हैं । सनातन  
विष्णु अपने मायारचित विश्वको रक्षाके लिये कल्पान्त-  
काल तक इस मूर्त्तिमें अवस्थान करते हैं ।

( देवीभाग० पृ१४ अ० )

लोकालोक (सं० क्लो०) जगत्की भलाई चाहना ।

लोकान् (सं० लि०) १ लोकप्रस, स्वर्गोय । (पु०)  
२ लोकपति । ३ जगद्वासिमात्र । इस अर्थमें केवल षड्-  
वचनका ही प्रयोग होता है ।

लोकेश (सं० पु०) लोकानामोशः । १ प्रह्ला । २ बुद्धमेद ।  
३ पारद, पारा । ४ इन्द्र । ५ लोकपाल । ६ लोकाधि-  
पति ।

लोकेशकर—तत्त्वदीपिका या तत्त्वबोधिनी नामक रामा-  
श्रमरुत त्रिदान्तचन्द्रिकाकी टीकाके रचयिता । इनके  
पिताका नाम क्षेमङ्कर था ।

लोकेशप्रभाव्यय (सं० लि०) लोकपालगणसे उद्भूत  
और उसीसे प्रतिनिवृत्त ।

लोकेश्वर (सं० पु०) लोकानामेश्वरः । १ बुद्धदेव ।  
२ लोकका प्रभु । ३ लोकपाल ।

लोकेश्वरात्मजा (सं० स्त्री०) लोकेश्वरस्य बुद्धस्य आत्म-  
जा । बुद्धशक्तिमेद । पर्याय—तारा, महाश्री, शोङ्कार  
स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा,  
खट्वरवासिनी, मद्रा, वैश्या, नीलसरस्वती, शङ्खिनी,  
महातारा, वसुधारा, धनन्दा, त्रिलोचना, लोचना ।

लोकेशि (सं० स्त्री०) इष्टिमेद ।

लोकैकवन्धु (सं० पु०) लोकानां एक एव वन्धुः ।  
गौतम बुद्ध या शाक्यमुनि ।

लोकैपणा (सं० स्त्री०) १ स्वर्गप्राप्तिको इच्छा, स्वर्ग-सुख-

लोककण्ड (सं० पु०) तमालवृक्ष ।

लोककथाः (सं० स्त्री०) दैनिक चरता ।

लोककथिति (सं० स्त्री०) १ प्रचलित पद्धति । २ जाग-  
निक नियम ।

लोककण्डू (सं० लि०) लोकाग्नि देवो ।

लोककण्डू (सं० लि०) जगत्कृती भलाई चाहनेवाला ।

लोककर्मिणी (दि० स्त्री०) एक प्रकारकी हन्दी ।

लोकदार (दि० वि०) लोकको हरण करनेवाला, संसार-  
का नष्ट करनेवाला ।

लोकदास्य (सं० लि०) १ जगत्का दास्यास्यद् । २ जन-  
साधारणका उपहास्य ।

लोकहित (सं० लि०) लोकस्य हितः । १ जनताका मङ्गल  
चाहनेवाला । (स्त्री०) २ जनताकी भलाई ।

लोकहित (सं० स्त्री०) १ तुल्याञ्जन । २ कुन्धी ।

लोकिकाज्ञ (सं० पु०) १ आकाश, शून्यस्थान । २ जैन  
मतानुसार विभ्व जिसमें सब प्रकारके जीव और तत्त्व  
रहते हैं ।

लोकिकि (सं० पु०) आचार्यदेव । मनुसंहिताका ३११६०  
टीकामें कुल्लूकभट्टने इनका उल्लेख किया है ।

लोकिकि—दाशिणात्यके फाशिपुर-निवासी चितकेतुके  
पुत्र । रामोपासनेके बाद ये राजधानीका परित्याग कर  
भीरील पर रहते थे । "महाजनः येन गतः स पश्चात्" यह  
नामिवाचय उनके जीवनका मूलमंत्र था । ये उपोषित,  
स्मृति और मन्त्र ग्रन्थ लिख गये हैं । लोकाग्नि देवो ।

लोकाग्नि—लोकाग्निका एक नाम । लोकाग्नि देवो ।

लोकाचार (सं० पु०) लोकस्य आचारः । जनसमुदायका  
साधारण, लोकप्रचारा । जनसाधारण जिस आचार-  
परमिति अनुसार चलते हैं, उसे लोकाचार कहते हैं ।

अनेक स्थानोंमें लोकाचार शास्त्रवत् मास्य है ।

लोकाचार्य—अष्टाशतमस्त-प्राच्य, तत्त्वज्ञ और पञ्च-  
भूषणटीकाके प्रणेता । लोकाचार्यसिद्धान्त नामक  
वेदान्त ग्रन्थ इत्यादि कताया हुआ मालूम होता है ।

लोकान्त (दि० पु०) एक प्रकारका पीथा । इसके पसे  
तपे और नुकीले होते हैं, तें दूके पसोंसे बहुत कुछ मिलते  
पुत्रों हैं, पर तें दूके कुछ बढ़े होते हैं । इसका पेश बीस  
पसोंम हाथसे अधिक ऊँचा नहीं होता । इसके पैरमें

फागुन चैतके महीनेमें मंजरियां लगती हैं और बड़े  
बेरके बराबर फल लगते हैं । यह फल पकने पर पीले  
होते हैं और पानेमें प्रायः मीठे, मुदार और स्वादिष्ट होते  
हैं । सद्वारनपुरमें लोकान्त बहुत अच्छा और मोठा उत्पन्न  
होता है । यह फल चीन और जापान देशका है और  
यहाँसे भारतवर्षमें आया है ।

लोकातिग (सं० पु०) १ असामान्य, मामूली । २ अज्ञत,  
अज्ञा । ३ साधारण नियमसे बाहर ।

लोकातिशय (सं० पु०) १ लोकातिग देवो । २ दैनिक प्रथा-  
से बाहर ।

लोकात्मन् (सं० पु०) १ जगत्कृती आत्मा । २ विष्णु ।

लोकादि (सं० पु०) जगत्सृष्टिके आदिकर्ता, प्रजा ।

लोकाधिप (सं० पु०) लोकस्य अधिपः । १ लोकपाल ।  
२ देवतामास । ३ नरपति । ४ बुद्ध ।

लोकाधिपति (सं० पु०) १ लोकपाल । २ देवता ।

लोकानन्द—किरातार्जुनीय टीकाके प्रणेता ।

लोकाना (दि० लि०) फेंकना, उछालना ।

लोकानुग्रह (सं० पु०) १ जगत्का मङ्गल, संसारकी  
भलाई । २ प्रजापति की उन्नति । ३ जनसाधारणके प्रति  
अनुकम्पा ।

लोकानुसंग (सं० पु०) जनसाधारणके प्रति स्नेह या  
दया ।

लोकान्तर (सं० स्त्री०) भन्वन् लोकं । परलोक, यह  
लोक जहाँ मरने पर जाया जाता है ।

लोकान्तर (सं० लि०) लोकान्तरं याति गच्छति या  
लोकान्तर गम यः । १ मृत, मरा हुआ । २ लोकान्तर-  
गामी, परलोक जानेवाला ।

लोकान्तरिक (सं० लि०) दोनों लोकके बीच बगमेशाना ।

लोकान्तरित (सं० लि०) १ जो इस लोकसे दूसरे लोकमें  
चला गया हो । २ मृत, मरा हुआ ।

लोकापवाद (सं० पु०) लोकके अपवादः । जनापवाद,  
लोकनिन्द ।

लोकामिमांषिन (सं० लि०) सत्यप्यापी ।

लोकामिमांषित (सं० लि०) १ जगदाग्निपति । (पु०)  
२ बुद्धदेव ।

लोकाभ्युदय (सं० पु०) लोकस्य अभ्युदयः । लोकसम्बद्धा अभ्युदय, जनताको उन्नति ।

लोकायत (सं० क्ली०) लोकेषु आयतं विस्तोर्णमित्य ।  
१ चार्वाकशास्त्र । इस दर्शनमें परलोक या परोक्षवादका खण्डन है । २ वह मनुष्य जो इस लोकके अतिरिक्त दूसरे लोकको न मानता हो । ३ किसी किसीके मतसे दुर्मिल नामक छन्दका एक नाम ।

लोकायतन (सं० पु०) १ चार्वाक । २ जो चार्वाकके नास्तिक मतका अनुसरण करता हो ।

लोकायतिक (सं० पु०) लोकायतं शास्त्रमस्त्यस्येति, लोकायत-ठन् । १ चार्वाक । २ वीरभेद । ये लोग नास्तिक लोकायतके मतानुसार चलते हैं, इसीसे इनका लोकायतिक नाम पड़ा है ।

लोकायन (सं० पु०) नारायण ।

लोकालोक (सं० पु०) लोषयतेऽस्ती इति लोकः, न लोषयतेऽस्ती इति आलोकः ततः कर्मधारयः । स्वनामस्थायत पर्यत विशेष । पर्याय—चक्रवाड । यह पर्यत सावित्रीका पृथिवीको घेष्टन कर प्राकारको तरह खड़ा है । इस पर्यतके किसी स्थानमें सूर्यालोक दिखाई देता है और किसी स्थानमें नहीं दिखाई देता है । इसलिये इसका लोकालोक नाम पड़ा है ।

इस पर्यतका विषय देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा है—भगवान्ने नारदसे कहा था, 'नारद! शुद्धसागरके चर पर लोकालोक नामक पर्यत है । यह पर्यत लोक (प्रकाशमान) और अलोक (अप्रकाशमान) इन दो स्थानोंके विभागके लिये कल्पित हुआ है इस कारण इसका लोका लोक नाम पड़ा है । मानसोत्तर और मेरु दोनोंके मध्यवर्ती समस्त भूभाग सुवर्णमय और वर्णको तरह निर्मल है । वहाँ देवताको छोड़ और कोई प्राणी नहीं रहता । वहाँ जो कुछ वस्तु रहती है, यह सेना हो जाती है । यही कारण है, कि वहाँ कोई नहीं जाता । परमेश्वरने उस पर्यतको तीन लोकके सीमास्थानमें रखा है । सूर्य प्रभृति भूवायुधियेतिमान् प्रदोको किरणें उसीके अधीन तोनों लोकमें जाती हैं । कभी भी उल्टे छोड़ कर बाहर नहीं निकल सक्तो । यह पर्यत इतना ऊँचा और विस्तृत है, कि प्रदोको गति उतनी

दूर जाने नहीं पातो । ऋषिगण इस लोकालोकका परिमाण पचास कोटि योजन इस भूमण्डलका चतुर्धा शतलगत हैं । आत्मयोगिन् प्रह्लाने इस पर्यतके ऊपर चारों ओर ऋषम, पुण्यचूड, चामन और अपराजित नामक चार दिग्गज स्थापन किये हैं । ये सब दिग्गज सारे संसारकी रक्षा करते हैं । भगवान् हरि इस स्थानमें सभी लोगोंको भलाईके लिये निजांगसम्भूत दिक्पालोंके धीर्य सत्त्वगुण और ऐश्वर्यकी वृद्धि कर विष्वक्सेनादि अनुचरोंके साथ चतुर्भुज मूर्तिमें विराजित हैं । सनातन विष्णु अपने मायाचित विश्वको रक्षाके लिये कल्पान्तकाल तक इस मूर्तिमें अवस्थान करते हैं ।

( देवीभाग० पृ० १४ अ० )

लोकवेश्मण (सं० क्ली०) जगत्की भलाई चाहना ।

लोकित् (सं० लि०) १ लोकप्राप्त, स्वर्गीय । (पु०) २ लोकपति । ३ जगद्वासिमान् । इस अर्थमें केवल धृष्टवचना ही प्रयोग होता है ।

लोकेश (सं० पु०) लोकानामोशः । १ प्रह्ला । २ बुद्धभेद । ३ पारद, पारा । ४ इन्द्र । ५ लोकपाल । ६ लोकाधिपति ।

लोकेशकर—तत्त्वदीपिका वा तत्त्वबोधिनी नामक रामायणमूलतः सिद्धान्तचंद्रिकाकी टीकाके रचयिता । इनके पिताका नाम क्षेमङ्कर था ।

लोकेशप्रभववाप्य (सं० लि०) लोकपालगणसे उद्भूत और उसीसे प्रतिनिवृत्त ।

लोकेश्वर (सं० पु०) लोकानामेश्वरः । १ बुद्धदेव । २ लोकता प्रभु । ३ लोकपाल ।

लोकेश्वरतमजा (सं० क्ली०) लोकेश्वरस्य बुद्धस्य आत्मजेव । बुद्धशक्तिभेद । पर्याय—तारा, महाश्री, ओङ्कार स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा, खट्वरवासिनी, भद्रा, वैश्या, नीलमरुत्तरी, शङ्खिनी, महातारा, चतुष्पाप, घनन्द्या, तिलोचना, लोचना ।

लोकैष्टि (सं० क्ली०) इष्टिभेद ।

लोकैकवन्धु (सं० पु०) लोकानां एक एव वन्धुः । गोतम बुद्ध वा शाक्यमुनि ।

लोकैयणा (सं० क्ली०) १ स्वर्गप्राप्तिका इच्छा, स्वर्ग-सुख-

कर्नापिलनाजक, घागद्वीपनाजक, मय, गुल्म, श्वास, कास और प्रमेदनाजक, शोथनाजक तथा नेत्ररोगमें दितकर है।  
 लोत ( सं० पु० श्लो० ) लुनातोति लु ( श्मिन्प्रतिष्ठाति ) उष् ११८६ इति तन्त्र । १ स्त्रोव घन, चोरोका घन । २ लोत, श्वात् । ३ चिद्य, निगाम । ४ लपण, नमक । ५ शशु-पात, श्वात् ३१ टयकना ।

लोत ( सं० श्लो० ) लुनातोति लु ( श्मिन्प्रतिष्ठाति ) उष् ४११८८ इति घ्न, यथा व्या ( भक्तिवादिभ्य इवायी ) उष् ४११७२ इति उत । लोत, नेत्रजल, श्वात् ।

लोथ ( हि० स्त्री० ) किसी प्राणीका मृत शरीर, लाश ।  
 लोथपा ( हि० पु० ) मांसका बड़ा पांश जिसमें हड्डी न हों, मांसपिण्ड ।

लोथारो ( हि० स्त्री० ) १ कम पानीमेंसे नावको खींचते या धारे धारे रीति हूप किनारे लगाना । २ लोथारो लहर डाल कर पानीको लहरा पता लेने हूप मार्गसे किनारे की ओर नाव पढ़ाना ।

लोथारो लंगर ( हि० पु० ) सबसे छोटा लंगर । यह उस जगह डाला जाता है जहां पानी कम होता है और यह जानना अभिप्रेत होता है कि वह किनारे जाने का मार्ग है या नहीं ।

लोद् ( हि० स्त्री० ) लोथ देगी ।

लोदी—१ प्राचीन राजवंशभेद । २ विद्वांके सनातनप्रसिद्ध मुसलमान राजवंश । भारतमें देगी ।

लोथ ( सं० पु० ) लथ-मथ, ररूप लः । सनातनध्यात वृक्ष । यह भारतवर्षके जङ्गलोंमें उत्पन्न होता है ।

विशेष विवरण लोथु २२२में देखो ।

लोथरा ( हि० पु० ) जापानमें मानियाला एक प्रकारका तांबा ।

लोथरान—पञ्जाब प्रदेशके मूलतान जिलामन्गीन एक तहसील । यह अक्षा० २६° २२' से ले कर २६° ५६' उ० तथा देशा० ७१° २२' से ले कर ७२° ६' पू० तक विस्तृत है । भूपरिमाण १०५० है ।

यह तहसील जलद्वय गर्दोके किनारे अवस्थित है । यहाँकी जमीन पहाड़ी और बलुई है जिससे यहाँ धानकी उन्नत उन्नती अच्छी नहीं है । गेहूँ, ज्वार, बाजरा, कर्ई, जौ और मोह यहाँका प्रमुखद्वय है । लोथरान मगरी

एक तहसीलदार रहते हैं । यद्यो यहाँके दीवानो और फौजदारी विभागका विचार करते हैं । इस तहसीलमें कुल २६२ गांव और दो शहर लगते हैं ।

लोथा—मुसलमान दकैनोंकी एक शाखा । ये भयोध्याके मुसलमान दकैन-वंशसे उत्पन्न हुए हैं । नेपालकी तराई और भयोध्याके सोमान्त प्रदेशमें इनका वास है ।

लोथिका—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके हतार प्रान्तमें स्थित एक छोटा सामन्त-राज्य । यह राज्य आज कल दो भागोंमें विभक्त है । उत्त क्षेत्रों राजवंशोंकी कुल आय २५ हजार रुपया है जिनमेंसे अंगरेजराज्यो सन्ताना १२८७ और जूनगढ़के नवाबको ४५०० रु० भर देना होता है । लोथिका ग्राम राजकोटसे १५ मील और गोण्डालसे १५ मील उत्तर पश्चिम पड़ता है ।

लोथि—रूपित्रीयो एक दिग्गू जाति । मध्यभारत, मुख्य-प्रदेश और भारतपुरके वास-वास स्थानोंमें इनका वास देखा जाता है । आचार-व्यवहार और सामाजिक प्रथा-जुमार ये कुर्मी जातिसे मिलने जुलते हैं । एक समय इस जातिके लोग जयपुर और सागर जिलेमें बड़े प्रसिद्ध हो उठे थे । ज्ञान्य १६वीं सदीमें ये सुब्बेलखण्डसे आ कर मध्यभारतमें बस गये । पीछे कुर्मियोंने साम्यता १६२० ई०में दोभासे उस देशमें गमन किया था । महा-राष्ट्र देशमें इसी कारण उत्तर-भारतके लोथि लोग 'लोथि परदेशी' नामसे पुकारे जाते हैं । यहाँ ये स्थाने और यहाँका काम करते हैं ।

ये दहरे-बट्टे, मजबूत और मदनतो होगे हैं । पेंको-बारीमें कुर्मियोंके समान हैं, पर उनके समान शास्य समावके नहीं । ये घर्मघां, अत्याचारी, परस्वापहरण-प्रिय और प्रतिहिंसा परायण हैं । गर्मघांके निकटवर्षों प्रदेशोंमें ये पेंको-बारी तो करते ही हैं, पर इसके विवाप ये दकैनी कर भी अपना जीवन बिताते हैं । गृहणोंमें ये बड़े पट्टे होते हैं । तीर मथया बंदूक छोड़नेमें ये बड़े तेज हैं । इसलिये ये सैनिक कार्य करणों राब तरहमें वपयुक्त हैं । दक्षिणी-भारतमें इन जातिके बहुतेरे सेनामें मर्त्तो हो गये हैं ।

इनमें बहुविधाद और विषया-विषाद मजता है । विद्यादिन विषया पढ़ना और ज्ञान्यके मनमें परिपोष

मायाके कोई पार्थक्य नहीं है। समाई मतसे विवाहिता विधवा स्वजातीय न होनेसे उसे स्थामो पढ़ण कर नहीं संकेते। बहुत जगह दूर सम्पर्कीय होने पर भी विधवाय देवरसे ध्याही जाते हैं। दोनों विवाहिता पत्नी और समाई पत्नीके सन्तानोंका पितृसम्पत्ति पर समान अधिकार रहता है।

लोधिखेरा—मध्यभारतके छिन्दवाड़ा जिलेकी सांसर तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ३५' ३० तथा देशा० ६८° ५४' ५० पर अवस्थित है। म्युनिसिपैलिटी रहनेके कारण नगरमें राजकीय समृद्धिका अभाव नहीं है। यहां उत्कृष्ट पीतलका बरतन और तयिकी हंडी बनती हैं। इसके अतिरिक्त यहां एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा भी तैयार होता है। खास पासके वाशिन्डे उसे पहननेके काममें लाते हैं।

लोध्र (सं० पु०) रुग्णहीति रुध्र-बाहुलकात् र्नु ररुप लंत्वम्। लोध्रवृक्ष। विभिन्न देशमें यह विभिन्न नामसे प्रसिद्ध है, जैसे तैलङ्ग—तेलुलोड्रुगचेट्टु, गर्ज, लोदर, लोह्रग; महाराष्ट्र—डुरा। संस्कृत पर्याय—गालय, शावर, तिरीट, तिल्य, मार्जन। रकलोध्रका पर्याय—लोध्र, मिहृत्त, तिल्यक, कान्ठीलक, हेमपुष्पक; मिह्री, शावरक। इसका गुण—कषाय, शीतल, वात, कफ और अन्धनाशक, चक्षुका हितकर, विपनाशक।

(राजनिषपट्ट)

यह वृक्ष नेपाल और कुमायूँके पहाड़ी प्रदेशमें, कांटाके जङ्गलमें, बङ्गालके समतलक्षेत्रमें खास कर मेदिनीपुर और बर्द्धमान जिलेमें तथा बम्बईप्रदेशके घाट पर्वतमालाके जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसका छिलका रंगने, चमड़ा स्थाने और औषधियोंमें काम आती है। छिलकेका उष्ण जलमें मिगो देनेसे पीला रंग निकाला जाता है। छिलकेका संज्वामिट्टीके साथ पानीमें उबालनेसे लाल रंग निकलता है जिससे छीट छापते हैं। यह पेड़ १०से २२ फुट ऊँचा होता है। इसका छिलका पेचिश आदि पेटके कई रोगोंमें ही दिया जाता है। इसका गुण ठंडा है। इसके फाड़े का भी प्रयोग किया जाता है। लोध्रकी लकड़ीके काढ़े से कुल्हा करमेसे मसूढ़े से रकका निकलना शब्द होता और यह दृढ़ हो जाता है।

इसकी लकड़ी जल्दी फट जाती है, परं मजबूत होती है। जड़के चूरसे अषोर बनाते हैं जिसे हिन्दुमत ही होलो पर्वमें उड़ाते हैं। अषोर-देखो।

२ एक जातिका नाम।

लोध्र (हि० पु०) जापानो-तांवा, लोधरा। लोध्रकवृक्ष (सं० पु०) लोध्र एव लोध्रक स एव वृक्षा। लोध्र।

लोध्रतिलक (सं० पु०) एक प्रकारका बलंकार जो उपमाका एक मेरु माना जाता है।

लोध्रपुष्प (सं० पु०) मधूकवृक्ष, महुपका पेड़।

लोध्रपुष्पक (सं० पु०) शालिघान्य विशेष।

लोध्रपुष्पिणी (सं० स्त्री०) हस्तघातकी, छोटा घबका फूल।

लोध्रवृक्ष (सं० पु०) मधूकवृक्ष, महुपका पेड़।

लोना (हि० वि०) १ नमकीन, सरोना। २ सुन्दर। (पु०) ३ एक प्रकारका रोग जो ईंट, पत्थर और मिट्टीकी दीवारोंमें लगता है। इससे दीवार भङ्गने लगती और कमजोर पड़ जाती है। कुछ ही दिनोंमें उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं और बंद कट कर गिर पड़ते हैं। यह रोग नीचके पासके भागमें शुरू होता है और ऊपरकी ओर बढ़ता है। ४ नमकीन मिट्टी जिससे शोरा बनाया जाता है। ५ वह धूल या मिट्टी जो लोना लगने पर दीवारसे भङ्ग कर गिरती है। यह खेतमें डाली जाती है और खादका काम देती है। ६ घोंघिकी जातिका एक फोड़ा। यह प्रायः नाचके पेड़में चपका हुआ मिलता है। ७ यह क्षार जो चनेकी पत्तियों पर इकट्ठा होता है और जिसके कारण उसको पत्तियां चाटनेमें बर्बाद जान पड़ती हैं। ८ एक कल्पित रोग जो जातिकी चमार और जाट्टु देशमें बहुत प्रवीण कही जाती है। (क्रि०) ९ फसल काटना। लोनाई (हि० क्रि०) लावण्य, सुन्दरता। लोनार (हि० पु०) यंए स्थान जहाँ नमक बनता है। अथवा जहाँसे नमक आता हो।

लोनार—मध्यभारतके देवा विभागके बुलदाना जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ५६' ३० तथा देशा० ७६° ३३' ५० पर अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या ३०८५ है जिनमें प्राणियोंकी ही संख्या अधिक है।

यह स्थान भक्ति प्राचीन है तथा पर्यतकी तराईमें मशहूर है। यहां लोना नामका एक तालाब है जिसका जल नमकीन या खाद्य होता है। कहते हैं, कि इस हृदयके गर्भमें दानश्रेष्ठ लवणासुर रहता था। मोलोकविहारी विष्णु सुन्दर बालकका रूप धर कर घर्भमें अग्रतोर्ण हुए थे। बालकके मोहन रूप पर मुग्ध हो कर लवणासुरने अपनी दोनों बहनोंके साथ उनका विवाह कर देना चाहा था। मोछे विष्णुके मोहजालमें पड़ कर उन्होंने विष्णुसे अपने भाईका निम्न निकेतन बनना दिया। तत्र विष्णुने पादस्पर्शसे उन मुन वासुदेवके पदपर उठाड़ डाले और भूतलमें प्रवेश कर घर्भमें सोये लवणासुरकी यमपुर भेज दिया। विष्णु द्वारा लवणासुरके निहत होने पर उसी जगह उसकी समाधि हुई तथा उसके रूनसे यह गर्भ गर भाया। आज भी स्थानोपलोग लोनाहृदयके चारै जलकी लवणासुरका लह तथा विष्णुपादस्पर्शसे पवित्र समझते हैं। निकटवर्ती धारैवाल नामक स्थानमें एक गणेशील है। इसकी लम्बाई और लोनाहृदयका घेत करीब समान है। जगसाधारण इस शीलको लवणासुर-मयनका माच्छादन-प्रस्तर समझते हैं। विष्णुके पैरकी धांगुलिके स्पर्शसे यह पत्थर उठल कर यहां गिर पड़ा था।

इस हृदयका प्राकृतिक सौन्दर्य यद्वा हो मनोरम है। इसके चारों ओर वृत्ताकारमें चार मी कुट उच्च पर्यतकी छोटी विराजित है। इस चोटी पर अस्सय मन्दिर और कौर्लिस्तम्भ संघट्टीमें पड़े हैं। आज कल यह एक उंगल बन गया है। उसके ऊपरके विनादेकी परिधि प्रायः पांच मील तथा जलके आरा-याम स्थानकी परिधि प्रायः तीन मील है। इसके बनाया विनादेकी ऊंचाई १५' से ८०' तक है। हृदयको गोमोता और उसके डाल विनादेकी देण कर भूतस्वयिदृ कहते हैं, कि यह एक समय किसी आनेवगिरि (उवालासुरो पर्यत) का मुँह था। पादस्पर्शकी पर्यतके पश्चर आज भी उसकी साक्षा देते हैं। यहां माना तरहके पेट दिवायें पड़ते हैं जिससे उसको शोभा और मो बढ़ गई है।

हृदयके दक्षिणपथ पर्यतपृष्ठमें एक छोटा गर्भ या ध्व पण है। यहांसे हमेशा मोटा जल निकल कर श्रेष्ठ पारासे

हृदयगर्भमें गिरता है। इस प्रसवणके सामने एक मन्दिर है।

हृदयके डाल देणके पनप्रदेश और जलगर्भके पश्चिम स्थानमें एक विस्तृत दलदल है। वर्षा प्रभुमें यह जगह भर जाती है; किन्तु और समयमें जल सुख जाता या रह जाता है जिससे चारों ओर हो एक विस्तीर्ण क्षेत्र बन जाता है। उसमें कभी भी कोई अन्न पैदा नहीं होता। हृदयका जल पारा होनेसे इस दलदलका मिट्टी भी धारते हो जाता है। इसलिये सूख जाने पर यह सफेद दिव्य पड़ती है। तब इस मिट्टीसे नामक बनता है। यहां नमकमें सैकड़ों बोछे ३८ भाग अजगराम्ल, ४०'६ रूप (Goda), २०'६ जल और ०'५ कठिन पदार्थ तथा धोछो मादामें सलफेट मिलता है। यह सर्वोमिह सायुन बनानेमें भा काम आती है।

लोनारा—अपोधामप्रदेशके हृदयके जिलेके अग्रगण्य एक नगर। करीब साढ़े तीन सदीके पहले निकुमोमें मुदमट्टीसे दाक्षिण भा कर यहांके आदिम भविष्यको कमानगारीकी मार मगाया और इस नगरकी अर्थे कच्चेमें कर खुद रहने लगे। आज तक भी निकुमगन यहांके सव्याधिकारों हैं।

लोगिका (दि० कि०) लोनो नामक साग।

लोनिया (दि० पु०) एक जाति। ये लोग लोन या नमक बनानेका व्यवसाय करते हैं और शूद्रोंके अग्रगण्य माने जाते हैं। (खो०) २ लोनो नामक साग।

लोनो (दि० खो०) १ गुल्फकी जातिक। एक प्रकारका साग। इसकी पत्तियां बहुत छोटी छोटी होती हैं। यह उठो अग्रह पर उदग्न होती है, इसका स्वाद मटारा होता है। इतमें तरह तरहके फूल लगते हैं। इसकी लोम गमलामें पोते हैं और विद्यापतो लोनो कहते हैं। इसके बीज विद्यापयसे माते हैं। २ यह शार जो चने आदिकी पत्तियों पर पैठता है। ३ एक प्रकारकी मिट्टी। इससे लोनिया लोम जोरा और नमक बनाते हैं।

लोनी—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेकी गागियापाद तद-सीलके अग्रगण्य एक प्राचीन नगर। यहाँ यह नगर धीमेध और जनश्रृंग हो रहा है। द्वितीयक पुष्पोपलके प्रतीष्ठन यह प्राचीन युगका संस्तर आज भी उर कारि-

का परित्यक्त देता है। मुगल-सम्राट्गण शिकारके लिये यहां बराबर आया करते थे। उनका प्रासाद श्रोहीन बधस्थानमें पड़ा है। १७८६ ई०में सम्राट महम्मद शाहने यहां एक उपवन और दिग्गी बनवाई थी। इस दिग्गी और उपवनमें जल लानेके किये पहले उर्ध्वेति ही यमुना नहर कटवाई थी। बहादुर शाहकी महिषी जिनत महलने उलदोपुरमें प्राचीर-परिवेष्टित प्रवेशद्वार आदिसे परिशोभित एक सुन्दर उद्यान लगाया था। उसके बीच चमकीले लाल पत्थरोंसे बना गुंबजदार प्रसिद्ध चारदुआरी मीनूद है। इसके बलाघा यहां मुगल-राजवंशधरोंकी और भी अस्वस्थ कीर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सिपाही-युद्धके बाद अंगरेज-राजने यह नगर मुगलोंके हाथसे छीन लिया। आज इस स्थानकी सुन्दरता जाती रही।

लोनेली—बम्बई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलान्तर्गत एक नगर यह अक्षा० १८° ४५' ३०" तथा देशा० ७३° २४' ५०" तक और गिरिस्कांठके सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित है। प्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवेकी दक्षिण-पूर्व शाखामें यह एक प्रधान स्टेशन है। यहाँकी जनसंख्या ६६,४६ है। यहाँ रेल-कम्पनीका कारखाना रहनेके कारण वहुतेरे यूरोपीय और देशी लोगोंका वास है। नगरसे दो मील दक्षिण रेल-कम्पनीका एक सुन्दर बाँध है। इसका जल सभी लोग घरके काममें लाते हैं। यहाँ बहुत-सी सुन्दर अट्टालिका, प्रोटेस्टेंट और [रोमन कैथलिक धर्ममन्दिर, मेसनिक लाज, कोओपरेटिव स्टोर, एक अस्पताल और आठ स्कूल हैं। नगरकी बगलमें ही एक सुन्दर वन है।

लोनेसिंह—एक भाषा-कवि। इनका जन्म बाँछिल मितौली जिला कोरीमें हुआ था। ये बड़े कवि और साहसी क्षत्रिय थे। इन्होंने भागवतके दशम स्कन्धकी नाना छन्दोंमें भाषा की है। ये एक लड़ाईमें मारे गये।

लोप (सं० पु०) लुप्-घञ् । १ विच्छेद । २ नाश, क्षय । ३ अभाव, अदर्शन । ४ अन्तर्दान होना, छिपना । ५ व्याकरणके चार प्रधान नियमोंमेंसे एक जिसके अनुसार शब्दके साधनमें किसी वर्णको उड़ा देते हैं।

लोपक (सं० लि०) नाशकारी, विघ्न वाधा डालनेवाला ।  
लोपन (सं० कृ०) १ नाशन, नष्ट करना । २ तिरोहित रना, लुप्त करना ।

लोपना (हि० क्रि०) १ लुप्त होना, मिटना । २ छिपाना ।  
लोपाक (सं० पु०) लोप शोधनदर्शनमकति प्राप्नोतीति अक-अण् । शृगाल, गोदड़ ।

लोपाञ्जन (सं० पु०) यह कल्पित अञ्जन जिसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि इसके लगानेसे लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपापक (सं० पु०) लोपः द्रुतमदर्शनं आप्नोतीति ष्युल् । शृगाल, सियार ।

लोपापिका (सं० स्त्री०) लोपापक स्त्रियां टाप्, अत इत्वं । शृगाली, सियारिन् ।

लोपामुद्रा (सं० स्त्री०) लोपयति योदितं रूपमिधानमिति लोपा पनाद्यण् अमुद्रयति स्रष्टुः स्रष्टिमिति आमुद्रा-अण्, ततः कर्मधारयः किंवा न मुद्रं राति अमुद्रा पति-शुभ्रूपाय लोपे अमुद्रा । अगस्त्यमुनिकी स्त्री ।

स्मृतिमें लिखा है, कि भाद्रमासके अन्तिम तीन दिन अगस्त्यके और पीछे लोपामुद्राकी अर्घ्या देना होता है।

“अप्राप्ते भास्करे कन्या शेषभूतेत्रिभिर्दिनेः ।  
अर्घ्यं दद्यु रगस्त्याय गोहृदेशनिवासिनः ॥”  
(मलगायतत्त्व)

यह अर्घ्य दक्षिण मुँह करके शङ्कमें जल, श्वेतपुष्प, अक्षत और चन्दनादि उाल निम्नोक्त मन्त्रसे देना होता है।

“शङ्खे तोयं विनिकिप्य श्वेतपुष्पाक्षतेषु तम् ।  
मन्त्रेणानेन वै दद्यद्दक्षिण्याशामुपस्थितः ॥”  
अर्घ्यदानमन्त्र—

“काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमासतसम्मेष ।  
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तुते ॥”  
प्रार्थनामन्त्र—

“आतापिर्भक्तिता येन वातापिथ महामुदः ।  
धमुद्रः शोभिता येन स मेऽगस्त्यः प्रवीद तु ॥”  
लोपामुद्राका अर्घ्यदान-मन्त्र—

“लोपामुद्रे महामागे राजपुत्रि पतिव्रते ।  
शशापाव्यं मया दत्तं मैत्रावरुणिवक्षते ॥”  
(मलगायतत्त्व)

महाभारतमें लोपामुद्राके जन्मादिका विवरण इस



यह स्थान जति पाचीन है तथा पर्यतकी तराईमें  
अवस्थित है । यहां लोना नामका एक तालाब है  
जिसका जल नमकीन या मारा होता है । कहते  
हैं, कि इस हृदके गर्भमें क्षारध्रुव लवणामुत्पन्न रहता  
था । मोतीरुविहारी विष्णु सुन्दर बालकका रूप धर  
कर घरमें अनायास हुए थे । बालकके मोहन रूप पर  
मुग्ध हो कर लवणामुत्पत्ति अपनी दोनों बटनीके साथ  
उनका विवाह कर देना चाहा था । पीछे विष्णुके  
मोहजात्ये पड़ कर उन्होंने विष्णुसे अपने भाईका  
निष्ठ निवेदन किया । तब विष्णुने पाद-  
स्पर्शसे उन गुन पासनवनके पदपर उभाड़ डाले और  
भूतलमें प्रवेष्ट कर घरमें सोये लवणामुत्पत्ती धमपूर भेज  
दिया । विष्णु द्वारा लवणामुत्पत्ती निकल होने पर उसी  
जगह उसको समाधि हुई तथा उसके स्तनसे यह गर्स भर  
जाया । आज भी स्थानीय लोग लोनाहृदके चार जलको  
लवणामुत्पत्ती तथा विष्णुवाहृदकेसे पवित्र समझते  
हैं । निकटवर्ती धार्यवाल नामक स्थानमें एक गण्डरोल  
है । इसही लव्याई और लोनाहृदका घेरा करीब समान  
है । जनमाधारण इस शैलको लवणामुत्पत्तिनामका आच्छा-  
दन-प्रस्तार समझते हैं । विष्णुके पैरकी अंशुलिके स्पर्शसे  
यह परधर उल्लस कर यहां गिर पड़ा था ।

इस हृदका प्राकृतिक सौंदर्य बड़ा ही मनोरम है ।  
इसके चारों ओर वृक्षाकारमें चार मी कुट्ट उध पर्यतकी  
चोटी चिगजित है । इस चोटी पर अक्षय मन्दिर और  
कौशिल्यभ्रम खंडरोल पड़े हैं । आज कल यह  
एक जंगल बन गया है । उसके ऊपरके किनारेकी परिधि  
प्रायः पांच मील तथा जलके आस-पास स्थानकी परिधि  
प्रायः तीन मील है । इसके मन्दाया किनारेकी ऊंचाई  
१५ से ८० तक है । हृदको गमोरता और उसके टाल  
किनारेकी देष कर भूतस्वचिद्रु करते हैं, कि यह एक समय  
किसी आग्नेयगिरि (अवालामुखी वर्जन) का मुँह था ।  
पादस्पर्शसे परधर आज भी उसको साक्ष्य देते  
हैं । यहां नाना तरहके पेड़ विपरीत पड़ते हैं जिससे इस-  
की मोमा और भी बढ़ गई है ।

हृदके क्षैतिजपर पर्यतकुट्टमें एक छोटा गर्स या ध्रुव  
बल है । वहांसे हमेशा मोठा जल निकल कर तेज धारासे

हृदगर्भमें गिरता है । इस प्रखरपनके सामने एक  
मन्दिर है ।

हृदके टाल क्षेत्रके बनप्रदेश और जलगर्भके मन्दाया  
स्थानमें एक विस्तृत झील है । वर्षा ऋतुमें यह जल  
भर जाता है, किन्तु और समयमें जल सुख जाता पाए  
जाता है जिससे चारों ओर ही एक विस्तीर्ण क्षेत्र भर  
भाता है । उसमें कभी भी कोई अन्न पैदा नहीं होता ।  
हृदका जल पारा होनेसे इस झीलका मिट्टी भी फाटी  
देा जाता है । इसलिये सूख जाने पर यह सफेद त्रिषु  
पड़ती है । तब इस मिट्टीसे नमक बनता है । यहां  
नमकमें सैकड़ों पीछे ३८ भाग अन्ताराल, ४०६ एर  
(Sola), २०६ जल और ०५ कडिन पदार्थ हवा  
थोड़ी मात्रामें सलफेट मिलता है । यह सखीनिही  
साधुन बनानेमें भी काम आती है ।

लोनार—अयोध्याप्रदेशके हर्दई जिलेके अन्तर्गत एक  
नगर । करीब साढ़े तीन सदीके पहले निकुमोनि मुर-  
गड़ोसे क्षैत्रिय आ कर यहांके आदिग अधिपति  
कमानगारोंको मार भगाया और इस नगरको अपने  
कब्जेमें कर खुद रहने लगे । आज तक भी निकुमगन  
यहांके सत्वाधिकारों है ।

लोनिका (दि० कि०) लोनी नामक साग ।

लोनिया (दि० पु०) १ एक जाति । ये लोग लोन या नमक  
बनानेका व्यवसाय करते हैं और दुर्दिक अन्तर्गत माने  
जाते हैं । (स्व०) २ लोनी नामक साग ।

लोनी (दि० खो०) १ कुल्हकी जातिका एक प्रकारका  
साग । इसके पत्तियां बहुत छोटी छोटी होती हैं ।  
यह उंची अगह पर उतरना होता है, इसका स्वाद खटस  
होता है । इसमें तपद तरहके फूल लगते हैं । इसके  
लोग गमलोंमें बोते हैं और विनायतों लोनी कहते हैं ।  
इसके बोझ विनायतसे भारी है । २ यह क्षार जो मने  
आदिकी पत्तियों पर पैठता है । ३ एक प्रकारकी मिट्टी ।  
इससे लोनिया लोम जोटा और नमक बनाते हैं ।

लोनी—मुक्तप्रदेशके मोरट जिलेकी यागिवावाहृद हृद-  
गोत्रके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । अभी यह नगर  
अच्छे और उत्तम रूप में रहा है । दिवापर लूणोमात्रके  
प्रतिष्ठन एक प्राचीन दुर्ग। खंडर भाज भी इस काली-

का परिचय देता है। मुगल-सम्राट्मण शिकारके लिये यहाँ बराबर आया करते थे। उनका प्रासाद श्रोहीन अवस्थामें पड़ा है। १७८६ ई०में सम्राट् महम्मद शाहने यहाँ एक उपवन और द्विगी वनवाई थी। इस द्विगी और उपवनमें जल लानेके किये पहले उन्होंने ही यमुना नहर कटवाई थी। बहादुर शाहकी महिषी जिनत् महलने उलदीपुरमें प्राचोर-परिवेष्टित प्रवेशद्वार आदिसे परिशोभित एक सुन्दर उद्यान लगाया था। उसके बीच चमकीले लाल पत्थरोसे बना गुंघजदार प्रसिद्ध वारदुआरी मीजूद है। इसके अलावा यहाँ मुगल-राजवंशधरोकी और भी असंख्य कीर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सिपाही-युद्धके बाद अंगरेज-राजने यह नगर मुगलोंके हाथसे छीन लिया। आज इस स्थानको सुन्दरता जाती रही।

लोनेली—धर्मई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलान्तर्गत एक नगर यह अक्षा० १८° ४५' ३०" तथा देशा० ७३° २४' ५०" तक भोर गिरिसंकटके सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित है। प्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवेकी दक्षिण-पूर्वा शाखामें यह एक प्रधान स्टेशन है। यहाँकी जनसंख्या ६६४६ है। यहाँ रेल-कम्पनीका कारखाना रहनेके कारण बहुतेरे यूरोपीय और देशी लोगोंका वास है। नगरसे दो मील दक्षिण रेल-कम्पनीका एक सुन्दर बाँध है। इसका जल सभी लोग घरके काममें लाते हैं। यहाँ बहुत-सी सुन्दर अट्टालिका, प्रोटेस्टेंट और रोमन-कैथलिक धर्मोन्दिन, मेसनिक लाज, कोओपरेटिव स्टोर, एक अस्पताल और आठ स्कूल हैं। नगरकी बगलमें ही एक सुन्दर वन है।

लोनेसिंह—एक भाषा-कवि। इनका जन्म बाछिल मितौली जिला कोरोमें हुआ था। ये बड़े कवि और साहसी क्षत्रिय थे। इन्होंने भागवतके दशम स्कन्धकी नाना छन्दोंमें भाषा की है। ये एक लड़ाईमें मारे गये।

लोप (सं० पु०) लुप्-घञ् । १ चिल्डे । २ नाश, क्षय । ३ अभाव, अदर्शन । ४ अन्तर्दान होना, छिपना । ५ व्याकरणके चार प्रधान नियमोंमेंसे एक जिसके अनुसार शब्दके साधनमें किसी वर्णको उट्टा देते हैं।

लोपक (सं० लि०) नाशकारी, विघ्न वाधा डालनेवाला । लोपन (सं० कृ०) १ नाशन, नष्ट करना । २ तिरोहित करना, लुप्त करना ।

लोपना (हिं० क्रि०) १ लुप्त होना, मिटना । २ छिपाना । लोपाक (सं० पु०) लोप शोधनदर्शनमकति प्राप्नोतीति अक-अण् । शृगाल, गोदड़ ।

लोपाञ्जन (सं० पु०) चद कल्पित अञ्जन जिसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि इसके लगानेसे लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपापक (सं० पु०) लोपं द्रुतमदर्शनं आप्नोतीति ण्वुल् । शृगाल, सियार ।

लोपापिका (सं० स्त्री०) लोपापक स्त्रियां राप्, अत इत्वं । शृगाली, सियारिन् ।

लोपामुद्रा (सं० स्त्री०) लोपयति योपितां रूपामिधानमिति लोपा पचाघण् आमुद्रयति झट्टुः सृष्टिमिति आमुद्रा-अण्, ततः कर्मधारयः किंवा न मुद्रं राति अमुद्रा पति-शुधूपाय लोपे अमुद्रा । अगस्त्यमुनिकी स्त्री ।

स्मृतिमें लिखा है, कि माद्रमासके अन्तिम तीन दिन अगस्त्यके और पीछे लोपामुद्राको अच्छा देना होता है।

“अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनेः ।  
अप्यं दधुरगस्त्याय गौडदेशनिवासिनः ॥”

(महाभासतत्त्व )

यह अर्घ्य दक्षिण मुँह करके शङ्खमें जल, श्वेतपुष्प, अक्षत और चन्दनादि डाल मिन्नाक मन्त्रसे देना होता है।

“शङ्खे तोयं विनिक्रियं शितपुष्पाक्षतैषु तम् ।  
मन्त्रेणानेन वै दधुद्दक्षिणाशासुपस्थितः ॥”

अर्घ्यदानमन्त्र—

“काशुपुष्पप्रतीकोशं अग्निभासतसम्भव ।

मिषावसृषयोः पुन कुम्भयोने नमोऽस्तुते ॥”

प्रार्थनामन्त्र—

“आवाभिर्भक्षितो येन वातापिथ महासुदः ।

समुद्रः शोषितो येन च मेऽगस्त्यः प्रथीद तु ॥”

लोपामुद्राका अर्घ्यदानं मन्त्र—

‘लोपासुद्धे महाभागे राजपुत्रि पतिवते ।

यथावार्थं मया दत्तं मेधावैश्विण्यवहमे ॥”

(महाभासतत्त्व )

महाभारतमें लोपासुद्राके जन्मादिका विवरण इस

प्रकार लिखा है। महर्षि अगस्त्यने एक दिन अपने विद्यार्थियों पर विषयमें लक्ष्यमान देण पुछा था, कि आप लोग यहाँ कल्पवृक्ष कष्टमें क्यों समय बिताते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, "युव अगस्त्य ! तुम पुत्र उत्तरादन करके हम लोगोंको इस कष्टमें उतार करो। इसने तुम्हारा भी कल्याण होगा।" इस पर अगस्त्यने उत्तर कदा, "मैं आप लोगोंका अभिलाष पूर्ण करूंगा।" पीछे अगस्त्यने स्वयं युवकपुत्रों जन्मप्रदण करके, चेसा स्थिर किया, किन्तु उन्हें मनोवृत्त कल्याण न मिले। पीछे उन्होंने मन ही मन सोच विचार कर जिस प्राणीका जो अङ्ग-प्रत्यङ्ग अति उत्कृष्ट था, उस प्राणीका वह अङ्ग प्रत्यङ्ग मन ही मन संभ्रम कर उससे एक कल्याण निर्माण करे। इस समय विद्यार्थियोंपति पुत्रके लिये तपस्या कर रहे थे। अगस्त्यने अपनी लिये निर्माण का हुर्र यह कल्याण विद्यार्थी-राजको दे दो। राजाने इस कल्याणका नाम लोचामुद्रा रखा। पीरे पीरे उस कल्याण मुपायक्यामों कदम पढाया।

महर्षि अगस्त्यने लोचामुद्राको जब गार्हस्थ्यकी योग्य देना, तब विद्यार्थीराजके पास जा कर कहा, 'राजन् ! पुत्रके लिये गार्हस्थ्य धर्ममें मेरी इच्छा हुई है। मतपय आप मेरी लोचामुद्राको लाँटा दे'। राजाने एकगार्हस्थ्य-विमुक्त हो रानीसे यह बात जा कहा। रानी भी कोई उपयुक्त उत्तर न दे सकी। इस पर लोचामुद्राने राजा और रानीको दुर्गन्ध देण कर कहा, 'दिलाने ! भाग मुझे श्रविके हाथ लीये दे'। अगस्त्य विद्यार्थीराजने कल्याणके पाषणानुसार विधिपूर्वक अगस्त्यको वह कल्याण साददान की। अगस्त्यने लोचामुद्राकी अर्वाङ्गमें प्रदण किया और कहा, 'अभी तुम बहुमूल्य यवन भूषणका परिचय कर और कल्याण पढनी।' लोचामुद्राने देना ही दिया।

अगस्त्य गद्गलके तिनारे सा कर अनुकूलता सद्वर्णितोके साथ पेश तपस्या करने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। एक दिन अगस्त्यने तपस्यारोमा लोचामुद्राके अङ्गक्या देना। उनको परिचयानिजना, जिनकिन्तयना, भी और कल्याणक्या समुद्र हो अगस्त्यने रति-वागमारी उहे बुझावा। विद्यमुद्राने अगस्त्य लक्षण

हो कहा, 'आपने समानने लिये मुझे अपनी भाषा पढाया है, किन्तु मेरा यही अभिलाष है, कि मेरे पित्र वृक्ष में जिते विद्यायन, यवन और भूषणार्थ, मैं ही विद्यायन और यवनभूषणमें विभूषित कर भाग मेरे साथ अद्यायन करे'। अगस्त्य बोले, 'मैं तपसी हूँ, राजनिक यवनभूषण और तपसा कहां पाऊँ ?' इस पर लोचामुद्राने जवाब दिया, 'आप तपोयन ही अपने प्रभावसे क्षण भर में ही उन सब चीजोंका संभ्रम कर सकते हैं।' अगस्त्य ने फिर कहा, तुम्हारा कल्याण ही साथ है, पर ऐसा करने से मेरे तपमें विचन-गंधा पड़नेगी। अतपय जितने मेरे तपमें बाधा न पहुँचे, ऐसा ही कोई उपाय करे। इस पर लोचामुद्रा बोली, 'तपोयन ! मेरे श्रुतकाल १६ दिनमें धोड़ा ही साकी रह गया है, बिना अङ्गुलीदि पदमें आपने पास जानिको मेरी दृष्टा नदी हाती और भाषका धर्मलेप करनेकी जो मेरी इच्छा नहीं, अतपय जिससे धर्मलेप न हो और मेरा अभिलाष भी पूरा हो जाय, ऐसा ही उपाय कीजिये।' इस पर अगस्त्यने कहा, 'तुम्हारे ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो कुछ काम उदरो, मैं उतना, पन जमा लागू जिनमें तुम्हारा अभिलाष पूरा हो।'।

अनन्तर अगस्त्य राजा भूतवर्माके पदा-भाषे। उन्होंने राजसे कहा, 'राजन् ! मैं धनार्थी हूँ कन भाषके पास भाषा हूँ, इसलिये मुझे कुछ धन कीजिये। पर... ही, ऐसी धनमें मुझे काम नहीं, जिसके लिये, तुम्हेंका, वह पड़ने।' राजाने उत्तर दिया, 'मिरी भाषा और तपस्योके परीक्षा कर जितनी इच्छा हो मैं कीजिये। अब अगस्त्यने राजाको साथ और यवनके समाय देण कर, सोना, कि यह पन लेनेसे राजा और प्रजा दोनोंकी क्रोडकी यमना-पना है। इसलिये उन्होंने धनप्रदण नहीं किया। पीछे ही राजा भूतवर्माके साथ अङ्गुलीदि पदों और पदा की इन कामों न हो बुद्धवृत्त अगस्त्य अ किंके पदा गये। पदाओं अगस्त्यने अर्थ न लियेके कारण अगस्त्य पाषणिके आरे इच्छाके पास लिये। अतपय लोचामुद्राकी पाषणिके मागमें अर्धिकी परिपूर्ण किया। अगस्त्य इतने पाषणिकी बार बार पुकारने लगे। इस पर अगस्त्यकी पत्नी, कि मैंने पाषणिकी दायन कर जाना। अगस्त्य इतने अति

विपण्ण और भयभीत हो कर ऋषिको प्रचुर धन दे विदा किया।

इसके बाद अगरत्य ऋषि धन ले कर लोपोमुद्राके समीप उपस्थित हुए। लोपोमुद्राने कहा, 'भगवन्! आप एक अति पवित्र और बलवान् पुत्र उत्पादन कीजिये।' ऋषिने तथास्तु कह कर लोपोमुद्राके साथ संयोग किया। लोपोमुद्रा गर्भवती हुई और ऋषि दनको चले गये। ७ वर्ष गर्भधारण कर लोपोमुद्राने एक पुत्र प्रसव किया। वह पुत्र साङ्गोपाङ्ग वेदज्ञान-सम्पन्न तथा अति-शय रूपवान् निकला। ऋषियोंने उसका नाम इधमवाह रखा। यह इधमवाह भी तपके प्रभावसे पिताके ही जैसे पराक्रमी हुए थे। ( भारत वनपर्व ६५-६८ अ० )

लोपोमुद्रापति ( सं० पु० ) लोपोमुद्रायाः पतिः । अगस्त्य ।

लोपायक ( सं० पु० ) शृगाल, गीदड़ ।

लोपाश ( सं० पु० ) शृगाल, गीदड़ ।

लोपाशक ( सं० पु० ) , लोपं आहुलीभावं चक्रितमप्रति अशु-ष्वल् । शृगाल, गीदड़ ।

लोपाशिका ( सं० स्त्री० ) लोपाशक-स्त्रियां टाप्, अत इत्वं । शृगाली, सियारिन ।

लोपिन् ( सं० त्रि० ) क्षतिकारक, हानि पहुँचानेवाला ।

लोप्त् ( सं० त्रि० ) १ नियम भंग करनेवाला । २ क्षतिकारक, हानि पहुँचानेवाला ।

लोप्त् ( सं० कृ० ) लुप-प्त्त् । स्तंभघन, चोरीका माली ।

लोप्त् ( सं० स्त्री० ) लोप्त्-इत्स्यत्, कुड्मसम् ।

लोप्त् ( सं० स्त्री० ) लोप्त्-वित्वात् लोप् । लोप्त्, चोरीका माली ।

लोप्य ( सं० त्रि० ) लोप, योग्य; नाश करनेके लायक ।

लोवान ( अ० पु० ) एक वृक्षका सुगन्धित गोद । यह वृक्ष अफ्रीकाके पूर्वी किनारे पर, सुमालीले में और अरबके दक्षिणी-समुद्र तट पर होता है और यहाँसे लोवान अनेक रूपोंमें भारतवर्षमें आता है। कुंहुजकर, कुहुज, उनस कुहुछगा, कुहुकजपा आदि इसीके भेद हैं। इनमेंसे कई दवाके काममें आते हैं। इनमें लोवानकशफा, जिसे घूप भी कहते हैं, भारतवर्षमें लोवानके नामसे विख्यात है।

यह गोद वृक्षकी छात्रके साथ लगा रहता है। अरबसे लोवान बर्बाद आता है। यहां छांट छांट कर उसके भेद किये जाते हैं। जो पौले रंगकी वृद्धीके रूपके साफ दाने होते हैं, वे कौड़िया कहलाते हैं। उनको छांट कर यूरोप भेज देते हैं तथा मिला जुला और चूरा भारतवर्ष और चीनके लिये रफ लेते हैं। एक और प्रकारका लोवान लावा, सुमात्रा आदि स्थानोंसे आता है जिसे जायी लोवान कहते हैं। यूरोपमें इससे एक प्रकारका क्षार बनाया गया है। इस क्षारकी वैजोदक पसिड कहते हैं। लोवान प्रायः जलानेके काममें लाया जाता है जिससे सुगन्धित धूआँ निकलता है। वैद्यकमें कुहुज लोवानका प्रयोग सूजाकमें और जायी लोवानका प्रयोग कौंसोमे होता है। यह अधिकतर मरहमके काममें लाया जाता है।

लोविया ( हि० पु० ) एक प्रकारका वेड़ा। यह सफेद रंगका और बहुत बड़ा होता है। इसके फल एक हाथ तक लंबे और पीने अंगुल तक चौड़े तथा बहुत कौमल होते हैं और पका कर प्याये जाते हैं। बीजोंसे दाल और दालमेठ बनाते हैं। इसको और भी जातियाँ हैं, पर लोविया सर्वसे उत्तम माना जाता है। इसकी पत्तियाँ उर्दके समान होतीं, पर उनसे बड़ी और चिकनी होती हैं। पौधा शोभा और भाजोके लिये वागोंमें पौधा जाता है और बहुमुल्य होता है।

लोविया कौंडी ( हि० पु० ) एक रंग जो गहरा हरो होता है।

लोम ( सं० पु० ) लुम घञ् । १ आकांक्षा, दूसरेके पदार्थके लेनेकी कामना, लालच । पंथाय—तृष्णा, लिप्सा, घञ्, स्पृहा, कांक्षा शंसा; गाहृर्ध्व, चांछा, इच्छा, तृप्, मनोरथ; काम, अभिलाष ।

दूसरेकी दीवत आदि देव कर उसे लेनेके लिये जो अभिलाष होता है, उसे लोम कहते हैं। यह लोम ब्रह्मके अधरसे उत्पन्न हुआ था।

गीतामें लिखा है, कि नरकके तीन द्वार हैं,—काम, क्रोध और लोम। इसलिये सब तरहसे लोम छोड़ देना उचित है। जगत्में एकमात्र लोमसे सभी अनिष्ट होता है, लोम ही पापकी प्रवृत्ति है, लोमसे ही क्रोध, काम, मोह और

सौर (दि० पु०) १ कालका कुण्डल । २ लटकन । ३ बाण्डू ।  
 सोरो ( दि० खो० ) १ एक प्रकारका गीत । द्विर्वा यथो-  
 के। सुखानके जिये यद् गीत गातो ही । साथ हो ये  
 दृष्टिके मोक्षमें ले कर दिलामो मो जातो ही सधवा साट  
 पर टेंटा कर गपको देतो जातो ही । २ मानेको एक  
 जाति ।

सोमी ( लुमि )—मध्यप्रदेशके किटासपुर त्रिआस्रान्त  
 एक अमीरिनी । इस अमीरानीके अधिकाशे एक पैतगी  
 ही । १८३० ई०में उनके पूर्वजोंने यह स्थान जमीरान्तरूप  
 पाया था । भूपरिमाण ३२ वर्ग मील ही । सोमी गांव  
 यहाँका प्रधान वाणिज्यस्थान है । यहाँ नामा तरहको  
 फसल लगती है ।

सोन ( सं० सि० ) सोडूतीति लुङ्-विलोडने भव् ।  
 १ पथज । २ कम्पापमान, दिखना सोलता । ३ परि-  
 वर्धमानगोल । ४ क्षणिक, क्षणमाँसुर । ५ उरलुक, अति  
 हस्तुक । ( पु० ) ६ तामसा मनु । ( भास्करवैजु० पथार )  
 ७ लिङ्ग मित्रय ।

सोलक ( सं० खो० ) १ लटकन जो बालियोंमें पहना  
 जाता है । यह मछलीके आकारका या किसी और  
 आकारका होता है । द्विर्वा ऐसे नथ या बालीमें पिरो  
 कर पहनतो है । २ कानकी लय, सोलको । ३ घंटी  
 वा घंटीके बोधमें लगा हुवा लटकन जो दिलामेंसे ह्पर  
 उपर टकरा कर घंटीमें लग कर जम् उरलग करता है ।  
 ४ घरधेमें मिट्टाका एक लट्टू । यह राठमें इतानिये  
 लगाया जाता है, कि उसको ऊपर या नीचे चरके राठ  
 उठा या दवा सके ।

सोलकी ( दि० खो० ) कानका यह भाग जो बालीके  
 किनारे ह्पर उपर मीथेको लटकता रहता है । इसमें छेद  
 करके गुच्छट वा बाली भादि पहनते हैं ।

सोलकट ( सं० पु० ) पृथग्दिताके अनुसार एक जनपद  
 जो इनामकोणमें है ।

सोनादिनेज ( सं० पु० ) सोनाके नामक मूर्त्त ।

सोता ( सं० खो० ) सोल-उच् । १ मित्र, मोन ।  
 २ लक्ष्मी । ३ पञ्चरा खो । ४ मनु दीप्तको माता ।  
 ५ एक योगिनिका नाम । ६ एक वृक्षका नाम । इसके  
 अन्तरेक बरल्लो ममन, ममय, ममय, ममन और ममने

को गुरु होते हैं । इसमें सात साल पर एक होतो है ।  
 ७६४ हाथ लम्बी ८६४ चौड़ी और  $\frac{3}{4}$  हाथ  
 ऊँची माव ।

सोला ( दि० पु० ) लट्टूकी एक मिश्रीना । यह एक  
 पंखा होता है जिसके दोनो निरी पर दो लट्टू होते हैं ।  
 सोलाक्षिहा ( सं० खो० ) पूर्णितोषणा, यह स्त्री  
 जिसको भारिं चरतातो हो ।

सोताक ( सं० पु० ) सोलनामा अर्थः । मूर्त्त । महादेव-  
 ने मूर्त्तका सोन नाम रखा था इसलिये मूर्त्तके सोताके  
 कहते हैं । ( मूर्त्तु० भी ( कागो-० )

सोलिका ( सं० खो० ) सोलनामि सुल-उच् । उच् भव  
 रथ्य । चाहूरो, घट्टी लामो ।

सोलिल ( सं० ति० ) लुङ्-विगर्ते मन् सोनः सोल्लेय  
 जातः इति । इत्थ, टोडा ।

सोलियो ( सं० ति० खो० ) पञ्चन प्रहृषियाती ।

सोलिम्यराज ( सं० पु० ) यैवकनिगण्डुके प्रमेता । ये  
 द्विपारके पुत और हरिदरके निर्य ये । इन्हीं घन-  
 रकार-चिन्तामणि, रत्नरत्नाचरित, यैवर्तायन, यैव  
 विनास या हरिविलास, यैवार्तजन, हरिविलासराज  
 और सोलियराजोप नामक और भी कितने यैवक प्रय  
 प्रपयन क्रिये ।

सोलुप ( सं० ति० ) गदितं लुम्पनीमि लुङ् पठ् भव् ।  
 १ बलिजप लुङ्, यज्ञ लामो । २ किसी वायके जिये  
 परम उरलुक । ३ घटी, घट्ट ।

सोलुपका ( सं० खो० ) सोलुङ्प भाषा लुङ्-उच् ।  
 सोलुङ्प, सोलुपका भाषा या धर्म, भाषय ।

सोलुम ( सं० ति० ) मूर्त्तं लुम्पनीमि लुङ् पठ् भव् ।  
 सोलु, सोलयो ।

सोलुपा ( सं० खो० ) कारनेको दूद प्रतिष्ठा ।

सोलुप ( सं० ति० ) पुनः पुनः उन्मज्जन्, वाः वाः  
 कारनेय का ।

सोलिय ( सं० खो० ) एक प्रकारका जाम । ( मसक १८८ )  
 सोल्य—एकप्रकारका भाषक क्षीमिकिके वर्णानिवा ।  
 सोल्यरदू—एकप्रकारका भाषक रिकरिमेद ।  
 सोप ( दि० खो० ) १ सोलकी । ( पु० ) २ सोलकी मति

का एक पक्षी। यह बटेरसे छोटा होता है और काश्मीर, मध्यप्रदेश तथा संयुक्तप्रान्तमें पाया जाता है। नर प्रायः मादासे कुछ अधिक बड़ा होता है। शिकारी इसका शिकार करते हैं। इसे गुरगा भी कहते हैं।

लोहा—अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलास्तर्गत एक नगर। यह अक्षां २६° २६' ३०" तथा देशां ८१° १' पूंके मध्य सई नदीके तट पर अवस्थित है। पूर्वार्ध और उन्नाव नगरके साथ यहाँका व्यापार चलना है।

लोहागढ़—पञ्जाबप्रदेशके बन्तु जिलान्तर्गत एक पर्वत।

मैदानी देलो।

लोगन ( अं० पु० ) अधिक पानोमें घुली हुई ओषधि। यह शरीरमें ऊपरसे लगाने, किसी पीडित अंगको धोने या तर रखने आदिके काममें आती है।

लेशशरायणि ( सं० पु० ) एक प्राचीन ग्रंथकर।

लोष्ट ( सं० पु० क्लो० ) लोष्टे इति लोष्ट घञ्, यद्वा तृपने इति लू ( लोष्टप्रकृतिः ) उष् ३।६२ इति क प्रत्ययेन निपात नात् साधुः। १ मृत्तिकाखण्ड, डेला। पर्याय—लोष्टु, दलि। २ लौहमल। ३ लेष्टु।

लोष्टक ( सं० पु० ) १ मृत्पिण्ड। २ चन्दन आदि रखनेकी वस्तु।

लोष्टघ्न ( सं० पु० ) लोष्टं हन्तीति हन-टक्। सेतोका यह औजार जिससे खेतके डेले फाड़ते हैं, पटेडा।

लोष्टदेव—दीनाक्रन्दनस्तोत्रके रचयिता तथा रम्यदेवके पुत्र। ये श्रीकण्ठचरितके प्रणेता मङ्गुके समसामयिक थे।

लोष्टन ( सं० क्लो० ) मृत्पिण्ड।

लोष्टभेदन ( सं० पु० ) भिनत्तीति मिठ्-र्यु, लोष्टस्व भेदनः लोष्टमङ्गसाधन मुद्रक, वह सुगन्ध जिससे डेला फाड़ा जाता है, पटेडा। पर्याय—लोष्टुभेदन, लोष्टघ्न, लोष्टुग्न, कोट्टिग, कोटोश।

लोष्टवर्द्धि ( सं० पु० ) लोष्टुर्द्धन, पटेडा।

लोष्टमय ( सं० क्लि० ) लोष्टस्वरूपे मयट्। लोष्टस्वरूप, डेलेके समान।

लोष्टवत् ( सं० क्लि० ) मृत्तिकानिर्मित, मिट्टीका बना हुआ।

लोष्टसर्वश—एक प्राचीन कवि।

लोष्टाक्ष ( सं० पु० ) एक ऋषिका नाम। ( संस्कारकीसुत्री )

लोष्टु ( सं० पु० ) लोष्ट, डेला।

लोष्ट्र ( सं० पु० ) लोष्ट-रन्। लोष्ट, डेला।

लोहर—पञ्जाबप्रदेशके काङ्गड़ा जिलेके स्पिन-राज्यान्तर्गत पर्वतपृष्ठस्थ एक गण्डग्राह। यह अक्षां ३२° २८' ३०" तथा देशां ७७° ४६' पू० तक विस्तृत है तथा समुद्रकी तलसे १३४०० फुट ऊँचा है। इसके अलावा और ऊँचे भी गाँव इतने ऊँचे पर नहीं हैं।

लोहँड़ा ( हि० पु० ) १ लोहेका एक प्रकारका पात जिसमें खाना पकाया जाता है। कभी कभी इसमें दस्ता भी लगा रहता है। २ तसला।

लोह ( सं० पु० क्लो० ) तृपनेनेनेति लू बाहुलकात् ष। स्थानमवगत धातुविशेष, लोहा। संस्कृत पर्याय—लौह, लोङ्गक, सर्वतोत्तम, सघिर। तीक्ष्ण, मुण्ड और कान्त-भेदसे लोह तीन प्रकारका होता है। मुण्डलोहके पर्याय—मुण्ड, मुण्डायस, हृषत्सार, शिलात्मज, अश्मज। कान्त लोहके पर्याय—आर, ह्यायस। तीक्ष्णलोहके पर्याय—तीक्ष्ण, शक्यायस, शक्य, पिण्ड, पिण्डायस, शठ, आयस, निशित, तोर, षड्ग, मुण्डज, वयस, चित्रायस, चोमज। वैशानिक विवरण लौह शब्दमें देखो।

वैद्यक मतसे इसका गुण—रुक्ष, उष्ण, तिक्त, वात, पित्त, कफ, प्रमेह, पाण्डु और शूलनाशक।

मनुमें लिखा है, कि अश्म ( पत्थर ) से लोहेकी उत्पत्ति होती है।

वैद्यकमें लोहेकी उत्पत्ति, गुण और मारणादिका विषय इस प्रकार लिखा है।

पुराकालके देव दानव युद्धमें देवताओं द्वारा लोमिल नामक दानव मारा गया था। उसीके शरीरसे अनेक प्रकारके लोहेकी उत्पत्ति हुई। लौह विशेष उपकारक है। सेवन या औषधमें इसे शोधन कर व्यवहार किया जाता है। शोधित लौह विशेष उपकारी है। अशोधित लौहका सेवन करनेसे पाण्डुता, कुष्ठ, हृद्रोग, शूल, अश्मरी, हलास आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इससे मृत्यु तक भी हो सकती है। इसका व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिये।

शोधनप्रणाली—लोहेका धारीक पत्तर बना कर अग्नि में डलावे। पीछे गरम रहते उस पर यथाक्रम तेल, मट्ट,



हे। ये गण ये सब हैं,—बिकला, निसोय, दन्ती, बिकट्ट, तालमूली, वृद्धारक, पुनर्णवा, अडू सपल, चिता, अदरक, विडङ्ग, भृङ्गराज, मिलाँव, सोंठ, बनारका पत्ता, सोयां, तुलसी, मोया, भोल, गुडूची, मण्डुकपर्णी, हस्ति कर्णपत्रास, कुलिश, केशराज, माण, खण्डितकर्ण और दावीशाक इन सब द्रव्योंसे लोहमें पुट देना होता है।

(रत्नेन्द्रारस०)

लोहमुक्तिका (सं० खो०) लाल रंगकी मुक्ता।

लोहमेखल (सं० त्रि०) धातुनिर्मित मेखलाधारी, जो लोहेके मेखला पहने हो।

लोहमेखला (सं० खो०) स्कान्दचर मातृभेद। (भारत ६ पर्व)

लोहपट्टि (सं० खो०) एक प्राचीन नगरका नाम।

लोहर (सं० खो०) जनपदभेद, शायद लाहौर।

(राजतर० ४।१७७)

लोहद्रव्य (सं० खो०) लोहकट्ट।

लोहद्राजक (सं० खो०) रीत्य, रूप।

लोहलंगर (हि० पु०) १ जहाजका लङ्गर। २ बहुत भारी वस्तु।

लोहल (सं० त्रि०) लोहमिव लातीति ला-क। १ अथक धातु अत्युचित धाणी। २ लोहद्राहक, लोहा खरोदनेवाला। (पु०) ३ शृङ्खलाचार्य।

लोहलिङ्ग (सं० खो०) रक्तपूर्ण स्फोटकादि।

लोहवत् (सं० त्रि०) लोहेके समान।

लोहवर (सं० खो०) लोहेपु सर्वतैजसेपु वरं। स्वर्ण, सेना।

लोहधर्मन् (सं० खो०) लोहेका धरतार।

लोहघात (सं० पु०) धान या चावलका एक भेद।

लोहशङ्खु (सं० पु०) १ मनुके अनुसार एक नरकका नाम। (मनु ४।६०) २ लोहनिर्मित कीलक, लोहेका पना खूँटा।

लोहश्लेषण (सं० पु०) लोहानि सर्वतैजसानि श्लेषयति धोयतीति श्लेषि-स्यु। टड्णुणश्चार, सोहागा।

लोहसङ्कर (सं० खो०) लोहानां सङ्करो यत्। १ यत्-लोह, एक प्रकारका लोहा। २ मिश्रित नैत्रस।

लोहसार (सं० पु०) १ फीलाद। २ फीलादकी बनी जड़ी।

लोहसिंह—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूप्रमाण ६० वर्गमील है। इसमें रई गाँव लगते हैं। अधिकांश प्रजा गोंड और सदाजातीय है। ग्राम-समीपवर्ती स्थानमें वे लोग खेतो-बारी करते हैं। १८५७ ई०में सिपाहीविद्रोहके समय विद्रोहि-दलके नेता सुरेन्द्र शाहके अग्रान यहाँके अधिवासिधोंने घोर अत्याचार किया था। स्थानीय सरदार चन्द्रतकके भाई मधु डाकूर मूकरी हत्याके अपराधमें प्राणदण्डमें दण्डित हुए। विद्रोह-शान्तिके बाद सरदार चन्द्रतकने अङ्गरेज-राजको शान्तिस्थापना अङ्गोकार-पत्र दिया था, इस कारण वे पुनः राजा बनाये गये थे।

लोहदारक (सं० पु०) मनुके अनुसार एक नरकका नाम। लोहगो (हि० खो०) वह छोड़ो जिसके एक किनारे पर लोहा लगा होता है।

लोहा (हि० पु०) १ लोह और जोह देना। २ अथ, हथियार। ३ लोहेको बनाई हुई कोई चाज या उपकरण। ४ लाल रंगका वेल। (त्रि०) ५ लाल। ६ बहुत अधिक कड़ा, कठोर।

लोहाकर (सं० खो०) लोहमय आकरं। लोहेका आकर, लोहेकी छान।

लोहाकर्ण (सं० त्रि०) लोहितवर्णं कर्णविशिष्ट, लाल कानवाला। (कात्या० श्रौ० २।२।१।२।६)

लोहाख्य (सं० खो०) लोहमेव आख्या यस्य। १ अगुरु, अगर। २ लोह, लोहा।

लोहागड़ा—बङ्गालके यशोर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २३° ११' उ० तथा देशा० ८६° ४१' पू०के मध्य अवस्थित है। मधुप्रती नदी यहाँसे थोड़ी ही दूर पड़ता है। यहाँ गुड़ और चीनीका जोमें कारखान चलता है। बाजुरा यादि निरुत्पत्ती ग्रामवासो गुड़के बदले चावल खरोद ले जाते हैं। उस गुड़से यहाँ अच्छी चीनी तैयार होती है। यह चीनी कलकत्ता और बाखरगंजमें भेजी जाती है। यहाँ एक कालीकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। दूर दूर देगके लोग उस मूर्तिको पूजा करने आते हैं।

लोहाघाट—युक्तप्रदेशके हुमायूँ जिलान्तर्गत एक सेना-वास। यह अक्षा० २६° २४' उ० तथा देशा० ८०° ८' पू०के मध्य लोहानदीके बायं किनारे अवस्थित है।





अनाथों प्राम्यदलपतिगण एक समय सभ्यताके संमिश्रणसे सामन्तराज्यरूपमें गिने जाते थे। इन दलपतियोंमें जो दलबलके साथ शत्रुके आनेके पथ घाटीको रक्षा करतेथां वह घाटवाल वा सरदार कहलाता था। अभी ये सब सरदार अपने देश और समाजमें पूर्णवत् पूज्य हैं। वहाँ अंगरेजों शासन फैलने पर भी मुएजा वा भीराउन-नेताओंके अधिकारमें उतना धक्का नहीं पहुँचा है। परन्तु अंगरेजोंके अधीन रहनेसे वे लोग अब पहलेकी तरह रणमें वा लूटमें प्राप्त वन्दियोंकी नृशंसरूपसे हत्या और अमानुषिक महिषोत्सर्ग आदि पाशचिक अत्याचार करने नहीं पाते। बृटिश-गवर्मेंटके कठोर शासनसे वे अभी शान्त हो गये हैं।

लगभग १६१६ ई०में मुगल-सम्राट् जहांगीर बादशाहके राज्यकालमें मुगल-सेनाने कोका (असन् छोटा नामपुर)को अधिकार किया। इस समय यहाँकी किसी किसी नदीमें हीरा मिलता था। युद्ध-विजय और हीरा मिलनेका समाचार पा कर दिल्ली-दरवारमें बड़े धूमधामसे आनन्दोत्सव मनाया गया था। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त घटनाके बाद १६४०-६० ई०के मध्य मुसलमानोंने कई बार पलामू पर आक्रमण किया, पर एक बार भी वे कृतकार्य न हुए। आखिर १६५० ई०में दाऊद खाने पलामू-दुर्गको आक्रमण किया और जीता। उनके चंशधरोंने उस दुर्गमें ३० फुट लम्बे और १२ फुट चौड़े एक बड़े चित्रपट पर उनका आक्रमण-कौशल लिख दिया है।

दाऊद द्वारा पलामू-दुर्ग जीते जानेके बादसे ले कर १७२२ ई० तक यहाँ और कोई ऐतिहासिक उल्लेखनीय घटना देखनेमें नहीं आती। शैथिल्य वर्षमें स्थानीय सामन्त-राज रणजित् राय मुसलमानोंसे मार डाले गये। पीछे उन्होंने मतोजे जयलण्ण राय गद्दी पर बैठे थे। कुछ दिन राज्यसुखका सम्भोग करके जयलण्णने एक छोटी लड़ाईमें प्राण-निसर्जन किया। पीछे उनकी स्त्री और परिवारके सभी लोगोंने बिहार प्रदेशके अन्तर्गत मेगरा नामक स्थानमें आ कर यहाँके कानून-गो उदयन्त रायका आश्रय लिया। उदयन्त राय १७३० ई०में मृत राजा रणजित् रायके पोत्र गोपाल रायको पटनेमें लाये थे, पीछे यहाँके

अंगरेज एजेण्ट कप्तान कर्नाकके सामने आ कर पलामू-राजका यथार्थ उत्तराधिकारी घोषित किया। कानून-गोकी प्रार्थना पर कप्तान कर्नाकने कहा, कि गोपाल रायको राजसिंहासन पर बैठनेमें अंगरेज-गवर्मेंटकी ओरसे मदद पहुँचायेंगे। तदनुसार उन्होंने उस समयके पलामू-राजको परास्त कर गोपाल राय और उनले दो भाइयोंको पांच वर्षकी सनद दी। तभीसे पलामू विभाग अंगरेजाधिकृत रायगढ़ जिलेके अन्तर्भूक्त हुआ। इस घटनाके दो वर्ष बाद कानून-गो उदयन्त रायके हत्या-काण्डमें लिप्त रहनेके अपराधमें विश्वासघातक गोपाल राय कारागृह हुए और वसन्त राय गद्दी पर बैठे। १७८४ ई०की पटना नगरमें गोपाल रायकी मृत्यु हुई। राजा वसन्तरायका भी उसी साल देहान्त हुआ। पीछे चूडामण राय राजसिंहासन पर बैठे। वे १८१३ ई०में श्रेणजालसे जड़ित हो गये इस कारण वाकी खजाना न देनेके कारण बृटिश गवर्मेंटने उनकी पलामू सम्पत्ति खरीद ली।

गया जिलेके अन्तर्गत देवविभागके राजा फतेनारायण सिंहकी सहायतासे उपकृत हो अंगरेज गवर्मेंटने प्रत्युपकार और पुरस्कार-स्वरूप १८१६ ई०में उन्हें पलामू सम्पत्ति जागीर-स्वरूप दे दी। राजा फतेनारायण न्याय-पूर्वक राजस्य नहीं उगाड़ते थे तथा प्रजा पर भारी अत्याचार करते थे। फलतः सभी प्रजा वागी हो गई। १८१८ ई०में अंगरेज-गवर्मेंटने वह सम्पत्ति पुनः हस्तगत कर ली।

अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद पलामूने शान्तभाव धारण किया है। १८३१ ई०को छोटा-नागपुरमें कोल विद्रोह उपस्थित हुआ। यही इतिहासमें 'युवांडू-विद्रोह' नामसे प्रसिद्ध है। छोटा-नागपुरके महाराजके आत्मोप और अनुचरोंका अत्याचार ही इस विद्रोहका कारण था। १८३८ ई०के मार्च मासमें अंगरेजोंके यत्नसे वह रुक गया। मानभूम देखो।

इस भीषण विद्रोहमें कोलगण ऐसे उत्तेजित हो गये थे, कि बहुत दून-खराबोंके बाद भी वे शान्त न हुए। बहुतसे ग्राम लूटे और जलाये गये तथा नररक्तसे पृथ्वी तरावीर की गई। पीछे गङ्गानारायण आदि दस्युदलनेता



घार-राजके दूत-स्वरूप अङ्गरेज सेनापति लार्ड लेकके पास गये और राजकीय सम्बन्ध ले कर दोनोंमें जो मनमुटाव चला था रहा था उसे इन्होंने दूर कर दिया। इस कार्यके पुरस्कार-स्वरूप इन्हें अलवार-पतिले लोहार देग मिला तथा लार्ड लेकने कृतज्ञ हृदयसे इन्हें फिरोजपुर परगनेका शासनभार समर्पण किया। अङ्गरेजोंके साथ उन ही जो संधि हुई थी, उसमें उन्होंने युद्धयिग्रहमें मदद देनेका वचन दिया था।

अहादकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के समसुद्दीन खाँ सिंहासन पर बैठे। किन्तु १८३५ ई०में वे रिसिडेण्ट मि० फ्रेजरके हत्याकाण्डमें लिप्त थे, इस अपराधमें दिल्ली नगरमें उन्हें फांसी हुई। उनका फिरोजपुर परगना भी जब्त किया गया। आखिर अङ्गरेजराजने अमीन उद्दीन खाँ और जियाउद्दीन खाँ नामक समसुद्दीनके दो भाईयोंके बीच लोहार सम्पत्ति बराबर बराबर बाँट दी। १८५७ ई०के गदरमें उक्त दोनों भाई दिल्लीमें रहते थे। विद्रोहियोंने जब दिल्लीमें घेरा डाला, तब अङ्गरेज-प्रति-निधियोंकी ओरसे दोनों भाई पर कड़ा पहरा बैठाया गया था। वे विद्रोहमें किसी तरह शामिल न थे, इस कारण विद्रोह-दमनके बाद अङ्गरेज-गवर्मेंटने उन्हें मुक्ति दे कर फिरसे राजभोग करने दिया था। १८६६ ई०में अमीने उद्दीनकी मृत्यु हुई। इस समय उनके पुत्र अलाउद्दीन लोहारकी नवाबी मसनद पर बैठे। पहले अङ्गरेजराजके बन्दीवस्तानुसार अमीनके भाई जियाउद्दीन सहकारी नवाब हुए सही, पर वे राज्यके शासनकार्यमें किसी तरह हस्तक्षेप न कर सकते। वे अङ्गरेजराज द्वारा निर्दिष्ट १८००० रु० वार्षिक वृत्ति ले कर ही मृतुष्ट थे।

अङ्गरेज गवर्मेंटके विश्वास-भाजन होने तथा अङ्गरेजराजका आनुगत्य सशोकार करनेके कारण भारत-सरकारने १८७४ ई०में अलाउद्दीनको नवाबकी उपाधि तथा गोद लेनेका अधिकार दे कर एक सनद दी। १८८४ ई०में राजा पर बहुनोंका कर्ज हो गया, इस कारण सम्पत्तिकी रक्षाके लिये उन्होंने १२ वर्षके खादे पर स्थानीय गवर्मेंटसे ऋण लिया। इस समय लोहार-राज्यका परिचालन भार अलाउद्दीनके पुत्रके हाथ सौंपा गया। नवाब अलाउद्दीन दूसरे सामन्त सियाउद्दीनकी तरह

वार्षिक १८ हजार रुपये वेतन पाने लगे। १८८४ ई०में अलाउद्दीनकी मृत्यु हुई। अब उनके लड़के अमीर उद्दीनने राज्यशासनको वागडोर अपने हाथ ली। कुछ समय बाद वे के, सी, आई, ई-की उपाधिले भूषित हुए। १८६३-से १६०३ ई० तक उनके भाईने राजकार्य चलाया, क्योंकि वे मालेर कोटला राज्यके सुपरिन्टेण्डेण्ट बनाये गये थे। इन्हें फुरसत बहुत कम मिलती थी। वर्त्तमान नवाबका नाम है कैप्टेन नवाब पैजुद्दीन अहमद खाँ बहादुर फखरुद्दीन। इन्हें ६ तोपोंकी संलामी मिलती है। राजकी गाय कुल मिला कर ६६ हजार रुपये है। नवाबकी १२५ क्युबिट मालवा अफीमका एक बक्स रखनेका अधिकार है। इसके लिये इन्हें २८० रुपये कर देने पड़ते हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २८' २४' उ० तथा देशा० ७५' ५२' पू० हिस्सारसे ५२ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या टाई हजारके लगभग है। यहाँ एक संमय लोहेकी खान थी जिसमें लोहार लोग काम करते थे। उसी लोहारसे इसका लोहार नाम हुआ है। यहाँ नवाबका प्रासाद, कार्यालय, अस्पताल, जेल, डाक और तार-घर है।

लोहारमल (सं० ह्नी०) लोहस्य अमलमिव। १ एक तोर्षका नाम। बराडपुराणमें इस तोर्षका माहात्म्य वर्णित है। २ लौहकोलक, लोहेका खूँटा।

लोहारवत्—राजपूतानेके जोधपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६' ५६' उ० तथा देशा० ७२' ३६' पू० जोधपुर शहरसे ५५ मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

लोहासुर (सं० पु०) असुरमेद। लोहासुर-माहात्म्यमें इसका चियप वर्णित है।

लोहि (सं० ह्नी०) श्वेतदङ्गण, सफेद सोहागा।  
लोहिका (सं० खी०) लोहतस्त्यतेति लोह-टन्व। लीह-पात, लोहेका बरतन। पर्याय—खरसेन्दि, खरपात।  
लोहित (सं० ह्नी०) रङ्गते इति रङ् (रङ्गन् चो वा। उण्-३६४) इति इत्त्वं रस्य लत्वं। १ रक्तगोशीर्ष। २ कुङ्कुम, फेसर। ३ रक्तचन्दन, लाल चन्दन। ४ पचङ्ग, पीतल। ५ हरिचन्दन। ६ तृणकुङ्कुम। ७ रघिर; लह। ८ युद्ध,

अङ्गरेजोंके हाथसे परास्त हुए, किन्तु उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया। इस घोर संघर्षके साग फोलोंने उग्रमत्त हो कर यहाँके पहाड़ी प्रदेशको मथ डाला, किन्तु पलामू-विभागकी जरा भी क्षति न हुई। इस विद्रोहके बाद अङ्गरेज-गवर्मेण्टके शासन-विभागीय जो सय परिचरान हुआ है, यह हजारोंवाम जिलेके विचरणमें दिया गया है। हजारीवाम देतो।

उपरोक्त सुपाड़-विद्रोहके कुछ समय बाद ही चेरो और खरवार जाति बागी हो गई। १८३२ ई०में उसका दमन किया गया। तभीसे ले कर सिपाहीविद्रोह तक यहाँ और किसी प्रकारकी घटना न घटी। उसी साल खरवार जाति स्थानीय राजपूत जमींदारोंके विरुद्ध खड़ी हुई। उसका दल धीरे धीरे परिपुष्ट होता गया। इस समय रामगढ़के विद्रोही सेना-दलने पलामू नगरमें आश्रय ले कर वहाँके राजद्वेषी जमींदार नोलाम्बर सिंह और पीताम्बर सिंहकी सहायतासे विद्रोहकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ा दी। २६ नवम्बर मन्द्राज-पदातिक दल और रामगढ़के कुछ राजभक्त सेनाकी सहायतासे यह विद्रोह शान्त हुआ। सात बरोमा-दुर्गके सामने विद्रोहि दल परास्त हुआ। नोलाम्बर और पीताम्बर बन्दिरूपमें कारागार भेज दिये गये। आखिर अङ्गरेज गवर्मेण्टके विचारसे उन्हें फौसीकी सजा हुई।

विशेष विवरण रांची गन्धमें देतो।

२ रांची जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २३° २६' ३०" और देशा० ८४° ४१' ५०"के मध्य रांची शहरसे ४७ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। १८४० ई० तक यह रांची जिलेका सदर रदा। १८८८ ई०में यहाँ म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। यहाँ एक छोटा बुध्दाश्रम है।

लोहारा—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत घामतरी तहसीलकी एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ३६८ वर्गमील है। इसमें १२० ग्राम लगने हैं।

इसके पूर्व और पश्चिममें तेन्दुला और कर्कटा नदी बहती है। इसके सिपा यहाँ और भी कितनी छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं। उक्त पर्यतमालाका एक अंश दिल्ली पहाड़ नामसे मराहूर है। उसकी ऊँचाई २०००

फुट है। उसके ऊपर जो जङ्गल हैं उसमें सिपुन, गाल, महुआ और कुसुम वृक्ष पाये जाते हैं। इन सब जङ्गलोंमें लाख, मोम और मधु संग्रह कर गोंड लोग बाजारमें बेचने आते हैं। बाजार लोग यहाँसे पटसन और तूँ बरौद ले जाते हैं। यहाँ अनिज लोह गलाया जाता है। यहाँके अधिकारीने गोंड जातीय रजपुरराजकी लड़ाईमें खासी मद्द पढ़ेचाई थी, इस कारण इस पंशके किसी राजाने १५३८ ई०में यह सम्पत्ति जागीर-स्वरूप पाई। लोहारा ग्राम खूब समृद्धिसम्पन्न है। यहाँ सरकारी विद्यालय, धाना और जनसाधारणके वायुसेवनाथ सुन्दर उद्यान है।

लोहारा-साहसपुर—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत दुर्ग तहसीलकी एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण १६७ वर्गमील और जनसंख्या ६ हजारके करीब है। इसमें कुल ८५ ग्राम लगते हैं। शालटिकी पहाड़का जंगल दल निम्नप्रदेश ले कर इस जमींदारीका अधिकांश-स्थान संगठित है। प्रसिद्ध पटारियापंशके साग यहाँके जमींदारोंका सम्बन्ध है। यह स्थान बहुत उपजाऊ है। यहाँ तरद तरदकी काफी फसल लगती है। लोहारा-साहसपुर यहाँका प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान है। लोहारी (सं० खो०) लोहाराका काम।

लोहारी गारग—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलान्तर्गत एक जलप्रपात। यह अक्षा० ३७° ५३' ३०" तथा देशा० ७८° ४४' ५०"के मध्य विस्तृत है। कई पहाड़ोंकी बड़ी तेजीसे लक्षिता हुआ यह जलप्रपात भागीरथीमें आ कर मिला है। यहाँ भागीरथीके किनारे एक चाँझा रास्ता है। प्रपातसे १० मील दक्षिण तक नदीतीरस्थ रास्तेकी बग-रमें ६ रस्सीका फुलेला-तुल है।

लोहाय—पञ्जाबप्रदेशके हिमाचल विभागका एक देगी राउप। यह दिल्ली विभागके कश्मिरके राजकीय तरनायपानमें परिचालित होता और अक्षा० २८° २१' से २८° ४५' ३०" तथा देशा० ७५° ४०' से ७५° ५७' ५०"के बीच पड़ता है। भूपरिमाण २२४ वर्गमील और जनसंख्या २० हजारसे ऊपर है। इसमें लोहाय नामक १ शहर और ५६ ग्राम लगने हैं। अष्टदशवत्स नामक एक मुगल इस राजपंशके प्रतिष्ठाता थे। १८०६ ई०में ये अल-

घार-राजके दूत-स्वरूप अङ्गरेज सेनापति लार्ड लेकके पास गये और राजकीय सम्बन्ध ले कर दोनोंमें जो मनमुटाव चला आ रहा था उसे इन्होंने दूर कर दिया। इस कार्यके पुरस्कार-स्वरूप इन्हें अलवार-पतिसे लोहार देग मिला तथा लार्ड लेकने कृतज्ञ हृदयसे इन्हें फिरोजपुर परगनेका शासनभार समर्पण किया। अङ्गरेजोंके साथ उनको जो संधि हुई थी, उसमें उन्होंने युद्धचिग्रहमें मदद देनेका वचन दिया था।

अलाउद्दीन मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के समसुद्दीन खाँ सिंहासन पर बैठे। किन्तु १८३५ ई०में वे रेसिडेण्ट मि० फ्रेजरके हत्याकाण्डमें लिप्त थे, इस अपराधमें दिल्ली नगरमें उन्हें फांसी हुई। उनका फिरोजपुर परगना भी जप्त किया गया। आखिर अङ्गरेजराजने अमीन उद्दीन खाँ और जियाउद्दीन खाँ नामक समसुद्दीनके दो भाईयोंके बीच लोहार सम्पत्ति बराबर बराबर बाँट दी। १८५७ ई०के गद्दरमें उक्त दोनों भाई दिल्लीमें रहते थे। विद्रोहियोंने जय दिल्लीमें घेरा डाला, तब अङ्गरेज-प्रतिनिधियोंकी ओरसे दोनों भाई पर बड़ा पहरा बैठाया गया था। वे विद्रोहमें किसी तरह शामिल न थे, इस कारण विद्रोह-दमनके बाद अङ्गरेज-गवर्नेण्टने उन्हें मुक्ति दे कर फिरसे राजभोग करने दिया था। १८६६ ई०में अमीन उद्दीनकी मृत्यु हुई। इस समय उनके पुत्र अलाउद्दीन लोहारकी नवाबी मसनद पर बैठे। पहले अङ्गरेजराजके बन्धोवस्तानुसार अमीनके भाई जियाउद्दीन सहकारी नवाब हुए सही, पर वे राज्यके शासनकार्यमें किसी तरह हस्तक्षेप न कर सकने। वे अङ्गरेजराज द्वारा निर्दिष्ट १८००० रु० वार्षिक वृत्ति ले कर ही संतुष्ट थे।

अङ्गरेज गवर्नेण्टके विश्वास-भाजन होने तथा अङ्गरेजराजका आनुगत्य सहीकार करनेके कारण भारत-सरकारने १८७४ ई०में अलाउद्दीनको नवाबकी उपाधि तथा गोद लेनेका अधिकार दे कर एक सनद दी। १८८४ ई०में राजा पर बहुतांश कर ज्ञे हो गया, इस कारण सम्पत्तिकी रक्षाके लिये उन्होंने १२ वर्षकी वादे पर स्थानीय गवर्नेण्टसे श्रण लिया। इस समय लोहारके राज्यका परिव्यालन भार अलाउद्दीनके पुत्रके हाथ-सीपा गया। नवाब अलाउद्दीन दूसरे सामन्त सियाउद्दीनकी तरह

वार्षिक १८ हजार रुपया वेतन पाने लगे। १८८४ ई०में अलाउद्दीनकी मृत्यु हुई। अब उनके लड़के अमीर उद्दीनने राज्यशासनको बागडोर अपने हाथ ली। कुछ समय बाद वे के, सी, आई, ई-की उपाधिसे भूषित हुए। १८९३-से १९०३ ई० तक उनके भाईने राजकार्य चलाया, क्योंकि वे मालेर कोटली राज्यके सुपरिण्डेण्ट बनाये गये थे। इन्हें फुरसत बहुत कम मिलती थी। वर्तमान नवाबका नाम है कैप्टेन नवाब पैजुद्दीन अहमद खाँ बहादुर फखरुद्दीन। इन्हें ६ तोपोंकी संलामी मिलती है। राजकी गाय कुल मिला कर ६६ हजार रुपया है। नवाबकी १२५ वयुविट मालवा अफीमका एक बक्स रखनेका अधिकार है। इसके लिये इन्हें २८० रुपये कर देने पड़ते हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २८° २४' ३०" तथा देशा० ७५° ५२' ५०" हिस्सारसे ५२ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारके लगभग है। यहाँ एक समय लोहेकी खान थी जिसमें लोहार लोग काम करते थे। उसी लोहारसे इसका लोहार नाम हुआ है। यहाँ नवाबका प्रासाद, कार्यालय, बरपताल, जेल, डाकू और तार-घर है।

लोहारगल (सं० ह्जो०) लोहस्य अंगलमिव। १ एक तीर्थका नाम। बराहपुराणमें इस तीर्थका माहात्म्य वर्णित है। २ लौहकीलक, लोहेका खूँटा।

लोहावत्—राजपूतानेके जोधपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६° ५६' ३०" तथा देशा० ७२° ३६' ५०" जोधपुर शहरसे ५५ मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

लोहासुर (सं० पु०) असुरमेद। लोहासुर-माहात्म्यमें इसका विषय वर्णित है।

लोहि (सं० ह्जो०) श्वेतदङ्कण, सफेद स्तोहाग।  
लोहिका (सं० खो०) लोहतस्त्यतेति लोह-टन्। लोहपात, लोहेका बरतन। पर्याय—बरसेन्दि, बरपात।  
लोहित (सं० ह्जो०) रद्यते इति रद्ह (बदेल्च लो वा। उष्य ३१४) इति इत्तन् रस्य लट्त्वं। १ रक्तगोशीर्ष। २ कुंकुम, केसर। ३ रत्नचन्दन, लाल चन्दन। ४ पत्तङ्ग, पीतल। ५ हरिचन्दन। ६ तृणकुंकुम। ७ रघिरं, लह। ८ युद्ध,

लपार्द्र । १ सरोवरविशेष । ( मत्स्यपु० १२०।१२ )  
 १० माणिस्य । ( पु० ) ११ नद्विशेष । यह प्रलुप्त-  
 की एक शाखा है । लोहित्य देखो । १२ सागरविशेष ।  
 इन सागरका जल लाल होता है इसलिये इसको  
 लोहित या लालसागर कहते हैं । यहां घरण रहते  
 हैं । ( भास्त वन० ) १३ गौम । ( श्रुत्यंहिता ६८ )  
 १४ रोहिण मत्स्य, रोह मछली । १५ मृगविशेष ।  
 १६ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप । १७ सुरभेद, द्वादश  
 मन्थ्यतरके एक देवता । १८ मसूर, मसुरी । १९ रक्ताजु ।  
 २० रक्तशालि, लाल धान । २१ घलभेद । २२ पर्वत-  
 विशेष । ( मत्स्यपु० १२०।११ ) २३ कुशाद्वीपस्य वर्षभेद ।  
 ( मत्स्यपु० १२१।१५ ) २४ चक्षुरोगविशेष, आंखकी एक  
 बीमारी । ( शान्तिपरस० १।६।८० ) २५ नागभेद । २६ हृद-  
 विशेष । ( हरिवंश ) ( ति० ) २७ रक्तवर्ण, लाल । २८ रक्त-  
 वर्णयुक्त, लाल रंगका ।

लोहितक ( सं० क्ली० ) लोहित मित्र श्वार्थ कन् । १ रीति ।  
 २ कांस्य, कांसा । ( पु० ) लोहित एव स्वार्थे कन् ।  
 ३ मङ्गल प्रद । ४ पदारामणि । ५ घान्त्यभेद, एक  
 प्रकारका धान । ६ धौडस्तूपभेद । चीनपरिम्राजक  
 मृगचतुष्टय इस पर्वतको देख गये हैं । ७ आज कलके  
 रोहितक नगरका प्राचीन नाम ।

लोहितकनमाप ( सं० ति० ) लाल वर्ण चिह्नयुक्त, चित्त-  
 कपरा ।

लोहितकृत—एक प्राचीन जनपद, सम्भवतः लोहित  
 पर्वतके पासका स्थान । ( हरिवंश )

लोहितकृष्ण ( सं० ति० ) कृष्णाम वर्ण, गाढ़ा लाल ।

लोहितक्षय ( सं० पु० ) १ रक्तक्षय, लहका क्षय होना ।  
 २ रक्तनाश, गूनकी घराबी होना । ३ रक्तक्षरण या  
 मोक्षण, लह गिरना ।

लोहितक्षयक ( सं० ति० ) रक्तानपता रोगप्रसूत ।

लोहितशौर ( सं० ति० ) रक्तवर्ण गाढा दुग्धक्षरणशाल ।

लोहितगङ्गा ( सं० क्ली० ) १ प्राचीन जनपदभेद । ( अथ्य० )  
 २ जहां गङ्गा लाल दिगार पड़ती है ।

( पाणिनि २।१।२१ भाष्य )

लोहितगङ्गाक ( सं० क्ली० ) प्राचीन स्थानभेद ।

लोहितग्रीव ( सं० पु० ) लोहित रपतपण भ्रिया यस्य ।  
 अग्नि । ( भास्क०पु० ६६।५६ )

लोहितचन्दन ( सं० क्ली० ) लोहित चन्दनमिव । १ कुंभुज,  
 केसर । २ रक्तचन्दन, लाल चन्दन ।

लोहितजहनु ( सं० पु० ) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।  
 ( भाष्य०भौ० १।२।१५ )

लोहितत्व ( सं० क्ली० ) १ लोहितका भाव या धर्म ।  
 २ लोहितवर्ण, लाल रंग ।

लोहितध्वज ( सं० ति० ) १ लालवर्ण पताकायुक्त । ( भास्व  
 उद्योगधर्म ) ( पु० ) २ सम्प्रदायभेद । ३ पूण, सुपाठी ।  
 ( पा ५।३।१२२ )

लोहितपाददेश ( सं० पु० ) एक देशका नाम ।

लोहितपिचित्र ( सं० ति० ) रक्तपिचिरीगो, जिससे रक्तगिच  
 की बीमारी हुई हो ।

लोहितपुष्प ( सं० ति० ) लालवर्ण पुष्पधारी, रक्तकुसुम-  
 समन्वित ।

लोहितपुष्पक ( सं० पु० ) लोहित पुष्पमस्य कप् । दाड़िम-  
 गृह, अनारका पेड़ ।

लोहितमुषित ( सं० स्त्री० ) लाल मुपता ।

लोहितमृत्तिका ( सं० स्त्री० ) लोहिता मृत्तिका ।  
 १ गेरिक, मेरु । २ रक्तवर्ण मृत्तिका, लाल मिट्टी ।

लोहितराम ( सं० पु० ) लाल रंग ।

लोहितयत् ( सं० ति० ) रपत सद्गता, रपतयुक्त ।

लोहितयासस् ( सं० ति० ) रपतवर्ण वस्त्रमुपत, लाल  
 कपड़े वाला ।

लोहितशतपत्र ( सं० क्ली० ) रक्तोत्पल, लाल पत्र ।  
 ( भागवत ५।२।५।० )

लोहितशयल ( सं० ति० ) चित्तकपरा ।

लोहितसारङ्ग ( सं० ति० ) लाल बिन्दुविनिष्ट ।

लोहिता ( सं० स्त्री० ) लोहित-त्रिणां टाप् । १ क्रोधादि-  
 अन्य रक्तवर्णा, यह स्त्री जो क्रोधसे लाल हो गई हो ।  
 २ यराहमाता, याराही । ३ रक्त पुनर्णवा ।

लोहिताक्ष ( सं० पु० ) लोहिते भक्षिणी यस्य ( उद्भव्यदयोः  
 साकृत् कप् ) १ शिल्पु । २ कोबिल, कोबल । ३ लाल  
 रंगका भक्ष या पागा, सुविदितने वैदुर्य और काञ्चनमप  
 कृष्ण और लोहित भक्ष या पागा तीव्र कराय था ।

(भारत ४।१।१२) ४ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप।  
 ५ स्कन्दानुचरभेद। (भारत ६ पर्व) ६ ऋषिभेद। (त्रि०)  
 ७ रक्तवर्ण चक्षुयुक्त, जिसकी आंखें लाल हों।  
 लोहिताक्षी (सं० स्त्री०) लोहिताक्ष स्त्रियां डीप्। १ रक्त-  
 लोचनी, यह जिसकी आंखें लाल हो। २ स्कन्दानुचर  
 मातृभेद (भारत, षष्ठ्यपर्व) ३ जानुसन्धि और बाहु-  
 सन्धि, घुटना और कंधुनि। ४ जानु और बाहुका सन्धि-  
 स्थान।  
 लोहितानिरी (सं० पु०) पर्यंतभेद। (पा ६।३।११७)  
 लोहितान्न (सं० पु०) लोहितं अन्नं यस्य। १ मङ्गल प्रद।  
 २ कम्पिल्लक वृक्ष, कमीला नामक पेड़।  
 लोहितानन (सं० पु०) लोहितमाननं मुखं यस्य।  
 १ नकुल, नेवला। २ रक्तवर्ण मुख, लाल मुँह।  
 लोहितामुखी (सं० स्त्री०) अरुभेद, एक प्रकारका दधि-  
 थार।  
 लोहितायन (सं० पु०) गोतप्रवर्त्तक ऋषिभेद, लोहितके  
 गोत्रापत्य।  
 लोहितायनि (सं० स्त्री०) लोहितायनस्य गोत्रापत्यं स्त्री।  
 लोहितायनकी वंशोद्भवा। यह शायद लोहितायनि  
 शब्दका अपप्रयोग है।  
 लोहितायस् (सं० स्त्री०) लोहितमयः। ताम्र, तांबा।  
 लोहितायस (सं० स्त्री०) लोहितं आयसम्। १ रक्त-  
 वर्ण लोहजाति। २ ताम्र, तांबा। (त्रि०) ३ ताम्रनिर्मित,  
 तांबाका बना हुआ।  
 लोहितार्ण (सं० पु०) धृतपृष्ठके एक पुत्रका नाम।  
 (भाग० १।२०।२१)  
 लोहितार्द्र (सं० त्रि०) रक्ताक, खूनसे तरावोर।  
 लोहितार्मन् (सं० स्त्री०) यह रक्तगुटिका या कुंसियां  
 जो आंखकी पुतलीके पास सफेद चमड़ेके ऊपरमें उत्पन्न  
 होती हैं।  
 लोहितालु (सं० पु०) रक्तपिण्डालु, लाल रतालु।  
 लोहितायमास (सं० त्रि०) रक्ताम, ललाई लिपे।  
 लोहिताशोक (सं० पु०) रक्ताशोक, यह अशोकका पेड़  
 जिसमें लाल फूल लगते हैं।  
 लोहिताभ्य (सं० पु०) लोहितवर्ण अश्वारोही, लाल  
 घुड़सवार।

लोहितास्य (सं० त्रि०) १ रक्तवर्ण मुखाविशिष्ट, लाल  
 मुँहवाला। २ रक्ताक मुख, खून लगा हुआ मुँह।  
 लोहिताहि (सं० पु०) रक्तवर्ण सर्प, लाल सांप।  
 लोहितिका (सं० स्त्री०) १ रक्तवहा नाड़ी, यह घमनी  
 जिस हो कर लहू बढ़ता है। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ।  
 लोहितिमन् (सं० पु०) लोहित्य, लाल रंग।  
 लोहितीभूत (सं० त्रि०) रक्तवर्णताप्राप्त, जो लाल हो  
 गया हो।  
 लोहितेक्षणा (सं० स्त्री०) रक्त चक्षु, लाल आंखें।  
 लोहितैत (सं० त्रि०) लालचिह्नविशिष्ट।  
 लोहितोत्पल (सं० स्त्री०) रक्तपद्म, लाल कमल।  
 लोहितोद (सं० पु०) १ पुराणानुसार इक्षोस नरकौर्मिसे  
 एक नरकका नाम। (त्रि०) लोहितं उदकं यत्र। २ लाल-  
 वर्ण उदकयुक्त, जिसका पानी लाल हो। ३ रक्त, लाल।  
 लोहितोर्ण (सं० त्रि०) लोहितानि ऊर्णाणि यस्मिन्।  
 लालवर्ण ऊर्णाविशिष्ट, जिसके ऊन लाल हों।  
 लोहित्य (सं० पु०) लोहित-व्यञ्ज्। १ धान्यविशेष, एक  
 प्रकारका धान। २ एक प्राचीन ग्रामका नाम। ३  
 धाल्मोकिने कपियती नदीका इसमें हो कर पड़ना लिखा  
 है। ४ ब्रह्मपुत्र नदी। ५ एक समुद्रका नाम। पुराणानुसार  
 यह कुशद्वीपके पास है।  
 लोहित्या (सं० स्त्री०) १ एक नदीका नाम। २ एक  
 अप्सराका नाम।  
 लोहित्यायनमातृ (सं० स्त्री०) देवीभेद।  
 लोहितिका (सं० स्त्री०) १ रक्तवर्णा स्त्री, लाल रंगकी  
 औरत। २ शिराभेद। लोहितक देखा।  
 लोहिनी (सं० स्त्री०) लोहिता-(यर्णा)दनुदजादिति। पा  
 ४।१।३६ इति डीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। रक्त स्त्री।  
 लोहितिका (सं० स्त्री०) रक्तवर्ण दीप्तिविशिष्ट, लाल  
 ज्योतिष्का।  
 लोहित्य (सं० पु०) गोतप्रवर्त्तक ऋषिभेद। शायद  
 यह लोहित्यका प्रमादिक पाठ है।  
 लोहिषा (हिं० पु०) १ लोहिनी चोत्रोका व्यापार करने-  
 वाला। २ वनियों और मारवाड़ियोंका एक जातिकी  
 नाम। ३ लाल रंगका पैल। ४ लोहिनी बनी हुई गोली।  
 लोह (हिं० पु०) रक्त, खून।



लोहोत्तमं (सं० ह्रीं०) लोहेषु सर्वोत्तमेषु उत्तमम् । सर्ण,  
सोना ।

लौग (हिं० पु०) १ एक भाइकी बली जो पिलनेके पहले  
ही तोड़ कर सुपा ली जाती है । विशेष विवरण लवण  
में देखा । २ लौगके आकारका एक आभूषण । इसे  
छियां नाक या वानमें पहनती है ।

लौगचिड़ा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कयाव । यह घेसन  
मिला कर बनाया जाता है । २ फुलकी रोटी ।

लौगमुशक (हिं० पु०) एक प्रकारके फूलका नाम ।

लौगरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास । इसकी पत्तियां  
गोल और नुकीली होती हैं । यह घास वर्षाऋतुमें उत्पन्न  
होती है । इसमें लौगके आकारकी कलियां लगती हैं ।  
फूल पीले रंगके होते हैं । उनके पक जाने पर नीचेके  
अंठल कुछ मोटे हो जाते हैं । बंगालमें लोग इसकी  
पत्तियोंका साग बनाते हैं ।

लौंगिया मिर्च (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बहुत बड़वो  
मिर्च । इसका पेड़ बहुत बड़ा और फल छोटे छोटे  
होते हैं । इसका दूसरा नाम मिरचो भी है ।

लौंटा (हिं० पु०) १ छोकर, घालक । २ खूबसूरत  
और गमकान लड़का (वि०) ३ अयोध । ४ छिछोरा ।

लौंटापन (हिं० पु०) १ लौंड होनेका भाव । २ लड़क  
पन । ३ छिछोरापन ।

लौंठी (हिं० स्त्री०) दासी, मजदूरनी ।

लौंटेबाज (हिं० वि०) जो सुन्दर बालकोंसे प्रेम रखता  
हो और उनके साथ प्रकृतिविषय आचरण करता हो ।  
लौंटेबाजी (हिं० स्त्री०) लौंटेबाजका काम, लौंठोंसे प्रेम  
रखना ।

लौंढ (हिं० पु०) अधिमास, मलमास ।

लौंढरा (हिं० पु०) यह पानी प्रोषण ऋतुमें वर्षा आरम्भ  
होनेसे पहले बरसता है, वौंणारा ।

लौंड़ी (हिं० स्त्री०) यह कपड़ी जिससे फंडसारमें पाक  
चलाया जाता है ।

लौंन (हिं० पु०) १ रुकन देने । २ लौंढ देना ।

लौ (हिं० स्त्री०) १ भागकी लपट, अवाला । २ दीपक-  
की टेंग, दीपत्रिका । ३ टांग, चाद । ४ चित्तकी दृष्टि ।  
५ आशा, कामना ।

लौभा (हिं० पु०) कद्दू, घोभा ।

लौका (हिं० पु०) कद्दू ।

लौकास (सं० पु०) धर्मशास्त्रामेद् । पाणिनिने ६।२।३३  
सूत्रके कारिकाजीपादिगणमें 'कौथुम लौकासाम्' इत्ये  
श्राया विशेषका उल्लेख किया है ।

लौकायतिक (सं० पु०) लौकायतनघोत्रे वेदे या लोका-  
यत (कद्दूभादिप्लान्तात् ठङ् । पा ५।२।६०) १ तार्किक-  
भेद । २ चार्वाकशास्त्र जाननेवाले । लौकायतिक देना ।

लौकिक (सं० वि०) १ लोकसम्बन्धीय सांसारिक ।  
२ ध्ववहारिक । (पु०) ३ सात माताभोके छन्दोंका  
नाम । ऐसे छन्द इजोस प्रकारके होते हैं । ४ काशीर-  
का सम्भेद । ५ न्यायभेद ।

लौकिकज्ञान (सं० स्त्री०) शास्त्रादिज्ञान ।

लौकिकता (सं० स्त्री०) लौकिकरूपभाव, लौकिक-पद्-  
टाप । १ लोकव्यवहारसिद्धत्य । २ शिष्टाचार । ३ आपसके  
किसी कार्यविशेषमें यत्न मिटानादि उन्नीतका आदान-  
प्रदान ।

लौकिकत्व (सं० स्त्री०) लौकिकता, लोकप्रसिद्धता ।

लौकिकन्याय (सं० पु०) लोकमें बांटा जानेवाला नियम,  
साधारण नियम ।

लौकिकवियंयविचार (सं० पु०) प्रचलित साधारण  
विषयकी मोमांसा या यादानुवाद ।

लौकिकान्नि (सं० पु०) लौकिकोदन्नि । अस्तंभक  
अग्नि ।

लौकिकाचार (सं० स्त्री०) १ लोकआचार । २ दुलाचार ।

लौकिकी (सं० स्त्री०) १ शास्त्रप्रसिद्धा । २ प्रवृत्तता,  
विषयाति ।

लौकिकीवाता (सं० स्त्री०) १ लोकव्यवहार । २ विषय-  
दादि सांसारिक कार्य ।

लौकी (हिं० स्त्री०) १ कद्दू, घोभा । २ कटकी वह मनी  
जिसे भयंकेमें लगा कर मद्य चुभाते हैं ।

लौष्य (सं० वि०) लोकमय इति ध्वम् । १ लोकसम्ब-  
न्धीय । २ पार्थिव । ३ साधारण । (पु०) ४ साधुभेद ।

लौगासि (सं० पु०) १ लौगासके गोतापर्य । २ तैदिक  
भाषाभेद । ये धर्मसूत्रके प्रथमा बहनाते हैं ।

काटपायन ध्रीतघ्न (१।६।२४)में लौगासिर्क उल्लेख

दे। आर्षाध्याय, उपनयनतंत्र, काठकशृङ्खल, प्रवरा-  
ध्याय और प्रतीकतर्पण नामक ग्रंथ इन्हींके बनाये हुए  
हैं। पैडीनसी, विद्यानेश्वर तथा हेमाद्रिने लौगाक्षि स्मृतिका  
भी उल्लेख किया है।

लौगाक्षिमास्कर—अर्धसंग्रह नामक मीमांसाशास्त्र ग्रंथके  
प्रणेता। इनके बनाये और भी कितने दर्शनशास्त्र-सम्ब-  
न्धीय ग्रंथ मिलते हैं।

लौज ( अ० पु० ) १ बादाम। २ एक प्रकारकी मिठाई जो  
काट कर तिकोनिया बरफोके आकारको बनाई जाती है।  
इसमें प्रायः बादाम पीस कर डाला जाता है।

लौटना ( हि० कि० ) १ कहीं जा कर पुनः वहाँसे फिरना,  
वापस आना। २ इधरसे उधर मुँह फेरना, पीछेकी  
ओर मुँह फेरना।

लौटपोट ( हि० कि० ) १ दोरखी छपाई, वह छपाई  
जिसमें उलटा सीधा न हो। २ उलटने पुलटनेकी क्रिया।  
लौटपोट देखो।

लौटफेर ( हि० पु० ) इधरका उधर हो जाना, उलट  
फेर।

लौटान ( हि० स्त्री० ) लौटनेकी क्रिया या भाव।

लौटाना ( हि० कि० ) १ फेरना, पलटाना। २ वापस  
करना। ३ ऊपर नीचे करना।

लौटानी ( हि० कि० वि० ) लौटते समय, लौटनी बार।

लौड़ा ( हि० पु० ) शिशु, लिङ्ग, पुत्रकी मूलोन्द्रिय।

लौद ( हि० पु० ) अरहर आदिकी नरम डाली। इससे  
छाना छानिका काम लिया जाता है।

लौदरा ( हि० पु० ) लौद देखो।

लौनहार ( हि० पु० ) लौनी करनेवाला, खेत काटने-  
वाला।

लौना ( हि० पु० ) १ वह रस्सी जिससे किसी पशुके एक  
अगले और एक पिछले पैरकी एक साथ बांधने में, जिस  
में खुला छोड़ देने पर भी वह दूर तक न जा सके।

२ ध्वज, जलाघन। ३ फसल काटनेका काम, कटनी।

लौनी ( हि० स्त्री० ) १ फसलकी कटनी, कटाई। २ डाली,  
लहना।

लौरस ( सं० स्त्री० ) समभेद।

लौम ( सं० त्रि० ) १ लोम-सम्बन्धीय। २ लौमसे  
उत्पन्न।

लौमकायन ( सं० त्रि० ) लौमक सम्बन्धीय।

लौमकायनि ( सं० पु० ) लौमकका गोत्रापत्य।

लौमकीय ( सं० त्रि० ) लौमक-सम्बन्धीय।

लौमन्य ( सं० त्रि० ) रोम बहुल, जिसके बहुत रोएँ हो।

लौमशीय ( सं० त्रि० ) १ लौमशसे उत्पन्न। २ लौमश  
सम्पर्कीय।

लौमहर्षणक ( सं० त्रि० ) लौमहर्षणकृत, जिससे रौंगटे  
खड़े हो गये हैं।

लौमहर्षणि ( सं० पु० ) लौमहर्षणका गोत्रापत्य।

लौमायन ( सं० त्रि० ) १ लौम-सम्बन्धीय। ( पु० )  
२ लौमनका गोत्रापत्य।

लौमपन्य ( सं० पु० ) लौमनके वंशधर।

लौमि ( सं० पु० ) लौमका गोत्रापत्य।

लौलाह—प्राचीन स्थानभेद। ( राजतर० ७।१२५३ )

लौमिक—एक प्राचीन कवि।

लौल्य ( सं० स्त्री० ) लौलस्य भाव्यं। १ चाञ्चल्य,  
अस्थिरता। २ अस्थायित्व, लोपत्व। ३ इच्छा,  
स्पृहा। ४ शौचिल्य, जिधिलता।

लौल्यता ( सं० स्त्री० ) बलवती आकाङ्क्षा, गहरी इच्छा।

लौल्यवत् ( सं० त्रि० ) १ अतिशय स्पृहाशील, बहुत  
इच्छुक। २ अर्धगृष्ट, अर्धलोलुप। ३ आकाङ्क्षा-  
युक्त, इच्छुक।

लौश ( सं० स्त्री० ) कई प्रकारके साम।

लौह ( सं० पु० ) लोह पथ। खनामप्रसिद्ध लोह नामक धातु।  
इस धातुकी उत्पत्ति पृथ्वीके गर्भसे है। इसमें नाना प्रकार-  
के गुण रहनेके कारण दूसरे दूसरे देशोंके विभित्सक  
तथा वैज्ञानिकोंने इसके रासायनिक बलाबलकी परीक्षा  
करके औषधके रूपमें इसे सेवन करनेकी कहा है। खनिज  
लोह इसकी दूसरी ओपधिगोंके योगसे शुद्ध किया जाता  
है। लौहके वैद्यक मतसे निम्नलिखित तेरह प्रकारके  
संस्कार साधित हुए हैं—१ शालिघर्षण, २ उद्धर्तन, ३  
अमुमायन, ४ आतपशोय, ५ निषेक, ६ मारण, ७ दहन,  
८ क्षालन, ९ सूर्यभाक, १० स्थालीपाक, ११ सूर्पान, १२  
पुटपाक एवं १३ पाकनिष्पन्न।

परांमान समयमें भी कई देशोंमें लोहेकी खान नजर आती है; किन्तु इन खानोंके लोहसे प्राचीन कालीन खानोंके लोह कहीं अधिकतर शक्तिप्रद होते थे। आयुर्वेदप्रयत्नक प्रथियोनि बान्नी, पारिड, कान्त, फालिंग तथा बन्नक नामक लोहमें पांच प्रकारके मेद निर्देश किये हैं। उक्त पांच प्रकारके लोह ही सर्वश्रेष्ठ तथा विशेष फलदायक होते हैं। इनसे आयु, बल, वीर्यवर्द्धक तथा रोगनाशक और श्रेष्ठतम रसायन तैयार होते हैं। कृष्णवर्ण लोहका गुण—गोध, शूत्र, अग्नि, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, मेद तथा वायुनाशक, वयस्वर्धक तथा चक्षुस्त्रेजकारि, सारक और शुद्ध। शोषित लोहका गुण—सर्परोगनाशक, मरण रोधक। श्वेद लोहका गुण—आरणयोग्य और आयुर्नाशक। लोहके जाण मारणादिके संक्षिप्त परिचयका वर्णन यथास्थानमें किया गया है।

रसायन तथा लोह देखो।

भारतके विभिन्न स्थानोंमें एवं विभिन्न राज्यमें यह धातु पृथक् पृथक् नामसे परिचित है। हिन्दी—लोहा; बंगला—लोहा; मराठी—रोहण्ड; गुजराती—लेवू; तामिल—इरम्बु; तेलगू—रुनुमु; कनाड़ी—कविना; मलयालम्—रुम्बा; प्रद्व—दान, धान; अरबी—हदिद; पारस्य—आहन; शिंगापुर—यकद, अङ्ग्रेजी—Iron; लाटिन—Ferrum; फ्रांसीसी—Fer; जर्मनी—Eisen; पुर्तगाल तथा इटली—Ferro; स्पेन—Hierro; दिनेमार तथा स्वेडिस—Jern; ओलन्दाज—Jizer, Yzer; गद्य—A s; प्रोक—Sideros; तुर्क—डेमिर, तिमुर, पोल्ण्ड—Zelazo; रूस—Schiesleso; पस्त—अपस्पणा; मलय—बसि, घेसि। रासायनिकोंके मतसे यह धातु मङ्गलमहके समान प्रभावसम्पन्न है।

भारतके भूपरतकी आलोचना करनेसे ऐसा ही पा जाता है, कि इसके विभिन्न स्तरोंमें विभिन्न पार्थिव पदार्थोंके साथ मिश्रित लोहधातु परांमान है। वैज्ञानिकोंने इन समस्त विभिन्न स्तरोंके अपरिष्कृत लोह (Iron ores) का विवेक रूपसे वर्णन किया है। वे कहते हैं, कि प्राचीन अर्थव्यवस्था में दूसरे दूसरे धातुओंके साथ म्यूत या अधिक परिमाणसे लोह मिश्रित रहते हैं। किसी किसी स्थानमें लोहके साथ दूसरी दूसरी

धातुओंका संश्लेष नहीं रहता, केवल कितने पार्थिव पदार्थोंका समावेशमात्र देखा जाता है। यौगिकरूपमें यह लोह अधिक पाया जाता है। शुद्धलोह अपेक्षाकृत दुर्लभ पदार्थ है। लोहका खभाविक यौगिक अत्यन्त प्रकारके है। इसका ब्रह्मसाहच्य कार्बोनेट, फस्फाइट प्रभृति रासायनिक परीक्षा तथा विश्लेषण द्वारा मान्य हो जाता है।

कितने ही अपरिष्कृत यौगिक लोहको परीक्षा द्वारा विशुद्ध करके देखा गया है, कि इन सभी वनित पदार्थोंमें लोहका परिमाण दूसरेको अपेक्षा कहीं अधिक है। सर्वसाधारणके ज्ञानकारोके लिये कुछ विशुद्ध तथा परीक्षित लोहकी तालिका नीचे लिखी जाती है—

सुम्बक-प्रस्तर नामक द्रव्य लोहेका ही ब्रह्मसाहच्य है। इसको Ferroso-ferric अथवा Magnetic Oxide कहते हैं। इसका दूसरा नाम Magnetic or magnetic iron है। इसमें प्रायः ७२.४ अंश विशुद्ध लोहा रहता है। वैज्ञानिक भाषामें इस यौगिकको Proto-sesquioxide कहते हैं। विशुद्ध लोहकी प्राप्तिका आशयसे भारतके कई स्थानोंमें लोग कृष्णवर्ण बालू (Black sand) की अग्निमें गलाते हैं। उसमें Magnetic तथा titaniferous लोह-मिश्रित रहते हैं। ग्रेडमिट्टी—वैज्ञानिक भाषामें Red haematite तथा अङ्ग्रेजीमें Red ochre (Fe 2O3) कहलाता है। यह Sesquioxide है। इसमें ७२ भाग लोहा पाया जाता है। प्लामिट्टी अथवा Yellow ochre (2 Fe 2O3, 3 H 2O) रासायनिकोंमें Brown haematite or Limoniteके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें साधारणतः ५६.६ लोह विद्यमान है।

कार्बोनेट अथवा भाषयन Spathic iron-ore अथवा Siderite कहलाता है। उसमें ४८.३ भाग लोहा रहता है। यह कार्बोनेट अथवा स्पाथिक लोहे, कोण्ड मिश्रित रहनेके कारण Clay-ironstone या Argillaceous iron stone ore कहलाता है। Black sand नामक मिट्टीकी यह कार्बोनेट-मिश्रित फले-आवरण ह्योन ले कर धनी है। Ilmenite अथवा कालातमक अथवा उत्तरी अथवा काली Ilmenite नामक एक और मिट्टी पाई जाती है। इसके कई अंश Titanium द्वारा स्थानान्तरण करके रासायनिक

लोग उसे. Tatiniferous iron कहते हैं। इन सभी योगिक पदार्थों में लोहेकी मात्रा सर्वत्र समान नहीं है।

भूगर्भके मध्य अति प्राचीन युगीय तहमें लौह धातुका संस्थान देख कर अनुमान किया जाता है कि अति प्राचीन कालमें भी इस धातुका प्रचार था, किन्तु किस समय तथा किस महान् परिष्ठतने इसका आविष्कार किया एवं किसने इसको व्यवहारोपयोगिता निर्देश किया इसका पणन इतिहासमें पाया नहीं जाता। आर्य हिन्दुओंके सर्वप्राचीन ऋक्संहिता ग्रन्थके पढ़नेसे ज्ञान जाता है कि आर्य ऋषिगण वैदिकयुगमें भी लोहेकी निर्मलःकरणविधि ( ऋक्. ४।२।१७ ), उनकी कठिनता ( ऋक्. १।१६।३६ ) एवं तोक्षणधारत्व ( ऋक्. ६।३।५ ) से जानकार थे। शुक्लयजुर्वेदका "मे ह्यश्च मे श्यामश्च मे लोहश्च मे सोसश्च मे त्रपु च मे यज्ञे न कल्पन्ताम् ॥" ( १८।१३ ) मन्त्रांश पाठ करनेसे स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि उस समयके आर्य लोग सभी तरहके लोहेसे परिचित थे। अथर्ववेदके ५।२।११ तथा ११।३।१ मन्त्रोंमें लोहेका उल्लेख किया गया है।

वैदिक संहितायुगके बाद ब्राह्मण तथा सूत्रयुगमें भी लोहेका खूब-प्रचलन था। शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।५ कात्यायन श्रौतसूत्र ७।४।३४, २०।७।१, २०।७।४, आश्वलायन गृह्यसूत्र १।७।६ प्रभृतिके पाठ करनेसे पता चलता है कि तलवार क्षुरादिका व्यवहार उस समय भी था। मनुसंहिताके ५।११४।१६ श्लोकको पढ़नेसे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि उस समय दक्षपातादि भी लोहेके घने होते थे। मरुत तथा बरुसे उन लोहेके पातोंकी माजना करके जलमें धो देनेसे ही ये शुद्ध समझे जाते थे। उक्त ग्रन्थके ११।१६७ श्लोकमें लोहपातका अपहरण करना अत्यन्त निषेध किया गया, इससे ज्ञान पड़ता है कि प्राचीन लोग इस धातुकी बहुत सूर्यवान् समझे थे। इसके बाद याज्ञवल्क्य संहितामें ( २।१०७ ) लोहपिण्ड, महाभारतके वनपर्वमें लोहभाजन, रामायणमें ( १६।०।१२ ) लोहमय आभरण, सुधुतमें ( १।२३।२० ) इन्ध्रम एवं धीमद्भागवतमें ( १।१।२७।२ ) लोही (सूवर्णादि अष्टधातुमयी) प्रतिमाके निर्माणको व्यवस्था देनेसे ऐसा

मालूम पड़ता है कि आर्य-हिन्दू लोग जिस समय संसारको समी जातियाँ लोहिके प्रयोगसे अनभिष्ट थे, उस समयसे ही इसका व्यवहार करते आ रहे हैं, एवं उस समयमें ही उन लोगोंने इस धातुसे प्रकृष्ट देवदेवीका प्रतिमा निर्माण करके शिल्पनैपुण्यकी पराकाष्ठा दिखाई थी। उस प्राचीन शिल्पकौशिकी रेखामाल हम लोगोंके दृष्टि-गोचर न होने पर भी हम लोग आज भी पूर्वा कीर्त्तित्-म्मादि देख कर गौरवान्वित होते हैं। आज भी दिल्लीका सुप्रसिद्ध लोहस्तम्भ (सूवर्णस्तम्भ) हमारे प्राचीन शिल्प-नैपुण्यका परिचय दे रहा है। १५०० ई०के उस भयंकर जटप्रवाहसे भी यह स्तम्भ नष्ट नहीं हुआ। दिखा देलो।

बिसी किसोका विश्वास है कि लोहेके टुकड़े कमी कमी झाड़ासे पृथ्वी पर पतित होते हैं, यद्यपि प्रकृतार्थस्थानमें लौह जिस तरह योगिकरूपमें देखा जाता है, उदकामें भी प्रायः उसी तरह मिश्रित रहता है। इससे स्वतः ही अनुमान होता है कि वे यह प्रघामतः उदकाज ( Meteoric origin ) पदार्थके सिवाय और कुछ दूसरा नहीं है। विशेषरूपसे आलोचना करके देखनेसे मालूम होता है कि उसमें कई अम्लजन (acids)के क्षार (Soda) रूपमें पर्याप्त परिमाणसे गन्धक तथा आक्सिजन मिले हुए हैं। इसके अलावे उसमें अन्यान्य धातु तथा विभिन्न मिट्टियोंका समावेश रहनेके कारण उसका लौह-संस्थान निर्णय करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उक्ता देलो।

चिर-प्रसिद्ध यह लोहधातु भारतवर्षके जिन जिन स्थानोंमें योगिकरूपसे अवस्थित हैं, सर्वसाधारणकी जानकारिके लिये उन्का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

मान्द्रान्-विभाग।

स्पानोंके नाम	बीरमेर	गजनिका स्थान
बिवाट्टोर	ब्लाकमानेटाइट तथा लाटेराइट	स्पेनकोटा
तिन्गवली	माग्नेटिक आयरन-सैण्ड	पङ्कजलम्
गदुरा	लाटेराइट	इस समय दुःप्राप्य
पुडुकोट्टे	माग्नेटाइट	
विचोनपल्ली	फेकजिनास् नडियूल	
कोवम्ब्यातोर	ब्लाक-सैण्ड	
नीलगिरि	शिमाटाइट तथा मानेटाइट	

स्थानोंके नाम	सीधेदेर	गन्नानेका स्थान
मन्नापार	मान्नेटाइट तथा लादेराइट	कर्मनार, डेर- नार, दल्यनार, परनार और तेमेल- पुर तालुक।
सालेम	मान्नेटाइट	पोर्ट नाभी
दक्षिण-भाषांट	पील	तिरुणमलय, कलकुधि
उत्तर	झाक सीएड	—
चेन्नयपत	मान्नेटाइट तथा हिमाटाइट	—
नेल्दूर	मान्नेटाइट तथा हिमाटाइट	—
कोडुग	हिमाटाइट	—
कणूल	"	—
वेन्लरी	"	—
एन्ना	—	गुण्टूर, मसलीपत्तन
गोदावरी	लारमोनाइट तथा हिमाटाइट	—

विजागापट्टम, गड्डाम, अनन्नापुर तथा दक्षिण कनाडा-  
के कई स्थानोंमें लोहा पाया जाता है।

महिसुर-राज्य।

अष्टमाम	मान्नेटाइट	—
बङ्गलूर	झाक-सीएड	चीनपत्तन
नागर	" तथा हिमाटाइट	बाबा वृद्धन, चिचलदुर्ग,

उपरोक्त तीनों विभागके जिलोंमें अधिक लोहा पाया  
जाता है। नागर-विभागान्तर्गत कोदुर नामक स्थानमें  
अनेक लोहेकी खानें हैं। ओम्राणी नामक यहांके स्थानके  
पत्तुण्पाश्र्वोंमें तथा बाबा-वृद्धन ग्रामके पूर्वस्थित शीलवाद्-  
मूलमें पवित्र लोहा गलानेका कारखाना है। इसके  
अलावे यहां इस्पात तैयार किया जाता है।

देवरावाड-विभाग।

यहां हिमाटाइट, टिटानिक्रेस, सांड एवं बरङ्गलमें  
हरिद्रावर्ण एलामिटो तथा लाल गेरुमिटोमें लोहेकी खान  
दिखाई पड़ती है। लिङ्गसागर जिलेमें फैली हुई धारवार-  
शीलमालाके पश्चिम दक्षिणी शीलस्तरमें मान्नेटाइट लोहा भी  
पाया जाता है। यहांके मिहरेना कोवलेको खानमें  
अपेक्षा उत्कृष्ट लोहा पाया जाता है। अनन्नागिरि, कल्लूर  
प्रभृति परगनेमें लोहा गलानेका कारखाना है। जे-  
गण्डलके अन्तर्गत कई जगहोंमें इस्पात तैयार किया जाता  
है। इस स्थानमें कोणसमुद्रके इस्पातका कारखाना बहुत

दिनोंसे प्रसिद्ध है। पश्चिम वर्ष पूर्व-निगिन एक विप-  
रणीसे पता चलता है, कि पारस्ववासी पब्लिक-समन्वय  
कोणसमुद्रके सर्वोत्कृष्ट इस्पात परोद कर ले जाता था।  
उससे दामास्कासको चित्रप्रसिद्ध तलवारके फलक तैयार  
किये जाते थे। यह इस्पात साधारणतः मिट्टण्जोंके  
Iron-sand और दिग्दुर्गिके Magnetite लोहेमें बनाये  
जाते हैं।

मध्यप्रदेश।

यस्ता, सम्बलपुर, बिलासपुर, रायपुर, चान्दा,  
बालाघाट, भाएडारा, नागपुर, मण्डल, शिवनी, सिन्धु-  
वाड़ा, निमाय, होसङ्गावाड, सरसिंहपुर और जयलपुर  
आदि जिलेके नाना स्थानोंमें हिमाटाइट मान्नेटाइट लार-  
मोनाइट आदि धेणोका योगिक लोहा बहुतायतसे पाये  
जाते हैं। उनमेंसे सम्बलपुरके अन्तर्गत गड्ढात-माली-  
में, रायराखोलमें, रायपुरके अन्तर्गत षण्डीलोहारा और  
सीरागढ़, बीरार बांध, गण्डाई, टाङ्करल्ला और नन्दागंय  
भूभागमें; यांदा जिलेके मध्य लोहारा, देवलगांव,  
पिपलगांव, गुजवाडो, भोगलपेट, मेरापुर, भानपुर तथा  
लोरा परगतेके अन्तर्गत मोगला, गोंगटा, दानवाई और  
पोसालपुर आदि स्थानोंमें काफी लोहा उत्पन्न होता है।  
उत्तरीय कोवलेको खानके कारखानेका तथा जयलपुरके  
उत्तर-पश्चिम सभो स्थानोंका गनिज लोहा यूरोपीय  
प्रयासे परिष्कृत हो व्यवहारयोगी लोहेमें परिणत  
होता है।

रेवा, बुईलवाएड, ग्वालियर, इन्दौर, धार, चम्पूर  
और झाली-राजपुर आदि भूभागोंमें हिमाटाइट और मान्ना-  
निक्रेस योगिक-लोहा पाया जाता है। ये सब लोहे  
(Coal 'measure strata' और 'metamorphic  
rocks' नामक स्तरमें खूबे हुए हैं। ग्वालियरके अन्त-  
र्गत सामन, माइनीत, गोडुलपुर, परीली, वनपारी,  
रायपुर-वार शौच, मङ्गौर, बिनावरी, बङ्गाई, इमिनिया,  
गुजरा और पारोत आदि गाँवोंमें हिमाटाइट और लार-  
मोनाइट श्रेणियोंके लोहेको खान है। इन्डोरेसे ६० मील  
दक्षिण-पश्चिममें अर्वाखन बाघ-भागके Transition  
rocks स्तरमें चित्र-प्रसिद्ध हिमाटाइट लोहेकी खान  
मोडू है।

बम्बई ।

उत्तर-कनाड़ा, धारवाड़, कालादिगि, बेलगांम, गोआ, सावन्तवाड़ी, कोल्हापुर, रत्नगिरि, सतारा, सुरत, रेवा-कान्ता, पांचमहाल, काठियावाड़ और कच्छप्रदेशमें माने-टाइट, लाटेराइट और हिमाटाइट श्रेणोंका लोहा देखनेमें आता है। उनमेंसे रत्नगिरिके अन्तर्गत माल्यवान् पर्यंत के समीप रेवाकान्ताके जम्बूघोड़ा, लिमोद्रा और लाद् बेधर नामक स्थानमें तथा काठियावाड़के ओमिया सिखर पर जुरासिक-स्तरमें प्रचुर लोहा है। किन्तु अभी यह काममें नहीं लाया जाता है।

राजपूताना ।

जयपुर, मेवाड़, अलवार, मारवाड़, अजमीर, बूंदी, कोटा और भरतपुर राज्यके विभिन्न स्तरोंमें लोहा यौगिकभावमें विद्यमान है। उनमेंसे आरावली-पर्यंतके द्राक्षिण-स्तर, सिन्धुप्रदेशका कीरचर और रानीकोट श्रेणी, मेवाड़के गङ्गौर विभागके निकटवर्ती स्थान तथा अलवार राज्यके राजगढ़के निक्षरस्थ विस्तृत लौहकी खान उल्लेखनीय है। यहाँका लोहा मानेटाइट, दिमा टाइट और माङ्गानिज अपसाइटके यौगिक रूपमें विद्यमान है।

पञ्जाब ।

बन्तू, पेशावर, फ़ैलम, कांगड़ा, मण्डो, सिमला-शैलराज्य और शुरगांव जिलेके नाना स्थानोंमें लोहा देखा जाता है। उसमेंसे कांगड़ाका magnetic iron-sand बहुत बढ़िया है। काश्मीर राज्यके पञ्च नामक नदीतीरवर्ती पहाड़ीप्रदेशमें, पञ्चशिरके उत्तर प्रागड्शीलके निकट, भीमवारा नदीके तीरवर्ती सुफाइन प्राममें, काश्मीर-उपत्यकाके सोपुरमें और पामपुर नामक स्थानके समीप तथा लदानके अन्तर्गत बानला-प्राममें लौह-संप्रदके कारखाने हैं।

सुकप्रदेश ।

कुमायूँ, ललित, बाँदा और मिर्जापुर जिलेमें काफी लोहा पाया जाता है। उनमेंसे कुमायूँके अन्तर्गत रामगढ़, पट्टली, लोसिंगियानी, नातना-खाँ, पारवाड़ा, खैराना और शिवालिङ्ग स्तरके कालघुन्नी और देवीरी नामक स्थानका लोहा उमदा होता है। इन स्थानोंका

लोह micaceous hematite and limonite नामसे प्रसिद्ध है।

बिहार और उड़ीसा ।

बराकर लोहेका कारखाना (Barakar Ironworks) सर्वांशेष्ट है। रानीगञ्जके कोयलेकी खानमें Ironstone shales और nodules of clay-iron-stone पाया जाता है। वीरभूम, भागलपुर, मुर्गीर, गया, मानभूम, सिंहभूम, लोहरडंगा, उड़ीसा, छोटानागपुरके सामन्त-राज्योंमें लौह-संस्थान देखा जाता है।

खासिया, जयन्ती और नागापहाड़ पर तथा मणिपुर राज्यमें साधारणतः टार्सियारि कोयलेके स्तरमें titaniferous magnetite, pisolitic nodule of limonite और nodules of clay iron-stone देखा जाता है। खासिया और जयन्ती पहाड़के जिस प्रस्तर स्तरमें लोहा पाया जाता है, वह बहुत जल्द टूटता है, इस कारण वहाँके बादमी उसे अच्छी तरह चूर्ण कर लेते हैं। पीछे एक नली जहाँ प्रबल वेगसे जलधारा बहती है, वहाँ पर उस चूर्णको ले जा कर धोते हैं। इससे मिट्टी और उसी तरहके लघु पदार्थ जलक्षोतमें बहते हैं तथा उससे भारी लोहेके कण नोचे बैठ जाते हैं। इस प्रकार बार बार प्रक्षालनके बाद जब वह यौगिक लौहचूर्ण मृदादि पार्थिव पदार्थसे निष्कृत हो जाता है, तब वे लोग उसे आंचमें गला कर लोहा निकालते हैं। इस प्रकार बार बार लोहा गलानेसे वह परिष्कृत हो जाता है। इसके बाद अग्निके समान लाल कर हथौड़ेसे पोटेनेसे यह अच्छे लोहेमें पलट आता है।

मद्रास्य ।

उत्तरप्रदा, पेगु और तेनासेरिम विभागमें तथा शान-राज्यके नाना स्थानोंमें, मागुई नगरसे १० मील दक्षिण पश्चिममें तथा उससे ४ मील दक्षिणमें अवस्थित दो द्वीपोंमें लोहेका निदर्शन पाया गया है। चङ्गोपसागरस्थ अन्धमान द्वीपके पोर्टब्लेयर नगरसे कुछ मील दक्षिण 'रङ्ग-छाङ्ग' नामक स्थानमें प्रचुर परिमाणमें hematite यौगिक मिलता है। किन्तु उसमें कोपाटन और पारांइट मिले रहनेसे यह किसी काममें नहीं आता।

प्रमुख प्रयोग।

याचिन्त्यके लिये बाजारमें जो लोहा देना जाता है, उसमें यह प्रायः लौह बिलकुल स्वतन्त्र है। परन्तु कोयले का एक बड़ा चूल्हा बना कर उसमें लोहेके दमिज योगियोंकी सबसे पहले दाघ कर लेनेसे लोहा मुक्त-वस्थामें लाया जाता है। इस प्रक्रियासे अज, कार्बनिक अम्लदाइहाइड और गन्धकादि आषिसजन द्वारा सलफर प्राइमहाइड रूपमें बाहर निकल पड़ते हैं और लोहा प्रायः फेरिक अक्साइड रूपमें बद्ध जाता है। इस फेरिक-सलफाइडके साथ कोयला अथवा कोक तथा लाइमस्टोन (कार्बोनेट ऑफ लाइम) मिला कर ब्लास्ट फर्नेस (Blast furnace) नामक बड़े चूल्होंमें उत्पन्न करनेसे लोहा आषिसजनविहीन हो जाता है।

योडिन, रूस और पूर्व भारतीय देशोंमें इसी प्रथासे लोहा गलाया जाता है। नीचे लोहेके गलनेकी चुली और लोहेकी पर्यायिक परिणतिका चित्र लिखा जाता है—

ब्लास्ट फर्नेस—इंटरका यह चूल्हा बनाया जाता है। इसकी ऊँचाई ८० फुट होती है। ऊपर और नीचेका भाग विचले भागसे कुछ चौड़ा होता है। नीचे वायु घुसनेके लिये नल, धातु गल कर बाहर होनेके लिये छेद रहता है। चूल्हेके ऊपरसे उपरोक्त फेरिक अक्साइड मिला देना होता है। ब्लास्ट फर्नेस व्यवहार करनेका तात्पर्य यह, कि चूल्हेके निम्नस्थित नल द्वारा जो वायु घुसती है उसमें कोक दाघ हो कर कार्बनिक अक्साइड उत्पन्न होता है। यह वायु जितना ही ऊपर उठता है, अक्साइडके द्वारा यह उतना ही आषिसजनविहीन हो कर कार्बनिक अक्साइडमें परिणत हो जाता है। पीछे यह कार्बनिक अक्साइडका आषिसजन आकर्षण कर लेता है उस समय लोहा अलग हो जाता है। लोहा जिस समय द्रव-भूतावस्थामें आने रहता है उस समय यह कुछ अक्साइडके साथ मिला जाता है। लाइमस्टोन व्यवहार करनेका तात्पर्य यह, कि यह उत्पन्न-वस्थाओंमें कार्बनिक अम्लदाइहाइड वायुहीन हो कर आषिसजन अक्साइडमें परिणत होता है तथा इस अवस्थाओंमें ब्रिज बद्धमादिके साथ सम्मिश्रित हो कर तापदाकारमें लोहेके ऊपर बहने लगता है। इसकी दरार (Slag) रहते है। चूल्हेके नीचे

जो छेद रहता है उमा हों कर यह निकल पड़ता है तथा लोहा दूसरे छेदसे बाहर आता है। यह तरल लोहा जब कठिन होता है, तब उसे कास्ट या पिग (Cast or Pig) कहते हैं। भारतवर्षके नामा स्थानोंमें साधारणतः ३४ फुटसे १० फुट तक ऊँचा फर्नेस देना जाता है।

कास्ट-आयरनमें सैकड़ों पीछे उसे ५ भाग अक्साइड तथा सिलिका, गंधक, फोस्फोरस, आतुमिगम-मादि अनेक प्रकारकी धातु मिली रहती है।

लोहेकी विशुद्धावस्थाओं लानेमें उसको फिरसे गलाना होता है। उस समय वायुके आषिसजनके द्वारा मन्थान्य पदार्थोंके साथ लोहेकी सम्मिश्रित कर पीछे उसे पीट कर जिस अवस्थामें लाया जाता है उसको रट (Wrought Iron) आयरन कहते हैं। रट आयरनमें सैकड़ों पीछे ०.१५ से ०.५ भाग अक्साइड रहता है। जब सैकड़ों पीछे ०.६ से २.० भाग अक्साइड रासायनिक योगमें लोहेके साथ रहता है, तब यह इस्पात कहलाता है।

इस्पात बनानेमें रट आयरनको पीछेकी अग्निमें बहुत देर तक उत्पन्न करना होता है। पीछे उसकी छंटे जलमें अथवा तेलमें दबाई गिरा देनेसे यह बहुत कड़े इस्पातमें परिणत हो जाता है। यह इस्पात टूट जाता है। जो जो पदार्थ बनानेमें जिम् जिम् प्रकारके इस्पातकी अकल होती है उसमें उसी प्रकारका पान देना—आवश्यक है। इस्पातकी २२१ सेण्टीके उत्सागमें उत्पन्न कर पीछे छिंटो कर लेनेसे यह बहुत कठिन हो जाता है। इससे सुरो भादि अक्साइड प्रस्तुत होते हैं। यदि २८० सेण्टी तक उत्पन्न कर शीतल किया जाय, तो यह बहुत मजबूत हो जाता है। इसमें चूल्हेके मिश्रण भादि बनते हैं।

धेपुर, सयेम, पाउमकोट, पेनापुर-और पुदुकोट नामक स्थानोंमें लोहेका जो magnetic oxide योगिक पाया जाता है, पार्थिव पदार्थोंके विद्युत कर Blast furnace के साथ यह गलानेमें ब्रिजा लोहा-निर्धार होता है। उसमें सैकड़ों पीछे ७२ भाग लोहा रहता है। यह गन्धक, कार्बनिक अथवा फोस्फोरस होम है। वायुवादा और हीनर नामक स्थानका मजिज लोहा ही इस्पात बनानेके काममें विशेष प्रयुक्त है।

धेपुरके लोहेके कार्बनमें-मालोय वाइडोन (Cast

'steel') यानामें जो प्रयागकाममें लाई जाती है उसे Bessemer-process कहते हैं। स्वीडन आदि पाश्चात्य देशोंमें प्रायः उसी प्रयासे इस्पात बनाया जाता है। किन्तु प्रेट-ब्रिटेन राज्यके विभिन्न स्थानोंमें विशेषतः सेफिल्ड नगरके प्रसिद्ध लोहेके कारखानेमें जिस उपायसे इस्पात तैयार किया जाता है, वह ऊपर लिखी प्रणालीसे एकदम भिन्न है।

सेफिल्डकी छुरी कीची (Cottley) प्रस्तुत करनेके उपयोगे इस्पात बनानेकी प्रणाली बहुत कठिन और बहुव्ययसाध्य है, यह ज्ञान कर इस देशके लोहारोंने कारखानोंमें काम करना छोड़ दिया है। यहाँ पिग-आयरन बनानेके लिये एक आलोडन या प्रतिघातकारी चूल्हा (reverberatory furnace) रहता है। उस चूल्हेकी गर्मीसे काष्ठ-आयरन गल कर नलययसे चालित हो Converter या Bessemer vessel नामक पात्रमें जमा होता है। स्वीडन और मान्द्रोजके वेपुर-कारखानेमें उस प्रकारकी चूल्हा नहीं है। उन दोनों स्थानोंमें ब्लाष्ट फारनससे अर्लक्ष्यत लौह-धातु गल कर हृथके जैसे पात्र विशेषमें (Ordinary foundee's ladle) परिचालित होता है। पीछे चूमते हुए उत्तोलक यन्त्र (travelling crane) की सहायतासे यह लौहपूर्ण हृथा ऊपर उठ कर कनभर्टर नामक पात्रमें द्रवलोड डाल देता है। दोनोंमें विशेषतया यह है, कि अङ्गरेजी प्रयासे रक्षित कनभर्टर-पात्र चक्रदण्डके ऊपर (axles) रखा रहता है, इच्छानुसार यह घुमाया जा सकता है। किन्तु इन देशके और स्वीडनके उक्त कनभर्टर एक जगह स्थिरभायमें रखे रहते हैं तथा उसके चारों ओर अग्नि उत्तापके साथ इष्टरचूर्ण (Fireclay, sand और pulverized english fire-bricks) आदिका प्रलेप दिया जाता है। इसके बाद वायलरमें करीब ५० पौण्ड वायु उड़ा कर उस गलित धातुके प्रति वर्गइञ्च स्थानमें ६॥ से ७ पौण्ड चाप दिया जाता है। कनभर्टरमें धातुचितानेके लिये गीन इञ्च व्यासयुक्त ११ नाली (Tuyeres) उक्त पात्रके नीचे खड़े ढलमें रहती हैं। उस पात्रके छोलेकी गरम करनेमें माग्नाजिज या दूसरे किसी धातु-मिश्रणकी आवश्यकता नहीं होती। केवल वायु सन्तान

द्वारा धार धार चाप देनेसे तथा आवश्यकतानुसार बहुत देर तक आंच देते रहनेसे यह छोले विशेषरूपसे परिष्कृत हो जाता है।

जम यह उत्तत और द्रवीभूत लौहधातु प्रायः सम्पूर्णरूपसे कार्बनयसुक (Decarbonized) होती है, तब उस पात्रस्थ नालीका टैर छोले देनेसे तरल इस्पात यडी तेजीसे बाहर आ कर तरलस्थ Ladle नामक पात्रमें गिरता है। उस पात्रके भी नीचे तरल इस्पात गिरनेका छेद है। तरल इस्पातसे पूर्ण उस लेडलकी पीछे हिला पर सांचे (Cast-iron ingot moulds) के ऊपर ले जाने हैं। वहाँ छेदका मुह छोले देनेसे इस्पात जल-स्रोतकी तरह उस सांचेमें गिरता है। ठंडा होने पर Nasmyth hammer नामक हथौड़ेसे उसकी पीट लेते हैं। इस प्रकार विभिन्न आकारके इस्पातरूप पत्तर बना कर बाजारमें विक्रयार्थ भेजे जाते हैं।

उपरोक्त अंगरेजी प्रयासे लोहा गलानेमें बडे चूल्हेकी आवश्यकता होती है। इनमें अनेक प्रकारकी असुविधाएँ तथा लकड़ीका खर्च बहुत ज्यादा देखा कर यहाँके कारखानोंमें अंगरेजी प्रयासे अथ लोहा गलाया नहीं जाता। १८३३ ई०में दक्षिण-आर्कटय सलेम जिलेके पीटिंगमो नगरमें तथा मल-घारके किनारे वेपुरनामक स्थानमें कारखाने खोले गये। सलेमके कारखानेसे पिग-आयरनकी गला कर इङ्गलैण्ड भेजा जाता था। पीछे उसे इस्पातमें ला कर अधिक मोलमें बेचते थे। उसी इस्पातसे ब्रिटानिया और मोनाईका पुल बनाया गया था। वेपुरके कारखानेमें बढ़िया इस्पात तैयार हुआ था सही, पर बहुव्ययसाध्य तथा कुछ लाभ न होनेके कारण यहाँ उक्त प्रयासे इस्पात तैयार करना बंद कर दिया गया। १८५५ ई०में वीरभूम-आयरन-वर्कसे कम्पनीने कार्य आरम्भ किया। १८५७ ई०में कुमायूमें और १८७१ ई०में इन्दोरराज्यके अन्तर्गत वारवाडे ग्राममें एक लोहिका कारखाना खोला गया था। १८८० ई०के किसी समय पञ्जाब प्रदेशके सिरमूर राज्यके अन्तर्गत चाहुन नगरमें एक कारखाना स्थापित हुआ। कुछ दिन चालू रहनेके बाद परिचालकोंने अधिक खर्च देखा कर उसे बंद कर दिया



१८७४ ई०में रानीगंजके कोयलेके क्षेत्रके अन्तर्गत परा कर नगरमें 'Bengal Iron Company'ने लोहा गलानेके लिये एक कारखाना खोला। इस समय तक लकड़ोका कोयला ही काममें लाया जाता था। १८७५ ई०में चान्दा जिलेमें लोहा गलानेके लिये लकड़ोके कोयलेके बदले पत्थरका कोयला काममें लाया गया। उस समय बराकरके छोटेके कारखानेमें भी लकड़ोका कोयला जलानेकी व्यवस्था हुई थी। उस कारखानेमें १२७०० टन पिग आयरन प्रस्तुत होने पर भी पाणिज्यमें घटा देण कर १८७८ ई०में यह कारखाना बंद कर दिया गया। इसके तीन वर्ष बाद अंगरेज-राजमें एटने कारखाना खोलनेका भार धरने हाथमें ले कर Ritter von Schwartz नामक एक सुदूर वैज्ञानिकको यहांका परिदर्शक नियुक्त किया। १८८४ ई०को १ली जनवरीको एक बड़ा चूल्हा (स्ट्राइ फर्नेस) ले कर कार्य आरम्भ किया गया। १८८८ ई०के शेष भागमें उसमें ३०२१६ टन मात्र प्रस्तुत होते देण सक्षत प्रयासे एक दूसरा स्ट्राइ फर्नेस स्थापन किया गया। उसमें १८८६ ई०को १५००० तथा उसके दूसरे वर्षमें २० हजार टन पिग-आयरन गलाया गया था। उस कारखानेमें प्रति वर्ष प्रायः दो हजार टन पिग-आयरन गला कर Pipes, Sleepers, bridge-piles railway axle-boxes तथा तरह तरहके फूलोंके कार्य और हथि-कार्जके उपयोग यन्त्रादि तैयार होने लगे। १८६१ ई०में अंगरेज राजमें एटने बराकर आयरन वर्क्स एक स्वतन्त्र कम्पनीके दाग देण दिया। उपरोक्त पादचार्य वैज्ञानिकने यहां सबसे पहले यूरोपीय प्रयासे लोहा गलानेका बीजाल दियालाया था।

परिष्कार।

लोहे और इत्यादिको परिष्कार करनेके लिये एक किन्तु लोह नाइट्रिक एसिड का जो काममें लिये यदि काला दाग पड़ जाय, तब उसे इत्याद जंगना खादिये। लोहे पर नाइट्रिक एसिड डालनेसे सभ्य रंगका दाग पड़ना है।

धर्म।

विज्ञान लोहा लोहाको तरह सफेद होता और पालिस करनेसे उज्ज्वल होय पड़ता है। लोहाको संयोजन

करनेसे एक प्रकारकी गन्ध पाई जाती है। मृत्तुमृत्तकी तरह इसको बनायट होती है, इसलिये यह भार गहन करनेमें पूरा समर्थ होता है। अथेसाष्ट इसका घन— ७७ होता है। लोहा सुव्यक्त-कालि भी धारण कर सकता है। यह आक्सीजनका विशेष पक्षपाती होता है, इसलिये अत्यन्त कष्टसे इसकी रक्षा करनी होती है। हार्गिय, प्रोमिय एवं आयोडिनके साथ यह आसानी योगिकत्वात् लाभ करता है। जल मिथ्रि। सात्वतपूरिक एवं हाइड्रो-क्लोरिक एसिडसे यह गल जाता है एवं ऐसे समयमें हाइड्रोजन पायब यहिर्गत हो जाता है। १८५ आयो-डिक मुक्तके नाइट्रिक एसिडसे लोहेका कुछ भी परि-वर्तन नहीं होता, किन्तु जल-मिश्रित नाइट्रिक एसिडमें आसानीसे गल जाता है। इसका आयविक गुणत्व ५६ है।

व्यवहार।

लोहेके व्यवहारके संभवधर्म वर्णन करना अत्यन्त मात्र ही है। बालक, गुरु, युवा सर्वोको ही इसकी उपयोगिताका विशेष ध्यान है। लोहे प्रचुर परिमाणमें जीवनमें प्रयोग किया जाता है। एनोपेचिडका जीवनमें लोहे जिस तरह व्यवहृत होता है, उतका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। वैद्यक मतकी औषधियां तथा लोहेके गुणगुण यथास्थानमें लिखे जा चुके हैं।

लोहाके वैद्यक गुण।

लोहे प्रघाततः दो प्रोपिर्तौषा योगिकः उत्पादन करता है। यथा,—फेरास मोर फेरिकः।

Ferrous oxide FeO	Ferrous hydrate Fe(OH) <sub>2</sub>
Ferrous ferric Oxide Fe <sub>3</sub> O <sub>4</sub>	Ferrous chloride FeCl <sub>2</sub>
Ferrous chloride FeCl <sub>2</sub>	Ferrous sulphide FeS
Ferrous carbonate FeCO <sub>3</sub>	Ferrous phosphate Fe <sub>3</sub> (PO <sub>4</sub> ) <sub>2</sub>
Ferrous sulphate FeSO <sub>4</sub>	Fe <sub>2</sub> (SO <sub>4</sub> ) <sub>3</sub> —Fe <sub>2</sub> SO <sub>4</sub> ·H <sub>2</sub> O
Ferric oxide Fe <sub>2</sub> O <sub>3</sub>	Ferrous hydrate Fe <sub>2</sub> (OH) <sub>2</sub>
Ferrous Chloride FeCl <sub>3</sub>	Ferrous sulphate FeSO <sub>4</sub>

फेरास अथवास्ट—यह श्वेतप्रायी पदार्थ है। हीराससोसके अन्तमें हारापटिन प्राणने मिटलकेसे द्रव्य वर्णक हाइड्रेट नीचे पेट जाता है, किन्तु यह वर्णो सामय वायुके आक्सीजनके द्वारा फिर फेरिक अथवाफेरास

ता है। श्वेतवर्णसे धीरे धीरे सन्न वर्ण एवं सन्न  
लि लोहिताभायुक्त हो जाता है।

फेरस क्लोराइड।—लीडकी हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें  
जानेसे तैयार होता है। यह अत्यन्त जलशोषक पदार्थ

यह देखनेमें सन्न होता तथा जल एवं अलकोहल  
रण उत्पादन करता है। वायुसे यह विद्यत हो कर  
रक क्लोराइड एवं आक्साइडरूप धारण कर लेता है।

फेरस आयोडाइड।—आयोडिनके द्रावकके साथ  
इ मिलानेसे यह तैयार होता है। यह वायुसे विद्यत  
जाता है इसलिये चीनीके रसके साथ औषध  
घट्टा करनेको विधि है।

फेरस सल्फाइड।—हीराकसीसके द्रावकमें क्षारघटित  
अम्लमिलाकर मिलाकर काला सल्फाइड अघःस्थ हो जाता  
। इसको वायुमें रखनेसे फेरिक अक्साइड एवं  
अम्ल उत्पन्न होता है।

फेरस सल्फेट या हीराकस।—जल मिश्रित सल्फि-  
क एसिड द्वारा लीडको जलानेसे यह तैयार होता  
। यह सन्नवर्ण तथा दानेदार पदार्थ है। इसके एक  
युग्में एक अणु जल मिलानेसे भी इसके दानेदा

कारक नष्ट नहीं होता। जल अथवा अलकोहलमें  
रसानेसे गल जाता है। लोहितोत्तापसे हीराकसीस  
विद्यत हो कर सल्फर डाइआक्साइड तथा ट्राइआक्सा-  
इड वाष्प एवं फेरिक अक्साइडमें बदल जाता है।

नॉर्थहाउसन (Nordhausen) सल्फाउरिक एसिड तैयार  
रनेमें यह व्यवहृत होता है। हीराकसीसका द्रावण  
वायुस्रष्ट होनेसे घेसिक फेरिक सल्फेट पैदा हो  
जाता है।

फेरस कार्बोनेट।—हीराकसीसके द्रावकमें कार्बो-  
नाट आयु सोडा मिलानेसे श्वेतवर्णके कार्बोनेट का लोप  
जो जाता है, किन्तु हाइड्रेटकी तरह वायुस्थ आक्सीजन-  
संयोगसे हाइड्रेट बन जाता है।

फेरस फास्फेट।—फास्फेट आयु सोडाके द्रावणको  
हीराकसीसके द्रावणमें डालनेसे श्वेतवर्णके फेरस  
फास्फेटका लोप हो जाता है।

फेरिक आक्साइड।—फेरिक क्लोराइडके द्रावकमें  
क्षारघटित द्रावक मिलानेसे पाटकिन्ना वर्णका सन्नवर्ण

जैसा पदार्थ नीचे चला जाता है। इसको हाइड्रेट  
कहते हैं। हाइड्रेटके जलको अलग करनेसे आक्साइड  
पाया जाता है। फेरिक आक्साइड क्षारादि पदार्थोंमें  
नहीं गलता। यह एसिडमें गल जाता है।

फेरसोफेरिक आक्साइड।—समभाग फेरस एवं  
फेरिक सल्फेटके द्रावकमें आमोनिषा मिला कर तपानेसे  
काले रंगका लोप हो जाता है। यह नाइट्रिक एवं हाइ-  
ड्रोक्लोरिक एसिडमें गल जाता है।

फेरिक क्लोराइड।—फेरिक आक्साइडको हाइड्रोक्लो-  
रिकमें गलानेसे यह तैयार होता है अथवा लीडको  
हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें गलानेके बाद उसमें नाइट्रिक  
एसिड मिला कर उबालनेसे फेरिक क्लोराइड प्रस्तुत हो  
सकता है।

जल-शून्य फेरिक क्लोराइड तैयार करनेमें तपे हुए  
लाल लोहेके साथ क्लोरिण वाष्प मिश्राना होता है।  
यह अत्यन्त जलशोषक होता है। यह जल अलकोहल  
धरमें गल जाता है।

फेरिक सल्फेट।—हीराकसीसके साथ सल्फिड-  
रिक एसिड मिश्र कर, एवं उस मिले हुए फसीस और  
सल्फाउरिकमें नाइट्रिक एसिड मिला कर उबालनेसे  
फेरिक सल्फेट तैयार होता है। हाइड्रेट, कार्बोनेट,  
फास्फेट एवं सल्फाइडके अन्तर्वा फेरोसायानाइड

आयु पोटासियमके द्रावक योगमें फेरस श्रेणीके  
श्वेतवर्णके योगिकरूपमें अघःस्थ होता है। वायुके  
संसर्गसे यह धीरे धीरे नीलवर्णमें परिणत हो जाता  
है। फेरिडसायानाइड आयु पोटासियम मिलानेसे

गाढ़ा नील रंग कुछ फोका पड़ जाता है। इसे टर्णबु-  
न्दू कहते हैं। सल्फोसायानाइड आयु पोटासियमके  
साथ फेरस श्रेणीके लवणादिमें किसी प्रकारका परि-  
वर्त्तन दिखाई नहीं पड़ता।

फेरिक श्रेणीके योगिकके क्षारादि पदार्थोंसे हाइ-  
ड्रेट बनता है। क्षारघटित सल्फाइड अघःस्थ हो जाता  
है एवं उसमें गंधक मिला हुआ नजर आता है। फेरस-  
में यह नहीं रहता है।

फेरोसायानाइड आयु पोटासियमके साथ गाढ़ा  
नीलवर्ण फोका पड़ जाता है; इसे प्रुसियन ब्लू कहते हैं।

फेरिड सायनाइड भाव पोटासियमके संयोगसे किसी प्रकारका परिष्कृत नहीं होता। इसी तरहसे फेरस एवं सोडियम-समूह मलग द्विधे जाते हैं। सन्ध्या सायनाइडके साथ गाढ़ा रक्तवर्ण निकल आता है। फेरसमें यह नहीं दिवाई देता।

[पाणिपत्रय।

इस धातुके व्यापिकार और व्यवहारोपयोगिताके साथ साथ इसका पाणिपत्र जनसमाजमें विस्तृत हुआ था। भारतवर्षी लोहापत्तका व्यवहार बहुत दिनोंसे जानते थे। उस समय भारतीयलोहापत्तादि देशान्तरमें भेजे और बेचे जाते थे या नहीं उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु बहुत प्राचीन कालसे वैदिककालके साथ भारतवासियों में पाणिपत्र संज्ञक था इससे अनुमान होता है, कि प्राचीन सभ्यताके आदर्शमें भारतवर्षसे लोहापत्तादि अथवा इस्पात आदिकी यूरोपपर्यट में भी रफ्तग होना थी।

मांसुर, सलेन आदि दक्षिणारय प्रदेशोंमें बहुत प्राचीन कालसे इस्पात प्रस्तुत होता था। यहाँके लोग धमिज magnetite लोहको गला कर चोट सद्नेवाला (Malleable) एक प्रकारका नरम लोहा ढालते थे। आज भी यह प्रथा जारी है।

पेरिप्लसके वर्णनसे मालूम होता है, कि उस समय भारतीय इतिहासको बहुत यथाति था। प्राचीन जयों कविताओंमें सुप्रसिद्ध भारतीय इस्पातकी वनों तलवारोंका उल्लेख है। प्राचीन रथेनवास्तोंके निरुद्ध यह अट-दिशे नामसे परिचित था। पारसिक पाणिपत्रज उस 'दुग्धामो' कहते थे। मार्कोपोलके विवरणमें यह 'ओन्वानो' (Ondanique) नामसे लिखा गया है। १६वीं सदीमें पुरांगाम-यणिक कलाड़ी उपकूलस्थित भाटवळ आदि स्थानोंसे लोहा ला कर यूरोप भेजते थे। १५११ ई०में पुरांगालराजने गोआके नगरके लिये भेजा था, कि ये प्रथम लोह और इस्पात चोटक बननेसे अदिहाके उपकूलमें तथा तोहितसरागतोत्पत्ती मुक्त जातिसे मध्य देशके लिये भेजे।

(Archivo Port. Orient, Fasc. 3, 318)

Winkler-Pratt, *Lehrbuch der Metallkunde*, 1881

नामक पुस्तकमें तथा Percy-रचित धातु विज्ञान (Metallurgy, Iron and steel) ग्रंथमें "दुग्ध" नामक इस्पातको विशेष प्रशंसा है। वैज्ञानिक ग्रंथ है, कि आनाल्सकी विषयतः तलायारके कलाक भारतीय युद्ध इस्पातसे ही बनाये जाते थे।

उड़ीसाके सिंहभूम जिलागतगत जयपुरका प्रतिद्व. ताता-भायल-छोलाका कारखाना जिससे भी छिगा नहीं है। उसमें ८० हजार मनुष्य काम करते हैं। ऐसा बड़ा लोहाका कारखाना पृथिवी भूमि नहीं है। इसके प्रतिष्ठाता बम्बई-निवासी सर दोतारजी जगदरमो ताता हैं।

वर्षमान समयमें भारतीय लोहाकी मयेहा यूरोपीय लोहाको अधिक भाग्य है। इससे युद्धयोंके निरप काममें जाने वाले दरये, वेष्टी, लकटे, अंशको, कलमी, तसले, योग, दरये, कल कसे आदि बनाये जाते हैं। रेल-लाइन, पुल आदि बहुतसे असमसाहसिक कार्य भी लोहाके द्वारा किये जाते हैं। लोहाके इस्पातसे इजिन बनाये जाते हैं।

२ छागविशेष, एक प्रकारका बकरा।

(मूल ११५५।१२)

लोहकनूयं—विद्विस्त-सारीक-नूयोरभेद।

लोहकालक (सं० लो०) दानलोहा।

लोहकार (सं० लो०) लोहाकार।

लोहकट्ट (सं० लो०) मण्डूक, लोहेकी मेल।

लोहकारक (सं० पु०) लोहेन लोहनिगड्डेन याता प्रचारो मत। नरकभेद। लोहाकार वेले।

लोहक (सं० लो०) लोहाय जायते इति जग-उ। १ मण्डूक, लोहेकी मेल। २ परभेद, एक प्रकारका लोहा।

लोहाद (सं० पु०) मन्व-विधितसामेद।

लोहनिष्पत्तीकरण (सं० लो०) लोहेकी अणु तादा भ्रम करना।

लोहनिष्पत्तीकरणमतप्रक (सं० लो०) पुनः मण्डूक, पुनः लोहाया लोह गुणन। ये पवि-पराणके सिद्धि रहनेके कारण इगला मिलपत्रक नाम पदा है। निष्पत्तीकरणके साथ विषय और मूल धर्म भेद नहीं होने पर

भी ४ रत्ती मात्रामें उसका सेवन किया जा सकता है।

( संस्कारवर्ष )

लौहपत्नी ( स० खी० ) १ लौहचटका, लोहेका चटकना।

२ लौहमारण। ३ लौहपुर, एक प्राचीन नगर।

लौहपर्वटी ( स० खी० ) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—

पारा २ तोला, गंधक २ तोला एकदम फज्जली बना कर

उसमें २ तोला लोहा मिलावे। पीछे घरलमें उसे अच्छी

तरह कूटे। इसके बाद किसी लोहेके बरतनमें घी लगा

कर उसमें फज्जली रख घीमी आंच पर चढ़ावे। गल जाने

पर उसे केलेके पत्ते पर ढाल यथाविधि पपटी बनावे।

पीछे उसे चूर्ण कर ले। १ रत्तीसे ले कर प्रति दिन १ रत्ती

फरके मात्रा बढ़ावे। एक या दो सप्ताह तक अर्धात् जव

तक अच्छा न हो जाय, तब तक इसका सेवन करते रहे।

अनुपान शीतल जल अथवा जोरा और धनियेका काढ़ा

बताया गया है। इसके सेवनकालमें विद्राही और

शाकादि द्रव्य तथा चिन्ता, मैथुन आदि वर्जनीय हैं।

लौहपर्वटी सेवन करनेसे प्रहृणी, सुतिका, अतोसार,

कामला, अग्निमान्द्य और भस्मक आदि नाना रोग विनाष्ट

होते हैं। ( भैषज्यरत्ना० ग्रन्थपथि० )

लौहपर्वटीरस ( स० खी० ) श्वासलक्ष्ण और कासादि

रोगनाशक औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा और

गंधक प्रत्येक २ भाग तथा लोहा १ भाग, इन्हें एकदम

पीस कर घीमी आंचमें गलावे, ठंडा होने पर गोली

बनावे। पीछे ब्रह्मपट्टि, पुण्डरी, बक, त्रिफला, जयन्ती,

सम्झाल, त्रिकटु, अडूस, घृतकुमारी और अद्रक, प्रत्येक-

के रसमें सात सात बार भावना दे। सूख जाने पर तांबे-

के बरतनमें रख जब तक गंध न निकले, तब तक पुष्ट-

पाक करे। दो रत्ती भर पानके रस, पीपल, सुरस काथ

अथवा अडूसके पत्तोंके रसके साथ सेवन करनेसे श्वास

कास आदि रोग नष्ट होते हैं। इमली, तेल, वैगन,

कुम्भाण्ड, बेला, मांसका जूस और कफजनक द्रव्य

खाना तथा खोसम्मोग करना मना है। इस औषधमें

लोहेके बड़े तांबेसे पाक करने पर ताम्रपर्वटी तीव्र

होती है। वाप्रर्वटी देखो।

लौहपत्नी ( स० पु० खी० ) लौहस्य दन्वमिव वन्धनं यत्।

लौहपत्नी, लोहेकी जंजीर।

लौहभाण्ड ( स० पु० ) १ लौहस्य भाण्डमिवाकृत्यैव।

१ अश्वभाल, खल। २ लौहनिर्मित पात्र या भाण्ड,

लोहेका बरतन।

लौहभू ( स० खी० ) लौहस्य भूरिव। कटिनो नामक

लौहपात्र, कड़ाह।

लौहमेमीवीज ( स० खी० ) रस जारण वीजभेद।

लौहमप ( स० खी० ) १ लौहमण्डित, लोहेसे मड़ा हुआ।

२ लौहनिर्मित, लोहेका बना हुआ।

लौहमल ( स० खी० ) लौहस्य मलम्। लोहाकट,

मण्डूर, लोहेकी मेल।

लौहस्युज्वरस ( स० खी० ) एजोहारोगनिवारक औषध-

विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, लोहा, अवरक,

तांबा, मैन्सिल, विषमुष्टि, कौडी, शबदूत, शङ्ख, रसाञ्जन,

जायफल, कुट्ट, सांचिशार, यवसार, जयपाल, सोंठ,

पीपल, मिर्च, हींग और सेन्धव लवण प्रत्येक समान

भाग ले कर सूर्यावर्त और बिल्वपत्रके रसमें मात सात

बार भावना दे। पीछे फिरसे सूर्यावर्तसमें अच्छी

तरह मर्दन करे। दो रत्तीकी गोली रोगीको सेवन

करनेसे प्लीहा, यकृत, गुल्म, अट्टला, अग्रनास, शोथ,

उदरी, घातरक और विद्रधिरोगकी शान्ति होती है।

लौहयन्त्र ( स० पु० ) लौहनिर्मितः यन्त्र इव। १ लोहे-

की कल। २ रसायनाक भाण्डविशेष। इसमें औषधादि-

का पाक करना होता है।

लौहरसायन ( स० खी० ) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—

शुद्ध पीट्टलीवद गुग्गुल, तालमूली, त्रिफला, चैरकी

लकड़ों, अडूसकी छाल, निस्तोष, भूकदम्ब, सम्झाल,

चितामूल, घृहरका मूल, प्रत्येक १० पल, पाकाई जल

८० सेर, शेष २० सेर, काढ़ेकी कपड़ेमें छान १ सेर

चीनी और १० पल उक्त गुग्गुल मिलाना होगा। अनन्तर

किसी तांबेके बरतनमें पुराना घी ४ सेर और लौहचूर्ण १२

पल डाल कर उसके साथ चीनी और गुग्गुल-मिश्रित काथ

जलसे पाक करे। आसन्न पाकमें त्रिलाजित २ पल,

इलायची ४ तोला, दारचोनी ४ तोला, बिड़ङ्ग २ पल,

मिर्च, रसाञ्जन, पीपल, त्रिफला प्रत्येक २ पल ऊपरसे

डाल दे। ठंडा होने पर उसमें मधु २ सेर मिलावे और

पीछे त्रिला पर पीस कर घोंके बरतनमें रखे। इसको

व

व-विष्णु या संस्कृत वर्षान्तात्का उत्तमवर्षा व्यञ्जनवर्षा ।  
यद् उच्यते तत्र विचार और अन्ततय अर्द्ध व्यञ्जन माना  
जाता है ।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है,—

"उत्तमवर्षात्तन्मासस्यैवम् भयमानतः ।  
अन्ततयेभ्यस्त्वयं ह्यहोरात्रोर्दिशस्यस्यम् ॥"

दशमके मतसे इसका उच्चारण स्थान दृश्य है, किन्तु  
पूर्वसे जगद् दृश्योपु बताया है ।

श्रीमद्वर्षाभिधानवन्त, कद्रवामलके मन्त्रकोष और  
अन्यान्त मन्त्रशास्त्रोंमें 'व' वर्षाके जो वर्णो लिखे है,  
वे इस प्रकार हैं—

"वा वासो वास्यो वृक्षमा परस्यो वेदमङ्कतः ।  
वैशं वाजस्य वासातः ॥" ( श्रीमद्वर्षाभिधान )  
"वसो वसो वास्यः स्वैदः सद्योभ्रो जरा ॥"  
( कद्रवामल-मन्त्रकोष )

"वो वास्यो वास्यो वृक्षमा परस्य देवमङ्कतः ।  
वद् वसो वास्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥  
उत्तमवर्षास्तु वासातः वस्यो वास्यः सुविः ।  
विषातः वस्यो वस्यो विषो वास्यो वस्यो ॥"  
( मन्त्रशास्त्र )

यद् वर्षे पञ्च प्राणमय, त्रिविद् और त्रिधातुः सम  
व्यय, चतुर्गोत्रकलशता और मयमिद्विद् है । त्रिवर्षे  
आद्यान्तिको इत्यत्र सारूप कल्पताया था—

"वसो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥  
वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥  
वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥  
वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥  
वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥  
वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥"

मन्त्रशास्त्रमें इस वर्षाके अन्ततय  
जाता है, तथा—

"वन्द्युपजयो देवी विष्णो वस्यो वस्यो ॥  
सुवन्तमात्राभ्यस्त्वो रव्यहोस्त्वन्तो वस्य ॥  
अप्यवर्षो वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥  
एवं धरत्या वस्यो वस्यो वस्यो वस्यो ॥"  
( वर्षाभिधान )

हिन्दुमें इस वर्षाका उच्चारण अधिकतर वेदक योग-  
से होता है, सिर्फ संस्कृतभाषासे लोग ही इसको उच्चा-  
रण करते हैं ।

चंकट ( हि० वि० ) १ टंडा, बाँका । २ कुटिल, जो मोटा  
न हो । ३ विकट, दुर्गम ।

चंक्रनाली ( हि० खो० ) रामधुमकी बोलचालमें सुभुम्भा  
नामक नाटो जो मध्यमें मानो गई है ।

चंद्र—शुभु नद् । आज कल अष्टमस ( 1855 ) नामके  
प्रसिद्ध है । यह मध्य-एशियाको एक राज्यसे बन्दो नदी है ।  
इस नदीका अधिकतम लम्बाई-राज्यमें बहता है । यह  
पानोरको ससे ऊँची अधिकतम नदीकुलसे निकल कर  
तुर्किस्तानको पूर्व और पश्चिम इन दो भागोंमें विभक्त  
करती है । पीछे बोगाराके विन्कोफे मानार और तातारके  
सुविस्वत मरुस्थलको पतनको हुई 1300 मील जाके  
बाद अनेक जगहोंमें विभक्त हो आकर समुद्रमें गिलो  
है । पुर्वादिशोप विन्नास है, कि पहले यह नदी काश्गार-  
मन्तारमें गिलो थी । पीछे उत्तरी गति बदल गई है ।

चंद्रोको धारणा है, कि इस अशु ( 1855 ) या चंद्र  
नदीके किनारे ही आर्य-जातिका वास था । इसी सु-  
प्रमाणसे नदी दो बर आर्य-मन्त्रका सुभुम्भा मूर्तिवत्त्वमें  
फैली है । वादयारव प्रमाण ऐतिहासिक श्राव्यो, हेरो-  
डोटस आदिके विवरणसे ज्ञाता जाता है, कि पूर्वकालमें  
महो मन्त्रशास्त्रिका अधिकतय था तथा इस नदीमें रहने  
और पचन कारणसे विभक्त कर दिया था । सुभुम्भा  
और मन्त्रशास्त्रोंमें मन्त्रकोष बहा  
मन्त्रशास्त्र और मन्त्रशास्त्रोंमें मन्त्र  
है ।  
मन्त्र शास्त्रोंमें मन्त्र है, वर्षो

धाज्जकल अक्षु नदी कहलाती है। पुराणके मतसे वंश नदी जम्बूद्वीपमें बहती है। पुराणका अनुवर्त्ती होनेसे मालूम पड़ेगा, कि शाकद्वीपकी सीमा पर जो वंश बहता है, यह इक्षु और जम्बूद्वीपमें जो वंश आ गिरा है, यह वंशु नामसे प्रसिद्ध है।

इस नदीके किनारे 'वक्षु' या 'वखम' जातिका वास रहनेके कारण इसका वंश नाम पडा होगा। यहां सूर्य और अग्नि-उपासक शकोंके अभ्युदयके बाद वीह-प्रभाव फैला था। ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक इस नदीके किनारे अनेक बौद्धकीर्त्ति और अशोक स्तूपके निदर्शन देख गये थे। उन्होंने भी इस नदीका पोतसु या वक्षु नामसे उल्लेख किया है। उनके वर्णनमें अनवतत (वर्त्तमान सरीकूल) हृदके पूर्वांशसे गङ्गा, दक्षिणसे सिन्धु, पश्चिमसे वक्षु तथा उत्तरांशसे सोता नदी निकली है। चीनपरिव्राजक इस स्थानको देख कर जो वर्णन कर गये हैं, उसके साथ विष्णु और मत्स्यपुराणके वर्णनका एकदम मेल है। चीनपरिव्राजकने जिते 'अनवतत' हृद कहा है, यही पुराणमें 'विन्दुसर' नामसे परिचित है। विन्दुसर देखो।

वंगाली ( हि० खी० ) भैरव रागकी रागिणी। यह मोहव जातिकी है और इसमें श्रुभम तथा धैवतस्वर नहीं लगते। कल्लिनाथके मतसे यह सम्पूर्ण जातिकी है और इसमें दो बार मध्यम आता है।

वंदनवार ( हि० खी० ) यह माला जो सजावटके लिये घरोंके द्वार पर या मंडपके चारों ओर उतसवके समय बांधो जाती है। इस मालामें फूल पत्तियां गुठी रहती हैं, यथादिमें आमके पल्लव गूंधे जाते हैं।

वन्दनमात्रा देखो।

वंश ( सं० पु० ) यमति उद्भिरतिपुरुषान् यन्यते इति वा। दु यम उद्भिरणे इति धातोर्धेद्वा यन शब्दे इति धातो वाहुलकान् शः। यद्वा, यधि उच्यते इति वा यश कान्ती अय घञ् वा। ततो जुम्। १ पुत्र पीलादि। पर्याय—

सन्तति, गोत, जनन, कुल, अभिजन अन्वय, सन्तान, निघन, जाति। (अटापर)

विद्या और जन्म द्वारा, एकलक्षणाकान्त कुलपरम्परागत सन्तान ही वंश कहलाते हैं,—'कुलञ्च विद्यया जन्मना वा प्राणिनामेकलक्षणः सन्तानो वंशः।' (जगदित्य) सुभूतिने कहा है,—'धनेन विद्यया वा ख्यातस्यापत्यधारा वंशः।' अर्थात् धन और विद्यागौरवसे प्रसिद्ध आपत्यधाराका नाम ही वंश है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वाकालसे यहां अनेक प्रतिष्ठित और धर्मशास्त्री राजवंशका आधिपत्य फैला था। ये सब विभिन्न वंशीय राजसन्तति-परम्परा भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न स्थानका अग्रतिहृत प्रभावसे राज्यशासन कर गईं हैं। पुराणादिमें पृथुवंश, भरतवंश आदि अनेक सुप्राचीन वंशोंका हाल लिखा है। उनमेंसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश सर्वप्रधान हैं। सूर्यवंशमें महाराज मानघाता, दिलीप, रघु और दशरथात्मक शौरामन्त्रने जन्मग्रहण किया था। रामचन्द्र द्वारा रावण विजय सूर्यवंशकी प्रसिद्धिका कारण है। चन्द्रवंशमें सैक्रद्धों राजा उत्पन्न हुए थे। उनमेंसे भारतीय महायुद्धके नायक युधिष्ठिरादि पञ्चपाण्डवसे ही वंशकी कथाति फैली है। सूर्य और चन्द्रवंश देखो।

इन चन्द्रवंशकी दूसरी शाखा यदुवंशमें भगवदवतार श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था। इसी वंशमें दक्षिणात्यके प्रसिद्ध यादव राजवंश उत्पन्न हुए हैं।

यादव-राजवंश देखो।

तुर्वसुके वंशमें उज्जयिनीपति महाराज विक्रमादित्य आविर्भूत हुए थे।

शकजातिके अभ्युदयसे भारतवर्षमें शककुशन-वंशीय वैदेशिक राजवंशका अधिष्ठान हुआ। उस वंशके राजे कपशः हिन्दू धर्मका अवलम्बन कर राजपूत कहलाने लगे। तभीसे राजपूत-समाजमें ८ शाखाओंमें विस्तृत अग्निकुलकी उत्पत्ति हुई। परमार, परिहार, चौलुक्य और चाहमोन ये चार अग्निकुल हैं। इतिहासमें इन चार वंशोंकी प्रतिपत्तिका यद्येष्ट परिचय है।

इसा जन्मसे पहले जैन और बौद्ध राजवंशके अलावा शिशुनागवंश, नन्दवंश, मौर्यवंश, यवनराजवंश, मित्र,

• Wood's Journey to the Source of the Oxus. p. XXIII.

व

घ-दिशि या संघटन वर्णमात्राया उन्तोसर्वा व्यञ्जनवर्ण ।  
यद् उच्चारण विहार और अन्तम्य अद् व्यञ्जन माया  
जाता है ।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है,—

“अतोऽक्षरमन्तव्यमयम् भगवानमः ।  
अथ यत्तु अन्तरात्संस्कारोर्धोदिस्रस्यम् ॥”

कपाल के मतमें इसका उच्चारण स्थान ह्रस्व है, किन्तु  
दुमरा जगद् ह्रस्वोष्ठ बनाया है ।

श्रीमद्यजुर्वेदसंहितामें, यद्वापामलके मन्त्रकीय और  
अथान्य सन्तानात्तौमें 'व' वर्णके जो पद्यांश लिखे हैं,  
ये हस्त प्रकार हैं—

'वा वातो वायव्यो वृक्षमा वयस्यो देवसिंहकः ।  
मैत्र्य सान्त्वय वासातः ॥” ( श्रीमद्यजुर्वेदसंहिता )  
“वयसो वयसो वयसः स्वैरः सार्वभौमो जरा ॥”  
( बृहदारण्यक-मन्त्रोद्योग )

“वा वयो वायव्यो वृक्षमा वयस्य देवसिंहकः ।  
यद् वंशो वानिनीयसः वयस्यवनिनायकः ॥  
उन्त्यारयन्तु मासो वासा लिख् वासस्य शुचिः ।  
विशुः ॥ इत्युः प्रथेः विदोः यमसादनम् ॥”  
( मानवधर्मशास्त्र )

यद् वर्ण पञ्च प्राणमय, त्विदित्त् और त्विगानि सम  
मित्त, सन्तुर्धर्मकल्पना और सर्वमिदित्त् है । निघण्टे  
आचार्यकी इसका स्वरूप बताया था—

“यत्तं वायव्यमपि वृषकरोर्धोऽन्तमवयम् ॥  
वायव्यमयं वर्णो विदित्त्परिचं यदा ॥  
विदित्त्परिचं वर्णोऽन्तमवयवमिदुम् ॥  
वायव्यमयं वर्णो विदित्त्परिचं यदा ॥  
वायव्यमयं वर्णो विदित्त्परिचं यदा ॥  
विदित्त्परिचं वर्णो विदित्त्परिचं यदा ॥”

( बृहदारण्यक )

महाभाष्यमें इस वर्णकी उच्चारणमात्रा भी सम-  
ान्यमें लिखी है, यथा—

“इन्द्रमुत्तमो देवीं विदुषो वृद्धोऽन्तमवयम् ॥  
शुभ्रमावयवमवयवो रघुसोऽन्तमवयवम् ॥  
वायव्यमयं वर्णो विदित्त्परिचं विदित्त्परिचम् ॥  
एवं उच्यते यद्वात्तु इत्यन्तं वर्णमा वयो ॥”

( बृहदारण्यक )

द्वितीये इस वर्णका उच्चारण अधिकतर पेशके षोष्ठ-  
से होता है, तिसके संघट्टाभासी लोग ही ह्रस्वोष्ठ उच्चा-  
रण करते हैं ।

पंचट ( हि० वि० ) १ टेट्टा, बाँका । २ पुर्लिट, जो संघो-  
न ही । ३ चिकट, दुर्गम ।

पंचनालो ( हि० खो० ) साधुभौकी बोलचालमें सुपुत्रा  
नामक नाट्यो जो मध्यमे मागो गई है ।

वँकु—इक्षु नदी । आस कट्ट भाषासम ( Oms ) नाममें  
प्रसिद्ध है । यह मध्य-एजियाकी एक सबसे बड़ी नदी है ।  
इस नदीका अधिकतम तालार-राज्यमें बहता है । यह  
पातोरको सबसे ऊँची अधिकतम सरोकुलसे निकल कर  
मुक्तिस्तानकी पूर्व और पश्चिम इस ही भाषाओंमें विभक्त  
करती है । पीछे योकाराके विजोर्ण प्रायत और तालारके  
सुविरचुन महरघाको फाटती हुई १३०० मील अन्तके  
बाद अनेक जालाओंमें विभक्त हो भारत समुद्रमें गिली  
है । पुराविद्वीका विदनास है, कि पहले यह नदी कार्पे-  
सागरमें गिली थी । पीछे इसकी गति बदल गई है ।

वहुतोंको धारणा है, कि इस अणु ( Oms ) या गँट  
नदीके किनारे ही सार्व-जातिका पास था । इसी सु-  
प्राचीन नदी ही हस्त भाषा-सम्बन्ध सुपुत्र मूरीवस्यमें  
फैली है । पाश्चात्य प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों, हेरो-  
डोटस आदिके विवरणसे ज्ञाता जाता है, कि पूर्वजालमें  
यहां मरुजातिका भाषाव्यवस्था था तथा इस नदीमें इरान  
और तुस्तान राज्योंके विभक्त कर रखा था । तुस्तानके  
उत्तमगंभी मरुव्युत्पन्न और महाभाषाओंमें प्राचीन बहता  
है । महादेश देते । मरुव्युत्पन्न और महाभाषाओंमें प्राचीन  
दायकी सोना पर किम इस नदीका अन्त है, यही

आज काल अक्षु नदी कहलाती है। पुराणके मतसे वंक्ष नदी जम्बूद्वीपमें बहती है। पुराणका अनुवर्चो होनेसे मालूम पड़ेगा, कि शाकद्वीपकी सीमा पर जो अंश बहता है, वह इक्षु और जम्बूद्वीपमें जो अंश आ गिरा है, वह वंक्षु नामसे प्रसिद्ध है।

इस नदीके किनारे "वक्ष" या "वक्षम" जातिकी वास रहनेके कारण इसका वंक्ष नाम पड़ा होगा। यहां सूर्य और अग्नि-उपासक शाकोंके अभ्युदयके बाद बौद्ध-प्रभाव फैला था। ७वीं सदीमें, चीनपरिव्राजक इस नदीके किनारे अनेक बौद्धकीर्तियाँ और अशोक स्तूपके निदर्शन देख गये थे। उन्होंने भी इस नदीका पोटसु वा वक्षु नामसे उल्लेख किया है। उनके वर्णनमें अनवतस (वर्तमान सरोकूल) हृदके पूर्वांशसे गङ्गा, दक्षिणसे सिन्धु, पश्चिमसे यक्षु तथा उत्तरांशसे सीता नदी निकली है। चीनपरिव्राजक इस स्थानकी देख कर जो वर्णन कर गये हैं, उसके साथ चिण्डु और मत्स्यपुराणके वर्णन का एकदम-मेल है। चीनपरिव्राजकने जिसे 'अनवतस' हृद कहा है, यही पुराणमें 'विन्दुसर' नामसे परिचित है। विन्दुसर देखो।

बंगाली ( हि० खी० ) शैव रागकी रागिणी। यह ओडय जातिकी है और इसमें श्रम्य तथा धैर्यतत्त्व नहीं लगते। कल्लिनाथके मतसे यह सम्पूर्ण जातिकी है और इसमें दो वार मध्यम आता है।

घंदनचार ( हि० खी० ) यह माला जो सजावटके लिये घरोंके द्वार पर या मंडपके चारों ओर उतसवके समय बांधी जाती है। इस मालामें फूल पत्तियाँ गुली रहती हैं, यथादिमें धामके पल्लव भूँधे जाते हैं।

बन्दनमात्रा देखो।

घंन ( सं० पु० ) घमनि उद्धरतिपुरुषान् घन्यते इति वा। दुःखम उद्धरणे इति घातोर्थेद्वा घन शब्दे इति घातो वाहुल्य-कान् शः। यद्वा, यष्टि उच्यते इति वा यश कान्ती अघ घन् वा। ततो नुम्। १ पुत्र पीतादि। पर्याय—

सन्तति, गोल, जनन, कुल, अभिजन अन्वय, सन्तान, निघन, जाति। (जटापर)

विद्या और जन्म द्वारा एकलक्षणकान्त कुलपरम्परागत सन्तान ही वंश कहलाते हैं,—'कुलस्य विद्यया जन्मना वा प्राणिनामेकलक्षणः सन्तानो वंशः।' (अथादित्य) सुभूतिने कहा है,—'घनेन विद्यया वा ख्यातस्यापत्यधारा वंशः।' अर्थात् धन और विद्यागौरवसे प्रसिद्ध आपत्यधाराका नाम ही वंश है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वाकालसे यहां अनेक प्रतिष्ठित और घोर-शाली राजवंशका आधिपत्य फैला था। वे सब विभिन्न वंशीय राजसन्तति-परम्परा भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न स्थानका अप्रतिहत प्रभावसे राज्यशासन कर गईं हैं। पुराणादिमें पृथुवंश, भरतवंश आदि अनेक सुप्राचीन वंशोंका हाल लिखा है। उनमेंसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश सर्वप्रधान हैं। सूर्यवंशमें महाराज भानुधारा, दिलीप, रघु और दशरथात्मज श्रीरामन्दने जन्मग्रहण किया था। रामचन्द्र द्वारा रावण-विजय सूर्यवंशकी प्रसिद्धिका कारण है। चन्द्रवंशमें सैकड़ों राजा उत्पन्न हुए थे। उनमेंसे भारतीय महायुद्धके नायक युधिष्ठिरादि पञ्चापाण्डवसे ही वंशकी ख्याति फैली है। सूर्य और चन्द्रवंश देखो।

इन चन्द्रवंशकी दूसरी शाखा यदुवंशमें भगवद्वतार श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था। इसी वंशमें दक्षिणात्यके प्रसिद्ध यादव राजवंश उत्पन्न हुए हैं।

यादव-राजवंश देखो।

तुर्वंसुके वंशमें उज्जयिनीपति महाराज विक्रमादित्य आविर्भूत हुए थे।

शकजातिके अभ्युदयसे भारतवर्षमें शककुशान-वंशीय वैदेशिक राजवंशका अधिष्ठान हुआ। उस वंशके राजे क्रमशः हिन्दू धर्मका अवलम्बन कर राजपूत कहलाने लगे। तमोसे राजपूत-समाजमें ८ शाखाओंमें विस्तृत अग्निकुलकी उत्पत्ति हुई। परमार, परिहार, चौलुक्य और चाहमान ये चार अग्निकुल हैं। इतिहासमें इन चार वंशोंकी प्रतिपत्तिका यथेष्ट परिचय है।

इंसा जन्मसे पहले जैन और बौद्ध राजवंशके अलावा शिशुनागवंश, नन्दवंश, मौर्यवंश, यवनराजवंश, मित्त,

\* Wood's Journey to the Source of the Oxus, p. XXIII.



काश्य और अश्वपत्नी आदि यंत्रोक्तो गणनि भारतप्रसिद्ध है। राजवंशका लोग होनेसे भारतवर्षमें सुमयवंशका सम्बुद्ध हुआ। स्वयं सुमयको परास्त कर नीरमानने भारतमें हजयवंशको प्रतिष्ठा की। मातृपराय यंत्रोक्तो होनेसे हजयवंशके मिदिरकुलका विध्वंस कर उज्जयिनोत्तम-यंत्रका शासन बढ़ाया था। इसके बाद मगध, पल्लवो, उज्जयिनो, क्याणचीकर, बनोज आदि देशोंमें एक एक प्रबल-पराकास्त राजवंशको प्रतिष्ठा हुई थी। राष्ट्रकूट या राष्ट्रियवंश, भोज और चम्पैय तथा जनोजके मायुष-राजवंशका प्रभाव बिम्बोने भी छिया नहीं है। इसके सिवा भारतके नागा स्थानोंमें सुदेला, जाट तथा निजाम-जाटो, कुलवनाओ आदि विभिन्न हिन्दू और मुसलमान जातियो बहुतो राजवंशको प्रतिष्ठा हुई है।

उत्तर-भारतीय इन सब महापरायनों मायुष राज वंशके समय बङ्गालमें शूरवंशका प्रभाव फैला। आदि-शूरके प्राद्वल शासिका हाल बङ्गालमें मातृको ही मानस है। पीछे यहाँ पाल और सैन-राजवंशका सम्बुद्ध हुआ था। सैनवंशोप लक्षणसेनको परास्त कर महाभद्र-द-बलिधार गिन्दकोने बङ्गालको फलट किया।

भारतवर्षमें मुसलमानोंके आनेसे यहाँ गजरो, घोरो, गुलामवंश, गिजामोवंश, गुजरातवंश, सिध, लोदी, सुर और मुगलवंशने राज्य किया। उनके बाद अङ्गरेकराज-का सम्बुद्ध हुआ है।

२ मृदरा उद्धरणकण, संहर। ३ मृदुषवप, पीठको रोड। ४ तम। ५ पाथभाएटविरेय, वाँसुरो। ६ रणु, एक प्रकारको रंग। ७ सतं नामक मालमृत्। ८ चट्ट-म-मज्जोषमाण, लङ्काने बीचका यह भाग जो ऊँचा होता है। यहाँ पर अहाँ पर यह अचिरक बोझा होता है। ९ जनसंख्या। १० अतिथि, मेदमान। ११ दम हाथका एक भाग। १२ अतिथि-मृत् दण्डवशादिको अतिथि, मःट्ट आदिको लम्बो दृष्टि। १३ मक्केके ऊपरको दृष्टि, बीगा। १४ विष्णु। १५ यंत्रोक्तोपन। १६ पुत्र, पुत्र। १७ मृत्प्रतिनिधित्व, बीग। इन पृथ्वी पर विभिन्न स्थानको आदरणाके लःरणापुनवार विभिन्न प्रकारका बीग सम्भव होता है। उज्जयिनपविदु देशमें और हुकारने २२ प्रकारके बीगका उल्लेख किया है। उनमें

भारत और मलय प्रायद्वीपमें अष्ट अष्ट भाग १५ प्रकारके बीग देखे जाते हैं। यह मलय देशोंमें अचिर होता है और बहुत से कामोंमें जाता है। इसमें शहराओ, टोरियाँ, पंभे, कुसियाँ, उट्टर, छपर, छिप्राँ आदि अनेक चीजें बनती हैं। यहाँ यही तो लोग केवल बीसमें ही मारा मकान बना लेते हैं और यही यही पथे बीसके चीजोंमें भर कर पावल तक बना लेते हैं। इसके पतले देशोंसे रसिसवाँ भी बनते हैं। इसके बीपत्तोंका मुख्य भाग और व्यापार भाँ तैवार किया जाता है।

भिन्न भिन्न देशोंमें यह भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध है। टिन्की—बीस, बटाङ्ग, मगलबीस, लन्दांग, बाङ्गला—वेदुष या वेडुबीस, बीस; भागाम—बगर, बीलकतङ्गा; सँशाली—माट; मारो—वाट-बापट्टे; मट्टाम—परियाला; पञ्चाश—मगर, माट; गुजरात—यंश; कोङ्कण—कलक, पीर; पंजामदन—पन; बन्दे—मन्दे, माण्डमण; दक्षिणात्य—भांग, छोटा बीस होनेसे भाँमा और बड़ा होनेसे बन्गु; गीट—कटि यदुर; मरब—कसाय; पारम्प—मर्, तामिल—मनमन, मलमिल; मेतमू—मूलकान, ककु, सोङ्गा, येंकु, योङ्ग येंकु पीले-पेरु, वेन्नेमुकर, वेन्नेसैन, येनु; कनादी—विदु हुल्लु, मण—वा-माद, मन्—य लार्कि, कैकत्या; गिङ्गा-पुर—बट्ट उना, उना; चींग—पुट; मङ्गरेतो—Hambroo। वैज्ञानिक भाषाओंमें यह उज्जयिनकरके लुचविमान (Guminal) को दृष्टवृत्त (Bambical) के लोके अन्तर्गत है। संस्कृत पदोंमें—कोमक, लयन्मार, कर्मा, लविमारा, लुचपत्र, जङ्गवाँ, यवकल, येनु, मकर, लेकन, विष्णुवर्मा, रमन, लुचकेमुक, कण्डलु, बरुके, महापट्ट, हुडमिया, हुडपत, यनुदुम, भानुदु, हुडवापट्ट, रिमाटो, पुत्रपापक।

बीग सामान्यतः ४००० हाथ अर्थात् १००० १०० फुट तक लंबा होता है। छोटा बीग ३० फुटों तक लंबा नहीं होता। भारत तथा पूर्व भारतोप देशोंमें जिनके प्रकारके बीग देखे जाते हैं, पाठ्यात्म उज्जयिनदेशीय तकके आर्षविक मदन, क्षीपंता, अचिर और पतलबीगका निर्देश किया है। बीगे अनेक वैज्ञानिक नाम, उपवि-

स्थान, ऊँचाई आदिका हाल संक्षेपमें लिखा जाता है—

१ *Bambusa affinis*—मोर्चावानमें उत्पन्न होता है।  
लम्बाई १५से २० फुट होती है। प्रहादेशकी भाषामें इसको  
यैका और यिशे कहते हैं।

२ *B. Agrestis*—जम्बस्थान चीन, कोचीन चीन  
और मलयद्वीपपुञ्ज। गठन घनाकार, मोटाई १ फुट और  
लम्बाई ११ फुट होती है। भीतर पोल नहीं होता।

३ *Amahussana*—पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जके अन्ध-  
यना और मनिला नामक स्थानमें होता है। लम्बाई  
थोड़ी होती है और यह झाड़ीकी तीर पर पैदा होता है।  
इसमें गांठें बहुत घनी होती हैं।

४ *B. Apus*—यवद्वीपके अन्तर्गत शालक पर्वतके  
ऊपर इस जातिकका बांस उगता है। यह ६०से ७० फुट  
लम्बा और मनुष्यकी जांघके समान मोटा होता है।  
पत्तियां बड़ी बड़ी और सूईकी नोकसी होती हैं।

५ *B. Aristata*—पूर्वभारतके नाना स्थानोंमें  
पाया जाता है। यह चिकना तथा पतला होता है, पर  
दण्डाकार नहीं होता। इस श्रेणीके बांस देखनेमें बड़े  
ही सुन्दर लगते हैं।

६ *B. Arundinacea*—मध्य, दक्षिण और पश्चिम-  
भारतमें प्रधानतः देखा जाता है। यह दण्डाकार और  
३०से ६० फुट ऊँचा होता है। भीतर उतना पोल नहीं  
होता। रेशे चिकने, कठिन और मोटे होते हैं। पत्तियां  
छोटी और पतली होती हैं। तीस वंशका पुराना होनेसे  
इसमें फूल लगते हैं।

७ *B. Arundo*—छोड़ी बांस कहलाता है। इससे  
महाबलेश्वरकी प्रसिद्ध छड़ी बनती है।

८ *B. Aspera*—आम्ययना द्वीपमें उत्पन्न होता है।  
पेड़ ६०से ७० फुट लम्बा होता है।

९ *B. Atra*—उत्पत्ति-स्थान आम्ययना द्वीप है। घंश-  
दण्ड चिकने और काले होते हैं।

१० *B. Paccifera*—चट्टग्रामके पहाड़ी प्रदेशमें उत्पन्न  
होता है। चट्टग्रामवासी इसको पगुट्टल्लू कहते हैं। दक्षि  
पात्यमें यह बिना बांस कहलाता है। इसमें जामुन जैसे  
एक प्रकारके फल लगते हैं। उसमें केवल एक ही बीज  
रहता है। इसी बांसमें तवाक्षोर या घंशलोचन पाया  
जाता है।

११ *B. Balcooa*—पूर्व-वङ्ग आसाममें कई जगह  
उत्पन्न होता है। बङ्गालमें इसे बालकू बांस वा घूली-बांस  
तथा आसाम और कछाड़ विभागमें वेन्धा, भालूका-बांस  
कहते हैं। लेप्टा लोगोंने इसका मिल्लू नाम रखा है।  
यह बांस खी जातिका माना गया है।

१२ *B. Bitung*—यवद्वीपमें उत्पन्न होता है। पत्तियां  
चीड़ी और खुरदरी होती हैं।

१३ *B. Blumeana*—उत्पत्ति-स्थान यवद्वीप है। यह  
दण्डाकार और नवप्रसूत बच्चेके हाथकी तरह पतला  
होता है।

१४ *B. Brandisii*—प्रहादेश और चट्टग्रामके ४ हजार  
फुट ऊँचे पर्वत पर उत्पन्न होता है। इसकी ऊँचाई  
१२६ फुट और मोटाई ३० इञ्च होती है। कच्चे पत्तियां  
डाल और हल्दी रंगकी होती हैं। यह बांस बङ्गाल  
में ओङ्ग, प्रहामें बो और मगोंके निकट तुगुरा नामसे  
प्रसिद्ध है।

१५ *B. Falconeri*—उत्तर-पश्चिम हिमालय पहाड़  
पर विशेषतः शिमला पहाड़के ५००० फुट ऊँचे स्थान  
पर यह वृक्ष उत्पन्न होता है। डा० व्राण्डिजने इसे  
बालकू बांसकी श्रेणीमें शामिल किया है। इसके फूल  
प्रायः एक इञ्च लम्बे और देखनेमें बहुत कुछ तलवा बांस-  
के फूलके जैसे होते हैं। पहाड़ी भाषामें यह छूये काग  
आदि नामोंसे परिचित है।

१६ *B. Glauca*—भारतवर्षके नाना स्थानोंमें पाये  
जाते हैं। पत्तियां एक इञ्चसे बड़ी नहीं होतीं। यह बांस  
दो फुटसे ज्यादा नहीं बढ़ता, किन्तु डाल पत्तियोंसे ढकी  
रहती हैं। इसमें छोटे और सफेद फूल लगते हैं।

१७ *B. Khasiana*—छासिया पर्वत पर पाया  
जाता है। खास जाति इसको तुमार-घंश कहती है।

१८ *B. Maxima*—कम्बोज, बालि, जावा आदि पूर्व  
भारतीय द्वीपपुञ्जोंके अन्तर्गत बहुत-से द्वीपोंमें यह वृक्ष  
पैदा होता है। इसकी ऊँचाई ६०से ७० फुट तक होती  
है। घंशदण्ड प्रायः मनुष्यदेहके समान मोटे होते हैं।  
भीतर पोल होता है।

१९ *B. Mitis*—आम्ययनाके वनमें भी यह फाफो  
उत्पन्न होते देखा जाता है। कोचीन-चीनमें इसकी

रंगों: होतो हे । यह ३० फुट तक लंबा होता है, जिम्नु वृष्ट, साधारणतः पकते होते हैं । बड़ी बड़ी मोटे मोटे देखे जाते हैं, काले काले मनुष्यके पैरके, समान मोटे होने हैं ।

२० B. Multiplex—कोयल कीनके उत्तर विभाग में घेरा लगानेके लिये इसको रीना होता है ।

२१ B. Nana—प्रत्य और कीनराज्यमें पैरा होता है । यह पेट छोटा, पसिना छोटी छोटी और निचला भाग संकुच होता है । इसका घना पैरा देखते बड़ा ही सुन्दर दिगारि देता है । कोमलतासे इति पशु का तथा प्रत्यवासी पिनपिनटन कहते हैं ।

२२ B. Nigra—कीन-साक्षाज्यके अंगरेजापिचल कास्टन प्रदेशमें यह बांस पाया जाता है । इसके दृष्ट मनुष्यकी ऊंचाईके, समान बड़मे ना नहीं पाते, कि काट लिये जाते हैं । उत्तरे व्यवहारोपयोगी अच्छे लाठी और लियेके व्यवहार्ये उत्तरीके सुन्दर बेट तयार होते हैं । इन्हीं (इमें भी) यह बांस उत्पन्न होता है ।

२३ B. Notata—नेपाल, सिक्किम, ग्रासिया-रोल-माना, भागाम, धोदट और भूटानके प्रागार्थिके मैदानोंमें यह बांस भ्राष्ट देना जाता है । भूदृष्टमें इसकी ऊंचाई ३ हजार फुट होती है । यह देखनेमें बहुत कुछ तल्ला बांसके, जैसा होता है । मोतर बोल नहीं होता, डोल होता है । गांठे बांसमें कुछ बोल होते हैं । मैदानमें यह मदन-बांस, लेपटा देगमें मदन, भूटिपामें गिउमिङ्ग, भासाममें बिजुली और मुकिपाल तथा धोदटमें पिउरी नामसे जानकर है ।

२४ B. Orientalis—वर्तमान दक्षिणारवमें ही पैरा होता है ।

२५ B. Pallida—पूर्व-गङ्गा और भासाममें मिलता है और ५० फुट लम्बा होता है । ग्रासिया लोग इसकी उम केन और कटाई। लोग पुषान और बरधान कहते हैं ।

२६ B. Pinnata—मिराम, केन्दू, मैनिमिस और उम-के नाम नामके अन्तर्गत होयेंमें यह दृष्ट बहुधावर्णों देखनेमें जाता है । यह ही इन्हीं अधिक मोटा नहीं होता । प्रायः ५ फुटके लम्बा पर पर एक गांठ रहती है । लम्बी पत्रों, जिम्नु बहुत मजबूत होके है । इस कारण यह बिलकुल लाठीके समक है ।

२७ B. Prava—सांख्योफके अरुण देगमें तथा अम्पान स्थानोंमें इसकी वनमाना देखी जाती है । इसको पसिना साधारणतः १८ इंच लम्बी और ३-४ इंच मोटी होती है । यह बांस वेकनेके लिये उपयुक्त भागमें लाया जाता है ।

२८ B. Polymorpha—पेमुयोगी पहाट पर तथा मांसेवाग विभागके पर्यग पर इस बांसका वन देना जाता है । प्रत्यवासी इसे फीवीङ्ग कहते हैं ।

२९ B. Pubescens—इसकी दृष्ट ३० फुट लम्बा पर १४ इंचसे अधिक मोटा नहीं होता ।

३० B. Spina—दक्षिणारवके पञ्जाम और गुनपुर जिलेमें उत्पन्न होता है । इसकी लम्बाई ८० फुट तक देखी गई है । उष्णतावासी इसकी कांटा बांस कहते हैं ।

३१ B. Spinosa—भारतके पूर्वोत्तरभाग अस्मिन् बांसकी जाति । हिन्दोमें इसे पुर या देहर बांस ; बङ्गालमें येङ्ग बांस । भागाममें कोटे, कटाइमें किन्टूट । प्रग्ने यरुवां कहते हैं । बङ्गाल, भासाम और प्रत्यमान, गुफ-प्रदेन, मन्त्राज प्रदेशके उत्तर पूर्वोत्तरे तथा भारतके अन्त्याव्य रूपानोंमें भाङ्गा बांस कर यह उत्पन्न होता है । यह देखनेमें सुन्दर और मजबूत मन्त्राजकिता होता है । बरतलेके निचट जहरल्लोमें और प्रत्यमानमें ३० से ५० फुट लम्बा लम्बा नहीं होता । इसकी कपको इनकी विस्तृत और बहिन होती है, कि उम बांसके इनमें गुमना मुदिम है । पसिना छोटी और बहिदार होती है । उपेष्ट नाममें जब सर्वां मुष्ट होती है, तब पुराने बांसोंमें फूल विकसने हैं । इस बांसकी काट कर पुराई बनाने जाते हैं । यहवृत्त पारल्लालमें इस बांसकी लाठी बना कर प्रायण-सत्याजके हाथमें दृष्ट देखेकी विधि है ।

३२ B. Striata—कीन देगमें पैरा होता है । इसकी भाङ्गी नहीं होती । इसके दृष्ट पत्रों, मोंटे, विकने और मजबूत बांसके होते हैं । इन्हींदृष्टके, मेन्कोयामके अन्त्या-निचेलो (Buchholzer) इसकी रीनी होती है । यह ३० फुट तक लम्बा होता है ।

३३ B. Striata—बहुत कुछ भासों बांस कर उत्पन्न होता है । भारतवर्षमें इसे बाङ्ग बांस कहते हैं । कर्णि लायको मैल्लू अन्त्यामें इसका नाम वादुवदुदुदु है । यह बहुत मजबूत, मोटा और लंबा होता है ।

३४ B. Tabacaria—आम्रयना, जाया, मलिया द्वीपों में बहुतायतसे पाया जाता है। ३-४ फुटके फासले पर एक एक गांठ होती है। इसका दृष्ट कनिष्ठगुलीसे मोटा नहीं होता। इस कारण उस पर पालिस दे कर अच्छी छड़ी बनाई जाती है। उसका छिलका इतना कड़ा होता है, कि-उस पर कुठाराघात करनेसे आगकी चिन गारियां निकलती हैं।

३५ B. Teres—बङ्गाल और आसाम प्रदेशों में प्रचलित उत्पन्न होता है।

३६ B. Trilda—बङ्गालका साधारण बांस। पेरू प्रदेशके जलमय वनभागमें भी उत्पन्न होता है। यह बांस बहुत जल्द बढ़ता है। तीस दिनके भीतर पूरी वाढ़में आ जाता है। इसकी ऊंचाई ७० फुट और मोटाई १२ इंच होती है। पत्तियां मंफोली, कोमल और गिरा-विशिष्ट होती हैं। गांठें कुछ मोटी होती हैं। इस बांसकी फाड़ कर कुछ दिन जलमें डुबो रखनेसे वह बहुत मजबूत और टिकाऊ होता है। इससे टोकरे, पंखे, चीक आदि बनते हैं। तलवा बांसरी इसकी गांठें बहुत मजबूत होती हैं। लोग इस बांसके कच्चे कोपल खाते हैं। उसमें मसाला आदि डाल कर भचार भी बनाया जाता है।

३७ B. Verticillata—आम्रयना द्वीपमें उत्पन्न होता है। इसकी ऊंचाई १५-१६से कम नहीं होती। इसके पत्ते शरीरमें लगनेसे खुल्लाहट पैदा होती है जो सहजमें घूर नहीं होती। इस कारण किसीको उसकी पत्तियां संभ्रम करनेका साहस नहीं होता। Runa phius ने इस जातिके सूक्ष्मका *Leleba alba* नामसे उल्लेख किया है।

३८ B. Vulgaris—भारतवर्षा में तमाम, विशेषतः श्रीहट्ट, चट्टग्राम और सिहल, द्वीपके दक्षिण और मध्य-भागमें उत्पन्न होता है। अमेरिकाके वेष्ट इण्डियन द्वीपों में तथा दक्षिण-अमेरिकामें जगह जगह इसकी चेतो होती है। यह बांस देशमें पीला होता है। बीच बीचमें सघन घारियां दिखाई देती हैं। बङ्गालमें इसे यासितो बांस, बर्मा में कड़क, घंजकलक और जिङ्गापुरमें ऊना कहते हैं। यह बांस साधारणतः २०से ५० फुटकी ज्यादा लम्बा नहीं होता। मोटाई छोटे छोटे लड़कोंके बाहुमूलके समान

होती है। पत्तियोंमें मोटे मोटे रेखे रहते हैं। पुराने बांसमें फूल लगते हैं, फूल देखनेमें बहुत कुछ B. Arundinacea श्रेणीसे होते हैं।

उपरोक्त छोटे बड़े सभी बांसोंके ऊपर कठिन छिलके होते हैं। बांस जातिविशेषमें मोटा घा पतला होता है। किसी बांसमें कुछ दूरके फासले पर गौर किसीमें, घनो गांठें होती हैं। जिङ्गापुर, चीन आदि देशोंमें इसकी मोटाई छोटी छोटी चड़ी बनती है। किसी किसी श्रेणीका बांस ३०-दिनके भीतर पूरी वाढ़में आ जाता है। कोई कोई २-३ मासके भीतर प्राणार्थोंके साथ बढ़ता है। प्रथागतः वर्षाऋतुमें ही बांसके कोपल निकलते हैं, कमान दिल्मानने १५३५ ई०में अच्छी तरह पर्यालोचना कर दिया है, कि वर्षाऋतुमें वज्रधनिके साथ छे पत्तियोंके साथ कोपल उगते हैं। पीछे छूटके जलसे बंध खोरे धीरे बढ़ता जाता है। चीन देशमें 'बिकिया' नामक एक प्रकारका बांसका बांस पाया जाता है। यह घर आदि सजाने धयया बसयाव बनानेमें व्यवहृत होता है। इससे अच्छे अच्छे कलमदान बनते हैं।

वर्षाके आरम्भमें जड़ लगे हुए बांसको दूसरी जगह लगानेसे उसमें भी कोपल निकलते हैं। इसके लिये बांससे भी बांस उत्पन्न होता है। *Palca* संयुक्त बीजकी जमीनोंमें गाढ़नेके बाद सात दिनके भीतर ही पंछुर उगते हैं। कभी कभी यह सूक्ष्म संलग्न रूप कर ही उग्न तक बढ़ता है। उस समय कोपलको दूसरी जगह उगाए कर रोपते हैं। यह अति शीघ्र थोड़े ही समयमें नष्ट हो जाते हैं, किन्तु अच्छी तरह यदि उसकी रक्षा की जाय, तो यह भारतवर्षके एक भागसे दूसरे प्रांतमें भेजा और उससे बांस लगाया जा सकता है। १०से १२ वर्षके भीतर यह सुपक और काटने लायक नहीं होता।

बांसका जैसा कोपल होगा, बढ़ने पर भी उसकी मोटाई उतनी ही होगी। कोपलके अनुसार बांस पतला मोटा होता है। बांसके गढ़नेमें उसकी मोटाई घटती बढ़ती नहीं, पूर्ववत् रहती है। समय पर उसकी केवल परिपक्वता निर्भर करती है। गारिकल, ताड़, लज्जु आदि पौधोंको जाल देण कर जिन प्रकार उमके समय-

का निर्माण किया जाता है, बांसकी गाँठ देल कर उस प्रकार सम्पन्न पाया नहीं मगया जा सकता। उनका पुष्पोंद्वय वा योजाधान देल कर लोग उसकी अल्पवाक्य निर्माण करते हैं। मध्यभारतकी पहाड़ी प्रदेशवासी अग्निवा पहाड़ी बांसका योजाधान देल कर अपनी उमर तककी मजला करते हैं। जो व्यक्ति बांसका दो "काटङ्ग" वर्षाई दो बार योजाधान देलता है, उसकी उमर ६० वर्षसे कम नहीं होगी।

साधारणतः २५ से ३५ वर्षके भीतर बांसमें फूल निकलते हैं। अनेक समय ४४ वर्षके बाद फूल निकलते देखे गये हैं। कमी कमी बांसके योजसे चावल पाया जाता है। यह चावल बहुतेरे लोग खाते हैं। बहुतीका विज्ञान है, कि अकालके समय बांसमें अधिकतारी चावल उत्पन्न होता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। १८३६ ई०के Trans. Agri Horti. Soc. of India, Vol. III p. 129-13 प्रथम लिखा है, कि उस समय कई जगह बांसोंमें चावल भी देला गया था, पर दुर्भाग्यवद्दो भी न था। रीतोंमें भी बांसकी फसल लगी थी। उस समय रेलकवा चावल दण्डमें १६ सेर और बांसका चावल २० सेर मिलता था। प्रत्येक बांसमें ४से २० सेर तक चावल पाया जाता है। जो बांस जितने हो विच्छिन्न भागमें और जितनी उपर भूमिमें रहता उसमें उतना ही अधिक चावल मिलता है। चावल निकलनेके बाद बांस दण्ड हो आप सूखने लगता है। किन्तु उसकी अर्द्धसे पुनः कोपना निकलता है। कमी कमी योजसे भी पूरा उत्पाद होता है।

पहले हो गिरा जा चुका है, कि मनुष्य बांसका बीजक तैयारो बना कर अल्प उमरका बच्चा बना कर खाते हैं। चाय खादि जस्तु बड़े चायसे बांसकी पत्ती खाते हैं। चायके पत्ती रोगमें बांसकी पत्ती बहुत उपकारी है। १८१६ ई०के उदीया-पुनिरामे लाली भास्करोंने बांसका चावल खा कर अपने प्राण बचाये थे। १८१५ ई०की मद्रासमें चायका और ऐकलम शिलावासी प्रायः ५० हजार मनुष्योंने कवाकूमि खा कर बांसके तन्दुलसे जोपन प्राण बचाये थे। १८११ ई०की मालदह जिलेमें दण्डमें १३ सेर बांसका चावल मिलता था। उस समय

रोगके चावलकी दर दण्डमें १० सेर थी। पुनिरामे बांसके लोग बांसका ही चायन खा कर खड़े थे, चायन सुखकर नहीं था। Dr. Bille का कहना है कि उससे शक्ती और उदारामय रोग उत्पन्न होता है। बांसके भीतर कमी कमी जल रहता है। यह बहुत ठंडा होता है। चायुरोगमत् व्यक्तिको यह चिलनसे बहुत खान पडुंगना है। बांसकी उपकारी सामर्थ्यमें लनाका जो बयन प्रचलित है उसका अर्थ इस प्रकार है, पूर्वदिनामें कुमुदकापर पानोमिष विराजित पुष्प रितो मया परिचयमें मंगयन-... शुद्धवाटिका शुद्धयोके द्विपे विरीय महूलम्ब है।

बांससे जितने प्रकारकी चीजें बनती हैं, उगहा उभे पहले किया जा चुका है। इनके मिया बांससे चायपत्र बनते हैं। धोहलकी मोहन बांसुरी मया भी गायक तानसेनका सहनार्थ नामक चायपत्र धेनु बांसका हो बना हुआ था। साज कन भी तनुा रोग से विभिन्न प्रकारकी बांसुरी बनाई जाती है। तार कच्चे बांसके रोसे होते हैं। मजबूतानी और नामक चायपत्र भावदरकानुसार छोटे या बड़े एक गाँडदार बांसके योगसे बनाये जाते हैं। यह जल तरंगकी तरह बजाया जाता है। उसमें सुल्का भी तार तय साक साक मान्दुम होता है। गोवापत्र, भी और एक तारा भादि यन्त्रोंका वृष्टरूप भी बांसका बनाया जाता है।

उपरोक्त विवरण्यदर्शक वस्तुओंके अलावा बंदरुपमें मनुष्यसमूहमें एक और साधुपचार होता है। यह मनुष्यसमाजकी आनोमतिको शीकरीतापक निर्विचारे, गहूके मिया और फूल भी नहीं है। मानदरार्थका मनोभाव या प्रकाश विषयेके निपे कामका हुआ है। इस बंदरुपमें एक दूरी प्रकाशकी वेला होता है। यह कामक मनेराहन दुःख होनेके कारण निश्चयमें उतना व्यस्तन नहीं होता। उगारिको कवाये उगहा अधिक प्रयत्न देला जाता है।

In the latter part of the year 1871 the Government of India... बांसका नामक पुनिरामे लाली भास्करोंने बांसके चायन बनानेकी मया को गाँडे है। यह दण्ड है, कि ममी लोग भायभोसे उम मगया मग-

अन्य कर कार्य कर सकते हैं। बांसकी पत्तियां और गांठों को अच्छी तरह काट कर फेंक दे। पीछे उन बांसोंके तीन तार फुट लम्बे टुकड़े कर एक साथ बांध जलमें डुबो रखे। डालना या चहदबच्चेमें डुबोते समय उसकी एक पीठ पर बांसकी नमक छिड़क दे। इस प्रकार ऊपर और नीचे वार वार नमक छिड़क कर घीरे घीरे जल ढालना होता है। जब जल उसमें तमाम फैल जाय तब जल देना बन्द कर। इस प्रकार चूर्ण-मिश्रित जलमें ३४ मास निमज्जित होनेसे यह बांसका पुलिदा सड़ जाता है। पीछे उसे बांसकी वा ऊजलमें कूट कर चूर्ण करे। अनन्तर उस चूर्णको अच्छी तरह साफ कर फिरसे उसको परिष्कृत जलमें डाल देना होता है। कागजके आयतन या लम्बाई, चौड़ाई और मोटाईके अनुसार ही परिष्कार जल मिलानेका नियम है। इसके बाद उस जल मिश्रित वंशचूर्णके मांड-बनाये जाते चौकीन छननी आकारके सांचेमें ढाल कर यथारिति कागज बनाया जाता है। कागजके अनुरूप सांचेमें यह मांड समानमात्रमें फैल कर कागजका आकार धारण करती करता है, पर उस समय भी यह गोला रहता है। उस गोले कागजकी सुखा लेना आवश्यक है। सांचेसे गोले कागजको निकाल कर पहले एक गरम दीवारमें उसे सुखा लेना होता है। इसी प्रकार बांसके कोपलको फिट करी-मिश्रित जलमें सड़ा कर बनानेसे उमदा कागज बन सकता है। वंशयष्टिका हरिद्वर्ण नाश कर जो कागज बनाया जाता है यह मध्यम और वंशचूर्णका बनाया हुआ कागज निहट्ट समझा जाता है। एक पक्का कारोगर बनाने में मिनिटमें इस प्रकारके छः कागज बना सकता है। अमेरिका और यूरोपवासी कागज व्यवसायियोंने सड़पट्टिइज द्रोपपुत्रसे हजारों टन 'बांसके रेशे' (Bamboo fibre) ला कर उत्कृष्ट कागज बनाया है। प्रेजिडेंट वासी वैज्ञानिकगण इसके घाटीक रेशोंको रेशम या पशम-जैसी मिला कर कपड़े बुनते हैं। Mr. Routledgeने भारत-वर्षमें बांसके रेशेसे कागज बनानेकी व्यवस्था प्रतिपादन की। किन्तु बच्चे कोपलको छोड़ कर दूसरे परिष्कृत बांसमें उसकी उपयोगिता कम और अर्ध अधिक देय तक प्रस्ताव मंजूर नहीं किया गया। ऊपरमें बांसके सामान्य भेदगुण लिखे जा चुके हैं।

वैद्यकके मतसे यह बांस दो प्रकारका है—सामान्य और रन्ध्रवंश। राजनिघण्टुके मतसे इन दोनों प्रकारके वंश-गुण कपाय, कुष्ठ तिक, शीतल, मूत्ररुच्छ, प्रमेद, अर्श, पित्तदाह और अक्षनाशकारी तथा अम्लकर हैं। रन्ध्रवंश-में विशेष गुण यह है, कि यह दीपन अजीर्णनाशक, रुच्य, पाचन, हृद्य और शूलघ्न होता है।

वंशांकुर वा कोपलका गुण—कटु, तिक्त, अम्ल, कपाय, शीतल, पित्तरक्तदाहरुच्छघ्न और दधिकर।

भायप्रकाशके मतसे इसका गुण—सारक, शतवीर्य, मधुर और कपायरस, वस्तिशोधक, छेदन तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, प्रण और शोथनाशक, बांसका कोपल—कटु, कपाय, मधुररस, कटु, विपाक, रुक्ष, शुक्र, सारक, विदाही तथा कफ, वायु और पित्तवर्द्धक; वेणुफल—सारक, रुक्ष, कपायरस, कटु, विपाक, वायु और पित्तवर्द्धक, उष्णवीर्य, मूत्रोषक और कफनाशक।

नल, शर आदि तुणविशेषको भी वैज्ञानिक मोमांसांमें वंश जातिका कहा है। प्राचीन वैद्यकशास्त्रमें भी इसको तुणजातिमें शामिल किया है। नल और शर देखो।

बांसके पत्ते और कच्चे कोपलको सिद्ध कर उसका काढ़ा सेवन करानेसे खियोंके रजोनिर्गम होता है। भारतवर्ष और चीनराज्यमें प्रसवके बाद प्रसूतिको यह काढ़ा पिलाया जाता है। इससे अच्छी तरह रक्तस्राव हो कर जरायु परिष्कार होता है।

वंशऋषि ( सं० पु० ) वे ऋषि जिनके नाम वंश-प्राहणमें आये हैं।

वंशक ( सं० क्ली० ) वंश इव कायतोति कै-का। १ अगुरु, अगर नामक गंधद्रव्य। वंश इव प्रतिवृत्तिः ( इवे प्रति-कृत्वा ) पा १।३।६६ इति कन। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारको मछली। ३ इशुभेद, एक प्रकारका गन्ना या ईख। वैद्यकमें इसे शीतल, मधुर, दिन्य, पुष्टिकारक, सारक, वृष्य और कफनाशक लिखा है। इसके रसका स्वाद कुष्ठ द्वारापन लिये और मारी होता है। ४ क्षुद्र, वंश छोटी जातिका बांस।

वंशकञ्ज ( सं० क्ली० ) छ्ण्यगुदकाष्ठ, फाले अगरको लकड़ी।

वंशकठिन ( सं० पु० ) वंशा घेणयः कठिना यस्मिन्देशे स वंशकठिनः। बांध घन, बांसका जंगल।

का निर्णय किया जाता है, बांसकी गांठ देव कर उस प्रकार समयका पता नहीं लगाया जा सकता। उसका पुष्पोद्गम या योजाधान देख कर लोग उसकी अवस्थाका निर्णय करते हैं। मध्यभारतकी पहाड़ी प्रदेशवासी जालियां पहाड़ी बांसका योजाधान देख कर अपनी उमर तककी गणना करते हैं। जो व्यक्ति बांसका दो "काटङ्ग" अर्थात् दो बार योजाधान देखता है, उसकी उमर ६० वर्षसे कम नहीं होती।

साधारणतः २५ से ३५ वर्षके भीतर बांसमें फूल निकलने हैं। अनेक समय ४४ वर्षके बाद फूल निकलते देखे गये हैं। कभी कभी बांसके योजसे चावल पाया जाता है। यह चावल बहुतेरे लोग खाते हैं। बहुतांका विव्यास है, कि. अकालके समय बांसमें अधिकतासे चावल उत्पन्न होता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। १८३६ ई०के Trans. Agri Horti. Soc. of India, Vol. III p. 189-193 ग्रन्थमें लिखा है, कि उस समय कई जगह बांसोंमें चावल तो देया गया था, पर दुर्भाग्य कहीं भी न था। वेतोंमें भी काफी फसल लगे थी। उस समय वेतका चावल रुपयेमें १६ सेर और बांसका चावल २० सेर मिलता था। प्रत्येक बांसमें ४से २० सेर तक चावल पाया जाता है। जो बांस जितने ही विच्छिन्न भागमें और जितनी उंचर भूमिमें रहता; उसमें उतना ही अधिक चावल मिलता है। चावल निकलनेके बाद बांस टाप ही टाप सूखने लगता है। किन्तु उसकी जड़से पुनः कोपल निकलता है। कभी कभी योजसे भी पृष्ठ उत्पन्न होता है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि मनुष्य बांसका कोपल तरकारी बना कर अथवा उसका अचार बना कर खाते हैं। गाय आदि जन्तु बड़े चावसे बांसकी पत्ती खाते हैं। गायके पत्ती रोगमें बांसकी पत्ती बहुत उपकारी है। १८१२ ई०के उट्टीसा-दुर्मिसमें सालों आदमीने बांसका चावल खा कर अपने प्राण बचाये थे। १८६५ ई०की मद्रासारीमें धारयाङ्ग और वेल्लगाम जिलावासी प्रायः ५० हजार आदिमियोंने कनादायामें भा कर बांसके तण्डुलसे जीवन धारण किये थे। १८६६ ई०को मालद्व द्विजिमें रुपयेमें १३ सेर बांसका चावल मिलता था। उस समय

वेतके चावलकी दर रुपयेमें १० सेर थी। दुर्मिसके मरे यहाँके लोग बांसका ही चावल खा कर रहते थे, किन्तु चावल सुखकर नहीं था। Dr. Bidie का कहना है, कि उससे अजीर्ण और उदरामय रोग उत्पन्न होता है।

बांसके भीटर कभी कभी जल रहता है। यह बहुत ठंडा होता है। घासुरोगप्रस्त व्यक्तिको यह बड़े पिलागैले बहुत लाभ पहुँचता है। बांसकी उपकरणों सम्बन्धमें बनाका जो बचन प्रचलित है उसका मायाय इस प्रकार है, पूर्वदिशामें कुमुदकटार-परिचोमित एत विराजित पुष्करिणी तथा परिचममें शृङ्गादिना शृङ्गधोके लिये विशेष मङ्गलमद है।

बांससे जितने प्रकारकी चीजें बनती हैं, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसके सिया बांससे उद्वृष्ट घाघयत्न बनते हैं। ध्रौशृङ्गकी मोहन बांसुरी तथा प्रसिद्ध गायक तानसेनका सहगाई नामक घाघयत्न येषु नामक बांसका ही बना हुआ था। धाज कल भी ललदा बांससे विभिन्न प्रकारकी बांसुरी बनाई जाती है। इसके तार कच्चे बांसके रेशोंके होते हैं। मलयवासी भीरलीङ्ग नामक घाघयत्न भावश्यकतानुसार छोटे या बड़े एक एक गांठदार बांसके बाँगेसे बनाये जाते हैं। यह जनतर्गकी तरह बजाया जाता है। उसमें सुरका भी तार तमय साफ साफ मालूम होता है। गोबोयन्त्र, सिंगार और एक तारा आदि यंत्रोंका पुषुद्वष्ट भी बांसका बनाया जाता है।

उपरोक्त नित्यव्यवहार्य वस्तुओंके अलावा पंगरुष्टसे मनुष्यजगत्में एक और सदुपकार होता है। यह मनुष्य समाजकी मानोम्नतिको सीरुर्णसाधक लिपिबिद्याके एक अङ्गके सिया और कुछ भी नहीं है। मानवजातिघा मनोमाय या प्रण्यादि लिपयनेके लिये कागजका आविष्कार हुआ है। इस पंगरुष्टसे एक दूसरे प्रकारका तैयार होता है। यह कागज अयेशाष्टन दृष्ट होनेके कारण लिपिकार्योंमें उतना व्यवहृत नहीं होता। प्रण्यादिको रचनेमें उगहा अधिक प्रचलन देखा जाता है।

Indian forester नामक पत्रिकाके ४८८ भागमें चीनदेशीय बांसका कागज बनानेकी प्रथा हो गई है। यह इतना सहज है, कि सभी लोग आसानीसे उस प्रकारका अच-

लम्बन कर कार्य कर सकते हैं। बांसकी पत्तियां और पांडु की अच्छी तरह काट कर फेंक दे। पीछे उन बांसोंके तीन चार कुट लम्बे टुकड़े कर एक साथ बांध जलमें डुबो रखे। तालाब या चढ़वच्चेमें डुबोते समय उसकी एक पीठ पर काफ़ी नमक छिड़क दे। इस प्रकार ऊपर और नीचे धार धार नमक छिड़क कर धीरे धीरे जल ढालना होता है। जब जल उसमें तमाम फैल जाय तब जल देना बन्द कर दे। इस प्रकार चूर्ण-मिश्रित जलमें ३४ मास निमज्जित रहनेसे यह बांसका पुलिदा सड़ जाता है। पीछे उसे ढे'की वा ऊखलमें कूट कर चूर्ण करे। अनन्तर उस चूर्ण-को अच्छी तरह साफ कर फिरसे उसको परिष्कृत जलमें दुहा देना होता है। कागजके आयतन वा लम्बाई, चौड़ाई और मोटाईके अनुसार ही परिष्कार जल मिलानेका नियम है। इसके बाद उस जल मिश्रित वंशचूर्णके मांडु-को चौकीन छननी आकारके सांचेमें ढाल कर यथारोति कागज बनाया जाता है। कागजके अनुरूप सांचेमें वह मांडु समानभावमें फैल कर कागजका आकार धारण तो करता है, पर उस समय भी वह गीला रहता है। उस गीले कागजकी सुखा लेना आवश्यक है। सांचेसे गीले कागजकी निकाल कर पहले एक गरम दीवारमें उसे सुखा लेना होता है। इसी प्रकार बांसके कोपलको फिट करी-मिश्रित जलमें सड़ा कर वनोनेसे उमदा कागज बन सकता है। वंशयष्टिका हरिद्वर्ण नाश कर जो कागज बनाया जाता है वह मध्यम और वंशचूर्णका बनाया हुआ कागज निरुष्ट समझा जाता है। एक पक्का कारोगर प्रति मिनिटमें इस प्रकारके छः कागज बना सकता है।

अमेरिका और यूरोपवासी कागज-व्यवसायियोंने घेष्ट इरिडज द्वीपपुञ्जसे हजाराँ टन 'बांसके रेशे' (Bamboo fibre) ला कर उल्हट्ट कागज बनाया है। प्रेजिल-यासी वैज्ञानिकगण इसके धारोक्त रेशोंको रेशम या पशम-में मिला कर कपड़े बुनते हैं। Mr. Rontledgeने भारत-पर्यमें बांसके रेशेसे कागज बानेकी व्यवस्था प्रतिपादन की। किन्तु कच्चे कोपलकी छोड़ कर दूसरे परिपक बांसमें उसको उपयोगिता कम और पर्व अधिक देख एक प्रस्ताव मंजूर नहीं किया गया।

ऊपरमें बांसके सामान्य भेदगुण गुण लिखे जा चुके हैं।

वैद्यकके मतसे यह बांस दो प्रकारका है—सामान्य और रन्ध्रवंश। राजनिघण्टुके मतसे इन दोनों प्रकारके वंश-गुण कपाय, कुष्ठ तित्क, शीतल, मूलरुच्छ, प्रमेह, अर्श, पित्तशह और अक्षनाशकारो तथा अमृकर हैं। रन्ध्रवंश-में विशेष गुण यह है, कि यह दीपन अर्जोर्णनाशक, रुच्य, पाचन, हृद्य और शूलप्र होता है।

वंशंकर वा कौपलका गुण—कटु, तित्क, अमृ, कपाय, शीतल, पित्तरक्तदाहकृच्छ्र और रुचिकर।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—सारक, शतबीर्ष, मधुर और कपायरस, वस्तिशोधक, छेदन तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, म्रण और शोथनाशक, बांसका कौपल—कटु, कपाय, मधुररस, कटु, विपाक, रुक्ष, गुरु, सारक, विद्राही तथा कफ, वायु और पित्तवर्द्धक; वेणुफल—सारक, रुक्ष, कपायरस, कटु, विपाक, वायु और पित्त-वर्द्धक, उष्णवीर्ष, मूलरोधक और कफनाशक।

नल, शर आदि तुणविशेषको भी वैज्ञानिक मीमांसामें वंश जातिका कहा है। प्राचीन वैद्यकशास्त्रमें भी इस-की तुणजातिमें शामिल किया है। नल और शर देखो।

बांसके पत्ते और कच्चे कौपलको सिद्ध कर उसका काढ़ा सेवन करानेसे खिर्बोंके रजोनिर्गम होता है। भारतवर्ष और चीनराज्यमें प्रसवके बाद प्रसूतिको यह काढ़ा पिलाया जाता है। इससे अच्छी तरह रक्तस्राव हो कर जरायु परिष्कार होता है।

वंशश्रृपि ( सं० पु० ) वैश्रपि जिनके नाम वंश-प्राहणमें आये है।

वंशक ( सं० क्ली० ) वंश इव कायतोति की-कः । १ अगुरु, अगर नामक गंधद्रव्य । वंश इव प्रतिकृतिः ( इवे प्रति-कृती । पा १।३।६६ ) इति क्व । २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारको मछली । ३ इक्षुमेद, एक प्रकारका गन्ना या ईख । वैद्यकमें इसे शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, सारक, रुच्य और कफनाशक लिखा है। इसके रसका स्वाद कुष्ठ धारोपन लिये और मारो होता है। ४ क्षत्र, वंश छोटी जातिका बांस।

वंशकञ्ज ( सं० क्ली० ) हृष्णगुरुकाष्ठ, फाले अगरीकी लकड़ी।

वंशकठिन ( सं० पु० ) वंशा धेणवः कठिना यस्मिन्दृशे स वंशकठिनः । वांश धन, बांसका जंगल।





वंशघारा (सं० खी०) १ महेन्द्रपादनिःसृतं एक नदी। यह मध्यप्रदेशके जालंधर जिलेकी लोखोमढ़ जमींदारीसे निकली है तथा अक्षां १६°५५' उ० तथा देशां ८३° ३२' पू० तक विस्तृत है। यह दक्षिणपूर्वामिमुख विशालवत्तन जिलेके बीच होती हुई किमेडो विभागके बट्टीली नगरके समीप गंजाम जिलेमें घुस गई है। वहांसे पुनः दक्षिण-पूर्व गतिसे बढ़ती हुई कलिङ्गपत्तनके पास यङ्गोपसागरमें मिल गई है। यह नदी १७० मील तक विस्तृत है। उसके प्रायः अर्द्धांशमें नौका द्वारा पण्यद्रव्य ले जाया जाता है।

२ कुलपदवि । ३ वंशवल्ली ।

वंशघारिन् (सं० त्रि०) वंश धरतीति घृ-णिनि । वंश-रक्षाकारी, वंशघर ।

वंशान्तिन् (सं० पु०) गृहन्तं च, भांडू ।

(शुक्ल४३: ३०१२१)

वंशनाडिका (सं० खी०) वंश पत्र नाडिका यत् ।

१ वंशनाली, यह नल जो बाँसका बना हो। २ बाँसुरी।

वंशनाथ (सं० पु०) वंशके प्रधान या प्रसिद्ध व्यक्ति ।

(२.भा० ४१२६।२६)

वंशनालिका (सं० खी०) वंशनालोऽस्त्यस्यां इति वंशनाल-ठन्-टाप् । वंशी, बाँसुरी ।

वंशनाश (सं० क्री०) वंशस्य नाशः क्षयः, वंश-नाश-घञ् । १ वंशका लोप । २ फलितज्योतिषके अनुसरः एक योग । प्रहोके जिस समायोगभेदसे मनुष्यकी मृत्यु होती है उसे वंशनाशयोग कहते हैं। यदि जन्मकालमें रवि, शनि और राहु एक घरमें रहे, तो उस मनुष्यका वंशनाश होता है।

वंशनेत (सं० क्री०) वंशस्यैव नेत्राण्यस्य । इक्षुमूल, ईखके अंकुरवाले डंडल जिन्हें जमीनमें गाड़नेसे ईखका नया पीधा उत्पन्न होता है। इसे आँका भी कहते हैं।

वंशपत्र (सं० पु०) वंशस्य पत्राणां पत्राण्यस्य । १ नल । वंशस्य पत्रम् । (क्री०) २ वंशदल, बाँसका पत्ता। ३ हरितालभेद, एक प्रकारकी हरताल जो सघने श्रेष्ठ समझी जाती है। रत्नेन्द्रसारसंप्रहमें इसके शोधनेकी प्रणाली यों लिखी है,—वंशपत्राण्य नामक हरताल, कुहड़के और चूनेके जलमें तीन बार या सात बार निक्षेप

कर शोधन कर ले। पाँडे यह शोधित तालक तण्डुलके आकारमें चूर्ण कर शराबमें रख कर जलावे। अन्तमें बरतन ठंडा होने पर माणिक्याम-रस उडा ले। इसकी विभिन्न शोधनप्रणाली, गुण और अपरापर विषय हरिताल शब्दमें लिखे हैं।

४ एक छन्दका नाम। साधारणतः वंशपत्रपतित छन्द कहलाता है।

वंशपत्रक (सं० क्री०) वंशपत्रमेव स्वार्थे कन् । १ हरिताल, हरताल । (पु०) वंशस्य पत्रमिवाकृतिरस्येति स्वार्थे कन् । २ ह्रुद मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छोटी मछली । ३ नल । ४ श्वेतवर्ण इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईप जो सफेद होती है। (राजनि०)

वंशपत्रपतित (सं० क्री०) एक छन्दका नाम। इसका पदला, चौथा, छठा, दशवां और सत्तरवां वर्ण गुरु तथा बाकी लघु होता है कोई कोई इसकी वंशपत्रचरित छन्द कहते हैं। पण्डित शम्भूके मतसे इसका दूसरा नाम वंशदल है। (छन्दोगञ्जरी)

वंशपत्रिका (सं० खी०) १ घेगुदल, वासर पना । २ वंशपत्राकार वृक्ष, वह घास जो बाँसके पत्तों होती है। वंशभी देखो।

वंशपत्रो (सं० खी०) वंशपत्रगौरादित्वात् ऊीप् । १ एक प्रकारकी हींग । २ वृक्षविशेष, एक घास जिसे बाँसा कहते हैं। पत्राण्य—वंशदला, जोरिका, जोर्णापत्रिका । इसकी पत्तियां बाँसकी पत्तियोंसे मिलती हैं। वैद्यकमें यह जीतल, मधुर, श्वेतिकारी तथा रक्तपित्तके दोषोंको शान्त करनेवाली बहो गई है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि वंशपत्रोंके घेगुपत्रों, पिण्डा, हिंसु और शिराटिका ये सब पर्यायक शब्द हैं। वंशपत्रोंके समान गुणकारी है अर्थात् यह चिकित्साक, तोषण, उष्णशीघ्र, पाचक, कटुरस तथा हृद्रोग, बलितगत दोष, विषयन्ध, सर्प, कफ, गुल्म और वायुनाशक मानो गई है। (भाव० पू० १ भाग)

वंशपरम्परा (सं० खी०) सन्तान-सन्ततिक्रम, पुत्र-पौत्राधिक्रम ।

वंशपात—सहाय्यार्थिणत राजभेद । (धत्वा० ३१।२०६) वंशपातकारिणो (सं० खी०) वह खीं जो बाँसकी टोरीसे आदि बनाती है।

वंशपात—जिलानिर्वाचित एक राजा ।  
 वंशपीत ( सं० पु० ) वंशः वंशपत्रमिव पीतः । शुग्मुद्गु,  
 शुग्मुद्गु ।  
 वंशपुष्पा ( सं० स्त्री० ) वंशस्य पुष्पाण्येषु पुष्पाणि यस्याः ।  
 सहदेवो लता ।  
 वंशपूरक ( सं० स्त्री० ) वंशस्यैव पूरकमस्य । श्लुमूल, ईश-  
 को भौत या संपुर ।  
 वंशप्रतिष्ठानकर ( सं० पु० ) वंशस्थाति या प्रतिवृत्ति-  
 विस्तारकारी, यह जो वंशको उन्नति करता हो ।  
 वंशबीज ( सं० स्त्री० ) वंशस्य बीजं । धेनुवय, बाँसका  
 चावल ।  
 वंशप्राहाण ( सं० स्त्री० ) १ वैदिक आचार्यपरम्परामेद् ।  
 २ मामधेदके प्राहाणोंमें एक प्रधान प्राहाण जिसमें साम-  
 धेदो प्राहाणोंके वंशकार प्रपियोंकी नामावली है ।  
 वंशभार ( सं० पु० ) बाँसका भार या मोटा ।  
 वंशभृत् ( सं० पु० ) १ यह जो वंशका भरण पोषण करता  
 हो । २ वंशका प्रधान व्यक्ति ।  
 वंशभोज्य ( सं० स्त्री० ) १ वंशका उपभोग्य । २ वंशानु-  
 दान प्राप्त । ( स्त्री० ) ३ वैशुक राज्य । ( भारत धनवर्ष )  
 वंशमय ( सं० स्त्री० ) वंश इवार्थे मयट् । वंशनिर्मित,  
 बाँसका बना हुआ ।  
 वंशमर्वादा ( सं० स्त्री० ) वंशस्य मर्वादा । १ वंश-  
 परम्परा प्राप्त गौरव, कुलश्रीमागत मर्वादा । २ राजदत्त  
 उवाचि या वित्ताय ।  
 वंशमूलक ( सं० स्त्री० ) महाभारतके अनुसार एक तीर्थ ।  
 इस तीर्थमें स्नान करनेसे भवोप पुण्य संचय होता है ।  
 ( भारत धनवर्ष )

वंशमय ( सं० पु० ) धेनुवय, बाँसका चावल ।  
 वंशराज ( सं० पु० ) वंशानां राजा इति राजादसन्निभ-  
 ट्ठच् । १ सबसे बड़िया या सबसे बड़ा बाँस । २ राज-  
 भेद । ( कश्चित्पिठर )

वंशरोचना ( सं० स्त्री० ) रोचते इति, रूपं गन्दादिव्यात्  
 स्तुः, टाप्, वंशस्य रोचना । लतामण्डपात् वंशवर्षं  
 मध्वस्वल्प श्वेतवर्णं भौतवधिवेद्यं, वंसलोचना । पवांय—  
 रवकूर्पूर, वंशलोचना, गुमासारा, गुमा, दांगो, वंशजा,  
 सारिका, गुमा, रवकूर्पूरो, गुमा, वंशतोते, विलयो,

रवकूर्पूरा, वंसरो, श्वेता, वंशकूर्पूरोचना, गुमा,  
 रोचनिका, विद्वा, वंशजर्करा, धेनुवयण । इसका गुण—  
 कफ, कषाय, मधुर, तिप्त, भ्यासकासजन, तपनाशन,  
 रक्तशुद्धिकारक और पित्तोद्रेक प्रशमनकारी । ( रामनि० )

भायप्रकाशके मतसे इसकी गुणावली वंशजा शब्द-  
 में लिखी गई है । वंशजा और वंशलोचना देखो ।

वंशलक्ष्मी ( सं० स्त्री० ) कुललक्ष्मी ।

वंशलोचन ( सं० पु० ) वंशवोचना देखो ।

वंशलोचना ( सं० स्त्री० ) वंशवोचना रस्य लक्षणम् ।  
 बाँसके पर्वके बीच नीलाम श्वेतवर्णं पदार्थविरलेय ।  
 चलित भाषाओं इसका नाम वंसलोचन है । भंगरेतीमें  
 इसे Bamboo Manna कहते हैं । यह पदार्थ प्रचलन-  
 चेदुर बाँस या लह बाँससे ( Bambusa arundinax  
 Coecae ) उत्पन्न होता है । भारतके विभिन्न स्थानों-  
 में यह औषध 'तवाशीर' कहलाती है ।

मिन्न मिन्न देशोंमें यह मिन्न मिन्न नामसे परि-  
 चित है । हिन्दी—वंसलोचन, वंसकपूर ; बंगला—  
 बाँसकपूर, वंशलोचन ; आसाम—सुनोरिया ; भरव और  
 पारस्य—तवाशीर ; मराठी—वंशलोचन, बनगमोडा,  
 गुमर—बाँसकूर्पर, वागनु-मोडा ; तामिल—मुद्गुपुपु,  
 तेलगु—वेदकपु, तपशीरि ; मलयालम्—मोलेउर ;  
 कनाड़ी—विदकपु, तपशीर ; सिंगापुर—उणा, सुणु,  
 उणाका-कूर्पर ; प्रस—चा-छा ; पाटिया—क्रियो पाटे-  
 गसा, पसन ; संस्कृत—वंशरोचना शब्दमें लिखा  
 गया है ।

वाजारमें यह द्रव्य साम्प्रान्तः दो प्रकारका देखा  
 जाता है—( १ ) कर्दूरी या नीलाम तथा ( २ ) सफेद  
 या श्वेतवर्णं । प्राचीन वैद्यकमें इसका भेदना गुण  
 लिखा है—

केवल भारतपासी ही नहीं, सुदूर अरब और मोम-  
 वासी बयत लोग भी बहुत प्राचीनकालमें इस वंशज  
 द्रव्यके गुणमें जानकार थे । सायनासहस्र, सिनि, सान-  
 मानियन, रवेरुल फी, फेरे, हर्मोस्ट आदि मनोरिगण  
 इस महामूल्य द्रव्यका उल्लेख कर गये हैं । सिनिके  
 Saccharon et Arabia fert sed abundantius India  
 Est antea mel in arce linibus collectum आदि

पट्टनेसे निःसन्धे ह तवाशीरकी बात याद आ जाती है। सालमासियस् बादि तर्क द्वारा उसे ईबको शर्करा मानते हैं, किन्तु हम्बोल्ट उसकी मीमांसा कर कहते हैं, कि अरबी या पारसी तवाशीर शब्दसे शर्करा नहीं समझी जाती, यह संस्कृत त्वक्शोरा (Bark milk) शब्दका अपभ्रंशमात्र है।

हिन्दू आयुर्वेदमें और मुसलमानोंके हकीमी शास्त्रमें तवाशीरका बहुत प्रयोग देखा जाता है। यह शीतल, घलकर, कामोद्दोषक और श्वाशकासनिवारक, अन्यान्य औषधके साथ हृद्रोगमें प्रयुक्त होता है। अजोषी, आमप्राय तथा उदरग्रहण आदि रोगोंमें यह शीघ्र ही फायदा पहुँचाता है। यह पिशासनिवारक और कफनिःसारक है। विषम ज्वरमें पिपासा अत्यन्त घलवती होने पर वंशलोचनका एक चूर्णक प्रस्तुत कर प्रयोग करनेसे भारी उपकार होता है। ८ भाग वंशलोचन, १६ भाग पीपल, ४ भाग इलायची और १ भाग दारचीनी एकत्र चूर्ण कर यो अथवा मधुके साथ अबलेह तैयार कर सेवन करावे। चूर्णकी मात्रा १ से ले कर २ स्कुपल तक है। कफनिःसारणके लिये ५से ले कर २० ग्रोन तक वंशलोचन प्रयोग किया जा सकता है।

बांसमें यह महदुपकारी पदार्थ कैसे उत्पन्न होता है, यह आज भी ठीक निर्धारित नहीं हुआ है। हम लोगोंके देशमें कहते हैं, कि बांसमें खाती नखलका जल पड़नेसे वंशलोचन उत्पन्न होता है। उद्भिद्विदोंकी धारणा है, कि बांसका स्वभावजातरस अर्थात् गांठ या पोरके बीच जलाकार तरल पदार्थ (Natural sap) विद्यत हो कर यह महामूल्य पदार्थ उत्पादन करता है। बांसकी करची और कोपलमें अधिक रस रहता है। उसमें एक प्रकारकी मोठी गंध पाई जाती है। यह रस परियक हो कर क्रमशः तवाशीरमें परिणत हो जाता है। अफ्रीम विभागोय अङ्गरेज-राजकर्मचारी Mr. Peppe का कहना है—“मैंने एक देनी यणिककी तवाशीर उत्पन्न करने देखा है। विशेष परीक्षासे उसकी मालूम हो गया था कि बांसमें छेद करनेवाला एक प्रकारका कीड़ा रहनेसे बांसकी गांठमेंका रस नमकीन हो कर रासायनिक संयोगसे मिश्र भाकारका हो जाता है। उसने एक गाछसे देसे

कितने कीड़े ला कर आधे पके अन्य बहुतसे पेड़ों पर छोड़ दिये। इससे भी उसकी वंशलवण मिल गया था। बार बार ऐसी चेष्टा कर वह सिद्धमनोरथ हुआ था। उससे मुझे भी काफी रुपये मिल गये थे।” फिर कोई कोई कहते हैं, कि बांसकी गांठके भीतर जो स्वाभाविक रस-संचारहेतु सिलिका मिश्रित एक और प्रकारका पदार्थ (Silicious Concretion of an opaline nature) उत्पन्न होता है, वही तवाशीर कहलाता है। किन्तु यथार्थमें किस किस धातुके रासायनिक संयोगसे उसकी उत्पत्ति हुई है परीक्षा किये बिना उसका पता नहीं लग सकता।

रत्नासगी नगरके रसायनके अध्यापक टी. टमसनकी विश्लेषण द्वारा मालूम हुआ है, कि इसके एक सौ भागमें ६०५० अंश सिलिका, १११० पटाश, ०६६०, पेर-पसाइड आब आपरन ०४०, आलुमिनिया ४८७ जल तथा नाश—२२३ अंश है। वंशलोचनके अलावा बांसका छपरपर अंश भी दवाके काममें आता है। बांसके कोपल अथवा अधभागके आवरणके भीतर रेशोकी तरह जो धारकी पदार्थ रहता है वह विपेला होता है। वह रेशा चायादिमें मिला कर सेवन कराया जा सकता है। सेवनके बाद मनुष्यके शरीरमें विष अथवा प्रभाव दिखलाता है। कुछ महोनेके बाद यह व्यक्ति करालकालका शिकार बन जाता है।

वंशवर्द्धन (सं० लि०) वंश वंशमानं वर्द्धं हति वंश-पृथ-ल्युट्। १ वंशामिमानरक्षाकारी, वंशका गोच्य बढ़ानेवाला। (पु०) २ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम।

(पद्या० ३३६५)

वंशवर्द्धिन् (सं० लि०) वंशं वर्द्धयतीति वंश वृध्-णिनि। १. वंशकी मर्यादा रखनेवाला। (खो०) २ वंशलोचना, वंसलोचन।

वंशवाटी—हुगली जिलागतर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २२° ५७' उ० तथा देशा० ८८° २६' पू०के मध्य भागीरथीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८०००से ऊपर है।

मुगल मघराट् शाहजहाँके जमानेमें बान्शवाटिया-राज-वंशके पूर्वपुत्र राघव रायने इस नगरको बसाया। बांस-

शास्त्रिया-राजवंशके साथ इस नगरका इतिहास मित्रा हुआ है, इस कारण नौने बंधुय उम राजवंशका थोडा परिचय दिया जाता है ।

प्राचीं राजवंशके पूर्वपुरुष देवदत्त बहूदेगके राजा आदिशारके समसामयिक थे । मुजिशाबाद मिलेके दत्त-पाटी नामक ग्राममें इन लोगोंका आदिनिवास है । दत्त-पंजीय जमींदारके राजमदल रहनेमें इस ग्रामका 'मगढाटी' नाम पडा है । देवदत्तसे भोदद पोडो गोचे द्वारकानाथ दत्त दत्तपाटीका परिव्राम कर अग्रहोपमें रहने लगे । पोछे उनके पीछे उदयदत्तने भागीरथी तीरस्थ पाटुली नामक स्थानमें नगर बनाया ।

शाहकानाथके पीछे सहस्राब्दरत्ने १८० बंगला साल ( १५७३ ई० ) में मुगल बादशाह अकबरसे एक परमाण प्राप्त किया । उससे उन्हें 'जमींदार' की उपाधि मिली थी । महत्सम्पत्ती जमीरस्वरूप फयजपुर परगना मिला । सहस्राब्दके पुत्र उदय दत्तकी बादशाह अकबरने वंशानुक्रमसे 'सभापतिराय' की उपाधि दी थी । १६२८ ई०में उदयके श्रेष्ठ पुत्र जयानन्दने सप्तदश शताब्दके 'मजुमदार' की उपाधि और कोटपरकतिवारपुर परगना जागीरमें प्राप्त किया । जयानन्द राय मजुमदारके बड़े लडके राघवकी बादशाहने १२ रवि १०६६ हिजरी तक ( १६४६ ई० ) में 'मजुमदार' और 'बीचरी' की उपाधि दी । उस समय बहूदेगमें चार मजुमदार थे उनमेंसे राघव एक थे । इन उपाधिके साथ राघवने निम्नलिखित २१ परगनोंकी जमींदारी और बहुतसी निष्कर भूमि उपहारमें दी थी—भागा, हलदा, मामदागिपुर, पांजनीर, घोडो, जहानाबाद, जामिनानगर, जाहानगर, रायपुर, कीतवालो, पाडनान, घोसायपुर, बरम कदर, पाकान, धमीराबाद, जडुलोपुर, माहदाटी, हागलो नहर, मुञ्जफरपुर, हातिकारो, मैलिपुर आदि । उक्त सम्पत्तिराय जामिन करनेके लिये राघवने बांजशाहीमें एक महल बनवाया । मदीनमें पाटलीघासाद तीन ही मनेकी आगस्टूमि राघवके बड़े लडके रामेश्वर गौडवेदिवामें रासपाठ उठा लिये । उस समय यह एक मानमान था । रामेश्वरने मना स्थानमें ३६० घर प्रत्यय परिदत्त, राघव, सैध और विविध आचारणोय द्विगुमी-

की तथा सीसे धधिक मगरहुजद पढनीकी ला कर बांजशाहियामें बनाया था । काराके परिदत्त रामनरयण गणेशांगोड उनके रामा-परिदत्त हुए थे । उन्होंने इस ग्राममें ४१ टोल स्थापन कर तथा कारागी और मिदिनासे धन्धा-पक ला कर छालोंकी मजुमि, धुमि, वेद्वान्त, स्याय, मादिरय और अलदुआनात्र सिधानेका उपाय कर दिया था । टोलका कुछ लर्वा ये ही देते थे ।

बर्गियोंके अत्याचारके भयसे राजा रामेश्वरने बांज-वाहियाका राजप्रसाद परिषदा द्वारा सुरक्षित कर लिया । रामेश्वरके मइसे यह राजभवन 'मदपाटी' नामसे प्रसिद्ध हुआ । उस परिवाराकी परिधि प्रायः एक मील थी । धनु-पांण, हान, तजवार और बहूकके साथ पैदल सिपाही मइका पहरा देते थे । आयर्यकानुसारा यहाँ कुछ कमान भी रम्यो जाती थी । यहाँ लोग जब लियेनाई लूटने प्राये, तब यहाँके कुल लोगोंने मइमें घुम कर भवनी मनीजान बचाई थी । यह संवाद वा कर बर्गियोंने मइपाटी पर घेर डाला । राजा रामेश्वरके पुत्र राजा रघुदेवने हलहलसे सज्जित हो सविजालमें युद्ध कर मर-हटोकी परास्त किया और यहाँसे मार भगाया । रघुदेवने पूर्व चारका संस्कार कर उसके पारों और एक दूसरी पारों-रघुदेवर्ग भी ।

राजा रामेश्वर राघवने १०वीं मकर १०१० हिजरीमें भीरुदेव बादशाहमें एक मगद पारों की । उसमें उनकी श्रेष्ठ पुत्र क्रमसे 'राजा महाजय' की उपाधि दी गई थी ।

इस समयके साथ बादशाहने उन्हें 'गवष्ट' ( पंज पोगाक ) तिलमन तथा राजपदोंकी सम्मानके साथ रक्षा करनेके लिये बांजवेदिवा ग्राममें १०१ बीघा जमीन जागीर एवं कलरुता, बांजिन्या, हाजियागड, अनीया-पुर, मेहनमल, मासुर, घानी, खनीर, मानपुर, सुकनान पुर, कुम्भपुर और कौनिया नामक बाह्य परगनोंकी जमींदारी दी थी ।

बांजशाहियाका पासुदेवमन्दिर भी राजा रामेश्वरका बनाया हुआ है । यह ईंसीक बना है और वगैरे करार तरह तरह कामोपे दिग्गर्वा गई है ।

१६०१ शकाब्द ( १६७६ ई० ) में यह मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है ।

उस मन्दिरमें प्राचीन बंगला हरफमें निम्नलिखित श्लोक आज भी दिखाई देता है—

‘महीबोमाङ्गशीताशुगणिते सत्कवचरे ।  
श्रीरामेश्वरदत्तेन निर्ममे विष्णुमन्दिरम् ॥’

राजा रघुदेवको नवाब मुर्शिदा कुली खाने ‘शूद्रमणि’-पी उपाधि दी थी । राजस्व उगाहनेमें मुर्शिदा कुलीका कठोर नियम बंगला इतिहासमें प्रसिद्ध है । किन्तु मुर्शिदाको गुण-प्राहिता भी सामान्य न थी । सुना जाता है, कि एक ब्राह्मण जमींदारके यहां बहुत चाको पड़ गया था । इस कारण नवाबने उन्हें ‘वैकुण्ठकुण्डमें फेंक देनेका हुक्म दिया । राजा रघुदेवको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने कुल देना चुकती कर ब्राह्मणको मुक्त कर दिया । रघुदेवको इस उदारता पर मोहित हो नवाबने उन्हें ‘शूद्रमणि’की उपाधि दी थी । तभीसे उनका नाम ‘शूद्रमणि राजा रघुदेव राय महाशय’ पड़ा ।

सचमुच एक समय कथा राजकार्य, कथा समरकौशल, कथा दानधर्म, कथा नीतिनिपुणता, समीमें पाटुलीके महाप्राय-वश बङ्गालके गौरव थे । उदार अकबर, कुटिल औरङ्गजेब, जहांगीर और शाहजहां पाटुली-वशको मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा कर गये हैं । मुर्शिदा कुली और मुआज्जम आदिकी हन तान्त्रिक हिन्दू कायस्थ-वश पर अच्छी निगाह रहती थी । कुल-पञ्जिका तथा मुसलमान इति-हासमें पाटुली-वशको यथेष्ट प्रशंसा है । राजा रघुदेवके पुत्र राजा गोविन्ददेव बङ्गालके ब्राह्मणोंको एक लाख घोषा जमीन ब्रह्मोत्तर दी थी ।

राजा गोविन्ददेवके पुत्र राजा नृसिंहदेव पिताके मरनेके तीन मास बाद ११४७ साल ( १७४० ई० )के पूस मासमें उत्पन्न हुए थे । उस समय बङ्गाल और विहारके नवाब थे अलीयदों खां । वर्द्धमानके जमींदारके पेशकार गणिकचन्द्रने अलीयदों खांको धमक दी, कि बांदाबाइयाके राजा गोविन्ददेवको निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हो गई है । अलीयदों खांने गोविन्ददेवको कुल जमींदारी वर्द्धमानके जमींदारको दे दी । पांच महीनेके लड़के नृसिंहदेव शत्रुके कौशलसे क्षण भरमें विपुल

घनसे वञ्चित हुए । नृसिंहदेव अपने हाथसे यह बात लिख गये हैं—“सन् ११४७ साल माह आश्विनमें मेरे पिता गोविन्ददेव रायको मृत्यु हुई, उस समय मैं गर्भमें था । वर्द्धमान जमींदारके पेशकार मानिषयचन्द्रने नवाब अलीयदों खांके निकट मेरे पिताको निःसन्तानावस्थामें मृत्यु गई है, ऐसा लिख कर मेरी मुस्तीने जमींदारी-अपने मालिककी जमींदारीमें मिला लो ।”



राजा नृसिंहदेव राय महाशय ।

इस घटनाके कुछ समय बाद बङ्गालका मुसलमान सिंहासन विलुप्त हो गया । सोलह वर्षोंमें सात नवाब मुर्शिदाबादके नवाब हुए । इससे बङ्गाली प्रजा बहुत भयभीत और स्तम्भित हो गई । कुमार नृसिंहदेव उस समय पैतृक सम्पत्तिका उदार करनेको कोशिश कर रहे थे । अंगरेजोंके जमानेमें बंगालमें बराजकला बहुत कुछ दूर हो गई । वार्म हेण्डिस बङ्गालके शासनकर्ता हुए । नृसिंहदेवने उनको शरण ली ।

१७७६ ई०में वार्म हेण्डिसने राजा नृसिंहदेवको एक सनद दी । उस सनदके अनुसार पैतृक जमींदारीमें केवल नी परगने नृसिंहदेवको मिले । नृसिंहदेव उनमेंसे सन्तुष्ट न हुए । जब लार्ड कार्नवालिस गवर्नर जेनरल बन कर आये, तब नृसिंहदेवने उनके पास जा कर अपना कुल दुखड़ा रोषा और जमींदारी लीटा देनेके लिये प्रार्थना की । लार्ड कार्नवालिसने उन्हें नित्यायनके फौट आव डिरेक्टरके निकट श्पीक करने कहा । नृसिंह-

देव इस क्षीरालके लार्च बर्चोके लिये कथे संभ्रष्ट करने लगे। इस उद्देश्यमे ये जात्रीघाम भो गये थे। यहाँ धार्मिक-योगवधायलम्बो संन्यासियोंके साथ मिन कर उनकी सुखि बिलकुल पन्ट गई। अब ये उन साधुओंको महापनासे योगयोगीं जनीं जनीं उन्नति लाम करने लगे। उन्होंने सोचा, कि बिलायतमें क्षीराल करलेसे बहुत मर्च पड़ेगा, पोछे उसका फल क्या होगा यह भी अनिश्चित है। जो अर्घा जमा हो चुका है, उसमे यदि कोई कथायो कीर्ति-मन्दिर बनवाया जाय, तो अर्घाका सहाय होगा। यह मोच कर धे पञ्चक्रमेद्रपालोसे हंसिभयते मन्दिर बनवानेका आयोजन करने लये। मन्दिरके निर्माण-कार्य शारम्भ हुआ सही, पर धे उते समाप्त न कर सके। १८०२ ई०में ये इस लोकसे चाल गये। १८८८ ई०में उन्होंने क्षयामवाका मन्दिर बनवाया था।

मन्दिरगाममें एक प्रस्तर-फलक पर निम्नलिखित स्तोत्र लिखा है :-

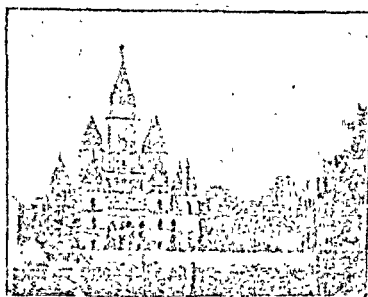
"भाशास्त्रेणुभयुते" शोके भीमम् स्वप्नमवा ।  
मेरे हर् भीयस्व भीमिन्द्रेवदनाः ॥"

मुसिददेव संभ्रष्ट और फारसो भाषाके सुपरिदुत थे। चित और मङ्गीतयियां भी उनकी बसाधारण निजुता थी। ये धर्मविपयक अनेक सुन्दर सङ्गीत रन गये हैं।

राजा मुसिददेवकी पत्नी रानी मङ्गीने सुविश्रयान हंसिभयते मन्दिरकी १८१४ ई०में प्रतिष्ठा की। उग मन्दिरके एक प्रस्तरफलकमें निम्नलिखित श्लोक लिखे हैं :-

"भाशास्त्रेणुभयुते" शोके भीमम् स्वप्नमवा ।  
मेरे हर् भीयस्व भीमिन्द्रेवदनाः ॥  
भुगलेन मुसिददेवप्रतिनारण वरालागुण  
वत्तरो गुदवारवर्जिनता भीमद्री जिमे ॥

( याग्या १७३६ )



हंसिभयते मन्दिर ।

हंसिभयते मन्दिर बङ्गालकी एक उत्कृष्ट कौत्ति है। माना क्याओत अनेक यानी इस देवमूर्तिके दर्शन करने आते हैं। एक तिथीप यन्त्रके ऊपर देवादिदेव मो रहे हैं। उनके सामिपुण्डसे प्रष्टुटिन पत्र निकला है। दाग-मयो देयो मूर्ति हंसिभयते उसके ऊपर विराजित है। इसकी बनापट बनसाधारण ही दृष्टिको साकरतन बन्यो है।

धार्मिको मृत्युके बाद रानी मङ्गीका भी विपय कर्ण

की ओर ध्यान दीडा। यह मर्चोकी संतानकी तरह पाल करती थी। प्रजा भी उनके मनुष्य लावहारमें मङ्गुष्ट रहती थी। ये लोप 'रानी-मा'का नाम स्मरण किये बिना मर्च प्रदण नहीं करते थे। रानीमाना सामान्य खात्र कष्टनकी पक्ष्यतो थी। पुत्र किरानदेव जीवीकी ओर बिलालिया बिलकुल देखना मर्चो चाहती थी। श्रापो लालिको ये खुडे हाथने शान देतो थी। पूजा पार्वत सादिने विरोधः दोनकाताके समक धे बङ्गाअके पवित्रतोको निवन्धन

कर अश्वीर और एक रूपया दे कर प्रत्येकको प्रणाम करती थी ।

१२४४ सालके अग्रहायण नासमें पुत्र की गणदेव परलोककी सिंधारे । उनके पुत्र देवेन्द्रदेवका भी १२५६ साल के वैशाखमासमें देहान्त हुआ । पीतकी मृत्युके छः मास बाद रानी जङ्करीकी मृत्यु हुई । रानी अपनी सारी जमींदारी मृत्युके कुछ पहले एक बिल करके हंसेधरी ठाकुरानीके नाम उत्सर्ग कर गई । नाबालिग प्रवीर राजा पूर्णेन्द्रदेव सुरेन्द्रदेव और भूपेन्द्रदेव वंशानुक्रमिक सेवाहृत नियुक्त किये गये ।

१२६७ सालमें कनिष्ठ भूपेन्द्रदेवका, १३०३ सालको ११वीं श्रावणकी उद्येष्ट राजा पूर्णेन्द्रदेवका और मध्यम सुरेन्द्रदेवका १३०४ सालकी १६वीं चैत्रकी देहान्त हुआ ।

वंशवितति ( सं० खी० ) १ वंशगुच्छ । २ वाँसका जङ्गल । ३ कुलज-वंश ।

वंशविदल ( सं० पु० ) वंशनिर्मित मन्दशिक्षा, वाँसकी चिमटी ।

वंशविदारिणी ( सं० खी० ) वंश विदारयतीति वंश-विद्विण्च-णिनि । वंशविदारणकारी रमणी ।

वंशविशुद्ध ( सं० खी० ) वंशानि विगुद्धानि यत् । १ परिहार वंश विनिर्मित । २ विशुद्ध कुलागत ।

वंशविस्तर ( सं० पु० ) वंशस्य विस्तरः । समग्र वंशधार, वंशपरम्परा ।

वंशवृद्धि ( सं० खी० ) वंशस्य वृद्धिः । १ पुत्र कुलवादि-के जन्मसे वंशका विस्तार । २ वंशसमृद्धि ।

वंशव्यजनयामु ( सं० पु० ) वंशनिर्मित सालवृन्दकी घायु, वाँसके पंखेकी हवा । वैद्यकमें इसका गुण लिप्ता हुआ है । 'वंशव्यजनजो घातः रक्षोष्णो वातपित्तदः' ( राजवं० २ परि० )

वंशशर्करा ( सं० खी० ) वंशस्य शर्करेव । १ वंशरोचना, वंशरोचन । २ वंशैश्चकृत शर्करा, यह शर्करा जो वाँसकी बनी हो । यह वधुकी हितकर, वल्य, सुगन्धुर और रक्ष मानो गई है ।

वंशशाका ( सं० खी० ) वंशस्य शलाकेषु दायात् । १ धोणामूलः शीत, सितार आदि वाजोंका डंढा । २ वंशनिर्मित शाकाका ।

वंशसमाचार ( सं० पु० ) वंशस्य समाचारः । वंशस्थान ।

वंशस्थ ( सं० खी० ) वंशे तिष्ठतीति वंशस्था-क । १ वंशस्थित । ( पु० ) २ बारद वर्णोंका एक वर्णवृत्त । इसका व्यवहार संस्कृत काव्योंमें अधिक मिलता है । इसमें जगण, तगण, जगण और रगण आते हैं । इसे वंशस्थविल भी कहते हैं ।

वंशस्थविल ( सं० खी० ) वंशस्थ देवो ।

वंशस्थिति ( सं० खी० ) वंशस्य स्थितिः प्रतिपत्तिरिति । वंशको मर्यादा, वंशध्याति । ( ख० १८५३० )

वंशहोन ( सं० खी० ) १ निर्वांश, जिसके वंशमें कोई न हो । २ अपुत्र ।

वंशागत ( सं० खी० ) १ पुरुषपरम्परागत । २ वंशक्रमगत ।

वंशाग्र ( सं० खी० ) वंशस्य अग्रम्, प्रथमजातत्वात् । वंशाङ्कुर, वाँसका कोपल ।

वंशाङ्कुर ( सं० पु० ) वंशस्य अङ्कुरः । वंशकारी, वाँसका कोपल । पर्याय—वंशाग्र, यवफलाङ्कुर । यह कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय, लघु और शीतल तथा रुचिकर और गिसान्द्र दाहकृच्छ्रप्र माना गया है ।

वंशानुकीर्त्तन ( सं० खी० ) वंशवह्नौ कथन, वंशका परिचय देना ।

वंशानुक्रम ( सं० पु० ) वंशस्य अनुक्रमः । वंशपरम्परा । वंशानुग ( सं० खी० ) १ वंशको तरह । २ तलवारके मध्यस्थ चक्रांशके जैसा । ( इहत्सं० १०१३ ) ३ एक वंशसे दूसरे वंशमें जानेवाली ( लक्ष्मी ) ।

वंशानुचरित ( सं० खी० ) वंशस्य अनुचरितम् । प्राचीन राजवंशोंकी कथा । यह पुराणोंके लक्षणोंमेंसे एक है ।

वंशानुवंशचरित ( सं० खी० ) पुराणोक्त प्राचीन और आधुनिक वंशका आच्छान ।

वंशाग्नर ( सं० पु० ) नल ।

वंशावनी ( सं० खी० ) पाणिनिदिः आदि गणोद्भूत रमणोमेद । ( पा० ६३१२० )

वंशावली ( सं० खी० ) पूर्वपुरुषोंकी नामावली, किन्तु वंशमें उदरग्न पुरुषोंकी पूर्वोत्तर क्रमसे सूची ।

वंशावलेह ( सं० पु० ) वाँसका छिद्रको ।



यंगालिय ( सं० श्लो० ) मरोटकी जगिया ।  
 यंगाल ( सं० पु० ) देगुवर, बामरका नावका ।  
 यंगिक ( सं० श्लो० ) यंगोस्तरपस्थेति इत् । १ अगुणकाष्ठ ।  
 अगलकी लकड़ी । २ कृष्णरूपे इक्षुभेद, काया गन्ता ।  
 ( ति० ) ३ यंगमस्यप्योय । ४ वंगीयुय, यंगम उदकन ।  
 यंगिका ( सं० ग्रा० ) बंगिक-राष्ट्र । १ अगुक, अगल ।  
 २ बंगी, बागरा । ३ पिपली ।  
 यंगिन् ( सं० ति० ) यंग-द्वि । यंगसाम्यप्योय, यंगजान ।  
 यंगियाय ( सं० श्लो० ) यंगीयाय, यंगुगु ।  
 यंगी ( सं० श्लो० ) यंगकारणस्थेनास्त्वय्याः अन्य, गौरा-  
 दिव्यान् श्लो० । १ मुली, बामुरी ।

यंगी बजानेमें वदु शत्रुवृद्धामणि श्रीकृष्णने गोपाङ्गनाभी  
 के मनोरञ्जनके लिये वृन्दावनमें बामुरी बजाई थी ।  
 वृन्दावनमें " यंगीयनि " इस धर्मसे मनप्राणहरणकारी  
 कृष्णका बामुरी बिनाइ ही समझा जाता है । इसी कारण  
 कनिमण यंगीमें कविष्य प्रणाय चारीय कर गये हैं ।  
 यंगी श्रीकृष्णकी लक्ष्मणुषण भी यह प्रेमरसास्वादा  
 प्येणव कविषोकी भक्तिगाम्यसे स्पष्ट मादुम होता है ।

मङ्गीतनायनमें इस यंगीयायवस्तुका प्रकार और प्रभुन-  
 प्रणाली लिपियर है । जिस प्रकार बिना तालके गान-  
 की जोगा नहीं होती, उसी प्रकार याद्यवन्त नहीं रहनेसे  
 ताद्यकी महिमा समझमें नहीं आती । यवोकि ताल  
 वाद्यवन्तमें ही निकला है । उनमेंसे मुंहमें फूंक कर  
 जो बामुरी बजाई जाती है, उसको यंगी कहते हैं ।

पुराने ग्रन्थोंमें लिखा है, कि यंगी बांस होके हीनी  
 चाटिये ; पर फिर, ताल नन्दन आदिकी लक्ष्मीकी बाधवा  
 सोने चाँदीकी भी हो सकती है । यह बाजा प्रायः छेदु  
 पादियन् लंबा होता और मुंहमें फूंक कर बजाया जाता  
 है । इसका एक गिरा बांसकी गाँठके कारण बंद  
 रहता है । बंद गिरेकी और ताल स्वरीके लिये गान  
 छेदु होते हैं और धूमको और बजानेके लिये एक विशेष  
 प्रकारसे तैयार किया हुआ छेदु होता है । उगो छेदु-  
 वाले गिरेकी मुंहमें ले कर फूंकते हैं और चारोंपार्श्व  
 छेदु पर उंगलियाँ रख उसे बंद कर देते हैं । जब जो  
 स्वर निकलना होता है तब उस स्थानके छेदु परकी  
 उंगली उठा लेते हैं । इसी तरह बार बार उंगलियाँ रखा  
 और उठा कर बजाते हैं ।

मालङ्ग प्रचिके. गगानुमार नवीका छेदु कनिष्ठा  
 उंगलीके मुलके द्वाराय होता चाटिये । जो छेदु मुंह-  
 में रख कर फूंकते हैं उसका नाम 'कृष्णकारण' और  
 मुर निकलनेवाले स्थान छेदुका नाम 'तास्त्र' है ।  
 एक यंगीके सिवा मालङ्गके अनुमार चार प्रकारकी  
 मुगलियाँ और होती हैं । उनके नाम मरानंदा, नंदन,  
 विजया और जय है । मरानंद्यामें तास्त्रका कृष्ण-  
 रञ्जसे दस अंगुल पर, नन्द्यामें प्यारद अंगुल पर,  
 विजयामें बारद अंगुल पर और जयामें चौदह अंगुल  
 पर होते हैं ।

२ चार कर्पका एक मान जो आठ तोलेके बराबर  
 होता है । ३ यंगीयन । ४ मंगदणो-निक्तरामे  
 जाओकालादि नृप ।

यंगीयास—भेदाभेदयाद नामक वैदिकिक प्रणयके प्रणेता ।  
 यंगीयर ( सं० पु० ) १ यह जो यंगी बजाता हो । २ श्री-  
 कृष्ण ।

यंगीयर—एक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता । इन्होंने वैद्य-  
 धनुवृद्ध और वैद्यमहोदयनव नामक दो ग्रन्थ लिखे । इनके  
 पुत्र शिवायतिने १६८२ ई०में वैद्यरहस्यरत्न लिखी थी ।  
 यंगीयर—१ एक प्रसिद्ध नैवायिक । इन्होंने बाणस्पति  
 सिद्ध-रत्नन तप्यकीमुद्राकी टीका और जग्दयायाव्य-  
 वादहनकी रचना की । २ उद्गोमद्वरी और पिङ्गलप्रधान  
 नामक टीकाकार । ३ एक वैदिक । ये कृष्णार्द्रका और  
 होमविधि नामक दो वैदिक ग्रन्थ लिख गये हैं ।

यंगीयाद्वेष—द्वेषकालविधि नामक हस्तनृत्योपायना-  
 के रचयिता ।

यंगीयात्वि ( सं० पु० ) यंगी यंगोति धु गति । १ श्री  
 कृष्ण । २ यंगीयात्क, यह जो बांसकी बजाता हो ।

यंगीयवा ( सं० श्लो० ) यंगीयेर । ' यंगीयता तु वा  
 मुक्तयंगीयजद्वयार्थना । ' ( सं० श्लो० १० ५० )

यंगीय ( सं० ति० ) बांसो जगै इति यंगी-श्लो० । रुद्र गजान,  
 मङ्गलाम् ।

यंगीयट ( सं० श्लो० ) वृन्दावनमें यह बरगदका पेड़ जिसके  
 गाँव श्रीराम यंगी बजाया करते थे । तदरथन देते ।

यंगीयद्व ( सं० ति० ) यंगीयव्यायर, मर्यादा यंगी  
 बजानेवाला ।

वंशीवदनदास—एक बंगाली वैष्णव पदकर्ता । इनके पिताका नाम छकीड़ी चट्टोपाध्याय था । छकीड़ी पाटुलोमें रहते थे । पोछे वे नदियाके कुलियापहाड़ पर आ कर बस गये । १५१६ शकमें चैत्रमासकी पूर्णिमाको इसी कुलियापहाड़ पर वंशीदासका जन्म हुआ ।

गौड़ीय वैष्णव-समाजमें वंशीदास श्रीकृष्णके अवतार माने जाते हैं । कुलियापहाड़ पर इन्होंने 'प्राणवल्लभ' विप्रहकी प्रतिष्ठा की । पोछे विल्वग्राममें आ कर बस गये । विल्वग्रामके भट्टाचार्य वंशीवदनके छाति हैं ।

महाप्रभुके स्नानासप्रहणके बाद वंशीवदनने कुछ दिन नवहोपके गौराङ्ग भवनमें वास किया था । यहाँ उन्होंने 'दीपाम्बिता' नामक एक छोटा काव्य लिखा । इनके दो पुत्र थे, चैतन्य और नित्यानन्द । चैतन्यके पुत्र रामचन्द्र और शचीनन्दन प्रसिद्ध पदकर्ता थे । शचीनन्दनने 'गौराङ्ग-विजय' नामक एक काव्य भी लिखा है ।

वंशीवदन शर्मा—गोपोचन्द्रके संक्षिप्तसार व्याकरणकी टीका तथा नैपथकाव्यकी टीकाके रचयिता ।

वंशीवाद्क ( सं० पु० ) शुरिपरयन्त्र-वादानमिह, वह जो खूब अच्छा वंशी बजाना जानता हो ।

वंशीवादन ( सं० पु० ) वंशी बजाना ।

वंशोद्भव ( सं० लि० ) वंशज, कुलमें उत्पन्न ।

वंशोद्भवा ( सं० स्त्री० ) १ वंशरोचना, वंशलोचन । २ वांसकी शकरा ।

वंश ( सं० लि० ) वंशे भवः । वंश- ( दिगादिभ्यो यत् । पा ४।३।१४ ) इति यत् । १ सद्रंशजात, अच्छे कुलमें उत्पन्न, सम्भ्रान्त । पर्याय—कुल्य, वीज्य । २ वंशज, कुलमें उत्पन्न । ( पु० ) ३ पृष्ठावयवविशेष, पोठकी रोड़ । ४ शूद्रोद्भव काष्ठाविशेष, यह बड़ी लड़की जो छाजानके बीचोबीच रोठके समान होती है । इसे बंडेर भी कहते हैं ।

वंसग ( सं० पु० ) वृषभेद, सांड ।

वंहियस् ( सं० लि० ) बहुत, प्रचुर ।

वंदिष्ठ ( सं० लि० ) गतिगय, अधिक ।

व ( सं० अर्थ० ) इय अर्थवोधकः । इस प्रकार, पेसा ।

व ( सं० स्त्री० ) वल गमनद्विसयोः कः । १ प्रचेता । २ वरुणकीज ।

व ( सं० पु० ) वानमिति या भावे घः । १ सान्त्वन । याति गच्छतीति बाल-गमने कः । २ वायु । ३ वरुण । ४ बाहु । ५ मन्त्रण । ६ कल्याण । ७ वसति, वस्ती । ८ वरुणालय, समुद्र । ९ शार्दूल । १० वस्त्र । ११ जालक, जलमें उत्पन्न होनेवाले कंद । १२ चन्दन । १३ वाण । १४ सेरकी, कोइका कंद । १५ अस्त्र । १६ खड्गवाती पुरव । १७ मूर्या नामक लता । १८ गृक्ष । १९ मय । २० कलजासे उत्पन्न ध्वनि । ( लि० ) २१ बलवान ।

व ( फा० अव्य० ) और । जैसे राजाका रईस । वक ( सं० पु० ) खनामप्रसिद्ध जलचर पक्षिजातिविशेष, बगला नामका पक्षी । अंगरेजोंमें इसे Ardea Nivea कहते हैं । यह जलमें मछली पकड़ कर अपना पेट भरता है ।



वक ।

२ अगस्तका पेड़ या फल । ३ एक दैत्यका नाम । इसे श्रीकृष्णने वाल्यावस्थामें मारा था । ४ एक राक्षस जिसे भीमने मारा था । ५ कुवेट । ६ एक यज्ञका नाम । ७ दालम्भगोत्रीय एक ऋषि । ८ एक राजाका नाम । ९ एक जातिका नाम । विशेष विवरण वक शब्दमें देखो । वक—काश्मीरके एक राजा । इनके पिताका नाम था मिहिरकुल । मिहिरकुलकी मृत्युके बाद काश्मीरके सिंहासन पर वक बैठे । राज्य पानेके थोड़े ही दिनोंके बाद यकने प्रजाओंका चित्त प्रसन्न कर लिया । इनके पिताके समय प्रजाकी जो दुःख हुआ था, उस दुःखको प्रजा दनको पा कर भूल गई । इनका राज्य धर्म और न्यायपर स्थापित हुआ । इन्होंने यकेश्वर नामक शिवकी प्रतिष्ठा की थी और वकचतो नामकी एक नदी और लक्ष्मीसंस नामका एक नगर बसाया था । इन्होंने ६३ वर्ष १३ दिन



वंशीवदनदास—एक बंगाली वैष्णव पदकर्ता । इनके पिताका नाम छकीड़ी चट्टोपाध्याय था । छकीड़ी पाटुलोमें रहते थे । पीछे वे नदियाके कुलियापहाड़ पर आ कर बस गये । १५१६ शकमें चैतमासकी पूर्णिमाको इसी कुलियापहाड़ पर वंशोदासका जन्म हुआ ।

गौड़ीय वैष्णव-समाजमें वंशीदाम श्रीकृष्णके अवतार माने जाते हैं । कुलियापहाड़ पर इन्होंने 'प्राणवल्लभ' विग्रहकी प्रतिष्ठा की । पीछे विल्वग्राममें आ कर बस गये । विल्वग्रामके भट्टान्चार्य वंशीवदनके छाति हैं ।

महाप्रभुके सान्यासप्रदणके बाद वंशीवदनने कुछ दिन नवहोपके गौराङ्ग भवनमें वास किया था । यहां उन्होंने 'शीपान्विता' नामक एक छोटी काव्य लिखा । इनके दो पुत्र थे, चैतन्य और नित्यानन्द । चैतन्यके पुत्र रामचन्द्र और शचीनन्दन प्रसिद्ध पदकर्ता थे । शचीनन्दनने "गौराङ्ग-विजय" नामक एक काव्य भी लिखा है ।

वंशीवदन शर्मा—गोपीचन्द्रके संक्षिप्तसार व्याकरणकी टीका तथा नैपथकाव्यकी टीकाके रचयिता ।

वंशीवादक ( सं० पु० ) श्रुतिरयन्त-वादानभिज्ञ, वह जो खूब अच्छा वंशी बजाना जानता हो ।

वंशीवादन ( सं० पु० ) वंशी बजाना ।

वंशीवध ( सं० लि० ) वंशज, कुलमें उत्पन्न ।

वंशीवधा ( सं० स्त्री० ) १ वंशरोचना, वंशलोचन । २ वांस्की शकरी ।

वंश्य ( सं० लि० ) वंशे भवः । वंश- ( दिगादिभ्यो वत् । पा ४।३।१५ ) इति वत् । १ सद्गंजात, अच्छे कुलमें उत्पन्न, सम्मान्त । पर्याय—कुल्य, चौज्य । २ वंशज, कुलमें उत्पन्न । ( पु० ) ३ पुष्टावयवविशेष, पीठकी रोड़ ।

४ गृध्रोद्वय काष्ठाविशेष, यह बड़ी लड़की जो छाजनके बीचोबीच रोड़के समान होती है । इसे बंड़र भी कहते हैं ।

वंसग ( सं० पु० ) वृषभेद, सांड ।

वंहियस् ( सं० लि० ) बहुत, प्रचुर ।

वंहिष्ठ ( सं० लि० ) अतिशय, अधिक ।

व ( सं० अण्य० ) इव अर्थबोधक । इस प्रकार, ऐसा ।

व ( सं० स्त्री० ) वा ल गमनहिंसयोः कः । १ प्रचेता । २ वरणबीज ।

व ( सं० पु० ) वानमिति वा भावे घः । १ सान्त्वन । वाति गच्छतीति बाल-गमने कः । २ वायु । ३ वरण । ४ बाहु । ५ मन्त्रण । ६ कल्याण । ७ वसति, वस्ती । ८ वरुणालय, समुद्र । ९ शार्दूल । १० वस्त्र । ११ गालुक, जलमें उत्पन्न होनेवाले कंद । १२ वन्दन । १३ वाण । १४ सेरकी, कोईका कंद । १५ अन्न । १६ खड्गधारी पुरुष । १७ मूर्वा नामक लता । १८ वृक्ष । १९ मघ । २० कलशसे उत्पन्न ध्वनि । ( लि० ) २१ धलवान् ।

व ( फा० अण्य० ) और । जैसे राजाका रईस ।

वक ( सं० पु० ) स्वनामप्रसिद्ध जलचर पक्षिजातिविशेष, बगला नामका पक्षी । अंगरेजीमें इसे Ardea Nivena कहते हैं । यह जलमें मछली पकड़ कर अपना पेट भरता है ।



वक ।

२ अगस्तका पेड़ या फल । ३ एक दैत्यका नाम । इसे श्रोत्रह्वाने बाल्यावस्थामें मारा था । ४ एक राक्षस जिसे भीमने मारा था । ५ कुवेर । ६ एक यक्षका नाम । ७ दाल्भ्यगोत्रोय एक ऋषि । ८ एक राजाका नाम । ९ एक जातिका नाम । विशेष विवरण वक शब्दमें देखो ।

वफ—काश्मीरके एक राजा । इनके पिताका नाम था मिहिरकुल । मिहिरकुलको मृत्युके बाद काश्मीरके सिंहासन पर तक बैठे । राज्य पानेके थोड़े ही दिनोंके बाद वकने प्रजाओंका चित्त प्रसन्न कर लिया । इनके पिताके समय प्रजाकी जो दुःख हुआ था, उस दुःखको प्रजा इनको पा कर भूल गई । इनका राज्य धर्म और न्यायपर स्थापित हुआ । इन्होंने वफेधर नामक नियमकी प्रतिष्ठा की थी और वकवती नामकी एक नदी और लक्ष्मीचंस नामका एक नगर बसाया था । इन्होंने ६३ वर्ष १३ दिन

एव चामोक्षोपायं शक्यं विधायात् । एतद् दिनं शक्यत्वात्  
 मन्वन्तः प्रजापतयः एव योगिनोः सुन्दरं पितृभ्यः शक्यं  
 राज्ञा पञ्चके वासं वसुधैवीं शीतं इहो' अग्निं दधनीमि  
 मोक्षिणं जन्मके त्रिये उग्रमे पापोत्सव्यं देवमेवैतः निरागतं  
 दिवा । राज्ञा अग्निं पुनः वीर्योक्तो ग्राह्यः नैः करं दृष्ट्वा दिनं  
 प्रत्यागतः एव योगिनोके भावधर्मं गये । योगिनोऽने उग्र  
 समोक्तं वसिष्ठान् विद्या । (सप्तमोऽध्यायः)

पञ्चकण्ड ( सं० पु० ) पञ्च प्राचीनं ग्रन्थम् । एतद् नर्मदाके  
 रिजने भवतिष्ठान् है । कथमस्मिन्मार्गमेति विद्या है, कि  
 उद्योगिनोके राज्ञा ग्राह्यत्वात् नर्मदामेति कथञ्च आदरणा-  
 ना भवत्येवमं कश्चैः सपने मुक्तो एव शक्यं सुक-दक्षिणा-  
 मि दिवा भा ।

पञ्चकण्ड ( सं० पु० ) मुगन्तारोप कल्पमेद ।

पञ्चकण्ड— वसुधैवकुतूबे, वेदमाम् शिवात्मनोऽपि एव शक्य-  
 त्वात् भीरु प्राचीनं तोषेयवान् । एतद् गणपतिवन्दे वाह  
 मोनं दक्षिणं पूज्यं वसुधा है । यद्वा यथाशास्त्रोक्तं एव सुन्दर  
 पञ्चकण्डा मन्दिरे है । इत्येके कथन्ता यद्वां शीतं शीतं कर्तुं  
 प्राचीनं जन्मके त्रिये शक्यं एव है ।

पञ्चकण्ड ( सं० पु० ) पञ्चकण्डेय पञ्च-भक्त । १ पञ्चमन्त्रिण,  
 पञ्चके समानं प्रती या भावात्प्राची । (श्लो०) २ वसुधैके  
 निगमनेका स्थान ।

पञ्चमन्त्रिका ( सं० श्लो० ) मन्त्रविद्यया, एव प्रजापतये  
 छोटी मन्त्रिका ।

पञ्चमन्त्रिण ( सं० पु० ) १ गोमर्षिन । २ ओम्कार ।

पञ्चकण्ड ( सं० वि० ) पञ्चकण्डा भाग या धर्मो, कुरियता ।

पञ्चकण्ड—एकं महात्मना मुनिः । इतोऽपि त्रियं कथान् एव  
 पञ्चकण्डा की भा एव कथान् वदन् एव पवित्रं गथां प्राप्तिवन्त  
 है । यद्वां प्रतीये भाग्यं प्राप्तिके भी कथान् प्राप्तिवन्त हो जनि  
 । इत्येका भावधर्मं धृत्वापञ्चके वसुधैवी वा ।

एतद् दिनं मुनिवोऽने राज्ञा विभक्तिमुक्ते त्रिये एतद् वसु-  
 धैः अग्निं दधनीमि तत्र विद्या भा । उग्र वसुधैः कथञ्च  
 देवके मुनिं वसुधैवकुतूबे भी सपने दृष्ट्वा है । मुनिवो उग्र  
 वसुधै वदं वसिष्ठं वदं दैव वसिष्ठवो मिति । पञ्चकण्डवन्दे  
 भाव्यं मुनिवोऽने वदन्—'एतद् योगि एव वीर्योक्तो ग्राह्यः । मि  
 त्तं करं दृष्ट्वा मुनिवोऽने दृष्ट्वा देव विद्यां है । मुनिं राज्ञा  
 धृत्वापञ्चके एवमं वसुधैवीं शीतं इहो देव मोक्षि । इत्येके

योगि हो कर, वदन् राज्ञाग्राह्यम् । देवो, एतानो ग्राह्ये एवो  
 वसुधै है, यद्वा देवोमिति देः ग्राह्यो । इत्ये वर वसुधैवकुतू-  
 बे विद्यते शीतं वदन्—'एव मुनिं ग्राह्यो देवो गो  
 मर्षो, मुनिं ग्राह्यं देवा है । ग्राह्यो एव ही इत्येका भाव  
 मन्त्रि विद्या है ।'

पञ्चकण्डवन्दे इतोऽपि ग्राह्योको ले सपने भी उद्योगि  
 मोनं कण्ड कण्ड कर दधनं वसुधै वदन् । एवो गणपतं वद  
 मन्त्रिणं एव गणपतं दृष्ट्वा । उग्र धृत्वापञ्चके भाव्यं वद  
 देवोऽने एव । एव राज्ञा धृत्वापञ्चके मुनिवोऽने ग्राह्यत्वात् एव ।  
 मुनिवोऽने एव वदन् । ( महाभाग्य )

पञ्चकण्ड—विष्णुपुराणे चार कोण दक्षिणं गणपतिवन्दे अग्निवन्दे  
 एव गणपतिवन्दे । यद्वां एतद्वापञ्चके मन्त्रिणं मुनिं गोमर्ष-  
 है । देवावोऽने वसुधैवीं ग्राह्यं होवा है, कि एवो ग्राह्य-  
 यो भावतिष्ठान् है । एवो वदं कथान् 'वसुधै' वदं भाव है ।

पञ्चकण्ड ( सं० पु० ) पञ्चकण्डविद्यया, पूज्यम् ।

पञ्चकण्ड ( सं० पु० ) विभक्तिवन्दे एव पुनः का भाग ।

पञ्चकण्डवन्दे ( सं० पु० ) पञ्चकण्ड विद्यया । गोमर्षिन ।

पञ्चकण्डवन्दे ( सं० श्लो० ) काश्चित्कं मुनिवन्दे एव वदन्तोऽने  
 नैः करं वसुधैवीं ग्राह्यो वांश विद्यते । पञ्चकण्ड देवो ।

पञ्चकण्ड ( सं० पु० ) १ अग्निवन्दे । ( वसुधै ) २ वसु-  
 धैव ।

पञ्चकण्ड ( सं० श्लो० ) अग्निवन्दे अग्निवन्दे उद्योगि  
 त्रिये एव वसुधै वा वसुधै । इत्येके मुनिं वदं वसुधैवीं  
 ग्राह्यत्वात् एव दृष्ट्वा ग्राह्यो एवो वदन् है । ग्राह्योऽने इत्ये  
 विद्यते मन्त्रिणं है ।

पञ्चकण्ड—वापञ्चकण्डे अग्निवन्दे एव वदन् ।

( भाव्यं पञ्चकण्ड वसुधैवकुतूबे )

पञ्चकण्ड—एकं महात्मना मुनिः । इतोऽपि त्रियं कथान् एव  
 पञ्चकण्डा की भा एव कथान् वदन् एव पवित्रं गथां प्राप्तिवन्त  
 है । यद्वां प्रतीये भाग्यं प्राप्तिके भी कथान् प्राप्तिवन्त हो जनि  
 । इत्येका भावधर्मं धृत्वापञ्चके वसुधैवी वा ।  
 एतद् दिनं मुनिवोऽने राज्ञा विभक्तिमुक्ते त्रिये एतद् वसु-  
 धैः अग्निं दधनीमि तत्र विद्या भा । उग्र वसुधैः कथञ्च  
 देवके मुनिं वसुधैवकुतूबे भी सपने दृष्ट्वा है । मुनिवो उग्र  
 वसुधै वदं वसिष्ठं वदं दैव वसिष्ठवो मिति । पञ्चकण्डवन्दे  
 भाव्यं मुनिवोऽने वदन्—'एतद् योगि एव वीर्योक्तो ग्राह्यः । मि  
 त्तं करं दृष्ट्वा मुनिवोऽने दृष्ट्वा देव विद्यां है । मुनिं राज्ञा  
 धृत्वापञ्चके एवमं वसुधैवीं शीतं इहो देव मोक्षि । इत्येके

कर उन्हें सर्वंग नाश करेगा। ब्राह्मणके मुखसे यह बात-  
रोकि सुन कर कुन्तीदेवी बहुत दुःखित हुई और बोली,  
'हे ब्राह्मण ! तुम्हारे केवल एक पुत्र और एकमात्र युवती  
कन्या है। उन्हें भोजना अथवा तुम्हारा और तुम्हारी  
पत्नीका उपहार ले कर जाना उचित नहीं। मेरे पाँच  
पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारी भलाईके लिये उस पापी  
राक्षसके पास जायगा।' अनेक वादानुवादके बाद कुन्ती-  
की बात पर धीरज बाँध कर ब्राह्मण कुन्तीके साथ भीम-  
सेनके पास गये और यह कठिन कार्य करनेका अनुरोध  
किया। भीम भी यह महाद्वन्द्व करनेके लिये तैयार हो  
गये।

सवेरी भीमसेनने खाद्य सामग्री ले कर राक्षसके  
वासस्थानकी ओर यात्रा कर दी। अनन्तर राक्षसके घरमें  
घुस कर वे स्वयं भोजन करने लगे और राक्षसका नाम  
ले ले कर पुकारने लगे। चक्रराक्षस बहुत त्रिगुड़ा और  
भीमसेन पर टूट पड़ा। भीमसेनने उस पर ऐसा प्रहार  
किया, कि उसकी पीठकी इड़ो चूर चूर हो गई। आखिर  
यह पञ्चत्वकी प्राप्त हुआ।

वकराज ( सं० पु० ) राजधर्मन् नामक राजविशेष। ये  
कश्यपके पुत्र थे। ( भारत ज्ञानितपूर्व० )

वक्रवध ( सं० पु० ) १ वक्रासुरका निहन्त। २ महाभारतीय  
आदिपूर्वके अन्तर्गत एक वक्राध्याय। ३ न जध्यायमें  
भीमसेन द्वारा वक्रवक्रा नगरीमें वक्रासुरका निघनपृत्तान्त  
लिखा है।

वक्रवृक्ष ( सं० पु० ) वक्रफूटका पेड़।

वक्राल ( सं० पु० ) वृक्षके छिलकेका अम्लरसस्थ पतला  
वक्राल।

वक्रवृत्ति ( सं० पु० ) वक्रस्थेय स्वार्थमाधिका वृत्तिर्यस्य।  
वक्राचार, घोषा दे कर काम निकालनेकी धानमें रहनेकी  
वृत्ति। वक्रवृत्ति देखो।

वक्रवैरिन् ( सं० पु० ) वक्रस्थ वैरी पातकत्यात्। १ भीम-  
सेन। २ श्रीकृष्ण।

वक्रमत ( सं० पु० ) कपटी मनुष्य, वगैरेकी तरह धानमें  
रहनेवाला।

वक्रमतघर ( सं० पु० ) वक्रवृत्तिधारोमात्र।

वक्रमतिक ( सं० पु० ) कपटी संन्यासी, यह जो स्वार्थके  
लिये कपटमायसे धर्माचार करता हो।

वक्रमतिन् ( सं० पु० ) वक्रमतिक देखो।

वक्रसकथ ( सं० पु० ) श्रुतिभेद।

वक्रसहवासिन् ( सं० पु० ) पद्म, कमल।

वक्रसुहान् एक प्राचीन नगरका नाम।

वक्राचो ( सं० स्त्री० ) वक्रचिञ्जिका मत्स्य, एक प्रकारकी  
छोटी मछली।

वक्राण्डप्रत्यादा ( सं० स्त्री० ) वृषा आजा।

वक्रारि ( सं० पु० ) वक्रस्थ अरिः। १ श्रीकृष्ण। २ भीम-  
सेन।

वकाल—पूर्ववदुवासी चण्डाल जातिभेद। ये लोग वकाली  
नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यह जाति चण्डालसे मिश्र  
होने पर भी श्रापसमें वैवाहिक आदान-प्रदान अथवा  
आहार व्यवहार प्रचलित नहीं है। परन्तु एक ही ब्राह्मण  
दोनोंका पौरोहित्य करता है। ढाका जिलेके जाफरगञ्ज  
और भाणिकगञ्ज उपविभागमें ही अधिकांश वकालोंका  
वास है। ये लोग खेतीधारी नहीं करते, नाव से कर  
अपना गुजारा चलाते हैं। कोई कोई गांव गांवमें घूम  
कर हन्दी मगाला आदि बेचता है। सर्वोंका काश्यप-  
गोत्र है। अधिकांश व्यक्ति कृष्णमस्तेके उपासक हैं।  
इन लोगोंका विश्वास है, कि व्यवसाय धार्मिक्य द्वारा  
ये लोग बहुत कुछ उन्नत हुए हैं, इसी कारण चण्डालके  
साथ इनका संबंध नहीं है। ये लोग चण्डालकी तरह  
घृणित पशुमांस नहीं खाने और न शराव हो पीते हैं।

वकालत ( अ० स्त्री० ) १ दूसरेकी किसी कामका भार  
लेना, दूसरेके स्थानापन्न हो कर काम करना। २ दूसरेके  
पक्षका मंडन। ३ दूतकर्म, दूसरेका सन्दिग्ध और दे कर  
कहना। ४ अदालत या कचहरीमें किसी मामलेमें यादी  
या प्रतिवादीकी ओरसे प्रत्योत्तर या यादविवाद करनेका  
काम, मुकद्दमेमें किसी फरौककी तरफसे बहस करनेका  
पेशा।

वकालतन अ० कि० वि०) वकालके द्वारा, असादनका  
उलटा।

वकालतनामा ( अ० पु० ) यह अधिकांश-पत्र जिम्मेके द्वारा  
कोई किसी वकालको अपनी तरफसे मुकद्दमेमें बहस  
करनेके लिये मुकद्दर करता है।

बन्धुसुर ( सं० पु० ) १ दैत्य । यह बृहन्नकाका मर्दों की  
 संघना मनुष्यर था । मर्दों की संघना या घर यह बृहन्नका  
 घर करनेके लिये गया थीर हर्दों निगल गया । सोते  
 हर्दमें हीर फाट्ट कर हर्दकी मनुष्य भेज दिया । ( अदि-  
 पुण्य और भावना ) २ एक राजा । मोरमेंमने इस  
 राजाको उम समय मारा था जब राजको पंडित लक्ष्म-  
 मूर्धने निकल कर वनमें आ कर रहने में ।

बन्धु ( सं० स्त्री० ) एक राजाका नाम ।

बन्धुव ( सं० पु० ) दूरसेके कामकी हर्दकी मोरसे करनेका  
 भार देनेवाला । २ राजदूत, वलमी । ३ दूरसे-  
 का मन्त्र या ये आ कर उम घर जोर देनेवाला, दूत ।  
 ४ दूरसेका पत्र मंडल करनेवाला, दूरसेकी मोरसे उत्तरे  
 मनुष्य कात करनेवाला । ५ प्रतिनिधि । ६ बानूतके  
 मनुष्याय यह भारती सिमने यकालकी परीक्षा पास  
 की ही थीर सिमने हाईकोर्टकी मोरसे अधिकाय मित्रा  
 दा, कि यह महादमीमें मुर्दों या मुदायैती मोरसे बहल  
 करे ।

बन्धुव ( सं० पु० ) १ लनाममिथ पुत्रदूत, मण्डल  
 वा पेट वा कुल । इसके लियेके मोर कुलका गुण—  
 मीन, हृद, विपदीपद, मनुष्य, कषाय, महादूष, मधु,  
 हर्द, विनाय, मलमोहो, सोराटा और मुर्दमि । इसकी  
 फलके मूर्धने हीर घोंपने हीरकी अष्ट मन्त्रदूत होती है ।  
 सिद्ध विनाय वपके बहल मर्द देती ।

बन्धुवपुत्र ( सं० स्त्री० ) बन्धुवका पुत्र ।

बन्धुव ( सं० स्त्री० ) बन्धुव-टापू । १ बुरकी नामक  
 मोरमि । ( पु० ) २ वर्दगुण ।

बन्धुवपुत्र नीर नीरपमि । मन्त्रुव-वपानो—आयके  
 लिये बन्धुव गल, मोष, हाडूआ, मोरों परी, ममलनाय,  
 पालनाकी लाल, माल मूर्धकी लाल, मीरकी लकड़ी, कुल  
 सिद्धा कर १००० मीर । विनाय मीर ४ मीर, पाहाय  
 मल १४ मीर, जे १६ मीर । बहलार्थ कायजय मल  
 सिद्धा कर १ मीर । इस मन्त्रकी गुणमें घों या मर्दकी  
 मर्द मूर्धनेके लियेका कुल हीर मन्त्रदूत होता है ।

( वैकल्यका मूर्धनेके लिये )

बन्धुवपुत्र ( सं० स्त्री० ) बन्धुवपुत्रपरिमोमि ।

बन्धुव ( सं० स्त्री० ) १ काकोकी नामकी मोरमि ।  
 २ बन्धुव, मोरमिरी ।

बन्धुव ( सं० पु० ) यह हर्दको वरि या मनुष्य सिमने करने  
 लम्बी, मर्द और मर्दों या निरमोकी कुल कुल विनाय  
 रहती ही ।

बन्धुव ( सं० पु० ) पट्टि होना, मर्द होना ।

बन्धुव ( सं० पु० ) १ लान, आनकाती । २ सुदि, ममल ।

बन्धुवका ( सं० स्त्री० ) यलाका, वगली ।

बन्धुव ( सं० पु० ) एकप्रतिष्ठित निवन्धुमि ।

बन्धुव ( सं० पु० ) वक, वगली ।

बन्धुवपुत्र ( सं० पु० ) एक पारिका नाम ।

बन्धुव ( सं० पु० ) मर्दपरीय, एक मर्दकी मर्द ।

बन्धुव गुण—

"हृदय मः विकारोऽनुमोमिनिर्दोषदृष्ट ।

बन्धुव हृदयान् विनाय काकोला ।

दोमन्त्रपुत्रो विरदलमर्दो मुका ॥" ( गुणुव )

बन्धुव—बोडमि ।

बन्धुव ( सं० पु० ) १ समय, पात । २ किमी बातके हीरका  
 समय, मर्द, मीका । ३ हर्दका समय कि हीर काम  
 विना आ मने, मर्दका, गुमल । ४ मन्त्रका, मर्द-  
 का निवय समय ।

बन्धुव फोपुत्र ( सं० स्त्री० ) १ महाकदा, कमी कमी ।  
 २ पथाममय ।

बन्धुव—बहल प्रेमिहीरकी देवाकाया पापुमिनामके  
 अमर्द एक ममलकाय । यह ममल समय उपाधि-  
 पारी मीन ममलकीके मर्दमि ही । ये हीर बन्धुवके  
 मर्दकापुत्रकी कर देने ही । ममलकाय पेट मर्दमोह ही ।

बन्धुव ( सं० स्त्री० ) म मल वा मल । १ सुदि, मीन ।  
 २ वमनीय, ममल, बने मोम । ३ कुल कमी लुकी  
 मर्द । वल मने मल । ( स्त्री० ) ४ वमल, वगल ।  
 ५ वमल, यह वल जो किमी विपदी बन्धी ही ।  
 ६ सिद्धा, ममल ।

बन्धुवपुत्र ( सं० स्त्री० ) कथमवेमपुत्र, यह वल जो बहने-  
 के मर्दकी ही ।

बन्धुवपुत्र ( सं० स्त्री० ) वलका देती ।

बन्धुवपुत्र ( सं० पु० ) मोरममल मर्दके मर्द ही

वाला शालिधान्य । मराठोंमें इसे घनोई धान कहते हैं ।  
यह लघु और मुखपाच्य होता है ।

वक्ता ( सं० लि० ) वक्त् वृच् । १ चाग्नी, बोलनेवाला ।  
२ भाषणपटु, वदन्त्य । पर्याय—वद, वदावद, वक्ता, सुष्टु-  
वक्ता, वदुभाषी, चाग्नी, वाक्वृक्, वक्क, सुगन्धा, प्रवाक्,  
परिहृत । ( पु० ) ३ कथा कहनेवाला पुरुष, व्यास ।

वक्ति ( सं० स्त्री० ) उक्ति, कथा, वाक्य ।  
( बृहदारण्यक उप० ४।३।२६ )

वक्तु ( सं० पु० ) मन्त्रवाक्यभाषी, कुतिसत वाक्य बोलने-  
वाला पुरुष ।

वक्तु काम ( सं० लि० ) वक्तुं कामयते यः सः वा वक्तुं  
कामो यस्य सः । बोलनेमें इच्छुक या अभिलाषी ।

वक्तुमनस् ( सं० लि० ) वक्तुं मनो यस्य सः वक्तुमनाः ।  
कथितमानस, जिनने बोलनेको इच्छा की है ।

वक्तु ( सं० लि० ) कथनशौल, वक्ता, बोलनेवाला ।

वक्तुक ( सं० लि० ) वक्तु-स्वार्थे कन् । १ कथनपटु, जो

बोलनेमें रूच्य चतुर हो । २ सत्यवादी, सच बोलनेवाला ।

वक्तुता ( सं० स्त्री० ) वक्त्-वृच्-तस्य भावः तल्ल-टाप् ।

१ वाक्पटुता, वाग्मिता । २ व्याख्यान । ३ भाषण, कथन ।

वक्तुत्व ( सं० स्त्री० ) १ वक्तुता, वाग्मिता । २ व्याख्यान ।

३ कथन ।

वक्तुत्वशक्ति ( सं० स्त्री० ) बोलनेकी क्षमता ।

वक्त्र ( सं० स्त्री० ) वक्ति अनेनेति वक्त्- ( शुभ्रवीचिविचिप-

मिहदिन्द्रिभ्यस्वः । उण् ५।१६६ ) इति लः । १ मुख । यदन,

जास्य, आनन, मुपार्थवाचक है । इस वक्त्र शब्दसे वन्दुक-

का मुख, हाथीकी सूँड, पक्षीकी चोंच, तीरका फन्दक,

भुङ्गारका मल आदि समझा जाता है । २ तगरकी जड़ ।

३ यस्त्रभेद, एक प्रकारका कपड़ा । ४ एक प्रकारका छंद

जो अनुष्टुप् छंदके अनुरूप होता है । ५ कामका आरम्भ ।

६ बीजगणितोक्त प्रथम श्रुति संख्या । ७ तगरका फूल ।

वक्त्रक ( सं० लि० ) मुखसायन्धी । वक्त्र देवो ।

वक्त्रकटुता ( सं० स्त्री० ) मुखघेर ।

वक्त्रक्षुर ( सं० पु० ) वक्त्रस्य क्षुर इव, पृथीदरादित्वात्

पः । इण्ड ।

वक्त्रज ( सं० पु० ) ब्रह्मणो वक्त्रात् जायते इति ।

'ब्राह्मणोऽप्य मुखनासीत्' इति श्रुतेः जन-ष्ट । १ ब्राह्मण ।

( लि० ) २ मुखजात, मुखसे उत्पन्न ।

वक्त्रताल ( सं० स्त्री० ) वक्त्रस्य तालम् । मुखवाद्य, वह

ताल जो मुखसे उत्पन्न किया जाय ।

वक्त्रतुण्ड ( सं० पु० ) गणेश ।

वक्त्रतन्द्र ( सं० लि० ) वक्त्रे मुखदेशे तन्द्राणि यस्य ।

१ शोथेदन्तविशिष्ट, जिसके दाँत बड़े बड़े हैं । ( पु० )

२ शूकर, सूअर ।

वक्त्रदल ( सं० स्त्री० ) तालू ।

वक्त्रद्वार ( सं० स्त्री० ) मुखविचर ।

वक्त्रपट ( सं० स्त्री० ) मुखावरणवह ।

वक्त्रपट्ट ( सं० पु० ) वक्त्रस्य पट्ट इव । वह वरतन जिसमें

घोड़ा चना खाता है, तोबड़ा । पर्याय—तलिका, तल-

संरक ।

वक्त्रपरिस्पन्द ( सं० पु० ) १ वक्त्राके साग्य मुखका

कांपना या हिलना । २ कथन, वाचन ।

वक्त्रवाहु ( सं० पु० ) धारादोकेद ।

वक्त्रमेदिन ( सं० पु० ) वक्त्रं मिनत्तोति मिदु णिनि ।

१ तिकरस, तीना । ( लि० ) २ मुखविदारक, मुँह

फाड़नेवाला ।

वक्त्रयोधिन् ( सं० पु० ) १ एक असुरका नाम । ( हरिवंश )

( लि० ) २ मुखसे लड़ाई करनेवाला ( पक्षि आदि ) ।

वक्त्ररन्ध्र ( सं० स्त्री० ) मुखविचर ।

रक्त्रगद ( सं० लि० ) १ मुखसे जो उत्पन्न हो । ( पु० )

२ वह बाल जो हाथीकी सूँट पर होते हैं ।

( बृहत्सं० ६०।१० )

वक्त्ररोग ( सं० पु० ) मुखरोग, मुँहकी बीमारी ।

रक्त्ररोगिन् ( सं० लि० ) मुखरोग-भोगकारी, जिसे मुँह-

की बीमारी हुई हो ।

वक्त्रवास ( सं० पु० ) वक्त्रं वासयति सुरमीकरोतीति

वासि- ( कर्मण्यप् ) पा ३।३।१ ) इति अण् । १ नारद,

नारंगी । वक्त्रस्य वासः । २ मुखताम्य ।

वक्त्रशल्या ( सं० स्त्री० ) गुञ्जा, चुंघली ।

वक्त्रशोधन ( सं० स्त्री० ) वक्त्रस्य शोधनमिव । १ निगु-

फाल, नीचू । २ भव्य, कामरज । ३ मुखशोधन, मुख-

शुद्धिकरण ।

वक्त्रशोधिन् ( सं० पु० ) वक्त्रं शोधयतीति शुच्-जिच्-

णिनि । १ जंघीरी नीचू । २ मुखशोधक ।





भीर अन्याय शक्तिप्रभावसे उनकी चक्रगति हो जाती है।

ज्योतिषियोंने मङ्गलादि ग्रहोंकी चक्रगतिकी दिन-संख्या निर्देश की है। उससे जाना जाता है, कि मङ्गलकी चक्रगति ७६ दिन, बुधकी २१ दिन, वृहस्पतिकी १०० दिन, शुककी १२ दिन तथा शनिकी चक्रगति १८४ दिन है।

रिस्तृत विवरण ग्रह शब्दमें देखो।

चक्रमल ( हिं० पु० ) एक प्रकारका बाजा जो मुँहसे फूँक कर बजाया जाता है।

चक्रगामिन् ( सं० त्रि० ) १ असरल गति, टेढ़ी चाल चलनेवाला। २ असत् व्यक्ति, भूडा। ३ शत्रु, कुटिल।

४ प्रयत्नक, घोखेबाज।

चक्रगुल्फ ( सं० पु० ) उग्र, ऊँट।

चक्रग्रीव ( सं० पु० ) चक्रा ग्रीवास्य। उग्र, ऊँट।

चक्रकञ्च ( सं० पु० ) चक्रा चञ्चुर्यस्य। शुकपक्षी, तोता।

चक्रण ( सं० क्लृ० ) चक्रोकरण, टेढ़ा करना।

चक्रणा ( सं० स्त्री० ) चक्रण देखो।

चक्रना ( सं० स्त्री० ) १ चक्रना भाव या धर्म, टेढ़ापन। २ क्रूरता, शत्रुता।

चक्रवत्य ( सं० क्लृ० ) चक्रता देखो।

चक्रताल ( सं० क्लृ० ) चक्रं तालं यत्। बाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा जो मुँहसे बजाया जाता है। पर्याय—मुखवाद्य, चक्रनाल।

चक्रताली ( सं० स्त्री० ) चक्रनालगौरादित्वात् स्त्रीप्। मुखवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो मुँहसे बजाया जाता है।

चक्रनु ( सं० पु० ) देवताभेद। ( मार्कपु० ८०।१ )

चक्रनुण्ड ( सं० पु० ) चक्रं नुण्डं यस्य। १ शुकपक्षी, तोता। २ गणेश। ( त्रि० ) ३ चक्रोष्ठ, जिसके होंठ टेढ़े हैं।

चक्रदंष्ट्र ( सं० पु० ) चक्रा दंष्ट्रा यस्य। शूकर, सूअर।

चक्रदन्त ( सं० पु० ) दन्तचक्र नामक राक्षस।

चक्रदन्तो ( सं० स्त्री० ) हलदन्तो, लघुदंती।

चक्रदल ( सं० क्लृ० ) ताल्। चक्ररत्न देखो।

चक्रदृष्टि ( सं० स्त्री० ) १ टेढ़ी दृष्टि। २ क्रोधकी दृष्टि। ३ मन्द दृष्टि।

चक्रधर ( सं० पु० ) द्वितीयाका देहा चन्द्रमा धारण करनेवाले, शिव।

चक्रनक्र ( सं० पु० ) चक्रः कुटिलः नक्र इव दिक्ष्णद्वय। १ पिशुन, चुगलघोर। २ शुकपक्षी, तोता।

चक्रनाल ( सं० क्लृ० ) मुखवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो मुँहसे बजाया जाता है।

चक्रनास ( सं० त्रि० ) चक्रनासा या चञ्चुयुक्त, जिसकी नाक या चोंच टेढ़ी हो।

चक्रनासिक ( सं० पु० ) चक्रा नासिका यस्य। १ पेचक, उल्लू। ( त्रि० ) २ कुटिल नासायुक्त, टेढ़ी नाकवाला।

चक्रपाद ( सं० त्रि० ) चक्रं पादं यस्य। खज, लंगड़ा।

चक्रपुच्छ ( सं० पु० स्त्री० ) चक्रं पुच्छं यस्य। कुक्कुर, कुत्ता।

चक्रपुच्छिक ( सं० पु० ) कुक्कुर, कुत्ता।

चक्रपुर ( सं० क्लृ० ) एक प्राचीन नगरका नाम।

( कथासरित्सा० १०७, १३६ )

चक्रपुष्प ( सं० पु० ) चक्राणि पुष्पाण्यस्य। १ चक्रवृक्ष, अगस्तका पेड़। २ पलासका पेड़।

चक्रपुष्पिका ( सं० स्त्री० ) लांगूळिका, विपदांगली।

चक्रपालधि ( सं० पु० ) चक्रो पालधिः केन्द्रयुक्तलांगूलं यस्य। १ कुक्कुर, कुत्ता। ( क्लृ० ) २ कुटिलपुच्छ, टेढ़ी पूँछ।

चक्रामनित ( सं० क्लृ० ) चक्रं कुटिलं भणितम्। कुटिलवाक्य, खोटी बात। पर्याय—टेकोकिक, चक्रोकि, श्लेषोक्ति।

चक्रभाय ( सं० पु० ) १ चक्रता, टेढ़ापन। २ असरलता, कुटिलता।

चक्रम ( सं० पु० ) अयकमणमिति अय-कम-भावे घञ्। अक्षोपः। पलायन, भागना।

चक्रय ( सं० पु० ) मूल्य, दाम।

चक्ररेखा ( सं० स्त्री० ) टेढ़ी रेखा।

चक्रलाङ्गल ( सं० पु० ) चक्रं लांगूलं यस्य। १ कुक्कुर, कुत्ता। ( क्लृ० ) २ कुटिल पुच्छ, टेढ़ी पूँछ।

चक्ररक्त ( सं० पु० ) चक्रं चक्रमस्य। १ शूकर, सूअर। ( त्रि० ) २ चक्रमुष्पयिष्टि, टेढ़ा मुँहवाला।

चक्रशाल्या ( सं० स्त्री० ) चक्रं शाल्यमिव पत्रादिकं यस्याः। १ कुट्टम्वित्री क्षुप, एक प्रकारकी टेढ़ी लता। २ कट्टनुम्बो,



बौद्धदेवोंमें चक्रेश्वर नामक एक बड़ा क्षेत्र है। उस क्षेत्रका स्मरण करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होते हैं।

इस चक्रेश्वरकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है,—

सत्ययुगमें महातपा अष्टावक्रका नाम था सुव्रत। त्रैलोक्यमें पेश्वर्यकी आस्पदीभूत लक्ष्मीके स्वयम्बरमें देवसभामें मनोहर नृत्य हुआ था। देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण आदि सभी उस स्वयम्बरमें उपस्थित थे। वहाँ अमरपति शचीनाथ इन्द्रने सबसे पहले लोमशऋषिकी पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय अर्पण किया। यह देव भगवान् सुव्रत बड़े विगड़े, लेकिन तपभङ्ग हो जानेके भयसे उन्होंने कोई श्राप नहीं दिया। क्रोधके कारण उनका अष्टाङ्ग वक्र हो गया। उसी दिनसे उनका अष्टावक्र नाम पड़ा। इस प्रकार चक्राङ्ग हो मुनिवरने इस क्षेत्रमें आ कर कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। उनकी तपस्यासे सर्वलोक उत्तत हो उठा। दश हजार वर्ष तक केवल जल पी कर, पीछे दश हजार वर्ष केवल पेड़की पत्तियाँ खा कर और उसके बाद दश हजार वर्ष वायु भक्षण कर जितेन्द्रिय मुनिवरने कठोर तपस्या की थी। उनके निकट पाषक आकारके तीन कुण्ड निकल आये। उन्हीं कुण्डोंके नाम दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि हैं। ये तीनों अग्नि अतल नामक पातालमें अवस्थित हैं। उनका जल स्वर्गप्रदायक है। वहाँ भोगवतीके जल प्रवाहित जिनके मस्तक पर सुमेध है उन हाटक नामक महादेवकी भी चक्राङ्गिने अर्चना की। उनकी अटुर्ध्व जटासे जल निकल कर तीन अग्निकुण्डके साथ मिल गया है। पाषक उस जलको आलिङ्गन कर उष्ण-तोषा श्वेतगङ्गा नदीरूपमें गहते हैं। इसी नदीका किसीने भोगवती और किसीने श्वेतके नामानुसार श्वेतगङ्गा नाम रखा है। यहाँ पातालेश, अक्षयवट और नन्दीश्वरमें स्नान, पीछे ब्रह्मपौत्रि और शिलाका स्नान तथा नदीके एक अंशमें शिवको स्नान करा कर दक्षिणकी ओर चक्रेश्वरके पश्चाद्भागमें तीन धनुके फासले पर पाषाहारिणी वैतरणीमें स्नान और उसने दर्शन करनेसे अतिपात्रका फल होता है। यह पाषाट

क्षेत्र सर्पाकार है। त्रैलोक्यकी रक्षा करनेके लिये महादेव यहाँ वास करते हैं। उन्हींके उद्देशसे महातपा चक्रने तपस्या की थी। स्वयं पाषं तोषति मुनिके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। चक्रमुनिने यहा आराधना की थी, इस कारण यहाँ पर महादेव चक्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके प्रभावसे अष्टावक्रको अभीष्ट प्राप्त हुआ था।

इस क्षेत्रमें कहां कौन तीर्थ है तथा उन सब तीर्थोंमें किस प्रकार पूजादि करनी होती है, चक्रेश्वरकी तीर्थ-परिक्रमामें इस प्रकार लिखा है,—

इस चक्रेश्वरक्षेत्रके दक्षिण क्षारकुण्डादि तीर्थकी क्रमशः यात्रा करनी होती है। पहले चक्रेश्वरमें जा कर शीरकर्म, स्नान और शिवके दर्शन और प्रणाम कर पश्चात् तीर्थ विधानसे यात्रीको परिक्रमा करनी चाहिये। पीछे क्षारकुण्डमें स्नान कर कुशोदक छिड़क कर यथाविधान सङ्कल्प करनेके बाद मन्त्रपाठ करे।

इस क्षारकुण्डके पूर्वमें सिद्धसेवित सर्वपापनाशक भैरवकुण्ड है। तीर्थयात्रीको भक्तिपूर्वक इस भैरवकुण्डमें जा कर जलस्पर्श करना चाहिये।

भैरवकुण्डके पूर्वमें सर्वपापनाशक महापुण्यप्रद अग्नि-कुण्ड है। पीछे यात्री कुशसंयुक्त अग्निकुण्डके जल द्वारा अभिषेक करे।

अग्निकुण्डके पूर्वमें जीवकुण्ड (दूसरा नाम अमृत-कुण्ड) है। सर्वपापनाशक और सर्वरोग-निवारक अग्निकुण्डसे इस जीवकुण्डमें जा कर सर्वपाप विनाशार्थ स्नान करे।

जीवकुण्डसे दक्षिण सर्वसौभाग्यप्रद सौभाग्य नामक कुण्ड है। सर्वपाप-विनाश और सर्वसौभाग्यलाभके लिये यात्रीको सौभाग्यकुण्डमें स्नान करना होता है।

अग्निकुण्डके दक्षिण पापमोचनी वैतरणी है। इसका जल स्पर्श करनेसे मनुष्य पाप-मुक्त होते हैं। यहाँ भी स्नान करना होता है। इस क्षेत्रमें क्षारकुण्डके दक्षिण पाषाट नामक एक सर्वपापहरा सरित् है। वैतरणी पार कर यहाँ स्नान करना उचित है।

इसके बाद ब्रह्मकुण्डमें आना होगा। जीवकुण्डके ईशान-कोणमें ब्रह्मकुण्ड है। यह कुण्ड मानवका भोग-मोक्षप्रद और सर्वपापनाशक माना गया है। ब्रह्मकुण्डमें स्नान करना होता है।



एक श्लेषार्थक और दूसरा अर्थावाचक है। निम्नोक्त उदाहरणसे इसका स्पष्ट पता चलेगा—

“के यूयं स्थत् एव सम्प्रति बयं” प्रश्नो विशेषाश्रयः  
किं प्रूते विहगः स वा कण्ठिपथिर्वास्ति मुनो हरिः।  
वामा यूयमदो विटम्बरशिकः क्रीडकृस्मरो वचते  
येनास्वाम्य विवेकगून्यमनसः पुं स्वेव योषिद् भ्रमः ॥”

‘के यूयं’ तुम लोग कौन हो? इस प्रश्नके उत्तरमें उत्तरदाताने कहा, हम लोग जलमें नहीं हैं। यहां पर ‘के’ को किम् शब्दकी प्रथमा विभक्तिका बहुवचन न मान कर जलवाचक ‘के’ शब्दकी सप्तमामें विभक्तिका एकवचन ‘के’ मान कर उत्तर दिया गया, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है। प्रत्युत्तरमें—‘प्रश्नाविशेषाश्रयः’ पदमें जिज्ञास्य-प्रापन किया गया है। यदा पर ‘यि’ पक्षो और ‘शेग’ अन्तत (नाम) यह विशेष अर्थ प्रदण करके ही उत्तर दिया गया था; विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया।—तब तुम लोग क्या यह कहना चाहते, ‘हम लोग पक्षों हैं अथवा सर्प हैं, जहां विष्णु भगवान् सो रहे हैं?’ यहां पर विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया है, वि-शब्दसे पक्षी और शेप शब्दसे सर्पका अर्थ लिया गया है, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है।

द्वितीयादायै—अहा! तब तुम लोग क्या वामा हो अर्थात् प्रतिकूल अर्थ प्रहण करते हो (वामा शब्दका एक अर्थ है प्रतिकूलवादी)। क्योंकि हम एक अर्थसे प्रश्न करते हैं और तुम उसका अर्थ लेते हो। उत्तरवादीने वामा शब्दका प्रतिकूलवादी अर्थ न ले कर साधारणतः स्त्री-अर्थ लिया और कहा,—वाह जी अंधे! तुम ऐसे कामासक हो गये, कि तुम्हें पुरुषमें नारीका भ्रम हो गया। यहां वामा शब्दके दो अर्थ हुए १ म स्त्री और २ म प्रतिकूलवादी। प्रश्नरुत्ताने प्रतिकूलवादी अर्थ भगाया है; किन्तु उत्तरदाता स्त्री अर्थ मान कर उत्तर देते हैं, यद्ये वक्रोक्ति है। इन दोनों अर्थका संयोग होनेके कारण इसकी समग्रश्लेष कहते हैं। अन्य पक्षमें यह अर्थक है।

“काले कश्चिन्नयाचाले यश्चक्रभंगोदरे।  
वृतामसः परिस्वामान् हस्वारेवेना न दूषते ॥”  
कोकिलकलत्रवत् परिपूर्णा आस्रनुकूल विक्रमिन्त

मनोहर घसन्तकालमें दोषो कान्तकी स्थान कर कामिनीका चित्त व्यथित नहीं होता, सचमुच व्यथित होता है। यहां पर निषेधार्थमें नञ् शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अपर पक्षमें काका अर्थात् ध्वनिविशेष द्वारा विधि अर्थ भी होता है।

वक्रोलक (सं० पु०) १ एक गण्डग्राम। (कथावर्तिता० ७६।१८) २ उसी नामका एक नगर।

(कथावर्तिता० ६३।२)

वक्रोष्ठिका (सं० स्त्री०) वक्रोष्ठोऽस्त्यस्या इति, उन्। ईपद्धसनेन द्वि-ओष्ठस्य चक्रता जागते अतोऽस्यास्तथा-त्वम्। यद्वा वक्र ओष्ठो यस्याः। ततः स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वम्। अट्टरदहास्य, पेसी मं वं स्त्री जिसमें श्रुति न खुले कंधल ओंठ कुछ टेढ़े हो जायें, मुसहान। पर्याय—स्मित।

वक्र (सं० त्रि०) १ तिर्यग्गामो, तिरछा या टेढ़ा चलने-वाला। २ इतस्ततः परिभ्रमणशील, इधर उधर घूमने-वाला।

वक्रन् (सं० त्रि०) गुणवक्ता, स्तोता।

वक्री (सं० स्त्री०) गुणवक्त्री। (मृ० १।१४।६)

वकस (सं० पु०) सुधूनके अनुसार एक प्रकारका मद्य। (वक्रय वेत्ता।

वक्षः (सं० क्ली०) उच्यतेऽनेनेति। वच् (पचिविभ्यां गुच् च। उण् ४।२।६) इति असुन् सुट्। वक्षनेरसुन् इति रमानाथः धातुप्रदीपश्च। १ अङ्गविशेष, पेट और गले-के बीचमें पड़नेवाला भाग जिसमें खिणोंके स्तन और पुरुषोंके स्तनके-से चिह्न होते हैं, छाती। पर्याय—क्रोड, भुजांतर, उरः, वरस, धङ्क, उरसङ्ग, पक्षण, गणपीठक और वक्षःस्थल।

गङ्गपुराणमें वक्षके शुभाशुभ लक्षण लिखे हैं। समवक्षोविशिष्ट धनवान्, पौनवक्षोव्यक्ति वीर और शक्ति-शाली तथा विपमवक्ष व्यक्ति निर्धन और प्रायुके द्वारा निधनमात होते हैं।

“अप्रयत्न समपत्ताः स्वान् पीनेनंक्षोमिहृदितः।

वक्षोभिर्दिवर्मेभिः शस्त्रेण निधनस्तथा ॥”

(गङ्गपुराण ६६ अ०)

(पु०) चदतीति चद- (परिशेषः) चदन्ति।

प्रहलदकुण्डसे पूर्वभागमें श्वेतगङ्गा नामक सर्वपापनाशक एक कुण्ड है। इस कुण्डमें स्नान करनेका नियम है।

श्वेतगङ्गाके उत्तर पुत्र, पेश्वर्य और सुखप्रद अक्षय नामक एक वट है। इस वटवृक्षका प्रदक्षिण कर शिवभाष में दक्षिणसे पूजन करना होता है। वटवृक्षके समीप माधवदेव अवस्थित हैं। उनके दर्शन करनेसे साहजमें मुक्ति लाभ होता है।

माधवके निकट अनेक देवता पड़े हैं। गन्धपुष्पादि द्वारा उनकी भोग पूजा करनी होती है। पीछे कामधेनुकी पूजा करना आवश्यक है। श्वेतगङ्गाके दक्षिण श्वेतगङ्गाके जलके निकट वृषरूपी धर्म अवस्थित है। गन्धपुष्पादि द्वारा उनकी पूजा करनेसे चतुर्वेद पाठका फल होता है।

वृषको आलिङ्गन कर पीछे चक्रेश्वरके दर्शन करे। पाद्य अर्घ्यादि द्वारा अभिषेक कर यथाक्रम पूजा करनी होती है। वृषमूर्त्तिके पश्चिम वेदीके मध्य चक्रेश्वरदेव अवस्थित हैं।

इस अष्टाचक्रनिर्मित परम रमणीय पुण्य शिवक्षेत्रका जो स्मरण वा प्रणाम करता उसके सभी पाप दूर होते हैं।

ऊपर जिन सब कुण्डोंका उल्लेख किया गया उनकी नामोत्पत्ति किस प्रकार हुई है, यह भी चक्रेश्वर महात्म्यमें वर्णित है। विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ पर नहीं लिखा गया।

चक्रेश्वर-महात्म्यमें एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख इस प्रकार है—

सत्ययाज्ञी, सत्यपरायण, योगवान्, जितेन्द्रिय और दयालु श्वेत नामक एक राजा थे। निचजीमें उनकी अष्ट भक्ति थी। महान्द्रकोट नामक नगरमें उनकी राजधानी प्रतिष्ठित थी। वे प्रति दिन ५ योजनका रास्ता नै कर चक्रेश्वरकी पूजा करने आते और फिर लौट जाते थे। उन्हीं अकर्मफल भगवान् चक्रेश्वरको वर दिया था, कि 'तुम जन्मोंसे दुराचर्य और सर्वदा प्रामाण्य (वा ब्राह्मणमें अनुत्पन्न) होगे तथा देवद्विजको प्रिय चन्दु दान कर क्षत्रियके राज्य करोगे। तुमदादा राजभवन सभी प्रकारके पेश्वरसे सामायुक्त होगा, तुम विपुल धन-

वान्, आयुष्मान् और कीर्तिमान् होगे।' चक्रेश्वरके वचन सुन कर श्वेत नरपति भक्तियुक्त चित्तसे प्रणत हो भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये स्तव करने लगे। नगवान् चक्रेश्वरने प्रसन्न हो कर कहा, 'राजेन्द्र! तुमदादा जो इच्छा हो, सो वर मांगो।' राजाने हाथ जोड़ प्रार्थना की, 'यदि आप इस दास पर प्रसन्न हैं, तो दो वर दीजिये। पहला यह कि इस पुण्यक्षेत्रमें आपके निकट मेरा प्रणान्त होय पर भी नाम रहे और दूसरा माप होके निकट मेरा अन्तिम काल शेष हो।' शिवने कहा, 'महाराज! तुम धन्य हो, क्योंकि दूसरा वर लेनेको आपकी जरा भी इच्छा न हुई। महाराज मेरे पास जो जाहूँगे हैं, मेरे स्नानार्थ जिसमें नाना तीर्थोंका समागम होता है, आजसे उसका तुमदादा नामानुसार श्वेतगङ्गा नाम रहेगा और तुम भी अन्तकालमें मेरा पद लाभ करोगे, इसमें संदेह नहीं। तुमदादा चरित्त जो सुनेगा और तुमदादा स्तौत जो पाठ करेगा उसे सार्गकी प्राप्ति होगी। उसे फिर कभी भी यमालय नहीं जाना पड़ेगा। मेरे निकट इस श्वेतगङ्गाके जलमें स्नान कर जो पिएइदान करेगा, उसे गया-श्राद्ध करनेका फल होगा।'

इस प्राचीन कदाचीसे मालूम पड़ता है, कि नाना उष्ण-प्रस्रवणशोभित यह निभृत स्थान बहु-भूषणों तथा स्त्रियोंका प्रिय स्थान समझे जाने पर भी श्वेत नामक किसी हिन्दू-राजके घनसे हो इस पुण्यक्षेत्रकी प्रतिष्ठा हुई है। आज भी नाना स्थानोंसे अनेक माव्री इस तीर्थके दर्शन करने आते हैं। यह स्थान अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। यहांके कुण्डरूपी उष्ण-प्रस्रवणोंका जल सचमुच रोगनाशक है।

चक्रोक्ति (सं० खों०) वक्ता कृत्स्ना उक्तिः । १ काकूक्ति, व्यङ्ग्यवचन । २ कृत्स्लीक, कथत वचन । ३ अश्रुतद्वारा-विशेष । पाण्यादिमें श्वेतयाग्यके प्रयोग या व्यङ्गीकृतो चक्रोक्ति कहते हैं । सार्द्धवर्षभोजके १०० परिच्छेदमें इसका विषय यों लिखा है—

“भन्यस्त्वानार्थकं शरणात्मनः शोभते चन्द्र ।

अन्यभलेषु च वाक्वा वा वा वर्णोक्तिस्ततो विद्या ॥”

(साहित्यदर्पण १०१, ४१ व०)

साधारणतः चक्रोक्तिसे ही अर्थ समझे जाते हैं। उनमें

एक इलेपार्थक और दूसरा अर्थावाचक है। निम्नोक्त उदाहरणसे इसका स्पष्ट पता चलेगा—

“के यूयं स्थञ्ज एव सम्प्रति बभूव” प्रश्नो विशेषाश्रयः  
 किं व्रूते विद्मः स वा कथिपतिर्यथास्ति मुनो हरिः ।  
 वामा यूयमहो विद्म्वरधिकः क्रीडकस्मरो वचते  
 येनास्पातु विवेकशून्यमनसः पुंस्त्वेव योषिद् भ्रमः ॥”

‘के यूयं’ तुम लोग कौन हो ? इस प्रश्नके उत्तरमें उत्तरदाताने कहा, हम लोग जलमें नहीं हैं। यहां पर ‘के’ को किम् शब्दकी प्रथमा विभक्तिका बहुवचन न मान कर जलवाचक ‘के’ शब्दकी सप्तमो विभक्तिका एकवचन ‘के’ मान कर उत्तर दिया गया, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है। प्रत्युत्तरमें—‘प्रश्नो विशेषाश्रयः’ पदमें जिज्ञास्य-ज्ञापन किया गया है। यहां पर ‘वि’ पक्षो और ‘शेष’ अनन्त (नाग) यह विशेष अर्थ प्रदण करके ही उत्तर दिया गया था; विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया।—तब तुम लोग क्या यह कहना चाहते, ‘हम लोग पक्षो हैं अथवा सर्प हैं, जहां विष्णु भगवान् सो रहे हैं?’ यहां पर विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया है, वि-शब्दसे पक्षो और शेष शब्दसे सर्पका अर्थ लिया गया है, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है।

द्वितीयार्थ—अहा ! तब तुम लोग क्या वामा हो अर्थात् प्रतिकूल अर्थ प्रदण करते हो (वामा शब्दका एक अर्थ है प्रतिकूलवादी)। क्योंकि हम एक अर्थसे प्रश्न करते हैं और तुम उसका अर्थ लेते हो। उत्तरवादीने वामा शब्दका प्रतिकूलवादी अर्थ न ले कर साधारणतः खो-अर्थ लिया और कहा,—वाह जो अधे ! तुम पेले कामासक हो गये, कि तुम्हें पुरुषमें नारीका भ्रम हो गया। यहां वामा शब्दके दो अर्थ हुए १ म खो और २ य प्रतिकूलवादी। प्रश्नरुत्ताने प्रतिकूलवादी अर्थ भगया है, किन्तु उत्तरदाता खो अर्थ मान कर उत्तर देते हैं, यद्यो वक्रोक्ति है। इन दोनों अर्थका संबंध होनेके कारण इसकी समझश्लेष कहते हैं। अन्य पक्षमें यह अमङ्गल है।

“काले कश्चिन्नवाचाले सहकारभनाशरे ।  
 श्रुतामयः परित्वागान् कस्यारपेतो न दूषते ॥”

कोकिलकलरवसे परिपूर्णं धाममुकुल विकसित

मनोहर वसन्तकालमें दोषो कान्तकी त्याग कर कामिनीका चित्त व्यथित नहीं होता, सचमुच व्यथित होता है। यहां पर निषेधार्थमें नभ् शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अपर पक्षमें काका अर्थात् ध्वनिविशेष द्वारा विधि अर्थ भी होता है।

वक्रोलक (सं० पु०) १ एक गण्डग्राम। (कथासरित्सा० ७६।१८) २ उसी नामका एक नगर।

(कथासरित्सा० ६३।३)

वक्रोष्णिका (सं० स्त्री०) वक्रोष्णोऽस्त्यस्या इति, उग्र। ईषदसनेन हि-ओष्ण्य चक्रता जायते अतोऽस्यास्तथा-त्वम्। यद्वा वक्र ओष्णो यस्याः। ततः स्वार्ये कञ्, टापि अत इत्वम्। अट्टरदहास्य, ऐसी मं वृं सो जिसमें शंत न खुले केवल ओंठ कुछ टेढ़े हो जायं, मुसकान। पर्याय—स्मित।

वक्र (सं० लि०) १ निर्यग्नामो, तिरछा या टेढ़ा चलने-वाला। २ इतस्तनः परिभ्रमणशील, इपर उधर घूमने-वाला।

वक्त्र (सं० लि०) गुणवक्त्रा, स्तोता।

वक्त्रो (सं० स्त्री०) गुणवक्त्रो। (शृक १।१४५।६)

वकस (सं० पु०) सुधृतके अनुसार एक प्रकारका मद्य। (वक्कय वेतो।

वक्षः (सं० स्त्री०) उच्यतेऽनेनेति। वच् (पथिविचम्प्य सुच्। उण् ४।२१६) इति असुन् सुट्। वक्षतेरसुन् इति रमानाथः धातुप्रदोपश्च। १ अङ्गविशेष, पेट और गलेके बीचमें पट्टनेवाला भाग जिसमें त्रिषोके स्तन और पुरयोके स्तनके-से चिह्न होते हैं, छातो। पर्याय—क्रोड, भुजान्तर, उर, वरस, अट्ट, उरसङ्ग, यक्षण, गणपांडक और वक्षःस्थल।

गण्डपुराणमें वक्षके शुभाशुभ लक्षण लिखे हैं। समवक्षोविशिट अन्नयान्, पीनवक्षो-यकि वीर वीर शक्ति-शाली तथा विषमवक्ष थकि निर्धन और शत्रुके सारा निघनप्राप्त होते हैं।

“अन्नयान् समवक्षः स्थान् पीनवक्षोनामिभ्यजिनः ।  
 वक्षोभिर्विषयोभिः शस्तं निघनस्यथा ॥”  
 (गण्डपुराण ६६ व०)  
 (पु०) वदतीति वद- (वदिरणवश्चरद्वन्द्वसि।



उष् ४१२२०) इति असुत्, सुट् च । २ अनश्यान, वैल ।  
वक्षण (सं० लि०) १ शक्तिशाली, बलिष्ठ । (ह्रीं०) वक्षस्य-  
नेगेति, वक्षरोपसंहृतयोः ह्युट् । २ वक्ष, छाती ।  
३ वाहक ।

'क्रियात्म वक्ष्यानि यगे' (श्रुक् ६।२३६)

'वक्ष्यानि वाहकानि स्वोत्राणि क्रियात्म करवाच ।' (शायण)  
४ अग्नि, भाग ।

वक्षणा (सं० स्त्री०) १ नदी । (श्रुक् १।४२।१२) २ नदी-  
भर्म । (श्रुक् १०।२६।१२) ३ उदर, पेट ।

'या वः प्रज्ञा जनयत् वक्ष्यादस्य' (अथर्व० १।४।२।४)

वक्षणि (सं० लि०) शक्तिदाता ।

वक्षणी (सं० लि० स्त्री०) वक्षण शिवायं लोप् । १ शक्ति-  
दात्री । २ ध्यानवृद्धिर्दिनी ।

वक्षणेस्था (सं० लि०) अग्निर्मे स्थापित ।

वक्षप (सं० पु०) १ बलाघान । २ वृद्धि-प्रकाश ।

वक्षस्र (सं० पु० ह्रीं०) १ हृद्योपरिस्थ देहभाग, छाती ।  
२ पृथ, वैल ।

वक्षःसंमर्दिनी (सं० स्त्री०) वक्षसि संमर्दते इति  
सं-सृष्ट-णिनि । स्त्री, पत्नी ।

वक्षःस्थल (सं० ह्रीं०) १ वक्ष, छाती । २ हृद्य ।

वक्षस्तटाघात (सं० पु०) वक्षसः तटः वक्षस्तटः तेषु  
आघातः वक्षः । वक्षस्थलोपरि सुष्ट्वाघात, छाती पर  
मुक्ता मारना ।

वक्षी (सं० स्त्री०) अग्निशिखा, आगकी ली ।

वक्ष—सनाम प्रसिद्ध इक्ष (Oxus) नदी । वंशु देतो ।

वक्षोभय (सं० पु०) विद्युत्वामित्तके एक पुलका नाम ।

(माथ १२ पर्व)

वक्षोज (सं० ह्रीं०) वक्षसि जायते इति जन-ञ । रतन,  
कुच ।

वक्षोमण्डलिन (सं० पु०) वृत्तकालीन एस्तयिन्यासभेद ।

वक्षोच्छ्र (सं० पु०) वक्षसि रोदतीति यद-कः । प्लन,  
कुच ।

वक्ष्यमाण (सं० लि०) १ भविष्यत् कथनीय विषय, जो  
भविष्यमें कहने लायक हो । २ वाच्य, वषतव्य । ३ जो  
कथनका प्रारम्भ विषय हो, जिसे कह रहे हों । (ह्रीं०)  
४ मनोस्य वचन, सुन्दर वचन ।

वक्ष्यमाणत्व (सं० बली०) वक्ष्यमाणका भाव वा धर्म ।  
वक्षसिंह—जोधपुरके राजा अभयसिंहके छोटे भाई ।  
अभयसिंहके स्वर्गवासो होने पर उनके पुत्र रामसिंह  
पिताकी गद्दी पर बैठे । वक्षसिंह नागौरके जगोत्कार  
थे । रामसिंहके अभिषेकके समय वक्षसिंहकी आना  
आवश्यक था, पर्वीक वे कुलमें बड़े थे । परन्तु न मालूम  
किस कारणसे उस समय न तो वक्षसिंह आये और न  
किसी अपने प्रतिनिधि लोको भेजा । रामसिंहके अभि-  
षेकमें नागौरके ठाकुरके पदासे केवल उनकी एक धाय  
आई थी । यह देख राजा रामसिंह बड़े अग्रसन्न हुए ।  
उन्होंने उस धायका बड़ा अग्रमान क्रिया और अभिषेक  
होनेके बाद ही उन्होंने नागौर पर धाया बोलनेकी सेना-  
को आज्ञा दी । अपने चाचा वक्षसिंहको सेना परलित  
करके भी अवकाश न दिया । दोनों ओरसे घमासान  
सुद होने लगा । छः स्थानोंमें बड़े भयंकर युद्ध हुए ।  
अन्तमें युवक रामसिंहने अपनी मूलताका फल पाया ।  
वे हार गये । वक्षसिंहको मारवाड़का सिंहासन हाथ  
लगा । अन्तमें वक्षसिंहको आमेरकी महारानीने मार  
डाला ।

वक्ष्यतिवार पिलजो—इतिहास-प्रसिद्ध वक्ष्यविजेता मुसल-  
मान सेनापति । मरम्बर-वक्ष्यतिवार देवा ।

वगड़ी (वक्षीय शब्दका अपभ्रंश)—प्राचीन गौडराज्य  
पांच भागोंमें विभक्त है उनमेंसे वगड़ी एक विभाग है ।  
घरादमिहिरकी घृहसंहितामें जिस उपवर्गका उल्लेख  
है, शायद वही वगड़ी विभागके जैसा मालूम होता है ।  
त्रिग्विजयप्रकाशमें लिखा है, कि भागीरथीके पूर्वभागमें  
पांच गोजन बिसुत उपवर्ग है । यशोरादि देव, फानन  
और अनेक नदी इसी उपवर्गके अन्तर्गत है ।

सेनवंशके जमानेमें भागीरथीके पूर्व, पश्चात्के पश्चिम  
और सागरके उत्तरवर्ती उल्लेख अंश वगड़ी कहलाता  
था । सभी भागोंकी पश्चिमो किनारा राड़ और  
पूर्वो किनारा वगड़ी कहलाता है । राड़ और वगड़ी  
विभागमें विशेषता यह है, कि राड़ भूभाग-शैल और  
बहुसंख्य, अधिकांश स्थल ऊँचा भोचा है, किन्तु वगड़ी  
भूभाग इसका ठीक विपरीत है । इसकी कुल जमीन  
उर्वरा है और बाढ़के समय डूब जाती है ।

राड़ और वगड़ी देलो ।

वगदोगरा—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

जनसंख्या छः हजारके लगभग है।

वगयम—निम्न ब्रह्मके तनासेरिम विभागके अमहदष्ट जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह वगयम नदीके किनारे अवस्थित है। इस नदीका उत्तरी किनारा तब-त नौ कहलाता है।

वगर—चम्पारणके अन्तर्गत एक नदी।

(अभिव्यं० ब्रह्मण० ४२।१४१)

वगरू—दक्षिण-ब्रह्मके तानसेरिम विभागके अमहदष्ट जिलान्तर्गत एक उपविभाग। इसके पूरव तीक्ष्ण्यु पर्वतमाला और पश्चिममें बङ्गोपसागर है। भूपरिमाण २८ मील है। यह ऊँची पहाड़ी भूमि बनमालासे समाच्छन्न है, बीच बीचमें धानके खेत और बड़े बड़े गांव भी देखे जाते हैं। दानेश्वर पर्वतके उच्च पर्वतशिखर उस प्राकृतिक गाम्भीर्यको भेद कर उन्नत मस्तकसे पेश्वरिक महिमा दिखला रहा है।

वगलामुखी (सं० खो०) दशमहाविद्याके अन्तर्गत देवी-विशेष। यह दश प्रकारकी शक्तिमूर्त्ति केसे आविर्भूत हुई थीं वह दशमहाविद्या शब्दमें लिखा जा चुका है। दशमहाविद्या देखो।

इस महादेवीका पूजामन्त्र और पूजामाहात्म्य तन्त्र-सारमें वर्णित है। तन्त्रसारमें लिखा है, कि इसका मन्त्र साधकवर्गका हितकर और शत्रुदलका स्तम्भनकारी ब्रह्मास्त्र-स्वरूप है। इस मन्त्रसे सर्वोको स्तम्भित किया जा सकता है। यहां तक, कि घायुकी भी गति रुक सकती है।

इस देवीकी पूजासे वायुस्तम्भन, बुदिनाश और शत्रुका क्षय होता है। देवीमन्त्रका प्रयोग करनेसे सभी आधिर्मातिक व्यापार साधित हो सकते हैं।

दश हजार बार मन्त्रजप करके निशाकालमें हरिद्रा और हरितालके साथ लक्षणहोम करनेसे दुष्ट व्यक्तिका वाक्स्तम्भन और बुद्धिविपर्यय होता है तथा इससे प्रातु-सैत्यका स्तम्भन किया जा सकता है। घृत, मधु और गर्भराके साथ पीतपुष्पका होम स्तम्भन कार्यविशेषमें फलप्रद है। कार्यसाधनार्थ पहले एक मन्त्र धनयाना आव-देवक है। पीछे स्तम्भनार्थ होमादि पूजा करनी होती है।

घातुफलक पर अथवा पापाणपट्ट पर अथवा हरिद्रा, धुस्तूर और हरिताल द्वारा मन्त्र अङ्कित करना ही उत्तम है। देवस्तम्भन और शत्रुओंके मुलस्तम्भनार्थ उक्त मन्त्र लिल कर गाढ़ आकमण करे। हरिद्रादि पूर्वोक्त द्रव्य द्वारा भोजपत्र पर मन्त्र लिखे। उस मन्त्र पर कुम्हारके चाककी मिट्टीसे एक बेल बना कर रखे। पीछे उसकी पीठ पर रख कर बगलामुखीकी आराधना करने-से विद्याधर्म जपलाम होता है। उस बेलकी नाममें बोली रस्सो डाल कर प्रतिदिन पीतवर्ण पुष्पादि उपचार द्वारा अपने घरमें पूजा करनेसे दुष्टका मुलस्तम्भन होता है। वगवाडी—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत सूत प्रान्तका एक छोटा सामन्त-राज्य। अभी यह दो अंशोंमें विभक्त हो गया है। ये दोनों सामन्त-वंश अभी गायकवाड़की (१३५) २० और जूनागड़के नवाबकी (१६) २० वार्षिक कर देते हैं। वगवाड़ी प्राम ३ वर्गमील विस्तृत है।

वगासड़ा—१ बम्बईप्रदेशके दक्षिण काठियावाड़के अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। अभी यह छः पट्टीदारोंमें बँट गया है। वर्त्तमान अधियासी जूनागड़के नवाबकी (२५४०) २० और बडोदाके गायकवाड़की (२५४०) २० वार्षिक कर देते हैं। वार्षिक आय १० हजार रुपयेकी है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१' २६' ३० तथा देशा० ७१' ५०के मध्य अवस्थित है। यह सूतसे १६० मील पश्चिम काठियावाड़ प्रायोद्वीपके मध्य बर्त्ती गोर नामक ऊँची भूमिके समीप बसा हुआ है।

वगासपुर—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

वगाह (सं० पु०) अय-गाह भांघे चम्पू, अलोपः। अयगाह, जलमें हल कर स्नान।

वगुला—बङ्गालके नदीया जिलान्तर्गत एक बड़ा प्राम। यह कलकत्तेसे ५३१ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ इष्टर्न बंगाल स्टेट रेलवेका एक प्रधान स्टेशन है। नदीया-का सदर कृष्णनगर और नवद्वीप ज्ञानेके लिये यहाँसे ११ मील दूर तक एक पकी सड़क है।

वगेपल्ली (वगेनपल्ली)—महिसुर राज्यके कोलाया जिले-

में कमल्य तालुके अंदर एक गाउँग्राम । यह अक्षा० १३' ४७' १५" उ० तथा देशा० ७७' ५०' २१" पू० तक विस्तृत है । यहां विचार-सदर स्थापित है ।

**योगसर ( वगसर )**—युक्तप्रदेशके कुमायूँ जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २६' ४६' २०" उ० तथा देशा० ७०' ४७' २५" पू०के बीच सरयू और गोमती नदीके संगम पर अवस्थित है । कलकत्तेसे यह स्थान ६११ मील उत्तर-पश्चिम तथा अलमोरासे २७ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है । नगर समुद्रकी तहसे प्रायः तीन हजार फुट ऊँचा है । इस नगरके साथ मध्य-पगिया और तिब्बतका विस्तृत धानिज्य है । प्रति वर्ष माघ महीनेमें यहां भूटिया जातिका एक मेला लगता है ।

कहते हैं, कि मुगल-साम्राट् तीमूरने पहले वगसर उपत्यकाभूमिमें एक मुगल-उपनिवेश स्थापन किया था ; किन्तु आज कल यह मुगल-जातिके बासका चिह्नमाल है । केवल पटाड़ी बनिपे लोग व्यापार करते हैं ।

**वगीरह ( अ० अय० )** एक प्रत्यय जिसका अर्थ यह होता है, कि "इसी प्रकार और भी समन्वित" इत्यादि, आदि । इसका प्रयोग यस्तुओंकी गितानिमें उनके धारोंके अन्तमें संक्षेप या लाघवके लिये होता है ।

**वगोर**—राजपूतानेके उदयपुर जिलान्तर्गत एक नगर । यह उदयपुर राजधानीसे ६७ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है । पहले यह मदातरना सोहनसिंहकी जमींदारीमें था । १८७५ ई०में यह उनके हाथसे छीन लिया है ।

**वगु ( सं० पु० )** वक् इति । वच् ( वयेगंभ । उण् १३३ ) इति नुः गश्चात्तादेशः । १ वक्ता, कथक । २ पावदूक, ककयादी, बहुत ककनेवाला । ३ पशुओंका चोरकार । ४ भेकरव, मेदूकका बोलना ।

**वग्वन ( सं० लि० )** त्रिपाषाण-कथनशाल, मोठी बात करनेवाला । ( शूक् १०३२२ )

**वावगु ( सं० पु० )** शब्द ।

**वाघा ( सं० खो० )** पतङ्गविशेष, एक प्रकारका पतंग जो टिट्टीके समान होता है ।

**वात**—पञ्चाभ्रदेशके अन्तर्गुप्त एक पार्वतीय साम्रज्य-यह सिमला-शैलवासके पार्वतीय अवस्थित है या विभागके कमिश्नरको देख-रेखमें परि-

चालित होता है । भू-परिमाण ३६ वर्गमील है । इस राज्यमें लगभग १७८ गाँव लगते हैं । राज्यका मध्यस्थ अक्षा० ३०' ५५" उ० तथा देशा० ७७' ७' पू० तक विस्तृत है ।

यहांके मरदार राना दलीप सिंह ( १८८५ ई० ) राजवंशीय थे । १८५६ ई०में उनका जन्म हुआ था । वे अङ्गरेज-राजको वार्षिक दो हजार रुपये कर देते थे ; किन्तु कालका और सिमलाके मध्यवर्ती कसीली और सोलान सेनानिवासके लिये अङ्गरेज-गवर्नमेंलेटने उनसे लिया था जिसने करमें १३६) रुपये कम कर दिये गये हैं । वाघल-राज्यकी भांति यहांके सरदारगण भी अङ्गरेज-गवर्नमेंलेटके साथ सन्धिस्त्रमें आयद्ध हैं । वाघेज देवो ।

**वाघार ( वाघियाड़ )**—सिन्धुनदीकी एक शाखा । यह कराँची जिलेके ठाडा नगरके दक्षिणमें अक्षा० २४' ४०' उ० सिन्धुगावसे निकल कर समुद्रकी ओर बह गई है । १८वीं सदीमें यह नदी बहुत विस्तृत और वेगवती थी । लाहोरी बन्दरके सभी पण्यद्रव्य उस समय परिव्यालित हो कर समुद्रके किनारे लाये जाते थे । १८४० ई०में बालूका चर पड़ जानेसे सिन्धुकी गति बदल गई है तथा यह नदीदक्ष घेरे घेरे सूखता जा रहा है । इस नदीके मुहाने पर अवस्थित पिति, पितिपानो, जूना और रेडाल शालामें आज भी नाव द्वारा गमनागमन किया जाता है ।

**वाघेज**—राजपूत जातिकी एक शाखा । आदि शोलूको या चोलुष्य धेणोसे यह शाखा उत्पन्न हुई है । रंयापति मदा राज रघुराजसिंह-रचित भक्तमाल नामक ग्रन्थमें इस राजपूत-शाखाका संक्षिप्त इतिहास लिखा है—उमसे जाना जाता है, कि प्रसिद्ध साधु कबीर पश्चिम समुद्रमें रनान करते लिये गुजरात गये । इस समय चोलुष्य या सोलूकीदेव गुजरातके सिंहासन पर अभिष्टित थे । राजाके कोई सन्तान न थी । उन्होंने कबीरसे पुत्रके लिये प्रार्थना की । कबीरके आशीर्वादसे सोलूद्वाराजके दो पुत्र हुए जिनमेंसे एकका बाकार व्याघ्रके जैसा था । इस व्याघ्राकार पुत्रका नाम व्याघ्रदेव रखा गया । राजपुरोहितोंने उस दुर्लक्षण पुत्रकी समुद्रमें फेंक देनेकी सलाह दी । राजाने भी समुद्रमें फेंक देनेका हुक्म दे दिया । कबीरकी यह बात मालूम हो गई । उन्होंने कुमारकी लौटा लाने

कहा और इस कुमारके नामसे एक स्वतन्त्र दलकी उत्पत्ति होगी, यह भी कह दिया। देवविद्वम्बनासे व्याघ्र-देवके भी कोई पुत्र न हुआ। आखिर कबोरके अनुग्रहसे उनके एक पुत्रनं जन्म लिया। व्याघ्रदेवके नामानुसार ही उनकी वंश-परम्परा 'वधेल' या 'वाघेल' नामसे प्रसिद्ध हुई।

व्याघ्रदेवके पुत्रका नाम था जयसिंह। पितामहके आदेशसे वे अनेक सैन्य सामन्तकोंके साथ द्विग्विजयमें निकले। नर्मदाके किनारे आ कर उन्होंने गौडदेशको जीता। यहां सुन्धियाखेराकी वैशाराजपूत-कन्याके साथ उनका विवाह हुआ। उनके वंशधर करणसिंह और केशरीसिंह द्विग्विजयके उपलक्षमें नाना स्थानोंको जीत कर मुसलमान नवाबके अधिकारभुक्त गोरखपुर दखल कर बैठे। उन लोगोंके बाद मल्लारसिंह, सारङ्ग-देव और भीमलदेवने यथाक्रम राज्यभोग किया। भीमल-के पुत्र प्रहादेव गहरवाड़ राजपूतोंके साथ मिल गये। उनके परवर्ती प्रतापशाली उत्तराधिकारीका नाम वीर-सिंह था। प्रवाद है, कि उनके एक लाल घुड़सवार थे।

वीरसिंहने मुसलमानोंके हाथसे कुछ दिनोंके लिये प्रयाग तीर्थका उद्धार किया। यह संवाद पा कर बाद-शाहने दलबलके साथ चित्तकूटमें वीरसिंहका मुकाबला किया। बादशाहने उन्हें बुला कर कहा, 'मेरी प्रजाका शान्तिमङ्गल करनेमें क्या तुम्हें भय नहीं हुआ?' वीरसिंहने उत्तर दिया, 'क्षत्रियका अपना अधिकार जायज रखना कर्त्तव्य है। दुष्टका दमन वीर शिष्टका पालन क्षत्रियधर्म है।' बादशाहने उनकी योग्यता पर मुग्ध हो उनके पुत्र वीरमानुको 'राजा' की उपाधि दी। बादशाहके उत्साह-से वीरसिंहने १२ राज्योंको हराया और पीछे आप बन्धो-गढ़में जा कर रहने लगे। दक्षिणमें तमसा तक उसकी जयपताका उड़ती थी। उन्होंने अन्तिम कालमें पुत्रके हाथ राज्य भार सौंप प्रयागमें जौयन विसर्जन किया। वीरमानुने कच्छग्रह-राजकन्यासे विवाह किया। वीरक-में उन्हें रतनपुरना राज्य मिला था। प्रतन्तस्यविद्वु कनिं-हम साहबके मतानुसार ५८०से ६८३ संवत् तक वधेयोंने शोभ और तमसाकी उपत्यकामें अपना आधिपत्य फैलाया था। पीछे कलचूरी, चन्देल, चाहमान, सेहूर और आखिर गोहोंने उन स्थानों पर कब्जा किया।

फर्रुखावादके वधेलोंका कहना है, कि माधोगढ़में उन लोगोंके पूर्व-पुरुषोंका वास था। कनोज-पति जयचन्द्रके समय वे लोग इस देशमें आ कर बस गये। यहाँके वधेल-पति छत्रगालने तृटिशगवमेंएडके विरुद्ध बख धारण किया था, इस कारण वधेलराज्य जप्त कर लिया गया। उन लोगोंके बस जानेके कारण ही रेवाराज्य 'वधेल' या 'वधेलखण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यमुनाके दक्षिण वधेल राजपूत परिवार और गहरवाड़ राजपूतके घर अपनी कन्या देते तथा चेश, गीतम और गहरवाड़का कन्या लेते हैं।

इलाहाबाद मञ्जलके वधेल अत्यन्त अवाध्य और दुष्ट स्वभावके होते हैं। मीका पाने पर वे चोरा उड़ती करनेसे भी वाज नहीं भाते।

वधेलखण्ड—मध्यभारतके अन्तर्गत एक विस्तारण-भूखण्ड। वधेल जातिकी वासभूमि होनेके कारण इस विस्तृत भू-खण्डका वधेलखण्ड नाम पड़ा है। अंगरेजोंके जमानेमें यह सामन्तराज्ययुक्त वधेलखण्डपञ्जसो नामसे प्रसिद्ध हुआ। भारतराजप्रतिनिधि बड़े लाटके अधीनस्थ मध्य-भारतके एजेण्ट तथा रेवाराज्यके परिदृशक पालिटिकल एजेण्टरूपमें यहाँका शासन करते हैं। ये पालिटिकल एजेण्ट सतना या रेवानगरमें रहते हैं।

इसके उत्तर इलाहाबाद और मिर्जापुर जिला, पूर्वमें छोटानागपुरके अधीनस्थ सामन्तराज्य, दक्षिणमें मध्य-प्रदेशका विलासपुर और मण्डला जिला तथा पश्चिममें जञ्जलपुर और बुन्देलखण्डका सामन्तराज्य है। १८७१ ई० तक यह विभाग बुन्देलखण्ड एजेन्सोके अन्तर्भुक्त रहा। बुन्देला वीर वधेय जातिका कौर्त्तिनिष्ठतन होनेके कारण यह स्थान भौगोलिक और ऐतिहासिक संज्ञयमें एकता-पद था। पीछे बुन्देलोंका प्रभाव जाता रहा। तृटिश गवमेंएडने उन लोगोंमें फूट पैदा कर भविष्य शक्तिसंग्रह-

७ जित वधेल जातिके नाम पर यह देश प्रदेशका नाम पड़ा है, यह विश्वीदीय राजपूतोंको एक शाखा है। गुजरात प्रदेशके दक्षिण जा कर यह जाति बस गई है। सम्राट अकबर शाहकी इस वीर जाति पर विशेष कृपा रहती थी। वधेय देखो।

का पय रोकनेकी चेष्टा की। इसी उद्देशसे उसी साल यन्त्रेयराष्ट्र भूभाग ले कर स्वतन्त्र एजेन्सी प्रतिष्ठित हुई।  
सुन्दरनगपट और सुन्दरना देना।

इस स्थानका भूपरिमाण ११३२३ वर्गमील है। इसमें कुल ४ ग्रामर और ५८३२ ग्राम लगते हैं। रेवा, नगोद, सेदार, सोहाबल, कोठी, मिदपुरा और जांगोर राज्य ले कर यह एजेन्सी पनी है।

इन सब सामन्तराज्योंके मध्य फैसल रेवा राजाकी अङ्गरेजोंराजने सन्धिपत्र दिया है। यहांके सामन्त पण्यद्रव्य वाणिज्यके लिये किसी प्रकारका शुल्क नहीं लेते।

घट्ट ( स० पु० ) घट्टतीति घट्ट-अच् १-१ नदीवक, नदीका मोड़। ( ति० ) २ वक, झुका हुआ।

घट्टनाल ( स० पु० ) शरीरकी एक नाडीका नाम।

घट्टर ( स० पु० ) यह स्थान जहांसे नदी मुड़ी हो, नदीका मोड़।

घट्टसेन ( स० पु० ) अगस्तियूक्ष, वक वृक्ष।

घट्टा ( स० खी० ) घट्ट-टाप्। वल्गाप्रभाग, त्तरजामेकी धगली मेंड़ी।

घट्टाटक ( स० पु० ) एक पर्वतका नाम।

घट्टालकाचार्य—प्राचीन ज्योतिर्विद्भूमेद।

घट्टाला ( स० खी० ) घट्टालकी मानीन राजधानीका नाम जिसके कारण उस देशका बंगाल नाम पडा।

(राजतर० ३१५०)

घट्टिणी ( स० खी० ) कोल नामिका नामके क्षुपभेद।

घट्टिम ( स० खी० ) घट्ट-इमनिच्। ईप्य वक, फुछ टेड़ा या झुका हुआ।

घट्टिमचन्द्र चट्टोपाध्याय—बङ्गके प्रतिभाशाली अद्वितीय औपन्यासिक, चिन्ताशील कवि और एक प्रधान दार्शनिक। १८६८ ई०की २७वीं जूनकी निशाही, स्टेशनके पाश्चत्य कांटालपाड़ा ग्राममें साहिरयरकी घट्टिमचन्द्रने जन्म ग्रहण किया।

घट्टिमचन्द्रके पिता यादवचन्द्र लाष्ट हाडिब्रके समय डिपटी कालपटर थे। उनके नाम पुत्र थे, श्यामाचरण, स्वजीवचन्द्र, घट्टिमचन्द्र और पूर्णचन्द्र।

घणपनसे ही घट्टिमचन्द्रकी मेधा और प्रतिभाका परिचय पाया जाता है। पांच वर्षकी उम्रमें इन्हें एक ही दिनमें वर्षाज्ञान सम्पन्नरूपसे हो गया था। कांटालपाड़ाकी पाठशालामें इनकी प्रथम परीक्षा हुई। अब इनकी उमर आठ वर्षकी थी उस समय इनके पिता मेदिनीपुरके डिपटी कालपटर थे। वे घट्टिमचन्द्रको अपने साथ रखते थे। उन्होंने पुत्रकी मेदिनीपुरके अङ्गरेजी स्कूलमें भर्ती कर दिया। इस समय घट्टिमचन्द्रने अपनी बुद्धिमत्ता का जो परिचय दिया था वह असाधारण है। प्रति वर्ष दो बार करके उन्हें तरकी मिलती थी। मेदिनीपुर जिलेके कांथि महकूमके अन्तर्गत मनोरम नदीतटकी द्वयावली स्वच्छ, घिरलतक, सिकतामूमिकी निर्जन स्वभावसम्पत् घट्टिमचन्द्रके हृदयमें चिरविन अङ्कित थी। उनकी अपूर्व कपाल-कुण्डलाकी द्वयावलीमें उस आलेखकी छायाने स्पष्ट भावसे पतित हो उसे परम सुन्दर बना डाला है।

१८५१ ई०में यादवचन्द्रकी २४ परगनेमें बदली हुई। घट्टिमचन्द्रने इस समय हुगलीकालेजमें प्रवेश किया। कालेज भाँ उसकी गवेषणा और शिक्षाका परिचय पा कर अध्यापकगण विस्मित होते थे। घट्टिम केंपल पाठ्यपुस्तक पढ़ कर वृत्त नहीं होते थे, कालेजके पुस्तकालयमें जा करके अच्छी-अच्छी-किताब पढा करते थे। हुगलीकालेजसे इन्होंने सिनियर स्कालरशिप-परीक्षा प्रशंसाके साथ पास की थी। इस समय इन्होंने किसी अध्यापकके निकट चार वर्ष तक संस्कृत ग्रन्थ पढ़े। कालेजमें पढ़ने समय इनकी प्रशंसा सभी अध्यापकोंके मुखसे सुनी जाती थी। केंपल साहित्यमें ही नहीं, अङ्गुनायमें भी इनकी यथाधारण दक्षुत्पत्ति हो गई थी।

हुगली कालेजमें अध्ययन रीत कर वे कलाकले भाये और प्रेसिडेन्सी कालेजमें भाईरत पढ़ने लगे। इसी समय वर्षान्त १८५८ ई०में विश्वविद्यालयमें पढ़ते पढ़ल थी, ए, परीक्षा प्रचलित हुई। उस समय घट्टिमचन्द्रकी उमर २० वर्षकी थी। भाईरत पढ़ते पढ़ते ही इन्होंने बी, ए, परीक्षा दी तथा विदेश प्रशंसाके साथ उत्तीर्ण हुए। ये कलकत्ता विश्वविद्यालयके प्रथम वर्षके बी, ए, थे।

यो, ए, को उपाधि उस समय येमो अपूर्व सामग्री समझी जाती थी, कि वङ्किम बाबूको देखनेके लिये बहुत दूरके लोग जाते थे। वङ्किम बाबू शिक्षित-मण्डलीके मुखोच्चत्व "यो, ए, वङ्किम" कह कर तमाम परिचित हुए थे।

यो, ए, परीक्षा पास करनेके कुछ समय बाद ही छोटा लाट हँडिले साहबने इन्हे डिपटी मजिस्ट्रेट बना कर भेजा। इस कारण वे आईन परीक्षामें सम्मन न हो सके।

स्वदेशके प्रति इनका बराबर अनुराग रहता था। दूसरेकी वस्तुसे अपने घरकी वस्तु अच्छी होती है, इस बातका इन्होंने सबसे पहले शिक्षित-सम्प्रदायके बीच प्रचार किया। उद्य राजकार्यमें नियुक्त हो कर भी इन्होंने मातृभाषाकी सेवाको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य समझ रखा था।

वाचकालसे उनका वङ्कभाषाके प्रति अनुराग दिपाई देता था। वे ईश्वरगुप्तकी कवितामाला बड़े आनन्दके साथ पढ़ा करते थे। १३ वर्षकी उमरमें इन्होंने मानस और ललित नामक कविता लिखी। ईश्वरगुप्त उनकी कविता भुन कर बड़े प्रसन्न होते थे तथा प्रभाकरमें प्रकाश कर उन्हें उत्साहित करते थे। उस दिनसे वङ्किमचन्द्र ईश्वरगुप्तके शिष्य हुए।

१८६१ ई०में उनका प्रथम उपन्यास दुर्गेशनन्दिनी लिखा गया और दूसरे वर्ष प्रकाशित हुआ। यद्यपि अंगरेजी आदर्श पर उक्त उपन्यास रचा गया था, फिर भी इसी प्रथम उपन्यासे उन्होंने वङ्कभाषाके ऊपर असाधारण आधिपत्य और चरित्रचित्रणमें अपूर्व दक्षता दिखलाई है। उपन्यास लिप कर कित्तीके भाग्यमें ऐसी सफलता न मिली है। इसके पहले इन्होंने Indian field नामक पत्रिकामें 'राजमोहनकी स्त्री' Rajmohan's wife नामक एक उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। किन्तु उस पत्रिकाके बंद हो जानेसे इनका अंगरेजी उपन्यास भी असम्पूर्ण रह गया।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि अंगरेजी भाषामें वङ्किमचन्द्रकी असाधारण द्युत्पत्ति थी। स्टेट्समैन पत्रिकामें जैनरथ पत्नीम्यलोकके भूतपूर्व प्रिन्सिपल हेडि साहबके साथ जो लेखनो युद्ध चला था। उसमें इनका

अंगरेजी लेख पढ़ कर सभी विमुग्ध हो गये थे। यहाँ तक, कि इनके प्रतिद्वन्द्वी हेडि साहबने भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया था, 'इतने दिनोंके बाद वङ्कालमें मुझे एक उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वी मिला है।'

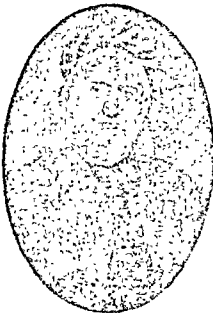
सरकारी नौकरीसे अलग होनेके कई वर्ष पहले वङ्किमचन्द्र वङ्काल-नगमेंएके सरकारी सिक्रेटरी हुए थे। किन्तु नाना कारणोंसे इन्हे पद परित्याग करना पड़ा था।

दुर्गेशनन्दिनीके प्रचारसे वङ्किमचन्द्रकी ख्याति चारों ओर फैल गई। पीछे १८६७ ई०में कपालकुण्डला और १८७० ई०में मृगालिनी प्रकाशित हुईं। १८७२ ई०में वङ्कदर्शनका प्रचार हुआ। वङ्कदर्शनके प्रकाशके साथ वङ्कदेशमें मानों युगान्तर उपस्थित हुआ। वङ्क्रीय लेखकोंको यद्यपि भी परिवर्तित हुई। शिक्षित वङ्कवासीके निकट वङ्कदर्शनका जैसा आदर हुआ था, वैसा आदर आज तक किसी सामयिक पत्रका नहीं हुआ है। वङ्कदर्शनके सम्पादक रूपमें वङ्किमचन्द्रने आज कलके श्रेष्ठ वस्तुसे लेखकोंकी ही लिपनेकी रीति सिखला दी थी तथा आपने भी अनेक प्रबन्ध और उपन्यास लिख कर साहित्यजगत्में एकाधिपत्य लाम किया था। जो वङ्कभाषाकी अपनी मातृभाषा स्वीकार करनेमें लज्जा बोध करते थे, अंगरेजीभाषामें लिखित प्रन्थ ही जिनका एकमात्र वेदस्वरूप था, विदेशीके अनुकरणको ही जो जीवनकी एकमात्र एतद्दुर्लभताका कारण समझते थे—उन परम उदत्त प्राणमानो नथ-वङ्कको वङ्किम बाबूने ही उपस्थित कर उनके घरणोंमें अर्घ्यप्रदान करनेके लिये वाध्य किया। तभीसे अंगरेजी शिक्षित युवक ही वङ्कभाषाके सेवकोंके नेता हो गये हैं। वङ्किम बाबूके इस कार्यसे मातृभाषाका तमाम प्रचार हुआ, इसी कारण वे 'वङ्कभाषाके सत्राट्ट' कहे जाते हैं। इन्होंने वङ्कदर्शनमें निम्नलिखित पुस्तक प्रकाशकें कीं—

१२७६ सालमें विप्लव और हन्दिया, १२८० सालमें धर्म शोष और युगलांगुतोय, १२८१ सालमें रजनी, १२८०-८१ और ८२ सालमें कमलाकान्तका इफतार, १२८४ सालमें कृष्णकान्तका विल, १२८६ सालमें राजसिंह, १२८७ और ८६ सालमें धानम्भड, १२८७ सालमें मुचीरामगुप्तक

जीवमचरित, १२८८ सालमें देवी चीघरानी। देवी चीघरानीका कुछ अंग वङ्गदेशमें निकल कर पाँछे यह पुस्तकाकारमें प्रकाशित हुआ। १२८४ सालमें वङ्गिम-चन्द्रने वङ्गदेशकी सम्पादना छोड़ दी। पाँछे उनके बड़े भाई सञ्जीवचन्द्र सम्पादक हुए। सञ्जीवचन्द्रको मृत्युके बाद वङ्गदेशका निकलना बंद हो गया।

कुछ वर्षों बाद साधारण-सम्पादक औद्युक्त अक्षय-चन्द्र सरकार महानायकी चेष्टासे नवजीवन प्रकाशित हुआ। नवजीवनके साथ वङ्गिमचन्द्रने मानो नवजीवन प्राप्त किया। खानन्दमठके शेषमें तथा देवी चीघरानीमें इन्होंने जिस ज्ञान और कार्ययोगका सूत्रपात किया, सोताराममें उसका परिणति है।



वङ्गिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ।

वङ्गके अखिल गौरवरिय सोतारामका प्रथम आलेख्य इनकी सुलिकालसे कुछ निम्नरूपमें चित्रित होने पर भी उनके जीवनमें जो सत्यासिद्धी महापुरुषका प्रमाण विस्तृत हुआ था, सोताराममें वङ्गिमचन्द्रने यही चित्र दिगानेकी चेष्टा की थी। उस समय वङ्गिमचन्द्रके जमाई रघोबचन्द्र धर्मोपाध्यायने 'प्रचार' नामक एक मासिक पत्र निकाला। यह मासिकपत्र वङ्गिम वायूके पत्रमार्गसे हो निकाला गया था, इसमें सन्देश नहीं। प्रचारमें एतन्-चरित और सोताराम तथा नवजीवनमें धर्मोपनिषद् प्रकाश कर

उन्होंने अपने नवजीवनका प्रथम लक्ष्य लोगोंको ज्ञान दिया था।

डिपटी-कार्यमें वृत्ति-गर्गमेंएलके निरुद्ध इनकी धृष्टी क्याति थी। उपयुक्त समयमें इन्हें पेन्शन मिला। वृत्ति-गर्गमेंएलके इनकी कार्यक्षमतासे संतुष्ट हो इन्हें रायबहादुर और स्ती, भार्ग, ई, की उपाधि दी। पेन्शनके बाद इनका अधिकांश समय साहित्यसेवा, धर्मोपनिषद् और ज्योतिःशास्त्रकी आलोचनामें व्यतीत होता था।

इनके एक भो पुत्र न था। फेबल दो कन्याएँ थीं। पेन्शन पानेके बाद इनके शरीरमें भी निश्चिन्ता आ गई। बाँधिर १३०० सालको २६वीं चैत्र अपराह्नकालके ३ बज कर २३ मिनटमें बहुमूलजनित उबर तथा मूल-नालीके विरुद्ध रोगसे वङ्गके साहित्यरूपी महामति वङ्गिमचन्द्र परलोककी सिंधारे। उनकी मृत्युसे वङ्ग-साहित्यको जो क्षति हुई है, उसकी फिर पूर्ति होनेकी गहरी।

उस समय वङ्गालके अधिकांश सामयिक और स्वायत्तके सम्पादकने दुःख प्रकट करते हुए कहा था, कि वङ्गिम वायूकी मृत्युसे वङ्गालका साहित्यराज्य राज-हीन हो गया। वङ्गालीके हृदय-गठनोंमें वङ्गिमचन्द्रकी हृदयप्रतिभा विशेष कार्यकारी हुई थी। जातीय जीवनकी सम्पत् परिणतिके समय अथर सुसम्पत् जातिके मध्य भी शायद ऐसी मदीयस्ती प्रतिभाका परिचय मिलता हो। वङ्गिम वायू स्वर्गतोमुगी प्रतिभाके असाधारण हृद्यन्त हैं। इतिहास, गणित, साहित्य आदि विषयोंमें हो ये सर्वोपेक्ष थे। इनकी प्रवृत्ति का प्रधान लक्षण स्वातंत्र्य था। वंगालमें ऐसे जीवनका निताम्ल असंज्ञाय था। क्या स्वदेशी क्या विदेशी सर्वोके निरुद्ध थे समान स्याचीन चिन्तका परिचय दे गये हैं। स्वतंत्रता या जातीयता घोषे किना बंगाली किम तरह अङ्गरेजों निष्ठासे उपकार उठा सकने हैं, वङ्गिमचन्द्र उनके आदर्श थे। बंगालियोंका निताम्ल दुर्भाग्य हुआ, कि उनके धर्म और सामाजिक मंत्र अंग बंगमें फेलनेके पड़िले हो थे परलोक सिंधारे। उनका धर्मोपनिषद् उनके धर्मोपनिषद् अनुपनिषद्नामाल थी। उनका धर्मोपनिषद् गीताके समाग था। निरुद्ध भक्ति का सहल शक्ति अनन्त्यांशो ईश्वरपुत्रिता उनके प्रचारित

धर्मानुशीलनका मुख्य साधन था। भारतकी भावी आशासे उल्लुह ही उन्हींने जो "वन्दे मातरम्" गाया था। उनके तिरोभावके वारह वर्ष बाद आज वह भारतवासियोंके जातीय संगीतरूपमें फोटि कोटिकण्डसे पुकाराजाता है।

वङ्गमाताकी मूर्ति वङ्गिकके हृदय-पट पर सदा विराजमान रहती थी, इसका आभास "कमलाकान्तेर द्पतर" "आमार दुर्गोत्सव" प्रबन्धसे सूचित होता है। वङ्गिक बाबू वंगालकी दीन हीन नहीं समझते थे,— उनके "वन्दे मातरम्" जातीय हीनतासूचक कातरिकि नहीं है, उसमें सुदूर जातीय-गौरवकी स्मृतियों शक्तिहीन निस्पृष्ट स्पर्दा नहीं—उसमें वङ्गिक बाबूने वङ्गमात'की भगवतीकी तरह महोयसी शक्तिशालिनी-स्वरूपमें कल्पना की है,—इस हिसाबसे 'वन्दे मातरम्' गान जातीय सङ्गीतोंके मध्य स्वतन्त्र प्रतिष्ठा पाने योग्य है। वङ्गाली जातिके अन्त्यरत जो महाशक्ति लिपी थी, 'वन्दे मातरम्' गानसे वङ्गिक बाबूने ही उसका आधिपकार किया।

वङ्गिक बाबू स्वयं अपना एक 'भ्रात्मचरित' लिख गये हैं। उनकी मृत्युके वारह वर्षके भीतर उनकी जीवनी प्रकाशित न हो, अपने आत्मोय स्वजन तथा वङ्गाली मानसे वे प्रार्थना कर गये थे। 'वन्दे मातरम्' गानने भारत-वर्षके कोटिकण्डसे नयनल सञ्जय कर वङ्गिक बाबूके जातीय अनुरागकी समुच्चयल कर दिखाया। यदि उनका जीवनचरित प्रकाशित हुआ होता, तो उनकी एक प्रधान कीर्त्तिका हाल प्रकाशित रह जाता।

वङ्गिकदास कविराज—'दीव्योद्धारणो' नामक किराताञ्जु-नीयकाव्यकी टीकाके रचयिता।

वङ्गल (सं० पु०) वङ्गति इति वङ्ग-इलच्। कण्ठक, काँटा। वङ्गु (सं० लि०) १ वक्रगामी। २ वक्रगमनशील।

वङ्गु—प्राचीन एक नदी। (भारत समावर्ष) बंधू देवो। वङ्गु (सं० लि०) वक्ष-पवत्। (वर्ण्येर्त्तौ। पा०१।१।६३) इति ऋग्वेदके कुत्वम् च। वक्, टेट्।

वङ्गिकि (सं० पु० ह्रो०) वङ्गने इति। वकि कीटिक्ये (वक्रपादवध। उप् ५।६६) इति किञ् प्रत्ययेन निपातयेत्।

१. वायविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका राजा। २. कड़ी, काँटो। ३. पादवोरिय, पशुधोकी पसलीकी हड्डी।

वङ्गधन (सं० पु०) वङ्गति संहती भयतीति वङ्ग-स्युः शृणोद्रादित्वाच् तुम्। सूत्रादाय और जंघास्थलका सन्धि-स्थान, वह स्थान जो पैरू और जांघके बीचमें है और जहाँ 'वधर्म' नामक रोगका गांठ निकला करती है।

वङ्गक्षु (सं० लो०) वङ्गतीति वह-वाङ्गलकाच् कुन्, तुम् च। भाष्यसप्त नदी। यह हिन्दुकुश पर्वतसे निकल कर मध्य एशियामें बहती हुई आरल समुद्रमें गिरती है। इस नदीका नाम वेदोंमें कई जगह आया है। पुराणोंमें यह केतुमाल वर्षाकी एक नदी कही गई है।

महाभारतीय युगमें इस पुण्यतोया नदीकी गणना पवित्र नदियोंकी गई थी।

'गोदावरी च वेपवा च कृष्णवेष्णा तथा दिवा।

द्रवती च कावेरी पट्टूर्मन्दाकिनी तथा ॥"

(महाभारत १३।१६।५।२२)

रघुवंशकी प्राचीन प्रतिषोंमें भी रघुके दिग्विजयके अन्तर्गत इस नदीका उल्लेख है और इसके किनारे द्वीपोंकी वस्ती कही गई है।

वङ्ग (सं० ह्रो०) वङ्गनीति वगि-गती भच्। १ घातु विशेष, रांगा नामकी घातु। पवाव—लघु, क्षणज्ञ, नाग-जांघन, मृदङ्ग, रङ्ग, गुरुपत, पिच्छट, चक्रसंघ, नागज, तमर, कस्तूर, आलीनक, सिंहल, स्ववेत, नाग।

भाग्यप्रकाशमें लिखा है, कि खुरक और मिथक मेदसे वङ्ग दो प्रकारका है। मिथकसे खुरक वङ्ग उत्तम होता है। इसका गुण लघु और सारक तथा प्रमेह, कफ, दृमि, पाण्डु और श्वासरोगनाशक माना गया है। यह शरीरका सुखदायक, इन्द्रियोंके प्रचलता-सम्पादक और मानवदेहका पुष्टिसाधक है।

रसेन्द्रसारसंप्रदहमें वङ्ग (रांगा)-की विभिन्न शोधन-प्रणाली लिखी है। चूनेके पानीमें चार दण्ड तक खेद देनेसे वङ्ग विशुद्ध होता है। पोछे हस्तालको आकके दूधमें खूब मल कर वह लेट पदार्थ वङ्गके पत्तमें लेप दे कर पोपलकी छाल आगमें सात बार पुट दे अथवा विशुद्ध वङ्गमें परले हृदिचूर्ण, दूसरेमें जवायन, तीसरेमें जोर, चौथेमें इमलीकी छालकी चूर्ण और पांचवेंमें पोपलकी छालका चूर्ण दे कर यथाविधान पाक करनेसे वङ्गका भस्म तैयार होता है। (रसेन्द्रसारसंप्रद)



विशुद्ध यज्ञको दूसरी दृष्टिमें गला कर उसीके परि-  
माणमें अथामार्गमन्त्रपूर्ण उसमें मिला कर शूलमें  
अच्छी तरह घोंटना होगा। पीछे राय फेंक कर जराब  
पुदमें मंत्र हांच देने पर यज्ञमन्त्र होता है।

यज्ञमन्त्रका गुण—तिर, भ्रू, यज्ञ, यातयज्ञ, क, मेद,  
इत्येव, कृमि और मेदरोगनाशक।

अविशुद्ध यज्ञका गुण—निक, मधुर, मेदुर, पाण्डु,  
कृमि और यातनाशक, घोड़ा पिच्छर और लेजनीप-  
योगी।

२ सोसक, सोसा। सोसक और यज्ञ प्रायः एक ही  
समान होता है। यथास्थान इसका धैराणिक संयोग और  
गुणायली लिखी गई है। ययु, रत्न और शीतक देखो।

३ कार्पास, कपास। ४ घर्ताकु, धैंगन।

यज्ञ ( सं० पु० ) मगध या विहारके पूर्व पड़नेवाला प्रदेश,  
यंगाल। ऋग्वेदमें सबसे पूर्व पड़नेवाले जिस प्रदेशका  
उल्लेख है, वह 'कोकट' (मगध) है। अथर्व संहितामें  
'घङ्ग' देगका भी नाम मिलता है। संहिताओंमें 'यज्ञ'  
नाम नहीं मिलता। ऐतरेय धारण्यकमें ही सबसे पहले  
यज्ञ देगकी चर्चा आई है और यहांके निवासियोंकी दुर्घ-  
लता और दुरादार आदिको उल्लेख पाया जाता है। यात  
यह है, कि संहिताकालमें कोकट और यज्ञ देगमें अनायों-  
का ही निवास था। आर्यलोग यहां तक न पहुंचे थे।  
बौधायन-धर्मसूत्रमें लिखा है, कि यज्ञ, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि  
देशोंमें जानेवालेकी लौटने पर पुनस्तोम यज्ञ करना  
प्राप्तिये। मनुस्मृतिमें तोयथाताके लिये जानेकी आज्ञा  
है। इससे जान पड़ता है, कि उस समय आर्य यहां बस  
गये थे। शतपथ ब्राह्मणके समयमें मिथिलामें विदेह बंश  
प्रतिष्ठित था। रामायणमें मागध्यातिपुर (रंगपुरसे ले  
कर आसाम तक प्रागज्योतिष प्रदेश कहलाता था) की  
स्थापनाका उल्लेख है।

इस प्रायश्च यज्ञकी स्तोत्रा कहाँ तक फैली थी, इसके  
जाननेका कोई उपाय नहीं है। अपेक्षित परवर्तीकालमें  
यज्ञकी स्तोत्रा स्तोत्रा निर्दिष्ट हुई थी, यह मोचे जिधे  
श्लोकमें दिया जाता है।

“एतान्तरं समारभ्य मस्यपुत्रत्वम्” इति।

बहुरीतो मया श्लोकः सर्वमिदमस्मिन्महा।”

( कलिङ्गमन्त्र ) विशुद्ध विररघ बहुरीते देतो।

यज्ञ ( सं० पु० ) यज्ञयंगीय बलि राजाके पुत्र। (गङ्गुजय-  
१५४ ग०) महाभारतमें लिखा है, कि राजा बलिकी कोई  
सन्तति न हुई। तब उन्होंने अग्नि शीघ्रनमा अग्नि द्वारा  
अपनी राजकी गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न कराये। इन  
पुत्रोंके नाम हुए—भद्र, यज्ञ, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुय।  
इन्हींके नाम पर देशोंके नाम पड़े।

“ततः प्रकथयामास पुनस्तृपथिमन्त्रम्।

यज्ञि मुदेष्वा भाषां ह्यं तस्मै तां प्राहिषोत् पुना।

तां व दीर्घतमाग्नेषु स्पृष्ट्वा देवीमयामनीत्।

भविष्यन्ति कुमारस्ते तेजसादित्यवर्षभः ॥

भद्रो यज्ञः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुभ्रम वे सुगाः।

तेषां देवाः समारभताः एतानामप्रिता भुवि ॥

अन्नस्थाहो भवेद्देशो बहो यद्रस्य च स्मृतं।

कलिङ्गविषयश्चैव कलिङ्गस्य च य एतुतः ॥

पुण्ड्रस्य पुण्ड्रः प्रपताता सुहा सुभ्रस्य च स्मृताः।

एवं बलेः पुत्र यतः प्रथमो ये महिषिः ॥”

(भारत १।१०४।१००-११) बहुरीते ऋग्वेदमें पुरातन देतो।

यज्ञ ( सं० स्त्री० ) यज्ञाय पातुविशेषाय जायते इति जन-  
उ। १ सिन्दूर। २ पिच्छल, पीतल। ( ति० ) ३ यज्ञ-  
देग जात। ४ यज्ञ देगवासी वायस्य, वैद्य आदि जाति-  
का एक श्रेणीविभाग। ये दक्षिण-राष्ट्रीय श्रेणीकी  
अन्यतम शाखा कह कर परिचित है। यह जाया यज्ञ देग-  
के पूर्याञ्चलमें जा कर बस गई है इसलिये यज्ञ कह-  
लाती है।

यज्ञजीवन ( सं० स्त्री० ) रीण, चांदी।

यज्ञदेग—संगमप्रसिद्ध भारताय देगभाग। यह भाग  
भारतवर्षके उत्तर-पूर्व हिमालय पहाड़की जड़से ले कर  
दक्षिण समुद्रतक फैला हुआ है। भारतका यह भाग  
पंगभूमि, यंगराज्य, यंगला तथा यंगालाके नामसे प्रसिद्ध  
था। भारतवर्षके पूर्वोत्तर प्रायश्चर्त्तों पूर्यतोया गंगानदी-  
प्रवाहित देगके कुछ अंग ले कर यह राज्य संगठित है।  
बहुत प्राचीन कालमें ही यहांके लोगोंका कानिश्य कार्य-  
क्रम बरद तथा शोभराज्यके साथ घट रहा था। उस  
समय भी इन देगके रहनेवालोंकी आनयता तथा शुद्धि-  
मन्त्राने संसार भरके सभी देग परिचित थे। इन स्त्री-  
की जिन्नादि तथा दूसरी दूसरी कथाविद्याका प्रसार-

प्रभाव चारों ओर फैल गया था। विदेशी व्यापारी लोग समुद्रकी राहसे आ कर यहाँके सुवर्ण-प्रामादि वन्दरोंसे इस देशकी पैदा होनेवाली अनेक चीजें ले जाया करते थे। उस समयसे ही बंगालका गौरव दिग्-दिग्गन्तमें व्याप्त हो गया। तभीसे बंगालके दक्षिण प्रान्त मिथत समुद्रभाग दिग्गे नामानुसार बंगोपसागर तथा बङ्गवासी भी बंगालीके नामसे विदित हुए थे। भारतकी दूसरी दूसरी जातियोंकी अपेक्षा बंगाली जातिके विद्या गीतवने बंगालकी स्वतन्त्र मर्यादा तथा समादर प्रदान किया है।

नामनिरुक्ति ।

यह विद्याल बंगालराज्य महाभारतके सप्तममें किन्नर कह सोमावध भा, इसका कोई ठीक पता नहीं है। उस समय बंगराज्य, अंगराज्यके पार्श्ववर्ती देशके नामसे पुराता ज्ञाता था। उसके बाद जब बंगालियोंने धानमार्गमें उन्नति करके तान्त्रिक आलोक प्राप्त किया, उस समय उन्होंने तन्त्रका महिमाविस्तार तथा प्रभाव-प्रचारके साथ ही बंगालकी दीर्घता तथा विस्तारकी कल्पना कर लिया।

'तयकत इ-नासिरी' नामक मुसलमानों इतिहासके पढ़नेसे हम लोगोंको पता चलता है, कि बंगालके खेन बंगोय अन्तिम राजा महाराज लक्ष्मणसेनको हरा कर महम्मद-ई-बघितवारने बंगालको विजय किया था। उसके आगमनसे लक्ष्मणावती, विहार, बंगाल तथा कामरूप आदि देश बहुत भयभीत हुए थे। मार्कोपोलो (१२२८ ई०) लिखते हैं, कि १२१० ई० पर्यन्त बंगाल विजय नहीं हुआ। बंगाल उक्त चारों देशोंके दक्षिण भागमें अवस्थित था। उक्त दोनों विचरणों पढ़नेमें ज्ञाना जाता है, कि मुसलमानोंके संग्रामके पूर्व-बंगाल चार खंडोंमें विभक्त था। मार्कोपोलोने उसके ही दक्षिणी भागकी बंगालके नामसे उल्लेख किया है। रसोदुद्दिनका कहना है, कि लगभग १३०० ई०में बंगाल दिल्लीशहरके अधीन हुआ। १३४५ ई० में 'इबन बतुता'ने बंगालराज्य तथा यहाँके धानकी प्रशुताका उल्लेख किया है। ये लिखते हैं, कि गोरखान-वासी इस प्रदेशको नाना प्रकारके उच्छृंखल पदार्थोंसे परिपूर्ण नगर करते-थे। सुप्रसिद्ध कवि हाफिजकी

( १३५० ई० ) कविताओंमें बंगालका उल्लेख पाया जाता है। भास्की दो-गामाने ( १४६८ ई० ) बंगालमें मुसलमानोंकी प्रधानता तथा यहाँके सूती तथा रेशमी वस्त्र, चांदी प्रभृति वाणिज्य-पदार्थोंका उल्लेख किया है। ये लिखते हैं, कि अनुकूल हवा वहनेसे ४० दिनमें कालिकटसे बंगाल आ सकते हैं। इसके अलावा १५०५ ई०में लिखनाहैं, १५१० ई०में वार्थेमा तथा १५१५ ई०में वार्थेसा बंगाल-राज्य तथा यहाँके रहनेवालोंके व्यापारका विचरण निरूपित कर गये हैं। अबुलकृजल-कृत 'आईन-ई-अकबरी' नामक मुसलमानों इतिहासमें बङ्गाल शब्दकी एक व्युत्पत्ति दी गई है। उन्होंने लिखा है, कि प्राचीन कालमें यह देश बंग नामसे उल्लिखित होता था। बंगके पूर्वतन हिन्दू राजे पर्यत-पादमूलस्थ निम्नभूमिमें मिट्टीके बाँध बाधया आल दिया करते थे। बंगालके अनेकों स्थानमें उक्त राजाओंसे निर्मित इस तरहके खंडों अल विद्यमान देख कर आलयुक्त बंगका नामकरण बंगाल हुआ है। सध्राट् खीरजूजेव बंगालकी समृद्धि देख कर अभिमान सहित कह गये हैं, कि यह स्थान सभी जातियोंके लिये सर्गके समान है। १५६० ई०में वमिण्डन लिखते हैं, कि बंगाल-राज्य अराकानके उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। चट्टग्राम बंगालके दक्षिण-पूर्व सीमांत पर विद्यमान है।

बंग नामकी उत्पत्ति एवं इस राज्यका स्थिति तथा प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें प्राचीन ग्रन्थोंके जैसा विचरण पाया जाता है, यह पुरातत्त्व प्रसंगमें लिखा जा चुका है। लुई वार्थेमा एवं अररापर पुस्तुगोत्र भ्रमणकारियोंने चट्टग्रामके निरूढवाले बंगाला नामक एक नगरका उल्लेख किया है। प्राचीन मानचित्रमें उस नगरका स्थान निर्दिष्ट किया हुआ है। बहुत सम्भव है, कि वार्थेमाने बंगालमें पदार्पण नहीं किया। ये मलयारके उपकूलमें ही उदर कर अरबी बणिरीके पथानुवर्ती ही कर इस देशके नामानुसार बंगालके प्रधान नगरका नाम बंगाला लिप गये हैं, परन्तु इस बंगाल नगरका कोई निदर्शन विद्यमान नहीं है। जान पड़ता है, कि पुस्तुगोत्रोंने बंगालके प्रधान बन्दर चट्टग्राम आ कर उसके दक्षिण उपकूलपरिचित पक गल्लग्रामकी बंगालियोंकी वासभूमि समझ कर वहाँ तक ही बंगाल नगर बतलाया है।

• श्रीम तधा रिमाम इत्यादि ।

प्रत्युक्त तथा गंगा नदीके डेल्टाओं पर्यं उनके अघ-  
पादिका प्रदेशको विस्तारन उपत्यका भूमिको ले कर बहनुतः  
पर्यमान बंगाल संगठित है । १८५४ ई०में बासाम  
विभागको बंगालका अंगच्युत करके स्वतन्त्र शासना  
धीन किया गया । उस समयसे ही चास-बंगाल, बिहार,  
उड़ीसा तथा छोटा नागपुर विभागको एकत्र करके अंग्रे-  
शाधिपुत्र बंगालको सीमा निर्दिष्ट की गई थी । उसके  
बाद १९०५ ई०को १६वीं अक्टूबरको पूर्वा बंगालको  
बासाममें मिला कर एक दूसरे छोटे लाटके अधीन 'पूर्व-  
बंगाल तथा बासाम' प्रदेश स्वतन्त्र संगठित किया गया ।  
१९१२ ई०से बिहार और उड़ीसा बंगालसे अलग कर  
दिया गया और पूर्व-बंगाल प्रदेसमें मिला लिया गया  
है । यह अक्षा० २१' २०" से ले कर २७' १२' ४४" उ०  
तथा देशा० ८६' ५७' ४५" से ले कर ९२' ४६' ५०" तक  
विस्तृत है । भूविस्तीर्ण ८०००० वर्गमील है ।

इसकी उत्तरी सीमा पर नेपाल तथा भोटाल राज्य ;  
पूर्वमें बासाम, दक्षिणमें बंगोपसागर, पश्चिममें बिहार,  
उड़ीसा और छोटा नागपुर हैं । बंगाल छोटा लाट  
(Governor)-के शासनाधीन है ।

मुसलमान लोग बंग-विजय करके गंगाके डेल्टाओंको  
ही संस्कृत नामानुसार बंग कहा करते थे । किन्तु किसी  
मुसलमान ऐतिहासिकने राजधानी लक्ष्मणवासीके  
नामानुसार इस प्रदेशको भी लक्ष्मणवासीके नामसे  
कहना किया है । गौड़ तथा लक्ष्मणवासीके अर्थसे बाद  
शिव राजवंश राज्याट हाका तथा तदनुगामी प्रधानातिथि  
हुआ, उस समय ही शिव बंग बंगालके नाममें ही  
परिचित होना था । इसके बाद मुसलमानोंने पूर्वमें  
अहमद नदर फर्दाल अधिभार करके बंगालको सीमा  
निर्दिष्ट की । दिल्लीके अयोध्या अहमद शासनकर्ताओं  
तथा उनके बादके अयोध्या अहमद राजाओंके राज्य  
है ही जाने कर सुयस-सकार अहमद नदीके सुविशेष  
सेनापति अयोध्याके बंगालकी सुयस सार्वभौमिक विधा  
किया । राजा लक्ष्मणवासीके राज्याटके बाद राजा  
की सुविशेषके लिये बंगाल, बिहार तथा उड़ीसाको  
मिला कर एक बंगाल संगठित किया गया था । उसी  
समये शिव, अहमद तथा अहमद अहमद विभाग

निर्दिष्ट किये गये थे । इस समये बंगालका शासन  
करने के लिये दिल्लीअधरके अधीन एक शासनकर्ता नवाब  
बंगालमें रहते थे । ये शेषोक्त नवाब पंग्रपत्तयामने ही  
मुर्शिदाबादके नवाबके नामसे परिचित थे । निम्न एक  
नवाबसे ऐसे विस्तृत तथा महासमृद्धिदात्री देशका  
राजकर बसूल होनेकी सुविधा न देना कर उनके अधीन  
बिहार, उड़ीसा तथा टाजाममें एक एक नायब-नामिभ  
( Deputy Governor ) रहनेकी व्यवस्था की गई थी ।

अंगरेजाधिकारमें बंगालका सप्रियेय होनेसे प्रकृत  
बंग नामका अनेक विपर्यय साधित हुआ है ।  
उड़ीसाके उपकूलस्थित पालेभरसे ले कर बिहारके  
मध्यवर्ती पटना पर्यन्त स्थानों पर ईष्ट-एस्टिया  
कम्पनीकी जितनी कौठियां थीं, वे उक्त कम्पनीके एषर  
( Bengal Establishment )-के नामसे परिचित हैं ।  
फ्रान्सिस फार्णोउजेने चट्टमागके पूर्व बहुत दूरसे ले कर  
उड़ीसाके अन्तर्गत पालिा पक्षट ( Palmyra Point )  
पर्यन्त विस्तृत उपकूल तथा बंगालप्रवादित भूमिभाग से  
कर बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की थी । फार्नेसि ( Par-  
chan )-के मतसे यह उपकूलभाग प्रायः ५०० मील है ।

पूर्व विवरण पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह  
जाना जाता है, कि बंगालको सीमा किसी समय भी  
निश्चर नहीं थी । पार्श्ववर्ती राजाओंके आक्रमणकी समय  
समय पर इनका अंगच्युत हुआ करता था । बंगालके  
अन्तिम मुसलमान नवाब शिराजुद्दौलाके बंग-शिहासनेमें  
च्युत होने पर तथा बंगालकी दिल्लीअधर कर्णु कर्णुनामी  
बहूदेवके हाथमें समर्पित होने पर भी आराकान तथा  
मल्ल-वासिथीने बंगालका सीमान्तप्रदेश आलोडित कर  
छाड़ा था । सिवाह-विद्रोहके बाद ईष्ट-एस्टिया कम्पनीका  
शासन आरम्भ होने पर मद्रासकी विपरीतदिग्गमे हमका  
शासन-आरम्भ होनेके हाथमें ले लिया था । उस समय  
अहमद सुयसकोट तथा सहर दीवानो आराकान हटा  
कर अहमद अहमद नदीके अयोध्या विधा । बहूदेव-  
अहमदविद्रोहके लिये बहूदेवके साथ बंगालकी शासन  
अहमद करके अहमद । १८०० ई०में मद्रासकी शासन  
अहमदके एक कर अहमदिक होने पर अहमद अहमद  
दिल्लीका अहमद अहमद ही अहमद । अहमद अहमद अहमद

पुर-युद्धावसानमें बंगालकी सीमा परिवर्द्धित हुई। अंगरेज-गवर्नमेंण्टने बंगालको प्रेसिडेन्सीभुक्त कर लिया।

अंगरेजाधिकृत यह बंगाल राज्य क्रमसे एक प्रेसिडेन्सीके रूपमें विभक्त हो गया। सिर्फ गंगा तथा ब्रह्मपुत्र प्रवाहित समस्त अववाहिका प्रदेश ही नहीं, बल्कि सिन्धुनदीके समग्र अववाहिका प्रदेश तथा उसके हिमालय पृष्ठस्थ शाखा-प्रशाखा-व्याप्त स्थानोंको भी ले कर यह विभाग संगठित हुआ। तात्पर्य यह, कि विन्ध्यपर्वत मालाके उत्तर दिग्दर्शी प्रायः समग्र आर्यावर्ष भूमि बंगाल प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भुक्त हुई थी। बंगाल प्रेसिडेन्सीके इस विभागके सम्बन्धमें अब केवल कहानो ही शेष है। जिन पांच सुबुद्ध प्रदेशोंको ले कर 'बंगाल-प्रेसिडेन्सी' संगठित हुई थी, वे पांचों प्रदेश क्रमशः निर्दिष्ट विभिन्न शासनकर्त्ताके अधीन हुए; किन्तु सर्वोंके ऊपर भारत-राज-प्रतिनिधि कर्त्तृत्व कर दिये गये। बंगाल प्रेसिडेन्सी इस ऐतिहासिक विभाग संगठित होनेके बहुत पीछे अर्थात् १८५१ ई०में मध्यप्रदेशमें एक स्वतन्त्र शासन-विभाग गठित हुआ था। किन्तु जो बंगाल बंगवासियोंकी जन्मभूमि है, जो गंगा तथा ब्रह्मपुत्रकी उपत्यका ले कर प्रधानतः गठित है, वही अंगरेज राजकीय दृष्टिकोणमें निम्न बंग (Lower Bengal) के नामसे वर्णित है।

बङ्गदेशका विभाग और जिला।

शासनकार्य चलानेके लिये बंगदेश पांच विभागों (Division) में विभक्त है; फिर विभाग जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेका शासन-भार वहाँके कलकूट-मजिस्ट्रेटके ऊपर अर्पित है। उन कलकूटोंके कार्याकी देय रेख करनेके लिये प्रत्येक विभागमें एक एक कमिश्नर नियुक्त हैं। नीचे बंगदेशके विभागों, जिलों और सदरों (Head quarters) के नाम दिये जाते हैं।

१ प्रेसिडेन्सी-विभाग—

जिला	सदर
(१) कलकत्ता	कलकत्ता
(२) चौबीस परगना	अलीपुर
(३) खुलना	खुलना

जिला	सदर
(४) नदीया	कुष्मनगर
(५) जशोर	जशोर
(६) मुर्शिदाबाद	पहरमपुर
२—बङ्ग मान विभाग—	
(१) चर्द्धमान	चर्द्धमान
(२) बांकुड़ा	बांकुड़ा
(३) बोरभूम	मिचड़ी
(४) मेदिनीपुर	मेदिनीपुर
(५) हुगली	हुगली
(६) हवड़ा	हवड़ा

३—राजसाही-विभाग—

(१) राजसाही	रामपुर-बोभालिया
(२) बोगड़ा	बोगड़ा
(३) पयना	पयना
(४) मालदह	अंगरेज-बाजार
(५) रंगपुर	रंगपुर
(६) दिनाजपुर	दिनाजपुर
(७) जलपाईगोड़ी	जलपाईगोड़ी
(८) दार्जिलिङ्ग	दार्जिलिङ्ग

४—ढाका-विभाग—

(१) ढाका	ढाका
(२) फरोदपुर	फरोदपुर
(३) धाकरगंज	धारिस्थाल
(४) मैमनसिंह	मैमनसिंह

५—चट्टग्राम-विभाग—

(१) चट्टग्राम	चट्टग्राम
(२) पार्श्व चट्टग्राम	रंगमाटी
(३) नवाखाली	सुखाराम
(४) तिलुटा	कोमिह्ला

प्राकृतिक दृश्य।

बंगालप्रदेशके प्राकृतिक सौन्दर्यका विशेष कोई अस्झाव नहीं हुआ है। दक्षिणमें तरंगसंकुल बंगोपसागर उत्तल ऊर्मिमालासे सागरसैकतकी विधीत कर रहा है। उत्तरमें हिमाचलशिखर क्रमोच्च शृंगमालासे समारोहित हो कर मानो एक अभि-

सीमा तथा विभाग इत्यादि ।

प्रकल्प तथा बंगाल नदीके डेल्टाओं एवं उनके सव-  
पाटिका प्रदेशकी नियत उपत्यका भूमिको छे कर वस्तुतः  
यत्तमान बंगाल संगठित है । १८५४ ईमें आसाम  
विभागकी बंगालका अंगच्युत करके स्वतन्त्र प्रान्ता-  
धीन किया गया । उस समयसे ही चाम-बंगाल, बिहार,  
उड़ीसा तथा छोटानागपुर विभागकी एकत्र करके अंग्रे-  
जाधिष्ठ बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की गई थी । उसके  
बाद १८६५ ईकी १६वीं अक्टूबरकी पूर्वा बंगालकी  
आमाममें मिला कर एक दूसरे छोटे लाटके अर्धोन 'पूर्व-  
बंगाल तथा आसाम' प्रदेश स्वतन्त्र संगठित किया गया ।  
१६१२ ईमें बिहार और उड़ीसा बंगालसे अलग कर  
दिया गया और पूर्व-बंगाल अंगरेजोंमें मिला लिया गया  
है । यह अक्षां २१' २०" से लेकर २७' १२" ४४" उ०  
तथा देशां ८६' ५७" ४५" से लेकर ६२' ४६" पू० तक  
विस्तृत है । भूपरिमाण ८०००० वर्गमील है ।

इसकी उत्तरी सीमा पर नेपाल तथा भोटान राज्य ;  
पूर्वमें आसाम ; दक्षिणमें बंगोवसागर ; पश्चिममें बिहार,  
उड़ीसा और छोटा नागपुर है । बंगाल छोटा लाट  
(Governor)-के शासनधीन है ।

मुसलमान लोग बंग-विजय करके बंगालके डेल्टाओंकी  
ही संस्कृत नामानुसार बंग कहा करने थे । किसी किसी  
मुसलमान चेलिशानिकने राजधानी लक्ष्मणावतीके  
नामानुसार इस प्रदेशकी भी लक्ष्मणावतीके नामसे  
यर्णन किया है । गौड़ तथा लक्ष्मणावतीके धर्मके बाद  
जिस समय राजपाट टाका तथा मगधमें स्वामान्तरित  
हुमा, उस समय भी निम्न बंग बंगालके नामसे ही  
परिचयित होता था । इसके बाद मुसलमानोंने पूर्वमें  
अधुन-सौर पर्यन्त अधिभार करके बंगालकी सीमा  
एक की । दिहीके अधोत्तर भागमान शासनकर्ताओं  
तथा उसके बादके स्वामीय भन्तमान राजाओंके राज्य  
क्षेत्र ही जाने पर मुगल-सम्राट् अरबरा जाहके सुविधान  
सेनापति मानसिहने बंगालकी मुगल साम्राज्यमें मिला  
लिया । राजा सोहरनरथी पैवाइकीके बाद राजार-  
की सुविधाके लिये बंगाल, बिहार, तथा उड़ीसाकी  
मिथा कर एक रूपा संगठित किया गया एवं उसी  
सूत्रमें त्रिभु, सरकार तथा परगना प्रभृति विभाग

निर्दिष्ट किये गये थे । इस सूत्रमें बंगालका शासन  
करने के लिये दिहीभरके अधीन एक शासनकर्ता नया  
बंगालमें रहने थे । ये शैलोक नयाव अंगरेजसत्तामें ही  
सुविधावाचके नयावके नामसे परिचित थे । निर्णय एक  
नयावसे चले विस्तृत तथा महासमुद्रिनालो देशका  
राजकर वस्तु दोनेकी सुविधा न देकर उनके अधीन  
बिहार, उड़ीसा तथा टागामें एक एक नायब-नायब  
( Deputy Governor ) रखनेकी व्यवस्था की गई थी ।

अंगरेजाधिकारमें बंगालका सविशेष छेनेसे प्रथम  
बंग नामका अनेक विधेय स्थापित हुआ है ।  
उड़ीसाके उपकूलस्वित्त बालेश्वरसे ले कर बिहारके  
मध्यवर्ती पटना पर्यन्त स्थानों पर ईष्ट-इण्डिया  
कम्पनीकी जितनी फोडियां थीं, वे उक्त कम्पनीके रूपर  
( Bengal Establishment )के नामसे चर्णित है ।  
फ्रान्सिस फार्ग्युडेहने चट्टग्रामके पूर्व बहुत दूरसे ले कर  
उड़ीसाके अन्तर्गत पामिरा पण्ट ( Palmyra Point )  
पर्यन्त विस्तृत उपकूल तथा बंगप्रवाहित भूमिनाम ले  
कर बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की थी । पार्केस ( Par-  
chas )के मतसे यह उपकूलभाग प्रायः ५०० मील है ।

पूर्व विवरण पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह  
जाना जाता है, कि बंगालकी सीमा किसी समय भी  
स्थिर नहीं थी । पार्थस्यकी राजाओंके शासनमें समय  
समय पर इनका अंगच्युत हुआ करता था । बंगालके  
अन्तिम मुसलमान नयाव मिराजुद्दीलाके बंग-लिहाअनमें  
च्युत होने पर तथा बंगालकी दिहीअर कर्णूक दीवानो  
अद्वैतके हाथमें समर्पित होने पर भी भारतीय तथा  
अन्त-यासिधोने बंगालका सीमाप्रदेश आलोचन कर  
खाया था । सिवाही-विद्रोहके बाद ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका  
शासन जायदूत होने पर महासयो विचरीदियाने इनका  
शासन-भार अपने हाथमें ले लिया था । उस समय  
अर्धोन सुनोवपोर्ट तथा अदर दीधोभी शासन ददा  
कर अपने मन्थानुसार हाईकोर्ट स्थापित किया । अद्वैत-  
गवर्मेण्ट विद्येय दृष्टाके साथ बंगालकी शासन  
व्यवस्था करने लगी । १८५७ ईमें महासयो 'भारत-  
सम्राज्य'के पद पर समिपिक होने पर भारतमें अद्वै-  
रितीका प्रभाव अक्षय ही दटा । मोटाल-युद्ध तथा मनि-

पुर-युद्धावसानमें बंगालकी सीमा परिवर्धित हुई। अंगरेज-गवर्नमेंण्टने बंगालको प्रेसिडेन्सीभुक्त कर लिया।

अंगरेजोचित यह बंगाल राज्य क्रमसे एक प्रेसिडेन्सीके रूपमें विभक्त हो गया। सिर्फ गंगा तथा ब्रह्म पुत्र प्रवाहित समस्त अववाहिका प्रदेश ही नहीं, बल्कि सिन्धुनदीके समग्र अववाहिका प्रदेश तथा उसके हिमालय पृष्ठस्थ शाखा-प्रशाखा-व्याप्त स्थानोंको भी ले कर यह विभाग संगठित हुआ। तात्पर्य यह, कि विन्ध्यपर्वत मालाके उत्तर दिग्घर्सी प्रायः समग्र शार्पावर्त्ता भूमि बंगाल प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भुक्त हुई थी। बंगाल प्रेसिडेन्सीके इस विभागके सम्बन्धमें अब केवल कहानो ही शेष है। जिन पांच सुबुद्धत् प्रदेशोंको ले कर 'बंगाल-प्रेसिडेन्सी' संगठित हुई थी, वे पांचों प्रदेश क्रमगः निर्दिष्ट विभिन्न शासनकर्त्ताके अधीन हुए; किन्तु सर्वोंके ऊपर भारत-राज-प्रतिनिधि कर्त्तृत्व्य कर दिये गये। बंगाल प्रेसिडेन्सी इस ऐतिहासिक विभाग संगठित होनेके बहुत पीछे अर्थात् १८५१ ई०में मध्यप्रदेशमें एक स्वतन्त्र शासन-विभाग गठित हुआ था। विन्तु जो बंगाल बंगवासियोंकी जन्मभूमि है, जो गंगा तथा ब्रह्म पुत्रको उपत्यका ले कर प्रधानतः गठित है, वही अंगरेज राजकीय दृष्टरमें निम्न बंग (Lower Bengal) के नामसे वर्णित है।

बङ्गदेशका विभाग और जिला।

शासनकार्य चलानेके लिये बंगदेश पांच विभागों (Division) में विभक्त है; फिर विभाग जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेका शासन-भार वहाँके कलकुर-मजिस्ट्रेटके ऊपर अर्पित है। उन कलकुरोंके कार्याकी देख रैख करनेके लिये प्रत्येक विभागमें एक एक कमिश्नर नियुक्त है। नीचे बंगदेशके विभागों, जिलों और सदरों (Head quarters) के नाम दिये जाते हैं।

१ प्रेसिडेन्सी-विभाग—

जिला	सदर
(१) कलकत्ता	कलकत्ता
(२) चौबीस परगना	अलीपुर
(३) खुलना	खुलना

जिला	सदर
(४) नदीया	कृष्णनगर
(५) जशोर	जशोर
(६) मुर्शिदाबाद	वहरमपुर

२—बङ्ग मान विभाग—

(१) बङ्गमान	बङ्गमान
(२) बांकुड़ा	बांकुड़ा
(३) बीरभूम	सिबड़ी
(४) मेदिनीपुर	मेदिनीपुर
(५) हुगली	हुगली
(६) हवड़ा	हवड़ा

३—राजसाही-विभाग—

(१) राजसाही	रामपुर-बोआलिया
(२) बोगड़ा	बोगड़ा
(३) पवना	पवना
(४) मालदह	अंगरेज-बाजार
(५) रंगपुर	रंगपुर
(६) दिनाजपुर	दिनाजपुर
(७) जलपाईगोड़ी	जलपाईगोड़ी
(८) दार्जिलिङ्ग	दार्जिलिङ्ग

४—ढाका-विभाग—

(१) ढाका	ढाका
(२) फरोदपुर	फरोदपुर
(३) बाकरगंज	बारिशाल
(४) मैमनसिंह	मैमनसिंह

५—चट्टग्राम-विभाग—

(१) चट्टग्राम	चट्टग्राम
(२) पार्नात्य चट्टग्राम	रंगामाटी
(३) नवाछाली	सुधाराम
(४) त्रिपुरा	कोमिल्ला

प्राकृतिक दृश्य।

बंगालप्रदेशके प्राकृतिक सौन्दर्यका विशेष कोई असम्भाव नहीं हुआ है। दक्षिणमें तरंगसंकुल बंगोपसागर उच्चाल ऊर्ध्वमालासे सागरसेकतको विधीत कर रहा है। उत्तरमें हिमाचलशिखर क्रमोच्च शृंगमालासे समारोहित, हो कर मानो एक अभि-

गण दृश्यपट उन्नीयित कर रहे हैं। उक्त सुधारमण्डित  
 जिनपर पर अथवाहरणके प्रतिक्रिया होनेमें सुधार  
 पवक पर्याप्ततायु एक ज्योतिर्मव हैमान्युमें पर्याप्तगत  
 हो रहा है। प्रयागमें कभी वर सूर्यकिरणने समु-  
 ज्ञासित हो कर दिग्दिगन्त जालीयित करता है  
 और कभी गाढ़ दृग्दृष्टिकाले समाच्छादित हो कर अपूर्ण  
 मेघमालाको तरङ्ग निश्चय दृष्टायमान है। ये पर्याप्त  
 गानकी विशेष करके छोटी छोटी स्तोत्रसिन्धो प्रगर  
 गतिमें समतल उपरवर्तमानमें अग्रतःपी हो कर परस्पर  
 के संयोगसे पुष्ट हो एक एक प्रष्ट जलधाराकालमें प्रवा-  
 दित हो रही है। उक्त नदियोंमें दिनपादनिम्न गंगा  
 तथा प्रजपुत्र हो यहाँके प्रधान प्रवाह हैं। दूसरी उनकी  
 ही प्राणा प्रवाहार्थ हैं। गंगा तथा प्रजपुत्र देवी।

यही नदियाँ बङ्गालकी प्रोभा तथा शस्य  
 समृद्धिका पक्षमात्र कारण हैं। दिनपलवृष्टि मध्या  
 उत्तर-पंगणके उद्य स्थानोंकी विधौत करके इन नदियों-  
 में निम्न बङ्गालकी निम्न भूमिमें एक शृङ्खल  
 कर संलग्न कर दिया है। इस स्तर की उर्वरताजकि  
 पैगो है, कि जिस स्थानमें इस तरह स्तर संनिग हो  
 जाता है, यहाँ पर्याप्त परिमाणमें विभिन्न प्रकारके शस्य  
 उत्पन्न होते हैं। गंगा तथा प्रजपुत्रके उत्तर उपर्यका  
 पण्ड पर्य निम्न पंगालके समतल प्रायतमें इस तरह  
 नदी-जालसे समाच्छाद्य हो जाते हैं। यहाँ की  
 जानेकी विशेष सुविधा है।

पर्य वितादित हो कर  
 कर देती हैं जिसमें भू-  
 जाती है। यह पोक सो-  
 होता है। कभी कभी  
 प्रकृतिसे शक-  
 है। उक्त ग-  
 कृषिकार्य पर-  
 के बांस लो-  
 प्रपात शक-  
 अथवाशिमि-  
 वृक्षादि परिसी-  
 निहादि स्थानों

नदीकोयहाँ प्राय अथवा गगरीमें विशेषतः स्नान करने  
 के पाठों पर देव मन्दिरादि प्रतिष्ठित हो कर देवशासितो-  
 की धर्मपरायणता तथा स्वाध्यायजिनका परिचय दे रहे  
 हैं। प्रायके मध्य अथवा पार्श्वोद्य ये सब कष्टकित्तये  
 या मन्दिर श्यामन प्राय वैशित्तकी एकमात्र भंग कर  
 देने हैं। कहीं कहीं भान मन्दिर अथवा प्राचीन प्राय-  
 दादि विधयस्त हो कर जंगलपूर्ण स्तूपराशियों पटित  
 हो गये हैं। ये सब प्राचीन कौशिकनिर्देशन प्रत्यक्षदर्श-  
 की स्तलीचना करनेकी नीजे हैं। पार्श्वय ब्रह्मजालमें  
 इन सब स्तूपोंपरि गठित जंगलोंमें सौर्यार्चका विशेष  
 विधान न होने पर भी उनमें विभिन्न जातीय टिंन  
 जोषोंका वास हो गया है। इन जंगलोंके शास-पार्श्वमें  
 भी छोटे छोटे प्राय विद्यमान हैं। यास्तविकमें बङ्गाल-  
 के विभिन्न नदीयत्तों प्राय अथवा गगरीमें प्राकृतिक  
 सौन्दर्यका इतना ही वैभव दृष्टिगोचर होता है, कि सभी  
 स्थान मानो नयभूयामे सुसज्जित हो कर दर्शकोंके चित्त-  
 को आकर्षित करनेका प्रयास कर रहे हैं।

इस पंगाल प्रदेशमें जिनकी नदियाँ तथा प्राणा देवी  
 जाती हैं, उन सबमें गंगा और प्रजपुत्र प्रधान हैं। तिलक,  
 जागरीवी ( द्रुगली ), दामोदर, रूपनारायण वभुनि वर  
 दूसरे दूसरी नदियाँ अपेक्षाकृत क्षुद्र होने पर भी प्रधान  
 नदियाँ हो बहलानी हैं। इनके बलाये वर प्राणा नदी-  
 से अथवा नदीके शंभविशेष विभिन्न भागमें परिमाण  
 जैसे अथ, आश्रयल-पार, वराकर, नीर्य, विद्यारथी,

छोटे लिङ्ग, पृथोगंगा, निगा, परेभगी,  
 सती, वमुना, कर्णजाल,  
 मरा-निस्ता,  
 रूपनारायण,

धारा प्रायः सूख गई है। इन धाराओंमें वर्षा ऋतुके अतिरिक्त अन्य ऋतुओंमें बहुत कम जल शेष रह जाता है। ये सब धारायें मरातिस्ता, बूढीगंगा प्रभृति नामोंसे परिचित हैं। दूसरी दूसरी कितनी ही नदियोंकी धाराओंके कई स्थानोंमें तो विशुद्ध ही जल नहीं रहता। इन नदियोंके ऊपर रेलपथके लिये पुल बांधे गये हैं। कई मरी हुई नदियोंकी धाराओंको भरके उसके ऊपर लोहवर्तम पिस्तारित किया गया है। कई नदियोंसे व्यापारकी सुविधाके लिये गर्मवैट बहादुरने खाई खोद कर उनको धाराओंको दूसरी ओर परिचालित कर दिया है, जिससे इस देशवासियोंमें कितनेको तो लाभ पहुंचता है और कितनेको अत्यन्त हानि होती है। प्राचीन कितनी ही नदियां शुष्क हो कर इस समय शय्यक्षेत्रमें पर्यावसित हो गई हैं। उन स्थानोंके वाग्निन्दे जलकणसे दाहाकार कर रहे हैं। यारिपातरूप जगदीश्वरकी अनुकम्पाके सिवा घटांकी प्रजाओंके प्राणोंको रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कहीं कहीं खाई, बांध प्रभृति द्वारा देश-रक्षाका विधान हुआ है, किन्तु वे सिर्फ स्थानीय लोगोंका ही कुछ उपकार कर सकते हैं। स्वर्णप्रसू बंगालकी नदियां बाहुल्य होने पर भी इस समय जलामावसे घटांकी प्रजा दुर्मिक्ष तथा अन्नकणसे प्रपीडित है।

नदियोंके अलावे स्थान स्थान पर कूप तथा तडागादिके द्वारा घटांका जलामाव दूर किया जाता है। दामोदर आदि बहुत-सी नदियों पर बांध बांध कर जल-रक्षाकी व्यवस्था है। घटांकी छोटी छोटी जल-धाराओंसे ये बांध ही घटांके लोगोंके लिये विशेष उपकारी हैं।

घोरभूम आदि नाना स्थानोंमें बहुतसे शीतल, लवण और उष्ण जलपूर्ण प्रखण्ड वृष्टिगोचर होते हैं। ये सब स्थान बहुत प्राचीनकालसे ही तीर्थक्षेत्ररूपमें गिने जाते हैं। इसका विशेष विवरण जिला प्रसंगमें लिखा गया है। प्रखण्ड जो प्राचीनत्वका परिचालक हैं, घट बंगालके भूतरवकी आलोचना करनेसे सहजमें जाना जा सकता है।

भूत्व ।

भूत्वविद्गैम विशेष गवेषना और अनुसोलनके वाद

यह स्थिर किया है, कि निम्नवर्गका अधिकांश स्थान समुद्रगर्भमें पड़ा हुआ था। कालक्रमसे समुद्रगर्भ जितना ही पीछे हटता गया उतना ही चर गड़ता गया। पीछे वही चर जनसमाजके वासस्थानके रूपमें परिणत हो गया है। पृथ्वीके नीचे पड़े हुई शम्बूक ( सीप ) मछली आदिकी हड्डी और नवीभूत मिट्टीके स्तरादि उसका प्रमाण देने हैं। महाभारतके वनपर्व ११३ अ० युधिष्ठिरके तीर्थयात्रा-विवरणमें कौशिकीतीर्थसे कुछ दूर पांच सौ नदीयुक्त गङ्गासागर-तङ्गम तथा वटांसे भी कुछ दूर समुद्रके किनारे कलिङ्ग देश रहनेसे साफ साफ मालूम होता है, कि समस्त तीर उस समय उत्तरराट्टसे कुछ दूर तक विस्तृत था। कौशिकीका वर्तमान नाम कोसी है। ताकेश्वरके निकटवर्ती हरिपाल आदि प्राणोंके निकट कौशिकीका प्राचीन गर्भ देला जाता है। प्रोकराजदूत मेगास्थनीज पटनासे तीन सौ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमकी बात लिख गये है।

आज कल जिस प्रकार हम लोग नवाशाली जिलेके समुद्रीकुल पर सनद्वीप आदि चरजात द्वीपकी उत्पत्ति देखते हैं, प्राचीन कालमें भी उसी प्रकार समुद्रतीरवर्ती नदियोंके मुहाने पर मिट्टी जम जानेसे क्रमशः द्वीपकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण बहुत-से स्थानोंके नामके अन्तमें 'द्वीप' 'दियारा या दिया' और 'चर' शब्द दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, अग्रद्वीप, शुक्चर, चकचर, कांटादिया, रूपदिया आदि स्थान शायद उसी चरसे उत्पन्न हुए होंगे।

उस समयके लोकसमाजका प्रथित चर आगे चल कर वृक्ष, लतादिसे परिपूर्ण हो उपवन, ग्राम और घाँरे घाँरे नगरमें परिणत हो गया है। किन्तु आज भी यह चरामिधान दूर नहीं हुआ है। चक्रद्व, खड्गद्व, शिवाद्व आदि जिस प्रकार नदीगर्भसे पीछे सीधमाला-मण्डित सुरम्भ नगरमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार नदीक्षेत्रसे लाये गये बालूके कण भी मुहानास्थ समुद्र-तट पर सञ्चित हो जाते हैं और जिससे चरभूमिकी उत्पत्ति होती है। आज जहाँ पर मकरसंक्रान्तिके दिन सागर-तीर्थयात्रिगण इकट्ठे हो कर स्नानादि करते हैं,



नव द्वारपट उन्मीलित कर रहे हैं। उस तुपारमण्डित शिखर पर अरुणकिरणके प्रतिफलित होनेसे तुपार धवल पर्वतस्तानु एक ज्योतिर्मय हैमस्तूपमें पर्यवसित हो रहा है। दिवाभागमें कभी वह सूर्यकिरणसे संसृज्जासित हो कर दिग्दिगन्त आलोकित करता है और कभी गाढ़ कुम्भटिकासे समाच्छादित हो कर अपूर्व मेघमालाकी तरह निश्चल झण्डायमान है। ये पर्वत गात्रको विधौत करके छोटी छोटी स्रोतखिनी प्रखर गतिसे समतल उपत्यका प्रान्तमें अवतीर्ण हो कर परस्पर के संयोगसे पुष्ट हो एक एक प्रष्ट जलधाराकृतिमें प्रवाहित हो रही है। उक्त नदियोंमें हिमपादनिःसृत गंगा तथा ब्रह्मपुत्र ही यहाँके प्रधान प्रवाह हैं। दूसरी उनकी ही शाखा प्रशाखायें हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र देखो।

यही नदियाँ बङ्गालकी शोभा तथा शल्य समृद्धिका एकमात्र कारण हैं। हिमालयपृष्ठ अथवा उत्तर-बंगालके उच्च स्थानोंको विधौत करके इन नदियोंने निम्न बङ्गालको निम्न भूमिमें एक मृदुरत्तर ला कर संचय कर दिया है। इस स्तर की उर्वारताशक्ति पेसी है, कि जिस स्थानमें इस तरह स्तर संचित हो जाता है, वहाँ पर्याप्त परिमाणमें विभिन्न प्रकारके शल्य उत्पन्न होते हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्रके उत्तर उपत्यका खण्ड एवं निम्न बंगालके समतल प्रान्तमें इस तरह नदी-जालसे समाच्छन्न हो आनेसे शल्यक्षेत्रोंको सौंचे जानेकी विशेष सुविधा हो गई है। कभी कभी ये नदियाँ वन्य-वितारित हो कर उभय तीरवर्ती प्राणियोंको जलमय कर देती हैं जिससे भूपृष्ठमें एक प्रकारकी पीक जाग जाती है। यह पीक भी शल्योत्पादनमें विशेष उपयोगी होती है। कभी कभी डीर डीर पर खाई खोद कर नाली प्रभृतिसे जल ला कर खेत सौंचनेको व्यवस्था की जाती है। उच्च भूमिमें कृष अथवा पुष्करिण्यादि खोद कर भी कृषिकार्य सम्पन्न किया जाता है। इन सभी कृषिक्षेत्रोंके बीच छोटे छोटे गाँव, बड़े गाँव, नगर अथवा वाणिज्य-प्रधान बन्दर-समूह विराजित हैं। नगरके आस-पास नगरवासियोंके स्वहस्तरोपित पुष्पोद्यान अथवा फल-वृक्षादि परिशोधित उपवनसमूह तथा तन्मध्यस्थ अट्टालिकादि स्थानीय सौन्दर्यकी वृद्धि कर रही है। गंगादि

नदीतीरवर्ती ग्राम अथवा नगरोंमें विशेषतः स्नान करनेके धारों पर देव-मन्दिरादि प्रतिष्ठित हो कर देशवासियोंकी धर्मपरायणता तथा स्थापत्यशिल्पका परिचय दे रहे हैं। ग्रामके मध्य अथवा पाश्र्वस्थ ये सब अट्टालिकायें या मन्दिर श्यामल प्राभ्य वैचित्र्यकी एकप्रता भंग कर देने हैं। कहीं कहीं मग्न मन्दिर अथवा प्राचीन प्रासादादि विध्वस्त हो कर जंगलपूर्ण स्तूपराशिमें परिणत हो गये हैं। ये सब प्राचीन कौत्सिनिर्देशन प्रतनतत्त्वविदोंकी आलोचना करनेकी चीजे हैं। पार्श्वत्य वनमालांमि इन सब स्तूपोपरि गठित जंगलोंमें सौन्दर्यका विशेष विकास न होने पर भी उनमें विभिन्न जातीय द्विध्र जीवोंका वास हो गया है। इन जंगलोंके आस-पासमें भी छोटे छोटे ग्राम विद्यमान हैं। पास्तविकमें बङ्गालके विभिन्न नदीवर्ती ग्राम अथवा नगरोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यका इतना ही वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, कि सभी स्थान मानो नवभूभासे सुसज्जित हो कर दर्शकोंके चित्तको आकर्षित करनेका प्रयास कर रहे हैं।

इस बंगाल प्रदेशमें जितनी नदियाँ तथा शाखा देवी जाती हैं, उन सबोंमें गंगा और ब्रह्मपुत्र प्रधान हैं। तिस्ता, भागीरथी (हुगली), दामोदर, रूपनारायण प्रभृति कई दूसरी दूसरी नदियाँ अपेक्षाकृत क्षुद्र होने पर भी प्रधान नदियाँ ही कहलाती हैं। इनके अलावे कई शाखा नदियोंसे अथवा नदीके वंशविशेष विभिन्न नामसे परिचित है। जैसे अन्नय, आडियल-खाँ, पराकर, भैरव, विद्याधरी, बड़ तिस्ता, छोट तिस्ता, बूढीगंगा, चित्ता, धलेश्वरी, धनकेशोर या द्वारकेश्वर, इच्छामती, यमुना, कगोताश, करतोवा, कालोभंगा, कालिन्दी, मेघना, मरा-तिस्ता, मातला चा रायमङ्गल, मयूराशी, पत्ता, रूपनारायण, सन्दीप, मरसती।

उपरोक्त नदियाँ अथवा उनकी शाखायें एवं संयुक्त नदियाँ बंगालके विभिन्न स्थानमें विस्तारित होनेसे कृषिक्षेत्रादिकी सौंचनेकी जिस तरह सुविधा है, उन्हीं तरह नौकायोंके द्वारा पण्यद्रव्य एक स्थानसे दूसरे स्थान लाने पर एवं ले जानेकी भी सुविधा है। दुःखका विषय है, कि प्राकृतिक परिवर्तनसे नदियोंकी गति दूसरी ओर परिवर्तित होनेके कारण कई नदियोंकी प्राणो

धारा प्रायः सूख गई है। इन धाराओंमें वर्षा ऋतुके अतिरिक्त अन्य ऋतुओंमें बहुत कम जल शेष रह जाता है। ये सब धारायें 'मरातिस्ता, वृद्धीगंगा प्रभृति नामोंसे परिचित हैं। दूसरी दूसरी कितनी ही नदियोंकी धाराओंके कई स्थानोंमें तो थिड़कुल ही जल नहीं रहता। इन नदियोंके ऊपर रेलपथके लिये पुल बांधे गये हैं। कई मरी हुई नदियोंकी धाराओंकी भरके उसके ऊपर लीडवर्म्पिस्तारित किया गया है। कई नदियोंसे व्यापारकी सुविधाके लिये गर्ममेंट बहादुरने खाई खोद कर उनको धाराओंकी दूसरी ओर परिधालित कर दिया है, जिससे इस देशवासियोंमें कितनेकी तो लाभ पहुंचना है और कितनेकी अल्पन्त हानि होती है। प्राचीन कितनी ही नदियां शुष्क हो कर इस समय शस्यक्षेत्रमें पकी-वसित हो गई हैं। उन स्थानोंके वाशिनन्द-जलरूपसे हाहाकार कर रहे हैं। वारिपातरूप जगदीश्वरकी अनुकम्पाके सिवा वहाँकी प्रजाओंके प्राणोंकी रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कहीं कहीं खाई, बांध प्रभृति द्वारा देग-रक्षाका विधान हुआ है, किन्तु वे सिर्फ स्थानोय लोगोंका ही कुछ उपकार कर सकते हैं। स्वर्णप्रसू बंगालकी नदियां बाहुल्य होने पर भी इस समय जलाभावसे यहाँकी प्रजा दुर्भिक्ष तथा अन्नकष्टसे प्रपीडित हैं।

नदियोंके अलावे स्थान स्थान पर कूप तथा तड़ागादिके द्वारा वहाँका जलामाव दूर किया जाता है। दामोदर आदि बहुत-सी नदियों पर बांध बांध कर जल-रक्षाकी व्यवस्था है। वहाँकी छोटी छोटी जल-धाराओंसे ये बांध ही वहाँके लोगोंके लिये विशेष उपकारी हैं।

घोरभूम आदि नाना स्थानोंमें बहुतसे शीतल, लवण और उष्ण जलपूर्ण प्रस्रवण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब स्थान बहुत प्राचीनकालसे ही तीर्णक्षेत्ररूपमें गिने जाते हैं। इसका विशेष विवरण जिला प्रसंगमें लिखा गया है। प्रस्रवण जो प्राचीनत्वका परिचालक है, वह बंगालके भूत्वकी आलोचना करनेसे सद्गममें जाना जा सकता है।

भूत्व ।

भूत्वविज्ञानके विशेष गवेषना और अनुशोदनके बाद

यह स्थिर किया है, कि निम्नवर्गका अधिकांश स्थान समुद्रगर्भमें पड़ा हुआ था। कालक्रमसे समुद्रगर्भ जितना ही पीछे हटता गया उतना ही चर पड़ता गया। पीछे वही चर जनसमाजके वासस्थानके रूपमें परिणत हो गया है। पृथ्वीके नीचे पड़ो हुई शम्बूक (सीप) मछली आदिकी हड्डी और नवीभूत मिट्टीके स्तरादि उसका प्रमाण देते हैं। महाभारतके वनपर्व ११३ अ० युधिष्ठिरके तीर्थयात्रा-विवरणमें कौशिकीतीर्थसे कुछ दूर पांच सी नदीयुक्त गङ्गासागर-सङ्गम तथा वहाँसे भी कुछ दूर समुद्रके किनारे कलिङ्ग देग रहनेसे साफ साफ मातृम होता है, कि समस्त तीर उस समय उत्तरपट्टसे कुछ दूर तक विस्तृत था। कौशिकीका वर्तमान नाम कोसी है। तारकेश्वरके निकटवर्ती हरिपाल आदि प्राणोंके निकट कौशिकीका प्राचीन गर्भ देखा जाता है। प्रीकराजदूत मेगास्थनोज पटनासे तीन सौ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमकी बात लिख गये हैं।

आज कल जिस प्रकार हम लोग नवाबाली जिलेके समुद्रोत्कूल पर सनहोप आदि चरजात द्वीपकी उत्पत्ति देखते हैं, प्राचीन कालमें भी उसी प्रकार समुद्रतीरवर्ती नदियोंके मुहाने पर मिट्टी जम जानेसे क्रमशः द्वीपकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण बहुत-से स्थानोंके नामके अन्तमें 'द्वीप' 'दियारा या दिया' और 'चर' शब्द दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, अग्रद्वीप, शुक्चर, चकचर, कांटादिय, रूपदिया आदि स्थान शायद उसी चरसे उत्पन्न हुए होंगे।

उस समयके लोकसमाजका प्रथित चर आगे चल कर वृक्ष, लतादिसे परिपूर्ण हो उपवन, ग्राम और घीरे घीरे नगरमें परिणत हो गया है। किन्तु आज भी यह चराभिधान दूर नहीं हुआ है। चक्रदह, झड़दह, जिवादह आदि जिस प्रकार नदीगर्भसे पीछे सीधमाला-मण्डित सुरम्य नगरमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार नदीक्षेत्रसे लाये गये बालूके कण भी मुहानास्थ समुद्र-तट पर सञ्चित हो जाते हैं और जिससे चरभूमिकी उत्पत्ति होती है। आज जहाँ पर मकरसंक्रान्तिके दिन सागर-तीर्थयात्रिगण इकट्ठे हो कर स्नानादि करते हैं,

नव दृश्यपट उन्मोचित कर रहे हैं। उस गुणरमण्डित शिखर पर अद्यकिरणके प्रतिफलित होनेसे गुणर-धवल पर्वतसानु एक ज्योतिर्मय हैमस्तूर्णमें पर्यवसित हो रहा है। दिवाभागमें कभी वह सूर्यकिरणसे समु-द्भासित हो कर दिग्दिगन्त आलोकित करता है और कभी गाढ़ हुम्कटिकासे समाच्छादित हो कर अपूर्व मेघमालाकी तरह निश्चल दण्डायमान है। ये पर्वत गाढ़की विधौत करके छोटी छोटी स्रोतखिनी प्रवर गतिसे समतल उपत्यका प्रान्तमें अवतर्ण हो कर परस्पर के संयोगसे पुष्ट हो एक एक प्रकृष्ट जलधाराऋणमें प्रवा-हित हो रही है। उक्त नदियोंमें हिमपादनिःसृत गंगा तथा ब्रह्मपुत्र ही यहांके प्रधान प्रवाह हैं। दूसरी उनकी ही शाखा प्रयागवाये हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र देखो।

यही नदियाँ बङ्गालकी शोभा तथा शस्य समृद्धिका एकमात्र कारण हैं। हिमालयपृष्ठ अथवा उत्तर-बंगालके उच्च स्थानोंको विधौत करके इन नदियों-ने निम्न बङ्गालको निम्न भूमिमें एक मृदु स्तर ला कर संचय कर दिया है। इस स्तर की उर्वरताशक्ति पेसी है, कि जिस स्थानमें इस तरह स्तर संचित हो जाता है, वहां पर्याप्त परिमाणमें विभिन्न प्रकारके शस्य उत्पन्न होते हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्रके उत्तर उपत्यका खण्ड एवं निम्न बंगालके समतल प्रान्तमें इस तरह नदी-जालसे समाच्छन्न हो जानेसे शस्यक्षेत्रोंकी सींचे जानेकी विशेष सुविधा हो गई है। कभी कभी ये नदियाँ वन्य-विताडित हो कर उभय तीरवर्ती ग्रामोंको जलमय कर देती हैं जिससे भूपृष्ठमें एक प्रकारकी पीक जन जाती है। यह पीक भी शस्योत्पादनमें विशेष उपयोगी होती है। कभी कभी डीर डीर पर खाई खोद कर नाली प्रभृतिसे जल ला कर खेत सींचनेकी व्यवस्था की जाती है। उच्च भूमिमें कृष अथवा पुष्करिण्यादि खोद कर भी कृषिकार्य सम्पन्न किया जाता है। इन सभी कृषिक्षेत्रोंके बीच छोटे छोटे गाँव, बड़े गाँव, नगर अथवा धाणिज्य-प्रधान बन्दर-समूह विराजित हैं। नगरके आस-पास नगरवासियोंके सहस्तरोपित पुष्पोद्यान अथवा फल-पुष्पादि परिभोगित उपवनसमूह तथा तन्मध्यस्थ अट्टा-लिकादि स्थानीय सौन्दर्यकी वृद्धि कर रही हैं। गंगादि

नदीतीरवर्ती ग्राम अथवा नगरोंमें विशेषतः स्नान करने के घाटों पर देव-मन्दिरादि प्रतिष्ठित हो कर देगवासियोंकी धर्मपरायणता तथा स्थावत्यशिव्यका परिचय दे रहे हैं। ग्रामके मध्य अथवा पार्श्वस्थ ये सब अट्टालिकायें या मन्दिर श्यामल प्राम्य वैचित्र्यकी एकाग्रता भंग कर देने हैं। कहीं कहीं भग्न मन्दिर अथवा प्राचीन प्रासा-दादि विध्वस्त हो कर जंगलपूर्ण स्तूपराजिमें परिणत हो गये हैं। ये सब प्राचीन कीर्तिनिर्देशन प्रतनतत्त्वविदोंकी आलोचना करनेकी चीजें हैं। पार्श्वस्थ वनमालांमें इन सब स्तूपोपरि गठित जंगलोंमें सौन्दर्यका विशेष विकास न होने पर भी उनमें विभिन्न जातीय द्विष्ट जीवोंका वास हो गया है। इन जंगलोंके वास-पासमें भी छोटे छोटे ग्राम विद्यमान हैं। वास्तविकमें बङ्गालके विभिन्न नदीवर्ती ग्राम अथवा नगरोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यका इतना ही वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, कि सभी स्थान मानो नवभूवासि सुसज्जित हो कर दर्शकोंके चित्त-को आकर्षण करनेका प्रयास कर रहे हैं।

इस बंगाल प्रदेशमें जिननी नदियाँ तथा शाखा देवी जाती हैं, उन सर्वोंमें गंगा और ब्रह्मपुत्र प्रधान हैं। तिस्ता, भागीरथी (हुगली), दामोदर, रूपनारायण प्रभृति कई दूसरी दूसरी नदियाँ अपेक्षाहिन क्षुद्र होने पर भी प्रधान नदियाँ ही कहलाती हैं। इनके अलावे कई शाखा नदियोंसे अथवा नदीके अंशविशेष विभिन्न नामसे परिचिन हैं। जैसे अजय, आडियल-खां, पराकर, भैरव, विद्याधरी, बड़ तिस्ता, छोट तिस्ता, बूढीगंगा, चित्ता, धलेश्वरों, धलकिशोर या द्वारकेश्वर, इच्छामती, यमुना, कपोनाथ, करतोया, कालोभंगा, कालिन्दी, मेघना, मरा-तिस्ता, मातला या रायमङ्गल, मसूराक्षी, पचा, रूपनारायण, सन्दीप, मरखती।

उपरोक्त नदियाँ अथवा उनकी शाखायें एवं संयुक्त खाद्याँ बंगालके विभिन्न स्थानमें विस्तारित होनेसे कृषिक्षेत्रादिको सींचनेको जिस तरह सुविधा है, उसी तरह नौकाओंके द्वारा पण्यदृश्य एक स्थानमें दूसरे स्थान लाने पर एवं ले जानेकी भी सुविधा है। दुःप्रका विषय है, कि प्राकृतिक परिवर्तनने नदियोंकी गति दूसरी ओर परिचालित होनेके कारण कई नदियोंको प्राचीन

धारा प्रायः सूख गई है। इन धाराओंमें वर्षा ऋतुके अतिरिक्त अन्य ऋतुओंमें बहुत कम जल शेष रह जाता है। ये सब धारायें मरुतिस्ता, बूढ़ोगंगा प्रभृति नामोंसे परिचित हैं। दूसरी दूसरी कितनी ही नदियोंको धाराओंके कई स्थानोंमें तो थिल्लुल ही जल नहीं रहता। इन नदियोंके ऊपर रेलपथके लिये पुन्ज बांधे गये हैं। कई मरी हुई नदियोंको धाराओंको भरके उसके ऊपर लौहवर्त्म पिस्तारित किया गया है। कई नदियोंसे व्यापारकी सुविधाके लिये गवर्नेट्ट बहादुरने खाई खोद कर उनको धाराओंको दूसरी ओर परिचालित कर दिया है, जिससे इस देशवासियोंमें कितनेको तो लाभ पहुंचता है और कितनेको अत्यन्त हानि होती है। प्राचीन कितनी ही नदियां शुष्क हो कर इस समय शशयक्षेत्रमें पर्यावसित हो गई हैं। उन स्थानोंके वाग्निन्दे जलकण्डसे हाहाकार कर रहे हैं। वारिपातरूप जगदीश्वरकी अनुकम्पाके सिधा वहाँकी प्रजाओंके प्राणोंको रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कहीं कहीं खाई, बांध प्रभृति द्वारा देश-रक्षाका निधान हुआ है, किन्तु ये सिर्फ स्थानीय लोगोंका ही कुछ उपकार कर सकते हैं। स्वर्णप्रसू बंगालकी नदियां बाहुल्य होने पर भी इस समय जलामावसे वहाँकी प्रजा दुर्मिन्न तथा अन्नकण्डसे प्रपीडित है।

नदियोंके अलावे स्थान स्थान पर कूप तथा तड़ागादिके द्वारा वहाँका जलामाव दूर किया जाता है। दामोदर आदि बहुत-सी नदियों पर बांध बांध कर जल-रक्षाकी व्यवस्था है। वहाँकी छोटी छोटी जल-धाराओंसे ये बांध ही वहाँके लोगोंके लिये विशेष उपकारी हैं।

योभूम आदि नाना स्थानोंमें बहुतसे शीतल, लवण और उष्ण जलपूर्ण प्रस्रवण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब स्थान बहुत प्राचीनकालसे ही तीक्ष्णरूपमें गिने जाते हैं। इसका विशेष विवरण जिला प्रसंगमें लिखा गया है। प्रस्रवण जो प्राचीनत्वका परिचालक है, वह बंगालके भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे सद्गम जाना जा सकता है।

भूतत्त्व ।

भूतत्त्वविद्में विशेष गवेषना और अनुशीलनके बाद

यह स्थिर किया है, कि निम्नवङ्गका अधिकांश स्थान समुद्रगर्भमें पड़ा हुआ था। कालक्रमसे समुद्रगर्भ जितना ही पीछे हटता गया उतना ही चर पड़ता गया। पीछे वही चर जनसमाजके वास्तुस्थानके रूपमें परिणत हो गया है। पृथ्वीके नीचे पड़ी हुई शम्बूक ( सीप ) मछली आदिकी हड्डी और नवीभूत मिट्टीके स्तरादि उसका प्रमाण देने हैं। महाभारतके वनपर्व ११३ अ० युधिष्ठिरके तीर्थयात्रा-विवरणमें कीर्णकीतीर्थसे कुछ दूर पांच सौ नदीयुक्त गङ्गासागर-सङ्गम तथा वहाँसे भी कुछ दूर समुद्रके किनारे कलिङ्ग देश रहनेसे साफ साफ मालूम होता है, कि समस्त तीर उस समय उत्तराट्टसे कुछ दूर तक विस्तृत था। कीर्णकीका वर्तमान नाम कोसी है। तारकेश्वरके निकटवर्ती हरिपाल आदि प्रान्तोंके निकट कीर्णकीका प्राचीन गर्भ देला जाता है। प्रीक-राजदूत मेगास्थनीज पटनासे तीन सौ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमकी बात लिख गये है।

आज कल जिन प्रकार हम लोग नयावाली जिलेके समुद्रोच्छूल पर सनद्वीप आदि चरजात द्वीपकी उत्पत्ति देखते हैं, प्राचीन कालमें भी उसी प्रकार समुद्रतीरवर्ती नदियोंके मुहाने पर मिट्टी जम जानेसे क्रमशः द्वीपकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण बहुत-से स्थानोंके नामके अन्तमें 'द्वीप' 'दियारा या दिया' और 'चर' शब्द दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, अग्रद्वीप, शुक्चर, वक्चर, कांटादिया, रूपदिया आदि स्थान शायद उसी चरसे उत्पन्न हुए होंगे।

उस समयके लोकसमाजका प्रथित चर आगे चल कर वृक्ष, लतादिके परिपूर्ण हो उपवन, ग्राम और घाँरे घाँरे नगरमें परिणत हो गया है। किन्तु आज भी वह चरामिधान दूर नहीं हुआ है। चक्रद्व, खड्गद्व, जियाद्व आदि जिस प्रकार नदीगर्भसे पीछे सीधमाला-मण्डित सुरम्प नगरमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार नदीछोतसे लाये गये वालके कण भी मुहानास्य समुद्र-तट पर सञ्चित हो जाते हैं और जिससे चरभूमिकी उत्पत्ति होती है। आज जहाँ पर मकरसंक्रान्तिके दिन सागर-तीर्थयात्रिगण इकट्ठे हो कर स्नानादि करते हैं,

कुछ दिन बाद यह समुद्रगर्भको भेद कर ऊपर उठेगा और क्रमशः प्राममें नगरमें परिणत हो जायगा।

मेघना नदीके सागरसङ्गम पर बादुरा, मानपुरा आदि द्वीप जो सौ वर्ष पहले केवल भाटेके समय जग उठता और ज्वारके समय हूथ जाता था अभी वही उच्च भूमि और बहुजगाकीर्ण प्रामोंसे परिपूर्ण हो गया है। उसके बाद नाजीरचर, फालकनचर नामक और भी दो छोटे द्वीप उल्लेखनीय हैं। १८६० ई०में भी वह जंगलोंसे भरा था, अभी वहां बहुत लोगोंका वास हो गया है। उसके बाद चौबिसपरगना, खुलना और बारिशालसे बहुत दक्षिण जहां सौ वर्ष पहले समुद्रतरङ्ग बहती थी अभी उन सब स्थानोंमें असंख्य प्राम नगर बस गये हैं।

नदी-स्रोतसे लाये गये बालूके कण जब नदी गर्भमें सञ्चित होते, तब चरको उत्पत्ति होती है। यह बात सर्व-वादिगम्यत है। इस बङ्गभूमिमें प्रवाहित गङ्गा नदी किन्तु वेगसे कितनी मिट्टी प्रति दिन बहन कर समुद्रमुल्लमें ढाल देती है, उसकी गणना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। करीब ७५ वर्ष पहले कुछ अभिन्न यूरोपीय पाण्डितोंने गाजीपुरमें बैठ कर नाना उपाय प्रयोग द्वारा स्थिर किया था, कि गङ्गा प्रति वर्ष सागरसङ्गमस्थलमें १७३८२४०००० मन मिट्टी बहन कर ढाल देती है। किन्तु गाजीपुरसे दक्षिण स्वयं गङ्गा और उसकी शोम, अजय आदि शाखा नदियां सुन्दरवनके मध्यमें अवस्थित २५० नदियां तथा उसके बाद उत्तर पूर्वके ढोनेसे आई हुई ब्रह्मपुत्र या ललेध्वरी आदि कई नदियां एकमें मिल कर वहां कितना मन मिट्टी ले जाती हैं, इसका कुछ अन्दाज नहीं लगाया जा सकता।

उपरोक्त सृष्टिकास्तरकी गठन और परिणति बङ्गाल के किसी किसी विभागमें किस तरह संसाधित हुई थी, उसका (विभाग करके) विवरण संक्षेपमें दिया जाता है—

प्रथम विभाग—राजमहलकी पर्वतश्रेणीसे शारम्भ करके भागीरथीके उत्पत्तिस्थान छापघाटी तक बड़ी गङ्गाके दक्षिण और छापघाटीसे भागीरथीके पश्चिम-द्वारसे, ले कर मैदिनीपुर तक प्रायः एक ही तरहकी मिट्टी देवी जाती है। भूतत्त्वविदोंकी सूक्ष्म दृष्टिसे

दंतने पर उसमें भी विभाग दिखाई देता है। किन्तु मोटी दृष्टिसे एक ही प्रकारकी मिट्टी देखी जाती है। सभी जगह एक समान कंकड़ पत्थरसे परिपूर्ण है, अथवा पहाड़ी कठिन मिट्टी ही दिखाई देती है। विन्ध्य और पूर्वघाट पर्वतमालाकी मिट्टीकी प्रकृतिके साथ इसका अनेक विषयोंमें प्रमेद रहने पर भी एक विषयमें दोनों समान ही है यानी कंकड़ और पथरीली मिट्टी है। जहां कंकड़ और पत्थर दिखाई नहीं देता, (जैसे बर्द्धमान जिलेके दक्षिण और पश्चिम भागमें तथा हुगलीके पश्चिम-मांगमें) वहां मिट्टी इतनी कठिन है, कि उसको भी पत्थर-प्रकृतिकी ही कही जाय तो अत्युक्ति नहीं कही जा सकती और उसकी प्रकृति भी ऐसी है, कि बङ्गालके और कहीं भी वैसी मिट्टी पाई नहीं जाती। इस भूभाग की मिट्टी बहु युगयुगान्तरसे निर्मित है, सुतरां सोधो बातमें उसे पकी मिट्टी कही जा सकती है। यह निश्चित है, कि एक समयमें समुद्र गौड़के निकट तक फैला था अथवा और भी पहले गङ्गासागरसङ्गम जब राजमहलका साक्षिधर्म अवस्थित था, उस समय समुद्रका जल कभी भी इस मिट्टीकी पार नहीं कर सकता था। इसी कारण समुद्रका जल हट जाने पर जो चिह्न देखा जाता है या मछलियोंके अस्थिपञ्जर या जल जीवोंकी हड्डियां जो दिखाई देती हैं, वे सब इस मिट्टीमें दिखाई नहीं देती। इससे स्पष्ट है, कि इस मिट्टी पर समुद्रका जल नहीं था।

द्वितीय विभाग—पद्मा और बूढ़ी गङ्गाके उत्तरी किनारेसे हिमालयके नीचे तराई भूमि तक सारा भूभाग हिमालयकी ढालुई भूमि है। यह हिमालयके ऊंचे प्रदेशसे पद्माके उत्तरी तट पर क्रमागत ढालु होतो आई है। इस भूभागकी सर्वत्र ही मिट्टी एक प्रकारकी है; सभी जगह हिमालयके गात्रविधौत चालुकाराजि है। इन पर विञ्चित परिमाणसे बालुका मिली है। दो अंश मिट्टी एक अंश बालू रहनेसे यह भूमि जल-उत्पादनके लिये उपयोगी है। इस ढालुई बालुई जमीनमें सर्वत्र ही हिमालयको गात्रविधौत जलधारा अन्तःसलिलके रूपमें प्रयाहित रहने पर सारे देशकी भूमिमें कुछ कुछ जल-सिक्त और आर्द्र है। इस मिट्टीमें अधिक बालू रहनेसे

इस देशमें कूप खुदवानेके सिवा दूसरा कुछ उपाय नहीं । पोखर खुदवाने पर बालू गिर कर गहड़ा भर जाता है । फलतः लम्बा चीड़ा तालाव खुदवाया जा सकता है ; किन्तु छोटे छोटे पोखरे नहीं ।

बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि समुद्रसे इतनी दूर पर और हिमालयके नीचे इतनी बालुका, कहाँसे आई ? भूतत्त्वविदोंका कहना है, कि पृथ्वीके भूपञ्जर बननेके 'यूसिन' युगमें हिमालयके तटदेश तक समुद्र फैला हुआ था । केवल तट ही वषों—उसकी इस समयकी ऊँचाईका प्रायः एक तृतीयांश तक उस समय भी समुद्रमें डूबा हुआ था । यूसिनके बाद म्योसिन, द्विभोसिन और उसके बाद भूपञ्जरके चौथे युगके स्तर-निर्माणको किया चल रही है । इसमें म्योसिन स्तरमें ही प्रथम मनुष्य-सृष्टिका चिह्न प्राप्त हो जाता है । उसमें भी फिर निम्न म्योसिनमें प्राप्त चिह्न अति अस्पष्ट और सन्देहजनक है । ऊपर म्योसिनसे ही केवल मानवीय अस्तित्वके स्पष्ट चिह्न प्राप्त होनेसे उसको मानवीय युगका आरम्भकाल कहा जा सकता है । इस तरह एक एक स्तर गठित होनेमें कितने लाख वर्ष बीत जाते हैं । अतएव उन समयके समुद्र-परित्यक्त बालू आज भी प्रस्तरावस्थामें परिणत न हो कर जो अपने अवस्थामें विद्यमान है, यह कभी सम्भवपर नहीं विवेचित होता ।

यह बालुकाराशि हिमालयके गाढ़विद्यीत प्रस्तर रेणुकाके सिवा और कुछ भी नहीं । एक तो हिमालयके ढालू प्रदेशकी वजह प्रस्तरप्रयण अववां हेका भूमि है, सुतरां बालू जमा होनेमें अनुविधा कहाँ ? इस विभाग पर अर्थात् उत्तरांशकी जमीन प्रथम विभागके साथ सम-पुरातन और निम्नांशकी जमीन उसको अपेक्षा कुछ आधुनिक होने पर भी दूसरे दो विभागोंकी अपेक्षा पुरानी है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि तृतीय और चतुर्थ विभागकी जमीन जैसी कठोर देखी जाती है, इस पुरानी जमीनके किसी भागमें घैसी नहीं दिखाई देती । इस ढालू भूमिमें अन्तःसलिलकी प्रथम प्रवाह-क्रिया निरन्तर सम्पादित होनेसे ही इसका एक-माल कारण है । फिर यह भी स्वतःसिद्ध है, कि इन सब भूभागोंके उत्पन्न होनेके बहुत समय पहले यह बालुका ढीली भूमि पर जमा हुई थी ।

तृतीय विभाग—प्रलयपुत्रके पूर्वी तटसे नद्याखाड़ी, चट्ट-ग्राम आदि प्रदेश और पश्चिम ओर तमोलुकके निकटके स्थान । नैसर्गिक कारण-विशेषमें\* समुद्र हट जाने पर जिस तरह प्रकृतिका भूभाग ऊपर उठ जाता है, अचिकल उसी तरह प्रकृतिविगिष्ट भूमि ले कर इन सब स्थानोंको उत्पत्ति है । समुद्रके हट जाने पर स्थानविशेषमें जो बालुकाराशिका स्तूप जमा हो गया है ( जिसको टोला कह सकते हैं ) वही इन सब नयोदित स्थानके प्राचीनत्वका कारण है । यह सब स्तूप कहीं खण्ड खण्ड पर्वताकारमें विद्यमान है । कहीं छोटे छोटे कुछ ऊँचे-पहाड़ श्रेणियोंमें परिणत हुआ है । किन्तु स्थान-वितोषमें अब भी अचिकल टोलेके आकारमें बालू रह गया है । तमोलुकके निकटके टोले इस समय बालुकास्तूप है ; किन्तु चट्टग्राम आदि अञ्चलमें वे पर्वताकारमें परिणत हो गये हैं । इन सब पर्वतोंके बाहरी आवरण काट कर फेंक देनेसे भीतर अब भी बालुकास्तूप दिखाई देता है । किन्तु कहीं कहींका बालुकास्तर पत्थरके स्तरमें परिणत होने लगा है । इन सब पर्वतोंके बीचमें सब जगह सामुद्रिक जलज या जल-जीवोंका पञ्जर दिखाई देता है । चट्टग्राम प्रदेशके सीताकुण्ड तीर्थके निकट जो पर्वतमाला है, वह कितने अंशमें आग्नेय सभावके होने पर भी उसको उत्पत्ति और परिणति कुछ अंशमें उक्त प्रकारके सामुद्रिक बालुकासे हो हुई है । यह मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना होगा । ग्रह-देशकी पूर्वी सोमा पर दक्षिण उत्तरसे ओर जो पर्वतमाला जा कर हिमालयमें मिल गई है, उन सब पर्वतोंसे यह बालू-निर्मित पर्वतमालाकी प्रकृति सम्पूर्ण-रूपसे स्वतन्त्र है । ये सब पर्वतमाला बहुत युग

\* यूसिन युगमें जो सागर-जल हिमालय तक विस्तृत था, सेतायुगमें लड़ाज्वर करनेके बाद वह खामाधिक नियमसे हिमालयको छोड़ क्रमशः लङ्कामें चला गया । लङ्कादीपका यह विस्तृत मूलखण्ड भी इस समय प्राकृतिक नियमसे स्थानान्तरित हो पृथ्वीके विभिन्न अंशमें ग्राम और नगरका आकार बन गया । नदियोंका यह सारथ बलवान् है । अनुमान होता है, कि इसीसे ही या क्रमसे निम्न वनकी उत्पत्ति है ।

पहलेसे सृष्ट हुई है। समुद्र एक समय उसीके चरण-स्पर्श कर प्रवाहित हो रहा था। समय या कर वहाँसे हट कर उसने इस तृतीय विभागकी जमीनकी सृष्टि की है। यह भूभाग प्रथम और द्वितीय विभागसे बहुत अर्वाचोचन है। किन्तु अर्वाचोचन होने पर भी द्वितीय विभागसे बहुत अधिक कठोर हुआ है। किन्तु यह कठोरता प्रथम विभागके बराबर नहीं।

चतुर्थ विभाग—इस विभागकी मिट्टी सब जगह पड़ोली है, किन्तु किसी किसी जगह जरा कड़ी है। प्रथम और चतुर्थ विभागकी मिट्टीकी बराबरी करने पर स्पष्ट ही पृथक् घर्माफर्मात मालूम होता है। गङ्गाके दक्षिण राजमहलके दूसरे पार और उत्तर मालद्वहके पार—इन दोनोंकी मिट्टीका मुकाबला करने पर अच्छी तरह पार्थक्य दिखाई देता है। राजमहलके पार गङ्गाके जलघार तक पत्थर और फँकड़का रास्ता और ऊड़ी मिट्टी और ठोक उसके दूसरे पार सारी जमीन अथवा मालद्वह जिलाके दोआब पंचयुक्त मिट्टी या केवल राजमहल और मालद्वहके पार ही वर्षों, समग्र भागोरथीके दोनों पार मिट्टीकी तुलना करने पर दोनों मिट्टियोंमें सामान्य दृष्टिसे भी प्रमेद परिलक्षित होता है। भागोरथीके पश्चिम पारके नितान्त धारकी मिट्टी ले कर तुलना करनेसे विशेष कुछ भी प्रमेद दिखाई नहीं देता। जहाँ तक नदीकी किवासे मिट्टीका अंश छुट गया है या पहले छुट चुका है, उसकी सीमा पार कर जाने पर मिट्टीकी परीक्षा करना आवश्यक है।

पश्चिममें भागोरथी, उत्तरमें पद्मा और उसकी शाखा-प्रशाखा, पूर्वमें घलेभ्यती और मेघना तथा दक्षिणमें समुद्र तक इस गङ्गाके वक्षोप भूभाग ही चतुर्थ विभाग का आवतन है। गङ्गा और उसकी अलंघ्य शाखाओंके प्रवाह द्वारा लाई मिट्टीसे समुद्र भरा जा कर क्रमसे दिवारा पड़ कर चट्टीपकी सारी जमीन सृष्ट हुई है। इसलिये प्रायः समस्त भूभाग ही पड़ोली मिट्टी अति अधिकतरूपसे देखी जाती है। फलतः इस पड़ोली मिट्टीके गुणसे इस भूभागकी प्रायः सारी जमीन उर्वराशक्ति भी इतनी अधिक है, कि उसके साथ अन्य किसी विभागकी तुलना नहीं की जा सकती। यहाँ चर्पके भीतर ही

कई तरहकी फसल उत्पन्न की जा सकती है। एष्य जमीन यदि कुछ भी जोती बोई न जाय पड़ती रह जाय, तो बहुत शीघ्र घास-पात जङ्गलसे परिपूर्ण हो जाती है।

पहली कहो हुई चार प्रकारकी मिट्टियोंमें पहली प्रकारकी मिट्टी सबसे नीरस है। चौथे प्रकारकी जमीनका तरह किसी समय ही घने जङ्गलोंसे पूर्णकी अवरथा नहीं होती। अथवा वहाँ उद्भिदोंकी वृद्धि और विनाश भी ऐसी सतेज या शीघ्रतर नहीं। द्वितीय और तृतीय विभागोय जमीनकी उर्वरता प्रायः एक समान है तथा प्रथम विभागोय जमीनकी अपेक्षा बहुत गुणमें सतेज है। यहाँ तक, कि कोई कोई अंश चतुर्थ विभागके जैसा है।

चतुर्थ विभागकी मिट्टी और तृतीय विभागकी मिट्टी यद्यपि दोनों ही क्रमसे समुद्र हट जानेसे जाग उठा है सही; किन्तु इनके निर्माण-प्रकरणमें प्रकृतिगत विभिन्नता बहुत है। इस तरहकी मिट्टीके निर्माणसे समुद्रके गिरे उबार-भाटाका समय जल हट जानेके साथ कुछ सादृश्य दिखाई देता है। भाटाके समय समुद्रके डालपु किनारेकी भूमिमें जिस तरह स्तवक-स्तवकमें ढाग रख जल गोचे जा कर गिर जाता है, यहाँ भी उसी तरह कोई नैसर्गिक कारणयश कालक्रमसे जैसे समुद्रका जल स्तवक-स्तवकसे हट कर पृथक् हो गया है, ठीक उसी तरह ही इन सारे जमीनका उदय हुआ है और उसके साथ साथ घायुके प्रयत्न आघातसे बालुकाराशि स्तूपीकृत हो कर और उसी कारणसे क्रमसे मजबूत हो प्रकाण्ड प्रकाण्ड पालुके ढोले दिखाई देने हैं, किन्तु चतुर्थ विभागकी मिट्टीकी निर्माण-परिपाटी दूसरे तरहकी है।

गङ्गालके दक्षिणका चौथीसप्रगना, खुन्ना, बरिजाल जिलेका दक्षिण भाग और सुन्दरवनकी कवस्था मनोयोग-पूर्वक परिदर्शन करनेसे इस चतुर्थ विभागकी भूमि-निर्माणका कींगल अति सहज हो अनुभव किया जा सकता है। नदीके प्रवाहसे लाई मिट्टी क्रिया द्वारा नदीके सङ्ग-सम्बलस्य समुद्रमें धर पड़ता है सही; किन्तु यह एक बार ही कुछ स्थान चारों ओर समानमापसे भर

कर टीला नहीं बन जाता या समान भावसे उच्च नहीं हो जाता ।

नदीके प्रवाहसे इस तरह मिट्टीकी ढेर समुद्रगर्भमें फेंके जाने पर पहले त्रिकोण क्षेत्रके आकारमें मुद्दाने पर समुद्रको भरनेकी चेष्टा करते हैं और इस त्रिकोण क्षेत्रका तलदेश नदीकी ओर तथा आगेका कोण समुद्रकी ओर रहता है । किन्तु समुद्रका प्रवल स्रोत-वेग छोटी चौड़ाई-वाले स्थानोंका काट कर फेंक देता है । इसी कारण जब भरा हुआ स्थान क्रमसे समुद्र छोड़ उठना छे, तब एक अविच्छिन्न त्रिकोण भूखण्ड निर्मित होनेके बदलेमें कुछ अंश मूळ भूभागमें संलग्न है और अवशिष्ट बहुखण्ड द्वापारकारमें परिणत हुआ दिखाई देता है । उन द्वापारोंमें जो सबके मध्यस्थलमें अवस्थित हैं, वह छोटी चौड़ाई और लम्बे आकारमें अवस्थित हैं । फिर यह भरा हुआ भूखण्ड जब जल हटनेसे निकल नहीं आया था, फिर भी मिट्टी जमने लगी थी, तब समुद्रजलका स्रोत-वेग और उसका गात्र काट कर फेंक या विधीत कर नहीं सका था । वरं उसके मध्यस्थित नीचे और नरम अंशको काट कर यहाँ गहरी रेखा बना देता है । जल हट जानेसे ये ही सब रेखायें उस समय बहोपमें अनेक छोटी बड़ी नदियों और नहरोंके रूपमें परिणत होती हैं । यह नवोदित भूमि बपनो जल-क्रिया द्वारा फिर जमा हो कर और क्रमशः उवारकी प्रवृत्तासे प्रभावित हो पट्टीली मिट्टी द्वारा फिर निर्मित होने पर एक तरहसे चिरस्थायित्व प्राप्त करती है, अपूर्ण निम्नभागमें हट जाती और यहाँ फिर उसी तरह निर्माणका कार्य करती रहती है । पुनर्निर्मित भागमें तब, जो कुछ नदी और नहर रह जाती हैं, वह गिनती और आवश्यकतमें सामान्य और उसके द्वारा गठनका कार्य इतना सुस्तीसे होती है, कि देशके षोचकी मिट्टी भी विशेष रूपान्तरित नहीं होती ।

गाण्डेय बहोप इसी तरह ही गठित हुआ है और अब भी उसके दक्षिण भागकी गठनक्रिया इस तरह पूर्ण-प्रतापसे चल रही है । नित्य हो मनुष्यका आवास और प्यथहार-उपयोगी नये नये भूमिखण्ड समुद्रसे जल हट जानेके कारण उत्पन्न हो रहे हैं । उपरोक्त भूगठनप्रक्रिया-

के अभिनयमें आज भी समुद्रगर्भमें मिट्टीनिर्मित असंख्य चर दिखाई देते हैं, जो उवारके समय डुबे रहते हैं और भाटेके समय निकल आते हैं । यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि ये ही भविष्यमें अच्छी तरहसे जमीनकी पीठ पर नदी और नहरके आकारमें दिखाई देते हैं, समय पा कर ये नदी नाले भी विस्तृत आयतन हो कर शुष्कगर्भ हो कर हट जायेंगे और छोटे छोटे सब द्वाप देशके साथ छुट कर एक आकारमें परिणत होंगे ।

गीड़के पूर्व-दक्षिणका समुद्रभाग भी इसी तरह भरा भूमिखण्डके उदयसे क्रमशः दक्षिण ओर हट गया है और सम्भवतः उसी उन्नत भूखण्ड पर वर्त्तमान सुन्दरवनकी तरह असंख्य नदी नाले तैयार हो जायेंगे । उन नदी-नालोंमें मूल-प्रवाह ही सर्वापेक्षा प्रवल या जलधारा था । वह मूल-प्रवाह आज भी पद्माके आकारमें तट-भूमिको तोड़ कर प्रवाहित हो रहा है ।

फलतः समुद्र हट जानेसे जब समुद्रगर्भमें प्रथम द्वाप उठा, तब गङ्गाका मूल-प्रवाह भागीरथीका प्वात ही कर प्रवाहित हुआ था । इसी कारणसे बहुत दिनोंसे लोग गङ्गासागर-सङ्गमको "गङ्गासागरसङ्गम" कहते हैं । पद्मा और मेघना सम्भवतः पहले समुद्रको खाड़ी थी, पीछे नदीके रूपमें परिणत हुई है ।

ईसासनकी प्रथम शताब्दीमें लिखे पेरिप्लुसमें दिखाई देता है, कि वर्त्तमान रङ्गपुर प्रभृति बञ्चलसे तेज-पात और अन्यान्य व्यवसाय वाणिज्यकी चीजें गङ्गासे नाव या जहाज द्वारा तमोलुकमें लाई जाती थीं । अवश्य ही स्लोकार करना होगा, कि गङ्गाका मूल-प्रवाह भागीरथीके धादसे प्रवाहित न रहनेसे किसी तरह ये सब व्यवसायकी चीजें उत्तरवङ्गसे गंगा द्वारा बहा कर तमोलुक भा नहीं सकती थीं । अथवा ऐसा भी हो सकता है, कि इस समय जैसे मेघनाके मुद्दाने पर बहुत दूर घुस कर समुद्र-खाड़ीको भी मेघना ही कहते हैं, उस समय भी उसी तरह गंगाके मुलकी ओर बहुत दूर तक भीतरकी ओर तमोलुकके किनारेकी समुद्रखाड़ीको गंगा कहते होंगे । पेरिप्लुसमें गाण्डेय बहोपमें वाणिज्य द्रव्यादिके प्रसंगमें उसी अर्थमें ही गंगाका निर्दिशोपलव सूचित हुआ है । पेरिप्लुससे प्राप्त इसके साथी और भी ये दो



से कोयला निकाला जा रहा है। यह सुविस्मृत खाद देण कर अनुमान होता है, कि प्राचीन युगमें रानीगञ्जसे बराबर तक एक त्रिचिड बन मौजूद था।

कोयला और प्रस्तर उध्द देखो।

कोयलेके सिवा भूगर्भमें लोहा भी पाया जाता है। बराबर और धीरेभूममें कारखाना खोल कर लोहा गन्तिका प्रवन्ध हुआ था। अब भी कहीं कहीं देशी प्रधास लोहा गलाया जाता है। छीर देखो। स्थान स्थान पर अथरकको खान पाई जाती है।

पहले यहाँ समुद्रके जलसे नमक तैयार कर बेचा जाता था। इसके लिये एक बहुत बड़ा कारखाना खोला गया था। सरकारने विलायती नमकका ध्ययसाय बन्द होनेके कारण देशी नमकका कारोबार उठा दिया। अब भी उड़ीसे और २४ परगनेके किसी किसी स्थानमें राजकीय फानूनके अनुसार नमक तैयार किया जाता है।

लवण देखो।

बङ्गालमें उल्लेख योग्य कोई पहाड नहीं है। उत्तरमें एकमात्र हिमालयपृष्ठका वार्जिलिङ्ग शृङ्खलाग है। बङ्गालके गयनरने यहाँ राजकार्य-सम्पन्न करनेके लिये एक नगरकी प्रतिष्ठा की है। इस समय यह स्थान और इसके निकटका कसिंथोङ्ग स्वास्थ्यके लिये उत्तम है।

कृषि।

बंगदेश नदीमातृक देश। गंगा और ब्रह्मपुत्रकी बहुत शाखा-प्रशाखाएँ इस देशमें बहतेसे जमीन उर्बरा है। कृषि-कार्यके लिये समूचे भारतमें ऐसा स्थान कहीं नहीं है। इसलिये बंगालको "सुजला सुफला ग्रन्थ-श्यामला" कहा है। नीचे प्रधान प्रधान उत्पन्न द्रव्यकी मोटा-मोटी एक तालिका और उत्पन्न स्थान दिया गया है धारीगाल (वाकरगञ्ज), चौबेस प्रगना, चर्दमान, मेदिनीपुर, दिनाजपुर, धीरभूम और हुगली जिलेमें धान अधिक पैदा होता है। नदीया, मालदह, मुर्शिदाबाद जिलोंमें धानकी अपेक्षा गेहूँ बहुतायतसे होता है। फरीदपुर, पबना, डाका, रङ्गपुर, मैमनसिंह, राजशाही, जलपाईगोड़ा और पूर्व-वर्धित चौबेस प्रगना, नदीया और हुगली जिलेके स्थान स्थानमें पटुआ (पाट), तम्बाकू, सोंठ, हल्दी आदि चीजे उत्पन्न होतीं और यहाँमें नाना-नगरीमें भेजी जाती हैं।

सिवा इनके बाँकुड़ा, नट्टग्राम, नवापारी, त्रिपुरा, चगुड़ा, दार्जिलिङ्ग, यगोहर, खुलना आदि स्थानोंमें भी खेती बहुत होती है।

पहले कहा जा चुका है, कि कृषिकार्य ही यहाँके अधिवासियोंकी उपजीविका है। उत्पन्न द्रव्यमें धान और पाट प्रधान है। सिवा इनके यहाँके किसान भाय-श्रकताके अनुसार तेल होने वाले तेलहन, चना, उखद, आदि कई तरहकी फसले पैदा होती हैं। आमन, आउम, घोरी, ओरी या जाड़ा (जला) धान विभिन्न मसयमें उत्पन्न होता है। सरिसों, तीसी (अलसी) और उदर आदि रबीकी फसल समयान्तरमें उत्पन्न होने देखी जाती है। पटुआ या कोष्टरकी खेती इन दिनों उत्तरोत्तर बढ़ रही है। पूर्व बङ्गकी नीलकी कौटियाँ इस समय यों ही गिर पड़ रही हैं। सिर्फ पश्चिम बङ्गके बड़े स्थानोंमें कुछ नील पैदा होता है। हिमालयके नीचे दार्जिलिङ्ग जिलेमें चाय और सिनकोना (कुनैन) होती है।

इनके अलावा अनेक प्रकारके फलोंके लिये बंगाल प्रसिद्ध है। मालदहका फजली आम बड़ा मगहर है। मुर्शिदाबाद और राजशाहीमें बहुत आम होता है। दार्जिलिङ्गका कमला नोथू बड़ा उपादेय फल है।

कलकारखाना और शिल्प।

देशके थोड़े बागिन्दे शिल्पदर्म द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। पुराना युद्गशिल्प कमता जा रहा है तथा चाण्पीय और वैद्युतिक कलका ब्यपहार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। पहले जुलाहीकी संख्या आजकलकी अपेक्षा बहुत उबादा थी। पहननेका कपड़ा वे ही प्रस्तुत करने थे। बड़िया पतला कपड़ा बहुत तैयार होता और विदेश भेजा जाता था। उनमेंसे टाका ही प्रसिद्ध था। यहाँकी तैयारी मसलिनका भादर आज भी कम नहीं है। आज कल कलके कपड़े का प्रायः समी जगह प्रचार है, ती भी कलकारखानेमें बंगदेश बम्बई प्रदेशमें बहुत पीछे पड़ा हुआ है। निम्न-लिखित पुराना युद्गशिल्प आज भी विद्यमान हैं—

खुनी कपड़ा (चरदननगर, डाका, शान्तिपुर, हबड़ा और टांगाल), रेशमी कपड़ा (मुर्शिदाबाद, मालदह,

राजशाही, मेदिनीपुर, बोरभूम और बांकुडा) इनके अलावा खोना, चांदी, पीतल और हाथी दांतका बना शिल्प द्रव्य ।

कल-कारखानेमें सूने और कपड़ेकी कल, चटकी कल, कागजकी कल प्रधान है। कलकत्ता, श्रीरामपुर और कुष्ठियाके कपड़ेकी कल प्रसिद्ध है। चटका कारखाना कलकत्तेके निकट नदीतीरमें अवस्थित है। घाली, टोटामढ़ और रानीगंजमें कागजकी कल है। कलकत्ते और उसके पासके अनेक स्थानोंमें पाटकी कले (Jute Presses) हैं। कलकत्ते और हवड़ेमें कई सुवृहत् Engineering works हैं।

अन्यान्य छोटे बड़े कलकारखानेमें कलकत्तेका चमड़ेका कारखाना, साधुगका कारखाना, चायकी कल और सलाईका कारखाना प्रसिद्ध है। यशोर जिला और कलकत्तेके निकट काशीपुरकी चीनीकी कल रानीगंज और कलकत्तेका मृत्शिल्प (Pottery) का कारखाना, हवड़ा और शिवपुरका रस्सीका कारखाना विख्यात है।

अधियासी श्रेणिकल्प इत्यादि ।

बंगालकी जनसंख्या ४ करोड़ ५६ लाखके करीब है अर्थात् प्रति वर्गमीलमें ५२८ लोगोंका वास है। समूचे भारतमें यही सर्वाधिक घनजनवसतिपूर्ण प्रदेश है, किन्तु यहाँके अधिकांश वासिन्धे बेकार हैं। इसी कारण देशकी दरिद्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, इसमें सन्देह नहीं। समूची जनसंख्यामें सिपाई एकतृतीयांश मनुष्य खेती-बारी कर अपने जीविका चलाते हैं। बहुत थोड़े मनुष्य कलकारखाना, भिन्न भिन्न शिल्प कार्य और प्यथसायमें लगे हुए हैं। बाकी मनुष्य नौकरी कर अपना पेट पालते हैं। निकम्मे मनुष्योंमें घालक और बूढ़ेकी ही संख्या ज्यादा है।

हिन्दू, मुसलमान, ख्रिष्टान आदि विभिन्न धर्म-वलम्बो जातियोंकी ले कर यह जनसंख्या संगठित है। यथार्थ बहुवासियोंमें सामाजिक मर्यादानुसार जो जो श्रेणी-गतविभाग हुए हैं, नीचे उनके नाम या सामाजिक संज्ञा लिखी गई—

इन प्रदेशोंके प्रत्येक जिले और उनके उपविभागोंमें अनेक नगर मौजूद हैं। ये नगर प्रधानतः वहाँके वाणिज्य

केन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें जो विशेष समृद्ध और घन-जन पूर्ण हैं, नीचे उसकी फिहरिस्त दी गई—

कलकत्ता (जनसंख्या १२२२०००)—बंगालकी राजधानी। ब्रिटिश साम्राज्यके मध्य जनसंख्यामें यह स्थान दूसरा है। भारत भरमें यह पहला बन्दर और दूसरा शिल्पकेन्द्र है। यह भागीरथीके मुहानेसे ८६ मील उत्तरमें अवस्थित है। समूचे संसारमें यहाँके समान और इतना पाट प्रस्तुत नहीं होता। पाट, चाय, अफीम, चावल, मेलहन, कोयला, पशुचर्मा और नीलकी कलकत्तेसे रपतनी होती है। नगरमें बहुसंख्यक सुरम्प अट्टालिका है इसलिये कलकत्तेको City of palaces कहते हैं। कलकत्ता भारतवर्षका एक प्रधान शिक्षा केन्द्र (Educational Centre) है।

हवड़ा (जनसंख्या १८००००)—बंगालका दूसरा नगर। ईष्ट-इण्डियन रेलवे इस नगरसे आरम्भ हो कर कामरा, दिल्ली और नागपुर पर्यन्त दौड़ गई है। हवड़ेमें कई कलकारखाने हैं। इसके निकट शिवपुरमें गवर्नमेण्टका बागान (Botanical Garden) और पृथ्विद्यालय (Engineering College) अवस्थित है।

ढाका (जनसंख्या १०८०००)—मुसलमानी अमलदारीमें यहाँ बंगालकी राजधानी थी। यह पतला कपड़ा बुननेके लिये प्रसिद्ध है। समग्रत यहाँ एक विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुआ है।

चट्टग्राम (लोकसंख्या २२०००)—यह एक उन्नति-शील बन्दर है। आसाम-बंगाल रेलवे द्वारा यह आसाम और चांदपुरके साथ मिला हुआ है। पाट, चावल, चाय यहाँसे भेजी जाती है।

मुर्शिदाबाद—बंगालके नवाबोंकी शेष राजधानी। यह स्थान रेशमी कपड़े और मोटे आमके लिये प्रसिद्ध है।

चन्दननगर—यह फरासी राधिकारभुक्त है। यहाँ मदीन सूती कपड़ा प्रस्तुत होता है।

रानीगंज—यह कोयलेकी धान और मृत्शिल्प (pottery) के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ एक कागजकी कल है।

दार्जिलिंग—बंगालकी प्रथम-राजधानी। यह एक प्रधान स्वास्थ्य-निवास (Sanitorium) है।

राष्ट्र गुरु—यहां बंगाल-नागपुर रेलवेका प्रधान कार-  
खाना है। यह उत्तर लाइनका एक प्रधान केन्द्र है।

वासनसोल—ईष्ट-इण्डियन और बंगाल नागपुर  
रेलवेका जड़धान। यहां ईष्ट इण्डियन रेलवेका बहुसंख्यक  
locomotives रहता है।

सीतारामपुर—यह कोयलेकी खानके लिये  
प्रसिद्ध है।

नारायणगञ्ज—यह पूर्वा-बंगका एक प्रधान बन्दर  
पर्व पाट और चावलके व्यवसायके लिये विख्यात है।  
यहां पाटकी बहुत सी फले हैं। नारायणगञ्ज ढाकासे  
रेलवे लाइन द्वारा संयुक्त है। यहांसे स्टीमरके जरिए  
ग्वाल्फो और चाँदपुर जाना होता है।

ग्वालन्डो—पद्मा और यमुनाके संगम पर अवस्थित  
है। यह ईष्टर्न बंगाल रेलवे द्वारा फलकतोसे तथा स्टीमर  
लाइन द्वारा नारायणगञ्ज, चाँदपुर और फलकतोके साथ  
मिला हुआ है। यह उत्तर और पूर्व बङ्का एक प्रधान  
बन्दर है।

निगाजगञ्ज और मदारीपुर—यह पाटके व्यवसाय  
के लिये प्रसिद्ध है।

गवहीग—बंगालके हिन्दू राजाओंकी शेष राजधानी।  
यह चैतन्यदेवका जन्मस्थान और लीलाक्षेत्र है।

बाटोपुर—यहां गवर्नमेंटेकी पशुशाला (Zoologi-  
cal garden) है।

बराबर—यहां लोहेकी खान पाई जाती है और लोहा  
भी प्रस्तुत है।

नैदाटो—ईष्ट इण्डियन और ईष्टर्न-बंगाल रेलवेका  
जड़धान। यहां भांगोरथीके ऊपर एक सुन्दर सेतु है।

वर्तमान अवस्था।

अवस्था परिवर्तनके साथ बंगलासी बंगालियोंका  
भाग भी मन्दा होता जा रहा है। जिन बंगालियोंकी  
शेर-कहानियां चिरन्तन कालसे इतिहासमें उजड़ल-पट  
पर अंकित हैं, वे भी बंगाली आज मुहो मर अन्नके  
लिए लालायित हैं। महाभारतके युगमें भी बंगाली वीरोंका  
प्रभाव दिग्भ्रममें व्याप्त हुआ था। स्वाधीन बंगाली राजे  
अपने क्षेत्रके प्रजापते राज्यशासन कर गये हैं। दूर-

यंग, पालयंग और सेनयंगीय मरपतियोंका वीरत्व  
भीष्य शिलालेखों और प्राचीन राजकुल प्रगल्भ दिवा  
गया है। बंगाल जब मुसलमानोंके हाथ चला गया था,  
तब भी बारभूँरवाका अनुकूल प्रताप समग्र बंगालमें  
प्रतिध्वनित होता था। राजा प्रतापादित्य, राजा गणेश,  
सीताराम आदिकी वीरत्व कहानियां और सुद-गिणु-  
णताका विषय कौन नहीं जानता? अचिर दिनोंकी बात  
नहीं, ईसाकी १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें जानकीराम,  
मोहनलाल आदि बंगाली वीरोंका स्वतन्त्र-रत्न रणक्षेत्रमें  
अवतारण होना हम देखने हैं। इसके बाद १९वीं शताब्दीमें  
लेफ्टनेण्ट कालू घोषने भी उस वीरत्व प्रभावकी शक्तुण-  
रधि हाथमें ली थी। आज भी उन दिनोंकी बात है,  
कि श्रीसुरेशचन्द्र विश्वास आदि कई बंगाली वीरोंने  
जर्मन-पारमें विदेशोंमें जा कर धीरता दिखलाई है।  
किन्तु दुःखका विषय है, कि अंगरेज राजके कठोर  
शासनमें और राजदण्डविधि के नियमके कारण सब  
वीर न जाने कहां विलुप्त हो गया है, उसका चिह्नमात्र  
तक नहीं।

सुप्रसिद्ध और प्राचीन बंगालके विभिन्न राजवंश  
अब वैसे राजशक्ति-सम्पन्न नहीं। दरिद्रताके कारण वे  
भी अब निस्तेज और निःश्रम हो गये हैं। उनके बंग-  
धर या उत्तराधिकारी केवल उपाधि ले कर ही संतुष्ट  
हैं। कुछ राजे भ्रष्टप्रसन्न हो कर सरकारके अधीन ही  
वृत्तिमालका उपभोग कर रहे हैं। यद्यमानराज, गिणु-  
पुरराज, कुचविद्यारराज, नदिवाराज, नाटोरराज, समग्र  
शक्तिहीन हो गये हैं। इनके सिवा और भी अनेक राजे  
और जमींदार हैं, वे राजानुप्रदलामके सिवा कभी भी  
स्वाधीनताकी लामेच्छा नहीं करते। परं विषयवामना और  
राजाकी कृपाप्राप्तिके लिये निरन्तर अधिवेचकोंकी तरह  
दरिद्र प्रजाका रक्तजोषण कर रहे हैं। अर्थात्प होनेके  
कारण प्रजाका बाहुबल अल्पोदित हुआ है और माघ  
हो साथ राजनिका मो समाय हुआ है। दरिद्र प्रजा  
इसी तरह भूखों मर रही है। उन पर प्रगयान कष्ट पर  
कष्ट दे रहे हैं। यह निरन्तर दुर्गिणसे पीड़ित हो रही है।  
बनावृष्टिके कारण अन्तमागमें प्रजाका सर्धानाज हो  
रहा है।

धर्म ।

इन सब अधिवासियोंमें प्रधानतः हिन्दू, मुसलमान, देशी और विदेशी ख्रिष्टान और आदिम अनार्य-धर्मसेवी दिखाई देते हैं। हिन्दू मुसलमान और ख्रिष्टान-धर्मावलम्बी होने पर भी वे सम्प्रदाय-विशेषमें विभिन्न हैं। शैव, शाक और वैष्णव आदि जैसे हिन्दुओंमें श्रेणी भाग हैं और उनमें फिर रामानन्दी, कवीरपन्थी आदि जैसे साम्प्रदायिक विभाग दिखाई देना है, मुसलमानोंमें भी उसी तरह सिवा और सुन्नीके सिवा बद्रावी, फराजी आदि पृथक् मत विद्यमान हैं। फिर ख्रिष्टानोंमें रोमन, कैथलिक, पुनानी गिरजे और प्रोटेस्टेंट समाजके निवा-मेधविष्ट चापेल, वेमलियान मिसन, एपिसकोपेलियन मिसन, लुदार मिसन आदि साम्प्रदायिक मतभेद दिखाई देता है। अनार्यों सम्प्रदायका धर्ममत स्थान-भेदसे पृथक् पृथक् है।

बौद्ध और हिन्दू-धर्मस्रोतकी प्रबल धन्या एक समय बङ्गालमें भरपूर थी। पालवंशी बौद्ध राजाओंके अधिकांशमें बौद्ध-धर्मका जो अक्षुण्ण प्रभाव बङ्गालमें विराज रहा है, आज भी तान्त्रिक उपासनामें उसका प्रभूत निदर्शन विराज रहा है। वैदिक उपासनापद्धति उस समय एकदम ही बङ्गालमें अन्तर्हित हो गई थी, इससे महाराज आदिशूर कनोजसे पांच सांनिक ब्राह्मण ला कर बङ्गालमें वेदमार्गको अक्षुण्ण रखनेकी चेष्टा की। उसके बादके सेनवंशीय हिन्दू राजगण भी हिन्दूधर्म प्रतिष्ठाके लिये विशेष मनोयोगी हुए थे। बङ्गालकी कीलीन्य मर्त्यादा इस ब्राह्मण-प्रभाव-विस्तारका अवाप्तर फल है।

बौद्ध और हिन्दुओंके समसमयमें बङ्गालमें जैन-धर्मका विस्तार हुआ है। इस समय भी नाना स्थानोंमें जैन और बौद्ध-कीर्तियां परिलक्षित हो रही हैं। इन सब कीर्तियोंका विवरण बङ्गालके प्रत्नरत्न प्रसङ्गमें लिखा गया है। हिन्दू, जैन और बौद्धधर्मका विशेष विवरण उन पन्नोंमें देखा।

इसके बाद सेनवंशके अधःपतनसे बङ्गालके मुसलमानोंके अभ्युदय होनेसे यहां पठान, मुगल आदि विभिन्न श्रेणियोंके इसलाम-धर्मावलम्बियोंका अभ्युदय हुआ। इसी समय बङ्गालके बहुतेरे अधिवासियोंने इसलाम-

धर्म ग्रहण किया। तबसे बङ्गालमें अनेक फकीरों, पीरों-का आधिभवं हुआ। इन सब पीरोंके स्थानमें आज भी मेला लगता है। हिन्दू-मुसलमान दोनों भक्तिपूर्वक पीरकी पूजा किया करते हैं। बहुत दिनोंसे मुसलमान-के संसर्गसे हिन्दू समाजमें सत्यनारायणकी (सत्यपीर)-की पूजा प्रचलित हुई है। मुसलमान रुद्ध देखो।

बङ्गालके मुसलमान राजत्वके मध्यकालमें अर्थात् ईस्वीसन्की १५वीं शताब्दीके अन्तमें सन् १४८५ ई०में नवद्वीपमें श्रीचैतन्य महामुनि का आधिभवं हुआ। बङ्ग-के सुविख्यात सुलतान हुसैन शाह और नसरतु शाहके राजत्वकालमें उन्होने स्वयं वैष्णव मत प्रचार किया था। उसके बाद वैष्णव-धर्म उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। उनके समसामयिक और परवर्ती वैष्णव कवि धर्म प्रचारमें सहायक हुए थे। इन्होंने उत्तमोत्तम संस्कृत ग्रन्थ रचना और कुछ वंगानुवाद कर जनसाधारणके सममुख भागवत आदि प्रोक्त वैष्णव-धर्मके विशद मर्मको व्याख्या की थी। उनकी सुललित पदलहरी पांड और गान कर बहुतेरे विमुग्ध चित्तसे श्रीचैतन्यके चरणोंमें आश्रय ग्रहण करते हैं। श्रीजीव गोस्वामी, रूपसनातन, कृष्णदास कविराज, कविकर्णपुर, नरोत्तम दास, चासुधोष, छानदास, गोविन्द दास, विद्यापति, जयदेव आदि वैष्णव कवियोंकी छान-कहानी आज भी बंगाल-के एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक प्रतिध्वनित होती है।

श्रीचैतन्यदेव और अन्वान कवियोंका नाम देखो।

वैष्णवधर्मवृद्धकी शाखा-प्रशाखाके रूपसे कर्त्ताभजा, गुरुसत्य, सती-भा, हरिवोला, रातनिकारी और उरकलकी सत्कुली, अनन्तकुली, कविराजो, निहङ्ग, चिन्दुघारी, अतिवड़ी आदि मतके उद्भव होने पर भी यथार्थमें यह मिननव धर्ममत नहीं कहा जाता है। ख्रिष्टीय १६वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें राजा राममोहन रायने वेदान्त मत प्रतिपाद्य ब्राह्मणमत प्रचार किया। उसी समयसे ही आदि ब्राह्मणसमाजकी रथाति हुई। इसके बाद उनके प्रचलितमतका संस्कार कर महात्मा केशवचन्द्रसेनेने नव-विधान (ब्राह्म) मतकी प्रतिष्ठा की। राममोहन राय, केशव-चन्द्रसेन और ब्राह्मणमज रुद्धमें विशेष विवरण देखो।

महात्मा राममोहन जिसे समय दक्षिण-बङ्गमें ब्राह्मधर्म

प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें सती-शाहादि निवारणरूप हिन्दूधर्म विरुद्ध घोरतर समाज-विप्लवकर आन्दोलन ले कर हिन्दू भविष्यासियोंको तंग कर दिया है, प्रायः उसी समय ही १८२८ ई०में पूर्व-यङ्गमें हाजी सरिख उल्लाने फराजी नामक संस्कृत इस्लाम-धर्ममत प्रवर्तन द्वारा सुन्नी-सम्प्रदायको एक अभिनव शाखाका विस्तार किया चालू फराजी देखा ।

यङ्गका पुरावृत्त ।

अति प्राचीन कालसे यङ्गाल नाना नगर तथा छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था । अबसे कुछ समय पूर्वा-यङ्गालकी सीमा पश्चिम-विहारकी सीमासे-पूर्व चट्टाम और आसामकी सीमा और उत्तरमें हिमालयका पाद-देशसे, दक्षिणमें यङ्गोपसागर और उड़ीसाकी सीमा तक थी, किन्तु पहले ऐसी न थी । कब इसका आवतन बढ़ा है और कब कई राज्योंमें विभक्त हो कर एक छोटे देशके रूपमें परिणत हुआ है, इसका परिचय यङ्गके इतिहास-की आलोचना करने पर यह अच्छी तरह समझमें आता है ।

वैदिक समयका यङ्ग ।

प्रथम देखना होगा, कि यङ्ग नाम कितना प्राचीन है ? और 'यङ्ग'(१) कहनेसे किस स्थानका बोध होता है । जगत्का आदि-ग्रन्थ ऋक्संहितामें अनार्यनिवास "कीकट" (पीछेका नाम मगध), ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें 'पुण्ड्र'(२) और अथर्वसंहितामें 'गङ्ग' (३) देशका उल्लेख करने पर भी 'यङ्ग' नाम नहीं । हम ऋग्वेदके ऐतरेय भाष्यकमें (२ ११) सबसे पहले यङ्ग नाम पाते हैं । यथा—  
 "इमा प्रजास्तिस्तौ भत्याय मार्य स्तानीमानि यथाधि ।  
 यद्वायगधाश्चेत्पादान्मन्या अरुमभितो विविभ इति ॥"(४)

\* Bhattacharja's Castes and Sects of Bengal ग्रन्थमें भत्याय उपद्रास्यका संक्षेप परिसय द्रष्टव्य ।

(१) ऋक्संहिता ३।२३।१४ । (२) ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८ ।

(३) अथर्वसंहिता १।२३।१४ ।

(४) यदा गत्याकारने 'यद्वाः वनमता वृद्धाः' 'अयगधाः मीदिय-वाधा भीषय्या' 'ईरवादाः टरानादाः सगोः' येना अर्थ किया है ।

किर माया दीक्षाकार भानन्दतोर्यने 'यथाधि' अर्थमें पिशाच, 'यद्वाः

'यद्वाः' अर्थात् यङ्गदेशयासीगण, 'वगधाः' अर्थात् मगधयासीगण और 'चेरपादाः' अर्थात् चेद्रेनवासी-गण । यह त्रिविध प्रजा हो यथा दुर्घलता यथा दुराहादर या बहु अपत्यतासे काक, चटक और पारायत (क्यूतर) आदि सृष्ट हो ।

यास्तयिक वैदिकयुगमें यङ्गदेश अनार्यनिवास हो कहा जाता है । इस अनार्य जातियोंको लक्ष्य कर प्राचीन भाष्यकारोंने यद्वावगधका राक्षस अर्थ [किया होगा । आनन्दतोर्य उसी प्राचीन भाष्यका ही अनुवर्त्तो हुए हैं ।

केवल ऐतरेय भाष्यक कह कर नहीं, परं ऋक्संहितामें कीकट या मगध अनार्यनिवास होनेसे निन्दित है । ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी 'पुण्ड्र' या पुण्ड्रतन-पद्वासां 'दस्यूतां भूमिष्ठा' अर्थात् डाकुओंके निता (जनक) कह कर घुणित और अथर्वसंहितामें गङ्ग और मगध-वासियोंके प्रति अनार्योचित श्लेषोक्ति देखी जाती है । इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है,

मगध' अर्थमें राजव और 'ईरवादाः' अर्थमें अमुर निर्देश किया है अथवा भाष्यकार और टीकाकारके बीचमें भी यथेष्ट मतभेद देखा जाता है । भाष्यकाले गदा वृक्ष, भोगधि और सर्प अर्थ किया, उन्हींका टीकाकारने यही पिशाच, राजव और अमुर अर्थ स्वीकार किया है । इस तरहका मतभेद देल कर अध्यायक मोद्रमूत्रले जिला है—

"Possibly they are all old ethnic names like Yanga, Chera &c." (Sacred Books of the East, Vol 1. p. 202f.) अध्यायक सत्यमत सामाजिकी महाग्रन्थने भी अपनी प्रदीदीक्षामें इस तरह व्याख्या की है—

"अस्मन्मते ह्यय 'यद्वावगधाश्चेत्पादाः' इत्यस्य व्याख्यानाये-दशं कटकवर्षनं निम्नप्रयोजनम् । अथ 'यद्वा' व' ईरवायाः 'यगधा' मगधा, 'चेरपादाः' चेद्रेनामजनरदायिनः । तास्त्रिविधा एव प्रजाः 'यथाधि' काकचटकनातयदिषट्पयाः । दुर्घनार्येन च सादरयम् । इहाद्वैतकथावि मगधत्वेन परिभरः, दक्षिणपीताप्टुयोः कस्तिनाभ्रयोर्भीमयोश्च चेत्पाद इति ॥" (५-६६१)

ऐतरेय भाष्यकके उद्धृत अंशका श्लेषक अर्थ समीचीन जान कर ग्रहण किया गया ।

कि वैदिकयुगमें वर्चमान विहारसे बङ्गाल तक भूभागों में अनाथ्य या आर्य्यतर जातिका प्रभाव विस्तृत था। अनाथ्य प्रभावके कारण ही आर्य्य यहां वास करना उचित नहीं समझते थे। और तो क्या, वीधावन धर्म सूत्रमें लिखा है, कि बङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि देशोंमें घूमने पर भी भ्रमणकारीको पुनस्तोम या सर्वपृष्ठोगाग करना पड़ता था।

मनुसंहिता रचनाके समय सम्भवतः बङ्गके निजंन वनमें दो एक आर्य्य ऋषियोंका आश्रम बन चुका था और उसीके साथ ये सब स्थान तीर्थके रूपमें गण्य हो गया था। मनुसंहिताके रचयिता सम्भवतः इसीसे व्यवस्था कर गये हैं, कि तीर्थयात्राके सिवा कोई आर्य्य बङ्ग वगैरि देशमें जा न सकेगा—तीर्थयात्राके सिवा यहां जाने पर द्विजातियोंको पुनः संस्कार करना होगा। पेत्रदेव-ब्राह्मणमें पुण्ड्रगण विध्यामितक संन्तान कहे गये हैं। फिर मनुसंहितामें पीण्ड्रकगणके वृषलत्व या शूद्रत्व प्रातिकी कथा है। ( १०१४४ ) इससे मालूम होगा, कि जब विध्यामितके वंशधर इस देशमें आ कर बस गये, तब इस देशमें द्विजातियोंका वास न था। इस कारणसे ब्राह्मणके अभावसे उनका संस्कार विलुप्त हुआ। इससे ये वृषल और यहांके अनाथ्योंके साथ मिल कर डाकू कहलाये। दस्यु और वृषल देखो।

यह ठीक जाननेका कोई उपाय नहीं, कि किस समय बङ्गदेशमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी। रामायणके समयमें सम्भवतः इसका सूत्रपात हुआ और महाभारतके युगमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी, इसका प्रमाण भी मिलता है। रामायणमें लिखा है, कि चन्द्रवंशीय धर्मचरजा नामक एक राजाने धर्मारण्यके निकट प्राग्ज्योतिषपुर स्थापित किया। शतपथ-ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रंथोंसे ही प्रमाणित हुआ है, कि बहुत प्राचीन कालमें मिथिलामें विदेमाधव द्वारा आर्य्यसभ्यता विस्तृत हुई थी। वर्चमान जलपाईगोड़ी रङ्गपुरसे आसामकी पूर्वी-सीमा तक प्राचीन प्राग्ज्योतिष देश फैला था, प्राग्ज्योतिषपुर ( वर्चमान मोहाटी ) उक्त प्राग्ज्योतिषकी राजधानी थी। इससे यह स्पष्ट है, कि मिथिला ( वर्चमान दरभङ्गा ) और आसाममें आर्य्यसभ्यता फैली हुई

थी, फिर भी बीचमें बङ्ग, बङ्ग और पीण्ड्रमें आर्य्योप-निवेश स्थापित नहीं हुआ, यह क्या कभी सम्भव हो सकता है? महाभारतके कर्णपर्व ( ४५ अ० ) में लिखा है,—“पीण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और चेदी-देशीय सभी महात्मा शाश्वत पुरातनधर्म विशेषरूपसे जानते हैं और उसके अनुसार कार्य्य किया करते हैं।” इस महाभारतकी उक्तसे स्पष्ट जाना जाता है, कि उससे पहले पीण्ड्र अर्थात् उत्तर बङ्गमें वैदिकधर्म और आर्य्यसभ्यताका विकास हो गया था।

हरिवंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि ययातिके पुत्र पुरुको नोचली २२ पीढ़ीमें महाराज बलिन जन्मग्रहण किया। ये परम योगी और राजा थे। इनके वंशधर पांच पुत्र अंग, बङ्ग, सुह्य, पुण्ड्र और कलिंग हैं। ये ही महाराज बलिके क्षत्रिय-सन्तान हैं। किन्तु उनके वंशधर पुत्रोंने कालक्रमसे ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

महाभारतके आदि पर्व ( १०४ अध्याय ) में कहा गया है, “भूटोक परशुराम कर्तृक निःक्षत्रिय होनेसे अनेक क्षत्रिय-पत्नियोंने चेद्धारग ब्राह्मण द्वारा सन्तान उत्पन्न किया था। चेद्का विधान यह है, कि जो पाणिग्रहण करता है, उसके क्षेत्रमें जो सन्तान पैदा होता है, वह सन्तान उसीका कहलाता है। अतएव धर्मारण्य स्तोत्र कर ही क्षत्रिय-पत्नियोंने ब्राह्मणसे सहवास किया था। इस तरह क्षेत्रज पुत्रके दृष्टान्त दिखानेके लिये महाभारतके रचयिताने यह पुरातन इतिहास लिखा है—

“क्षत्रियराज बलिके पुत्र न था। उन्होंने एक दिन गङ्गास्नान करने जाते समय देखा, कि एक अन्ध ऋषि गङ्गामें बहते चले आते हैं। धार्मिक राजा उनको गंगाघाटसे निकाल घर ले गये। उन अन्ध ऋषिका नाम दीर्घतमा था। धार्मिक नरपतिने उनके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करनेके लिये अनुरोध किया। इसके अनुसार उनकी महिषी (रानी)-के गर्भसे दीर्घतमाने पांच पुत्र उत्पन्न किये। इन्हीं पांच पुत्रोंके नाम अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्य। उन्हींके नाम पर एक एक देश विख्यात है।

हरिवंशमें लिखा है—परम योगी राजा बलि ऊर्ध्वरेता थे। इसलिये उनको पत्नी सुदेव्याके गर्भसे मदातेजसी सुनिबर दीर्घात्मासे ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए। योगात्मा

प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें सती-दाहादि नियारणरूप हिन्दूधर्म विपक्ष घोरतर समाज-विप्लवकर आन्दोलन ले कर हिन्दू अधिवासियोंको तंग कर दिया है, प्रायः उसी समय ही १८२८ ई०में पूर्व-यज्ञमें हाजी सरिन् उलाने फरामी नामक संस्कृत इस्लाम-धर्ममत प्रवर्तन द्वारा सुन्नी-सम्प्रदायको एक अभिन्न शाखाका विस्तार किया था। फरामी देखो।

यज्ञका पुरावृष।

अति प्राचीन कालसे बङ्गाल नाना नगर तथा छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। अथसे कुछ समय पूर्व-यज्ञालकी सोमा पश्चिम-विहारकी सोमाले-पूर्व चट्टाम और आसामकी सोमा और उत्तरमें हिमालयका पाद-देशसे, दक्षिणमें बङ्गोपसागर और उड़ीसाकी सोमा तक थी, किन्तु पहले ऐसी न थी। कब इसका भावतन बढ़ा है और कब कई राज्योंमें विभक्त हो कर एक छोटे देशके रूपमें परिणत हुआ है, इसका परिचय यज्ञके इतिहासकी मालोचना करने पर यह अच्छी तरह समझमें आता है।

वैदिक समयका यज्ञ।

प्रथम खोजना होगा, कि यज्ञ नाम कितना प्राचीन है? और 'यज्ञ'(१) कहनेसे किस स्थानका बोध होता है। जगत्का आदि-प्रमथ ऋक्संहितामें अनार्यनिवास "कीकट" (पीछेका नाम मगध), ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें 'पुण्ड्र'(२) और अथर्वसंहितामें 'अङ्ग'(३) देशका उल्लेख करने पर भी 'यज्ञ' नाम नहीं। हम ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें (२।१।) सबसे पहले यज्ञ नाम पाते हैं। यथा—  
"इमाः प्रजास्त्रितो भवत्याय मायं स्वानामानि वषाति।  
यज्ञायगधाचेरैपादान्यन्या अर्कमभितो विविध इति ॥"(४)

\* Bhattacharya's Castes and Sects of Bengal  
ग्रन्थमें अन्यान्य साम्राज्यका संक्षेप परिचय द्रष्टव्य।

(१) यज्ञसंहिता १।१।१। (२) ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८।

(३) अथर्वसंहिता १।२।२।५।

(४) महा भानुकारने 'यज्ञाः वनगादा वृष्टाः' 'अवगधाः मीद्वि-  
वादा भीषण्या' 'रैवादाः उरवादाः यथाः' ऐथा अर्थ किया है।  
किर मत्ता टीकाकर भानुदातीर्थने 'वषाति' अर्थमें विहाय, 'यज्ञाः

'यज्ञाः' अर्थात् यज्ञदेशयासीगण, 'वगधाः' अर्थात् मगधयासीगण और 'रैवादाः' अर्थात् चेरदेशयासी-  
गण। यह त्रिविध प्रजा हो यथा दुर्बलता यथा दुरादार या  
यद्यु अपत्यतासे काक, चटक और पारायत (कनूर)  
आदि सङ्ग है।

यास्तविक वैदिकयुगमें यज्ञदेश अनार्य-निवास हो  
कहा जाता है। इस अनार्य जातियोंको लक्ष्य कर प्राचीन  
भाष्यकारोंने यज्ञायगधका राक्षस अर्थ किया होगा।  
भानुदातीर्थ उसी प्राचीन भाष्यका ही अनुवर्तनीय रूप है।

केवल ऐतरेय ब्राह्मणक कह कर नहीं, परं ऋक्-  
संहितामें कीकट या मगध अनार्य-निवास होनेसे  
निम्न है। ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी 'पुण्ड्र' या पुण्ड्रजन-  
पद्वासी 'दस्यूतां भूयिष्ठा' अर्थात् इन्द्राभोंके रिता  
(जनक) कह कर घुणित और अथर्वसंहितामें अङ्ग  
और मगध-वासियोंके प्रति अनार्यवोचित श्लेषोक्त  
देणी जाती है। इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है,

गधः' अर्थमें राजघ और 'रैवादाः' अर्थमें भगुर निर्देश किया है  
अतएव भाष्यकार और टीकाकारके बोधमें भी यथेष्ट मतभेद देया  
जाता है। भाष्यकारने जहाँ वृक्ष, योषिण और तर्प अर्थ किया,  
उन्हींका टीकाकारने वहीं पिशाच, राजघ और भगुर अर्थ लीकार  
किया है। इस तरहका मतभेद देत कर अप्यारक मोक्षगुणने  
दिया है—

"Possibly they are all old ethnic names like  
Yanga, Chera &c." (Sacred Books of the East,  
Vol 1, p. 202f.) अथवाक उरयवत सामाभमी महाशयने  
भी अपनी वषीटीकामें इस तरह व्याख्या की है—

"अस्मन्मते त्वय 'यज्ञायगधाचेरैवादाः' इत्यस्य व्याख्यानये-  
रुगं वृक्षरूपं निरप्रयोजनम्, ययि 'यज्ञा' व'गदेशीयाः 'वगधा'  
मगध, 'रैवादाः' चेरनामजनपदवायिनः। तात्रिविधा एव  
प्रजाः 'वषाति' काकचटकापारायतदिशुदराः। दुर्बलत्वेन च  
गारयम्। इहाज्ञदेशवायि मगधत्वेन परिप्रेषः, कश्चिन्नासीत्तुः  
कश्चिन्नाभ्येयोमैतरेय रैवादा इति ॥" (१०।१६।)

ऐतरेय ब्राह्मणके उद्धृत अंशका श्लेषोक्त अर्थ समीचीन  
जान कर द्रष्टव्य किया गया।

कि वैदिकयुगमें वर्त्तमान विद्वारसे बङ्गाल तक भूभागोंमें अनाप्यर्ष या साप्यर्षेतर जातिका प्रभाव विस्तृत था। अनाप्यर्ष प्रभावके कारण ही आर्य्य यहाँ वास करना उचित नहीं समझते थे। और तो क्या, वीक्षान-धर्म सूत्रमें लिखा है, कि वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि देशोंमें घूमने पर भी भ्रमणकारीको पुनस्त्रोम या सर्वपृष्ठोपाग करना पड़ता था।

मनुसंहिता रचानाके समय सम्भवतः वङ्गके निर्जन वनमें दो एक आर्य्य ऋषियोंका आश्रम बन चुका था और उसीके साथ ये सब स्थान तीर्थके रूपमें गण्य हो गया था। मनुसंहिताके रचयिता सम्भवतः इसीसे व्यवस्था कर गये हैं, कि तीर्थयात्राके सिवा कोई आर्य्य बङ्ग वगैरि देशमें जा न सकेगा—तीर्थयात्राके सिवा यहाँ जाने पर द्विजातियोंका पुनः संस्कार करना होगा।

चेतरेव-ब्राह्मणमें पुण्ड्रगण विभ्यामितिके सन्तान कहे गये हैं। फिर मनुसंहितामें पौण्ड्रकगणके वृषलत्व या शूद्रत्व प्रासिकी कथा है। (१०।४४) इससे मालूम होगा, कि जब विभ्यामितिके वंशधर इस देशमें आ कर बस गये, तब इस देशमें द्विजातियोंका वास न था। इस कारणसे ब्राह्मणके अभावसे उनका संस्कार विलुप्त हुआ। इससे ये वृषल और यहाँके अनाप्यर्षोंके साथ मिल कर डाकू कहलाये। दस्तु और वृषल देखो।

यह ठीक जाननेका कोई उपाय नहीं, कि किस समय बङ्गदेशमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी। रामायणके समयमें सम्भवतः इसका सूत्रपात हुआ और महाभारतके युगमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी, इसका प्रमाण भी मिलता है। रामायणमें लिखा है, कि चन्द्रवंशीय धर्मूर्त्तराजा नामक एक राजाने धर्मारण्यके निकट प्राग्ज्योतिषपुर स्थापित किया। शतपथ-ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रंथोंसे ही प्रमाणित हुआ है, कि बहुत प्राचीन कालमें मिथिलामें विदेगाधय द्वारा आर्य्यसभ्यता विस्तृत हुई थी। वर्त्तमान जलपाईगोड़ी रङ्गपुरसे आसामकी पूर्वी-सीमा तक प्राचीन प्राग्ज्योतिष देश फैला था, प्राग्ज्योतिषपुर (वर्त्तमान गोदाटी) उक्त प्राग्ज्योतिषकी राजधानी थी। इससे यह स्पष्ट है, कि मिथिजा (वर्त्तमान दरभङ्गा) और आसाममें आर्य्यसभ्यता फैली हुई

थी, फिर भी बीचमें बङ्ग, वङ्ग और पौण्ड्रमें आर्य्योपनिवेश स्थापित नहीं हुआ, यह क्या कभी सम्भव हो सकता है? महाभारतके कर्णपर्व (४५ अ०) में लिखा है,—“पौण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और चेदी-देशीय सभी महात्मा शाश्वत पुरातनधर्म विधेयरूपसे जानते हैं और उसके अनुसार कार्प्य किया करते हैं।” इस महाभारतकी उक्तिसे स्पष्ट जाना जाता है, कि उससे पहले पौण्ड्र अर्थात् उत्तर-वङ्गमें वैदिकधर्म और आर्य्यसभ्यताका विकास हो गया था।

हरिवंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि यपातिके पुत्र पुष्यकी नोचली २२ पीढ़ीमें महाराज बलिन जन्मग्रहण किया। ये परम योगी और राजा थे। इनके वंशधर पांच पुत्र अंग, वङ्ग, सुह, पुण्ड्र और कलिङ्ग हैं। ये ही महाराज बलिके क्षत्रिय-सन्तान हैं। किन्तु उनके वंशधर पुत्रोंने कालक्रमसे ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

महाभारतके गादि पर्व (१०४ अध्याय) में कहा गया है, “भूलोक परशुराम कर्तृक निःश्रुतिय होनेसे अनेक क्षत्रिय-पत्नियोंने वेदपारग ब्राह्मण द्वारा सन्तान उत्पन्न किया था। वेदका विधान यह है, कि जो पाणिग्रहण करता है, उसके क्षेत्रमें जो सन्तान पैदा होता है, वह सन्तान उसीका कहलाता है। अतएव धर्माचरण सोच कर ही क्षत्रिय-पत्नियोंने ब्राह्मणसे सहवास किया था। इस तरह क्षेत्रज पुत्रके दृष्टान्त दिखानेके लिये महाभारतके रचयिताने यह पुरातन इतिहास लिखा है—

“क्षत्रियराज बलिके पुत्र न था। उन्होंने एक दिन गङ्गास्नान करने जाते समय देखा, कि एक अन्ध ऋषि गङ्गामें बहते चले आते हैं। धार्मिक राजा उनकी गंगा-धारसे निकाल घर ले गये। उन अन्ध ऋषिका नाम दीर्घात्मा था। धार्मिक नरपतिने उनके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करनेके लिये अनुरोध किया। इसके अनुसार उनकी महिषी (रानी)-के गर्भसे दीर्घात्माने पांच पुत्र उत्पन्न किये। इन्हीं पांच पुत्रोंके नाम अंग, वंग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह। उन्हींके नाम पर एक एक देश विख्यात है।

हरिवंशमें लिखा है—परम योगी राजा बलि ऊर्ध्वरेता थे। इसलिये उनकी पत्नी सुदेव्याके गर्भसे महातेजस्वी मुनिवर दीर्घात्मासे ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए। योगात्मा



बलिने उन निम्नाय पांच पुत्रोंको राजसिंहासन पर बैठा कर योग मार्गका आश्रय लिया। ( ३१ अध्याय )

उद्धृत प्रमाणोंके बल कहना पड़ता है, कि बलि अध्याय उनके पांच पुत्रोंसे ही अंग-घंगादि जनपदोंमें वैदिक-सम्भवा प्रचलित और चातुर्दण्ड समाज संगठित हुआ।

महाभाग्नकारने बलि-पुत्र अंग, घंगादिके नामानुसार भिन्न भिन्न देशोंको नामोत्पत्ति स्वीकार की है। पूर्वोक्त चण्डांधेय, ऐन्देय-ब्राह्मण और पत्तरेय आरण्यकके अनुभवों होनेसे अथर्व्य ही कहना पड़ता है, कि आर्य-सम्भवा विश्वारसे पहले अंग, घंगा, पुण्ड्रका नामकरण हुआ था। बलि पुत्र जिन्होंने जिस राज्यका अधिपार पाया था, वे उन्हीं राज्योंके नामानुसार सम्भवतः विख्यात हुए थे। जैसे पाण्डुक अधिपति महामल चातुर्देव नाना पुराणोंमें फेवलमात्र 'वीरुट' नामसे परिचित है।

बलि पुत्र अंगकी डूठी पीठी नीचे अंगधिप वृशभ लोमपादके नामसे विख्यात थे। आप श्रीरामचन्द्रके पिता वृशभके सखा और ऋष्यशृंगके स्वशुर थे। लोमपादके प्रपौत्र चम्पसे अंगकी राजधानी चम्पा नामसे प्रसिद्ध हुए। अंगधिप चम्पके प्रपौत्र-पौत्र बृहन्नलाके विजय नामक एक पुत्र हुआ। हरिवंशमें वे 'ब्रह्मक्षेत्रोत्तर'के विद्येयणसे विभूषित हुए थे। इन विजयके प्रपौत्र पुत्र अधिरथ सूतशूचि अयलम्बन कर क्षत्रिय-समाजमें निम्नित हुए थे। सूतने अधिरथ कर्णका पतिप्रद किया था इससे कर्णको सप्तम सूतके पुत्र कहते थे।

जो ही, हरिवंशके विवरणमें यदि कुछ भी ऐतिहासिकता हो, तो अथर्व्य ही स्वीकार करना होगा, कि पौरव्य ऋषियज्ञ ऋषिके समय अर्थात् महायोर कर्णको १६वीं पीढ़ी पहलेसे ( यद्यन्तान समयके पांच हजार वर्ष-

से पहले ) अङ्ग-वङ्गमें क्षत्रिय-समाजकी प्रतिष्ठा हुई थी। और तो क्या, यहांके अनेक नृपतिने योगबलसे या कर्म-फलसे ब्राह्मणवत्य तक लाभ किया था। उसी बहुत पुराने समयसे ही बङ्गालियोंकी जन्मभूमि बहु सांख्यिक योगी, ऋषि, ज्ञानी, मानो और महावीरोंकी लीलास्थली हुई थी। इसी कारणसे बोधायन-धर्मसूत्रमें और मनुसंहिता में जो स्थान आर्यधामके अनुपयुक्त कहा गया था, महाभारतमें बङ्गप्रान्त उसी कलिङ्गदेश "यद्योय गिरि-जोमित सनत द्विजसेविन" पुण्य स्थान कहा गया है।

महामारतसे हम लंग और भी जानते हैं, कि महाराज सुषिष्टिके राजसूय यज्ञके समय यह बङ्गदेश नाना छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। मोमके पहले द्विषत्रय उपलक्ष्यमें सनातनधर्म लिखा है।

"भीममेन अयने पक्षके होने पर भी सुखा प्रसूतोंकी भुजमें पराजित कर मगधवासियोंके प्रति चले। यहाँ दृष्ट, दृष्टधार और भारापर महीपालोंको पराजय कर वे सभी एकत्र हो कर गिरिव्रजमें भाये और जरासन्ध-नश्वन सहदेवको सान्त्वनायुक्त और कारायत कर सबको साथ में ले कर्णके प्रति दीडे। इनके बाद पाण्डुबन्धु भोगी चतुरङ्ग-सैनाके बलसे पृथ्वी कंठिन वर शत्रुनाशन कर्णके साथ घोरतर युद्ध किया और उनका संस्राममें पराजित कर और यज्ञोभूत कर पर्यंतयासी राजाओंको महासमामें अपने बाहुबलसे मारा। इसके उपरान्त तीस पराक्रम और महायाहु पुण्ड्र अधिप चातुर्देव और वीजिकोकेन्द्र निवासों राजा महीजा इन दोनों नृपतिकी युद्धमें पराजित कर पञ्चराजके प्रति धायमान हुए। समुद्रमन और चन्द्रमेन मगधतियोंको पराजित कर तादप्रतिष्ठाराज कर्णटाधिपति, सुलाधिपति और सागरवासो नबन्धेयोंको जोता।

६६में ऐन और बौद्ध-प्रभाव।

हम लोगोंने महाभारत, हरिवंश और नाना पुराणकी आलोचना कर पाया है, कि मगध, अङ्ग, वङ्ग और सुयके क्षत्रिय पौराण्य भाषणमें आर्योपस्था और मित्तनाके पास में जायज थे, उनके आचार व्यवहार बहुत कुछ एक था। इसका कारण यह, कि यहाँके क्षत्रियवर्गमें जब कर्मा कर्मों महापुण्य आधिभूत हुए हैं, तभी हमोंने साधारणको

\* "नदक्षेत्रोत्तराः शरदा विजयेनाम विभूतः।" (हरिवंश ११।१७) यहाँ ब्रह्मक्षेत्रोत्तराः शरदा विजयेने अर्थात् विवादे, ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों पक्षोंके बीच, फिर बहुतेके अर्थों किया है—"गजानि प्रभूति शारा ब्राह्मणस्य उल्लूक और धीरुभिर्द्वि शारा क्षत्रियस्य भोदुः।"

† हरिवंश ३१ अध्यायमें दूतोंके बंगालकी ओर पठित विवरण देखिये।

उच्च ज्ञानोपदेश प्रदान कर उन्नत और परुभावापन्न करने-की चेष्टा कर पाया है। पर्यचीं ब्राह्मणग्रन्थ इस सम्बन्ध में बहुत कुछ निस्तब्ध है सही, पर प्राचीन जैन और बौद्धग्रन्थोंसे उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। आदि ब्राह्मणशास्त्र जिस तरह गुरुपरम्परासे मुख-मुखमें चलता आ रहा है, आदिजैन और बौद्धग्रन्थ भी उसी तरह गुरु-परम्परासे मुख-मुखमें चलता रह कर ब्राह्मणशास्त्रोंकी भांति पीछे लिपियद्ध हुआ है। इन सब परम्परागत जैन ग्रन्थोंसे हम लोग देख सकते हैं, कि जिनधर्मप्रचारक २४ तीर्थङ्करोंमेंसे सिर्फ आदि जिन ऋषभदेवके अलावा २ अजितनाथ, ३ सम्भवनाथ, ४ अभिनन्दन, ५ सुमति नाथ, ६ पद्मपम, ७ सुगार्ध्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ सुविधिनाथ, १० जोतलनाथ, ११ श्रेयांमनाथ, १२ चासुपूज्य, १३ विमलनाथ, १४ अनन्तनाथ, १५ धर्मनाथ, १६ श्रान्ति नाथ, १७ कुन्धुनाथ, १८ अरनाथ, १९ महिनाथ, २० मुनि सुमन, २१ नमोनाथ, २२ नेमिनाथ, २३ पार्श्वनाथ और २४ महाश्वेद, इन २३ तीर्थङ्करोंके साथ धंगानीका संस्मरण घट गया था। ये सभी परम ज्ञानी कह कर जैन-समाज-में 'देवाधिदेव' अर्थात् देवब्राह्मणसे श्रेष्ठ कह कर पूजित थे।

उक्त तीर्थङ्करोंमेंसे २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथने ईस्वी-सन् ७७७ के पहले मानभूम जिलेके समेतशिखर पर (धर्ममान परेशनाथ पहाड़ पर) मोक्षलाभ किया। २७०० वर्ष पूर्व राढ़वङ्गमें उनके गभावसे बहुतेरे ही तत्प्रचारित चानुयाम-धर्म प्रहण किया था। अरिष्ट-नेमिपुराणान्तर्गत जैन हरिवंशमें लिखा है, कि यादवपति श्रीकृष्णके श्राति नेमिनाथने अङ्गवङ्गादि देशमें आ कर जैन धर्म प्रचार किया था। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मण्यधर्मरक्षामें सात्वत धर्म प्रचारमें निरत थे, उस समय उनके दो एक ज्ञानि भिक्षुधर्म प्रचारमें अग्रसर हुए थे। उनका मत ब्राह्मणविरोधी था, इसलिए ब्राह्मणोंके धर्मग्रन्थमें स्थान-लाभ नहीं किया सही, पर जैनाचार्यगण उसकी रक्षा कर आर्यसमाजका एक और तरफका चित्र देलनेका अवसर दे गये हैं। यद्यपि उस समय जिनधर्म आर्यसमाजमें सुप्रतिष्ठित हुआ था वा नहीं सन्देह है, किन्तु आज भी जो पूर्वा भारतके एक प्रान्तमें

क्षत्रिय-सन्तान अपने अपने प्राधान्यकी रक्षामें उद्युक्त थे, यह हिन्दू और जैन दोनोंके हरिवंशमें अल्पविस्तर चिहित है। यह भी सम्भव नहीं, कि नेमिनाथकी तरह क्षत्रिय-प्रचारकोंकी उन्नेजनासे पीण्डक वासुदेव कृष्णदेवी हो गये थे। जो हो, उस अतीत युगकी तिमिरावृत्ति वृत्त तर्कसंकुल कद कर और निःसन्देह भ्रमप्रमादपरिशून्य होनेकी सम्भावना न रहनेसे यहीं क्षान्त हुए।

महाभारतकार "धीरथ्रेष्ठाश्च राजानः" कह कर क्षत्रिय-की श्रेष्ठताकी घोषणा कर गये हैं। कुरुक्षेत्रके कुन्धक्षपकर मदासमरसे ही आर्यावर्तका क्षत्रियप्रभाव खर्बा होने लगा तथा सीमान्त प्रदेशसे दूसरी दुर्द्धर्ष जातियोंने भारतमें घुसनेकी सुविधा पाई। ब्राह्मणप्राध्याय्य भी फैलने लगा। इस समय पूर्वा और दक्षिण-भारतमें ब्राह्मणलोग कर्मकाण्डप्रचारके साथ पौराणिक देवपूजा प्रतिष्ठामें उद्योगी हुए थे, एवं क्षत्रियेतर जनसाधारण बहुतेरे आदरके साथ कर्मकाण्डबहुल सहज पूजामें अनु-रक्त हो रहे थे। किन्तु इस समय उत्तर-पश्चिम भारतमें क्षत्रिय-प्रभाव हास होने पर भी पूर्वा भारतमें एकदम हास नहीं हो सका, वरं यहाँके क्षत्रियोंके अभ्युदयकी सुविधा हुई थी। वे कर्मकाण्डबहुल देवपूजामें सन्तुष्ट न थे। आत्मसंयम और आत्मोत्कर्ष-लाभमें समी सचेष्ट थे। कुरुक्षेत्रमें क्षात्रजीवनका भीषण परिणाम देल उन्होंने तलवार चलानेकी अपेक्षा मोक्षपथका उपाय निका-लना ही पुरुयार्थ समझा था। उसीके फलसे पूर्वा-भारत-में बुद्ध और तीर्थङ्करोंका अभ्युदय हुआ था।

पाणिनिके अष्टाध्यायी ( ६।२।१०० ) और जैन-हरि-वंश पढ़नेसे जाना जाता है, कि भारतीय युगके बाद पूर्वा-भारतमें "अरिष्टपुर" और "गौड़पुर" नामक दो प्रधान नगर था। जैनहरिवंशमें अरिष्टपुर और सिंहपुरका पकल उल्लेख पाया जाता है। अरिष्टनेमि वा नेमिनाथके नाम पर अरिष्टपुरका नाम पड़ा है, इसमें कुछ असम्भव नहीं। इन तीन प्राचीन नगरोंमेंसे गौड़पुर पुण्ड्रदेशमें और अरिष्टपुर उत्तरराढ़में था, ऐसा बोध होता है। गौड़पुरसे ही पीछे गौड़राज्यका नामकरण हुआ। प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रन्थोंक सिंहपुर नामक प्रधान नगर सुहा या राढ़देशमें अवस्थित था। इस प्रकार समस्त राढ़देश



वदा न था। महावीर वसुमित्र थोड़े दिनों के बाद ही पैतृक सिंहासन पर बैठे। वैदिक धर्मप्रचार करनेकी इच्छासे ही वसुमित्रने दक्षिणात्यसे वेद्वि विप्र मंगा कर उन्हें राजगृह प्रदान किया था। वसुमित्र और उनके परवर्ती अन्तक, पुलिन्दक, घोषवसु, चक्रमित्त, भागवत और देवभूमि आदि शुद्ध राजे सभी देवविप्रमत्त थे। इस वंशने ११२ वर्ष अर्थात् ६४ ख० पूर्वाब्द पर्यन्त राज्यका भोग करने रहे।

देवभूमि अति लम्पट और व्यसनामत्त थे। उन्हें यमपुर भेज उनके ब्राह्मणमन्त्री वसुदेवने सिंहासन अपनाया। वसुदेवसे ही कण्व या काण्वायण ब्राह्मणवंशकी प्रतिष्ठा हुई। वसुदेव, भूमिमित्त, नारायण और सुजर्मा काण्ववंशीय थे चार राजे ४५ वर्ष तक (करीब २० ख० पूर्वाब्द पर्यन्त) पाटलिपुत्रमें अधिष्ठित थे।

शुद्ध और काण्व शाकद्वीपी मालूम पड़ते हैं। उनके समयमें सिर्फ पूर्वा-भारत ही नहीं, समूचे भारतमें भी सौरमत् और प्रतिमापूजा प्रचलित हुई। मौर, भागवत, पाञ्चरात्र तथा पौराणिकोंका भी अभिनय अभ्युत्थान हुआ था।

शुद्ध और कण्वोंने आधिपत्यकाठमें ही उत्तर पश्चिम भारतमें प्रकृतातिष्ठा अभ्युदय था।

भारतवर्ष शब्द विवरण देखो।

वसुमित्र सम्मानित राज्यवृद्धिष्ठित वैदिक विप्रगण पत्तम, उपमन्यु, कौण्डिल्य, गर्ग, हारित, गीतम, शाण्डिल्य, भरद्वाज, कौशिक, काश्यप, वशिष्ठ, यास्य, सावर्णि और पराजर १४ गोत्रोंमें विभक्त थे। परवर्ती कालमें ये सब दक्षिणात्य विप्रसन्तान वङ्गके नाना स्थानोंमें फैल गये थे। किन्तु वे सब भी जैन बौद्ध-प्रभावमय वङ्गकी आगहवा लगनेसे कुछ समय बाद बहुत कुछ वैदिकाचारभ्रष्ट हो गये। तभीसे वङ्गके किसी किसी वन्य प्रदेशमें भेद, कैवर्षा आदि जातिका आधिपत्य देखा जाता है।

दक्षिणात्यके अन्ध राजाओंसे राज्य छीना जाने पर काण्ववंशने उत्तर-पश्चिम भारतमें शकक्षत्रियोंका आश्रय लिया। आन्ध्रोंने पाटलिपुत्र अधिकार किया सही, पर वहाँकी राजधानी उनके बसने लायक न रही। वे यहाँ

प्रतिनिधि छोड़ दक्षिणात्य लीट गये। जो ही, उस समय पूर्व-भारतमें द्वाविड्यीय आचार बहुत कुछ फैल गया था। किन्तु प्रतिनिधियोंके स्वार्थतासे राज्यमें अन्व-विश्रुवकी सूचना हो गई, जिससे अङ्ग, वङ्ग और मगध-राज्य छोटे छोटे भागोंमें बँट कर एक एक स्वाधीन राज्योंके हाथ पड़ गया। इस समय पश्चिम प्रदेशमें शकोंको गोटी पूर्णरूपसे जमी हुई थी। शाकद्वीपी काण्व ब्राह्मणोंके धर्मोपदेशसे शकराजि भारतीय देवविप्रपूजक और प्रजारक्षक हो गये। प्रजाप भी उनमें विरक्त हो गईं। इसलिये पूर्वको और आधिपत्य फैलानेमें उन्हें अधिक कष्ट न भोगना पड़ा। शकोंके शुभ दिन आ पहुँचे।

१लो सदीमें शाकाधिप कनिष्ठ भारत सम्राट् हुए। सारनाथके भूगर्भसे सम्प्रति महाराज कनिष्ककी जो स्तम्भलिपि आविष्कृत हुई है, उसका अनुसरण करनेसे जान पड़ेगा, कि पूर्वा-भारत भी कनिष्कके साम्राज्यभुक्त हुआ था। उनके उदारनैतिक होने पर भी उनकी शिलालिपियां उनके बौद्धधर्मानुरागकी घोषणा करती हैं। उनके प्रयत्नसे वनारसको तरह अंग, वंग और कालिंगमें भी मह-यान बौद्धमत प्रचारित हुआ था।

महाराज कनिष्ककी राजधानी पुष्यपुर (वर्षामान पेशावर) में थी। बहुत दूर पश्चिमी सीमा पर अधिष्ठित रहने पर भी उन्होंने कासघर, यारकन्द, सोतन आदि मध्य एशियाके सुदूर उत्तर प्रदेशसे दक्षिणमें विन्ध्याद्रि तथा पूर्वमें अंग-वंग-कालिंग तक आधिपत्य फैलाया था। 'धर्मोपटक-सम्प्रदायनिदान' नामक बौद्ध-ग्रन्थके मतसे महाराज कनिष्क पाटलिपुत्र आये और यहाँके राजाको जीत कर बौद्धस्थावर बौद्धधोषकी ले गये। सम्प्रति सारनाथसे वहाँकी समतल भूमिके दश हाथ मिट्टीके नीचे सम्राट् कनिष्ककी शिलालिपि और कोर्सि बाहर हुई है। इस शिलालिपिसे पता चलता है, कि उस समय वाराणसी प्रदेश महाराज कनिष्कके अधीन खरपल्ल नामक एक (शक) क्षत्रपके शासनाधीन था। पाटलिपुत्रका प्राचीन भूगर्भ रोतिमत् खोदा जाने पर सारनाथकी तरह सुप्राचीन कनिष्क-कोर्सि निकल सकती है। तब हम लोग जान सकेंगे, कि पूर्वा-भारतमें उनके अधीन कौन क्षत्रप (Satrap) आधिपत्य करते थे।

कनिष्कके प्रभाषसे ही शत्रु, पयन, वारद और भार-  
नीय भास्करजिलाका समोररण हुआ। सम्राट् अशोक-  
के समय फेरल भारतमें ही पर्वी, सुदूर मध्य एशिया और  
यूरोपमें शोकधर्मका प्रचार होने पर भी यक्षदेवको कोई  
प्रतिमा प्रतिष्ठित न हुई। अशोकके समय बुद्ध प्रतिमा-  
पूजाकी भाष्यरचना भी किस्सेमें हृदयङ्गन नहीं किया।  
पढ़ते लिखा जा चुका है, कि शाक्योंकी गणने ही  
भारतमें देवप्रतिमा निर्माण कर प्रचार किया था। इस  
प्रथाके अनुसरण ही कर महायान मत प्रचारके साथ  
शाक्यगत बुद्धकी लोकार्पणवर्षीकी नामा प्रतिमा बद्ध कर  
भारतके नामा पुण्य स्थानोंमें प्रतिष्ठित करने लगे। उन  
सब अर्धशत भास्कर जिलोंका निदर्शन भारतके नामा  
स्थानोंमें ही भाषित्यत हुआ है। उन सब जिलपनीपुण्यकी  
देवमूर्तियों भारतीय शिल्पगण सम्पन्नताके प्रशंसा-भाजन  
हो गये हैं।

कनिष्क जो महायान मत प्रचार कर गये, समय या  
कर यह संशोधित और परिष्कृत हो तान्त्रिक धर्म  
धर्मकी सृष्टि हुई थी। एक दिन समस्त ब्रह्मदेश इस  
तान्त्रिक धर्म सागरमें दूब गया था, यह बात पीछे लिखी  
जावगी।

महाराज कनिष्कके बाद उनके पुत्र हुविश्व या हुश्व  
सिंहासन पर बैठे। येनामरसे ले कर पूर्ण ब्रह्म पर्यन्त  
उनके कर्तव्य थे। नामा स्थानोंसे उनकी जो जिला-  
लियि और मुद्रालियि निकली हैं, उससे योच होता है,  
कि उन्होंने पितासे अधिक समय तक साम्राज्य शासन  
रिया था। उनके समयमें भी शासन करनेके लिये  
पाटलिपुत्रमें उनके अधीन एक क्षत्रप अधिष्ठित थे।

हुविश्वके पुत्र शकाधिप यक्षुदेव या यक्षुदेव थे।  
उन्होंने ६४ से ले कर ७८ शकाब्द तक साम्राज्यकां मोन  
किया था। उनकी मुद्रामें गिर, तिम्रान और मन्त्रिसिं  
कान्ति थी, इसलिये शीघ्र नरपति कहलाते थे। कनिष्क  
जो सुविस्वीर्य साम्राज्यका पतन कर गये, यक्षुदेवके  
समय उसके धर्मसका मूलपात हुआ। समयतः उनके  
सम्य धर्म प्रवृत्त करने पर उनके अधीन दूर देशवासी  
क्षत्रगण पितरः ही कर समीप आधीन हो गये। उनमेंसे  
उज्जयिनीपति वृद्धस्य प्रमाण थे। उन्होंने थोड़े ही समय

के बीच मरगती, अनूर, नीरुड, गानती, सुराष्ट्र, भद्र,  
भरुकच्छ, मिन्धु, सौवीर, कुकुर, भरराम्य, निराद भद्रि  
जनपद अधिकार कर महाक्षत्रवर्ती उपाधि प्रदत्त थी।  
पाटलिपुत्रके क्षत्रप भी उनके अनुसरण ही हुए थे। इस  
राजद्रीहिताके समय पाटलिपुत्रके निकट लिच्छविगण  
प्रवल हो उठे। अङ्गवङ्गके सामन्तराजोंने भी स्वयो-  
नता सबलक्षण की। उत्तर-पश्चिम सीमातलमें पारसिक  
शासनयंत्र सर उठाने लगे। और कहना क्या, यक्षुदेवकी  
मृत्युके साथ उत्तर-भारतीय शकसाध्याय ध्वंस हो  
गया तथा आभीर, गहमिह, लिच्छवि, पाग, ह्येव आदि  
जातियोंने नामा स्थान अधिकार कर छोटा छोटा राज्य  
कायम किया। क्षत्रप नाम उत्तर-भारतसे विलुप्त हो  
गया।

२री सदीके शीघ्र भागमें लिच्छवियोंने पाटलिपुत्र दखल  
किया। हुमयशा विषय है, कि उनका इतिहास लिखनेका  
उपकरण आज तक भी बाहर नहीं हुआ है। पूर्ण भारतके  
नामा स्थानोंमें कर्णवृक्षस्थापनमें प्रयासों सामन्तों द्वारा  
अन्तर्निद्रोह उपस्थित हुआ जिससे अनेक राजकुमार  
स्वदेश परित्याग कर सुदृढ़ कम्बोज ( वर्तमान कम्बो-  
डिया ), यक्षुदेव ( अणमम् ) और यक्षुदेव चले गये तथा  
नयजित कम्बोज आदि स्थानमें शीघ्र और प्रालोकीर्ण  
प्रतिष्ठित कीं। सैकड़ों वर्षों बाद पञ्जा, क्षात्र भी यह  
सब दिग्भ्रमोंके विद्यमान हैं।

३री सदीमें मध्यभारतमें सैकुटक या ह्येवपञ्च प्रचल  
हो उठे। इस घंणके ईश्वरदत्त २६ ईसमें उज्जयिनीके  
क्षत्रपोंकी परास्त कर चेदि या कलसुरि-संयन्त्र सौटे।  
उनके बन्धुद्वयसे ह्येवोंमें अङ्गवङ्ग दखल करनेकी चेष्टा  
की; किन्तु उनका उद्देश्य व्यर्थ हो गया। ३री सदीके  
शीघ्र भागमें गुप्त और उनके लक्षके घटोरकच नामक दो  
सामन्त-महाराज मगधमें प्रचल हो उठे। घटोरकचके पुत्र  
२म चन्द्रगुप्तने लिच्छवि राजकुमारा कुमारदेवोंसे स्वाद कर  
पाटलिपुत्रका सिंहासन पाया। थोड़े ही दिनोंमें ये  
स्वार्थवर्षोंके सम्राट् हो गये। गुप्त मगधके देगे।

कर्णसुवर्ण ( मुदिंदाबाद् तिल्लोकी रांगामाटी ) और  
उसके गिरुवर्णों प्राचीन ईशके म्पुत्रों समय समय पर  
यक्षुके गुप्तारजोंकी सतय प्रचलित बहुत मर्णसु।

बाहर हुई है। उससे रविगुप्त, जयमहाराज, नरगुप्त, प्रकटः  
दित्य, कर्नादित्य, विष्णुगुप्त आदि नाम मिलता है। इन सब  
गुप्त राजाओं में से किसने तथा कब राजत्व किया, इसके  
जाननेका उपकरण आज तक भी बाहर नहीं हुआ है।  
उनमेंसे नर गुप्त या शशाङ्क नरेन्द्र गुप्त का नाम इतिहास-  
में प्रसिद्ध है। वे एक घोरतर बौद्धविरोधी थे।

शूर्पवशका अभ्युदय।

देवप्रभु शके समयमें ही उत्तर राढ़ों या कर्णसुवर्णों  
आदिशूरका अभ्युदय हुआ। आदिशूरका प्रभु नाम था  
जयन्त। वे कविशूरके पीत और माधवशूरके पुत्र थे।  
उन्होंने घोड़े ही समयमें पीयूषवर्द्धन जय काफे वहां  
राजधानी कायम की और ६५४ शकमें या ७३२ ई०में  
यघारोति अभिषिक्त हुए।

महाराज आदिशूरके अभ्युदय कालमें उनके अधिकार  
में नानाविध निरगिणत तथा जैन श्रमण बौद्धभावापन  
प्राहणका काम था। उनमेंसे राढ़देशवासी सप्तशती  
प्राहण लोग ही प्रधान थे।

जब तक आदिशूर जीवित रहे, तब तक कनोजागत  
वैदिक प्राहणोंने गौड़मण्डलमें वैदिकधर्म-प्रचारमें सुयोग  
और सुविधा पाई थी। उनके मरनेके समय पश्चिमो-  
त्तर गौड़में और मगधमें बौद्ध लोगोंमें मिल कर  
व्यत्येके पुत्र गोपालको अभिषिक्त किया एवं उनके  
द्वारा फिरसे बौद्धप्राधान्य स्थापनका आशोजन होने  
लगा। किन्तु जब तक आदिशूर जीवित रहे, तब तक  
वे कुछ भी न कर सके। पाहाराजवंश देखा।

पूर्व वङ्गमें वर्मवंश।

जैनपति राजेन्द्र चोलके आक्रमणसे पूर्वा यङ्ग हीनबल  
हो गया। इस समय विक्रमपुरमें वर्म वंश का अभ्युदय  
था। वर्म-वंशीय किन भूपतिने सर्वप्रथम पूर्व-वङ्ग अधि-  
कार किया, अभी तक मालूम नहीं। इस वंशमें हरिवर्म-  
देव नामक एक प्रबल-पराक्रान्त दैण्य। नृपतिः इतिहास  
मिला है। शिलालिपि, ताम्रशासन और वैदिक कुल-  
प्रथमें इस नरपालकी कीर्ति और परिचय विद्यत है।

जैन-राजवंश।

महाराज हरिवर्मदेवका प्रभाव गंगाके उत्तरी किनारेमें  
नहीं फैला। उत्तरराढ़ और गंगाके परपारस्थ वरेन्द्रसे

ले कर गया पर्यन्त उस समय भी बौद्धाधिकार चलता था।  
राजेन्द्रचोलके राढ़देश पर आक्रमणकार्थमें दक्षिणापथके  
बहुसामन्त राजाओंने उनका बल बढ़ाया था। राजेन्द्र-  
चोलके लौटने पर सभी सामन्त उनके अनुगामी हुए थे,  
ऐसा बोध नहीं होता।

अधिक सम्भव महाराज हरिवर्मदेवकी मृत्यु होने पर  
समूचे राढ़वङ्गमें अराजकता फैल गई। ऐसा सुयोग पा  
कर सामन्तसैन-पुत्र ह्येन्तसेन राढ़देश पर कब्जा कर  
पैठे। इनके बाद उनके पुत्र विजयसेन। विजयसेनके  
पुत्र बलदासेन और बलदालके पुत्र लक्ष्मणसेन आदि  
प्रसिद्ध राजाओंने राज्य किया। इनका विस्तृत विवरण  
इन्हीं सब शब्दोंमें देखा।

वज्राक्षमें मुसलमान-प्रभाव।

ईस्वीसन् १२०३ से यथार्थमें बंगालमें मुसलमान-  
शासन आरम्भ हुआ। तभीसे उन सबोंने इस देशमें  
अपनी बस्ती कायम कर रखी है। उस समयसे ले कर  
अङ्गरेज कर्तृक बंगालकी दीवानी लेनेके समय प्रायः  
५६२ वर्ष तक मुसलमान लोग इस देशमें राजत्व कर  
गये हैं।

महमद-ई-बख्तियार खिजजी घोरके एक यज्ञोत्तर थे।  
सुलतान गयासुद्दीन महमद शाहके समय वे गजनी  
आये। यहां कुछ दिन रह कर वे भारतवर्ष पहुंचे एवं  
मालिक मुयाज्जिम हिसाम उद्दीनके यहां तैकरी करने  
लगे। वे सुलतान शाह उद्दीनके एक प्रसिद्ध सदस्य थे।  
तदनन्तर ११६६ ई०में उन्होंने बंगाल पर हमला कर  
१२०३ ई०में राढ़ और चारेन्द्र नाग प्रदेश जीत लिया।

महमद-ई-बख्तियार खिलजीसे आरम्भ करके बादर  
खोंके शासन समय तक बंगाल दिल्ली-साम्राज्यभुक्त था।  
उस समय दास, खिलजी और तुगलकवंशीय दिल्लीश्वर-  
गण अपने अपने प्रतिनिधिके द्वारा बंगालका शासन  
करते थे। किन्तु सुलतान फखर उद्दीनके समय बंगाल  
दिल्लीकी अधीनता तोड़ स्वाधीन हो गया। यह  
१३४० ई०की बात है। उन्होंने बंगाल-राज्यको समग्र  
शासनशक्ति अपने हाथ कर अपनेको बादशाह कह कर  
घोषणा की। जब तक अकबर बादशाह दायुदकी परा-  
जित न कर १५७६ ई०में बंगालकी स्वाधीनता हरण की,

सब तक बंगालकी पठान जातिकी मशुल्क प्रताप.भीरु  
अपरिमित भावनायार अटुटित चिसमे सहना पडा  
था । कसि बहिनीमे यह विशेषरूपसे लिखा गया है ।

दिल्लीके बरामन्थ बंगालके पठान राजनरुषी ।

ईस्वीकर	दि० म०	वस्त्रोभर	सामयिक दिल्लीभर
१२६६	५६५	महम्मद-ई-यसिन्पार	जाहसुद्दीन घोरी
			गिलगो (लक्ष्मणावती)
१२०५	६०२	महम्मद सिरान	कुलसुद्दीन आहयक
			गिलगो
१२०८	६०५	अली मर्दन गिलगो	"
१२११	६०८	सुल्तान गयासुद्दीन	आलतूमस
१२२७	६२४	नामीउद्दीन आलतूमस	"
१२२६	६२७	अलाउद्दीन जामी	"
१२२६	६२७	सैफउद्दीन आहयक	"
१२३३	६३१	सुमान खाँ	सुल्ताना रजिवा
१२४३	६४१	नातो	अलाउद्दीन मसाउद
१२४४	६४२	तैमूर खाँ किरान	"
१२४४	६४२	मालिक युज्जेग	"
			गुमिल खाँ
१२४६	६४४	सैफउद्दीन	"
१२५३	६५१	इफ्तियार उद्दीन	"
			मालिक युज्जेग
१२५७	६५६	अलाउ उद्दीन	नासोउद्दीन महम्मद
			मसाउद
१२५८	६५७	इब्न उद्दीन बरबन	"
१२५६	६५८	अजालन खाँ अशोस्तिनी	"
१२६०	६५६	अजालन तातर खाँ	"
१२७७	६७६	सुमन (सोहउद्दीन)	गयासुद्दीन बरबन
१२८२	६८१	नासोउद्दीन गया खाँ	"
			(बरबनका पुत्र)
१२११	६६१	बरबनउद्दीन	सुरज उद्दीन कीरोबाद
		किलाउम	किरोन जाह गिलगो
			अलाउद्दीन गिलगो ।
१३०२	७०२	मामसउद्दीन	किरोनजाह "
१३१८		जाहउद्दीन बयराजाह	सुबानजाह
		गयासुद्दीन बहादुरजाह	सुगन्धजाह

		नासोउद्दीन	महम्मद सुमनक
१३२५	७२५	बादर खाँ	"
			बंगालके लाथीन पठान नरपति ।
ईस्वीकर	दि० म०	बादेरर	सामयिक दिल्लीभर
१३३६	७४०	फारउद्दीन	महम्मद सुमनक
			सुबानका जाह
१३४१	७४२	अलाउद्दीन आलीशाह गोड्डे	"
१३४२	७४३	इलयास जाह (गोड्डे)	"
१३४६		गातो जाह (पुर्चवगू)	"
१३५२	७५३	इलयास जाह (सर्वे वगू)	किरोनजाह
१३५६	७५८	सिकन्दर जाह	"
१३६८	७६६	गयासुद्दीन जाह (पुर्च वगू)	"
			७६५ " (सर्वे वगू)
१४१०	८१३	सैफ उद्दीन यिन्	महम्मद जाह
			गयासुद्दीन हानजा
१४१२	८१५	जाहन उद्दीन यफाजिदजाह	मसूद जाह
१४८०	७८७	राजा गयेग	"
१४१५	८२१	अलाउ उद्दीन महम्मद	गिलगो खाँ
			जाह यिन गानजा
१४३१	८३५	अलाउजाह यिन अलाउ	सुबानका जाह
१४४८	८५०	नासिउद्दीन महम्मद जाह	आलन जाह
१४५७	८६२	यार्थन जाह	यदलोम लोरो
१४७४	८७६	युसुक जाह यिन यार्थक	"
१४८२	८८७	सिकन्दर जाह	"
१४८२	८८७	फने जाह	"
१४६१	८६६	सुल्तान जाहजाह	"
१४६२	८६७	सैफउद्दीन किरोनजाह	हयतो "
१४६४	८६६	नामीउद्दीन मसूद	सिकन्दर
१४६५	६००	सुजयक जाह हयतो	"
१४६८	६०३	अलाउद्दीन सैफद	"
			दुर्गम जाह
१५२१	६२७	अनवरन जाह	अमदिन भीरु बाबर
१५३२	६३६	किरोन जाह ३य	दुमापू
१५३४	६४०	मसूदजाह यिन	"
			दुर्गम जाह (सही यफाघीमे शेर न्याधीन नरपति थे)
१५३७	६४४	फरीद उद्दीन मीरजाह	"

१५३८ ६४५ हुमायूँ—इन्होंने गौड़ या जन्नतावाद्-  
में राज-गाट किया था ।

१५३६ ६४६ शेरशाह ( पुनः )

१५४५ ६५२ महम्मद खाँ

एरब'शके अधीन शासनकर्त्ता ।

ईस्वीसन हि० अ० ब'गेरवर सामयिक दिल्लीश्वर

१५५५ ६६२ खिज़िर खाँ बाहादुर

शाह शेरशाह

महम्मद शूर सलोम शाह

१५५५ ६६२ बहादुर शाह महम्मद आदिली

१५६१ ६६८ जलाल उद्दीन बिन

महम्मद "

१५६४ ६७१ सुलेमान करवानी

" "

१५७३ ६८१ वाज़िद बिन सुलेमान

१५७३ ६८१ दाउद खाँ बिन सुलेमान अकबरके

सेनापति मुनाद्म खाने इसे सुगल

पदानत किया ।

मुगल सम्राट्के अधीनस्थ बंगालके शासनकर्त्ता ।

ईस्वीसन हि० अ० ब'गेरवर सामयिक दिल्लीश्वर

१५७६ ६८४ खाँ जहान अकबर

१५७६ ६८७ मुजबभर खाँ "

१५८० ६८८ राजा टोडर मल "

१५८२ ६६० खाँ अजीम "

१५८४ ६६२ शाहवाज खाँ "

१५८६ ६६७ राजम सिंह "

१६०६ १०१५ कुतयुद्दीन जहाँगीर

कोकलतास

१६०७ १०१६ जहाँगीर कुली "

१६०८ १०१७ सेख इसलाम खाँ "

१६१३ १०२२ कासिम खाँ "

१६१८ १०२८ इब्राहिम खाँ "

१६२२ १०३२ शाहजहान "

१६२५ १०३३ खानजाद खाँ "

१६२६ १०३५ मकरम खाँ "

१६२७ १०३६ फिदाई खाँ "

१६२८ १०३७ कासिम खाँ शाहजहाँ

जबुगी

१६३२ १०४२ भाजिम खाँ "

१६३७ १०४८ इसलाम खाँ मसहदी "

१६३६ १०४६ सुलतान सुजा "

१६६० १०७० मीर जुमला बीरकूजेव

१६६४ १०७४ साइस्ता खाँ "

१६७७ १०८७ फिदाई खाँ "

१६७८ १०८८ सुलतान महम्मद

आजिम "

१६८० १०६० साइस्ता खाँ "

१६८६ १०६६ इब्राहिम खाँ रय "

१६६७ ११०८ आजिम उससान "

१७०४ १११६ मुशिद कुली खाँ "

१७२५ ११३६ सुजा उद्दीन खाँ महम्मद शाह

१७३६ ११५१ अला उद्दीला "

सरफराज खाँ

१७४० ११५३ अलीचर्दी खाँ "

महश्वत जंग

१७५६ ११७० सिराजुद्दीला आलमगीर

१७५७ ११७१ मोरजाफर अली खाँ "

१७६० ११७४ कासिम अली खाँ शाह आलम

१७६३ ११७७ मोरजाफर अली खाँ "

१७६५ ११७६ नजीम उद्दीला "

इन सब राजाओंका विस्तृत विवरण इन्हीं शब्दोंमें देखो ।

१७६५ ई०के जनवरी महीनेमें जब मोरजाफरकी मृत्यु हुई, तब उनके पुत्र नजीम उद्दीलाने अङ्गरेज-कम्पनीसे सन्धि कर ली और अङ्गरेजोंके हाथ वज्ज-राज्यका शासनभार सौंप दिया । वे नाममात्रके नवाब-नाजिम पदाभिधिक रहे । वज्जालके फौजदारी और दीवानो विचारका परिदर्शनभार उनके ऊपर न रहा ; उन्होंने वास्तवमें विचार-विभागका व्यवस्थापकत्व और सर्वमय कर्तृत्व खो दिया । उनके अधीनस्थ एक दीवानकी देखरेखमें निजामतका कार्य चलने लगा । अयोध्याके वजीर सुजाउद्दीलाके परामर्शके बाद अंगरेज-कम्पनीने इलाहाबाद और काड़ा प्रदेश दिल्लीके बादशाह-





घारी लोगोंने किस तरह अपनी कोठीकी रक्षाके लिये सैन्य इकट्ठा किया था, इतिहास-पाठक यह अच्छी तरह जानते होंगे। १६४० ई०में हुगली नगरमें एवं १६४२ ई०में बालेश्वरमें कोठी खोली गई। १६४५-४६ ई०में सम्राट् शाहजहांके आनुकुल्य और डा० सार्जन प्रेवियल वाउटनकी प्रार्थनासे हुगलीमें अंगरेज-वणिक्-सम्प्रदायकी गोठी जम गई। तभीसे उक्त बम्पनी अपनी अधिकारक्षा में विशेष यत्नयान् हुई। क्योंकि इस समय प्रतिद्वन्द्वी ओलन्दाज, दिनेमार, फरान्सी, जर्मन आदि विभिन्न वणिक्-सम्प्रदायके साथ प्रतिपक्षता कर अंगरेजोंको अपनी स्मार्थरक्षा करनी पड़ी थी। इस समय अंगरेजोंने अपनी वाणिज्य-कोठी अच्छी तरह चलानेके लिये एक एक एजेंट नियुक्त किया।

अंगरेज कम्पनीको इस प्रभावशक्तिके साथ साथ डिरेक्टरके आदेशसे एजेंटके बदले एक एक गवर्नर रखना पड़ा था। १६६० ई०में जाय चार्नक कलकत्तेमें रहे। १६६२ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। इस साल हुगलीमें कलकत्तेमें अङ्गरेज बम्पनीकी एजेंसी उठा कर लाई गई थी। १८६६ ई०में श्रीलङ्काके लड़के शाजिम उसमान बंगालके शासनकर्ता हुए। १६६८ ई०में उन्होंने अङ्गरेजकम्पनीको कलकत्ता और तत्सम्बन्धित दो गांध दे कर यहांकी प्रजाओंके दोष-गुणका न्यायविचार करनेका क्षमता दी। उनके ही आदेशसे उक्त वर्षमें कलकत्तेमें "फोर्टविलियम" किलेकी नींव डाली गई। अंगरेज गवर्नर डे कफे विमद्वय आचरणसे विरक्त हो कर नवाब सिराजुद्दौलाने १७५६ ई०में कलकत्ते पर हमला कर दिया और विजय पाई। दूसरे वर्ष मद्राससे आ कर कर्नल क्लाइवने कलकत्ता फिर मुसलमानोंके हाथसे छीन लिया। १७५७ ई०के जून महीनेमें सिराजको गद्दीसे उतार दिया और उन्हें निहत कर क्लाइवने मीरजाफर अपनी खांकी बंगालके सिंहासन पर बिठाया। यहीसे अंगरेज-कम्पनीके राजत्वका सूत्रपात हुआ। मीरजाफर अंगरेजोंके अभिमानसे बंगालका शासन करनेमें पराङ्मुख हुए, तब मीरकासिम अलीको बंगालका शासन-भार दिया गया। कासिम अलीके अंगरेजद्वेषी होनेसे उन्हें पदच्युत कर पुनः मीरजाफरको वङ्ग सिंहासन पर

बिठाया गया। १७६५ ई०में मीरजाफरकी मृत्यु हो गई। पीछे उनके लड़के नजम उद्दौलानी बंगालकी मसनद पर अभिषिक्त किया गया था। उक्त सालके जून महीनेसे नजम अंगरेज कम्पनीके वृत्तिभोगी हुए। इस सालकी १२वीं अगस्तको मुगल-सम्राटने क्लाइवको जागीरस्वरूप बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी दी। यह दीवानी सनद ही बंगालके अंगरेज राजत्वकी प्रथम और प्रथम बल्लभ हुई। तभीसे अंगरेज लोग ही बंगालके प्रकृत शासनकर्ता हो गये एवं मुर्शिदाबादके नवाबवंश अंगरेजोंसे वृत्ति पाने लगे। पूर्वोक्त तालिकामें बहुत संक्षेपसे इन प्रतिभाशाली नवाबवंशका परिचय दिया गया है।

इष्ट-दिखा कम्पनीके अधीनस्थ बंगालके एजेंट।

नाम	कार्यमह्यकाल।
मि० राल्फ कार्टराइट	१६३३
" जईस	...
" घार्ट	...
फैपटेन जान ब्रुकागेन	१६५०
मि० जेम्स ब्रिजमेन	...
" पाल वालडे प्रेभ	१६४३
" जार्ज गवटन	१६५३
" जोनाथान ब्रेविशा	१६५८
" विलियम ब्लेक	१६६३
" रोम ब्रिजिस	१६५६
" चार्लर क्लोयेल	१६७०
" माथियस भिंसेट	१६७७
बंगालके गवर्नर।	
मि० विलियम हेजेम	१६८२ जुलाई
" " गिफोर्ड	१६८४ अगस्त
सर एडवार्ड लिट्ल्टन	१६६६ जुलाई
" चार्ल्स थायर	१६९० मई १७००
मि० जान घोयार्ड	७वीं जनवरी १७०१
" आण्टनी घोयार्डडेन	२०वीं जुलाई १७१०
" जान रामेल	४मी मार्च १७११
" रायर्ट हेजेस	३री दिस १७१३
" सामुएल फिक	१२वीं जून १७१८

को उपद्वीपगतों के पर उसके बदले बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाली क्षेत्रोंको सन्तुष्ट करे। उसमें नवाब 'नाजिम'को निजामत-रक्षाके लिये वार्षिक ५२८६१३१) रु० वृत्ति निर्धारित हुई थी। अंगरेजोंको उसी सूत्र पर मुजिदाबादके नवाबोंको यह वृत्ति देनी पड़ी। गोष्टे अङ्गरेजको फूटनीतिमें यह गट गई। याम्लधर्म इसी समयमें अङ्गरेज कम्पनी पञ्जाबको यथार्थ प्रामाण्यकर्ता हुई थी। निजामत समनन्दके उपसर्गप्रयोग बङ्गालके परवर्ती नवाब नाजिमोंको यथा सात्त्विका संघे दी गई है,—

वृत्तिभोगी बंगालका नवाबवश।

१७६५ नजोप उद्दीला—मीरजाफरके पुत्र। १७६६ ई०की ३री मईको इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने शीघ्रता अङ्गरेज कम्पनीसे सालाना ५३८६३१) रु०की वृत्ति पाई थी।

१७६६ शीफ उद्दीला—मीरजाफरके २य पुत्र। इनकी मृत्यु १७७० ई०की १०वीं मार्चको हुई। इनके समय वार्षिक वृत्ति घटा कर ४१८६१३१) रु०का कर दी गई थी।

१७७० सुबाशक उद्दीला—मीरजाफरके ३य पुत्र। १७६३ ई०के मितम्बर महीनेमें ये करालकाल-कालमें पतित हुए। इन्हें ३१८१६६१) रु० वृत्ति मिलनी थी। इनके ही समयमें १७७२ ई०की उन वृत्ति घटा कर सालाना १६ लाख रु० कर दी गई थी। यह घटना आज तक भी चली आती है।

१७६३ नागिर उल् मुल्क यजोर उद्दीला देहवारजंग—सुबाशकके पुत्र। १८१० ई०के अग्रेल महीनेमें इनकी मृत्यु हुई।

१८१० नौबत जिन उद्दीन अली एवं उर्फ अजाजाह—नागिर उल् मुल्कके पुत्र।

१८२१ सैयद अहमद अली एवं उर्फ बालाजाह—अली जाहके भाई। १८२४ ई०की ३०वीं अक्टूबरको ये मृत्युमुखमें पतित हुए।

१८२५ सैयद सुबाशक अली एवं उर्फ हुमायूँ जाह—बाला जाहके पुत्र।

१८३८ फारिदुल जाह सैयद मनसूर अली एवं नसरत जंग—

हुमायूँ जाहके पुत्र। ये नाना कारकोंसे अन्तमें पट्ट कर इंग्लैण्ड भेज दिये गये।

दम समय अङ्गरेज-सर्वनीमें एङ्गे उन्हीं अर्थसाहाय्य करनेमें स्वीकृत होने पर, ये वार्षिक लाख रुपये मुसहरा और अर्धे तीहनेके लिये दश लाख रुपये पानीकी धारासे १८८० ई० की १ली नवम्बरको निरपोषित नवाब नाजिम तर्पारा त्याग करनेमें स्वीकृत हुए। १८८२ ई०में उनके लड़के सैयद हसन अली खाने मनद द्वारा मुजिदाबादके नवाब बहादुरको उपाधि पाई। १८६१ ई०की १२वीं मार्चकी नवाब मर सैयद हसन अली खान बहादुर जी. सी. आई. ईने १८८० ई०को १ली नवम्बरको अपने पितृवृत्त नाना-नाजिम पदत्यागाङ्गीकार साधित और घोषित करके हुए सेक्रेटरी आन स्टेट्सके इन्डियनपतमें अपना मतलब प्रकट किया। उसी वर्षमें उसी महीनेको २१वीं तारीखको सर्कीसिल भारत-प्रतिनिधि द्वारा (by the Council of his Excellency the Viceroy and Governor General of India) १८६१ ई०की १५ नं० राजविधि (Act XV of 1861) में यह स्थिरीकृत और परिशुद्ध हुआ। यह समझा थायस कर उन्हीं उसके बदले अङ्गरेजराजसे एक बंगालकामिऊँ वार्षिक वृत्ति एवं मुजिदाबाद फलकत्ता, मेदिनीपुर, टांका, मालदह, पूर्णियाँ, पटना, रङ्गपुर, हुगली, राजगाहो, बीरभूम और सुग्वाल परगनेमें बहुत-सी निर्दिष्ट आयको भूमिपत्ति पाई थी। इनके बीच पुत्र थे,—आसफ कादर सैयद, यासिफ अली मौजा, इस्कान्दर कादर सैयद नासिर अली मौजा, आमफ, अली मौजा, सैयद यादुव अली मौजा और तर्किय अली मौजा।

अंग्रेजोंका समुद्रय।

बंगालमें प्राणित्य करनेके अजिनायसे अंगरेज इंग्लैण्डका कम्पनी मद्रासमें समुद्रकी राहसे बंगालकी ओर चली। १६१४ ई०में मर टागस रोकी मुगल-सम्राट् जहांगीरके अनुग्रहसे प्राणित्य करनेका आदेश मिला। १६२० ई०में बंगालके मुगल-प्रतिनिधि इनाजिम की फते जङ्गके प्राणनकाशमें कम्पनीने पटनेमें कपूर देवतके लिये नीला चोली। मगोमे क्रमसे बंगालमें अतिदक्षिण भागमें अंगरेजोंका प्रभाव फैलने लगा। कम्पनीके नाम

काशी लोगोंने किस तरह अपनी कोठीकी रक्षाके लिये नैन्य इकट्ठा किया था, इतिहास-पाठक यह अच्छी तरह जानते होंगे। १६४० ई०में हुगली नगरमें एवं १६४२ ई०में बालेश्वरमें कोठी खोली गई। १६४५-४६ ई०में सम्राट् शाहजहाँके आनुकुल्य और डा० सोर्जन प्रेवियल वाउटनकी प्रार्थनासे हुगलीमें अंगरेज पणिक्-सम्प्रदायकी गोठी जम गई। तभीसे उक्त कम्पनी अपनी अधिकाररक्षा में विशेष यत्नवान् हुई। क्योंकि इस समय प्रतिद्वन्द्वी ओल्म्प्राज, दिनेमार, फरामो, जर्मन आदि विभिन्न पणिक्सम्प्रदायके साथ प्रतिपक्षता कर अंगरेजोंको अपनी स्वार्थरक्षा करनी पड़ी थी। इस समय अंगरेजोंने अपनी वाणिज्य-फोटी अच्छी तरह चलानेके लिये एक एक एजेंट नियुक्त किया।

अंगरेज कम्पनीकी इस प्रभावशालिके साथ साथ डिक्रेटरके आदेशसे एजेंटके बदले एक एक गवर्नर रचना पड़ा था। १६६० ई०में जाव चार्नक कलकत्तेमें रहे। १६६२ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। इस साल हुगलीमें कलकत्तेमें अङ्गरेज कम्पनीकी एजेंसी उठा कर लाई गई थी। १८६६ ई०में औरङ्गजेबके लड़के आजिम उससान बंगालके शासनकर्त्ता हुए। १६६८ ई०में उन्होंने अङ्गरेजकम्पनीको कलकत्ता और तत्सम्बन्धित दो गाँव दे कर वहाँकी प्रजाओंके दोष-गुणका न्यायविचार करनेका क्षमता दी। उनके ही आदेशसे उक्त वर्षमें कलकत्तेमें "फोर्टविलियम" किलेकी नींव डाली गई। अंगरेज गवर्नर डूकके विमद्वेष आचरणसे विरक्त हो कर नवाब सिराजुद्दौलाने १७५६ ई०में कलकत्ते पर हमला कर दिया और विजय पाई। दूसरे वर्ष मद्राससे आ कर कर्नल क्लाइने कलकत्ता फिर मुसलमानोंके हाथसे छीन लिया। १७५७ ई०के जून महीनेमें सिराजको गद्दामे उतार दिया और उन्हें निवृत्त कर क्लाइने मीरजाफर अली खाँको बंगालके निहासन पर विठाया। यहीसे अंगरेज-कम्पनीके राजत्वका मूलपात हुआ। मीरजाफर अंगरेजोंके अभिमतसे बंगालका शासन करनेमें पराङ्मुग हुए, तब मीरकासिम अलीको बंगालका शासन-मार दिया गया। कासिम अलीके अंगरेजद्वेषी होनेसे उन्हें पदच्युत कर पुनः मीरजाफरको बङ्ग निहासन पर

विठाया गया। १७६५ ई०में मीरजाफरकी मृत्यु हो गई। पीछे उनके लड़के नजम उद्दौलानेकी बंगालकी ससनद पर अभिषिक्त किया गया था। उक्त सालके जून महीनेसे नजम अंगरेज कम्पनीके वृत्तिभोगी हुए। इस सालकी १२वीं अगस्तको मुगल-सम्राट्ने क्लाइवको जागीरस्वरूप बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी दी। यह दीवानी सनद ही बंगालके अंगरेज राजत्वकी प्रधान और प्रथम दलील हुई। तभीसे अंगरेज लोग ही बंगालके प्रकृत शासनकर्त्ता हो गये एवं मुर्शिदाबादके नवाबवंश अंगरेजोंसे वृत्ति पाने लगे। पूर्वोक्त तालिकामें बहुत संक्षेपसे इन प्रतिभाशाली नवाबवंशका परिचय दिया गया है।

ई०-इ०द्विधा कम्पनीके अधीनस्थ बंगालके एजेंट।

नाम	कार्यप्रवृत्तिकााल।
मि० राल्फ कार्टराइट	१६३३
" जईस	...
" धाई	...
फैपटेन जान मुकाभेन	१६५०
मि० जेम्स ब्रिजमेन	...
" पाल वाल्डे प्रेभ	१६४३
" जार्ज गवटन	१६५३
" जोनाथान वेविगा	१६५८
" विलियम व्लेक	१६६३
" शेम ब्रिजेस	१६५६
" थॉमस क्लोपेल	१६७०
" माथियस मिसेंट	१६७७

बंगालके गवर्नर।

मि० विलियम हेजेस	१६८२ जुलाई
" " गिफोर्ड	१६८४ अगस्त
सर पडवार्ड लिट्ल्टन	१६६६ जुलाई
" चाल्सस थ्रायर	१६९० मई १७००
मि० जान वीथार्ड	३वीं जनवरी १७०१
" व्हाएटनी चोवैटडेन	२०वीं जुलाई १७१०
" जान रामेल	४थी मार्च १७११
" राबर्ट हेजेस	३री दिस १७१३
" सामुएल फिक	१२वीं जन० १७१८

नाम	कार्यमहासभा
॥ जान डोन	१७वीं " १७२३
॥ हेनरी फ्रीडलैंड	३०वीं " १७२६
॥ पदार्थ स्टिफेनसन	१७वीं जून १७२८
॥ जान डोन	" "
मि० जान स्टाफ़ाडम	२५वीं फर० १७३२
॥ टामस ब्राडिल	२६वीं जन० १७३६
॥ जान फारेस्टर	४थी फर० १७४६
॥ विलियम चार्लोप्ल	१८वीं अप्रि० १७४८
॥ एडम डूमन	१७वां जुलाई १७४६
॥ विलियम फिटचे (Fytche)	५वीं " १७५२
॥ गेजर डूक	८वीं अग० १७५२
बर्नल रायट्टे ग्राइव	२७वीं जून १७५८
जान जेड, हालयेल	२२वीं जून १७६०
मि० हेनरी भान्सीटार्ट	२७वीं जुलाई १७६०
॥ जान स्पेन्सर	३री दिस० १७६४
लार्ड ग्राइव	३री मई १७६५
मि० हारि मेरेलेष्ट	२७वीं जन० १७६७
॥ जान फार्डियर	२६वीं दिस० १७६६
मि० चार्ले हेस्टिंग्स	१३वीं अप्रैल १७७२

माननीय चार्ले हेस्टिंग्स पहले गवर्नर थे । १७७३ ई०में पार्लियामेंटके निर्णयानुसार मद्रास और बम्बई बंगालके शासनाधीन हुआ एवं वे गवर्नर जनरल पद पर नियुक्त हुए । उस समय गवर्नर जेनरलका घेतन मालाना टाई लागू और उनकी सामाजिक चार सदस्योंसे हर एकको एक लाख रुपया मिलता था । भारतवर्षके इतिहासमें भारतके अंगरेज-गवर्नर जेनरलोंका शासन-विचारण विषय जा चुका है, हमलिये यहाँ कुछ नयीं लिखा गया । सिर्फ बंगालकी कुछ प्रसिद्ध घटना लिख कर मद्रासशासन प्रभावका संक्षेप विवरण दिया जाता है—

इष्ट इष्टिया बम्बईके दीवानों लेंगे पर लार्ड ग्राइवने बम्बईके सेनाविभागीय बद्धता । वे सब वाणिज्यके बहाने अर्थात्केलुग ही कर इस देशके फार्जिन्डोंमें बाधधा भर्त्स प्रक्षय करने थे । मीरजापुर और मीरजामिनरके समय बम्बईके बर्त्सचारियों की लक्ष्यबुधुता और अत्याचारकी मात्रा दिन पर दिन बढ़ती ही गई । बम्बईकी

बर्त्सविभागा युक्तिके लिये नवाबोंकी भी प्रतापीकरण कर अर्थात्सम्पन्न करना पड़ा था । इन अत्याचारके साथ साथ प्रतापों पर ईश्वर भी प्रतिकूल थे । १७६६-६७ ई०में बंगालमें भीषण बकाल पड़ा । बंगला १७७३ सालमें यह दुर्घटना घटी थी, इसमें यह 'छिद्ररक्त मयभर' नामसे आज भी प्रसिद्ध है ।

चार्ले हेस्टिंग्सने बंगालका राजस्य बसूल करनेकी सुविधाके लिये कलकूट नियुक्त किया । इस समय निकानी हड़प कर जानेमें महम्मद रेजा खाँ और राजा तिताय राय कारागृह हुए । हेस्टिंग्स राजकोष और राजकार्यालय मुर्शिदाबादसे कलकूते उठा लाये । उन्होंने विचारकार्यकी सुविधाके लिये दीवानों और फौजदारी अदालत कायम की थी । उक्त कलकूट ही दीवानों अदालतके तथा फार्जि या मुफ्ती फौजदारीके विचारक हुए । अपीलके लिये कलकूतेमें "मदर दीवानों अदालत" और "सदर निजामत अदालत" नामक दो प्रधान विचारालय स्थापित हुए थे । १७७५ ई०में "मदर निजामत" मुर्शिदाबादमें उठ गई और महम्मद रेजा खाँ नायब नजीम ही कर वहाँके प्रधान विचारपति हुए ।

बम्बईकी धोरुष्टि जून १७७३ ई०में 'इंग्लैंडकी पार्लियामेंटने बम्बई व्यापारमें हस्तक्षेप किया । उनके शासन-रेखाके चार्ले हेस्टिंग्स गवर्नर-जेनरल हुए और सर्क्यूलर गवर्नर-जेनरलका कर्तव्य बम्बईके भारतीय विचारकारोंमें व्याप्त हुआ । इसी समय अंगरेज व्यापारियोंके एष्टिबिधानके लिये 'इंग्लैंडकी व्यापारानुसार कलकूतेमें सुप्रीमकोर्ट स्थापित हुई थी । डिस्ट्रिक्टोंकी अनुमतिके अनुसार डिस्ट्रिक्टोंका हिन्दूजायानुसार और मुसलमानोंके मुसलमान मुद्रेके अनुसार विचार करनेकी आज्ञा जारी हुई । इस पर हालही साहबने एक बंगला व्यवस्था-प्रण संकलन किया । उनका प्रधान बंगला व्याकरण १७७८ ई०में छपा था । चार्ले हेस्टिंग्सने उस छापेका बहुत जोर था । वही बंगला अक्षरोंके प्रधान सृष्टि है । १७८० ई०की २६वीं जनवरीकी कलकूतेमें पहला संवाद-पत्र छपना शुरू हुआ ।

हेस्टिंग्सके शासनकालमें १७७३ ई०की महाराज कलकूतकी फार्जि हुई । उनके बाद सुप्रीमकोर्ट

स्थापित होने पर १७८३ ई०में सर विलियम जोन्स प्रधान विचारपति हो कर आये। १७८४ ई०में उन्होंने 'पशि याटिक सोसाइटी भाव बंगाल' नामक सभा स्थापन की। उसी साल पार्श्वमिंटके आदेशसे 'बोर्ड' भाव कन्दोल' कायम हुआ।

लाई कर्नवालिसके शासनकालमें १७६० ई०में सदर निजामत फिर कलकत्ता चली आई। १७६३ ई०में निर्दिष्ट राजस्व वसूल करनेका दशसाला या चारस्थायी बन्दोबस्त उनके समयकी प्रधान घटना है। इस वर्षमें अंगरेजोंमें लिओ हुई कितनी ही व्यवस्था संशुद्धी तथा प्रचारित हुई। मि० फारेस्टरने उनका बंगला अनुवाद किया।

लाई कर्नवालिसने कलकत्तोंके हाथमें सिर्फ राज-परस्रह करनेका मार दिया था। उन्होंने काजी, मुक्ती प्रभृति के स्थान पर प्रति जिलेमें 'जज' नियुक्त करके उनके हाथमें दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमेका विचारभार अर्पण किया। फौजदारी कार्यालयमें मुसलमाना व्यवस्थानुसार ही विचारकार्य निरवाहित होगा, इसलिये एक एक मुसलमान-वर्गचारी सहकारी रूपमें प्रति जजके साथ रहते थे। जजका जजोंसे निर्यादित मुकद्दमेकी अपील सुननेके निमित्त कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका एवं पटना नगरोंमें चार 'प्रोभिन्सियल कोर्ट' स्थापन हुई। इन 'प्रोभिन्सियल कोर्ट'के ऊपर सदर-दीवानी तथा सदर निजामत अदालत थी। दीवानी मुकद्दमेके विचारके लिये प्रति जिलेमें एक एक रजिस्ट्रार तथा कई एक मुन्सिफ नियुक्त हुए। स्थान स्थान पर एक एक धाना स्थापित हुआ एवं एक दारोगा प्रति धानाके कर्ता नियुक्त हुए।

१७६८ ई०में माक्सिड भाव वेल्लो बंगालके गवर्नर जेनरल हुए। १८०७ ई०में महाराष्ट्रियोंके साथ सन्धि करके कम्पनीने उनसे षटक प्रदेश ले लिया।

उनके समय तक सदर दीवानी तथा सदर निजामतका कार्यभार कौंसिलके साथ गवर्नर जेनरलके हाथमें स्वस्त था। उससे कार्यकी असुविधा होती देख वेल्लोने तीन 'जज' नियुक्त किये। उनमेंसे प्रथितनामा तथा बहु-विधाविशारद कोलमुक एक थे। अंगरेज सिव-

लियनोंको देशी भाषाकी शिक्षा देनेके निमित्त लाई वेल्लोने फोर्ट विलियम कालेज स्थापित किया। इस उपलक्ष्यमें पढ़ाके पाठ्यरूपमें कई एक बंगला पुस्तके सम्पादित हुईं। उनमें रामराम बाबूकी 'प्रतापादित्यचरित' (१८०१ ई०) तथा लिविमाला (१८०२ ई०), राजावलोचनका कृष्णचन्द्रचरित, मृत्युञ्जयविद्यालङ्कारकी राजावलो, कंरी साहबका बंगला व्याकरण तथा अभिधान आदि उल्लेखयोग्य पुस्तकें थीं। १७६६ ई० में मिसनरी मार्सामान तथा वार्ड श्रीरामपुरमें आ कर रहने लगे। उन्होंने ही जयगोपाल तकलिकार द्वारा संशोधन करा कर १८०१ ई० में रामायण और इसके बाद महाभारत छापाना आरम्भ किया। इस समयसे ही स्वभावतः बंगला-साहित्यका आदर घर घरमें दे।

१८०७ ई०में लाई मिंटो गवर्नर जेनरल हुए। उनके शासनकालके शेषभागमें ( १८१३ ई० ) पार्लियेन्ट प्रदत्त सनदानुसार इसमें कम्पनी एक तरहसे वाणिज्य रहित हो गई। ईसाई मिसनरियोंने यहां धर्म-प्रचार करनेकी अनुमति पाई, इसलिये कलकत्तामें एक 'विशाप' नियुक्त हुआ। इसके अलावा कम्पनीको इस देशका प्रजासौकी विद्याशिक्षा देनेके लिये सरकारी राजकोषमेंसे प्रति वर्ष एक लाख रुपये व्यय करनेकी आज्ञा हुई।

लाई मावरा या मार्किड भाव हेस्टिङ्ग्स १८१३ ई०में गवर्नर-जेनरल हो कर बंगालमें आये। उनके समयमें नेपाल तथा महाराष्ट्र-युद्धमें अंगरेज विजयी हुए थे। इस समय कई एक देशी सम्प्रान्त व्यक्तियोंके यत्न तथा व्ययसे कलकत्तेमें "हिन्दू कालेज" स्थापित हुआ एवं उन लोगों हीके द्वारा उत्साहित हो कर श्रीरामपुरकी मिसनरियोंने "समाचारदर्पण" नामक प्रथम बंगला-संवादात्मक पुस्तक लिखी। ( २३वाँ मई १८१८ ई० )

१८२४ ई०के अगस्त महौनेमें लाई पेमहर्ट गवर्नर जेनरल हो कर कलकत्ता आये। उनके समयमें ब्रह्मयुद्धमें कम्पनीकी राजवृद्धि एवं भरतपुरका प्रसिद्ध किला अंगरेजोंके हस्तगत हुआ। इस समय कलकत्तामें 'संस्कृत कालेज' स्थापित करनेके विषयमें संस्कृत भाषा-वित् अध्यापक विलसन साहब विशेष उद्योगी हुए थे। लाई पेमहर्टने १८२७ ई०में पश्चिममें जा कर दिल्ली-

के वादनाहमें कहा, कि कम्पनी ही इस देशका वास्तविक सम्राट् है।

१८२८ ई०में लार्ड विलियम बेन्टिं ग गवर्नर जनरल हुए। उन्होंने सहायकरी प्रथाको उठा दिया। राजा राममोहन राय, ठारकानाथ ठाकुर, राय फालीनाथ मुन्शी प्रभृति इस देशके अनेकों सुविज्ञित अत्र संतानोंने इस महान् कार्यामें उनकी सहायता की थी। उस समय इस देशमें ठगके नामसे एक दहकैतीका दल था। वे लोग अश्रुधर्मों गमनागमन करने थे एवं सुयोग पा कर यात्रियोंका बंध करके उनका यथासर्वस्व अपहरण कर लेते थे। कर्नाल श्रमनके उद्योगसे ठग लोगोंका यह दीर्घात्मक व्यापार निवारित हुआ।

इस समय इस देशके लोगोंकी संस्कृत क्रिया अज्ञेयता भाषाकी शिक्षा देना उचित है, कि नहीं इस विषय पर घोर आन्दोलन उपस्थित हुआ। अध्यापक विलसन साहब संस्कृत भाषाकी शिक्षाके समर्थक थे एवं प्रसिद्ध लार्ड मैकले तथा ड्रीविलियन साहब पाश्चात्य ध्वानचर्चाका प्रभोजनोपमा दिशा कर अज्ञेयता पक्ष समर्थन करते थे। गवर्नर जनरलके विचारानुसार अज्ञेयता ही जय हुई। १८३५ ई०में मैटिकल कालेज स्थापित हुआ।

लार्ड बेन्टिङ्कके समयमें विचार-विभागका बहुत ही परिवर्तन हुआ। 'प्रोविन्सियल कौर्ट' उठा दी गई एवं 'रेसिड्यू कमिश्नरी' की स्थापना हुई। कलकत्तीने नौ जजदारों मुकदमोंके विचारकी क्षमता पाई एवं जज दीवानों तथा दारोंके मुकदमोंका विचार करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ।

१७६३ ई०में 'मुसिफ्ता' एवं १८०३ ई०में सदर 'जमीनों' पदकी सृष्टि हुई। अब तक देगी लोग ही इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। लार्ड बेन्टिङ्कने इस देशीय लोगोंके निमित्त "प्रधान सदर अमीनों" पदकी सृष्टि की। इस पदका मासिक वेतन ५०० रुपये निर्धारित हुए एवं प्रधान सदर अमीन राय गुरुहमें दीवानों मुकदमा करनेके अधिकारी हुए। "डिप्युटी कलक्टर" नियुक्त होनेका नियम पदोंको देगी लोग पाले थे।

लार्ड बेन्टिङ्कके शासनकालमें ईश्वरचन्द्र गुप्तने "प्रवाकर" नामक संवाक्पत्र प्रचार किया (१८०३ ई०)। एवं राजा राममोहन रायने कलकत्तामें १८२६ ई०में प्रथम समाज स्थापित किया था। जान पड़ता है, भारतवासि दिन्दू अश्रुसमाजमेंसे राजा राममोहन राय ही पहले पहल इंग्लैण्ड गये एवं उन्होंने यहाँ जा कर मानवमीमा संरक्षण की। राममोहन रायने १ ई एक बंगला प्रथीकी रचना की थी।

१८३५ ई०में लार्ड बेन्टिङ्कने स्वदेशी यात्रा की एवं स्वतंत्र गवर्नरके न आने तक मैटिकाफ् साहब ही उनके कार्य पर नियुक्त रहे। उनके शासनकालमें तथा उनके ही उद्योगसे अंग्रेजी तथा बंगला मुद्रायन्त्रोंकी स्थापना संस्थापित हुई। मैकले साहबने इस विषयमें कथं पत्रोपकता की थी।

१८३५ से ले कर १८४२ ई० पर्यन्त लार्ड आर्कवैर गवर्नर जनरल रहे। उनके समयमें कायुटमें अंग्रेजोंकी विद्वक्षण हुईजा हुई। बंगालमें १८३५ ई०में १५वीं कालेजकी एवं १८४६ ई०में टाका कालेजकी स्थापना हुई।

१८४२में ले कर १८४४ ई० तक लार्ड एलेनबरोने गवर्नर जनरलके पद पर शासन किया। उनके समयमें कायुटमें अज्ञेयता लागू विजयी हो कर मान सहित लॉट एवं मिथ देश पर कम्पनीका अधिकार हो गया। लार्ड एलेनबरोने डिप्टी मजिस्ट्रेटके पदकी सृष्टि की। उनके शासनकाल (१८४३ ई०)में तत्त्वबोधिनो-परिष्कार प्रकाशित हुई एवं अक्षयकुमार दत्त इस पत्रिकाके सम्पादक हुए।

१८४४ ई० से ले कर १८४८ ई० तक हार्डिंज साहब गवर्नर जनरल थे। उन्होंने सिधियोंके मुद्दमें विजय पाई। उनके समयमें "हार्डिंज स्कूल" नामसे दर एक गवर्नमेंट बंगला विद्यालय एवं १८४५ ई०में कृष्णनगर त हुआ समय ईश्वरचन्द्र विद्यापीठ (१८४७ ई०)। इस देशके गवर्नर जनरल, पंगु, सतार, कम्पनीके अधिकार

हुआ एवं १८५५ ई०में हिन्दूकालेज प्रोसीडेंसो कालेजमें परिणत हो गया। इसके अलावा अन्यान्य कई गवर्नमेंट आदर्श बंगविद्यालय तथा बंगकी खोजातिका विद्याशिक्षाके लिये कलकत्तेमें येशुन कालेज प्रतिष्ठित हुआ। इस समय सर चार्ल्स उड प्रणीत १८५४ ई०में शिक्षाविषयिणी अनुमतिनिधि आई एवं तदनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालयका सूत्रपान हुआ। इसके साथ साथ विद्यालय समन्वयमें गवर्नमेंटकी "ग्रान्ट इन एड" प्रथा भी प्रवर्त्तित हुई थी। इस उपलक्षमें शिक्षाविषयक कामिटि उठ गई, एवं विद्यालयपत्रके "डायरेक्टर" "इन्सपेक्टर" प्रभृति पदोंकी सृष्टि हुई।

लार्ड डलहौसीके यत्नके इस देशमें १८४१ ई०में इण्डियारेलवे तथा खबर भेजनेके तार (टेलोग्राफ) स्थापित हुए (१८५२ ई०)। पोस्टल डिपार्टमेंट स्थापित होनेसे डाकमदसूल कम गया। १८५३ ई०में इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने पार्लिमेंट महासभासे एक सनद प्राप्त की जिसके द्वारा बंगालमें 'लेफ्टीनेंट गवर्नर'के नामसे एक सतन्त्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी आज्ञा मिली एवं इस देशवासियोंने इङ्ग्लैण्ड जा कर "सिविल सर्विसे"की परीक्षा देनेकी अनुमति पाई। सर फ्रेडरिक हेल्डिडे २८ अप्रैल सर १८५४ ई०में बंगालका प्रथम लेफ्टीनेंट गवर्नर हो कर आये। १८५६ ई०में विद्यासापर महाशयकी चेष्टासे विधवा-विवाहका व्यवस्था विधिवत् हुई।

१८५६ ई०में लार्ड डलहौसीने स्वदेशवाता की एवं लार्ड कैनिङ्ग भारतवर्षके गवर्नर-जेनरल बन कर यहाँ आये। लार्ड कैनिङ्गके समयमें १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोह हुआ। इस राष्ट्र-विरुद्धमें उन्होंने अत्यन्त विलक्षणताके साथ कार्य किया था, इसलिये उन्हें लोग "हूमेन्सो कैनिङ्ग" कहते हैं। सिपाही विद्रोहके बाद महारानी विक्टोरियाने कम्पनीके हाथसे इस देशका शासन-भार अपने हाथमें ले लिया। उस समय उन्होंने अंगीकार किया था, कि वे इस देशकी प्रजाओंके धर्म तथा स्वतन्त्रता रक्षा करेंगे एवं उनके योग्य होने पर सारा राज्यकर्म उन्हें दे देंगे (नवम्बर १८५८ ई०)। लार्ड कैनिङ्गके समयमें "भारतवर्षीय दण्डविधि" "दीवानो"

"फौजदारोकार्यविधि" एवं "खजाना सम्बन्धी १० आईन" प्रचारित हुए एवं "वरेन्सी नोट" पहले पहल प्रचलित हुआ।

कैनिङ्गके बाद लार्ड पलमिन गवर्नर जेनरल हुए। उनके शासनकालमें पूर्व-बंगाल तथा मातला रेलवे खुली एवं सदर् अदालत तथा सुप्रीमकोर्ट मिला कर "हाईकोर्ट" बनाया गया। हाईकोर्टके विचारावाशके पद पर इस देशवासीके नियुक्त होनेका नियम है।

दो वर्ष (१८६२-६३ ई०)के अन्दर ही लार्ड एल-गिन्ने मानवलीला संवरण की। उनकी मृत्युके बाद सर विलियम डेनिसन कुछ दिनों तक गवर्नर जेनरल रहे। इसके बाद सर जान लारेम (१८६४-६६ ई०) तक एवं लार्ड मेयो (१८६६-७७ ई० तक) यथाक्रमसे गवर्नर जेनरल रहे। एक निर्वासित मुसलमानके अज्ञावातसे अन्दाजान होयमे लार्ड मेयोकी मृत्यु हुई (८वीं फरवरी १८७२ ई०)।

इसके बाद ४वीं फरवरीसे २४वीं फरवरी तक सर जान स्ट्रेचो तथा २४वीं फरवरीसे ३री मई तक लार्ड नेपियर गवर्नर जेनरलका कार्य करते रहे। १८७२ ई०की ३री मईकी लार्ड नार्थब्रूकने इस देशका शासन-भार ग्रहण करके कर-प्रयोजित प्रजाओंका कर-भार हलका किया एवं ऊंचे अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त करनेका उत्साह दिया।

लार्ड नार्थब्रूकके समय १८७५ ई०के शेषभागमें युवराज प्रिंस ऑफ वेल्स (भारत सम्राट सप्तम एडवर्ड)ने बंगालमें शुभागमन किया। युवराजके इंग्लैण्डसे प्रत्यागमन होने पर महारानी विक्टोरियाने "प्रिंस ऑफ इण्डिया"की उपाधि ग्रहण की (१८७५ ई०)। १८७७ ई०के जनवरी महीनेमें इस उपाधि ग्रहणके उपलक्षमें महासमारोहके साथ दिल्लीमें एक दरबार हुआ। इसी साल दक्षिण-भारतमें दुर्मिश पड़ा तथा काबुलके अमोरके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ। उस युद्धमें अंगरेजोंकी ही विजय हुई। १८७५ ई०में उन्होंने स्वदेशवाता की एवं लार्ड लिटन उनके पद पर अभिषिक्त हुए।

लार्ड लिटनने देशीय रुंदापत्तोंकी स्थापनता धरण कर ली एवं उन्होंने अस्त-आईन विधिवत् किया।



इनके समयेमें दुर्मिश्र निवारणाधी व्यवसाय करनेवालों पर 'लाइसेंस-टैक्स' नामक कर संस्थापित हुआ। १८८० ई०के अग्लिज महोलेमें 'लाइ' लिटनके भारत परिदशम करने पर मार्शल्लू आय रिपन भारतवर्षके गवर्नर जेनरल ने नद भाये। उनके समयेमें अंगरेज लोग पुनः गाबुल युद्धमें विजयी हुए।

रिपनने देशीय संघादपत्रोंकी स्थापनना पुनः प्रदान करके एवं "ब्य'पसगामनप्रणाली" प्रवर्तित करके बंगालका विशेष मंगल साधन किया। इसके अलावे इनके समयेमें विद्याभिक्षा सञ्चयमें "पल्लुकेजन कमोजन" नियुक्त हुआ। इनके ही अमलमें रमेजगन्धू मिलने कुछ काल तक 'जज'-का कार्य किया था।

१८८४ ई०के श्रेय भागमें 'लाइ' डफरिनके हाथमें भारतका शासन-आर अर्पण करके 'लाइ' रिपनने स्वदेशकी यात्रा की। उनके भागमनके कुछ दिन बाद १८८५ ई० में बंगालके प्रजास्यत्वविषयक ८ आर्डन विधियद्ध हुए। १८८५ ई०के श्रेय भागमें प्रलराज धियकी सिद्धामन-चयुत तथा बन्दो वरके उस राज्य पर अधिकार कर लिया गया। १८८६ ई०की पञ्चवी जनयरोसे विस्ताणं प्रलराज्य भारत-साम्राज्य भुक्त हो गया है। उक्त वर्षके अग्लिज महोलेमें 'इरगु-टैक्स' कर पुनः स्थापित हुआ। भारत राजराजेश्वरी विद्युत्-रियाके राजस्वकालका पांच सो वर्ष पूर्ण होनेके उपलक्षमें १८८७ ई०की २६वीं फरवरीकी भारतवर्षके प्रत्येक स्वानोम महानमारोहके साथ "जुविलि" महोत्सव समाहित हुआ था।

'लाइ' डफरिनने देशी लोगोंको अधिक परिमाणमें ऊंचे पद पर नियुक्त करनेके अभिप्रायसे—“पब्लिक सर्विस कमोजन” नियुक्त किया, किन्तु उनके मन्थ्यानुसार यमा भा कोई विशय कार्यका अनुष्ठान नहीं होता। 'लाइ' डफरिनके शासनकालमें सिद्धम, तिष्ठत तथा पंजाब मोमामगतिमिन्न एज्जगरीतमें युद्ध हुआ। उन्होंने १८८८ ई०की २०वीं दिसम्बरकी 'लाइ' लेमण्डा-वनके हाथमें शासन भार अर्पण करके चित्तराजका वात्रा-की। 'लाइ' लेमण्डाउनके समयेमें १८६० ई०के दिसम्बर महोलेमें हस्त-सम्राट्के उच्छेद पुनः देश सनपनी इच्छामें भारतमें भाये थे। मणिपुर राज्यके राजकर्म उद्यम रीतिमें

न चलने देव दर भारत गवर्नमेंट उस विषयमें हस्तक्षेप करनेकी बाध्य हुई। उसके उपलक्षमें प्रेरित अंगरेज-दमोचाराणणके निवृत्त होने पर एक दृष्ट अंगरेजो सेनामें मणिपुर पर अधिकार कर लिया एवं सगराधिगण गिरह्वार पर लिये गये। न्यायाधीश द्वारा अथराधियोंको समुचित दण्ड दिया गया (१८६१ ई०)। युवराज टोकरन्द्रजिन्को अंगरेजो राज्यके विचारानुसार प्राण-दण्ड मिला।

'लाइ' प्लिगन २४वो जनवरी १८६४ ई०में भारतवर्षके राजप्रतिनिधि तथा गवर्नर जेनरल नियुक्त हुए। उनके शासनकालमें "डावमण्ड जुविलि" उत्सव महासमारोहके साथ निरवश हुआ था। १८६६ ई०में पल्लुगतके चले जाने पर 'लाइ' कर्जन आय केंद्रल्लस्टोन भारत-प्रतिनिधि हुए। उनके शासनकालमें ग्युनिमपलिट तथा शिक्षाविषयक कितने ही राजनीतिक कार्यका संस्कार हुआ था। उनके शासनकालमें १८६६ ई०की २२वीं जनवरीकी भारतेभवा विद्युत्-रियाका मृत्यु हुई। उनके ज्येष्ठ पुत्र मसम पञ्चवर्षके राज्याभिषेकके उपलक्षमें दिलामें एक वृद्ध दरवार हुआ। इस समय बंगालमें भी बहुत उत्सव मनाया गया था। उनके भवकाजक समय मन्त्राजके गवर्नर 'लाइ' पब्लिक कार्य करने थे। उन्होंने पूर्व-बंगालके कितने ही जिलोंकी आसाम प्रदेशमें मिला पर बंगालके दो टुकड़े कर दिये। इससे बंगालकी राजनीतिक जोष बहुत मजबूत हो गई, इसमें शक नहीं। भारतकी उत्तरी तथा पूर्वी सीमाओंका रक्षा करना एवं पंग तथा प्रलके मध्यवर्ती बनावीण पाश्चत्य प्रदेशमें अङ्गरेजो-शासनको प्रतिष्ठा करना ही इस जटिल तत्त्वका मूढ़ उद्देश्य था।

इस समय सामरिक विभागके सुधारके लिए जंगी 'लाइ' 'लाइ' रिपनर बहादुरके साथ उनका विशेष उपस्थित हुआ। उससे उन्होंने भारत सचिवके पास बंगत्यागपत्र भेजा। उनका त्यागपत्र शूदीन तथा अनुमोदित होने पर भी वे भारतवर्षका त्याग नहीं कर सके। इन्डो-एशियाभवा मसम पञ्चवर्षके आक्रानुसार वे युवराज प्रिम आय केमरी अभिनन्दन देनेके लिए भारतवर्षमें रहनेको बाध्य हुए। १८७५ ई०के दिसम्बरकी

युवराजने बम्बई शहरमें पदार्पण किया । जब १७वीं तारीखको लाई मिष्टो भारत पहुँचे, तब उनके हाथमें भारत साम्राज्यका कार्यभार दे कर उन्होंने १८वीं दिसम्बरको इङ्ग्लैण्ड-यात्रा की ।

लाई मिष्टोके समयमें २४वीं दिसम्बरको युवराज बंगालमें आये थे । कलकत्तामें उनके शुभागमनमें यथेष्ट आनन्दोत्सव हुआ था । कलकत्ताके मैदानमें उनकी सम्पत्तना तथा अभिनन्दनार्थ एक दरवार हुआ था । उस साय छोटाछाटा बहादुरके वेल्भेडियारके प्रामाण्यमें संघीय हिन्दू महिलाओंने युवराज-पक्षीका धरण किया था ।

१९०५ ई०के अक्टूबर महोत्सवमें बंगराज्य दो भागोंमें विभक्त हुआ । फुलर साहय वहाँके छोटेछाटा हुए । बंगवासियोंने इन दिनों अङ्गरेज व्यापारियोंमें प्रोत्थित हो कर उनके व्यापार-पथको रोध करनेके लिए बंगालमें "स्वदेशी" विस्तार करनेकी चेष्टा की । उन लोगोंने स्वदेशी वाणिज्यकी रक्षाके लिये बंगमाताके श्रोत्रधारणोंमें शरण ली एवं श्रीयुत चक्रिणचन्द्रके उम दिगन्त विम्फा गिन "चन्दे मातरम्" महामन्त्रसे दीक्षित हो कर जाति तथा देशोद्धार की चेष्टा की । इस 'चन्दे मातरम्' मन्त्रसे शीघ्र ही विद्रोह होनेकी आशङ्का जान कर अङ्गरेज-राज-कर्मचारिगण सशस्त्रिन हो उठे । उन्होंने चारों ओर 'चन्दे मातरम्' स्तोत्रका प्रनिरोध करनेके लिए सकुलर जारी किया । अस्त्रि बंगाली प्रजाओंके ऊपर राजपुरुषोंने कुछ बर्तयाचार भी करना आरम्भ किया । उन राजकर्म-चारियोंके प्रतिबन्ध 'चन्दे मातरम्'की ध्वनितसे विध्वंसित हो गये । उन्होंने बंगालियोंके औद्दत्य दमनके लिये उस स्थानमें गोरखा सेनादल नियुक्त किया । अन्तमें १९०६ ई०में बंगाल प्रोमिन्सियल-फरन्ट्सके समय राजा प्रजाविद्धेयका च्युडान्त हो गया । बंगालके वका सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय राजपुरुषों द्वारा बर्धण्डसे दण्डित हुए । प्रजाओंमें और भी अगान्ति अनुभूत होने लगी, उस समय राज्यमें विधानके लिये पूर्ण बङ्गालके छोटाछाटा बहादुरने स्वीय भादेग प्रत्याहार किया । किन्तु बंगालमें इस समय "स्वदेशी आन्दोलन" पूर्णरूपसे जग उठा था ।

बङ्गालके लेफ्टनायट गवर्नर ।

नाम	कार्याम्भ
सर फ्रेडरिक जे, हालडे	१८५४ अप्रिल २८
" जान गी, ग्राएट	१८५६ मई १
" सेसिल विडन K. O. S. I	१८६२ अप्रिल २४
" विलियम प्रे *	१८६७ " २४
" जार्ज कैम्बेल "	१८७१ मार्च १
" रिचार्ड टेम्पल Birt "	१८७४ अप्रिल ६
माननीय आसली इडेन C. S. I C. I. E	१८७७ जनवरी ८
सर एड्वार्ट मि, वेली K. C. S. I. C. I. E	१८७६ जुलाई १५
( इन्होंने आसली इडेनको जगह कुछ समय अस्थायि-रूपसे काम किया । )	
अगष्टस रिमर्न टर्म्सन C. S. I. C. I. E.	१८८२ अप्रिल २४
मि० एच, ए, चकरेल I. C. S. I. E.	१८८५ अगस्त ११
( रिमर्न टर्म्सनको अवकाश देने पर अस्थायिरूपसे कार्य किया । )	
सर एड्वार्ट सि वेली	१८८७ अप्रिल २
" चार्ल्स अलफ्रेड पलियट K. C. S. I.	१८९० दिसम्बर १७
" आष्टन पाट्रिक मैकडोनेल K. C. S. I.	१८९३ मई ३०
( उसी सालकी ३० वीं नवम्बर तक पलियटकी छुट्टी-के समय कार्य किया । )	
माननीय सर अलेक्जन्डर मैकडोनेल K. C. S. I.	१८९५ दिसम्बर १८
माननीय चार्ल्स सि, एडिन्स	
C. S. I. ( अलेक्जन्डर मैकडोनेलके अवकाश देने पर १८९७ ई०की २२वीं दिसम्बर तक कार्य किया । )	
माननीय सर जान उडरन I. C. S. K. C. S. I.	१८९८ अप्रिल ७
" जे, ए, वॉर्डलोन V. D. I. C. S. C. S. I.	१९०२ नवम्बर २२ ऐक्ट

सर ए. एन. वल फ़ोजर M. A. I. C. S. R. C. S. I.

१९०३ नवम्बर २,

( इनके अयकाज लेने पर १९०६ ई०के जून मास तक माननीय क्लर्क, हैदराबाद काया किया । )

विलियम ड्यूक १९०८,

ई. एन. वेबर १९१०,

सर चार्ल्स टॉमिंग्स १९११,

लार्ड कारमारकल १९१२,

लार्ड रोनाल्डो १९१७,

लार्ड पीटन १९२२,

सर स्ट्यान्ली जयसन १९२७ ( वर्तमान गवर्नर )

अंग्रेजोंके शासन-कालमें बंगालकी अवस्था ।

अंग्रेजोंके शासन-कालमें इस देशके अन्दर नाना प्रकारकी कुप्रथायें फैल गईं हैं एवं जिनकी ही कुप्रथाओंकी इतिहास है। महामरण या सतीदाह, गंगासागरमें स्नान-विमर्शना प्रभृति कुप्रथायें जिस तरह दूर हो गईं हैं एवं चोर डकैत तथा अत्याचारोंकी जमींदारोंके दुराचरण कम हो चला है। उन्नी तरह नई नई सड़कें, रेलवेयें एवं वायवीय जहाजों ( वायुयान ) द्वारा गमनागमन तथा व्यापार करनेकी सुविधायें हो गईं हैं। फिर पोष्ट या डाक एवं टेलीग्राफ ( तार )के प्रवर्धन होनेसे जति अल्प समयमें ही दूर दूर तक संवाद भेजनेका उपाय हो गया है। विद्यारालयकी स्ति होनेसे जनसाधारणकी स्वल्प रक्षा करनेका पथ प्रगट हो गया है। विद्यालयों द्वारा लोगोंकी बहुतमानसिक उपरति हुई है। पंचायतियोंकी स्ति हुई है, मुद्राधनकी स्थापना या कह उन लोगोंके राजकुलोंमें भयम मनाने बगैरे खुल कर कहनेका रास्ता मिल गया है ।

अंग्रेजोंने इस देशमें नील, चाय प्रभृति द्रव्योंकी खेती करके यहाँका कुछ उपकार किया है मही, किन्तु इसमें दृष्टि प्रजासौका जितने ही शिवपीमें नर्मगल साधित हुआ है । १८०० ई०में यहाँ नीलकी खेती प्रारम्भ हुई एवं उन्नी समयमें ही यहाँका हीमदोन प्रजासौने घनके लालचमें पड़ कर भयना मर्त्यय जह वरके अंग्रेजोंके निरत प्राय तथा मान बचनेकी निश्चा प्राप्त कर ली । सोम करोंने इस तरह अपने नानामुषिक भयवाचारीमें बंगाल-

की प्रजासौको विडित्यां किया, इति नीलदर्पण भाटकगण कच्छी तरह सत्यक सुरु है । यह नीलकी खेती एक समय परिचय गथा दक्षिण-बंगालके प्रायः सभी स्थानोंमें प्रचलित थी । प्रायः प्रति १० मोलकी दूरी पर एक एक नीलकर ध्याचारीको बोझो स्थापित हो गई थी । उन सभी नीलकोटियोंका ध्वंस्तानक्षेत्र मात्र भी बंगालके उस अनंत दुःखकी स्मृति दिला रहा है ।

अंग्रेजोंके समयमें बंगालके कोनों कोनोंमें चिरनामि विरात रहो हैं, इसलिये समाज-सुधार तथा भाषाकी उपरति करनेका सर्वोत्तम समय प्राप्त कर लिया है । राजा राममोहन रायने ब्राह्मणमात्र संस्थापन करके एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाराजने विधवाविवाह प्रचलन तथा गृह-विद्या के नियारण करनेका आन्दोलन करके समाज-सुधारका रास्ता खोल दिया है । ईश्वरचन्द्रगुप्त, अक्षय-कुमार दत्त, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, मादकेल मधुसूदन दत्त, हीनचन्द्र मित्र, श्रीकमचन्द्र चट्टोपाध्याय, हीमचन्द्र चट्टोपाध्याय प्रभृति प्रन्धकारोंके द्वारा बंगला-भाषा तथा साहित्यकी विलक्षण उपरति हुई है । बंगाली, पंचाली, बाली, कोरन करनेवालों एवं याता करनेवालोंके मान तथा बंगला भाषाकी मधुरताकी अत्यन्त रूति हुई है । बंगाल बंगालियोंमें भी अंगरेजों अनुकरणका यथेष्ट प्रमाण परिलक्षित होता है । अंगरेजोंके समलक्ष्य ही मान पड़ता है, बंगला गद्यप्रभोंका अधिक प्रचार हुआ है । फारिटर साहयके १७६३ ई०के विधिसन्तुर्के बंगला अनुवादके पहले भी जितने ही गद्यप्रयोगोंका परिचय पाया जाता है ।

ईसाई मिशनरियोंके यत्नमें शक्तिप्राप्तता रामायण तथा काशीदासहत महाभारत पहले पहल मुद्रित हुआ । इसके बाद उन लोगोंने ही बंगला-भाषा-पत्र छापना प्रारम्भ किया । धीरामपुर-कामेज, बाल-कसाके, बई कायेज तथा एवान स्थान पर अल्प प्रकारके विद्यालय स्थापित होनेसे इस देशवासियोंकी विद्याकी निश्चा प्राप्त करनेमें यथेष्ट सहायता मिली है । केरो, मार्स-म्यान तथा एक साहयके नाम इस देशके स्वविद्य-व्यक्तिगण मरणमुच भूज नहीं मकने । उनके यत्न तथा उत्साहसे बंगालमें अंगरेजी निश्चाकी भावें मृदु हो गईं हैं । उन्नी निश्चाके फलस्वरूप घोर घोर यहाँ हिन्दू, पेंडु

वंगाल हरकटा, इण्डियन डेली न्यूज, इण्डियन मिरर, स्टेट्समैन, इंग्लिश मैन, बंगाली तथा अमृतवाजार-पत्रिका प्रभृति अंगरेजी संवाद-पत्र एवं संजीवनी, वंग-घासो, वसुमती, हितवादी प्रभृति वंगला संवाद पत्र प्रचारित हो रहे हैं।

१८१५ ई०में यशोद्वर जिलेमें पहले पहल महामारी (डकटो रोग) देखी गई। इसके बाद धीरे धीरे मारे भारतमें फैल गई। समय समय पर इस रोगके उत्पातसे सभी देशोंके अधिवासी व्यतिव्यक्त हो पड़े हैं। कितने ही वर्षोंसे नदीया, हुगली, बङ्गमान, मेदनीपुर प्रभृति जिलोंमें 'संचारी ज्वर'-की प्रकीर्णानिमें पड़ कर कितनी ही दीन प्रजाएँ मृत्युको प्राप्त हो जाती हैं। इनफ्लूएन्जा तथा बंबई प्लेगसे अभी भी देशका सर्वनाश हो रहा है। वैज्ञानिक लोग अनुमान करने हैं, कि नदी, खाई प्रभृतिके धीरे धीरे पंक द्वारा भर जानेसे एवं स्थान स्थान पर प्रयोजनीय नाला न रहनेके कारण पानीके रुक जानेसे इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है। वर्षाप्रभृतियों निम्न वंगालकी गुनमलताओंके सङ्ग जानेसे एक प्रकारका दुर्गन्धमय वायु निकलता है। उम अधिशुद्ध वायुके सेवनसे रक्त दूषित हो जानेके कारण मलेरिया आदि रोगोंका प्रकोप होता है। कितने तो ऐसी विवेचना करते हैं, कि तीन सौ वर्ष पहले जिस महामारीसे गौडनगर जनशून्य हो गया था, यह भी एक प्रकारका ज्वर ही था।

१८६४ ई०में वङ्गाल देगमें एक भयङ्कर बवंडर आया था जिससे लोगोंको महती क्षति हुई थी। बहुतें वृक्ष और घर धराशायी हुए थे, बहुतें जहाज और नविं डूब गई थीं। वङ्गोपसागरके जलने २४ परगनेके दक्षिणांगमें प्रवेश कर कितने मनुष्य, जोयजन्तु और लोकालयको विनष्ट किया था, उसकी शुमार नहीं। यह घटना १२७० सालके आग्निव नमामें घटी थी। इसके बाद १२७७ सालके कार्तिक मासमें और १२७६ सालमें तूफान आया था। इस प्रकारका तूफान इस प्रदेशके लिये नया नहीं था। आईन ई अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि १५८३ ई०में यहां एक बज्रविद्युत्के साथ भीषण बवंडर आया था। उसके प्रभावसे समुद्रका जल इतना ऊंचा उठ गया था, कि देवमन्दिरके शिखर तथा

अल्पन्त ऊंचे स्थानोंकी छोड़ कर बाकरगङ्गाक अनेकाना जलमल हो गया था। इस दुर्घटनामें प्रायः दो लाख मनुष्योंकी मृत्यु हुई थी। १८७६ ई०की ३१वीं अप्ट-बरकी जो तूफान उठा, वह सबसे मारालमक था।

वङ्गन ( सं० पु० ) वङ्गतीति वगि-ल्यु। वाचांङ्क, वैंगन।

वङ्गवाडी—उत्तर-वङ्गका एक गण्डप्राम।

वङ्गभाषा ( सं० खी० ) वंगाल-वासियोंकी कथित और लिखित भाषा।

वङ्गमल ( सं० पु० झी० ) सोसा नामक घातु। प्राचीनोंको यह धारण थी, कि राँगा और सोसा दोनों एक ही घातु हैं और वे मोसेको रांगिका मल समझते हैं।

वङ्गला भाषा—जिस भाषामें बङ्गालके अधिवासी बोलते हैं, वही वङ्गला भाषा है। इस भाषाकी लिखित और कथित इन दो भागोंमें प्रधानतः विभाग किया जा सकता है। प्रादेशिक दिसावसे कथित भाषाको भी नाना शाखा प्रगाथाओंमें बाँट सकते हैं। देश-भेदने कथित भाषाके मध्य छोड़े बहुत पृथक्ता तो दिखाई देती है, पर कथित भाषाने जो सर्वसाधारणकी सुविधाके लिये सतय सतय पर संशोधित और संस्कृत हो लिखित भाषाका आकार धारण किया है, इसे सबोंकी स्वीकार करना पड़ेगा किम प्रकार वङ्गभाषाकी उत्पत्ति हुई, वही वहाँ पर संक्षेपमें लिखा जाता है।

वङ्गभाषाका आदि-निर्णय।

अक्षरलिपि शब्दमें लिखा गया है, कि प्रायः ढाई हजार वर्ष बीत चला, बुद्धदेवके समय वङ्गलिपि नामक एक स्वतन्त्र लिपि प्रचलित थी। जब वङ्गलिपिभी सृष्टि हुई थी, उस समय स्वतन्त्र वङ्गभाषाका प्रचलन रहना कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु उम समयकी वङ्गभाषा फेली थी, उमका ठाक ठाक पता लगाना कठिन है।

पाणिनि-व्याकरणसे मालूम होता है, कि पाणिनिके पहले संस्कृत भाषा ही कथित भाषाकायमें प्रचलित थी। उनके समय भी प्रादेशिक भाषाके मध्य कुछ इतरविशेष था। उस प्राचीन कालमें प्रचलित संस्कृत भाषाके साथ देशी भाषा भी मिलती थी। वह विभिन्न देगप्रचलित भाषा ही आदि प्राकृत भाषा है।

वेदांगदृष्ट और मलयगिरिने लिखा है, कि 'मागयान्' पाणिनिने प्राकृतका लक्षण भी प्रकाश किया है। यह संस्कृतमें लिख है। इसमें शीर्षाक्षर वहाँ वहाँ ह्रस्व हुआ करता है०। इस प्रमाणमें जाना जाता है, कि पाणिनिके समय प्राकृत एक स्वतन्त्र भाषा समझी जाती थी। किन्तु इस भाषाकी लिखित भाषाकरणमें गिनती न रहनेके कारण यह उस समय पृथक्भाव न कर सकी। पाणिनिके समय 'प्राकृत' प्रचलित रहने पर भी यह आदीमाधारणको स्वीकृत भाषा न समझी जाती थी, क्योंकि पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें 'छान्दम्' और 'भाषा' इन दो शब्दों द्वारा 'वैदिक' और 'अपने समयमें प्रचलित' 'वैदिक' संस्कृत' भाषाका ही उल्लेख किया है। अतएव उनके समय भी संस्कृत-युग चलता था। यह संस्कृत युग कब तक चलता रहा था, उसका आज तक पता नहीं चलता है। पर इतना जरूर है, कि बुद्धदेवके समय अर्थात् प्रायः दसई हजार वर्ष पहले संस्कृत जनमाधारणको कथित भाषा न समझी जाती थी। इस समय जनमाधारण जो भाषा समझते थे, उसका नाम 'भाषा' रखा गया। अभी इस भाषाको शोध संस्कृत नहीं मान सकते। इस भाषाकी शक्ति संस्कृत व्याकरणसंग्रह नहीं है। इस कारण हम लोग इसको बूढ़ी कूड़ी संस्कृत मान सकते हैं। उस समय प्राणाय परिदृष्टोंके निरुद्ध विमुक्त संस्कृत भाषाका प्रचार रहने पर भी जनमाधारणके निरुद्ध भाषा ही चलित भाषारूपमें गिनो जाती थी। मगधत् अतीककी उस समय प्रचलित प्रादेशिक भाषामें जो सब अनु-प्राप्तम लिखते हैं, वे भाषाके कुछ पर्यवर्तों और पाली भाषाके पूर्वतन प्राकृतमें समझे जाते हैं।

और और जैनोंके मुद्राचौतन धर्मग्रन्थको भाषा आलोचना करनेमें भी मगधों तरह जाना जाता है, कि उस प्राचीन भाषामें ही पाली, मागधी और मज्जिमागधी भाषा परिवृष्ट हुई है।

परन्तु भादि विचाररत्नोंके मतमें मागधी, मज्जि-

मागधी यह सब प्राकृत भाषाका ही प्रकारमें है। प्राकृत देतो।

पहले कह आये हैं, कि भारतवर्षमें प्राकृत भाषा बहुत परते हीमें कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। देवनेहमें उस प्राकृतमें भी थोड़ा बहुत प्रभेद था। किन्तु जब यह प्राकृत लिखित भाषारूपमें व्यवहारयोग्य हुई, तब आवश्यकतानुसार संस्कारका भी प्रयोजन हुआ था। उस संस्कृत प्राकृत भाषामें ही पाली, मागधी या मज्जिमागधीरूपमें पहले लिखित भाषाका स्थान अधिकार किया।

गीट्टमहानकी उक्ति।

प्राकृत व्याकरणके अनुसार प्राकृत भाषा प्रपातना संस्कृतभाषा, संस्कृतसम और देवी इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इन तीन श्रेणियोंके मध्य पालीको "नम् मम" तथा मज्जिमागधीको "तच्छुभ" श्रेणियोंमें गिन सकते हैं। पर्यवर्तोंचालमें उक्त दोनों प्राकृत भाषाके प्रमाणमें विभिन्न स्थानकी लिखित प्राकृत भाषाकी पुष्टि हुई। अतके मतमें संस्कृत, प्राकृत, मगधत् और मिश्र ये चार भाषाएँ हैं। चण्डानार्थमें अपने 'प्राकृत लक्षण'में प्राकृतभाषाको प्राकृत, मागधी, पैनाची और मगधत् इन चार भागोंमें विभक्त किया है। परन्तुकि प्राकृत-प्रजाजमें लिखित प्राकृत मागधी, जीरमेतो महापट्टी और पैनाची इन चार भागोंमें विभक्त हुई है।

हेमचन्द्रानार्थमें अपने प्राकृत व्याकरणमें मज्जिमागधीको 'भाषा प्राकृत'के मध्य नामित किया है। (२।१०) कि चण्डानार्थमें मनानुसार मज्जिमागधी, महापट्टी और जीरमेतोका प्राचीनरूप ही भाषाप्राकृतके अर्थात् गिना जा सकता है। किन्तु प्राकृतचन्द्रिकाकार कृष्णपरिदृष्टने आदिप्राकृतकी स्वतन्त्र बतलाया है। उनके मतमें भाषा, मागधी, जीरमेतो, पैनाची, कुलिका पैनाची और मगधत् ये छः प्रकार मूठ प्राकृत हैं।

उन सब प्राकृतोंका प्रचार जब भारतवर्षमें ही गया, तब फिरसे भारतके नामा स्थानोंकी प्रचलित प्राकृत छोटे छोटे प्राकृतके आदर्श पर और देतो आदर्शके मेलमें लिखित प्राकृतके मध्य स्थान पाते रहता। इस प्रकार भाषा और देवों मज्जिमागधी हीम हीम बहुनी प्राकृत भाषाका उल्लेख पाते हैं।

० वेदांगदृष्टोंके इय प्रकाश है—  
"पाणिनिप्रमाण प्राकृतभाषाके अर्थ में संस्कृतसंग्रह-  
द्वारा १८५५ बुद्धदेवका मतानुसार।"

१२वां शताब्दीमें प्राकृतचन्द्रिकामें कृष्णपण्डितने लिखा है, कि मदारापट्टीय, अवन्ती, शौरसेनी, अर्द्ध-मागधी, वाहोकी, मागधी, जकारी, आमीर, चाण्डाल, शावर, ब्राह्मण, लाट, वैदर्भी, उपनागर, नागर, चार्वाक, भावन्त्य, पाञ्चाल, टाक, मालव, कैरथ, गौड़, उडु, दैर, पाश्चात्य, पण्ड्य, कौन्तल, सँहल, कालिङ्ग, प्राच्य, कर्णाट, काञ्च्य, द्राविड, गौर्जर, ये ३४ भिन्न-देश प्रचलित प्राकृत भाषा हैं। इनके सिवा घेड़ालादि २७ अपभ्रंश प्राकृत भी प्रचलित थे। कृष्ण पण्डितके मतसे उक्त प्राकृत भाषाओंके मध्य काञ्चीदेशीय, पाण्ड्य, पाञ्चाल, गौड़, मागध, ब्राह्मण, दाक्षिणात्य, शौरसेनी, कैरथ, शावर और द्राविड ये ११ पैशाचोसे निकली हैं।

प्राकृत-चन्द्रिकाके प्रमाणसे हम अच्छी तरह समझने हैं, कि जब १२वां सदीमें उन सब प्राकृत भाषाने व्याकरणके मध्य स्थान पाया है, तब उसके बहुत पहले हा वह सब भाषा लिखित भाषा-मो समझा गई था, इसमें सन्देह नहीं। उक्त प्रमाणसे हम यह भी जानते हैं, कि १२वां सदीके पहले ही हम लोगोंको गौड़-मगधभाषा लिखित-प्राकृतके मध्य तथा पैशाचो भाषासे उत्पन्न पण्डित समाजमें गण्य हुई थी।

अमो प्रश्न होता है, कि गौड़भाषाको 'पिशाचजा' कहनेका कारण क्या?

ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें 'वयः, वङ्ग और वगध'-का उल्लेख है। आनन्दतोर्धने अपनी भाषाटीकामें पिशाच राजस, ऐसी व्याख्या की है। उनको धरवहृत प्राकृत भाषा ही बहुत पीछे शायद वैदिक ब्राह्मणोंके निकट पैशाचो नामसे गण्य हुई होंगी। परवर्ती कालमें आर्यसंस्क्रवसे यहाँकी स्थानीय भाषा परिपुष्ट हुई सही, पर पूर्वाभाषाका प्रभाव बिलकुल दूर नहीं हुआ। इसी कारण १२वीं सदीमें शेष कृष्णपण्डितने पूर्वाचार्योंको दोहराई देते हुए गौड़मागधभाषाको आर्ण वा मूल पैशाचोसे उत्पन्न स्वीकार किया है।

पैशाचो प्राकृतका लक्षण क्या है?

'पैशाचिक्या रण्योर्धनी'।

(चयटका प्राकृतज्ञाप ३।३८)

पैशाचिको-भाषामें र और ण-को जगह ल और न होता है।

पैशाचिकी विशेषता दिखानेके लिये बरहचिने भी सूत्र किया है,—'योः नः' (१०।५) अर्थात् मूर्द्धन्य 'ण' के स्थानमें दन्त्य 'न' होना है।

गौड़ भाषाका प्रकृत उच्चारण लेनेमें मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर है। वङ्गदेशीय निम्न श्रेणीके मनुष्य आज भी 'र' की जगह 'ल' का उच्चारण करने हैं। जैसे 'करिलाम' की 'कल्लाम'। 'र' के गौड़का लिखित भाषामें बहुत दिनसे स्थान लाम करने पर भी 'ण' ने उतना दिन प्रवेशाधिकार न पाया। १००६ सन्की हस्त-लिखित चण्डोदानको एक पदावलीमें बहुत दिन हुए, इस प्रकारका द्रष्टान्त दिखलाया गया है।\*

एक दूसरा विशेष लक्षण इस प्रकार है—'रजशाणां मः।' (चयटप्राकृत ३।१८) रेक्युक्त 'ज' और 'य' की जगह सर्वत्र दन्त्य 'म' प्रयुक्त होता है। जैसे जीर्ण = मोस, आमिप = आमिस।

मच पृच्छिषे, तो गौड़ वङ्गवासीके प्रकृत उच्चारणमें मूर्द्धन्य 'व' और तात्पर्य 'ज' की जगह आज भी तमाम दन्त्य सकारका उच्चारण सुना जाता है।

एक दूसरी विशेषता यह है—'यस्य जः' (चयट ३।१५) अर्थात् 'य' की जगह सर्वत्र 'ज' होता है। जैसे 'याता'—जाता।

यथार्थमें गौड़वङ्गमें 'य' वर्णका प्रकृत उच्चारण प्रचलित नहीं है, सर्वत्र 'य' 'ज' रूपमें ही उच्चारित होता है।

कृष्णपण्डितने प्रायः नी सी वर्ष पहले गौड़भाषाको पिशाचजा क्यों कहा, मालूम होता है और अधिक सम्भानेकी जरूरत नहीं।

पैशाचो प्राकृतका मूल कहाँ है? बरहचिने लिखा है—'पैशाची प्रकृतिः शौरसेनी' (१०।२) पैशाची भाषाकी प्रकृति शौरसेनी अर्थात् शूरसेन या मथुरा अञ्चलमें जो प्राचीन प्राकृत भाषा प्रचलित थी, उससे भी पैशाची

\* काञ्चोदेशीयपट्टये च पान्चार्ज गौड़भाषाये ।  
 प्राच्यदक्षिणात्यन्व्य शौरसेनश्च कैरथ ॥  
 शावरं द्राविडञ्चैव एकादश पिशाचजाः ॥

(प्राकृतचन्द्रिका)

\* साहित्य-परिपत् पत्रिका ५म भाग १७६-१८४ पृ० ।

वेदान्तदृष्टि और मूल्यमिति लिखा है, कि 'भाषाया' वाचिनित्ते प्राकृतका लक्षण भी प्रकाश किया है। यह संस्कृतमें विद्य है। इसमें शीर्षांशर वही कही ह्यस्य ह्यसा कर्ता है०। इस प्रमाणमें जाना जाता है, कि वाचिनिके समय प्राकृत एक स्वतन्त्र भाषा समझी जाती थी। किन्तु इस भाषाको लिखित भाषारूपमें गितनीय रहनेके कारण यह उस समय पृथिव्याभ न कर सकी। वाचिनिके समय 'प्राकृत' प्रचलित रहने पर भी यह शार्दीयाचारणको स्वीकृत भाषा न समझी जाती थी, क्योंकि वाचिनित्ते धपनी सष्टान्यायामे 'ह्यान्त्म्' और 'भाषा' इन दो प्राचीनो द्वारा 'वैदिक' और अपने समयमें प्रचलित 'श्रीतिक संस्कृत' भाषाका ही उल्लेख किया है। अतएव उनके समय भी संस्कृत-युग चलता था। यह संस्कृत युग कब तक चलता रहा था, उसका आज तक पता नहीं चलता है। पर इतना ज्ञान है, कि बुद्धदेयके समय शार्दीयाचारणः टाई ह्यसा कर्ता यह संस्कृत जनसाधारणके चरित भाषा न समझी जाती थी। इस समय जनसाधारण जो भाषा समझते थे, उसका नाम 'भाषा' रखा गया। शर्दी इस भाषाको ही संस्कृत नहीं मान सकते। इस भाषाकी शक्ति संस्कृत व्याकरणसङ्गत नहीं है। इस कारण हम लोग इसको टूटी फूटी संस्कृत मान सकते हैं। उस समय प्राद्वल पण्डितोंके विषय किमु संस्कृत भाषाका प्रचार रहने पर भी जनसाधारणके निरत भाषा ही चलित भाषारूपमें गिनो जाती थी। सम्राट् अशोककी उस समय प्रचलित प्रार्थनिक भाषामें जो सब अनुज्ञापन लिखे हैं, वे भाषाके दृष्ट परधनी और पाली भाषाके पूर्वगत प्राकृतमें समाझे जाने हैं।

हीन और शैवीके सृष्टान्तो न भाषासम्भवे भाषा साक्षीयता कालेन भी सन्तो मरु ज्ञाता ज्ञान है, कि उस प्राचीन भाषामें ही पाली, मागधी और शर्दीभाषाया भाषा परिपुष्ट हुई हैं।

परन्तु भाषा देवाचरणीके मन्ने मागधी, मरु-

० देवाचरुके उक्त इस प्रकार है—  
 "वाचिनित्ते प्राकृतं भाषाया चरितं क्वचिद्व्यवहारं  
 शीर्षांशरं बुधितेका सप्तम्येन।"

मागधी यह सब प्राकृत भाषाका ही प्रकारमें है। प्राकृत देखो।

परन्तु यह साथ ही, कि भारतवर्षमें प्राकृत भाषा बहुत पढ़ी होमे कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। देवनेदमें उस प्राकृतमें भी मोटा बहुत प्रभेद था। किन्तु अब यह प्राकृत लिखित भाषारूपमें व्यवहारयोग्य हुई, तब साधुवचनानुसार संस्कारका भी प्रयोजन हुआ था। उस संस्कृत प्राकृत भाषामें ही पाली, मागधी या शर्दी-भाषायायोरुपमें पहले लिखित भाषाका स्थान भविष्य करिया।

श्रीष्टान्यायकी उत्पत्ति।

प्राकृत व्याकरणके अनुसार प्राकृत भाषा प्रधानतः संस्कृतमय, संस्कृतसम और देनी इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इन तीन श्रेणियोंके मध्य पालीकी 'तन्मम' तथा शर्दीभाषाकी 'तद्वय' श्रेणियों गिन सकते हैं। परधनीकालमें उक्त दोनों प्राकृत भाषाके प्रमाणसे विभिन्न रचनाकी लिखित प्राकृत भाषाकी पुष्टि हुई। भारतके मन्ने संस्कृत, प्राकृत, शार्दीय और विध ये चार भाषाएँ हैं। कण्डान्यायने अपने 'प्राकृत लक्षण'में प्राकृतभाषाको प्राकृत, मागधी, पैनाची और शर्दीय इन चार भाषाओंमें विभक्त किया है। परन्तु प्राकृत-प्रकाशमें लिखित प्राकृत भाषाया, शीरसेनीका महासष्टी और पैनाची इन चार भाषाओंमें विभक्त हुई है।

हेमचन्द्रान्यायने अपने प्राकृत व्याकरणमें शर्दी-मागधीको 'शार्दी प्राकृत' के मध्य शामिल किया है। (श.०) फिर कण्डान्यायके मन्नानुसार शर्दीभाषाया, महासष्टी और शीरसेनीका प्राचीनरूप ही शार्दीप्राकृतके जैसा गिना जा सकता है। किन्तु प्राकृतचन्द्रिकाकार कण्ठपरिचयने शार्दीप्राकृतकी स्वतन्त्र बतलाया है। उनके मन्ने शार्दी, मागधी, शीरसेनी, पैनाची, बुद्धिका पैनाची और शर्दीय ये छः प्रकार सूट प्राकृत हैं।

उन सब प्राकृतोंका प्रचार अब भारतवर्षमें ही गया, तब फिरमें भारतके नामा कथाकीकी प्रचलित प्राकृत धीरे धीरे प्राकृतके भाषापर और देनी शर्दीके मन्ने लिखित प्राकृतके मध्य स्थान पाये गया। इस प्रकार शर्दी और शर्दी मन्ने ही हम लोग बहुत प्राकृत भाषाका उल्लेख पाते हैं।

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	वङ्गला	संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	वङ्गला
अत्र	एथ		एथा	पलायन	पलाण		पालान
कर्ण	कण	मृ० क०	कान	पुस्तक	पोधि		पुधि
कर्म	कम्म		काम	विद्युत्	विज्जुली	मृ० क०	विज्जुली
कार्यम्	कज्ज		काज	वाटी	वाड़ी	"	वाड़ी
क्रियत्	केत्तक		कतक	वकल	वक्कल	श० कु०	वाकल
कुल	केधु		कोया	वधू	वहु	मृ० क०	वड
कुल्य	काणु		कानु	वाचा	यर्त्ता		वात
क्षुर	छुरा		छुरि	वद	वुदुद	मृ० क०	वुडा
गोप	गोयाल	छन्दोम०	गोयाल	ब्राह्मण	बहण	मृ० छ०	वामुन
गृहम्	घर	मृ० क०	घर	भक्त	भत्त		भात
घृतम्	घिअ		घि	भगिनी	बहिनी	"	वदिन, चोन
घोटक	घोड़ाव	गाथा	घोड़ा	मस्तक	मत्थअ	"	माथा
चक्र	चक्क		चाका	मक्षिका	माछि		माछि
चन्द्र	चन्द	मृ० क०	चन्द, चाँद	मधु	महु		मौ
चतुर	चारि	पिङ्गल	चारि	मिथ्या	मिच्छा		मिछा
चेदी	चेड़ी	मृ० क०	चेड़ी	यष्टि	लाट्टी		लाटो
चतुर्दश	चोद्द	पिङ्गल	चोद्द, चौद्द	यावत्	जेत्तक		येतक
च	अ	गाथा	ओ	यत्र	जत्थ	उ० च०	यथा
उपेष्ट	जेट्टा		जेडा	राजा	राय, राय	च० कौ० पिङ्गल	राय
त्वम्	तुलि	उ० च०	तुलि, तुमि	राधिका	राई	अपम्रंश	राइ
त्वया	तुप	मृ० क०	तुइ	रौप्यम्	रुप्पा		रुपा
तैल	तेल		तेल	लवणम्	लोण		लुन, लन
स्तम्भ	खम्म		खाम्वा	शृगाल	शिआल	मृ० क०	शियाल
ति	तिण्णि	पिङ्गल	तिन	शमशान	मसाण		मसान
दधि	दहो	मृ० क०	दइ	शय्या	शेज		सेज
द्वय	दुअ	पिङ्गल	दुइ	पद्य	छ		छ, छय
द्वादश	वार	"	वार	पोइष्ट	सोला	पिङ्गल	पोल
द्विगुण	दुणा	"	दुना	स्थान	ठाण	मृ० क०	ठाई
दृढ़	दद	श० कु०	दड़	सन्ध्या	सञ्जा	"	सांज
दुग्ध	दुद्ध		दुध	सखी	सहि	"	सई
द्वार	दुआर	मृ० क०	दुआर	सः	शे	"	से
द्वाविंश	वाइसा	पिङ्गल	वाइश	सत्यम्	सच्च	"	साचा
न	णा	गाथा	ना	सत्	सत्त	पिङ्गल	सात
प्रस्तर	पत्थर		पाथर	सर्प	सरिस्		सरिया
पञ्चदश	पणरह		पनर	हस्ती	हत्थी	मृ० क०	हाती
				हस्त	हत्थ	श० कु०	हात



संस्कृत	प्राकृत	अथ पुस्तकमे	पुस्तक	बहुसा
द्वय	द्वयम	सू० क०	द्वया	
द्वित्रि	द्वयद्व		द्वयद्व	

इन सब शब्दोंमें बङ्गला और प्राकृत शब्द प्रायः एक-से दैये जाते हैं ।

पद्ये ही लिख भाषे हैं, कि तीन प्रकारके प्राकृतोंमें "देगो" या संस्कृतके साथ सम्बन्धयुक्त शुद्ध देगोयच लिख भाषा भी एक ही ।

देगो प्रकृत भी विशेषतायने (वाचोन बङ्गलामें चल गई है । देगो सदांमें रचिन आचार्य हेमचन्द्रको "देगो नाममाला"-ने भी बहुतने शब्द उठा कर दिखाने हैं । ये सब शब्द हेमचन्द्रके बहुत पहलेसे ही समूचे परिवर्तन-भारतमें प्रचलित थे । उद्भूत प्राचीन देगो शब्दोंके देखने-से सहज ही बोध होगा, कि बङ्गलामें संस्कृत प्रभावको अपेक्षा प्राकृतका प्रभाव ही अधिक है । बङ्गला भाषा संस्कृत-मूलक नहीं है, परं प्राकृतमूलक है ।

देगो प्राकृत	धनित बहुभा
भाल्ट पलट्ट	उलोटापालट, उल्टापालटा
उरघला	उनला, उनलान
उरघल-परघल	आघाल-पाघाल
ओड़िरी	उड़िड़
ओड़न	उड़नी
ओरल	ओला
ओसा	ओस
कच्छर	कच्छा
कुड़मा	कुड़ु
कोट	कोट
कोरला	कोयमा
कोलाहल	कोलाहल
कड़ंग	काड़ंगो
खसी	खाल
खड़	खड़
खाया	खा
गढ़ी	गड़
गंठीय	गारठीय
गहपड़ि	गड़गड़, घड़घड़ इत्यादि

देगो प्राकृत	संस्कृत शब्द
गेएड और गेरट अ	गांठ, गैरो, गोररो
गोय्या	गोय्या, गोठा
घोड़ो	घोड़ा
घोलह	घोला
चोदि	चुदि, चुंरो
चट्ट	चाट्ट
पाडल	पाडल
चिहा	चिन्
छतो	छनि या तुओ
छिनाल	छिनाल
छिनालो	
छियर, छिहर	छोमा
जड़ित	जड़ित
फरी	फरु
भलसिम	भलसिम
भलु'किस	
भालिम	
भलभलिया	भलभ
भाइ	भाइ
भइइ	भरा
टिपि	टिपु
टिफ	टिफा
टू'रो	टू'रो
यम्य, याया	देगुरा
इलो	देन, देला
इली	इलाय, इल
इम्य	इम
उलो	उलि
उंउल्ले	उल्लुल्लु
तगुम	तागा
गड़ुगड़िम	घरुगड़ु
गुलमो	गुलमो
घरहरिम	घरहरि (बम्य)
शंरा	शेर
घग्घा	घग्घा, घग्घा

देशी प्राकृत

चक्षित वङ्गभा

प्राह्मणोंके पुनरभ्युदय कालमें संस्कृतकी अवलम्बन कर धीरे धीरे उन्नतिके पथ पर अग्रसर होने लगे। उस समयके संस्कृत-परिष्कृत संस्कृत शब्द-सम्पत्तिकी क्रमशः वङ्गला भाषामें योग करने लगे तथा जहाँ तक स्वम्भव हो सका प्राकृत भाव लोप होने लगा। जो हो, लिखित भाषाके बहुत कुछ प्राकृतकी शक्य छोड़ देने पर भी आज कल भाषा किसी अंशमें प्राकृतका मृगण परिशोध न कर सके। गौड़ीय भाषामें अनेक जगह संस्कृतका शब्द सादृश्य प्राकृतसे अधिक, सही, पर ऐसा होने पर भी उन सब भाषाओंमें क्रियागत और नित्य ध्यवहार्य शब्दगत सादृश्य इतना अधिक है, कि उसीसे प्रमाणित होता है, कि वङ्गभाषा प्राकृतसे ही उत्पन्न हुई है।

संस्कृत शब्द जिस भावमें पहले प्राकृतमें और पीछे बंगलामें परिवर्तित हुआ है, उसके कुछ नियमोंकी क्रिया देखी जाती है, नीचे उनका उल्लेख किया गया है।  
आद्य वर्णके वाद संयुक्त वर्ण रहनेसे संयुक्त वर्णका आदि अक्षर लोप और पूर्णस्वर दोर्घ होता है। जैसे हस्त—हाथ, हस्ती—हाती, कक्ष—काख, मल्ल—माल इत्यादि।

कभी कभी पूर्व स्वर अर्थात् आकार शेष वर्णमें युक्त होता है। जैसे, चक्र—चाका, चन्द्र—चान्दा।  
कभी शेष वर्णका आकार लोप होता है। जैसे, लज्जा—लाज, ढक्का—ढाक इत्यादि।

आद्य स्वरके परस्थित तथा संयुक्त वर्णके आदिस्थित '०' तथा 'न' कारकी जगह चन्द्रविन्दु होता है। जैसे—घंश—घाँस, कांस्य—काँसा, हंस—हाँस, चन्द्र—चाँद, दन्त—दाँत इत्यादि। अनेक जगह स्वरवर्ण रूपान्तरमें भी व्यवहृत होता है, अ को जगह 'ए' आ-को जगह 'इ' जैसे सञ्जान—जियाना, 'अ' को जगह 'उ' जैसे ब्राह्मण—बामुन। इसके सिवा और भी सूत्र हो सकते हैं। अनेक जगह 'ट' को जगह 'ड' होता है। जैसे—घोटक—घोड़ा घट—घड़ा, माण्ड—भांड इत्यादि। कहीं कहीं वर्ण विलकुल नहीं रहता, जैसे—कर्मकार = न.मार—कामारी, कुम्भकार = कुम्भार—कुमार, मुद्ग—'मू'। हृदय—दिवज, हिया इत्यादि। कथित भाषा धीरे धीरे इसी प्रकार सद्ग आकारमें परिवर्तित हुई है।

घनो  
परिपत्र  
पुपु  
पेह  
पेट्ट  
पलोट्टई  
फगथुं  
कुम्भा  
बडबड  
घुकार  
घुडबड  
घोकाड  
भल्लू  
मेरो  
थडि  
रोल  
वट्टा  
घरडो  
वह्ना  
वह्ना  
विहाण  
हण्  
हड्ड  
हल्लोसो  
हेला  
हेरिम्बो

धनि  
पापिया  
फुपा, फुकु  
फेला  
पेट  
गोलट, पाटान  
फाग  
फका  
बडबड, थिडविड  
घुक्नि  
घोड़ा, डोया  
वोका (पाँटा)  
भालुक  
मेडा  
घुडि  
रोल  
घाट  
चोलता  
विधान  
हन्हन  
हाड  
हल्लोस  
हेला  
हेरम्भ

यहाँ तक कि, प्रचलित वङ्गला भाषा भी जो एक समय प्राकृत भाषा नामसे प्रचलित थी, उसके भी अनेक प्रमाण मिलते हैं।

बौद्ध और जैन प्राधान्य कालमें प्राकृत भाषाकी चरम उन्नति हुई थी। अनन्तर प्राकृत भाषाका संस्कृत से निरपेक्ष भावमें प्रतिष्ठित करनेकी कोशिश होने पर भी जिस प्रकार हनकार्प्य न हो सका, अलक्ष्य भावमें भी संस्कृतका सांचा आ कर उसमें पड़ गया है, उसी प्रकार वङ्गभाषा भी प्राकृतसे उत्पन्न हो कर भी बौद्धावनति तथा

विभक्ति ।

संस्कृत और प्राकृत की तरह बहुनाभाषा में भी मात्र विभक्ति प्रयुक्त है । बहुनाभाषा में विभक्ति पहले कदा-से अनुकूल हुई है इसका अनुमान करना मद्धक नहीं है । क्योंकि बहुना विभक्ति-से कुछ संस्कृत की अनुपायी है । विशेषतः वह जगह प्रथमा विभक्तिका एकवचन संस्कृतका विभक्ति बहुना में नहीं आता ।

किन्तु इसी प्रकार प्रथमा विभक्तिके एकवचन में प्रायः प्रथम प्राकृतका अनुपायी व्यवहृत हुआ है । प्राकृत में प्रथमा विभक्ति में जिस प्रकार एकवचन में 'य' जोड़ा जाता है, बहुना में भी उसी प्रकार प्रथमा विभक्ति के एकवचन में पहले प्रकार जोड़ने की रीति थी ।

( प्राकृत—'भामो ए निद्रयके विगोदिदि' इ; कः ३ अक्ष )

प्राकृत भाषा में द्विवचन में कोई भेद नहीं दिखाई देता । प्रायः दोनों ही जगह सिर्फ संख्याबोध या आकार-वा योग हुआ है । जैसे—'अथ आदि तामने अशंदाय परिमो जादे देउण चाणामि कुजलवा' ( १ ) "कदि मे पुत्रमा" ( २ ) इन दोनों स्थानों के "न जानामि कुजलवा" तथा "कुज मे पुत्रको" द्विवचनकी जगह आकार जोड़ा गया है । बहुना भाषा में अभी दो वचन प्रयुक्त हैं, एकवचन और बहुवचन, द्विवचन-शेषक किसी विभक्तिका प्रयोजन नहीं देखा जाता । पूर्वप्रयुक्त बहुना में बहुवचनके शेषके लिये प्राकृतके अनुपायी आकार जोड़ा गया है ।

आज तक किन्तु प्राकृत भाषाके बहुवचन में 'मा' कार जोड़नेकी प्रथा नहीं देखी जाती । अभी उस स्थान पर 'य' जगह अधिहार का पैडा है ।

बहुना में द्विगोषा और व्युत्पत्ति, इस दोनों विभक्ति में ही 'के' प्रयुक्त है । गोषासूत्रके मतसे हर 'के' संस्कृतके स्थान में 'के' होता आया है । प्राकृत भाषा में भी इस 'के' का बहुत प्रचार है । विशेषतः भाषा में इस 'के' का प्रचलन सबसे अधिक देखा जाता है ।

दोनों ही रूप पहले बहुना भाषा में विभक्ति-रूप में ही प्रचार 'के' का प्रचलन था । यह व कवी कला और कवी नरैणरूप रूप में व्यवहृत होता था । किन्तु इसका रीति बर्तनी और रीति-रूप में व्यवहृत होता था, यह मद्धक

नहीं जाना जाता । पीछे यह 'के' 'के' का आकार धारण कर काम और साधदान जगामेके लिये प्रयुक्त हुआ है किन्तु पूर्वकाल में यही 'के' काम और साधदानको छोड़ कर अन्य सभी विभक्तियों में युक्त होता था । इसके भी अनेक प्रमाण मिलते हैं । अतएव कालक्रमसे रीति रीति प्रकार परिवर्तित हुआ उसका निर्णय करना बहुत कठिन है । बहुवचन दिवानेके लिये अभी त्रिव प्रचार 'य' 'द्विगोषा' इत्यादिका व्यवहार होता है वही प्रकार पहले बहुवचन जगामेके लिये जगहके साथ 'अथ' 'सहल' 'आदि' प्रभृति जोड़े जाते थे ।

कमोद्वानिके विधानानुसार पीछे इन आदि पूर्व 'वृत्तादि' जगहके साथ पठोका योग हो कर वृत्तारिण हुआ है तथा उस वृत्तारिणके उच्चारण के स्थान में 'क' युक्त हुआ है ।

पूर्व और परिवचन 'बहुना' नहीं 'कदा' आज भी 'भामागो तोमागो रामागो' आदिका व्यवहार देखा जाता है । ये जगह आदिजगहव्युत्पत्ति 'य' युक्त मात्र है, पीछे 'के' के 'य' रूप में परिवर्तन हुए हैं । भामागो आदि जगह प्राकृत 'बलाक' 'तुलाक' से प्रतीत होने हैं ।

करणकारक बोधक अभी जो प्रकार और दिग टाण व्यवहृत होता है, पहले यह सब कुछ भी नहीं था । इस समय संस्कृत 'दामेण'की जगह प्राकृत में 'शामय' का व्यवहार था । द्वारा जगह संस्कृत द्वारा जगह में निकलता है । प्राकृत भाषाको पद्यान्तके बहुवचन में 'दितो' व्यवहृत होता था,—'भामो दितो तुतो ।' ( वररथि )

बहुना में यह 'दितो' पर 'दने' रूप में परिवर्तन आता है । पूर्वकाल में बहुना में उगने 'दने' रूप प्रचलन किया था ।

कालक्रमसे यह 'दने' 'दने' रूप में परिवर्तित हुआ है । किन्तु कदा कदा 'दने' रूप हुआ है । यह सब प्रायः प्राचीन प्रयोगों में देखा जाता है ।

वररथिके प्राकृतप्रकाशके मतसे वररथके बहुवचन में 'ल' होता है । 'ल' और बहुनाका 'य' दोनों ही एक रूप लय रथों है, स्वभावतः ही 'ल'के उच्चारणमें जोरसे उच्चारणमें आज भी व्यवहार में 'ल' और 'द' एक ही रूप सुना जाता है ।

संस्कृत 'तस्मिन्' से सप्तमोमें 'त' को उत्पत्ति हुई है, संस्कृत सप्तमोका एक ही रूप रहता है, जैसे—'कानने' पर्वते, जले, इत्यादि। संस्कृत—लतायां नद्यां मालायां इत्यादि प्राकृतमें "लताय, नदीय, मालाय" होते हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थमें वङ्गलामें वह ठीक प्राकृत आकारमें ही है। वर्तमान कालमें वे सब परिवर्तित हो कर केवल 'शालाय, घेलाय, मालाय' इत्यादि रूप हो गये हैं।

क्रिया ।

प्राकृतके भीतर 'करइ' 'बलइ' 'णचइ' इत्यादि कुछ क्रियाने वङ्गलामें ठीक 'करे' 'बले' 'नाचे' इत्यादि आकार धारण किया है। प्राकृत 'सुनिअ' 'करिअ' 'लमिअ' इत्यादि स्थानोंमें 'सुनिया' 'करिया' 'लइया' हुआ है। संस्कृत 'अस्ति' क्रियाने प्राकृत 'अच्छि' रूप धारण किया है तथा इस 'अच्छि' के साथ भू धातुकी असमायिका 'इया' योग कर 'इइयाळे' ऐसा रूप बना है। देखतेछे, करिनेछे इत्यादि भी इसी प्रकार उत्पन्न हुआ है। आज भी पूर्ववङ्गमें कहीं कहीं दो शब्द पृथक्भावमें उच्चारित होते हैं, जैसे—'जाइते आळे' 'बाइते आळे'। 'आळे' क्रिया संस्कृत 'आसीत्' के हो अपभ्रंज 'आछिल' रूपमें अन्यान्य पूर्वावर्ती पदके साथ युक्त हो कर (जैसे राजा आसीत्, सुन्दर आसीत् अर्थात् राजा थे, सुन्दर थे इत्यादि पद) बने हैं।

शब्दकी परिवर्तन प्रणाली अति विचित्र है। प्रायः अनुकरणप्रियता हो उन सब परिवर्तनका कारण है। चलिता 'चळ' 'खेळ' इत्यादि क्रियाओंका 'ल' कार दूसरी जगह भी योग हुआ है। रकार और लकारका सादृश्य तमाम देखा जाता है। संस्कृत 'चलामः' 'खेलामः' इत्यादि क्रिया क्रमशः 'चलिलाम' 'खेलिलाम' रूपमें परिवर्तित हुई है। प्राचीन वङ्गलामें अनेक जगह ठीक प्राकृतकी अनुयायी 'करन्ति' 'जानन्ति' 'करसि' 'वायन्ति' इत्यादि क्रियायें व्यवहृत हुई हैं।

ललितनिस्तरमें अनेक जगह 'करोमि' के अपभ्रंशमें 'करोम' मिलता है तथा वह क्रिया उस ग्रन्थमें सभी जगह 'करिप्यामि' के अर्थमें व्यवहृत हुई है। आज भी पूर्वावङ्गमें कहीं कहीं 'करुम' क्रिया प्रचलित है।

'करिमु' क्रिया प्राचीन वङ्गलामें कई जगह मिलती है। 'करिमु' की जगह अनेक स्थानोंमें 'करिउ' व्यवहृत हुई है।

संस्कृत 'कुर्वाः' क्रियाका 'करिय' रूपमें परिवर्तित होना सम्भव है। संस्कृत 'भवतु, दवातु' क्रिया प्राकृतमें यथाक्रम 'हउ', 'देउ' रूपमें व्यवहृत तथा उसके साथ वङ्गलामें सिपा एक 'क' का योग कर 'हउक', 'देउक' भावमें प्रचलित हुई है। यह 'क' कहांसे आया, सोचनेका विषय है। वङ्गलाकी अनेक क्रियाओंमें 'क' का व्यवहार देखा जाता है। भू, वा, छ, इत्यादि क्रियायें जब कर्म और भाववाच्यमें प्रयुक्त होती हैं, तब उन सब क्रियाओंके कर्त्तृत्वबोधके लिए उसमें 'क' शब्दके योगसे उल्लिखित 'करिवेक' इत्यादि पद बने हैं।

संस्कृत अनुज्ञामें 'हि' प्राकृतमें 'ह' रूपमें परिवर्तित हुआ है। जैसे—"आमच्छ पुण्यो बुद्धं रहम ।" (सूक्तक० २ ब्रह्म) उसी प्रकार वङ्गलामें भी उसी अर्थमें 'ह' का व्यवहार पूर्ण वङ्गलामें 'करिह', 'जाइह' इत्यादि रूपमें प्रचलित था। पिङ्गलके छन्दःसूत्रमें कहीं कहीं 'हु' देखा जाता है।

पहले कह आये हैं, कि प्राकृतमें वर्गीय और बन्धस्थ इन दो जकारकी जगह एक 'ज' 'श प स' की जगह एक 'स' तथा 'ण न' की जगह जिस प्रकार णका व्यवहार देखा जाता है, उसी प्रकार वङ्गला भाषामें भी पहले उन सब वर्णोंकी जगह 'ज' 'स' तथा केवल 'न' का व्यवहार देखा जाता है। हस्तलिखित प्राचीन वङ्गला ग्रन्थ देखनेसे ही इसके दृष्टान्तका अभाव न रहेगा।

अनेक प्राचीन वङ्गला ग्रन्थमें भी प्राकृतकी तरह 'द' की जगह 'ड' का व्यवहार होता है।

छन्दः ।

प्राचीन वङ्गला-भाषाके छन्दोनियाममें कोई छानवीन न थी। पयार, धूआ, नचाडो आदि कुछ छन्द पहले प्रचलित थे। वे सब छन्द गानकी तरह सुर दे कर पढ़नेकी रीति थी। संस्कृत 'पद' शब्दसे 'पअ' तथा उससे 'पयार' आया है। जैसे संस्कृत पद्यकी हिन्दी प्राकृतमें 'छपई' हुआ है। 'पद' गानेका ही नियम था।

पयार पहले नांना रागोंमें गाया जाता था। प्राचीन कवियोंने भी 'पयार' की गान नामसे भणितामें उल्लेख किया है।

द्वय शीला शरीर और सुवर्णित है। कवि एक बट्टर शीव  
थे, यह उनको कविताने काष्ट मान्य होता है।

सामग्र्यके बाद रामदास और इयामदास नामक दो  
कवियोंने 'सुगमदास शंकरा' नामक ग्रन्थमें नियमाहारण्य  
प्रकार किया।

द्विज रामदेव बट्टरनामके स्वतंत्र नकलालापिपासो  
थे। उनके शिवाका नाम मो शिवाय और माताका नाम  
पद्ममता था। १५१६ ई० ( १६७७ ई० ) में उन्होंने सुग-  
लुप्तय नामक ग्रन्थ लिखा।

कवियज्ञ रामदास पद्विम यज्ञ तथा तन् परवर्ती  
उक्त कवियज्ञ पूर्णयज्ञ्यामी थे। इस कारण उन लोगोंके  
ग्रन्थमें अथवा अथवा प्रादेशिक भाषाका प्रभाव दिव्यार  
देया है।

द्विज भगोरव और द्विज हरिहरसुत बट्टर कविये  
'वैद्यनाथयज्ञ' नामक एक नियमाहारणकी रचना का।  
इन दोनों ग्रन्थोंमें दो सौ वर्षको पुस्तके' पाई गई हैं। इस  
देनामें रामेश्वरका नियमन या नियसंकोर्तन ही विशेष  
प्रयत्नित है। किन्तु यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है।

नियमाहारणयज्ञक स्वतंत्र ग्रन्थ अधिक संख्यामें  
महो' मिलने पर भी परवर्ती ज्ञातप्रभावके समय जिन  
सब यज्ञ न्यायिको सूँघे हुए हैं उनमें विशेष भागमें  
श्रीवीके अन्तर्भावका प्रभावका परिणय पाया गया है।  
सुदृष्ट प्रत्येक द्विज गृहस्थको नियम नियमपूजा करनेको  
श्री विधि प्रस्तावित है यह उसी शीय-प्रभावका उपलब्ध  
निदर्शन है।

राज-प्रभाव ।

साहित्य प्रमाण दिखानके साथ ही यज्ञोंमें ज्ञाक-  
प्रभावका स्पष्टता हुआ। सभी बौद्ध वास्तवज्ञान बौद्ध-  
साहित्य तथा भाषाशास्त्र, यज्ञशास्त्रों, यज्ञशैली सादि  
ज्ञातिके उपायक थे। उनके समय बौद्धशास्त्रकी संख्या ही  
अधिक हो गई थी। बौद्ध शीवीके पत्ररूपसुदय कायमें बहु-  
साहित्य शीवसामग्र्ययुक्त हुए।  
ज्ञानसाधारणके बीच नियम  
सर्वो इत्यने मिलने में, यज्ञो  
गया। अतः ही नियम  
प्रभावमें ही हुए समय बाद

साहित्य प्रभावा। शीतला, विदर्शी, मद्रकसूरी,  
पद्यो भादि इषोको पूजा ही अन्तर्भावका एक प्र-  
यत्नित हुए।

शीतलाकी पूजा यज्ञात्ममें समान प्रयत्नित है। बौद्ध-  
यज्ञोंमें यमन्योकेके प्रादुर्भावके साथ शीतला पूजा भी  
संयत प्रयत्नित हुई। उसके साथ साथ शीतलाका  
गान भी रचा गया। अनेक कवि 'शीतला मङ्गल'की  
रचना कर गये हैं,—यज्ञके नामा र्थाओंमें बड़ा पूज्या-  
में शीतलापूजाके समय थे सब यज्ञ न गये जाते हैं। ये  
सब गान श्रौम पण्डितोंके निरूपण होनेके कारण उन्हें  
पानेका उपाय नहीं। उनमेंसे पाँच कवियोंके बचन  
पाँच शीतलामङ्गलका पता चला है। इन पाँचोंके  
नाम हैं; कवियज्ञ देव शीतन्द, निरशानन्द, परवर्ती,  
हृण्यराम, रामप्रसाद और जगुदाचार्य। इन कवियोंमें-  
से देवश्रीमन्दकी इन बाका सभी कवियोंने प्रयोग  
सामकते हैं।

कवि हृण्यराम, रामप्रसाद तथा जगुदाचार्योंने भी  
शीतलामङ्गलकी रचना की है। उक्त सभी कवियोंमें  
कवि हृण्यरामकी रचना प्राज्ञ, भगोहर और कविय-  
पूर्ण है। हृण्यरामका 'मदनरामका पाला' परदय  
नया है। जो हा, शीतलामङ्गलके पाले द्विज कवियोंके  
दायक बर बहुत कामन्तरि हो गये हैं, किन्तु भा इन  
सब ग्रन्थोंमें सुदूर समयकी शोणकपुति प्रद्वित है। यह  
स्पष्ट चित पीछे ज्ञाक-अभावका भाग्यम निदर्शन है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाराज नेना  
जा कर देल साये हैं, कि यहाँ जहाँ जहाँ पर  
सम्बन्ध लोकेष्यतदिका देवालय है, यहाँ हमनेदेसो  
अवस्थान करती हैं। बौद्ध शरीरका भी यहाँका शीतला-  
की तरह परम-मन व्यापनागिता है। यज्ञ-  
देनामें जहाँ जहाँ धर्म-मन्दर है, यहाँ यहाँ पर सभी  
शीतलाका अवस्थान स्वर्णित है। साधारणतया धर्म-  
पाठक या शीतलापूजाका नामाकी पूजा किया करते हैं।  
अतः भी ये लोग परमलोक विविधतामें विद्वद्वत्  
धर्मयज्ञ-यज्ञोंमें धर्मपाठकी  
है। उनका उपाय सब दोने  
हारीकीका शीतला-

मूर्त्तिमें हिन्दू-समाजमें हाजिर किया था। आखिर वङ्गमें कवि नित्यमानन्दके 'वसन्तकुमारो' अनुग्रह-विस्तारके साथ अनिच्छा रहते हुए भी शीघ्र और वैष्णवगण रोग-नाशके लिये शीतला पूजा करने वाध्य हुए थे। जो धर्म पण्डित हिन्दू समाजके बाहर पड़े थे, हिन्दू-समाजमें शीतलापूजा प्रचारके साथ उन लोगोंने बहुत कुछ विलुप्त सम्मान प्राप्त किया। दूसरे समय हिन्दू लोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं सही, पर शीतलापूजाके समय वे लोग हिन्दूके घर आवागम्यव्यवहारासे पूजा पाते हैं। शीतलापूजाप्रचारके साथ शीतलापूजाके धर्मपण्डितोंने 'शीतला पण्डित' नामसे प्रसिद्धि पाई है। शीतला पण्डितोंकी पुत्रिणा शीतला-प्रतिमा भावप्रकाश वा पिण्डितात्मलोक देवीमूर्त्ति नहीं है। शीतला पण्डितोंकी शीतलाके हाथ पैर नहीं हैं, सारे शरीरमें सिन्दूर लिपा है, शङ्ख वा घातुखचित व्रणबिह्व अङ्कित है, मुँहमें वसन्तका चिह्न दिखाई देता है। नेपालकी बौद्ध धारीतीकी मूर्त्ति भी उसी तरह है। शीतला पण्डित आज भी शीतला-मङ्गल गाने हैं। उन लोगोंके पास शीतलाके अनेक ग्रन्थ हैं जिन्हें वे छिपाये रहे हुए हैं, किसीको भा देवने नहीं देते।

विपदरोका गान वा पद्मपुराण (मनषामङ्गल)

वङ्गसाहित्यमें देवीपूजाकी प्रथम आदर्श विपदरोका है। ये सर्गको अधिष्ठात्री हैं। पूर्वतन हिन्दूसमाजमें इनका स्थान कदां था, प्राचीन पुराणमें उसका निदर्शन नहीं है। परन्तु अविष्णु, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणोंके अधुनिक अंशमें इनका नाम तो पाया गया है, पर ग्रह मा ८. ०. १. मन्त्रके पीछे ही है। जो हो, उमके भी बहुत पीछे विपदरोका, मङ्गलनष्टा आदिने वङ्गसाहित्यमें स्थान पाया है। मनसा की पूजा करनेसे मोक्षका भय जाता रहता है। वे विप हरण करती हैं, इस कारण उनका विपदरोका नाम हुआ है। विपदरोका गान वा मनषामङ्गल सैकड़ों कवि रच गये हैं र उनमेंसे किस कविने इसकी प्रथम रचना की, उसका ठोक ठीक पता नहीं चलता। विजयगुप्तने १४०१ जकमें अपने पद्मपुराण वा मनषामङ्गलमें लिखा है, कि विजयगुप्तके समय अर्थात् साढ़े चार सौ वर्ष पहले हरिदत्तके गानका लोग हुआ था। इस हिसाबसे हम

लोग हरिदत्तको कमसे कम ६०० वर्ष पहलेका आदमी मान सकते हैं। हरिदत्तको किसी किसीने कायस्थ कहा है। इन कायस्थ कविको ही मनषामङ्गलके आदिकवि मान सकते हैं।

इसके बाद नारायणदेवका पद्मपुराण है। नारायणदेवके निज परिचयसे जाना जाता है, कि वे जातिके कायस्थ थे, मौद्गल्य गौत था, देव पदवी थी। इनके पूर्वपुरुषका वास मगधमें था। इसके बाद वे राढ़में और राढ़से चोरप्राममें आ कर बस गये। (चोरप्राम मैनमसिंह जिला किशोरगञ्ज महकुमेके अन्तर्गत है) इन्हें १४वीं सदीका आदमी मान सकते हैं।

नारायणदेवके बाद हम विजयगुप्तका नाम पाते हैं। विजयगुप्तने १४०१ शक (१४७६ ई०) में पद्मपुराण वा मनसा-मङ्गल प्रणयन किया।

हरिदत्त, नारायणदेव और विजयगुप्तको आदर्श कर बहुत-से कवि मनषामङ्गल लिख गये हैं। अथारादि वर्णनानुक्रमसे ५६ कवियोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

अनूपचन्द्र, आदित्यदास, कमललोचन, कवि कर्णपुर, कृष्णानन्द, केतकादास क्षेमानन्द, पण्डित गङ्गादास, गङ्गादास सेन, गुणानन्द सेन, गोपीचन्द्र, गोलीकचन्द्र, गोविन्ददास, चन्द्रपति, जगन्वल्लभ, विप्र जगन्नाथ, जगन्नाथ, जगमोहन मित्र, जयदेव दास, द्विज जयराम, विप्र जानकीनाथ, जानकीनाथ दास, नन्दलाल, नारायण, यत्तराम द्विज, बलराम दास, नाणेभद्र, मधुसूदन दे, यदुनाथ पण्डित, विप्र रातदेव, रातदेव सेन, रामानन्द द्विज रसि, रातदेव, रामनिह (सुमङ्ग), राधाकृष्ण, रामचन्द्र, रामत्रावण विश्वभूषण, विप्र रामदास, रामदास सेन, रामनिधि, रामनिवो, द्विज चंगोदास, चंगोचन, वनमन्त्रो द्विज, वनमालोदास, बर्दमानदास, बल्लभ घोष विजय, विप्रवास, विश्वेश्वर, विष्णु गौड, पट्टावर सेन, सोतापति, सुहृददास, सुखदास, सुदामदास, द्विज हरिराम, हरय प्रह्लाण।

उन सब कवियोंके मध्य पूर्व वङ्गवासी कविको संख्या ही अधिक है। केतकादास क्षेमानन्द, जगमोहन मित्र आदि पश्चिम-वङ्गवासी कविको संख्या थोड़ी है।

बङ्गलाला मनोहर और मुचलित है। कवि एक कठोर शैव थे, वह उनकी कवितासे स्पष्ट मालूम होता है।

रामकृष्णके बाद रामराय और प्रयागराय नामक दो कवियोंने 'मृगश्याघ संवाद' नामक ग्रन्थमें शिवमाहात्म्य प्रचार किया।

द्विज रतिदेव चट्टग्रामके अन्तर्गत चक्रगालानियासी थे। उनके पिताका नाम गोपीनाथ और माताका नाम वशुमता था। १५२६ तक ( १६७४ ई० ) में उन्होंने मृग-लुब्ध नामक ग्रन्थ लिखा।

कविचन्द्र रामकृष्ण पश्चिम बङ्ग तथा तत् परवर्त्तों उक्त कविगण पूर्व-बङ्गवासी थे। इस कारण उन लोगोंके ग्रन्थमें अपने-अपने प्रादेशिक भाषाका प्रभाव दिखाई देता है।

द्विज भगीरथ और द्विज हरिहरसुत शङ्कर कविने 'वैद्यनाथमङ्गल' नामक एक शिवमाहात्म्यकी रचना की। इन दोनों ग्रन्थोंमें दो-दो वर्षको पुस्तकें पाई गई हैं। इस देशमें रामेश्वरका शिवायन वा शिवसंकीर्तन ही विशेष प्रचलित है। किन्तु वह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है।

शिवमाहात्म्यसूत्रक स्वतन्त्र ग्रन्थ अधिक संख्यामें नहीं मिलने पर भी परवर्त्तों शाक्तप्रभावके समय जिन सब मङ्गल साहित्यकी रचना हुई है उसमें विशेष भावसे शैवोंके असाधारण प्रभावका परिचय पाया गया है। वङ्गीय प्रत्येक हिन्दू गृहस्थको नित्य शिवपूजा करनेकी जो विधि प्रचलित है वह उसी शैव-प्रभावका उल्लङ्घन निदर्शन है।

शाक्त-प्रभाव।

तान्त्रिक प्रभाव विस्तारके साथ गौड़बङ्गमें शाक्त-प्रभावका सूत्रपात हुआ। सभी बौद्ध पालराजगण बौद्ध-तान्त्रिक तथा आर्यतारा, यज्ञवाराही, यज्ञशैरीवी आदि शक्तिके उपासक थे। उनके समय बौद्धशाक्तकी संख्या ही अधिक हो गई थी। पोछे शैवोंके पुनरभ्युदय कालमें बहू-तान्त्रिक शैवसम्प्रदायभूक्त हुए थे। शैवगण पहले जो जनसाधारणके बीच शिव-माहात्म्य प्रचार कर उन्हें अपने दलमें मिलाते थे, पोछे उसका बिलकुल उल्टा देखा गया। भक्तकी नित्य साहाय्यकारी भक्तप्राण भगवतीके प्रभावमें ही कुछ समय बाद जनसाधारणके ऊपर

आधिपत्य जमाया। शीतला, विपरीती, मङ्गलचरदी, पद्यो भादि देवीकी पूजा ही जनसाधारणके बीच प्रचलित हुई।

शीतलाकी पूजा बङ्गालमें तमाम प्रचलित है। गौड़-बङ्गमें वसन्तरोगके प्रादुर्भावके साथ शीतला पूजा में सर्वत्र प्रचलित हुई। उसके साथ साथ शीतलाका गान भी रचा गया। अनेक कवि 'शीतला-मङ्गल'की रचना कर गये हैं,—बङ्गके नाना स्थानोंमें बड़ा धूनधामसे शीतलापूजाके समय ये सब मङ्गल गाये जाते हैं। ये सब गान डोम पण्डितोंके निजस्व होनेके कारण उन्हें पानेका उपाय नहीं। उनमेंसे पांच कवियोंके केवल पांच शीतलामङ्गलका पता चला है। उन पांचोंके नाम हैं; कविबल्लभ देव कीर्तन्द्य, नित्यानन्द, चक्रवर्त्त, कृष्णराम, रामप्रसाद और शङ्कराचार्य। इन कवियोंमेंसे देवकीर्तन्द्यकी इन बाकी सभी कवियोंसे प्राचीन समझते हैं।

कवि कृष्णराम, रामप्रसाद तथा शङ्कराचार्योंने भी शीतलामङ्गलकी रचना की है। उक्त सभी कवियोंमें कवि कृष्णरामकी रचना प्राञ्जल, मनोहर और कवित्वपूर्ण है। कृष्णरामका 'मदनदासका पाला' एकदम नया है। जो हो, शीतलामङ्गलके पाले हिन्दू कवियोंके हाथ पड़ कर बहुत रूपान्तरित हो गये हैं, फिर भी उन सब ग्रन्थोंमें सुदूर अतीतकी क्षाणस्मृति अङ्कित है। वह स्पष्ट चिह्न थाई शाक्त-समाजका अन्तिम निदर्शन है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशय नेपाल जा कर देख आये हैं, कि वहाँ जहाँ जहाँ पर तन्त्रलोक लोकेश्वरादिका देवालय है, वहाँ दारोतादेवी अवस्थान करती हैं। बौद्ध दारोता भी वहाँकी शीतलाकी तरह वसन्त-मग्न व्याधिनाशिनो है। बङ्गदेशमें जहाँ जहाँ धर्म-मन्दिर है, वहाँ वहाँ पर मानो शीतलाका अवस्थान स्वतःसिद्ध है। साधारणतः धर्म-पण्डित वा डोमपण्डित शीतलाकी पूजा किया करते हैं। आज भी ये लोग वसन्तरोग-चिकित्सेतामें सिद्धहस्त समझे जाते हैं। धर्ममङ्गल-प्रसङ्गमें धर्मपण्डितोंके प्रभावका परिचय दिया गया है। उनका प्रभाव नष्ट होने पर उन लोगोंने बौद्ध-तान्त्रिक देवी दारोताकी शीतला-

मूर्त्तिमें हिन्दू-समाजमें हाजिर किया था। आखिर वङ्गमें कवि नित्यानन्दके 'वसन्तकुमारो' अनुग्रह-विस्तारके साथ अनिच्छा रहते हुए भी शैव और वैष्णवगण रोग-नाशके लिये शीतला पूजा करने वाध्य हुए थे। जो धर्म पण्डित हिन्दू-समाजके बाहर पड़े थे, हिन्दू-समाजमें शीतलापूजा प्रचारके साथ उन लोगोंने बहुत कुछ विलुप्त सम्मान प्राप्त किया। दूसरे समय हिन्दू लोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं सही, पर शीतलापूजाके समय वे लोग हिन्दूके घर आवागमनव्यवहारासे पूजा पाते हैं। शीतलापूजा-प्रचारके साथ शीतलापूजाक धर्मपण्डितोंने 'शीतला पण्डित' नामसे प्रसिद्धि पाई है। शीतला पण्डितोंकी पुत्रिता शीतला-प्रतिमा भावप्रकाश वा पिच्छातमस्तोक देवीमूर्त्ति नहीं है। शीतला पण्डितोंकी शीतलाके हाथ पैर नहीं हैं, सारे शरीरमें सिन्दूर लिपा है, शङ्ख वा घातुखचित व्रणचिह्न अङ्कित है, मुँहमें वसन्तका चिह्न दिखाई देता है। नेपाल-को बौद्ध धारितीकी मूर्त्ति भी उसी तरह है। शीतला पण्डित आज भी शीतला-मङ्गल गाते हैं। उन लोगोंके पास शीतलाके अनेक ग्रन्थ हैं जिन्हें वे छिपाये रखे हुए हैं, किसीको भी देवने नहीं देते।

विपहरोका गान वा पद्मपुराण (मनसाङ्गल)

वङ्गसाहित्यमें देवीपूजाकी प्रथम आदर्श विपहरी है। ये सर्पकी अधिष्ठात्री हैं। पूर्वतन हिन्दूसमाजमें इनका स्थान कदां था, प्राचीन पुराणमें उसका निदर्शन नहीं है। परन्तु अविश्य, ब्रह्मवेवर्षा आदि पुराणोंके अशुक्तिक अंगम इनका नाम तां पाया गया है, पर यह भी टी. मन्दीके पीछे है। जो हो, उनके भी बहुत पीछे विपहरी, मङ्गलवण्टा आदिने वङ्गसाहित्यमें स्थान पाया है।

मनसा की पूजा करनेसे मांषका भय जाता रहता है। वे विपहरण करती हैं, इस कारण उनका विपहरी नाम हुआ है। विपहरीका गान वा मनसाङ्गल सैकड़ों कविरच गये हैं र उनमेंसे किस कविने इसकी प्रथम रचना की, उसका ठीक ठीक पता नदी चलता। विजयगुप्तने १४०१ शकमें अपने पद्मपुराण वा मनसामङ्गलमें लिखा है, कि विजयगुप्तके समय अर्थात् साढ़े चार सौ वर्ष पहले हरिदत्तके गानका लोप हुआ था। इस हिसाबसे हम

लोग हरिदत्तको कमसे कम ६०० वर्ष पहलेका आदमी मान सकते हैं। हरिदत्तको किसी किसीने कायस्थ कहा है। इन कायस्थ कविको ही मनसामङ्गलके आदिकवि मान सकते हैं।

इसके बाद नारायणदेवका पद्मपुराण है। नारायणदेवके मित्र परिचयसे जाना जाता है, कि वे जातिके कायस्थ थे, मीरद्वय गोत था, देव पदवी थी। इनके पूर्वपुरुषका वास मगधमें था। इसके बाद वे राढ़में और राढ़से घोरग्राममें आ कर बस गये। (घोरग्राम मैनसिंह जिला किशोरगञ्ज महकूमके अन्तर्गत है) इन्हें '१४वों सदीका आदमी मान सकते हैं।

नारायणदेवके बाद हम विजयगुप्तका नाम पाते हैं। विजयगुप्तने १४०१ शक (१४७६ ई०) में पद्मपुराण वा मनसा-मङ्गल प्रणयन किया।

हरिदत्त, नारायणदेव और विजयगुप्तको आदर्श कर बहुत-से कवि मनसामङ्गल लिख गये हैं। अकारादि वर्णनानुक्रमसे ५६ कवियोंके नाम नीचे लिखे जात हैं—

अनूपचन्द्र, आदित्यदास, कमललोचन, कवि कर्णपुर, कृष्णानन्द, केतकादाम क्षेमानन्द, पण्डित गङ्गादास, गङ्गादास सेन, गुणानन्द सेन, गोपीचन्द्र, गोलीकचन्द्र, गोविन्ददाम, चन्द्रपति, जगन्वल्लभ, विप्र जगन्नाथ, जगन्नाथ सेन, जगमोहन मित्र, जयदेव दास, द्विज जयराम, विप्र जानकोनाथ, जानकीनाथ दास, नन्दलाल, नारायण, पत्तराम द्विज, बलराम दास, बाणेश्वर, मधुनन्द दे, यदुनाथ पण्डित, विप्र रतदेव, रातदेव सेन, रामानन्द द्विज रत्न सेन, रामराममिह (सुमङ्गल), राधाकृष्ण, रामचन्द्र, रामनारायण विद्याभूषण, विप्र रामदाम, रामदास सेन, रामानधि, रामनिनी, द्विज चंगोदास, चंशीधर, धनमाला द्विज, धनमालोदास, चर्द्धमानदास, बल्लभ घोष विजय, विप्रदाम, विश्वेश्वर, विष्णुनाथ, पद्मावर सेन, सोतापति, सुकविदास, सुजदास, सुदामदास, द्विज हरिराम, हृदय प्रह्वण।

उन सब कवियोंके मध्य पूर्व वङ्गवासी कविको संख्या ही अधिक है। केतकादस क्षेमानन्द, जगमोहन मित्र आदि पश्चिम-वङ्गवासी कविको संख्या थोड़ी है।



उपरोक्त कवियोंके मध्य क्षेत्रानन्द दासका मनसा-मङ्गल भाष्यमें, भाषामें और वर्णनमें अपेक्षाकृत मनोहर मालूम होता है।

पूर्व चङ्गके आधुनिक मनसाभक्त कवियोंमें श्रीराम जीयन विद्याभूषण प्रधान हैं। विद्याभूषणी मनसामङ्गल १६२५ शक (१७०३ ई०)में रचा गया। मनसा-पाञ्चाली-कारोंमें एक राजकविका परिचाय पाते हैं। वे सुसङ्गके राजा राजसिंह थे। प्रायः १५० वर्ष पहले उन्होंने मनसामङ्गलकी रचना की।

मनसा-माहात्म्य उपलक्ष्यमें चांद सौदागर और वेहुला या विपुलाका चरित्र-वर्णन करना ही मनसामङ्गल या पद्मपुराणका लक्ष्य है। चङ्गके प्रायः कवियोंने चांद सौदागरका मानसिक तेजविता और इष्टदेवके प्रति ऐकान्तिक-निष्ठाका परिचय दिया है यह किसीसे भी छिपा नहीं है। प्रायः कविके हाथसे सती वेहुलाकी पतिभक्तिका जैसा आदर्श चित्रित हुआ है, जगत्के किसी भी स्थानमें किसी कविके हाथसे वैसा सती चरित्र अङ्कित नहीं देया जाता।

प्रायः सभी मनसामंगलमें पूर्वतन धर्म और शैव प्रभावको छाया देखी जाती है। मनसामंगलके अधिकांश प्राचीन कवि ही महाशून्य धर्मनिरखन और योगेश्वर शिवकी पहले ही वन्दना करनेको बाध्य हुए हैं। यहां तक कि मनसाका माहात्म्य-प्रचार करनेके पहले बहुतसे प्राचीन कवि सबसे पहले शिवलीलाका ही गान कर गये हैं। आज भी ज्येष्ठ मासकी शुक्ल दशमीके दिन चङ्गवासी गृहस्थमात्र ही मनसा-पूजा करते हैं।

मङ्गलचण्डीका गान वा चण्डीमङ्गल।

मङ्गल चण्डीका गीत बहुत पहलेसे वंगालमें प्रचलित है। महाप्रभु चैतन्यदेवके आधिभाष्यके पहले हीने मंगलचण्डीका गीत गाया जाता था। इस चण्डीका गीत दो धारामें गाने थे—एक धाराका नाम साधारणतः शुभचण्डी और दूसरी धाराका नाम मंगलचण्डी है। इन दोनों धाराओंके मध्य शुभचण्डीकी पांचाली और मन-कथा ही अपेक्षाकृत प्राचीन है। पहलीप्रायवासी हिन्दू-गृहस्थ शुभचण्डीका गान बड़ी भक्तिसे सुनते थे। वही गान पीछे मत-वधामें परिणत हुआ। हमें विश्वास

होता है, कि पालराजाओंके समय अर्थात् देवी साहित्यमें संस्कृत भाषाका प्रभाव घुसनेके पहले शुभचण्डीकी कथाने स्थान पाया था। वही शुभचण्डी प्राकृत भाषाका धारण कर 'सुवचनी' रूपसे हिन्दू समाजमें प्रसिद्ध हुई है। सभी मङ्गल कर्मोंमें शुभचण्डीकी पांचाली गाई जाती थी। आज भी वंग-रमणियां शुभ कर्मोंमें सुवचनीकी पूजा करतीं और सुवचनीकी कथा सुनती हैं।

सुवचनीकी कथा वंगाली-गृहिणीमात्रके मध्य प्रचलित रहने पर भी वंगभाषाकी अति प्राचीन सुवचनीके पांचाली-गान पुरुषोंके अयत्नने अधिकांश विलुप्त हो गये हैं। द्विजवर, पछोवर भादि रचित "सुवचनीकी पांचाली" पाई गई है।

मंगलचण्डीके गानोंकी रचना करके बहुतसे कवियोंने कथाति प्राप्त की है। जिस तरह हिन्दूओंके भादि संस्कृत शास्त्रसूत्रोंमें लिखे हैं, ठीक उसी तरह वंगला भाषामें भी देव-देवियोंके माहात्म्य सूचक ग्रन्थ अति संश्लेषसे सूत्रोंमें ही लिखे गये हैं। वे सब ग्रन्थ लोगोंके आग्रहसे पर्यन्त कवियोंके द्वारा प्रकाशित हुए हैं।

मंगलचण्डीकी जितनी पांचालियां हम लोगोंके हस्त लगी हैं, उनमें द्विज जनार्दनके बाद माणिक दत्तके ग्रन्थ ही उपस्थित सभी ग्रन्थोंको अपेक्षा अधिक प्राचीन जान पड़ते हैं। उनकी पांचालीसे जाना जाता है, कि गौड़वंगके मध्य लक्ष्मी सरस्वतीके प्रिय घरपुत्रोंके पास स्थान प्राचीन गौड़ नगरीके निकटवर्ती किसी स्थानमें माणिकदत्त का वास था। उन्होंने प्राचीन गौड़ शहरको निकटवर्तिनी महानन्दा, कालिन्दी, पुनर्मथा तथा टांगन नदी, मोड़ुप्राम, छाह्याभाहत्याके विल तथा गौड़-श्वरीका उल्लेख किया है। उन्होंने भगवतीके स्तवके समय उनको द्वारवासिनी कह कर पुकारा है। प्राचीन गौड़के निकट चण्डीपुर ग्राममें रणचण्डी मध्या द्वारवासिनी देवीका एक विशाल मन्दिर था, इस समय उसका भवनस्तूप यहां पड़ा है। रणचण्डीका प्राचीन गौड़ राजधानीकी रक्षविणीरूपमें द्वार-रक्षा तथा मंगल विधान करती थीं, इसी कारण वे 'द्वारवासिनी' तथा मंगलचण्डी इन दोनों ही नामोंसे विख्यात थीं। गौड़के पूर्वतन हिन्दू तथा 'बीदराजायें' रणचण्डीकी

पूजा करते थे। गौड़नगरके ध्वंससाधनके साथ साथ रणचण्डीका मन्दिर भी परित्यक्त हुआ। रणचण्डीका विशाल मन्दिर जिस समय दशकोंके मनमें विस्मय उत्पादन करता था, जिस समय सैकड़ों यात्री वहाँ जा कर उनकी पूजा करते थे, उसी समय अर्थात् गौड़नगरकी समृद्धिकी अवस्थामें माणिकदत्तने मंगलचण्डीके गानोंकी रचना की थी। विदर्हकी गान-रचयिता हरिदत्त जिस तरह काने थे, उमी तरह माणिकदत्त भी काने तथा ल'गड़े दोनों ही थे। पहले ही लिख चुके हैं कि बीदरराजाओंके आधिपत्य कालमें उनके उत्साहसे ही रमाईं पण्डितने बंगलापामें शून्यवादप्रकाशक शून्यपुराण प्रकाश किया था। गौड़ाधिप वीरभूगालोंके आधिपत्य विलुप्त होने पर भी शून्यवादिपोंने जनसाधारणके मनसे छिद्रमूल होनेका अवसर नहीं पाया। इसीलिये हम लोग माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी'में उसी बद्रमूल शून्यवाद तथा शून्यमूर्तिधर्मसे आदिष्टिका प्रसंग पाते हैं।

माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी' के अनुसार पहले कलिंग नगरमें, पीछे गुजरातमें एवं उज्जैन नगरमें मंगलचण्डीकी पूजाका प्रचार हुआ। माधवाचार्य, कविकंकण मुकुन्दराम प्रभृतिका कितनी ही रचनायें पौराणिक मतानुसारिणी हैं, किन्तु माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी' के साथ हिन्दुपुराणका कोई सम्बन्ध नहीं देखा जाता। द्विज जनार्दनके प्रर्थोंकी तरह माणिकदत्तके प्रन्धमें भी उस तरहके कवित्व, लाटिव्य अथवा वर्णनामाधुर्य नहीं हैं, यह मानों पथकी गन्धयुक्त गद्य-रचना है।

द्विज जनार्दनके समान ही द्विज रघुनाथकी मंगलचण्डीकाकी पांचाली पाई गई है। इस ग्रन्थकी रचना-प्रणाली द्विज जनार्दनकी रचनाकी तरह ही है। इस ग्रन्धमें भी उस तरहके कवित्व अथवा माधुर्य नहीं है,—कालकेतु, धनपति सौदागर तथा श्रीमन्त सौदागरके उपाख्यान सीधी भाषामें अति संक्षेपमें विवृत हुए हैं।

माणिकदत्तके समान ही मदनदत्त-रचित एक मंगलचण्डी पाई गई है, यह ग्रन्थ माणिकदत्तका परवर्ती-सा जान पड़ता है। कविने बीच बीचमें कवित्वका परिचय किया है।

माणिकदत्त तथा मदनदत्तके बाद मुकारामसेनकी चंडी अथवा 'सारदामंगल'का उल्लेख कर सकते हैं। यह ग्रन्थ (१४६६ शक) १५४७ ई०में रचा गया।

इसके बाद देवीदास सेन, शिवनारायणदेव, क्षितिचन्द्र दास प्रभृति रचित कई एक छोटी छोटी 'मंगलचंडी' पाई गई हैं। इनमें कितने ही ग्रन्थ 'नित्य मंगलचंडीकी पांचाली' नामसे विवृत हुए हैं। इन सभी छोटे छोटे ग्रन्थोंकी एक समय मंगलचंडीके भक्तगण नित्य दिन पाठ अथवा श्रवण करते थे।

पहले ही लिख चुके हैं कि सूत्रप्रंथरूप मंगलचंडीकी आदि पांचालियां धोरे धोरे वद्वि'तकलेवर हो कर 'जागरण'के नामसे विख्यात हुईं। ये जागरण सात दिन तथा आठ राति गाये जाते हैं, इसीलिये इनका 'अष्टमंगला' नाम हुआ है। जागरणमें मुकारामका नाम पहले ही पाया जाता है।

उक्त कवियोंके मध्य बलराम कविकंकणकी मंगलचंडी अति प्राचीन है। मेदनीपुर तथा बांकुड़ामें बलरामकी चंडीके गान प्रचलित थे।

कोई कोई कहते हैं, कि बलराम कविकंकण ही मुकुन्दरामके शिक्षागुरु थे। किन्तु 'गोतांके गुरु'के उल्लेखसे मातृम पड़ता है, कि उनके ही गान मुकुन्दरामके आदर्श हुए थे। बलराम, मुकुन्दरामके पूर्ववर्ती होने पर भी किस समय पैदा हुए थे, इसका ठीक पता नहीं चलता।

बलरामके बाद माधवाचार्यका नाम मिलता है। ११० वर्षके प्राचीन कृष्णरामके-ग्रन्धसे, पता चलता है कि इसके पहले माधवाचार्यके गाने दक्षिणराष्ट्रमें विशेष प्रचलित थे।

कविकंकण मुकुन्दरामने १५१५ शकमें अर्थात् माधवाचार्यके 'जागरण' रचित होनेके १४ वर्ष बाद अपने अपूर्व कवि कीर्त्ति अभयामंगलमें 'देवीकी जौनीया' समाप्त की। इस तरह दोनोंका एक ही आदर्श होना कोई आश्चर्य नहीं।

माधवाचार्यकी रचनामें सरल प्राकृतिक चित्र परिब्यक्त है। उन्होंने छोटी पटना तथा छोटा विषय ले कर ही जिस तरह प्राम्यचित्त अङ्कन किया है, वह अति

स्वामाधिक एवं सुन्दरित है। यदि कविकङ्कण मुकुन्दराम असाधारण प्रतिभा ले कर जन्म प्रदण नहीं करते, तो हम-लोग माघवाचार्थको ही चण्डीकविता श्रेष्ठ आसन प्रदान करनेमें ऊपर होतें। दोनों कवियोंकी रचनायें अनेक स्थानोंमें मिलती जुलती हैं एवं उनके पाठ करनेसे मालूम पड़ता है मानो माघवाचार्थकी बातोंको ही मुकुन्दरामने उज्ज्वल भाषामें एवं अद्वितीय कवित्वनैपुण्यमें परिवर्द्धित कर दिया है।

कविकङ्कणके प्रभाषके समय माघवाचार्थके गान दक्षिण राट्टमें उम तरह आदृत न हो सके। कविके घ'शघरो'ने पूर्व-व'गालमें जा कर वास किया। उन्हींके साथ साथ कविके जागरण भी पूर्व-व'गालमें लाये गये। पूर्व-व'गाल तथा चट्टग्राममें आज भी माघवाचार्थके जागरण लोग अत्यन्त आदरके साथ सुना करते हैं।

कविकङ्कण मुकुन्दरामका परिचय पहले ही दे चुके हैं।

कवि कङ्कणकी चण्डीमङ्गल अथवा अभयामङ्गल वङ्गली प्राम्यकवियोंकी अद्वितीय कीर्ति है। क्या स्वभाव वर्णनामें, क्या सामाजिक चित्र अङ्कनमें, क्या देशकी तस्फालीन रीति गति प्रदर्शन करने, यदि किसी भी विषयमें, आज तक वङ्गालके कोई भी कवि कङ्कणका मुखाधिल्ला न कर सके हैं। कविकङ्कणने शक्ति सामान्य विषयोंके वर्णनमें भी जिस तरह अन्तर्दृष्टि तथा प्रतिभाका परिचय दिया है, उस तरह और किसी ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता।

चट्टग्रामके कायस्थ कवि भगानीशङ्कर भी प्रायः दार्ढ्य भी वर्णन पहले चण्डीका एक जागरण लिख गये हैं। इस जागरणमें भी कायस्थ-कविने असाधारण कवित्व तथा प्रतिभाका परिचय दिया है। उनका चण्डीकाव्य कविकङ्कणके काव्यकी तुलनामें होन होने पर भी चट्टग्रामका गौरव-प्रकाशक माना जाता है। जयनारायण सेन द्वारा रचित एक और चण्डीकाव्य उल्लेखनीय है। ये जयनारायण वैद्यराज राजवल्लभकी जातिके थे। माघवाचार्थ कविकङ्कण भगानीशङ्कर प्रभृतिके ग्रन्थोंमें जिस तरह उच्चभाष्य तथा भक्तिरसका परिचय पाया जाता है, जयनारायणकी चण्डीमें उनके विपरीत है। ये वैद्यकवि आदित्यके परमभक्त थे।

जयनारायणके समय शिवचरण नामक एक प्रहसनने चण्डीके गानोंकी रचना की थी। यद्यपि इसका वर्णनोप विषय तन्त्र तथा मार्कण्डेयपुराणसे लिये गये हैं तथापि इसमें कालकेतुका प्रसङ्ग पा कर हमने इसे मङ्गल चण्डीके गानोंमें ही स्थान दिया है।

कविकङ्कणके पूर्व इतिहासमें अत्यन्त प्राचीनकालकी एक स्मृति पाई जाती है। उससे मालूम होता है कि कलिंग राज्यमें पहले जंगली असभ्य जातियोंके मध्य ही मंगलचण्डीकी पूजा प्रचलित थी। द्विज जनार्दनकी मंगलचण्डीके सूत्रग्रन्थमें भी प्रथम पूजा विस्तारके उपलक्ष्यमें विन्ध्याचालका उल्लेख पाया जाता है। वाक्पतिके गौडवृषकाव्यका पाठ करनेसे हम लोग जान सकते हैं कि ८वीं सदीके प्रथम भागमें कन्नौजगति यशोधर्मदेवने जिस समय दिग्विजयके उपलक्ष्यमें विन्ध्याचालके जंगलसे हो कर यात्रा की थी, उस समय उन्होंने वहांकी शहर जातिकी नरशोणित-लोडुपा महाकालीकी पूजा करते देखा था। इन शहरोंके आचरण प्यायके सदृश थे। अन्तमें शहर जातिके मध्य किमी मिसाने तो कलिंगराज्यके कई अंगोंकी जीत कर राजपद भी प्राप्त कर लिया था। प्राचीन गिन्नालिपिसे इनका पता चला है। सम्भवतः यही अतीत कहानी कालकेतुकी लक्ष करके मंगलचण्डीके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिये वर्णन कां गई है। असभ्य जातियोंमें ही प्रथमतः मंगलचण्डीकी पूजा होनी थी, ऐसा सम्भव कर ही सम्भवतः सौराष्ट्र धनपतिवचने उन्हीं 'दक्षिणार्थ' कह कर अश्रद्धा दिखलाई थी। अन्तमें गन्धर्वाणक-परिचारसे ही अश्रयश्रीके किनारे मंगलचण्डीकी पूजा प्रचलित हुई। यह बहुत दिनोंकी बात है। कारण यह कि हम लोग धर्ममंगलमें भी अश्रयश्रीके तीर्थदर्शी देवुराधिपति इच्छादेवाय तथा हरिपालकी कन्या 'कानहा' के प्रसंगमें चण्डी-पूजाका आभास पाते हैं। शुभचण्डी अथवा मंगलचण्डीकी पूजा जिस समय उच्च श्रेणियोंमें होने लगा, उस समय देवोंके साथ पौराणिक साधारणकिका अनेकधायन करनेकी चेष्टा की गई। इसी कारण परवर्ती गौडमंगल ग्रन्थमें पौराणिक या आगमोक्त देवोच्चारित सुधमयायमें एवं कालकेतुका

उपाख्यान गौणभाषमें वर्णित देखा जाता है।

कालिकामंगल ।

पौराणिकोंके अश्वमेधके समय कालिकादेवोने मंगलकांडोका स्थान धारण किया। इस समय मार्कण्डेयपुराण, कालिकापुराण तथा विभिन्न तन्त्रोंसे सहायता ले कर बहुतसे देवा-मंगलको रचना होने लगी। उनमें गोविन्ददास, क्षेमानन्द दास, मधुसूदन कवोन्द्र, श्रोताय, वनदुर्लभ, द्वित्र दुर्गा राम, अन्धकवि भवाना प्रसाद, रूपनारायण घोष, कृष्णराम दास, रामप्रसाद सेन, रायगुणाकर भारतचन्द्र, निधिराम कविरत्न एवं द्वित्र रामनारायणके ग्रन्थोंका परिचाय दिया जाता है।

विद्यासुन्दर-कथा ।

उक्त कालिकामंगलोंमें गोविन्ददासके ग्रन्थ ही सर्व प्राचीन गिने जाते हैं। गोविन्ददासने १५७१ शक (१५६५ ई०)में अपने कालिकामंगलको रचना की थी। चांडीमंगल जागरणके एक दूसरे प्रधान कवि भवानोशंकरको तरह इन्होंने भी अपनेको चाट्टप्रामात्तर्गत देवप्रामवासी तथा आत्रेय गोत्र नरदासके घंशघर बताया है।

नये शिक्षित सम्प्रदायके भारतचंद्र-ग्रन्थके पाठ करनेसे जो अचोक्षता देख पड़ती है, गोविन्ददासके ग्रन्थमें उसका अभाव है। गोविन्ददासके सुन्दर एक मन्त्रतन्त्र-निपुण कालोभक्त थे, मन्त्र तथा सर्वदा ही उनके चेहरेसे कालोभक्ति उपर रहती थी। उनकी अस्तर मान्य-शक्ति तथा देवोभक्तिके प्रभावसे भूखण्ड मानो विदोषण हो कर सुरंगमें परिणत हो गया था। गोविन्ददासकी विद्या भी मानो अत्यन्त लज्जाशीला, पतिप्रेमानुरक्त देवोके भक्तिरसमें आलस्यता है। भारतचन्द्रको विद्याके समान अति रसिका, अति अघोरा तथा अति बाचाल नहीं है।

गोविन्ददासके बाद कृष्णरामके कालिकामंगलको रचना हुई। कृष्णरामके बाद रामप्रसाद एवं रामप्रसादके बाद भारतचन्द्रने विद्यासुन्दरकी रचना की।

कृष्णरामके कुछ समय बाद ही क्षेमानन्दने एक कालिकामङ्गलकी रचना की। अभी यह ग्रन्थ नहीं मिलता।

इस समय मधुसूदन कवोन्द्र नामक एक राठवासी सुकविने कालिकामङ्गल प्रकाशित किया। कवोन्द्रके बाद रामप्रसाद कविरत्नका कालिकामङ्गल है। रामप्रसादसेन एक सुकवि, सुलेखक और एक परम साधक थे। १७५८ ई०में महाराज कृष्णचन्द्रके रामप्रसादको १०० बीघा जमीन देने पर भी कविरत्न नदिवाकी राजसभामें नहीं गये। वे अपनी जन्मभूमि कुमारदहट्ट प्राममें ही रहते थे और वहाँ महाराज कृष्णचन्द्रके साथ उनको मुलाकात हुई थी।

अश्रदा-मङ्गलके बचनसे जाना जाता है, कि १६७४ शकमें (१७५२ ई०में) भारतचन्द्रका ग्रन्थ रचा गया। भारतचन्द्र और निधिरामके बाद प्राणराम चक्ररत्तीने विद्यासुन्दरकी रचना की। उनको रचनामें वैसा लालित्य, माधुर्य्य वा शब्दाङ्ग्य नहीं है। भारतवर्षके विद्यासुन्दरकी तुलनामें प्राणरामका ग्रन्थ नहीं उद्धर सकता। आगमानुसार जो सब मङ्गलग्रन्थ रचे गये, उनमें दक्षिण-राष्ट्रीय कायस्थ प्रवर रामशङ्करदेवका 'अभयामङ्गल' बहुत बड़ा ग्रन्थ है।

कालिका वा अभयामङ्गलकी तरह बहुतसे कवि मार्कण्डेयपुराणको चाण्डोका अवलम्बन कर 'कालिकाविलास' 'दुर्गामङ्गल' 'दुर्गाविजय' आदि नामसे कुछ काव्य रचे गये हैं। उन सब ग्रन्थोंमें कालिकासका काठिकाविलास, द्वित्र कमललोचनका चाण्डिकाविजय, रूपनारायण घोष और अन्धकवि भवानोप्रसादका दुर्गाविजय या चाण्डोमङ्गल उल्लेखनीय है।

भवानोप्रसाद जन्मान्ध और निरक्षर थे सही, पर उन्होंने दैवबलसे जो कविशक्ति ले कर जन्म ग्रहण किया था वह सामान्य नहीं। उनकी रचानामें अच्छे प्रसादगुण हैं। कहीं-कहीं उन्होंने सप्तशतीचाण्डोके अनुवादमें अच्छे छतित्वका परिचाय दिया है।

भवानोप्रसादके समयमें ही एक दूसरे कविने मार्कण्डेय चाण्डोके अनुवादमें सुनीदण प्रतिभा और रचानाके कृतित्वका परिचाय देकर अन्धकविको बहुत दूर हटा दिया है। इन कविका नाम-रूपनारायण घोष है।

रूपनारायण संस्कृतशास्त्रवित् आध्यात्मिकके उपासक थे। वे मार्कण्डेय चाण्डोका अवलम्बन कर अपना ग्रन्थ

घोर-प्रभाव ।  
सूर्यकी पंचांगी ।

पौंड्र, शैव और शाक्त-प्रभावके साथ साथ बङ्गालमें सीर लोगोंका संसृष्ट हुआ था। शाकद्वीपीय समी आचार्य ब्राह्मणगण मित्त नामक सूर्यके उपासक थे। उनके यत्नसे भारतवर्षमें तमाम मित्तदेवकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित और मित्तपूजा प्रचलित हुई थी।

सूर्यकी पञ्चालियोंमें द्विज कालिदास और द्विज राम-जोवन विद्याभूषणका प्रस्थ हो अधिक प्रचलित है। इन दोनों ग्रन्थोंमेंसे रामजीवनके ग्रन्थमें बहुत कुछ प्राचीनता देखी जाती है। कवि रामजीवनने १६११ शकमें आश्रित्य-रचित या सूर्यकी पञ्चाली लिखी। कालिदासने भी इसी समय सूर्य कथाका प्रचार किया था।

मुषलमानी अमल ।

अनुवाद साहित्यकी रचना ।

बीर, शैव और शाक्त-प्रभावकी रचना मुसलमानी-अमलके बहुत पहले हुई थी। १४वीं सदीके मध्य भागमें हिन्दू मुसलमानका मेल हुआ। इस मेलके फलसे १५वीं सदीके मध्यभागमें राजानुग्रह पानेकी आशासे कोई कोई संस्कृतवित्त ब्राह्मण हिन्दूशास्त्रका मर्म समझानेके लिये अनुवाद कार्यमें लग गये।

रामायण ।

गौड़ेश्वरका उल्हास पा कर भाषाकी नीच मजबूत करनेके लिए अनेक बङ्गीय कवि जिन सब संस्कृत ग्रन्थोंका बङ्गभाषामें अनुवाद कर गये हैं उनमें रामायणके अनुवादको ही सर्वप्रथम कह सकते हैं। रामायणके रचयिता या अनुवादक भी अनेक हैं। उनमेंसे छत्तिवांस, अद्भुताचार्य, धनन्तदेव, फकीरराम कविभूषण और उनके लड़के गङ्गादास सेन, जगत्पुरुष चन्द्र, जगत्पुरुष, शिवचन्द्र सेन, मिषक शुकुदास, द्विज रामप्रसाद, द्विज दयाराम, राममोहन और रघुनन्दन गोस्वामी, इन २२ कवियोंका संपान पाया गया है। इन सब रामायण-रचकोंके मध्य कवि छत्तिवांस ही अग्रणी हैं।

छत्तिवांसने १४४० ई० मध्यमा उसके निकटवर्ती किसी समय फुलिया ग्राममें माघमासकी धीपञ्चमीके दिन रविवारकी जन्म प्रक्षण किया। छत्तिवांस-रामायण-

की पाठविरुद्धि अनेक रूपोंमें हो गई है। नतपय छत्तिवांसकी शुद्ध रचनाका रसास्वाद पाठकके पक्षमें अभ्यव है। हम लोग जो सब रचना छत्तिवांसकी विरुद्ध कह कर प्राचीन कविके कवित्व गौरवकी स्पर्दा करते हैं, हो सकता है कि वह गौरवस्पर्दा किसी दूसरे लिये भी की जाती हो। क्योंकि जयगोपाल तर्कालङ्कार की तरह और भी कितने तर्कालङ्कारोंने बङ्गला-रामायण की पाठविरुद्धि की है।

छत्तिवांसकी रचनामें प्रसाद और माधुर्यगुणकी मर्यादा मार है। कवितानैगुण्यमें भी ये वङ्गके एक प्रधान कवि का आसन पानेके विलकुल अधिकारी हैं। छत्तिवांसका वाद जितने रामायण रचे गये हैं उनमें 'अनन्त रामायण' ही सबसे प्राचीन है। अद्भुताचार्यरचित एक दूसरा प्राचीन रामायण भी पाया गया है। इन कविका पूर्वनाम नित्यानन्द था। ब्राह्मणवंशमें ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अद्भुताचार्य आख्या ले कर सतकाण्ड रामायण प्रकाशित किया।

छत्तिवांसके प्रायः सौ वर्ष पीछे पश्चिम-बङ्गमें एक महाकविने जन्म लिया था। उनका नाम शङ्कर कविचन्द्र है। इन्होंने मल्लव-जोय चनविष्णुपुराणचिप मापाल सिद्धके आदेशसे समस्त महाभारतका अनुवाद किया। इस कारण कविने मदनराजसे पारितोषिक-स्वरूप अनेक प्रदोष प्राप्त सम्पत्ति और 'कविचन्द्र'-की उपाधि पाई। उनके जसाधारण मध्यवसाय और बङ्गभाषाकी सेवाकी और ख्याल करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। उनके रामायण, महाभारत और धीमन्नागवतका अनुवाद तथा दूसरे दूसरे ग्रन्थोंकी एकत्र करनेसे सचमुच एक विराट् काण्ड बन जायगा। कविचन्द्रके रामायणकी रचना शक्ति मधुर, सरस और वैष्णवीय भक्ति-युक्त है।

कविचन्द्रके बाद प्रायः तीन सौ वर्ष हुआ, फकीरराम कविभूषण, मिषक शुकुदास, जगत्पुरुष, मयानोन्नट्ट चन्द्र और लक्ष्मणचन्द्रने रामायण प्रकाशित किया। उनमेंसे किसने तो बाल्मीकि रामायण, किन्हींने अष्टाश्लेष-रामायण और किसोंने चण्डि रामायणकी दोहराई दी है। किन्तु पद्यार्थमें उन लोगोंके ग्रन्थको उक्त किसी एक मूल रामायणका अनुवाद नहीं मान सकते।

कवि भवानीशङ्करके समय लक्ष्मणवन्द्य नामक एक और कविने जन्मग्रहण किया। इन्होंने भी सप्तकाण्ड रामायणकी रचना की है। लक्ष्मणवन्द्यके बाद गोविन्द या रामगोविन्द दास नामक एक कायस्थने बृहत् सप्तकाण्ड लिखा। इन पाँचों कविने राढ़ या पश्चिम-वङ्गको उज्ज्वल किया है। उन्हींके समय पूर्ववङ्गमें पद्योपर और उनके पुत्र गङ्गादास सेन रामायणकी रचनामें अग्रसर हुए थे।

द्विज दुर्गारामका रचित रामायण पाया गया है। यह रामायण कृत्तिवासके बाद लिखा गया है, यह बात कविने स्वयं अनेक बार स्वीकार की है। इन दुर्गाराम कविका कोई आत्मपरिचय नहीं मिलता। द्विज दुर्गाराम-रुत एक कालिकापुराणका अनुवाद भी पाया गया है।

करीब ३०० वर्ष हुआ बांकुडा जिलेके भुदुरै ग्राममें ब्राह्मणवंशमें जगत्प्रसादका जन्म हुआ। इन्होंने रामायण और दुर्गापञ्चरत्न ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। किन्तु ये दोनों-से एक भी समाप्त न कर सके। उनके कहनेसे उनके लड़के रामप्रसादने दोनों ग्रन्थ सम्पूर्ण कर डाले।

१६७७ शकमें रामप्रसादो रामायण समाप्त हुआ। रामप्रसादके समय माणिकचन्द्र नामक एक ध्यक्तिते रामायणकी रचना की। भवानीदासने जयचन्द्र नामक किसी राजाके आदेशसे 'लक्ष्मण-दिग्विजय' ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें कई जगह रामचरण नामक कविकी भणिता पाई जाती है। इसके अलावा रामचरितका अवलम्बन कर बहुतसे कवि खण्डकाव्यकी रचना कर गये हैं। उनमेंसे गुणराज धाँके श्रीधर्म इतिहास (अर्थात् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर-संवादमें श्रीरामचरित), रामजीवन सद्रकी कौशल्याके चौतीसा, सुकृति हरिश्चन्द्रके स्वर्गारोहण गुणचन्द्रके पुत्रके सीताके वनवास, लोकनाथ सेनके लवकुशके युद्ध, रघुमणिके कनिष्ठ भवानीनाथके पारिजातहरण, द्विज तुलसीदासके रायवार, भवानन्दके राम-स्वर्गारोहण तथा भवानीदासके लक्ष्मण-दिग्विजय, रामचन्द्रके स्वर्गारोहण और रामरत्नगोताकी रचना उल्लेखनीय हैं।

पतञ्जलि द्विज दयाराम, काशीराम, जगत्वल्लभ, द्विज तुलसी आदि रचित संक्षिप्त रामायण पाये गये हैं। जो गौरीमंगल लिख कर शाक समाजमें प्रसिद्ध हुए हैं,

उन राजा पृथ्वीचन्द्रने हो फिर भूपण्डी रामायणको रचना कर मौलिकता और कवित्वका परिचय दिया है।

कवि शिवचन्द्र सेन भारतचन्द्रके कुछ पीछे आविर्भूत हुए। इनका बनाया हुआ एक रामायण मिलता है। इस रामायणका नाम 'शारदामंगल' है। रामचन्द्रकी दुर्गापूजा रामायणमें शारदा-माहात्म्य श्रापक है, इसी कारण कविने इस रामायणका 'शारदामंगल' नाम रखा है।

रघुनन्दन गोस्वामिकृत एक रामायण मिलता है। इस रामायणका नाम रामरसायन है। कृत्तिवास और कविचन्द्रके रामायणके बाद जो सब रामायणग्रन्थ रचे गये उनमें यही 'रामरसायन' श्रेष्ठ है। पूर्ववर्ती रामायणोंसे इस रामायणकी रचना सुन्दर और सुशुद्ध है।

११६३ सालमें रघुनन्दनका जन्म हुआ। ४५ वर्षकी उमरमें उन्होंने इस रामरसायणको रचना की।

महाभारत।

जिस प्रकार बहुतसे कवि रामायण या रामचरितका अवलम्बन कर युद्ध या खण्डकाव्यकी रचना कर गये हैं, उसी प्रकार अनेक कवि भारतकथा या महाभारतका वर्णनीय विषय ले कर अनेक कव्य रच कर प्रसिद्ध हो गये हैं। उनमें विजयपरिणत, सञ्जय, कवीन्द्र परमेश्वर, श्राकरनन्दी, कृष्णानन्द, सु अनन्त मिश्र, निहयानन्द घोष, द्विज रामचन्द्र झाँ, शङ्कर कविचन्द्र, रामकृष्ण परिणत, द्विज नन्दराम, घनश्याम दास, पद्मेश्वर और गङ्गादास सेन, उत्कल ब्राह्मण सारण, काशीराम दास, नन्दराम दास, द्वैपायन दास, राजेन्द्र दास, गोपीनाथ दत्त, रामेश्वरनन्दी, त्रिलोचनचक्रवर्ती, निमार्ह परिणत, बल्लभदेव, द्विज कृष्णराम, द्विज रघुनाथ, लोकनाथ दत्त, शिवचन्द्र सेन, मैत्रवचन्द्र दास, मधुसूदन नापित, भृगुराम दास, भरत परिणत, सुकुन्दानन्द, रामनारायण घोष आदि ३५ कवियोंके ग्रन्थ पाये गये हैं। इनके सिवा भवानन्द हरिवंश, सञ्जय और विद्यावागीश ब्रह्मचारीने भगवद्गीताका अनुवाद तथा पुरुवीरचम और राघव दासने महाभारतीय विष्णुभक्तिकी कथा ले कर मोहसुन्दर, लोकनाथ दत्त और रामनारायण घोष नलीपाषाण ले कर नैपथ्य, पार्थवीनाथने नलोदय, सञ्जय और शिवचन्द्रसेनने भारतसावित्रीकी रचना की।

उपरोक्त ग्रन्थके मध्य भागमें, भाषाओं और संक्षिप्त वर्णनमें विजय पण्डितके महाभारतकी ही सबसे प्राचीन सम्भूतते हैं। सुल्तान अलाउद्दीन होसेन शाहके समय केवल गौड़यज्ञ ही नहीं, चङ्गलाभाषाकी भी सुवर्णयुग था। उन्हींके समय (शायद उन्हींके हृद्यमसे) विजय पण्डितने 'विजय पाण्डव-कथा' वा 'भारतपांचाली'की रचना की।

महाभारतका एक और अनुवाद-ग्रन्थ मिलता है। अनुवादकका नाम सख्य था। नाना कारणोंसे सख्य महाभारत भी अति प्राचीन मालूम होता है। परन्तु इनके गीतमें गौराङ्गदेवका नामोल्लेख रहनेके कारण इन्हें गौराङ्गके समसामयिक या तत्पश्चात्तौ लीग कह सकते हैं। इसके निया प्रन्थकारके आत्मपरिचय सम्बन्धमें भी कुछ विशेष बात नहीं देयी जाती।

श्रीकरनन्दीने परागल खाँके पुत्र सेनापति टुट्टि खाँके आदेशसे महाभारत अभ्येध पर्वका अनुवाद किया। महाभारतके जितने रचयिता हुए उनमें प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष पहले रचित द्विज रघुनाथकी अभ्येध-पञ्चालिका पाई गई है। नित्यानन्द घोष एक प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने सारे महाभारतका अनुवाद किया। इन्होंने महाभारत पश्चिम-वर्गमें तमाम प्रचलित था।

रामायण रचकोंके मध्य कविचन्द्रका नाम एक धार उल्लेख किया जा चुका है। महाभारत-रचकोंके मध्य भी इनका नाम पाया जाता है। भागवतके भी ये अनुवादक थे। इनका असल नाम शङ्कर था, 'कविचन्द्र' इनकी उपाधि थी।

राजेन्द्र दास प्रायः तीन सौ वर्ष पहलेके कवि हैं। इनके रचित आदिपर्वका प्रायः सभी अंश पाया गया है। इन्होंने केवल महाभारतके आदिपर्वका ही अनुवाद किया था, कह नहीं सकते।

पट्टीवर रामायणकी तरह महाभारतका भी अनुवाद कर गये हैं। उन पर्वोंमेंसे केवल स्वर्गरोहण पर्व मिला है। पट्टीवरके पुत्रका नाम गंगादास था। रामायणके बनाने-वालेमें इनका नाम आया है। इनके रचित महाभारतका मौखिक अनुवाद मिलता है।

कवि काशीदास सम्पूर्ण महाभारतका अनुवाद कर

गये हैं। पूर्वांक महाभारतके अनुवादकोंकी अनेका काशीदास कुछ आधुनिक हैं सही, पर चंगाली-हिन्दू नरनारीके घर घर आज काशीदास-रुत महाभारतका ही आदर है।

काशीदासका विराटपर्व १५२६ अक्षर वा १०११ सन्धमें सम्पूर्ण हुआ। आज तक आविष्कृत काशीदासकी महाभारतके किसी दूसरे पर्वके शेषमें इस प्रकार रचनाकालका उल्लेख नहीं है। इधर काशीराम दासके पुत्र नन्दराम दासने भी महाभारतकी रचना की है। उद्योगपर्वमें उनका भणितायुक्त प्राचीन ग्रन्थ पाया गया है। किन्तु आदि, समा आदि अंश आज भी नहीं मिलता।

काशीरामके बाद रामेश्वरनन्दीने महाभारतकी रचना की। इनकी रचना काशीदाससे भी मार्जित है, कल्पनाका स्रोत भी बहुत दूर तक फैला है और आश्चर्यसे परिपूर्ण है।

काशीदासके वंशमें एक और कविने महाभारतकी रचना की है। उनका नाम घनश्याम दास है। नन्दराम दासके समय एक दूसरे धार्मिक भारत-कथा लिख गये हैं। ह्रीपायनदास उनका नाम था। इनका केवल द्रोणपर्व पाया गया है।

द्विज रघुनाथकी तरह द्विज कृष्णराम भी शूद्रत्व अभ्येधपर्व लिख गये हैं। उनका ग्रन्थ जैमिनि-भारत नामसे प्रसिद्ध है। दो सौ वर्ष हो चला, एक और ब्राह्मणकविने जैमिनोय अभ्येधपर्वका अनुवाद किया है। उनका नाम रामचन्द्र खाँ था।

दो सौ वर्षसे अधिक हुआ, कृष्णानन्द यशु नामक एक कायस्थकवि महाभारतके अष्टादश पर्वकी रचना कर गये हैं। उसकी रचना अति सुकलित और प्राञ्जल तथा काशीराम दासकी तरह कविस्वरपूर्ण है।

शाताधिक वर्ष पहले पन्द्रह वर्षके उमर-श्रुतिव बालक जिनका नाम भीरवचन्द्र था, महाभारत लिख कर प्रसिद्ध हो गये थे। उनका केवल भारतका ऊपारस्तार्णव नामक अंश पाया गया है।

मागवत भीरपुरायण।

जिस प्रकार रामायण और महाभारतका अनुवाद कर अनेक कवि उसका प्रचार कर गये हैं, उसी प्रकार

बहुसंख्यक कवि श्रीमद्भागवतका अनुवाद कर अथवा भागवतके अनुयर्त्ता हो कर अनेक ग्रन्थ लिख बङ्गसाहित्यमें प्रसिद्ध हो गये हैं। भागवतके अनुवादकीके मध्य गुण राज भाँ उपाधिधारी मालाधर वसुका नाम प्रथम पाया जाता है। मालाधर वसुने सात वर्ष कठिन परिश्रम करके १३६५ शकमें भागवतके १०वें और ११वें खण्डका बङ्गानुवाद प्रकाशित किया। उनके इस अनुवादका नाम श्रीकृष्णविजयः वा श्रीगोविन्दविजय है।

गुणराज भाँके बाद कविवर रघुनाथ भागवताचार्यने समस्त श्रीमद्भागवतका अनुवाद किया। उनके अनुवादका नाम श्रीकृष्णमे-तरङ्गिणी है। चार सौ वर्ष पहले उन्होंने भागवतके पद्यानुवादमें जैसी दक्षता दिखाई है, अभी यह चित्त दुर्लभ है। भागवताचार्य शब्द देखो।

गुणराज भाँ तथा भागवताचार्यका आदर्श ले कर पीछे बहुतसे कवियोंने लेखनी पकड़ी, उनमें माधनाचार्य, श्रीकृष्णकिंकर, नन्दरामघोष, आदित्यराम, अभिराम दास, गोपालदास, द्विज घाणीकण्ठ, दामोदर दास, द्विज लक्ष्मीनाथ, कविशेखर, कविवल्लभ, यशश्चन्द्र, यदुनन्दन, भकराम प्रभृति कवियोंने गुणराजकी तरह अधिकांश स्थानोंमें भागवतके दशमस्कन्धका अवलम्बन करके श्रीकृष्णविजय, श्रीकृष्णमंगल, गोविन्दमंगल, गोपालविजय वा गोकुलमंगल नामसे अपने अपने ग्रन्थोंका प्रचार किया। इन सभी कवियोंके मध्य द्विज माधवका श्रीकृष्णमंगल, कविवल्लभका गोपालविजय, कविचन्द्रका गोविन्दमंगल एवं भकरामका गोकुलमंगल तथा द्विज लक्ष्मीनाथका कृष्णमंगल, ये अति वृहत् ग्रन्थ हैं। भागवताचार्यकी तरह मैदनीपुरवासी कवि सनातन चक्रवर्त्तीने भी श्रीमद्भागवतका एक पद्यानुवाद किया है। इस ग्रन्थमें भागवतके प्रत्येक श्लोकोंका अनुवाद दिखाई पड़ता है। आकारमें यह भागवताचार्यकी कृष्णमे-तरंगिणीसे प्रायः द्विगुण है। सुना जाता है कि, द्विज शोदासने भी सम्पूर्ण भागवतका अनुवाद किया था।

इसके अलावे कई कवियोंने भागवतके पन्नादश स्कन्धको दोहाई दे कर दण्डोपर्वकी रचना की है, उनमें राजाराम दत्त तथा महेश्वरके 'दण्डोपर्व' ही प्रधान हैं।

भागवतकी कृष्णलीलाका अवलम्बन करके बहुतसे

कवियोंने कई एक छोटे छोटे ग्रन्थोंकी रचना की है, उनमें नरसिंहदास, माधवगुणाकर तथा कृष्णचन्द्रने हंसदूत, द्विज कंसारि तथा सोताराम दत्तने प्रह्लादचरित; माधव, रामशरण तथा रामतनुने उद्व-संवाद; द्विज परशुराम तथा द्विज जयानन्दने ध्रुवचरित; जीवन चक्रवर्त्ती, गोविन्ददास तथा द्विज परशुरामने सुदामाचरित एवं जीवन मैत, पीताम्बर सेन तथा श्रीनाथदेवने उपाहरण; द्विज दुर्गाप्रसादने वामनमिज्ञा; भवानीदासने गजेन्द्रमोक्षण; चारेंद्र द्विज कमलाकान्तने मणिहरण; रामतनु कचिरजने वरहरण एवं विम रूपराम, श्यामलाल दत्त, अयोध्याराम तथा शंकराचार्यने गुहदक्षिणा नामक ग्रन्थ रचा। पौराणिक ग्रन्थोंका अवलम्बन करके जितने दूसरे दूसरे वैष्णव ग्रन्थ रचे गये हैं, उनमें रामलोचनका ब्रह्मवैवर्त्तपुराण; गिशुराम तथा ईश्वरचन्द्र सरकारकृत प्रभासखण्ड, द्विज मुकुन्दका जगन्नायमंगल, कृष्णदास, वाणीकण्ठ तथा महीधरदास का नारदपुराण वा नारदसंवाद, अनन्तराम दत्त तथा रामेश्वरनन्दीका पद्मपुराणान्तर्गत क्रियायोगसार, कृष्णदास तथा द्विज भगोरथका तुलसीचरित, दुर्गाचरणदासका विष्णुमंगल, श्रीरामशंकर वाचस्पतिके पुत्र दुर्गाप्रसादका मुकालतावलि, जगन्नाथके पुत्र द्विज रामप्रसादका श्रीकृष्णलीलामृत, कृष्णप्रसाद घोषका विष्णुपर्वसार, केतकादासका कपिलामंगल, गदाधरदासका राधाकृष्णलीला, रघुनाथदासका शुक्रदेवचरित, जयनारायणका द्वारकाविलास, श्यामदासका एकादशीप्रतकथा आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। ये सब ग्रन्थ अनुवादशाखाके अन्तर्गत हैं, किन्तु अधिकांश श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रभावसे ही लिखित कह कर प्रधान प्रधान कवियोंका परिचय, वैष्णवसाहित्यकी व्याख्या वा अनुवाद-शाखामें दिया गया है।

वैष्णव साहित्यकी हम लोग प्रधानतः तीन शाखाओंमें विभक्त कर सकते हैं—१म पदशाखा, २य चरितशाखा एवं ३य अनुवाद वा व्याख्या शाखा।

पदशाखा।

प्रसिद्ध पदकर्ता चण्डिदास रंगीय वैष्णव कवियोंके आदि कवि तथा अद्वितीय गिने जाते हैं। चौरभूम



जितान्तरां नान्दुर ग्राममें चण्डिदासका जन्म हुआ। इनका जन्मकाल चौदहवीं शताब्दीके शेषभागमें अनुमान किया जाता है।

कवि चण्डिदासकी पदावली प्रेममग्निका एक अपूर्व उम्मुक्त प्रव्रणण ही है। इन पदावलीकी मधुरमोहन भाँसासे सहृदयोंकी हृदयतंत्रिका भावावेशमें फनक उठती है। क्या भावमें, क्या भावामें, क्या कवित्वमें,— चण्डिदासकी पदावली अत्यन्त ही मर्म-स्पर्शिनो है।

मैथिल-कवि विद्यापति ठाकुर प्राण-वञ्जीय थे। ये मिथिला-नरेश शिवसिंहके सभासद पद्य कवि चण्डिदासके समसामयिक थे। कवि विद्यापति ठाकुरका जन्म 'विषवियर विस्की'में हुआ था, इसीलिये लोग उन्हें 'विषवियर विस्की विद्यापति ठाकुर' कहा करते थे।

चण्डिदास तथा विद्यापति ठाकुर ही सर्वप्रधान पदकर्ता थे। पदकल्पतत्त्व, पदकल्पलतिका प्रभृति प्रयोगों अनेक पद्यकर्त्ता पदकर्त्तृगणोंका उल्लेख पाया जाता है, इन मनों पदोंसे पदकर्त्ताओंके नाम संग्रह करके अक्षरार्थ क्रमसे यहाँ लिखे जाते हैं।

पदकर्त्तृगण जैसे—१ अनन्तदास, २ अनन्तभाचार्य, ३ अक्षर अक्ष, ४ आत्माराम दास, ५ आनन्ददास, ६ अक्षयदास, ७ कवीर, ८ कविराज, ९ कमराली, १० कर्दाईदास, ११ कानूदास, १२ कामदेव, १३ कालो-दिनोर, १४ छणकांत दास, १५ छणदास, १६ छण-प्रमोद, १७ छणप्रसाद, १८ गतिगोविंद, १९ गदाधर, २० गिरिधर, २१ गुणदास, २२ गोकुलानन्द, २३ गोकुल-दास, २४ गोपालदास, २५ गोपालमठ, २६ गोपीकांत, २७ गोपीरमण, २८ गोवर्द्धन दास, २९ गोविंद दास, ३० गाविंद घोष, ३१ गौरमोहन, ३२ गौरदास, ३३ गौरसुंदर दास, ३४ गौरीदास, ३५ घनराम दास, ३६ घनश्याम दास, ३७ चण्डिदास, ३८ चन्द्रेश्वर, ३९ चम्पत ठाकुर, ४० चूड़ामणि दास ४१ चैतन्य दास, ४२ जगदानन्द दास, ४३ जगन्नाथ दास, ४४ जगमोहन दास, ४५ जयछण दास, ४६ ज्ञानदास, ४७ ज्ञानहरि दास, ४८ पुष्टोत्तम, ४९ प्रतापनारायण, ५० प्रमोददास, ५१ प्रसाददास, ५२ प्रेमदास, ५३ प्रेम-मन्द दास, ५४ बलराम दास, ५५ बलार्दास, ५६ धरान

दास, ५७ वञ्जीवदन, ५८ वसन्तराय, ५९ यामुदेवघोष, ६० विजयानन्द दास, ६१ विद्यापति, ६२ विन्दु दास, ६३ विमदास, ६४ विमदास घोष, ६५ विश्वामर घोष, ६६ वीरचन्द्र कर, ६७ वीरनारायण, ६८ वीरब्रह्म दास, ६९ वीरहृदय, ७० वैष्णवदास, ७१ वृन्दायन दास, ७२ व्रजानन्द, ७३ तुलसी दास, ७४ दलपति, ७५ दोन-घोष, ७६ दोनहीन दास, ७७ दुःखीछण दास, ७८ दुःखिनी, ७९ देवकीनन्दन दास, ८० धरणीदास, ८१ नटयर, ८२ नन्दनदास, ८३ नन्द, ८४ नयनानन्द दास, ८५ नरसिंह दास, ८६ नरहरि दास, ८७ नरोत्तम दास, ८८ नयकान्त दास, ८९ नयचन्द्र दास, ९० नय-नारायण भूपति, ९१ नासिर महसूद, ९२ नृपतिसिंह, ९३ नृसिंहदेव, ९४ परमेश्वर दास, ९५ परमानन्द दास, ९६ पीताम्बर दास, ९७ फकीर हवीर, ९८ फातन, ९९ भूपतिनाथ, १०० भुवनदास, १०१ मधुरादास, १०२ मधुसूदन, १०३ महेश वसु, १०४ मनोहर दास, १०५ माधव घोष, १०६ माधव दास, १०७ माधवाचार्य, १०८ माधव दास, १०९ माधो, ११० मुरारि गुप्त, १११ मुरारि दास, ११२ मोहनदास, ११३ मोहनो दास, ११४ यदुन्देग, ११५ यदुनाथ दास, ११६ यदुपति, ११७ यशोराज खान, ११८ यादवेन्द्र, ११९ रघुनाथ, १२० रसमय दास, १२१ रसमयी दासी, १२२ रसिक दास, १२३ रामकांत, १२४ रामचंद्र दास, १२५ रामदास १२६ रामचन्द्र दास, १२७ राम दास, १२८ रामो, १२९ राधासिंह भूगति, १३० राधामोहन, १३१ राधा-वल्लभ, १३२ राधामाधव, १३३ रामानन्द, १३४ रामानन्द दास, १३५ रामानन्द वसु, १३६ रूपनारायण, १३७ लक्ष्मी-कांत दास, १३८ लोचनदास, १३९ गङ्गेश्याम, १४० ज्ञानोन्मत्त दास, १४१ जगिंशेश्वर, १४२ श्यामवीर दास, १४३ श्यामदास, १४४ श्यामानन्द, १४५ शिवराय, १४६ शिवराम दास, १४७ शिवानन्द, १४८ शिवा सह-चरी, १४९ शिवाई दास, १५० श्रानियाम, १५१ श्रोणियामाचार्य, १५२ शीलरराय, १५३ मदानन्द, १५४ सालधेग, १५५ सिद्धभूगति, १५६ सुंदर दास, १५७ सुबल, १५८ सेख जलाल, १५९ सेखमिक, १६० सेख खाल, १६१ सैयद मसूजा, १६२ हरिदास, १६३ हरि-वल्लभ, १६४ हरेछणदास, १६५ हरिराम दास।

इन १६५ पदकर्त्ताओंके नाम पाये जाते हैं। इन सब पदकर्त्तृगणमें प्रायः सभी ही चैतन्यदेवके समसामयिक एवं कोई कोई परवर्त्तों थे। सिर्फ चण्डिदास तथा विद्यापति पूर्ववर्त्तों थे। इनका परिचय पहले ही देख चुके हैं।

चरित-शाखा।

श्रीगोराङ्ग महाप्रभुके आधिभायिके समयसे वङ्गला भाषामें चरितरचना विशेषरूपसे प्रवर्त्तित हुई।

श्रीचैतन्यचरित सन्ध्रंधमें निम्नलिखित पुस्तके हम लोगोंके दृष्टिगोचर होती हैं। वृंदावन दासका चैतन्यभागवत, जयानंदका चैतन्यमङ्गल, लोचन दासका चैतन्यमङ्गल, कृष्णदास कविराजका चैतन्यचरितामृत। इनके अलावे अग्र्यान्ध्र प्रंधोंके आंशिक भावमें चैतन्यचरितकी घटनाविशेष दृष्टिगोचर होता है। जैसे— गोविंदका कड़ुचा प्रभृति। इन सभी प्रंधोंमें प्रत्येक प्रंधको विशिष्टता परिलक्षित होती है। जैसे चैतन्यभागवतमें महाप्रभुकी नवहोपलीला तथा नित्यानंद प्रभुकी लीला विशेषरूपसे वर्णन की गई हैं। महाप्रभुकी लीलाके मौंगोलिक विवरण एवं ऐतिहासिक तथ्यवर्णन ही जयानन्दके चैतन्यमंगलका विशेषत्व है। लोचनदासका चैतन्यमंगल, सुरारिगुप्त द्वारा लिखे हुए संस्कृत चैतन्यचरितका बंगलानुवाद है। इसके अलावे उन कवियोंने दुर्लभ कल्पनामें मुरारिके कड़ुचाका अङ्गुलीय्य सम्यादन किया है। लोचनदासके चैतन्यचरितका विशेषत्व यही है कि, महाप्रभुके चरित्रलेखकोंमें इस तरहके मधुर रमायमें किसीने भी उनकी लीला-वर्णना नहीं की है। श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ वैष्णव-समाजमें अधिक आदरणीय है। इसमें एक ओर जिस तरह महाप्रभुके महीयसी मधुर लीला माधुर्यकी सरल वर्णना है, दूसरी ओर वैष्णवदर्शन तथा वैष्णव-शास्त्रके सूक्ष्मत्वका समावेश देखा जाता है। गोविन्दके कड़ुचाके महाप्रभुके चरितकी दूसरी कोई घटना लिखी नहीं गई है, सिर्फ उनके दाक्षिणोत्तर भ्रमण ही इस ग्रन्धमें विवृत है।

इनके अलावे चूड़ामणि दासका चैतन्यचरित, शंकरभट्टका निर्माई-सत्यास, मनसन्तोषिणी एवं गोविन्ददासका कड़ुचा आदि ग्रन्थ भी पाये गये हैं।

इन सब ग्रन्धोंके अलावा महाप्रभुकी लीला-चरित और भी कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। जैसे— प्रेमदासका चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी, रामगोपालदासका चैतन्यतत्त्वसार, हरिदासका चैतन्यमहाप्रभु एवं गोविन्ददासका गौराख्यान। उनमें प्रेमदासका चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी अपेक्षाकृत बृहत् ग्रन्थ है। इसमें प्रायः ४ हजार श्लोक हैं। यह ग्रन्थ चैतन्यचन्द्रोदय-नाटकका प्राचीन पद्यानुवाद है।

प्रसिद्ध रसज्ञ कवि पीताम्बरदासके पिता रामगोपाल दासने "चैतन्यतत्त्वसार" लिखा है। यह ग्रन्थ छोटा है, इसमें चैतन्यमहाप्रभुके तत्त्वकी समझानेकी चेष्टा की गई है। गौराख्यानग्रन्थ "निगम" भी कहलाता है। यह सद्-जिवा सम्प्रदायका ग्रन्थ है।

महाप्रभुका लीलाचरित ले कर जिस तरह बहुतसे कवियोंने चैतन्यचरितकी रचना की है, उसी तरह कितने ही कवियोंने अद्वैत, नित्यानन्द प्रभृति कई महात्माओंकी लीला प्रकाश करके बंगला साहित्यको पुष्टि की है।

हरिचरण नामक एक महापुरुषने अद्वैतमंगल ग्रन्थ लिखा है। ईशान-नागरने अद्वैतप्रकाश की रचना की थी। इसे छोड़ कर अद्वैतविलासमें अद्वैत प्रभुकी वाल्य लीलादि वर्णन की गई है। इस ग्रन्थके रचयिता नरहरि दास थे, ये श्रीचण्डिदासी नरहरि सरकार नहीं थे।

अद्वैतकी वाल्यलीलाके सम्बन्धमें कृष्णदासकी लिखी हुई एक छोटी पुस्तक पाई गई है। श्यामदासका लिखा हुआ एक अद्वैतमंगल ग्रन्थ देखा जाता है। लोकनाथ दासने सीताचरितकी रचना की। इस पुस्तकमें अद्वैत प्रभुकी खी सीताठाकुराणीके चरित्रका वर्णन है। नित्यानन्द-वंशमाला नामक एक रचितग्रन्थ पाया गया है, इस छोटी पुस्तकके रचयिताका नाम श्रुंदायनदास था। नरहरि चक्रवर्त्ती प्रसिद्ध भक्तिरत्नाकर प्रंधके रचयिता थे, इनका दूसरा नाम घनश्याम दास था।

नरहरि चक्रवर्त्तीने नरोत्तमविलास नामक एक और प्रंधकी रचना की थी। इस प्रंधमें नरोत्तम ठाकुर महाशयकी जीवनी लिखी हुई है। प्रेमविलास नामक प्रंधके रचयिता नित्यानंद दास थे। यदुनंदन दासने प्रसिद्ध कर्णानंदकी रचना की थी। इसमें श्रीनिवास आचार्य तथा उनके शिष्योंका वृत्तान्त लिखा हुआ है। वंशी

पुष्पकके लेखकता नाम प्रेमदास था, ये ब्राह्मण जातिके थे, इनकी उपाधि सिद्धान्तवागीश थी। इस प्र'धमें महा-प्रभुका गृहत्याग तथा संन्यास एवं चंगीठाकुर नामक महाप्रभुके अनुचरका जन्म तथा शिक्षाप्रसंग वर्णित है।

उद्दिष्ट्यावासी गोपबल्लभ दासने ख्रिष्टीय १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें विद्युद बङ्गलाभाषामें रसिक-मंगलकी रचना की थी। श्यामानन्दके प्रधान शिष्य रसिक-मुरारिके चरित्रकी वर्णना हो इस ग्रन्थका विषय है।

प्रसिद्ध कवि नरहरि चक्रवर्तीने अपने भक्तिरत्नाकर-में श्यामानन्दका कुछ परिचय दिया है। छण्णदासने श्यामानन्दप्रकाश तथा धीजीवदान्ते श्यामानन्दविकाश लिख कर इस धर्मज्ञानके बीर मो करे अंशोंको स्पष्ट किया है। इन दोनों ग्रन्थोंके मध्य भाषा, भाव तथा वर्णना-में श्यामानन्दप्रकाश ही प्राचीन ज्ञान पड़ता है।

भक्त राचरण दासने अमिरामवन्दनाकी रचना की है। इस छोटी यन्दनामें अमिराम गोस्वामीके चरित्रका कुछ वर्णन है।

देवनाथ तथा बलरामदासने यथाकमसे गौरगणा-ख्यान तथा गौरगणोद्देशकी रचना की। संस्कृत भाषामें गौरगणोद्देशोपिका तथा युद्ध गौरगणोद्देश नामक ग्रन्थ प्रचलित है, उनके ही भाव ले कर ये दोनों ग्रन्थ प्रायः दो सी वर्ष पहले बङ्गला भाषामें लिखे गये हैं। इन दोनों ग्रन्थोंमें धीगौरांग महाप्रभुके पार्श्वद्वर्णोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

प्रायः तीन सी वर्ष पहले देवकीनन्दन दासने वैष्णव-वन्दनाकी रचना की थी। इनके पहले गौड़ीय वैष्णव-समाजमें जितने महात्मा हो गये हैं, प्रायः उन सबोंके नाम इस ग्रन्थमें पाये जाते हैं। इस कारण यह ग्रन्थ छोटा होने पर भी वैष्णवोंका इतिहास लिखनेके समय बहुत काम भावना।

भागवदासके शिष्य नामाजी द्वि'दी-अक्षमालके रचयिता थे। उनके शिष्य प्रियदासने इस ग्रन्थकी टीका की थी। धीनिवास आचार्य प्रभुके शिष्य छण्णदासने यङ्गभाषामें इस ग्रन्थका अनुवाद किया है। इसके अलावे इन्होंने और भी कई भक्तोंके चरित्र इस ग्रन्थमें संगृहीत करके इसे सयोंङ्गसुन्दर बनावेकी चेष्टा की है।

धीनिवास आचार्य प्रभुके पुत्र धी गतिगोविन्दने वीररत्नावलीकी रचना की। इसमें वीरचन्द्र गोस्वामीके जीवनचरित्रकी दो चार अद्भुत घटनाओंका वर्णन किया गया है। इसके अलावे गतिगोविन्द डाकुरका लिगा हुआ 'अन्तप्रकाशप्रण्ड' पाया गया है। इस ग्रन्थमें वीरचन्द्र प्रभुकी शेष लीलाओंका वर्णन है। इस ग्रन्थकी हम वीर-रत्नावलीका शेषांग कह सकते हैं। भानुचन्द्र दास जग-दीश पण्डितके चरित्रविवरणकेता थे।

भनुदाद तथा व्याख्या शास्त्र।

संस्कृत गृन्थोंका बङ्गलानुवाद करके प्राचीन कवियों-ने बङ्गला साहित्यकी यथेष्ट पुष्टि की है। गौरा-णिक साहित्यकी बङ्गलानुवाद ज्ञानाशोंमें इसके पहले कितने ही सुविद्यता गृन्थोंके नाम तथा परिचय दिये गये हैं। इस ग्रन्थमें आकारादि वर्णनाला प्रामांय कतिपय गृन्थकारों तथा उनके गृन्थोंके नाम तथा विषयका बल्लेख किया गया है।

अकिञ्चन दासने धीगौरांग महाप्रभुके प्रियपार्श्व-रामानन्दरायकृत जगन्नाथबल्लभ नाटकका पद्यानुवाद किया था।

कविवल्लभका रसकदम्ब गृन्थ वैष्णव-समाजमें यदु-नन्दनके विदग्धभाष्य नाटकके रसकदम्बकी तरह प्रसिद्ध नहीं है।

छण्णदास, काशीदास तथा गदाधर ये तीन भाई भी परम-वैष्णव तथा प्रसिद्ध ग्रन्थकार थे। गदाधर दासके जगन्मङ्गलमें इन लोगोंका विशेष चंश-परिचय दिया गया है। छण्णदासके श्रीछण्णविलास गृन्थमें प्राञ्जल भाषामें हरिलीला वर्णन को गार है। यह श्रीमद्भागवतका ही आंशिक अनुवाद है।

गदाधर सुविद्यता काशीराम दासके छोटे भाई थे। इन्होंने जगन्मङ्गलकी रचना की थी। यह गृन्थ स्कन्द तथा ब्रह्मपुराणके भाव ले कर बन्दित है। इस गृन्थमें उत्कलणएडकी वर्णना है। यह गृन्थ १५६४ शकमें (या १०५० सालमें) लिखा गया था।

अपदेपण्ड संस्कृत गीतगोविन्द गीतिकाव्यके बङ्गला-नुवादकीमेंसे गिरिधर एक हैं। १०३६ ई०में आर्षान्-मारतचन्द्रके अक्षयमङ्गलकी रचना होनेके १६ वर्ष

पहले यह गूँथ रचा गया। इन्होंने दास गोस्वामीकी मनाशिक्षाका भी अनुवाद किया है।

गोपीचरण दास—चैतन्यचन्द्रामृतके अनुवादक थे।

गोविन्द प्रह्लाचारी—इन्होंने जयदेवकृत संस्कृत गीतगोविन्दका बङ्गलाभाषामें पद्यानुवाद किया है।

घनश्यामदास—ये गोविन्दरतिमञ्जरी ग्रन्थके अनुवादक थे। गोविन्दरतिमञ्जरी संस्कृत ग्रंथ इनका हो लिखा हुआ है।

जयानन्द—इन्होंने श्रीमद्भागवतके ध्रुवचरित तथा प्रह्लादचरितका भावालम्बन करके दो गूँथोंकी रचना की है।

दीनहीन दास—इन्होंने कविकर्णपुरके रचे हुए संस्कृत गौरगणोद्देशदोषिकाका अनुवाद किया है। उसी गूँथका नाम किरणदोषिका है।

देवनाथ—इन्होंने श्रीमद्भागवतकी भ्रमरगीताका भावगत अनुवाद करके भ्रमरगीता नामक बङ्गला पद्य गूँथ प्रणयन किया है।

नरसिंह दास—इन्होंने संस्कृत हंसदूत गूँथका भावगत अनुवाद किया है।

नरसिंह द्विज—इनके गूँथका नाम उद्धव-संवाद है। यह श्रीमद्भागवतके उद्धव-संवादका भावगत अनुवाद है।

नारायण दास—इन्होंने १५४६ शकमें श्रीमहास-गोस्वामीके रचे हुए सुविषयात मुकावरित ग्रंथका पद्यानुवाद किया है।

प्रेमदास—इन्होंने दासगोस्वामीकी मनाशिक्षाका बङ्गलानुवाद तथा स्थान स्थानमें व्याख्या की है। कविकर्णपुरकृत श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद करके ही ये प्रेमदास वैष्णव-समाजमें सुप्रसिद्ध हुए थे। यह ग्रंथ एक समय संस्कृत भाषामें अनभिन्न वैष्णव समाज परम प्रीतिकर पदार्थ गिना जाता था। इसका नाम चैतन्यचन्द्रोदयकोमुदी है। गंगेशिक्षा नामक एक ग्रंथ प्रेमदास द्वारा रचित माना जाता है। गंगेशिक्षामें प्रेमदासका दूसरा नाम पुरुषोत्तम लिखा है, इन्होंने गंगेशिक्षामें अपनेको उपरोक्त ग्रंथ-रचयिता कह कर परिचय दिया है।

भगवानदास—इन्होंने १७५६ शकमें अपने रचित गीतगोविन्दका एक पद्यानुवाद किया है।

माधवगुणाकर—ये उद्धवदूत ग्रन्थके रचयिता थे। यह ग्रन्थ भागवतके उद्धव-संवादका भावगत बंगला अनुवाद है।

मुकुन्द द्विज—ये जगन्नाथमङ्गलाके लेखक थे। जगन्नाथमंगल किसी ग्रन्थका अनुवाद न होने पर भी पुराणविशेषका भावगत अनुवाद है। जगन्नाथमंगल किसी किसी स्थानमें 'जगन्नाथ-विजय' के नामसे भी अभिहित हैं।

यदुनन्दनदास—ये पाणिहाटीके वैद्यवंशसम्भूत तथा श्रानिवास धारार्थ प्रभुकी कन्या श्रोमती मेनकादेवोके मन्त्रशिष्य थे। इन्होंने १६०७ ई०में कर्णानन्द ग्रंथकी रचना की।

कृष्ण-रुर्णामृत—विल्वमंगल टाकुर रचित कृष्ण कर्णामृत एक प्रसिद्ध सुमधुर संस्कृत ग्रंथ है। सुकवि यदुनन्दनने इस पाण्डित्यपूर्ण टीकाका बंगला भाषामें पद्यानुवाद करके संस्कृत न जाननेवाले पाठकोंका बहुत उपकार किया है।

गोविन्दलीलामृत—कृष्णदास कविराज महाशयने राधाकृष्णलीलात्मक गोविन्दलीलामृत नामक जिस ग्रंथको रचना की थी, यह ग्रंथ उसका ही बंगला अनुवाद है। ग्रंथकारने स्थान स्थान पर व्याख्याका कार्य भी सम्पन्न किया है।

रसकदम्ब—यदुनन्दनका रसकदम्ब श्रीरूपगोस्वामी द्वारा रचित विद्यग्रमाधव नाटकका बंगला भाषामें पद्यानुवाद है।

रसमयदास—इन्होंने गीतगोविन्दका एक पद्यानुवाद किया है। यह अनुवाद पुजारी गोस्वामीकी टीकाके अभिप्रायानुसार ही रचा गया है।

राधावल्लभदास—इन्होंने श्रीमदास गोस्वामीकी विलाप-कुसुमाञ्जलिका पद्यानुवाद किया था।

रूपनाथदास—इनके लिखे हुए श्रीमद्भागवतकी भ्रमरगीताका एक भावगत अनुवाद तथा बंगला पद्यग्रंथ है।

लाउडिया कृष्णदास—इन्होंने विष्णुपुरीकृत भक्तिरत्नाचली ग्रंथका अनुवाद किया है। ईशाननगरके अद्वैत-

प्रकाशादि मनमुत्तार ये शब्द तमभुके पाल्यलीला-सूक्तके रचयिता थे ।

चैतन्यमंगल—प्रणेता लोचनदासने राय रामानन्दकृत मन्सूत जगन्नाथ-चलन नाटकके श्लोक तथा गीतांजका घंगला पद्यानुवाद किया है। लोचनदासका अनुवाद अत्यन्त मधुर तथा सरल है। लोगोंको धारणा है, कि शानन्दलिका तथा दुर्लभसार ग्रंथ इनके द्वारा ही लिखे गये थे ।

हरिबोलदास—इन्होंने कृष्णलीलाको पौराणिक घटनाका भावायलक्षण करके नौकाखण्ड नामक एक ग्रंथकी रचना की है ।

भजन-मन्थशास्त्र ।

गौड़ीय वैष्णवोंके रचित बहुसंख्यक भजनग्रंथ देखे जाते हैं। उनमेंसे कुछ गोस्वामिजीका रचित शास्त्रमग्नत है और अधिकांश यादल तथा सहजिया सम्प्रदायके भजनप्रणालीविषयक हैं। इन सब ग्रंथकारोंके तथा उनके प्रंथोंके नामादि अकारादि वर्णमालाक्रमसे नीचे लिखे जाते हैं ।

अकिञ्चनदास—भक्तिरसगिनिका नामक एक छोटे भजनग्रंथके रचयिता । फिर दोन कृष्णदासका रचित इसी नामकी एक और हस्तलिपि देखी जाती है। यह ग्रंथ द्वादशे मी वर्ष रचा गया है ।

बन्धुतदास—गोपीभक्तिरसगोत नामक ग्रंथ इन्होंने बनाया है ।

भानन्ददास—इन्होंने रससुधाणय नामक ग्रंथ लिखा । इस ग्रंथमें प्रकरसका वर्णन है । इसके भजनके सम्प्रथमें बहुत-सी बातें इसमें लिखी हैं ।

कृष्णदास—इनके बनाये निम्नलिखित भजन ग्रंथ मिलते हैं—स्वरूपवर्णन, कृष्णचरणवर्णन, स्वरूप-गिणय, मुदरिणरसयान्द, रागमयी कला, रूपमञ्जरी, प्रार्थन, शुद्ध, रतिकारिका, अत्मनिरूपण, दण्डात्मिका, रसमन्त्रिचरणी, रागराजयन्त्र, मित्रिनाम, आत्मनिष्कामाभरद, धानरदा माना, भाध्रवनिर्णय, गुरुनरव, सागमन्थानं । इनके सिवा भाध्रवनिर्णय, गुरुनरव, प्रागमन्थान, मनोवृत्ति पटन, समरकारचन्द्रिका, प्रह्लादचरित, आत्मसाधन,

सारसंग्रह, पापखण्डलन, जगामञ्जरी भादि छोटी छोटी पुस्तके भी इन्होंने लिखे हैं ।

कृष्णरामदास—भजनमालिका नामक ग्रंथके रचयिता । ग्रंथकी रचना और भाव अच्छा है। कृष्णभक्तिका प्राधान्य स्थापन हो इस ग्रंथका विषय है ।

गिरिधरदास—स्मरणमङ्गलसूत्र ग्रंथके प्रणेता । इस ग्रंथमें श्रीश्रीराधाकृष्णके अष्टकालीय लीला स्मरणका विषय लिखा है ।

गुरुदास यमु—प्रेममन्त्रिसार । इस ग्रंथमें गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायका साध्यसाधनतत्त्व लिखा है । गोपाल भट्ट—गोलोकके प्रणेता । इसमें गोलोक-वर्णन और श्रीगौराङ्ग-नित्यानन्द-आहारीतत्त्व भादि लिखे हैं ।

गोपीकृष्णदास—हरिनामकवचन ।

गोपीनाथ दास—सिद्धसार ।

गोविन्ददास—निगम नामक ग्रंथ । वैष्णववन्दन नामका एक दूसरा ग्रंथ भी इन्होंने लिखा है ।

गौरीदास—निगूढार्थप्रकाशावलीके प्रणेता ।

चैतन्यदास—इन्होंने रसमन्त्रि-चन्द्रिका नामक ग्रंथ लिखा है । ईश्वरतत्त्व और जोयतत्त्वका वर्णन ही इस ग्रंथका विषय है ।

जगन्नाथदास—रसोत्खलन ग्रंथके प्रणेता ।

जयकृष्णदास—इन्होंने मङ्गमोहनचन्द्रना नामक ग्रंथ लिखा ।

श्रीजीव गोस्वामी—इन्होंने बहुतसे संस्कृत ग्रंथ लिखे हैं। सहजिया-सम्प्रदायका उपासनासार, नित्य वर्तमान भादि ग्रंथ भी इन्होंने रचित हैं ।

जीवनाथ—रसतत्त्वविलास नामक एक ग्रंथके रचयिता ।

दुर्गा कृष्णदास—एक ही दूसरा नाम श्यामाम्बु है । भाव सहज-रसायण ग्रंथ लिख गये हैं ।

दोन मन्थदास—वैष्णवामृत ग्रंथके लेखक ।

नरसिंह दास—इन्होंने दर्पणचन्द्रिका नामक ग्रंथ की रचना की है ।

नरोत्तम दास—इनके बनाये प्रार्थना और प्रेममन्त्रि-चन्द्रिका ग्रंथ वैष्णव समाजमें विरचनलीय और विर-

पूजनीय हैं। इनके नाम पर और भी कितने ग्रन्थ देखे जाते हैं, जैसे—उपासनापटल, अर्थविसंवाद, अमृतरस-चन्द्रिका, प्रेमभावचन्द्रिका, सारात्सारकारिका, भक्ति-लतिका, साध्यप्रेमचन्द्रिका, रागमाला, चमत्कार-चन्द्रिका, स्मरणमङ्गल, खरूपकल्पलतिका, प्रेमविलास, तत्त्वनिरूपण और रसभक्तिचन्द्रिका। इन सब ग्रन्थोंका अधिकांश सहजिया सम्प्रदायके, धीनरोसम ठाकुरका लिखा प्रतीत नहीं होता।

नित्यानन्द दाम—रागमयोक्ता और रसकल्पसार नामक दो ग्रन्थके प्रणेता।

प्रेमदास—इन्होंने उपासना-पटल और आनन्दभैरव नामक ग्रन्थ लिखे। उपासना-पटल नरोत्तम दासका रचित कह कर उल्लिखित हुआ है। प्रेमदासने मनःशिक्षा और वंशीशिक्षा नामक ग्रन्थका भी रचना की।

प्रेमानन्द—मनःशिक्षा नामक विवेकचैराम्य-शिक्षा-प्रदके प्रणेता। चन्द्रचिन्तामणि नामक एक और ग्रन्थ इनका बनाया हुआ मिलता है। चन्द्रचिन्तामणि गद्य-पद्यमय ग्रन्थ है।

बलराम दास—इन्होंने वैष्णवाभिधान और हाट-वन्दन नामक ग्रन्थ रचे हैं।

मथुरा दास—आनन्दलहरी नामक सहजिया सम्प्रदायके भजन ग्रन्थ-रचयिता।

मनोहर दास—दीनमणिचन्द्रोदयके रचयिता।

सुकुन्द दास—अमृतरसावली, चमत्कारचन्द्रिका, रत्नसागरतत्त्व, सहजामृत, वैष्णवामृत, सारात्सार-कारिका, साधनोपाय, रागरत्नावली; सिद्धान्तचन्द्रोदय, और अमृतरत्नावली आदि महजिया सम्प्रदायके अनेक भजन ग्रन्थोंके रचयिता। ग्रन्थकारने अपनेको कृष्णदास कविराजका शिष्य बतलाया है।

यदुनाथ दास—तत्त्वकथा। यह भी सहजियाका साधन-भजन ग्रन्थ है।

युगलकिशोर दास—प्रेमविलास नामक एक छोटे ग्रन्थके रचयिता।

युगलकृष्ण दास—योगागम और भगवत्तत्त्वलीलाके लेखक।

रसमयो दास—इनका बनाया भाण्डतत्त्वसार नामक

छोटा ग्रन्थ मिलता है। यह भी सहजतत्त्वमूलक है।

रसिक दास—रतिविलास नामक ग्रन्थके रचयिता।

राधावल्लभ दास—सहजतत्त्व। राधामोहनदाम—

रत्नकल्पतत्त्वसार। रामगोपाल दास—चैतन्यतत्त्वसार।

रामचन्द्र दास—सिद्धान्तचन्द्रिका और स्मरणदर्पण।

रामेश्वर दास—क्रियायोगसार। इस ग्रन्थमें वैष्णव-

सम्प्रदायविशेषकी नित्यनैमित्तिक क्रियाका कुल वर्णन

है। लोचनदास—चैतन्यप्रेमविलास और दुर्लभसार।

वंशीदास—दीपकोज्ज्वल और निकुञ्ज-रहस्य। चाउल

चाँद—निगूढाशंखञ्जाङ्ग। ब्रजेश्वरकृष्ण दास—गोपी उपा-

सना। वाणीकण्ठ—मोहमोचन। वृन्दावन दास—रत्न-

कल्पसार, रिपुचरित, तत्त्वविलास और छोटे छोटे ग्रन्थों-

के प्रणेता। इन्होंने चैतन्य-निर्वाहसंवाद, वैष्णववन्दना

इत्यादि दो एक ग्रन्थ भी लिखे हैं। भजननिर्णय

नामक एक सुन्दर ग्रन्थ भी इनका बनाया मिलता है।

नित्यानन्दवंशावलीचरित नामक एक ग्रन्थ भी वृन्दा-

वन दास-रचित मालूम होता है। इसके सिवा भक्ति-

चिन्तामणि, भक्तिमाहात्म्य, भक्तिलक्षण और भक्तिसाधन

आदि ग्रन्थ भी वृन्दावन दासके नामसे ही प्रचलित हैं।

उपासनासंप्रदाय नामक ग्रन्थ श्यामानन्दका लिखा हुआ है।

सनातन गोखामी नामक एक व्यक्तिने सिद्धरति-

कारिका ग्रन्थका रचना की। वैष्णवोंके विशेषतः सह-

जियोंके भजन साधनके सम्बन्धमें इस प्रकारके और भी

सैकड़ों ग्रन्थ हैं।

विविध वैष्णव ग्रन्थ।

गोविन्द द्विजका बनाया तुलसीमहिमा ग्रन्थ, गोविन्द

का श्रीमतीका मानमञ्जन, नरसिंहगोर दासके वृन्दावन

लीलामृत और रसपुरुषकलिका, नरसिंह दासका प्रेम-

दायानल, नरद्विका गीतचन्द्रोदय, नोलाचल दासका

द्वादशपाठनिर्णय, पीताम्बर दासका रसमञ्जरी, भक्तराम-

दासका भोक्तुलमङ्गल, भैरवानी दासका राधाविलास, मही-

धर दासका एकादशीमाहात्म्य, माधव दासका कृष्ण-

मङ्गल, सुकुन्दद्विजका जगन्नाथमङ्गल, युगल किशोरदास-

का चैतन्यरसकारिका, रामगोपाल दासका रसकल्पहरी,

बलराम दासका कृष्णलीलामृत और वैष्णव चरित,

वृन्दावनदासका भक्तिचिन्तामणि और शङ्करदासका

बनाया वम और प्रजापतिस्वाध नामक वैष्णव ग्रंथ मिलता है। ये सब ग्रंथ अंगरेजों-प्रभावके पहले लिखे गये थे।

मुसलमान-प्रभाव।

पहले लिखा जा चुका है, कि गौड़के मुसलमान अधिपतियोंके उद्देश्यके अनेक परिणत शास्त्रानुवादमें अंगुसर हुए थे। महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेवके आधिपत्यके बादमें वैष्णवकवि जिस प्रकार अनेक ग्रंथ लिख कर बङ्गलाभाषाको चर्लकृत कर गये हैं, उसी प्रकार उनके अनुकरण पर बहुतसे मुसलमान-कवियोंने भी नाना ग्रंथ लिख कर बङ्गलासाहित्यकी अङ्गुष्ठिका की है। ये सब ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होगा, कि सुपरिणत मुसलमान लोग भी हिन्दूशास्त्रके किसी भक्ति-दृष्टिसे देखते थे, एक समय हिन्दू-मुसलमानोंके मध्य कैसा सम्बन्ध था। उस समय मुसलमान समाजमें भी शैवचरित्रकी अभ्यास न था। इन सब ग्रन्थोंके मध्य इस्लामधर्मकी व्याख्यादि, धर्मतत्त्व, नीतितत्त्व, इतिहास, संगीत, गल्प और विरह-गाथा ही अधिक है। इन सब ग्रंथकारोंमेंसे बहुतेरे स्वभाववर्णना और कवित्वमें कृतिवत्समग्र थे।

हरम अलौ एक वैष्णव-कवि थे। बट्टग्रामके पटोया धानके अन्तर्गत कलकटाङ्गामें उनका घर था। अपने ग्रंथमें ग्रंथकारने अपनेके चारदो महोनेका वर्णन किया है।

राजाका द्वायजासासिक विरहवर्णन वैष्णव-कवियोंके प्रामाणिक वर्णनमें आदर्श स्थानोय था। उस चारमासाके अनुकरण पर किमो किमो मुसलमान कविते भी चार-मासा गाया है। उनमेंसे छक्रिनाका चारमासा और मेहेर-नेगारका चारमासा मिलता है।

बङ्गला साहित्यके अनुकरण और अनुवादके अति-रिक्त मुसलमान-कविगण इस्लामग्रन्थके अनेक मौलिक-तत्त्व बङ्गलामें अनुदित कर बङ्गलाभाषाके कलेक्टरको पुष्ट कर गये हैं।

उत्तरगाथा।

१ शानप्रदोप—सैयद मुल्तान नामक एक मुसल-मान साधुका रचित। उक्त कविता बनाया एक योग-शास्त्रीय ग्रन्थ भी मिलता है। इनका प्रतिपाद्य विषय

सर्वतोमायमें योगकालम्बर वा उपरोक्त शागदेश्यके जैसा है।

२ तन-तेलाडत वा तनुसाधन—इस ग्रंथमें योग-शास्त्रीय गभोरतत्त्व बङ्गला और मुसलमानोंके शब्दमें लिखा है। इसमें हिन्दूयोगका मूलधार मणिपुर आदि संज्ञामें मुसलमानों नामकरण देना जाता है। शेष शेष-में मुसलमानों योगके भी यथेष्ट निर्देशन है।

३ तउफा—एक धर्मग्रंथ। तउफाका अर्थ संहितादि है। मुसलमानके रोजा, नमाज आदि आवश्यकीय विषयोंकी इस ग्रंथमें आलोचना है। इसके सिवा इसमें मुसलमान-साामाजिक धर्मनीतिके अनेक कर्त्तव्य विषय भी लिखबद्ध है। मूल अरबी तउफाके पारसी अनुवादके कवि आलयालने रोसङ्गके राजा श्रीचन्द्र सुधर्मके मन्त्री श्रीमान् मुलेमानके कहने पर यह ग्रंथ बङ्गलामें लिखा है।

४ मुशिदका चारमासा—मुसलमानों धर्मतत्त्व सम्बन्धी एक छोटा ग्रंथ। महम्मद अलौ इसके रचयिता माने जाते हैं।

५ शानसागर—धर्मविषयक (फकीरी) ग्रंथ। इसमें योग-शास्त्रीय बहुत-सी बातें हैं। अलौ राजा उर्क बानू फकीर इनके रचयिता हैं। ग्रंथकर्त्ताका पद पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्हें हिन्दू योगशास्त्रमें भी अच्छा ज्ञान था।

६ सिराज कुतुब—एक मुसलमानों धर्मतत्त्व या धर्मविज्ञान। इसमें स्वर्ग कितने हैं, पृथिवी किस पर अवस्थित है, ईश्वर किस दिन किसकी सृष्टि करने हैं, प्रलयकालमें और पीछे क्या होगा। ये सब पौराणिक भावधान मन्त्रियेनित हैं। ग्रंथकर्त्ताका नाम फकीर अलौ राजा है।

७ मुहार-छाँवाल—इजरात मूसा (Moses) पैगम्बरके साथ भगवान्का तौर पहाड़ पर जो कथोवकथन हुआ, उसीका अवलम्बन कर कवि नराङ्गाने इनको रचना की।

८ साहादत और पुस्तक—मुसलमानों इरथेनी ग्रंथ। साहादत और नामक कोई सिद्ध पुस्तक पढ़ा

और चान्द नामक व्यक्ति ग्रन्थकर्त्ता हैं। इसमें मुसल-  
मानी योगसाधनतत्त्वके अनेक विषय हैं।

६ ज्ञान-चीतीसा - तत्त्वज्ञानपूर्ण कुछ कविता। कवि  
सैयद सुलतान इसके रचयिता हैं।

१० अकान-रदूल—इसमें हजरत महम्मद मुस्ताफाके  
तिरोधानका विवरण है। यह सैयद सुलतान द्वारा रचा  
गया है।

११ सवेमेहेराज—हजरत महम्मद मुस्तफाका खग-  
परिभ्रमण-व्यापार इस ग्रन्थमें लिखा है। ग्रन्थकर्त्ता सैयद  
सुलतान है।

१२ हजरत महम्मदचरित—सैयद सुलतानने इसे  
लिखा है।

१३ यामिनो-बहाल—कवि करीम उल्ला द्वारा रचित।

१४ केकायतोल-मोछल्लिन ( इस्लाम हितकथा )  
हिंदूकी मनुसंहिताकी तरह एक मुसलमानी संहिता,  
महम्मदी धर्म-परिच्छद्से आवृत है।

१५ रहातुल कुलुप (आत्ममुक्तिसोपान)—एक धर्म-  
ग्रन्थ, यह इसी नामके पारसी ग्रंथका अनुवाद है। ग्रंथ-  
कर्त्ताका नाम सैयद नूर उद्दीन है।

१६ बालका नामा—प्रणेता नयनचाँद फकीर।

१७ इमामयात्राको पुस्तक—एक धर्मविषयक मुसल-  
मानी ग्रंथ। इसके रचयिता हैं बशुडा जिला-निवासी  
महिचरण और गैतारो कान्दीके श्रोदुर्गतिया सरकार  
साहब।

१८ हौधतव—तयारिखी हामिदीके प्रणेता मौलवी  
हामिदुल्ला खान इसकी रचना को। ग्रंथ पद्य और गद्यमें  
लिखा है। ग्रंथकर्त्ताने मूँछ कटानेवाले मुसलमानों पर  
श्लेष कर लिखा है। मूँछ कटाना महम्मदीय शाखमें  
निषिद्ध कर्म है।

१९ ताणपद्य—एक काव्य। यह महम्मद हामिदुल्ला  
खान द्वारा रचा गया है। ईश्वरका पक्ष तथा सृष्टि और  
सृष्टितिका फलाफल इस ग्रंथमें प्रतिपादित हुआ है।

२० पैगम्बर-नामा—सैयद सुलतान द्वारा विरचित।  
ग्रंथ बहुत बद्धिया है। इसमें हजरत, रछा, मुछा, दाऊद,  
सुलेमान, सुद्ध, आदि पैगम्बरोंका चरित तथा प्रसङ्ग-  
क्रमसे धोरामचरित और श्रोक्लणचरित वर्णित है।

२१ दफायेत्—एक मुसलमानी संहिता। पारसी  
ग्रंथसे कवि सैयद नूरउद्दीनने अनुवाद किया है।

२२ सुलतान जम्जमाका ग्रंथ—यह महम्मद कासिम-  
का रचा हुआ है। इसमें कविने मनुष्यके मृत्युकालीन  
और तत्परवर्ती कालका हाल हकीयत् अर्थात् पापपुण्य-  
का न्याय विचारादि सरल भाषामें दिखलाया है।

गुलाम मौलाका बनाया हुआ एक और सुलतान जम-  
जमाका ग्रंथ मिलता है। प्रतिपाद्य विषयमें दोनों ग्रंथ  
एकसे हैं, परन्तु रचनाने कुछ पृथक्ता देखी जाती है।

२३ इश्लिख-नामा—मुसलमानी धर्मग्रंथ। गुरु  
शिष्यकी कर्त्तव्यता इसका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है।

२४ नूर कन्दिल—यह कवि महम्मद छकिने लिखा  
है। इसमें खग, सृष्टि, मनुष्योत्सर्ग आदिसे ले कर  
मानव जीवनके शेष विचार तककी बातें लिखी हैं।

२५ योग कालन्दर—एक मुसलमानी योगशास्त्र।  
योगसाधन किस प्रकार करना होता है तथा परलोकका  
उपाय क्या है, वही इस ग्रंथमें लिखा है।

२६ आमछेपाराकी व्याख्या—पवित्र कुरान जरीफके  
अन्तर्गत आमछेपारा अंशकी व्याख्या और उसके पढ़ने-  
का फल इस ग्रन्थमें प्रतिपादित हुआ है। फकीर होछेन  
इस ग्रंथके रचयिता हैं।

२७ चित-इमान—एक मुसलमानी धर्मग्रंथ। इसका  
अनुवाद अरबो भाषासे हुआ है। रचयिता काजी चदि-  
उद्दीन हैं।

२८ छरछालको नीलि या तक्वि किताप—एक  
मुसलमानी संहिता। हुलाइन निवासी मुनाश्म मुन्शीके  
फद्नेसे कवि करम अल्लोने इस ग्रंथका पारसी भाषासे  
अनुवाद किया।

२९ अवतार-निर्णय—एक मुसलमानी ग्रंथ। ग्रंथमें  
सृष्टिपत्तनसे ले कर अवतारवाद तककी कथाएँ लिखी हैं।  
नवी-वंशके व्याख्यान प्रसङ्गमें कविने महम्मदका अव-  
तारत्व स्वीकार किया है।

३० फतेमाका छुरतनामा—वीवी फतेमा हजरत मह-  
म्मद मुस्तफाकी लडुकी और हजरत अली मूर्त्तजाकी खी  
थी। उनके दो पुत्र थे, इमाम हुसेन और हसन। उनकी  
अर्तानैहित अथक रूपराम देसनेके लिये एक दिन उल



बहुत व्याकुल हो उठे। उसीका अत्यन्तम कर प्रबंधकार जाह यदि उद्योगमें यह प्रबंध समाप्त किया था।

३। अमरचन्द्रिका पंच दिनाकर—एक सुमन्यमान धर्मविषयक ग्रंथ। अमरचक्रका नाम कवि कार नामक महम्मद है।

दिलिप-नामा।

श्लोक सुमन्यमान कवि रत्ननाम-धर्मका धर्म समझाने या उसकी पवित्र कीर्ति प्रचार करनेके लिये बहुतमें ऐतिहासिक कथा बहूनामें रच गये हैं। बहूनाके शब्द और निरुद्ध सुमन्यमान नामाजमें इसलामोव प्रचार ही प्रचारका नाम सुगुण उद्देश्य है। किन्तु उन सब गुणोंमें बहूना सामान्य, महाभारतदि ग्रंथका घोड़ा बहुत अनुकरण देखा जाता है। नीचे भनि संक्षिप्तभागमें उन सब ग्रंथोंका प्रतिपाद्य विषय और उनका परिचय दिया गया है,—

१। हनोकाका युद्ध-महम्मद मुसलमानोंके जमाई अलीके दो विवाह हुए थे। बीबी फनोमाके गर्भमें इमाम हुसैन और हमम तथा बीबी हनोकाके गर्भमें महम्मद हनोकाका जन्म हुआ। दमरुसके दुर्दान्त राजा एजिदके हाथमें जब इमाम हुसैन-हसन मारे गये, तब हममके पुत्र जयनाथ आयेदिने इस घटनाका विवरण करने हुए हनोकाको एक पत्र लिखा। हनोका उस समय पनोपासी प्रदेशमें राज्य करने थे। नयिबजीबी ऐसी हुए पत्रोंको बात सुन कर हनोका कोपसे भाग बचूँगे दो दलबलके साथ मदेशा आये। मदेशा आने ही मदापोर हनोकाके एजिदको एक पत्र लिखा। उसीके उत्तरमें एजिद ने युद्धको घोषणा कर दी थी। युद्धमें एजिदको पराजय और मृत्यु हुई। पक्षी युद्धकात्त कारयका परिणत विषय है।

२। मुकाम होयेन ग्रंथ—सुमन्यद नयिबनाम। इतिहास है। इसमें हमम और हुसैनको विषादबहामो तथा मुहम्मद का मूल इतिहास वर्णित है।

३। इमाम खोरो—वाल्फवालमें इमाम हमम और हुसैनको कोई गुना कर मुता बादनाहके निजट ले गया था। उसी घटनाके आधार पर यह छोटा ग्रंथ रचा गया है। कोई कोई इसे प्रसिद्ध कवि महम्मद कीर्ती रचना मानते हैं।

४। काजिमका युद्ध—करबला मैदानके उग्र महा-युद्ध प्रसिद्ध मुहम्मदकी खरिलेद घटना।

५। निरन्दर-नामा—सुमन्यद कवि मानाउव काव्य रचित। यह ग्रंथ पारसी कवि मेजामीने पहले पारसी भाषामें लिखा। पीछे अग्लाउवने उसीका भाषान्तर किया। ग्रंथ मावि दनपीर बलेकनन्दरकी जीयती से कर लिया गया है।

६। अमोर जङ्ग—महम्मदके दीक्षित इमाम हमम हुसैन तब पापिपु एजिदमें मारे गये, तब उनके पैमाने ग भाई अमोर महम्मद हनोकाके विषय संग्राममें एजिदका रच किया। मदेशा और देनाहक नामक स्थानोंमें युद्ध हुआ था। उन दोनों स्थानोंके युद्ध-विवरणमें ग्रंथका भी दो भाग हुआ है। पहले भागमें मदेशा-युद्धका और दूसरेमें देनाहक-युद्धका वर्णन है। भीसुम् महम्मद जाहकी आशारे कवि शैल मनसुने पवारमें इस जङ्गकी पंचाली कथा समाप्त की थी।

७ जङ्ग-नामा—महम्मदके जमाई अलीको मुसलमानों ले कर ग्रंथ रचा गया है। ग्रंथकर्ताका नाम मनसुता था है।

उपाख्यान-नामा।

सुमन्यमान कविगण अरबो-उपन्यास या पारसी-उपन्यास वर्णित अर्धश्रेष्ठ कहानीके अनुकरण पर बहूना भाषामें अनेक उपाख्यान रच गये हैं। उनमेंमें कुछ आभयान ग्रंथोंका परिचय नीचे दिया जाता है—

१। सती मैनायती और और चन्द्राणां—ग्रंथकर्ताका नाम शैलत काजो और शैवद मानाउव साहू है। यह ग्रंथ दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें कोहराज और रानी चन्द्राणाका वृत्तान्त और द्वितीय भागमें वलिबदुष छातन और राजकुमारी मैनाका प्रसङ्ग वर्णित है।

२। मदनकुमार-मनुमायाकी पुस्तक—नायक और नायिकाकी प्रेमकहानी से कर यह ग्रंथ रचा गया है। प्रंथकर्ता मूलमहम्मद है।

३। सत पचकर—साम दिनके सान उपाख्यान में कर कथ्य रचा गया है। रोमनकी राजसभामें रह कर महम्मदि अग्लाउवने यह कथ्य शैवद महम्मदके सादेशमें रचा।

४ जोवेलमुल्लुक सामारोक—यह एक मुसलमानी आख्यान ग्रंथ है। सैयद महम्मद अकबर अलीने इसकी रचना की। रचना उतनी खराब नहीं है।

५ कग फुर शाह—एक बड़ा उपन्यास ग्रंथ। इसके रचयिता मियाँ इसमत अली काजो चौधरा हैं।

६ तमिम-गुलाल चैतन्यसिलाल—एक प्रेम-कहानी। महम्मद अकबर इसके रचयिता हैं।

७ पद्मावती—चट्टपामके सुप्रसिद्ध कवि आलाउल द्वारा रचित। बङ्गला साहित्यमेवोके निकट इस ग्रंथका विशेष आदर है।

लालमति-सयफल मुल्लुक—लालमति और जोल-कर्णायन सिकन्दरके पुत्र मुल्लुकके प्रणय और परिणय व्यापारको ले कर यह ग्रंथ लिखा गया है।

मल्लिकाका हजार सौयाल—एक पञ्चालिका। सेर याज वा राज इसके रचयिता हैं।

रङ्गमाला—एक काव्य, कबीर महम्मद-विरचित। यह प्रेम और भक्तिकहानी ले कर लिखा गया है।

रेजवान शाहा—एक मुसलमानी उपाख्यान ग्रन्थ। इसे रूपरुकाय कहनेमें भी कोई अर्थयुक्ति न होगी। कवि शमसेर अलीने पहले पहल इसकी रचना की। कुछ अंश रचे जानेके बाद उनका देहान्त हो गया। पीछे कवि आछलामने उसकी रचना शेष की।

भायलाम—एक मुसलमानी केच्छा वा राजकुमार-राजकुमारीकी प्रेमकहानी। समसुद्दीन छिद्दीकीने इसकी रचना की।

युसुफ जेलेबा—युसुफ और जेलेबाकी प्रेमकहानी ले कर यह ग्रन्थ लिखा गया है। पारसी भाषाके प्रसिद्ध महश्वरत-नामा नामक ग्रन्थका यह एक पद्यानुवाद है।

लायली-मजनू—एक मुसलमानी प्रेमकहानी। यह काव्य वियोगान्त है। ग्रन्थकर्त्ता कविका नाम दीलत पंजाब बहराम है।

सङ्गीतशाखा ।

मुसलमान लोग सङ्गीतशास्त्रमें विशेष पारदर्शी थे। चाईन-इ-अकबरी पढ़नेसे इसका अच्छो तरह पता चलता है। हिन्दू और मुसलमान सङ्गीतशैलिके चलते रागनामा, तालगामा आदि अनेक पुस्तकें रची गईं जिन्होंने बङ्गला-

साहित्यको अलंकृत किया था। नीचे कुछ पुस्तकोंका परिचय दिया जाता है—

१ रागनामा—प्राचीन सङ्गीतका एक इतिहास। इस पुस्तकके बनानेवाले एक नहीं थे। बहुतोंने मिल कर इसका सङ्कलन किया है। इसमें प्राचीन राग और तालका जन्म, गत, रागका ध्यान तथा प्रत्येक रागानुयायो एक गान लिपियुक्त है।

२ तालनामा—सङ्गीत-सम्बन्धीय एक पुस्तक। आलोच्य ग्रंथमें द्विज रघुनाथ, श्रीवाँद राय, छैयद आहन-उद्दिन, गोपोकल्लम, छैयदमूत्तंजा, हरिहर दास, नाछिर-उद्दिन, गैयाज, आलाउल, भवानन्द अमान, सेरचाँद, शिवरामदास और होरामणि आदिका भणितायुक्त पद पाया गया है।

३ सृष्टिपत्तज—एक सङ्गीत पुस्तक। इसमें राग-तालके जन्मादिका हाल लिखा है तथा चम्पागाजी, बषसा अली और अली राजाकी भणिता देखनेमें आती है।

४ ध्यानमाला—एक सङ्गीतविषयक पुस्तक। राग-तालकी उत्पत्ति, कौन राग कब गाया जाता है और किस-के द्वारा पहले पहल वाद्ययन्त्रोंका आविष्कार हुआ, उसका एक आनुपूर्विक इतिहास पुस्तकके मध्य आलोचित हुआ है।

५ रागतालकी पुस्तक—इसमें राग और तालकी उत्पत्ति, दण्डभाग, घड़ीभाग, रागतालके विवाह आदि विषयक लिखे हैं। इसमें केवल दो व्यक्तिकी भणिता देखी जाती है।

चम्पागाजी एक विषयात पण्डित थे। सङ्गीतशास्त्रमें उनको असाधारण व्युत्पत्ति थी। उनके रचित अनेक सङ्गीत पाये जाते हैं।

६ रागनामां—इसी श्रेणीकी एक दूसरी पुस्तक।

पदसंग्रह—रागमाला-आदिमें जिस प्रकार मुसलमान कवियोंके रचित पद और गीतका समावेश हुआ है, आलोच्य पदसंग्रहमें भी उसी प्रकार बहुतसे व्यक्तियोंके रचित विभिन्न पद और गीत लिपियुक्त देखे जाते हैं।

छुलुभा—एक छोटी गीतकी पुस्तक। इसमें सिफ

२० वर्ष है। पहले यह मुसलमानोंके विवाहोत्सवमें गाया जाता था।

मस्जिदाएकी कथा।

इसके मुखजमान लोग जिस प्रकार हिन्दू-देव देवोंके प्रति श्रद्धा दिना गये हैं, उधर हिन्दू लोग में उन्में प्रकार मुसलमान भी आदि के भक्त और पूजक हो गये थे। सात सौ जनेक मजिदियन हिन्दू-सम्प्रदायके मध्य मुस्लिम-युद्धमें 'साजिदा' बनाते देना जाता है। निशिन-सम्प्रदायमें भी इस संस्कारका अभाव नहीं है। बहुतेरे अमोष्टिमिदिके लिये 'पोरको मिश्री' मानते हैं और यहाँ मिद्रीका घोड़ा बना कर सामरिक दान करते हैं।

पोरके उद्देशमें यह मिजिदानयथा बहुनामें विशेष भावमें प्रचलित है। शीतप्रवास बहुनामें अधिक दिन हिन्दूप्रवासका स्वागत भी न होने पाईं थो, कि मुसलमान प्रथायमें पोरे पोरे बहुनामें भवनी प्रतिष्ठा और प्रति-पत्ति सुदृढ़ करनेकी कोशिश की। बहुत दिन एक जपह रहनेमें हिन्दू और मुसलमानके बीच भ्रमोन्मत्तयमें उद्धार-भाव उपस्थित हुआ तथा उन्मेंके फलमें पोरे पोरे बहुनामें मिश्रदेवता सत्यदेवता सत्यवीरका उद्भावन हुआ—उनको पूजा और सिग्नितदान विधिमें देरफिर हुआ। प्रजातः यह पौर हिन्दूनायमें रुपात्मरिग हो कर सत्यवीर या सत्यनारायण नाममें पूजित होने लगे। इन सत्य-नारायणकी पूजा-कथा बहुत कुछ पुराणप्रसिद्ध चण्डी-मान और योगना-मानमें ही। साधारणतः प्रंथ छोटे साधारणके होने पर में जट्टाचार्य, कवि जयनारायण और उनकी भतीसी आनन्दवीर-रचित नीली प्रंथ बहुत बड़े हैं। जट्टाचार्यकी पांचाली ११ पाठोंमें दो प्रच-लित हैं।

पोरकी पूजाका प्रकार करनेके लिये प्रायःनिम्न एक और जिस प्रकार अनेक सत्यनारायण-प्रभोंका प्रकार किया था उन्में प्रकार मुसलमान कविगण भी 'साजिदा' के कथा' भादि विभिन्न नामके प्रंथ सत्यनारायणका प्रभाव प्रसार करनेके उद्देशमें लिखित कर गये हैं। सात सठ हम लोगोंमें सत्यनारायणके सादरप्रस्तावक शिखर प्रभोंका पक्षिच वादे हैं, उनमें शिखराम या रामेश्वर, जहोरामद्वार, शिखर विश्वेश्वर, शिखर रामचण, कवि-

यन्द्र, भयोध्याराम राय तथा जट्टाचार्यदेव सत्यनारा-यणकी कथा सत्यनारायण है। यह कथा प्रायः तीन सौ वर्ष पहले रकी गई थी येना अनुमान किया जाता है।

ऊपर कहे गये प्रभोंको छोड़ कर जयनारायणसेनका सत्यनारायणप्रथ या हरिलीला तथा निवृत्तमरुण सत्य-वीर पांचाली नामक इस विषयके दो गूँथ गाये जाते हैं। जयनारायणके हाथमें पट्ट कर यह सत्यनारायणको मन्-कथा पर सुन्दर सुन्दर काव्यमें परिणत हो गई है।

इसके सिवा शिखर दानरायण एक नारायणदेवकी-पांचाली है। अट्टाचार्यसे बहुत-सी 'सत्यवीरकी पांचाली' पाई गई हैं। उनमेंसे ११४० सालमें लिखित जहोर-वांई की तथा ११८२ सालमें रचलकी गई शिखर पट्टिककी पाञ्चालीसुन्दर उल्लेखनीय हैं। शिखर रामेश्वरकी भक्ति-युक्त एक और भी 'सत्यवीरकी पाञ्चाली' है। फकीरराम दामने एक सत्यनारायण कथाकी रचना की। बहुतसे सुप्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय गुणाकरकी बनाई हुई एक सत्यनारायणकथा प्रचलित है। शिखर राम या रामेश्वरका जो सत्यनारायण गूँथ इस देशमें प्रचलित है यह रामेश्वरी सत्यनारायण कहलाता है। शिखर विश्वेश्वर विरचित एक सत्यनारायण या गोविन्दरिषभ गिलना है। यह प्रंथ सन ११५१ सालकी हस्तलिपि है।

१०६५ सालमें लिखित जट्टाचार्यकी एक 'सत्य-वीर कथा' पाई गई है। जट्टाचार्य बहुनावासी थे यही पर सात सठ उनके कुल प्रंथ यद्देशमें नहीं मिले हैं। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि उन्नीसके मयूरमञ्जरामने जालनकरविधिष्ठन भाराणवर्णके मध्य बहुतोंने जट्टा-चार्यके कुल ११ गाये सुने हैं।

जट्टाचार्य सत्यवीरको जो जयकथा कीर्तन कर गये हैं, कविकर्ण, कविचन्द्रम आदि द्वारा उरकयमें प्रच-लित सत्यनारायणकथायें यही सब वर्णन पाया जाता है, केवल थोड़ा सा प्रमेह है। इसमें सादृश्य होता है, कि जयनारायके मध्य बहुत कुछ ऐतिहासिक घटना है।

सुलतान हुसैन शाह 'मलाइहूँल हुसैन शाह' नाममें मुसलमान-सिंहशासने प्रसिद्ध हैं। जट्टाचार्य और कवि कर्णवीर सत्यनारायणकथायें शिखर 'माला' कहलाते हैं। जलेश्वर, उद्दे' हम लोग मलाइहूँल हुसैन शाह समझते हैं।

हिन्दू कवियोंको नकल पर अथवा मुसलमान समाज-  
में सत्यपोरका सिन्धुदान फैलानेके उद्देशसे कुछ मुसल-  
मान कवि भी सत्यनारायणका माहात्म्य गा गये हैं।  
इन सब पुस्तकोंमें अरिफ कविके लालमोहनके केच्छा  
विशेष उल्लेखनीय हैं। सुलतान हुसैन शाहने अपनी  
कन्याको देशान्तर भेज दिया था, इसले भी वे सत्यपोर-  
के क्रोधसे परित्राण न पा सके थे।

इतिहास तथा कृत्रजो-साहित्य।

बंगलाभाषामें कुलपंजी ना वंशानुचरित लिखनेकी  
प्रथा अति प्राचीन है। रामायण तथा प्राचीन पुराणादि  
शास्त्रोंसे हमलोग जान सकते हैं कि, विवाहस-नाम धर-  
कन्याके पूर्व पुरुषोंकी वंशावली कीर्त्तन करनेका नियम  
था। यह सनातन आर्य प्रथा बहुत दिनोंसे हिन्दू समाज-  
में चली आती है। दूसरे सभी देशोंकी अपेक्षा बंगाल  
देशमें ही आभ्राह्मणवंशालादि सभी समाजोंमें वंशानु-  
चरित-रक्षा तथा कीर्त्तन-प्रथा विशेषरूपसे फैली हुई थी।  
इसीसे इस देशमें कुलजी वा वंशानुचरित साहित्यकी  
यथेष्ट पुष्टि दृष्टिगोचर होती है। यद्देशमें कितने दो  
विदेशी राजाओंके आक्रमणसे एवं अनेकों धर्मसाम्प्रदा-  
यिक विद्वयसे प्रकृत राजनैतिक इतिहासका अधिकांश  
विलुप्त हो जाने पर भी कुलपंजी वा वंशानुचरित सु-  
रक्षित रहनेसे सामाजिक तथा पारिवारिक इतिहास  
विलुप्त नहीं हो सकता। अंगरेजों प्रभावसे बंगालोकी  
जातीयता-रक्षाका कठोर श्रद्धालु शिथिल होनेके साथ  
साथ इन सब अमूल्य सामाजिक इतिहासोंका बहुत कम  
प्रचार हो गया है। उपयुक्त यत्नके अभावसे सैकड़ों कुल  
ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं; किन्तु सामान्य अनुसन्धानसे ही  
हमलोगोंने जो कुछ संग्रह किया है, वे कुछ कम नहीं हैं।  
उनकी संख्या पाँच सौसे अधिक होगी।

बंगलाके सामाजिक इतिहास अथवा कुल प्रंथ  
प्यतीत, बंगलाभाषामें और भी कई छोटी और बड़ी ऐति-  
हासिक कविता तथा काव्य रचनायें देखी जाती हैं। इन  
सब पुस्तकोंके मध्य किसी किसी पुस्तकमें भौगोलिक  
विवरण इस प्रकारसे है, कि यदि उन्हें एकमात्र भूगोल  
कहा जाय, तो भी अत्युक्ति न होगी। ऐतिहासिक  
सभी कविताओं अथवा काव्योंमें सम्पूर्ण भावसे वंशा-

ध्यान तथा धारावाहिकघटना समाश्रित नहीं है, फिर  
उनके मौलिक विषय विद्वकुल ही प्रमाणशून्य हैं, ऐसा  
भी नहीं कह सकते। भाषामें रचित राजाध्यानसमूह,  
महाराष्ट्र पुराण तथा त्रिपुराका राजमाला प्रभृति प्रंथ  
इस श्रेणीमें गण्य हो सकते हैं। इनके अलावे छोटी  
छोटी घटना-समाश्रित वा स्थानोंकी माहात्म्यहापक  
गितनी कवित्वमयी कीर्त्तिगाथा पाई जाती हैं, वे भी इस  
श्रेणीमें गिनी जा सकती हैं।

विभिन्न शाखाकी ग्रन्थमाला।

बंगाली कवियोंने योग तथा धर्मनस्व सम्बन्धमें  
कितने ही ग्रन्थोंकी रचना की है।

व्रत कथा।

पुराणोंमें कितने ही व्रतोंका उल्लेख है; वे सब प्रायः  
संस्कृत भाषामें ही लिखे हुए हैं। उनमें से कोई कोई  
प्रंथ पहले हीसे बंगला भाषामें अनूदित हैं। बंगालके  
विभिन्न प्रदेशवासी लोगोंमें इन सब व्रतोंके सिवा और भी  
कितने ही लौकिक व्रतोंका भी प्रचलन देखा जाता है। ये  
व्रत 'मेपेली व्रत' के नामसे साधारणतः प्रसिद्ध हैं।  
इन मेपेली व्रतोंमेंसे कुछ तो भाषामें लिखे गये हैं और  
कुछ भाज भी बंगीय कुल-ललनाओंकी कण्ठस्थ हैं।

भाषामें रचित रामायण महाभारतादि तथा कृष्ण-  
लीलाविषयक भागवतादि ग्रन्थ गाये जानेके बाद  
पांचालीके बदलेमें उसके अंश विदीयका कथनीय विषय  
ले कर पृथक् पृथक् व्यक्तियोंके मुँहसे कहनेके लिये  
पयारादि छन्दमें घोषाकथादि संयुक्त प्रंथकी रचना  
होने लगी। धीरे धीरे वे जब अभिनयके योग्य हुए, तब-  
से वे सभ्य प्रंथ मारजित भावापन्न हो कर 'यात्राके पाला'  
रूपमें परिणत हो गये।

यात्रा शब्दमें अनेक नाटकोंका परिचय दिया गया है;  
किन्तु उस स्थानमें उसी पालासमूहके साहित्य विषय-  
की ब्यालोचना नहीं की गई है, केवल दो एक गानोंका  
नमूनामात्र दिया गया है। बंगालमें अङ्कुरेजसमागमके  
पहले या प्रथम यात्रा विषयमें जिस तरहके गद्य तथा  
पद्यमें वाचस्पयिन्यायकी प्रथा प्रचलित थी, उसका ही कथ-  
चित आमास ले कर परवर्त्तिकालमें जो सभ्य प्रंथ रचित  
हुए, उनके भाव, भाषा तथा वर्णनाप्रणाली वर्त्तमान प्रथा-



पूर्व-यङ्गालमें जारोगानका अमी भी यद्येष्ट समादर हैं। वे निरक्षर कवियोंकी रचना होने पर भी उनमें भाव-विकाशका पूर्ण उपादान विद्यमान देखा जाता है, किन्तु भाषाकी वैसी परिपाटी नहीं है; फिर भी वे सब कवि भाषामें अपट्ट थे, ऐसा भी नहीं कह सकते। जारोगान बहुत कुछ कवियानके समान ही होता है। दोनों दलमें प्रश्नोत्तर रूपमें गाना होता है।

एक ओर जिस तरह भूगोल, इतिहास, काव्य तथा नाटकादि एवं शङ्ख ज्योतिषादि विज्ञान पुस्तकें पयारादि छन्दोंमें रची गई थीं, दूसरी ओर उसी तरह वैद्यक पुस्तकें भी भाषा पद्य अथवा गद्यमें रची जा कर जन-साधारणके मध्य आयुर्वेदका प्रभाव फैला रही थीं। बङ्गलाभाषामें वैद्यक पुस्तकें साधारणतः 'कविराजी पतरा' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

गल्प।

आध्यात्मिक उन्नतिकी आशासे एवं मानसिक वृत्ति-नियमकी उत्कर्षना मन्नादानके निमित्त बङ्गीय कवियों-ने एक ओर जिन तरह धर्मतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, योगतत्त्व तथा नीतिनैतिकविषयक ग्रन्थोंकी भाषामें रचना करके बङ्गशासिकोंके मनमें वैराग्यकी सूचना कर दी हैं, दूसरी ओर उसी तरह उन्होंने अपूर्व अपूर्व आध्यात्मिक पुस्तकें रच कर उनके हृदयमें संसारोद्यानके प्रेममस्त्रवणकी अमृतमयी धारा बहा दी है। इन सब उपाध्यात्मिकोंकी अधिकांश पुस्तकें किसी न किसी राजवंशकी उद्देश करके रची गई हैं। पर्यन्त, ऐसा होनेसे ही तो उन पर जनसाधारणको विश्वास होगा एवं वे सब उन पुस्तकोंसे नाति संग्रह करके संसारक्षेत्रमें न्यायपथ पर दृढ़ रहेंगे। इस श्रेणीके कितने ही आख्यान इतिहास-मूलक हैं और कितने ही भित्तिशून्य गल्पमाल हैं।

प्राचीन गद्य-साहित्यका इतिहास।

( अङ्गरेजी प्रभावसे पहलेका साहित्य )

बङ्गालमें अङ्गरेजी शासनाधिकार होनेके पहले बङ्गीय कवियोंने बङ्गलासाहित्यकी परिपूर्णके लिये पद्य साहित्यके अलावे कई एक गद्य ग्रन्थोंकी रचना की थी। ये सब पुस्तकें साधारणतः देशीय प्रचलित भाषामें ही लिखी गई हैं। देशी अज्ञानोंको धर्मतत्त्व शिक्षा

देनेके लिये परवर्तिकाकालमें विभिन्न मताश्रम्यो वैष्णवों-ने पद्यको तोड़ कर एक प्रकारके गद्यमें कई एक पुस्तकें लिखी। उस प्राचीन गद्यकी भाषा वैसी सरल तथा वर्तमान बङ्गला गद्य-साहित्यकी तरह सुललित या भोजसितापूर्ण न होने पर भी भाषातत्त्वके हिसाबसे वे ग्रन्थ अति अमूल्य समझे जायेंगे।

शून्यपुराण, चैत्यरूपमाप्ति प्रभृति कई एक प्राचीन गद्यके निदर्शन-स्वरूप गद्यपद्यमिश्रित ग्रन्थोंके अलावे, हम लोग अपेक्षाकृत परवर्ती समयमें अर्थात् बङ्गालमें अङ्गरेजी शासनके सौ वर्षसे कुछ पहलेके रचे हुए कितने ही गद्य ग्रन्थोंका परिचय पाते हैं। इन सब ग्रन्थोंकी भाषा, अङ्गरेजी अधिहारके परवर्ती राममाहन राय, रामराम बसु, प्रभृति रचे हुए ग्रन्थोंका भाषानैतिकमो अंशमें भी खराब नहीं है। उनमें चाक्यादम्बर तथा समासकी अधिकता नहीं है—उनकी भाषा सरल है। उनमें वैशान्तादिदर्शनका अनुवाद, व्यवस्थातत्त्व, दृश-चनलोला, भग्य पारच्छेदका अनुवाद एवं वेन्द ब्राह्मण कुल ग्रन्थ उल्लेखनाय हैं।

इसके बाद बहुत समय तक बङ्गला भाषामें जिन सब गद्य तथा पद्यमय पुस्तकोंकी रचना हुई, वे सब प्रायः सहजियाके द्वारा ही रची गईं। इनमें कोई कोई श्री-रूपगोस्वामी द्वारा रचित एवं कोई कोई हृणदास कविराज प्रभृति नामधारी कवियोंके द्वारा रचित कह कर प्रसिद्ध हैं।

अङ्गरेजी-प्रभाव।

अङ्गरेजोंके आनेसे पहले ही इस देशमें गद्य-साहित्यका सूत्रपात हुआ था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अङ्गरेजी-शासनके प्रारम्भसे इस देशके लोगोंके हृदयमें नाना विषयोंमें कर्मनिष्ठाके भावका उत्थार हुआ। यही जागरण गद्य-साहित्यका उद्बोधन है—उस विषयमें बङ्गालीके साथ साथ अङ्गरेज-राजपुरुषोंने भी सहायता की थी। केवल साहित्य ही नहीं, अङ्गरेजोंने सारे देशमें विविध विषयोंके परिचयकी तरङ्गको अलग कर देनेकी कोशिश की। मुद्रापत्रके इतिहासमें हमें उसका पूर्ण चित्र देखनेमें आता है।

१७६५ ईमें अङ्गरेजोंने इस देशका आधिपत्य लाभ

कर होवानी-आर गण्य किया। बङ्गलाभाषा ज्ञाननेके  
 कारण बङ्गालीके बर्नोवालिपीकी काम बान करमेमें समु-  
 विधा होने लगी। उन सब समुविधासोकी दूर करनेके  
 लिये हुबर्लीके मन्त्रामणिक मिनिष बर्नोवाली मि० मीथे-  
 निषन प्रोफी हारलेट (Mr Nathaniel Prossy Hal-  
 led) बङ्गलाभाषा सीखने लगे। प्रगाढ़ बर्निमिषनके  
 पहले उन्हीने घोषा ही बिनीमें बङ्गलाभाषामें पेशी  
 समिपता मान कर ली थी, कि १७७८ ई०में उन्हीने  
 Grammar of the Bengali Language नामक बङ्ग-  
 लीकी लिखाके लिये बङ्गलाभाषाका एक व्याकरण प्रण-  
 यन किया। एही व्याकरण बङ्गलाभाषाका पहला व्याकर-  
 ण है। उस समय में यहाँ मुद्रापत्रकी (मुद्रि मही हुई  
 थी। बम्बोलीके कर्मबारी बङ्गला भाषाके प्रथम पत्रनेके  
 लिये बङ्गल चेष्टा कर रहे थे। साहित्य बम्बोलीके भूतपूर्व  
 मिनिष बर्नोवाली मि० कार्लस विलकिंग्सकी बङ्गलेट-  
 ने मुला कर उन्हीने अक्षरादि मन्थन कराये गये। उन्ही-  
 ने स्वयं मुद्राका कार्य करके मि० हारलेटका व्याकरण  
 छाप दिया।

मि० हारलेटने भी बङ्गलाभाषा में सविदेन अधिहार  
 प्रारंभ किया था, यह उनका व्याकरण पत्रनेमें ही मान्य  
 हो सकता है। उन्हीने ग्रीक, लाटीन, संस्कृत, पारसी  
 और शरबी भाषाके व्याकरणके साथ तुलना करके इस  
 बङ्गलाकरणको रचना की। इसमें बङ्गलाभाषाकी शारदा-  
 लिपि और आधुनिक साक्ष्यलिपिका संघेष्ट उदाहरण दिय-  
 ताया गया है। जब इस देशमें बङ्गोय साहित्यकी किसी  
 प्रकारकी आलोचना नहीं दिखाई देगी थी, उस समय एक  
 अङ्गरेजने बङ्गला भाषा अच्छी तरह सीख कर एक व्याकर-  
 ण लिखा। फोरी ये सभी व्याकरणको हलनामें भाषाकी  
 शृङ्खला तथा गद्य रचनाके सीकार्यमायमें अग्रसर  
 हुए थे। यह बङ्गलाभाषाके इतिहासकी एक विनिष  
 पहला है।

मि० हारलेटके समय बङ्गोय गद्य भाषाकी अति  
 नीचनीच अवस्था इतिवित हुई। उन्हीने लिखा है, कि  
 मैंने इस रचनामें मालूम बङ्गोय कविपीकी पुस्तकमें  
 जो सब उदाहरण उद्धृत किये हैं, उनमें अगुष्ट भाषा  
 लगी है, कि अन्तके सम्बंधमें बङ्गलाभाषाका पहिले

गोच्य है। बङ्गला भाषामें साहित्य, विज्ञान, इतिहास  
 आदिका कोई भी विषय अच्छी तरह रचा जा सकता है।  
 किंतु बङ्गाली लोग इस सोच हुए भी अज्ञान नहीं देते।  
 उन लोगोंके हाथका लिप्यन्ता, उनका वर्णविकल्प तथा  
 ग्राह्यनिर्वाचन—सभी अज्ञानमय और अशुद्ध है। वे  
 लोग न तो एक शब्दका हर्ष-त्रासने और न वाच्य मानन  
 प्रयासी। इनका लिप्यन्ता अर्थों, पारसी, हिंदुस्थानी  
 और बङ्गला शब्दका लिसङ्घोषण है। उनमें न  
 शृङ्खला है और न कोई अर्थ ही निरूपता है। यह बङ्गल  
 क्राष्ट, अर्थोप और अर्थोप-वाच्य है०।

बङ्गला भाषामें कोई गद्य साहित्य है वा नहीं, मि०  
 हारलेटने उसे ज्ञाननेके लिये बड़ी कोश की थी, किंतु  
 उन्हें एक भी गद्य साहित्यका नाम सुननेमें न आया।  
 उन्हीने लिखा है, एमुसिन्द्रादिके पहले भोजदेशको साहित्य  
 को जो देना थी, पंगोय साहित्यको भी समी पढो देना  
 है। प्रचकार केवल पद्यमें ही पुस्तक रचा करते हैं।  
 गद्य रचना इस देशके साहित्यमें बिलकुल अज्ञान्य है।  
 केवल चिट्ठी-पत्र, भाषेयन और इत्यदिक आदि पद्यमें लिखे  
 नहीं जाते हैं, किंतु इन सब रचनाओंमें भी गद्यका कोई  
 निषय नहीं है, व्याकरणसंगत वाच्यमंशको कोई प्रयास  
 नहीं है। इसके सिवा घांतव्य, इतिहास, नीतिबंध,  
 मिसर किसी विषयमें पुस्तक लिखनेमें प्रचकारोंके नाम  
 निरस्मरणीय होते हैं, ये सभी पद्यमें लिखे जाते हैं।

गद्य प्रथम संघट्ट करनेके लिये ज्ञान्य चेष्टा करने में  
 जब मि० हारलेट कृतकार्य न हुए, तब उन्हीने बालीसम  
 दूसरेके महाभारत, महाभयुके लोकायच वैष्णव-ग्रन्थों तथा  
 मानवधर्मके विद्यापुत्र आदिमें उदाहरण संघट्ट किया  
 था, यहाँ भी वे गद्यसाहित्यमें कोई उदाहरण न दे  
 सके।

मि० हारलेटने जब बङ्गलाभाषा में इस शीघ्रनीच  
 अज्ञानका अनुभव किया, बङ्गोय गद्यसाहित्यको उन्नतिके  
 लिये जब उनका हृदय मग्न्य बनाकुलनाके प्रयासमें प्रतिबन्ध  
 होने लगा, तब उसी समय विद्यमाने इस देशमें गद्य-

साहित्यके प्रकृत प्रवर्तक खनामध्वय महात्मा राममोहन राय महोदयको आविर्भूत किया। मि० हालहेडेने १७९८ सालमें अपना व्याकरण छपवाया। १७९४ सालसे लगायत १७८२ सालके भीतर किसी समय राममोहनका जन्म हुआ। राममोहन राय देखो।

कहते हैं, कि राजा राममोहन रायने १६ वर्षकी उमरमें ही 'हिन्दुओंकी पौत्तलिक धार्मप्रणाली' नामसे प्रतिमा-पूजाके विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा था। शायद यही ग्रन्थ बङ्गला भाषाका मुद्रित गद्यग्रन्थ है। किन्तु यूरोपीय-गणके मतसे १८०१ ई०में फोर्टविलियम कालेजके पण्डित रामराम बसुने जो राजा प्रतापादित्यका ग्रंथ लिखा वह बङ्गभाषाका प्रथम गद्यग्रंथ है।

किंतु हालहेड और राममोहन रायके पहले जो सब गद्य-ग्रंथ थे उनका परिचय पहले दिया जा चुका है अङ्गरेज अधिकारके प्रारम्भमें १७६५ ई०को ईसाई मशनरी वेण्टोने 'प्रश्नोत्तरमाला' नामक ईसा-धर्म-सम्बन्धमें एक बङ्गला-गद्य पुस्तक प्रकाश की। यह पुस्तक लण्डननगर में छापी गई थी। १७८० ई०में फलकत्तेमें जो मुद्रायन्त्र स्थापित हुआ उसमें बङ्गला अक्षर न था। इस यन्त्रमें आवश्यकतानुसार लकड़ीमें खुदाई करके बङ्गला अक्षर छापे गये थे। इसके दश वर्ष पीछे (१७९० ई०में) केरि मार्समन आदि सुप्रसिद्ध मिशनरियां धीरागपुरमें बंगला मुद्रायंत्र खोल कर बंगभाषामें पुस्तकादि छापने लगीं। उन्होंने लकड़ीमें खुदाई करके जो एक ग्रन्थ बंगला अक्षर तैयार किया उससे पहले बंगला भाषामें वाइबिल पुस्तक छापी गई थी।

१७६३ ई०में लार्ड कार्नवालिसने जो सब आईन संग्रह किये, फोरेष्टर साहबने उनका बङ्गभाषामें अनुवाद किया था। इसके कुछ समय बाद अर्थात् १८०१ ई०को फलकत्तेमें उन्होंने अङ्गरेजी अभिधान मुद्रित किया। फलतः इस समय मार्समन, वाई, केरी आदि ईसा धर्म-प्रचारकों द्वारा बङ्गलासाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई थी। धीरे धीरे बङ्गला गद्य रचनाका अनुशीलन भी चलने लगा था। यहां तक कि इन्होंने बङ्गला स्कूल और बङ्गला संवादात्मक प्रकाश कर बंगभाषा-शिक्षाकी बड़ी सहायता की थी।

इधर अंगरेज-राजकर्माचारियोंको इस देशकी भाषा सिखानेके लिये १८०० ई०में मार्क्सिज् आव वेल्लोने कलकत्तेमें फोर्टविलियम कालेजकी स्थापना का। इस विद्यालय द्वारा बङ्गलागद्यसाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई है।

यद्यपि राजा राममोहन राय 'महाशयके बहुत पहले कुछ पण्डितोंने भाषा-परिच्छेद, स्मृतिशास्त्र तथा उप-निषद् और सांख्यदर्शन आदिका बङ्गानुवाद किया था, किन्तु वे सब ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुए जिससे बंगीय-साहित्य-जगत्का आज तक कोई उपकार नहीं हुआ। राममोहन राय महाशयका कोई कोई ग्रन्थ प्रचलित हिन्दू-मतके विरुद्ध होनेके कारण पण्डितोंमें खलबली मच गई। इसी कारण बंगके अवातविशुद्ध पण्डित समाज-सागरमें आन्दोलनकी प्रबल तरंग हठात् उठ खड़ी हुई। इस आन्दोलनके समय बङ्गलाभाषाकी रचनामें अनभ्यस्त कुछ पण्डिताभिमानोंने भो वंगभाषामें दो एक छत्र लिख कर ग्रन्थकार होनेका दावा कर लिया। इस कारण इस समय दो एक सामयिक पत्रोंकी छपि भी हुई। किन्तु यद्यार्थमें राजा राममोहन रायको बंगला गद्यके उन्नति-साधनके प्रधानतम पथदर्शक कह सकते हैं।

अंगरेजी शासनके परवर्तीकालसे बंगला गद्य-साहित्यको जो क्रमोन्नति हुई उसे हम लोग दो अंशोंमें विभाग कर सकते हैं। पहला ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका अमठ अर्थात् ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके बंगराज्यका भार-प्रहणसे ले कर महारानी विक्टोरियाके सिंहासनाधिरोहण काल तक और दूसरा उस समयसे ले कर विद्या-सागरीय युगकी वर्तमान बंगलाभाषाके पूर्णविकाश तक। इतने दिनोंके भीतर जिन सब ग्रन्थकारोंने बंगला भाषामें ग्रन्थ लिखे हैं, नीचे उन्हींकी एक तालिका और ग्रन्थकारोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है—

ईष्ट इण्डिया कम्पनीका अमठ।

शाधारण्य साहित्य।

१ प्रश्नोत्तर-माला—वेण्टो साहब इस पुस्तकके प्रणेता हैं। ईसा-धर्मासंबन्धमें तत्त्वादि प्रश्नोत्तरके बहाने इस ग्रन्थमें लिखे गये हैं। १७६५ ई०को लण्डनमें यह ग्रन्थ छापा गया था। 'बंगमें अंगरेजी-प्रभावके प्रारम्भमें यही सबसे पहला बंगला गद्यग्रन्थ स्तम्भ जाता है।





साहित्यके प्रकृत प्रवर्तक खनामध्वय महात्मा राममोहन राय महोदयको आविर्भूत किया। मि० हालहेडने १७७८ सालमें अपना व्याकरण छपवाया। १७७४ सालसे लगायत १७८२ सालके भीतर किसी समय राममोहनका जन्म हुआ। राममोहन राय देखो।

कहने हैं, कि राजा राममोहन रायने १६ वर्षकी उमरमें ही 'हिन्दुओंकी पौतलिक धर्मप्रणाली' नामसे प्रतिमापूजाके विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा था। शायद यही ग्रन्थ बङ्गला भाषाका मुद्रित गद्यग्रन्थ है। किन्तु यूरोपीयगणके मतसे १८०१ ई०में फोर्टविलियम कालेजके पण्डित रामराम बसुने जो राजा प्रतापादित्यका ग्रंथ लिखा वह बङ्गभाषाका प्रथम गद्यग्रंथ है।

किंतु हालहेड और राममोहन रायके पहले जो सब गद्यग्रंथ थे उनका परिचय पहले दिया जा चुका है अङ्गरेज अधिकारके प्रारम्भमें १७६५ ई०को ईसाई मशनरी वेण्टोने 'प्रद्योत्तरमाला' नामक ईसा-धर्म-सम्बन्धमें एक बङ्गला-गद्य पुस्तक प्रकाश की। यह पुस्तक लण्डननगर में छापी गई थी। १७८० ई०में फलकत्तेमें जो मुद्रायन्त्र स्थापित हुआ उसमें बङ्गला अक्षर न था। इस यन्त्रमें आशुशक्तानुसार लकड़ीमें खुदाई करके बङ्गला अक्षर छापे गये थे। इसके दश वर्ष पीछे (१७९० ई०में) केरि मार्समन आदि सुप्रसिद्ध मिशनरियां श्रीरामपुरमें बंगला मुद्रायन्त्र खोल कर बंगमापामें पुस्तकादि छापने लगीं। उन्होंने लकड़ीमें खुदाई करके जो एक प्रस्थ बंगला अक्षर तैयार किया उससे पहले बंगला भाषामें बाइबिल पुस्तक छापी गई थी।

१७६३ ई०में लार्ड कानवालिसने जो सब आईन संग्रह किये, फोरेटर साहबने उनका बङ्गभाषामें अनुवाद किया था। इसके कुछ समय बाद अर्थात् १८०१ ई०को फलकत्तेमें उन्होंने अङ्गरेजी अभिधान मुद्रित किया। फलतः इस समय मार्समन, घाई, केरी आदि ईसा-धर्म-प्रचारकों द्वारा बङ्गलासाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई थी। घीरे घीरे बङ्गला गद्य रचनाका अनुशीलन भी चलने लगा था। यहां तक कि इन्होंने बङ्गला स्कूल और बङ्गला संवादपत्र प्रकाश कर बंगमापा-शिक्षाकी बड़ी सहायता की थी।

इधर अंगरेज-राजकर्त्तारियोंको इस देशको भाषा सिखानेके लिये १८०० ई०में मार्क्सिन्स ग्राफ वेल्सकोने फलकत्तेमें फोर्टविलियम कालेजकी स्थापना की। इस विद्यालय द्वारा बङ्गलागद्यसाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई है।

यद्यपि राजा राममोहन राय महोदयके बहुत पहले कुछ पण्डितोंने भाषा-परिच्छेद, स्मृतिशास्त्र तथा उपनिषद् और सांख्यदर्शन आदिका बङ्गानुवाद किया था, किन्तु वे सब ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुए जिससे बंगीय-साहित्य-जगत्का आज तक कोई उपकार नहीं हुआ। राममोहन राय महोदयका कोई कोई ग्रन्थ प्रचलित हिन्दू-मतके विरुद्ध होनेके कारण पण्डितोंमें खलवली मच गई। इसी कारण बंगके अवातविशुद्ध पण्डित समाज-सागरमें आन्दोलनकी प्रबल तरंग हठात् उठ खड़ी हुई। इस आन्दोलनके समय बङ्गलामापाकी रचनामें अनभ्यस्त कुछ पण्डिताभिमानोंने भो वंगमापामें दो एक छत्र लिख कर ग्रन्थकार होनेका दावा कर लिया। इस कारण इस समय दो एक सामयिक पत्रोंकी सृष्टि भी हुई। किन्तु यद्यार्थमें राजा राममोहन रायको बंगला गद्यके उन्नति-साधनके प्रधानतम पद्यदर्शक कह सकते हैं।

अंगरेजी शासनके परवर्त्तीकालसे बंगला गद्य-साहित्यकी जो क्रमोन्नति हुई उसे हम लोग दो अंशोंमें विभाग कर सकते हैं। पहला ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका अमल अर्थात् ईष्ट इण्डिया कम्पनीके बंगराज्यका भार-प्रहणसे ले कर महारानी विक्टोरियाके सिंहासनाधिरोहण काल तक और दूसरा उस समयसे ले कर विद्या-सागरीय युगकी वर्त्तमान बंगलामापाके पूर्णविकाश तक। इतने दिनोंके भीतर जिन सब ग्रन्थकारोंने बंगला भाषामें ग्रन्थ लिखे हैं, नीचे उन्हींको एक तालिका और ग्रन्थकारोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है—

ईष्ट इण्डिया कम्पनीका अमल।

वापारण्य साहित्य।

१ प्रद्योत्तर-माला—वेण्टो साहब इस पुस्तकके प्रणेता हैं। ईसा-धर्मसंबन्धमें तत्त्वादि प्रद्योत्तरके बहाने इस ग्रन्थमें लिखे गये हैं। १७६५ ई०को लण्डनमें यह ग्रन्थ छापा गया था। बंगमें अंगरेजी-प्रभावके प्रारम्भमें यही सबसे पहला बंगला गद्यग्रन्थ स्तम्भ जाता है।



इनके अलावा १८१७ ई०में शास्त्रपद्धति और चाणक्य श्लोकका बङ्गलानुवाद, १८१८ ई०में स्त्रीशिक्षाविषयक प्रस्ताव, १८१८ ई०में नोतिकथा, १८१९ ई०में मनोरञ्जन इतिहास, श्रोयुत, गौरमोहन विद्यालङ्कार और राजा राधाकान्तदेवकी बनाई राधाकान्तनोतिकथा, पियर्सन साहयकी रचित वाष्यावली, मि० पट्टाचार्डकी ऐतिहासिक नोतिकथा, १८२० ई०में राजा राधाकान्तदेव-विरचित स्त्री शिक्षाविषयक, १८२१ ई०को श्रीरामपुरसे मुद्रित सद्गुण और बर्ष और १८२१ ई०को महेंद्रलाल प्रेसमें मुद्रित आत्मतत्त्वकौमुदी, ये सब ग्रंथ पाये जाते हैं।

आत्मतत्त्व-कौमुदी नामक ग्रंथ प्रबोधचन्द्रोदय नाटकक गद्यमें बंगानुवाद है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटकके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हैं। किन्तु इस अनुवादके रचयिता तीन व्यक्ति हैं, पहिले काशीनाथ तर्कपञ्चानन, गंगाधर ग्याय-रत्न और रामशङ्कर जिरोमणि। तीनों अनुवादकोंमें जिस भावमें इसका अनुवाद किया है उससे नाटकका क्रम बिगड़ नहीं होता। इस बंगानुवाद्से बंगीयसाहित्यका बहुत लाभ पहुँचा है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कलिराजाकी यात्रा—एक नाटक है। यह १८२१ ई०में रचित और अगिनोत्त हुआ है।

ज्ञानाञ्जन—यह भी राममोहन रायके अगिमत्तके प्रति कूल रचित अति परिष्कृतपूर्ण एक बंगला गद्यमें प्रतिपाद ग्रंथ है। श्रीमधुसूदन तर्कालङ्कार नामक एक परिष्कृतने यह ग्रंथ लिखनेका उद्देश था है, इस सम्बन्धमें एक भूमिका लिखी है।

रामरत्न—१८२६ ई०में नदिया-जिलावासी एक वारेंद्र प्राज्ञानने रामरत्न नाम के कर देवोभागवत ग्रंथका बंगानुवाद किया।

जीवोद्धार—१८२६ ई०में यह ग्रंथ छपा गया है। यह "नित्यकर्म पद्धति" है। इसमें संस्कृत मूल और बंगानुवाद है। गंगाकिशोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं।

वासवदत्ता मदनमोहन तर्कालङ्कार महाशयका द्वितीय ग्रंथ होने पर भी काठ्यार्षिण, रचना-सौन्दर्यमें तथा आयत्नमें यह सबसे बड़ा है।

इसके सिवा छोटे छोटे बच्चोंकी शिक्षाके लिये मदन

मोहन तर्कालङ्कारने शिशुशिक्षाका प्रथम भाग, द्वितीय भाग और तृतीय भाग रचे।

१८५७ ई०से ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा रचित प्रबोध-प्रभाकर नामक गद्य ग्रंथ मुद्रित हुआ। १८५८ ई०को ४६ वर्षकी अवस्थामें ईश्वरचन्द्र इस लोकसे चल बसे। मृत्युके पहले वे और भी कितनी पुस्तकें लिख गये थे, किन्तु उनको जीवद्दशामें प्रबोधप्रभाकरके सिवा और कोई पुस्तक छपी न थी। गुप्त महाशयकी एक दूसरी पुस्तकका नाम हितप्रभाकर है। यह भी गद्य पद्यमय है। बोधेन्दु-विकाश भी उन्हींका बनाया हुआ है। यह संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद है—नाटकके आकारमें ही रचा गया है। इस ग्रंथके छपते न छपते ग्रंथकार परलोकको सिधारे। उस समय इसके सिर्फ तीन अङ्क छपे थे। गुप्त महाशयकी गद्य रचनाके मध्य यही पुस्तक उत्कृष्ट है।

गुप्त महाशयने कलिनाटक नामक और भी एक ग्रंथ लिखना शुरू किया था, किन्तु दुर्भाग्यवशतः वे अकाल ही इस लोकसे चल बसे। इनके जीवनचरित्रके सम्बन्धमें अनेक विषय 'ईश्वरचन्द्रगुप्त' शब्दमें लिखे जा चुके हैं। बङ्गला-साहित्यके मध्ययुगके सबसे अन्तिम ग्रंथकार ईश्वरचन्द्र गुप्त हैं। इनके बाद ही बङ्गीय साहित्यके वर्तमान युगका आरम्भ हुआ।

संस्कृत कालेजके परिष्कृतोंके द्वारा बङ्गला साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई है। संस्कृत कालेजमें भी बङ्गलाभाषाके अनुशीलनके निमित्त एक समिति प्रतिष्ठित हुई थी। देमरेण्ड कृष्णमोहन बन्धोपाध्याय उस समितिके सदस्य थे। उनके अतिरिक्त और भी कितने सदस्य बङ्गलाभाषाकी उन्नतिके लिये कई एक सारगर्भ प्रस्तावना तथा प्रबन्धका प्रचार करते थे। किन्तु यथार्थमें संस्कृत कालेजके कतिपय परिष्कृतोंने ही बङ्गलाभाषाकी पुष्टि की। और क्या, उन्हें आधुनिक बङ्गलासाहित्यके जन्मदाता कह सकते हैं। परिष्कृत ताराशङ्कर, विद्यासागर एवं नाट्यकार रामनारायण प्रभृतिके नाम बंगलाभाषाकी वर्तमान उन्नतिके इतिहासमें चिर दिनों तक उज्ज्वल अक्षरोंमें लिखे रहेंगे।

इसके सिवा १६वीं शताब्दीके आरम्भसे ही साप्ता-

२ हिन्दुओं को, पौचलिक धर्म-प्रणाली—सुविषयात राजा राममोहन रायने सोलह वर्षकी अवस्थामें इस ग्रन्थको लिखा। प्रतिमा उपासना-प्रणालीके प्रतिकूल यह ग्रन्थ लिखा गया है। राममोहन राय शब्द देखें।

कथोपकथन—सुविषयात पार्सी रेभरेण्ड डब्ल्यु केरीने १८०१ ई०में यह ग्रन्थ प्रणयन किया। जनसाधारणकी प्रचलित बंगलाभाषा अंगरेजोंको सिखानेके लिये यह पुस्तक रचा गई है। इसमें उस समयके प्रचलित बंगला और उसका अंगरेजी अनुवाद है।

१४वीं सदीके आरम्भमें बंगलाभाषाकी प्रकृति फेली थी इस ग्रन्थमें उसका विस्तृत नमूना है। रेभरेण्ड केरीने इस ग्रन्थमें बंगलाके तत्सामयिक सभी समाजोंकी प्रचलित कथावाचों और वाक्यपद्धतिका नमूना दिखलाया है।

इतिहासमाला—१८१२ ई०को श्रीरामपुरमिशन-प्रैसमें यह ग्रन्थ छापा गया।

हितोपदेश—१८०१ ई०में गोलकचन्द्र जर्मानी पञ्चतन्त्रको हितोपदेश नामक ग्रन्थका बंगाली अनुवाद किया।

तोताका इतिहास—चण्डीचरण मुन्शीने १८०१ ई०में इस ग्रन्थको लिखा। पारसी ग्रन्थसे इसका अनुवाद हुआ है।

पक्षीसिंहासन—१८३४ ई०को लण्डनमें इसका संस्करण प्रकाशित हुआ। उसके पढ़नेसे पता चलता है, कि मृत्युञ्जय तर्कालङ्कार इसके अनुवादक है।

पुरुषपरोक्षा—यह ग्रन्थ संस्कृतका अनुवाद है, १८०८ ई०में प्रकाशित हुआ है। इसकी संस्कृत पुरुषपरोक्षा ग्रन्थका अनुवाद होने पर भी भाषा प्राञ्जल है।

प्रबोधचन्द्रिका—पण्डित मृत्युञ्जय तर्कालङ्कारने १८२३ ई०में फोर्ट विलियम कालेजके लिये यह ग्रन्थ प्रकाशित किया।

लिपिमाला—प्रतापादित्यचरित [नामक सुविषयात ऐतिहासिक ग्रन्थके प्रणेता रामराम बसुने १८०१ ई०में प्रतापादित्यचरित ग्रन्थ प्रणयन किया। केरी म्याहवने लिखा है, कि यशु महाशयकी तरह प्रगाढ़ अध्ययनपटु मनुष्य उन्हींके बन्ने भी नहीं देखा है। सुकान्त साहबने भी उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा की है। यशु महाशयके

जीवनमें अनेक विषयोंमें ही राजा राममोहनका चरित प्रतिविम्बित हुआ था। कहते हैं, कि राजा राममोहनने ही यशु महाशयको फारसी और बङ्गला गद्य लिखने सिखाया था।

ईशोपकी गल्प—१८०३ ई०में डाक्टर गिलमार्शने उर्दू, अरबी, प्रजभाषा तथा बङ्गलामें ईशोपकी गल्प छापनेका यन्त्रोपस्त किया। इस समय तारिणोचरण मित नामक एक व्यक्तिने बङ्गलाभाषामें ईशोप-नाटकका अनुवाद कर दिया था। वे सब अनुवाद रोमक अक्षरमें छापे गये थे।

इलियड काव्य—१८०५ ई०में फोर्ट विलियम कालेजके छात्र जे सर्जेंटने मारजिलके इलियड काव्यके प्रधान सर्गका बङ्गाली अनुवाद किया।

टेम्पेए—१८०५ ई०को फोर्ट विलियम कालेजमें। मस्कट नामके एक यूरोपीय अध्यापकने सैक्स-पियरके टेम्पेए नामक नाटकका अनुवाद किया। बङ्गलाभाषामें इसको पहला नाटक कहना होगा।

वेदान्त-सूत्र-भाष्यानुवाद—१८१५ ई०को राजा राममोहन रायने वेदान्तसूत्र भाष्यका गद्यमें बङ्गाली अनुवाद किया। इसके बाद १८१६ ई०में उर्दूमें मीरमोहम्मदके अर्थात् तत्वलकार उपनिषद्का शूद्रभार्य बङ्गलाभाषामें अनुवाद किया। १८१७ ई०में उर्दूमें और भी दो उपानपद् 'कठोपनिषत्' और 'मुण्डकोपनिषद्', १८१८ ई०में 'गायत्री का अर्थ' तथा १८२६ ई०में 'ब्रह्मसिद्ध मृदल्यका लक्षण' नामक ग्रन्थ लिखे।

राजा राममोहनने १८२१ ई०में मिशनरियोंके प्रचारित ईसा-धर्मका प्रतिवाद करके 'प्राज्ञसेवधि' नामक एक पुस्तककी रचना की। १८२३ ई०में 'पद्यप्रदान' नामक एक दूसरी प्रतिवाद-पुस्तिका प्रकाशित हुई। १८२४ ई०में 'प्रार्थनापत्र' १८२७ ई०में 'गायत्री परमोपासनाविधानम्', १८२८ ई०में 'ब्रह्मोपासना' तथा १८२६ ई०में 'अनुष्ठान' नामक ग्रन्थ निकाले गये।

इसके बाद राजा राममोहन रायको बहुत मोर्से प्राज्ञ-संगीत है। आज भी उनके रचित सङ्गीत, इस देशके शिक्षित समाजमें गाये जाते हैं। फिर उनके रचित 'गौड़ीय व्याकरण', 'अद्वैत' तिभिन्नात्मक भादि और भी कई बङ्गला ग्रन्थ मिलने हैं।

इनके अलावा १८१७ ई०में शास्त्रवद्वति और चाणक्य श्लोकका बङ्गानुवाद, १८१८ ई०में स्त्रीशिक्षाविषयक प्रस्ताव, १८१८ ई०में नीतिकथा, १८१६ ई०में मनोरञ्जन इतिहास, श्रोयुत, गौरमोहन विद्यालङ्कार और राजा राधाकान्तदेवकी बनाई राधाकान्तनीतिकथा, पियर्सन साहबकी रचित वाक्यावली, मि० प्टुयार्टकी पेंतिहासिक नीतिगल्प, १८२० ई०में राजा राधाकान्तदेव-विरचिन स्त्री शिक्षाविषयक, १८२१ ई०को श्रीरामपुरसे मुद्रित सद्गुण और धर्म और १८२१ ई०को महेश्वरलाल प्रेसमें मुद्रित आत्मतत्त्वकौमुदी, ये सब ग्रंथ पाये जाते हैं।

आत्मतत्त्व-कौमुदी नामक ग्रंथ प्रबोधचन्द्रोदय नाटकक, गद्यमें बंगानुवाद है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटकके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हैं। किन्तु इस अनुवादके रचयिता तीन व्यक्ति हैं, पहिलेन काशीनाथ तर्कपञ्चानन, गंगाधर ग्याय-रत्न और रामशङ्कर गिरोमणि। तीनों अनुवादकोंमें जिस भावमें इसका अनुवाद किया है उससे नाटकका क्रम विनष्ट नहीं होता। इस बंगानुवादसे बंगीयसाहित्यका बहुत लाभ पहुँचा है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कलिराजाकी याता—एक नाटक है। यह १८२१ ई०में रचित और अभिनोत हुआ है।

ज्ञानाज्ञान—यह भी राममोहन रायके अभिमतके प्रति कूल रचित अति परिष्कृतपूर्ण एक बंगला गद्यमें प्रतिवाद ग्रंथ है। श्रीमधुसूदन तर्कालङ्कार नामक एक परिष्कृतने यह ग्रंथ लिखनेका उद्देश था है, इस सभ्यन्धमें एक भूमिका लिखी है।

रामरत्न—१८२६ ई०में नदिया-जिलावासी एक चारन्द्र प्राणने रामरत्न नाम के कर देवोभागयत ग्रंथका बंगानुवाद किया।

जीवोद्धार—१८२६ ई०में यह ग्रंथ छपा गया है। यह "नित्यकर्म पद्धति" है। इसमें संस्कृत मूल और बंगानुवाद है। गंगाकिशोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं।

वासवदत्ता मदनमोहन तर्कालङ्कार महाशयका द्वितीय ग्रन्थ होने पर भी काव्यांशमें, रचना-सौन्दर्यमें तथा आयत्नमें यह सबसे बड़ा है।

इसके सिवा छोटे छोटे बच्चोंकी शिक्षाके लिये मदन

मोहन तर्कालङ्कारने गिशुगिक्षाका प्रथम भाग, द्वितीय भाग और तृतीय भाग रचे।

१८५७ ई०से ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा रचित प्रबोध-प्रभाकर नामक गद्य ग्रन्थ मुद्रित हुआ। १८५८ ई०को ४६ वर्षकी अवस्थामें ईश्वरचन्द्र इस लोकसे चल बसे। मृत्युके पहले वे और भी कितनी पुस्तकें लिख गये थे, किन्तु उनकी जीवदशामें प्रबोधप्रभाकरके सिवा और कोई पुस्तक छपी न थी। गुप्त महाशयकी एक दूसरी पुस्तकका नाम हितप्रभाकर है। यह भी गद्य पद्यमय है। बोधेन्दु-विकाश भी उन्हींका बनाया हुआ है। यह संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद है—नाटकके आकारमें ही रचा गया है। इस ग्रन्थके छपते न छपते ग्रन्थकार परलोकको सिधारे। उस समय इसके सिर्फ तीन अङ्क छपे थे। गुप्त महाशयकी गद्य रचनाके मध्य यही पुस्तक उत्कृष्ट है।

गुप्त महाशयने कलिनाटक नामक और भी एक ग्रन्थ लिखना शुरू किया था, किन्तु दुर्भाग्यवशतः वे अकाल ही इस लोकसे चल बसे। इनके जीवनचरित्रके सभ्यन्धमें अनेक विषय 'ईश्वरचन्द्रगुप्त' शब्दमें लिखे जा चुके हैं। बङ्गला-साहित्यके मध्ययुगके सबसे अन्तिम ग्रन्थकार ईश्वरचन्द्र गुप्त हैं। इनके बाद ही बङ्गीय साहित्यके वर्तमान युगका आरम्भ हुआ।

संस्कृत कालेजके परिष्कृतोंके द्वारा बङ्गला साहित्यकी यथेष्ट उपरति हुई है। संस्कृत कालेजमें भी बङ्गलाभाषाके अनुशीलनके निमित्त एक समिति प्रतिष्ठित हुई थी। रेमेरेण्ड कृष्णमोहन बन्योपाध्याय उस समितिके सदस्य थे। उनके अतिरिक्त और भी कितने सदस्य बङ्गलाभाषाकी उन्नतिके लिये कई एक सारगर्भ प्रस्तावना तथा प्रबन्धका प्रचार करते थे। किन्तु यद्यपि संस्कृत कालेजके कतिपय परिष्कृतोंने ही बङ्गलाभाषाकी पुष्टि की। और क्या, उन्हें आधुनिक बङ्गलासाहित्यके जन्मदाता कह सकते हैं। परिष्कृत ताराशङ्कर, विद्यासागर एवं नाट्यकार रामनारायण प्रभृतिके नाम बंगलाभाषाकी वर्तमान उन्नतिके इतिहासमें चिर दिनों तक उज्ज्वल अक्षरोंमें लिखे रहेंगे।

इसके सिवा १६वीं शताब्दीके आरम्भसे ही साप्ता-

श्रुत्येव वाचू भी अंगरेजी प्र'धोंके आधार पर उपन्यास लिखनेमें प्राप्त हुए थे । पादचात्य विधाने पाण्डित्य लाभ करके-देशीयभाषाके अनुशीलन, जातीय साहित्यकी सेवा तथा पादनात्य आदर्श लक्ष्य करके स्वदेशकी सेवा यङ्किसचन्द्रकी प्रतिभामें पूर्णरूपसे विकसित हो उठी थी ।

चक्रिचन्द्र बंगीय साहित्यमें नूतन युगके प्रवर्तक थे । उनकी प्रन्धावलीमें नूतन भावकी सृष्टि, नूतन चिन्ताकी पुष्टि, एवं श्रमिनय कल्पनाका युगवत् आविर्भाव देख कर बंगदेशके कोने कोनेमें शानन्त् रच गूँज उठा था ।

यङ्किसचन्द्रकी मौलिकता, उस तरहकी कल्पनाकी कमनीय लोला, उस तरहकी सौन्दर्य तथा लावण्यच्छटा, उस तरहकी मधुमयो रचना तथा गलयचतुरताबंगीय गद्यसाहित्यमें और कहाँ भी दुष्टिगोचर नहीं [होती] । यङ्किसचन्द्रने अंगरेजी साहित्य तथा देशीय संस्कृत साहित्यसे जो सम्पद् संग्रह की थी, जो बल तथा उद्यम प्राप्त किया था एवं उनसे जो माधुर्य तथा सौन्दर्य उनके हृदयमें उद्भासित हो उठे थे, जो स्वदेशानुराग उनके चित्तश्रेष्ठमें उपास्य देवताकी तरह विराज रहा था, उन्हीं सब भावोंकी धे अपने साहित्यमें प्रतिफलित कर गये हैं । शेष जीवन कालमें यङ्किसचन्द्र महाशयने कई एक धर्मसम्बन्धी प्र'धोंका निर्माण किया था ।

उस समयसे ही बंगसाहित्य वास्तविकमें जनमुष्पी गंगाप्रवाहकी तरह उच्छलित तरंगोंसे परिपूर्ण विजाल आकार धारण करके उन्नतिकी ओर प्रचलित हो रहा है । हम समय हेमचन्द्र चक्रवोपाध्याय, द्विजन्द्रनाथ ठाकुर, चन्द्रनाथ घसु, महामदोपाध्याय श्रीदत्तसाहू जालो पूर्ण-चन्द्र घसु, मिशिरकुमार घोष, नवीनचन्द्र-सेन, श्रीयुत-रघोन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति प्रचलित साहित्य महारथियोंने बंगसाहित्य-तरंगिनोके धारा-प्रवाहकी गौरव-गर्भसे परि-पुष्ट कर दिया है । वर्त्तमान गद्य साहित्य प्रधानतः यङ्किस-चन्द्रके आदर्शसे एवं वर्त्तमान पद्य साहित्य प्रधानतः श्रीयुत-रघोन्द्रनाथके प्रभावसे प्रभावान्वित हुए हैं ।

बंगसाहित्यके वर्त्तमान युगका इतिहास अभी भी लिखनेका समय उपरिष्ठत नहीं हुआ है । हम समय भी पूर्ण बहुयमने, भाव तथा भाषाकी विनिवृत्तामें बंगीय-साहित्य क्षण क्षणमें अदृश्य सागरकी ओर प्रवाहित होता

जा रहा है । बंगला बहुयसाहित्य बहुत पहले ही पद्ये उन्नतिका परिचय दे चुका था, किन्तु गद्यसाहित्यकी वही उन्नति १९वीं शताब्दीके पहले परिलक्षित नहीं हुई थी । १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जिम साहित्यका प्रचार हुआ, वह साहित्य उस शताब्दीके शेष भाग तक रचना-भारधमें उन्नत, भाव प्रवाहमें समृद्ध तथा कतिपय विषयोंमें परिपुष्ट हो चुका था । यदि सच पूजा जाय तो वर्त्तमान बंगला गद्यसाहित्यकी भाशातीन उन्नति हुई है ।

यङ्किसचन्द्र ( सं० १०० ) यङ्किसचन्द्रका रङ्गताम्रभाषां जायने जन ड । कास्य धानु, कांसा । रंगि और तविके योगसे यह धानु तैयार होती है, इसीलिये इसका नाम यङ्किस-चन्द्र है ।

यङ्किसेन ( सं० पु० ) रक्त वक्रपुष्प, लाल फूलवाला अमर । यङ्किसेन—१ धातुरूप या शाक्यातव्याकरणके प्रणेता । २ चिकित्सासारसंग्रह और यङ्किसेन नामक वैद्यकके रचयिता । इनके पिताका नाम था गदाधर । काञ्चिका नगरमें इनका वास था ।

यङ्गाधिकश्रमण—अतीचारचूर्णके प्रणेता । यङ्गारि ( सं० पु० ) यङ्गस्य रङ्गधातोरविरा। अस्य यङ्गा-धातोर्जाकरत्वात् तथात्वं । हरिताल, हरनाल ।

यङ्गालिजा ( सं० स्त्री० ) बंगाली देली । यङ्गाली ( सं० स्त्री० ) बंगाली देली । यङ्गायलेह ( सं० स्त्री० ) प्रमेहरोगमें अवलेहविशेष । ही रसो रांगेकी मसफकी मधुके साथ पीछे से तोला मुष्ट और गन्धक सेवन कराये । इससे प्रमेहरोग आरोप्य होता है । ( खेन्दुखारवं० )

यङ्गाष्टक ( सं० स्त्री० ) प्रमेहरोगमें व्ययहार्दां औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, नीह, रुरा, सर्पार, मपरक और ताँबा प्रत्येक समान भाग तथा समीके बराबर रांगा इन्हें एकत्र कूट कर गजपुटमें पाक करे, पीछे मीषजीतल होने पर उतार ले । इसकी मात्रा २ रसो और अनुपान मधु, हल्दीका चूर् और आँसुका रस है । इसका सेवन करनेसे पीस प्रहारका प्रमेह, शामकीय, विमृशिका, विषम ज्वर, गुल्म, अर्श, मूलात्तासार आदि रोग निगष्ट होने हैं ।

वङ्गिपुरम्—मान्द्राजप्रदेशके छठ्ठणा-जिलान्तर्गत एक नगर । यह वापटलासे १६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । यहाँके बल्लभराय मन्दिरके गद्यङ्कस्तम्भमें तथा अगस्त्येश्वर स्वामीके मार्गद्वरमें दो शिलाफलक देखे जाते हैं । पहला १४८१ शकमें विजय-नगरराज सदाशिवरायके शासनकालमें उत्कीर्ण हुआ है । इसी साल मुसलमानोंने विजयनगरको तहस-नहस कर डाला था । दूसरा फलक १४७८ शकमें उक्त राजाके समय खुदा गया है । उसमें मूर्त्तिराजदेव चौड़ महाराजका दानवृत्तान्त लिखा हुआ है ।

वङ्गिरि ( सं० पु० ) पुराणानुसार एक राजाका नाम ।

( भागवत १२।१।३० )

वङ्गीय ( सं० ति० ) वङ्ग- ( गहादिभ्यश्च । पा ४।२।१३० ) इति छ । वङ्गदेशोद्भव, वङ्गदेशका ।

वङ्गुला ( सं० स्त्री० ) एक रागिणी । रागिणी देखो ।

वङ्गुद ( सं० पु० ) एक असुरका नाम । इन्द्रने इसका वध किया था ।

वङ्गेश्वर ( सं० पु० ) वङ्गः तन्नामकदेशस्य ईश्वरः अधिपतिः । बंगालका राजा ।

वङ्गेश्वररस ( सं० पु० ) औषधविशेष । यह औषध वङ्गेश्वर और बृहद्वङ्गेश्वरमेदसे दो प्रकारका है । प्रस्तुत-प्रणाली पारामरस ८ तोला, गन्धक, ताम्रभस्म, प्रत्येक ३२ तोला, अरुवनके दूधके साथ घोंट मूपायन करके भूवरयन्त्रमें पाक करे । इस औषधकी मात्रा २ रत्ती है । इसे घीके साथ चाट कर आधा तोला पुनर्णवाके रस वा काथ और गोमूल वा हृदित्राके रसके साथ पान करे तो शुचमोदर रोग जाता रहना है ।

( रतेन्द्रधारसं० उदरीरोगाधि० )

दूसरा तरीका—रससिन्दुर और रांगा समान भाग ले कर मर्दन करे । पीछे दो माशा मधुके साथ इसका सेवन करनेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है ।

बृहद्वङ्गेश्वर—प्रस्तुत-प्रणाली—रांगा, पारा, गन्धक, चांदी, कपूर, अथरक प्रत्येक २ तोला, सोना, मुका प्रत्येक दो मात्रा इन्हें केशरके रसमें भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे । प्रमेहोरोगाधिकारमें यह एक उत्कृष्ट औषध है । दौपके बलाबलके अनुसार बहुरोका दूध,

गायका दूध वा दधि अनुपानमें सेवन करना होता है । इसके सेवनसे बीस प्रकारके प्रमेह, मूत्ररुच्छ्र, पाण्डु, धातुस्थ उवर, हलीमक, घात, गृहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, बृहमूल, मूत्रमेह और मूत्रातिसार आदि रोग प्रशमित होते हैं । इससे कान्ति, बल, वर्ण, भोज और शुक्रकी वृद्धि होती है । ( रतेन्द्रधारसं० प्रमेहोरोगाधि० )

वच ( सं० पु० ) वकीति वच-अच् । १ शुक्र पक्षी, तोता । २ सूर्य । ३ कारण । ४ वचन, वाक्य ।

वचःक्रम ( सं० पु० ) वचसः क्रमः । वाक्यका क्रम, वाक्-प्रणाली ।

वचकतु ( सं० पु० ) वकीति वच् ( स्युचिन्म्योऽन्युजीग्ल-कतुचः । उण् ३।०१ ) इति अकतुच् । १ ब्राह्मण । २ बृहदारण्यक उपनिषद्बुधवर्णित एक व्यक्ति । ( ति० ) ३ चावदूक, वक्ता ।

वचगोति—राजपूत जातिमें एक किम्वदन्ती है, कि दिल्ली-श्वर पृथ्वीराज जब शाहजुहीन गोरी द्वारा परास्त हुए, तब उनके भ्राता चाहरदेवके वंशधर कंसराय तथा बरियार सिंहके अधीन कितने हो चौहान लोग संभल गढ़ परित्याग कर १२४८ ई०में सुलतानपुर जिलेके जम्बावन नामक स्थानमें बस गये । यहाँ उन लोगोंने मुसलमानोंके भयसे अपने चौहान नामके बदले "वत्स्यगोती" नाम ग्रहण किया । आगे चल कर 'वत्स्यगोती'से अपभ्रंशमें 'वचगोति' हो गया है ।

द्वितीय उपाख्यानसे जाना जाता है, कि उपरोक्त चाहरदेवके प्रपौत राणा संगतदेवके इकोस लड़के थे । उनमें सर्वकनिष्ठ ही पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए एवं दूसरे दूसरे लड़कोंने अपने अपने अट्टकी परीक्षाके लिये विभिन्न देशोंकी यात्रा की । उनमेंसे बरियार सिंह तथा कंसरायने मैनपुरी जा कर बड़ा उद्दीनके अधीन सैनिक रूचि अवलम्बन की । उन लोगोंने वहाँसे भर जातिके विशद युद्ध करनेके लिये अयोध्यामें आ कर वास किया । बरियार सिंहके जम्बावनमें बस जानेके बाद प्रतापगढ़के निरुद्धवर्ती कोटविलखार नामक स्थानमें, सामन्तराज तथा विलखरिया क्षत्रियोंके सरदार रामदेवके अधीन नौकरे की । धीरे धीरे वे उक्त सामन्तराजके प्रियपात बन गये एवं उन्होंने सामन्तराजकी कन्याका



पाणिग्रहण किया। कुछ ही दिनोंके बाद राजपुत्र दलपत शाहको मार कर ये यहाँके राजा बन बैठे।

एक समय अयोध्या प्रदेशमें इन वचगोति राजपूतोंकी प्रधानता फैली हुई थी। उन्नाय-राजवंशका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि अयोध्याके प्रसिद्ध राजा तिलकचाँदके समय तक वचगोतिगण यहाँके राज-समाजमें विशेष आदर पाते थे। नये राजाके अमियेकके समय ये राजकुमारके मस्तक पर राजतिलक लगा कर जब उन्हें राजा मान लेते थे, तब उनकी राजमर्यादा सार्यक होती थी। कुयारके राजा एवं हसनपुरबाँधुआके दीवान इम बंजके प्रधान सामन्त कहलाते हैं।

हसनपुरबाँधुआके सरदार इम समय इस्लामधर्ममें दीक्षित हो कर खानजादा नामसे परिचित होने पर भी बनीयाके राजाओंकी राजतिलक करनेके अधिकारी हैं। अरौरके सोमवंशी सरदारगण, रामपुरके विपेनगण, बमेटकीके बग्यल गोतिगण एवं तिलोई-घासो कन्हाई पुरियागण जब तक इनसे राजटीका नहीं पा लेते, तब तक ये अपने अपने पूर्वपुरुषोंके पदके अधिकारी नहीं हो सकते।

सुलतानपुरके बरहगोत्री लोग विलवरिया, तथा इया, चन्दौरिया, कठवांग, आले सुलतान, रघुवंशी तथा गर्गवंशी प्रभृतिकी कन्याओंका पाणिग्रहण करते हैं एवं तिलकचाँद बाई, मैनपुरी चौहान, सूर्यवंशी, गीतम, विपेन तथा बग्यलगोति प्रभृतिके हाथ कन्यादान करते हैं। जौनपुरके वचगोति लोग रघुवंशी, बाई, जीपटभाय्य, निहुम्म, धनमन्त, गीतम, गहरवार, पणवार, चन्देल, शीनक तथा दूगवंशी प्रभृतिकी कन्या प्रदण करते एवं कन्हन, सरोति, गीतम, सूर्यवंशी, राजवाड़ा, विपेन, कन्हाई पुरिया, गहरवार, बघेल, बांग प्रभृतिकी अपनी कन्या देते हैं।

पचण्टी ( सं० खी० ) १ सारिका, मैना । २ एक शत्रु-का नाम । ३ वृक्षी ।

पचन ( सं० खी० ) उचवनेऽनेनेति द्नेपामादात्तरवाद्दस्य तथात्वं, घच् लघुट् । १ मनुष्यके मुँहसे निकला हुआ सार्यक शब्द, वापय । पर्पाय—इरा, सरस्वती, प्राप्ती, माया, वाणी, सारदा, गिरा, गिर, गिराँदयो, मोरँयो,

भारतेभ्यरी, वायू, वाचा, यागद्वयो, वर्षामातृका, भावित, उक्ति, व्यवहार, लपित, वचस् ।

वैदिक पर्पाय—घारा, हला, गीः, गोरो, गाघयो गमीरा, गम्मीरा, मग्ना, मन्नाजनी, घाशी, वाणी, वाणीच, वाण, पयि, भारती, धमनि, नाली, मैना, मैल, सूर्य, सरस्वती, नियत, स्वाहा, घग्नु, उपदि, मायु, काङ्क, जिह्वा, घोप, सर, मग्ध, खन, प्रक, होला, गीः, गाघ, गण, धेना, ग्मा, विपा, नना, कशा, धियणा, गीः मग्ना, मघी, अदिति, शची, घाक्, अनुष्टुप्, धेनु, वल्लु, गल्वा, सर, सुपणी, घेकुरा ।

२ व्याकरणमें शब्दके रूपमें वह विधान जिससे एकवच वा बहुवचका बोध होता है। हिन्दीमें दो ही वचन होते हैं—एकवचन और बहुवचन। पर कुछ और प्राचीन भाषाओंके नमान संस्कृत में एक तीसरा वचन भी होता है। ३ शुण्ठी, सौंड।

पचनकर ( सं० खी० ) घचस्कर, जो अपने पचन पर अटल हो ।

पंचनकारिन् ( सं० खी० ) आशाकारी ।

पचनमुक्ति ( सं० खी० ) जैनधर्मके अनुसार वाणीका ऐसा संयम जिससे यह अशुभ वृत्तिमें प्रवृत्त न हो ।

पचनगोचर ( सं० खी० ) वचनेन गोचरः । प्रवक्षीभूत, जो वचनसे प्रवक्ष्य हुआ हो ।

पचनप्रादिन् ( सं० खी० ) वचनें गृह्यतीति प्रद-णिनि । वचन पर स्थित, वचनके अनुसार काम करनेवाला ।

पचनपटु ( सं० खी० ) वचने पटुः । वाक्पटु, वाक्कुशल ।

पचनमात्र ( सं० खी० ) निश्चिहीन वाषय ।

पचनलक्षिता ( सं० खी० ) यद् परकीया नायिका जिम-की बातचीतसे उसका उपपत्तिसे प्रेम लक्षित वा प्रकट होता हो ।

पचनविदग्धा ( सं० खी० ) नायिकाओंका एक भेद, यद् परकीया नायिका जो अपने वचनकी चतुराईसे नायककी प्रीतिका साधन करती हो ।

पचनविपद्य ( सं० खी० ) ज्ञानप्रविपद्य ।

पचनविरोध ( सं० खी० ) प्रमाणविपद्य ज्ञानप्रवापय ।

पचनप्राकि ( सं० खी० ) मौलिक कथा ।

पचनदात ( सं० खी० ) बहु वाषय ।

वचनसहाय ( सं० लि० ) जा किसी मनुष्यके साथ वात-  
चित करनेके लिये विनयी और मिष्टभाषी व्यक्तिको अपने  
साथ ले जाता हो, वातचीत करनेवाला साथी ।

वचनानुग ( सं० लि० ) वचन अनुगच्छति गम-ड ।  
वाष्यका अनुगामी, जो वचनके अनुसार चलता हो ।

वचनयत् ( सं० लि० ) १ वाष्यकशूल, बोलनेमें चतुर ।  
२ सुवका, अच्छा बोलनेवाला । ३ प्रशंसावाष्यकयन-  
शूल, बड़ाई करनेवाला । ४ अथक शब्दकारो ।

वचनीकृत ( सं० लि० ) तिरस्कृत, लाञ्छित ।

वचनीय ( सं० लि० ) वच-अनीयत् । १ वचनीय । २ निन्दा,  
शिकायत ।

वचनीयता ( सं० स्त्री० ) वचनीयस्य भावः तल्लटाप् ।  
लोकापवाद ।

वचनेस्थित ( सं० लि० ) वचने तिष्ठति स्मेति स्था-क ।  
(तदुपेयं कृति बहुलं । पा ६।३।१५) इति सप्तम्या अलुक् ।  
जो वचन पर अटल हो । पर्याय—वचनस्थ, विधेय,  
विनयप्राप्ति, आश्रय ।

वचनोपक्रम ( सं० पु० ) वचनस्य उपक्रमः । वाष्यारम्भ ।  
पर्याय—उपस्थास, वाङ्मुल ।

वचर ( सं० पु० ) अवान्तरं चरतीति अघ-चर-अच्, अङ्गोप ।  
१ कुक्कुट । २ शठ ।

वचलु ( सं० पु० ) शत्रु ।

वचस् ( सं० स्त्री० ) उच्यते इति वच ( उर्वधात्रुम्योऽनुत् ।  
उण् ५।१८२ ) इति अलुत् । वाष्य ।

वचसांपति ( सं० पु० ) वचसां वार्चा पतिः पठ्या अलुक् ।  
गृहस्पति ।

वचस्कर ( सं० लि० ) करोतीति कृ-अच्, वचसां करः ।  
वचनपरस्थित, वचनानुसार कार्याकारी ।

वचस्य ( सं० लि० ) वचनयोग्य, प्रशंसनीय, विख्यात ।

वचस्था ( सं० स्त्री० ) स्तुतिकी इच्छा ।

वचस्यु ( सं० लि० ) स्तुतिकाम, स्तुतिका अभिलाषी ।

वचा ( सं० स्त्री० ) वाचयतीति वच्-णिच्-अच्, निपात-  
नात् ह्रस्वः, यद्वा अन्तर्भाविण्यर्थात् वचोऽच् । औषध-  
विशेष । यह काश्मीरसे आसाम तक और मणिपुर तथा  
बर्मामें दो हजारसे छः हजार फुट तक ऊँचे पहाड़ों पर  
पानीके किनारे होता है । इसके पत्ते सीसनेके पत्तेके

आकारसे, पर उससे कुछ बड़े होते हैं । इसके फूल  
नरगिसके फूलकी तरह पीले होते हैं । पत्तोंकी नाल  
लम्बी होती हैं । पत्तोंसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता  
है । यह तेल खुला रहनेसे उड़ जाता है । इसकी जड़  
लाली लिए सफेद रंगकी होती है । जड़में अनेक गांठें  
होती हैं ।

संस्कृत पर्याय—उप्रगन्धा, पङ्गन्धा, गोलोमी, शत-  
पर्विका, तीक्ष्णा, जटिला, मङ्गल्या, विजया, उमा,  
रक्षोघ्नी, वच्या, लोमशा, भद्रा । गुण—अति तीक्ष्ण,  
कटु, उष्ण, कफ, आम, प्रस्थिशोक, यातञ्जर और अति-  
सार-रोगनाशक । ( राजनि० )

भावप्रकाशके मतसे वच, खुरासानी वच और महा-  
भरोवच यही तीन प्रकारकी वच हैं । वचके पर्याय—  
उप्रगन्धा, पङ्गन्धा, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्नी,  
मङ्गल्या, जटिला, उमा और लोमशा । गुण—उप्रगन्धा,  
कटुतिक्तारस, उष्णवीर्य, वमिजनक, अग्निवृद्धिकारक, मल-  
मूलशोधक तथा विवग्ध, आध्मान, शूल, अपस्मार, कफ,  
उन्माद, भूतदोष, कृमि और पायुनाशक ।

खुरासानी वच—खुरासानी वचको पारसीक वच  
कहते हैं । यह वच सफेद होता है । इसका दूसरा  
नाम हैमवती है । इस वचमें पूर्वोक्त सभी गुण हैं, विशेष  
पतः पायुनाशकके पक्षमें यह सर्वश्रेष्ठ है ।

मदामरी वच—पश्चिम देशमें कुलिञ्जन नामसे  
प्रसिद्ध है । इसका दूसरा नाम सुगन्धा भी है । गुण—  
उप्रगन्धविशिष्ट, विशेषतः कफ और कासनाशक, स्वर-  
प्रसादक, रुचिजनक तथा हृदय, कण्ठ और मुखशोधक ।  
इसके सिवा स्थूलप्रस्थिविशिष्ट एक और प्रकारकी सुग-  
न्धित वच है । यह वच पूर्वोक्त वचसे हीनगुणविशिष्ट है ।

तोपचीनीको द्वीपान्तर वच कहते हैं । अन्यद्वीपमें  
उत्पन्न होनेके कारण इसका द्वीपान्तर नाम हुआ है ।  
गुण—ईषत् तिक्तारस, उष्णवीर्य, अग्निदीप्तिकारक और  
मलमूलशोधक, विवग्ध, आध्मान, शूल, यातङ्गाधि, अप-  
स्मार, उन्माद और शरीरवेदननाशक, विशेषतः फिरंगी  
रोगमें यह बहुत उपकारी है । ( भावप्र० )

गडघुराणमें लिखा है, कि एक मास तक वचका जल,  
दूध या घृतके साथ सेवन करनेसे स्मरणशक्ति बढ़ती

यद् और सूर्यप्रदूषणके समय एक एक घण्टे के साथ  
संयन करनेमें धी-धी-धी-धी वृद्धि होती है ।

( गण्डपु० १६३ म० )

२ सारिका पक्षी, मैना । ३ सूर्य । ४ वारण ।

५ वचन, वाचय ।

व्याचार्य ( सं० पु० ) आचार्यमेव ।

व्यादिचूर्ण—गुणमरोगनाशक औषधविशेष । प्रस्तुत  
प्रणाली—घच, हरीतकी, द्विगु. सौन्धव लवण, अमल  
येन, गवक्षार और यमानी इन सबोंका एकल बराबर बरा-  
बर भाग ले कर चूर्ण करे और प्रातःकाल ४ प्राश ले कर  
गरम जलके साथ संयन करे । ऐसा करनेमें थोड़े ही  
समयमें गुणमरोग दूर हो जाता और भूख रूच लगती है ।

व्याचार्च ( सं० पु० ) १ सूर्योपासकमाल । २ पारसीजाति ।

व्यादिवर्ग ( सं० पु० ) वैद्यक औषधिसङ्घ ।

( वागट ए० ३५ )

व्याघ्रगुण ( सं० स्त्री० ) गण्डमाला रोगाधिकारमें घृती-  
पध्विशेष । ( सं० )

वनि ( सं० पु० ) १ वचन । २ नाम, अभिधान ।

व्यामद ( सं० पु० ) गृह्णामीति प्रद-शब्द-वचसां प्रदः ।  
कर्ण, कान ।

वयोवृत् ( सं० स्त्री० ) यावत्प्रमाव ।

वचोविदु ( सं० स्त्री० ) वचस्-विदु-किप् । निषेधित ।

वच्छिद्रवाला—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान ।

वच्छिद्र—निषन्धसारके प्रणेता ।

वज्र ( सं० पु० ) १ भार, बोम्ब । २ तील । ३ मान,  
मर्गादा ।

वज्रनी ( सं० स्त्री० ) १ जिम्नका बहुत बोक ही, भारी ।  
२ जिम्नका कुछ अक्षर ही, माननेयोग्य ।

वज्र ( सं० स्त्री० ) १ हेतु, कारण । २ तख्त । ३ प्रकृति ।

वज्रा ( सं० स्त्री० ) १ संघटन, रचना । २ आकृति, रूप ।  
३ दगा, भयंका । ४ सज्जघन, चालद्राम । ५ प्रणाली,  
रीति । ६ मिनहा, मुजरा ।

वज्राक्षर ( पा० वि० ) जिम्नकी बनावट या गठन आदि  
बहुत शब्दों ही, दर्शानेव ।

वज्राक्षरी ( पा० स्त्री० ) १ कैनाम, कपड़े धोकर पहननेका  
सुन्दर ढंग । २ गजाघटका उत्तम ढंग । ३ किसी प्रकार-

की मर्गादा आदिका मली गति निर्वाह ।

वज्रात ( सं० स्त्री० ) १ वज्री, मन्त्री या अमात्यका  
पद । २ मन्त्री या अमात्यका कार्य । ३ अमात्यका  
कार्यालय ।

वज्रीका ( सं० पु० ) १ वृत्ति । २ यद् वृत्ति या आर्थिक  
सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या  
बिगड़े हुए ईदों आदिको दी जाती है । ३ यद् जप या  
पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है ।

वज्राकाक्षर ( पा० वि० ) वज्रीका पानेवाला ।

वज्रीर ( सं० पु० ) १ यद् जो वादनादको रिपासतक प्रशम्भ-  
में सलाह या सहायता दे, मन्त्री, दीवान । २ मन्त्रज्ञको  
एक गोटी जो वादनादसे छोटी और शेष सब मोहरोंसे  
बड़ी होती है । यद् गोटी भाषे, पीछे, दाहिने, बाएँ और  
तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने  
घर चल सकती है ।

वज्रीरी ( सं० स्त्री० ) १ वज्रीरका काम या पद । ( पु० )  
२ घोड़ोंकी एक जाति । यद् वज्रीरिस्तानमें पाया जाता  
है । इस जातिके घोड़े बड़े परिधमी और हीड़नेमें बहुत  
तेज होते हैं । इनके फंभे ऊँचे और पुष्टे चौड़े होते हैं ।

वज्रू ( सं० पु० ) नमाज़ पढ़नेके पूर्व शीबाके लिये हाथ  
पाँव आदि धोना । मुसलमानोंका नियम है, कि गमाज़  
पढ़नेके पूर्व धे पहने तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार  
कुहरी करके मधनोंमें पानी डूने हैं । फिर मुँह भी कर  
कुहरीयों तक हाथ धोते हैं और सिर पर पानी ले हाथ  
फेरते हैं । अन्तमें पाँव धोते हैं । इसी आचारका नाम  
वज्रू है ।

वज्रूद ( सं० पु० ) १ सत्ता, अस्तित्व । २ शरीर, देह ।  
३ अमिष्यक्ति, प्रकट या घटित होना । ४ वृष्टि ।

वज्रहात ( सं० स्त्री० ) कारणोंका समूह, यद् बहुवचन जम्ह  
है और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचनमें ही होता है ।

वज्र ( सं० पु० स्त्री० ) यन्तोंने यज्ञ-मन्त्री ( गुणेश्वरवक्त्र-  
रिषेति । उष् ३२२ ) इति स्मृत्ययमेव निगमितः ।  
१ इन्द्रका अक्षयिशेष । पर्याय—हादिनी, कुलिज, भिदुर,  
पवि, जयकोटि, सख, लम्ब, दम्भोलि, अगनि, कुन्दीग,  
मिदिद, मिदु, स्वयम्भुव ।  
मनानी, वज्रमनि,  
अभादि, लिङ्गात्

गिरिकण्टक, गौ, अन्नोदय, मेघभृति, गिरिज्वर, जाम्बयि, दम्भ, भिद्र, अश्वज। (षिका०) वैदिक पर्याय—विद्युत्, नेमि, हेति, नम, पवि, सूक, वृक, यध, वज्र, अश्व, कुत्स, कुलिश, तुज, तिग्म, मेनि, स्वधिति, सायक, परशु।

(वेदनि० २।२०)

वज्रकी उत्पत्तिके विषयमें पुराणादिमें विभिन्न मत देखा जाता है। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि जब विश्व-कर्मनि सूर्यको भ्रमियन्त्र ( खराद ) पर चढ़ा कर खरादा था, तब छिल कर जो तेज निकला था, उसीसे विष्णुका चक्र, यद्रका शूल और इन्द्रका वज्र बना था।

( मत्स्यपु० ११ अ० )

वामनपुराणमें लिखा है, कि इन्द्र जब द्रिणिके गर्भमें घुस गये थे, तब वहां उन्हें बालकके पास ही एक मांस-पिण्ड मिला था। इन्द्रने जब क्रुद्ध हो उसे हाथमें ले कर दबाया, तब वह लम्बा हो गया और उसमें सी गंडे दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन हो कर वज्र बन गया।

( वामनपु० ६८ अ० )

भागवतमें लिखा है, कि इन्द्रने वृत्तासुरका वध करनेके लिये दधोचि मुनिकी अस्थि द्वारा विश्वकर्मसे वज्र बनाने कहा। विश्वकर्मनि वैसा ही किया। इन्द्रने इसी वज्रसे वृत्तासुरका वध किया था। (भागवत ६।१०-११ अ०)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि जब वज्रका भयानक शब्द सुनाई दे, उस समय पूर्व वा उत्तरमुख खड़े हो जैमिनिमुनिका नाम तीन बार लेनेसे वज्रका भय जाता रहता है। ( आह्निकतत्त्वधृत ब्रह्मपु० ) ऋग्वेदमें उल्लेख है, कि दधोचि ऋषिकी हड्डीसे इन्द्रने राक्षसीका ध्वंस किया। ऐतरेय-ब्राह्मणमें इसका वर्णन इस प्रकार आया है। दधोचि जब तक जोते थे, तब तक असुर उन्हें देख कर भाग जाते थे। परन्तु जब वे मर गये, तब असुरोंने उतपात मचाना आरम्भ किया। इन्द्र दधोचि ऋषिकी शोभमें पुंकर गये। वहां पता चला, कि दधोचिना देहावसान हो गया। इस पर इन्द्र उनकी हड्डी टूटने लगे। पुंकरक्षेत्रमें उनके सिरकी हड्डी मिली। उसीका वज्र बना कर इन्द्रने असुरोंका संहार किया।

अतिरिक्त महापातक होनेसे वज्राघातसे मृत्यु होती है। नारियल आदि वृक्षके शिखर पर वज्रपात होते

देखा जाता है। वज्रपतनके बाद वह पेड़ मर जाता है। अनेक समय वज्राघातसे मृत वा मृतप्राय व्यक्तिको मिट्टा-में गाड़ रखनेसे पुनर्जीवन लाभ करते देखा गया है। इंदोंके बने घर पर वज्रपात होनेसे वह चूर चूर हो जाता है।

अंगरेजीमें वज्रको Thunder-bolt कहते हैं। यह दो मैघोंके परस्पर संघर्षणसे विद्युत्के साथ उत्पन्न होता है। कहते हैं, कि गोबरकी ढेर वा कदली वृक्ष पर वज्र गिरनेसे वह ऊपर नहीं उठ सकता और न भीतर ही घुस सकता है। बहुतांका कहना है, कि वज्र देखनेमें लौह-शालाकाकी तरह होता है, किन्तु यद्यार्थमें सो नहीं है। विद्युत् देखो।

२ विद्युत्, बिजली। ३ रत्नविशेष, हीरा। पर्याय— इन्द्रायुध, हीर, भिद्र, कुलिश, पवि, अमेघ, अशिर, रत्न, वृद्ध, भार्गवक, पटकोण, बहुधार, शतकोटि। गुण— पड़रसोपेत, सर्वरोगापहारक, सकलपापनाशक, सीध्यक, देहदाढ्यकारक और रसायन। (राजनि०) विशेष विवरण हीरक शब्दमें देखो। ४ बालक। ५ धात्री। ६ काञ्चिक, काँजो। ७ वज्रपुण्य। ८ लौहविशेष, एक प्रकारका लोहा। यह वज्रलौह अनेक प्रकारका होता है। जैसे— नीलपिण्ड, अरुणाभ, मोरक, नागकेशर, तिस्रिपङ्क, सर्पावज्र, शै बालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, काङ्कोल, प्रवि-वज्रक, मद्नाथ्य। ९ अश्वविशेष, अवरक। भावप्रकाशमें इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

पुराकालमें इन्द्रने जब वृत्तासुरका संहार करनेके लिये वज्र उठाया, तब उस वज्रसे भागकी चित्तगारियां निकल कर भयानक शब्द करती हुई पहाड़ पर गिरीं। जिस जिस पर्यंतके शिखर पर वह चित्तगारियां गिरी थीं, वही अवरककी उत्पत्ति हुईं। यज्ञसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण इसका वज्र नाम हुआ है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार जातिका है। ब्राह्मण जाति का अवरक सफेद, क्षत्रिय जातिका लाल, वैश्यका पोला और शूद्र जातिका अवरक काला होता है। सफेद अवरक रौप्यके संस्कार विषयमें, लाल रसायनमें, पोला स्वर्ण संस्कारविषयमें और काला अवरक सब रोगोंमें काम आता है।

विनाक, दद, र, नाग और वज्र यज्ञ चार प्रकारका

चन्द्र और सूर्यप्रदणके समय एक पल वच दूधके साथ सेवन करनेसे धी-शक्तिकी वृद्धि होती है।

( गरुडपु० १६३ अ० )

२ सारिका पक्षी, मैना । ३ सूर्य । ४ कारण ।

५ वचन, वाष्य ।

वचाचार्य ( सं० पु० ) आचार्यभेद ।

वचादिचूर्ण—गुन्मरोगनाशक औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—वच, हरीतकी, हिंगु, सैन्धव लवण, अमल वेत, यवक्षार और यमानी इन सर्वोंका एकत बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे और प्रातःकाल ४ माशा ले कर गरम जलके साथ सेवन करे। ऐसा करनेसे थोड़े ही समयमें गुन्मरोग दूर हो जाता और भूल खूब लगती है।

वचार्च ( सं० पु० ) १ सूर्योपासकमन्त्र । २ पारसीजाति ।

वचादिवर्ग ( सं० पु० ) वैद्योक्त औषधिसङ्घ ।

( बाभट्ट सू० ३५ )

वचाघघृत् ( सं० श्लो० ) गण्डमाला रोगाधिकारमें घृतौषधविशेष । ( रस० )

वचि ( सं० पु० ) १ वचन । २ नाम, अभिधान ।

वचाप्रह ( सं० पु० ) गृह्णातीति प्रह-अच्-वचसां प्रहः । कर्ण, कान ।

वचोयुञ्ज ( सं० लि० ) वाष्यवमन्त्र ।

वचोविद् ( सं० लि० ) वचस्-विद्-क्विप् । निवेदित ।

वच्छिकवाला—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान ।

वच्छिय—निवन्धसारके प्रणेता ।

वजन ( अ० पु० ) १ भार, बोझ । २ तौल । ३ मान, मर्यादा ।

वजनी ( अ० वि० ) १ जिसका बहुत बोझ हो, भारी । २ जिसका कुछ असर हो, माननेयोग्य ।

वज्रह ( अ० खी० ) १ हेतु, कारण । २ तत्त्व । ३ प्रकृति ।

वज्रा ( अ० खी० ) १ संघटन, रचना । २ आकृति, रूप । ३ दशा, अवस्था । ४ सजघज, चालढाल । ५ प्रणाली, रीति । ६ मिनहा, मुजरा ।

वज्रादार ( फा० वि० ) जिसकी बनाघट या गठन आदि बहुत अच्छी हो, दर्शनीय ।

वज्रादारी ( फा० खी० ) १ फेरान, कपड़े वगैरह पहननेका सुन्दर ढंग । २ सजाघटका उत्तम ढंग । ३ किसी प्रकार-

की मर्यादा आदिका भली भांति निर्याद ।

वज्रारत ( अ० खी० ) १ वज्रीरी, मन्त्री या अमात्यका पद । २ मन्त्री या अमात्यका कार्य । ३ अमात्यका कार्यालय ।

वज्रीफा ( अ० पु० ) १ वृत्ति । २ वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या विगड़े हुए रईसों आदिको दी जाती है । ३ वह जग या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है ।

वज्रीफाक्षर ( फा० वि० ) वज्रीफा पानेवाला ।

वज्रीर ( अ० पु० ) १ वह जो वादशाहको रियासतके प्रबन्धमें सलाह या सहायता दे, मन्त्री, दीवान । २ सतरञ्जको एक गोटी जो वादशाहसे छोटी और शेष सब मोहरोंसे बड़ी होती है । यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बाएँ और तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चाल सकती है ।

वज्रीरी ( अ० खी० ) १ वज्रीरका काम या पद । ( पु० )

२ घोड़ोंकी एक जाति । यह बलूखिस्तानमें पाया जाता है । इस जातिके घोड़े बड़े परिश्रमी और दौड़नेमें बहुत तेज होते हैं । इनके कंधे ऊँचे और पुट्टे चौड़े होते हैं ।

वज्रू ( अ० पु० ) नमाज़ पढ़नेके पूर्व शीशके लिये हाथ पाँव आदि धोना । मुसलमानोंका नियम है, कि नमाज़ पढ़नेके पूर्व धं पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुह्नी करके नथनोंमें पानी देते हैं । फिर मुँह धो कर कुहनियों तक हाथ धोते हैं और सिर पर पानी ले हाथ फेरते हैं । अन्तमें पाँव धोते हैं । इसी आचारका नाम वज्रू है ।

वज्रूद ( अ० पु० ) १ सत्ता, अस्तित्व । २ शरीर, देह । ३ अभिव्यक्ति, प्रकट या घटित होना । ४-वृष्टि ।

वज्रूहत ( अ० खी० ) कारणोंका समूह, यह बहुवचन शब्द है और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचनमें ही होता है ।

वज्र ( सं० पु० श्लो० ) वज्रतीति वज्र-गती ( शृङ्गेन्द्रामञ्ज-रिषेति । उष् २२८ ) इति रत्नप्रत्ययेन निपातितः । १ इन्द्रका अस्त्रविशेष । पर्याय—हादिनी, कुलिश, मिट्टर, पवि, जतकोटि, सख, शम्भ, दम्भोलि, अशनि, कुलीश, सिद्धि, भिन्दु, सखस, सम्य, सब, अशनी, वज्रागनि, जम्भारि, त्रिदशायुध, शतधातु, शतार, आपोल, अशम,

गिरिकण्टक, गौ, अन्नोत्पद्य, मेघमृति, गिरिज्वर, जाम्बवि, दग्ध, मिद्र, अम्बुज । (पिका०) वैदिक पर्याय—विद्युत्, नेमि, हेति, नम, पवि, सूक, वृक, यध, वज्र, अर्ध, कुत्स, कुलिश, तुज, तिगम, मेनि, स्वधिति, सायक, परशु ।

(वेदनि० २।२०)

वज्रकी उत्पत्तिके विषयमें पुराणादिमें विभिन्न मन देखा जाता है । मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि जब विश्व-कर्मनि सूर्यको भ्रमियन्त ( खराद ) पर चढ़ा कर खरादा था, तब छिल कर जो तेज निकला था, उसीसे विष्णुका चक्र, रुद्रका शूल और इन्द्रका वज्र बना था ।

( मत्स्यपु० ११ अ० )

वागनपुराणमें लिखा है, कि इन्द्र जब दिनिके गर्भमें घुस गये थे, तब वहां उन्हें वालकके पास ही एक मांस-पिण्ड मिला था । इन्द्रने जब क्रुद्ध हो उसे हाथमें ले कर दबाया, तब वह लम्बा हो गया और उसमें सी गांठें दिखाई पड़ीं । वही पीछे कठिन हो कर वज्र बन गया ।

( वागनपु० ६८ अ० )

भागवतमें लिखा है, कि इन्द्रने वृत्तासुरका वध करनेके लिये दधोचि मुनिकी अस्थि द्वारा विश्वकर्मसे वज्र बनाने कहा । विश्वकर्माने वैसा ही किया । इन्द्रने इसी वज्रसे वृत्तासुरका वध किया था । (भागवत ६।१०-११ अ०)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि जब वज्रका भयानक शब्द सुनाई दे, उस समय पूर्व वा उत्तरमुख खड़े हो जैमिनिमुनिका नाम तीन वार लेनेसे वज्रका भय जाता रहता है । ( आह्निकतत्त्वप्रत ब्रह्मपु० ) ऋग्वेदमें उल्लेख है, कि दधोचि ऋषिकी हड्डीसे इन्द्रने राक्षसोंका ध्वंस किया । ऐतरेय-ब्राह्मणमें इसका वर्णन इस प्रकार आया है । दधोचि जब तक जीते थे, तब तक असुर उन्हें देख कर भाग जाते थे । परन्तु जब वे मर गये, तब असुरोंने उत्पात मचाना आरम्भ किया । इन्द्र दधोचि ऋषिकी प्रोजमें पुष्कर गये । वहां पता चला, कि दधोचिचा देहावसान हो गया । इस पर इन्द्र उनकी हड्डी ढूढ़ने लगे । पुष्करक्षेत्रमें उनके सिरकी हड्डी मिली । उसीका वज्र बना कर इन्द्रने असुरोंका संहार किया ।

मतिरिक महापातक होनेसे वज्राघातसे मृत्यु होती है । नारियल आदि वृक्षके शिखर पर वज्राघात होते

देखा जाता है । वज्रपतनके बाद वह पेड़ मर जाता है । अनेक समय वज्राघातसे मृत या मृतप्राय व्यक्तिको मिट्टा-में गाड़ रखनेसे पुनर्जीवन लाभ करते देखा गया है । इतनेके बने घर पर वज्राघात होनेसे वह चुर चुर हो जाता है ।

अंगरेजीमें वज्रको Thunder-bolt कहते हैं । यह दो मेघोंके परस्पर संघर्षसे विद्युत्के साथ उत्पन्न होता है । कहते हैं, कि गोबरकी ढेर वा कदली वृक्ष पर वज्र गिरनेसे वह ऊपर नहीं उठ सकता और न भीतर ही घुस सकता है । बहुतोंका कहना है, कि वज्र देखनेमें लौह-शलाकाकी तरह होता है, किन्तु यद्यार्थमें सो नहीं है । विद्युत् देखो ।

२ विद्युत्, विजली । ३ रत्नविशेष, हीरा । पर्याय— इन्द्रायुध, होर, मिदुर, कुलिश, पवि, अमेय, अशिर, रत्न, दृढ, भार्गवक, पट्कोण, बहुधार, शतकोटि । गुण— पड़ रसोपेत, सर्वरोगापहारक, सकलपापनाशक, सौख्य-कर, देहदादर्यकारक और रसायन । (राजनि०) विशेष विवरण हीरक शब्दमें देखो । ४ बालक । ५ घातों । ६ काञ्जिक, काँजों । ७ वज्रपुष्प । ८ लौहविशेष, एक प्रकारका लोहा । यह वज्रलौह अनेक प्रकारका होता है । जैसे— नीलपिण्ड, अरुणाम, मोरक, नागकेशर, तित्तिराङ्ग, स्वर्णवज्र, शैपालवज्र, शोणवज्र, रोहिणो, काङ्कोल, प्रथि-वज्रक, मदानक्ष्य । ९ अन्नविशेष, अवरक । भावप्रकाशमें इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

पुराकालमें इन्द्रने जब वृत्तासुरका संहार करनेके लिये वज्र उठाया, तब उस वज्रसे आगकी चिनगारियाँ निकल कर भयानक शब्द करती हुई पहाड़ पर गिरों । जिस जिस पर्वतके शिखर पर वह चिनगारियाँ गिरी थीं, वही अवरककी उत्पत्ति हुईं । वज्रसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण इसका वज्र नाम हुआ है । यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार जातिका है । ब्राह्मण जाति का अवरक सफेद, क्षत्रिय जातिका लाल, वैश्यका पोला और शूद्र जातिका अवरक काला होता है । सफेद अवरक रीष्यके संस्कार विषयमें, लाल रसायनमें, पोला स्वर्ण संस्कारविषयमें और काला अवरक सब रोगोंमें काम आता है ।

पिनाक, इद, नाग और वज्र चर चार प्रकारका

अवरक है। इनमेंसे वज्र नामक अवरकको अग्निमें डालने-से वज्रको तरह स्थिर भावमें रहता है, कुछ भी विकृत नहीं होता। यह अवरक अन्य सभी अवरकोंसे उमड़ा होता है। इससे ज्वरारिदोग प्रशमित होता है तथा इससे अकालमृत्यु नहीं होती। अवरकको शोधन करके काममें लाना चाहिये। शोधित अवरक ही गुणकारक होता है।

शोधितका गुण—कषाय, मधुररस, शातवीर्य, आगु-  
ष्कर, धातुवर्द्धक तथा त्रिदोष, म्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहा,  
उदर, ग्रन्थि, विष-श्वीर कृमिनाशक। नित्य सेवन करने-  
से यह रोगनाशक, शरीरकी दृढ़ताम्प्रादक, वीर्यवर्द्धक,  
अत्यन्त कोमलताजनक, परमायुवर्द्धक, पुत्रजनक, मिह  
मदृग विक्रमजनक, अकालमृत्युनाशक तथा प्रति दिन  
सौ खो रमण करनेकी शक्तिजनक होता है।

अशोधितका गुण—पोडाजनक तथा कुष्ठ, क्षय, पाण्डु,  
शोथ, हृद्गन और पाश्र्वांगत वेदना तथा शरीरकी सुखता-  
का उत्पादक। अन्न शब्द देखो।

१० कोकिलाक्षवृक्ष। ११ श्वेत कुण्ड। १२ धूर-  
का पेड़, सेहूँड। १३ छरणके एक प्रपौत्र जो रुक्मिणी-  
गर्भजात प्रयुक्तके पुत्र थे। १४ विश्वामित्रके एक पुत्र-  
का नाम। १५ भाला, धरला। १६ ज्योतिषमें २२  
व्यतीपात योगोंमेंसे एक। १७ वास्तुविद्याके अनुसार  
यह स्वप्न जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। १८ विष्णु-  
के चरणका एक चिह्न। १९ अरुलधोर नामका पीषा।

२० विश्वाम्नादि सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत पन्द्रहवाँ  
योग। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि वज्रयोगके आदि ६  
दण्ड निन्दनीय हैं अर्थात् इन नौ दण्डोंमें यात्रादि कोई  
शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। जिस बालकका इस  
योगमें जन्म होता, वह गुणो, गुणप्राप्तो, बलवान्, तेजस्वी,  
रत्न और धर्यादिका परीक्षक तथा शत्रुनाशक होता है।

(कौश्लप्रदीप) २१ वीरके मतसे चक्राकार चिह्नविशेष।

(त्रि०) २२ वज्रके समान कठिन, बहुत कड़ा या मज-  
बूत। २३ घोर, धारण।

वज्रक (सं० ह्री०) वज्र संज्ञायां कन्। १ वज्रसार। २  
फलितज्योतिषके अनुसार सूर्यके आठ उपग्रहोंमेंसे एक  
जो सूर्यसे तेईसवाँ नक्षत्र होता है

वज्रकसार (सं० पु० ह्री०) वज्रसार।

वज्रकङ्कट (सं० पु०) वज्रः कङ्कटो देहावरणमस्य। हनु-  
मान्का एक नाम।

वज्रकण्टक (सं० पु०) वज्रस्य कण्टकमिव तद्वारकतयात्।  
१ स्तुवीशुश्रू, धूरर। २ कोकिलाक्ष वृक्ष, तालमखाना-  
का पेड़।

वज्रकण्टकशालमली (सं० खी०) नरकभेद। भागवतपुराणके  
अनुसार अट्टाईस नरकोंमेंसे यह नरक तेरहवाँ है। जो सब  
पापी सर्वाभिगामी हैं, यमलोकमें उसकी इस नरकमें गति  
होती है।

"यत्स्थिह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्त्तमानं वज्रकण्टक-  
शालमलीमारोत्य निष्कर्षन्ति ॥" (भागवत ५।२६।२१)

वज्रकन्द (सं० पु०) वज्रकारकः कन्दोऽस्य। १ वज्रकण्ठ,  
शकरकंद। २ वनशूरण, जंगली सूरण या जिमोकंद।  
३ तालके वृक्षका फूल।

वज्रकपाटमत् (सं० त्रि०) सुहृद् द्वारयुक्त।

वज्रकपाली (सं० पु०) वज्रकपालोऽस्यास्तीति इति।  
वीर्योकी महायान शाखाके अनुसार एक बुद्धका नाम।  
पर्याय—हेरम्ब, हेरक, चक्रसम्बर, देव, निशुम्भीश, शशि-  
शेखर, वज्रटीक।

वज्रकर्ण (सं० पु०) वज्रकन्द, शकरकन्द।

वज्रकालिका (सं० ह्री०) खीरोगाधिकारका औषधविशेष।  
प्रस्तुत प्रणाली—कांजी १ सेर, कदकायं पीपलका मूल,  
पीपल, सोंठ, अजवायन, जीरा, मंगरीला, हल्दी, दाहहल्दी,  
वित्ठलचण, सचल लवण, कुल मिला कर एक पल, पाकार्थ  
जल ४ सेर, शेष १ सेर, नियमपूर्वकः पाक करे। यह  
फलकके साथ पीना होता है। इसका सेवन करनेसे  
स्त्रियोंकी अग्निवृद्धि और आमशूल तथा कफ नष्ट हो कर  
बल, वीर्य तथा स्तनदुग्धकी वृद्धि होती है।

(भैषज्यरत्ना०)

वज्रकारक (सं० पु०) नखो नामक गन्धद्रव्य।

वज्रकालिका (सं० खी०) वज्रोपलक्षिता कालिका।  
१ बुद्धकी माता मायादेवीका एक नाम। २ शाक्यमुनि-  
की माता।

वज्रकाली (सं० खी०) १ जिनशक्तिभेद। २ हिन्दूदेवी-  
मूर्तिभेद।

वज्र कीट ( सं० पु० ) एक प्रकारका कीड़ा जो पत्थर या काष्ठको काट कर उसमें छेद कर देता है। कहते हैं, कि गण्डक नदीमें इन कीटोंके द्वारा काटी हुई शिला ही शालग्रामकी बटिया बन जाती है। वज्रदंष्ट्रदिलो।

वज्रकाल ( सं० पु० ) वज्र।

वज्रकुक्षि ( सं० स्त्री० ) पर्वतशुद्धामेद।

वज्रकूट ( सं० पु० ) १ एक पर्वतका नाम। २ हिमालयकी चोटी परका एक एक प्राचीन नगर।

वज्रकृच्छ ( सं० पु० ) प्रायश्चित्तविशेष।

वज्रकेतु ( सं० पु० ) असुरमेद। यह नरकका राजा था।

वज्रक्षार ( सं० स्त्री० ) वज्र, चाँदकः क्षारं। क्षारविशेष। पर्याय—वज्रक, क्षारश्रेष्ठ, विदारक, सार, चन्दनार, धूमोत्थ, धूमजाडुक। गुण—अति उष्ण, तीक्ष्ण, क्षारक, रेचन, शुष्म, उदरपोडा, विष्टम्भ और धमनाशक।

प्लीहादोषाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सामुद्र लवण, सैन्धव लवण, कान्त लवण, यवक्षार, मौचैल लवण, मोहामा और म्वाचिक्षार इनके बराबर बराबर चूर्णकी अक्ववन और थूहरके दूधमें तीन दिन भायना दे कर एक ताँबेके बरतनमें रखे और सुँह बंद कर लेप लगा दे। पीछे उभे पुटपाक करके चूर्ण करे। इसके बाद त्रिभुज, त्रिफला, जीरा, हरिद्रा और चिता इनके समान भाग चूर्णको मिश्रित कर क्षारका अर्द्धांश देना होगा। माता दोषके बलानुसार स्थिर करनी चाहिये। यदि घायुकी अधिकता रहे, तो उष्ण जल अनुपान, श्लेष्माकी अधिकता रहनेसे छूत, पित्तकी अधिकता रहनेसे गीमूल तथा त्रिदोषदुष्ट होनेसे कांजी अनुपानके साथ सेवन करना होता है। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके उदरी, शुष्म, शूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण और प्लीहाद्वि रोग अति शीघ्र प्रशमित होते हैं।

( रेखेन्द्रसारसं० प्लीहादोषाधि० )

वज्रगर्भ ( सं० पु० ) बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बौद्धसत्त्वका नाम।

वज्रगोप ( सं० पु० ) इन्द्रगोपकीटमेद, वीरबहूटी नामका कीड़ा।

वज्रगढ़—बर्हप्रदेशके पूता जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। वज्रगुगुलु ( सं० स्त्री० ) औषधविशेष।

वज्रगोप ( सं० पु० ) इन्द्रगोपकीटमेद, वीरबहूटी।

वज्रघात ( सं० पु० ) वज्रपात।

वज्रघोष ( सं० त्रि० ) वज्रपतनका कड़कड़ शब्द।

वज्रचर्मा ( सं० पु० ) वज्रवत् दुर्मेघं चर्मं यस्य। गण्डक, गैडा।

वज्रचुञ्च ( सं० पु० ) गृध्रपक्षी।

वज्रजित् ( सं० पु० ) वज्रं जयति तस्य आघात सहनेनेति, जि-किप्, तुगागमश्च। गवड़।

वज्रज्वलन ( सं० पु० ) विद्युत्, विजली।

वज्रज्वाला ( सं० स्त्री० ) वज्रस्य ज्वाला। १ वज्राम्नि। २ विरोचन दैत्यको पीतिका नाम। ३ कुम्भकर्णकी पत्नी।

वज्रटङ्गास्त्री—भवानन्दोपखण्डन और वज्रटङ्गोर न्यायग्रन्थके प्रणेता।

वज्रटोक ( सं० पु० ) वज्रेण वज्ररूपालेन टोकते प्रकाशने इति टोक क। वज्ररुपाञ्जि नामक बुद्ध।

वज्रडाकिनी ( सं० स्त्री० ) महायान शाखाके तान्त्रिक बौद्धोंको उपास्य डाकिनियोंका एक वर्ग। इनके अन्तर्गत ये आठ डाकिनियाँ मानी जानी हैं—श्रोत्रवर्णा लाम्बा, पीतवर्णा माला, रक्तवर्णा गीता, श्यामवर्णा नृत्पा, शुक्लवर्णा पुष्पदम्ना पुष्पा, पीतवर्णा धूपदम्ना धूपा, रक्तवर्णा दोषदम्ना दीपा तथा गन्धदम्ना शरिरवर्णा गन्धा। इनकी पूजा नेपाल और तिब्बतमें होता है। इन अष्टवज्रडाकिनोको बहुतेरे अष्टमातृकाका रूपान्तर मानते हैं।

वज्रणखा ( सं० स्त्री० ) रमणीमेद। ( पा ४।१।१८ )

वज्रतर ( सं० पु० ) ईंटकी जोड़ाईका एक प्रकारका मसाला।

वज्रतीर्थ ( सं० पु० ) तीर्थमेद। वज्रतीर्थमाहात्म्यमें इसका सविस्तर परिचय है।

वज्रतुण्ड ( सं० पु० ) वज्रं वज्रतुल्यं कठिनं तुण्डं यस्य।

१ गरुड़। २ गणेश। ३ गृध्र, गीघ। ४ मजक, मच्छड़।

५ स्नुहीशूश्र, धूहर। ( त्रि० ) ६ वज्रतुण्डधर।

वज्रतुल्य ( सं० पु० ) वज्रेण तुल्यः। वज्रके समान।

वज्रदंष्ट्र ( सं० पु० ) वज्र इव दंष्ट्रा यस्य। १ इन्द्रगोपकीट, वीरबहूटी। २ राक्षसमेद। ३ असुरमेद। ४ सहायि-

वर्णित एक राता। ( त्रि० ) ५ वज्रकी तरह दंष्ट्रायुक्त, जिसके दाँत वज्रके समान कठिन हों।



अवरक है। इनमेंसे वज्र नामक अवरकको अग्निमें डालने-से वज्रको तरह स्थिर भावमें रहता है, कुछ भी विह्वल नहीं होता। यह अवरक अन्य सभी अवरकोंसे उमदा होता है। इससे ज्वरादिरोग प्रशमित होता है तथा इससे अकालमृत्यु नहीं होती। अवरकको शोधन करके काममें लाना चाहिये। शोधित अवरक ही गुणकारक होता है।

शोधितका गुण—कपाय, मधुररस, शातवीर्य, आंशु-रूढ़, घातुवर्द्धक तथा लिङ्गोप, मण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहा, उदर, प्रन्थि, विष-और क्षमिनाशक। नित्य सेवन करने-से यह रोगनाशक, शरीरकी दृढ़तासम्पादक, वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त कोमलताजनक, परमाणुवर्द्धक, पुत्रजनक, सिंह मद्ग्राह विक्रमजनक, अकालमृत्युनाशक तथा प्रति दिन सौ स्त्री रमण करनेकी शक्तिजनक होता है।

अशोधितका गुण—पोडाजनक तथा कुष्ठ, क्षय, पाण्डु, शोथ, हृद्युगत और पाश्र्वांगत वेदना तथा शरीरकी सुखता-का उत्पादक। अन्न शब्द देलो।

१० कोकिलाक्षवृक्ष। ११ श्वेत कुश। १२ धूर-का पेड़, सेतुंड। १३ कण्ठके एक प्रयोग जो रुषिमणी-गर्भजात प्रद्युम्नके पुत्र थे। १४ विश्वामित्रके एक पुत्र-का नाम। १५ माला, बरछा। १६ ज्योतिषमें २२ व्यतोपात योगोंमेंसे एक। १७ वास्तुविद्याके अनुसार यह स्तम्भ जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। १८ विष्णु-के चरणका एक चिह्न। १९ अरुलवीर नामका पीथा।

२० विश्वाम्नादि सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत पन्द्रहवां योग। उद्योतिपशास्त्रमें लिखा है, कि वज्रयोगके आदि ६ दण्ड निन्दनीय हैं अर्थात् इन नौ दण्डोंमें धावादि कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। जिस बालकका इस योगमें जन्म होता, वह गुणों, गुणप्रदों, बलवान्, तेजस्वी, रत्न और चर्यादिका परीक्षक तथा शत्रुनाशक होता है। (कोशप्रदीप) २१ बौद्धके मतसे चक्राकार चिह्नविशेष।

(लि०) २२ वज्रके समान कठिन, बहुत कड़ा या मज-पूत। -३ घोर, दारुण।

वज्रक (सं० स्त्री०) वज्र संज्ञायाम् कन्। १ वज्रक्षार। २ फलितज्योतिषके अनुसार सूर्यके आठ उपग्रहोंमेंसे एक जो सूर्यसे तेईसवां नक्षत्र होता है

वज्रकक्षार (सं० पुं० स्त्री०) वज्रक्षार।

वज्रकङ्कट (सं० पुं०) वज्रः कङ्कटो देहावरणमस्य। हनु-मान्का एक नाम।

वज्रकण्टक (सं० पुं०) वज्रस्य कण्टकमिव तद्वारकत्वान्। १ स्तुद्धीश्वर, धूरर। २ कोकिलाक्ष वृक्ष, तालमवाला-का पेड़।

वज्रकण्टशाकमली (सं० स्त्री०) नरकमेद। भागवतपुराणके अनुसार अट्टाईस नरकोंमेंसे यह नरक तेरहवां है। जो सब पापी सर्वाभिगामो है, यमलोकमें उसकी इस नरकमें गति होती है।

“वस्तिवह वै सर्वाभिगमस्तममुष निरये वर्त्तमानं वज्रकण्टक-शाकमलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥” (भागवत १।३।१२१)

वज्रकन्द (सं० पुं०) वज्रकारः कन्दोऽस्य। १ वज्रकण्ठ, शकरकंद। २ वनशूरण, जंगली सूरण या जिमोकंद। ३ तालके वृक्षका फूल।

वज्रकपाटमत् (सं० लि०) सुदृढ़ द्वारयुक्त।

वज्रकपाली (सं० पुं०) वज्रकपोलोऽस्यास्तोति इति। बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हेरुक, चक्रसम्बर, देव, निशुम्भीश, शणि-शेखर, वज्रटोक।

वज्रकर्ण (सं० पुं०) वज्रकन्द, शकरकन्द।

वज्रकालिका (सं० स्त्री०) त्रोरोगाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कांजी १ सेर, कड़वायं पोपलका मूल, पोपल, सोंठ, अजवायन, जीरा, मंगरेला, हल्दी, दाहहल्दी, विट्कलचण, सचल लवण, कुलमिला कर एक पल, पाकायं जल ४ सेर, शेष १ सेर, नियमपूर्वक पाक करे। यह कफके साथ पीना होता है। इसका सेवन करनेसे स्त्रियोंकी अग्निवृद्धि और आमशूल तथा कफ नष्ट हो कर बल, वीर्य तथा स्तनदुग्धकी वृद्धि होती है।

(भैषज्यरत्ना०)

वज्रकारक (सं० पुं०) नखी नामक गन्धद्रव्य।

वज्रकालिका (सं० स्त्री०) वज्रोपलक्षिता कालिका। १ बुद्धकी माता मायादेवीका एक नाम। २ शाक्यमुनि-की माता।

वज्रकालो (सं० स्त्री०) १ जिनशक्तिमेद। २ हिन्दूदेवी-मूर्त्तिमेद।

वज्र कीट ( सं० पु० ) एक प्रकारका कीड़ा जो पत्थर या काठको काट कर उसमें छेद कर देता है। कहते हैं, कि गण्डक नदीमें इन कीटोंके द्वारा काटी हुई शिला छो शालप्रामाणकी बटिया बन जाती है। वज्रदंष्ट्रविशेष।

वज्रकाल ( सं० पु० ) वज्र।

वज्रकुक्षि ( सं० क्ली० ) पर्वतगुहामेद।

वज्रकूट ( सं० पु० ) १ एक पर्वतका नाम। २ हिमालयकी छोटी परका एक एक प्राचीन नगर।

वज्रहृच्छ ( सं० पु० ) प्रायश्चित्तविशेष।

वज्रकेतु ( सं० पु० ) असुरमेद। यह नरकका राजा था।

वज्रक्षार ( सं० क्ली० ) वज्र संस्कृतः क्षारः। क्षारविशेष। पर्याय—वज्रक, क्षारश्रेष्ठ, विदारक, सार, चन्दनार, धूमोत्थ, धूमजाङ्गक। गुण—अति उष्ण, तीक्ष्ण, क्षारक, रेचन, गुल्म, उदरपीडा, विष्टम्भ और श्रमनाशक।

प्लीहादोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सामुद्र लवण, सौन्धव लवण, काच लवण, यवक्षार, सौचर्चल लवण, मोहागा और साचिक्षार इनके बराबर बराबर चूर्णको अरुवन और धूररके दूधमें तीस दिन भावना दे कर एक ताविके बरतनमें रखे और मुह बंद कर लेप लगा दे। पीछे उसे पुष्टपाक करके नूण करे। इसके बाद त्रि० टु, त्रिफला, जीरक, हरिद्रा और चिना इनके समान भाग चूर्णको मिश्रित कर क्षारका अर्द्धांश देना होगा। मात्रा दोपके बलानुसार स्थिर करनी चाहिये। यदि घायुकी अधिकता रहे, तो उष्ण जल अनुपान, श्लेष्माकी अधिकता रहनेसे घृत, पित्तकी अधिकता रहनेसे गोमूल तथा विद्रोपदुष्ट होनेसे कांजी अनुपानके साथ सेवन करना होता है। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके उदरी, गुल्म, शूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण और प्लीहादि रोग अति शीघ्र प्रशमित होते हैं।

( रसेन्द्रसरथ० प्लीहादोगाधि० )

वज्रगर्म ( सं० पु० ) बौद्धोंकी महापान शाखाके अनुसार एक बोधिसत्त्वका नाम।

वज्रगोप ( सं० पु० ) इन्द्रगोपकीटमेद, वीरबहूटी नामका कीड़ा।

वज्रगढ़—बन्धप्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग।

वज्रगुणगुलु ( सं० क्ली० ) औषधविशेष।

वज्रगोप ( सं० पु० ) इन्द्रगोपकीटमेद, वीरबहूटी।

वज्रघात ( सं० पु० ) वज्रपात।

वज्रघोष ( सं० त्रि० ) वज्र पतनका कड़कड़ शब्द।

वज्रचर्मा ( सं० पु० ) वज्रघृत दुर्मेघं चर्मा यस्य। गण्डक, गैडा।

वज्रचुञ्चु ( सं० पु० ) शृङ्गपक्षी।

वज्रजित् ( सं० पु० ) वज्रं जयति तस्य आघात सहनेनेति, जि-किय, तुगागमश्च। गण्ड।

वज्रज्वलन ( सं० पु० ) विद्युत्, विजली।

वज्रज्वाला ( सं० स्त्री० ) वज्रस्य ज्वाला। १ वज्राग्नि। २ विरोचन दैत्यकी पौतिका नाम। ३ कुम्भकर्णकी पत्नी।

वज्रटङ्कगाल्मी—भवानन्दोयखण्डन और वज्रटङ्कोद न्यायप्रस्थके प्रणेता।

वज्रटोक ( सं० पु० ) वज्रेण वज्ररूपालेन टोकते प्रकाशते इति टोक क। वज्ररूपालि नामक बुद्ध।

वज्रडाकिनो ( सं० स्त्री० ) महापान जावाके तान्त्रिक बौद्धोंकी उपास्य डाकिनियोंका एक वर्ग। इनके अन्तर्गत ये अष्ट डाकिनियां मानी जाती हैं—श्वेतवर्णा लाम्या, पीतवर्णा माला, रक्तवर्णा गीता, श्यामवर्णा मृत्या, शुक्रवर्णा पुशरहस्ता पुश्या, पीतवर्णा धूपहस्ता धृष्या, रक्तवर्णा दीपहस्ता दीप्या तथा गन्धहस्ता हरितवर्णा गन्ध्या। इनकी पूजा नेपाल और तिब्बतमें होती है। इन अष्टवज्रडाकिनोको बहुतेरे अष्टमातृकाका रूपान्तर मानते हैं।

वज्रपत्ता ( सं० स्त्री० ) रमणीमेद। ( पा ५।१।५८ )

वज्रतर ( सं० पु० ) ईंटकी जोड़ाईका एक प्रकारका मसाला।

वज्रतीर्थ ( सं० पु० ) तीर्थमेद। वज्रतीर्थमाहात्म्यमें इसका सविस्तर परिचय है।

वज्रतुण्ड ( सं० पु० ) वज्रं वज्रतुल्यं कठिनं तुण्डं यस्य। १ गण्ड। २ गणेश। ३ शृङ्ग, गोष। ४ मशक, मच्छड़।

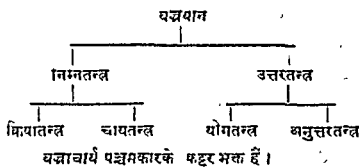
५ स्तुवीशृङ्ग, धूरर। ( त्रि० ) ६ वज्रतुण्डधर।

वज्रतुल्य ( सं० पु० ) वज्रेण तुल्यः। वज्रके समान।

वज्रदंष्ट्र ( सं० पु० ) वज्र इव दंष्ट्रा यस्य। १ इन्द्रगोपकीट, वीरबहूटी। २ राक्षसमेद। ३ अमुरमेद। ४ सह्याद्रि-यणित एक राजा। ( त्रि० ) ५ वज्रकी तरह दंष्ट्रायुक्त, जिसके दांत वज्रके समान कठिन हों।

मन्त्रगुह है। एक एक विहार एक एक यज्ञाचार्यके अपान है। नेपालमें बहुत-से विहार हैं, अतएव बहुत-से यज्ञाचार्य भी देखे जाते हैं। नेपालके क्या बाँझा, क्या साधारण बाँझा गृहस्थ सभी अवनत मस्तकसे यज्ञाचार्यके आदेश और उपदेशका पालन करते हैं। नेपाल देखो।

नेपालके साधारण मुण्डितकेश बौद्धगण यज्ञ धारण नहीं कर सकते। जो यह यज्ञधारणके अधिकारी हैं, वे ही यज्ञाचार्य कहलाते हैं। नेवारियोंके निकट यज्ञाचार्य 'गुमाजु' वा 'गुमाल' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यज्ञाचार्यका अनुष्ठेय वा प्रवर्तित मत ही यज्ञयान कहलाता है। भूटान और नेपालके बौद्ध अभी यज्ञयान-मतावलम्बी घोर तान्त्रिक हैं। अभी यज्ञयान निम्नोत्तररूपमें विभक्त है—



यज्ञादित्य—काश्मीरके एक राजाका नाम। इनके पिताका नाम ललितादित्य था। ये कुवलयादित्यके छोटे भाई थे। भाईके मरने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। यज्ञादित्यके दो नाम थे—वर्षियक और ललितादित्य। यज्ञादित्य बड़ा ही दुराचारी और क्रूर था। इसने परिहासपुर नामक गांवसे अपने पिताका बहुत-सा अमूल्य धन हरण किया था। इसके राज्यमें सर्वत्र भले-बुरे चार हो गया था। भले-बुरेके हाथ इसने अनेक मनुष्योंको घेचा था। यह पापी राजा सर्गदा रानियोंके साथ रह कर अपना समय बिताता था। इसने ७ वर्ष राज्य किया था। अन्तमें क्षयरोगसे इसका देहान्त हुआ।

यज्ञाभ (सं० पु०) यज्ञस्य होरकस्य आभा इव आभा यस्य। १ दुग्धपाषाण, कुलखड़ी। (ति०) २ होरकतुल्य दोस्तियशिशु, होरेके समान चमक दमकवाला।

यज्ञामिषधन (सं० पु०) प्राचीन कालका एक प्रकारका अनुष्ठान। इसमें तीन दिन तक जीका सत्तू पी कर रहते थे।

यज्ञाम्बास (सं० पु०) गुणकमेद् (Crossmultiplication)।

यज्ञाम्ना (सं० पु०) एक प्रकारका अवरक जो काले रंगका होता है।

यज्ञाम्युजा (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीमेद्।

यज्ञायुध (सं० त्रि०) यज्ञ आयुधो यस्य। १ इन्द्र। २ एक प्राचीन कवि।

यज्ञावर्त (सं० पु०) एक मेघका नाम।

यज्ञाशनि (सं० पु०) यज्ञ।

यज्ञासन (सं० स्त्री०) १ हठयोगके चौरासी भासनोंमेंसे एक। इसमें गुदा और लिङ्गके मध्यके स्थानको बाएँ पैरकी पड़ीसे दबा कर उसके ऊपर दाहिना पैर रख कर पालथो लगा कर बैठते हैं। २ वह शिला जिस पर बैठ कर बुद्धदेवने बुद्धत्व लाभ किया था। यह गयाजोमें बोधिवृक्षके नीचे थी।

यज्ञास्थिभृङ्गुला (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष वृक्ष।

यज्ञाहत (सं० त्रि०) यज्ञाघात द्वारा मरा हुआ।

यज्ञाहिका (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

यज्ञाह्व (सं० स्त्री०) तगरपादुक।

यज्ञिजित् (सं० पु०) १ इंद्रविजयी। २ गयड़।

यज्ञिणी (सं० स्त्री०) यज्ञधारी।

यज्ञिवस् (सं० त्रि०) यज्ञधारी।

यज्ञी (सं० पु०) यज्ञोऽस्त्यस्येति यज्ञ अत इति ठनी। पा ५।२।१।७ इति इनि। १ यज्ञधारी इंद्र। २ बुद्ध वा जैनसाधु। ३ इष्टिकामेद्, एक प्रकारकी ईंट। ४ स्तुही, धूर। ५ तिघारा, नरसेज।

यज्ञेभ्यर (सं० पु०) नेपालस्थ तीर्थमेद्। यहाँ प्राचीन हिंदू और बौद्धमिश्रित तान्त्रिकाचार विद्यमान है।

यज्ञेभ्यरी (सं० स्त्री०) बौद्धदेवोमेद्।

यज्ञेभ्यरीविद्या—गुप्त विद्यामेद्। इसका दूसरा नाम यज्ञवाहनिका विद्या है। नियमपूर्वक यज्ञ निर्माण करके इस विद्या द्वारा अभियेक करना चाहिये पर्यं काञ्चन द्वारा उसमें मन्त्र लिखना चाहिये। पीछे किसी जितेन्द्रिय व्यक्तिको चाहिये, कि यज्ञ प्रदण करके एक लाप ज्ञ कर यज्ञकुण्डमें घृतादि द्वारा उसका दवांसा होम करे। इससे यज्ञ सर्वशत्रु-विजयकारी बन जाता है। इस प्रकार

जपसे पवित्र किया हुआ वज्र राजाओंको रचना उचित है।

प्राचीन कालमें इन्द्रके उपकारार्थ ब्रह्माने महादेवके पास इसका अभ्यास किया था। किसी समय इन्द्रने विश्वरूपकी वतलाई हुई विद्या द्वारा सोमरस तैयार करके विश्वरूपको मार डाला। इसके बाद इन्द्रने सोमयोगसे हुत द्रविःको प्रार्थना की। प्रजापति त्वष्टाने अपने पुत्र विश्वरूपके मरनेसे कुपित हो कर उन्हें सोमरस देनेसे इन्कार किया। इस पर इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए। जे अवरदस्ती सोमरस पी गये। प्रजापतिने इन्द्रके शत्रुको वृद्धि हो' कह कर वज्रमें आहुति डाली। उससे तृता-सुर प्रकट हुआ। पीछे उस राक्षसने इन्द्र पर बड़े वेगसे आक्रमण किया। इन्द्र भयसे विह्वल हो कर ब्रह्माकी शरणमें गये। तब ब्रह्माने कहा—“हे अरिन्दम ! तुम अभी वज्रो-श्वरो मन्त्रसे अभिविक्त वज्रको छोड़ो, शीघ्र हो तुम्हारे शत्रुका नाश होगा।

इस वज्रोश्वरो मन्त्रमें पहले गायत्री, उसके बाद “ओम् फट, जहि इत्यादि” मन्त्र हैं। यह ब्राह्मी विद्या सब शत्रुओंका नाश करनेवाली है। इसके द्वारा वशीकरण, विद्वेष, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, ताड़न, उत्सादन, छेदन, मारण, प्रतिवन्धन, सेनास्तम्भन सभी कर्म सिद्ध होते हैं।

“आवाहि चरदे देवि” इत्यादि मन्त्र द्वारा देवोंको आवाहन कर पुजा जपादि वाञ्छ कार्य तथा चर्यादि क्रिया कारक ‘ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवी यथासुखं’ मन्त्र द्वारा देवोंको विसर्जन करना चाहिये। इसके बाद अग्नि स्थापन करके होम करना उचित है। इस विद्याके द्वारा सब तरहके कार्य सिद्ध हो जाने हैं। यश्यायों जातिपुण्य द्वारा तीन अयुत त्रय अर्थात् तीस हजार बार होम करे। घृत करवीर द्वारा होम करनेसे आकर्षणकी सिद्धि होती है। लंगलक पुण्य द्वारा होम करनेसे विद्वेष सिद्ध होता है। तेलके होमसे उच्चाटन, गधु द्वारा स्तम्भन, तिल होमसे मोहन, खर, गज तथा उष्ट्रके रुधिरसे ताड़न, कुश होमसे पाटन, रोटी योजसे मारण तथा उच्चाटन, पानपत्र द्वारा वञ्चन एवं मनःजिलासे होम करनेसे सैन्यस्तम्भन होता है। इनके अलावा घृत

होमसे सिद्धि, दुग्ध होमसे विशुद्धि, तिल होमसे रोगनाश पत्र होमसे धन एवं मधुकुपुण्य द्वारा होम करनेसे कार्त्तिकी वृद्धि होती है। साविली द्वारा ३० हजार बार होम करनेसे सब तरहकी जय प्राप्त होती है।

वज्रोद्री (सं० खी०) राक्षसीमेद ।

वज्रोली (हिं० खी०) हठयोगकी एक मुद्राका नाम ।

वज्र वज्र—कलकत्तासे १५ मील दक्षिणमें अवस्थित एक बड़ा ग्राम। यह स्थान अभी वाणिज्य-बन्दररूपमें गिना जाता है। यहां १८वीं सदीके मध्यभागमें नवाबी सेनाके साथ अङ्गरेजोंका एक युद्ध हुआ था। आखिर अङ्गरेजी-सेनाने दुर्गको अधिभार किया। क्साइव देखो।

वञ्जक (सं० पु०) वञ्जयते प्रतारयतीति वञ्ज-णिच्-ण्वुल् । १ शृगाल, गीदङ्ग । २ गृहवधु, सौंघिवार । ३ चोर, ठग । (लि०) ४ धूर्त्त, ठग । ५ खल ।

वञ्जय (सं० पु०) वञ्जति प्रतारयतीति वञ्ज (शीङ्शपीति । उण् ३।११३) इति अय । १ धूर्त्त । २ वञ्जना । ३ कौकिल । वञ्जन (सं० क्ली०) वञ्ज-भावे-ल्युट् । प्रतारण, धोखा देना या खाना। नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि किसीसे ठग जाने पर बुद्धिमान्को चाहिये कि उसे प्रकाश न करे।

वञ्जनता (सं० खी०) वञ्जनस्य भावः तल-टाप् । वञ्जनका भाव या धर्म ।

वञ्जनवत् (सं० लि०) वञ्जन अस्त्वर्थे मनुप् मस्व य । वञ्जन-विशिष्ट, जो ठगा गया हो ।

वञ्जना (सं० खी०) वञ्ज णिच् युच्-टाप् । प्रतारणा, धोखा, फरेब, छल ।

वञ्जनोय (सं० लि०) वञ्ज-अनोयर् । प्रतारणाय, ठगने लायक ।

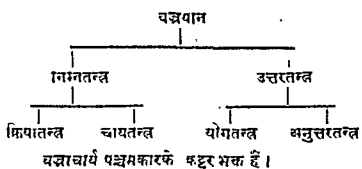
वञ्जयत् (सं० लि०) वञ्ज-णिच्-त्त्च् । वञ्जक, ठग । वञ्जयितव्य (सं० लि०) वञ्ज-णिच् तव्य । वञ्जनाके योग्य, ठगने लायक ।

वञ्जित (सं० लि०) वञ्जयति स्मेति वञ्ज णिच्-त्त । १ वञ्जना विशिष्ट, धोखेमें आया हुआ । २ भलग किया हुआ । ३ विमुक्त, भलग ।

वञ्जित् (सं० लि०) वञ्जनाकारो, धोखेमें डालनेवाला । वञ्जुक (सं० लि०) वञ्जति प्रतारयतीति वञ्ज-उञ्च् । प्रतारणशील, धूर्त्त, ठग ।

मन्त्रगुण है। एक-एक विहार एक-एक यज्ञाचार्यके अधीन हैं। नेपालमें बहुत-से विहार हैं, अतएव बहुत-से यज्ञाचार्य भी देखे जाते हैं। नेपालके क्या बाँड़ा, क्या साधारण बौद्ध गृहस्थ समी अवगत मस्तकसे यज्ञाचार्यके आदेश और उपदेशका पालन करते हैं। नेपाल देखो।

नेपालके साधारण मुष्टिगतकेश बौद्धगण यज्ञ धारण नहीं कर सकते। जो यह यज्ञधारणके अधिकारी हैं, वे ही यज्ञाचार्य कहलाते हैं। नेवारियोंके निकट यज्ञाचार्य 'गुमाजु' वा 'गुमाल' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यज्ञाचार्यका अनुष्ठेय वा प्रवर्तित मत ही यज्ञयान कहलाता है। भूटान और नेपालके बौद्ध अभी यज्ञयान मतावलम्बी घोर तान्त्रिक हैं। अभी यज्ञयान निम्नोक्त रूपमें विभक्त हैं:—



यज्ञादित्य—काश्मीरके एक राजाका नाम। इनके पिताका नाम ललितादित्य था। ये कुत्रलयादित्यके छोटे भाई थे। भाईके मरने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर अधिकार हुए। यज्ञादित्यके दो नाम थे—वर्षियक और ललितादित्य। यज्ञादित्य बड़ा ही दुराचारी और क्रूर था। इसने परिहासपुर नामक गाँवसे अपने पिताका बहुत-सा अमूल्य धन हरण किया था। इसके राज्यमें सर्वत्र म्लेच्छाचार हो गया था। म्लेच्छोंके हाथ इसने अनेक मनुष्योंको घेचा था। यह पापी राजा सर्वादा रानियोंके साथ रह कर अपना समय बिताता था। इसने ७ वर्ष राज्य किया था। अन्तमें क्षयरीगसे इसका देहान्त हुआ।

यज्ञाभ (सं० पु०) यज्ञस्य होरकस्य आभा इव धामा यस्य । १ दुग्धसापान, फुलवट्टी। (त्रि०) २ होरकतुल्य द्रोतिसिधित्, हारेके समान चमक दमकवाला।

यज्ञानिषयन (सं० पु०) प्राचीन कालका एक प्रकारका अनुष्ठान। इसमें तीन दिन तक जीका सचू पी कर रहते थे।

यज्ञाम्बास (सं० पु०) गुणकभेद (Crossmultiplication)।

यज्ञान्न (सं० पु०) एक प्रकारका अवरक जो काले रंगका होता है।

यज्ञाभुजा (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीभेद।

यज्ञायुध (सं० त्रि०) यज्ञ आयुधो यस्य । १ इन्द्र । २ एक प्राचीन कवि।

यज्ञावर्त (सं० पु०) एक मेघका नाम।

यज्ञाग्नि (सं० पु०) यज्ञ।

यज्ञासन (सं० स्त्री०) १ हठयोगके चौरासी आसनोंमेंसे एक। इसमें गुदा और लिङ्गके मध्यके स्थानको वायु पैरकी पड़ीसे दबा कर उसके ऊपर दाहिना पैर रख कर पालथो लगा कर बैठते हैं। २ वह शिला जिस पर बैठ कर बुद्धदेवने बुद्धत्व लाभ किया था। यह गवाजोंमें बोधिद्रुमके नीचे थी।

यज्ञास्थिरशुद्धा (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष वृक्ष।

यज्ञाहत (सं० त्रि०) यज्ञाघात द्वारा मरा हुआ।

यज्ञादिका (सं० स्त्री०) कविकच्छु, केयांच।

यज्ञाहुव (सं० स्त्री०) तगरपादुक।

यज्ञिजित् (सं० पु०) १ इंद्रविजयी। २ गण्ड।

यज्ञिणी (सं० स्त्री०) यज्ञधारी।

यज्ञियस् (सं० त्रि०) यज्ञधारी।

यज्ञी (सं० पु०) यज्ञोऽस्त्यस्येति यज्ञः अत इति ठनी। पा १।२।११७ इति इनि। १ यज्ञधारी इंद्र। २ बुद्ध वा जैनसाधु। ३ इष्टिकाभेद, एक प्रकारकी ईंट। ४ स्तुही, धूर। ५ तिघारा, नरसेज।

यज्ञेश्वर (सं० पु०) नेपालस्थ तोर्धभेद। यहाँ प्राचीन हिंदू और बौद्धमिश्रित तान्त्रिकाचार विद्यमान है।

यज्ञेश्वरी (सं० स्त्री०) बौद्धदेवीभेद।

यज्ञेश्वरीविद्या—गुप्त विद्याभेद। इसका दूसरा नाम यज्ञवाहनिका विद्या है। नियमपूर्वक यज्ञ निर्माण करके इस विद्या द्वारा अभिषेक करना चाहिये एवं काञ्चन द्वारा उसमें मन्त्र लिखना चाहिये। पीछे किसी जितेन्द्रिय व्यक्तिको चाहिये, कि यज्ञ ग्रहण करके एक लाख जब कर यज्ञकुण्डमें घृतादि द्वारा उसका द्वांश होम करे इससे यज्ञ सर्वशुभ-विजयकारी बन जाता है। इस प्रकार

जपसे पवित्र किया हुआ वज्र राजाओंको रखना उचित है।

प्राचीन कालमें इन्द्रके उपकारार्थ ब्रह्माने मदादेवके पास इसका अभ्यास किया था। किसी समय इन्द्रने विश्वरूपकी बतलाई हुई विद्या द्वारा सोमरस तैयार करके विश्वरूपको मार डाला। इसके बाद इन्द्रने सोमयोगसे हुत द्रविणको प्रार्थना की। प्रजापति त्वष्टाने अपने पुत्र विश्वरूपके मरनेसे कुपित हो कर उन्हें सोमरस देनेसे इन्कार किया। इस पर इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए। वे जवरत्स्वी सोमरस पी गये। प्रजापतिने 'इन्द्रके शत्रु को वृद्धि हो' कह कर वधमें आहुति डाली। उससे तृतासुर प्रकट हुआ। पीछे उस राक्षसने इन्द्र पर बड़े वेगसे आक्रमण किया। इन्द्र भयसे विह्वल हो कर ब्रह्माकी शरणमें गये। तब ब्रह्माने कहा—'हे अरिन्दम! तुम सभी वज्रेश्वरो मन्त्रसे अभिविक्र वज्रको छोड़ो, शीघ्र ही तुम्हारे शत्रुका नाश होगा।

इस वज्रेश्वरी मन्त्रमें पहले गायत्री, उसके बाद 'ओम् फट, जडि इत्यादि' मन्त्र हैं। यह ब्राह्मी विद्या सब शत्रुओंका नाश करनेवाली है। इसके द्वारा वशीकरण, विद्वेष, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, ताड़न, उत्सादन, छेदन, मारण, प्रतिबन्धन, सेनास्तम्भन सभी कर्म सिद्ध होते हैं।

'आयाहि वरदे देवि' इत्यादि मन्त्र द्वारा देवीको आवाहन कर पूजा जपादि बाह्य कार्य तथा वश्यादि क्रिया कारक 'ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुवाता गच्छ देवी यथासुखं' मन्त्र द्वारा देवीको विसर्जन करना चाहिये। इसके बाद अग्नि स्थापन करके होम करना उचित है। इस विद्याके द्वारा सब तरहके कार्य सिद्ध हो जाते हैं। वश्याधी जातिपुत्र्य द्वारा तीन अयुत त्रय अर्थात् तीस हजार वार होम करें। घृत करवीर द्वारा होम करनेसे आकर्षणकी सिद्धि होती है। लांगलक पुत्र्य द्वारा होम करनेसे विद्वेष मिट्ट होता है। तिलके होमसे उच्चाटन, मधु द्वारा स्तम्भन, तिल होमसे मोहन, वर, गज तथा उष्ट्रके रुचिरसे ताड़न, कुश होमसे पाटन, रोटी धोजसे मारण तथा उच्चाटन, पानपत्र द्वारा वज्रन एवं मनःगिलासे होम करनेसे सैन्यस्तम्भन होता है। इनके अलावा घृत

होमसे सिद्धि, दुग्ध होमसे विशुद्धि, तिल होमसे रोगनाश, पद्म होमसे धन एवं मधुकुण्ड द्वारा होम करनेसे कान्तिकी वृद्धि होती है। सावित्री द्वारा ३० हजार वार होम करनेसे सब तरहकी जप प्राप्त होती है।

वज्रोदरी (सं० स्त्री०) राक्षसीभेद।

वज्रोली (हिं० स्त्री०) हठयोगकी एक मुद्राका नाम।

वज्र वज्र—कलकसासे १५ मील दक्षिणमें अवस्थित एक बड़ा ग्राम। यह स्थान अभी वाणिज्य-बन्दरूपमें गिना जाता है। यहाँ १८वीं सदीके मध्यभागमें नवाबो सेनाके साथ अङ्गरेजोंका एक युद्ध हुआ था। आखिर अङ्गरेजोंसे नाने दुर्गको अधिकार किया। कड़ाव देखो।

वज्रक (सं० पु०) वज्रयते प्रतारयतीति वज्र-णिच् ष्वल्। १ शूगल, गीदड़। २ गृध्रवृक्ष, सौरंधियार। ३ चौर, डग। (त्रि०) ४ धूर्त, डग। ५ लाल।

वज्रय (सं० पु०) वज्रति प्रतारयतीति वज्र (शीघ्रपीति। उण् ३।११३) इति अथ। १ धूर्त। २ वज्रना। ३ कौकिल।

वज्रन (सं० स्त्री०) वज्र-भावे-ल्युट्। प्रतारण, धोखा देना या खाना। नोतिशास्त्रमें लिखा है, कि किसीसे डग जाने पर बुद्धिमानको चाहिये कि उसे प्रकाश न करें।

वज्रनता (सं० स्त्री०) वज्रनस्य भावः तल-टाप्। वज्रनका भाव वा धर्म।

वज्रनचत् (सं० त्रि०) वज्रन अस्त्वर्थे मनुप् मस्य च। वज्रन-विनिष्ठा, जो डगा गया हो।

वज्रना (सं० स्त्री०) वज्र णिच् युच्-टाप्। प्रतारणा, धोखा, फरेव, छल।

वज्रनीय (सं० त्रि०) वज्र-अनीयर्। प्रतारणीय, डगने लायक।

वज्रयत् (सं० त्रि०) वज्र-णिच्-नुच्। वज्रक, डग।

वज्रवितथ्य (सं० त्रि०) वज्र-णिच् तथ्य। वज्रनाके योग, डगने लायक।

वज्रित (सं० त्रि०) वज्रयते स्मेति वज्र णिच्-क्त। १ वज्रना विनिष्ठा, धोखेमें आया हुआ। २ भलग किया हुआ।

३ विमुक्त, भलग।

वज्रिन (सं० त्रि०) वज्रनाकारो, धोखेमें डालनेवाला।

वज्रुक (सं० त्रि०) वज्रति प्रतारयतीति वज्र-उक्त्। प्रतारणशील, धूर्त, डग।

वज्र (सं० त्रि०) यन्त्र पयत् (वज्रवेगती) । पा ७३१६५ इति  
न पुत्र्यं । गमनीय, ज्ञाने लायक ।

वज्रनाभल—पर्यंतभेद ।

वज्ररा (सं० खो) नदीविशेष ।

वज्रशुभ्र (सं० पु०) वज्रतोति वज्र गती वाहुलकात् उल्लंघ्य,  
नुम् घ । १ तिनिश वृक्ष । २ अशोक वृक्ष । ३ स्थलपत्र-  
वृक्ष । ४ पक्षिविशेष । ५ धैतस वृक्ष, वैतका पेड़ ।

वज्रशुभ्रक (सं० पु०) १ वृक्षभेद । २ पक्षिभेद ।

वज्रशुभ्रद्रम (सं० पु०) वज्रशुभ्रो द्रमः । अशोकवृक्ष ।

वज्रशुभ्रमिय (सं० पु०) वज्रशुभ्रस्य मियः, वज्रशुभ्रः मियश्चेति  
कर्मधारयो वा । वैतसवृक्ष, वैत ।

वज्रशुभ्रला (सं० स्त्री०) वज्रशुभ्र-टाप् । १ अतिशय दुग्धयती-  
गामो, दुधारी गाय । २ एक नदीका नाम जो मत्स्यपुरा-  
णानुसार सह्याद्रि पर्वतसे निकलती है ।

वज्रशुभ्रलायती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम जो दक्षिणा-  
त्यके पर्यंतसे निकलती है ।

वट (सं० पु०) वटति घटयति मूलैः वृक्षान्तरमिति  
घट पचाद्यच् । स्वनामघ्यात छायावृक्ष, घरगदका पेड़ ।

(Ficus Bengalensis syn Ficus Indica) स्थानीय  
नाम—हिन्दी—बट, बड़, घरगद ; मद्रासायु—वट ;  
कलिङ्ग—आल ; तैलङ्ग—मरिचेष्ट, मारि, पेड़ मरि ;  
उत्कल—घोरु, बङ्गला—बड़, घट, कोल—घोरु, लेगछा—  
काञ्चि, मलयालम्—पेरसु, पेरलिनु, गोड़—घरुङ्गी, उत्तर-  
पश्चिम—घोरा, कुङ्कु ; नेपाल—घोरहर; पस्तु—शगात् ;  
द्वजारा—फग्वाडी ; कनाडी—आलय, आनद, आल ;  
ब्रह्म—पित श्योङ्ग ; शिङ्गापुर—महानुग ; अङ्गरेजी—  
बैतियन ट्री ( Banyan tree ) ; संस्कृत—पट्याय—  
न्यमोघ, बहुपात्, वृक्षनाथ, यमप्रिय, रक्तफल, शृङ्गी, कर्मज,  
ध्रुव, क्षीरी, पशुपणायास, भाण्डोर, जटाल, रोहिण,  
अवरोही, विटपो, स्कन्दरुद्र, मण्डलो, महाञ्जया, भृङ्गी,  
यशःयास, यक्षतय, पादरोदन, नील, शिफारुद, बहुपाद,  
घनस्पति ।

हिमालयसे लेकर दक्षिण भारतके प्रायः सभी स्थानों-  
में यह वृक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है । साधारणतः यह  
३०से १०० फीट तक ऊँचा होता है एवं शाखा-प्रशा-  
खाओंसे परिपूर्ण हो कर दूर दूर तक फैल जाता है । इस

वटवृक्षकी शीतल छाया श्वातपताप क्षुण्ण परिपक्वोंके लत  
हृदयको शीतल करती है एवं मोघम श्रुतुकी कड़ो धू-  
मे प्रयास करनेवालोंके पक्षमें सभी वृक्षोंकी अपेक्षा  
इसकी छाया अधिक आनन्दप्रद होती है । कर्नाट  
साइकसूने नर्मदा नदी वक्षस्य एक छोटे द्वीपके दक्षिण  
एक सुवृक्षत वटवृक्षका उल्लेख किया है । यह जन-  
साधारणमें 'कयोरवट'के नामसे प्रसिद्ध है । किन्तु तो  
उसे वही सुप्राचीन वृक्ष समझते हैं जिसका वर्णन  
Nearchus ने अपने ग्रन्थमें किया था । पूनाकी  
( Gaz. Vol. XVIII ) अन्ध उपत्यकान्तर्गत मउ प्रायमें  
एक बहुत विस्तृत वटवृक्ष था । उसकी छायामें २०  
हजार मनुष्य स्वच्छन्दापूर्वक बैठ सकते थे । इस वृक्ष-  
की परिधि प्रायः २ हजार फीट एवं उसकी डालोंसे  
जितनी बरोह ( Air roots ) नीचे आई हैं, उन सबसे  
३२० बरोहोंने तो मोटे-मोटे स्तम्भकी भाँति आकार  
धारण कर लिया है एवं अविशिष्ट प्रायः तीन हजार पतली  
जटाएँ मृत्तिका संलग्न हो रही हैं । उन जटाओं-  
के मध्य ७ हजार मनुष्य अनायास ही छिप सकते थे ।  
नर्मदाकी भीषण बाढ़में उस द्वीपका एकौंश धस जानेसे  
यह वृक्ष भी नष्ट हो गया ।

एतद्विन्न कलकत्ताके निकटवर्ती शिवपुर प्रायस्य  
रायल डोटानिकल गाँवमें एवं बम्बई प्रदेशके सतारा  
उद्यानमें इस तरहके दो वटवृक्ष हैं । शिवपुर भैषज्य-  
उद्यानके संरक्षक डाक्टर किंग विशेष पर्यवेक्षण करके  
कहते हैं कि, यह वृक्ष १ सौ वर्षसे भी अधिक प्राचीन  
है । यह १७८२ ई० में एक खजूर वृक्षके ऊपर 'पैदा हुआ  
था । उसकी ३२२ जड़ें गोल गोल स्तम्भोंके रूपमें  
मिट्टीसे मिलती हैं । उनमें मूलस्तम्भ ( काण्ड ) का  
व्यास प्रायः ४२ फीट है । इसकी पतलसमाच्छादित  
शाखा प्रशाखाओंका छाया परिधि लगभग ८५७  
फीटकी है । अभी भी यह वृक्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा  
रहा है । एवं और भी बढ़नेकी आशा की जाती है ।  
१८८२ ई०में सताराके वटवृक्षका परिदर्शन करके मि०  
यानेर साहय लिखते हैं, कि यह वृक्ष कलकत्ताके वटवृक्षमें  
कहीं बड़ा है । उसकी परिधि १५८७ फीट है एवं यह उत्तर-  
दक्षिण ५६५ फीट तथा पश्चिम-पश्चिममें ४४२ फीट है ।

घट और पीपलकी छाया घनो और ठण्डी होती है। उनकी छालोंमेंसे जो जटाएँ निकलती हैं, वे नीचे आ कर जड़ और तनेका काम देने लगती हैं जिससे वृक्षका विस्तार बहुत शीघ्रतासे होने लगता है। यद्यो कारण है, कि बरगदके किसी बड़े वृक्षके नीचे सैकड़ों हजारों आदमी तक बैठ सकते हैं। इसीलिये ये वृक्ष पुण्यक्षेत्र रूपमें गिने जाते हैं। छायाके लिये ही किनारे लोग संडुकके किनारे अथवा पुष्करिणीके तट पर पंचवटीका निर्माण करते हैं। पंजाबमें ये वृक्ष पथिकोंको निशा-शिगिरसे रक्षा करते हैं। इनसे एक ओर जितना लाभ है, दूसरी ओर उतनी ही हानि भी है। पक्षीसमूह यदि घटवृक्षके फलोंको खा कर किसी गृहकी छत पर या मन्दिरोंके शिखर पर विष्टा त्याग करते हैं, तो उन विष्टा-स्थित बीजोंसे वृक्ष उत्पन्न हो कर कुछ ही दिनोंमें दीवाल के अन्दर जड़ें घुसा देता है। उस समय दीवार तोड़ कर उस वृक्षको समूल नष्ट किये बिना निल्वार नहीं। भयवेला करनेसे यह वृक्ष शीघ्र ही बढ़ कर उस गृहको ध्वंस कर देता है। हिन्दू लोग पाप होनेके भयसे घट अथवा अश्व रथ वृक्षको नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करते। अत्यन्त यत्नके साथ जीवित वृक्ष मूखसहित उखाड़ कर दूसरे स्थानमें जमा देते हैं।

दक्षिण-भारतके रत्नगिरि जिलेमें घटवृक्षके ऊपर कर निर्दिष्ट है। कारण यह है, कि बादुर पक्षी साधारणतः *Calophyllum inophyllum* वृक्षके फलोंके बीजसहित विष्टा त्याग करते हैं। इन बीजोंसे तेल निकलता है। अनेक घटवृक्षों पर लाह भी उत्पन्न होती देखा गई है। घटके दूधमें उसका बीयाई भाग सरसों तेल डाल कर आंच देनेसे एक प्रकारका गोद तैयार होता है। वंश गोद चिडीमारके पक्षी एक इनेके काममें आता है। आसामी लोग इससे एक प्रकारका कागज तैयार करते हैं। कोई कोई घटवृक्षको जड़ोंके रेशोंके रस्ती बनाते हैं, किन्तु उससे कोई विशेष काम नहीं चलता।

दुग्धयत् घटवृक्षका लासा वेदनानाशक होता है। घातसे होनेवाली वेदनाके स्थान पर इसका प्रलेप करनेसे बहुत फायदा होता है। पाँचका

तलवा कट जानेसे अथवा दन्त-पीड़ा होनेसे इसका दूध उस क्षत स्थान एवं दाँतोंकी जड़में लगानेसे यातनाका शीघ्र ही ह्रास हो जाता है। इसकी छालका गूदा पौष्टिक एवं बहुमूल्य रोगघ्न विशेष गुणदायक है। बीजका गुण शीतल तथा यलकर है। घटवृक्षके कौमल पत्ते उत्तम करके फोड़े पर लगानेसे पुल्टिसका काम करता है। मनोरिया रोगमें इसकी जड़का चूर्ण विशेष उपकारी होता है। यह सालसाका काम करता है।

इस वृक्षकी नई शाखाओंका काटा रक्तोत्काजनाशक तथा जड़के कौमल अग्रभाग घमननिवारक होते हैं। शष्क घटका दूध तथा फल क्षणदोष (Spermatorrhoea), प्रमेह (gonorrhoea) नाशक एवं कामोद्दीपक माना गया है। कच्ची कली तथा दुग्धघारक-गुणविशिष्ट एवं अजीर्ण तथा उदरामय रोगमें विशेष हितकर है।

दुर्भिक्षके समयमें इसके लाल रंगके पके हुए फलको खा कर द्रिष्ट्र लोग अपने पेटकी ज्वाला शान्त करते हैं। हाथी, गाय आदि जानवर भी इसके पत्ते बड़े चायसे खाते हैं। इनकी लकड़ी विशेष उपकारी नहीं होती। सिर्फ पतली पतली सूखी डालियाँ जलावन (ईंधन) में काम आती हैं। *Ficus elastica* या दूधदार घट नामक और एक श्रेणीका घटवृक्ष देखा जाता है। उसका दूध रबरके समान ही गुणयुक्त होता है।

गुण—कषाय, मधुर, शिगिर, कफ, पित्तस्वरापह, दाह, तुष्णी, मेह, म्रण तथा शोफनाशक।

यूक्षोंमें घट तथा मध्वरथ ये दो वृक्ष ही हिन्दू-समाजमें पूजनीय गिने जाते हैं। हिन्दू लोग घट वृक्षको रुद्र-स्वरूप मानते हैं।

इन वृक्षोंके दर्शन, स्पर्श तथा सेवा करनेसे पाप दूर होते एवं दुःख, आपद तथा व्याधि जाती रहती है। अतएव ये वृक्ष रोपनेमें अशेष पुण्य संचय होता है। वैशाखादि पुण्य मासमें इन वृक्षोंको जड़में जल देनेसे पापोंका नाश होता है एवं नाना प्रकारकी सुख सम्पत् प्राप्त होती है।

२ कपहक, कौड़ी। ३ गोला। ४ मध्याशिये, बड़ा। ५ साम्य, समान होनेका भाव। (ह्री०) ६ प्रजमण्डलके



वट्ट (सं० लि०) वन्य वृक्ष (कन्वेर्गेती) । पा ७।३।६५ इति  
न कुत्स्यं । गमनीय, जाने लायक ।

वज्रनामल—पर्यंतमेद ।

वज्ररा (सं० स्त्री) नदीविशेष ।

वज्रशुक्र (सं० पुं०) वज्रतांति वज्र गती वाहलकाम् उल्च,  
नुम् च । १ तिमिग वृक्ष । २ शगोक वृक्ष । ३ स्थलपद्म-  
वृक्ष । ४ पक्षिविशेष । ५ वेतस वृक्ष, वेंतका पेड़ ।

वज्रशुक्र (सं० पुं०) १ वृक्षमेद । २ पक्षिमेद ।

वज्रशुक्रद्रुम (सं० पुं०) वज्रशुक्रो द्रुमः । अगोकवृक्ष ।

वज्रशुक्रप्रिय (सं० पुं०) वज्रशुक्रस्य प्रियः, वज्रशुक्रः प्रियश्चेति  
कर्मधारयो वा । वेतसवृक्ष, वेंत ।

वज्रशुक्रा (सं० स्त्री०) वज्रशुक्र टापू । १ अतिशय दुग्धवती-  
गामी, दुधारी गाय । २ एक नदीका नाम जो मत्स्यपुरा-  
णानुसार सहाद्रि पर्वतसे निकलती है ।

वज्रशुक्रावती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम जो दक्षिणा-  
त्यके पर्वतसे निकलती है ।

वट (सं० पुं०) वटति घटयति मूलैः वृक्षान्तरमिति  
घट पचाद्यच् । स्तनामघयात छायावृक्ष, वरगदका पेड़ ।  
(*Ficus Bengalensis* syn *Ficus Indica*) स्थानीय  
नाम—हिन्दी—वट, बड़, वरगद ; महाराष्ट्र—वट ;  
कलिङ्ग—भाळ ; तैलङ्ग—मरिचेट्ट, मारि, पेड़ मरि ;  
उत्तरः—चोर, बङ्गला—बड़, वट, कोल—चोर, लेपला—  
काशि, मलयालम्—पेरमु, पेरलिनु, गोड—वरेली, उत्तर-  
पश्चिम—बोरा, कुर्कु ; नेपाल—बोरहर ; पस्तु—बागात् ;  
हजारा—फगवाडो ; कनाडो—आलय, आनद, आल ;  
छात्र—पित्र न्योङ्ग ; जिद्दापुर—महानुग ; अङ्गरेजी—  
बैनियन ट्री ( *Banyan tree* ) ; संस्कृत—वटवाय—  
म्यप्रोध, बहुपात्, वृक्षनाथ, यमप्रिय, रक्तफल, शृङ्गी, कर्मज  
ध्रुव, क्षीरो, वैश्रवणावास, भाण्डार, जटाल, रोहिण,  
अपरोही, विटपी, रुद्रचक्र, मण्डलो, नगाच्छाया, भृङ्गी,  
यक्षःवास, यक्षतक, पादरोहण, नोल, शिकारुद, बहुपाद,  
वनस्पति ।

द्विमालयसे ले कर दक्षिण भारतके प्रायः सभी स्थानों-  
में यह वृक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है । साधारणतः यह  
३० से १०० फीट तक ऊँचा होता है एवं शाखा-प्रशा-  
खाओंसे परिपूर्ण हो कर दूर दूर तक फैल जाता है । इस

वटवृक्षकी शीतल छाया आतपताप छिद्र पथिकोंके तम  
हृदयको शीतल करती है एवं ग्रीष्म ऋतुको कड़ी धूप-  
में प्रयास करनेवालोंके पक्षमें सभी वृक्षोंकी अपेक्षा  
इसकी छाया अधिक आनन्दप्रद होती है । कर्नाट  
साक्षकस्ने नर्मदा नदी वक्षस्य एक छोटे द्वीपके अन्तर्गत  
एक सुदृशत् वटवृक्षका उल्लेख किया है । यह जन-  
साधारणमें 'कयोरवट'के नामसे प्रसिद्ध है । कितने तो  
उसे वही सुभाचोन वृक्ष समझते हैं जिसका वर्णन  
Nearchus ने अपने ग्रन्थमें किया था । पूनाकी  
( *Gaz. Vol. XVIII* ) अर्ध उपत्यकान्तर्गत मउ प्रायमें  
एक बहुत विस्तृत वटवृक्ष था । उसकी छायामें २०  
हजार मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक बैठ सकते थे । इस वृक्ष-  
की परिधि प्रायः २ हजार फीट एवं उसकी डालीसे  
जितने बरोह ( *Air roots* ) नीचे आई हैं, उन सबमें  
३२० बरोहोंने तो मोटे मोटे स्तम्भकी भाँति आकार  
धारण कर लिया है एवं अधिशिष्ट प्रायः तीन हजार पनली  
जटाएँ मृत्तिका संलग्न हो रही हैं । उन जटाओं-  
के मध्य ७ हजार मनुष्य अनायास हो छिप सकते थे ।  
नर्मदाकी भोपण वाढ़में उस द्वीपका एकान्श घस जानेसे  
यह वृक्ष भी नष्ट हो गया ।

पतङ्गिन कलकत्ताके निकटवर्ती शिवपुर ग्रामस्थ  
रायल वोटानिकल गार्डनमें एवं बम्बई प्रदेशके सतारा  
उद्यानमें इस तरहके दो वटवृक्ष हैं । शिवपुर मैदम्य-  
उद्यानके संरक्षक आष्टर किंग विशेष पर्व्यवेक्षण करके  
कहते हैं कि, यह वृक्ष १ सौ वर्षसे भी अधिक प्राचीन  
। यह १७८२ ई० में एक दमूर वृक्षके ऊपर पैदा हुआ  
था । उसकी २३२ जड़ें गोल गोल स्तम्भोंके रूपमें  
मिट्टीसे मिलती हैं । उनमें मूलस्तम्भ ( *काण्ड* ) का  
व्यास प्रायः ४२ फीट है । इसकी पत्रसमाच्छादित  
शाखा प्रशाखाओंकी छाया परिधि लगभग ८५७  
फीटकी है । अभी भी यह वृक्ष उत्तरोत्तर बढ़ना जा  
रहा है । एवं और भी बढ़नेकी आशा की जाती है ।  
१८८२ ई०में सताराके वटवृक्षका परिदर्शन करके मि०  
यानेर साह्य लिखते हैं, कि यह वृक्ष कलकत्ताके वटवृक्षसे  
कहीं बड़ा है । उसकी परिधि १५८७ फीट है एवं यह उत्तर-  
दक्षिण ५६५ फीट तथा पूरब-पश्चिममें ४४२ फीट है ।

वट और पीपलकी छाया घनी और ठण्डी होती है। उनकी डालोंमेंसे जो जटाएँ निकलती हैं, वे नीचे आ कर जड़ और तनेका काम देने लगती हैं जिससे वृक्षका विस्तार बहुत शीघ्रतासे होने लगता है। यही कारण है, कि बरगदके किसी बड़े वृक्षके नीचे सैकड़ों हजारों आदमी तक बैठ सकते हैं। इसीलिये वे वृक्ष पुण्यक्षेत्र रूपमें गिने जाते हैं। छायाके लिये ही कितने लोग सड़कके किनारे अथवा पुष्करिणीके तट पर पंचवटीका निर्माण करते हैं। पंजाबमें ये वृक्ष पथिकोंको निशा-शिशिरसे रक्षा करते हैं। इनसे एक ओर जितना लाभ है, दूसरी ओर उतनी ही हानि भी है। पक्षीसमूह यदि वटवृक्षके फलोंको खा कर किसी गृहकी छत पर या मन्दिरोंके शिखर पर विष्ठा त्याग करते हैं, तो उन विष्ठास्थित बीजोंसे वृक्ष उत्पन्न हो कर कुछ ही दिनोंमें दीवालके अन्दर जड़ें घुसा देता है। उस समय बीघार तोड़ कर उस वृक्षको समूल नष्ट किये बिना निस्तार नहीं। अथहेला करनेसे यह वृक्ष शीघ्र ही बढ़ कर उस गृहको ध्वंस कर देता है। हिन्दू लोग पाप होनेके भयसे वट अथवा अश्वत्थ वृक्षको नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करते। अत्यन्त यत्नके साथ जीवित वृक्ष मूलसहित उगमाड़ कर दूसरे स्थानमें जमा देते हैं।

दक्षिण-भारतके रत्नगिरि जिलेमें वटवृक्षके ऊपर कर निर्दिष्ट है। कारण यह है, कि बाटुर पक्षी साधारणतः *Calophyllum inophyllum* वृक्षके फलोंके बीजमहित विष्ठा त्याग करते हैं। इन बीजोंसे तेल निकलता है। अनेक वटवृक्षों पर लाह भी उत्पन्न होती देखी गई है। वटके दूधमें उसका बीजोई भाग सरसों तेल डाल कर आंच देनेसे एक प्रकारका गोंद तैयार होता है। वह गोंद बिड़ोमारके पक्षी एक डूनेके काममें आता है। आसामी लोग इससे एक प्रकारका कागज तैयार करते हैं। कोई-कोई वटवृक्षकी जड़ोंके रेशोंसे रस्ती बनाते हैं, किन्तु उससे कोई विशेष काम नहीं चलता।

दुग्धयत् वटवृक्षका लासा वेदनानाशक होता है। घातसे होनेवाली वेदनाके स्थान पर इसका मलेप करनेसे बहुत फायदा होता है। पाँचका

तलचा कट जानेसे अथवा दन्त-पीड़ा होनेसे इसका दूध उस क्षत स्थान पर दाँतोंकी जड़में लगानेसे यातनाका शीघ्र ही ह्रास हो जाता है। इसकी छालका गुदा पीष्टिक एवं बहुमूल रोगोंमें विशेष गुणदायक है। बीजका गुण शीतल तथा बलकर है। वटवृक्षके कोमल पत्ते उत्सव करके फोड़े पर लगानेसे पुल्टिसका काम करता है। गनोरिया रोगमें इसकी जड़का चूर्ण विशेष उपकारी होता है। वह सालसाका काम करता है।

इस वृक्षकी नई शाखाओंका काढा रकोटकागनाशक तथा जड़के कोमल अप्रमाण यमनविदारक होते हैं। शफ वटका दूध तथा फल सफनदोष (Spermatorrhæa), प्रमेह (gonorrhæa) नाशक एवं कामोद्दीपक माना गया है। कच्ची फली तथा दुग्धधारक-गुणविशिष्ट एवं अजीर्ण तथा उदरामय रोगमें विशेष हितकर है।

दुर्भिक्षके समयमें इसके लाल रंगके पके हुए फलको खा कर दरिद्र लोग अपने पेटकी उजाला शान्त करते हैं। हाथी, गाय आदि जानवर भी इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं। इसकी लकड़ी विशेष उपकारी नहीं होती। सिर्फ पतली पतली सूखी डालियाँ जलावन (ईंधन)में काम आती हैं। *Ficus elastica* या दूधदार वट नामक और एक श्रेणीका वटवृक्ष देखा जाता है। उसका दूध रबरके समान ही गुणयुक्त होता है।

गुण—कषाय, मधुर, शिशिर, कफ, पित्तज्वरापह्न, दाह, तुष्या, मेह, व्रण तथा शोफनाशक।

वृक्षोंमें वट तथा अश्वत्थ वे दो वृक्ष ही हिन्दू-समाजमें पूजनीय गिने जाते हैं। हिन्दू लोग वट वृक्षकी रुद्र-स्वरूप मानते हैं।

इन वृक्षोंके दर्शन, स्पर्श तथा सेवा करनेसे पाप दूर होते एवं दुःख, आपद् तथा व्याधि जाती रहती है। अतएव वे वृक्षों रोपनेसे अशेष पुण्य संबन्ध होता है। यैत्रा-खादि पुण्य मासमें इन वृक्षोंकी जड़में जल देनेसे पापोंका नाश होता है एवं नाना प्रकारकी सुख सम्पद् प्राप्त होती है।

२ कपहक, कीड़ी। ३ गोला। ४ मर्हयशेष, बड़ा। ५ साम्य, समान होनेका भाव। (श्लो०) ६ व्रजमण्डलके

३ अश्वतोद्गाह, भविष्यहित । ४ जिसको पूँछ न हो या फट गई हो, लंहरा, बाँड़ा ।

वण्टक (सं० पु०) वण्ट पत्र स्वार्थे कन् । १ भाग, बाँट । वण्ट-प्युल । ( त्रि० ) २ वण्टनकारी, विभाजक, बाँटने-वाला ।

वण्टन (सं० स्त्री०) वण्ट-ल्युट् । विभाग ।

वण्टनीय (सं० त्रि०) वण्ट अनीयर् । बाँटने लायक, विभाग करनेके योग्य ।

वण्टाल (सं० पु०) १ शूरीका युद्ध । २ नौका । ३ खनित्र, खनती ।

वण्टिन (सं० त्रि०) वण्ट-इत्च् । कृतविभाग, बाँटा हुआ ।

वण्ट (सं० पु०) वण्टते इति चञि-अच् । १ अश्वतोद्गाह, भविष्यहित । २ चामन, बीना । ३ दास । ४ कुन्तायुद्ध, भाजा । ( त्रि० ) ५ हीनांग, जिसका कोई अंग खंडित हो । जैसे—लूला, लंहरा, खंजा आदि ।

वण्टर (सं० पु०) १ स्थगिकारज्जु, यह रस्सी जिससे बकरी, गाय आदिको गलेसे बांधते हैं । २ कुत्तेको पूँछ । ३ तालपत्र, ताड़के शूशका कोंपल । ४ बाँसके कल्लेका यह मोटा पत्ता जो उसे लिप्राये रहता है । यह पत्ता गांड गांड पर होता है और बहुत कड़ा तथा भूरे रंगका होता है । ५ स्तन, धन । ६ मेघ । ७ कुफुट, कुत्ता ।

वण्टाल (सं० पु०) वण्टात देखा ।

वण्ट (सं० पु०) वनते इति वन-सम्भक्तौ चममपडात् टः । उच्च-११११३ इति ट । १ यह जिसकी लिङ्गनिद्रवके अग्रभाग पर यह चमड़ा न हो, जो सुपारीको ढाँके रहता है । २ श्वजभङ्ग नामक रोग । पर्याय—दुग्धवर्मा, द्वितानक, शिपियष्ट । ( त्रि० ) ३ हस्तादि वर्जित, लांगू-लाहिरहित । ४ हीनाङ्ग, बाँड़ा ।

वण्टर (सं० पु०) १ कंजूस, मफलीचूस, सूम । २ यह नपुंसक जो अन्त-पुरका रसक हो, भोजी ।

वण्टा (सं० स्त्री०) असती स्त्री, पुंश्वली ।

वण्ट (सं० अर्थ०) दातीति वा उति । साम्य, धन ।

पर्याय—या, यथा, तथा, पय, पर्य ।

वर्त (सं० पु०) अयतंतयति वा

अय-तसि अच् घञ् वा अवस्थाहोषः । १ कर्णपूर, कर्णभूषण, कानका जेवर । २ शैवर, निरोप्यण ।

( गीतगोविन्द ३१२ )

वत (सं० अर्थ०) १ खेद । २ अनुरूप्य । ३ सगोचर । ४ विस्मय । ५ आमन्त्रण ।

वतण्ड (सं० पु०) वनतीति वन (अपह्व इधुधरमा । उच्च-११२२) इत्यल वनतेस्तकारान्तादेशः । एक मुनिना नाम ।

वतन (अ० पु०) १ वासस्थान । २ जन्मभूमि ।

वतापन (सं० पु०) वातापन, भरोखा ।

वतीर (अ० पु०) १ ढंग, रीति, प्रथा । २ चाल ढाल । ३ लत, टेव ।

वट् (सं० पु०) १ देवनदी । २ सतययाक् । ३ पग्था । ४ अक्षिणीग ।

वतीका (सं० स्त्री०) अयगतं तोकं अपह्वं वस्या, अपस्या-होषः । अयतोका, यह गाय जिसका गर्भ पतन हो गया हो ।

वत्स (सं० पु०) वदतीति वद (वदुपदि इनि-कमिकपिम्बः सः । उच्च-३६२) इति स । १ वर्ष, वत्सर । २ गोशिशु, गायका बच्चा, बछड़ा । पर्याय—शकुत्करि, तर्णक, दोग्धा, दोपक, दोप, रोहिणिय, चाहुलेय, तन्नुम । सयो-जात वत्सरका पर्याय—तर्णक, तर्णमि, तन्नुम, कच ।

३ शिशु, बालक, बच्चा । ४ त्रिपोदासका पुत्र । (भाग-वत ६।१।१५) ५ देशभेद, कीसाम्बी । ६ कंसका एक अनुचर, वत्सासुर । यह असुर धीरुष्ण्या द्वारा निहत हुआ था । (भागवत-१०।६६०) ७ इन्द्रपय, इन्द्रजी । ८ मुनि-विशेष । (लिङ्गपु० ७।५०) (स्त्री०) ९ वक्षस्, छाती ।

वत्स—१ कुमारसम्भवटीकाके रचयिता । २ चरका-ध्वपुं सूत्रके प्रणेता । हेमाद्रिते इनका उल्लेख किया है ।

वत्सक (सं० स्त्री०) वत्स-सहाय्यं इयाद्यं वा कन् । १ पुष्प-कसीस । (पु०) वत्स-कन् । २ कुट्टन । ३ इन्द्रजी ।

निगुण्डी

०) नीपचमेद ।

शेनपपड़ा ।

इन्द्रजी ।

। इन्द्रजी ।

वत्सकामा ( सं० स्त्री० ) वत्सं कामयते इति कम्-अच्-टाप् । १ वत्सामिलापिणी गाय । पर्याय—वत्सला ।

२ पुत्रादिकामा स्त्री, वह स्त्री जिसे पुत्रकी कामना हो ।

वत्सगुह ( सं० पु० ) पुत्रका आचार्य ।

वत्सघोष ( सं० पु० ) एक देशका नाम जो नक्षत्रोंके प्रथम वर्गमें है ।

वत्सतन्त्री ( सं० स्त्री० ) वत्सस्य तन्त्री । वत्सवन्धन रज्जु, वह रस्सी जिसे बछड़ा बांधा जाता है ।

वत्सतर ( सं० पु० ) प्रातःदमनकाल गोशिशु, जवान बछड़ा जो जोता न गया हो, दोहान । पर्याय—दम्य, दुर्दान्त, गड़ि ।

वत्सतरी ( सं० स्त्री० ) वत्सतर-डोप । वह बड़िया जो तीन वर्षकी हो, कलोर । गृहोत्सर्गमें चार वत्सतरीके साथ एक चूय उत्सर्ग करनेका विधान है । इस वत्सतरीको उत्तम रूपसे अलंकारादि द्वारा सजा देना होता है । तीन वर्षमें कमकी वत्सतरी नहीं होती ।

वत्सदन्त ( सं० पु० ) बछड़ेके दांतके समान तीरभेद ।

वत्सदामन—शूरसेनवंशीय एक राजा । इनके पिताका नाम देवराज और माताका याज्ञिका देवी था ।

वत्सनापात् ( सं० पु० ) वज्रुका बंधधर ।

( शतपथब्रा० १४।१।१२२ )

वत्सनाभ ( सं० पु० ) वत्सान्धु नम्पति दिनस्तीति नभ हिसायां ( कर्मव्ययण् । पा ३।२।१ ) इत्यण् । विपवृक्ष-विशेष, मोठा जहर ( *Aconitum ferox* ) । इसे घबईमें बछनाम और तामिलमें बसनवी कहते हैं । संस्कृत-पर्याय—अमृत, विष, उग्र, महीपथ, गरल, मारण, नाग, स्तौकक, प्राणहारक, स्थावरादि । गुण—अतिमधुर, उष्ण, घात, कफ, कण्ठपीडा और सन्निपातनाशक, पित्त तथा सन्तापवर्द्धक ।

इसका पीघा हिमालयके कम ठण्डे भागोंमें होता है । इनकी जड़ विशेषतः नेपालसे आती है । इसके पत्ते संभालूके पत्तोंके समान होते हैं । विष जड़में होता है । भावप्रकाशमें लिखा है, कि वत्सनाभाष्य विषकी आकृति गोवत्सको तरह होती है और इसके पत्ते संभालूके पत्तोंके समान होते हैं । जहां वत्सनाभ विषका वृक्ष रहता है,

इसके निकट कोई भी वृक्ष बढ़ने नहीं पाता । यह वृक्ष शोध कर औषधोंमें दिया जाता है ।

शोधनप्रणाली—जड़के छोटे छोटे टुकड़े काट कर तीन दिन तक गोमूत्रमें भिगोते हैं । पीछे छालको अलग करके लाल सरसोंके तेलमें भिगोए हुए कपड़े में पोतली बांध कर रखते हैं ।

गुण—यह विष प्राणनाशक, ध्यायी और विकाशि-गुणयुक्त, अग्निगुणबहुल, वायु और कफनाशक, योग-घाही तथा मत्तताजनक होता है । किन्तु उपयुक्त मात्रा और युक्तिके साथ सेवन करनेसे यह प्राणरक्षाका कारण, रसायन, योगवाही, घातघ्न, कफापहारक और त्रिदोष-नाशक होता है । इसके योगसे मृत्युञ्जयरस, आनन्द-भैरवरस, पञ्चवक्त्ररस आदि कई प्रसिद्ध औषधें बनती हैं ।

२ सहायद्विवर्णित राजभेद । ( छदा० २७।१७ )

वत्सप ( सं० पु० ) १ वत्सपालक । २ धीरुष्ण । ३ दानव-भेद । ( अथर्व ८।१।११ )

वत्सपति ( सं० पु० ) राजभेद, वत्सराज । ( वायवदत्ता )

वत्सपत्तन ( सं० स्त्री० ) वत्सराजस्य पत्तनं । भारतवर्षके उत्तरका देश, काशाब्धी ।

वत्सपाल ( सं० पु० ) वत्सान् पालयतीति वत्स-पालि-अण् । १ धीरुष्ण और बलदेव । वृन्दावनमें उन्होंने गो-वत्स पालन किया था इसलिये ये वत्सपाल कहलाये । ( त्रि० ) २ वत्सपालक, बधा पालनेवाला ।

( हरिवं० ६७।२४ )

वत्सप्रचेतन् ( सं० त्रि० ) पूजा-पाठमें प्रकृतमना ।

वत्समी ( सं० पु० ) राजभेद, भलन्दनके पुत्र । इनका दूसरा नाम वत्समीति था । ये ऋग्वेदके ६।६८ और १०।४५, ४६ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं ।

वत्समीति ( सं० पु० ) १ वत्समीति, राजभेद । ( स्त्री० )

वत्सस्य मीतिः । २ वत्सके प्रति मीति ।

वत्सबन्धा ( सं० स्त्री० ) वडवत्सा । वत्साकांक्षी गाम्भी ।

वत्सबालक ( सं० पु० ) वसुदेवके भाई ।

वत्सभक्षक ( सं० पु० ) वत्सस्य भक्षकः । ईशामृग । यह गायका बछड़ा खाता है इसीसे इसको वत्सभक्षक कहते हैं ।

घटसभूमि ( स० खी० ) १ जनपदभेद, घटसौकी घास-भूमि । (भारत खन० २५१३) २ घटसराजके पुत्रका नाम ।  
घटसमित्र ( स० पु० ) गोभिलश्रुति ।

घटसमुद्र ( स० पु० ) वह जिसका मुँह गण्डके षड्भुके जैसा हो ।

घटसर ( स० पु० ) घमन्त्यस्मिन् अयनचंद्रमासपक्षवारा-द्वय इति, घम निघांसे (पेशेन्च । उण् ७।७१) इति सरन्, ( सः स्याद् घातुके । पा ७।४।४६ ) इति सस्यतः । उतना काल या समय जितनेमें पृथ्वी सूर्यकी एक परिक्रमा पूरी करती है, कालका यह मान जो वारह महाना या ३६५ दिनोंका होता है । पर्याय—संघटसर, अश्व, हायन; शरत्, समा, शरदा, वर्ष, गरिप, संघत् । ( शब्दरत्ना० )

मलमासमन्वयमें लिखा है, कि सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्रके भेदसे घटसर चार प्रकारका होता है; इसलिये सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्रके भेदसे मास भी चार प्रकारका हुआ । इनमेंसे वारह सौर मासका एक सौर वर्ष और वारह चान्द्रमासका एक चान्द्रवर्ष होता है । किन्तु मलमास होने पर नेरह महानाका एक चान्द्र वर्ष होता है । "चान्द्रवत्सरोऽपि द्वादशमासैर्भवति, मलमासवाने तु त्रयोदशमासैर्भवति । तथाच ध्रुतिः—द्वादशमासाः संघटसरः, ऋचात् त्रयोदशमासतः संघटसरः ।" ( मलमासतत्त्व )

वारह नाक्षत्र मासका एक नाक्षत्र घटसर और वारह सावन मासका एक सावन घटसर होता है । सूर्य जब तक एक राशिमें रहने हैं, तब तक एक सौरमास होता है । सूर्यके राशिमें रहनेसे मास हुआ है, इस कारण इसको सौरमास कहते हैं । साल, श्रावण आदि सौरमानानुसार ही गिना जाता है ।

तिथिघटित मानकी चान्द्रमास कहते हैं । चान्द्रमास मुख्य और गौणके भेदसे दो प्रकारका है । वारह चान्द्रमासका एक चान्द्रघटसर होता है । २७ नक्षत्रका एक नाक्षत्र मास और इसके वारह नाक्षत्र मासका एक नाक्षत्र वर्ष होता है । सौर और चान्द्रके भेदसे सावन-मास भी दो प्रकारका है । जिस दिनसे ले कर ३० अहोरात्रका जो मास होता है वही सौर सावनमास है । जैसे १०घों भाद्रपदसे ले कर १५घों कार्तिक तक

३० अहोरात्रका एक सौरसावन मास हुआ करता है । जिस किसो तिथिसे ले कर उसकी पूर्ण तिथि तक ३० तिथिका एक चान्द्रमास और उसके वारह महानाका एक सावनवत्सर होता है । विशेष विवरण माघ, मत्तमाघ और पट्टि संवत्सर शब्दमें देखो ।

सौरवत्सर प्रभवादि ६० नामोंमें विभक्त हैं, इस कारण पट्टि संघटसर नाम हुआ है ।

२ ध्रुवके एक पुत्रका नाम । (भागवत ४।१०।१) ३ एक मुनिका नाम । (किन्नपु० ६१।११)

घटसराज ( स० पु० ) घटसौका नरपति ।

घटसराज—एक राजाका नाम । इस नामके अनेक राजा हो गये हैं । एक तो कौशांबीका प्रसिद्ध राजा था जो गोतम बुद्धका समसामयिक था । चौहानवंशमें भी एक घटसराज हुआ । लाट देशका एक चीलुषयवंशी राजा इस नामका हुआ है । महोदयेके चंडेल राजाओंका एक मन्त्री घटसराज था जो अल्हा गानेशालोंमें 'बच्छराज' के नामसे प्रसिद्ध है ।

घटसराज—निर्णयद्वीपिकाके रचयिता । २ भोजप्रबन्ध और हास्यचूडामणिप्रदसप्तके प्रणेता । चाराणसौर्षण और उसकी टीकाके प्रणेता । ये रामाश्रमके जिन्य और राघव त्रिपाठीके पुत्र थे । १६४१ ई०में इन्होंने उक्त पुस्तक लिखी थी ।

घटसराजदेव—एक प्राचीन कवि ।

घटसरादि ( स० पु० ) घर्षका आदि, मार्गशीर्ष, अगहन । घटसरागत ( स० पु० ) घटसरस्य अगते कापति शोभते इति कै-क, यद्वा घटसरस्यान्ते नाशो यस्मान् । पाल्गुन मास ।

घटसल ( स० त्रि० ) घटस्ये पुत्रादिस्नेहपात्रे कामो-ऽस्वास्तीति घटस ( घटसांम्यो कामसले । पा ५।२।६८ ) इति लच् । १ पुत्र या संतानके प्रति पूर्ण स्नेहपुत्र, बच्चेके प्रेमसे भरा हुआ । २ अपरेसे छोटीके प्रति अत्यन्त स्नेहयान या कृपालु । ( पु० ) ३ माहिरयमें कुछ लोगोंके द्वारा माना हुआ दवायाँ यास्तस्य रस । इसमें पिता या माताका अपना सन्ततिके प्रति रतिमाय या प्रेम प्रदर्शित होता है ।

वत्सलता (सं० स्त्री०) वत्सलस्य भावः तल्-टाप् ।  
वात्सल्य, वत्सलका भाव या धर्म ।

वत्सला (सं० स्त्री०) वत्सल-टाप् वा वत्सं ल्गति ला-क-  
टाप् । वत्सकामा गो ।

वत्सवत् (सं० त्रि०) वत्स अस्त्यर्थे मत्तुप् मस्य वः ।  
वत्सयुक्त, जिसे बधा हो ।

वत्सवती (सं० स्त्री०) वत्सयुक्ता गामी, वह गांध जिसे  
बछड़ा हो ।

वत्सवरदाचार्य—प्रपणपरिजातके प्रणेता ।

वत्सविन्द (सं० पुं०) एक ऋषिक नाम । (प्रवराध्याय)

वत्सवृद्ध (सं० पुं०) एक राजाका नाम । (भाग० ६।१२।६)

वत्सव्यूह (सं० पुं०) वत्सका पुत्र । (विष्णुपुराण)

वत्सगाल (सं० त्रि०) गोशालामें उत्पन्न ।

वत्सगाला (सं० स्त्री०) गोशाला, गुहाल ।

वत्सस्मृति—प्राचीन स्मृतिग्रन्थविशेष । माघवाचार्यने  
कालमाघवीय ग्रन्थमें इसका उल्लेख किया है ।

वत्सा (सं० स्त्री०) वत्स-टाप् । वत्सा, बछड़ी ।

वत्साक्षी (सं० स्त्री०) वत्सस्वाक्षोय गालचिह्नं यस्याः ।  
यच्, समासान्तः, स्त्रियां ङीप् । तरवृत्त, कलिन्दा ।

वत्साजोघ (सं० त्रि०) १ गोवत्स पालन द्वारा जीविका-  
निर्वाहकारी, बछड़े को पाल कर अपना गुजारा चलाने-  
वाला । २ पिङ्गल ऋषि ।

वत्सादन (सं० पुं०) अक्षोति अद व्यु, वत्सानां अदनः  
भक्षकः । [वृद्ध, भेड़िया ।

वत्सादनी (सं० स्त्री०) वत्सैरघते प्रियत्वादिति, अद-  
ल्लुट्, ङीप् । गुडूची, गिलोय ।

वत्सार (सं० पुं०) काश्यपके एक पुत्रका नाम ।

वत्सासुर (सं० पुं०) असुरभेद । यह मधुरापति कंसका  
अनुचर था । घृन्दावनमें श्रीकृष्ण जब गाथ चराते थे,  
तब यह असुर उनका अनिष्ट करनेके उद्देशसे वत्सरूपमें  
इधर उधर भ्रमता था । पीछे श्रीकृष्णने इसका वध किया ।

(भागवत १०म स्कन्ध)

वत्सिन् (सं० त्रि०) १ वत्सयुक्त, बछड़ोंके साथ ।

२ पुत्रसमन्वित, पुत्रोंके साथ । (पुं०) ३ श्रीकृष्ण ।

वत्सिमन् (सं० त्रि०) वाल्यावस्था, लड़कपन ।

वत्सीय (सं० त्रि०) वत्स (सम्भे हितं । पा ५।१।१५) इति

हितार्थे छ । वत्सोंका हितकारी, बछड़ोंकी भलाई करने-  
वाला ।

वत्सेश्वर (सं० पुं०) १ राजभेद । २ वैयाकरणभेद ।  
३ चिकित्सासागरके प्रणेता ।

वत्स्य (सं० त्रि०) वत्ससम्बन्धीय ।

वधुत्सर (सं० पुं०) वैयाकरण पोद्दारसादिके मतसे  
वत्सर शब्दका रूपान्तर । (पाणिनि ८।४।४८ वार्तिक)

वद (सं० क्ली०) कथन, उक्ति, घोषदेशके मतसे सन्देश-  
वचन और कथन । दासि, सान्त्वयन, ज्ञान, उत्साह, विवाद  
और प्रार्थनाके अर्थ समझे जानेसे वद धातुका आत्मने  
पद होता है ।

अनु + वद = अनुवाद, सङ्ग्रहकथन । अप + वद =  
अपवाद, अकीर्ति । अभि + वद = अभिवादन, प्रणाम ।  
प्रत्यभि + वद = प्रत्यभिवादन, प्रतिनमस्कार । परि + वद  
= परिवार, निन्दा । प्र + वद = प्रवाद, जनश्रुति । प्रति +  
वद = प्रतिवाद । सम् + वद = संवाद । विसम् + वद =  
विसंवाद । वि + वद = विवाद, कलह ।

वद (सं० त्रि०) वदति वक्तोति वद-पचा घञ् । वक्ता,  
बोलनेवाला ।

वदक (सं० त्रि०) वाक्यकथनशील, बोलनेवाला ।

वदतोष्याघात (सं० पुं०) कथनका एक दोष । इसमें कोई  
एक बात कह कर फिर उसके विरुद्ध बात कही जाती है ।

वदन (सं० क्ली०) वदन्त्यनेनेति वद करणे-ल्युट् । १ मुख,  
मुंह । २ अप्र भाग, अगला हिस्सा । वद भावे ल्युट् ।

३ कथन, बात कहना ।

वदनदन्तुर (सं० पुं०) जातिविशेष ।

(मार्कण्डेयपुं० ५।८।१२)

वदनरोग (सं० पुं०) वदनस्य रोगः । मुखरोग ।

वदनदयामिका (सं० स्त्री०) वदनस्य श्यामिका, दन्त ।

वदनकालिमा, धत्र्या ।

वदनामय (सं० पुं०) वदनस्य आमयः । वदनरोग ।

वदनाम्लता (सं० स्त्री०) वदनस्य अम्लता । पित्तज रोगभेद ।

इस रोगमें मुंह हमेशा सदा मालूम होता है ।

वदनासय (सं० पुं०) वदनस्य आसयः । अधरमधु ।

वदन्ति (सं० स्त्री०) वद (वेदरञ् । उण् ३।५०) इत्यु-  
ज्ज्वलदक्षोक्त्या । भक्ष, वृत्तिकारादिति घा ङीप् ।

१ कथा, वान । यद्-घातु लट् अन्ति करनेसे भी यदन्ति होती है । यह 'यदन्ति' क्रियापद है । यद् घातु जव् प्रत्यय करके खोलिङ्गमें खीप् प्रत्ययमें यदन्तीपद होता है ।

यदन्तिक (सं० पु०) जातिविशेष । (मार्कण्डेयपु० ५८।४५) यदन्य (सं० लि०) यदान्य, उदार ।

यदल—वर्धमंडप्रदेशके गोहेलवाह प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य । अभी यह दो पट्टीदारोंमें बट गया है । राजस्य २५५० रु० है जिनमेंसे बड़ीदाके गायकवाड़को १५४ रु० कर देना पड़ता है । यदल नगर यहांका प्रधान याण्ड्य स्थान है । भूपरिमाण दो घर्गमील है ।

यदली—वर्धमंडप्रदेशके हल्लार प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य । राजस्य २००० रु० है जिनमेंसे घृदिश-सरकारकी २४६ रु० और जूनागढ़के नवाबको वार्षिक ७८ रु० कर देना पड़ता है । यदली ग्राम यहांका प्रधान स्थान है, भूपरिमाण दो घर्गमील है ।

यदली—वर्धमंडप्रदेशके गुजरात प्रदेशके महीकाण्था विभागका एक प्राचीन नगर । इदरसे यह छः कोस उत्तरमें अवस्थित है । ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक यूएनचुयङ्ग इस नगरकी समृद्धिका उल्लेख कर गये हैं । ११वीं सदीमें यदली नगर एक विस्तीर्ण राज्यकी राजधानी रूपमें गिना जाता था ।

यदगारा—मद्राज-प्रदेशके मलयार जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० ११° ३६' उ० तथा देशा० ७५° २७' १५' पू० के मध्य समुद्रके किनारे अवस्थित है । कोलिकटसे कोन्नूर तकका विस्तृत पथ इसी नगर हो कर गया है । यहांका दुर्ग कोलसिदि (चौरदाल) राजाओंका बनाया हुआ है । १५६४ ई०में उक्त राजवंशके किसी राजाोंने यह दुर्ग कोदत्तनाह-राजवंशके हाथ सौंप दिया । पीछे यह टोपू मुलतानके हाथ लगा । टोपूने इसको याण्ड्य-शुल्क उगाहनेके प्रधान राजकायांलयरूपमें परिणत किया । १७६० ई०में अहमदशाहने टोपूके हाथसे यह दुर्ग छीन कर पूर्वोक्त कोदत्तनाह राजवंशके हाथ दे दिया था । अनन्तर यह तोर्घापातियोंके विधाममयनमें परिपलित हुआ है । यह नगर याण्ड्य-प्रधान है ।

यदाभ्य (सं० लि०) यदति सर्वेभ्य यव दास्यामीति मनो-

हरवापयमिति षट् (वदेगन्थः) । उष् ३।१०५) इति भाष्य । १ बहुप्रद, अतिशय दाता, उदार । २ यल्लुवाक्, मधु-भाषी । (पु०) ३ स्वनामप्रसिद्ध ऋषियेश्वर ।

यदाम (सं० क्ली०) फलविशेष, वादाम । पर्याय—सुफल, घातमरी, नेत्रोपम । गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, घातनाशक, गुह्र और शुकवर्द्धक । (राजनि०) भाष्यप्रकाशके मतसे यह मधुघ, बलकारक, उष्ण, कन्दनाशक और रक्तपित्त-रोग-नाशक माना गया है ।

यदाल (सं० पु०) यद्-घञ्च् फ, यद्देन यद्देन अलति पर्याप्तोतीति यद्-अल-अच् । मत्स्यविशेष, पहिना नाम की मछली । इस मत्स्यका हृष्यरूपमें व्यवहार किया जा सकता है । पर्याय—पाठीन ।

यदालक (सं० पु०) यदाल पत्र स्वार्थे कन् । पाठोग-यत्स्य, पहिना मछली ।

यदायद् (सं० लि०) अत्यन्त यदतीति यद्-अच्, (परि-चासित । पा ३।१।२३५) इत्यस्य यासिक्पोष्टवा निपातितं । यषता, बोलनेवाला ।

यदायद्विन् (सं० लि०) अत्यन्त यचनशील, बहुत बोलने वाला ।

यदि (सं० पु०) कृष्ण पशु, जैसे घैनाम यदि ५ ।

यदितप्य (सं० लि०) यद्-तठ्य । कथनयोग्य, कहने लायक ।

यदित् (सं० लि०) यद्-चूच् । यका, बोलनेवाला ।

यदिवांस—प्राचीन जनपदभेद । बन्दिवांस देखो ।

यध (सं० पु०) हननमिति हन-अप् घघादेशः प्राणविशेष-जनक व्यापारविशेष, मारण, नाश । पर्याय—प्रमाण, नियर्हण, निराकरण, निशारण, प्रयासन, परासन, निम्-दन, निर्दिस्तन, निर्वासन, संछपन, निप्रस्थन, अपासन, निस्तर्हण, निहनन, क्षण, परिवर्जन, निर्वापण, विनासन, मारण, प्रतिघातन, उद्धासन, प्रमथन, क्रथन, उज्जासन, आलम्भ, विज, विदार, घाह, उग्रमथ, हिंसा, घातन, विदारण, पिच्छक, पात, परिघ, परिघातन, यदन, निवारण, समाघात, निर्वाधन, मारि, मारी, उल्घात, मारक, मरक, मार, संघात । (शब्दरत्ना०)

किसी भी प्राणीका यध करनेसे पाप होता है । परन्तु भाततायी शत्रुका यध करनेसे पाप नहीं होता ।

पारिभाषिक वध—

“वधनं द्रविय्यादानं देशान्निर्वापनं तथा ।

एव हि ब्रह्मवधूनां वधो नान्योऽस्ति वैदिकः ॥”

( भारत धीतिकप० )

ब्राह्मणोंके मस्तक मुड़ा देना, उनका समस्त धन अपहरण करना तथा उन्हें देशसे निकाल देना इन्हीं सब कार्योंसे उनका वध होता है । इसीको पारिभाषिक वध कहते हैं ।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि जहाँ एक व्यक्ति का वध करनेसे बहुतोंका कल्याण होता है वहाँ वह वध पुण्यप्रद है तथा स्वर्गचौर, सुरापारी, ब्रह्महत्याकारी, गुणवन्तोगामी और आत्मवाती इन सब व्यक्तियोंका वध करनेसे पाप नहीं होता । यह वध भी पुण्यजनक बतलाया गया है ।

एकके लिये बहुतोंका वध नहीं करना चाहिये । किन्तु बहुतोंकी शान्तिके लिये एकका वध किया जा सकता है, उसमें कोई दोष नहीं होता ।

( वाग्मनु० ४ अ० )

वध और वन्धन पूर्वकर्मके वश्य हैं अर्थात् पूर्वा कर्मा-नुसार ही वध और वन्धन होते हैं । ( वाग्मनु० ६२ अ० )

स्मृतिमें वैचहिसा विचारस्थलमें कहा है, कि यज्ञादिमें जो पशुवधादि क्रिया जाता है उससे पाप नहीं होता । वैचहिसाके आतरिक जो कोई हिंसा को जाय उसमें अवश्य पाप होता है । यज्ञके लिये जो वध होता है, वह अवध है ।

किन्तु सांख्यदर्शनकी सांख्यतत्त्वकौमुदीमें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि यज्ञादिमें पशुवध करनेसे पाप और पुण्य दोनों ही होते हैं । वधके कारण जो पाप होता है वह होगा ही तथा यह ही पूर्णताके कारण जो पुण्य होता है वह भी होगा । परन्तु यज्ञमें पुण्यका भाग अधिक और पापका भाग कम है । अतएव बहुत सुख-भोग करके घोड़ा-सा कष्ट भोग करना उतना दुःखजनक नहीं है । विशेष विरण हिंसा शब्दमें देखो ।

अज्ञानतः गो आदिका वध करनेसे उसका प्रायश्चित्त करना होता है । प्रायश्चित्त करनेसे वधजन्य पाप दूर हो जाता है । यज्ञादिकी छोड़ कर अन्यस्थलमें वध करनेसे ही प्रायश्चित्त करना होगा ।

वधक ( सं० पु० ) हन्तीति इन्-क्कुन् (हन्ो वधश्च । उण् २:३६) इति वधादेशः । १ वधकर्ता, वध करने-वाला । हिंख, हिंसक । २ व्याधि, रोग । ३ मृत्यु, मरण । वधक—उत्तर-पश्चिम प्रदेशवासी जातिविशेष । वस्यु-वृत्ति इनकी प्रधान उपजीविका है, असहाय पयिक अथवा तीर्थयात्रियोंको भ्रांसापट्टो दे कर उनके प्राण ले लेते हैं, इस कारण इनका वधक नाम हुआ है, किन्तु जातिगत सद्गुणतामें ये यूरिया और वहेलियाके सद्गुण हैं । केवल इन लोगोंमें राजपूतोंकी ही अधिकता देखी जाती है । वर्तमानकालमें अनेक धर्मग्रन्थ मुसलमान भी इनके दलमें मिल गये हैं ।

मधुवा, पिलिभौत और गोरखपुर जिलेमें इन उकैती-का वास है । अङ्गरेजो शासनमें इन लोगोंने अभी बहुत कुछ शान्तभाव धारण किया है । ये लोग कमी कमी ब्राह्मण, मिश्रक अथवा चैरावाके वंशमें तीर्थयात्रियोंके साथ जाते हैं और तीर्थक्षेत्रमें यात्रियोंके तीर्थ काय्यां सम्पन्न करते हैं । इस समय वे दक्षिणा और प्रणाम-रूपमें बलपूर्वक उनसे रुपये वसूल करनेको चेष्टा करते हैं । अनेक समय यात्रियोंको धट्टा मिला हुआ प्रसाद खिला कर उनका सर्वस्व लूट लेते हैं ।

कालीमाता इनकी प्रधान उपास्य-देवी है । ये लोग देवीकी पूजामें छाग-बलि चढ़ाते हैं । धरकरके मांसके बलाघा वे गीदड़, लोमड़ी और नेवले आदिका मांस भी खाते हैं । इनका विश्वास है, कि गीदड़का मांस खानेसे शीतकालमें रातको भ्रमण करनेसे जाड़ा कुछ भी मालूम नहीं होता । ये लोग राजनिधमकी प्रतिवधकता रहते हुए भी छिपके शराव पीते हैं । उकैतीके उई शस्त्रे बाहर निकलनेके पहले ये लोग कालीमाताकी पूजा करते हैं और उनके सामने प्रतिज्ञा करते हैं, कि लूटमें जो कुछ माल मिलेगा उसमें कुछ दलमेंके मृतयत्तिकी विषवाको या उसके घालकवालिकाकी भरणपोषणके लिये देंगे । वधकर्म ( सं० छी० ) वध एव कर्म । प्राणविधोग फलक-व्यापार, घैसा काम जिसने प्राणनाश हो ।

वधकर्मधिकारिन् ( सं० पु० ) राजनिघण्टु प्राणहन्तु, जहाद ।

वधकाम्या ( सं० छी० ) वधकामना ।

वधजोवी ( सं० पु० ) वधेन प्राणिवधेन जीवति प्राणान्



१ कण्य, वान । यद्-घातु लट् अन्ति करनेसे भी यदन्ति होती है। यह 'यदन्ति' द्विपाद है। यद् घातु-शब्द प्रत्यय करके स्त्रीलिङ्गमें जीव् प्रत्ययमें यदन्तीपद होता है।

यदन्तिक (सं० पु०) जातिविशेष । (मार्कण्डेयपु० ५८।४५)

यदन्य (सं० त्रि०) यदान्य, उदार ।

यदल—बम्बईप्रदेशके गोहिलवाह प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य । अभी यह दो पट्टोदारोंमें बट गया है। राजस्य २५५० रु० है जिनमेंसे बहोदाके गायकवाड़को १५४ रु० कर देना पड़ता है। यदल नगर यहांका प्रधान वाणिज्य स्थान है। भूपरिमाण दो वर्गमील है।

यदली—बम्बईप्रदेशके हल्लार प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य । राजस्य २००० रु० है जिनमेंसे यूटिश-सरकारकी २४६ रु० और जूनागढ़के नवाबको वार्षिक ७८ रु० कर देना पड़ता है। यदली ग्राम यहांका प्रधान स्थान है, भूपरिमाण दो वर्गमील है।

यदली—बम्बईप्रदेशके गुजरात प्रदेशके महीकाण्वा विभागका एक प्राचीन नगर । इदरसे यह छः कोस उत्तरमें अवस्थित है। ७वीं सदीमें चीनपरिभाषक यूएनचुवङ्ग इस नगरकी समृद्धिका उल्लेख कर गये हैं। ११वीं सदीमें यदली नगर एक विस्तोर्ण राज्यकी राजधानी रूपमें गिना जाता था।

यदागरा—मन्द्राज-प्रदेशके मलयार जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षां ११° ३६' उ० तथा देशां ७५° ३७' १५' पू० के मध्य समुद्रके किनारे अवस्थित है । कोलिकटसे कोन्नूर तकका विस्तृत पथ इसी नगर हो कर गया है। यहांका दुर्ग कोलित्तिरि (चौरकल) राजाभोका बनाया हुआ है। १५६४ ई०में उक्त राजवंशके किंसे राजाने यह दुर्ग कोदत्तनाथ राजवंशके हाथ सौंप दिया। पोछे यह टोपू सुलतानके हाथ लया। टोपूने इसको वाणिज्य-शुल्क उगाहनेके प्रधान राजकायालयरूपमें परिणत किया। १७६० ई०में अहमदशाहने टोपूके हाथसे यह दुर्ग छोन कर पूर्वीक कोदत्तनाथ राजवंशके हाथ दे दिया था। मानगार यह तांभंपाक्षिकोंके विधामभवनमें परि-यत्तिम हुआ है। यह नगर वाणिज्य-प्रधान है।

यदाय (सं० त्रि०) यदति न्यवेभ्य एव दास्यामीति मनो-

हरयायपमिति वदुः (बदेरान्यः) उच्य ३।१०५ इति भाष्य ।

१ बहुमुद्र, अतिशय दाता, उदार । २ यन्मुयाक, मधु-मायो । (पु०) ३ स्वनामप्रसिद्ध प्रविविशेष ।

यदाम (सं० द्वि०) फलविशेष, बादाम । पर्याय—सुफल, घातवेरी, नेत्रोपम । गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, घातनाशक, गुह और शुकवर्द्धक । (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह मधुर, बलकारक, उष्ण, कन्दनाशक और रक्तपित्त-रोग-नाशक माना गया है ।

यदाल (सं० पु०) यद्-घञ्प्रथेक, यदेन यदनेन अलति पर्यायोतोति यद्-अल-अच् । मत्स्यविशेष, पहिना नाम की मछली । इस मत्स्यका दृश्यरूपमें व्यवहार किया जा सकता है। पर्याय—पाठीन ।

यदालक (सं० पु०) यदाल एव स्वार्थे कच् । पाठीन-यत्स्य, पहिना मछली ।

यदायद (सं० त्रि०) अत्यन्त यदतीति यद्-अच्, (परि-चाञ्जित । पा ३।१।२३५) इत्यस्य वार्तिकोपस्था निपातित् । यक्षता, बोलनेवाला ।

यदायदिन् (सं० त्रि०) अत्यन्त यचनशील, बहुत बोलने वाला ।

यदि (सं० पु०) कृष्ण यक्ष, जैसे यैनाय यदि ५ ।

यदितय्य (सं० त्रि०) यद्-तठ्य । कथनयोग्य, कहने लायक ।

यदित् (सं० त्रि०) यद्-चुच् । यक्ता, बोलनेवाला ।

यदियास—प्राचीन जनपदभेद । बन्दिवाष देवी ।

यध (सं० पु०) दहनमिति इन-अच् यथादेनाः प्राणयिषोग-जनक व्यापारविशेष, मारण, नाश । पर्याय—प्रमाण, नियर्हण, निराकरण, निवारण, प्रयासन, परामन, निष्-दन, निर्दिंसन, निर्वासन, संक्षयन, निग्रयन, अषामन, निस्तर्हण, निहनन, क्षण, परिवर्जन, निर्वापण, विनासन, मारण, प्रतिघातन, उद्धासन, प्रमथन, क्रयन, उद्धासन, आलम्ब, विश्व, विदार, घात, उग्रमथ, हिंसा, घातन, विदारण, पिञ्चक, पात, परिघ, परिघातन, बदन, निघा-रण, समाघात, निर्गन्धन, मारि, मारी, उत्यात, मारक, मरक, मार, संघात । (अमररत्ना०)

किंसे भी प्राणोका यध करनेसे पाप होता है । परन्तु आतानापी शत्रुका यध करनेसे पाप नहीं होता ।

पारिभाषिक वध—

“वपनं द्रविष्यादानं देशान्निर्वापनं तथा ।

एव हि ब्रह्मवन्धूनां वधो नान्योऽस्ति वैदिकः ॥”

( भारत छोड़ो १०० )

ब्राह्मणोंके मस्तक मुड़ा देना, उनका समस्त धन अपहरण करना तथा उन्हें देशसे निकाल देना इन्हीं सब कार्योंसे उनका वध होता है । इसीको पारिभाषिक वध कहते हैं ।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि जहाँ एक व्यक्ति का वध करनेसे बहुतोंका कल्याण होता है वहाँ यह वध पुण्यप्रद है तथा स्वर्गचौर, सुरापायी, ब्रह्महत्याकारी, गुप्तचलीगामी और आत्मघाती इन सब व्यक्तियोंका वध करनेसे पाप नहीं होता । यह वध भी पुण्यजनक बतलाया गया है ।

एकके लिये बहुतोंका वध नहीं करना चाहिये । किन्तु बहुतोंकी शान्तिके लिये एकका वध किया जा सकता है, उसमें कोई दोष नहीं होता ।

( वामनपु० ४ अ० )

वध और वन्धन पूर्वकर्मके वश्य हैं अर्थात् पूर्व कर्मा-नुसार ही वध और वन्धन होते हैं । ( वामनपु० ६२ अ० )

स्मृतियोंमें वैघडिंसा विचारस्थलमें कहा है, कि यज्ञादिमें जो पशुघादि क्रिया जाता है उससे पाप नहीं होता । वैघडिंसाके आतरिक जो कोई हिंसा को जाय उसमें अयय पाप होता है । यज्ञके लिये जो वध होता है, यह अयय है ।

किन्तु सांख्यदर्शनकी सांख्यतत्त्वकीमुद्दीमें वाच-स्वति मिथने लिखा है, कि यज्ञादिमें पशुवध करनेसे पाप और पुण्य दोनों ही होंगे । वधके कारण जो पाप होता है वह होगा ही तथा यज्ञकी पूर्णताके कारण जो पुण्य होता है वह भी होगा । परन्तु यज्ञमें पुण्यका भाग अधिक और पापका भाग कम है । अतएव बहुत सुख-भोग करके थोड़ा-सा कष्ट भोग करना उतना दुःखजनक नहीं है । विशेष विरय्य दिष्टा चम्बमें देखो ।

अज्ञानतः गो आदिका वध करनेसे उसका प्रायश्चित्त करना होता है । प्रायश्चित्त करनेसे वधजन्य पाप दूर हो जाता है । यज्ञादिको छोड़ कर अन्यस्थलमें वध करनेसे ही प्रायश्चित्त करना होगा ।

वधक ( सं० पु० ) हन्तीति इन-वकुन ( इनो वधरत्न । उण् २।२६ ) इति वधादेशः । १ वधकर्त्ता, वध करने-वाला । द्विष्, हिंसक । २ व्याधि, रोग । ३ मृत्यु, मरण । वधक—उत्तर-पश्चिम प्रदेशवासी जातिविशेष । दन्तु-वृत्ति इनकी प्रधान उपजीविका है, असहाय पथिक अथवा तीर्थयात्रियोंको भ्रंसापट्टी दे कर उनके प्राण ले लेते हैं, इस कारण इनका वधक नाम हुआ है, किन्तु जातिगत सहृदयतामें ये वीरिया और वदेलियाके सहृदय हैं । केवल इन लोगोंमें राजपूतोंकी ही अधिकता देखी जाती है । वर्त्तमानकालमें अनेक धर्मग्रन्थ मुसलमान भी इनके दलमें मिल गये हैं ।

मथुरा, पिलभीत और गोरखपुर जिलेमें इन डकैतोंका वास है । अङ्गरेजी शासनमें इन लोगोंने क्षमी बहुत कुछ शान्तभाव धारण किया है । ये लोग कमी कमी ब्राह्मण, मिश्रक अथवा वैरागोंके वंशमें तीर्थयात्रियोंके साथ जाते हैं और तीर्थक्षेत्रमें यात्रियोंके तोय काट्यां सम्पन्न करते हैं । इस समय ये दक्षिणा और प्रणामो-रूपमें बलपूर्वक उनसे रुपये वसूल करनेको चेष्टा करते हैं । अनेक समय यात्रियोंको धर्रा मिला हुआ प्रसाद बिला कर उनका सर्वस्व लूट लेते हैं ।

कालीमाता इनकी प्रधान उपास्य-देवी है । ये लोग देवीकी पूजामें छाग-चाल चढ़ाते हैं । बकरोंके मांसके अलावा ये गीदड़, लोमड़ी और नेवले आदिका मांस भी खाते हैं । इनका विश्वास है, कि गीदड़का मांस खानेसे शीतकालमें रातकी झ्रमण करनेसे जाड़ा कुछ भी मालूम नहीं होता । ये लोग राजनिन्दकी प्रतिवन्धकता रक्षते हुए भी छिपके शराय पीते हैं । डकैतीके उद्देशसे बाहर निकलनेके पहले ये लोग कालीमाताकी पूजा करते हैं और उनके सामने प्रतिज्ञा करते हैं, कि लूटमें जो कुछ माल मिलेगा उसमें कुछ दलमेंके मृत्युचिकिती विधवाकी यां उसके बालकबालिकाको भरणपोषणके लिये देंगे । वधकर्म ( सं० स्त्री० ) वध एव कर्म । प्राणविधायक फलक-व्यापार, घैसा काम जिसने प्राणनाश हो ।

वधकर्माधिकारिन् ( सं० पु० ) राजनियुक्त प्राणहन्त, जहाद । वधकाम्या ( सं० स्त्री० ) वधकामना । वधजीवी ( सं० पु० )—वधेन प्राणिवधेन जीवति प्राणात्

धारयति जीवणिन । यद् जो वध करके जीविका  
निर्याह करता हो । इनका धन मोजन, नहीं करना  
चाहिये । (पाठशस्त्र १॥६४)

वधत ( सं० क्लो० ) यधवनेऽवेनेति वध (ममि नदि-वधिवधि-  
पदभ्याऽवत्) उच्य १।२०५ इति भवत् । १ भवत्, हयियार ।  
२ नानसे बधानेवाला ।

वधदण्ड ( सं० पु० ) वध पय दण्डः । वधरूप दण्ड, प्राण-  
नाशको सजा । ( मनु ८।१२६ )

वधनिर्णक ( सं० पु० ) नरहरयाज्ञनित पापका प्रायश्चित्त ।  
वधभूमि ( सं० स्त्री० ) वधस्य भूमिः । वधवस्थान, यद्  
जगद् जहां प्राणदण्ड दिया जाता हो ।

वधस्थलो ( सं० ध्रो० ) वधस्य या स्थानं भूमिः । प्राण-  
वधस्थल, वधभूमि । पर्वत—भवात्, प्रघात, वधस्थान,  
भाघातन । ( शारव० )

वधस्न ( सं० त्रि० ) १ नाशकारो भवत् । २ इन्द्रको यज्ञ ।  
वधस्तु ( सं० त्रि० ) क्षयकारो भवत्परी, प्राण लेनेवाला,  
हयियारपद ।

वधा ( सं० अव० ) वध्वा देतो ।  
वधाङ्गक ( सं० क्लो० ) वधः वधवनेऽवेनाङ्गं यस्य, ततः  
कन् । कारावेदम, कारागार ।

वधाहं ( सं० त्रि० ) वधं अहंतीति अहं-अण् । वध्य,  
मारने लायक ।

वधित ( सं० क्लो० ) वध (मणिवादिभ्य इतो श्री) उच्य १।२०२  
इति इत् । मन्मथ, कामदेव ।

वधिन् ( सं० त्रि० ) प्राणविधोयगफलक्यापातो वधः  
सन्निधाघस्य निर्वापत-निष्पादकत्वे नास्त्वप्येति वध-  
इति । वधकर्त्ता । वधकारो, वधप्रयोक्तक, अनुमगता, अनु-  
प्रादक मोर निमित्तक ये पांचो वधके पापमागो  
होते हैं । ( प्राणव्यवहारे )

वधोपुर—विग्ध्य-वाध्वर्यस्य एक प्राचीन ग्राम ।  
( भविष्य ब्रह्मसं ८।६११ )

वधु ( सं० स्त्री० ) वधु देतो ।  
वधुका ( सं० स्त्री० ) १ पुत्रवधु, पुत्रकी स्त्री, पतोह  
२ नयपरिणीता पत्नी, दुल्हन । रमणोमाक, स्त्री ।  
वधुटी ( सं० स्त्री० ) पितावधुने वसनेवाली विवाहिता या  
अविवाहिता कन्या ।

वधु ( सं० स्त्री० ) वधनाति प्रेम्णा वध्वङ्गनलोपर्य,  
पद्मा-वहति संसारमारं ऊहाके भर्त्तादिभिरिति या वद  
(वधैर्धव । उच्य १।८५) इति ऊ घञ्वागतादेशः । १ नारी,  
स्त्री । २ स्तुपा, पुत्रवधु, पतोह । ३ नवोद्या, नव विवाहिता  
स्त्री । ४ भार्या, पत्नी । ५ नारिवीषधि । ६ शटी, कचूर ।  
७ वृक्षा, असवरग ।

वधुकाल ( सं० पु० ) बालिकाका विवाहयोग्य समय ।  
वधुयुःप्रवेश ( सं० पु० ) द्विरागमन, कन्याका दूसरी बार  
स्वामीके घर आना ।

वधुजन ( सं० पु० ) वधुदेव जनः । योधिन्, स्त्री ।  
वधुशयन ( सं० क्लो० ) वधुदोता जयनामि वधुदोरादि-  
कारस्थाकारः । गधाक्ष, भरोटा ।

वधुटी ( सं० स्त्री० ) अथवयस्कता वधुः अन्तार्थे टि पक्षे  
डोप्, यद्वा वधु 'वयस्य चरम् इति वाक्यं' ( पा ४।१२० )  
इत्यस्य घात्ति'कोपत्या डोप् । १ पुत्र-भार्या, पतोह ।  
२ नवोद्या, दुल्हन । ३ भार्या, पत्नी ।

वधुदर्श ( सं० त्रि० ) वधुदर्शन, पतोहका मुँह देखना ।  
वधुपय ( सं० पु० ) वधुका कर्त्तव्य ।

वधुमत् ( सं० त्रि० ) १ पत्नीयुक्त । २ लगाम लगा हुआ  
पशुका मुँह । ३ जलशून्य स्थानके उपयोगी स्त्री पशु-  
युक्त । ४ साज लगाने लायक ।

वधुयु ( सं० त्रि० ) १ जो स्त्रीको प्यार करता हो । २  
विवाहच्छु, जो विवाह करना चाहता हो । ३ स्त्रीकामी ।  
वधुपत्र ( सं० क्लो० ) वह पत्र जो विवाहके समय कन्या-  
को पहनाया जाता है ।

वधुसरा ( सं० स्त्री० ) नदीमेद । भृगुपत्नी पुत्रोमाके  
अधु जलसे इस नदीको उत्पत्ति हुई थी ।

वधिन् ( सं० त्रि० ) हतनेच्छु, वधकी इच्छा करनेवाला ।  
वधोदकं ( सं० त्रि० ) मरणकारो, वध करनेवाला ।

वधोघत ( सं० त्रि० ) वधाय उघतः । वधके लिये मैवा ।  
वधोय—सम्नस्य, आततायी ।

वधोपाय ( सं० पु० ) वधस्य उपायः । वधका उपाय ।  
वध्न ( सं० क्लो० ) जातिवरोध । ( मारत मीभारव )

वध्य ( सं० त्रि० ) वधमहंतीति वध यन् । वधाहं, वधके  
लायक । वधोय—जीवितेय ।

वध्यव्य ( सं० त्रि० ) वध्यं हति हत कः । वध्य-घातक,  
जो वध व्यधिको मारता हो ।

वधवता ( सं० स्त्री० ) वधस्य भावः तल्लटाप् । वधयत्व, मारनेका भाव या धर्म ।

वधवपट्टह ( सं० पु० ) वह टाक जो वधके समय वज्राया जाता है ।

वध्यापाल ( सं० पु० ) वध्य-वग्धनस्थानं कारागारं पालयतीति वध्यपाल-मण । कारागृह-रक्षक, वह जो कारागारकी रक्षा करता हो ।

वध्यभू ( सं० स्त्री० ) वध्यस्य भूः । वध्यभूमि, वध्य-स्थान ।

वध्यमाला ( सं० स्त्री० ) वह माला जो वधके समय पहनाई जाती है ।

वध्यशिला ( सं० स्त्री० ) वह शिला जिस पर रख कर प्राणिहत्या की जाती है ।

वध्यस्थान ( सं० स्त्री० ) वध्य स्थानं । वध्यस्थान ।

वधवा ( सं० स्त्री० ) वधयोग्या । वध, हत्या ।

वध्र ( सं० स्त्री० ) वधयतेऽनेनेति वन्ध ( सर्वधातुम्यष्टन् । उण् ५।१५८ ) इति एन । सोसक, सीसा, नामही धातु ।

वध्रक ( सं० पु० ) सोसक, सीसा ।

वध्रि ( सं० स्त्री० ) छिन्नमुष्क, वधिया ।

वध्रिका ( सं० पु० ) वह पुरुष जो वधिया हो, खोजा ।

वध्रिमत् ( सं० स्त्री० ) छिन्नमुष्कजाली, जिस खोजी स्वामी ध्वजमङ्गलोगप्रस्त धारमणमें अक्षम हो ।

वध्रिवाच ( सं० स्त्री० ) जल्पक, वकयादी ।

वध्रश्व ( सं० पु० ) १ आबता घोड़ा । २ आबता घोड़े-की वंशपरम्परा ।

वन ( सं० स्त्री० स्त्री० ) वनतीति वन-अच् या वग्धते सेष्यते इति वन घ । ( पुठि संहाया या प्रायेण । वा १।३।११८ )

१ बहुवृत्तसमन्वित स्थान, जङ्गल ।

घर अथवा घरके समीप किस प्रकार वन लगाना होगा, इसका विषय ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें इस प्रकार लिखा है—आवास स्थलके मध्य सुन्दर तुलसीका पौधा लगाना कर्त्तव्य है । इसमें हरिभक्ति, पुष्प और धनपुत्रका लाभ होता है । यहां तक, कि सबेरे तुलसीवनका दर्शन करनेसे स्वर्णदानका फल प्राप्त होता है । इसके सिवा घरके पूर्व और दक्षिणमें मालती, पृथिका, कुन्द, माधवी, केतकी, नागेश्वर, मल्लिका, काञ्चन,

वकुल तथा अपराजिता इन सब सुन्दर सुन्दर पुष्पवृक्ष द्वारा जो वन लगाया जाता है, वह निःसन्देह कल्याणकर है ।

घराहपुराणमें मधुराके बारह वनोंका विवरण दिया गया है । उन वनोंके नाम ये हैं—मधुवन, तालवन, कुमुद-वन, काम्यकवन, चहुलवन, भद्रवन, खादिरवन, महा-वन, लोहज धवलवन, विदलवन, भाण्डोरवन और घृन्दावन । इनका विवरण मधुरा खण्डमें देखो ।

वनविशयमें मृत्यु होनेसे उत्तम फल लाभ होता है । देवीपुराणके अरण्योपर प्रशंसामें कहा गया है, कि सैन्धव, दण्डकारण्य, नैमिय, पुष्कर, कुचजाङ्गल, उपलायन, जम्बू, मार्ग और हिमवास आदि नौ वनों या अरण्योंमें जिनकी मृत्यु होती है, वे ब्रह्मलोक जा कर परमपदको प्राप्त होते हैं ।

२ जल, पानी । ३ आलय, घर । ४ चमसा नामक यक्षपत्त । ( शूक् ३।१।६ ) ५ प्रचरण, भरना । वन पण सम्भीकी भ्रादि परस्मै वन्धते सेष्यते शीतादिवारणाय, यदा वनति हिंसाधैः वन्धते हिंस्यतेऽनेन तमः मधवा वन्तु याचते तनादि आत्मने वन्धते याच्यते घृष्टिप्रदानाय, किंवा वन शब्दे भू पच वन्धते शब्धते स्तूयते स्तोत्रमि-रिति पुंसि संहाया वन-घ । ६ राशि, किरण । ( निययु १।१।८ ) ७ शङ्कराचार्यके शिष्यविशेषकी उपाधि ।

जो संन्यासी सुब्रह्मसम्पदाकी तिलाञ्जलि दे कर सुरम्य निर्भरके निकट वनमें वास करते हैं, उन्हें वन कहते हैं ।

८ तषक, फूलोंका गुच्छा, गुलदस्ता । ९ कुसुम, फूल ।

वनकचु ( सं० पु० ) जङ्गली कचु । इस कचुका केवल साग खाया जाता है । यह मानकचुसे भिन्न है ।

वनकणा ( सं० स्त्री० ) वनपिपली ।

वनकण्डूल ( सं० पु० ) मधुर शूरण, अच्छी जातिका शूरण या जिमीकन्द ।

वनकदली ( सं० स्त्री० ) वनोज्ञवा कदली । जङ्गली केला ।

वनकन्द ( सं० पु० ) वनजातः कन्दः । वनशूरण, जङ्गली धोल ।

वनकपीयत् ( सं० पु० ) पुलहके एक पुत्रका नाम ।

वनकरिन् ( सं० पु० ) वनहस्ती, जङ्गली हाथी ।

वनककंटो ( सं० स्त्री० ) अरण्य ककंटो, जङ्गली ककड़ी ।

धारयति जीवणिनि । यह जो यद्य करके जीविका  
 निर्याद करता हो । इनका अन्न भोजन नहीं करना  
 चाहिये । (पाठसंस्कृत १।६५)

यद्यत् ( सं० स्त्री० ) यद्यत्तेऽनेनेति यद्य (अभि नञि-यञि-वि-  
 पठित्वाऽनन् । उच्य १।१०५) इति अत्रन् । १ अन्न, हृदियार ।  
 २ नाशसे बचानेवाळा ।

यद्यद्द ( सं० पुं० ) यद्य यद् दण्डः । यद्यरूप दण्ड, प्राण-  
 नाशको सजा । ( मन् ८।१२६ )

यद्यनिर्णय ( सं० पुं० ) मरुदहत्याज्जनित पापका प्रायश्चित्त ।

यद्यभूमि ( सं० स्त्री० ) यद्यस्य भूमिः । यद्यवस्थान, यह  
 जगह जहां प्राणदण्ड दिया जाता हो ।

यद्यस्थलो ( सं० स्त्री० ) यद्यस्य या स्थानं भूमिः । प्राण-  
 यद्यस्थल, यद्यभूमि । पर्वत—मघात, मघात, यद्यस्थान,  
 घाघातन । ( शराव० )

यद्यस्त्र ( सं० स्त्री० ) १ नाशकारी अस्त्र । २ इन्द्रका यज्ञ ।  
 यद्यस्तु ( सं० स्त्री० ) क्षयकारी अस्त्रवारी, प्राण लेनेवाला  
 हृदियारयंद ।

यद्या ( सं० अठव० ) यद्भ्यां देतो ।

यद्याङ्ग ( सं० स्त्री० ) यद्यः यद्यन्मेवाङ्गं यस्य, ततः  
 कन् । कारादेश्च, कारागार ।

यद्याहं ( सं० स्त्री० ) यद्यं महंतोति अहं-अण् । यध्य,  
 मारने लायक ।

यद्यित्त ( सं० स्त्री० ) यद्य (अधिभ्रादिभ्य इतो ङी० । उच्य १।१७२)  
 इति इत् । मग्मथ, कामदेव ।

यद्यान् ( सं० स्त्री० ) प्राणविभोगफलकस्यापारो यद्यः  
 सन्निधाद्यस्य निर्हापित-निष्पादकत्वे नास्त्वस्येति यद्य  
 इति । यद्यकृत्ता । यद्यकारो, यद्यप्रयोक्तृ, अनुमन्ता, अनु-  
 प्राहक मौर निमित्तक ये पांचो यद्यके पापभागी  
 होते हैं । ( प्रायश्चित्तवि० )

यद्योपार—विश्व-याद्वरस्य एक प्राचीन ग्राम ।  
 ( भविष्य ब्रह्मसं ८।६५१ )

यद्यु ( सं० स्त्री० ) यद् देतो ।

यद्युक्ता ( सं० स्त्री० ) १ पुत्रवधू, पुत्रकी स्त्री, पत्नी  
 २ नयपरिणीता पत्नी, दुलहन । रमणोमात्र, स्त्री ।

यद्युटी ( सं० स्त्री० ) पिशाचपति बसनेवाली विषादिता या  
 अविषादिता वन्या ।

यधू ( सं० स्त्री० ) यध्वानि प्रेम्णा यध्वं ऊनलोपन्,  
 यथा-यद्वहति संसारमारं ऊनके अर्थादिनिरिति या यद  
 (वधैर्धत् । उच्य १।२५) इति ऊ ध्वञ्जान्तादेश्चः । १ नाते,  
 स्त्री । २ स्तूप्या, पुत्रवधू, पत्नी । ३ नयोद्गा, नय विषादिता  
 स्त्री । ४ भार्या, पत्नी । ५ शारिणीवधि । ६ शटी, कपूर ।  
 ७ पूजा, अस्वयम् ।

यधूकाल ( सं० पुं० ) बालिकाका विवाहयोग्य समय ।

यधूदुःप्रवेश ( सं० पुं० ) द्विटागमन, कन्याका दूसरो बार  
 स्वामीके घर आना ।

यधूजन ( सं० पुं० ) यधुरैव जनः । योषिन्, स्त्री ।

यधूशयन ( सं० स्त्री० ) यधूदोनां शयनमित्यं पुरोदरादि-  
 कारणात्कारः । यथाश्च, भरोद्या ।

यधूटी ( सं० स्त्री० ) अल्पवयस्कता यधूः अनाथे टि पक्षे  
 डीप्, यथा यधू 'यवस्य चरम् इति याच्ये' ( पा ५।१।२० )  
 इत्यस्य यात्ति'कोषत्वां टोप् । १ पुत्र-भार्या, पत्नी ।  
 २ नयोद्गा, दुलहन । ३ भार्या, पत्नी ।

यधूदुर्ग ( सं० स्त्री० ) यधूदुराणं, पत्नीदुर्गा मुं द ईमना ।

यधूपय ( सं० पुं० ) यधूका कर्त्तव्य ।

यधूमत् ( सं० स्त्री० ) १ पत्नीयुक्त । २ लगाम लगा हुआ  
 पशुका मुं द । ३ जलशून्य स्थानके उपयोगी स्त्री पशु-  
 युक्त । ४ साज लगाने लायक ।

यधूयु ( सं० स्त्री० ) १ जो स्त्रीको प्यार करता हो । २  
 विवाहेच्छु, जो विवाह करना चाहता हो । ३ स्त्रीकामो ।

यधूवत् ( सं० स्त्री० ) यह यद्य जो विवाहके समय कन्या-  
 को पहनाया जाता है ।

यधूसरा ( सं० स्त्री० ) नदीमेद । भृगुपत्नी पुत्रीकामे  
 अधु जलसे इस नदीको उत्पत्ति हुई थी ।

यधेयिन् ( सं० स्त्री० ) हननेच्छु, यद्यको हत्या करनेवाला ।

यधोदकं ( सं० स्त्री० ) मरणकारी, यद्य करनेवाला ।

यधोघ्न ( सं० स्त्री० ) यद्यव उघ्नतः । यद्यके लिये तैयार ।  
 पर्वत—सम्पन्न, भाततापी ।

यधोपाय ( सं० पुं० ) यद्यस्य उपायः । यद्यका उपाय ।

यद्य ( सं० स्त्री० ) जातिवशेव । ( मातृ मीम्भरं )

यध्य ( सं० स्त्री० ) यद्यमहंतोति यद्य-यत् । यद्याहं, यद्यके  
 लायक । पर्वत—शीर्षके ।

यध्यन् ( सं० स्त्री० ) यध्यं हन्ति हन कः । यध्य-घातक,  
 जो यध्य व्यक्तिको मारता हो ।

वधवता ( सं० स्त्री० ) वधवस्य भावः तल्-टाप् । वधवत्य, मारुतेका भाष या धर्म ।

वधवपट्टह ( सं० पु० ) वह ढाक जो वधके समय यजाया जाता है ।

वधवपाल ( सं० पु० ) वध्य-वधनस्थानं कारागारं पालयतीति वध्यपाल-मण । कारागृह-रक्षक, वह जो कारागारकी रक्षा करता हो ।

वधवभू ( सं० स्त्री० ) वधवस्य भूः । वधवभूमि, वधव-स्थान ।

वधवमाला ( सं० स्त्री० ) वह माला जो वधके समय पहनाई जाती है ।

वध्याशिला ( सं० स्त्री० ) वह शिला जिस पर रख कर प्राणिहत्या की जाती है ।

वधवस्थान ( सं० स्त्री० ) वधव स्थानं । वधवस्थान ।

वधवा ( सं० स्त्री० ) वधयोग्या । वध, हत्या ।

वध्र ( सं० स्त्री० ) वधवतेऽनेनेति वध्र्य ( सर्वघातुभ्यश्चन्द्र । उष् ५।११८ ) इति घ्रन् । सोसक, सोसा, नामद्वी घातु ।

वध्रक ( सं० पु० ) सोसक, सोसा ।

वध्रि ( सं० स्त्री० ) छिन्नमुक्क, वधिया ।

वध्रिका ( सं० पु० ) वह पुत्र्य जो वधिया हो, खोजा ।

वध्रिमत् ( सं० स्त्री० ) छिन्नमुक्कशाली, जिस खोजी स्वामी ध्यजमङ्गलयोगप्रस्त या रमणमें अक्षम हो ।

वध्रिवाच् ( सं० स्त्री० ) जल्पक, वकयादी ।

वध्रभ्व ( सं० पु० ) १ आबता घोड़ा । २ आबता घोड़े-को वंशपरम्परा ।

घन ( सं० स्त्री० स्त्री० ) घनतीति घन-अच् वा वग्यते सेष्यते इति घन घ । ( पुंवि संज्ञायां घः प्रायेण । पा ३।३।१८ )

१ घट्टघृष्टसमन्वित स्थान, जङ्गल ।

घर अधवा घरके समोप किस प्रकार घन लगाना होगा, इसका विषय ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकल्याणजन्मखण्डमें इस प्रकार लिखा है—आयास स्थलके मध्य सुन्दर तुलसीका पीघा लगाना कर्त्तव्य है । इससे हरिमकि, पुष्प और घनपुत्रका लाभ होता है । यहाँ तक, कि सपेरे तुलसीवनका दर्शन करनेसे सर्वपापनाशका फल प्राप्त होता है । इसके सिवा घरके पूर्व और दक्षिणमें मालती, यूथिका, कुन्द, माघयी, फेतकी, नागेश्वर, महिका, काञ्चन,

वकुल तथा अपराजिता इन सब सुन्दर सुन्दर पुष्पवृक्ष द्वारा जो घन लगाया जाता है, वह निःसन्देह कल्याणकर है ।

घराहपुराणमें मथुराके वारह घनोंका विवरण दिया गया है । उन घनोंके नाम ये हैं—मधुवन, तालवन, कुमुद-वन, काश्यपवन, बहुलवन, भद्रवन, खादिरवन, महा-वन, लोहज धवलवन, विल्ववन, भाण्डोरवन और घृन्दावन । इनका विवरण मथुरा शब्दमें देला ।

घनविशयमें मृत्यु होनेसे उत्तम फल लाभ होता है । देवीपुराणके अरण्योपर प्रशंसामें कहा गया है, कि सैन्धव, दण्डकारण्य, नैमिष, पुष्कर, कुचजाङ्गल, उपलावृत, जम्बू-मार्ग और हिमवास आदि नौ घनों या अरण्योंमें जिनकी मृत्यु होती है, वे ब्रह्मलोक जा कर परमपदको प्राप्त होते हैं ।

२ जल, पानी । ३ आलय, घर । ४ चमसा नामक यज्ञपात्र । ( शूक् २।१।४ ) ५ प्रलवण, भरना । घन पण सम्भीकी भग्नादि परस्मै वन्यते सेष्यते शीतादिवारणाय, यद्वा वनति हिंसाधैः वन्यते हिंस्यनेऽनेन तमः अधवा वनु याचने तनादि आत्मने वग्यते याच्यते वृष्टिप्रदानाय, किं वा वन शब्दे भू-पव वन्यते शब्धते स्तूयते स्तोत्रमि-रिति पुंसि मञ्ज्याय वन-घ । ६ राशि, किरण । ( निषयट्ट १।१।८ ) ७ शङ्कराचार्यके शिष्यविशेषकी उपाधि ।

जो संन्यासी सुखसम्पदाको तिलाञ्जलि दे कर सुरम्य निर्भरके निकट घनमें बास करते हैं, उन्हें वन कहते हैं ।

८ स्वषक, फूलोंका गुच्छा, गुलदस्ता । ९ कुसुम, फूल ।

घनकचु ( सं० पु० ) जङ्गला कचु । इस कचुका केवल साग खाया जाता है । यह मानकचुसे भिन्न है ।

घनकणा ( सं० स्त्री० ) घनपिप्पली ।

घनकण्डूल ( सं० पु० ) मधुर शूरण, अच्छी जातिका शूरण या जिमोकरुन् ।

घनकदली ( सं० स्त्री० ) घनोज्ञया कदली । जङ्गली फेला ।

घनकन्द ( सं० पु० ) घनजातः कन्दः । घनशूरण, जङ्गली ओल ।

घनकपीवत् ( सं० पु० ) पुलहके एक पुत्रका नाम ।

घनकरिन् ( सं० पु० ) घनहस्ती, जङ्गली हाथी ।

घनकर्कटो ( सं० स्त्री० ) वारण्य कर्कटो, जङ्गली ककड़ी ।

वनकफाँट ( सं० पु० ) धरण्यकफाँटकी, जङ्गली ककोडा  
वनकफिका ( सं० स्त्री० ) सतुका वृक्ष, सलईका पेड़ ।  
वनकाम ( सं० लि० ) वनममणेवुडु, वनमें विचरनेवाला  
वनकापीसी ( सं० स्त्री० ) वनोद्भवा कापीसी, जंगली  
कपास । पर्याय—तिपर्णा, भारद्वाजी, वनोद्भवा ।

( रत्नमाला )

वनकुषकुट ( सं० पु० ) वन-नाम्रचूड़, वन-मुल्गा ।  
वनकुञ्जर ( सं० पु० ) हस्तिभेद, जंगली हाथी ।  
वनकुण्डली ( सं० पु० ) वनशूरेण, जंगली जिमीकंद ।  
वनकुण्डली ( सं० स्त्री० ) श्वेतनिगुण्डो, सफेद समझल ।  
वनकीकिलक ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद । इस छन्दके प्रति  
चरणमें १७ अक्षर रहते हैं । सातवें, छठे और चौथे  
अक्षरमें घंति होती है । इस छन्दके १, २, ३, ४, ५, ६,  
८, ९, १०, १२, १३, १५ और १६ अक्षर लघु, बाकी सभी  
वर्ण गुरु होते हैं । यह कीकिलक नामसे भी प्रसिद्ध है ।

वनकोद्वय ( सं० पु० ) वनज कोद्वयचान्य, जंगली कोदो ।  
वनकोलि ( सं० स्त्री० ) वनोद्भवाकोलि । वनज यद्री,  
जंगला घेर । पर्याय—कर्षागिका, फलकर्षजा ।

वनकप्रसू ( सं० लि० ) १ सोमपातसे बुदुबुदाका निकलना ।  
२ विभिन्न काष्ठपातमें स्थापित । ( शृक् ६।१०८ )० णवण्य )  
वनकोद्वया ( सं० स्त्री० ) वनकोद्वय । वनकेलि, वनमें जो गेल  
किया जाता है उसको वनकोद्वय कहते हैं ।

वनकण्ड ( सं० स्त्री० ) वनविशेष ।

वनग ( सं० लि० ) वनं गच्छति गम-ञ् । वनगामी, जंगल-  
में जानेवाला ।

वनगज ( सं० पु० ) वनोद्भवा गजः । वनहस्ती, जंगली  
हाथी ।

वनगय ( सं० पु० ) वनगो, जंगली गाय ।

वनगहन ( सं० स्त्री० ) गमोर वन, घना जङ्गल ।

वनगुप्त ( सं० पु० ) गुप्तचर, भेदिना ।

वनगुन्म ( सं० पु० ) वनजात गुन्म, जङ्गली लना ।

वनगो ( सं० स्त्री० ) वनम्य गोः । गाय, जङ्गली गौल  
गाय ।

वनगोचर ( सं० पु० ) वनं गौचरो देगो यस्य । १ व्याघ्र ।

वनं जलं गौचरो निवासस्थानं यस्य । २ मागधयज ।

( भाग० २।२८ ) ३ रोहि-व्याघ्री । ( लि० ) ४ जलचर ।

५ वाननविधारी, जंगलमें विचरनेवाला ।

वनघोली ( सं० स्त्री० ) धरण्यघोली ।

वनशूरेण ( सं० स्त्री० ) गरीरका भंशविशेष । भावसा-  
धार्यके मतसे "वनं उर्ध्वं क्रियते विश्वंने येन" इति शर्ध-  
में जलकारी मेघादिका बोध होता है ।

वनचन्दन ( सं० स्त्री० ) वनजातं चन्दनं । १ अगुरु, अमर ।  
२ देवदारु, देवदार ।

वनचन्द्रिका ( सं० स्त्री० ) वने चन्द्रिका ज्योत्स्नेय ।  
मंथिका, पक प्रकाशका घेला ।

वनचम्पक ( सं० पु० ) वनजातश्चम्पकः । वनज चम्पक-  
पुष्पवृक्ष, जङ्गली चम्पका पौधा । पर्याय—वनशोष, हेमाक्ष,  
सुकुमार । गुण—रूक्ष, उष्ण, घात और कफनाशक, चम्प-  
का दीप्तियदक, प्रणरोपण और वयःस्तम्भकारक ।

वनचर ( सं० लि० ) वने चरतीति वन-चर ट । १ वन-  
घारी, वनमें भ्रमण करने या रहनेवाला । २ जङ्गली  
मनुष्य या प्राणी । ३ ग्राम नामक वनजम्तु ।

वनचर्या ( सं० स्त्री० ) १ वनचारी । २ वनयासी ।

वनचारिन् ( सं० लि० ) वने चरतीति चरः णिनि । वनमें  
विचरण करनेवाला ।

वनछाग ( सं० पु० ) वनरूप छागः । १ धरण्य छाग,  
जङ्गली बकरा । पर्याय—पृष्टक, जिशुवाष्टक । ( विशा० )  
वने छाग इव । २ शूरर, सूअर ।

वनछिद्र ( सं० लि० ) १ वनकर्मकारो, जंगल काटनेवाला ।  
( पु० ) २ लकड़हारा ।

वनच्छेद ( सं० पु० ) काष्ठकर्मण, लकड़ी काटना ।

वनज ( सं० स्त्री० ) वने जले जायते इति जन-ञ् ।

१ अगुप्त, कमल । २ सुस्तक, गोपा । ३ गज, हाथी ।

४ वनशूरेण, जंगली जिमीकंद । ५ वृं बुदुका फल ।

६ जंगली विभीटा गीदू । ७ वनकुलघो । ८ वनजिलक ।

( लि० ) ९ वनजात, जो वनमें उत्पन्न हो ।

वनजाताम्रचूड ( सं० पु० ) वनबुषचूड, जंगली मुल्गा ।

वनजमुदंजा ( सं० स्त्री० ) वंशंजमुदंजा, कौकडापिंजी ।

वनजयसिक्का ( सं० स्त्री० ) हृष्यमैगट्टंजी, मिश्रासिमी ।

वनजा ( सं० स्त्री० ) वने जायते इति जन-ञ् लिपो टाप् ।

१ मुदपणी । २ निगुण्डी । ३ सफेद बटकारी । ४ वन-  
तुन्मी । ५ ससंगेय । ६ वनकपासी । ७ मिश्रे या, गौक ।

८ वनोवीरिका । ९ गन्धवती । १० वेष्ट, एष्ट-सम्भगी ।

वनजार—भारतवासो पण्यजोवि-जातिविशेष । उत्तर-भारतकी अपेक्षा दक्षिण-भारतमें ही इन लोगोंका अधिक-तर-वास है । यह जाति बहुत प्राचीनकालसे ही व्यापारमें प्रवीण है । परियन ( Indica, xi ) ने इस जातिका उल्लेख किया है । दशकुमारचरितमें भी इन लोगोंका परिचय प्राया जाता है । पाश्चात्य जातिरचय-विद्वान्का कहना है कि, वणिजार अथवा वनजार शब्द संस्कृत चाण्ड्यकारका ही अपभ्रंशमात्र है । पलिपट सांघने तो 'वीरञ्जार' पारसी शब्दसे ही इस जातिका नामकरण 'वनजार' होनेकी कल्पना की है । वे इस शब्दके द्वारा भारतवासियोंके साथ पारसियोंके संस्व-की सूचनाकी मोमांसा कर गये हैं । अध्यापक काउपल इन उक्त मतोंकी सत्यता स्वीकार नहीं करते ; वे कहते हैं—हिन्दो वन-उवाला अथवा वनभारणा शब्दार्थसे ही 'वनजार' शब्दकी व्युत्पत्ति सिद्ध होनेकी अधिक संभावना है ।

इस जातिके नामोत्पत्तिके प्रसंगमें पाश्चात्य परिदृष्टत लोग किसी भी सिद्धान्तमें समुपस्थित क्यों न हों, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, यह जाति बहुत प्राचीन कालसे ही हिन्दू समाजमें प्रतिष्ठा पाती आ रही है । ऐतिहासिक उक्ति ही इसे समर्थन करती है । दक्षिण-प्रदेशनिवासी वनजार लोगोंमें माथुरिया, लवाण तथा चारण नामधारी तीन श्रेणीविभाग हैं । ये लोग अपनेकी वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण तथा राजपूत जातियोंके वंशधर बताते हैं । माथुरिया श्रेणी मथुरासे आ कर इस स्थानमें बस गई है । अधिक संभव है कि, राजपूत चारण लोग तीर्थयात्राके उद्देशसे एवं लवाण श्रेणीके लोग लवण व्यापारके निमित्त इस प्रदेशमें उपस्थित हुए एवं स्वजातीय कन्याओंके अभावसे यहांके अन्य जातीय कन्याओंका पाणिग्रहण करके अपनी जातिसे पृथक् हो गये । ये लोग सिक्कोंके गुरु नानक की ही अपना धर्म-गुरु मानते हैं ।

मुसलमानो इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि दिल्लीके सल्तनतका दक्षिणविजय-प्रसंगके समयसे समयानुसार राजाओंकी आशासे रसद ले कर ये वनजारगण दक्षिण-भारतमें आ उपस्थित हुए । इस

तरहसे १५०८ ई०में दिल्लीभर सिकन्दर बादशाहके डोल-पुट पर आक्रमण करनेके समय पहले पहल वनराज लोग यहां आ बसे । चारण श्रेणीके लोग राठौरवंशीय हैं । ये लोग १५३० ई०में मुगल-सेनापति आसफजाके अधीन इस प्रदेशमें आये । इस समय उनकी श्रेणीके अंगी तथा जंगो-नायक-गुन्द इस स्थानमें आये । आसफजा सेनापतिने इन लोगोंको कार्यादक्षता देख कर इन्हें ताम्रपत्र पर सोनेके अक्षरोंसे लिप्य कर एक सनद प्रदान की थी । इन अंगी वंशधरोंके पास अभी भी यह पत्र वर्तमान है । हैदराबादके निजामने उसे देख कर इन्हें गिहलन दी थी ।

ये लोग जादूविद्या पर विश्वास करते हैं एवं कितने हीमें पारदर्शिता दिवाई देती है । भूत प्रेतोंको भगानेके लिये ये लोग नाना प्रकारके मन्त्र पाठ करते हैं । ज्वर, घातघ्याधि तथा उदरामय प्रभृति रोगोंको ये लोग डायन की दृष्टि निर्देश करते हैं । किसी खोको डायनी लगी है, पेसा विश्वास होने पर वे उसे वगमें ले जा कर मार देनेसे भी कुण्ठित नहीं होते ।

ये लोग साधारणतः हिन्दू देवदेवोंकी उपासना किया करते हैं । बालाजी, महाकाली, तुलजादेवी, मिठ्ठुखिया तथा सतीमूर्ति इन लोगोंकी प्रधान उपास्य है । इनके अलावे और भी कितने ही छोटे छोटे ठाकुरोंकी भी अत्यन्त भक्तिभावसे पूजा किया करते हैं । दस्यु-कार्यमें प्रवृत्त होनेके पहले ये लोग अपने अपने उपनिवेशके पार्श्वस्थ मिठ्ठुखियाके मन्दिरमें प्रवेश करते हैं । दस्युवृत्तिमें लिप्त होनेकी पूर्वसन्ध्याके अलावे कोई घरके अन्दर गमन नहीं करता । अतएव पहले ये लोग दस्यु-पति मिठ्ठुकी पूजा करके एक सतीमूर्ति निर्माण करते हैं एवं एक घोंका प्रदोष जला कर उस वर्तिकालीकमें शुभाशुभ निरीक्षण करते हैं । जब इस वर्तिकालीकमें शुभ-लक्षण प्रतिभात होता है, तब ये लोग दलके साथ बाहर होते हैं एवं उक्त गृहके सम्मुखस्थ पताकाके नीचे भूमिष्ठ हो कर इष्टदेवको प्रणाम करके अनोठ-पथकी ओर यात्रा करते हैं । लुण्डनके समय ये लोग किसी तरहकी बात नहीं करते, यदि कोई भूल कर भी रास्तेमें बात कर बैठे तो ये लोग यात्रा अशुभ लक्षणायुक्त समझ कर पुनः



मिठुमुषिपाके मन्दिमें लौट आने हैं एवं पुनः प्रदोषान्नेक-  
में शुभलक्षण भवमान होने पर लूट-गारके निमित्त घरके  
बाहर होने हैं। रास्तामें छोड़ होनेसे भी ये लोग  
कारणमें पिचन होनेको भावना करते हैं।

किन्नीसो पीढ़ा होने पर ये लोग पालाजीके नामसे  
उत्पन्नोद्भूत 'दटादिधा' नामक वृषकी पूजा करते हैं। इस  
वृष पर कोई कमी भी किन्नी तरहका बोझ नहीं लाइता  
परं लाल बगड़े और कौड़ियोंके बने गहनोंसे इसे सुस-  
ज्जित रखते हैं। ये लोग गुप्त नानकको धर्मजगत्का  
एकमात्र कर्ताधर्ता समझ कर उनका ध्यान करते हैं एवं  
एकमात्र ईश्वरका सत्याधारत्व स्वीकार करते हैं।

युक्तप्रदेशवासी वनजार जातिमें चौहान, यहुरूप, गौड़,  
यादव, पणवार, राठोर तथा तुषार नामक श्रेणी-विभाग  
हैं। यह रूप तथा गौड़के अतिरिक्त इनकी सभी वंशोपा-  
धिवां राजपूत जातिरूपकी परिवारक हैं। ऐसी किन्प-  
दम्नी चली आ रही है कि, इन लोगोंने एक समय अयोध्या  
तथा हिमालयके सन्निहित कई स्थानोंमें राज्याधिकार प्राप्त  
कर लिया था। यही राज्यमें इन्हें जंघार राजपूतोंने  
भगा दिया। १६३२ ई०में पठान-सरदार रजूल खान बरा-  
इच जिलास्तर्गत नानापाड़ा परगनासे एवं १८२१ ई०में  
चकलादार हकीम मोहम्मदोंने सिन्धीली परगनासे  
इन लोगोंके निकाल दिया। ऐसी जिलाके  
जामे राजपूतोंने अपने मिस्र वनजार लोगोंसे दौरा-  
गढ़ प्राप्त किया था। सहारनपुर जिलास्तर्गत  
देहराच नगर इन लोगोंके द्वारा ही प्रतिष्ठित था, ऐसी  
किन्पदम्नी है।

हरद्वि जिलास्तर्गत गोपामी नगरके वनजार टोला-  
यासी अपनेको मुसलमान साधु सैयद सालारके वंशधर  
बनाने हैं, फिर मद्राजवासी वनजार लोग अपनेको  
रामके अनुचर बन्दराधिपति सुभोयके वंशधर कहते हैं।  
इन सब बातों पर आन्वेषणा करनेसे साफ ज्ञात होता  
है, कि वनजार लोग किसी एक विभिन्न जातिके सम्मान  
नहीं हैं। समय समय पर विभिन्न जाति भयवा वंशके  
लोग कृपात्मन्तरके प्रयासी हो कर इन लोगोंकी वृत्ति  
अपव्यय कर लेनेके कारण वनजार नामसे सन्निहित  
हो गये हैं। इन तरह दम्पुमुषि किंवा शम्पु-गान्धर्वके

कारण वनजार श्रेणीभूक्त होने पर भी वर्तमान ज्ञानोप-  
देशानुसार मुसलमानगवासी वनजारोंके मध्य धाम-  
कूटा, लवण, मन्दव'गो, जाट, मुषिवा ग्यान्, कोटवार,  
गौड़, कोड़ा तथा मुजहर प्रभृति श्रेणी-विभाग हो गये हैं।

पश्चिम प्रदेशके वनजार लोग साधारणतः पांच  
विभागोंमें विभक्त हैं, उनके मध्य तुर्किया भयवा मुसल-  
मान श्रेणीमें ३६ गोत्र प्रचलित हैं, जैसे—तोमर, चौहान,  
गहलोत, दिलवारी, बालपो, कनोडा, बुटकी, दुकी, रोख,  
नाथनोर, अघयान, बदन, चकिराह, यहारारी, परद,  
कणिके, पाड़े, चण्डील, सेली, चरका, धनुषिया, पान-  
क्रिका, गंगो, तितर, दिग्दिवा, राह, मरीगिया, बालर,  
कड़ेया, यहलोम, मट्टि, बग्दारी, परगंगा, बालिया तथा  
बिलजो। ये लोग रूपतम सबके अपेक्ष मुलतानसे प्रथम  
तो मुरादाबाद आये, इसके बाद बिलासपुर तथा उसके  
समीपवर्ती प्रदेशोंमें जा बसे।

चैद-वनजार लोग भाटनेरसे आये हैं। इनके सरदारका  
नाम दुल्हा है। इनमें भलोई, तण्डार, हतार, कपाही,  
वृण्डेरी, कछनी, तारिण, चरपाहि, कीरि तथा बटलीम  
११ गोत्र प्रचलित हैं। लवाण ( लवणयाही ) वनजार  
लोग अपनेको गौड़ प्राण्यणके वंशधर कह कर परिचित  
करते हैं। ये लोग सम्राट् औरंगजेबके समयमें एणरतम-  
गड़से आ कर दक्षिण प्रदेशके प्रयासी हुए। इनके बीच  
भी ११ गोत्र प्रचलित हैं। ये लोग एषि-कार्यसे अपनी  
जीविका चलाते हैं।

मुफेरो वनजार लोग कहते हैं, कि मकाममें उनके एक  
नायकका निधर था। वहसे यह वंश आरम्भकारमें आ  
कर बास करने पर जनसाधारणमें मयकाई या मुफेरो  
नामसे परिचिन हुआ। इस बातको समर्थन करनेके  
लिये इन लोगोंने एक मरपन्न उपाण्यातको बनवना  
करा है। यह जो कुछ भी हो, किन्तु उन लोगोंके पुत्र-  
गन नाममें दिग्द तथा मुसलमानका समिध्रण देव कर  
मान्य पट्टा है, कि यह जाति उक्त दोनों ही जातियोंके  
संमिध्रणमें बनी है। इन लोगोंमें निम्नोक्त वंशाख्या  
प्रचलित देवी जाती हैं। जैसे—अघयान, मुगल, मौलर,  
चौहान, तिमली, छोटा चौहान, वंशकिया चौहान,

तानहर, काठेरिया, पठान, तरीन पठान, घोड़ी, घोड़ी-वाल, चंगारोया, काण्डिया तथा वहलीम ।

घडरूप वनजार लोग साधारणतः हिन्दू हैं । इनमें मुसलमान भी हैं । मुसलमान श्रेणीको तरह वनजार हिन्दू लोग गृहस्थाश्रमाचारी नहीं हैं । इनके मध्य राठोर, चौहान, पणवार, तोमर तथा भुरिया नामक कई वंश-विभाग देखा जाता है । इन सब वंशोंमें अब गोल-विभाग निर्णीत हो गया है । राठोर वंशमें मुछारी, चांडुकी, मुह-वित तथा पणोत नामक चार दल हैं, उनके बीच मुछारी-में ५२, चांडुकीमें २७, मुहांवतमें ५६ एवं पणोतमें २३ गोत प्रचलित हैं । चौहानोंमें ४२ गोत विद्यमान है, ये लोग मैन-पुरीसे आ कर इस प्रदेशमें बस गये हैं । भुरिया लोग गौड़ ब्राह्मणके मन्तान हैं । चित्तोरकी राजधानीमें इन लोगोंका वास था । यहाँसे ये लोग दक्षिण प्रदेशवासी हो गये हैं । उनके मध्य २० गोत हैं ।

ये घडरूप वनजार लोग अन्यान्य जातियोंकी तरह सगोत्रमें विवाह नहीं करते । नाट जाति ही कन्या प्रदण करते हैं सही, किन्तु अपनी कन्या उन लोगोंको समर्पण नहीं करते । नायक या नायक वनजार लोग इन जातिके होते हुए भी साधारण श्रेणीकी अपेक्षा कहीं उन्नत हैं । इनमें राजपूतोंकी संख्या ही अधिक है । गोरख-पुर विभागके नायक लोग अपनेको सनाढ्य ब्राह्मण कहते हैं । ये अपनेकी पिलिभोतके आदिनिवासी बताते हैं । ये कट्टर हिन्दू हैं । इनके समाजमें बहुविवाह प्रचलित तो है, किन्तु विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है । यदि कोई भविष्यदिता बालिका परपुरणके साथ अनेक प्रणय करती है, तो उसके पिताको एक जातीय भोज देना पड़ता है एवं उस बालिकाको सत्यनारायणकी कथा सुना कर पवित कर लेते हैं । विवाहके समय वरके पिता के हाथमें कन्याके पिता 'तिलकदान' स्वरूप कुछ रुपये देते हैं । पंचायतके विचारसे सभी अपने धर्मचारिणी पत्नीका श्याम कर सकते हैं । हम समाजमें विधवा-विवाह न होनेके कारण ऐसी रमणी फिर अपने स्वजातीय पुरणके साथ विवाह नहीं कर सकती । ये लोग जन्म, मृत्यु तथा विवाह संस्कार यथाविधि सम्पन्न करते हैं । शयको जलानेके पश्चान् एवं अशौचके अन्तमें श्राद्ध निष्पन्न

करते हैं । सर्रिया ब्राह्मण सभी कार्योंमें इन लोगोंकी पुरोहिती करते हैं ।

विवाहके समयमें ये लोग चार चार घड़ोंको उपर्युं परि करके सात धाक सजाते हैं एवं उनके बीचमें दो मूल तथा एक जलपूर्ण कलसी रख देते हैं । इनके सामने मृत्तिकालित स्थानमें चीका करके पुरोहित होम करता है । तदनन्तर उस नवदम्पतीको ग्रन्थि-बन्धन करा कर उस मूलके चारों ओर सात लपेट घुमता है । अन्तमें उनके एक स्थान पर बैठ जानेके बाद कन्याके पिता घरका पांच पूजते हैं एवं कन्या-सम्प्रदानके पीतुक स्वरूप वरके हाथमें दो या चार रुपये देते हैं । यही बड़े घरोंका विवाह है । निम्न श्रेणीके मध्य कन्याको वरके घर ले जा कर 'घरीआ' विवाहानुसार विवाह करते हैं । इसके बाद स्वजातिभोज होता है ।

वनजोर ( सं० पु० ) वनोद्भवो जोरः । वनजात जोरक, कालो जीरो । पर्याय—गृहत्पालो, सूदमवल, भरपवजीर, कण । गुण—कटु, शीतल और मृणालाशक ।

वनजोविन्द ( सं० पु० ) वह जो जंगलसे लकड़ी ला कर जीविका निर्वाह करता हो, लकड़हारा ।

वनतण्डुलो ( सं० स्त्री० ) १ तण्डुलीयमेद । ( Amblogina polygonoides ) २ वनतण्डुलीय शाक ।

वनतद्य ( सं० पु० ) अर्जुनवृक्ष ।

वनतिक ( सं० पु० स्त्री० ) वनेषु वनोद्भवेषु मध्ये तिका, तिका वा । हरतिका, इड ।

वनतिका ( सं० स्त्री० ) प्रोथ्या नामक लतामेद ।

वनतिकिका ( सं० स्त्री० ) वनतिका कन्, टापि अत इत्यं । १ पाठा । पाठा देलो । २ पथरो नामका साग । इसका

गुण—तिक और शीतल तथा कटु और कफपित्तघ्न ।

वनत्रपुप ( सं० पु० ) १ आरप्यत्रपुप, नंगलों टांगा । २ इन्द्र-चारणी । ( वैद्यकनि० )

वनदु ( सं० त्रि० ) १ प्रशंसाकारो, बड़ाई करनेवाला । २ स्तोता, पूजक ।

दुर्गादासने 'वनदः' शब्दका 'वनदाः' अर्थात् अमोघ पूजोपहार दानकारो अर्थ लगाया है । किन्तु वर्तमान टीकाकार 'वनदु' शब्दका प्रचल इच्छायुक्त, ऐसा अर्थ लगाते हैं ।

वनद (सं० पु०) वनं जलं ददातीति दा क । १ मेघ, वादल ।  
 (ति०) २ वनदागुण्यम् ।  
 वनदमन (सं० पु०) वनजातो दमनः । भरप्यद्गमनक  
 पृष्ठ, वनदीना ।  
 वनदारक (सं० पु०) जालिघिरीय ।  
 वनदाद (सं० पु०) दायदहन, शनिसे वन जलाना ।  
 वनदीप (सं० पु०) वनस्य दीप इय । वनचमराः ।  
 वनदीपभट्ट (सं० पु०) परु प्रसिद्ध टोकाकार ।  
 वनदुर्गा (सं० स्त्री०) १ तत्सूक्त, देवीमूर्ति । पूर्ववङ्गमें  
 वनदुर्गा पूजा कही धूमधामसे की जाती है । २ इसी  
 नामके एक नगलका नाम । ३ एक उपनिषद्का नाम ।  
 वनदेश (सं० पु०) वनका अधिष्ठात्री देवता । (उत्तरचरित २)  
 वनदेशी (सं० स्त्री०) वनकी अधिष्ठात्री देवी ।  
 वनद्रु (सं० पु०) वारपूत, पिघालका पेड़ ।  
 वनद्रुम (सं० पु०) १ अर्जुनवृक्ष । २ काष्ठागुण ।  
 वनद्रिप (सं० पु०) वनद्रुकी, जङ्गली हाथी ।  
 वनधारा (सं० स्त्री०) वृक्षकी कतारके बीचका पथ ।  
 वनधिति (सं० स्त्री०) १ कुठार भादि भय । २ मेघ-  
 माला ।  
 वनधेनु (सं० पु०) भरप्यज्जात गो, नीलगाय ।  
 वनन (सं० स्त्री०) १ वन, वीरज । २ इच्छा, वासना ।  
 वननमिध-तर्कसंप्रवृत्तिपणके प्रणेता ।  
 वननिरय (सं० पु०) रौद्राभ्यके एक पुत्रका नाम ।  
 वननीय (सं० लि०) वाम्पनीय, चाहने योग्य ।  
 वननयत् (सं० लि०) १ उद्कपिनिघट, जिसमें जल हो ।  
 २ साम्बलस्य वन ।  
 वनप (सं० पु०) १ वनपानी । २ लकड़हारा । ३ वन-  
 रक्षक, जङ्गलका रक्षकाला ।  
 वनपत्रग (सं० पु०) वनस्य पत्रं ।  
 वनपर्यन्त (सं० स्त्री०) महामारुतकः तीसरा भंज । इस  
 भंजमें सुधिष्ठित भाद्रि पांशों वायुस्थके काम्यवनमें रहने-  
 के समयका विवरण है ।  
 वनपन्नापट्ट (सं० पु०) वनजाल पन्नापट्ट, वनप्याज ।  
 वनपहय (सं० पु०) वनमिष निविष्टः वनयो यष्यः ।  
 नोमाधन वृक्ष, महिजनका पेड़ ।

वनपांशुल (सं० पु०) वने पांशुल पापिष्ठः । पाप,  
 निपाती ।  
 वनपादप (सं० पु०) वनजपृष्ठ, जङ्गली पेड़ ।  
 वनपादय (सं० पु०) वनके भास-वासका स्थान ।  
 वनपाल (सं० पु०) वनरक्षक, जङ्गलका रक्षकाला ।  
 वनपिप्पली (सं० स्त्री०) वनोद्भवा पिप्पली । छोटी  
 पोंपल । गरठो-रानपिपुल, कनाड़ी-कादिपिप्पली ।  
 संस्कृतन पर्वाय-सूक्ष्मपिप्पली, शुद्धपिप्पली, वनकला ।  
 इसका गुण कटु, उष्ण, तीक्ष्ण और रुच्य माना गया है ।  
 जब यह पीया कहीं रहती है, तभी तब इसमें गुण रहता  
 है, सुगने पर इसका गुण बहुत कुछ कम हो जाता है ।  
 वनपोत (सं० पु०) भूमिजान गुग्गुलु, यह गुग्गुलु जो  
 जमीनमें उत्पन्न हो ।  
 वनपुण्या (सं० स्त्री०) वनमिष निविष्टं पुष्पं वरुणा,  
 टापू । जतपुण्या, सोभा ।  
 वनपुण्यामय (सं० लि०) वनपुण्यासमाय ।  
 वनपुण्योरसय (सं० पु०) आम्रपृष्ठ, शामका पेड़ ।  
 वनपूतिका (सं० स्त्री०) धारप्यपूतिका, वनगोई । वैद्यकमें  
 इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण और रुच्य कदा है ।  
 वनपूरक (सं० पु०) वनजातः पूरकः योजपूरकः । वन-  
 योजपूरक, जंगली बिजौर गोषू ।  
 वनपूर्य (सं० पु०) एक प्राचीन गांवका नाम ।  
 वनप्रस (सं० लि०) जलधारी, जलमें रहनेवाला ।  
 वनप्रथेज (सं० पु०) वनगमन, वह यात्रा जो कोई देव-  
 मूर्ति बनानेके अभिप्रायसे जङ्गली वृक्षों की काटनेके लिये  
 हल-बलके साथ वनमें की जाती है ।  
 वनप्रस्थ (सं० स्त्री०) १ अर्धव्यवस्थान्धत वन । २ स्थान-  
 विधेय । ३ वानप्रस्था ।  
 वनप्रस्थायिन् (सं० लि०) वनगमनकारी ।  
 वनमिष (सं० स्त्री०) वनेषु वनजानेषु गण्ये मिषं ।  
 १ वृक्ष, वारचोनी । (पु०) २ कौकिल, कीपल । ३ विनी-  
 तक वृक्ष, बंदेड़े का पेड़ । ४ कपूर, कपरी । ५ जम्बूगुण,  
 सांगर हिरण ।  
 वनमूल (सं० स्त्री०) जङ्गली पेड़का एक प्रकारका फल ।  
 यह स्थानमें मोटा होता है ।  
 वनमूल्य (सं० स्त्री०) पुत्रपुत्रमेव । इस ही माला गुंफनेने

सुन्दर दिखाई पड़ती है। श्रीहृण्य वनफूलकी माला पहन कर वनमाली हुए थे।

वनवर्धर (सं० पु०) कृष्णाजं क, वनतुलसी।

वनवर्धरिका (सं० स्त्री०) वनजात अजंक जातीय पत्र शाक, वनतुलसी। इसका गुण सुगन्ध, उष्ण, कटु, वमिघ्न, पिशाच और भूतघ्न एवं घ्राण-सन्तर्पण माना गया है। (राजनि०)

वनवर्हिण (सं० पु०) वन्य मयूर, जङ्गली मोर।

वनवाद्यक (सं० पु०) जातिविशेष।

वनवीज (सं० पु०) वनस्य वनोद्भवो वा धीजो धीज-पूरकः। वनवीजपूरक, जङ्गली विजौरा नीबू।

वनवीजक (सं० पु०) वनवीज-साम्ये कन्। वनवीजपूरक।

वनवीजपूरक (सं० पु०) वनोद्भवो धीजपूरकः। आरण्याजात धीजपूर, जंगली विजौरा नीबू। पर्याय—वनज, वनवीजक, वनवीज, अत्वग्भा, गन्धाग्भा, वनोद्भवा, देवदूती, पीडा, देवदाप्ती, देवेष्ट, मातुलङ्गिका, पचनी, महाफल। इसका गुण—अम्ल, कटु, उष्ण, रुचिमद् तथा चात, आम-क्षेप, कृमि, कफ और श्वासनाशक। (राजनि०)

वनमद्रिका (सं० स्त्री०) वने भद्रं यस्याः ततष्टपि अत इत्वं। भद्रवला, माधवी लता।

वनभुज (सं० पु०) वनं भुङ्क्ते इति वन-भुज्-क्विप। ऋषभीयथ।

वनभू (सं० स्त्री०) वनमय स्थान।

वनभूषण (सं० स्त्री०) कोकिला।

वनमञ्जरी (सं० स्त्री०) वननिर्गुण्डा।

वनमक्षिका (सं० स्त्री०) वनस्य मक्षिका। डंश, जाँस।

वनमल्लिका (सं० स्त्री०) सेवतीका पीथा या फूल।

वनमल्ली (सं० स्त्री०) वनोद्भवा मल्ली, जंगली मल्लिका।

वनमानुष (हिं० पु०) १ वनजात मनुष्य। २ वनवासि। ३

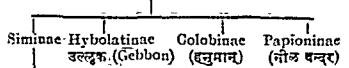
स्वनामप्रसिद्ध चतुष्टय जीवविशेष। यह गोरिला अथवा पूँछहीन जातीय या स्वल्प पूँछवाले बन्दरोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता है, किन्तु बन्दरोंकी तरह इसे पूँछ चिह्न या गण्डल्यही नहीं होती। यूरोपीय प्राणितत्त्वविद्गण इसके हाथ, पाँव, यक्षस्थल प्रभृतिकी हड्डियों तथा दाँतादि की अच्छी तरह पट्टाविज्ञाना करके एवं इन सबोंका मनुष्य जातिके साथ यथावध सादृश्य निरूपण करके इस

सिद्धान्तकी प्राप्ति हुए हैं, कि इस जातिके पशु, चतुष्टय बन्दर तथा मनुष्यके मध्यस्थलमें आसन ग्रहण कर सकता है। मनुष्यके साथ इनके पाँवोंकी अंगुलियाँ परस्पर पृथक् पृथक् रहती हैं। इसके कंकालके साथ मनुष्यके कंकालकी तुलना करने पर देखा जाता है, कि मनुष्यकी अपेक्षा इसके हाथ तथा पाँवकी अंगुलियाँ बड़ी, पाँव छोटे, हाथ लम्बे, पञ्जरकी हड्डियाँ नीचेकी ओर अधिक विस्तृत, कमरकी हड्डी पतली और लम्बी, खोपड़ी चिपटी तथा मुबकी ओर विस्तृत होती है। शरीरके ऊपरी हिस्सेमें शिम्पांजीका कंकाल मनुष्यके कंकालसे बहुत मिलता जुलता है। इस प्रकार अस्थि-संस्थानका लक्ष्य करके वैज्ञानिकोंने इन्हें ओरङ्ग, शिम्पाजी और गिबों नामक तीन स्वतन्त्र श्रेणियों में विभक्त किया है। इस ओरङ्ग और शिम्पाजीको ही हम लोगोंके देशमें वनमानुष कहते हैं।

मलय द्वीपकी भाषामें 'ओरंग-उटान' शब्दसे वनमानुष समझा जाता है। इसलिये वहाँके अधिवासी द्विपद् चारी एवं बन्दरकी तरह हाथ पाँव-व्यवहारकारो मनुष्याकार इस वन्य-पशुको 'ओरंग-उटान' कहते हैं एवं योर्निओ तथा सुमात्रा-द्वीपवासो मो इसे इसी शब्दसे उल्लेख करते हैं। बादमें अङ्गरेज भ्रमणकारियोंके अनुप्रदसे यह भारतीय द्वीपपुञ्जतात जाँव देनी भाषामें Orang-outang शब्दसे परिगृहीत हुआ। प्राणितत्त्व विद्गु लिनियसने इसे Simia श्रेणीका जीव उद्धारया है। वैज्ञानिकोंके अनुमानसे ये Pithecus जातिके बन्दर Chimpanzee की एक शाखामात्र हैं।

वैज्ञानिकोंने बन्दरश्रेणीके जीवोंको आकृतिके प्रभेदसे अथवा जातिगत पृथक्ता अनुसार जिस तरह विशिष्ट दलमें विभक्त किया है, उसकी एक संक्षिप्त तालिका नीचे दी जाती है। इस तालिकासे बन्दरोंके साथ इनकी कहाँ तक पृथक्ता है, उसे आसानीसे समझ सकते हैं।

बन्दर जाति (Simiadae)



शिम्पाजी (अफ्रिका) गोरिला (अफ्रिका) वनमानुष (Troglodytes nigar) (Tr, gorilla) (Simia satyrus) विस्तृत विवरण बानर शब्दमें देखो।

इस बन्दर ज्ञानिके मध्य S. Satras धेनीके वन-मानुष नामक पशु कुछ लम्बे रंगका होगा है। इसका चेहरा कीड़ा, मुख मोटा एवं तुकोला, कपाडका गिछका हिम्ना भिगटा तथा आंखें छोटी होती हैं। एवं हड्डीय छोटा होता है; श्रोणी वाय्वं में बगद हड्डीय होती है; छातीकी हड्डीय वा मांसमें विभक्त रहती है। हस्तद्वय मुख्यप्रग्विपलम्बी, पद् लम्बा तथा पतला होता है। इनमें कमी मायून दिखार नहीं पड़ने। ये प्रायः पौंच फोटरं ऊंचे नहीं होते। सुमाता तथा बोरिनीयो द्वोपमें इनका वास है।

शोपनरवविशुगण कहते हैं, कि जीवजातिके पशु-धेनीके मध्य 'बोरिला' प्रथम स्थानका अधिकारी है। जिम्माजो उनके निम्न भासनके श्री भोरंग उटान तृतीय स्थानके अधिकारी है। कारण यह है, कि इन लोगोंके प्राकृतिक ज्ञानमें भी इसी तरह कुछ पृथक्ता श्रष्टिगोचर होती है। भाश्वयंका विषय यह है, कि भोरंग उटान इन सबकी भेषज्ञा-दोषाकार होता है एवं मनुष्यकी भाकृतिगें बहुत कुछ मितता जुलता है। इनकी छाता, भुजायं तथा हाथीकी बनावट मनुष्यके समान हो होगी है। मनुष्यभातिमें जिस तरह सबकी भाकृत एक-भी नहीं होती, उसी तरह इनकी मुसा-कृतिमें भी कुछ न कुछ अन्तर भवश्य दिखलाई पड़ता है। भोरंगोंमें जो विशेष सुखिमान होता है, वह मुखके भाग तथा रंग-टंगमें विशेष विचक्षणताके साथ हृदयके माथीकी प्रकट करनेमें समर्थ होगा है एवं कितने ही वनमानुष तो मनुष्यकी तरह हर्षप्रोधादि विभिन्न मान-सिक वृत्ति भी प्रकटा कर सकते हैं।

ये भाग्यवर्षके हाथोंके वनमाता-परिष्यात समस्त प्राणतमें मूल-गिर कर समय बिताने हैं। यहाँ ये प्रभोले पृथके ३०, ४० फीट ऊंचो टालों पर पृथोंके पत्ते तथा दृग्गी फटो खानिवां इकठो करके छोटे छोटे भोपटें बनाते हैं। इनके भोरङ्केका स्थान प्रायः दो फीट होगा है। ये पृथकी टालोंकी गटाईकी तरह बून कर विभाम करकेही कट्या सँप्यार कर लेते हैं। वनमें यागन करकेके लिये मनुष्य कुडार या सुलेके अभावमें जगन तरह पृथगात्माओंकी छतरी बना कर तुलसे जगन

करते हैं, टोक उसी तरह ये भी अपने पत्तोंकी पारने हैं। उन पाटयों पर ये पृथोंके कच्चे तथा कीमल पत्ते रिष्ठा कर विस्त लेटा करते हैं। निम्नाकालमें ये हाथ या पाँव बढ़ा कर पासकी मशबून डाली पकड़ कर आनन्दमें सोते हैं। जब तक वे पत्ते मूय कर रिष्ठा मिश्र न हो जाते हैं, तब तक ये उसी शय्या पर स्वच्छन्दनापूनीक सोते हैं।



भोरंग उटान।

बनिषो-द्वोपयामो भोरंग गण भाग्यत भगद्गादू होने हैं। जब ये वनके भाग्यर फल पूज सानिके लिये जाते हैं, तब किसी सामान्य कारणमें भी भगद्गा कर एक दूररीकी क्षण विस्तन कर देते हैं। इनके हाथ इनकी सामन-रक्षाके धत्यन्वक्य है। भगद्गेके समय ये जगुके हाथ तथा माथा कींच कर शीतोंमें भोग लेते हैं। यदि किसी समय कोई मनुष्य या दृग्गी अवागन उनके भोरङ्केके पास भा पहुँचते हैं, तो ये उठें। यहाँमें भागा देनेके अति-प्रायमें वन पर पृथोंकी खाल तथा परपत्तोंके टुकड़े बड़े

वेगसे प्रहार करना शुरू करते हैं। पीछे हाथी वृक्षको तोड़ कर उनके भोपड़े नष्ट कर देते हैं, इसी भयसे वे हाथीको देखते ही उस भगानेका चेष्टा करते हैं। समय समय पर वे वनमध्यगामो असहाय पक्षियों पर वृक्षकी डाल लिये बड़े वेगसे आक्रमण करते हैं। कुम्भियर तथा कप्तान पाइनेरकी वर्णनासे ज्ञाना जाता है, कि एक समय इन सर्वोनि नेम्रो-यालिकाओंको हर कर वनमें छिपा रखा था।

पिंजरायद्ध शिम्पाजोको अनुकरणप्रियता और सुबुद्धिकी प्रखरताका परिचय पा कर डा० ट्रेल कहते हैं, कि उनका स्वभाव बड़ा ही स्वाश्चर्यजनक होता है। उसे पर्यवेक्षण करके नित्य ही नूतन गद्य सङ्कलन किया जा सकता है। वे भासानीसे यशोभून होते हैं, यहाँ तक कि जो उन्हें प्यार करते हैं, उनके पास बैठ कर वे भोजन तक करते हैं। जो व्यक्ति उन्हें सर्वदा चिढ़ाया करते हैं, उन्हें देखते ही वे चिरकि भाव प्रकाश करके उनके पाससे जिसक जाते हैं। यूरोपीय प्रधानुसार वे भी हाथ मल कर आनन्द प्रकाश करते हैं। उनके गरीर रोएँसे ढके रहने पर भी वे शीतप्रधान देशमें वास करना पसन्द नहीं करते। शीतप्रधान यूरोपखण्डमें वे अपने मालिकके दिये हुए फम्बल विछा कर आनन्दसे लेटते हैं। कांघित होते पर वे ऊँचे स्वरसे चिन्ता उठते हैं एवं मोठा आना पानेसे वे "हाम हाम" शब्दों द्वारा आनन्द प्रकाश करते हैं।

शरायकले सर जेमस् ब्रुकने कलकत्ताके बंगाल एशियाटिक सोसाइटीके जाइघरमें एक दीर्घाकार वन-मानुषका बँकाल भेजा था। मि० ब्याइन्ने उनकी पृथक्ता लक्ष्य कर उनके पाँच दल निर्देश किये हैं,—  
१ Pithecus Brookei वा मियस रम्य, २ P. Satyrus वा मियस पप्पन, ३ P Curtus वा मियस छापिन; ४ P. morio वा, मियस कसर एवं ५ P. Owenii, ये सब विभिन्न दलोंके वनमानुष भारतीय द्वीपोंके विभिन्न भागोंमें वास करते हैं। सुमात्राके उत्तरांशमें P. morio एवं दक्षिणांशमें P. Owenii जातियोंका वास देखा जाता है। जीवनस्वविद् जर्दानने इन द्वीपोंके Simia Satyrus तथा S. morio नामक दो जातीय वनमानुषों-

का उल्लेख किया है। पश्चिम-अफ्रिकाके गिबून नदी-तीरप्रदेशवासी T. gorilla तथा P. nigra दलोंके शिम्पाजी तथा गोरिला जातिकी विस्तृत विवरण वानर शब्दमें लिखा गया है। वानर देखो।



शिम्पाजी।

वनमार्जार ( सं० पु० ) वनविडाल।

वनमाल ( सं० लि० ) १ वनमाला। ( पु० ) २ कृष्ण वा विष्णु। ३ प्रागज्योतिषके भगदत्तवंशीय एक राजा।

प्रागज्योतिष देखो।

वनमालदेव—शिलालिपि घणित कामरूपके एक राजा।

वनमाला ( सं० लो० ) वनोद्भवा पुणररचिता माला, मध्य-पद्मलोपी। १ वनके फूलोंकी माला। २ एक विशेष प्रकारकी माला। यह सब प्रस्तुतोंमें होनेवाले अनेक प्रकारके फूलोंसे बनती और घुटने तक लंबी होती थी। ऐसी माला श्रोत्रार्थ धारण करते थे। ३ छन्दोमेद। इसके प्रत्येक चरणमें १८ अक्षर होते हैं। उनमेंसे १, २, ३, ४, ५, ६, ८, ११, १४, और १६ वर्ण लघु तथा बाकी वर्ण शुक होते हैं। इसका १, २, ३, ४, ५, ७, ६, १०,

११, १३ और १६ वर्ण लघु तथा ६, ८, १२, १४ और १५ लघु होते हैं ।

वनमालापर ( सं० लि० ) १ धीरुत्तन । २ छन्दोभेद ।

वनमालिका ( सं० स्त्री० ) १ भास्वोटा, चमेली । २ वन मालिका, संवत्ता । ३ पाराशोक्तम् ।

वनमालिकाशम्—वनमाला नामक ग्रन्थके प्रणेता ।

वनमालिन् ( सं० पु० ) वनमाला भस्मयेति इति । १ धीरुत्तन । २ मारायण । ( लि० ) ३ वनमाला धारण करने-वाला ।

वनमालिनी ( सं० स्त्री० ) १ पारकापुरी २ पाराही ।

वनमालिनट्ट—मोगोविन्दके टीकाकार ।

वनमाली ( सं० पु० ) वनमालिन देखो ।

वनमाली—१ महौत्मिन्द्रित्वाण्डनके प्रणेता । २ चाण्ड-मारुत नीर मारुतगण्डनके रचयिता । ३ द्रव्यमीषग-विभाजके प्रणेता । ४ प्रायश्चित्तसारकीमुद्रिके रचयिता । ५ मन्दिरदापरके प्रणेता । ६ भगवद्गीताके एक टीकाकार । ७ मुक्ताचलो नामक वैदान्तग्रन्थके रचयिता । ८ वैदान्तदीप और स्फुटग्रन्थकी नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता । ९ एक प्राचीन कवि ।

वनमाली मिश्र—१ वैपाकराजभूषण-भनोश्मज्जिनी और भिन्नाशतान्त्य विवेक नामक ग्रन्थके रचयिता । ये बौद्ध-भट्टके छात्र थे । २ मारमञ्जरी नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता । ३ ब्रह्मानन्दनाथ गण्डन नीर वनमालिमिश्रीय नामक वैदान्तके रचयिता ।

वनमालीना ( सं० स्त्री० ) धीरापा ।

वनपुष्प ( सं० पु० ) वन जहाँ सुश्रूतीति मुष्प-किप् । १ मेष, पादल । ( लि० ) २ जलपर्यन्तकारिमास ।

वनमुष्ट ( सं० पु० ) वनोद्भवो मुष्टः । १ मकुएक, वनमूंग । पचाय—वटक, तिमुरक, कुलीनक, गण्डी । २ मुष्टवर्णी, मुगामो ।

वनमूत ( सं० पु० ) वन जल मूल पद वेग, वन मुष्ट-तोति वा । मेष, पादल ।

वनमूतजा ( सं० स्त्री० ) वनहय मूर्त्ति जायते इति जन-ज । १ वनकीतपूरक, जङ्गली बिलौरा मोरू । २ कर्कट-भृङ्गी, पादकालिणी ।

वनमूलकत ( सं० स्त्री० ) वनजल कन्व नीर वन ।

वनमूग ( सं० पु० ) हरिणविधेर ।

वनमेधिका ( सं० स्त्री० ) मारुत्पमेधिका, वनमेघी ।

वनमोचा ( सं० स्त्री० ) वनोद्भवया मोचा काष्ठरुद्री, वनकेला ।

वनममाली ( सं० स्त्री० ) स्वनामण्यात छोटा पीपल, वन-मत्तपायन ।

वनमिन् ( सं० लि० ) द्वारयिता ।

वनर ( सं० पु० ) वानर-पृथोदरादित्वात् भाकार ह्रस्व । वागर, वन्दर ।

वनरक्षक ( सं० लि० ) वनकी रक्षायामो कर्तव्यवान् ।

वनरग्ना ( सं० स्त्री० ) काष्ठरुद्री, वनकेला ।

वनरक्षी—दाक्षिणात्यके महिपुर राज्यके कोन्दर शिला-गौत एक गण्डनाम । यह शब्दो १३ १४ ३० उ० तथा देशो ०८ ११ ३१ पू० तक विस्तृत है । यहाँ हर साल वैशाख महौमेमें ब्रह्मलक्ष्मणके उत्सवमें एक मेला लगता है । इस मेलेमें एक लायके करीब गाय भारि पशु विक्रमे हैं ।

वनराज ( सं० पु० ) वटवृक्ष, वरगद् ।

वनराज ( सं० पु० ) वनहय वने वा राजा, इति वनराज-वृच (राजहयमित्यण्डन् । वा ५।४।६१) १ सिंह । २ वनका रक्षयवित, वनका मालिक । ३ वनमत्तक वृक्ष ।

वनराजि ( सं० स्त्री० ) १ वनकी धोणी, वन समूह । २ वनके बीच गई हुई पगडंडी । ३ पशुदेवकी एक दामोदा नाम ।

वनराज्ञी ( सं० स्त्री० ) वनराजि देखो ।

वनराट्ट ( सं० पु० ) वट वृक्ष, वरगद् ।

वनराष्ट्र ( सं० पु० ) जनपदभेद नीर जाति विवेक ।

( भाष्यपरिचयपु० ५८।४६ )

वनराष्ट्रक ( सं० पु० ) वनराष्ट्र देखो ।

वनरह ( सं० स्त्री० ) वच, वमल ।

वनर्ग ( सं० लि० ) वनगामी ।

वनर्त ( सं० पु० ) शृङ्गोद्भूत ।

वनर्त्ति ( सं० स्त्री० ) वनकी समृद्धि, वनसम्पन्न ।

वनर्षद् ( सं० लि० ) १ वैशेषिक वनविद्वरणकारी । ( पु० ) २ वनवर्षी वामु ।

वनरत्नी ( सं० स्त्री० ) वनहय लक्ष्मी शोभा । १ वनयो-केला । २ वनधो, वनकी शोभा ।

वनलता (सं० स्त्री०) वनजात लता, घड़ी ।  
 वनलेखा (सं० स्त्री०) वनानां लेखा इति । वनकी धोणी,  
 वन-समूह ।  
 वनधर्वरिका (सं० स्त्री०) वनजाता धर्वरिका । अपरयजात  
 धर्वरी, वनतुलसी । पर्याय—सुगन्धि, सुप्रसन्नक, दोष,  
 ह्रींशी, विपन्न, सुसुख, सुत्तपत्रक, निद्रालु, शोफहारी,  
 सुवक्त्र । इसका गुण—उष्ण, सुगन्धि, पिशाच, वान्ति  
 और भूतघ्न तथा घ्राणसन्तर्पणकारी । (राजनि०)  
 वनबहि (सं० पुं०) वनस्य वनोद्भवो वा बहिः ।  
 दायानल ।  
 वनयात (सं० पुं०) वनवायु, वनानिल ।  
 वनवास (सं० पुं०) वने वासः । १ वनका निवास, जङ्गलमें  
 रहना । २ वस्ती छोड़ कर जङ्गलमें रहनेकी व्यवस्था या  
 विधान । ३ मधूकवृक्ष, महूपका पेड़ । (त्रि०) वने वासी  
 यस्य । ४ वनवासी, जङ्गलमें रहनेवाला ।  
 वनवासक (सं० पुं०) १ शाक्यमलीकन्द । २ एक प्राचीन  
 नगर जो कादम्ब राजाओंका राजधानी था । कादम्ब देखो ।  
 वनवासन (सं० पुं०) वनं वासयति गन्धेनेति वासि-न्त्यु ।  
 १ वृष्टाण, उद्विलाय । (त्रि०) २ वनमें वसना ।  
 वनवासिन् (सं० पुं०) वनं वासयति सुभोकरोति इति  
 वासि-णिनि । १ ऋषभ नामक ओषधि । २ सुककवृक्ष,  
 मोवा नामका पेड़ । ३ वाराहोक्त । ४ शाक्यमलीकन्द ।  
 ५ नीलमह्विकन्द । ६ द्रोणकाक, झोम कौआ, बड़ा काला  
 कौआ । ७ द्वीपान्तरस्य खड्गुरीवृक्ष, दोनों किनारे लगा  
 हुआ खजूरका पेड़ । (त्रि०) वने वसतोति वस-णिनि ।  
 ८ वनवासकारी, वनमें रहनेवाला, वस्ती छोड़ कर  
 जङ्गलमें निवास करनेवाला ।  
 वनवासो (सं० पुं० त्रि०) वनवासिन्देखो ।  
 वनवासी—दक्षिणमें तुङ्गभद्राकी शाखा वरदा नदीके  
 किनारे बसा हुआ एक प्राचीन नगर । यह कादम्ब राजा-  
 ओंका प्रधान नगर था । भौगोलिक टलेमो Banawasei  
 नामसे इसका उल्लेख कर गये हैं । कादम्ब देखो ।  
 वनवास्य—जनपदभेद, दक्षिणका वनवासो राज्य ।  
 वनविहाल (सं० पुं०) वनमाजार् ।  
 वनविरोधिन् (सं० त्रि०) १ वनका शत्रु । (पुं०) २ वपार्  
 शत्रु ।

वनविलासिनी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी लता ।  
 वनवीर (सं० पुं०) वनवीरपूरक, जंगली बिजौरा नीबू ।  
 वनवीरपूरक (सं० पुं०) वनजात मातुलुङ्ग वृक्ष, जंगली  
 बिजौरा नीबू । मराठी—वनवाहुलिङ्ग, कनाड़ी—  
 कामाधवल । इसका गुण—अम्ल, कटु, उष्ण, रुच्य,  
 वातघ्न, अम्लक्षय और रुमिनाशक, कफघ्न तथा  
 श्वासघ्न । (राजनि०)  
 वनवीर—सितसोदिया वारधर पृथ्वीराजकी उपपत्नीके  
 गर्भसे इसका जन्म हुआ था । राणा विक्रमाजित और  
 सत्दारोंमें कुछ मनमुटाव हो गया । इसलिये सत्दारों-  
 ने मेवाड़के सिंहासनसे राणा विक्रमाजितकी उतार कर  
 उस पर वनवीरको बिठाया ।  
 वनवीर गद्दी पर बैठते ही निष्कण्टक होनेका प्रयत्न  
 करने लगा । राणा विक्रमाजित तो उसकी आँखोंमें  
 गड़ते ही थे । दूसरा संप्रामसिंहका छोटा लड़का  
 उद्यसिंह भी शुरुपक्षके चन्द्रमार्के समान बढ़ रहा था ।  
 यह भी वनवीरका एक बहुत बूढ़ कष्टक था । वनवीरने  
 शत्रुमें अपने कष्टकोंको निकाल देना ही निश्चिन  
 किया । एक दिन वनवीर अपना विचार बूढ़ कर रात-  
 की प्रतिज्ञा करने लगा । धीरे धीरे रात आ गई । इस  
 समय कुमोद उद्यसिंह भोजन करके सोये हैं, उनको घाय  
 विस्तरे पर बैठी सेवा कर रही हैं । उसी समय रनिवासिने  
 रोने पीटनेकी आवाज सुनाई दी । धाय उठना ही चाहती  
 थी, कि वारो राजकुमारकी जूटन उठाने वहां आया ।  
 उसने कहा बड़ा अनर्थ हुआ, वनवीरने राणा विक्रमा-  
 जितको मार डाला । सुनते ही धायका हृदय कांपने लगा  
 वह समझ गई, कि वह दुष्ट राणाकी मार कर ही क्यों  
 चुप रहेगा । राजकुमारके भी प्राण लेने इशर आयगा ।  
 उसे एक उपाय सूझ पड़ा । उसने एक टीकरेमें राज-  
 कुमारकी लेटा कर ऊपरसे पसा हाँप दिया और धारी  
 द्वारा राजकुमारको वहांसे हटा दिया । उसके जाले ही  
 वनवीर रुधिरसे सनी तलवार ले कर वहां आ गया ।  
 उसने पूछा "राजकुमार कहाँ है ?" धायने राजकुमारके  
 बदले अपने पुत्रको ही बतला दिया । वनवीरने उसे भी  
 मार डाला और तबसे उसने अपनेकी निष्कण्टक समझ  
 लिया ।



इस भाषणा प्रकृत नाम था पत्र। यह उम्र बारीकी के दृष्टिसे राजकुमारों का ही निकली और पूर्वनिर्दिष्ट प्रकार पर उसने राजकुमार तथा बायीं ही पाया। पायने कमलनीर नामक स्थानमें पहुँच राजकुमारकी भाजा-याह नामक एक जैनीके घर हम दिया। राजकुमार यहाँ फूलने लगने लगे। रामान्त सरदारोंने राजकुमारकी भयमा राजा मान लिया। अब वनयोरीकी इसकी कहर लगी, जब यह बहुत निश्चित हुआ, लेकिन अब यह चिन्तित हो कर कर ही क्या सकता था। सरदारोंने बंजिलने राजकुमार उद्गमिहका समिपेक किया और वनयोरी भाग कर दक्षिणकी ओर चला गया। नागपुरके भीमदे उन्नीकी सम्मान है।

वनपुत्राकी (सं० स्त्री०) वनस्प वृक्षाकी वार्त्ताकी। पृथ्वी, वनमंडा।

वनयोहि (सं० पुं०) वनस्प छांदि। देवघाण्य, उदार।

वनगिम्यिका (सं० स्त्री०) भारण्यगिम्यी, वनछाँसी।

वनदूहरी (सं० स्त्री०) वनस्प दूहरीय रोमदारयात् मांस स्तयास। १ कपिकच्छु, वेवैन। २ भारण्ययरादी, जंगली मादा मूषा।

वनद्वारण (सं० पुं०) वनजाताः द्वारणाः। यमोद्गपीन, वन योत। पदार्थ—मिनद्वारण, यय, वनतन्त्र, भारण्य-द्वारण, वनत, श्वेतद्वारण, वनकण्डुक। इसका गुण—रक्त, कटु, उष्ण, रुचि, मुक्त और शून्यादि क्षोषण तथा मर्म भगविदारक।

वनभृङ्गाट (सं० पुं०) वनस्प भृङ्गाट रथ, कट्टहावृत्तयात्। मोक्ष, मोक्षक। पदार्थ—भृङ्ग, सिद्ध, क्वाकुकट्टक, गाकट्टक, मोक्षक, वनभृङ्गाट, वनद्वारण, लवण्य और इतुमिषक। (भाष्य० १२ भाग)

वनमोमन (सं० स्त्री०) वनं सतं मोमयतीति मुम-जिम्-ज्यु। १ वन, कमल। (वि०) २ वनकी मोमा बढ़ानेवाला।

वनभयन (सं० पुं०) वनं या भया वृषयुरा। १ वनभयानरी, वंघविलयन। २ वनभय, भयान। ३ वन, वाय।

वनकण्ड (सं० पुं०) वनमका वन या कण्डक।

वनवृत् (सं० स्त्री०) १ वनवासि, वनमें रहनेवाला। (पुं०) २ वृत्। ३ वन ५० ३(४) ४ वृत्देवी।

वनमंघयेन (सं० पुं०) वनद्वीपी देवमूर्त्ति वनामके इन्द्रो से लक्ष्मणके लिये वनमें जाता।

वनम् (सं० स्त्री०) वननीय वन और वन।

वनम् (सं० पुं०) १ शब्दा। २ वानुमणि (३ वन)।

वनसद्वृट (सं० पुं०) वनं सद्वृटो याद्वृत्तं वन्य। वन्य।

वनसद्वृ (सं० स्त्री०) १ वनवासि। (पुं०) २ वनपत्र, क्षायाम्।

वनसमुह (सं० पुं०) वनानां समूहः। १ भारण्यतर्दिन, वनराशि। पदार्थ—भयण, वायु। २ जलसमुह, जलकी देर।

वनसरोजिनो (सं० स्त्री०) वनस्प सरोजिनो पत्तिलीय प्रोभाकरतयात्। वनकापानी, जलकी कपास।

वनसाहवा। सं० स्त्री०) वन्य उदीरुकी वनसा।

वनस्तम्भ (सं० पुं०) वनके एक पुत्रका नाम।

वनस्प (सं० पुं०) वने तिष्ठतीति स्था-क। १ मृग। २ वानप्रस्थ। गृहस्थीके विमुक्त, वनधारिणीके विमुक्त और वानप्रस्थ गतिभोके चतुष्पुत्र श्राव होता है। (वि०) ३ वनवासि।

वनस्पयो (सं० स्त्री०) वनमूमि, वनप्रदेश, जलकी जमीन।

वनस्था (सं० स्त्री०) वने तिष्ठतीति स्था-क-टाप्। मध्य-स्थ, पोषकका पेठ।

वनस्थान (सं० स्त्री०) वनप्रदेश।

वनभेदकला (सं० स्त्री०) वनभेदकला, छोटी चटाई।

वनमर्षि (सं० पुं०) वनमर्षि। वारुणवर्षिणयात्। वृत्। १ पुत्रदोन फलवान वृत्, वह पेठ जिसमें वृत् न हो केवल फल ही हो। जैम—मूला, वृत्, पोषक वारि वृत् वर्णके वृत्। २ वृत्तानत, पेठ। ३ वानुवृत्, वाहकका पेठ। ४ वृत्त, वन्य। ५ वृत्तराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भाग० शरणा०) ६ वृत्तवृत्के एक पुत्रका नाम।

वनवनिषाया (सं० पुं०) वनगतिः वृषोका समूह।

वनवनिषाया (सं० पुं०) वह जाति जिसके द्वारा वह जाता जाता हो, कि वानु और वानु की वारि के वानु वानु का और वानु की वानु की जाति ही होती है, जबके वानु वानु वानु की वानु की होती है और वानु वानु के द्वारा वानु वानु के लिये वानु वानु वानु होती है, वानुवनिषाया।

वनस्पतिसत्र ( सं० पु० ) एकाहमेद ।  
 वनकज् ( सं० स्त्री० ) वनपुष्पोद्भवा या स्त्रक् । वनमाला ।  
 वनहवन्दि ( सं० पु० ) नगरभेद ।  
 वनहरि ( सं० पु० ) सिद्ध ।  
 वनहरिद्रा ( सं० स्त्री० ) वनोद्भवा हरिद्रा, अरण्यहरिद्रा,  
 जंगली हल्दी । महाराष्ट्र—साली; कौङ्कण—अडिचिगका,  
 अरिमिन ; तैलङ्ग—कस्तूरि पशुपु, अडिचिपसुपु ; बम्बई—  
 वनहल्द, कचोरा ; तामिल—कस्तूरि मञ्जल । संस्कृत  
 पर्याय—शौली, शोलिका, वनारिष्टा । गुण—कटु, सचि-  
 कर, तिक्त, दीपन और गौल्य ।  
 वनहास ( सं० पु० ) वनस्य हास इव प्रकाशकत्वात् ।  
 १ काश, काँस । २ कुन्दका फूल ।  
 वनहासक ( सं० पु० ) वनहास स्वार्थे कन् । काश, काँस ।  
 वनहुगली—कलकत्तेके उत्तर उपकण्ठस्थित एक प्रसिद्ध  
 गण्डग्राम ।  
 वनहुताशन ( सं० पु० ) वनोद्भवः हुताशनः । वनानि ।  
 वनासु ( सं० पु० ) वनस्यासुः । शशक, खरगोश ।  
 वनासुक ( सं० पु० ) मुद्र, भूँग ।  
 वनानि ( सं० पु० ) वनजात अग्नि, वनप्राग ।  
 वनाचार्य—चन्द्रभरणहोरा नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता ।  
 वनाज ( सं० पु० ) वनस्य अजः । वनछाग, जंगली बकरा ।  
 पर्याय—इडिक, शिशुवाहक, पृष्ठभृङ्ग ।  
 वनाटन ( सं० स्त्री० ) वने अटनं । वनप्रमण, जंगलमें  
 घूमना ।  
 वनाट्ट ( सं० पु० ) घर्षणा, नीश्री मक्खी ।  
 वनान्त ( सं० पु० ) वनस्य अन्तः । वनप्रान्त, जंगली भूमि  
 या मैदान ।  
 वनान्तर ( सं० स्त्री० ) अन्यत् वनं । अपर वन, दूसरा  
 जंगल ।  
 वनान्तराल ( सं० स्त्री० ) वनपार्श्व, जंगलके आस-पासका  
 स्थान ।  
 वनापग ( सं० स्त्री० ) वनोद्भव नदी ।  
 वनाभिन्नो ( सं० स्त्री० ) जलपद्म ।  
 वनामिलाय ( सं० स्त्री० ) वनध्वंसकारी, जंगलको उजाड़ने-  
 वाला ।

वनामल ( सं० पु० ) वनस्य आमलः आमलक इव । कृष्ण-  
 पाकफल, काला करौंदा ।  
 वनाभ्यिका ( सं० स्त्री० ) दक्षकन्या शक्तिमूर्तिभेद ।  
 वनाभ्र ( सं० पु० ) वनस्य आभ्र इव । फोगाभ्र, कोसम  
 नामक वृक्ष या उसका फल ।  
 वनायु ( सं० पु० ) १ एक प्राचीन देशका नाम । यहाँका  
 घोड़ा अच्छा होता था । २ इस देशमें रहनेवाली जाति ।  
 ३ दानवविशेष । ( भारत १६५३० ) ४ पुरुरवाके एक  
 पुत्रका नाम ।  
 वनायुज ( सं० पु० ) वनायी देशे जायते जन-ड । वनायु-  
 देशोद्भव घोटक, वनायु देशका घोड़ा ।  
 वनारपुर—एक प्राचीन नगरका नाम ।  
 (मविष्य महाल० ५८।१७)  
 वनारिष्टा ( सं० स्त्री० ) वनजाता अरिष्टेव । वनहरिद्रा,  
 जंगली हल्दी ।  
 वनार्थक ( सं० पु० ) वनस्य अर्थक इव नियतपुष्पचारि-  
 त्वात् तथात्वं । पुष्पजीवी, वह जो माला बना कर  
 अपनी जीविका चलाता है ।  
 वनार्द्रक ( सं० पु० ) वनोद्भव आर्द्रकः । जंगली अर्द-  
 रक ।  
 वनार्द्रका ( सं० स्त्री० ) वनार्द्रक, जंगली अर्दरक ।  
 वनालक ( सं० स्त्री० ) गैरिक, गेरू ।  
 वनालय ( सं० पु० ) वनके बीचका रहनेका घर ।  
 वनालयजीविन ( सं० पु० ) वह जो जंगली द्रव्य द्वारा  
 अपनी जीविका चलाता हो ।  
 वनालिका ( सं० स्त्री० ) वनं अलति भूयति अल-पबुल्  
 टाप् टापि अल इत्वं । हस्तिशुण्डी लता, हाथीसूँडी ।  
 वनाली ( सं० स्त्री० ) वनराजि, वनकी श्रेणी ।  
 वनाश्रम ( सं० पु० ) वनमेव आश्रमः । वनरूप आश्रम ।  
 वनाश्रमिन् ( सं० स्त्री० ) वनाश्रमः अस्त्यर्थे इनि । जिसने  
 वनाश्रय लिया है, वानप्रस्थ-धर्मावलम्बी ।  
 वनाश्रय ( सं० पु० ) वनमेव आश्रयो यन्प । १ द्रोणकाक,  
 डोम काँवा । ( त्रि० ) २ अरण्यश्रयो, जिसने वानप्रस्थ  
 लिया है ।  
 वनाश्रित ( सं० स्त्री० ) वानप्रस्थावारी, जिसने वान  
 प्रस्थ लिया है ।

इस धारणा प्रकृत नाम का पत्रा। यह उम बारी-  
की कूटने राजकुमार के बाहर निकली और पूर्वनिर्दिष्ट  
स्थान पर उभरे राजकुमार तथा बायोकी भावा। पापने  
वज्रसमीप गमनर स्थानमें पहुँच राजकुमारकी भाजा-  
मातृ मातृक एक जैनीके घर रज दिया। राजकुमार  
यहीं कुटने कलने लगे। रामान्त मरुदेशमें राजकुमार-  
की भवना राजा मान लिया। जब वनबाँकी रसवी  
बाहर गयी, तब यह बहुत निमित्त हुआ, लेकिन यह यह  
निमित्त ही कर कर ही क्या मरना था। मरुदेशमें  
वर्तमानमें राजकुमार उद्यमिंहका समिवेक किया  
और वनबाँ नाम कर दक्षिणकी ओर चला गया। नाग-  
पुरके भौमने उम्मीकी मरनाम है।

वनप्रजाकी (सं० खो०) वनहय वृक्षाकी वार्षिकी।  
पृथ्वी, वनमंडा।  
वनरोहि (सं० पु०) वनस्प प्रोहि। देवघाण्य, उषार।  
वननिम्बिका (सं० खो०) भारपनिम्बो, वनउंभी।  
वनद्वारी (सं० खो०) वनस्प द्वारीच रोमनरवात् मांस  
वराशय। १ वणिचपत्तु, वेपान। २ शारण्यवरादी,  
अंगली मादा मूषर।

वनद्वारण (सं० पु०) वनजाता द्वारणः। पयोद्वारण, वन  
शोड। वदवाँप—मिनद्वारण, वरय, वनरज्ज, वाप्य-  
द्वारण, वनज, अथेनद्वारण, वनरज्जुल। इसका गुण—  
रजय, वट्ट, उष्ण, हर्मि, सुनय और कृतादि दोषना तथा  
सर्व शक्यकारक।

वनद्वारण (सं० पु०) वनस्प अद्वारण इय, वदवाँपुनरवात्।  
मोक्षर, मोक्षर। पयोप—मूषर, सिद्धर, क्याद्वारणर,  
माक्षर, मोक्षर, वगद्वारण, वनद्वारण, वदवाँपु और  
इसमिषका। (भाष० १म भाग)

वनदीपन (सं० खो०) वनं जलं दीपयतीति मूष-जिप-  
न्तु। १ वय, वनज। (वि०) २ वनकी जोगा बढ़ायेपना।

वनधन (सं० पु०) वने वा अत्र लुचपुरः। १ वाप्यमाध्या,  
मधेविधाप। २ वज्र, वराण। ३ वाय, वाय।

वनधर (सं० पु०) वनधरका वन वा प्रकृत।

वनधु (सं० खो०) १ वनवासो, वनमें रहनेवाला। (पु०)  
२ वद। ३ व(० पु० ३३६) वनद्वारे।

वनसंयोग (सं० पु०) वनसंयोगी देवमूर्ति वनामके उद्देश  
में लक्ष्मीके लिये वनमें जाना।

वनम् (सं० खो०) वननाप सेत और वन।

वनम (सं० पु०) १ इच्छा। २ मानुषिक। ३ वय।

वनमदुट (सं० पु०) वनं मदुटो मादुल्यं वत्या। ममू।

वनमदु (सं० खो०) १ वनवासो। (पु०) २ वनपत्र,  
दायामि।

वनममू (सं० पु०) वनानां ममूः। १ भारपमंडित,  
वनरानि। पयोप—वरा, वाया। २ जलसमूह, जयकी  
देर।

वनसरोजिनो (सं० खो०) वनस्य सरोजिनो पश्चिमीय  
श्रीभाकरवात्। वनकापयो, जल्लो कषाय।

वनमाह्वय (सं० खो०) वरय उयोद्वी गता।

वनमधम (सं० पु०) मद्रके एक पुरज नाम।

वनस्प (सं० पु०) वने तिष्ठतीति स्था क। १ मूष।  
२ धानप्रस्थ। मूषकीके डिगुल, मद्रमादिपीके तिमूल  
और धानप्रस्थ गतिभीके चतुर्गुल जोग होता है। (वि०)  
३ वनवासो।

वनस्पयो (सं० खो०) वनमूमि, मरपयदेन, अङ्गु  
जमोन।

वनस्था (सं० खो०) वने तिष्ठतीति स्था-क-टाप्। मन्-  
रधमू, पौषलका पेड।

वनस्थान (सं० खो०) जलपद्मेद।

वनवेदकला (सं० खो०) हलद्वारो, छोटी वरादी।

वनवर्ति (सं० पु०) वनस्य वर्तिः। वारकवारिवात्।  
मुट्ट। १ पुण्यदीन फलवान मूष, यह पेड जियमें फल न  
हो केवल फल ही हो। जोग—मूषर, वद, पौषल भादि  
यट वर्तिक वृत्। २ वृत्तवाय, पेड। ३ नालोवृत्, वादवा  
पेड। ४ वटपूष, वरगद। ५ धृतपुष्पे एक वृत्त नाम।  
(भाष० ३३३३३) ६ धृतपुष्पे एक वृत्त नाम।

वनवर्तिवय (सं० पु०) जगतिच सुधीका ममू।

वनवर्तिवय (सं० पु०) यह जगत् जियके द्वारा यह  
जाना जाता है, कि पौषी और मूषी भादिके क्या क्या  
रज और वन वन जो जगति होतो हैं, उनके मिय  
मिय वनीको बनायट कीयो होतो है और वनम भादिके  
द्वारा वनम वनके लिये वीधे वा वृत्त वनम लोने है,  
वनवर्तिवय।

वनस्पतिसव ( सं० पु० ) एकाहमेद ।  
 वनस्रजू ( सं० स्त्री० ) वनपुष्पोद्भवा या स्त्रू । वनमाला ।  
 वनहृदयिन्दि ( सं० पु० ) नगरभेद ।  
 वनहरि ( सं० पु० ) सिंह ।  
 वनहरिद्रा ( सं० स्त्री० ) वनोद्भवा हरिद्रा, अरण्यहरिद्रा, जंगली हल्दी । महाराष्ट्र—साली; कोङ्कण—अडिचिशका, अरिसिन । तैलङ्ग—कस्तुरि पशुपु, अडिचिपसुपु; वन्दई—वनहल्द, कचोरा ; तामिल—कस्तुरि मञ्जल । संस्कृत पर्याय—शोली, शोलिका, वनारिष्टा । गुण—कटु, रुचि कर, तिक्त, दीपन और गोल्य ।  
 वनहास ( सं० पु० ) वनस्य हास इय प्रकाशकत्वात् । १ काग, काँस । २ कुन्दका फूल ।  
 वनहामक ( सं० पु० ) वनहास स्वार्थे कन् । काग, काँसा ।  
 वनहगली—कलकत्तेके उत्तर उपकण्ठस्थित एक प्रसिद्ध गण्डप्राम ।  
 वनहुताशन ( सं० पु० ) वनोद्भवः हुताशनः । वनानि ।  
 वनासु ( सं० पु० ) वनस्वायुः । शशक, खरगोश ।  
 वनासुक ( सं० पु० ) मुद्ग, मूँग ।  
 वनानि ( सं० पु० ) वनजात अग्नि, वनभाग ।  
 वनाचार्य—चन्द्रभरणहोरा नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता ।  
 वनाज ( सं० पु० ) वनस्य अजः । वनछाग, जंगली बकरा । पर्याय—इडिका, शिशुवाहक, घुष्टटङ्क ।  
 वनाटन ( सं० स्त्री० ) वने अटनं । वनस्रमण, जंगलमें घूमना ।  
 वनाट्ट ( सं० पु० ) चर्वण, नीची मण्डी ।  
 वनाश्रत ( सं० पु० ) वनस्य अश्रतः । वनप्राग, जंगली भूमि या मैदान ।  
 वनाश्रत ( सं० स्त्री० ) अश्रत् वनं । अपर वन, दूसरा जंगल ।  
 वनाश्रतराल ( सं० स्त्री० ) वनपार्श्व, जंगलके भास-पार्श्वका स्थान ।  
 वनापग ( सं० स्त्री० ) वनोद्भव नदी ।  
 वनाश्रितनी ( सं० स्त्री० ) जलपत्र ।  
 वनामिलाय ( सं० स्त्री० ) वनध्वंसकारी, जंगलको उजाड़ने-वाला ।

वनमल ( सं० पु० ) वनस्य आमलः आमलक इय । कृष्ण-पाकफल, काला करौंदा ।  
 वनाम्बिका ( सं० स्त्री० ) वक्षकन्या शक्तिमूर्त्तिभेद ।  
 वनाम्र ( सं० पु० ) वनस्य आम्र इय । कौशाम्र, कोसम नामक वृक्ष या उसका फल ।  
 वनायु ( सं० पु० ) १ एक प्राचीन देशका नाम । यहाँका घोड़ा अच्छा होता था । २ इस देशमें रहनेवाली जाति । ३ दानवविशेष । ( भारत १६।१३० ) ४ पुरुरवाके एक पुत्रका नाम ।  
 वनायुज ( सं० पु० ) वनायौ देशे जायते जन-ड । वनायु-देशोद्भव घोटक, वनायु देशका घोड़ा ।  
 वनारपुर—एक प्राचीन नगरका नाम ।

( भविष्य प्रदक्ष ० ५८।१७ )

वनारिष्टा ( सं० स्त्री० ) वनजाता अरिष्टेय । वनहरिद्रा, जंगली हल्दी ।  
 वनार्थक ( सं० पु० ) वनस्य अर्थक इय नियतपुण्यचारित्वात् तथात्वं । पुण्यजोयो, वह जो माला बना कर अपनी जीविका चलाता है ।  
 वनार्द्रक ( सं० पु० ) वनोद्भव आर्द्रकः । जंगली अर्द्रक ।  
 वनार्द्रका ( सं० स्त्री० ) वनार्द्रक, जंगली अर्द्रक ।  
 वनालक्त ( सं० स्त्री० ) गैरिक, गेरू ।  
 वनालय ( सं० पु० ) वनके बीचका रहनेका घर ।  
 वनालयजीविन ( सं० पु० ) वह जो जंगली द्रव्य द्वारा अपनी जीविका चलाता हो ।  
 वनालिका ( सं० स्त्री० ) वनं अत्रति भूयति अल-ण्डुल-टापु टापि अत इत्वं । हस्तिशुण्डो लता, हाथीखंडी ।  
 वनाली ( सं० स्त्री० ) वनराजि, वनकी श्रेणी ।  
 वनाश्रम ( सं० पु० ) वनमेव आश्रमः । वनरूप आश्रम ।  
 वनाश्रमिन् ( सं० स्त्री० ) वनाश्रमः अस्त्यर्थे इनि । जिसने वनाश्रय लिया है, वानप्रस्थ-धर्मावलम्बी ।  
 वनाश्रय ( सं० पु० ) वनमेव आश्रयो यस्य । १ द्रोणकाक, डोम काँसा । ( स्त्री० ) २ अरण्यश्रयो, जिसने वानप्रस्थ लिया है ।  
 वनाश्रित ( सं० स्त्री० ) वानप्रस्थाचारी, जिसने वान-प्रस्थ लिया है ।

पनाहर ( सं० पु० ) पनस्य आदिरा । कुहर, गुमा ।  
 पनि ( सं० पु० ) पन ( पनिक विम्वरवर्षात्पनिपनि प्रथिय  
 पनिकस्य । उच्यते १११६ ) इति इ । मनि, भाप ।  
 पनिका ( सं० स्त्री० ) कुत्रयत् ।  
 पनिकाशाय ( सं० पु० ) १ उपवन मध्यस्थ कुत्र ।  
 २ प्राचीन आमपिरोय ।  
 पनिक ( सं० लि० ) पन-कः । १ पागिल, मांगा हुआ ।  
 २ खेदित, खेया विषया हुआ ।  
 पनिका ( सं० स्त्री० ) पन-क-राप् । १ मिषा, अनुसुक्ता स्त्री,  
 प्रियतमा । २ स्त्री, सौम्य । ३ छःपर्णीकी एक वृत्ति । इसमें  
 'निकर' शीत 'निका' शीत बद्धि हैं । इसमें दो मरण  
 होते हैं ।  
 पनिकाश्विन् ( सं० पु० ) स्त्रीशेषी, यह जो स्त्रीसे इष्यां  
 करता हो ।  
 पनिकाशोत्रिन् ( सं० पु० ) १ संपन्न कूरा स्त्री ।  
 २ भागवतया ।  
 पनिकामुष् ( सं० पु० ) १ पुत्रपानुमात्र मनुष्योकी एक  
 जाति । ( मार्क० पु० १८ १- ) ( स्त्री० ) २ स्त्री-मुसामण्डल ।  
 पनिकाविलाम ( सं० पु० ) १ शिवीकी भोग करनेकी  
 इच्छा । २ स्त्री-सम्भोग करनेकी इच्छा ।  
 पनिकास ( सं० स्त्री० ) प्राचीन रोगभेद ।  
 पनिकृ ( सं० लि० ) १ पापक, मागिनेवाला । २ अपिकारो ।  
 पनिकृ ( सं० पु० ) पन माध्ववर्षेमास्त्वस्येति पन इति ।  
 पानस्य ।  
 पनिक ( सं० स्त्री० ) १ पनजात पनामा आदि । ( लि० )  
 २ पारिदासाकारो, जल देनेवाला । ३ पनपारो, जङ्गलमें  
 रहनेवाला । ४ पनोदुग्ध, पनका । ५ इच्छाशील, इच्छा  
 करनेवाला । ६ पूजा या स्तुति करनेवाला ।  
 पनिकृ ( सं० लि० ) दानुपम, बड़ा भावो दाता ।  
 पनिकृ ( सं० पु० ) पन-पनुकी मति, सद्यपिराम्य ।  
 पनिकृ ( सं० पु० ) सवाल, गुदा ।  
 पनाक ( सं० स्त्री० ) पनकको, छोटा पन ।  
 पनाक ( सं० लि० ) पापक, मागिनेवाला ।  
 पनाप ( सं० लि० ) पनि पापमागिच्छतीति पनपु  
 क्तुत् । पापक, मागिनेवाला ।  
 पनाप ( सं० लि० ) पन देवपुत्र । अतिशय पापक,  
 मागिनेवाला ।

पनोपन् ( सं० लि० ) पननपिदिष्ट, इच्छा करनेवाला  
 पनोपादन ( सं० स्त्री० ) इतस्ततः सञ्चालन वा स  
 परिचर्यो, एक स्थानमें दूसरे स्थान पर लाना ।  
 पनु ( सं० पु० ) हिंसा ।  
 पनुप् ( सं० लि० ) १ हिंसक, मारनेवाला । २ संचाल  
 पने-किंशुक ( सं० पु० ) पने किंशुक इव । सर्पा  
 प्रात, यह पन्तु जो रीमे हो बिना मांगि सिने रीमे प  
 किंशुक बिना मांगि वा प्रवास क्रिये मितता है ।  
 पने-क्षत्र ( सं० स्त्री० ) पनक्षुद्रा मलुकु समासः । क  
 ( सप्तम्या )  
 पने-चर ( सं० लि० ) पने चरतीति चर इति च, मनु  
 हुनोश्च लुकु । मरपचारा, पनमें फिरनेवाला मनु  
 जंगली आदमी ।  
 पनेजा ( सं० पु० ) पने इत्याः । १ यज्ञसाल, क  
 २ पर्यटक, पाषण्डा ।  
 पनेवन्धक ( सं० पु० ) यह पन्तु जो रीमे हो बिना म  
 मितता है ।  
 पनेपु ( सं० पु० ) रीद्राभ्रके एक पुत्रका नाम ।  
 ( भागवत ६.३.८ )  
 पनेराज ( सं० स्त्री० ) पने राजते राज किय, मनुकृ गमन  
 शायामन्त्री तरह जंगलमें विराजमान । "तेहिहा प  
 रनिर्भेराट्" ( मूक ६।१२।२ ) पनेराट् ( प  
 राजमापा' ( पाषण्ड )  
 पनेरहा ( सं० स्त्री० ) निपणी कल्प, तिजकल्प ।  
 पनेराय ( सं० लि० ) पनपामो ।  
 पनेराउठो ( सं० पु० ) पने मरठो इव । भयन दृष्ट ।  
 पनेरदेन ( सं० पु  
 पनोत्तम ( सं०  
 इति उच्यते  
 आदि क  
 दाग  
 ( सं  
 ( -  
 इ प

वनोद्देश (सं० पु०) १ वनसमीप, जंगलके पासका स्थान ।

२ वनके बीचका स्थान ।

वनोद्भव (सं० लि०) वने उद्भवो यस्य । १ वन्यतिल, जंगली तिल । २ शृगालकोला, कर्कशु । ३ वनशूरण, जंगली ओल । ४ वनवीजपूरक, जंगली विजौरा नीबू ।

वनोद्भवा (सं० स्त्री०) १ वनकार्पासी, जंगली कपास ।

२ काष्ठमहिषा । ३ मुद्गरपर्णी, मुगानी ।

वनोपहृत्य (सं० स्त्री०) १ वनदहन । २ दावानल ।

वनोर्वी (सं० स्त्री०) वनके समीपका स्थान ।

वनीकस् (सं० पु०) वनमेव शोको गृहं यस्य । १ वानर, वन्दर । २ शुक्रशिम्बी, केवाँच । (लि०) ३ वनवासी, वह जिसका घर वनमें हो ।

वनीय (सं० पु०) १ वनसमूह । २ भारतके पश्चिम-दिक्कष एक पर्वत शीर उसके पासका जनपद ।

वनीपथ (सं० स्त्री०) वनकी ओपधियां, जंगली जड़ी बूटी पथि (सं० लि०) वन-संभकी तृच । संभक्ता ।

वन्धलि (वामनस्थली)—वन्धुप्रदेशके सीराष्ट्र-प्रान्तस्थ एक प्राचीन नगर । यह अक्षा० २१° २८' उ० तथा देशा० ७०° २२' पू०के मध्य अवस्थित है । जूनागढ़से यह ४१० कौस दक्षिण-पश्चिम पड़ता है । स्थानीय प्रवाद है, कि भगवान् नारायण वामनरूपमें इस नगरमें अवतीर्ण हुए थे । उन्हींके नामानुसार पीछे यह स्थान वामनस्थली कहलाने लगा । यहाँ लोहे और ताँबेके वरतन बनानेका जोरों कारवार चलता है ।

वन्दक (सं० लि०) वन्दते इति वन्द-ण्युल् । वन्दनाकारी, स्तुति करनेवाला ।

वन्दका (सं० स्त्री०) वन्दक-टाप् । वन्दा ।

वन्द्य (सं० पु०) वन्दते स्तौति वन्द्यते स्तूयते इति वा अथ (वन्दशील शक्तिवामिनश्चिजोवि प्राण्यम्बोऽय ) । १ स्तोता, स्तुति करनेवाला । २ स्तूय्य, स्तव या स्तुतिके योग्य ।

वन्दन (सं० स्त्री०) वन्दतेऽनेनेति वन्द-करणे ल्युट् ।

१ वन्दन । वन्द भावे ल्युट् । २ प्रणाम, स्तुति ।

हरिमक्तिविलासमें १६ प्रकारकी भक्ति बतलाई है, उनमेंसे वन्दन एक है । भक्तोंकी चाहिये, कि वे भव

वन्दन काटनेके लिये भगवान्में १६ प्रकारकी भक्ति दिखलायें ।

“आयन्तु वैष्णव” प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कनं ह्येः ।

धारण्यद्वाध्वं पुण्यद्रायां तन्मन्त्रायां परिमहः ॥

अर्चनैश्च जगो ध्यानं तन्नामस्मरणं तथा ।

कोत्तनं भवण्यश्चैव वन्दनं पारसेवनं ॥

तत्प्रादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनं ।

तदीयानाञ्च संसेवा द्वादशोपवृत्तिभिरता ॥

तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिण्यः ।

भक्तिः पादशया प्रोक्ता भववन्धविमुक्तये ॥”

(हरिमक्तिवि० ११ वि०)

देवपूजामें पौडशोपचारके मध्य यह अन्तिम उपचार है । देवताकी पौडशोपचार द्वारा पूजा करनेमें शेषमें वन्दन करना होता है ।

हरिमक्तिविलासमें वन्दनका विषय इस प्रकार लिखा है । भगवान्का स्तुतिपाठ करके वन्दन करनेका विधान है । दोनों हाथसे भगवान्के दोनों चरण पकड़ कर शिरकी झुका कर वन्दना करे कि, 'हे ईश ! मृत्युके आक्रमण-रूप समुद्रसे त्वत् और आपके आश्रित हूँ, मुझे परित्याग कीजिये ।

इसके सिवा दोनों बाहु, दोनों चरण, वक्ष, शिर, दृष्टि, मन और यजन इन अष्टाङ्ग द्वारा वन्दन करना होता है । दोनों घुटने, दोनों बाहु, शिर, वचन और बुद्धि इन पञ्चाङ्ग द्वारा भी वन्दन किया जाता है । यह वन्दन निखिल यज्ञमें प्रधान है । एकमात्र वन्दन द्वारा मन विशुद्ध हो कर हरिके दर्शन हो सकते हैं । वन्दन-कालमें भक्तोंके शरीरमें जितनी धूलिकण रहेंगे, उतने मग्नतर उनका स्वर्गमें वास होगा । जो व्यक्ति असंख्य पाप करके अज्ञानमें मुग्ध रहता है, वह यदि भक्तिपूर्वक हरिकी वन्दना करे, तो उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । अतएव देव-वन्दन पापनाशक और स्वर्गजनक है । देवप्रतिमाकी देवनेसे ही वन्दन करना होता है । अज्ञानवशात् यदि देववन्दन न करे, तो उसे नरकमें जाना पड़ता है ।

(हरिमक्तिवि० ८वि०) प्रणाम और नमस्कार रुद्र देखो ।

३ शरीर पर बनाये हुए तिलक आदि चिह्न । ४ वंदाक,



लिखा है, कि श्राद्धके वाद वन्दिनीको यथाशक्ति दान देना उचित है। कहनेका तात्पर्य यह कि श्राद्धके पहले इनके लिये भोज्यादि उत्सर्ग करके श्राद्धके वाद इन्हें वह सब वस्तु देवे।

वन्दिनीका ( सं० खी० ) एक द्वाक्षायणीका नाम।

वन्दिपाठ ( सं० पु० ) मट्टवशिष्योका मोत वा वंशकीर्ति-वर्णना।

वन्दिमिश्र—वालचिकित्साके रचयिता।

वन्दिवास ( वन्दिवासु )—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत एक उपविभाग या तालुक। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील है। यह स्थान शस्यशाली नहीं है। समतल प्रान्तमें परिध्यात होने पर भी यहाँ की अधिकांश मिट्टी बालुका तथा कंकड़ोंसे परिपूर्ण है। बीच बीचमें लाल अधया कृष्णवर्ण भूमिखण्ड देखा जाता है। किन्तु यह क्षार-मिश्रित होनेके कारण शस्योत्पादनके उपयोगी नहीं होता। इस उपविभागमें दो एक उन्नत शिखरवाला पर्वत भी दृण्डायमान हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२' ३०' ३०" तथा देशा० ७६' ३८' पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान इतिहासमें प्रसिद्ध है। विगत कर्णाटक-युद्धके समय इस स्थानमें भी युद्ध हुआ था। आर्कटके नवाब-वंशके आत्मीय एक मुसलमान सामन्त वन्दिवासदुर्गके अधिनायक थे। १७५२ ई०में अंग्रेज-सेनापति मेजर लारेन्सने वन्दिवास पर आक्रमण किया था। तदनन्तर १७५७ ई०में कप्तान आल्डरकीम नगरको जला कर भी दुर्ग पर अधिकार न कर सके। तत्काल ही दुर्गके मध्य अवस्थित फरासी सेनाने अंग्रेजोंको भगा दिया। १७५६ ई०में मनसोतने अत्यन्त तीव्रगतिसे दुर्ग पर आक्रमण किया तो सही, किन्तु दुर्ग विजय करनेसे असमर्थ हो अपनी सेना ले कर प्रत्यावृत्त हुए। इसी समय दुर्गस्थ फरासी सेनादल चिद्रीही हो उठा। अंग्रेज-सेनापति आयरकूटने सुअवसर पा कर दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्गवासि-गणने कुछ दिन अवरोध करनेके बाद अंग्रेजोंकी आत्म-समर्पण किया। फरासियोंके मुखप्रास हस्तच्युत देन कर १७६० ई०के पहले सेनापति लाली अपने दलबलके साथ दुर्गके सामने भा उपस्थित हुए। देखने-देखते दो दिन-

के मध्य ही लगभग ३ हजार मराठी सेनाके साथ घुगी-रणक्षेत्रमें भा डटे। फरासी सेनाने दुर्गको घेर लिया। निरुपाय हो कर सर आयरकूटने एक दिन दुर्गका द्वार उन्मोचन करके सशस्त्र सेनाके साथ दुर्गमें प्रवेश किया। दोनों दलमें घोरतर संग्राम हुआ, अन्तमें फरासीगण पराजित हुए। युयो अंग्रेजोंके हाथ बन्दो हुए। फरासियोंके साथ अंग्रेजोंकी भारतवर्षमें और कभी ऐसी लड़ाई नहीं हुई। १७८० ई०से ले कर प्रायः तीन वर्ष तक लेफ्टीनेन्ट फिलटन अत्यन्त कौशलके साथ महिसुरगति हैदर भलीकी, चट्टाईयोंसे इस दुर्गकी रक्षा की थी। हैदराबाद पर आक्रमण करनेके समयमें सेनापति आयरकूटने उन्हे दो लड़ाईयोंमें सहायता दी थी एवं दूसरो दूनरा लड़ाईमें उन्हींने अत्यन्त दक्षताके साथ अपनी सेनाकी रक्षा करने हुए शत्रु दलको मार भगाया था।

वन्दो ( सं० ख्या० ) वन्दि 'कुदिकारादकिनः' इति उोप्। वन्दा, स्तुतिपाठक।

वन्दीक ( सं० पु० ) इन्द्र।

वन्दीकार ( सं० पु० ) वन्दोवत् वृष्टिर्घ्नं करोतीति क्व अण्।

वन्दिप्राह, डकैत। पर्याय—माचल, प्रसह्यधीर, चिह्नभ।

वन्दोक्त ( सं० त्रि० ) कारावन्द, जो कैदमें बन्द हो।

वन्दोजन ( सं० पु० ) राजाओं आदिका यश वर्णन करने-वाला एक प्राचीन जाति।

वन्दोपाल ( सं० पु० ) कारारक्षा (Jailer)।

वन्द्य ( सं० त्रि० ) वन्द्यते स्तुयते इति यद्वि-पयत्। वन्द-नीय, वन्दना करने योग्य।

वन्द्यता ( सं० स्त्री० ) वन्द्यस्य भावः तल्-टाप्। वन्द्यत्, वन्द्यका भाव या धर्म।

वन्द्या ( सं० स्त्री० ) १ वन्द, पौदा। २ गोरोचना।

वन्द्य ( सं० त्रि० ) वन्दते स्तीति देवादीन् पूजाकाले इति वन्दि टक्। पूजक।

वन्धुर ( सं० स्त्री० ) १ रथया गाड़ीका आश्रय जिसमें दोनों हस्ते और घुटा प्रधान है। २ गाड़ीमेंका वह स्थान जहाँ सारथी या गाड़ीवान बैठ कर उसे चलाता है। सायणाचार्यने वेदमार्थमें इसका अर्थ यो किया है,— 'नीह- वन्द्यनाघातभूकृतम्, उग्रनानतरूपवन्धनकाष्ठम्,





लिखा है, कि 'श्राद्धके बाद वन्दियोंकी यथाशक्ति दान देना उचित है। कहनेका तात्पर्य यह कि श्राद्धके पहले इनके लिये भोज्यादि उदरार्ग करके श्राद्धके बाद इन्हें वह सब वस्तु देवे'।

वन्दिनीका ( सं० खी० ) एक दाक्षायणीका नाम।

वन्दिपाठ ( सं० पु० ) मट्टव'शियोंका गीत वा वंशकीर्ति-वर्णना।

वन्दिमिश्र—घाटचिकित्साके रचयिता।

वन्दिवास ( वन्दिवासु )—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत एक उपविभाग या तालुक। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील है। यह स्थान शस्यशाली नहीं है। समतल प्रान्तमें परिष्याप्त होने पर भी वहां की भूमिक्रींश मिट्टी बालुका तथा कंकड़ोंसे परिपूर्ण है। बीच बीचमें लाल भववा कृष्णवर्ण भूमिलखण्ड देखा जाता है। किन्तु यह क्षार-मिश्रित होनेके कारण शस्योत्पादनके उपयोगी नहीं होता। इस उपविभागमें दो एक उन्नत शिखरवाला पर्यंत भी वृण्डायमान है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२' ३०' ०" तथा देशा० ७६' ३८' ०" के मध्य अवस्थित है। यह स्थान इतिहासमें प्रसिद्ध है। विगत कर्णटक-युद्धके समय इस स्थानमें भी युद्ध हुआ था। आर्कटके नवाब-वंशके आत्मीय एक मुसलमान सामन्त वन्दिवासदुर्गके अधिनायक थे। १७५२ ई०में अंग्रेज-सेनापति मेजर लारिंसने वन्दिवास पर आक्रमण किया था। तदनन्तर १७५७ ई०में कप्तान आल्डरकोम नगरको जला कर भी दुर्ग पर अधिकार न कर सके। तत्काल ही दुर्गके मध्य अवस्थित फरासी सेनाने अंग्रेजोंको भगा दिया। १७५६ ई०में मनसोतने अत्यन्त तीव्रगतिसे दुर्ग पर आक्रमण किया तो नहीं, किन्तु दुर्ग विजय करनेसे असमर्थ हो अपनी सेना ले कर प्रयापृत हुए। इसी समय दुर्गस्थ फरासी सेनादल विद्रोही हो उठा। अंगरेज सेनापति आयरकूटने सुभयसर पा कर दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्गवासि-गणने कुछ दिन अवरोध करनेके बाद अंगरेजोंकी आत्म-समर्पण किया। फरासियोंके मुखप्रास हस्तच्युत देख कर १७६० ई०के पहले सेनापति लाली अपने दलबलके साथ दुर्गके सामने आ उपस्थित हुए। देखने देखते दो दिन-

के मध्य ही लगभग ३ हजार मराठी सेनाके साथ घुशी-रणक्षेत्रमें आ डटे। फरासी सेनाने दुर्गको घेर लिया। निरुपाय हो कर सर आयरकूटने एक दिन दुर्गका द्वार उन्मोचन करके सशस्त्र सेनाके साथ दुर्गमें प्रवेश किया। दोनों दलमें घोरतर संग्राम हुआ; अन्तमें फरासीगण पराजित हुए। घुशी अंगरेजोंके हाथ बन्दो हुए। फरासियोंके साथ अंग्रेजोंकी भारतवर्षमें और कमी ऐसी लड़ाई नहीं हुई। १७८० ई०से ले कर प्रायः तीन वर्ष तक लेफ्टीनेन्ट पिलटने अत्यन्त कौशलके साथ महिसुरगति हैदर अलीको, लडाइयोंसे इस दुर्गकी रक्षा की थी। हैदराबाद पर आक्रमण करनेके समयमें सेनापति आयरकूटने उन्हें दो लडाइयोंमें सहायता दी थी पर्यंत दूतारो दूमर लडाइयोंमें उन्होंने अत्यन्त दक्षताके साथ अपनी सेनाकी रक्षा करने हुए शत्रु दलको मार भगाया था।

वन्द्य ( सं० खी० ) वन्दि 'कुदिकारात्किना' इति डोय्।

वन्द्या, स्तुतिपाठक।

वन्दीक ( सं० पु० ) इन्द्र।

वन्द्योकार ( सं० पु० ) वन्द्योवत् रुद्रइत्यं करोतीति कृ अण्।

वन्दिप्राह, डकीन। पर्याय—माचल, प्रसह्यचौर, चिह्लाम।

वन्द्योक्त ( सं० त्रि० ) कारावयद्ध, जो कीदमें बन्द हो।

वन्द्योजन ( सं० पु० ) राजाओं आदिका यश वर्णन करने-वाला एक प्राचीन जाति।

वन्द्योपाल ( सं० पु० ) कारारक्षा (Jailor)।

वन्द्य ( सं० त्रि० ) वन्द्यते स्तुयते इति वदि-पयत्। वन्द्य-नीय, वन्दना करने योग्य।

वन्द्यता ( सं० खी० ) वन्द्यस्य भावः तल्-टाप्। वन्द्यत्व, वन्द्यका भाव या धर्म।

वन्द्या ( सं० खी० ) १ वन्द्य, पौंदा। २ गोरोचना।

वन्द्य ( सं० त्रि० ) वन्द्यते स्तीति देवादीन् पूजाकाले इति वन्दि टक्। पूजक।

वन्द्युर ( सं० ड्डी० ) १ रथ या गाड़ीका आश्रय जिसमें दोनों हरसे और घुटा प्रधान है। २ गाड़ीमेंका यह स्थान जहां सारथी या गाड़ीवान बैठ कर उसे चलाता है। सायणाचार्यने वेदभाष्यमें इसका अर्थ यों किया है;— 'नीह्... वन्द्यनाघातभूकतम्, उन्नतानतरूपव्यवधानकाग्रम्,



१ छिद्र, छेद । २ चरयी, मेद । ३ बलमोकि, बाँवो ।  
वपाटिका ( सं० स्त्री० ) अक्षपाटिका, एक रोग । इसमें  
लिङ्गको आच्छादन करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता  
है ।

वपायत् ( सं० त्रि० ) वपा-अस्त्यर्थे मनुप् मस्य च ।  
प्रयुक्त, मोटा ताजा ।

वपायह ( सं० स्त्री० ) मेदस्थान रूप कोछाङ्ग ।  
( चरकयोग ७ अ० )

वपिल ( सं० पु० ) वपति वीजमिति वप-इलच् । पिता,  
बाप ।

वपु ( सं० पु० ) वपुस् देखो ।

वपुन ( सं० पु० ) वप-उनच् या वयुन पृषोदरादित्यात्  
यन्त्य पः । देवता ।

वपुनन्दन—एक प्राचीन कवि ।

वपुर्धर ( सं० त्रि० ) धरनीति घृ-अच्, वपुसो धरः । देह-  
धारी ।

वपुया ( सं० स्त्री० ) हनुया ।

वपुष्टमा ( सं० स्त्री० ) १ प्रचारिणी लता । ( जटाधर )

२ रूप । ( शृक् ३।२।१५ ) ३ कागोराजकी कन्या । परी-  
क्षित्के पुत्र जनमेजयसे इनका विवाह हुआ था । हरि-  
षंगमें लिखा है, कि राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञका

अनुष्ठान कर अश्वमेध किया । वपुष्टमा उस मरे घोड़े-  
के पास बैठी हुई थी । देवराज उस राजमहिषीको

सर्वाङ्गसुन्दरो देख कर मोहित हो गये और घोड़ेके  
शरीरमें प्रवेश कर उसके साथ संभोग किया । जनमे-  
जयने घोड़ेको जीवित देख ऋत्विगोंको इसका कारण

पूछा । उन्होंने इन्द्रकी दुरभिसन्धिको बात कह दी ।  
इस पर जनमेजय बहुत विगड़े और इन्द्रको शाप दिया

कि, 'तुमने भारी दुःकर्म किया है, इसलिए आजसे कोई  
भी अश्वमेध-यज्ञमें तुम्हारी अर्चना न करेगा ।' पीछे

ऋत्विगोंको असायधानीसे ऐसी घटना घटी है, समझ  
कर उन्हें देगसे निकाल मगाया । इसके बाद वे वपु-

ष्टमाको फटकार रहे थे, इसी समय विश्वावसु नामक  
गन्धर्वराज यहाँ पहुँचे और राजासे कहने लगे, 'राजन् !

आप तीन सौ अश्वमेध-यज्ञ कर चुके हैं, इस कारण इन्द्र-  
ने अपने इन्द्रत्वलोपकी आशङ्कासे रम्भा नामक अप्सरा-

को भेजा था । उसी रम्भाने काशराजदुहित्री रूपमें  
जन्म ग्रहण किया है । यह वपुष्टमा ही रम्भा नामकी

अप्सरा है । इन्द्र इसी छलसे अपना कार्य सिद्ध कर  
चले गये हैं, आप इसके लिये दुःखित न होंगे ।' काल

ही इसका एकमात्र कारण है । ऋत्विगोंका आपने जो  
अपमान किया, उससे आपका पुण्यक्षय हुआ । इन्द्रके

जो आपका भय था, वह भी जाता रहा, इसलिए आप  
वपुष्टमाको वृथा तिरस्कार न करें । आप इसे पुनः

ग्रहण करें, कोई दोष न होगा ।' विश्वावसुके कहनेसे  
राजा जनमेजयने वपुष्टमाको फिरसे ग्रहण किया ।

( हरिवंश १६२-१६६ अ० )

वपुष्मत् ( सं० त्रि० ) वपुष् प्रगस्तार्थे मनुप् । १ प्रगस्त  
शरीरो, उत्तम शरीरवाला । ( पु० ) २ शाक द्वीपवति ।

वपुष्य ( सं० त्रि० ) वपुस्-हितार्थे यत् । शरीरको मलाई  
करनेवाला ।

वपुस् ( सं० स्त्री० ) उप्यन्ते देहान्तरभोगसाधन घोजी-  
भूतानि कर्माण्यन्तेति वप् ( अस्ति-पू-वपि यनीति । उष्य-

२।१।१८ ) इति उस्ति । १ शरीर, देह । २ प्रगस्ताकृति,  
मनोहररूप । ३ अंश, भाग । ( स्त्री० ) ४ सनामप्यवात

दक्षको कन्या । यह भर्भराजकी पत्नी थी ।  
( मार्कण्डेयपु० ५०।२१ )

वपुष्कर्ष ( सं० त्रि० ) शारोिक सौन्दर्य ।

वपुष्त्रय ( सं० पु० ) वपुषः शरीरात् स्रवः क्षरणं यस्य ।  
शरीरस्थित रसधातु ।

वपुस्सात् ( सं० अ० ) शरीरके आकारमें ।

वपोदर ( सं० त्रि० ) पोषरोदर, तौद ।

वपुष्य ( सं० त्रि० ) वप-तण्य । वपनीय, बोने लायक ।  
परस्त्रीमें वीज वपन नहीं करना चाहिये ।

वसा ( द्वि० पु० ) वप्त् देखो ।

वप्त् ( सं० पु० ) वपति वीजमिति वप-वृच् । १ जनक,  
पिता । २ कधि । ३ नापित, नाई । ( शृक् १।१४।२।४ )

( त्रि० ) ४ वापक, वीज बोनेवाला । ५ कर्षक, जोतने-  
वाला ।

वप्प ( सं० पु० ) १ पिता । २ पूज्य देवगुरुजन प्रभृति ।  
३ मेवाडके राजाओंके पुर्वपुरुष । मेवाड़ देखो ।

वप्पटदेवी ( सं० स्त्री० ) राजमहिषीभेद ।

येदितं सारथेः स्थानम् यद्वा सारथ्याध्रयस्थानम् ।

वर्णमं देली ।

चन्द्रस्य ( सं० लि० ) स्थानमे उपविष्ट । रथाकट, रथ पर घैटा हुआ ।

चन्द्रस्य ( सं० लि० ) चन्द्रस्युक्त ।

चन्द्रस्य ( सं० लि० ) रथोपविष्ट, रथ पर घैटा हुआ ।

( १३३ ) । ( शुक ३ ४३१ )

चन्द्र—चन्द्र-प्रदेशके भालावर प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त-राज्य । यह तोन ग्राम ले कर बना है । भूपरिमाण २४ वर्ग-मील है । यहांके अधिपानी अभी छाः अंजोमं विमल हो गये हैं । कुल राजस्य २२३१०१) २० हैं जिनमें अङ्गरेतराज को वाषिक २७१५) २० और जूनागढ़के नयावको २७७) २० कर्ममें देने पड़ते हैं ।

चन्द्र ( सं० लि० ) चने भव, चन-यत् । १ चनोद्भूत, चनमें उत्पन्न होनेवाला । २ आरण्य, जङ्गली । ( ह्यो० ) ३ त्यच्, दारवीनो । ४ कुटन्नट, नागरमोघा । ५ चनश्रावण, जङ्गली जिमोचन्द । ६ द्यारोचिक । ७ देवनल । ८ क्षीरविदारो । ९ जङ्ग । १० लताशाल ।

चन्द्रा ( सं० स्त्री० ) चनोपोदकी, जङ्गली कलावी साग । चन्द्रोरक ( सं० स्त्री० ) चनज कटु, जीरक, चनजीरा । चन्द्रमन ( सं० स्त्री० ) चनज दमनसुख जङ्गली घीनेका फूल । इसे महाराष्ट्रमें राणद्वयणा और कलिङ्गमें काशवण कहते हैं । इसका गुण घोषस्तम्भक, बलप्रद और आमदोष-नाशकमाना गया है ।

चन्द्रोप ( सं० पु० ) चन्द्रस्तो, जङ्गली हाथी ।

चन्द्रोप ( सं० स्त्री० ) गोवार, पमही या तिनोके चावल ।

चन्द्रोप ( सं० पु० ) चनजात पक्षी, यह चिड़िया जो

म्वच्छन्पूर्वक चनमें विहार करती है ।

चन्द्रोप ( सं० पु० ) १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़ ।

१ जङ्गली पेड़ ।

चन्द्रोप ( सं० स्त्री० ) चन्द्रोपजीविका । अरण्यवासिका

जीवोपाय ।

चन्द्रोप ( सं० स्त्री० ) चोन्मिष्टो ।

चन्द्रा ( सं० स्त्री० ) चनानामरण्यानां इत्यानां वा संहतिः

चन्द्र ( पागादिभ्योऽङ् । वा ४।२।४६ ) इति ष टाप् । १ चन

समुह, चनसंहति । २ मुद्रणर्णी । ३ गोपालककंठी, स्थान-

ककडो । ४ गुञ्जा । ५ मिथेया, सोंक । ६ मद्रमुस्ता, मद्र-मोघा । ७ गन्धपत्रा । ८ अश्वगन्धा, असगन्ध । ९ अश्व-प्लाषन, जलसंहति । १० पिण्डराजूर । ११ चन्द्रद्विद्रा, जङ्गली हल्दी । १२ मेथिका, मेघो ।

चन्द्राग्न ( सं० लि० ) चन्द्रकलागी, जङ्गली फल खाये-वाला ।

चन्द्राश्रम ( सं० पु० ) चनाश्रम ।

चन्द्रेतर ( सं० लि० ) १ शृङ्गपालित, पालतू । २ शिक्षित । ३ सम्प ।

चन्द्रोपोदकी ( सं० स्त्री० ) चन्द्रा चनोद्भवा उपोदकी । लताविशेष । पर्याय—चनजा, चनसाङ्गवा । गुण—तिक, कटु, उष्ण, रोचन ।

चन्द्र ( सं० पु० ) चनति भागमर्हति चनसंभक्ती ( शृङ्गेन्द्रा-प्रवर्षति । उष्ण २।२८ ) इति रन् प्रत्ययः । अंजी, हिस्से-दार ।

चन्द्र ( सं० पु० ) चन्द्र घ । १ केजमुएदन, बाल मुइना । २ योजयपन, बीया बीना ।

चन्द्र ( सं० स्त्री० ) चन्द्र-भावे ल्युट् । १ केजमुएदन, मिर मुइना । २ योजाधान, बीज बीना ।

बीजवपन ज्योतिषोक्त दिन देख कर करना चाहिये । कुदिनमें करनेसे कोई फल नहीं होता । पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा और भाद्रा मित्र नक्षत्रोंमें ; चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी और अमावस्या तिथिमें ; शुभप्रदके केन्द्रस्थ होनेमें ; सिधलम्न या जगलम्न और मियुन, तुला, कर्षा, कुम्भ, और चतुर्नलके पूर्वाभागेमें बीजवपन करनेसे शुभ होगा है ।

चन्द्रो ( सं० स्त्री० ) उच्यते मन्त्रकादिकम्भामिति यत्-अधिकरणे ल्युट् लोप् । १ नापितशाला, यह स्थान जहाँ दृज्जान पैठ कर दृज्जामत बनाते हैं । २ तन्तुवावजाला, यह स्थान जहाँ लुलाहे कपड़ा बुनते हैं । ३ दरकी ।

चन्द्रोप ( सं० लि० ) चन्द्रोपवत् । १ चन्द्रोपवत्, बीने-लावक । २ निषेकरोप, घोषेवात् । आयुःकामो व्यक्तिको चाहिये, कि धे कमी गो परन्तोमें बीजवपन न करे ।

चन्द्र ( सं० पु० ) केजराज ।

चन्द्रा ( सं० स्त्री० ) उच्येदं कि यत् मिश्रावत्, टाप् ।

१ छिद्र, छेद । २ चरबी, मेद । ३ बलमोकि, बाँबी ।  
वपाटिका ( सं० स्त्री० ) अथवाटिका, एक रोग । इसमें  
लिङ्गको आच्छादन करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता  
है ।

वपावत् ( सं० लि० ) वपा-अस्त्यर्थे मत्तुप् मस्य वः ।  
प्रवृद्ध, मोटा ताजा ।

वपावह ( सं० क्ली० ) मेदस्थान रूप कोछाङ्ग ।  
( चरकयोग ७ अ० )

वपिल ( सं० पु० ) वपति वीजमिति वप-इलच् । पिता,  
बाप ।

वपु ( सं० पु० ) वपुस् देखो ।  
वपुन ( सं० पु० ) वप-उनच् या वयुन पृषोदरादित्वात्  
यन्व्य पः । देवता ।

वपुनन्दन—एक प्राचीन कवि ।  
वपुर्धर ( सं० लि० ) धरतीति धृ-अच्, वपुसो धरः । देह-  
धारी ।

वपुषा ( सं० स्त्री० ) हनुषा ।  
वपुष्टमा ( सं० स्त्री० ) १ प्रचारिणी लता । ( जटाधर )  
२ रूप । ( शृक् ३।२।१५ ) ३ कागोराजकी कन्या । परी-  
क्षित्के पुत्र जनमेजयसे इनका विवाह हुआ था । हरि-  
चं'गमें लिखा है, कि राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञका  
अनुष्ठान कर अश्वमेध क्रिया । वपुष्टमा उस मरे घोड़े-

के पास बैठी हुई थी । देवराज उस राजमहिषीको  
सर्वाङ्गसुन्दरी देख कर मोहित हो गये और घोड़े के  
शरीरमें प्रवेश कर उसके साथ संभोग किया । जनमे-  
जयने घोड़ेको जोवित देख ऋत्विकोंको इसका कारण  
पूछा । उन्होंने इन्द्रकी दुरभिसन्धिकी बात कह दी ।  
इस पर जनमेजय बहुत विगड़े और इन्द्रको शाप दिया  
कि, 'तुमने भारी दुष्कर्म किया है, इसलिये आजसे कोई  
भी अश्वमेध-यज्ञमें तुम्हारी अर्चना न करेगा ।' पीछे  
ऋत्विकोंको असावधानीसे ऐसे घटना घटी है, समझ  
कर उन्हें देगंसे निकाल मगाया । इसके बाद वे वपु-  
ष्टमाको फटकार रहे थे, इसी समय विश्वावसु नामक  
गन्धर्वराज यहाँ पहुँचे और राजासे कहने लगे, 'राजन् !  
आप तीन सौ अश्वमेध-यज्ञ कर चुके हैं, इस कारण इन्द्र-  
ने अपने इन्द्रत्वलोपकी आशुद्रासे रम्भा नामक अप्सरा-

को भेजा था । उसी रम्भाने काशाराजदुहितो रूपमें  
जन्म ग्रहण किया है । यह वपुष्टमा ही रम्भा नामकी  
अप्सरा है । इन्द्र इसी छलसे अपना कार्य सिद्ध कर  
चले गये हैं, आप इसके लिये दुःखित न होंगे । काल  
ही इसका एकमात्र कारण है । ऋत्विकोंका आपने जो  
अपमान किया, उससे आपका पुण्यक्षय हुआ । इन्द्रके  
जो आपका भय था, वह भी जाता रहा, इसलिये आप  
वपुष्टमाको वृथा तिरस्कार न करें । आप इसे पुनः  
ग्रहण करें, कोई दोष न होगा ।' विश्वावसुके कहनेसे  
राजा जनमेजयने वपुष्टमाको फिरसे ग्रहण किया ।

( हरिवंश १६२-१६६ अ० )

वपुमत् ( सं० लि० ) वपुस् प्रशस्तार्थे मत्तुप् । १ प्रशस्त  
शरीरी, उत्तम शरीरवाला । ( पु० ) २ शाक द्वीपवति ।  
वपुथ्य ( सं० लि० ) वपुस्-हितार्थे यत् । शरीरको मलाई  
करनेवाला ।

वपुस् ( सं० क्ली० ) उप्यन्ते देहान्तरभोगसाधन वीजो-  
भूतानि कर्माण्यत्रेति वप् ( अति-दुःवपि यजोति । उष्य-  
२।१।२८ ) इति उत्ति । १ शरीर, देह । २ प्रशस्ताकृति,  
मनोहररूप । ३ अंश, भाग । ( स्त्री० ) ४ सनामस्थाय  
दक्षकी कन्या । यह भर्भराजकी परनी थीं ।  
( मार्कण्डेयपु० ५०।२१ )

वपुःप्रकर्ष ( सं० लि० ) शारीरिक सौन्दर्य ।  
वपुःश्रव ( सं० पु० ) वपुषः शरीरात् श्रवः क्षरणं यस्य ।  
शरीरस्थित रसधातु ।

वपुःसत् ( सं० अ० ) शरीरके आकारमें ।  
वपोदर ( सं० लि० ) पोचरोदर, तोंद ।  
वपुथ्य ( सं० लि० ) वप-तठ्यः ; वपनीय, बोनै लायक ।  
परस्त्रीमें यीज वपन नहीं करना चाहिये ।

वप्ता ( हिं० पु० ) वप्त् देखो ।  
वप्त् ( सं० पु० ) वपति वीजमिति वप शृच् । १ जनक,  
पिता । २ कथि । ३ नापित, नाई । ( शृक् १।१४।२४ )  
( लि० ) ४ वापक, वीज बोनैवाला । ५ कर्षक, जोतने-  
वाला ।

वप्प ( सं० पु० ) १ पिता । २ वृष्य देवगुहजन प्रभृति ।  
३ मेवाहके राणाओंके पृथ्वरुच । मेवाह देखो ।  
वप्पटदेवो ( सं० स्त्री० ) राजमहिषोभेद ।

यणिय ( सं० पु० ) एक हिन्दू राजा ।  
 यपीह ( सं० पु० ) चातक (Cocul s Melanoleucus) ।  
 पण्यट—मगधके पालघंजीय प्रथम राजा गोपालके पिता ।  
 पण्योल ( सं० पु० ) जनपदभेद ।  
 यम ( सं० पु० क्ली० ) उच्यतेऽनेति यम (इषियभिन्ना र्थे ।  
 उष्ण २।२७) इति रथ । १ मिट्टीका ऊंचा धुस्स जो गढ़  
 या नगरकी खाईसे निकली हुई मिट्टीके ढेरसे चारों ओर  
 उठाया जाता है और ज़िमेके ऊपर प्राकार-या दीवार  
 होती है । यर्षाय—चय, मृत्तिकास्त्वय । (शब्दरत्ना०)  
 दीवारकी तरह खड़ा कृत्तिम मृत्तिकास्त्वयका नाम ही  
 यम है ।

यपनि घोसमवेति । २ क्षेत्र, खेत । मृदत्संहिता-  
 में लिखा है, कि शुक्र जब यर्षायिण होने हैं, तब शैलोपम  
 जलजाल धारि यर्षण करता है, इससे यम या खेत भर  
 जाता है, श्रुधिया हरिपाली दिपाई देतो है तथा धान  
 और ईंध काफ़ी उत्पन्न होती है । ३ रेणु, धूल । ४ तट,  
 किनारा । ५ पर्वतसानु, पहाड़की चोटी । ६ टोला,  
 मोटा । ७ सोसा नामकी घातु । ८ प्रजापति ।  
 (यमितवार उष्णदिहृति) ९ ह्रापरयुगके एक ध्यास ।  
 १० चौदहवें मनुके एक पुत्रका नाम ।  
 यमक ( सं० पु० ) गोलघृत्तिकी परिधि, गोलार्कका घेरा ।  
 यमक्रिया ( सं० स्त्री० ) टोले या ऊंचे उठे हुए मिट्टीके  
 ढेरकी हाथी, सांड आदिका दांती या सींगोंसे मारना ।  
 यह उनका एक क्रोड़ा है ।

यमकोड़ा ( सं० स्त्री० ) बर्षक्रिया देखो ।  
 यमयाद—सम्भारनके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । यह  
 तिलपर्णी नदीके किनारे अवस्थित है ।

( भविष्य काल० ४२।२१३ )

यमा ( सं० स्त्री० ) यम-रत्न टापू । १ मञ्जिष्ठा, मञ्जोठ ।  
 २ जैनेके इफोसधे जिन नेमिनायकी माताका नाम ।  
 यमानन ( सं० लि० ) कीड़ाके लिये उद्यममिके सामने  
 निरक्षुकाये हुए ।  
 यमांतर ( सं० मध्य० ) दोनों किनारोंके बीच ।  
 यमामिघात ( सं० पु० ) यमकोड़ा ।  
 यमाम्भेऽनेति ( सं० स्त्री० ) १ मदीकृतवादी खेतका जल ।  
 २ ज्ञातानदी ।

यमाम्भम ( सं० स्त्री० ) तीरघाही खेतका जल ।  
 यमि ( सं० पु० ) यपति घोसमत्त, यप-किन् ( बरहस्प  
 दयन्च । उष्ण ४।६६) १ क्षेत्र, खेत । २ स्थानकी दुर्गमता ।  
 ३ समुद्र ।

यमस् ( सं० स्त्री० ) १ रूप । २ घणु, देह ।  
 यमता ( अ० स्त्री० ) १ वादा पूरा करना, बात निवाहना ।  
 २ निर्वाह, पूर्णता । ३ सुगोचना, सुरीयत ।  
 यमतात ( सं० स्त्री० ) मृत्यु, मरण ।  
 यमतादार ( अ० स्त्री० ) १ यमन या कर्त्तव्यका पालन करने  
 वाला । २ अपने कामको ईमानदारीसे करनेवाला  
 ३ सच्चा ।

यव ( सं० पु० ) एकदश करणके अन्तर्गत प्रथम करण  
 इस करणके अधिपति इन्द्र हैं । इस करणमें जन्म लेनेसे  
 मनुष्य बलवान्, अति धीर, हठी और अति विचक्षण  
 होता है । लक्ष्मा उसके घरमें हमेशा वास करती हैं ।

( क्रोधीय० )

दाक्षिणात्य ज्योतिर्विद्वांके मतसे 'यव' शब्दका प्रथम  
 प्रकार यर्षाय और अन्तिम प्रकार अस्तःस्थ है ।

यवा ( अ० स्त्री० ) १ मरी, महामारी । २ छूतका रोग ।  
 यवाल ( अ० पु० ) १ बोध भार । २ भाषित, कठिनार्थ  
 ३ धीर विपत्ति, आकृत । ४ ईश्वरीय कोप । ५ पापक  
 काल ।

यघ्र ( सं० पु० ) १ मण्डली सवैविधिय, एक प्रकारका सौंप  
 २ एक यदुर्घंजी योद्धा । यघ्र, देखो ।

यघ्रपातु ( सं० पु० ) सुवर्ण-मैरिफ, सवर्णिक मिट्टी ।  
 यघ्रवाहन—यघ्रवाहन देखो ।

यम ( सं० स्त्री० ) १ जिनपूजाके बाद गालका ब्रह्माना । यम  
 मन् देखो । २ यदणवांज ।

यम ( सं० पु० स्त्री० ) यम-सध । यमन, उल्टी ।

यमयु ( सं० पु० ) यमनगिनि यम-सधुच् ( दिवोऽधुच् । प  
 ३।१।२६) १ यमि, की करना । २ हाथीकी मृत्युसे निकली  
 हुई जलकला । यर्षाय—कर्त्तव्यकर ।

यमन ( सं० स्त्री० ) यम भाषे ल्युट् । १ उद्दम, की करना ।  
 उपरादिमें रोगीको जरूरत यमने पर यमन कराया आ  
 म्भकता है । ( यामट ) २ यमनद्रव्य, यमन करनेवाला ।

पदार्थ । ३ आहुति । ४ आहार । ५ अर्धन, पीडा । ६ जग, पदसन ।

वमनकल्प ( सं० पु० ) वमन करानेके लिये मदनादि अनेक प्रकारकी योग-योजनविधि । इनमेंसे वमनकल्प ही उत्तम है । ( सुश्रुत० च० ४३ अ० )

वमनद्रव्य ( सं० श्लो० ) वमिकारक वस्तु । ये ये सब हैं—मैनफल, फूटजको छाल, देवताड़का फूल, तितलीकीका फूल, घोषा फल, श्वेतघोषा, सफेद सरसों, विडङ्ग, पोपल, वरख, नागेश्वर, रक्तकाञ्चन, श्वेतकाञ्चन, नीम, असगंध, वेग, अपराजिता, कुंदरुका फल, घच, म्वालककड़ी आदि । ( सुश्रुत च० ३६ अ० )

वमनविधि ( सं० श्लो० ) वमनक्रिया । वमनक्रियाका समय पुराह है । चिकित्सकको चाहिए कि वे शरत्, वसन्त और वर्षाकालमें ही रोगीको रेचन और वमन करावें ।

( भावप्र० )

जो रोगी कफाक्रान्त, बलघान, हिकारोपादि द्वारा पीड़ित और घोर हैं, वैसे रोगीको ही वमन कराना उचित है । ( भावप्र० )

विषदोष, इस्तन्यरोग, अनिमान्द्य, श्लोषद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, महाज्वर, विदारिका, अपचो, कास, श्वास, पौनस, वृद्धि अपस्मार, ज्वरोग्माद, रक्तातिसार, कर्णघ्राय, अधिजिह्वक, गलगुण्डो, अतिसार, पित्तप्लेभरोग, मेदोरोग और अरुचि ; इन सब रोगोंमें चिकित्सकको वमन कराना चाहिये ।

वमन निषेध विषय—कम्प, उपलेप, निद्रा, तन्द्रा बालस्थ, दौर्गन्ध, विषजमित उपसर्ग, कफप्रसेक और प्रहणो आदि दोष वमनकारो व्यक्तिके कमी नहीं रहते । वमनके गुण—वमनसे श्लेष्म शोधन होता है, इस कारण उससे होनेवाले सभी विकार जाते रहते हैं ।

निम्नलिखित व्यक्तियोंको कमी भी वमन न करना चाहिये । जैसे—चक्षुरोगी, ऊर्ध्ववात, गुल्मोदर, प्लीहा और किमि रोगग्रस्त, धमार्त्त, स्पृह, क्षतक्षण, दृग्, अतिशुद्ध, मूत्रातुर, कंथल धातरोगी, स्वरोपघातो, अध्ययनरत, दुग्धदि, दुःकोष्ठ, लृप्पार्त्त, बालक ऊर्ध्वगन्ध, पिच, क्षुपित, निरुक्ष और गर्भिणी आदि । अयम्प वमनमें सभी रोग हृच्छु क्षधवा पक्ष्म असाध्य हो जाते हैं । इस कारण उन्हें वमन कराना उचित नहीं ।

अति वमनमें तृष्णा, हिक्का, उद्गार, संक्षाराहित्य, जिह्वा-निःसंरण, चक्षुष्यावृत्ति, हनुसंहति, रक्तच्छर्दि और कण्ठ-पीडा आदि उपद्रव होते हैं ।

वमनश्यापत् ( सं० श्लो० ) वमन-असिद्धिके पक्षमें आध्मानादि विकार ।

वमनो ( सं० श्लो० ) वमन शोष । जलीका, जौक ।

विस्तृत विवरण अज्ञोका शब्दमें देखा ।

वमनीया ( सं० श्लो० ) वमयतीति वमण्यर्थविवक्षायामभिधानात् कर्त्तरि अनोयरत्त्रियां टाप् । १ मक्षिका, मषकी ।

( श्लो० ) २ वमनयोग्य ।

वमि ( सं० श्लो० ) वमनमिति वम ( सर्वधातुभ्य इत् । उष् ४।११३ ) इति इत् । वमन, छर्दन, प्रच्छर्दिका, रोगमेद, वमिरोग । इस रोगका निदान तथा चिकित्सा आदिका

विषय वैद्यकमें इस तरहसे है—अधिक तरल वस्तु पान करनेसे, अतिशय स्निग्ध वस्तु खानेसे, अधिक लघण प्रयोग करनेसे, असमय वा शपरिमित भोजन करनेसे एवं श्रम, भय, उद्वेग अजीर्ण तथा कृमि दोषसे वमन रोग पैदा होता है एवं गर्भावस्था तथा घृणित वस्तुओंके कारण वायु, पित्त, कफ आदि उत्कृष्ट हो कर वमनरोग उत्पादन करता है । इस रोगसे मुत्रमें पीडा होती है एवं सारा शरीर दुःखने लगता है ।

वमन रोग पांच प्रकारके होते हैं,—घातज, पित्तज, कफज, मग्निघातज, आगन्तुज । इस रोगके पूर्व लक्षण वमि उपस्थित होनेके पहले हृत्सास अर्थात् वमनोद्वेग, उद्गारावरोध, मुखप्रसेक तथा मुख लघणात् नाल्म पड़ते हैं एवं खाने पीनेकी चीजोंसे रुचि फिर जाती है ।

वमिके सामान्य लक्षण—जिस रोगमें कुपित दोष अत्यन्त वेग तथा अंग पीडनके साथ मुखको और उमड़ आता है एवं मुखको परिपूर्ण करके बाहर उठल पड़ता है, उसे छर्दि वा वमि रोग कहते हैं ।

घातज लक्षण—घातज वमनमें हृदय तथा पार्श्वमें वेदना, मुखशोष, मस्तक तथा नाभोमें शूलवेदनाकी तरह वेदना तथा कास, ह्यरमेद, अंगमें सूचोवेधघ्न वेदना एवं अति कष्टके साथ वेग, प्रबल उद्गार तथा अतिजय शब्दके साथ फेन मिश्रित विच्छिन्न पतला तथा कणाय रसविशिष्ट वस्तु वमन, ये सब लक्षण दिखाई पड़ने हैं ।



पित्तज लक्षण—पित्तज यमनरोगमें मूच्छा, व्यास, मुखशोथ, मन्त्रक, तालु तथा दोनों आँसुओंमें जलन, आँसुओंमें अश्रुका छा जाना एवं पीत दूरा या धूमधर्णयुक्त, बूछ होता, अति उष्ण पदार्थका यमन तथा यमनके समय कण्ठमें उपात्ता, ये सब लक्षण उपस्थित होने हैं।

कफज लक्षण—कफज यमनरोगमें मुख मधुर रस-विशिष्ट, कफप्राय, भोजनमें अदधि, तिप्प्रा, शरीर भारी, स्निग्ध, घन, मधुर रसयुक्त तथा श्वेतवर्ण पदार्थ यमन एवं उलटी होनेके समय शरीरमें रोमाञ्च तथा अति घबरावणा होने लगती हैं।

मग्नपातज लक्षण—यमनरोगमें शूल, अजीर्ण, वाह, व्यास, व्यास, मूच्छा एवं लघण रसयुक्त उष्ण, नील या लोहित वर्णके घने पदार्थका यमन होना प्रभृति लक्षण प्रगट होते हैं।

आगन्तुज यमन—कुत्सित द्रव्य भोजन तथा किसी तरह घृणाजनक वस्तुको देखनेसे जिस यमनरोगकी उत्पत्ति होती है, अथवा शिरोंकी गर्भावस्थाके समय जो उलटी होती है, हृमिगोग वा आमरससे जो घमि होती है, उनमें आगन्तुज घमि कहते हैं। इस यमनरोगमें पातादि तान दोषोंमें जिस दोषके लक्षण अधिक दिखाई पड़ें, उनके अनुसार उसे दोषज यमनरोग समझना होगा। केवल हृमियों द्वारा जिस यमनरोगकी उत्पत्ति होती है उसमें अत्यन्त घेदता होती है। जिस तरह आगन्तुज यमनके पांच कारण बतलाये गये हैं, उसी तरह इसके भी पांच भेद हैं, जैसे—असात्मज, हृमिज, आमज, यीमरम तथा शीर्हदज। इस आगन्तुज यमनमें यातजादि दोषोंके लक्षणानुसार इसके यातजादि कारण भी स्थिर करने चाहिये।

इस रोगका उपद्रव—काम, तमक व्यास, उबर, व्यास, द्विचकी, विहतगिज्ञा, हृदंग एवं सर्वाधिक सामने अश्रुका छा जाना आदि।

यमन रोगकी साधवसाधयता—यमनरोगमें यदि क्षुपित वायु, मल, मूत्र, श्वेद तथा जलवाही श्रोत गम्य हो कर ऊतुष्येगन होये एवं उसमें रोगोंके कोष्ठमें पूर्ण संश्लेष पित्त, कफ या वायु क्षुपित श्वेदादि घातु उर्ध्वकी होये और यदि यमि मलमूत्रको तरह दुर्गन्ध हो तो उससे

यमन रोगकाल्त रोगों मृश्या, व्यास तथा द्विचकी द्वारा पीड़ित हो कर हृदय मृत्युकी प्राप्त होता है। जिस यमन रोगसे रोगों क्षीण हो जाता है एवं सञ्चारा रक्त-पूर्वादि मिश्रित पदार्थ यमन करता है अथवा घमिमें यदि मयूरपुच्छकी तरह क्षामा दिखाई पड़े, किंवा यमनरोगके साथ यदि कास, व्यास, उबर, द्विचकी, मृश्या, मूत्र, हृदंग प्रभृति उपद्रव उपस्थित होये, तब यह यमनरोग असाध्य हो जाता है। इन सब लक्षणोंके अभावसे दूसरे सब प्रकारके यमनरोगकी चिकित्सा करनेसे इसका प्रतीकार हो सकता है।

चिकित्सा—सब प्रकारके यमनरोग आमाशयमें दोष संचित होनेसे उपद्रव होते हैं, इसलिये यमनरोगमें सबसे पहले लघन देना ही कार्त्तव्य है। उसके बाद कफ तथा पित्तको दूर करनेवाली ओषधिका सेवन करना चाहिये। किन्तु एक विशेषता यह है कि, यानज यमनरोगमें लघन देना उचित नहीं। यातज यमि रोगमें दूधमें बराबर भाग जल मिला कर, संघा तमक तथा घृत मिश्रित मूँग तथा मांयलेका जोरवा, पिलाना चाहिये। गुलच, त्रिफला, श्वेद, मांयला, निम्ब तथा पोलता इन सबकी काढ़ा बना कर मधुके साथ पान करनेसे पित्त यमि रोग साराम होगा है। हरेका चूर्ण मधुके साथ खानेसे भी यमि रोगमें फायदा पहुँचता है।

विडंग, त्रिफला तथा शुंठीका चूर्ण, किंवा विडंग, कैवर्णमुलक तथा शुंठीचूर्ण समभाग ले कर मधुके साथ सेवन करनेसे श्वेत्प्रज यमि रोग विनष्ट होता है।

भांयला, लै तथा चोनी ८ तोला एक साथ पीग कर उसके साथ ८ तोला मधु एवं ३२ तोला जल मिला कर कपड़े में छान कर पीनेसे त्रिदोषज यमि रोग साराम होता है। गुलच द्वारा दिग्म (जीमश्याय) तैयार करने मधुके साथ पीनेसे श्वेत्प्राय त्रिदोषज यमि रोग साराम होता है।

हरे, त्रिफला, चमिवा तथा जोरा समभाग चूर्ण करके मधुके साथ चाटनेसे त्रिदोषज यमि तथा अदधि भद होता है। वेदकी छाल, गुलच तथा सेतवपत्रका काढ़ा मधु मिला कर पान करनेसे साहित्यात्मिक यमि रोग साराम होता है। आमकी गुठली और वेदका काढ़ा मधु

तथा चीनी मिला कर पीनेसे वमि तथा अतीसार रोग-का नाश होता है। जामुन तथा आमके पत्तोंसे काढ़ा तैयार करके ठंडा होने पर उसमें लाईका चूर्ण तथा मधु मिला कर पीनेसे उष्माजन्य वमि, अतीमार तथा विपासा दूर होती है।

पीपलकी छालका भस्म जलमें डाल कर पीनेसे अति दुःसाध्य वमिरोग भी आराम होता है। इलायची, लवंग, नागकेदार, घेरकी आंठीका गूदा, लावा, मिषं, सुस्तक, रक्त चन्दन तथा पिपली इन सब चीजोंका बराबर बराबर भाग चूर्ण करके मधुके साथ बानेसे घातक, पित्तज तथा कफ ये तीनों प्रकारके वमिरोग छूट जाते हैं।

वीमत्स वमिरोग हृदयप्राही वस्तुओंसे, दोहदज वमिरोग इच्छित फलोंसे तथा आमज वमिरोग लंघनसे आराम होते हैं। उद्गरकी अधिकताके साथ वमि होनेसे मूर्धा, घनिया, सुस्तक, जेठी मधु तथा रसाञ्जन-का चूर्ण समभाग ले कर मधुके साथ चाटनेसे साधारण वमि दूर होती है। यह रोग सौवर्षल लवण, कृष्णजोरा, चीनी तथा मरिचचूर्ण बराबर भाग ले कर मधुके साथ चाटनेसे भी आराम हो जाता है।

नारियलका पानी, मूट्टो या जली हुई रोटी भिंंगाया हुआ जल अथवा बरफका पानी वमन निवारणको उत्कृष्ट औषध है। बड़ो इलायचीका काढ़ा सेवन करनेसे वमनरोग शीघ्र ही दूर हो जाता है। रात्रिमें गुलंछको जलमें भिगो रखे, प्रातःकाल उस जलकी मधुके साथ पीवे तो सब प्रकारके वमिरोग दूर हो जाते हैं।

खेतपपड़ा, विद्वमूल या गुलंछका काढ़ा मधुके साथ एवं मूर्ध्या मूलका काढ़ा चावलके पानीके साथ सेवन करनेसे सब तरहके वमिरोग आराम होते हैं। जेठी मधु तथा रक्तचन्दन दूधके साथ अच्छी तरह पीस तथा घोंट कर पीनेसे रक्तवमन आराम होता है। आँवलेका रस १ तोला तथा कतवेलका रस १ तोला, थोड़ा-सा पोपल चूर्ण तथा मरिचचूर्णके साथ मधु मिला कर सेवन करनेसे प्रबल वमन भी रुक सकता है। तेलवट्टेकी विष्टा ३।४ दाना जलमें भिगो कर उस जलकी थोड़ा पीनेसे अति प्रबल वमनका तुरत ही दमन होता है।

श्वेतचन्दन २ तोला, आँवलेका रस २ तोला एकल

करके, उसमें थोड़ा-सा मधु मिला कर सेवन करनेसे वमिरोग दूर जाता है। भुनी हुई मूंग १ पल, जल २ सेर, शेष २ पल, लाईका चूर्ण २ पल तथा थोड़ा मधु और चीनी मिला कर उस जलको पीनेसे वमि, अती-सार, तुष्या, दाह तथा उवर निवारित होता है। इसके अतिरिक्त इलायचीचूर्ण, रसेन्द्र, वृषध्वजरस तथा पद्म-काःघृत प्रभृति वमन रोगकी अत्युत्तम दवा है।

(मेघउरत्ना० वमिरोगाधि)

इस रोगका पट्यापट्य—वमि होने पर आमाशयमें वेदना होती है, इसलिए पहले लंघन देना उचित है। वमन घेग रुक जाने पर जल्द हज्म होनेवाला तथा रुचि-कारक भोजन क्रमशः देना उचित है। वमनका घेग रुकने ही यदि आहार देनेकी आवश्यकता होवे, तो भुनी हुई मूंगके काढ़ेके साथ लाईका चूर्ण, मधु तथा चीनी मिला कर छानेकी दे सकते हैं। इस तरहका आहार देनेसे वमन, भेद, उवर, दाह और विपासाकी शान्ति होती है। वमनघेग रुक जानेके बाद सद्गोप समी वस्तु भोजन कर सकते हैं एवं उवरादि उपमर्ग न रहने पर अभ्यासानु-सार स्नानादि भी कर सकते हैं। स्वच्छ पान, स्वच्छ स्थानका घास एवं मनको प्रफुल्लता आदि इस रोगमें विशेष लाभ पहुंचाती है। जिन सब कारणोंसे पुष्पा, वैदा होती है, वे सब कारण तथा रौद्रादिके आतप सेवन प्रभृति इस रोगमें बहुत हानिकारक है।

शूलरोग तथा अम्लपित्तरोगमें वमन करानेसे ही लाभ होता है।

वमति उदुगिरति धूमादिकमिति "इक् कृष्यादिभ्यः" इति इक्। २ अमि। ३ धूर्त्।

वमित (सं० लि०) वन-क्त। १ जिसकी वमन कराया गया हो। (क्लो०) २ वमन किया हुआ पदार्थ।

वमितथ्य (सं० लि०) वमनके लायक।

वमिन् (सं० लि०) १ वमनकारी। २ पीड़ित।

वन्धई—वृष्टिा सरकारके पश्चिम-भारतका एक दिगमग और विचार-विभाग। यह अक्षा० १३' ५३' से २८' २६' उ० तथा देशा० ६६' ४०' से ७६' ३२' पू०के मध्य विस्तृत है। सिन्ध मिला कर इसका भूपरिमाण १२२६८४ वर्ग-मील और जनसंख्या १८ करोड़से ज्यादा है। जनसंख्या-

में यह भाग्यवर्षके मध्य प्रथम और दृष्टिगत्ता राज्यायके मध्य द्वितीय नगर है। इसमें ४ उपविभाग, २५ जिल्ला तथा कितने देवो राज्य लगते हैं। इसके उत्तर, उत्तर-पश्चिम और उत्तर पूर्वीमें बलुचिस्तान, पञ्जाब और राजपूताना, पूर्वमें मध्यभारत प्रदेश, बरार और हैदराबाद राज्य, दक्षिणमें मद्राज प्रेसिडेन्सी और महिसुर तथा पश्चिममें अरब सागर हैं।

अङ्गरेजाधिकृत सभी जिल्ले साधारणतः ४ भागोंमें विभक्त हैं, यथा—उत्तर विभाग—महलदाबाद, सिंधु, पंच महाल, मरौच, सुरत, गाना और कुन्दावा।

मध्य विभाग—गाम्भेज, नासिक, आसदनगर, पूना, मोलापुर और सतारा।

दक्षिण विभाग—वेलगाम, धारवाड़, कलादगो, उत्तर कनाड़ा और रतनगिरि।

सिन्धुविभाग—कराची, चर और पार्कर, हैदराबाद, निजारपुर, उत्तरसिन्धु, सोमान्तप्रदेश।

इस प्रेसिडेन्सीमें निम्नलिखित कई सामन्त राज्य हैं। यथा—बड़ौदा, कोल्हापुर, कच्छ, महीकाण्वा राज्य, रैवाकाण्वा राज्य, काठियावाड़ राज्य, पालनपुर राज्य, लखानू, सायभतवाड़ी, जंजौरा, दक्षिण मराठा जामोर, सताराके जामोर, यवहार, सुरतके अस्तर्गत सामन्त राज्य, मावनूर, नाडूकोट, अकालकोट, गाम्भेजके अस्तर्गत बङ्गराज्य और गैरपुर राज्य।

उक्त सभी जिल्लों और सिन्धुप्रदेशका भूपरिमाण १२४१२३ वर्गमील तथा सामन्त राज्योंका परिमाण ८२३२४ वर्गमील है। वर्तमान समयमें अनेक वैयक्तिक मीलमालमें उन सब सामन्त राज्योंका परिमाण बहुत घट गया है, मनुष्यमनुष्यासेका विवरण पढ़नेसे इसका पता चलता है। बम्बई प्रेसिडेन्सीमें ११६ नगर और १५३३२ ग्राम लगते हैं।

प्रेसिडेन्सीके इस सब स्थानोंके ऐतिहासिक और प्रजननवर्षके विवरण विभिन्न स्थानमें जितने मपे हैं, इन कारण उन विषयोंकी भांतिचला यहाँ पर न की गई।

२ बम्बई-प्रेसिडेन्सीका प्रधान नगर और बम्बई-मध्य-

नैमेष्टकी राजधानी। यह वर्षा १८५५ उ० तथा देना ४०' ५४" पू०के मध्य विस्तृत है। यह पश्चिम भागकी एक प्रधान वाणिज्य-बन्दर है। विचार-विभागी सुग-घर्याके लिए यहाँ विचार-महालय प्रतिष्ठित है तथा बम्बई नगर का स्वतन्त्र जिल्लाकरणमें गिना जाना है। इसका भूपरिमाण २२ वर्गमील है।

मुम्बईयोंके नामानुसार मुम्बईमें बम्बई नामकी उत्पत्ति हुई है। पुराणोक्तोंमें समुद्रके किनारे इसका भावस्थान देखा कर इसे Bombabia या Bon-bahia कह कर उल्लेख किया है। पुराणोक्त 'बोमबाहिया' जगत्से धीरे धीरे अङ्गरेजोंके बम्बई नामकी भी कल्पना करने लगे।

१६६१ ई०में पुराणोक्तोंने इङ्ग्लैण्डकी रामो कैपटिन भाय मगञ्जाकी योत्रु-स्वरुप बम्बईको प्रदान किया। इस समय इस द्वीपकी भाय ६५०००) ४० थी। इस समय सुरत बन्दरमें ही पश्चिम-भारतकी ईष्ट इण्डिया कम्पनीका प्रधान मञ्चा था।

इसके बाद पुराणोक्तोंने बम्बई नगरका संरक्ष छोड़ कर सालमेटकोषमें माध्य लिया। दुर्लभ पुराणोक्तोंका दमन करनेके लिये १६६८ ई०में मुगल नौसेनापति सिद्दी-ने बम्बई दुर्ग पर आक्रमण किया। इस समय अङ्गरेजोंने मुगल बादशाहमें निवेदन किया। बादशाहकी आज्ञामें मुगलसेना बम्बईमें हटा दी गई। १६८४ ई०में डिरेक्टोरीकी अनुमतिके अनुसार सुरतसे कम्पनीका वाणिज्यकेन्द्र बम्बई नहरमें उठा कर लाया गया। उसी मूलमें १६८३ ई०में बम्बई नहर अङ्गरेजोंका प्रधान वाणिज्य बन्दरकरणमें गिना जाने लगा।

आज तक जिन दो अङ्गरेज कम्पनियोंने इङ्ग्लैण्डके असे भारतमें वाणिज्य करनेका अधिकार पाया था, १७०८ ई०में ये दोनों भावसमें मिल कर युनाइटेड ईष्ट इण्डिया कम्पनी नामसे प्रसिद्ध हुई तथा बम्बई नहर उस समय स्वतन्त्र ज्ञाननाथोंन बम्बई प्रेसिडेन्सीका प्रधान नगर समझा जाने लगा। १७३३ ई०में बम्बई नगर गवर्नर जनरलके ज्ञाननाथोंन हुआ। तभीसे नगरका इतिहास बम्बई प्रदेशके इतिहासके साथ मिला दिया गया है। १७३४ से १७८२ ई० तक प्रथम महाराष्ट्र-युद्ध हुआ।

इसमें बङ्गरेज कम्पनीकी जीत हुई। इस सूत्रसे बम्बई और उसके चारों ओरके छोटे छोटे द्वीप तथा भारतोप-कुलका प्रसिद्ध धाना नगर बङ्गरेजोंके हाथ आये। महा-राष्ट्र-अभ्युत्थानके समय उनके शासनसे तंग आ कर कितने लोग बम्बई नगरमें आ कर बस गये। १८१८ ई० में जब पेगवा-शक्तिका अधःपतन हुआ, तब बम्बई नगर भी मराठाघिहत समस्त पश्चिम भारतकी राजधानी रूपमें गिना जाने लगा। इसी समयसे पश्चिम भारतकी प्रकृत उन्नतिकाल गिना जाता है।

१८१६ से १८३० ई० तक यहाँ माननीय मनष्टुआर्ट एल्फिन्सटन और सर जान मार्कम नामक दो सुप्रसिद्ध राजनैतिक गवर्नर नियुक्त हुए थे। उनकी ही बुद्धि और अध्ययनसायने यहाँ शासनशुद्धि स्थापित हुई थी। महामति पलफिनटनने यहाँकी शासनपद्धतिको मंस्कार किया तथा स्यातनामा मार्कमने चोरघाट गिरिसङ्घटको काट कर उपकुलदेशसे दक्षिणात्य-अधित्यकामें जानेका रास्ता सुगम कर दिया। उन्नीके फलसे थोड़े ही दिनोंके मध्य दक्षिण भारतमें शासन-विस्तारका रास्ता खुल गया।

बम्बई जब बङ्गरेज-गणिकके भारतीय वाणिज्यका प्रधान केन्द्र हुआ, उसके पहले हीसे यूरोपीय प्रमणकारी स्वेज केनलको पार कर या पारग्यकी राहसे यूरोप यात्रा करने थे। इस प्रकार आने जानेमें बड़ी दिक्कत होती थी। इस दिक्कतको दूर करनेके लिये बड़े व्यय और मध्ययसायसे लेफ्टेनाण्ट वागडन "Overland Routs" खोल गये।

इस समय भारतके सांवादादि इङ्ग्लैण्डके डिरेक्टर और यूरोपके अन्यान्य स्थानोंमें भेजनेकी बड़ी मसुविधा थी। जहाजसे पलादि भेजनेमें बहुत समय लगता था। इस कारण १८३८ ई०में मिन्नकी राहसे सांवाद भेजनेकी व्यवस्था हुई तथा प्रथम मासमें सिर्फ एक बार डाक भेजी गई। १८५५ ई०में पेनिनसुलर और ओरिएण्टल कम्पनीने सांवाद और यात्री चढानके लिये प्रथम बन्दोबस्त किया था। इस समयके बादसे ही बम्बई बन्दर बङ्गरेजों डाक भेजने और यूरोपीय डाक लेनेका केन्द्र हो गया। भारत प्रवासी यूरोपीयगण तभीसे बम्बई शहरसे ही जहाजों

पर चढ़ कर खदेशकी यात्रा करते थे। १८५० ई०में प्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे खुल कर तीग वर्षके भीतर धाना तक फैल गई। १८३६ ई०में वह रेलपथ चोरघाट होता हुआ पूना तक चला गया था। १८७० ई०में कलकत्ता राजधानीके साथ तथा १८७१ ई०में मद्राज बन्दरके साथ बम्बई शहरका वाणिज्य सम्बन्ध रखनेके लिये रेलवे लाइन खोली गई। तभीसे इङ्ग्लैण्ड जानेवाले लोग कलकत्तेसे जहाज द्वारा न जा कर रेलगाड़ीसे बम्बई तक आने लगे। पहले इष्ट इण्डियन रेलवे 'भाया जम्बलपुर'से बम्बई जाती थी। पीछे बङ्गाल-नागपुर रेलवे 'भाया नागपुर' हो कर बम्बई तक चली गई है। इस राहसे रेगाड़ी जल्दी जाती है। बम्बई शहरका "विषटोरिया टर्मिनस" नामक रेलस्टेशन भारतवर्षके मध्य एक अपूर्व दृश है।

बम्बई नगरमें बहुतसे सुन्दर सुन्दर भवन हैं। युनिवर्सिटी मीनेट हाल, क्लॉक-टॉवर, हाईकोर्ट, पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट, पोस्ट और टेलिग्राफ आफिस, सेलर्स होम, बन्दर-कुच, कष्टम हाउस, टाउन हाल, टुकसालघर, गिर्जा तथा कैसल, और फोर्ट-सेण्ट जार्ज नामक दुर्गस्थान देखनेलायक हैं। प्रीम्बके समय यहाँके गवर्नर महायलेश्वरमें और वर्षाके समय पूनामें जा कर रहने हैं।

प्राण्टेमैडिकल कालेजमें L. M. S. & M. D को डिग्री प्राप्त होती है। यह कालेज १८४५ ई०में स्थापित हुआ है। पलफिनटन कालेज जो १८३५ ई०में खोला गया है, ब्रिटिश-सरकारको देखरेखमें है। इसके सिवा और भी कितने प्रसिद्ध कालेज हैं, जैसे विलमन कालेज, सेंट जे मियर्स कालेज, सर जमसेतजी जोशीभाय कला-स्कूल, विक्टोरिया जुवली टेकनीकल स्कूल, मवेशी-कालेज। स्कूल और कालेजके अतिरिक्त १५ अस्पताल, २० औषधालय हैं। म्युनिसिपल कमिश्नर मि० एच. ए. आर. वर्ये द्वारा स्थापित एक कुशाग्रम है।

बम्बेठिया—जल-डकैन। बम्बई प्रदेशके समुद्रके किनारे नाटे कड़के मुसलमान जल-डकैन पण्यवाहो नाव चलानेका बढाना करके बणिकोंके पास आते और मीका पा कर उनका यथासर्वस्व लूट लेते हैं। बहुतांका अनुमान है, कि बम्बे (जनपद) और वेठिया (नाटा) या बम्बईवासी

धर्मों में इस द्रव्य-सम्प्रदायका नामकरण हुआ है। किन्तु ये लोग जिस प्रकार नाव ले कर समुद्रमें जाने भागे हैं मछुदेतोंमें उसे Hamboat कहते हैं। शक्ति सम्भव है, कि इस 'वम्बोट' नाममें ही जलद्रव्य सम्प्रदायका बरयेटे नाम हुआ है।

घग्म ( सं० पु० ) गंज, बांस।

घग्मारव ( सं० पु० ) हम्मारव, गाय या बैल आदिके नौचनेका शब्द, रंगानेका भाषाज।

घग्माग ( सं० स्त्री० ) जनपदमें।

घग्ग ( सं० पु० ) १ उर्जाशक्ति । ( शब्० ८६१२१ ) घग्ग विषयं उ० २ उर्जाशक्ति । ३ एक वैदिक ऋषि । भाषाशास्त्रिके १०१६ शब्दके मन्त्रद्वारा ऋषि थे।

घग्घ ( सं० पु० ) छोटी पिरीलिका।

घग्घी ( सं० स्त्री० ) घग्घीक, दीमक।

घग्घीष्ट ( सं० स्त्री० ) घग्घीक, घग्घीक।

घग्घ ( सं० पु० ) १ तन्तुवाय, जुलाहा। २ घग्घी पत्नी। ३ घग्घी देवी। ( स्त्री० ) ४ जुलाहोंके घरमें सुनका एक जात।

घग्घ ( सं० लि० ) घग्घीकार्य, घग्घीका काम।

घग्घ ( सं० पु० ) शब्दविशेषित व्यक्तिके।

( शब्० ७१३१२ )

घग्घ ( सं० स्त्री० ) घग्घीका मूलप्रदणकर कार्यविशेष, घग्घीकी क्रिया या भाष।

घग्घविद्या—ऊन या कपामादि मूलद्रव्य परस्परिमाणरूप निलयविद्याविशेष। पाश्चात्य विज्ञानमें इसे Art of weaving कहते हैं। किन्तु तरह कितने परिमाणमें कई ले कर कितने नम्यरका मोटा तथा पतला सूता तैयार किया जाता है, इनके बाद पह सूता किस तरह नालिमें लपेटा जाता है एवं किस तरह उन सूतोंमें कपड़ा तैयार किया जाता है, इत्यादि बातें जिस विद्याके द्वारा स्त्रीको ज्ञानी हैं, उसे घग्घविद्या कहते हैं।

घग्घीमान समयमें पाश्चात्य जगत्प्राचीन सम्भव जातिवृत्तोंमें धर्मो प्रथम मुद्रिके प्रमाणमें इन देवीय तांत्रिका वस्तुकार्य करने की शक्ति का भाषिण्यार किया है। इन वर्णिके द्वारा मूल-निर्माण ले कर परस्परव्यवस्था पर्यन्त निर्माणके सभी कार्य एक बार ही सम्पन्न हो जाते हैं।

परन्तुआलमाले सूता कातना, सूता रंगना, कपड़े बुनना आदि सभी प्रकारके कार्य सोरी जाते हैं। विभिन्न प्रकारके तांत्रिका विवरण तथा वाक्यना एवं उसकी जिज्ञा प्रणाली नीचे लिखी जाती हैं।

भक्ति प्राचीनकालमें ही हम लोग क्या प्राकृत्य वर-पाश्चात्य सभी सम्भव देवीमें पर्यन्त प्रचलन देखते हैं। प्राचीन कालमें भी लोग पर्यन्त घग्घीकी कथा मण्डितार जानते थे। श्रुतसंहिताके ११४०११, ११५२१२, २१४३, २१८६, २१६११ प्रभृति मन्त्रोंकी आलोचना करनेमें मान्य होता है, कि येही तथा रंगस्थानकी माघप्रदिन करनेमें बहुतसे कपड़ोंका व्यवहार किया जाता था। ये कपड़े प्रधानतः सुकृष्णके होते थे। ( शब्० १११५१५ ) ये कपड़े उस समय जनसाधारणमें घग्घीक रूप में मन्त्रोंके जाते थे ( शब्० १५०१२३ )। माता लयं पुत्रादिके पहने योग्य कपड़े तैयार करती थी। ( शब्० १५०१२ ) उनके कपड़े गाढ़ होते थे। अथर्ववेदके ५१३, २१२५, १२३३२, १२३३४ मन्त्रोंमें पर्यन्त उल्लेख पाया जाता है। इनके शक्तिरूप कास्वायन श्रौतसूत्र ( १४११२० ), आश्वलायन-श्रौतसूत्र ( १८११२ ), गोमिश्रण्य ( ३ २१४२ ) एवं पारस्करसूत्र ( ३१० ) सूत्रोंमें घग्घीकी भाषणरूपता तथा व्यवहारविधि बतौर लिखी हुई है। कीर्तिरूपी प्राणमें ( २१२६ ) काले पर्यन्त प्रचलन देख कर जान पड़ता है, कि उजले कपड़ेके काले रंगमें रंग कर व्यवहारमें लाते थे एवं ये रङ्गनप्रणालीमें भी निपुण थे, इस मन्त्र द्वारा इनका भी पना चलता है।

पौराणिक समय नाता प्रकारके देवीमें रंगी दूर कपड़ेका रंग ही प्रचार था। इतनेमें धोपुन्य-धन-विहारी बनगाली भर्तृ देवामवर्ण शरीरका पानी कपड़ेमें छके रहते थे। देवदेवियोंको भी लाल तथा नीले कपड़े पहनाये जाते थे। श्रीरामधर्म भगवान्ने प्राणियोंको चरित्र लक्षण ( रामायण २१३१६ ) द्वारा किया था। अयोध्याकाव्यके २०१ अध्यायमें श्रीराम तथा लक्ष्मणको रामकोय कपड़ोंका रंगण करने के मन्त्रव्यवस्था धारण करनेकी कथा है। फिर २५२८२ श्लोकमें शोकाके द्वारा प्राणियोंको नाता प्रकारके धर्म तथा धर्म-प्रदान करनेके ज्ञानका उल्लेख देख कर मान्य होता है, कि

उस समय तरह तरहके रंगोंसे रंगे हुए ऊनी तथा सूती कपड़े पहननेकी चाल थी। महाभारतके विभिन्न राजाओंके वेशभूषा तथा द्रोणदीके वस्त्रहरणके प्रसंगमें वस्त्रोंकी विभिन्नताका निदर्शन पाया जाता है। रामायणके आदिकाण्डके ७७वें अध्यायमें लिखा है, कि अयोध्याधिपति दशरथ प्रथम अपने पुत्र तथा पुत्रवधूको ले कर जनकके घरसे अपने राज्यमें लौट आये, तब उनके स्वजनवर्गोंने नाना प्रकारकी रम्य वस्तुओंसे उनकी पूजा की। उस समय कौजलया, सुमित्रा, कैकेयी एवं दूमरी दूमरी राजपत्नियां शौम्यवस्त्र धारण करके पुत्रवधूके साथ मङ्गल आलाप करती हुई देवान्यमें पूजा करने चलीं। इन सर्वों पर आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि रामायणीय युगमें शुक्र, कापायरञ्जित वस्त्र एवं शुभ-कार्यमें शौम्यवस्त्र व्यवहारमें लाये जाने थे।

मगधान् मनुरचित स्मृतिग्रन्थके ३५२, ३१२१६ तथा १११८१ श्लोकोंमें वस्त्रका उल्लेख किया गया है। ये परिषेव वस्त्र उस समय भी सम्पत्तिमें गिने जाते थे एवं वस्त्रकी चोरी करनेवालोंकी प्राणदण्ड दिया जाता था ( ८१२१ श्लोक )। उक्त ग्रन्थमें अन्यान्य सम्पत्तिकी तरह वस्त्रविभागकी भी व्यवस्था देखी जाती है।

जब कोई ऊन, पटसन अथवा कपासादिका सूता चुराता था, तब उसे उस सूतेके दूने मूल्य आदाय करने पड़ते थे ( मनु० ८।३२६ )। जब कोई सूता बुननेवाला किसी व्यक्तिका १० पल सूता चुरा लेता था एवं पकड़े जाने पर जब वह उस व्यक्तिको ११ पल सूता नहीं लौटा देता था, तब वह राजदण्डानुसार १२ पल आदाय करनेको बाध्य होता था।

मनु ८।३६७ सूक्त द्वारा पता चलता है, कि उस समय जो पहननेके वस्त्र तैयार किये जाते थे, वे लम्बाई तथा चौड़ाईमें वर्तमान वस्त्रके समान ही होते थे।

उस समय कपास, रेशम तथा पशमी वस्त्र बहुत प्रचलित थे। वे जलप्रक्षालन द्वारा सूती कपड़े एवं शारङ्ग-मृत्तिका द्वारा रेशमी तथा पशमी कपड़े साफ करते थे—

“अङ्गित्स्नु प्रोक्ष्य” शीघं वहूनां पान्यशशमम् ।  
प्रक्षालने नत्वल्पानामङ्गिः शीघं विधीयते ॥

पेषवत् कर्मणां शुद्धिर्दक्षानां तथैव च ।  
शाकमूत्रकमानां च धान्यवत् शुद्धिरिष्यते ॥  
कीर्ष्याधिक्यारूपैः कृतपानामरुहकैः ।  
भीषणैरंशुपट्टानां क्षीमानां गौरवर्षैः ॥  
क्षीमवत् शङ्खशृंगानां अस्थिदन्तमयस्य च ।  
शुद्धिर्विजानिता काव्यां गोमूत्रैर्नादकेन वा ॥”

( मनुसंहिता ५।११८ १२१ )

उक्त ग्रन्थके दृग्गम अध्यायके अन्तर ३५ तथा ५२वें श्लोकोंमें निपादचण्डालादिमें मृतवस्त्र पहननेकी रीति पाई जाती है, किन्तु अन्य जातिके लोग मृतवस्त्र तो दूर रहे, घोबीकी भूलसे दिये हुए दूतरीके कपड़े भी नहीं पहनते थे। मनुसंहितामें इसका भी निषेध किया गया है—

“शाल्वोपश्रुके भ्रजस्ये नेनिन्यान्नेभकः शनैः ।

न च वातासि वासोभिर्निर्देह्येन च वासयेत् ॥” ( ८।३६६ )

उस समय फूलोंके रंगमें रंगे हुए शानक्षीमाजिनादि निर्मित वस्त्र वैजना ब्राह्मणोंके पक्षमें हिलकुल ही मना था। ( मनु० १०।८७ )

इन सर्वों पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि वैदिक युगसे ले कर स्मृतियुग पर्यन्त भारतीय वर्णसमाजमें वयनवस्त्र तथा वयनविद्याका बहुत ही प्रचार था। परवर्ती पौराणिक युगमें उमका और भी अधिक प्रचार हुआ। रामायण तथा महाभारतादि ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें, महाकाव्य एवं पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें नाना प्रकारके रंगोंसे रंगे हुए कपड़ोंके व्यवहारका पूरा प्रमाण है।

यदि जगत्के प्राचीन वस्त्रनिष्पत्ता निदर्शन देवता हो, यदि जगत्के सर्वप्राचीन तांताका अन्तिम प्राप्त करनेको आवश्यकता हो, तो एक बार प्राचीन मिश्रराज्यकी धोर द्विष्टि निःक्षेप करें, आपके सभी सम्बन्ध मिट जायेंगे। यहाँके मामिनाहरके मध्य ( Mummy pits of Egypt ) धनुमन्धान करनेसे आज भी जवाबदाहित वस्त्रोंके कितने ही निदर्शन परिलक्षित होंगे। रोजेटाकी प्रस्तरलिपिसे जाना जाता है, कि यहाँकी राजसरकारसे पुरोहितोंको उनके चिरमिय कपास वस्त्र दिये जाते थे। यहाँके उग्र

श्रेणीके सम्मान्य लोग कपास तथा पगामीके कपड़े पहनने से एवं दक्षिण लोग वस्त्रमात्र पगामीके कपड़ोंमें अपने बहुत टकसे थे। पगामीके कपड़ोंके घाहोंके पुरोहित सम्प्रदाय महा कट कट विभिन्न प्रकारका ही अधिक पसंदाग करते थे।

द्विपु आतिथे धर्मयात्रक तथा पदरूप सम्मान्य लोग उत्तम विभिन्न कपड़े ही व्यवहारमें लाते थे। वाइविल प्रथमके बहुतसे अनुयायिं उनके जो रेशमों पर व्यवहार करनेको बाने लिगों हैं, ये किन्तुल ही प्रामादिक हैं, क्योंकि, प्राचीन द्विपु या भाम्नीरीय लोगोंके अन्दर रेशमों पर व्यवहारका कोई पका प्रमाण पाया नहीं जाता। इङ्ग्लैंडके British Museum नामक जादुघरमें प्राचीन मूल्य लिखित कपड़के सूते थे। १०० लफ्टे (Hank) एवं १ ईंण स्थानके मध्य तानमें १४० चाई तथा घेरे (woof) में ६४ चाई सूता विद्यमान है।

वेविस नगर तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें जो प्राचीन मिश्रीय तानोंके नमूने रखे हुए हैं, उनकी वपन-प्रणाली अविचल भारतीय तानोंके समान ही हैं, अगर प्रमेद है, भी तो बहुत छोटा। पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि स्मरणागत समयमें भारतीय कार्य लोग जिस रीतिले पर वपन करते आ रहे हैं, वही चिरन्तन प्रथा प्राचीन कालमें भारत ही कर यूरोपमें प्रविष्ट हुई था। आर्टिफानके आर्जिल प्रथम मण्टफागोन (Montfaucon) कपूक जो मध्ययुगी तानोंके चित्र अंकित है, लोगोंका अनुमान है, कि ये मण्टफागोन १४वीं जतादीके ही तानोंके चित्र। ये भारतीय तानोंमें बहुत मिलने जुलते हैं, तब ही एक ही स्थानमें सामान्य परिपत्तन भी दृष्टिगत होता है। चीन आतिथोंके रेशमों पर बुननेके तांत किन्तुन व्यवहार एवं व्यवहार लिखित हैं, उनमें वस्त्र-परिपत्तों नहीं अधिक है। सम्भवतः इन चीनोंका अनुकरण करने ही यद्योग ईद्वयुम तैवार किये गये हैं। अतिदूरमें रेशमका वस्त्र देय वर मान्यम पड़ता है, कि चीन तथा चीनक लोगोंको सुष्य समृद्धिके समय उनको विस्तार सामग्री पूर्ण कामके लिये चीनमें रेशम तथा तांत यूरोप में गये थे। अतिदूरमें पहले यूरोपमें रेशमका ऐतिहासिक उल्लेख नहीं देखा जाता।

वपनवपन।

पर बुनना सोननेमें विश्वाधीको निपुणता, धर्म-गोलाता, हस्त-संचालनादिको पटुता सोलना अत्यन्त आवश्यक है। सहस्रों सूक्ष्म सूते से कर उनके प्रत्येक सूतेको नियमानुसार नियमित स्थान पर रचना चाहिये। उसमें कितां तरदकी जल्दवाजो करनेसे वा असाक्ष्यु हो उठनेमें और भी विलम्ब होता है।

हम लोगोंके देशमें दिष्टु तांती एवं सुमनमान जुलाहे हैं, ये सभी भी वेतें बारीक सूतोंसे चार तैवार कर सकते हैं, जो चार-साध ईंण चौड़े एक फूट लम्बे चीमिके अन्दर आसानीमें रखे जा सकते हैं। मैचिटरके परवपन-विषयके निर्माण होनेके कारण धीरे धीरे हमारे देशकी जिलविपुणता जाती रही। मैचिटरके शुभागतसे ही हमारे वपनशिल्पकी इतिथी हुई एवं असाधारणसे जुलाहों तथा तांतियोंकी जाकि क्षीण हो गई। स्थूल बुद्धि तांतियों सामग्री भारतमें सूक्ष्म सूतेका आश्रय लिया एवं सूक्ष्म-बुद्धि तांतियोंमें मोटे सूतेका कार्य भारतमें किया। आश्रयका विषय है, कि इन दोनों आतिथोंका व्यवसाय एक होने पर भी कपड़ा बुननेके सम्प्रथममें सभी विधियोंको जुलाहों तथा दिष्टु तांतियोंमें परस्पर विभिन्न पंथोंका व्यवहार किया है। नीचे दोनों पंथके वपनोपयोगी पंथोंका परिचय दिया जाता है।

१ तांत (सूत) — तांत भारतवर्षमें चितने दिनोंमें प्रचलित है, इसका पता नहीं चलता। किन्तु प्राचीन भारतीय प्रथमोंमें उसका उल्लेख मिलता है। जो तांत बहुत दिनोंसे इस देशमें चला आ रहा है, वह 'हाथका तांत' या 'बंगला तांत' कहलाता है। यह तांत काष्ठसे तैवार किया जाता है, यही तांत, कि एक ही तानों पर चार पीढ़ों तक कामवाची रहता है। इसको टकरीको एक हाथमें बन्धा कर दूसरे हाथमें पकड़ना होता है। इसमें अधिक चौड़ा कपड़ा बुननेमें सुविधा नहीं होती; किन्तु इस तांतके द्वारा रचनानुसार मोटे एवं बारीक सब तरहके कपड़े बुने जा सकते हैं। इसमें अधिक सूते नहीं टूटने। जिम्ब तरह इसमें बारीक सूतोंसे तैवार किये जा सकते हैं, इस तरह ईद्वयुममें तैवार

करना कठिन है। किन्तु हाँ, इस बंगला ताँतमें उतनी शीघ्रतासे काम नहीं हो सकता। एक सुदृक्ष ताँती इस ताँतमें एक मिनटमें ३१।३२ बार ढरकी चला सकता है। इसमें सबसे बड़ा दोष यह है, कि इसमें ढरकीके उद्वेगका स्थान नहीं होता; इसलिये जरा-सा चूक जानेसे ही ढरकी नीचे गिर जाती है।

कलका ताँत (Fly shuttle loom)—१८वीं शताब्दीके शेष भागमें जाऊ के नामक साहबने इसका पहले पहल आविष्कार किया था। यह बिल्कुल विदेशी नहीं है; बंगला ताँतको ही कुछ नये ढंगसे सुधार कर यह तैयार किया गया है। असलमें उसके साथ इसकी पूरी समानता है। उत्तम जागधान तथा जालके काष्ठसे ही ये दोनों प्रकारके ताँत तैयार किये जाते हैं। लकड़ी खूब मजबूत एवं सूखी होनी चाहिये; नहीं तो थोड़े ही दिनोंमें उसके बेकार हो जानेकी सम्भावना रहती है। इसके कितने ही अंग प्रत्यंग होते हैं; किसी एक अंशके विगड़ जानेसे ही काम स्थगित हो जाता है।

#### व्यन-प्रक्रिया।

वस्त्र बुननेकी प्रथम सोड़ी सूता तैयार करना है। सबसे पहले सूताको व्यनोपयोगी बना लेना पड़ता है। प्रायः कारीगर-घरकी स्त्रियाँ ही सूता तैयार करती हैं एवं उसे सौंद कर बुननेके योग्य बनाती हैं। इसके बाद कारीगर उसे ताँत पर चढ़ा कपड़ा बुनना शुरू करता है। जब तक कारीगर उस तैयारी तानोको बुन लेता है तब तक उसको स्त्रियाँ दूसरी तानी तैयार कर देती हैं। पहले इस देशमें उच्च श्रेणीके हिन्दुओंके घरकी धर्मात्मा ब्राह्मण कायस्थ परिवारकी स्त्रियाँ चर्खा चलाया करती थीं। ब्राह्मण कुमारियोंके हाथका काता हुआ सूता आज भी विवाहादि शुभ कार्यमें व्यवहार किया जाता है। कबचादि धारण करनेमें भी कुमारीके हाथका काता हुआ सूता न होनेसे काम नहीं चलता। ये चर्खा कातनेके लिये बारोक एवं मोटे सूतेके हिसाबसे मेहनताना पाती थीं। उस समय एक पोले सूतेकी मजूरी छः आने तक थी। उस समय चर्खा होनेसे हम देशमें अन्न पत्रका दुख नहीं था। सगी धीन दुःखिनी

स्त्रियाँ चर्खा चला कर कुछ न कुछ रोजगार कर लेती थी। वृद्धोंके मुखसे अभी भी चर्खाकी प्रमायवापक इस तरहकी एक किंवदन्ती सुनी जाती है—

"चरला मेरा प्यारा नेटा, चरला मेरा नाती।

चरलेकी दौलतसे मेरे, दूरे मूने हाथी ॥"

लोगोंसे पता चलता है, कि उस समय चर्खेसे सूता तैयार करके कारीगरको देनेमें यह छः आने मजूरी ले कर जो कपड़ा बुन देता था, यह एकसाल तक उठरता था। इसका कारण यह था, कि उस समयके चर्खेसे काता हुआ सूता खूब पका होता था, उससे कपड़े भी आसानीसे बुने जाते थे। इससे गृहस्थोंको कपड़ेमें बहुत काम खर्च पड़ता था। चर्खाके बन्द हो जानेसे हमारे देशमें बहुत क्षति हुई है। कलका सूता बहुत कमजोर होता है। सुतरां उसे व्यनोपयोगी बनानेमें बहुत मजूरी देने पड़ता है। सूतेको सफ़्त चिकने एवं शृंखलायुक्त नहीं कर लेनेसे कपड़ा नहीं बुना जा सकता। कपड़ेकी लम्बाईके सूतेको तानी (Warp) एवं चौड़ाईके सूतेको भरनी (Weft thread) कहते हैं।

तानीका सूता (Warp) तैयार करनेके समय विशेष मनोयोगकी आवश्यकता है। तानीका सूता अच्छी तरह सौंद (मज) लेना चाहिये; भरनीका सूता (weft thread) कुछ कमजोर रहने पर भी उतनी क्षति नहीं होती, किन्तु तानीके सूतेका खूब सफ़्त एवं विचिम्न होना अत्यन्त आवश्यक है।

सूता-खोलना (Unlastening)—सूता खरीदनेके समय सूतेमें अधिक खण्ड हैं या नहीं, इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। प्रति पोलेमें ४०० सौ लच्छे होते हैं। सूने हो लच्छे करके पोलेसे अलग करना चाहिये। ठेहुनेके ऊपर पोला लगा कर लच्छा निकालनेमें सुविधा होती है। इसे ही सूता-खोलना कहते हैं।

सूताविघ्नन (Wetting)—एक बाटोके अन्दर खरब जलमें सूता-भोगनेके लिये रख देना चाहिये। तानेका सूता इस तरहसे तीन दिन तक भोगनेसे व्यनोपयोगी होता है। उसका पानी प्रत्येक दिन बदल देना चाहिये। भरनीके सूतेको एक दिनसे ज्यादा भोगनेकी आवश्यकता नहीं होती। सूता भिगानेसे मजबूत होता



द्वे, विष्णु इत्यन्तरे उभे मधिक दिनों तक पानीमें मोगने रहने देना उचित नहीं। रंगीन सूतेकी ज्यादा मिश्रणकी आवश्यकता नहीं।

**सूता लपेटना (winding the reels)**—चाँचे दिन अलममें सूता निकाल कर उसके गिरे पड़े लच्छोंकी डोक कर लेता चाहिये। इसके बाद उसे एक चरणी पढ़ना कर उस चरणीकी डेढ़ दो हाथकी दूरी पर रखना चाहिये। चरणीके सूतेकी दोनो हाथोंमें घोर कर लच्छेकी विलग विलग कर देना चाहिये। उन सूतेका जब एकमें उपादा छोड़ निकल पड़े तब उनमेंसे निकर एक एकको एक एक कर मारेकी एक पाटीसे एवं दूसरे दूसरे छोटीकी चरणीकी एक मोर बाँध देना चाहिये, नहीं तो चरणीके धूमनेके समय सूतेके बार बार टूटनेकी सम्भावना रहती है। इसके बाद 'घुमनी काटके' मध्य स्थित दुबान घेने सुराघामे मारेके दृष्टका भगवा दिग्गता रख कर एवं उमके दूसरे छोरेकी दाहिने हाथसे एक एक कर घुमनीकी द्वारा बरिसे दाहिनी मोर तथा भगवा उ'गलियो' द्वारा दाहिनीसे बाँधे और भिन्नेसे नाव सूब छोरीसे घुमने लगता है। उम समय बाँधे हाथकी घुमनी तथा तर्जनी द्वारा सूतेकी भगवान्नीसे एक एक रहना चाहिये। इससे सूतेमें किसी तरह की गड़बड़ी नहीं मसको।

**वीथ्यु लगाना (Piecing)**—घोच बीचमें सूता टूट जानेसे उन्हें नोचकी मोर या ऊपरकी मोर पानीसे बाँध देनेके लिये निम्नलिखित रीतिमें जोड़ लेना चाहिये। दो सूतोंके मजमागकी बाँधे हाथकी घुमनी तथा तर्जनी द्वारा एक एक कर दाहिने हाथकी उन्ही अंगुलियों द्वारा दबा कर बाँधे हाथकी अंगुलियोंमें भिन्नेना चाहिये, फिर उभे नोचकी मोर घुमा कर दाहिने हाथके सूतेमें मिला कर एक बार भिन्ने देना उचित है। इस तरह जोड़ने से सूतेमें प्रायः नहीं पड़ते, मध्य घे दोनो इस तरहसे जुट जाते हैं, कि दूसरी जगह मने ही टूट जाय विष्णु पद जोड़ नहीं विवर मसना। सूतेकी सूब अच्छी तरह नहीं जोड़नेसे कपड़ा बुननेके समय बहुत टूटने है।

सूता जोड़नेमें जो जुगहों एवं ताँतियोंमें जोड़ है। उनको मजमाग परस्पर विपरीत होती है। ऊपर सुझाई-

के सूता जोड़नेकी बातें लिखी गई हैं। दिग्गताकी बाँधे हाथकी घुमनी तथा तर्जनीके मध्य दोनो सूतोंके मजमाग ले कर नोचकी मोर भिन्ने कर ऊपरकी मोर जोड़ने है। बाँधकर सूता जोड़नेमें ताँतियोंकी सूता जोड़नेकी अच्छी रीति होती है एवं मोटा सूता जोड़नेसे जुगहोंकी।

**सूता पर सरैम चढ़ाना (Sizing)**—गाँदे सूतेमें भातका माँड़ मध्या चूड़े तथा लायेका मिला दूधा माँड़ एवं बाँधकर सूतेमें लायेका माँड़ व्यवहारमें लाते हैं। कडीतमें माँड़ रख कर बाँधे हाथसे सूतके लच्छे एक एक कर दाहिने हाथसे उसे विचराने हुए माँड़में इस तरह डुबोते हैं, कि सूता माँड़में अच्छी तरह तरबतर हो जाय और विशुद्ध लमी न होने पाये। इसके बाद छोटी चरणीके सिरे पर सूतेके लच्छे लगा कर देबड़गा के द्वारा पूर्ववत् नराई करनी चाहिये। केवल भातके माँड़में सूत पर सरैम दिया जाता था, इसलिये मात्र भी कितने बारीगर इस कार्यकी 'गातान' कहते हैं।

**तंतुकी सुखाना (Drying)**—नराई हो जानेके बाद उन्हें धूपमें सुखाना पड़ता है। सूत जानेके बाद पदलेकी तरह सूतेकी शील कर एक बाँध या मत्ता कर रख देना चाहिये। इस सब कार्योंमें जितनी श्रुतना रखी जायगी उतनी ही जटिलता कम होगी। यदि साफ़ा बाँधनेमें सावधान रहे मर्थात् धूपमें सूता सुखानेकी सुविधा न रहे, तब अन्तिके तापमें सूता सुखावा न मसता है। बदलोंके दिनोंमें बारीगर लोग प्रायः सूतेमें सरैम (माँड़) नहीं डूँते।

**छोटी (नरी) मरगा (Winding the bobbins)**—सूतेके सूब जाने पर उसके लच्छेकी बाँधे हाथके अंगुलियोंसे दबा कर एवं दाहिने हाथके छोरे मोरे भिन्ने कर अच्छी तरह उन्हा डूँते, इसमें माँड़में विवरके हुए सूत परस्पर विवर जायेंगे। इसके बाद उन लच्छोंकी चरणीमें पढ़ना देवे। फिर सूतके लच्छेमें जहाँ छोरे बाँधे रहता है, उसे शील कर गाँदेकी नरीमें (छोटी) में विवरका देवे एवं दाहिने हाथके मर्थात् नजाचें मोर बरिसे हाथकी दोनो अंगुलियोंसे सूत एक एक हुए नरी मरे। नरीके मध्य भागमें मोटा एवं दोनो बिनाये पढ़ना करके

सूत लपेटनेसे अच्छा होता है। नरियेमें उतना ही मोटा करके सूत लपेटना चाहिये जितनेसे वह सुगमतासे ढरकी-में प्रवेश किया जा सके।

तानेका क्रम सजाना और बार गूँथना—जितने जोड़ कपड़े एक बारमें तैयार करते हों, उनकी आवश्यकता-नुसार नरियाँ ( Bobbins ) भर कर ताना कल मध्यस्थित सौकोंमें पहनाये। इसके बाद प्रत्येक नरीके सूत-के छोरको बाहर करके एक बारके दो छोरोंके मध्यस्थ छेदोंके बीचसे हो कर बीच लेवें। इस तरहसे जितने नरियाँ हों, उनमेंसे आधी तो बारके छेदोंमें एवं आधी छोरोंके छेदोंमें प्रवेश कराके एक साथ गाँठ बाँध देनी पड़ती है।

ताना करना ( Warping )—तांती लोग एक साथ ४ जोड़े से ले कर १२ जोड़े तकका ताना जितने हाथ लम्बे कपड़े बुननेकी इच्छा हो, उससे डेढ़ दो हाथ अधिक लम्बा ताना करना चाहिये। ताना चौकोन किया जाता है। १० + ५ हाथके स्थानमें ४० हाथ लम्बा ताना किया जा सकता है। पहले दो नियमित स्थानोंमें ३ या ३॥० हाथके दो खूटे गाड़ने चाहिये। पहले खूटेकी बाँधें और ६ या ७ इञ्चका दूरी पर एवं दाहिनी ओर ३ छड़े, इसके बाद प्रत्येक २॥ या ३ हाथकी दूरी पर एक एक लाइनमें दो दो छड़े गाड़नी चाहिये। इसके बाद तानेकी कल ( Hobbin frame ) एवं बार ले आवें, सूतके छोरोंकी प्रथि बोल कर पहले खूटेंमें बाँध दें एवं बारकी दाहिने हाथसे पकड़ कर घसकाते ही सूता बाहर होगा। बाँधे हाथसे उसका एक प्रस्थ सूता पहलो छड़के मध्य और दूसरीके बाहर बर दें एवं दूसरा प्रस्थ सूता पहली छड़के बाहर और दूसरीके मध्य कर दें। इस तरहसे सभी छड़ोंमें सूता पहना कर पहले खूटेके पास आना होता है अर्थात् आधे सूत प्रत्येक छड़के बाहरकी ओरसे एवं आधे मोतरकी ओरसे छड़ोंमें पहनाने पड़ते हैं। किन्तु दोनों ओरके दोनों खूटोंमें इस तरहसे सूता न लपेट कर सिर्फ बाहरकी ओरसे ही घुमाना पड़ता है।

जिस ओर दो शरें गाड़े गये हैं, उस ओर ताना आरम्भ एवं जिस ओर तीन शरें गाड़े गये हैं, उस ओर समाप्त करना होता है। कपड़ा जितना ही चौड़ा करना हो, एवं जितना घना या पतला बुनना हो, उसी हिसाबसे सूतेकी संख्या भी ठीक करनी होगी। फिर कपड़ेके दोनों पाड़ोंके लिये सूते ठीक करके कल पर ताना चढ़ाना चाहिये, कारण यह है, कि कपड़ा बुननेके समय सूते कम बेश हो जाते हैं, इसलिये ताना करनेके समय ही सूते गिन लेने चाहिये एवं १०० सूतकी एकल कर गाँठ बाँध देनी चाहिये। कलही सहायतासे पाड़का ताना न करके अलग ही करना उचित है, क्योंकि पाड़ोंके तानेमें दोहरा सूता दिया जाता है अर्थात् दो छड़ोंको एक साथ करके नारेंमें लगा कर एवं उस दोहरे सूतेकी एक 'बावमा' चरबीमें लगा कर, चरबीकी बाँधे हाथसे पकड़ दाहिने हाथमें एक "हलकी" लेवें, फिर चरबीसे दोहरे सूतेका छोर बाहर करके "हलकी" की अंटीके मध्यसे पहले खूटेमें बाँधना होता है। इसके बाद हलकीकी सहायतासे ये सूत एक छड़के मोतरसे हो कर एवं दूसरी छड़के बाहरसे घुमावे। एक ओर पाड़का ताना समाप्त होने पर छड़ोंका क्रम क्रमसे उलटा कर गाड़ दें एवं दूसरी ओरके कार्य भी उक्त रूपसे सम्पन्न करना चाहिये।

पहले एक ओरके पाड़का ताना करके कपड़ेके शान्तिपाड़ या रंगोनपाड़का ताना समाप्त करेंगे, फिर दूसरी ओरके पाड़का ताना करनेके लिए छड़ोंकी घुमाना नहीं पड़गा। आज कल ताना करनेकी कल हो जानेसे यह काम बहुत सहज हो गया है एवं थोड़े ही समयमें ताना करनेका काम समाप्त होता है, नहीं तो दो जोड़े कपड़ेका ताना करनेमें डेढ़ दिन लग जाते थे। तानेके शेष हो जाने पर मोटे शरोंके बदले पहले 'जो शर' गाड़ने चाहिये एवं पहले खूटेमें लपेटे हुए सूतको काट कर जिस ओर दो शर हैं, उस ओरसे सावधानीके साथ 'जो शर' में बांध दें। जहाँ तीन शर हैं, वहाँ जा कर लगभग डेढ़ हाथ सूता बाहर रखें और उन सूतोंकी फैलाने हुए ऊपर तथा नीचे दोनों "चियड़" से एक बार फिर लपेट कर 'दड़ी' द्वारा 'चियड़' के साथ शरोंकी बांध दें। इसके

बाहू जो मोग 'जो जार' बाहर रह जाते हैं, उन्हें भी 'दश्री' के एक और पेंच दे कर जिस स्थान पर जैसा जार है, उन्हे उन्ही भाषणमें पेंच दे देंगे, जिसमें यह गिर न जाय। पेंच-य ये ताँबे 'जो' रहना ही पड़ेष्ट होगा, किन्तु किसी कारण बोलनेमें मूला षट् आनेमें भी असुविधा न होने पाये। इसलिये ताँबे मोग अधिक 'जो जार' रखे रहने हैं।

रांग भरना—ऊपर लिखे हुए तरीकेमें ताना नैपार कर लेने पर एक ऊँचे स्थान पर मूला बाँध कर ताम मोर मोग छुट्टे हैं उन मोर लटका देंगे। इसके बाद एक माग २०।२५ मूला एकत्रित छोटी बाँधो जायगी एवं उन श्रोतिविके मध्य एक 'पालायादो' नामा देवेमें सूत्रके फोन बालग बातग हो जायेंगे। इसके बाद कपड़े की चीटाईकी विधिचना करके राँच तथा कपड़ेके मध्य स्थान टीक करके 'पालायादो' के साथ 'राँच' लगा देंगे। एक मोरसे भौंटा मोर कर एक एक जोड़ा सूत राँचके प्रत्येक छिद्रमें घिरो देंगे। इसमें ही भादमिरीकी सायदकता होती है। एक भादमी सूत्रको राँचके छिद्रके पास रहना है और एक भादमी दूसरी मोरमें सुनरो द्वारा सूत्रको राँचमें घिरोना है। इस तरह विरोप सनकताके साथ राँच मरना होता है। राँचमें २०।३० सूत घिरोनेके बाद उन्हें एकत्रित कर बाँध दिया करें। कालमें भी (Milla) राँच भागमें इसी तरह दो भादमिरीकी सायदकता होगी है। उन्हें Boucher in एवं Drawer in कहते हैं। जोनाहोके नियममें राँच भरना सामान है, क्योंकि ये गिरा नहीं काटते, एक माघ जोड़ा सूत मिले रहनेमें एक भादमी ही राँच भर मरना है।

बराह मजना (Beaming)—यह विरोर सायपातो-के साथ मजनाहन करना चाहिये। राँच भर लेनेके बाद सुनरो को छोटी बाँध कर बाहरके मजान तथा राँच के मजनाहन कीक मिया देवे, फिर उनके मध्य एक काली कपड़े का बाहरके मजानके बाँध एक छुट्ट लगा देंगे एवं एक काली सुनरो को एक 'पालायादो' दे कर सुनरो को मजान पर रखें। अब बराहके छिद्रमें एक काली कपड़ेका एक काली कपड़े का सुनरो और एक भादमी को एक काली कपड़े का काली कपड़े का है कि नहीं, सुनरो

परीक्षा करने रहे, बीचमें सूत टोके न पड़ जायें या घिरेहुल कम हो न जाय, रश्मिसे एक एक पतली छुट्ट मजव मजव पर लगा दिया करें, जयना स्थान स्थान पर पत्ता या कागज रग दिया करें, जिसमें तानिके मूला ऊँचे मोधे म हो जाय, उसी तरहकी कयमगा करें। सुनाहें लोग जिस मोरमें राँच भरते हैं, उसी मोरमें मोजाका मूला लगते हैं और माग ही माग राँच दूसरी मोर ले जाते हैं। इस यथास्थान पर तंतु स्थापन करनेमें अधिक सुविधा होती है, किन्तु ताँबे मोग जिस मोरमें राँच भरते हैं, उसको विपरीत दिशामें मोजा लगाने हैं।

'ब' बाँधनेकी प्रणाली—मजानमें मूला मजानके बाद मजानके दोनों मोर दो मूलाके साथ कुछ ऊँचा कर के बाँधना पड़ता है एवं उसकी दूसरी मोर जो तारें पड़े हुए हैं, उनके दोनों मोर ६।१० इंच लम्बे दो मूले गाड़ कर इस तरहसे बाँध देगा चाहिये, जिसमें सब सूत समान भाषसे कम्बे रहें। ऊपर लिखे हुए स्थानोंके मोरों 'जो जामे'के छारा दो 'जो' (Lense) होते हैं, उनके बीच ही कर 'ब' बाँधना पड़ता है। पहले माघके 'जो'के अन्दर एक 'विपार' पटना कर सुना देवेमें ही सुनरोमें पतक डठ पड़ेगा। एक हाथकी चरमोमें 'ब' बाँधने का मूला पटना कर उस चरमोकी ३। या २ हाथकी मूला पर मिट्टीमें गाड़ देंगे। चरमोके सूतका अग्रभाग एक लम्बो छुट्टके निर्येते बाँध एवं 'जो'के अन्दर सुना कर सायपातामें दूसरी मोर बीच देंगे। सुनटके पहले दिक्केके छिद्रमें ३।३ हाथ लम्बा एक मोटा मूला बाँध देंगे सामनेपले 'जो'के अन्दर 'ब' बाँधे हुए मूलेकी बाहिरे हाथमें इस तरह उठाये। जिसमें 'विपार'के ऊपर ताने का एक एक मुच्छा सूत बिगड जाय। 'ब' मूला उधटा कर सुनटके ऊपर वाले छिद्रके माँचमें सुनाये। एवं छिद्रके माघ एक पेंच दे कर मूलेकी सुनटके मोधेमें ही कर सामनेकी मोर ले आनेमें एक सुनरो 'ब' बाँध जायगा। इस तरहसे एक एक करके 'विपार'के ऊपरी ममी मूलों के 'ब' बाँधने चाहिये। मजुवे छिद्रमें 'ब' बाँध चुकने पर सुनटके पली दिक्केके बाधमजान सुनेमें मुच्छा एक मोटी छुट्टके माग बाँध कर छिद्रके माँचमें 'ब' के मोर रखें। 'द' के अन्दर जार पटना कर उसके दोनों छोरोंके

इंडेके साथ पाँच देवें, इसके बाद ऊपर लिखे हुए तरीके-से दूसरे 'जा' के भीतर उक्त 'चियड' को पहनानेसे नीचे-वाले 'जा' के सूत ऊपरको उठ जाये गे एवं इस तरहमें इन सूतोंके भी 'ब' बाँधना हेमिग। इस तरह एक तरफको 'ब' बाँध चुकनेपर नराज उल्टा कर दूसरी ओर 'ब' बाँधे। इस ओर 'ब' बाँधनेके समय तंतु इस तरहमें 'जा'के अन्दर पहनाना पड़ता है कि, यही तंतुगुच्छा पहलेके वैसे हुए 'ब' के अन्दर दिया जा सके। तानेके पक्षसे अधिक तंतु 'ब' के अन्दर प्रवेश न कर जाय, उस पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

इसके बाद तानेकी करघे पर चढ़ा कर कपड़ा बुनना चाहिये। पहले पैडल (पाँव दान) दबा कर तानेमें फाँक उठानो पड़ती है। प्रत्येक धार ढरकी चलानेके बाद भरनीके तंतुओंको रचसे कस देना चाहिये। करघे दो प्रकारके होते हैं, पहला यह जिसमें कुर्मी पर बैठ कर कपड़ा बुना जाता है और दूसरा वह जिसमें भूमि पर ही बैठ कर ढरकी चलानो पड़ती है। इन दोनोंके 'हार्लूम' तथा 'पिटलूम' भी कहते हैं। 'पिटलूम' के कारोगर पाँव-दान रखनेके लिये करघेके नीचे गड्डे खोद रखते हैं। उसी गड्डेमें पाँव लटका कर वे कपड़ा बुनने बैठते हैं। 'हार्लूम' की अपेक्षा यह लूम सुविभाजनक होता है। इसमें तंतु अधिक नहीं दूटते।

नवाविष्कृत तांत तथा यन्त्रादि।

घर्त्तमान समय स्वदेशी आन्दोलनसे स्वदेशी पश्रोंका अधिक व्यवहार होनेके कारण देशी घंगला तांतोंकी यथेष्ट उन्नति हुई है। अनेकों विदेशी तांतोंका अनुकरण करके देशी तांतोंका किसी किसी विषयमें सुधार किया गया है। उनमें एक ही समय ५ वा १२ नटाइयोंमें सूता लपेटनेके लिये घर्त्तमान आविष्कृत तारिणीयन्त्र; एक ही धार एक ही पुंख्य द्वारा ६, १२ वा २४ तानाओंकी नरियोंमें चर्चोंकी सहायतासे सूता लपेटनेके लिये सरलायन्त्र (इसके द्वारा भरनी नरियोंमें भी सूता लपेटा जाता है) एवं साधु मिस्त्री-प्रवर्तित ताना करनेकी सुन्दर कल उल्लेखनीय है।

सूताचक्र वा New spinning wheel—इसमें ठीक सिलारोंकी कलकी तरह चेरपर बैठ कर पाँव चलाना

पड़ता है। तूलासे एक बारमें दो सूते भी तैय्यार किये जा सकने हैं।

आज तक जिनने नये तांत (Improved Handloom) तैय्यार किये गये हैं, नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१ जापानी तांत—(Japanese Handloom)—विलायती तांतोंकी अपेक्षा जापानी तांत अधिक कार्यकारी होते हैं। व्यक्तिगत हिसाबसे ये कार्य चलानेके उपयुक्त नहीं हैं।

२ हेटर्सली तांत—(Hattersly Domestic Handloom) देखने सुनने एवं मजबूतोंमें यह तांत बहुत अच्छा होता है। आज कल इसका दाम सस्ता करके १२० रु० कर दिया गया है। परन्तु इसके यांत्रिक अंश उतने आसान नहीं हैं, इसात् चियड जानेसे विपट्ट दूट पड़ती है, कार्य भी बन्द हो जाता है। इस कलसे दैनिक ८ घंटे काम करनेसे ४५ गज, ४४ इंच लंबे चौड़े कपड़े तैय्यार किये जा सकते हैं। इसको परिचालनाके लिये शक्तिशाली पुंख्यकी जरूरत होती है। कोई भी तीन घंटेसे अधिक काय करनेमें समर्थ नहीं होता। एंजिन द्वारा चलाये जाने पर ये विशेष उपयोगी होते हैं।

३ लाहोरका उन्नत तांत (Lahore Improved Handloom)—इसका निर्माणकाल उतना जटिल नहीं है। हमारे देशके जलवायुके लिये बहुत उपयोगी है।

विभिन्न प्रकारके विदेशी तांतोंका संक्षिप्त परिचय,—

४ Jacquard Looms of reed space 82" = इसके द्वारा टेविल ढकनेके नाना प्रकारके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

५ Drop Box Looms 85" with 1 shuttle = इसके द्वारा चैक, डोल, डोरिया, साड़ी प्रभृति धने जाते हैं।

६ Drill matings Looms 60" with 1 shuttle = जिन तथा ड्रिल प्रभृति कपड़े बुने जाते हैं।

७ Doby Looms 48" with 1 shuttle = किनारी (पाइ) में अक्षर, फूल तथा घेले वृत्ते काढ़े जाते हैं।

८ Dhuty Looms 48" with 1 shuttle = इससे धोनी तथा खाड़ी तैय्यार की जाती हैं।

बाद जो लोग "जो नर" बाहर रह जाते हैं, उन्हें भी 'दुर्ग' के एक और पैच दे कर जिस स्थान पर जैसा नर है, उन्हीं दुर्गो भाषणमें पैच दे देवे, जिसमें वह गिर न जाय। कंधन ये लोग 'जो' बनना हो संघट होगा, किन्तु जिसको कानून बाधमें मृता बट जानेमें भी अनुविषय न होने पाय; इसलिए तैसी लोग अधिक "जो नर" रचो रहते हैं।

राज भरमा—ऊपर लिखे हुए तरीकेमें ताना मीवार कर लेने पर एक ऊँचे स्थान पर मृता बाँध कर। इसमें और लोग छप्टे हैं उन और लटका देयें। इसके बाद एक साथ २०२५ मृत एकवित भौंठो बाँधी जायगी पय' हय भौंठियोंके मध्य एक 'पातापाटो' बना देनेमें मृतके फाँक मलय भाग्य हो जायेंगे। इसके बाद कपड़े की चीड़ाईको विवेचना करके राँच तथा कपड़ेके मध्य स्थान शीक करके 'पातापाटो' के साथ 'राँच' लगा देयें। एक मोरमें भौंठी कोल कर एक एक जोड़ा मृत राँचके प्रपेय: पिपुमें विरो देयें। इसमें दो भादूमियोंको भाषणयचना होनी है। एक भादूमो मृतको राँचके छिद्रके पास रहना है और एक भादूमो मृतको मोरमें सुनरी द्वारा मृतकी राँचमें गिरोता है। इस तरह विशेष सनकताके साथ राँच भरना होगा है। राँचमें २०३० मृत विरोके बाद उन्हें एकलिन कर बाँध दिया करे। कलमें भी (Mills) राँच भरनेमें इसी तरह दो भादूमियोंकी भाषणयचना होनी है। उन्हें Bencher in एवं Drower in कहते हैं। जोमाहीके नियममें राँच भरना सामान्य है, क्योंकि ये गिरा नहीं काटते, एक साथ जोड़ा मृत मिले रहनेमें एक भादूमो ही राँच भर सकता है।

मराज मजगा (Bearing)—यह विशेष सावधानीके साथ सम्पादन करमा चाहिये। राँच भर लेनेके बाद मृतके छोरीकी भौंठी बाँध कर बाहरके मराज तथा राँच का मध्यस्थान टोक सिद्धा देयें, फिर उनके मध्य एक पतली छप्ट दे कर बाहरके मराजके बाँध एक छप्ट लगा देयें पय' एक भादूमो मृतको और एक 'पातापाटो' दे कर मृतको कमा कर रखें। तब मराजके छिद्रमें एक ताका मयैरदेना भर लगा कर चुमयें मोर एक भादूमो मृत मयःस्थान पर बैठना जाता है कि गरी, इसकी

परीक्षा करते रहें। बीचमें मृत सोने न पड़ जायें कि बिदबुद्ध कम हा म प्राय, इसविधे एक एक पतली छप्ट समय समय पर लगा दिया करे, मयपा स्थान हलक पर पना या कागज रय दिया करे, जिसमें तलिके मृत ऊँचे मोंचेन हो जाय, उसी तरहकी व्यवस्था करें। कुछदि लोग जिस मोरमें राँच भरते हैं, उसी मोरमें मराजका मृता लगते हैं और माय ही माय राँच मृतको मोर में जाते हैं। इस यथास्थान पर तंतु स्थापन करनेके अधिक सुविषय होनी है, किन्तु तैसी लोग जिस मोरमें राँच भरते हैं, उसको विपरीत दिशासे मराज लगते हैं।

"ब" बाँधनेका यथाकी—मराजमें मृता मरानेके बाद मराजके मोरों मोर दो मूँटाके साथ कुछ ऊँचा कर के बाँधना पटना है पय' उसकी मृतकी मोर जो गिरो रहें हुए हैं, उनके मोरों मोर १।१० रंय लयें दो मूँटे गाड़ कर इस तरहसे बाँध देना चाहिये, जिसमें सब मृत समान भाषयें कमें रहे। ऊपर लिखे हुए स्थानोंके तैसी 'जो नरों'के द्वारा दो 'जो' (Lease) होयें हैं, उनके बाँध हो कर 'ब' बाँधना पटना है। पहले सामनेके 'जो'के अन्दर एक 'चियर' पटना कर चुमा देनेमें ही मृतोंमें फाँक उठ पड़ेगा। एक 'हाथकी चरगो'में 'ब' बाँधने का मृता पटना कर उस चरगोकी रू या २ हाथकी दूरी पर मिट्टीमें गाड़ देयें। चरगोके मृतका सम्मान एक लकी छहके निरैमें बाँध एवं "जो" के अन्दर चुमा कर सावधानीमें मृतको मोर बाँध लिये। मृतके पतले हिस्सेके पिपुमें ३४ हाथ लम्बा एक मोटा मृता बाँध देयें 'सामनेय'में 'जो'के अन्दर "ब" बाँधे हुए मृतकी बाँधिये हाथमें इस तरह उठाये जिसमें 'चियर' के ऊपर तलिके का एक एक गुच्छा मृत लिपट जाय। 'ब' मृता उठता कर गुच्छके ऊपर पाले छँके मोंचेमें सुनायें पय' छँके माथ एक पैच दे कर मनेकी गुच्छके मोंचेमें ही कर सामनेकी मोर ले जानेमें एक मृतका 'ब' बाँध जायगा। इस तरहमें एक एक करके 'चियर'के ऊपरी पाली मृतोंके "ब" बाँधने चाहिये। मृतके छँके "ब" बाँध चुमने पर गुच्छके पतले हिस्सेके माथ राँचम्य भरनेमें गुच्छा एक मोटी छप्टके साथ बाँध कर छँके मोंचेमें 'ब' के मोर रखें। 'ब' के अन्दर नर पटना कर उठाये होनी ऐसी

इंके साथ बांध देवे', इसके बाद ऊपर लिखे हुए तरीकेसे दूसरे 'जा' के भीतर उक्त 'चिपड़' को पहनानेसे नीचे घाले 'जा' के सूत ऊपरको उठ जाये 'गै एव' इस तरहसे इन सूतोंके भी 'ब' बांधना हेमिगे। इस तरह एक तरफके 'ब' बांध चुकनेपर नराज उल्टा कर दूसरी ओर 'ब' बांधे। इस ओर 'ब' बांधनेके समय तंतु इस तरहसे 'जा'के अन्दर पहनाना पड़ता है कि, वही तंतुगुच्छा पहलेके वंधे हुए 'ब' के अन्दर दिया जा सके। तानेके एकसे अधिक तंतु 'ब' के अन्दर प्रवेश न कर जाय, उस पर विशेष ध्यान देनेको आवश्यकता है।

इसके बाद तानेको करघे पर चढ़ा कर कपड़ा बुनना चाहिये। पहले पैडल (पाँव दान) दबा कर तानेमें फाँक उठानी पड़ती है। प्रत्येक धार ढरकी चलानेके बाद भरनोके तंतुओंको रचसे कस देना चाहिये। करघे दो प्रकारके होते हैं, पहला वह जिसमें कुर्सी पर बैठ कर कपड़ा बुना जाता है और दूसरा वह जिसमें भूमि पर ही बैठ कर ढरकी चलानी पड़ती है। इन दोनोंको 'हाईलूम' तथा 'पिटलूम' भी कहते हैं। 'पिटलूम' के कारीगर पाँव-दान रखनेके लिये करघेके नीचे गड्ढे खोद रखते हैं। उसी गड्ढेमें पाँव लटका कर वे कपड़ा बुनने बैठते हैं। 'हाईलूम' की अपेक्षा यह लूम सुविधाजनक होता है। इसमें तंतु अधिक नहीं टूटते।

नवाविष्कृत तांत तथा यन्त्रादि।

वर्त्तमान समय स्वदेशी आन्दोलनसे स्वदेशी धर्तोंका अधिक व्यवहार होनेके कारण देशी वंगला तांतोंकी यथेष्ट उन्नति हुई है। अनेकों विदेशी तांतोंका अनुकरण करके देशी तांतोंका कितो कितो विपयमें सुधार किया गया है। उनमें एक ही समय ५ या १२ नटाइयोंमें सूता लपेटनेके लिये वर्त्तमान आविष्कृत तारिणीयन्त्र; एक ही धार एक ही पुद्य द्वारा ६, १२ या २४ तानाओंकी नरियोंमें चर्खेकी सहायतासे सूता लपेटनेके लिये सरलायल (इसके द्वारा भरनी नरियोंमें भी सूता लपेटा जाता है) एवं साधु मिस्त्री-प्रचलित ताना करनेकी सुन्दर कल उल्लेखनीय हैं।

सूताचक्र वा New spinning wheel—इसमें ठीक सिलाईकी कलकी तरह चैवर पर बैठ कर पाँव चलाना

पड़ता है। तूलासे एक धारमें दो सूते भी तैय्यार किये जा सकते हैं।

आज तक जिनने नये तांत (Improved Handloom) तैय्यार किये गये हैं, नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१ जापानी तांत—(Japanese Handloom)—बिलायती तांतोंकी अपेक्षा जापानी तांत अधिक कार्यकारी होते हैं। व्यक्तिगत हिसाबसे वे कार्य चलानेके उपयुक्त नहीं हैं।

२ हटर्मली तांत—(Hattersly Domestic Handloom) देखने सुनने एवं मजबूतीमें यह तांत बहुत अच्छा होता है। आज कल इसका दाम सस्ता करके १२० रु० कर दिया गया है। परन्तु इसके यांत्रिक अंश उतने आसान नहीं हैं, इटावू विगड जानेसे विपद टूट पड़ती है, कार्य भी बन्द हो जाता है। इस कलसे दैनिक ८ घंटे काम करनेसे ४५ गज, ४४ इञ्च लंबे चौड़े कपड़े तैय्यार किये जा सकते हैं। इसको परिचालनाके लिये शक्तिशाली पुद्यकी जरूरत होती है। कोई भी तीन घंटेसे अधिक काय करनेमें समर्थ नहीं होता। एंजिन द्वारा चलाये जाने पर ये विशेष उपयोगी होते हैं।

३ लाहोरका उन्नत तांत (Lahore Improved Handloom)—इसका निर्माणकौशल उतना जटिल नहीं है। हमारे देशके जलचायुके लिये बहुत उपयोगी है।

विभिन्न प्रकारके विदेशी तांतोंका संक्षिप्त परिचय,—

४ Jacquard Looms of reed space 82" = इसके द्वारा रेविल ढकनेके नाना प्रकारके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

५ Drop Box Looms 85" with 1 shuttle = इसके द्वारा चेरू, डील, डोरिया, साड़ी प्रभृति बने जाते हैं।

६ Drill mations Looms 60" with 1 shuttle = जिन तथा ड्रिल प्रभृति कपड़े बुने जाते हैं।

७ Doby Looms 48" with 1 shuttle = किलारी (पाइ) में धरर, फूल तथा बेल वृटे काढ़े जाते हैं।

८ Dhuty Looms 48" with 1 shuttle = इससे घीनी तथा साडो तैय्यार की जाती हैं।

१. Drill on the Looms 18" with I shuttle - येनिको बन्दूके मैप्यार करकेके लिये ।

१०. Plain Looms 12" with I shuttle - इसमें प्रमान होनासे प्रभूति पुने जाते हैं ।

११. Drill on the Looms 12" with I shuttle - इसमें बर्मातु तथा बोटके रंग विरंगके बन्दूके मैप्यार किये जाते हैं ।

एक दिनां मानमें कितना स्वर्ध पक्षता है एवं उरलोका प्रकाशमें काल पाठानेमें कितना स्वाप होगी है, जवसाधा रणको जानकारके लिये उसमें भावपयको तातिका बोधे हो जातो है—

प्यार—देनी पञ्जारगाटल मान प्रोम तथा मरंजाम ४० य० एवं अनिक्क तंतु इत्यादि १० य० कुल जमा ५० य० ।

भाष—१ जोड़ा २० य० घोती मैपार करनेमें तीन दोहे तंतु लगते हैं, प्रति घोला छः आनेके हिस्सावमें एक स्वर्धे हो आने, तंतु इत्यादि एक आने, रंगीन तंतुके लिये इनके अनिक्क हो जाते, हर एक ओट्टेका स्वर्धे मान आने, कुल जमा एक स्वर्धे पुन आने ।

प्रति मद्राममें ४वे ले कर १२ जोड़े तक बन्दूके पुने जा सकते हैं । ४ जोड़े तंतुको यत्नोत्तम नियममें पाठानेमें जमाने कम ४ या ५ दिन लगते हैं । देहातो कारो-गारको तंतु पुने पर घोला प्रति १० य० १५ य० एवं पक्षते हैं । उस हिस्सावमें ४५ य० घेनन पर कारोप-सदृका भी मिलता है । तब भी इन वहां जेदु य०के हिस्सावमें घेनन जोड़ते हैं । दो स्वर्धे जोड़ा (द्व मोगीके स्वर्धे ५० य० जोड़ा विरता है ) घेननेमें प्रति जोड़ा छः आने अर्धान् मानिक ११०० या १२ य० पक्षते हैं । किन्तु पका कारोप न रहने पर प्रति दिन एक जोड़ा मैपार नहीं हो सकता । प्रति दिन तीन देवर मैपार किये जा सकते हैं, इन तोगीके मैपार ७ रमें ४ घोती तंतु मानेगे । प्रति घेनिके दाम ८ आनेके दिन ४वे २० य० हुए । तंतुके मध्याये मादू वर्ष रंग लभे । - ७ देवर एक पक्षामे मैपार होमे है । इनके मैपार होनेमें ५ दिन लगते हैं । इन दिवसमें—कोल कुल जमा ५५—७ प्रति जोड़ा देवर २५ य०के हिस्सावमें घेननेमें तीन देवर

या दाम ८५ य० होमा है । इस हिस्सावमें २५५ मैपार आनेका मानिक इत्यादि आने होमे है । ऊपर लिये हुए नियमोंके अनुसार प्यार तथा देवर पुननेवालीको मानिक ४५५ य० य०के ले कर २२५ य० तक होमा है । किन्तु पुनेवा-काय स्वर्धे दाम समान भावमें नहीं जयता एवं कारोप-को और और कार्य भी इधने पक्षते हैं, इसलिये एक दिवसमें भाव कुछ कम होमा है । इनके अनिक्क देवरको विरंगी तोग पार मानमें अतिर नही पक्षते, इन पारण स्वर्धे कारोपक इस तरह भाव नहीं कर सकते । किन्तु ही, अथक्यापन लालिपोंके पक्षते इत नियममें भाव करना कुछ समझ्य नही ।

विशेष तथा कथित्य ।

मर्यादि बगिन देनी तोगीका विरंगी देनी प्रका-का तुपार न होमे एवं उनमें कपड़े पुनेता मध्याव पश्चिमगाटल होने पर भी आने प्रायोगिकमें हो आनेके योग पर्याप्तिको मध्यापुता न कर पक्षते लुके से, इसमें कुछ मरहेत नहीं । भागनवागिनीके अथक्यापन, अट्टर पश्चिम तथा हलकीतन ज्ञान पक्षत दिन पक्षते ही जिन तखड़े बारीक, सुन्दर तथा बहुमूल्य कपड़ोंका प्रसार जवसाधारणमें हो शुक है, मंगारमें और भी कितने सपानोंं कम नरदके मियता नियमोंक वाधा नहीं जाता । मर्यादमें प्रका प्ररहेत घरमें अमथावक्यामे तीन विरंगन रहा है । यहाँको रमणियां मानो पैटिन मार्गानुपागिनी हो कर आने स्वर्धे पुन तथा श्लो मध्यावके लिये तपास तथा देनामें पक्षते, कलाय तथा ओट्टोमें प्रभूति पुना पक्षते है, किन्तु दामको पान देरि, ये कपड़े उनमें परिपक्षत परिपक्षत नहीं होने, उनमें कितने बहुत लीरे हावे है । आने तथा ज्ञानामे इन मानन देनामें निरंगका बहुत कारर बंधु भी गया है, किन्तु यह सभी लक्ष भावनेके नियमका मुकालेपना नहीं कर सकते है ।

पद्योि भावनधर्मके यथनियम एक प्रकाशमें पुन ही गया है, तथापि आज भी बयाम, तब, देजाय पाठानेके कित-एक यथनियमोंका निरंगन विरंगन है, उरि देरि कर पक्षत रहन होमा पक्षता है एवं इनके नियमका मुकालेपन विरंग-अनुपायन करनेमें हृदयमें एक अक्षय आनन्द होमा है ।

हुसका विषय है कि, अङ्गरेज कम्पनीकी अनुकम्पासे ऐसा सुन्दर गिल्ड भारतसे लुप्त प्रायः हो गया। मैजिस्ट्रेटकी वणिक्-समितिके प्रयत्नसाध्य-धोती तथा साड़ीके वाणिज्यकी रक्षा करनेमें धीरे धीरे इस देशकी ताँती जातिके विरपोपिन वाणिज्यकी जड़में कुटाराघात किया गया है। इस समय वे ताँती लोग हनाश हो कर उस तरहका उद्यम नहीं कर सक्ते। प्राचीन गिल्लिगण इस संसारसे अपच्युत हो चुके, सुनरां उनके साथ ही साथ भारतीय चम्बगिल्ड भी एक प्रकारसे जाता रहा। इस समय जो पुदुप अत्यन्त घेष्टा करके उस प्राचीन गिल्लिकीर्तिको जीवित रखनेमें गहनवान हैं, वे भी विदेशी बख्तकी तुलनामें लामसे हानिका अंश ही अधिक देख कर अपने अपने ध्यवसायसे हुताश हो रहे हैं। इस समय घेष्टगिल्डमें पूर्वाभिभा बही अधिक दीनता आ चुकी है। फिर भी इस श्रोहीन वाणिज्यके गौरवकी स्थिर रखनेवाले अभी भी अनेकों पुरुष विद्यमान हैं।

कागोके सुविषयात जरीके फीते, सोने वा चांदीके तन्तु द्वारा प्रस्तुत गुलबदार साडी, जामदाभी कामदानी तथा संसारके अनुलनीय किनाप चख्र अभी भी गिल्ड चानुष्यकी पराकाष्ठा दिखा रहे हैं। इन सब कपडोंमें प्रधानतः कपास वा रेशमी सूतोंके ऊपर जरीके फूल तथा येनवूट लिखे रहते हैं। सुहानपुर, महिसूर, अर्कट, दिल्ली तथा औरंगाबाद प्रभृति स्थानोंमें इस समय भी तन्तुगिल्ड के पयेष्ट बादर तथा चिल्लार देखे जाते हैं। मन्वादि लिखित उसी सुप्राचीन युगसे आज पद्यन्य भारतवासी सभी वर्णोंकी रमणियोंके मध्य चर्खा कातनेकी प्रथा देखी जाती है। इस समय भी ऊपर कहे हुए स्थानोंमें लिप्यां चर्खसे बारीक सूता तैयार करती हैं। १६वीं शताब्दीसे भारतवर्षमें इङ्ग्लैण्ड आदि कई एक पाश्चात्य तथा प्राच्य देशजात द्रव्योंकी आमदनी होनेसे देगी चर्खे द्वारा सूतेके प्रस्तुत तथा प्रजारमें अत्यन्त अवनति हुई है। किंतु तब भी जिन जिन स्थानोंमें रेशमी चख्र तैयार होते हैं, उन सब स्थानोंमें चर्खका पूरा प्रचार है।

बङ्गाळके अन्तर्गत मुग्लिदाबाद जिलेके बहरमपुर शहरमें देगी ताँतोंसे रेशमी गरद चख्र एवं मानभूम जिलेके रघुनाथपुरमें इस समय भी कोपेसे चर्खा द्वारा सूता कात

कर तसर-बख्र बुने जाते हैं। घोरभूम, बांङ्कुड़ा प्रभृति स्थानोंमें भा कोपेसे सूता तैयार करके नाना प्रकारके कपडे बुने जाते हैं।

इस समय मैजिस्ट्रेटकी कलसे काने हुए सूतेकी आमदनी अधिक होनेके कारण भारतकी रमणियोंने चर्खा चयना बन्द कर दिया है। देशो सूतोंके भावसे विलायती सूतोंका भाव सस्ता देख कर यहांके सम्भ्यसाम्राज अपनी कुल-कामिनियोंको चर्खा चलानेका कष्ट नहीं देने, वस्तुतः उसी विलासिताके प्रभावसे आज भारतमें विरदोनता आ उपस्थित हुई है। आज भारतवासियोंको अपने शरीर ढकनेके कपडे के लिये भी दूसरोंका मुंह जोहना पडता है। उच्च श्रेणीके शिक्षित तथा विलासी-भारतियोंने अपनी कुल-हामियोंकी चर्खा कातनेके कपडे उधार करके उनकी कमर ढकनेके कपडे नकाका भी अभाय कर दिया है। ताँतियोंने स्वार्थदान देण कर जातीय ध्यवसायकी अन्त-जलि दे दी। वे भी अब धर्य परिश्रम करके स्वदेश विरागी विदेश-भक्त भारतियोंके अनुग्रहकी आशा प्रत्याशा नहीं रखते, यही कारण है कि, इस देशमें इतने समयके बाद वस्त्र-चयन-शिल्पका इस तरह अधःपतन हुआ है। पहले जिन शिल्पोंके लिये सारा भारत, इतना ही नही सारे सम्भ जगत् लालायित होते थे, आज वे शिल्प भारतसे विलुप्त हो गये। उनके बदलेमें एवं उन्हींके अनुकरणसे अङ्गरेज वणिक्-समितिके अनुग्रह द्वारा आज भी सादा तथा डोरदार डोरिया, मलमल, अघवानि, सुदस, अदो प्रभृति सुन्दर बारीक कपडे बङ्गालसे प्रेरित होते हैं।

ढाकाके उस सुविषयात मसलिन कपडे की बात याद करनेसे एवं बङ्गालकी गौरवकीर्त्तिका इतिहास पढ़नेसे जान पड़ता है, कि एक समय बङ्गालकी ताँती-जाति चख्र-चयन-शिल्पकी सबसे ऊँची सीढ़ी तक पहुँच गई थी। १६वीं शतीके मध्यभागमें अङ्गरेज याली-रलफ, फिच, सुवर्णग्राममें आ कर यहांके कपास-चख्र-वाणिज्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर गये हैं। उस समयकी बंग-राजधानी ढाका शहरमें जो कपासके बारीक कपडे तैयार किये जाते थे, वे 'ढाका-मसलिन' के नामसे पुकारे जाते थे। वे कपडे मुगलोंके नगरके मसलिन कपडोंसे भी कही-अच्छे होते थे। अभी भी यूरोपके



विभिन्न माटोमें उमकी ही लकन पर समझिन मैवार किये जाते हैं एवं मासवर्षमें भेजे जाते हैं । अमली टाका समझिन' बहुत विषयों होता था, धमिकीके सिवा कोई उम नहीं खरीद सकता था । सुना जाता है, कि तुर्की-सुल्तान 'टाका समझिन' को ही पगड़ी पहनते थे ।

टाकाके मूल्य समझिकके तंतुको वर्षवैधान बरके पारंपार्य परिष्कृत लोग माना प्रचारके मान प्रकाश करते हैं । उमकी जालीयता बरतेमें हम लोग धोमासोमें प्रायोजक पत्नीही मूल्यता तथा उम समवके कारोपरीको कार्यान्वितताका परिणव वा सकते हैं । सि० डेव्लर लिखते हैं, कि टाकाके कारोम पर यद्यपि पत्नीको बान बर जो बावीर तंतु मैवार करते थे, उमका ७७ छरीर पतन-का दर को १० तंतु लम्बा करनेमें १५० मीटरकी दूरी तक पला जा सकता था । स्वाभाविक जीव तथा जालीयता-प्रधान स्थानोंमें कपासका तंतु बालतेसि ज्ञान बढ़ता है, देना ८४ बर टाकाके लोको लोग तुबहके समय मूर्खों-द्वयके पदते ही खाली जाता करते थे । सिम समय वायु अवेष्टाकृत गुणक हो जाती थी उम समय ये लोग पत्नीके गोमि मल रज कर कापे करते थे । उममें वायु ऊर्ध्वनिष्ठा हो बर कर्के कांडको नगी बर देती थी । इसके बाद प्रातःकालमें ही बर ३ वा ४ बजे तक उमकी त्रिधा तंतु फालती थी । मध्ययके समय ३ वा ४ बजेमें ही बर मूर्खीय होनेके साथ चट्टा पूर्ण पंचेल तंतु जाता जाता था । सा० पाटसनमें टाकाई, फासो, तथा बहुलिज तंतु-को अष्टोत्तरह परीक्षा करने दिखाते हैं, कि इन सबोंको अवेष्टा टाका-समझिकके तंतुके स्थान बही बन होता था वगैरे मूर्खीय तंतुको अवेष्टा पत्नीके टाकाई तंतुके देतेमो बही बन देते जाते थे, किन्तु टाकाई तंतुके देती बर बरान मूर्खीय तंतुको अवेष्टा बड़ा होता था । इन ही कारोमें ही टाकाके तंतुमें सूक्ष्मता तथा दृढ़तामें अत्यन्त समी देतीके तंतुको उत्तम विधा दे- सीर भी विरहितता बर है, कि कर्के देती मीरे देतेके बरान वगैरे पत्नीमें तंतु बराने मूर्खीय तंतुको अवेष्टा बही

पद्य तुमको विस्तृत भाषणे' है । कातोमें देतोमो लकन कासमके तंतु पर जालका बाम की हुई प्यदार वा- मुलबदार साट्टी मैवार होती है । पत्नीयान टाका म्पत्नी मो पकसाय मूल्यकपास पद्य तथा माना प्रचारके सोपानको बपड़ेके ऊपर जालके मूल्यदार पाट्टेके बपड़े मैवार होते हैं ।

इनके अतिरिक्त मर्यादा तथा बर्षों में विदेशोंके बड़े स्थानोंमें पद्यवपनके बड़े बड़े शहरवाते हैं । मुम्ब-रान अष्टादावाद, मूरम तथा मरोचमें माना प्रचारको छोटकी व्याधियाँ मैवार होती हैं । रंगपुरमें माना लकन काट्टे मूल्य पर प्रचारका मूल्य छोट मैवार विधा जाता है, उममें माना प्रचारके वीरालिक निज देते जाते हैं । पुना, मेवकला, भासिक तथा पारपारोमें माना प्रचारको रंगीत तंतुको म्पत्नीय मैवार होती है जो मदासट्टीके रज-लिपीके सिधे बड़े साट्टीके पत्नी' है । मदीर, मुरकन, पनपरम्, अमरनिना तथा अरनीमें माना भा टाकाके समान ही समझिन मैवार किये जाते हैं । यकारका साट्टी पोथी, कि पाद म्पूति बपड़ेके समान पैशन, मुदासट्टी नाटावपपेट, पनपरम्, वेवकला म्पूति स्थानोंमें भी बपड़े मैवार किये जाते हैं । कासोद, नूरपुर, तुपियाला, अमृतसर म्पूति स्थानोंमें पत्नीको जाल बुने जाते हैं । रंग-पुर, मासलपुर, वाराणसी, भागत, लखनऊ, बरौली, लक-हण्डू, लाहीर, मुल्तान, दिवार म्पूति स्थानोंमें बपाम तथा पत्नीके कापेट मैवार होते हैं । साधापत्नी बपाम-के कापेट भाट्टी तथा पद्यप्रक्रियाके अर्थ में मूर्खीय तथा मुनीया ( Cotton pile carpet ) के नामसे बुनाई जाते हैं । पत्नीके सिधे ऊर्ध्व होकर मूर्खीय ( Woollen pile carpet ) कहलाता है । मदासीमूल्यके छोट, पद्य-पोर तथा कापेट वर्ण गोदापरी दे:सार्थिकर लकन-पद्यम नामक स्थानमान साट्टीपाद्यम छरक बर, बूडका-मुट्टा' रूपमें माना माने हैं । साधवपपत्नी अर-के बपटे बुने मदा जाते । अमूरक बालिक लोग भी इन पत्नीके इन्तरे पर छेदके सिधे बही कांडी कोमो-नी । पोटे मूर्खीय म्पूति ही बर माने देतीम साट्टीका-मैवार बरके पत्नी मिलते हैं । टाकाका विषय है, पत्नीमें जाते हैं म्पत्नीय म्पत्नीय

बहुला (संस्कृत-भाषिण्युर, बरौली)

राज भी भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें वयन-  
शिल्पका यद्येष्ट समादर है। कहीं उत्तम कार्पेट, कहीं  
उत्कृष्ट गलीचा, कहीं कपास तथा रेशमके धारोक कपड़े  
कहीं पशमोने शाल तथा कम्बल एवं किसो किसी स्थान  
में जरी सलमा प्रभृतिके पाड़ तैयार किये जाते हैं। नोचे  
उत्पन्नवस्त्रादि तथा उनके स्थान और विभागोंके नाम  
निर्देश किये गये हैं।

अजमेर, अलाई, अलोगढ़, इलाहाबाद, अलवर,  
अम्बाला, अमृतसर, अतन्तपुर, अन्धगाँव, अर्कट, अदोनी,  
आगरा, अहादाबाद, अरनो, आरा, आसाम, औरंगाबाद,  
आजमगढ़, अगरू, अहावरी, अराइच, अंगलूर, आंकुड़ा,  
अन्नू, आराचंकी, अराहनगर, अराड़, अर्द्धमान, अरेली,  
अहरमपुर, अमन्दाज, अरदमपुर, अुरिदाबाद, अडोदा, अस-  
हर, अस्ती, अताला, अक्सर, अेलगाम, आरणमी, अचुआ,  
आगलपुर, अण्डारा, अहवलपुर, अेरा, अिकानेर, अोर-  
मूम, अिथुपुर, अगुड़ा, अम्यई, अरोच, अुलन्दशहर, अुर्हान-  
नपुर, अलकसा, अलीकट, अाम्ने, अानपुर, अम्ना, अम्पा-  
रण, अम्दा, अम्देरी, अलिसगढ़, अिगलपत, अकानाड़ा,  
अञ्जीपुर, अड़ाया, अठरू, अाका, अरभंगा, अतिया, अिल्ली,  
अेरागाजीबा, अेरास्माश्लबा, अरवार, अिनाजपुर, अेन-  
गर, अेगांछी, अेलम्यई, अेलोरा, अरुखाबाद, अिरोजपुर,  
अेदावरी, अाजमहेन्द्री, अोलकराडा, अुण्डद, अुगीरा, अुज-  
रानवाला, अुजरात, अुलवर्गा, अुददासपुर, अालिधर,  
अया, अैराबाद, (अक्षिणात्य) अैराबाद, (अिन्ध) अमा-  
मकुंड, अर्दा, असनअवदल, अजारा, अिसार, अेसंगाबाद,  
अवडा, अुसियारपुर, अन्दाना, अन्दोरा, अन्दुर, अावेपेट,  
अम्बलपुर, अाकरांज, अहानाबाद, अहंगीराबाद, अयपुर,  
अालपुर, अालम्यर, अममलमदुगू, अंग, अांसी, अीलम,  
अोधपुर, अेडा, अालादागी, अालहस्ती, अलमी, अनोज,  
अंगडा, अराची, अरौली, अर्णाल, अर्णूल, अाश्मीर,  
अीनगर, अूसूर, अाडियाबाद, अंजवाना, अण्णा, अोहाद,  
अोटा, अोट अमालिया, अुम्मरौनम्, अाहौर, अलितपुर,  
अोहारडगा, अलमऊ, अुधियाना, अमन्दाज, अथुरा, अल-  
घार, अालदद, अालेगाम, अानभूम, अण्णपुर, अललीपट्टम,  
अऊ, (आजमगढ़) अऊ (आंसी) अेदरपाक, अीरद, अेद-  
नोपुर, अिर्जापुर, अोरदाबाद, अल्लारी, अन्दसौर, अथुरा,

अुजपफरगढ़, अुजफरनगर, अहिसुर, अामा, अदिया,  
नागपुर, अेपाल, अूरपुर, अर्छा, अाधना, अालमकोट,  
अटियाला, अटना, अीनी, अेशावर, अूना, अतापगढ़, अूरी,  
अल्लाम, अल्लगिरि, अालविंडी, अेबादंड, अीवा, अहतक,  
(अंजाव) अालेम, अंवलपुर, अंबवर, (अाश्मीर) सादनेर,  
अान्णपुर, अारण, अारंगपुर, सातक्षीरा, सावन्तवाडी,  
अिउनी, अाहपुरमशौली, अियालकोट, अिकन्दराबाद,  
अिकारपुर, अोलापुर, अिमला (अंजाव), अिंहभूम, अीर्षा  
(अंजाव), अीतामढी, अुलतानपुर (अंजाव), अूरत, अाञ्जोर,  
अाना, अिलोवानाथ (अंजाव), अिरूपपिलियम, अीडगढ़,  
अाटरा, असिरहाद, अिवफोर, अिचिनपल्लो, अञ्जीनी,  
अंगवाडो (अमन्दाज), अिशालपाटम, अुदाचलम्, अल्लान  
(अमन्दाज), अेवला, अरंगल, अेरोचदा, अेलगाण्डल।

रेशमी वस्त्रके मध्य अंडी, मूंगा, टसर तथा गरद  
की घोती, साड्डों, चादर, पीताम्बर, मसरू, सतरंजो  
दोपट्टा, गुलबदन, क्माल, ओढ़ना, हवाके कपड़े, लुंगी,  
खेश, मैलला, पड़ा, वड़ाकपड़ा, टुकाडिया, रिहा, गमछा,  
तोषाले इत्यादि कपड़े हैं। पशमी वस्त्रके मध्य राम-  
पुरो तथा काश्मीरी शाल, रामपुरी चादर, अलवान, अक-  
तारा, मलीदा, लुंगी प्रभृति हैं।

कपास एवं रेशमका पशमादि मिश्रित वस्त्र—गर्भ सूती  
(वांकुड़ा तथा मानभूम), आसमानो (वांकुड़ा), वाफता  
(आगलपुर), मैलली (रंगपुर), अजीजउल्ला या अजीज  
(ढाका), सेराज (ढाका), सादा तथा लाल असमानो  
सेराज, मल्लोकांटा, सवजोकतार, लालकतार, बुलबुल  
छासम, लालकदमफूली, सादा कदमफूली, काला-  
पाड़दार, लाल पाड़दार, सर्षार, सेराज, सादा-पड़ाकदम-  
फूली, सफेद-करदार, लाल करदार, काला मल्लोकांटा,  
कंदानीमस्तरू, सुताखानि, इन्डाइछा, लुंगी, अन्दकला,  
दुपट्टा, सूते इत्यादि हैं।

छोटके कपड़े—गाजि, गाड़ा, घोतीजोड़ा, फट्टे, रजाई,  
लिहाफ, पलंगपोपे, बुन्दुदी, बन्दसूर्य, जाजिम, फरास,  
सामियाना, छीट जरदा, तोशक, छीट-कन्दो, छीट वूटे-  
धार, खेरूआ, नधनी, चपेटा, छोट आग्रावाला, गोल वूटो,  
तीलिया, शालू, अुनरो, अग्रा, कलमदार, धूपछांड, अयूर-

विभिन्न राज्यों में उनकी ही नकल पर मसलिन तैयार किये जाते हैं एवं भारतपर्यंत भेजे जाते हैं। असल्यो 'ढाका मसलिन' बहुत किमती होता था, धनिकोंके मिथा कोई उमं नहीं खरीद सकता था। सुना जाता है, कि तुर्की-सुल्तान 'ढाका-मसलिन' को ही पगड़ी पहनते थे।

ढाकाके सूक्ष्म मसलिनके तंतुको पर्यवेक्षण करके पाश्चात्य पण्डित लोग नाना प्रकारके मत प्रकाश करते हैं। उनकी भालोचना करनेमें हम लोग आसानीसे मानवीन यन्त्रोंकी सूक्ष्मता तथा उम समयके कारीगरोंको कार्यनिपुणताका परिचय पा सकते हैं। मि० डेलर लिखते हैं, कि ढाकाके कारीगर पूरे पल्लमें चलोंको कात कर जो धारीक तंतु तैयार करते थे, उसका ७॥ छटांरु घजनका एक पोला तंतु लम्बा करनेसे १५० मीलकी दूरी तक चला जा सकता था। सामायिक शीत तथा जलोष्णारण-प्रधान स्थानोंमें कपासका तंतु कातनेसे शोष बढ़ता है, पैसा कह कर ढाकाके ताँती लोग सुबहके समय सूर्योदयके पहले ही चर्गा फाना करते थे। जिस समय वायु अपेक्षाशून्य शुरु हो जाती थी उम समय वे लोग चर्गके नीचे अल रफ कर कार्य करते थे। उससे वायु जलसिक हो कर रुईके धाँजको नर्म कर देती थी। इसके बाद प्रातःकालसे ले कर ६ या १० बजे तक उनकी स्त्रियां तंतु कातती थीं। मगध्याके समय ३ या ४ बजेसे ले कर सूर्यास्त होनेके आध घण्टा पूर्व पर्यन्त तंतु काता जाता था। २० घाटसनने ढाकाई, फरासी तथा इङ्ग्लिश तंतुकी अच्छी तरह परीक्षा करके लिखा है, कि उन सबोंकी अपेक्षा ढाका-मसलिनके तंतुके ब्यास कहीं कम होता था एवं यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा अत्येक ढाकाई तंतुके रेशे भी कहीं कम देगे जाते थे, किन्तु ढाकाई तंतुके रेशेका ब्यास यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा बड़ा होता था। इन दो कारणोंसे ही ढाकाके तंतुने सूक्ष्मता तथा दृढ़तामें अन्वय्य समी देशोंके तंतुको परास्त किया है। और भी विशेषता यह है, कि रुईके रेशे मोटे होनेके कारण एवं चर्गसे तंतु बाने जानेसे ढाकाई तंतुमें यूरोपीय तंतुगोंकी अपेक्षा कहीं अधिक अमेडन रहता है। जमो भी फराम-डह्ला (बन्दनगर), मिमला (बलकता), बगड़ी, गजोर, शान्तिपुर, बन्में, राधापताभपुर प्रभृति स्थानोंमें कपास-

पल्ल धुननेकी विस्तृत भाङ्गने हैं। कानोंमें रजमो तथा कपासके तंतु पर जरोका काम की हुई फूलदार या गुलबहार साड़ी तैयार होती हैं। वर्त्तमान ढाका शहरमें भी एकमात्र सूक्ष्म कपास पल्ल तथा नाना प्रकारके नोलाभ्यरी कपड़के ऊपर जरोके फूलदार पाड़के कपड़े तैयार होते हैं।

इनके अतिरिक्त मद्राज़ तथा बम्बई प्रेमिडेन्सोके कई स्थानोंमें घग्गवयनके बड़े बड़े कारखाने हैं। गुजरात अलदाबाद, सूरत तथा भरोचमें नाना प्रकारकी छींटकी साड़ियां तैयार होती हैं। रंगपुरमें लाल तथा काले रंगमें एक प्रकारका सुन्दर छींट तैयार किया जाता है, उसमें नाना प्रकारके पौराणिक चित्र देये जाते हैं। पुना, घेयकला, नासिक तथा धारधारमें नाना प्रकारकी रंगीन तंतुकी साड़ियां तैयार होती हैं जो महाराष्ट्रकी रमणियोंके मिथे बड़े भाद्रकी चाजे हैं। नर्दूर, मुतकल, धनवरम्, भगरचिन्ता तथा बरनीमें आज भी ढाकाके समान ही मसलिन तैयार किये जाते हैं। यनारसी साड़ी धोती, किंदाय प्रभृति कपड़ोंके समान पैडान, सुहानपुर नारायणपेट, धनवरम्, घेयकला प्रभृति स्थानोंमें भी कपड़े तैयार किये जाते हैं। काश्मीर, नूरपुर, लुधियाना, अमृतसर प्रभृति स्थानोंमें पजमो शाल धुने जाते हैं। रंगपुर, भागलपुर, याराणसी, आगरा, लखनऊ, बरेली, फतहगढ़, लाहौर, मुलतान, दिमार प्रभृति स्थानोंमें कपास तथा पजमके कर्पेट तैयार होते हैं। साधारणता कपासके कर्पेट भाकृति तथा प्रथमप्रियाके मेरुमें गलीचा तथा दुलीचा (Cotton pile carpet) के नामसे पुकारे जाते हैं। पजमो रेशे ऊँचे होनेसे गलीचा (Woolen pile carpet) कहलाता है। मच्छलीपट्टमके छींट, पयमपोर तथा कर्पेट एवं गोदावरी डेस्टासिडत साधमपलम नामक स्थानत्रात साडापालम आज कल 'वृदिग-शुद्ध' रूपमें भारतमें बाने हैं। माधवपलममें सब वे कपड़े धुने नही जाते। भङ्गरेज पाँचक लोग तो इन पखोंको इतारे पर लेनेके लिये यहाँ फोटी कोठी खोली थी। पीछे बनीका नमूना ले कर अपने देशसे साडापालम पल्ल तैयार करके यहाँ भेजते हैं। दुःखका विषय है, कि उहाँ लोकोके जरिये इस स्थानका घग्गवाणस्य धुना हो गया है।

आज भी भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें वयन-शिल्पका यथेष्ट समादर है। कहीं उत्तम कार्पेट, कहीं उत्कृष्ट गलीचा; कहीं कपास तथा रेशमके बारीक कपड़े कहीं पशमीने शाल तथा कश्मील एवं किसी किसी स्थान में जरी सलमा प्रभृतिके पाइ तैयार किये जाते हैं। नोचे उत्पन्नयस्त्रादि तथा उनके स्थान और विभागोंके नाम निदेश किये गये हैं।

अजमेर, अलाई, अलोगढ़, इलाहाबाद, अलवर, अम्बाला, अमृतसर, अतन्तपुर, अन्धगाँव, अर्कट, अदोनी, आगरा, अहादाबाद, अरनो, आरा, आसाम, औरंगाबाद, आजमगढ़, बगरू, बहावरी, बराइच, बंगलूर, बाँकुडा, बन्नु, बाराबंकी, बराहनगर, बरांड, बर्दमान, बरेली, बरहमपुर, मन्द्राज, बरहमपुर, मुर्शिदाबाद, बडोदा, बम-हर, बस्ती, बताला, बक्सर, बेलगाम, बाराणसी, भजुआ, भागलपुर, भण्डारा, बहवलपुर, मेरा, बिकानेर, बीर-मूम, बिष्णुपुर, बगुडा, बम्बई, भरोच, बुलन्दशहर, बुर्हानपुर, कलकत्ता, कालीकट, काम्बे, कानपुर, चम्पा, चम्पारण, चन्दा, चन्देरी, छत्तिसगढ़, चिं गलपत, काकनाडा, काञ्चीपुर, कड़ापा, कटक, ढाका, दरभंगा, दतिया, दिहौ, देरागाजीबाँ, देरास्माइलबाँ, धरवार, दिनाजपुर, दीन-गर, दीगाँछी, पलम्बई, इलीरा, फरख़ाबाद, फिरोजपुर, गोदावरी, राजमहेन्द्री, गोलकराडा, गुल्ड, गुरीरा, गुज-रानवाला, गुजरात, गुलबर्गा, गुकदासपुर, ग्वालियर, गया, हैदराबाद, (दक्षिणात्य) हैदराबाद, ( सिन्ध ) हमा-मकुंड, हर्दा, हसनअवधूल, हजारा, हिसार, होसंगाबाद, हवड़ा, हुसियारपुर, इन्दाना, इन्दौरा, इन्दुर, आवेयवेट, जम्बलपुर, जाफरगंज, जहानाबाद, जहांगीराबाद, जयपुर, जलालपुर, जालन्धर, जम्ममदगुडू, भंग, भाँसी, भीलम, जोधपुर, खेड़ा, कालादागा, कालहस्ती, कलमी, कनोज, कांगड़ा, कराची, करौली, कर्णाल, कर्णूल, काश्मीर, धीनगर, कसूर, काठियावाड़, अजयाना, कृष्णा, कोहाट, पोटा, कोट कमालिया, कुम्भचौनमू, लाहौर, ललितपुर, लोहारडगा, लखनऊ, लुधियाना, मन्द्राज, मथुरा, मल-घार, मालदह, मालेगाम, मानभूम, मणिपुर, मछलीपट्टम, मऊ, (आजमगढ़) मऊ (भाँसी) मेदरपाक, मीरट, मेद-नोपुर, मिर्जापुर, मोरादाबाद, मल्लारी, मन्दसौर, मथुरा,

मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरनगर, महिसुर, नामा, नदिया, नागपुर, नेपाल, नूरपुर, उच्छाँ, पाषना, पालमकोट, पटियाला, पटना, पीनो, पेशावर, पूना, प्रतापगढ़, पूरी, रत्नलाम, रत्नगिरि, राधलपिंडी, रेवाडंड, रोवा, राहतक, (पंजाब) सालेम, संवलपुर, संवर, (काश्मीर) सादनेर, शान्तिपुर, सारण, शारंगपुर, सातक्षौरा, सायन्तवाची, शिउनी, शाहपुरमिशौली, शियालकोट, सिकन्दराबाद, शिवापुर, शोलापुर, सिमला (पंजाब), सिंहभूम, शीपां (पंजाब), सोतामढी, सुल्तानपुर (पंजाब), सूत, ताञ्जेर, धाना, तिलीवानाथ (पंजाब), तिरुपलियम, तौङ्गढ़, टाटरा, बसिरहाट, त्रिबंकोर, त्रिचिनपल्ली, उज्जैनी, रंगवाड़ो (मन्द्राज), विशालपाटम, वृद्धाचलमू, बल्गाज (मन्द्राज), जेयला, वरंगल, जैरोचदा, जेलाण्डल।

रेशमी वस्त्रके मध्य अंडी, मूंगा, टसर तथा गरद की धोती, साड़ी, चादर, पीताम्बर, मसरू, सतरंजो दोपट्टा, गुलबदन, रुमाल, ओढ़ना, हवाके कपड़े, लुंगी, खेश, मेखला, पड़ा, बड़ाकपड़ा, टुकाठिया, रिहा, गमछा, तोयाले इत्यादि कपड़े हैं। पशमी वस्त्रके मध्य राम-पुरो तथा काश्मीरी शाल, रामपुरी चादर, अलवान, एक-तारा, मलीदा, लुंगी प्रभृति हैं।

कपास एवं रेशमका पशमादि मिश्रित वस्त्र—गमूं सूती (वांकुडा तथा मानमूम), आसमानो (वांकुडा), वाफना (भागलपुर), मेतली (रंगपुर), अजीजउल्ला या अजीज (ढाका), सेराज (ढाका), सादा तथा लाल असमानो सेराज, मछलीकांटा, सयजोक्तारा, लालकतार, बुलबुल छामम, लालकदमफूली, सादा कदमफूली, काला-पाइदार, लाल पाइदार, सर्भार, सेराज, सादा-बड़ाकदम-फूली, सफेद-करदार, लाल करदार, बाला मछलीकांटा, कंबनीमस्तरू, सुताखानि, इन्डिआ, लुंगी, चन्द्रकला, दुपट्टा, सूती इत्यादि हैं।

छोटके कपड़े—गाजि, गाड़ा, घोतेजोड़ा, फदं, रजाई, लिहाफ, पलंगपोथ, बुन्दुदी, बन्दसूखी, जाजिम, फराम, सामियाना, छींट जरदा, तोजक, छींट-रन्दी, छींट वूटे-दार, खेकूशा, नयनी, चपेटा, छोट आग्रावाला, गोल वूटो, तीलिया, शालू, चुनरी, अग्रा, कलमदार, घूणछाँद, मयूर-

विभिन्न राज्यों में उनकी ही नकल पर मसलिन तैयार किये जाते हैं एवं भारतवर्ष में भेजे जाते हैं। असली 'टाका मसलिन' बहुत किमती होता था, धनिकों के मिया कोई उम्र नहीं परोक्ष सकता था। सुना जाता है, कि तुर्की-सुल्तान 'टाका-मसलिन' को दो पगड़ी पहनते थे।

टाकाके सूक्ष्म मसलिनके तंतुको पर्यवेक्षण करके पाश्चात्य परिद्धत लोग नाना प्रकारके मत प्रकाश करते हैं। उनकी झालीनता करनेमें हम लोग आसानीसे प्राचीन यन्त्रोंकी सूक्ष्मता तथा उस समयके कारीगरोंकी कार्यनिपुणताका परिचय पा सकते हैं। मि० डेलर लिखते हैं, कि टाकाके कारीगर पूरे पल्लसे चर्खोंकी क्रांत कर जो बारीक तंतु तैयार करते थे, उसका ७॥ छटाईर यजनका एक पोला तंतु लम्बा करनेसे १५० मीलकी दूरी तक चला जा सकता था। स्वाभाविक जिन तथा जलीयवायु-प्रधान स्थानोंमें कपासका तंतु कातनेसे शोष बढ़ता है, ऐसा कह कर टाकाके ताँती लोग सुबहके समय सूर्योदयके पहले ही चर्खा बाना करते थे। जिस समय वायु अपेक्षाकृत शुष्क हो जाती थी उस समय वे लोग चर्खेके नीचे जल रख कर कार्य करते थे। उससे वायु जलमिक्त हो कर रुईके बंडाकी नर्म कर देती थी। इसके बाद प्रातःकालसे ले कर ६ या १० बजे तक उनकी स्त्रियां तंतु कातती थीं। मगध्याके समय ३ या ४ बजेसे ले कर सूर्यास्त होनेके आध घण्टा पूर्व पर्यन्त तंतु काता जाता था। ३० घाट्सनने टाकाई, फरासी तथा इंग्लिश तंतुकी अच्छी तरह परीक्षा करके लिखा है, कि उन सबोंकी अपेक्षा टाका-मसलिनके तंतुके ब्यास कहीं कम होता था एवं यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा प्रत्येक टाकाई तंतुके रेशे भी वही कम देगे जाते थे, किन्तु टाकाई तंतुके रेशेका ब्यास यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा बड़ा होता था। इन दो कारणोंसे ही टाकाके तंतुने सूक्ष्मता तथा दृढ़तामें अन्यथा समी देगोंके तंतुकी परास्त किया है। और भी विशेषता यह है, कि रुईके रेशे मोटे होनेके कारण एवं चर्खेसे तंतु बाने जानेंगे टाकाई तंतुमें यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा नहीं अधिक अमिटन रहता है। अगो भी फराम-डुद्दा (चन्दनवार), मिमला (बलकता), बगडी, गजौर, शान्तिपुर, बन्नी, नापागहभपुर प्रभृति स्थानोंमें कपास-

वपन युग्नेकी विम्बुन आदृते' है। काशीमें रैजानो तथा कपासके तंतु पर जरोका काम की हुई। फूलदार वा गुलबहार साड़ी तैयार होती हैं। वर्तमान टाका शहरमें भी एकमात्र सूक्ष्म कपास वपन तथा नाना प्रकारके नोलाम्बरी कपड़ेके ऊपर जरोके फूलदार पाड़के कपड़े तैयार होते हैं।

इनके अतिरिक्त मन्दाइन तथा बम्बई प्रेसिडेन्सीके १६ स्थानोंमें वपनवपनके बड़े बड़े कारखाने हैं। गुजरात अष्टदाबाद, मूरत तथा भरौचमें नाना प्रकारकी छोटकी साड़ियां तैयार होती हैं। रंगपुरमें लाल तथा काले रंगसे एक प्रकारका सुन्दर छोट तैयार किया जाता है, उसमें नाना प्रकारके पौराणिक चित्र देखे जाते हैं। पुना, पेचकला, नासिक तथा धारधारमें नाना प्रकारकी रंगीन तंतुकी साड़ियां तैयार होती हैं जो महाराष्ट्रकी रमणियोंके लिये बड़े आदरकी चीजे हैं। नर्दीर, मुत्कर, धनवरम्, अमरचिन्ता तथा भरनीमें आज भी टाकाके समान ही मसलिन तैयार किये जाते हैं। पनारसी साड़ी घोसी, किंदाव प्रभृति कपड़ोंके समान पैठान, बुर्दानपुर नारायणपेट, धनवरम्, पेचकला प्रभृति स्थानोंमें भी कपड़े तैयार किये जाते हैं। काश्मीर, नूरपुर, तुषियाण, अमृतसर प्रभृति स्थानोंमें पगमी शाल बुने जाते हैं। रंगपुर, मागलपुर, चाराणसी, बागार, लखनऊ, बरेली, फाहगढ़, लाहौर, मुल्तान, हिंसा प्रभृति स्थानोंमें कपास तथा पगमके कापेट तैयार होते हैं। साधारणता कपासके कापेट आकृति तथा व्यवसक्रियाके भेदमें गन्नीचा तथा दुलीचा (Cotton pile carpet) के नामसे पुकारे जाते हैं। पगमी रोये ऊँचे होनेसे गन्नीचा (Woolen pile carpet) कहलाता है। मछलीगहमके छोट, पलमपोर तथा कापेट एवं मोदावरी टेन्टास्थित प्राधम-पलम नामक स्थानजगत माडापालम आज कल 'वृद्धि-शुद्धि' रूपमें भारतमें आने हैं। माघपलममें अब ये कपड़े बुने नहीं आने। अफ़रेज पविक् लोग तो इन पलमोंको इजारे पर लेनेके लिये वहाँ कीठी खोती थी। पीछे बम्बीका नमूना ले कर अरब देगसे माडापालम वपन तैयार करके वहाँ भेजते हैं। दुःखका विषय है, कि इन्हीं लोगोंके जरिये इन स्थानका धनवापस लुप्त हो गया है।

आज भी भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें वपन-शिल्पका यद्येष्ट समाप्तर है। कहीं उत्तम कार्पेट, कहीं उत्कृष्ट गलीचा, कहीं कपास तथा रेशमके धारोक कपड़े कहीं पशमीने शाल तथा कम्बल एवं किसी किसी स्थान में जरी सलमा प्रभृतिके पाड़े तैयार किये जाते हैं। नीचे उपबन्धवत्सादि तथा इनके स्थान और विभागोंके नाम निम्नैः शक्ये गये हैं।

अजमेर, अलाई, अलीगढ़, इलाहाबाद, अलवर, अम्बाला, अमृतसर, अनन्तपुर, अन्धगाँव, अर्कट, अदोनी, आगरा, अहमदाबाद, अरनो, आरा, आसाम, औरंगाबाद, आजमगढ़, अगरू, बहावरी, बराइच, बंगलूर, बाँकुड़ा, बनू, बाराबंकी, बराहनगर, बरांड, बर्रामान, बरेली, बहरमपुर, मन्द्राज, बरहमपुर, मुर्शिदाबाद, बडोदा, बस-हर, बस्ती, बताला, बक्सर, बेलगाम, बाराणसी, भजुआ, भागलपुर, भण्डारा, बहबलपुर, भेरा, बिकानेर, बीर-भूम, बिष्णुपुर, बगुड़ा, बम्बई, भरोच, बुलन्दशहर, बुध्द-नपुर, कलकत्ता, कालीकट, कान्चे, कानपुर, चम्पा, चम्पारण, चन्दा, चन्देरी, छत्तिसगढ़, चिंमलपत, काकनाड़ा, काञ्चीपुर, कड़ापा, कटरु, ढाका, दरभंगा, दतिया, दिल्ली, देरागाजीबाँ, देरास्माइलबाँ, धरवार, दिनाजपुर, दीन-गर, दोगाँछी, एलम्बई, इलोर, फर्रुखाबाद, फिरोजपुर, गोदावरी, राजमहेन्द्री, गोलकुराडा, गुण्डद, गुँगा, गुज-रानवाला, गुजरात, गुजबर्गा, गुददासपुर, ग्वालियर, गया, हीराबाद, (दक्षिणात्य) हीराबाद, ( सिन्ध ) हमा-मकुंड, हर्दा, हसनअवंदल, हजारा, हिसार, होसंगाबाद, हथड़ा, हुसियारपुर, इन्दाना, इन्दौर, इन्दुर, भावेमयेष्ट, जम्बलपुर, जाफरगंज, जहानाबाद, जहांगीराबाद, जयपुर, जलालपुर, जालन्धर, जममलमडुगू, भंग, भाँसी, भीलम, जोधपुर, खेड़ा, कालादागो, कालहस्ती, कलमी, कनोज, कांगड़ा, कराची, फरीदी, कर्णाल, कर्णूल, काश्मीर, धीनगर, कंसूर, काठियावाँड़, अजयाना, कृष्णा, कीर्वाट, कोटा, कोट कमालिया, कुम्भघॉनम्, लाहौर, ललितपुर, लोहारडगा, लखनऊ, लुधियाना, मन्द्राज, मथुरा, मंल-वार, मालदह, मालेगाम, मानभूम, मणिपुर, मछलीपट्टम, मऊ, (आजमगढ़) मऊ (भाँसी) मेदुपाक, मोरट, मेद-नीपुर, मिर्जापुर, मोरादाबाद, मल्लारी, मन्सौर, मथुरा,

मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरनगर, महिसुर, नाभा, नदिया, नागपुर, नेपाल, नूरपुर, उच्छाँ, पायना, पालमकोट, पटियाला, पटना, पानी, पेशावर, पूना, प्रतापगढ़, पूरी, रत्नाम, रत्नगिरि, रावलपिंडी, रेवाइंड, रोवा, राहतक, (पंजाब) सालेम, संवलपुर, सं'बद, (काश्मीर) सादनेर, शान्तिपुर, सारण, शारंगपुर, सातक्षीरा, सायन्तवाची, शिउनी, शाहपुरमिशौली, शियालकोट, सिफन्दराबाद, शिकारपुर, शोलापुर, सिमला (पंजाब), सिंहभूम, जीर्वा (पंजाब), सीतामढ़ी, सुलतानपुर (पंजाब), सूरत, ताञ्जौर, धाना, तिलोवानाथ (पंजाब), तिरुपतिविलयम, तीङ्गगढ़, टाटरा, बसिरहाट, त्रिबंकोर, त्रिचिनपल्ली, उज्जैनी, रंगवाड़ी (मन्द्राज), विशाखपाटम, वृद्धाचलम्, बल्लाज (मन्द्राज), जेवला, वरंगल, जेरोचदा, जेलगण्डल।

रेशमी वस्त्रके मध्य अंडो, मूंगा, टसर तथा गरद की घोती, साड्डी, चादर, पीताम्बर, मसरू, सतरंजी दोपट्टा, गुलबदन, कमाल, ओढ़ना, हवाके कपड़े, लुंगी, खेश, मेखला, पड़ा, बड़ाकपडा, टुकाठिया, रिहा, गमछा, तोयाले इत्यादि कपड़े हैं। पशमी वस्त्रके मध्य राम-पुरो तथा काश्मीरी शाल, रामपुरी चादर, अलवान, एक-तारा, मलीदा, लुंगी प्रभृति हैं।

कपास एवं रेशमका पजमादि मिश्रित वस्त्र—गम सूती (बाँकुड़ा तथा मानभूम), आसमानो (बाँकुड़ा), वाफना (भागलपुर), मेखली (रंगपुर), अजीजउल्ला या अजीज (ढाका), सेराज (ढाका), सादा तथा लाल असमानो सेराज, मछलीकाँटा, सवजोकतार, लालकतार, बुलबुल छासम, लालकदमफूली, सादा कदमफूली, काला-पाडदार, लाल पाडदार, सधार, सेराज, सादा-पड़ाकदम-फूली, सफेद-करदार, लाल करदार, काला मछलीकाँटा, कंकनीमस्तरू, सुजाखानि, इलाइछा, लुंगी, चन्द्रकला, दुपट्टा, सूती इत्यादि हैं।

छोटके कपड़े—गाजि, गाढ़ा, घोतीजोडा, फट्ट, रजाई, लिहाफ, पलंगपोप, सुन्दुदी, बन्सुखं, जात्रिम, फरास, सामियाता, छींटे जरदा, तोशक, छींटे-कन्दो, छींटे बूटे-दार, खेरूजा, नथनी, चपेटा, छींटे आग्रावाला, गोल बूटी, तीलिया, शाल, चुनरी, अग्रा, कलमदार, धूपछाँह, मयूर-

वरंगरा ( सं० स्त्री० ) वरं वृणोमीति वृ-अच्-मुच्च् । चक-  
पर्णी, पित्रयन ।

वरक ( सं० स्त्री० ) प्रिवतेऽनेन इति वृ-अच्-गतः संज्ञायां  
कन् । १ वीणाच्छादन, नायका भाच्छादन । २ माघा-  
रण यत्र । प्रिवते लोकेरिति वृ-अच्, ततः कन् । ( पु० )  
३ यममुद्र, यमद्वृंग ११४ पर्यटक, पित्तपापघ्न । ५ प्रियंगु  
नामक मृण्मयान्मोद, काकुन । वर्णय—म्यूलकं गु, रक्ष  
भीर म्यूल प्रियंगु । गुण—मधुर, कस, कपाय भीर यात  
पित्तार । ६ हृन्मवदरोकल, आंगली घेर । ७ प्रार्थना-  
विशेष ।

वरक ( सं० पु० ) १ पत्र । २ पुस्तकोंका पत्र । ३ सोने,  
चाँदी आदिके पतले पत्र जो छूट कर बनाने जाते हैं  
और मिठाईयों पर लगाने और भीषणमें काम आते हैं ।

वरकन्याण ( सं० पु०, स्त्री० ) राजभेद ।

वरचन्द्रा ( सं० स्त्री० ) क्षीरोज वृक्ष, खिरनोका पेड़ ।

वरकाण्डका ( सं० स्त्री० ) १ वृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़ ।  
२ राटिका, टिटहिनो नामको छोटी चिड़िया ।

वरकीर्ति ( सं० स्त्री० ) पञ्चतन्त्रोक्त व्यक्तिविशेष ।

वरकतु ( सं० पु० ) वरा, धेष्टा, फनयो यस्य जताभवमेधि-  
स्यात् तथात्वं, यदा वर, कतुर्धन्मात् जतकतुत्वात्  
तथात्वं । इन्द्र ।

वरकीर्तन ( सं० पु० ) कीर्तिदार वृक्ष, कचनारका पेड़ ।

वरग ( सं० स्त्री० ) नगरभेद ।

नगमण्डिका ( सं० स्त्री० ) वृक्षभेद । इस घरघंटी भी  
कहते हैं ।

परङ्गुल—दाक्षिणात्यमें हैदराबाद राज्यान्तर्गत एक प्राचीन  
नगर । यह हैदराबादसे ४३ कौम उत्तर-पूर्वमें अवस्थित  
है और भूभाग १७° ५८' उ० तथा देशां० १६° ४०' पू०के  
बीच पड़ता है । यह नगर निजामके शासनाधीन है ।  
इससे पश्चिम कटोमाबाद ( ४५६५ जनसंख्या ) तथा  
एक मील उत्तर पश्चिममें मतवार ( ८८१५ जनसंख्या )  
नगर आज भी वरंगलकी प्राचीन समृद्धिका परिचय दे  
रहा है ।

प्राचीन तेलिग राज्यके अग्रपञ्जीय हिन्दू राजाओं-  
को समृद्धिके समय यह नगर उन लोगोंकी राजधानी  
था । कुम्हार विषय है, कि उस राजवंशका कीर्ति

प्रथम इतिहास नहीं मिलता । १३०३ ई०में अल्ता-  
उद्दीनने तेलिग पर आक्रमण किया । किन्तु ये सार-  
लोभूत न हो सके । इस लड़ाईमें उनको बड़ी क्षति  
हुई । पीछे वे लाचार हो कर लौट गये । इस समयसे  
ही मुसलमानोंके इतिहासमें वरंगलका प्रथम इतिहास  
पाया जाता है । १३०६ ई०में मालिक काफुरने वरंगल  
दुर्ग पर अधिकार कर लिया 'यव' यहाँके हिन्दू राजाको  
कर देनेके लिये याचित किया । मधामुदीन तुगलकके  
राजत्वकालमें मुसलमानोंने पुनः वरंगल पर अधिकार  
तो कर लिया पर अधिक दिनों तक ये राज्यपालन न  
कर सके । यहाँके महम्मद तुगलकके शासनकालमें  
हिन्दुओंने पुनः अपने नष्ट राज्यका उद्धार किया ।

इसके बाद दाक्षिणात्यमें जब बाहमनी राजवंशका  
प्रभाव फैल गया तब दोनों देशवासियों हिन्दू तथा मुसल-  
मानोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ । १५३८ ई०में पर-  
ङ्गलके राजाने अपने हतराज्यकी पुनर्प्राप्तिके लिये चापे-  
दन किया इस पर फिरसे दोनों पक्षों लड़ाई शुरू हो  
गई । इस युद्धमें परङ्गलके राजा मोमकौडा राज्यमें हाथ  
धो बैठे और उनकापुत्र बाहमनी राजाके यहाँ बन्दो हो कर  
मारा गया । उक्त हिन्दू राज्यका जो अंश शेष पचा था  
यह भी १५५२ ई०से ले कर १५४३ ई०के आदर ही कुन्वी  
कुतुबशाहके हाथमें चला गया । इसने कुतुबशाही वंश-  
की प्रतिष्ठा का । गोलकण्डामें उमकी राजधानी स्थापित  
हुई थी । यहाँ सभी हिन्दुओंको कीर्त्तिका ध्वंसायशेष  
दृष्टिगोचर होता है ।

परङ्गाउन—बर्हद्रेजके आग्नेय जिलाभर्तगत एक नगर ।  
यह भूयायल उपविभागके सदरले ८ मील पूर्वमें अवस्थित  
है । पहले यह स्थान याणिसर्गमें एक सड़ा सड़ा था ।  
भूयायलमें विगागीय सदर उठ कर चले आनेसे यह  
स्थान धोहीन हो रहा है । १८६१ ई०में मिर्दुराजने यह  
स्थान सङ्गरेजीके हाथ में दे दिया । इसके पहले यह  
नगर यथाक्रम मुगल, निजम और वेजवाओंके अधिकार-  
में था । इमुनिसुवलिटो रटनेसे महरकी जोगा और सुल्त-  
रना नष्ट नहीं हुई है ।

वरचन्दन ( सं० स्त्री० ) वरं धेष्टं चन्दनं । १ काला चन्दन ।  
२ देवदार ।







ग्राम । ( भविष्य ब्रह्मसू. ८।३७ ) २ वहुका एक प्राचीन विभाग । ( भविष्य ब्रह्मसू. १०।३ )

वरद—दाक्षिणात्यवासी एक संस्कृत शास्त्रवित पण्डित । ये तोएडोरमएडलमें रहते थे । इनके पिताका नाम था श्रीनिवास । इन्होंने अनङ्गजोवन नामक एक भाग लिखा ।

वरदकवि—कारिकादर्पणके प्रणेता ।

वरदक्षिणा ( सं० खी० ) १ वह धन जो वरकी विवाहके समय कन्याके पितासे मिलता है, दहेज । २ वह वृथा खर्च जो नष्टवस्तुके सुधारनेमें लगता है ।

वरदचतुर्थी ( सं० खी० ) वरदाचतुर्थी, माघमासकी शुक्ल-चतुर्थी ।

वरदत्त ( सं० खी० ) वर या अनुग्रह रूपमें प्राप्त ।

वरदेशिकाचार्य—१ काञ्चीवासी सुदर्शनके पुत्र । इन्होंने 'वसन्ततिलक' नामक एक भाणकी रचना की । २ एक दार्शनिक । इन्होंने तत्त्वत्रय और वेदान्तकारिकायलौ नामक दो ग्रन्थ बनाये ।

वरदानथ—तत्त्वत्रयचतुल्लुकार्थसंग्रह नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता । इनके पुत्रने इस ग्रन्थके आधार पर रहस्य-त्रयचतुल्लुक नामक एक पुस्तक लिखी ।

वरदानयकसूरि—दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध पण्डित । ये तत्त्वचिन्तन नामक एक ग्रन्थ बना गये ।

वरदमूर्ति—वाजपेयादि सञ्ज्ञपतिर्णय नामक वैदिक ग्रन्थके रचयिता ।

वरदयोग—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान । ( भविष्य ब्रह्मसू. १८।२२ ) इसका वर्त्तमान नाम वज्रयोगिनी है । वज्रयोगिनी देखो ।

वरदराज—१ एक विख्यात ताकिक । इन्होंने तर्ककारिका, तार्किकरक्षा तथा सारसंग्रह नामक तार्किकरक्षाकी टीका लिखी । २ एक विख्यात वैयाकरण । इनके पिताका नाम दुर्गातनय था । पाणिनि व्याकरणके आधार पर इन्होंने गोवाणपद्मञ्जरी, मध्यसिद्धान्तकीमुद्री, लघुकीमुद्री तथा सारसिद्धान्तकीमुद्री या सारकीमुद्री नामक संस्कृत व्याकरण प्रणयन किया । ३ एक विख्यात वैदिक पण्डित । ये धामनाचार्थके पुत्र और अनन्तनारायणके पीतृ थे । इन्होंने ऋग्वेदभाष्य, तैत्तिरीयाराण्यकभाष्य, निदानमूल-

वृत्ति, प्रतिहारसूत्रवृत्ति, मगक्रकल्पसूत्रभाष्य एवं वरद-राजदक्षिणीय नामक धर्मग्रन्थ लिखा । ४ एक मोमांसक, इनके पुत्रका नाम रङ्गराज और पीतृका देवराज था । ये सुदर्शनचार्थके शिष्य थे । इन्होंने मोमांसानयविवेक-दीपिका लिखी । ५ एक नैयायिक । ये रामदेव मिश्रके पुत्र और हरिदासकी न्यायकुसुमाञ्जलीटीकाके एक टिप्पणी-कार थे । ६ शिष्यसूत्रवार्त्तिकके रचयिता । ७ व्यवहार-काण्ड या व्यवहारनिर्णयके प्रणेता । ८ यागप्रायश्चित्त व्याख्याकार । ९ आगन्तुवार्त्तिक-रचित महाभारततात्पर्य-निर्णयकी मन्वसुयोधिनी नामकी टीकाके रचयिता । १० भाषाञ्जरी और प्रमाणपदार्थ नामक व्याकरण ग्रन्थ के प्रणेता । ११ न्यायदीपिकाके रचयिता । १२ तत्त्व-निर्णय नामक वैदान्तिक ग्रन्थकार । १३ किरणावलीके एक टीकाकार । १४ पुष्टयसूत्रके एक भाष्यकार । १५ कविजनविनोद नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता ।

वरदराज आचार्य—नामात्मकानियन्त्रके रचयिता ।

वरदराज चोलपण्डित—विवेकतिलक नामधेय रामायणके एक टीकाकार ।

वरदराज मट्ट—सामान्यपदमञ्जरी नामक वैदान्तिक ग्रन्थ-के रचयिता ।

वरदराज भट्टारक—कामन्दकीय नीतिशास्त्रके टीकाकार । वरदराजोय ( सं० खी० ) वरदराजका लिखा हुआ ।

वरदर्शिनी ( सं० खी० ) देखनेमें सुलक्षण या सुन्दरी ।

वरदविष्णुसूरि—एक जैनसूरि ।

वरदा ( सं० खी० ) वरद-टाप् । १ कन्या । २ आश्रित्यमत्ता । ३ अश्वगन्धा । ४ प्रसन्न चिह्नसूचक हस्तादि विन्यास-रूप मुद्राविशेष । ५ सुवर्चला, अङ्गुल । ६ वराहोक्तन्द । ( खी० ) ७ अमोघफलशाली, वर देनेवाली ।

वरदा—हिमपादविनिर्मुक्त नदीमेद । ( हिमवत्खं० ४।६ ) यहाँ अष्टादशभुजा देवोत्पत्ति विराजित हैं ।

( हिम० ४।१३६-४४ )

वरदाचतुर्थी ( सं० खी० ) वरदाख्या चतुर्थी । माघ महीने-के शुक्लपक्षकी चतुर्थी, वरदा चौथ । इस दिन गौरीपूजा करनी होती है और ये वर देती है, इसीसे इस चतुर्थीकी वरदा चतुर्थी कहते हैं । इस तिथिमें पूजा करनेसे सीमांग्य और अतुल श्रौलांम होता है । इस चतुर्थीमें

गीरीपूजा करने पञ्चमीमें सारस्वतीपूजा करने पड़ती है।  
 वरदाचार्य—बहुतेरे मनि प्राचीन संनृत्य प्रन्धकारोंके  
 नाम। यथा—१ बनभूषणविद्यापिलास और भगवा-  
 लान गायक भाणके रचयिता। २ भविष्यसंप्र-  
 दाधकार। ३ भगवप्रदान और भगवप्रदानसारके  
 प्रणेता। ४ अत्रेक्षमञ्जरी नामक बनभूषण-प्रन्धके रच-  
 यिता। ५ कान्तालीकषणनमण्डनकार। ६ परतख-  
 निर्णयकार। ७ बारिकादपणके प्रणेता। ८ प्रमेयमाला  
 नामक पौदागतिक प्रन्धके रचयिता। ९ भगवदुष्यान-  
 मुकायलोककार। १० मङ्गलमयूरदात्रिका नामक बन-  
 भूषण-प्रन्धके रचयिता। ११ यतिराजविजय या येशान-  
 यितामनाटाकार। १२ विरोधपरिहारकार। १३  
 व्याकरण लघुशक्तिके प्रणेता। १४ श्रेयाभ्यन्तरेपनि-  
 ष्यकार। १५ साविली परिणय नामक काणके  
 रचयिता।

वरदाना (सं० लि०) वरदान देखो।

वरदानु (सं० पु०) ददातीति दा-तुन् वरस्य दानुः। वृत्त-  
 विशेष, मागयानका पेट। यर्थाय—भूमिगत, छारदानु,  
 गरुडपद। गुण—जिजिभ और रक्तपित्तप्रसादन।

वरदानू (सं० लि०) दा-तुण, वरस्य दाना। भमीष्टकान-  
 प्रदाता, धर देनेवाला।

वरदासी (सं० लि०) धर देनेवाली।

वरदापीन वरयन्—एक प्रसिद्ध स्मार्त वैद्व्याधेयके पुत्र।  
 इन्होंने प्रयोगशुद्ध और भाषाविशेषप्रदोषिता लिखी।

वरदान (सं० प्री०) वरस्य दानं। १ अनिच्छित विषय  
 प्रदान, किसी देवता या गृहके प्रसन्न हो कर कोई अनि-  
 क्षयिण वस्तु या सिद्धि देना। २ किसी फनका लाभ  
 जो किसीकी प्रसन्नतासे हो।

वरदानमय (सं० लि०) वरदान स्वरूपे मयट्। वरदान-  
 स्वरूप।

वरदानिक (सं० लि०) वरदान सम्बन्धी।

वरदानो (सं० पु०) धर प्रदान करनेवाला, मनोरथ पूर्ण  
 करनेवाला।

वरदाभूमि—जनपदभेद। (भक्तिम ३३७)।

वरदावीरिणी—यंगालकी एक प्राचीन राजधानी। यहाँ  
 गौडविषय गणनाय करते थे। यहाँमान नाम वज्र-  
 कीर्तिनी है।

वरदाध (सं० पु०) १ वृत्तविशेष (Tectona Granita)।  
 २ धेनुशक, गीबल यट भादि बड़ा वैद्य।

वरदाधक (सं० पु०) वृक्षभेद। इसके पत्ते विपत्तियोंके हैं।

वरदाधम (सं० लि०) धरव, धर देनेवाला।

वरदो (अ० स्त्री०) यह परिधान जो किसी विरोध विमान-  
 के कर्मचारियोंके लिये नियत हो, यह पीनाक या पशुनाक  
 जो किसी साम मनुकमेके सफसतों और भीतरोंके लिये  
 सुनरंर हो। जैसे—पुलिसकी परदो, पीतकी वरदो।

वरदेव—राजेश राजपंथके प्रतिष्ठाता। ये कामधेयज उपाधि-  
 धारी तैरह महाजाग्याओंके एक आदिगुरुव थे। भगवें जेठे  
 भाईके द्वारा धाराणसी और ८४ नगरीका भाषापरव  
 पाने पर भी उन सबको छोड़ कर इन्होंने पाकपुरमें  
 शतन्त्र राजधानी कायम की। इनके पंजापरण पाठक-  
 कामधेयज नामसे प्रसिद्ध हैं।

वरदुम (सं० पु०) घृहदाकार वृक्षभेद, एक प्रकारका अगर  
 जिमका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। अङ्कुरेतीमें इसे  
 Agallochum कहते हैं।

वरधर्म (सं० पु०) धेनु कायै, बड़ा काम।

वरधर्मलुन् (सं० लि०) दूस्तीकी मलाई करनेवाला।

वरन् सं० अर्थ०) येना गहो, पत्कि। इस शब्दका प्रयोग  
 भव उठना जा रहा है।

यग्ना (अ० अर्थ०) गहो तो, यदि येना न होगा तो।  
 जैसे—भाप वैद्विये, यरना में भी उठ कर चला जाऊँगा।

यरनासे (सं० स्त्री०) छुटरो स्त्री।

यरनिश्चय (सं० पु०) पतिनिर्णयन, पति चुनना।

यरपडा (सं० पु०) धरयाक, बगल।

यरपक्षिणी (सं० स्त्री०) तम्बोक देवीभेद।

यरपक्षीय (सं० लि०) धरका सङ्गर्षोय या धरपक्ष-  
 सम्बन्धी।

यरपरिदत—कणाकीनुक नामक संनृत्यप्रन्धके रचयिता।

यरपलीकव (सं० पु०) यराणि यलांग्यरूप, धरपक्षीय  
 भाषया मय्य। शोरक'शुभी घृष्ट, शोरक'डार।

यरपीन (सं० पु०) हरिताल, हरताल।

यरपीतक (सं० पु०) हरपीत देना।

धरपुत्र (सं० पु०) यह जिनसे धर पाया है। जैसे—बाकि-  
 दास सरस्वतीके धरपुत्र थे।

वरपात ( सं० पु० ) श्रेष्ठ शाक ।  
 वरप्रद ( सं० लि० ) वरं प्रदानोति-दा-क । १ वरदाता, वरदेनेवाला । २ प्रसन्न ।  
 वरप्रदा ( सं० स्त्री० ) लोपामुद्रा ।  
 वरप्रदान ( सं० क्ली० ) वरस्य प्रदानं । वरदान, मनोरथ पूर्ण करना, कोई फल या सिद्धि देना ।  
 वरप्रभ ( सं० लि० ) १ अति प्रमाविशिष्ट, खूब चमक-दमक वाला । ( पु० ) २ घोषितस्वभेद ।  
 वरप्रस्थान ( सं० क्ली० ) वरयात्रा ।  
 वरफल ( सं० पु० ) वरं फलमस्य । १ नारिकेल वृक्ष, नारियलका पेड़ । ( क्ली० ) २ नारिकेल, नारियल । ३ श्रेष्ठफल ।  
 वरम ( सं० पु० ) वरं देलो ।  
 वरमेल्की ( हि० पु० ) एक प्रकारका लाल चन्दन जो मलय द्वीपसे आता है ।  
 वरयात्रा ( सं० स्त्री० ) वरस्य यात्रा । विवाह करनेके लिये घरका बन्ध्याके घर जाना । पृथिवीके षया सम्भय षया अमभय ममो सम्प्रदायकी ममो जातियोंके मध्य वरयात्रा प्रचलित है । परन्तु विवाह-पद्धति समो जाति-को समान नहीं है । धार्मिक शिक्षा और सम्भ्यता-विस्तारके साथ साथ प्राचीन उत्सव तथा हम लोगोंकी रीति-नोतिमें बहुत कुछ हेर-फेर हो गया है । यह परिवर्तन केवल उच्च सम्प्रदायके भीतर ही हुआ है, सो नहीं, उच्च सम्प्रदायका यथासम्भव आदर्श ले कर धीरे धीरे निम्न सम्प्रदायमें भी हो गया है । फिर किसी जातिसे इन सब कामोंमें अपने अपने धर्मोत्सव ल कर्मको छोड़ा है, ऐसा भी नहीं कह सकते ।  
 यात्रा करनेके पहले अवस्थानुसार घरकी सजाया जाता है । कोई कोई घर तो किरौट-कुण्डल कञ्चुकादि-मण्डित हो यात्रा करते हैं । फिर किसीको साधारण धोती और अंगरखा पहन कर जाना पड़ता है । यह सब मनुष्यकी अवस्था पर निर्भर करता है, पर धनीकी तो बात ही नहीं, गरीब वरयात्रामें कुछ धूमधाम अवश्य करता है, चाहे उसे ऋण भी क्यों न हो जाय ।  
 घर उपासी रह कर यथासमय यात्रा करता है । यात्रा करनेसे पहले घरके ललाटमें चन्दन लगाया जाता

है । यह काम घरकी स्त्रियां ही करती हैं । वरके विघ्न-नाशके लिये उसके चन्दनाङ्कित ललाटमें 'दुर्गा वा हरि' आदि नाम लिख देतो हैं । यात्राकालमें एक दधि-मयु-लाञ्छित सकलपल्लव पूर्णकुम्भ वरके सामने रखा जाता है । वर उसकी ओर देख कर 'दुर्गा गणेश माधव' आदि भगवत् नाम लेता हुआ यात्रा करता है । इस समय गुरु-पुरोहित अथवा कोई दूसरे शास्त्रज्ञ ब्राह्मण 'धेनुर्वरस-प्रयुक्ता' आदि यात्रामङ्गल मन्त्र पाठ करते हैं । घर यात्रा करके पहले देव, ब्राह्मण और पितामाता आदि अग्न्याय श्रेष्ठ ध्यक्तियोंको प्रणाम करता है । वे सब उसे आशीर्वाद करते हैं । इस समय गङ्गुनी ध्यनि भी होती है । कहीं कहीं दश पाँच स्त्रियां मिल कर माङ्ग-लिक सङ्गीत गाती हैं । पूर्णकुम्भागी बगलमें एक वरण-ढाला रहता है । इस वरणढालेमें स्वस्तिक, सिन्दूर, धान्य, दुर्वा, प्रदीप आदि अनेक माङ्गलिक द्रव्य सजे रहते हैं । वर जब यात्रा करता है, तब कोई स्त्री दूधसे उसका हाथ धो देती है ।

देशभेदको प्रधाके अनुसार वर बाँधे हाथों छुरी, कटारी, सरीता, दर्पणादि ले कर घरसे निकलता है । इस समय घरके साथ उसके श्राति-कुटुम्ब भी चलते हैं । अवस्थाभेदसे वर गाडो, नाच, पावकी वा घोड़े पर चढ़ कर जाता है । जो खूब धनी हैं वह पथका सुगम और सुयोग होनेसे हाथी, चतुर्दाल वा मूल्यवान् अश्व-यान पर यात्रा करते हैं ।

राजा जमींदारोंका तो पूछना ही क्या है, जो धनी और शहरघासी हैं, उनकी बारात सचमुच देखने लायक होती है । जिसके धन है, वे चाहे दूसरे कामोंमें भले ही खर्च न करें, पर वरयात्रामें घरकी गृहिणी वा अग्न्याय सामन्धियोंसे बाध्य हो कर उन्हें खुले हाथसे खर्च करना पड़ता है । श्वेत, पीत, नील, लोहित वा मिश्रवर्ण-के चन्द्रातप-राजित रीच्य वा पित्तल दण्डमण्डित अनेक पादक वादित आलर-भलमलीकृत सुन्दर चतुर्दीकी लोहित मखमल-मण्डित घेदिका पर चढ़ कर किरौट-कुण्डल-कञ्चुक पहन कर किसी राजपुत्र वा नयाव पुत्र-की तरह घर चढ़ते हैं । दोनों बगल दो छीविशघारी बालक चामरसे उसे हवा करते हैं । अग्न्याय वरयात्रि-

गण ब्रह्मकायानुसार परिस्तरा परिष्कृत येनमूवा करके  
 वररुचि म्नाथ म्नाथ वैदल चलते हैं । सायमें तरद तरदके  
 वररुचि भीर येनमो रहनो है । धनोको वारातमें धाना-  
 मोटा ब्रह्म बर्णों लिये, दान तलवार लटकाने, निर पर  
 भिन्न भिन्न रंगको पगड़ी बांधि, कतार लगाये, बाजेके  
 माल पर पैर उठाये शनैत सुनचित्त मनुवर चलते हैं ।  
 कागजका हाथी, कागजका घोड़ा, कागजकी गाय और  
 उमके ऊपर बाई-मान, घेमटा-गाय आदि रंग बिरंगके  
 नानासे वारातकी मोमा बढाते हैं । भिन्न भिन्न तरहको  
 रोजनो लोमोको बकाबोध कर देतो है । इस प्रकारका  
 सुन्दर देवनेके लिये रास्नेके दोनो किनारे लोमोको  
 मोड़ लग जातो है ।

वारात जब कम्पाके घरके घाम पहुँचतो है, तब कम्पा-  
 पक्षमें लोग बड़े आदर-सरकारसे उभरे वरवाजे पर लाते  
 हैं ।

बहुतसे प्राणो, कायस्थ, वैश्य और ब्राह्मण जो धनो  
 है, उनको वारात इसी प्रकार सम्भजन कर जाती है । पर  
 भिन्नको अवस्था कुछ फरक है, ये धनमें किफायत कर  
 देते हैं ।

भारतकी, येवल भारत हो पयो कहे—पृथ्वीकी  
 सभ्य भामस्य समुद्र भममृद सभी जातियोंकी परयाता  
 व्यापार इसी प्रकार थोड़े बहुत भोमीद उरसय और समा-  
 रोद आदम्बरसे परिपूर्ण रहता है । परन्तु जातिविशेष  
 या सम्प्रदाय विशेषको रीति-रिवाजमें बहुत पृथक्ता देयो  
 जाती है । विचार देतो ।

पर्यायिन ( सं० लि० ) परयाता-भस्त्रपथे इति । यह मोड़  
 भाड़ जो दूजेके साथ चलतो है, वारात ।

परिविनय ( सं० लि० ) पर-निष्-तप्य । परणके योग्य ।

परिणु ( सं० पु० ) पर-निष् मृत् । १ भर्ता, पति । २ पर-  
 कल्पिता, परण करनेवाला ।

परसु ( सं० पु० ) महाभारत दर्शित, एक व्यक्ति ।

( भारत उल्लेख )

परसुरि ( सं० स्त्री० ) १ उग्रभेद । इसके प्रत्येक चरणमें  
 १६ भाग होते हैं । उनमेंसे १, ४, ६, ८, १ और १६  
 भाग मुद और बाकी चर्च मधु होते हैं । इसके ज्ञान—

“भो नवना नवी च यत्वा वसुधैरिभं ।”

( बन्दोली )

२ रूपवीयनसम्पन्ना स्त्री ।

परवोग्य ( सं० लि० ) १ पर, भागोवाँद या उपहार पाने-  
 के लायक । २ परणोय, परण करके योग्य ।

परवोनिक ( सं० पु० ) केंसर ।

पररुचि ( सं० पु० ) वरा रुचिर्वस्य । एक प्राचीन वैवा-  
 करण और प्रसिद्ध कवि । इनका दूसरा नाम पुनर्पु  
 है । भद्राध्यायोपृत्ति, पकाशरकीय, पकाशरनिघण्टु,  
 पकाशरनाममाला, पकाशरामिधान, येन्द्रनिघण्टु, कारक-  
 चक्रकारिका, द्वागणकारिका, पलकीमुदी, प्रयोगविधेय,  
 प्रयोगविधेयसंभ्र, प्राह्यमकान, कुलपूव ( पुण्यमृत ),  
 योगशतक, राक्षसकाव्य, राजनीति, लिङ्गविशेषविधि,  
 लिङ्गवृत्ति, लिङ्गानुशासन, पररुचियाकपकाव्य, वाद-  
 तरङ्गिणी, वार्त्तिक, शब्दलक्षण, धृतशेष और समास-  
 पटल आदि ग्रन्थ इन्हींके बनावे हैं । विष्णु मन्मथ  
 इन्हींके उक्त सभी ग्रन्थोंकी रचना की थी या नहीं इसमें  
 बहुताईका संदेह है । क्योंकि, अपने अपने ग्रन्थ प्रचारके  
 लिये बहुतोंने पररुचिका नाम छाप दिया है । महाकवि  
 कालिदासके नाम पर भी दूसरोंके रचित अनेक ग्रन्थोंका  
 प्रचार देखा जाता है । एकमात्र पाण्डित्यपूर्ण प्राह्य-  
 मकान तथा वापपक्षीय आदि वररुचिकी रचना है, येमा  
 बहुतेरोंका विश्वास है । भोजप्रपञ्चमें इनके रचित अनेक  
 श्लोक उद्धृत हैं ।

सोमदेव भट्टके कथासरित्सागमें लिखा है, कि वा-  
 रुचिका दूसरा नाम कारवायन है । ये वैवाकरण पाणिनि-  
 के सहपाठी थे । इसी कारण वे भयथा इनके नाममें  
 प्रचारित या इनसे प्रकाशित भद्राध्यायो पाणिनिग्रन्थकी  
 पृथि और वार्त्तिकादि नामा व्याकरण ग्रन्थ देख कर ही  
 पहिचानसमाज इन्हे प्राह्य-धनोन्नय सोमदत्तके पुत्र  
 कारवायन मानते हैं । विष्णु पाणिनिके मूल और  
 वार्त्तिककी भागोचना करनेसे मूलकार और वार्त्तिकारकी  
 बसो भी एक समझना आसानी नहीं कर सकने । पर  
 मूलके शीर्षमें वसे बाद वार्त्तिक रचा गया है येमा प्रमाण  
 होता है । कथित देता ।

वार्त्तिक और प्राह्यमकानकारको भी हम ही कथित

नहीं मानते। प्राकृत-प्रकाशमें वररुचिका असाधारण कृतित्व देख कर मालूम होता है, कि प्राकृत और पालो-भाषामें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। उक्त ग्रन्थके छपते समय उसकी भूमिकामें अध्यापक ई. बी. कावेलने लिखा है, कि वररुचि श्लो सदीके आदिमी थे। गारैट साहब के मतसे वे ईसाजन्मसे पहले ४थी शताब्दामें तथा चन्द्रगुप्तसे भी पहले विद्यमान थे। अभिधानकार हेम चन्द्रविरचित स्थविरावलीचरितमें लिखा है, कि नन्द-वंशीय राजा ६म नन्दके राजत्वकालमें मगधके अन्त-र्गत पाटलीपुत्र नगरमें वररुचिने जन्मग्रहण किया। ४६६ ई०सन्से पहले नन्दवंशका आविर्भाव हुआ। इस देशके बहुतोंका विश्वास है, कि वररुचि महाराज विक्रमादित्यके नी रत्नोमेंसे एक थे। इस सम्बन्धमें वे लोग ज्योतिर्विद्याभरणका एक श्लोक उद्धृत करते हैं:—

“धन्वन्तरिः क्षण्यकामरविह-शङ्क -

वैतास्तमह-घटकपरकाजिदासाः ।

ख्यातो वराहमिहो रूपतेः समाया

रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥” (नवरत्न)

किन्तु उक्त नवरत्न जो एक समयके आदिमी नहीं थे, यह श्लोक कविकी कल्पनामाल है, ऐसा प्रमाणित हुआ है। वराहमिहिर लेते।

नन्दवंशके उपासकानामें वररुचिका दूसरा दूसरा विवरण लिखा जा चुका है। नन्द लेते।

२ शिव, महादेव।

वररुचितीर्थ—प्राचीन तीर्थमेदः।

(स्कान्द नागरल० १२५ अ०)

वररूप (सं० पु०) १ सुन्दररूपविशिष्ट, खूबसूरत। (पु०) २ बुद्धमेदः।

वरल (सं० पु० खी०) वृणातीति वृ अलच्। वरट, हंस।  
 परलब्ध (सं० पु०)। वरः उत्कर्षो लब्धः पुष्येपु येन।  
 १ चम्पकवृक्ष, चम्पाका पेड़। २ रक्तकाञ्चन, कचनाल।  
 ३ नागकेसर चम्पक। (ति०) वरेण लब्धः। ४ वर-  
 प्राप्त, जिसे वर मिला हो।

वरला (सं० खी०) वरल-टाप। १ हंसी। २ वरटा,  
 गंधिया कीड़ा।

वरली (सं० खी०) वरल डोप। वरटा।

वररुत्सला (सं० खी०) वरे जांभातरि वरत्सला। भ्यसुर-  
 भार्या, सास।

वरवराह (सं० पु०) वरवर; सुवराह बालोंवाला जंगली  
 आदिमी। भाषाविद्वगण अनुमान करते हैं, कि इस शब्दसे  
 ग्रीक Barbaros, रोमक Barbarus और अङ्गरेजी  
 Barbarian शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

वरवर्ण (सं० पु०) १ सुवर्ण, सोना। २ श्रेष्ठ वर्ण,  
 बढिया रंग।

वरवर्णिन् (सं० खी०) सुन्दर वर्णशाली, बढिया रंग-  
 वाला।

वरवर्णिनी (सं० खी०) वरः श्रेष्ठो वर्णाः प्रशसनाः पोता-  
 द्विवास्तवस्या इति वरवर्ण-इति लोपः। १ अत्युत्तमा  
 खी। पर्याय—वराहोदा, मत्तकामिनी, उत्तमा, मत्त-  
 काशिनी। २ लासा, लाख। ३ हरिद्रा, हल्दी। ४ रोचना।  
 ५ फलिनो, मिरगु। ६ साध्वी खी। ७ गौरी। ८ लक्ष्मी।  
 ९ सरस्वती।

वरवारण (सं० पु०) १ जाङ्गल जीवविशेष, जङ्गली जान-  
 वर। २ सुन्दर हस्ती, बढिया हाथी।

वरवासि (सं० पु०) जातिविशेष।

वरवाहीक (सं० क्ली०) कुङ्कुम, केशर।

वराधुन (सं० ति०) वर या आशीर्वादीरूपसे प्राप्त।

वरबुद्ध (सं० पु०) वरः श्रेष्ठो बुद्धः। १ पुरातन, पुराना।  
 २ शिव।

वरशठ—स्वर्णप्राप्तके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान।

(भविष्य ब्र० ल० ८५।३)

वरशिव (सं० पु०) एक असुर। इसे इन्द्रने सपरिवार  
 मारा था।

वरगोत (सं० क्ली०) त्वच, वारचीनी।

वरश्रेणी (सं० खी०) हृस्वमूर्धा, छोटी मरोड़फली।

वरस् (सं० क्ली०) तेज।

वरसद्गु (सं० पु०) आदित्य, सूर्य।

वरसान (सं० पु०) वृ (द्वन्द्वस्यसानवचञ्जम्भाम्। उण्  
 २।६६) इति शानच्। वारिक, पुत्र।

वरसुन्दरी (सं० खी०) १ सुन्दरी खी। २ छन्दोमेदः।

इसके प्रति परलोक में १४ कहर होते हैं जिनमेंसे १, ५, ६, १३, १४ वर्षों मुक्त और बाकी लक्ष्य होते हैं।  
 परसुर ( सं० लि० ) सुरतक्रियाविध, उच्छृङ्खल।  
 परसिन्ध ( सं० पु० ) गिरिसिन्धुदेव।  
 परस्यो ( सं० स्त्री० ) हुजरी मारो, गृहसुरत शीत।  
 परस्य्या ( सं० स्त्री० ) परलोपा, परस्यके गोप्य स्त्री।  
 "परस्य्या पापप्रभृद्दुषि" ( शृ० १०३१२ ) 'परस्य्या परलोपा'। ( कण्व )  
 परस्य्यु ( सं० स्त्री० ) यह माता जो कथा परस्ये; गलेमें झानती है।  
 परस्य ( सं० स्त्री० ) एक जनपदका नाम।  
 परसि—यह पहाड़ी जाति।  
 परसो ( हि० पु० ) १ सोनेकी एक लक्ष्मी पट्टी जो विवाहके समय चाकी परनाई जाती है, टीका। २ बारी देती।  
 परा ( सं० स्त्री० ) गृ-मन्-टाप्। १ त्रिकला। २ रेणुका नामक गन्धद्रव्य। ३ शुद्ध ची, मुद्यक। ४ मिर्दा। ५ प्राणो। ६ पिच्छ। ७ पाटा। ८ हरिद्रा, हल्दी। ९ धोछा। १० जपमुनी। ११ कानिङ्गन, धैगन। १२ मोडुपुत्र, भद्रदत्त। १३ परम्यारकॉटकी। १४ मय। १५ द्येता-परामिता। १६ सोमराजो। १७ जनमूनी।  
 पराक ( सं० पु० ) पूर्णतः सखीरु इति (अपराभिङ्गदु-सुवर्णः पञ्चन। पा ३।१।१५५) इति शकन्। १ गिय। २ मुद, लड़ाई। ३ पपटक, पापदा। ( लि० ) ४ प्रोच-नोप। ५ मोप।  
 पराकपुर—यह प्राचीन ग्राम। शरिङ्गपुर देणो।  
 पराप्राम—बर्बर समीपेग्रांके, महोकास्था विनायात्मनीत एक छोटा ग्रामगतस्य और उमरा प्रधान नगर। यहाँके ठाकुर उपाधिपारो ग्रामगतस्य रावसिंह येद-याट पत्नीय राजपूत हैं, ज्येष्ठपुत्र ही सम्पत्तिगत अपि-कायो होता है; किन्तु एक लक्ष्मीको क्षमता नहीं है। यहाँका राजत्व १५०० तक है।  
 पराङ्ग ( सं० स्त्री० ) पराङ्गना। १ मन्त्रक। २ मुद, मुदा। ३ वासि। ४ धोछाभङ्गण। ५ बोध, दास्योनी। पाटा। ६ हरिद्रा, हल्दी। ७ मिर्दा। ८ वेदकी टरनीका मिरा। ( पु० ) पराणि शृण्वानि अङ्गानि चक्षुः। १० हल्दी, हाथी।

११ विष्णुका एक नाम। १२ एक प्रकारका लक्ष्मण परसर। यह ३२४ दिनोंका होता है।  
 पराङ्गक ( सं० स्त्री० ) परमङ्गमय कपू। १ मुदुरक, दा-गोनी। ( ल० ) २ धोछावपयुक्त।  
 पराङ्गद्वय ( सं० स्त्री० ) विपंगुण, रंगनीका पत्ता।  
 पराङ्गना ( सं० स्त्री० ) परा धोछा भङ्गना स्त्री। अति प्रग-स्ताङ्गयुक्ता स्त्री, सर्पाङ्गसुन्दरा स्त्री।  
 पराङ्गुणीयेत् ( सं० लि० ) भङ्गानां रूपानि भङ्गुणीनि पराणि भङ्गुणीनि लेखयेत्। धोछारूपयुक्त, सुगुर। पर्याय—सिंहमहलन।  
 पराङ्गिन ( सं० लि० ) पराङ्गमस्वरूपेति पराङ्ग-रति। १ धोछाङ्गयुक्त, पराङ्गुणिजिह। ( पु० ) २ अजयन, अजय-येत्। ३ राज, हाथी।  
 पराङ्गिनी ( सं० स्त्री० ) धोछाङ्गयुक्ता, पराङ्गुणिजिह।  
 पराङ्गी ( सं० स्त्री० ) परमङ्गमस्वरूपयो पराङ्गा। १ हरिद्रा, हल्दी। २ मागद्वयो। ३ मञ्जिष्ठ, मनीठ।  
 पराङ्गीयो ( सं० पु० ) ज्योतिषो, गणक।  
 पराङ्ग्य ( सं० स्त्री० ) उच्छृङ्खल, बद्धिया यो।  
 पराट ( सं० पु० ) पराटमस्वरूपेति अट कर्मणि मय। १ कर्णक, कीड़ी। धोछ, मण्य और कनिष्ठके भेदमे यह तीन प्रकारका होता है। पोतपर्णीकी गांठशर उा माथीकी कीड़ी ध छ चार माथीको मध्य और तीन माथी-की कीड़ी कनिष्ठ माथी गई है। घोटकके मगमें इसी प्रकारकी कीड़ीकी पराटक कहा है।  
 पराट या कीड़ीकी जीपनपत्तानी—कीड़ीकी एक पदर तक कीजोमें स्वेद देनेमे यह मुद, होती है। दूगल तरीका—जमोनेमे गड्ढा बना कर पत्ता बिछा दे। पीछे उमको मूलांमे भर कर घाँके चूरे रव 'वालिना' नामक पत्तमें गांठेकी भाग जमोनेमें कीड़ी मग्न वा विमुद होती है। यह जोयो हुई कीड़ी मर रंगीकी हरनेवानी है। दूगलेके मतमें—ज'बीरो नीचू भागया भिगी दूगले भागतरमे कीड़ीकी मिगो रथे। जब यह पीरी हो जाय, तब उमें निकाल कर छो टाले। इसमें कीड़ी विमुद हो जायगी। जीपिन कीड़ीका गुण परिणाममुक्त, क्षय और मृदुनीवानक, बट्ट, तिक, अमिहोपक, मुदगदक क तथा पाल और कण्ठर माता मता है।  
 २ रद्य, रत्नी। ३ पद्योत्त।

वराटक (सं० पु० स्त्री०) वराट स्वार्थे कन् । १ कपड्क, कौडी । लीलावतीमें वराटककी संख्याके भेदसे इस प्रकार नामनिश्चयि देखनेमें आती है—बोस कौडीका नाम काकिणी, चार काकिणीका एक पण, सो ढह पणका एक द्रुग और सोलह द्रुगका नाम निष्क है । (लीलावती) प्रायश्चित्तत्वमें लिखा है, कि अस्सी वराटकका एक पण, सोलह पणका एक पुराण और सात पुराणका एक रजत होता है ।

दक्षिणमें वराटक देनेकी व्यवस्था है । नीच ब्राह्मण-को दान और दक्षिणाहीन यह नष्ट हो जाता है, इस कारण एक कौडी वा एक पण कौडी अथवा एक फल वा एक पुष्प भी क्रममे क्रम दक्षिणामें देने चाहिये ।

(पु०) २ रज्जु, रस्सी । ३ पद्मवीज ।

वराटकरजस् (सं० पु०) वराटक इव रजो यत् । नाग-केसरका पेड़ ।

वराटकविप (सं० स्त्री०) वराटक नामक त्वक्सारनिर्घास विष । (सुश्रुत-कल्प० २ भ०)

वराटको (सं० लि०) वराटक सम्बन्धी ।

वराटिका (सं० स्त्री०) वराट-स्वार्थे कन्, ततष्ठाप्, अत इत्वञ्च । १ कपड्क, कौडी । २ तुच्छ वस्तु । ३ नाग-केसरका पेड़ ।

वराडो (सं० स्त्री०) रागिणीभेद । राग और रागिणी देखो ।

वराण (सं० पु०) म्रियते इति वृ-युच्, वृषोदरादित्त्वमयुक् दीर्घे । १ इन्द्र । २ वरुणका वृक्ष, वरना ।

वराणम (सं० लि०) वरणा और अस्तिस्वन्धी ।

वराणसो (सं० स्त्री०) कागी, वाराणसो ।

वाराणसी वा काशी देखो ।

वरातुष्ट (सं० स्त्री०) वीदभेद ।

वरादन (सं० स्त्री०) वरै राजमिरचने इति भद्र ह्युट् । राजावन, देव ।

वरादनः (सं० स्त्री०) वरं वाननं प्रणाः । सुन्दरो स्त्री ।

वराण (सं० स्त्री०) वरं अन्नं । भोजिगन्धन्, वल्ल पुत्रा उत्तम अन्न । शमीघान अथवा मूंग, मसूर, उड़द आदि को अच्छी तरह भून कर उमनी बल ले । पीले जन्ममें अच्छी तरह पाक करके सुसिद्ध होने पर यह वराण कहलाता है ।

वराभिद (सं० पु०) अग्रवेतस, अमलवेत ।

वरावर विहारप्रदेशके अन्तर्गत एक बड़ी शैलश्रेणी । यह गया जिलेके जहानाबाद उपविभागमें अवस्थित है । इस शैलके ऊपर एक प्राचीन मन्दिर है जिसमें सिद्धेश्वर नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है । प्रवाद है, कि विनाजपुर-के श्रीकृष्णविद्वांशे असुरराजने यहाँ यह देवमूर्ति स्थापन की थी । इनके दक्षिण पर्वतके नाँचे 'सातघरा' नामक एक बड़ी गुहा देखी जाती है । उनमेंसे चार गुहामें कर्ण-छोपर, सुदामा, लोमशश्चरि और चिन्वामित्रके नाम देखे जाते हैं । उसमें जो पाली अक्षरमें लिखित शिलालिपि है, उससे जाना जाता है, कि सबसे प्राचीन गुहा ईसा\* जन्मसे पहले ४थी शताब्दीमें और सबसे आधुनिक २६. ई०में उत्कीर्ण हुई थी । इसके पास ही पातालगङ्गा और नागाजुं नौ नामक जलधारा हैं । उस धाराके निकट गोपी, चापीय और वाविधी नामकी दूसरी तीन गुहाए हैं । ये तीनों गुहाएँ ई०सन्से पहले ३री सदीमें अशोक-के पुत्र दगरथ द्वारा प्रतिष्ठित हुई हैं । गोपी गुहामें सम्राट् अशोकके समयकी प्राचीन पाली अक्षरमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि है । वरावर देखो ।

वरागल (सं० पु०) श्रेष्ठऽगलाऽन्न, रस्य लट्गम् । करमद, करौदा ।

वराटक (सं० स्त्री०) वरं श्रेष्ठं घनिमम् ऋच्छति गच्छति ऋ ष्वुल् । होरक, होरा ।

वराटक्षक—विग्न्यपर्वतपार्श्वस्थित एक प्राग ।

(भाविष्य ब्रह्मसू० ८।४३)

वरावणि (सं० पु०) नाता ।

वरावोह (सं० पु०) दक्षिणः उद्यत्वात् आधनपृष्ठत्वाच्च वरः आरोहो यत् । १ विष्णु । २ एक प्रकारका पक्षी । (लि०) २ श्रेष्ठ सवारोंवाला ।

वरावोहा (सं० स्त्री०) वरः आरोहाः नितम्यो यस्याः । १ उत्तम स्त्री, खूबवृत्त औरत । २ कदि, कमर । ३ सोमेश्वरस्थित वाक्पायणी मूर्तिभेद ।

वराधिन् (सं० लि०) आशीर्वादाकाङ्क्षी, ईप्सित वस्तुके पादकी इच्छा करनेवाला ।

वराडक (सं० स्त्री०) पूताकी एक सामग्री । इसमें चन्दन, कुंकुम और अल समभाग होता है ।

वराई (सं० लि०) वरदानके उपयुक्त ।

वराल (सं० पु० स्त्री०) लवङ्ग, लौंग ।



वराहक ( सं० पु० ) वराह देवता ।

वराहिक ( सं० पु० ) १ चन्द्रमा । २ वराहो राशियो ।

वराहिकार ( सं० पु० ) वराह आदिवा सभो जयतिर्दिव्याः ।  
दुर्गा ।

वराहिन ( सं० पु० ) स्मृत्यु वन्द्य, मोटा कपडा । पर्वीय-  
स्मृत्युनाटक, वराहिन, स्मृत्युनाटक, स्मृत्युपट्टक । जटा-  
धरके मन्त्रमे यह जम्ह ह्योपनिष्क दे ।

वराहान ( सं० पु० ) वराहो दुर्गापि सम्पन्ने क्षिप्रवते क्षोभते  
इति यावन्, भास-स्मृत्यु । १ कौट्युपुत्र, अष्टकृन् । यरं  
धे छनामन । २ श्रेष्ठ मासम्, ऊं वा भासन, सिद्धान्तम् ।  
( पु० ) यरं श्लोकां नाथी सम्पत्ति त्यजतीति भक्त-स्मृत्यु ।  
३ विद्वग्, द्विज्जा, मोक्षा । वराहानि जनान् सम्पत्ति  
दुर्गाकरोति । ४ द्वारपाल ।

वराहान-एक प्राचीन नगर । यह दुर्गावर्षर्षतके दक्षिण-  
पूर्व कोनेमे अवस्थित है । इसके दक्षिणमे दानक नामक  
महाशैल और क्षोभक नगर पड़ता है ।

( कामिन्द्यु० ७०॥६१ )

वराहिन ( सं० पु० ) वरी धे छैः मस्वते क्षिप्रवते इति भक्त-  
स्मृत्यु । १ स्मृत्युनाटक, मोटा कपडा । वरोऽतिर्षन्व ।  
२ कौट्युपुत्र, मन्त्रशास्त्री ।

वराहो ( सं० पु० ) श्यामवाम्, मैत्रा कपडा ।

वराह ( सं० पु० ) १ विष्णु । २ मानमेद, एक मान ।  
३ एक पर्वतका नाम । ४ मुष्क, मोषा । ५ जिशुवार,  
सूत्र । ६ वाराहोक्तम् । ७ मन्त्राह तौर्वीसै एक  
छोटा छोर ।

वराह ( भवतार )—विष्णुका तृतीय भवतार । भगवान्-  
मे विष्णु वराहरूपमे अवतारो हो कर पृथिवीका उद्धार  
किया । इस अवतारका प्रियव भ्रातृवर्तमे इस प्रकार  
किया है—मन्त्रवर्षोपनिष्कमे पृथिवी जब निम्नम हुई,  
तब स्वर्गावाप्त्यु मनुमे प्रजाके पाप आ कर स्वर्गके लिये  
प्राथमा को । तब प्रजा अस्वस्थ चिन्तित हो कर भगवान्  
विष्णुका स्तव करने लगे । इसी समयमे भगवान् प्रजाके  
नासाग्गमे अमुक्तः भवतार एक वराहव्रीत निरुत्ता ।  
निष्कले ही यह वाराहो कालमे इतना बड़ा कि आकाश  
को टूट लिया । इसका अङ्ग प्रत्यङ्ग पत्यरके समान प्रत्य-  
ङ्ग ही गया । प्रजाहि देवता भगवान्का भवतार समर्थ

कर उद्धारका स्तव करने लगे । भगवान् उन श्लोकके  
स्तवसे परितुष्ट हो पृथिवीका उद्धार करनेके लिये प्रत्य-  
ङ्गोपनिष्कमे पुनः और पृथिवीका अस्वस्थ करने लगे ।  
पंछे रसातलमे जा कर पशो पृथिवीको देव पाया ।  
भगवन्तर उद्धारमे प्रत्यङ्गालमे जयनेक्यु दो स्वर्गीशवापर  
उत्स घराहो अपने जट्टरमे घारण कर लिया । इसके बाद  
ये भगने दार्तासै पृथिवीको पकड़ कर छोड़े हो मन्त्रके  
मन्त्र रसातलसे बाहर निकल आये । वराहदेवमे पृथिवी-  
का उद्धार किया है, देव कर देवगण उनका स्तव करने  
लगे । भगवन्तर उद्धारमे द्वैतवराह द्विर्वासाका जन्मे मन्त्र  
वच किया । द्विर्वासा देवो । ( भागवत १११-२० सं० )

कालिकापुराणमे लिखा है, कि भगवान् वराहदेव  
पृथिवीका उद्धार कर पृथिवी पर यथेच्छ विचारण करने  
लगे । पृथिवी उनका भार सहन न कर सकी और महादेव  
को शरणमे पहुँचो । महादेवमे वराहरूपो विष्णुने कहा  
था, 'देव ! आपने जिस उद्धारसे वराहदेवको धारण किया  
है, यह सिर हो चुका । अभी पृथिवी आपका भार सहन  
न कर सकनेके कारण पिशाचो हो रही है, इसलिये आ  
वराह शरीरको छोड़ दीजिये । पिशाचनः आपने जलमय  
प्रदेशमे कामिनी पृथिवीको कामना पूरी की है । स्वे-  
धर्मिनी पृथिवीने आपके छेतरसे श्रावण गर्भधारण किया  
है । उस गर्भसे जिसको उत्पत्ति होगी, वह पुन वैश्वको  
मातृरुपाधावन्त होगी । अतः प्रार्थना है, कि रजस्वला-  
सङ्गममे कुछ अनिष्टकारक इस कामुक्त वराहदेवका स्तव  
कीजिये ।'

वराहदेवमे महादेवका बचन सुन कर उनसे कहा था,  
'महादेव ! मुझसे वाक्यानुसार मैं इस वराहदेव का स्तव  
करना हूँ और निरर्से लोकहितके लिये आदम्य वराह-  
देह धारण करूँगा ।' इतना कह कर वराहदेव का लिये  
हो गये । महादेव भी वराहमे स्तव किये ।

वराहदेव उस स्वामने जा कर लोकलोकोर पर्वत पर  
वराहरूपिणी मनोरमा पृथिवीके साथ रहन करने लगे ।  
बहुन समय क हू करके भी वराहरूपो विष्णु पूज न  
हुए । भगवन्तर वराहदेवके लोपसे पृथिवीके गर्भसे वरा-  
हपत्ति सुपुत्र, कनक और चौर नामक तीन पुत्र उत्पन्न  
हुए । वराहदेव इन सब पुत्रीमे परितुष्ट हो वराह देव-

की क्रीड़ा करने लगे। उस भारसे पृथिवीका बिचला हिम्सा घँस गया। अनन्तदेव कूर्म की आक्रमण करके पृथिवी मध्यस्थायी वराहदेवकी वहनग्रथ्यासे भग्नमस्तक और आतङ्कित हो गई। इस प्रकार पुत्रसे परिवृत वराहदेवके मारसे पृथिवी पर तरह तरहका उत्पात होने लगा, सुमेरुके समीप शृङ्ग टूट फूट गये, मानसादि सरोवर उछल पड़ा और कल्पवृक्ष नष्ट हो गया।

अनन्तर देवगण लोकाहितके लिये देवेन्द्र और देव-योनिके साथ मन्त्रणा करके भगवान् विष्णु का स्तव करने लगे। भगवान् देवताओंके स्तवसे संतुष्ट हो बोले, 'तुम लोग जिस भयसे भयभीत हो मेरे निकट आये हो, मुझसे किस प्रकार उस भयकी शान्ति होगी, यह मुझसे जल्द कहो।' देवताओंने कहा, 'वराहकी क्रीडाके कारण पृथिवी दिन-पर-दिन शीर्ण हो रही है। मनुष्य उस उद्वेगसे शान्तिलाम करने नही पाते। सूखे बहू पर आघात करनेसे यह जिस प्रकार टूट जाता है, वराहके खुरके आघातसे पृथिवी भी उसी प्रकार विदीर्ण हो रही है। आप सृष्टिसिधतिके लिये अपना यह भयङ्कर रूप छोड़ देवे'।

जनाहँने देवताओंकी यह बात सुन कर ब्रह्मा और महादेवसे कहा, 'जगत्के दुःखकारणस्वरूप इस वराहदेहका मैं त्याग करूँगा, किन्तु सुखासक इस देहका मैं स्पेच्छापूर्वक त्याग नहीं कर सकता। इसलिये हे ब्रह्मन्! तुम महादेवको अपने तेजसे पुष्ट करो, देवगण महादेवको भी आप्यायत करे'। रजस्वलाके सङ्गम तथा ब्राह्मणादिके कारण यापपूर्णप्राणको मैं खुशीसे छोड़ दूँगा।' इसने बाद भगवान् विष्णु देवताओंके आदेशसे वराहदेवसे अपना तेज खीनने लगे। तेजके खीन जानेसे वराहदेह सरथहीन हो गई। पीछे महादेव देवताओंके साथ तेजरहित वराहदेवके समीप गये। ब्रह्मादि देवगण महादेवका तेज बढ़ानेके लिये उनके पीछे पीछे चले। उन सबोंके तेज देनेसे महादेव अत्यन्त लज्जान् हो उठे। अनन्तर महादेवने ऊर्ध्व तथा अधोदेशमें अष्टचरणसमन्वित भयानक शरभरूप धारण किया। वराह और शरभमें तुमुल युद्ध होने लगा। पीछे शरभरूपी महादेवसे वराहदेव मारा गया। पीछे उसके महाबलिष्ठ पुत्र पौत्रादि भी शरभके दाघण आघातसे विनष्ट हुए।

इस प्रकारके कौशलसे वराहदेवके मारे जाने पर उसके शरीरसे सभी दश उत्पन्न हुए। शरभने वराहदेहको फाड़ दिया और ब्रह्मा, विष्णु तथा प्रमथोंके साथ महादेव जलसे इस देहको ले कर आकाश चले गये। विष्णुने सुदर्शनचक्र द्वारा उस देहको खण्ड खण्ड कर डाला। इसी वराहदेवके दोनोँ झू और नाकका सन्धिभाग ज्योतिष्टोम नामक यज्ञरूपमे परिणत हुआ। कपोलदेशके उद्य स्थानसे कर्णमूलके मध्यस्थित सन्धिभाग वह्निष्टोमयज्ञ, चक्ष और दोनोँ झूका सन्धिभाग पौनर्भव-स्तोम यज्ञ, जिह्वामूलीय सन्धिभाग वृद्धस्तोम तथा गृहस्तोम, जिह्वादेशके अधोभागसे अतिराल तथा वैराज यज्ञ हुआ। अश्वमेध, महामेध तथा नरमेध आदि प्राणि-हिंसाकर जो सब यज्ञ हैं, हिंसाप्रयत्नक वे सब यज्ञ चरण-सन्धिसे; राजसूय, चाजपेय और सभी गृहयज्ञ पृष्ठ-सन्धिसे; प्रतिष्ठा, उत्सर्ग, दान, श्रद्धा और सावित्री आदि यज्ञ हृत्पसन्धिसे; उपनयनादि संस्कारक यज्ञ तथा प्रायश्चित्तविधायक यज्ञ मेढसन्धिमें; राक्षसयज्ञ, सर्पयज्ञ आदि सभी प्रकारका अभिचार यज्ञ, गोमेध पर्व यज्ञजाप आदि यज्ञ खुरसे; मायेष्टि, परमेष्टि, गोशंति, भोगज और अनियोग यज्ञ लांगूलसन्धिसे; तोषप्रवाग, मास, सङ्घर्षण, आर्क और आपर्षण नामक यज्ञ नाड़ी-सन्धिसे; ऋचोत्कर्ष, क्षेत्रयज्ञ, पञ्चमार्ग, लिङ्गसंस्थान और हेरभ्य यज्ञ जानुदेशसे उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वराहकी देहसे आठ हजारसे ऊपर यज्ञ उत्पन्न हुए।

वराहके श्रोत्रसे झूक्, नासिकासे झुव, ग्रीवासे प्राक-वंश (होमगृहका पूर्वभागस्थ गृह), कण रन्ध्रसे इष्टा पूर्व, दन्तसे यूप, रोमसे कुज, दक्षिण और वाम पादसे अश्वद्यु और होता, मस्तिष्कसे पुरोडाश, मध्यदेशसे यज्ञवेदी, मेढसे यज्ञकुण्ड, पृष्ठदेशसे यज्ञगृह और हृत्पदासे यज्ञकी उत्पत्ति हुई। वराहका आत्मा यज्ञपुरण हुए। उसकी रक्षासे मुञ्जाकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वराहकी देहसे भाण्ड हविः आदि यज्ञाय सभा प्रकारके द्रव्य उत्पन्न हुए थे। यज्ञरूपमें सर्वजगत्की आप्यायित करनेके लिये वराहदेवकी देह यज्ञरूपमें परिणत हुई।

ब्रह्मा, विष्णु और महाेश्वर इस प्रकार यज्ञकी सृष्टि करके वराहदेवके सुपुत्र, कनक और घोर नामक मृत



इसके चारों पायों में खूर होते हैं। जंगली वराहों के दाँत हाथीकी तरह बाहर निकले होते हैं, किन्तु उसके कुछ छोटे होते हैं। दन्तविहीन वराह हो प्रधानतः शूकर कहलाता है।

भारतके कई स्थानों में एवं यूरोपमें जिस तरहके वराह देखे जाते हैं, उनकी अपेक्षा भारतीय वृषोंके शूकर कहीं छोटे होते हैं। जंगली वराह प्रायः दिनके समय जंगलमें छिपे रहते हैं एवं रात्रिमें अन्धेरा हो जाने पर अपने अपने आश्रय स्थानका परित्याग करके बाहर निकलते हैं और निकटवर्ती प्रामोंके अनाजसे भरे हुए खेतोंमें घुस कर प्रनमाना अनाज खा कर पेट भर लेते हैं। वराह खेतमें प्रवेश करके घड़ाकी मिट्टी उखेल डालते हैं, जिमसे अनाजके पीढ़े बहुत नष्ट हो जाते हैं एवं काफ़ी अनाजके उत्पन्न होनेमें बाधात पहुँचता है। कहीं कहीं वराह मिट्टी खोद कर मानकच्यु, आलू इत्यादि कन्द खा जाते हैं। जिस स्थान में इन सब उद्भिद् आदिका अभाव रहना है एवं जहाँ उन्हें इच्छानुसार कन्दमूल खानेकी नहीं मिलते, वहाँ वे भरे हुए ऊँट आदि पशुओंके मांससे भी अपने पेटको भनि पुकाते हैं। भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेसे वे निकटवर्ती प्रामोंमें जा कर प्रामवासियोंके फेके हुए कूड़े कर्कटसे अपना खाद्य पदार्थ निकाल कर उदरपोषण करते हैं। मानव विष्टामें भी उनकी विलक्षण रुचि देखी जाती है।

एशियाके कई एक स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके घन्यवराह देखे जाते हैं। प्राणितत्त्वविदोंने उन्हें सात श्रेणियोंमें विभक्त किया है। वे कहते हैं कि भारतीय घन्यवराहकी एक शाखा जो इस समय यूरोप तथा उत्तर-वर्षिकामें फैल गई है एवं हिन्दुस्तानके बीच जिसके अनु-रूप वराह जाति विद्यमान है, उसे यूरोपीय समाज 'चाइनीज ब्रीड' (Chinese breed) के नामसे पुकारते हैं। विभिन्न शाखायुक्त होने पर भी यह शूकरजाति देश-भेदानुसार भिन्न भिन्न नामसे परिचित है। नीचे विभिन्न देशीय नाम तथा उनकी जातिगत पृथक्ता निर्देश की गई है—

विभिन्न देशीय नाम,— अरबी तथा पारसी—खान-

जिर, खानकर; संस्कृत तथा बङ्गला—वराह; कनाडी—हण्डी, सिक्का, जेवाडी; डेनमार्क—Svun; सोलन्दाज—Varken, Zwijn; फर्रासी—Verrat, Cochon. Pourceau; जर्मन—Eber, Schwein; गोड—पहो; प्रोक—Choiros; हिन्दी—सूअर, बनेला सूअर; इटली तथा पुर्सांगल—Ferro, Porco; लैटिन—Sus porcus;—मलय—बवि, बवि आलस, बविउटान; महाराष्ट्र—डुकर; रूस—Svinza; स्पेन—Verraco, Puerco; स्वीडेन—svin; तेलगू—आदायिकोडू, पण्डि; वेल्स—Hweh Hweh; हिन्दु—हाजिर, छजिर; गिङ्गापुर—बलुर।

एशियाके कई स्थानोंमें एवं भारत-समीपवर्ती कितने ही देशोंमें जो विभिन्न श्रेणी देखी जाती है, वे साधां-रणतः ७ भागोंमें विभक्त हैं। इन सातों शाखाओंका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

sus-Indicus या S scrofa भारतीय साधारण घन्यवराह—जर्मनीके घन्यवराहसे इस जातिकी बहुत पृथक्ता है, किन्तु उससे इनकी एक स्वतन्त्र शाखा कायम नहीं की जा सकती। भारतीय वराहोंका मस्तक बड़ा तथा कोनाकार एवं कपाल चिपटा होता है, किन्तु यूरोपीय वराहके कुछड़े। भारतीय वराहके कान छोटे तथा मुकीले और पाश्चात्य वराहोंके बड़े तथा नीचेकी ओर झुके होते हैं। भारतीय वराह बड़े और तीव्र चाल-पाले होते हैं, किन्तु जर्मन देशीय वराह बड़े होने पर भी उतनी तेज़ीसे दौड़ नहीं सकते। इन दोनों देशोंके घन्यवराहोंकी छोड़ कर पालतू वराहोंके मध्य भी कितने ही विषयोंमें इस तरहकी पृथक्ता देखी जाती है।

भारतमें उक्त श्रेणीके वराह ही प्रधान हैं। बङ्गालके कई स्थानोंमें इस श्रेणीके वराह देखे जाते हैं। जब मोजनकी खोजमें वराहसमूह जङ्गलसे निकल कर प्राममें प्रवेश करते हैं, तब प्रामवासी दन्ताघातसे आहत होनेके भयसे संशंकित हो उठते हैं और सबके सब एकल हो कर उन्हें मारनेकी तैयारी करते हैं। देहाती लोग जङ्गलमें जा कर कुत्तेकी सहायतासे वराहोंका शिकार करते हैं, किन्तु यूरोपीय शिकारी प्रधानतः बौद्धिक सहायता से वराहोंका शिकार कर लेते हैं।

बरादा हाथमें लिये हुए दिखाए जाते हैं। इसे मनु-  
शेकोमि *Manis javanica* कहते हैं।

प्रायतः प्रायद्वितीयो प्रायतः है, कि इस श्रेणीके प्राय-  
के चोमंडलगत श्रेणीमें यूरोप तथा अफ्रीकाके शूकर-  
कुलमें वृत्तान्त हुए हैं। उत्तर पश्चिम भारतमें इस श्रेणी-  
का शूकर नामों में ३६ इयमें बड़ा देखा गइया जाता,  
किन्तु बंगालमें साधारणतः ४४ इय पर्यंत बड़ा होता  
है। रोमांसमें जिनमें शूकर देखे जाते हैं, वे प्रधानतः  
चीन, कोकोन-चीन तथा इण्डो-मलय प्रायद्वीपमें उत्पन्न  
हूए हैं। अन्टार्क्टिका, दक्षिण, तुर्की, स्पेन, ब्रिटेन तथा  
दक्षिण पूर्व यूरोपके शूकर इस श्रेणीके ही मूलभूत  
हैं। बंगालमें एक दूसरी श्रेणीके शूकर (*S. Bengalensis*) पाये  
जाते हैं। यूरोपिक श्रेणीके साथ इस श्रेणी-  
की जातिगत घटनमें बहुत ही अन्तर देखा जाता है।  
मदरदास नामके शूकरमनुष्य *S. Andamanensis* एवं  
मलयमायद्वीप तथा उसके समीपवर्ती स्थानगत शूकर-  
पंजा *S. Malayanensis* नामसे विख्यात हैं। जावा द्वीपके  
बड़े स्थानोंमें *S. verrucosus* श्रेणीके शूकर पाये जाते हैं।  
उनके शरीरों बजोरीका पार्श्वस्थ मांसपेश्य अत्यंत  
सूक्ष्म तथा क्षीण होता है, मुत्तारतः देखते ही हृदयमें  
भयका संसार होता है; किन्तु दूसरी दूसरी पराह श्रेणीकी  
की भाँति वे स्वभावनः भयंकर होते हैं। सिंह, बार्निबो  
मधुगिरी द्वीपों की *S. barbatus* श्रेणीके शूकर *S. Indicus*  
श्रेणीके विस्तृत विस्तार होते हैं। बार्निबो द्वीपगतकी  
लोवकोही मनुष्य तथा अत्यंत अंग पर्यंतकी वृत्त-  
वृत्ता देव वर मि. इण्डोनेस *S. Zeylonensis* नामक एक  
दूसरी जातिका उल्लेख किया है। म्यान्मारेकी प्रजातः  
पराह *S. Papuanensis* नामसे पुकारी जाते हैं। उत्तर-  
भागके उत्तरपश्चिमी एक प्रकारके छोटे शूकर देखे जाते हैं।  
इसमें अंग उच्छेद छोटे शूकर का सादर समीका करते हैं।  
वे अत्यंत बलमें दृढ हों कर बल करते हैं। उनके  
पुं शूकर साधारणतः बलही रहते करते हैं। *Guinea-pig*  
नामक एक और भी शूकर प्राय देखा जाता है। ये शूकर  
बहुत ही छोटे होते हैं। वे साधारणतः अफ्रीके तीसरे  
भाग तथा उत्तर पूर्व अफ्रीके में ही उत्पन्न होते हैं।  
वे उत्तम वृत्तव्य अर्द्ध का वर उत्तम भाग करते हैं।

जापान तथा फार्मोसा द्वीपमें *Sus leucopyga*  
नामक और भी एक श्रेणीके शूकर देखे जाते हैं। इनके  
बादाये जापानमें एक दूसरी जातिके विस्तृत नाम  
साथ साथे सिहपाले शूकर होते हैं। प्रायतः प्रायद्वितीये  
उच्छेद *S. piliceps* साधारणतः किया है। उनके शरीर-  
के समूह साथे, मोटे तथा सिद्धे हुए होते हैं। अफ-  
रिक्कीमें इन्हें *masked pig* कहते हैं। बार्निबो में  
*Musked Boar* का समाप गइया है।

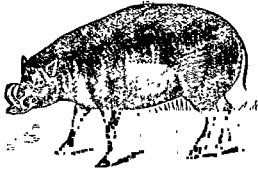
प्रायतः प्रायद्वितीयो *F. Cuvier* ने विदेश पर्यटन  
कारके *Babirusa* नामक एक दूसरी पराह श्रेणी  
उल्लेख किया है। उन्होंने मलय भाषाके 'बिबि' शब्दमें  
पराह और 'कमा' शब्दमें हरिण प्रथम करके, इन दोनों  
शब्दोंके मध्य इस श्रेणीको नामकरण किया है। भार-  
तीय *Sus scrofa* से इस श्रेणीके कई विषयोंमें वृत्तवृत्ता  
देखा जाता है। सोचे उक्त श्रेणी श्रेणीकी वृत्तवृत्त  
विशेष गइ है—

*S. scrofa*—वर्तक  $\frac{1}{2}$ , जीवन  $\frac{1-1}{1-1}$ , पर्यंत  $\frac{9-9}{9-9}$   
४४, किन्तु *Babirusa* पर्यंत—वर्तक  $\frac{8}{8}$ , जीवन  $\frac{1-1}{1-1}$   
पर्यंत  $\frac{5-5}{5-5}$ —३२।

सहजा श्रेणीके किसी किसी शब्दों, शीत शीत वष  
मिसेपस तथा टोमेट श्रेणीमें *B. allare* नामके  
पराह देखे जाते हैं। इनके शरीर वृत्तवृत्त, किन्तु  
बार्निबो वष अत्यंत वष पतले होते हैं। इनके शरीर वष  
रीय नहो होते। वे वृत्तवृत्त होते हैं। इनके ऊपरके  
बड़े बड़े शीत मुत्तारतः ऊपर उठ कर वृत्तवृत्त में मोटे  
के और अत्यंत हुए पुनः मुत्तारके ऊपर भागकी वृत्तवृत्त  
है। उनके शीत और मो शीत छोटे शीत होते हैं।  
इस वष शीत अत्यंत छोटे होते हैं। किन्तु किसी  
की भी किन्तु ही नहो होते। इस जातिके वष पु-  
पराहका वष दूसरे वृत्तवृत्त देखा गया है।

भारतीय द्वीपप्रायद्वीपके विख्यात है कि, यह पराह-  
श्रेणी छोटे हरिण और पराहोंके शरीरमें उत्पन्न हुए हैं।  
वे शीत वष द्वीपवासों के वषोंके साथ ही उत्पन्न  
के साथ उत्पन्न शीत वषों हैं। इनके शरीरका वष अत्यंत

होता है। ये अपने छोटे छोटे दाँतोंसे शत्रुओं पर आक्रमण करके उन्हें घायल तो कर सकते हैं, किन्तु भारतीय बड़े बड़े दाँतवाले वराहके समान भयङ्कर नहीं होते। इनके बड़े दाँत विशेष कार्यकारा नहीं होते। जिस समय ये तेजीके साथ घने जंगलमें प्रवेश करते हैं, उस समय ये दौन लता गुलमोंको हटा कर इनकी आँखोंकी रक्षामात करते हैं।



Phacochoerus और Aeliani P. Aethiopicus नामक काले रंगके बड़े बड़े दाँतवाले एवं स्थूलमुखी दो प्रकारके वराह देखे जाते हैं; उनमें प्रथमोक श्रेणीको अपेक्षा शेषोक श्रेणीके वराह बड़े और भयंकर मुख वाले होते हैं। अङ्गरेजोंमें इस श्रेणीको Wart-hog कहते हैं। इनकी दन्तपंक्ति दूसरी तरहकी होती है। इनके दोनों बड़े दाँन मुखके पार्श्व भागमें फेले हुए रहते हैं। इनके ऊपरके दो कर्चान-दन्त त्रि पल होते हैं, किन्तु नीचेके छः दाँत छोटे और सरल। बड़े दाँत सरल और कुछ ऊपरकी ओर झुके हुए, किन्तु अन्यान्य समी प्रकारके वराहोंकी अपेक्षा बड़े और मोटे होते हैं। दोनों गाल मांससे भरे हुए एवं स्थूल पिंखवत् (Wart), पूँछ छोटी एवं पाँव भारतीय वराहोंकी तरह मज्जवूत होते हैं। इनको पीठ सख्त और लम्बे लम्बे बालोंसे आच्छादित रहती है। इनके दाँतोंकी पंक्ति—

कर्चक  $\frac{2 \text{ या } 0}{1 \text{ या } 0}$ , शीवन  $\frac{1-1}{1-1}$ , वर्णन  $\frac{3-3}{3-3} = 6 \text{ या } 28$ ।

कुम्भियाँरका कहता है, कि केपकोलनी (Cape Colony) में जो घाटे हामू देखे जाते हैं, उनकी ऊपरी तथा नीचेकी दाढ़ीमें तान चूर्चणवन्त होते हैं। इसके अतिरिक्त P. Aeliani और Aape Wart hogमें और भी कई

विधोंकी विभिन्नता देखी जाती है। नीचे अफ्रिकाक स्थूलमुख वराह (P. Aeliani) का चित्र दिया गया है—



दक्षिण अमेरिकाके बार्कन्मस्से ले कर ब्रेजिल पर्यन्त विखिन भूखण्डमें एक श्रेणीके छोटे शूकर (Dicotyles) देखे जाते हैं उनमें जिनके गलेमें सादा दाग होता है, वे D. torquatus और जिनके ओठ उन्नले होते हैं, वे D. labiatus कहलाते हैं। अंग्रेजोंमें प्रथमोक श्रेणीके वराहको the Coloured Peccary एवं शेषोक श्रेणीको The white lipped Peccary कहते हैं। मेक्सिको तथा वेस्ट इन्डियाके द्वीपोंमें जो शूकर देखे जाते हैं, वे प्रथमोक श्रेणीके अन्तर्गत हैं, वे कितने विषयोंमें भारतीय Sus श्रेणीके वराहोंसे मिलते जुड़ते हैं, सिर्फ पाँव, दाँत और शारीरिक गठनमें कुछ अन्तर रहता है। इनकी हथेली हड्डी (Metacarpus) तथा तलपैकी हड्डी (Metatarsus) परस्पर मिली रहती हैं।

इस श्रेणीके वराहकी कमरके ऊपर एक छेद रहता है, जिससे सम्बद्ध एक प्रकारका दुर्गन्धमय रस निकलता रहता है।

D. torquatus तथा D. labiatus श्रेणीके शूकर एक साथ दले बाँध कर घूमने निकलते हैं। कभी कभी एक एक दलमें सैकड़ों वराह देखे जाते हैं। सज्जित सैनाकी तरह वे कत व बाँध कर चलते हैं और एक बाँध अधिक वराह उनके नेता बन कर भागे भागे चलते हैं। सामनेमें नदी या खाई इत्यादि देख कर वे किनारे पर उतर जाते हैं। इसके बाद वे चोड़ी देर तक सोच विचार कर एक एक करके नदीके गर्भमें



वराहकल्प (सं० पु०) एक कल्पका नाम । इस कल्पमें भगवान्ने वराहमूर्त्ति धारण को था ।  
 वराहकल्पच—धारणीय मन्त्रीपद्यविशेष । स्कन्दपुराणमें इसका उल्लेख है ।  
 वराहकान्ता (सं० स्त्री०) वराहस्य कान्ता प्रिया । वाराहान्ता पृथ्वी ।  
 वराहकालिन् (सं० पु०) सूर्यमणि पुत्रपुत्र । पर्याय—सूर्यावर्त्ता ।  
 वराहकाली (सं० स्त्री०) आदित्यमका, हुरहुर ।  
 वराहकान्ता (सं० स्त्री०) वराहैण कान्ता । अतिप्रियव्याहृ ।  
 १ क्षु पविशेष, लज्जालु । पर्याय—लज्जालु, समङ्गा, लज्जाकारिका, वराहनामा, चद्रा, शूकरो, तिलकगन्धिका, नमस्कारो, गण्डकाली, खाद्विरो, लज्जालुका, अञ्जलकारिका, कृताञ्जलि, गण्डकारी, समीच्छदा । २ वाराही ।  
 वराहप्राम—अथर्व प्रे सिडेन्सीके वेलगांव जिलान्तर्गत एक गण्डप्राम ।  
 वराहतीर्थ—एक तीर्थका नाम (सं० पु०)  
 वराहद्वेष्ट (सं० पु०) क्षुद्रोपविशेष, वराहदन्त ।  
 वराहदत् (सं० स्त्री०) वराहदन्त ।  
 वराहदत्त—वाणिकमेद । (कथावर्तिष्ठा ३७१००)  
 वराहदन्त (सं० त्रि०) १ वराहदन्तविशिष्ट, जिसके दांत वराहके दांतके समान हो । (पु०) २ वराहका दांत ।  
 वराहदेव स्वामी—गृह्यसूत्रव्याख्याके रचयिता ।  
 वराहद्वीप (सं० स्त्री०) यह कृत्य जो माघ मासकी शुक्ल द्वादशीमें वराहरूपी विष्णुके लिये किया जाय ।  
 वराहद्वीप (सं० स्त्री०) एक द्वीपका नाम । वराह देवो ।  
 वराहनगर—बङ्गालके २४-परगनेके अन्तर्गत एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर । यह गङ्गानदीके बायें किनारे अवस्थित है । यह स्थान पहले वाणिज्य-प्रधान था । गङ्गा मक्ति-तरङ्गिणी आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख आया है । यहाँ पहले करघेकी धोतीका जोरों वाणिज्य चलता था, अभी उतना नहीं है । पहले ओलन्दाज वाणिज्यों को यहाँ एक कोठी थी । चुंचड़ा आनेके समय ओलन्दाज सीदागरी जहाज यहीं पर लंगर डाल कर रहता था ।  
 इस नगरकी जो वराहनगर नाम पड़ा है, इस विषयमें बहुत-सी किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं । उस समयके

एक कागज-पत्रमें लिखा है, कि ओलन्दाजगण यहाँ वराहको हत्या किया करने थे, इसी कारण इस स्थानका वराहनगर नाम पड़ा है । स्थानात् किंवदन्ता है, कि विष्णुको वराहमूर्त्तिसे यह स्थान देव-नाम पर कीर्तित हुआ है । फिर बहुतोंका कहना है, कि यहाँ एक दस्यु-सरदार रहता था । उसने वराह अथनारके उद्देश्यसे इस नगरको बसाया । जो हो, वराहनगरका स्थान और नाम नितान्त आधुनिक नहीं है । महाप्रभु चैतन्यदेवने धा कर यहाँ भागवताचार्य पर दया को था । आज भी वराहनगरमें भागवताचार्यका आसन है । भागवताचार्य देवो ।

यहाँके ओलन्दाज कार्त्तिनिर्द्धान-स्वरूप आज भी अनेक चित्रित खपड़ेके टूटे फूटे टुकड़े नजर आते हैं । १७६५ ई०में ओलन्दाज गवर्मेण्टने यह स्थान अंगरेजोंके हाथ सौंप दिया । ओलन्दाजोंके आनेसे पहले यहाँ एक पुर्तगोज उपनिवेन स्थापित हुआ था । अंगरेजों शासनमें यहाँ म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है जो 'नार्थसुवर्चन म्युनिस्पलिटी आव कलकत्ता' नामसे प्रसिद्ध है । यहाँ गङ्गाके किनारे अनेक धनी और वाणिज्योंके वागान हैं । कई एक देवालय भी गङ्गा-तटका शोभा बढ़ा रहे हैं । मालमबाजारकी रैडों तैलको कल और उसका वाणिज्य तथा बोर्नि यो कम्पनीको चटकल यहाँका प्रसिद्ध वाणिज्य केन्द्र है । मालमबाजारके उत्तर सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वरका काली-मघन है । पूज्यपाद परमहंस रामकृष्णदेव यहाँ रहते थे ।

वराहनामन् (सं० पु०) वराहस्य नामैव नाम यस्य वाराहीकम् ।  
 वराहनिर्दूह (सं० पु०) वराहमांसरस, वराहके मांसका शोषण ।  
 वराह पण्डित—प्रयोगसंग्रहद्विक नामक ह्वाकरणके रचयिता ।  
 वराहपत्नी (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, बसगन्ध ।  
 वराहपित्त (सं० स्त्री०) शूकरपित्त । इसके शोधनेका तरीका—शूकरपित्तको सुखा लेने पर पीछे नीमके रसमें भावना देनेसे एक दिनमें हो विशुद्ध हो जाता है । मछली आदिका भी पित्त इसी प्रकार शोधा जाता है ।  
 मत्स्यपित्त देवो ।



उत्तरीय भाग कर लगे हुए काले हैं एवं पुनः सुसज्जित  
 निहाली तरह बगल बसि कर अपने मन्त्रण पत्रको भेद  
 करवाते हैं। यदि कालमें कोई अनाक्रम भरा हुआ  
 क्षेत्र दिखाई पड़ता है, तो वे क्षेत्रोंकी उरकको समुद्र नष्ट  
 करने विचारें यद्यपिभीदा सर्वानाज कर जाते हैं। जब  
 अपने समय विषयों प्रकाशकी, प्रत्यागाधिक परता होनेमें  
 वे खासि हो उठते हैं एवं समय विद्वत् हो कर वे अपने  
 अपने क्षेत्रोंकी कटकाटा कर उरक भवापनी यन्त्रुकी देखने-  
 की प्रतीक्षा करते हैं। जब भवका कोई कारण दृष्टिगोचर  
 नहीं होता तब भीमा हो उरक स्थानका परिष्कार करके  
 दूसरी ओरको जाता करते हैं। यदि कोई निकारी पेशी  
 समय उनके सामने आ जाय तो वे उन्हें चारों ओरमें  
 भेद कर अपने ताबे क्षेत्रोंके आकारमें टुकड़े टुकड़े  
 कर जाते हैं। O, Lalatus पराह साधारणतः उमि  
 १२ फीट तक लम्बा एवं १०० चौड़ा होता है, किन्तु  
 In. longatus पराह ३ फीटमें अधिक लम्बा तथा  
 ५० चौड़े अधिक भारी नहीं होता। गिरेट पार्कके  
 सिटियासामिने Choinopotamus Africanus नामक  
 और तो एक प्रकारका पराह बना गया है।

बहुत प्राचीनकालमें ही पराररमें पराहकी निर्माण  
 पाया जाता है। दिशु जालमें विष्णुके तृतीय अवतारमें  
 पराहमूलि धारण करने और पृथ्वीके उदार करनेकी  
 काम पहरें ही वर्णन की गई है। इन्को देखो।

भूकंपको आनीयना करनेमें ज्ञाना जाता है कि,  
 टार्निवारि भूकंपरश्मिगत जालपरीके आरोहकी हथिरीके  
 मध्य प्राचीनत मुगक द्वितीय विभागमें तथा सिरोमिन  
 मुगक तृतीय और अन्तर्प विभागमें पराहका सन्निभरश्मि  
 पाया जाता है। ओक जालियोंके इतिहासमें भी टार्फांग  
 क्षेत्रके पवित्र पराहका उल्लेख है। कोनरेशीय एक  
 सन्तमें ३२०० वर्षों पहरिके पराहका दृश्यात विधा हुआ  
 है। समुद्रादिनामें भी पराह मौसकी निरिपविवि दिखी  
 है। महाभारतमें पराहके साधारण उल्लेखमें भीना  
 साजरीकी कथा लिखी हुई है। मुकामक, अन्तुचरवर्षकी  
 काले रात्रिमें लक्ष्मी पराहकाल सपहार करने में। इस  
 सपहारको सजने हुई वर्णमुद्राकी पराहके विषय अद्भुत  
 रहने से। यह सपहारका कथाभी थी। भारतमें रात्रुत

भाषान बासयो महोरसयमें मत हो कर अंतो बरसे  
 का निहार करने से। इस दिन वे शीतकी सोह भाग  
 छाड़ कर पराहका निहार करने जंगलमें जाने से।  
 पराहका निहार न कर सकने पर रात्रुत-जातिका  
 समन होगा, ऐसी ही उन लोगोंकी भाल्या थी। इस क्षेत्री  
 पराहमें वे समकने से कि, जगन्नाता हमारे ही  
 लोगी पर क्रुद्ध हो गई। रात्रुत जातिके आरिखा  
 उरमयमें भी गोरीके सामने पराहकी बनि चढ़ानेकी  
 रीति है।

वसन्तकालमें पराह-निहार एकजातिकी एक प्रामांश  
 प्रथा है। कश्चुनामयामो भविष्यतिके मध्य वसन्त-  
 प्रायुके समय "किवा" देशोंके महोरसयमें पराहके पति-  
 प्रदानकी रीति देखी जाती है। इस देशके रक्षक  
 इस महोरसयके दिन मैरे तथा भागा प्रकाशके समाने  
 निहार किये हुए पराहका मांस भक्षण करते थे। इस तरह  
 फारस देशमें भी वर्षास्मरके प्रथम दिन "O Chel" (पराह)  
 भूज कर खायेको प्रथा है। हेरोडोटासकी  
 विवरणोंमें सिधुदेशवासियोंके समाने ही निहार किये हुए  
 सूतमोम खायेका उल्लेख है।

भारतमें मुसाघ जातिके लोग सूत पाठते थे। वे  
 लोग जलेशकी वृत्तामें सूतकी बलि देते थे। इसका  
 मांस भी वे खाग जाते थे। किन्तु उनके मेषों उर्दे  
 रात्रुतपर्वकी रात कर सूत पाठने तथा उरहा मोम  
 खायेके रीति, अतः अब वे लोग इसका मांस भक्षण नहीं  
 करते।

पराह—एक प्रतिमानके प्रयोग। वे जालकके सपहार-  
 विक्र मे।

- पराहक (सं० पु०) १ होरक, होरा। २ मिगुमार, सूत।
- पराहक्य (सं० पु०) पराहविना कला। पराहोक्त्य।
- पराहकन (सं० पु०) १ एक प्रकार का मांस। २ एक पाठ  
 का नाम।
- पराहकीका (सं० स्त्री०) मुसाघप्रदेह, सपुर्देका एक  
 दिशातर।
- पराहकनी (सं० स्त्री०) सपहारका, जगमप। ( Pity-  
 oalis Hexodia )

वाराहकल्प (सं० पु०) एक कल्पका नाम । इस कल्पमें भगवान्ने वाराहमूर्त्ति धारण की थी ।

वाराहकवच—धारणीय मन्त्रीयध्विशेष । स्कन्दपुराणमें इसका उल्लेख है ।

वाराहकान्ता (सं० स्त्री०) वाराहस्य कान्ता प्रिया । वाराहा-पृष्ठ ।

वाराहकालिन् (सं० पु०) सूर्यामणि पुत्रवृक्ष । पर्याय—सूर्या-पत्नी ।

वाराहकाली (सं० स्त्री०) आदित्यभक्ता, सुरसुर ।

वाराहकान्ता (सं० स्त्री०) वाराहेण कान्ता । अतिप्रियत्वात् ।

१ क्षु पविशेष, लज्जालु । पर्याय—ठज्जालु, समङ्गा, लज्जाकारिका, वराहनामा, चद्रा, शूकरो, तिकगन्धिका, नमस्कारो, गण्डकाली, खादिरो, लज्जालुका, अञ्जलकारिका, कृताञ्जलि, गण्डकारो, समीच्छरा । २ वाराही ।

वाराहग्राम—बम्बई प्रेसिडेन्सीके वेलगांव जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम ।

वाराहतीर्थ—एक तीर्थका नाम (कर्मपु०)

वाराहद्वेष्ट (सं० पु०) क्षुद्रोगविशेष, वराहदन्त ।

वाराहदन्त (सं० स्त्री०) वराहदन्त ।

वाराहदन्त—गणिक्रमेद । (कपालरिक्ता० ३७।१००)

वाराहदन्त (सं० त्रि०) १ वराहदन्तविशिष्ट, जिसके दांत वराहके दांतके समान हों । (पु०) २ वराहका दांत ।

वाराहदेव स्वामी—गृह्यसूत्रध्याषयाके रचयिता ।

वाराहद्वादशी (सं० स्त्री०) यह कृत्य जो माघ मासकी शुक्ला द्वादशीमें वाराहरूपी विष्णुके लिये किया जाय ।

वाराहद्वीप (सं० स्त्री०) एक द्वीपका नाम । वराह देवो ।

वाराहनगर—बङ्गालके २४-परगनेके अन्तर्गत एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर । यह गङ्गानदीके बायें किनारे अवस्थित है । यह स्थान पहले चाण्ड्य-प्रधान था । गङ्गा भक्ति-तरङ्गिणी आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख आया है । यहां पहले करवेकी घोतीका जोरें चाण्ड्य चला था, ममी उतना नहीं है । पहले ओलन्दाज वणिकों को यहां एक कोठी थी । चुन्चड़ा आनेके समय ओलन्दाज सीदागरो जहाज यहीं पर लंगर डाल कर रहता था ।

इस नगरकी जो वराहनगर नाम पड़ा है, इस विषयमें बहुत-सी किंवदन्तियां सुनी जाती हैं । उस समयके

एक कागज-पत्रमें लिखा है, कि ओलन्दाजगण यहां वराहको हत्या किया करने थे, इसी कारण इस स्थानका वराहनगर नाम पड़ा है । स्थानोप किंवदन्ती है, कि विष्णुको वराहमूर्त्तिसे यह स्थान देव-नाम पर कीर्तित हुआ है । फिर बहुतोंका कहना है, कि यहां एक वृष्यु-सरदार रहता था । उसने वराह अथनारके उद्देश्यसे इस नगरको बसाया । जो हो, वराहनगरका स्थान और नाम नितान्त आधुनिक नहीं हैं । महाप्रभु चैतन्यदेवने जा कर यहां भागवताचार्य पर दया की थी । आज भी वराहनगरमें भागवताचार्यका आसन है । भागराचार्य देवो ।

यहांके ओलन्दाज कार्शिनिदर्शन-स्वरूप आज भी अनेक चित्रित खपड़ेके टूटे फूटे टुकड़े नजर आते हैं । १७६५ ई०में ओलन्दाज गवर्मेण्टने यह स्थान अंगरेजोंके हाथ सौंप दिया । ओलन्दाजोंके आनेसे पहले यहां एक पुर्सागोत्र उपनिवेश स्थापित हुआ था । अंगरेजों शासनमें यहां ग्युनिस्पलिटो स्थापित हुई है जो 'नार्थसुवर्चन ग्युनिस्पलिटो भाव कलकत्ता' नामसे प्रसिद्ध है । यहां गङ्गाके किनारे अनेक धनी और वणिकोंके वागान हैं । कई एक देवालय भी गङ्गा-तटको शोभा बढ़ा रहे हैं । मालमवाजारकी रैङ्गी तैलको कल और उसका चाण्ड्य तथा बोर्नियो कम्पनीको चटकल यहांका प्रसिद्ध चाण्ड्य केन्द्र है । मालमवाजारके उत्तर सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वरका काली-भवन है । पूज्यपाद परमहंस रामकृष्णदेव यहां रहते थे ।

वाराहनामन् (सं० पु०) वाराहस्य नामैव नाम यस्य वाराहीकन्द ।

वाराहनिर्घूह (सं० पु०) वाराहमांसरस, वराहके मांसका शोरेषा ।

वाराह पण्डित—प्रयोगसंग्रहविद्वेक नामक व्याकरणके रचयिता ।

वाराहपत्नी (सं० स्त्री०) अभ्यगन्धा, भसगंध ।

वाराहपित्त (सं० स्त्री०) शूकरपित्त । इसके शोधनेका तरीका—शूकरपित्तको सुखा लेने पर पीछे नीमके रसमें भावना देनेसे एक दिनमें हो विशुद्ध हो जाता है । मछली आदिका भी पित्त इसी प्रकार शोधा जाता है ।

मत्स्यपित्त देवो ।



उन सब अनुमान वा प्रवादके मूलमें कुछ भी ऐतिहासिक सत्य है, मालूम नहीं होता।

बराहमिहिरने तत्पूर्ववर्ती पांच सिद्धान्तोंका आश्रय ले कर पञ्चसिद्धान्तिकाकी रचना की। उन पञ्चसिद्धान्तके नाम ये हैं—

‘पौलिश-रोमक वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।

पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह।

वासिष्ठ और पैतामह इन दोनों सिद्धान्तोंकी आलोचना करके ज्योतिष्शास्त्रके इतिवृत्तलेखकगण उन्हें ख्रि० पूर्वं १३वीं शताब्दीके सिद्धान्त मानते हैं। किन्तु पौलिश और रोमक इन दोनोंके नाम देख कर बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि बराहमिहिरने प्राचीन पाश्चान्त्य ज्योतिषसे सहायता ली थी।

पौलिशसिद्धान्तमें यवनपुर वा आलेकजन्द्रियासे देशान्तर लिया गया है। फिर इधर रोमकसिद्धान्तमें गत दिनसंख्याका निर्णय करनेके लिये यवनपुरका मध्याह्न माना गया है (१)।

प्रसिद्ध मुसलमान परिद्वत अलघोरुणीने लिखा है, कि पौलिशसिद्धान्त यूनानोंके पौलसकी रचना है। तदनुसार कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ग्रीक भाषामें Paulus Alexandrinus-का जो ज्योतिषग्रन्थ है, पौलिशसिद्धान्त उसका संस्कृत अनुवाद है, किन्तु जिन्होंने उक्त ग्रीकग्रन्थ मिला कर देखा है वे कहते हैं, कि ग्रीक ग्रन्थके साथ उसका कुछ भी मेल नहीं खाता। विधेयतः पौलिशसिद्धान्त एक नहीं था। ब्रह्मसिद्धान्तके टीकाकार पृथ्वीक और भट्टोत्पलने पौलिशसिद्धान्तसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। उन सब श्लोकोंके साथ पञ्चसिद्धान्तिकाके अन्तर्गत पौलिशसिद्धान्तकी कुछ भी एकता नहीं है सौर और आर्यभट्टसिद्धान्तके मतके साथ मेल-मले ही खाता है।

रोमकसिद्धान्त नाम सुन कर भी बहुतेरे सिधर किया है, कि आलेकजन्द्रियाके प्रसिद्ध ज्योतिषिद्व टलेमी-

के मूल ग्रन्थके आधार पर संस्कृत भाषामें रोमकसिद्धान्त रचा गया था। किन्तु ब्रह्मगुप्तका ब्रह्मसिद्धान्त पढ़नेसे वैसा मालूम नहीं होता। लाट, वशिष्ठ, विजयनन्द और आर्यभट्ट इन चारोंको गणनाके आधार पर श्रोत्रिणने रोमकसिद्धान्तकी रचना की। भट्टोत्पल और अलघोरुणीने भी वैसा ही कहा है।

बराहमिहिरने जिन पांच सिद्धान्तोंकी आलोचना की है, उनमें सौर वा सूर्यसिद्धान्तकी समालोचना करके ज्योतिषियोंने साबित किया है, कि यह सिद्धान्त शकाब्दारम्भके समय सङ्कलित हुआ था। उसके पहले पौलिश और पौलिशके पहले रोमक सिद्धान्त रचा गया। ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस प्रायः ५० वर्ष पहले जीवित थे। उनका ग्रन्थ अभी नहीं मिलता। उनका परिदर्शन काल ले कर टलेमीने प्रायः १५० ई०में अपने ग्रन्थकी रचना की। उनके ग्रन्थके साथ रोमकसिद्धान्तका मेल नहीं है। इस दिसावसे उनके बहुत पहले रचित रोमकसिद्धान्त हिपार्कसका ग्रन्थ देख कर सङ्कलित हुआ है ऐसा भी नहीं कह सकते।

परन्तु इतना जरूर कह सकते हैं, कि बराहमिहिरने यचनाचार्योंके मतकी भी उपेक्षा नहीं की वरन् उनका मत ग्रहण किया है। पञ्चसिद्धान्तिकाको छोड़ कर वे शृङ्खलसंहिता, शृङ्खलातक, लघुजातक आदि अनेक ज्योतिषग्रन्थ भी रच गये हैं।

एनड्रियस आरुडजातक-कालचक्र, क्रियाकैरवचन्द्रिका, जातककलानिधि, जानकसरसी, जातकसाद, वा लघुजातक, द्वैवक्षवल्गमा, प्रश्नचन्द्रिका, शृङ्खलवर्ग, शृङ्खलात्रा, मयूरचिह्नक, मुहूर्त्तग्रन्थ, योगयात्रा, योगार्णव, चटकालिका, सायावली और बराहमिहिरिय नामक कई ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

बराहमुक्ता (सं० खी०) मुक्ताभेद, एक प्रकारका मोती। जैसे—‘गजमुक्ता’ हाथीसे उत्पन्न मानी जाती है, वैसे ही यह सूअरसे उत्पन्न मानी जाती है। मुक्ता देखा।

बराहमूल (सं० ह्मी०) काश्मीरका एक जनपद। यहाँ बराहरूपी विष्णुमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। काश्मीर देखा। बराहयु (सं० त्रि०) बराह-इन्द्रियु, यह कृत्ता जो सूअर-मिलायी हो।

(१) ‘यवनाश्चरजा नाड्यः सप्तदशत्यारिष्यभागसंयुक्ताः।

षाराण्यसा विद्वतिः साधनमन्यत्र वत्यामि ॥”

(पञ्चसिद्धान्तिका पीठिया)



उन सब अनुमान वा प्रवादके मूलमें कुछ भी ऐतिहासिक सत्य है, मालूम नहीं होता ।

वराहमिहिरने तत्पूर्ववर्ती पांच सिद्धान्तोंका आश्रय ले कर पञ्चसिद्धान्तिकाकी रचना की । उन पञ्चसिद्धान्तके नाम ये हैं—

‘पौलिश-रोमक वाशिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः ।

पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह ।

वासिष्ठ और पैतामह इन दोनों सिद्धान्तोंकी आलोचना करके ज्योतिःशास्त्रके इतिवृत्तलेखकगण उन्हें ख्रि० पूर्व १३वीं शताब्दीके सिद्धान्त मानते हैं । किन्तु पौलिश और रोमक इन दोनोंके नाम देख कर बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि वराहमिहिरने प्राचीन पाश्चात्य ज्योतिषसे सहायता ली थी ।

पौलिशसिद्धान्तमें यवनपुर वा आलेकजन्द्रियासे देशान्तर लिया गया है । फिर इधर रोमकसिद्धान्तमें गत दिनसंख्याका निर्णय करनेके लिये यवनपुरका मध्याह्न माना गया है (१) ।

प्रसिद्ध मुसलमान पण्डित अन्धोरुणोने लिखा है, कि पौलिशसिद्धान्त यूनानीके पीलसकी रचना है । तदनुसार कोई कोई अनुमान करते हैं, कि प्रो क भाषामें Paulus Alexandrinus-का जो ज्योतिषग्रन्थ है, पौलिशसिद्धान्त उसीका संस्कृत अनुवाद है, किन्तु जिनहीं-ने उक्त प्रो क-ग्रन्थ मिला कर देखा है वे कहते हैं, कि प्रो क ग्रन्थके साथ उसका कुछ भी मेल नहीं खाता । विशेषतः पौलिशसिद्धान्त एक नहीं था । ब्रह्मसिद्धान्तके टीकाकार [पृथुदक और भट्टोत्पलने पौलिशसिद्धान्तसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं । उन सब श्लोकोंके साथ पञ्चसिद्धान्तिकाके अन्तर्गत पौलिशसिद्धान्तकी कुछ भी एकता नहीं है सौर और आर्याभट्टसिद्धान्तके मतके साथ मेल-मले ही खाता है ।

रोमकसिद्धान्त नाम सुन कर भी बहुतोंने स्थिर किया है, कि आलेकजन्द्रियाके प्रसिद्ध ज्योतिषविदु टलेमी-

के मूल ग्रन्थके आधार पर संस्कृत भाषामें रोमकसिद्धान्त रचा गया था । किन्तु ब्रह्मगुप्तका ब्रह्मसिद्धान्त पढ़नेसे वैसा मालूम नहीं होता । लाट, वशिष्ठ, विजयनम्दी और आर्याभट्ट इन चारोंकी गणनाके आधार पर श्रोत्रिणने रोमकसिद्धान्तकी रचना की । भट्टोत्पल और अलघोरुणोने भी वैसा ही कहा है ।

वराहमिहिरने जिन पांच सिद्धान्तोंकी आलोचना की है, उनमें सौर वा सूर्यसिद्धान्तकी समालोचना करके ज्योतिषियोंने साबित किया है, कि यह सिद्धान्त शकाब्दारम्भके समय सङ्कलित हुआ था । उसके पहले पौलिश और पौलिशके पहले रोमक सिद्धान्त रचा गया । प्रो क ज्योतिषी हिपार्कस प्रायः ५० वर्ष पहले जीवित थे । उनका ग्रन्थ अभी नहीं मिलता । उनका परिदर्शन काल ले कर टलेमीने प्रायः १५० ई०में अपने ग्रन्थकी रचना की । उनके ग्रन्थके साथ रोमकसिद्धान्तका मेल नहीं है । इस दिसावसे उनके बहुत पहले रचित रोमकसिद्धान्त हिपार्कसका ग्रन्थ देख कर सङ्कलित हुआ है ऐसा भी नहीं कह सकते ।

परन्तु इतना जरूर कह सकते हैं, कि वराहमिहिरने यचनाचार्योंके मतकी भी उपेक्षा नहीं की वरन् उनका मत ग्रहण किया है । पञ्चसिद्धान्तिकाको छोड़ कर वे वृहत्संहिता, वृहज्जातक, लघुजातक आदि अनेक ज्योतिषग्रन्थ भी रच गये हैं ।

पतञ्जिन आरुह्यजातक-कालचक्र, क्रियाकैरवचन्द्रिका, जातककलानिधि, जानकसरसी, जातकसाद, वा लघुजातक, वैश्ववल्गुभा, प्रश्नचन्द्रिका, वृहद्वर्ण, वृहद्वाता, मयूरचित्रक, मुहूर्त्तग्रन्थ, योगवाता, योगार्णव, घटकालिका, साराधली और वराहमिहिरिय नामक कई ग्रन्थ इन्हींके यनाये हुए हैं ।

वराहमुक्ता ( सं० खी० ) मुकामेद, एक प्रकारका मोती । जैसे—‘गजमुक्ता’ हाथीसे उत्पन्न मानो जाती है, वैसे ही यह सूत्रसे उत्पन्न मानो जाती है । मुक्ता देवो ।

वराहमूल ( सं० ह्री० ) काश्मीरका एक जनपद । यहाँ वराहरूपी विष्णुमूर्ति प्रतिष्ठित थी । कारमीर देवो ।

वराहट्टु ( सं० त्रि० ) वराह-इच्छुक, यह कृत्ता जो सूकरा-मिलायी हो ।

(१) ‘यवनाक्षरजा नाड्यः सप्तान्वन्त्यास्त्रिभागसंयुक्ताः ।

वाराणस्यां विद्वतिः साधनमन्यथ वक्ष्यामि ॥”

(पञ्चसिद्धान्तिका पौलिश)



कुछ अंश तथा और भी-कुछ सड़के पकी बनीं दी गई हैं।

२ उक्त संसदराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४४' ३०" तथा देशां० ७३° ५६' ३०" पूंके मध्य अवस्थित है। बड़ोदा राजधानीसे यह २५ कोस उत्तर-पूर्वमें पड़ता है।

वरियु—मर्त्यावानवांसी एक वणिक्। इसका असल नाम मगदू है। श्यामराजकी अनुग्रह लाभ करके वे धीरे धीरे वहाँके एक अमेत्य हो गये। एक दिन राजा इन्हे राजधानीका शासनकर्त्ता बना कर किसी काममें बाहर चले गये। इसी समय वे श्यामराजकन्याकी चुरा कर मर्त्यावान ले आये तथा वहाँके शासनकर्त्ता आलेइनवाका विनाश कर मर्त्यावानके शासनकर्त्ता बन बैठे। १२८१ ई०में श्यामराजने उनका पदाधिकार स्वीकार किया। इस समयमें इतिहासमें वे राजा वरियु नामसे प्रसिद्ध हुए।

इसके बाद वरियुने कानपलानी राज्याको जीत कर राजकरवांका पाणिग्रहण किया और अपनी शासनशक्तिको फैलाया। इन्होंने चीनसेनाके अत्याचारसे पेगूराजको बचानेके लिये अपनी सेनासे मदद पहुँचाई थी, किन्तु थोड़े ही दिनोंमें मनमुटाव हो गया जिसने वे पेगूराजको अधिकार कर बैठे। १२८२ ई०में इन्होंने मर्त्यावान नगरमें 'मचधिरेनमा' पगोडा स्थापन किया।

वरिवस् (सं० लि०) १ अन्तरीक्ष। (पुं०) २ धन। ३ पूजा, शुभ्रपां।

वरिवस्कुंत् (सं० लि०) धनकर्त्ता।

वरिवस्यां (सं० स्त्री०) वरिवसः पुंश्यांयः करणम्, वरिवसं-क्यच्। (नेमोवरिवसरिचयः क्यच्। पा ३।१।१६) तताः कः, ततएप्। शुभ्रपां, सेवा।

वरिवस्थित (सं० लि०) वरिवस्या सञ्जातो अस्य तारकादित्वादितच् अथवा वरिवस्थ-क्त, (क्यल्पिभाषा) पा १।१।१०) पक्षे यलोपाभाषाः। उपासित, जिसको उपासना की गई हो।

वरिवोद (सं० लि०) वरियः धनं ददातीति वरिवन्-दा-क। धनदाता। (शुक्लपत्रः १७।१५)

वरिवोधा (सं० लि०) धनदाता।

वरिवोविद् (सं० लि०) धनलम्बयिता, जो धन मिलवा दे।

वरिशो (सं० स्त्री०) वरिशी, कंटिया।

वरिप (सं० स्त्री०) वृ-सः बाहुलकात् इट्। वरसर, वर्षा।

वरिया (सं० स्त्री०) वृ-सः बहुवचनात् इट्। वर्षा।

वरिपाम्रिय (सं० पुं०) वरिषा वर्षा प्रिया यस्य। चातक पक्षी।

वरिष्ठ (सं० लि०) अयमेयामतिशयेन वर उरुर्वा इष्टम्, प्रियस्थिपेति वरादेशः। १ धरतम, श्रेष्ठ। २ उदतम, विस्तोणं। (स्त्री०) ३ ताम्र, तांबा। ४ मिर्च। (पुं०) ५ तिसिरपक्षी, तीतर। ६ नागरङ्ग वा नारङ्ग वृक्ष, नारंगी नीबूका पेड़। ७ आक्षुप मनुके पुत्रका नाम। धर्म-सार्वाणि मन्वन्तरके संसं-ऋषियोगोंमेंसे एक। ८ उरु-तमस् ऋषिका एक नाम। ९ दैत्यविशेष।

वरिष्ठक (सं० लि०) धरतम, श्रेष्ठ, पूजनीय।

वरिष्ठा (सं० स्त्री०) १ आदित्यभक्ता, हुरहुर। २ हरिद्रा, हल्दी। ३ शुन्मर्भद। (Polasina Icosandra)

वरिष्ठाश्रम (सं० पुं०) स्थानविशेष।

वरिहिष्ठ (सं० स्त्री०) १ कशोर, खश। २ सुगन्धवाला।

वरिहिष्ठमूल (सं० स्त्री०) उशोर मूल, खसकी जड़।

वरी (सं० स्त्री०) वृणोतीति वृपदाघच् गौरादित्वात् ङीप्।

१ शतावरी, सतावर। २ बाजीकामानिसन्दीपनरस। ३ सूर्यकी पत्नी।

वरीताक्ष (सं० पुं०) एक दैत्यका नाम। (महाभारत)

वरीरु (सं० लि०) आच्छादनकारी, ढकनेवाला।

वरीदास (सं० पुं०) गन्धर्व नारदके पिता।

वरीधरा (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इसके १, २ और ४थे चरणमें ११ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, २, ४, ५, ८, १०, ११वां वर्ण शुच और वाकी लघु होते हैं। तीसरे चरणमें १, ३, ६, ७ और ८वां लघु और वाकी वर्ण शुच होते हैं।

वरीमन् (सं० लि०) वरिमन् देतो।

वरीयान् (सं० लि०) अयमनयोरतिशयेन उरुर्वरो वा ईयसुन्, प्रियस्थिपेति वरादेशः। १ श्रेष्ठ, बड़ा। "वरीयानेवते प्रश्ना हतो लोकहितो वृषः" (भागवत २।१।१)

२ वरिष्ठ, पूजनीय। ३ अति सुधा। (पुं०) ४ फलित-ज्योतिषमें विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे अष्टारहर्षा योग। इस योगमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दयालु, दाता, सुन्दर, सत्कर्मा करनेवाला, मधुर स्वभावका एवं धन-जन-





साहचर्यं सूचित हुआ है। इसके द्वारा इस देवतामण्डली-का परस्पर और ईश्वरत्व स्पष्ट प्रतिपादित होता है, फिर, शुक्र यजुर्वेदके ८।३७ मन्त्रमें "इन्द्रश्च सप्रज्ञवचणश्च राजा ती ते भक्षं चक्रतुरम एतम्।" पढ़नेसे मालूम होता है, कि दोनों एक ही हैं। उसके भाष्यमें महोदरने लिखा है,—ती देवी इन्द्रवचणोति तत्र एतं सोममग्रे प्रथमं भक्षं चक्रतुः। ती की इन्द्रों वचणश्च चकारां समुच्ये, किम्भूत इन्द्रः सप्रज्ञत् परमेश्वर्ययुक्तः वाज्रपेययाजोत्पथः। किम्भूतो वरुणः राजा राजसूययाजो राजा चै राजसूये-नेष्ट्या भवति सप्रज्ञत्वाजपेयेनेति श्रुतेः।

अक्संहिताके १।१३६।२ मन्त्रमें उपा कर्त्तृ क वरुणके घर प्रकाशित होनेकी बात लिखी है। शुक्रयजुर्वेदका "पत्यासु चक्रे वरुणः सधस्यमपाशं शिशुर्मातुतास्य-तन्ता" (१०७) मन्त्र पढ़नेसे जाना जाता है, कि समुद्र वा जलगर्भ ही वरुणका घर है। वे जलके शिशु हैं, जल ही उनका निवासस्थान है। उस मन्त्रके भाष्यमें महोदरने लिखा है—'या पयस्त्रिधा मापस्तासु अरतमधये वरुणो देवः सधस्यं सहस्रधानं चक्रे कृतवान् सह स्थोयते यस्मिन् तत् सधस्यं। किम्भूतो वरुणः अयां शिशुः बालक अयां वा पय शिशुर्भवति ये राजसूयेन यजत इति श्रुतेः किम्भू-तास्वप्सु पस्त्यासु। पस्त्यमिति गृहनामसु पठितम्। गृहकृपासु सर्वयामाधारत्वात् तथा मातृतासु अति-जपेन जगधिर्मातापु।'

उक्त संहिताके ६।२२ मन्त्रमें वरुणके वाशसमन्वित स्थानके भयभीत मानवकी मुक्तिप्रार्थनाकी बात इस प्रकार लिखी है,—'धाम्नो धाम्नो-राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरन्त्या इति वरुणेति ज्ञानहे ततो वरुण नो मुञ्च।' फिर शुक्रयजुः ६।३६ मन्त्रमें लिखा है—'बृहस्पतिर्वाच-मिन्द्रो उयैष्टाय रुद्रः पशुभ्य मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपती-नाम्।' यहाँ मन्त्रांगमें वरुणकी धर्मपति कहा है। उसके भाष्यमें महोदरने अच्छी तरह समझा दिया है, 'धर्म-पतीनां धर्मेश्वराणां धर्मशीलानामाग्निपत्येत्वां सुवतां। सचिताद्भ्योऽप्यो देवसु हविषां देवतस्थानां नानाधिपत्यानि ददत्विति वाचयार्थः।' उसके पश्चती मन्त्रमें (६।४०) वरुणादि देव द्वारा राजाओंका महतो क्षत्रपद्वयो पर नियोज-की प्रार्थना देखी जाती है। तीसरीय ब्राह्मणके ३।१।२।७

मन्त्रके 'क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः" पदमें यह वाक्य समर्थित हुआ है०।

अथर्ववेदके १।१०।१ मन्त्रमें वरुणको दीप्तिशाली और सत्यमापणशील कहा है। अनूतादि बोलनेके कारण उनके कोपमें पढ़नेसे मनुष्य थोड़े ही दिनोंमें जलोदरादि रोग-से आक्रान्त होते हैं। ब्रह्ममन्त्र द्वारा वा वरुणविपयक स्तुतिरूप हविः द्वारा वा अति तीक्ष्ण स्तोत्रादि द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे रोग दूर होता तथा बलकी वृद्धि होती है।

ऐनरेवब्राह्मण (१।४४) पढ़नेसे जान पड़ता है, कि जलाधिपति देवराज वरुण दिक्पालरूपमें असुरोंके साथ लड़े थे। आदिर्तरेने उनके साथ अग्रसर हो कर देव-ताओंका भय दूर किया था। उक्त ग्रन्थ (७।१४ १५)के हरिश्चन्द्र उपाख्यानमें लिखा है, कि पेश्वाकु राजा हरि-श्चन्द्रने नारदके आदेशसे पुलकामो हां वरुण देवकी तपस्या की। आराधनासे तुम्हें हो कर वरुणदेवने उन्हें अग्ना दर्शन दे कर कहा, "राजन्! चर मांगो, तुम्हारी तपस्यासे मैं संतुष्ट हो गया हूँ।" राजाने पुलके लिये प्रार्थना की। इस पर वरुणदेवने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'तुम्हारे एक पुत्र होगा, किन्तु उस पुत्रको तुम निःशङ्क चिन्तसे यज्ञोप यशुरूपमें मुझे प्रमन्न करनेके लिये बलि देना।' राजाने इसे स्वीकार कर लिया। कुछ समय

\* शूरवेदमें कई जगह वरुणको सुहृत् वा क्षत्रिय कहा है। किन्तु वहाँ क्षत्रियका अर्थ बज्रानु है। तब क्षत्रिय नामक किसी सतन्त्र वर्णकी सृष्टि हुई थी या नहीं, सन्देह है। वे वज्रके अधि-पति हैं। इस कारण परवर्ती ब्राह्मण्युगमें क्षत्रिय (बलशाली) राजाओंके वर्णनियंत्रके साथ साथ वरुणको भी क्षत्रियके राजाओंके अधिपति दयहदाता और रक्षाकर्ता कहा है। शूक्-संहिताके ७।६।१२ मन्त्रमें—

"धाराजानामह गृहस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक।" मन्त्रका वरुणको सिन्धुपति और क्षत्रिय कहा है। किन्तु इसका अर्थ दूरात है।

† "अयं देवानाममुतो वि राजति यथा हि सत्या वरुणस्य राशः। शतस्यरि ब्रह्मण्या शालदानं उमस्य मन्वोऽरुदियं नवामि ॥"

( अथर्व० १।१०।१ )

म्यन्त्रों में ब्रह्मण्यकी सर्वधृष्ट, राजा और अतिक्रमान् तथा  
अनौचित्यिगिष्ठ देवता कदा दे भवर्षावेदमें-मो इष्टे' देव-  
ताओं का सुगव यतनामा है।

"मोमोमम'इव नामेयु देवेयु बहयो यथा।"

(भयर्ष'वेद १२।१२ )

श्रुत्सं'हितान्के ८।४१ और ८।४२ सूक्तमें ब्रह्मण्यदेव-  
की स्तुति है। ५।८५ सूक्तके मन्त्रनिचयमें अति  
श्रुतिमें ब्रह्मण्य देवताका इस प्रकार स्तव किया है, ये  
निश्चित सुगवके अधिपति हैं और बुधियात द्वारा पृथिवी,  
मन्त्ररीक्ष और स्वर्गकी आर्द्र करते हैं।' इस श्रुत्के  
मन्त्र पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञान पड़ता है, कि सर्व'अतिक्रमान्  
परमेश्वर हो ब्रह्मण्य है। ईश्वरकी कार्यवाही स्वतन्त्र  
अभिप्रायकी प्राप्त होकर ब्रह्मण्यमें आरोपित हुई है।  
श्राद्धेवके श्रुतियोंमें मन्त्रिकी विस्मयकर वाणीपरब्राह्मण  
देव वर ब्रह्मण्य इन्द्रादिदेवके स्वातन्त्र्यकी कल्पना को भी।  
पाँछे उर्ध्वेनि उरु'कार्यपरम्पराकी एकता समझ कर ईश्वर-  
का एकरूप हृदयमें अनुभव किया। ये सूर्य द्वारा अन्त-  
रीयका परिमाण लेते हैं ( ५।८५।५ ), ये हो समी मन्त्रियों-  
की एक महासमुद्रमें प्रवेश करते हैं, फिर मो.ग्रह महा-  
समुद्र नहीं भरता ( ५।८५।६ ), फिर ये ही मनुष्यका पाप  
विनाश और भयरोष घण्टन करते हैं। उर्ध्वेनि सूर्यके  
अन्तर्गतायार्च मथा सूर्योके ऊपर मन्त्ररीक्षकी विस्तारित  
किया है, ये'अभ्यगणके बल हैं, धेनुगणको दूध और हृदय-  
में संबन्ध दान करते हैं। उर्ध्वेनि: ही जलमें अग्निकी,  
मन्त्ररीक्षमें सूर्यकी, और वर्णत पर.सोमलताकी स्थापन  
किया है।' इत्यादि स्तुति देख कर अनुमान होता है, कि  
अभिप्रायण वैदिक श्रुतिगण ब्रह्मण्य और ईश्वरकी एक  
और अभिन्न ब्रह्मता मये हैं।

इस एकरूपके कारण ही १।१२६-१२७ सूक्तमें पदच्छेप  
श्रुतिमें, १।५१-१५२ सूक्तमें शोचंनमा श्रुतिमें तथा श्राद्धेव-  
के ७।३-२१ सूक्तमें पविष्ठ श्रुतिमें प्राता:कालमें मित्र और  
ब्रह्मण्य। स्तुतिगमक नाया है। ये नामपार्चयमें जगत्-  
के मित्र मित्र मङ्गलजनक किया करनेवाले हैं. सही, पर  
मूममें एक महान् ईश्वरकी छोड़ कर और कुछ भी नहीं  
है यह स्पष्ट ज्ञाना जाता है। यही कारण है, कि हम लोग  
श्रुत्सं'हितान्के १।१२६।४ मन्त्रमें विष्णु और ब्रह्मण्य तथा

दोनों अश्रुत्के एकत्र समाविष्ट हो-कर ब्रह्ममें मिलित  
देख पाते हैं। गान्ध्यायन धीतसूक्त ( २।२७।४ )में इसी  
प्रकार विष्णु-ब्रह्मण्यका संयोग और एकाधाररूप बर्णित  
है। गीतिल ३।६।१२ सूक्तमें यमब्रह्मण्यका एकयोग्य  
तथा गान्ध्यायनब्राह्मण १।८।२० और काठ्यायन धीतसूक्त  
( १०।८।२७ )में अग्नि-ब्रह्मण्यका एकाधाररूप ब्रह्मताया  
गया है। श्रुत् ४।१२ मन्त्रमें अग्निब्रह्मण्यका समिश्र और  
ब्राह्मण्यसम्बन्ध आरोपित है।

भयर्षवेदके 'इष्टे इन्द्र मनुष्या: परेदि स' ह्यहाम्यापरन्ती:  
संविद्मन:।" (भयर्ष' ३।१।६) मन्त्रमें इन्द्र और ब्रह्मण्यका  
एकमतिरूप विवर किया गया है। इस प्रकार वाजसनेय-  
संहितामें इन्द्र और ब्रह्मण्यका एकरूप देखा जाता है। ये  
सब देवताओंके सम्राट् हैं, अतएव ये इन्द्रावरुण मित्रा-  
ब्रह्मण्यकी तरह ईश्वरकी छोड़ कर और कोई भी नहीं हो  
सकते। परन्तु स्थानपरिधेयमें उर्ध्वे' मित्र, अग्नि, इन्द्र,  
यम या शायुके साथ येनकर्म सम्पादन करते हैंम उर्ध्वे  
मौलिक ईश्वरत्वकी कुछ विशेषता निर्दिष्ट हुई है, केवल  
यही जा सकता है।

श्राद्धेवके १।१२६-१२७ सूक्तके मन्त्र पढ़नेसे उनमें  
कुछ भी विशेषता मालूम नहीं होती यरं उनका एकरूप  
ही निर्धारित होता है। श्रुत् १।१२६।६-७ मन्त्रमें लिखा  
है कि, "मि सूर्य, पृथिवी, आकाश, मित्र और ब्रह्मण्य तथा  
यद्रको नमस्कार करता हूँ। ये सभी अभिन्नत पालदायो  
और सुखदायी हैं। इन्द्र, अग्नि, अर्चंनमा और भगवा  
स्तव करो। \* \* \* हम लोगोंने इन्द्रकी पावा है,  
\* \* \* इन्द्र अग्नि, मित्र और ब्रह्मण्य हम मर्षीके  
सुखप्रद होयें, हमलोग अन्नवान् हो-कर जिरामें बह  
सुखभोग करें। १।१२६ सूक्तमें इन्द्र और ब्रह्मण्य

† "व प्राउरं बरुध्यायन;मा बहृत्सव  
अच्छा सुमती बरुध्यायनं ब्येच्छं बरुध्यायनम्।  
श्रुतायनमादित्यं चरुषीधुतं राजानं चरुषीधुतम्।  
उरुषे उरुषादयम्या बहृत्सवपरं न चक'  
-इत्येव इ'हामन्त्रम्' एवम् इ'हाम्।  
यामे अर्चते' बरुधे तथा विदो मरुधु विष्णुमाउतु इ"  
(श्रुत्. ५।१।२१)

साहचर्यं सूचित हुआ है ; इसके द्वारा इस देवतामण्डली-का पक्षत्व और ईश्वरत्व स्पष्ट प्रतिपादित होता है, फिर, शुक्र यजुर्वेदके ८।३७ मन्त्रमें "इन्द्रश्च सम्राड्वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरप्र पतम् ।" पढ़नेसे मालूम होता है, कि दोनों एक ही हैं । उनके भाष्यमें महोघरने लिखा है,—"तौ देवौ इन्द्रवरुणौते तत्र पतं सोममप्र प्रथमं भक्षं चक्रतुः । तौ कौ इन्द्रौ वरुणश्च चक्रारौ समुषये, किम्भूत इन्द्रः सम्राट् परमैश्वर्ययुक्तः वाजपेययाज्ञोत्पथः । किम्भूतो वरुणः राजा राजसूययाजी राजा वै राजसूये-नेष्ट्या भवति सम्राड्वाजपेयेनेति श्रुतेः ।"

ऋक्संहिताके १।१३६।२ मन्त्रमें उपा कर्त्तृक वरुणके घर प्रकाशित होनेकी बात लिखी है । शुक्रयजुर्वेदका "पत्यासु चक्रे वरुणः सप्रथमपाथं शिशुर्मर्तुनमास्व-तन्तः" (१०।७) मन्त्र पढ़नेसे जाना जाता है, कि समुद्र था जलगर्भ हो वरुणका घर है । वे जलके शिशु हैं, जल ही उनका निवासस्थान है । उस मन्त्रके भाष्यमें महोघरने लिखा है—"या पयस्विद्या थापस्तासु अन्तर्मध्ये वरुणो देवः सधस्यं सहस्रधानं चक्रे कृतयान् सह स्थोपते यस्मिन् तत् सधस्यं । किम्भूतो वरुणः अर्षां शिशुः चालक अर्षां या पय शिशुर्भवति ये राजसूयेन यजत इति श्रुतेः किम्भू-तास्वत्सु पस्त्वासु । पस्त्वमिति वृद्धानासु पठितम् । गृह्ररूपासु सर्वेषामाधारत्वात् तथा मावृतमासु अति-शयेन जगन्निर्मातासु ।"

उक्त संहिताके ६।२२ मन्त्रमें वरुणके पाशासमन्वित स्थानके भयभीत मानवकी मुक्तिप्रार्थनाकी बात इस प्रकार लिखी है,—"धाम्नो धाम्नो-राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च । यद्वाहरुण्य इति वरुणेति शपानहे ततो वरुण नो मुञ्च ।" फिर शुक्रयजुः ६।३६ मन्त्रमें लिखा है—"वृहस्पतिर्वाच-मिन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पद्भ्यभ्य मित्तः सस्तो वरुणो धर्मपती-नाम् ।" यहाँ मन्त्रांशमें वरुणको धर्मपति कहा है । उसके भाष्यमें महोघरने अच्छी तरह समझा दिया है, 'धर्म-पतीनां धर्मेश्वराणां धर्मशीलानामाधिपत्येत्वात् सुवतां । सवित्राद्योऽष्टौ देवसु हविषां देवतस्त्वयां नानाधिपत्यानि ददत्त्विति चाख्यायैः ।' उसके परधर्ती मन्त्रमें (६।४०) यदणादि देव द्वारा राजाओंका महती क्षत्रपत्न्यो पर नियोग की प्रार्थना देखी जाती है । तीसरीय ब्राह्मणके ३।१।२।७

मन्त्रके "क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः" पदमें यह वाक्य समर्थित हुआ है ।

अथर्ववेदके १।१०।१ मन्त्रमें वरुणको वृत्तिशाली और सत्यमापणशील कहा है । अनृतादि बोलनेके कारण उनके कोपमें पड़नेसे मनुष्य थोड़े हो दिनोंमें जलोदरादि रोग-से नाकान्त होते हैं । ब्रह्ममन्त्र द्वारा वा वरुणविषयक स्तुतिरूप हविः द्वारा वा भक्ति तोक्षण स्तोत्रादि द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे रोग दूर होता तथा बलकी वृद्धि होती है ।

ऐनरेवब्राह्मण ( १।४४ ) पढ़नेसे जान पड़ता है, कि जलाधिपति देवराज वरुण दिक्पालरूपमें असुरोंके साथ लड़े थे । आदिदेवोंने उनके साथ असुर हो कर देव-ताओंका भय दूर किया था । उक्त ग्रन्थ (७।१४ १५)के हरिश्चन्द्र उपाख्यानमें लिखा है, कि पेशवाङ्क राजा हरि-श्चन्द्रने नारदके आदेशसे पुत्रकामा हो वरुण देवकी तपस्या की । आराधनासे तृप्त हो कर वरुणदेवने उन्हें अपना दर्शन दे कर कहा, "राजन् ! वर मांगो, तुम्हारी तपस्यासे मैं संतुष्ट हो गया हूँ ।" राजाने पुत्रके लिये प्रार्थना की । इस पर वरुणदेवने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'तुम्हारे एक पुत्र होगा, किन्तु उस पुत्रको तुम निःशङ्क चित्तसे यज्ञोप यशुरूपमें मुझे प्रसन्न करनेके लिये बलि देना ।' राजाने इसे स्वीकार कर लिया । कुछ समय

\* श्रुतेदमें कई जगह वरुणको मुञ्च वा क्षत्रिय कहा है । किन्तु यहाँ क्षत्रियका अर्थ वज्रवान है । तब क्षत्रिय नामक किमी सतन्त्र षष्ठीकी सृष्टि हुई थी या नहीं, उन्हेह है । वे वज्रके अधि-पति हैं, इस कारण परवर्ती ब्रा-म्ययुगमें क्षत्रिय ( बलशाली ) राजाओंके बर्णनियर्णके साथ साथ वरुणको भी क्षत्रियके राजाओंके अधिपति दयददाता और रक्षाकर्ता कहा है । ऋक्-संहिताके ७।१५।२ मन्त्रमें—

"आराजानामह वृत्सव गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्षाक ।"  
मन्त्रका वरुणको सिन्धुपति और क्षत्रिय कहा है । किन्तु इसका अर्थ दूसरा है ।

† "अयं देवानामनुरो यि राजति वराह सि त्वया वरुणस्य राघः ।  
तत्स्वदि ब्रह्मण्या शावदानं उमस्य मन्योवदियं नयामि ॥"

( अथर्ववेद १।१०।१ )

बाद उठें रोहित नामक एक पुत्र उदरगत हुआ। यथा-  
 समय यद्यजनें आ कर राजसे पुत्र मांगा। राजा अनुरोध,  
 विनय तथा नाना आचारसे दिखलाते, हुए पुत्रकी प्राण-  
 रक्षाका उपाय दूढ़ने लगे। इस प्रकार टालमटोल करते  
 करते जब रोहितने वनमें अपने कष्ट बढाया, तब यद्यज-  
 देनें आ कर कहा, 'आपका पुत्र यज्ञीय पशु होनेके योग्य  
 है। गया, अपना वचन पूरा काजिये।' राजाने उठें समा-  
 यशनेके बाद नरमेघपक्षकी कामना जताने हुए विदा  
 किया और पुत्रको बुला कर कहा, 'हे प्रिय! जिनने तुमको  
 मुझे दिया है, मैं यज्ञीय पशुरूपमें तुम्हें मार कर उनके  
 हाथ समर्पण करूंगा।' पिताका ऐसा वचन सुन कर पुत्र  
 नहीं गहों कहता हुआ तोर धनुष से उंगलकी मांग गया।  
 यथासमय यद्यजनेय राजाके निकट आये और 'महाराज!  
 यज्ञ कीजिये' वह कर लये हो गये। राजाने पुत्रके उंगल  
 पत्ते जानकरा सागा हाल कह सुनाया। यद्यजनेके प्राणसे  
 राजा अजीर्ण रोगसे आक्रान्त हो बड़े चिन्तित हो गये।  
 पिताके इस रोगका हाल जब रोहितको मालूम हुआ,  
 तब यह जट्टलकी छोट कर घर आये। यहां ब्राह्मणरूपमें  
 इन्द्रने भयना श्रान दे कर उनसे कहा, 'तुम भारी मूर्ख हो,  
 राजसंसारकी दुःखपराकाष्ठाका भोग क्यों करना चाहते  
 हो। मैं सलाह देता हूँ, कि तुम हमेंगा बाहरमें घुमा  
 करो, मक्षिपमें तुम्हारा बलघान होगा।'  
 इस प्रकार इन्द्र ब्राह्मणके रूपमें लगातार छः वर्ष  
 आये और रोहितको युक्तिपुक्त वचनोंसे निषेध कर गये।  
 उठें वर्षके अन्तमें राजपुत्रने सुध्यमसके पुत्र अजीमर्ष  
 प्रियके आश्रममें आ कर कहा, 'हे, अग्निश्रेष्ठ! मैं आपकी  
 सी माय प्रदान करूंगा। आप अपने तीन पुत्रोंमेंसे एक  
 पुत्र दीजिये जो मुझे पशुरूपमें यज्ञमें बलि होनेसे बचाये।'  
 अग्निने अपने मध्यम पुत्र शुनश्रीरुको दे दिया। राज  
 कुमार श्रियंका सी माय दे कर ब्राह्मणकुमार शुनश्रीरुको  
 माघ ले पिताके निकट आये और बोले, 'इस बालककी  
 ले कर मुझे पुत्रकारा दीजिये।' इसके बाद राजाने जब  
 वह ठामा, तब यद्यजने स्वयं राजभूषणका अभिषेचनीय  
 कर दिया था।

यद्यजने कहा—अग्नि पशु होनेको अपनेसा ब्राह्मणका  
 हो सकने पशु होना अच्छा है। इतना कह कर वह आरम्भ

हुआ। विभ्यामित होता, जमदग्नि अर्घ्यपुत्र, वरिष्ठ  
 और अयास्य उत्राता हुए। शुनश्रीरुने जब देवा, रि  
 पशुरूपमें यज्ञमें निहत होने, तब उठोंने यथाक्रम ब्रह्म  
 ( ऋक् १२४१ ), अग्नि ( ऋक् १२४२ ), सविता ( ऋ  
 १२४३ ) और इसके बाद यद्यज ( ऋक् १२४४-१५  
 १२५१-२१ ) की स्तुति की थी।

देवोमागतके ३म स्कन्धके १४-१७ अध्यायमें  
 यद्यजनाका विस्तृत उल्लेख है।

शुनश्रीरु और विरागिनि सम्बन्धमें है।

तैत्तिरीय ब्राह्मणके ११।४।८, १।४।१०, और शत  
 ब्राह्मणके १।२।३।१० और १।३।४।५ अध्यायमें यद्यजने  
 की पूजा लिखी है।

इस उपाधपानसे यद्यज प्रजापत्य, प्रजापालक और  
 प्रजासंहारक देवता हो समझे जाते हैं। अतएव ये पृ  
 स्थिति और लयकर्त्ताके परम पुरुष हैं। ये राजाओंके  
 राज्यमें पास करते हैं।

'वदेव' राजा यद्यजस्वयाह स त्वायमर्कत् स उदेदेहि'  
 ( भर्षे ० १।४।२ )

फिर मनुसंहितामें इधे' राजाओंका यद्यजनाता  
 है। ( मनु ६।४४ )

देवमें यद्यजकी देवताओंमें श्रेष्ठ बतलाया है। ये जन्  
 देवता हैं। जब सभी अग्निप्रकारमें ढके और प्रसूत  
 तरह थे, तब भगवानकी इच्छासे महाभूतादिका विनाश  
 हुआ। आदिमें अर्घ्यो रूष्टि हुई मर्षात् जल हो ईश्वर-  
 का आदि विनाश है, अतएव जलाधिपतिकी ईश्वर और  
 देवताओंमें श्रेष्ठ मानना कोई अतर्क्य न होगा।

महाभारतके उद्योग और जन्मवर्षमें ये उद्गर्णिकर-  
 में वर्णित हुए हैं। उठोंने इस आधिपत्यकी सर्वतो  
 पितामहसे पाया था। "मयां राघवे सुराणाञ्च पिदमि  
 यद्यजं प्रभुम्।" ( भार ७।१२ )

मागतमें यद्यजनेय काश्यपयतां अदितिके पुत्रहयमें  
 कोर्षित हुए हैं।

हरिवंशके ३५ अध्यायमें यद्यजादि देवताओंकी  
 उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक एक कर लिखा है। फिर ऋ  
 संहिताके १० उ२।८ अग्निमें अदितिके आठ पुत्रोंकी जन्म-  
 कथा है। अदिति अपने आठ पुत्रोंमें मातृत्वरको केक

कर बाकी सात पुत्रोंके साथ स्वर्ग गई थीं। ऋग्वेदके २।२७।१ मन्त्रमें छः आदित्य तथा ६।११।४।३ मन्त्रमें सात आदित्यका वर्णन है। तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें धाता, अर्चमा, मित, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विद्यमान् इन आठ आदित्योंका हाल है। किन्तु महाभारत और विष्णु आदि पुराणोंमें बारह आदित्यके नाम दिये जाते हैं। शतपथ-ब्राह्मणके १।१।३।३८ मन्त्रमें बारह महानोंके सूर्यको बारह आदित्य कहा है। ऋक्संहिताके २।२७।१ मन्त्रमें दक्ष अदितिके पुत्ररूपमें उल्लिखित हुए हैं। निरुक्तमें (६।२३) यास्कने लिखा है,—“अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद् अदितिः परि” अर्थात् दक्षसे ही अदितिकी उत्पत्ति है। फिर ऋक् ६।५०।२ मन्त्रमें सूर्यको दक्षसे उत्पन्न बतलाया है। इस हिसाबसे कुछ भी स्थिर नहीं किया जा सकता। परन्तु उक्त सूक्तके १म मन्त्रमें लिखा है, ‘द्वे देवगण ! मैं सुखके लिपे खोत्रके साथ अदिति, वरुण, मित, अग्नि, अर्यमा, भग और सभी रक्षाकारी देवताओंको आह्वान करता हूँ।’ इन सबकी आलोचना करनेसे पता चलता है, कि वरुण आदित्योंमेंसे एक ही।

मनुसंहितामें वरुणको अद्वितीय तेजसम्पन्न और पाशहस्त कहा है। उनके पाशसे यह ध्यक्ति यदि पाप-प्रशमनार्थ वरुण प्रताचरण करे, तो मुक्ति पाता है। वरुण-मन्त्रके द्वारा सलिल विकारमें वरुणकी पूजा तथा उसके द्वारा नामजलमें खड़े रह कर जप और होम करनाहोता है।

“वक्षिप्रविकारे कुर्वात् पूजां वरुणस्य वारुण्यमन्त्रैः ।”

( इतरत् ४६।११ )

हरिवंशके ४५वे अध्यायमें वरुणदेवका रूपवर्णन लिखा है। वे हंस पर बैठे हैं। हाथमें पाश अख है। ( इतरत् ५८।१७ ) यह पाश मख काल या वरुण पाश कहलाता है। ( रामायण १।२७।६ ) यही अख धारण कर वे देवासुरसंप्राममें देवपक्षीय दिक्पतिरूपमें अवतीर्ण हुए थे। वैतरेय ब्राह्मणमें ( १।२४ ) इस युद्धका हाल लिखा है। रामायणमें भी वरुणकी युद्धकुशलताका परिचय दिया गया है।

ऋग्वेदमें विष्णु और वरुणके सखित्व वा अमेदत्वका जो आभास दिया गया है, गोतामें यह पूर्णरूपसे

परिष्कृत देखा जाता है। स्वयं भगवान्ने कहा है—

“अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणां यादवामहम् ।

पितृष्यामम्यांमां चास्मि यमः संयमतामहम् ॥”

( गीता १०।२६ )

फिर महाभारतमें कृष्ण और वरुणके विरोधकी कथा लिखी है। श्रीकृष्णने जलजन्तुममाकीर्ण समुद्रगर्भमें प्रवेश कर सलिलान्तर्गत वरुणको परास्त किया था।

( भारत द्रोणपर्वा ११ म० )

भागवतमें इस कृष्ण और वरुणका विद्वेषकी वर्णन उपाख्यानकी तीर पर किया गया है। एक दिन नन्दने एकादशीके दिन उपवास रह कर जनाहूँनकी अम्पच्छांना की। द्वादशी तिथिकी वे सासुरी कालमें कालिन्दोजलमें स्नान करने गये। ज्यों ही वे जलमें घुसे त्यों ही वरुणका नौकर उन्हें वरुणालयमें घसीट ले गये। भगवान् श्रीकृष्णको जब इसकी खबर लगे, तब उन्होंने वरुणके पास जा कर पिताका उद्धार किया। वरुणने इस समय श्रीकृष्णकी पदचन्दना की थी। ( १०।२८।५ )

स्कन्दपुराणके सहाद्रिखण्डके अन्तर्गत वरुणपुरो-माहात्म्यमें लिखा है,—

एक दिन शौनकेने सूतसे वरुणपुरका माहात्म्य कहनेके लिपे प्रार्थना की। सूतने कहा, नाना रत्नराजिविराजिता मनोरमा वरुणकी एक पुरी थी। यहाँके लोग धर्मपरायण और वेदार्थनस्वह थे। उन लोगोंने ज्योतिष्मि विधि द्वारा रामकी आराधना की थी। इस वलसे देव और पितृगण सभी संतुष्ट हुए। पीछे वहाँ उपस्थित हो कर रामने वरुणसे कहा था, ‘हे जलाधिप वरुण ! तुम अपने भवनके सट्टा मेरा भी एक भवन निर्माण करो। यह भवन नाना रत्न-विभूषित होगा और उसमें मुनिगण वास करेंगे। वरुणदेवने परशुरामकी यह बात सुन कर एक भवन बनवाया और उसे परशुरामको दे दिया। परशुरामने वह नाना रत्नादि खचित सुरम्य भवन देख कर कहा था, कि यह भवन आसने वरुणपुर कहलायगा तथा परशुराम इस पुरके अधिपति होंगे। एक दिन मधुमासकी शुक्ल-पार नवमी तिथिकी सभी मनुष्य एकत हो कर सप्तदिन-ध्यायी रामका महोत्सव कर रहे थे। इसी समय एक महादैत्य वहाँ पहुंचा और राम-महोत्सवकारी लोगोंकी

बाद उन्हें रोहित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा-  
 समय यदजनने मा कर राजासे पुत्र मांगा। राजा अनुरोध,  
 'यद्यप्य तथा नामा आर्षात्, दिव्यजाते, ह्यु पुत्रको प्राण-  
 रक्षाका उपाय दृष्टने लगे।' इस प्रकार डालमटोल करने  
 करते जब रोहितने क्षयों शर्ममें कदम बढ़ाया, तब यदजन-  
 देयमें मा कर कहा, 'आपका पुत्र यक्षीय यमु होनेके योग्य  
 हुआ गया, अथवा यचन पूरा काजिये।' राजाने उन्हें समा-  
 यशानके बाद नरमेघपवती कामना जनाने हुए विदा  
 किया और पुत्रको बुला कर कहा, 'हे मिय ! जिनने तुमको  
 मुझे दिया है, मैं यक्षीय पशुरुपमें तुम्हें मार कर उनके  
 हाथ समर्पण करूंगा।' पिताका येसा यचन सुन कर पुत्र  
 नहीं गहों करना हुआ और धनुष ले जंगलको भाग गया।  
 यथासमय यदजनदेव राजाके निकट भाये और 'महाराज !  
 यत्र कीजिये' वद कर लड़े हो गये। राजाने पुत्रके जंगल  
 चले जानेका सारा हाल कह सुनाया। यदजनके ज्ञापने  
 राजा जलोदरो रोगसे आक्रान्त हो बड़े चिन्तित हो गये।  
 पिताके इस रोगका हाल जब रोहितको मालूम हुआ,  
 तब वह जङ्गलकी छोड़ कर घर भाये। यहां ब्राह्मणरूपमें  
 इन्द्रने अपना दर्शन दे कर उनसे कहा, 'तुम भारी मूर्ख हो,  
 राजसेनारथी दुःखवराकाष्ठाका, भोग क्यों करना चाहते  
 हो। मैं मन्त्राद देता हूँ, कि तुम हमेशा बाहरमें पुगो  
 करो, अग्निधर्ममें तुमशरा बन्धाण होगा।'   
 इस प्रकार इन्द्र ब्राह्मणके रूपमें लयातार छः वर्ष  
 भाये और रोहितको मुक्तिपुत्रक वचनोंसे नियेध कर गये।  
 ठठें वर्षके अन्तमें राजपुत्रने सुलपसके पुत्र अज्ञोमर्षा  
 श्रविके आश्रममें भा कर कहा, 'हे, श्रविकेण ! मैं आपको  
 मी गाय प्रधान करूंगा। आप अपने तीन पुत्रोंमेंसे एक  
 पुत्र दीजिये जो मुझे पशुरुपमें यक्षमें बलि होनेसे बचाये।'   
 श्रविके अर्धने मध्यम पुत्र शुनधीरुको दे दिया। राज  
 कुमार श्रविको मी गाय दे कर ब्राह्मणकुमार शुनधीरुको  
 गाय ले पिताके निकट भाये और बोले, 'यत्र बालकका  
 नै बर मुझे तुम्हें पुरकारा दीजिये।' इसके बाद राजाने जब  
 दण्ड डाला, तब यदजनने स्वयं राजगृहपुत्रका अतिप्रेयसीय  
 कर दिया था।

यदजनने कहा—श्रविक यमु होनेको अवेसा ब्राह्मणका  
 ही वस्त्रों यमु होता मन्त्रा है। शरता कह कर दण्ड आरजने

हुमा। विध्यामित होता, जनद्विनि अध्वयुं, यनिपु  
 और अयास्य उत्राता ह्यु। शुनधीरुने जब द्या, वि  
 पशुरुपमें यक्षमें निहत होंगे, तब उन्होंने यथाक्रम प्रकृत  
 (मर्क १२४१), अग्नि (मर्क १२४२), सपिना (म  
 १२४३-५) और इसके बाद यदजन (मर्क १२४४-  
 १२४५-२२) को स्तुति की थी।

देवोभागायणके ७म स्कन्धके १४-१७ मन्त्रावमें  
 यदनाका विल्लुत उल्लेख है।

शुनधीरु और शिवशक्ति उन्में रेक  
 तैत्तिरीय ब्राह्मणके ११।१।६, १।१।७ और जतर  
 ब्राह्मणके १२।१।३।१ और १३।३।५ स्थानमें यदजन  
 को पूजा लिखी है।

इस उपाख्यानसे यदजन प्रजापद, प्रजापालक  
 प्रजासंस्कारक देवता ही समझे जाते हैं। अतएव ये प  
 स्थिति और लयकक्षाके परम पुरुष हैं। ये राजाने  
 राज्यमें यास करते हैं।

'तदेव' राजा वक्ष्यस्वमाह व त्वापमर्क व उदेदमेरि'  
 (धर्मवे १।४६)

फिर मनुसंहितामें इन्हें राजाओंका दण्डदाता  
 है। (मनु ६।५४)

वेदमें यदजनको देवताओंमें श्रेष्ठ बतलाया है। ये ज  
 देवता हैं। जब सभी अश्वत्थारमें ढके और प्रदुन  
 तरह थे, तब भगवानकी इच्छासे महाभूतादिका विश  
 हुआ। आदिमें अर्धको सृष्टि हुई अर्धों जल हो ईश्वर  
 का आदि विकास है, अतएव जलाधिपतिको ईश्वर  
 देवताओंमें श्रेष्ठ मानना कोई अत्युक्ति न होगी।

महाभारतके उद्योग और शत्रुवधमें ये उद्धारपति  
 में वर्णन हुए हैं। उन्होंने इस भाष्यपरवर्ती गर्भना  
 पितामहने पाया था। "अर्षा राज्ये सुराणाञ्च विर  
 यदजं प्रभुम्।" (भारत अीर्ष)

मागधनमें यदजनदेव काश्यपपत्नी अश्विनिके पुत्र  
 कीर्षांत हुए हैं।

हरिवंशके ३५ अध्यायमें यदजादि देवताओंके  
 उपासिके मन्त्रधर्ममें एक एक कर लिखा है। फिर अ  
 संहिताके १० अ३।६ मन्त्रोंमें अश्विनिके मातृ पुत्रोंको जय  
 कहा है। अश्विनिके अर्धने बाल पुत्रोंमें मालीदरुको के

घरुणतीर्थ ( सं० क्ली० ) तीर्थभेद । कालिकापुराणमें लिखा है, कि दर्पाटनदके पूरव अनिमान नामक पर्वत है । उसके सम्मुखभागमें कंसकर पर्वतके नीचे घरुण कुण्ड नामका पवित्र सरोवर है । यहाँ जलाधिप घरुण सर्वाङ्ग शास करते हैं । कंसकर पर्वत पर घरुण-देवकी पूजा करके वारुणकुण्डमें स्नान करनेसे घरुण-लोककी प्राप्ति होती है । म-से पञ्चम वर्ण 'व'-कारमें अनुस्वार लगानेसे घरुणवीज होता है । उसी वीज-मन्त्रसे घरुणदेवकी पूजा करनी होती है ।

( कालिका० ७६।१० १७ )

घरुणत्व ( सं० क्ली० ) घरुणका भाव या धर्म ।

घरुणदन्त ( सं० पु० ) पाणिनि-वर्णित एक व्यक्ति ।

( पा० ५।३।८४ )

घरुणदेव ( सं० लि० ) १ घरुण जिसके देवता हों । ( पु० ) २ शतमिया नक्षत्र । ( बृहत्स० ३२।२० ) ३ घरुण-देवता ।

घरुणदेवत ( सं० पु० ) शतमिया नक्षत्र ।

घरुणधूत् ( सं० लि० ) १ घरुणकी प्रवञ्चना या लोभ दिखानेवाला । २ घरुण द्वारा द्विसित, घरुणसे मारा हुआ ।

घरुणपाश ( सं० पु० ) १ घरुणका अत्र पाशका फंदा । २ नक्र, नाक नामक जल-जंतु ।

घरुणपुरुष ( सं० पु० ) घरुणका भृत्य या नौकर ।

( भाष्य० श्रम १।१।५ )

घरुणप्रघास ( सं० पु० ) एक व्रत या कृत्य । यह आपाढ़ या श्रावणकी पूर्णिमाके दिन किया जाता है । इसमें लोग जीका सस्त्र बना कर रहते हैं । इस व्रतका फल यह कहा गया है कि, व्रत करनेवाला जलमें डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ता ।

घरुणप्रक्षिप्त ( सं० लि० ) घरुणके द्वारा शासित या परि-क्षालित ।

घरुणप्रस्थ ( सं० पु० ) एक प्राचीन नगर जो कुण्डके पश्चिममें था । ( म० ब्रह्म० ५७।१४ )

घरुणभट्ट ( सं० पु० ) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ।

घरुणमण्डल ( सं० पु० ) नक्षत्रोंका एक मंडल । इसमें रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, उत्तराभाद्रपदा और शतमिया हैं ।

घरुणमति ( सं० पु० ) एक बौधिसत्त्वका नाम ।

घरुणमिल ( सं० पु० ) गौमिलभेद ।

घरुणमेनि ( सं० स्त्री० ) घरुणका क्रोध ।

( वैश्वीयस० ५।१।५३ )

घरुणराजन् ( सं० लि० ) घरुण जहां राजरूपमें अधिष्ठित हैं । ( वैश्वीयस० ३।५।८१ )

घरुणलोक ( सं० पु० ) १ एक लोक । ( कौशिकी उप० १।५ ) काशीखण्डके १०८वे अंश्यायमें इसका विवरण है । २ घरुणका अधिकारस्थान या जल ।

( तर्कसंग्रह ७ म० )

घरुणशर्मन् ( सं० पु० ) देवता और असुरकी लड़ाईमें देवपक्षीय एक सेनापतिका नाम ।

घरुणशेषस् ( सं० लि० ) १ घरुणका अपत्य । ( मूक ५।६।५५ गायत्र्य ) २ रक्षाकारी पुत्रादिविशिष्ट ।

घरुणश्राद्ध ( सं० क्ली० ) श्राद्धकृत्यभेद ।

घरुणसव ( सं० पु० ) घरुणका अभिप्रेत यह ।

घरुणसेन ( सं० पु० ) शिलालिपि-वर्णित एक राजाका नाम ।

घरुणसेना ( सं० स्त्री० ) राजकन्याभेद ।

( कथासरित्सा० ४४।४४ )

घरुणस्रोतस् ( सं० पु० ) पर्वतभेद ।

घरुणाङ्गुह ( सं० पु० ) १ घरुणका घंशघर । २ अगस्त्य ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष ।

घरुणारमजा ( सं० स्त्री० ) घरुणस्य जनस्य आत्मजा, तदुद्भवत्वात् । घरुणी, मंदिरा, शराव ।

घरुणादिकाघ ( सं० क्ली० ) घरुणकी छाल, सोंठ, गोखरू कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थं यवक्षार २ माशा, पुराना गुड़ २ माशा । इस वशाथका पान करनेसे पुरानी वायुज अशमरीकी शान्ति होती है ।

घृद्वुघरुणादि—घरुणकी छाल, सोंठ, गोखरूका बीज, तालमूली, कुलथो, कलाय, कुशादि तुणपञ्चमूल कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थं चीनी २ माशा, यवक्षार २ माशा । इससे अशमरी, मूत्ररुच्छ, वस्तिशूल और लिङ्गशूल जाता रहता है ।

घरुणकी छालके काढ़े या कढ़के साथ पुराना गुड़





घरुणतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थभेद । कालिकापुराणमें लिखा है, कि दर्पटनदके पूरुष अग्निमान नामक पर्वत है । उसके सम्मुखभागमें कंसकर पर्वतके नीचे घरुण कुण्ड नामका पवित्र सरोवर है । यहाँ जलाधिप घरुण सर्वदा वास करते हैं । कंसकर पर्वत पर घरुण-देवकी पूजा करके घरुणकुण्डमें स्नान करनेसे घरुण-लोककी प्राप्ति होती है । म-से पञ्चम घर्ष 'व'-कारमें अनुस्वार लगानेसे घरुणवीज होता है । उसी वीज-मन्त्रसे घरुणदेवकी पूजा करनी होती है ।

(कालिका० ७६।१० १७)

घरुणत्व (सं० स्त्री०) घरुणका भाव या धर्म ।

घरुणदन्त (सं० पु०) पाणिनि-वर्णित एक व्यक्तिक ।

(पा० ५।३।८४)

घरुणदेव (सं० स्त्री०) १ घरुण जिसके देवता हैं । (पु०) २ शतभिषा नक्षत्र । (बृहत्सं० ३।२।२०) ३ घरुण-देवता ।

घरुणदेवत (सं० पु०) शतभिषा नक्षत्र ।

घरुणधुम् (सं० स्त्री०) १ घरुणकी प्रवञ्चना या लोभ दिखानेवाला । २ घरुण द्वारा दिसित, घरुणसे मारा हुआ ।

घरुणपाश (सं० पु०) १ घरुणका अस्त्र पाशका फंदा । २ नक, नाक नामक जल-जंतु ।

घरुणपुरुष (सं० पु०) घरुणका भृत्य या नौकर ।

(शाम्ब० यज्ञ १।१।५)

घरुणप्रघास (सं० पु०) एक व्रत या कृत्य । यह आषाढ़ या श्रावणकी पूर्णिमाके दिन किया जाता है । इसमें लोग जोका सत्त खा कर रहते हैं । इस व्रतका फल यह कहा गया है कि, व्रत करनेवाला जलमें डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ता ।

घरुणप्रशिष्ट (सं० स्त्री०) घरुणके द्वारा प्राप्ति या परि-चायित ।

घरुणप्रस्थ (सं० पु०) एक प्राचीन नगर जो कुश्क्षेत्रके पश्चिममें था । (म० ब्रह्म० ५७।१।१४)

घरुणमट्ट (सं० पु०) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ।

घरुणमण्डल (सं० पु०) मन्त्रलोकका एक मंडल । इसमें रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा हैं ।

घरुणमति (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम ।

घरुणमित (सं० पु०) गोमिलभेद ।

घरुणमेनि (सं० स्त्री०) घरुणका क्रोध ।

(तैत्तिरीयसं० ५।।।५।३)

घरुणराजन् (सं० स्त्री०) घरुण जहां राजत्वमें अधिष्ठित हैं । (तैत्तिरीयसं० ३।५।८।१)

घरुणलोक (सं० पु०) १ एक लोक । (कौशिकी उप० १।५) काशीखण्डके १०८वे अध्यायमें इसका विवरण है । २ घरुणका अधिकारस्थान या जल ।

(तर्कसंग्रह ७ म०)

घरुणशर्मान् (सं० पु०) देवता और असुरकी लड़ाईमें देवपक्षीय एक सेनापतिका नाम ।

घरुणशेपस् (सं० स्त्री०) १ घरुणका अपत्य । (भृक् ५।६।५।५ वाक्य) २ रक्षाकारी पुत्रादिविशिष्ट ।

घरुणश्राद्ध (सं० स्त्री०) श्राद्धकृत्यभेद ।

घरुणसव (सं० पु०) घरुणका अभिप्रेत यज्ञ ।

घरुणसेन (सं० पु०) शिलालिपि-वर्णित एक राजाका नाम ।

घरुणसेना (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद ।

(कथासरित्सा० ४४।४४)

घरुणस्रोतस् (सं० पु०) पर्वतभेद ।

घरुणाङ्कुरह (सं० पु०) १ घरुणका चंशघर । २ अगस्त्य ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष ।

घरुणारमजा (सं० स्त्री०) घरुणस्य जनस्य आत्मजा, तदुद्भवत्वात् । घरुणी, मदिरा, शराव ।

घरुणादिकाध (सं० स्त्री०) घरुणकी छाल, सोंठ, गोखरू कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाय, प्रक्षेपार्थं यवक्षार २ माशा, पुराना गुड़ २ माशा । इस कषायका पान करनेसे पुरानी वायुज अशमरीकी शान्ति होती है ।

गृहबुघरुणादि—घरुणकी छाल, सोंठ, गोखरूका बीज, तालमूली, कुलघो, कलाय, कुशादि तृणपञ्चमूल कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाय, प्रक्षे-पार्थं चीनी २ माशा, यवक्षार २ माशा । इससे अशमरी, मूत्ररुच्छ, यस्तिशूल और लिङ्गशूल जाता रहता है ।

घरुणकी छालके काढ़े या कल्कके साथ पुराना गुड़

संग जाने लगा । यदनालवयासो बहुत छर गये मीरि परमुतामका रूप करने लगे । यदमे संसुप्त हो कर परमुताम यदां उपस्थित हुए और उन्हें सखीधेयन कर बहा, 'दे प्राम्पल । यदि मेरे कर्मजानुसार कार्य करते, तो तुम सोभीका द्वैत्यमय दूर हो जायगा । मैंने द्वैत्यदानव-मात्रके लिये यदना-निर्मित पुरोमें महामायाको स्थापन किया है, तुम समी जा कर यदि उसकी शरण लो, तो मुझसे भय दूर हो जायेगे ।' यदनालवयासो विप्रोंने परमुतामके आदेशानुसार महादत्ता नामक महामायाको शरण लो । यदां वे उनका रूप और पूजादि करने लगे । महामायाने प्रालव्यादिके रूपमें संसुप्त हो कर उनसे कहा 'दे श्रमण । तूम लोम भय न करो, मैं उस द्वैत्यका मित्रता करती हूँ ।' इस प्रकार उन्हें समय दे कर वे द्वैत्यके साथ युद्ध करने लगे । घोर युद्ध करनेके बाद महामायाने उनका निर काट डाला और उन्हें बाधे हाथों में कर यह अपने घरको लाये । इस प्रकार द्वैत्य-मय दूर हुआ । द्वैत्यमय साकाशमें पुत्ररूपि और गन्धर्व-मय नाम करने लगे । राममहोत्सव निर्विघ्नपूर्वक समाप्त हुआ । तमोमें माघ मासको शुक्ल षष्ठी तिथिको कामना करने तथा मलिनराजय हो कर जो सब व्यक्ति विभुवर्गवरी देयो महामायाकी पूजा करने हैं, वेको उनकी भूमिदाया पूर्ण करने हैं ।

( १८२५० शब्दादिः १२५०१०१२ १२ ५० )

जिस अरुणरीक्षका द्वैय कर वैदिक युगके मायोंके द्वैत्यमें ईश्वरका सभिवर्तिक उद्भव हुई थी, वेदमें उद्देशिको यदनालव कहा है । उन अरुणरीक्षवर्णयत् देवताओंके राजा यदनाके साथ प्रोक्त पुराणोक्त उरेनमकी अनेक सङ्गठना देखी जाती है । वैदिक उपासकानमें योत् कर्तृक जिस प्रकार यदनाके पदरूपि और अरुणरि रूपमें निवोगकी कथा है, उसी प्रकार प्रोक्तके पुराणकथमें उतुप्त कर्तृक उरेनमकी पदरूपिका कथा मिलता है । यदना वृष्टि-दाना और अरुणरिद्वारा है, उरेनम भी उसी उची कर्तृके सधियति है । विश्वु यदनामें मेधा और सधियते तथा अरुण और यदनाके कथा अरुणरि विनयोमें बहुत उमेद देता जाता है, यदना सधियरिद्वारमें मेघसूक्तके साथ अरुणरि विरुण सङ्गठना है । मेघुन देखे ।

३ स्वनामवदान प्राप्तिको, यदनाका वैदु । पर्वत यदना, मेदु, मितानाक, कुमाराक, अरुणरीक्ष, मेदुन, कला निमित्तमण्डन, दयितएस, इवेगदूम, मायुरस, ममाक, मादनायद । इनका युग—बहु, उरुन, सखीधेय और शोमयायद, स्निग्ध, दीपन तथा विद्विषितोपार ।

( १८२५० )

संशयलभके मतमें इनका युग—यायु और कुल-हर, मेदुन, उरुन और अरुणरीक्षनामक । यदनाका पुत्र युग—विश्वर और भामयातदर । ( गङ्गाशब्द ) ४ जन्, पानी । ५ मूर्ध । ६ मुनि-गर्भमान चरुपके एक पुत्रका नाम । ( भारत १६५५३ )

यदनाक ( सं० पु० ) यदनायस, यदनाका वैदु । ( Crataeva Roxburghii )

यदनायुद्ध—सौषधविशेष ।

यदनायुद्ध ( सं० लि० ) १ यदना द्वारा आकारत । २ यदनी आदि रोगप्रस्त ।

यदनाप्रस्त ( सं० लि० ) यदनाप्रस्त, जन्मों युवा हुआ ।

यदनापद ( सं० पु० ) घोड़ोंको एक रोग जो अवातक ही जाता है । इस रोगमें घोड़ोंका तान्द, जीम, सौंठ और लिङ्गे शिष्ट आदि भंग काले रंगके हो जाते हैं । उनका शरीर मारी हो जाता है और पसोना सुरता है । यह रोग अवातक होता है और बहुत यदना करनेमें घोड़ोंके प्राण बचने हैं ।

यदनाप्राम—एक प्राचीन प्राम । ( मरिच्य प्राम० ५३२५१ )

यदनाप्राह ( सं० पु० ) यदना द्वारा आकारण या अरण्य । ( तीरतीरव० १५५३४ )

यदनायुत्र—अरुणरीक्षा एक सौषध । जो ४ रीर, बट्टेके लिये सूटी है यदनाकी छाल १३५ रीर, जल ६४ रीर रीर १६ रीर । बट्टेके लिये यदना सूत्रकी छाल, सैती की जड़, नीमके पेड़की छाल, कुशादि पशुपुत्रका सूत्र, गुलजु, मिनासिन, ककटोका योज, दूध, मित्रागतक हार, यदनाप्राम, यदनीका सूत्र प्रत्येक ५ तोला । रोगमेंके अरुणरानुसार मात्रा मिया करनी होगी । रोग पुराना होमेरे उपके साथ पहले सूरीका पानी मिला कर सेवन करना चाहिये । इसमें अरुणरी, शरीर और सूत्ररुपु रोग दूर होते हैं ।

घरुणतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थमेद् । कालिकापुराणमें लिखा है, कि दर्पाटनरुके पूरव अनिमान नामक पर्वत है । उसके समुखभागमें कंसकर पर्वतके नीचे घरुण कुण्ड नामका पवित्र सरोवर है । यहाँ जलाधिप घरुण सर्वांश वास्त करते हैं । कंसकर पर्वत पर घरुण-देवकी पूजा करके वारुणकुण्डमें स्नान करनेसे घरुण-लोककी प्राप्ति होती है । म-से पञ्चम वर्ष 'घ'-कारमें अनुस्वार लगानेसे घरुणबीज होता है । उसी बीज-मन्त्रसे घरुणदेवकी पूजा करनी होती है ।

(कालिका० ७६।१० १७)

घरुणस्य (सं० स्त्री०) घरुणका भाव या धर्म ।

घरुणदन्त (सं० पु०) पाणिनि-वर्णित एक व्यक्ति ।

(पा० ५।३।८४)

घरुणदेव (सं० त्रि०) १ घरुण जिसके देवता हैं । (पु०) २ शतमिया नक्षत्र । (बृहत्सं० ३२।२०) ३ घरुण-देवता ।

घरुणदैवत (सं० पु०) शतमिया नक्षत्र ।

घरुणधुत् (सं० त्रि०) १ घरुणको प्रवञ्चना या लोभ दिखानेवाला । २ घरुण द्वारा हिंसित, घरुणसे मारा हुआ ।

घरुणपाश (सं० पु०) १ घरुणका अन्न पाशका फंदा । २ नक, नाक नामक जल-जंतु ।

घरुणपुरुष (सं० पु०) घरुणका भृत्य या नौकर ।

(भाष्य० एक १।१।५)

घरुणप्रघास (सं० पु०) एक व्रत या वृत्य । यह आषाढ या श्रावणकी पूर्णिमाके दिन किया जाता है । इसमें लोग जीका सप्त खा कर रहते हैं । इस व्रतका फल यह कहा गया है कि, व्रत करनेवाला जलमें डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ता ।

घरुणप्रतिष्ठ (सं० त्रि०) घरुणके द्वारा शासित या परिचातित ।

घरुणप्रस्थ (सं० पु०) एक प्राचीन नगर जो कुशक्षेत्रके पदिनमें था । (म० ब्रह्मसं० ५७।११४)

घरुणमट्ट (सं० पु०) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ।

घरुणमण्डल (सं० पु०) नक्षत्रोंका एक मंडल । इसमें रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, उत्तराभाद्रपदा और शतमिया हैं ।

घरुणमति (सं० पु०) एक बौधिसत्यका नाम ।

घरुणमित (सं० पु०) गोमिलमेद् ।

घरुणमेनि (सं० स्त्री०) घरुणका क्रोध ।

(वैश्वीर्यसं० ५।१।५।३)

घरुणराजन् (सं० त्रि०) घरुण जहाँ राजरूपमें अधिष्ठित है । (वैश्वीर्यसं० ३।५।८।१)

घरुणलोक (सं० पु०) १ एक लोक । (कौशिकी उप० १।५) काशोखण्डके १०८वें अध्यायमें इसका विवरण है । २ घरुणका अधिकारस्थान या जल ।

(तर्कसंग्रह ७ अ०)

घरुणशर्मन् (सं० पु०) देवता और असुरकी लड़ाईमें देवपक्षीय एक सेनापतिका नाम ।

घरुणशेवस् (सं० त्रि०) १ घरुणका अपत्य । (शुक् ५।६।५।५) २ रक्षाकारी पुत्रादिविशिष्ट ।

घरुणभ्राद् (सं० स्त्री०) भ्रादृवृत्पमेद् ।

घरुणसव (सं० पु०) घरुणका अभिप्रेत यज्ञ ।

घरुणसेन (सं० पु०) शिलालिपि-वर्णित एक राजाका नाम ।

घरुणसेना (सं० स्त्री०) राजकन्यामेद् ।

(कथालिख्ता० ४४।४४)

घरुणस्रोतस् (सं० पु०) पर्वतमेद् ।

घरुणाङ्गुद (सं० पु०) १ घरुणका धंशधर । २ अगस्त्य ऋषिके गोलमें उत्पन्न पुरुष ।

घरुणारमजा (सं० स्त्री०) घरुणस्य जनस्य आत्मजा, तदुद्भवत्वात् । घारुणी, मदिरा, शराव ।

घरुणादिकाध (सं० स्त्री०) घरुणकी छाल, सोंठ, गोखरू कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पात्र, प्रक्षेपार्थं यवक्षार २ माशा, पुराना गुड़ २ माशा । इन बन्धाधका पान करनेसे पुरानी वायुज अश्वरोकी शान्ति होती है ।

शुद्धघरुणादि—घरुणकी छाल, सोंठ, गोखरूका बाज, तालमूली, कुलथो, कलाय, कुशादि तुणपञ्चमूल कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पात्र, प्रक्षेपार्थं चीनी २ माशा, यवक्षार २ माशा । इससे अश्वरो, मूत्ररुच्छ, वस्तिशूल और लिङ्गशूल जाता रहता है ।

घरुणकी छालके काढ़े वा कढ़कके साथ पुराना गुड़



वरेश्वर ( सं० पु० ) शिव ।

वरोट ( सं० क्ली० ) वराणि श्रेष्ठानि उदानि दलानि अस्व ।

मरुवक, मरुवा ।

मरोत्पल ( सं० क्ली० ) श्वेत रक्तपत्र ।

वरोट—१ बर्माई प्रेसिडेन्सीके भालावार प्रान्तस्थ एक सामन्तराज्य । यहाँके सामन्तराजका राजस्य २१ हजार रु० है जिनमें उन्हे जूनागढ़के नवाबको सालाना २७८ रु० और बड़ौदा-पतिको १२५२ रु० कर देना पड़ता है ।

२ उक्त प्रेसिडेन्सीके गोहेरवाड प्रान्तस्थ एक छोट सा सामन्त राज्य । अभी यह दो भागोंमें बंट गया है । यहाँके अधिकारी लोग बड़ौदा गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं ।

वरोच ( सं० त्रि० ) वरः ऊरुः कर्मघा० । १ श्रेष्ठ ऊरु, सुन्दर जांघ । ( त्रि० ) २ श्रेष्ठ उरुशाली, सुन्दर जांघों-घाला । ३ सुन्दरी ।

वरोल ( सं० पु० स्त्री० ) वृ-उलच् । १ चरट । २ भृङ्गरोल ।

वराहशाषी ( सं० पु० ) प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़ ।

वरोपधा ( सं० स्त्री० ) १ आदिस्वप्रका, हुरहुर । २ प्राणो श्राक ।

वर्कट ( सं० पु० ) १ हाथीका बंधन जो लकड़ीका बना हुआ और काँटेदार होता है । २ काँटा, कील । ३ अर्गल, अगरी ।

वर्कणा ( सं० स्त्री० ) तरुण छागो, जवान बकरी, पडिया ।

वर्कर ( सं० पु० ) वृषयने गृह्णने इति वृक-भादाने बहुल-वचनात् अर । १ सुय पशु, जवान पशु । २ मेपशावक, भेड़की बच्चा, मेमना । ३ छाग, बकरा । ४ परिहास, आमोद-प्रमोद ।

वर्करकर ( सं० त्रि० ) बहुत तरहका ।

वर्करीट ( सं० पु० ) वषारं परिहासं अटति गच्छतीति अच्-टाप् । १ कटाक्ष । २ तरुण तपनप्रभा, मध्याह्नके सूर्यकी प्रभा । ३ स्त्रीके कुचके किनारे लगा हुआ नख-क्षत ।

वर्करीकुण्ड ( सं० क्ली० ) काशीके एक सरोवरका नाम । यह एक पुण्यतोर्ण है । काशी देखो ।

वर्करीतोर्ण—एक तोर्णका नाम । ( कुमाठीका १०७/११७ )

वर्किंग कमिटो ( अ० स्त्री० ) कार्याकारिणी समिति । जैसे—  
कांग्रेस वर्किंग कमिटो ।

वर्ग ( सं० पु० ) वृज्यते इति वृजि वर्जने घञ् । १ सजातीय समूह, एक ही प्रकारकी अनेक वस्तुओंका समूह । २ आकार प्रकारमें कुछ भिन्न, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पदार्थोंका समूह । ३ शब्दशास्त्रमें एक स्थानसे उच्चरित होनेवाले स्पर्श व्यञ्जनवर्णोंका समूह व्याकरणके मतसे वर्ग पांच हैं, पधा—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और पवर्ग । कवर्ग कहनेसे क, ख, ग, घ, ङ, चवर्ग कहनेसे च, छ, ज, झ, ञ, इसी प्रकार टवर्ग कहनेसे ट से 'ण' तक, तवर्ग कहनेसे 'त' से 'न' तक तथा पवर्ग कहनेसे 'प' से 'म' तक पाया जायगा । क च ट त प आदि पांच पांच वर्ण ले कर ही व्याकरणका वर्ग बना है । "कचतपाः पञ्चवर्ग" से वर्गः पञ्च पञ्च इत्यादि ।

अभिधानमें इस समष्टि वा समाधानमें स्वर्गपातालदि वर्ग, नानार्थवर्ग, मूर्ध्निवर्णवधि वर्ग, अव्यय वर्ग, ग्रह वर्ग, क्षत्रविद् शूद्रादि वर्गका भी उल्लेख देखा जाता है ।

( मनिगुण ३६६ ३७५ य० )

फलित ज्योतिषमें लिखा है, कि शवर्गके अधिपति सूर्य, कवर्गके अधिपति मङ्गल, चवर्गके शुक, टवर्गके बुध, तवर्गके वृहस्पति, पवर्गके शनि, य और श वर्गके अधिपति चन्द्र हैं । इसके द्वारा गणना करनेसे नामादि जाने जाते हैं ।

४ प्रथम परिच्छेद, प्रथका विभाग, प्रकरण, अध्याय । ५ आयुर्वेदोक्त गण । ६ यह चौखूँटा क्षेत्र जिसको लम्बाई चौड़ाई बराबर और चारो कोण समकोण हों । ७ दो समान अंकों या राशियोंका घात या गुणनफल । लीलावतीमें इसका विषय लिखा है । इसका उद्देशक वा मन्तव्य निम्नोक्त विधि द्वारा स्पष्ट किया गया है—

"छले नवानाञ्च चतुर्दशानां बुद्धिः प्रिहीनस्य तत्रवपस्य ।

पञ्चोत्तरस्यान्यमुत्स्य वर्गं जानाधि चेद्वर्गविधानमार्गम् ॥"

( श्रीब्रह्मती )

इस सूत्रका अवलम्बन कर ६, १४, २६७ और १०००५ का वर्गफल निर्णय करनेमें यथाक्रम पूर्वोक्त प्रक्रिया द्वारा ८१, १६६, ८८२०६ और १००१०००२५ राशि पाई जाती भयथा अन्यप्रक्रियामें ६ संख्याका घण्ट ४ और ५ ले

कीर्ति मदित्रके मूत्रका जल काय सेवन करनेसे स्तनती  
कीर्ति लज्जिता दमना दूर होती है।

वदन्नादिनाम ( म० पु० ) वेङ्ग कीर्ति सीधोका एक वन।  
इसके कलायंत्र वदन, मीनखिल्टो, मदित्रक, जपनी,  
दिवासीको, वृत्तिका, भाटाकरक, मजिनसंघ ( मर्गेयू ),  
घोषा, जलमूली, बेर, भाठशृंगी, घाम, दूधनी और मर-  
-वृष्टिका है। ( सुधुल्ल० १८ प० )

वदन्नादि ( म० पु० ) पर्यंतमेह।  
वदन्नामी ( म० स्त्री० ) वदन्नाम्य परतो वदन् ( इन्द्रवरच-  
-मर्गेयू । वा० ११४६ ) इति, टोपी, बामुगागामर्यु। वदन्-  
-को परतो।

वदन्नापार - भाटादिपर्यंतम्य एक प्राचीन तीर्थसिद्ध।  
वदन् देतो।

वदन्नाम्य ( म० पु० ) समुद्र, मागर।  
वदन्नायाम ( म० पु० ) समुद्र, मागर।  
वदन्नायि ( म० स्त्री० ) सखी।

वदन्निच ( म० पु० ) वदन्निचका संज्ञित नाम।  
वदन्नेज ( म० पु० ) जलमिया लक्षण, वदन् जिनके अधि-  
-पति है।

वदन्नेजमोर्ध ( म० स्त्री० ) एक तीर्थका नाम।  
वदन्नेह ( म० स्त्री० ) सागर, समुद्र।  
वदन्नेयविपद् ( म० स्त्री० ) एक उपविपद्का नाम।  
वदन्नेयपुराण ( म० पु० ) एक उपपुराण। 'वृत्तपुराण और  
देवामाहादयमे' इसका उल्लेख है।

वदन्ध ( म० स्त्री० ) वदन्-माम्ब्य, वदन्नेसे उत्पन्न।  
वदन्ध ( म० स्त्री० ) वृषीति कावृषीत्यनेनेति वृ-उत्  
( भर्तृव्यदिभ्य इत्थे )। उच् ३१७२ ) उत्तरेय वदन्,  
वदन्ना, वृषदा।

वदन्दी ( म० स्त्री० ) वामकरके मरुताय एक नदी।  
( भर्तृव्य इत्थम० ३१७० )

वदन्ध ( म० पु० ) वृ-उत् । संज्ञक।  
वदन्ध ( म० पु० ) वृषाःमोर्ध । पुराणमे 'उत्त' नामके  
विषयगत है।  
वदन्ध ( म० स्त्री० ) वृषीति । वदन्धे इति वृ-वदन्धे इत्थम्  
( इन्द्रमन्वन्वत् । उच् ३१७३ ) इन्द्रताम्य, वदन्ध । ३ पर्वे,

वदन्ध । ३ वृद्ध, धर । ४ सीम्य, सीमा, फौज। जिसे  
वयोऽनेनेति वृ-न् धरमे उच्यते । ( पु० ) ५ मर्दिही वद-  
-दा मोरुदोका बना हुआ आचरण वा क्रुद्ध जो मर्दुहो  
आचरणसे रोकते रहित करनेके लिये उत्तरेय रूपर इतो  
जातो भी । ६ एक प्राचीन ग्राम।

( रामायण १७१११ )

वदध्याम् ( म० मध्य० ) सङ्कुला, बहुल का।  
वदध्यापिप ( म० पु० ) वदध्यामी सीत्यानामपिप, रक्षिता।  
सेतापति।

वदध्यापिपति ( म० पु० ) सेतामी, सेतामापक।  
वदधिय ( म० पु० ) वदध्या मद्याम्योति वदधियन् ।  
१ जलोपरिस्थ वामाकार काष्ठ वा रथमुनिमुक्त, धर्मको  
बाढी। २ वदध्यायक वन्मुनालपुल।

वदधिमो ( म० स्त्री० ) सेता।  
वदध्य ( म० स्त्री० ) १ धरणीय, वदन्के योग्य । २ परि-  
-युत, वेष्टित । ३ वृद्धार्थ, धरके योग्य । ४ मोतवाकालय-  
-निधारक। ५ वृद्धोचित धन।

वदधे ( म० पु० ) योक्तता, धरोक्त।  
वदधे ( म० स्त्री० ) वदधेया मद्यका मयसंज्ञ।

वदधेय ( म० पु० ) मियके मोर्धिरिति वृ-वदधेया, ( इन् वदधेयः ।  
उच् ३१६६ ) १ भृगुके एक पुत्रका नाम । २ महादेव ।  
३ कुंकुम, बेतर । ४ वित्तुगणीमेंसे एक । ( ति० )  
५ प्रयाग, मुक्कय । ६ धरणीय, वृत्तयोग।

वदधेयकटु ( म० स्त्री० ) धरणीय, प्रभायुक्त होता।  
( वृ० ८, ५१, १३ )

वदधेद्र ( म० पु० ) १ राजा । २ सामगाराक्ष । ३ इन्द्र ।  
४ ब्रह्माक्षका एक विभाग। यह वदधेद्रमूमि नामके विभाग  
है। देगावलोमें लिखा है, कि एक समय मादेंद्र ही  
वदधेद्रमूमिही राजपातो भी। वदधेद्र देतो।

वदधेद्रमिति - धरतएवमिति का नामक वैज्ञानिक ग्रन्थके  
-रक्तविज्ञ।

वदधेद्रो ( म० स्त्री० ) मोक्ष देण, वदधेद्रमूमि।  
वदधे ( म० पु० ) वृत्त।  
वदधे ( म० स्त्री० ) प्रवचनार्थी, विद्यादेके लिये जन्मका  
माध्यम करनेवाला।  
वदधे ( म० पु० ) मर्गेम्वर, वर देनेवाले। भगवान्।

वरेधर ( सं० पु० ) शिव ।

वरोट ( सं० क्ली० ) वराणि श्रेष्ठानि उदानि दलानि अस्य ।

मदवक, मरुया ।

मरोटपल ( सं० क्ली० ) श्वेत रक्तपत्र ।

वरोद—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके भालावार प्रान्तस्थ एक सामन्तराज्य । यहांके सामन्तराजका राजस्व २१ हजार रु० है जिनमें उन्हे जूनागढ़के नवाबको सालाना २७८ रु० और वड़ौदा-पतिकी १२५२ रु० कर देना पड़ता है ।

२ उक्त प्रेसिडेन्सीके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सा सामन्त राज्य । अभी यह दो भागोंमें बंट गया है । यहांके अधिकांसी लोग वड़ौदा गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं ।

वरोह ( सं० लि० ) वरः ऊरुः कर्मधा० । १ श्रेष्ठ ऊरु, सुन्दर अंग । ( लि० ) २ श्रेष्ठ उरुशाली, सुन्दर अंगों-वाला । ३ सुन्दरी ।

वरोल ( सं० पु० खी० ) वृ-उलच् । १ वरट । २ भृङ्गरोल ।

वराहशाही ( सं० पु० ) प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़ ।

वरोपधो ( सं० खी० ) १ आवित्यभक्ता, हुरहुर । २ ब्राह्मी-शाक ।

वर्कट ( सं० पु० ) १ हाथीका घंघन जो लकड़ीका बना हुआ और काटेदार होता है । २ कांटा, कील । ३ अंगल, भगरी ।

वर्कणा ( सं० खी० ) तहण छागी, जवान बकरी, पहिया ।

वर्कर ( सं० पु० ) वृषयने गृह्णने इति वृक-आदाने बहुल-वचनात् अर् । १ युव पशु, जवान पशु । २ मेपशावक, भेड़की बच्चा, मीमना । ३ छाग, बकरा । ४ परिहास, आमोद-प्रमोद ।

वर्करकर ( सं० लि० ) बहुत तरहका ।

वर्करोट ( सं० पु० ) वरारं परिहासं अटति गच्छतीति अच्-टाप् । १ कटाक्ष । २ तहण तपनप्रभा, मध्याह्नके सूर्यकी प्रभा । ३ खीके कुचके किनारे लगा हुआ नल-सत ।

वर्करोहड ( सं० क्ली० ) काशीके एक सरोवरका नाम । यह एक पुण्यतीर्थ है । काशी देखो ।

वर्करोतीर्ण—एक तीर्थका नाम । ( कुमारीका १०७।१० )

वर्किंग कमिटी ( अ० खी० ) कार्याकारिणी समिति । जैसे—  
'कांग्रेस वर्किंग कमिटी ।

वर्ग ( सं० पु० ) वृज्यते इति वृजि वर्जने घञ् । १ सजातीय समूह, एक ही प्रकारको अनेक वस्तुओंका समूह । २ आंकार प्रकारमें कुछ मिन, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पदार्थोंका समूह । ३ शब्दशास्त्रमें एक स्थानसे उच्चरित होनेवाले स्पर्श व्यञ्जनवर्णोंका समूह व्याकरणके मतसे वर्ग पांच हैं, यथा—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और एवर्ग । कवर्ग कहनेसे क, ख, ग, घ, ङ, चवर्ग कहनेसे च, छ, ज, झ, ञ, इसी प्रकार टवर्ग कहनेसे ट से 'ण' तक, तवर्ग कहनेसे 'त' से 'न' तक तथा एवर्ग कहनेसे 'ए' से 'म' तक पाया जायगा । क च ट त प आदि पांच पांच वर्ण ले कर ही व्याकरणका वर्ग घना है ।

"कचतपाः पञ्चवर्ग" ते वर्गः पञ्च पञ्च पञ्च इत्यादि ।

अभिधानमें इस समष्टि वा समासमें स्वर्गपातालादि वर्ग, नानार्थवर्ग, भूमिवर्गीपधि वर्ग, अव्यय वर्ग, ब्रह्म वर्ग, क्षत्रविट् शूद्रादि वर्गका भी उल्लेख देला जाता है ।

( अग्निपु० ३६६ ३७५ अ० )

फलित ज्योतिषमें लिखा है, कि अक्षरोंके अधिपति सूर्य, कवर्गके अधिपति मङ्गल, चवर्गके शुक, टवर्गके बुध, तवर्गके वृहस्पति, एवर्गके शनि, य और श वर्गके अधिपति चन्द्र हैं । इसके द्वारा गणना करनेसे नामादि जाने जाते हैं ।

४ ग्रन्थ परिच्छेद, ग्रन्थका विभाग, प्रकरण, अध्याय । ५ आधुर्धेदोक गण । ६ घट चौखूटा क्षेत्र जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर और चारो कोण समकोण हों । ७ दो समान अंकों या राशियोंका घात या गुणनफल । लीलावतीमें इसका विषय लिखा है । इसका उद्देशक या मन्तव्य निम्नोक्त विधि द्वारा स्पष्ट किया गया है—

"यत्ते नवानाम चतुर्दशानां बुदि विद्विनेत्य सवषयस्य ।

पञ्चोत्तरत्यान्ययुतस्य वर्गं जानाधि चेद्वर्गविधानमार्गम् ॥"

( लीलावती )

इस सूत्रका अर्थलभ्यन कर ६, १४, २६७ और १०००५ का वर्गफल निर्णय करनेमें यथाक्रम पूर्वोक्त प्रक्रिया द्वारा ८१, १६६, ८८२०६ और १००१०००२५ राशि पाई जाती मध्यम अन्वप्रक्रियामें ६ संख्याका ८१६ ४ और ५ ले



पर निम्नोक्त प्रकारका बहुकाल गिना होता है। उक्त दोनो राशिका गुणनफल २० है। उसका पुनः ४० होता है। उनमेंसे प्रत्येक अष्टकको वर्गफल समष्टि है—

४x४=१६ ; २x२=४ ; १६+२४=४० ;

अतएव ४०+४१=मिथ्यामेरे ८१ होता है। यही ८ वर्ग मूलका वर्गफल है। इसी प्रकार १४ का अष्ट ६ और ८ है। इनके गुणनफल ४८ को दोसरे गुना करनेसे ६३ होता है। इनके प्रत्येक अष्टकके वर्गफलको समष्टि ३१+६४=१०० है। दोनोनों मिथ्यामेरे १६+१००=११६ होता है, अथवा १० और ४=१४ राशिका अष्ट मान कर उक्त प्रथममे द्विमात्र करनेसे यही फल निकलेगा।

दूसरा उदाहरण—२१० राशिमै तीन घटा कर जा घटावफल होगा इसे २१४x३०० द्वारा गुणा करनेसे ८८२०० गुणनफल होता है। पीछे उसमें पूर्णवत्क ३ संख्याका वर्गफल ९ योग करनेसे ८८२०९ वर्गफल पाया जाता है। इसी नियमसे सभी राशिका वर्गफल निश्चाला जा सकता है।

(न्या०) ८ अथवा विशेष) यह सत्त्वरा मुनिके शापरि माह दो गंर को। वाण्ड पुत्र भर्तुंमसे इसका उदाहर हुआ।

(विद्युत विद्युत् महाभारतके १।१२३ अन्वयसे देता।

वर्गवर्ग ( सं० द्वी० ) गणितीय वर्गफलनिर्वापक बहु-प्रकारका समाधानकार्य।

वर्गघर ( सं० पु० ) पाठोत्तररूप, पढना या गहिला मतली।

वर्गघन ( सं० द्वी० ) किसी वर्गराशिका घनफल।

वर्गघनफल ( सं० पु० ) बहुजालांकी राशिका वर्गघन वर्गफल ( Path power )।

वर्गघा ( सं० द्वी० ) गुणन, घन। (Multiplication)

वर्गघा ( सं० द्वी० ) यह संके जिसके घनमे बीरे वर्गाङ्क बना हो, वर्गमूल। (Square-root)

वर्गघन ( सं० पु० ) इसाक्षक, गणितोका साधक।

वर्गघरि ( सं० द्वी० ) गणितके बहुवचनवा-विशेष। ( an abstract )

वर्गघन ( सं० पु० ) कश्चि

वर्गवर्गमित् ( सं० द्वी० ) अपने अपने एकको घनमा-करनेवाला।

वर्गफल ( सं० द्वी० ) यह गुणनफल जो दो अमान राशिकोके साथमे प्राप्त हो, यह संके जो किसी संकेको उभो संकेके साथ गुणा करनेसे आये। जैसे—५का वर्गमूल २५ होता है।

वर्गमूल ( सं० द्वी० ) वर्गमूल गणनावाण्डुपण 'मूल' भाषावाहू। किसी वर्गाङ्कका यह संके जिससे यदि उसीमे गुणन करे, तो गुणन यही वर्गाङ्क हो। जैसे—२ वर्गमूल ४ का है और ३ वर्गमूल ९ का।

वर्गमूलके इमे 'square-root' कहते हैं। किसी संख्याका वर्गमूल हम  $\sqrt{\quad}$  चिह्नमे प्रकट किया जाता है। यह चिह्न उसके पदमे रखा जाता है।

उस संख्याको जिसका वर्गमूल पूर्णाङ्क राशि वा भिन्न द्वारा ठोक प्रकट किया जा सके, पूर्णवर्ग कहते हैं। इस बात पर ध्यान रखना चाहिये, कि जिस संख्याके अन्तमे २ या ३ या ७ या ८ हो पर संख्या पूर्णाङ्क हो या अजगन्त, यह पूर्णवर्ग नहीं होगी।

जब किसी पूर्णाङ्क राशिका, जो पूर्णवर्ग है वर्गमूल २से अधिक न हो, तो उसको गुणनघातो द्वारा जान सकते हैं; जैसे—घातोमे हम जानते हैं, कि ८१ का वर्गमूल ९ है; १६९ का १३ है; परन्तु एक नियम है जिसके द्वारा किसी संख्याका जिसमे २से अधिक अङ्क हो वर्गमूल निकाल सकते हैं।

यह बन्दना करो, कि एकको १०१ का वर्गमूल निकालना होता है। प्रथम १०१के अङ्कस आरम्भ करके प्रत्येक दूसरे अङ्कके ऊपर चिह्न रखते जानो, इस प्रकार संख्याको दो दो अङ्कके संज्ञोमे बाँट लो।

11 11 ( 99 )  
39

101 101  
101

जिब यह विहित होता है, कि सबसे बड़ी संख्या ५९ है जिसका वर्ग १०११ है, अतएव वर्गमूल १०११ परका अङ्क ३९ ही निकाले जायेगा। यही अंशमे

प्रकार नया मांडप ६३६ हो गया। फिर इस संख्या के अन्तिम अङ्कको छोड़ कर उसे इस निकले हुए वर्ग-मूलके दूनेसे भाग दो और भागफल ६ को निकले हुए वर्गमूलको दाहिनी ओर रखो और जांच भाजक १०में लगा दो जो १०६ हो गया। फिर भाजक १०६को वर्गमूलके उस अङ्कमें जो पीछे रखा है गुणा करो। जब इस गुणनफलको ६३६मेंसे घटानेसे शेष कुछ नहीं रहता है, इससे छात हुआ कि ५६ वर्गमूल ३१३६ का है।

यदि अधिक अंश उतारने हों, तो पूर्ण विधिके अनुसार किया करते जाओ जैसे अगले उदाहरणमें को गई है।

	१'५६'२५' ( १२५	इसमें जब दो अङ्क वर्गमूलमें
	१	निकल आये तो शेष १२ रह
२२)	५६	गये। इसमें तीसरे अंश-
	४४	को मिलानेसे १२२५ अन्य
		बन गया।
२४५)	१२२५	
	१२२५	

इस संख्याके दाहिने अन्तिम अङ्कको छोड़ कर प्रथम निकले हुए मूलके दुगने ले भाग दो ( अर्थात् १२२को २४ से) ५ भागफल निकला। फिर ५को वर्गमूल और जांच भाजक दोनों ओरको रख दो, इत्यादि।

भाग द्वारा वर्गमूलके दूमरे अङ्क निकालनेमें कभी ऐसा भागफल प्राप्त होता है जो शोक उत्तरसे कहीं अधिक होता है। ऐसी हालतमें वर्गमूलका अङ्क जांचसे प्रवीत होता है।

जब प्रांच भाजक उम संख्यासे बड़ा हो जिसको इसने भाग देना है ( या जब भागफल १ हो, परन्तु उत्तर अधिक हो जाय ) तो वर्गमूलमें शून्य बढ़ा देत हैं और दूमरे अंशको उतार लेते हैं तथा साधारण रीतिसे क्रिया करते हैं।

दशमलव भिन्नका वर्गमूल निकालनेकी रीति—दशम लव भिन्नके वर्गमूल निकालनेमें वही क्रिया को जाती है, जो पूर्ण राशिके वर्गमूल निकालनेमें। विद्यु रत्नमें पहला विद्यु रत्नके अङ्क पर रखना चाहिये या रखा हुआ कल्पना कर लेना चाहिये। वर्गमूलमें दशमलव विद्यु

पूर्णाङ्क भागके वर्गमूलके पश्चात् हो रख देना चाहिये। यह छात होगा, कि यदि किसी दशमलवका वर्ग निकाला जाय, तो फलमें दशमलव स्थानोंको संख्या सम होगी। इस कारण दशमलव भिन्नमें वर्गराशि होनेके लिये दशमलव स्थानोंको समसंख्या होनी चाहिये और वर्गमूलमें दशमलव स्थानोंको संख्या वर्गसंख्यासे भावो होनी चाहिये।

यदि दो हुई दशमलव भिन्न पूरी वर्गराशि न हो, तो वर्गमूल अनन्त दशमलव होगा और वर्गमूल जितने दशमलव अङ्को तक चाहे निकाला जा सकता है।

दशमलवके वर्गमूल निकालनेमें दशमलव अङ्कोको संख्या सम होना चाहिये और यदि आवश्यकता हा तो शून्य बढ़ा देना चाहिये।

वर्गमूलघन (सं० ह्नी०) सजातीययाङ्कत्रयस्य घातः घनः। सजातीय तीन अङ्कोंका परस्पर गुणनफल अथवा किसी एक राशिके वर्गफलके साथ उस राशि द्वारा फिर गुणन। इसीको मूलराशिका घनफल ( Cubic root ) कहते हैं। लोलायतीमें यह घनमूल प्रकरण स्वतन्त्र है। इसका करणसूत्र त्रिवृत्तात्मक है।

६, २७, १२५ इन तीन राशियोंके यथाक्रम गुणन द्वारा घनफल ७२६, १६६८३ और १६५३१२५ होता है। अथवा ६ राशिको ४ और ५ खण्ड मान कर हिसाब करनेसे दूमरे उपायसे यह सिद्ध होता है। अर्थात् ६ तथा ४ और ५ राशि, इन तीनों राशियोंका परस्पर गुणनफल १८० होता है। इसका त्रिगुना ५४० हुआ। दोनों खण्ड राशियोंसे एक एकको घन समष्टि = ४ × ४ × ४ = ६४, ५ × ५ × ५ = १२५, ६४ + १२५ = १८६। दोनों लघ्व राशिका योगफल ५४० + १८६ = ७२६। यहा ६ राशि-का घनफल है। अथवा २७ राशिका खण्ड २० और ७ होता है। इनका परस्पर गुणनफल तथा त्रिगुन संख्या २७ × २० × ७ = ३७८० × ३ = ११३५०, दोनों खण्डराशिके घनफलको समष्टि—२० × २० × २० = ८००० + ७ × ७ × ७ = ३४३ = ८३४३। इस घनसमष्टि तथा पूर्वोक्त राशि-का योगफल ११३४० + ८३४३ = १२१७४३ है।

अथवा ४ राशि—इसका वर्गमूल २ और घनफल ८ होता है। इनका स्वयं अर्थात् परस्परके गुणनफलका ४

कर निम्नोक्त प्रकारका अङ्कफल सिद्ध होता है। उक्त दोनों राशिका गुणनफल २० है। उसका दूना ४० होता है। उनमेंसे प्रत्येक घण्टकी वर्गफल समष्टि है—

$$४ \times ४ = १६ ; ५ \times ५ = २५ ; १६ + २५ = ४१ ;$$

अनपय ४० + ४१ = मिलनेसे ८१ होता है। यही ९ वर्ग मूलका वर्गफल है। इसी प्रकार १४ का घण्ट ६ और ८ है। इसके गुणनफल ४८ को दोसे गुना करनेसे ९६ होता है। उनके प्रत्येक घण्टके वर्गफलकी समष्टि ३६ + ६४ = १०० है। दोनोंको मिलानेसे ९६ + १०० = १९६ होता है, अथवा १० और ४ = १४ राशिका घण्ट मान कर उक्त प्रयासे हिसाब करनेसे यही फल निकलेगा।

दूसरा उपाय—२६७ राशिमें तीन घटा कर जा घटावफल होगा उसे २६४ × ३०० द्वारा गुणा करनेसे ८८२०० गुणनफल होता है। पीछे उसमें पूर्वत्यक्त ३ संख्याका वर्गफल ९ योग करनेसे ८८२०९ वर्गफल पाया जाता है। इसी नियमसे सभी राशिका वर्गफल निकाला जा सकता है।

( स्त्रो० ) ८ अक्षरा विशेष। यह अक्षरा मुनिके शापसे प्राप्त हो गई थी। पाण्डु-पुत्र अर्जुनसे इसका उद्धार हुआ।

विलुप्त विवरण्य महाभारतके १।१२७ अध्यायमें देखा।

वर्गकर्मन् ( सं० स्त्रो० ) गणितोक्त वर्गफलनिर्णायक अङ्क-प्रक्रिया समाधानकार्य।

वर्गचर ( सं० पु० ) पाठोनमत्स्य, पढ़ना या पहिना मछली।

वर्गघन ( सं० स्त्रो० ) किसी वर्गराशिका घनफल।

वर्गघनघात ( सं० पु० ) अङ्कशास्त्रोक्त राशिका पाँचवाँ वर्गघात ( Fifth power )।

वर्गणा ( सं० स्त्रो० ) गुणन, घात। ( Multiplication )

वर्गपद् ( सं० स्त्रो० ) यह अंक जिसके घातसे कोई वर्गाङ्क बना हो, वर्गमूल। ( Square-root )

वर्गपाल ( सं० पु० ) दलरक्षक, पालियोंका नायक।

वर्गप्रकृति ( सं० स्त्रो० ) गणितके अनुसार अङ्कप्रक्रिया-विशेष। ( an affected square in arithmetic )

वर्गप्रथम ( सं० पु० ) कादि वर्गका प्रथम-वर्ण।

वर्गप्रशंसित् ( सं० स्त्रो० ) अपने अपने दलकी प्रशंसा करनेवाला।

वर्गफल ( सं० स्त्रो० ) वह गुणनफल जो दो समान राशियोंके घातसे प्राप्त हो, वह अंक जो किसी अंकको उभो अंकके साथ गुणा करनेसे आये। जैसे—५का वर्गमूल २५ होता है।

वर्गमूल ( सं० स्त्रो० ) वर्गस्य समानाङ्कद्वयस्य मूल आधाङ्कः। किसी वर्गाङ्कका वह अंक जिसे यदि उसीसे गुणन करे, तो गुणन यही वर्गाङ्क हो। जैसे—२ वर्गमूल ४ का है और ३ वर्गमूल ९ का।

बङ्गुरैजोमें इसे Square-root कहते हैं। किसी संख्याका वर्गमूल इस  $\sqrt{\quad}$  चिह्नसे प्रकट किया जाता है। यह चिह्न उसके पहले रखा जाता है।

उस संख्याको जिसका वर्गमूल पूर्णाङ्क राशि वा भिन्न द्वारा ठीक प्रकट किया जा सके पूर्णवर्ग कहते हैं। इस बात पर ध्यान रखना चाहिये, कि जिस संख्याके अन्तमें २ या ३ या ७ या ८ हों वह संख्या पूर्णाङ्क ही वा दशमलव, वह पूर्णवर्ग नहीं होगी।

जब किसी पूर्णाङ्क राशिका, जो पूर्णवर्ग है वर्गमूल २०से अधिक न हो, तो उसको गुणनपाटी द्वारा जान सकते हैं; जैसे—पाटीसे हम जानते हैं, कि ८१ का वर्गमूल ९ है; १६६ का १३ है; परन्तु एक नियम है जिसके द्वारा किसी संख्याका जिसमें २से अधिक अङ्क हों वर्गमूल निकाल सकते हैं।

अब कल्पना करो, कि हमको ३७३६ का वर्गमूल निकालना होता है। प्रथम इकाईके अङ्कस धारम्भ करके प्रत्येक दूसरे अङ्कके ऊपर चिन्नु रखते जाओ, इस प्रकार संख्याको दो दो अङ्कोंके अंशोंमें बाँट लो।

$$\begin{array}{r} ३१\ ३६\ (५६ \\ \underline{३५} \end{array}$$

$$\begin{array}{r} १०६\ )\ ६३६ \\ \underline{६३६} \end{array}$$

फिर यह विदित होता है, कि सबसे बड़ी संख्या ५० है जिसका वर्ग पहले अंशमें सम्मिलित है, यह वर्गमूलका पहला अङ्क है, इस ५ के वर्ग २५ को पहले अंशमें घटाओ और शेष ६ पर दूसरे अंशको उतारो । १३१

प्रकार नया भाज्य ६३६ हो गया। फिर इस संख्या के अन्तिम अङ्कको छोड़ कर उसे इस निकले हुए वर्ग-मूलके दूनेसे भाग दो और भागफल ६ को निकले हुए वर्गमूलको दाहिनी ओर रखो और जांच भाजक १०में लगा दो जो १०६ हो गया। फिर भाजक १०६को वर्गमूलके उस अङ्कमें जो पीछे रखा है गुणा करो। जब इस गुणनफलको ६३६मेंसे घटानेसे शेष कुछ नहीं रहता है, इससे हात हुआ कि ५६ वर्गमूल ३१३६ का है।

यदि अधिक अंश उतारने हों, तो पूर्ण विधिके अनुसार क्रिया करते जाओ जैसे अगले उदाहरणमें की गई है।

	१'५६'२५' ( १२५	इसमें जब दो अङ्क वर्गमूलमें
	१	निकल आये तो शेष १२ रह
२२)	५६	गये। इसमें तीसरे अंश-
	४४	को मिलानेसे १२२५ भाज्य
	१२२५	बन गया।
२४५)	१२२५	
	१२२५	

इस संख्याके दाहिने अन्तिम अङ्कको छोड़ कर प्रथम निकले हुए मूलके दुगने ले भाग दो ( अर्थात् १२२को २४ से) ५ भागफल निकला। फिर ५को वर्गमूल और जांच भाजक दोनों ओरको रख दो, इत्यादि।

भाग द्वारा वर्गमूलके दूमरे अङ्क निकालनेमें कभी ऐसा भागफल प्राप्त होता है जो ठीक उत्तरसे कहीं अधिक होता है। ऐसी हालतमें वर्गमूलका अङ्क जांचसे प्रतीत होता है।

जब जांच भाजक उम संख्यासे बड़ा हो जिसको इसमें भाग देना है ( या जब भागफल १ हो, परन्तु उत्तर अधिक हो जाय ) तो वर्गमूलमें शून्य वड़ा देत हैं और दूमरे अंशको उतार लेते हैं तथा साधारण रीतिसे क्रिया करते हैं।

दशमलव मिश्रका वर्गमूल निकालनेकी रीति—दशमलव मिश्रके वर्गमूल निकालनेमें वही क्रिया की जाती है, जो पूर्ण राशिके वर्गमूल निकालनेमें। विन्दु रखनेमें पहला विन्दु इकाईके अङ्क पर रखना चाहिये या रखा हुआ कल्पना कर लेना चाहिये। वर्गमूलमें दशमलवके विन्दु

पूर्णाङ्क भागके वर्गमूलके पश्चात् हो रख देना चाहिये। यह हात होगा, कि यदि किसी दशमलवका वर्ग निकाला जाय, तो फलमें दशमलव स्थानोंको संख्या सम होगी। इस कारण दशमलव मिश्रमें वर्गराशि होनेके लिये दशमलव स्थानोंको समसंख्या होनी चाहिये और वर्गमूलमें दशमलव स्थानोंको संख्या वर्गसंख्यासे भागो होनी चाहिये।

यदि दो हुई दशमलव मिश्र पूरी वर्गराशि न हो, तो वर्गमूल अनन्त दशमलव होगा और वर्गमूल जितने दशमलव अङ्को तक चाहे निकाला जा सकता है।

दशमलवके वर्गमूल निकालनेमें दशमलव अङ्कोको संख्या सम होना चाहिये और यदि आवश्यकता हा तो शून्य वड़ा देना चाहिये।

वर्गमूलधन (सं० क्ली०) सजातीयानुक्रमस्य घातः घनः। सजातीय तीन अङ्कोंका परस्पर गुणनफल अथवा किसी एक राशिके वर्गफलके साथ उस राशि द्वारा फिर गुणन। इसीको मूलराशिका घनफल ( Cubic root ) कहते हैं। लोलायतीमें यह घनमूल प्रकरण स्वतन्त्र है। इसका करणसूत्र त्रिवृत्तात्मक है।

६, २७, १२५ इन तीन राशियोंके यथाक्रम गुणन द्वारा घनफल ७२६, १६६८३ और १६५३१२५ होता है। अथवा ६ राशिको ४ और ५ खण्ड मान कर हिसाब करनेसे दूमरे उपायसे यह सिद्ध होना है। अर्थात् ६ तथा ४ और ५ राशि, इन तानों राशियोंका परस्पर गुणनफल १८० होता है। इसका त्रिगुना ५४० हुआ। दोनों खण्ड राशियोंसे एक एककी घन समष्टि = ४ × ४ × ४ = ६४, ५ × ५ × ५ = १२५, ६४ + १२५ = १८९। दोनों लघ्व राशिका योगफल ५४० + १८९ = ७२९। यहा ६ राशिका घनफल है। अथवा २७ राशिका खण्ड २० और ७ होता है। इनका परस्पर गुणनफल तथा त्रिगुन संख्या २७ × २० × ७ = ३७८० × ३ = ११३५०, दोनों खण्डराशिके घनफलकी समष्टि—२० × २० × २० = ८००० + ७ × ७ × ७ = ३४३ = ८३४३। इस घनसमांष्टि तथा पूर्वांक राशिका योगफल ११३४० + ८३४३ = १२१७४३ है।

अथवा ४ राशि—इसका वर्गमूल २ और घनफल ८ होता है। इनका स्वप्न सर्वात् परस्परके गुणनफलका ४

गुणा = ६४ घर्ग राजिका घनफल होता है। इस प्रकार  
६ राजि—इसका मूल ३ और घन २७ है। इसका वर्ग—  
६ का घन ७२६ अर्थात्  $३ \times २७ \times ६ = ७२६$ । इससे जान  
पड़ता है, कि जो घर्ग राजिघन है, वही घर्ग मूलघन घर्ग =  
 $३ \times ३ \times ३ = २७ \times २७ = ७२६$  घनमूल निकालनेके लिये  
करणवृत्त दिव्यत भी है। घन और घनमूल कल्प देवो।

वर्गालाना (फा० फि०) १ कोई काम करनेके लिये उभारना,  
उकसाना। २ बहाना, फुमलाना।

वर्गवर्ग (सं० पु०) वर्गीका वर्गफल (Biquadratic  
number)।

वर्गशस् (सं० अर्थ०) दल दलमें।

वर्गस्थ (सं० त्रि०) दृष्ट मध्यस्थ, स्वदशानुरक्त।

वर्गा (वर्गाह, वर्गादि)—उत्तर-पश्चिम भागकी एक नोच  
जाति। इस जातिके लोग खास कर राजपूतोंके यहां  
नोकरी करके अपनी जायिका चलाते हैं। इस जातिकी  
रमणिया ओ गृहस्थोंके परिवारमें विशेषतः राजपूत  
सदांगिके घर राजकुमारोंकी धाय बन कर बास करते व  
एवं अपने स्तनका दूध पिना कर उनका लालन पालन  
करते हैं। इस जातिके लोग अपनेको कर्नोजके आदि-  
नियामो यताने हैं। उनका कहना है कि, वे गहरवाड़  
राजपूतोंके साथ आदिनिवासस्थान परित्याग कर कई  
स्थानोंमें जा बसे हैं। ये ग्वाल, बहोर आदिके सम्यग्जो  
गिने जाते हैं।

ये अपनी जातिके अन्दर ही आदान प्रदान करते हैं।  
गोल विभाग न रहनेके कारण पिंडश्रेणी होनेकी सम्भा-  
वना रहती है। इसलिये ये लोग कई पुरुषे याद दे कर  
वर्षान् जितने दिनों तक किसी परिवारकी पूर्व आतमीयता  
को स्मृति यिलुप्त नहीं हो जाती है, उतने दिनों तक ये  
लोग उस परिवारमें अपने लड़के लड़कियोंका विवाह  
नहीं करते। उनकी विवाह-प्रथा साधारण हिन्दुओंकी  
तरह ही होती है। इन लोगोंमें पूर्ण यौवनप्राप्त लड़के  
लड़कियोंका विवाह होता है। तीन दिनों तक विवाह-  
का उदमय मनाया जाता है। श्लोघ दिन चरके यहाँसे  
बरात सजधम कर कन्याके घरकी ओट यात्रा करती है।

घरके घर आने पर कन्याके आतमीयजन शुभमन्त्रमें  
घर और कन्याके मण्डप नामक छत्रके नीचे बैठते हैं।

इसके बाद कन्याके पिता आते हैं, और घरके पाँचों पर  
एाघ रख कर कन्या सम्प्रदानका अनुरोध करते हैं एवं  
दानके दक्षिणास्वरूप जामाताके हाथमें एक फल देते हैं।  
इसके पश्चात् घर तथा कन्याके चखोंके खुँटोंका भेड़  
बन्धन करते हैं एवं घर और कन्या मण्डपके चारों ओर  
भात बार घूमते हैं। इसके बाद कन्याके पिता घरके  
ललाटमें हल्दी और चावल छुलाते हैं। इसके उपरान्त  
जामाता तथा कन्याके कोहबर घरमें ले जाते हैं।  
यहां बहुत-सी दूसरी दूसरी रमणियां उपस्थित  
रहती हैं। ये घरके साथ नाना प्रकारके हाम परिहास  
करती हैं। इस जातिमें विधवा तथा देवर-विवाहकी  
प्रथा नहीं है। महावीर और पाँचपीर इनके प्रधान  
उपास्य देव हैं। इस जातिके बहुतसे लोग कृषिकार्य  
करके अपनी जीविका चलाते हैं।

वर्गाइयाँ—राजपूत जातिकी एक शाखा। राजीपुरमें इन-  
लोगोंका वासस्थान है। ये लोग अपनेको मैनपुरी जिला-  
वासी चोहान जातिकी एक दूसरी शाखा बतलाते हैं।  
वर्गाला—मुल्तानगहर जिलावासी राजपूत जातिकी एक  
शाखा। ये लोग अपनेको चन्द्रवंशो बताते हैं।  
इस जातिके अन्दर विधवा-विवाहकी प्रथा है। इस  
कारण ये लोग अपनेको गौड़िया जातिकी समझेनी  
कहते हैं। इन लोगोंका कहना है, कि ये लोग दिग्पाल  
तथा भट्टिपालके वंशधर हैं। इनके वंशतिहासमें लिखा  
है कि, ये दोनों भाई इन्दीरसे मालया जा कर बस गये।  
जिस समय महामद गोरोंने पृथ्वीराज पर आक्रमण  
किया था, उस समय इन दोनों भाइयोंने दिल्लीको सेनाओं  
के अधिनायक बन रणक्षेत्रमें बड़ी गौराके साथ युद्ध  
क्रिया था। सम्राट् भीरगजेदके राज्यकालमें इन जाति-  
के बहुतसे लोगोंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

वर्गिन् (सं० वि०) दलभुक्त।

वर्गी—मथुराके आम पास रहनेवाली एक जाति। इस  
जातिके लोग दासदृष्टि, कृषि मधया जंगला पशुओंका  
शिकार कर अपनी जीविका चलाने हैं।

वर्गीण (सं० वि०) दलभुक्त, वंशजगण।

वर्गीय (सं० वि०) वर्गसम्यग्धोय। जैसे,—कवर्गीय,  
चवर्गीय आदि।

वर्गोत्तम ( सं० पु० ) वर्गेषु उत्तमः । फलित ज्योतिषमें राशियोंके वे श्रेष्ठ अंश जिनमें स्थित ग्रह शुभ होने हैं । चरराशि ( मेष, कर्कट, तुला, मकर )का प्रथम अंश, स्थिर राशि ( वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ )का पञ्चम अंश और घातक राशि ( मिथुन, कन्या, घनु, मीन )का नवम अंश वर्गोत्तम कहा जाता है । इसके अतिरिक्त राशियोंका नवांश भी वर्गोत्तम कहा जाता है ।

वर्ध ( सं० लि० ) १ वर्गसम्बन्धीय । ( पु० ) २ सभाका सभ्य, सहयोगी ।

वर्चटी ( सं० स्त्री० ) १ घान्त्वमेद् । २ वेद्या, रंडी ।

वर्चस् ( सं० क्ली० ) वर्चते इति वर्च ( धर्मात्प्रभ्योऽसुव ।

उष् ४।१८८ ) इति असुव् । १ रूप । २ विष्ठा । ३ तेज ।

४ अन्न । ( पु० ) ५ चन्द्रमाके पुत्र ।

वर्चस्क ( सं० पु० क्ली० ) वर्चस् स्वार्थे कन् । १ विष्ठा । २ दीप्ति, तेज ।

वर्चःस्थान ( सं० पु० ) पाषाणा ।

वर्चस्य ( सं० लि० ) वर्चसे द्वितं दत् । तेजवर्द्धक ।

वर्चखत् ( सं० लि० ) १ जीवशाक्तसम्पन्न । २ समुज्ज्वल तेजवान् ।

वर्चस्विन् ( सं० पु० ) वर्चोऽस्यास्तीति वर्चस् ( असमाया-  
मेधेति । पा ५।२।२१ ) इति विनि । १ चन्द्रमा । ( लि० )

२ तेजस्वी, दीप्तियुक्त ।

वर्चिन् ( सं० पु० ) ऋग्वेदके अनुसार एक असुरका नाम ।

इन्द्रने इसे समूल संहार किया था । ( ऋ० २।१४।६ )

फिर ऋग्वेदमें ( ७।६।५ ) दूसरी जगद लिखा है, कि  
इन्द्र और विष्णुने इसे निहत् किया था ।

वर्चोमह ( सं० पु० ) मलरोध ।

वर्चोदा ( सं० लि० ) शाक्ति, बल देनेवाला ।

वर्जक ( सं० लि० ) वर्जयतीति वृज-ण्डुल् । वर्जनकारी,  
त्याग करनेवाला ।

वर्जन ( सं० क्ली० ) वृज ल्युट् । १ त्याग, छोड़ना । २ हिंसा,  
मारण । ३ ग्रहण या आचरणका निषेध, मनाहो, मुमा-  
नियत ।

वर्जनीय ( सं० लि० ) वृज-अनीयर् । १ वर्जनयोग्य, छोड़ने  
योग्य, न ग्रहण करने योग्य, त्याज्य । २ निषेधके योग्य,  
निषिद्ध, मना ।

राजाका अन्न, नर्तकका अन्न, वदरका अन्न, कुम्हारका  
अन्न, गणान्न, वेद्याका जन्त एवं शूद्रका अन्न वर्जनी-  
नीय हैं ।

मनुसंहितामें लिखा है कि उद्य या अस्त अवस्था-  
में सूर्यका दर्शन वर्जनीय है । राहुप्रस्त सूर्य, जल-  
प्रतिबिम्बित सूर्य एवं आकाशमण्डलके मध्यगत सूर्यका  
दर्शन नहीं करना चाहिये । बछड़ा बांधनेकी रस्सीको  
लांघना, वर्षाके समय दांडू कर रात्ना चलना एवं जलमें  
अपना छाया देवना त्याज्य है । कामपोड़ित होने पर भी  
रजस्वला स्त्रोके साथ दिनमें सहवास करना ;  
भोजन करती हुई रजस्वला स्त्रीका दर्शन करना , अट्ट-  
हास करते समय, आह भरते समय एवं असावधान  
पैठो हुई माट्यांकी ओर लक्ष्य करना, आँखोंमें कज्जल  
प्रदान करते समय, देहमें तेल लगाते समय, सन्तान  
प्रसव करते समय स्त्री पर दृष्टिनिक्षेप करना पाप है ।  
एक वस्त्र पहन कर अन्नभोजन ; नंगी स्नान ; रास्ते  
पर, भस्मके ऊपर, गोचरभूमिमें, हल जाते हुए खेतमें,  
जलमें, अनिमं, श्मशानस्थ चिताओंमें, पर्वतों पर, पुराने  
मन्दिरोंमें, कीड़े द्वारा लगाये हुए मिट्टीके ढेर पर, जिन  
थिलोंमें जीवोंका वास हो, उनके अन्दर मूत्रत्याग करना  
निषेध है । चलते चलते खड़े होकर अनि, ग्राहण,  
सूर्य, जल और देखते हुए पेशाब नहीं करना चाहिये ।  
मुखसे फूँक मार कर अनि प्रज्वलित करना, भार्याको  
नंगी देखना तथा अनिमं अपवित्र वस्तु डालना वर्जनी-  
नीय है । पाँव पसार कर भाग तापना नहीं चाहिये ।  
शय्याके नोचे आग रखना निषिद्ध है । जिस कार्यके  
करनेसे आत्माको आघात पहुँचे, उसे करना उचित  
नहीं । सन्ध्याके समय भोजन करना, भूमण करना  
एवं जपन करना पाप है । पृथ्वी पर रेखा नहीं  
खींचनी चाहिये । मलमूत्रादिसे लिप्त वस्त्रोंका पहनना,  
वासशून्यगृहमें शकेला, शयन करना, श्रेष्ठ पुण्योंकी  
निद्रावस्थामें जगाना, रजस्वला स्त्रोके साथ हातचीत  
करना तथा बिना निमन्त्रणके यज्ञशालामें जाना  
निषेध है ।

जल या दुग्धपान करते समय गायको हाँकना पाप  
है । जिस प्राममें विधर्मियोंकी संख्या अधिक हो उस

प्राप्तमें बास करना निषिद्ध है। जिस स्थानके लोग बहुत दिनोंसे किसी रोगमें आक्रांत हो, उस स्थान पर भी बास करना उचित नहीं। अधिक अधिक दूरको जाता करना, अधिक समय तक घात पर बास करना, शूद्रके अपोन राज्यमें बसना एवं नास्तिकोंके द्वारा आक्रांत देशमें बसना निषेध है। जिस सब पदार्थोंका स्नान निकाल लिया गया हो, उनका भोजन तथा स्नान प्रातःकाल या सन्ध्याकालमें भोजन करना वर्जनीय है। जिस कार्यके करनेसे किसी तरहका फल न निकले, उस कार्यका करना मना है। अंजलि द्वारा पानी पीना तथा जंघे पर रख कर कोई वस्तु भोजन करना वर्जनीय है। बिना प्रयोजनके अधिक उतावला न होना चाहिये।

शास्त्रविद्वद्गान्धर्वान् करना निषेध है। कांक्ष वज्रानां वा ऊपर दृष्टे लो रक्ष कर ध्यनि करना, द्वांत विटकिटना, अश्या गधेको तरह चिह्नाना निषिद्ध है। कांक्षिके वर्तनमें पाँव धोना, टूटे फूटे वर्तनोंमें भोजन करना वर्जनीय है। दूधरेके व्यवहार किये हुए जूते, कपड़े, जूनेऊ, माला तथा अलंकार नहीं पहनना चाहिये। बद्माश, भूषे, रोगा, टूटे हुए सिंघयाले, अंधे, या फटे चुग्याले किसी भी पशु पर सवारी नहीं करनी चाहिये। प्रथमोदित सूर्यको धूप, चिताका धुआँ और टूटे फटे आसनको परित्याग करना चाहिये। अपने हाथमें नख या बाल काटना तथा दानोंसे नख कुतरना दोष माना गया है। मिट्टी या ढेलेका स्पर्श महीन करना, नख द्वारा तृण खोदना निष्कृत कार्य करना एवं जिस कार्यके करनेसे अधिकमें दुःख प्राप्त होनेकी सम्भावना हो, उसे करना पाप बताया गया है। कथा लौकिक, कथा शास्त्रीय किसी तरहकी बात सौगन्ध या कर नहीं कहनी चाहिये। गलेका माला चादर आदि किसी कपड़ेके ऊपर पहनना, गो या बैलकी पीठ पर सवारी करना, विद्यारोसे विदे हुए प्राप्त या धरमें दरयाजिको छोड़ कर दूसरो ओरमें प्रवेश करना, रात्रिके समय पुरोके नीचे सोना, बैठना या गमनागमन करना, व्यवहार विदे हुए जूतेकी हाथमें ले कर रास्ता चलना, शय्या पर बैठ कर भोजन करना, रात्रिके समय तिल वा तिल

दे कर तैयार किये हुए पदार्थोंका भोजन करना, गो सोना एवं जुड़े मुन कहीं जाना वर्जनीय है।

पतित, चंडाल, पुण्ड्र, मूर्ख, धनके मदमें मत्त तथा घोषी आदि नीच जातिके लोगोंके साथ ब्राह्मणोंको एक क्षणके लिये भी नहीं बैठना चाहिये।

वर्जनीयजन—मत्त, क्रुद्ध तथा रोगी व्यक्तियोंका भजन नहीं खाना चाहिये। फेशकीटादियुक्त भजन, इन्ध्या-नुमार पाँचसे स्पर्श किया हुआ भजन, चूणपात्रोंका देना हुआ भजन, रजस्वला स्त्री द्वारा हुआ हुआ भजन, पक्षियोंका पाय हुआ भजन, कुत्तोंमें हुआ भजन, गायका हुआ हुआ भजन, आगन्तुकोंके लिये तैयार किया हुआ भजन, मत्तवा सेयोंका भजन, वैश्याका भजन, इन सब प्रकारके भजनोंका भोजन करना निषेध है। इनके अतिरिक्त चोर, गधैया, यद्द, सूरसे जोषका चलानेवाला, इन सबके भजन, कजूसका भजन, महापातकी, दिग्गुहा, व्यक्तिचित्तो स्त्री तथा दोंगोंका भजन, ये सब भजन त्याज्य हैं। शमी भजन, शूद्रका भजन, निर्द्वेष्टका भजन, जूठा भजन, वैयस्य भजन, व्याधका भजन, जूठानानेवालेका भजन, निष्ठुर कर्मचारीका भजन, अशौचाग्न, ये सब भजन कदापि भोजन नहीं करना चाहिये। पतिपुत्रविहीन स्त्रीका भजन, द्वेषकारीका भजन, शत्रुका भजन, पतित व्यक्तिका भजन, जो आदमी पराक्षमें दूसरेको निन्दा करता है, जो भूखी गयाही देता है, जो धनके लालचमें पक्षमें विचर करता है, उनका भजन; नटशूद्रपुण्ययोगीका भजन; दर्जी, कृत्तव, लोहार, निपाद, रंगरेज, सोनार, वाँस फाँवनेवाला, लोहेका व्यापारी, कुत्ता पालनेवाला, जौहड़क, पहाधारक तथा निष्ठुर व्यक्तिोंका भजन नहीं खाना चाहिये। जिस पुत्रकी स्त्री उपपत्ति रखती है, उसका भजन वर्जनीय है। (मनु० ४।१५ म०)

वर्जितव्य (सं० पु०) वृत्त णिच्-तव्य । वर्जनीय, छोड़नेके योग्य।

वर्जयित् (सं० त्रि०) वृत्त णिच्-त्त्त् । परार्थकारी, त्यागनेवाला।

वर्जित (सं० लि०) वृत्त क् । १ त्यक्त, रवांगा हुआ, छोड़ा हुआ। २ जो प्रहणके अवोप्य ठहराया गया हो, निर्जित। जैसे कलिमें निवोग वर्जित है।

वर्जिन (सं० त्रि०) त्यज्य, त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ ।  
वर्ज्य (सं० त्रि०) वृज-ण्यत् । वर्जनीय, छोड़नेके लायक ।  
वर्ण (सं० क्ली०) वर्णयतीति वर्ण-ञच् । कुंकुम,  
बेसर ।

वर्ण (सं० पु०) विभक्ते (इति वृ कृन्वृष्टिद्विगुणव्यनिस-  
पिभ्यो णित् । उण् ३।१०) स च णित् । १ जाति ।

जाति चार है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । इन  
चार वर्णों वा चार जातियोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वेदमें  
इस प्रकार लिखा है,—जय भगवान् पुण्यरूपमें सृष्टि  
करनेकी तीव्रता हुए, तब उनके शरीरसे चार वर्णोंकी  
उत्पत्ति हुई । भगवान्के मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय,  
ऊरुसे वैश्य और पादसे शूद्र उत्पन्न हुए थे ।

शास्त्रमें इन चार वर्णोंका पृथक् पृथक् धर्मबर्ण  
बतलाया है । ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णोंकी शास्त्रके  
आदेशसे चलना होता है ।

भगवान् मनुने चारों वर्णोंका पृथक् पृथक् कर्म  
निर्दिष्ट किया है—ब्राह्मणका धर्म अध्ययन,  
अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह । क्षत्रियका  
धर्म—प्रजारक्षा, दान, यज्ञानुष्ठान, अध्ययन तथा नृत्य  
गोत और वनितोपभोगादिमें आत्यन्तिक अनासक्ति ।  
वैश्यका धर्म—पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य,  
कुसीदवृत्ति और कृषिकर्म । शूद्रका धर्म—असुयोहोने  
हो कर उक्त तीनों वर्णोंकी श्रुत्या ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णोंकी शास्त्र-  
शासनमें यथाविधि आश्रमी होना पड़ता है । उनमें-  
से ब्राह्मणके आश्रम चार हैं, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य,  
वानप्रस्थ और संन्यास । उपनयनके बाद जितेन्द्रिय हो  
कर गुरुगृहमें वास और सगुरुवेदका अध्ययन करना होता  
है, इसीका नाम ब्रह्मचर्याश्रम है । वेदाध्ययन समाप्त  
करके विवाह करनेके बाद स्वधर्माचरणपुरोसर गृहस्थ  
होना पड़ता है । इस आश्रमका नाम गार्हस्थ्य है ।  
अनन्तर पुत्रोत्पादनके बाद वनमें वास करना, अष्टएष्य  
फलादि खाना और ईश्वरकी आराधना करना, यही हुआ  
वानप्रस्थाश्रम । इसके बाद शूद्रादि सभी वस्तुओंका  
परित्याग कर मुण्डित मस्तक पर गैरिक कपोल बांध  
कर दण्डकमण्डलु ले कर मिक्षाशुचिका अवलम्बन,

वनप्रदेशमें वा तीर्थादिमें वास तथा पद्ममात्र परमेश्वरकी  
आराधना । इसीका नाम संन्यास आश्रम है ।

द्वितीय और तृतीय वर्ण क्षत्रिय और वैश्य है । इनके  
लिये शेषोक्त संन्यास आश्रमकी छोड़ कर प्रथमोक्त ब्रह्म-  
चर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ ये तीनों ही आश्रम प्रशस्त  
हैं । एतन्निष्ठ शूद्रके लिये केवल गृहस्थाश्रम ही बत-  
लाया गया है । दूसरे किसी भी आश्रममें शूद्रका अधि-  
कार नहीं है ।

ईश्वरकी आराधना करना सभी वर्णोंका सभी  
आश्रमोंका साधारण धर्म है । इनमेंसे जो विष्णुके उपा-  
सक हैं वे वैष्णव, शिवोपासक शैव, दुर्गा प्रभृति शक्ति-  
साधक शाक्त, सूर्यापासक सौर तथा गणेशोपासक  
गाणपत्य नामसे प्रसिद्ध हैं । यह पौराणिक मत है ।

चार वर्णोंके विभिन्न कर्म सम्बन्धमें विष्णुपुराणमें  
कहा है, कि ब्राह्मण दान करें, वेदाध्ययनपरायण हों  
तथा यज्ञादि द्वारा देवताओंकी अर्चना करें । ब्राह्मणकी  
नित्योदको होना पड़ेगा तथा अग्निपरिग्रह करना होगा ।  
जीविकाके लिये वे याजन और अध्यापन करें तथा जिस  
व्यक्तिने वैध उपायसे धन उपार्जन किया है । उसीसे  
न्यायतः प्रतिग्रह लेंगे । ब्राह्मण सर्वोके उपकारी बने,  
कमी भी किसीका अहित वा अनिष्टाचरण न करें । सब  
भूतों पर मैत्रीस्थापन करना ही ब्राह्मणका परम धर्म है ।  
दूसरेके पदपर अथवा रत्न दोनों ही वस्तुके समान  
समर्पें । ऋतुकालमें पत्नीगमन करें ।

ब्राह्मण उपनीत हो कर वेदाभ्यासमें तत्पर होंगे ।  
इस समय उन्हें ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर एकाग्रमनसे  
गुरुगृहमें वास करना होगा । इस समय वे शौच और  
आचारवान् हो कर गुरुकी श्रुत्या करें तथा नियमस्थ  
हो कर पवित्र बुद्धिसे वेद पढ़ें । दोनों ही ग्राम समा-  
हित हो कर अग्नि और सूर्यकी उपासना तथा गुरुको  
अभियादन करना होगा । गुरु यदि खड़े हों, तो आप  
भी खड़े हो जाँय, यदि वे बैठें, तो आप भी निम्नासन  
पर बैठ जायें । कमी भी गुरुके प्रतिकुलाचरण न करें ।  
गुरुके आदेशसे गुरुकी ओर बैठ कर अनन्यचित्तसे वेद-  
पाठ करें । उनकी अनुमति ले कर मिक्षान्न भक्षण करें ।  
आचार्यके स्नान करने पर पीछे आप स्नान करें । गुरु-



इस प्रश्नके उत्तरमें नारदने कहा था, 'राजन्! वर्णों-में कुछ विधेयता नहीं है। यह समस्त जगत् ब्रह्मण्य है। ब्रह्मा सर्वोंके सृष्टिकर्ता है। ब्रह्मसृष्ट सभी एक ब्राह्मण हैं, परन्तु कर्मानुसार एक एक सम्प्रदाय एक एक वर्ण हो गया है। जो स्वयं ब्राह्मण स्वधर्मका परित्याग कर कामभोगमें रत रहते थे, जिनका स्वभाव कठोर था, जो क्रोधो, प्रियमाहसी और लोहिताङ्ग थे, वे ही क्षत्रिय हुए थे। जो हृषिकर्ममें लित रह कर उसीसे जीविका चलाते लगे, यथादि पशुपालनमें आसक्त हुए, जिन्होंने स्वधर्मका परित्याग किया, जिनका शरीर पीतवर्णका था, उन्हींको वैश्वजातिमें गिनती हुई थी। फिर जिन्होंने हिंसा और अस्वल्पका आश्रय लिया, जो कित्ती भी कर्मसे जीविका निर्वाह करने लगे, जिन्होंने जीवाचार त्याग किया तथा जो अत्यन्त लुम्बस्वभावके हो उठे, जिनका वर्ण कृष्ण था, वे क्षत्रिज होते हुए सभी शूद्र कहलाये।

इस प्रकार कर्मानुसार ब्राह्मण ही विभिन्न वर्णोंमें विभक्त हुए। चारों वर्णोंके लिये ही वेदवाणी कही गई थी। लोभ और क्षणममें पड़ कर बहुतेरे उस ब्राह्मी वाणीको लो दिया था। जो धर्मतन्त्रमें एकान्त आसक्त थे, वे ब्राह्मी वाणीकी भूले नहीं तथा जो वेदावलम्बन वेदवोधित नित्य नीमित्तिक प्रतनियम और शौच संदा-चारादि साधुसेवित पथमें रह कर ब्रह्मस्वपद देवप्रति-पाद्य परब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हुए थे, वे ही ब्राह्मण हुए।

नारदने भाष्यताताके प्रश्नोत्तरमें चारों वर्णोंकी इस प्रकार लक्षण बतलाये, जैसे—जो ज्ञातकर्मादि वन प्रकारके संस्कारसे संस्कृत हैं, जो शुचि और वेदाध्ययन-सम्पन्न हैं, जो जीवाचारमें रत रह कर यज्ञ वाजनादि पट्कर्मोंमें अवलियत हैं, जो नित्य मुमुक्षु, नित्यमनो और सत्यरत हैं, वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं। सत्य, दान, दानुगन्ध, अद्रोह, हृषा, घृणा और तपस्या वे सब जिनके निकट मघंदा विद्यमान हैं, उन्हींको ब्राह्मण कहते हैं।

जो वेदाध्ययन ममाप्त करके क्षत्रियोचित कर्मोंका संप्रदाय किया करते हैं, जो दान नहीं लेते, पर दान देने ही उन्हे क्षत्रिय कहते हैं। जो पवित्र भाषणमें वेदाध्ययन

समाप्त करके पशुपालन और हृषिकर्मोंमें रत हैं, उन्हींका नाम वैश्य है।

जिन्हें खाद्य भ्रष्टाचारका कोई विचार नहीं है, जो चारों विध अवस्थायों रह कर जिस किसी कर्मसे जीविका निर्वाह करते हैं, जो वेदवर्जित हैं, सदाचारहीन हैं, वे ही शूद्र हैं। (मशामा० भीर पद्मपु० स्वर्गलपद०)

चतुर्वर्णोंके धर्मकर्म सम्बन्धीय विधि व्यवस्था मन्वादि स्मृतिसंहितामें तथा सभी पुराणोंमें सविस्तार वर्णित है, बहुत बड़ जानेके कारण उनका उल्लेख यहां पर नहीं किया गया। तरस्त्रिपुराणके ५६वें अध्यायमें, मार्कण्डेय-पुराणके महालसा उपाख्यानमें, कूर्मपुराणके २रे और ३रे अध्यायमें, पद्मपुराणके स्वर्गाखण्ड २५, २६ और २७वें अध्यायमें, वामनपुराणके १४वें तथा गरुडपुराणके ४६ वें अध्यायमें चतुर्वर्णोंका-विस्तृत विवरण देखा जाता है।

वर्ण (सं० पु०) १ गजचित्रकम्बल, द्राघोकी मूल। २ वर्ण-प्रवेणो, आस्तरण, परितोम। ३ कुप, कपरी, कंधा। ४ पद्मार्थोंके लाल, पोले आदिका भेद, रंग।

यह वर्णों या रंग अनेक प्रकारका होता है, जैसे—श्वेत पाण्डु, धूसर, कृष्ण, पीत, हरित, रक्त, शोण, महण, पाटल श्याम, घृन्न, पिङ्गल तथा कर्पूर। (अमर) सुखबोधके मतसे छठे महिनेमें गर्मस्थ बालकका वर्ण होता है।

४ यज्ञ, कीर्त्ति। ५ गुण। ६ मनुति। ७ स्वर्ण, सोना। ८ मत। वर्णते मिथते इति वर्णं घञ् (पु० ङी०) ९ भेद, प्रकार। १० गीतकर्म। ११ चित्र, तस घोर। १२ तालविशेष। १३ अङ्गुली। वर्णते मिथते भवेनेति वर्णं घञ्। १४ रूप। वर्णवति वर्णं-मघ्। १५ भक्षर। वर्णवते रज्यते इति वर्णं-घञ्। १६ विलेपन। १७ कुट्टु, म, फेसर।

वर्णों दो प्रकार होता है, ध्वन्यात्मक तथा सङ्ग्राहक। प्राणियोंके मूलाधारमें एक वर्ण ही है। यह वर्णों मानवी तरह कुण्डलीभूत है। यह संप्रदाय मूलाधारके मध्य कुण्डलीकारमें रहता है, इस कारण उनका कुण्डली नाम पड़ा है। कुण्डली चन्द्र सूर्य और अनेकद्विर्णों, द्वि-स्वार्तिज्ज्ज्वर्णोंमें अर्थात् भूतलपिमाग्रनामिका तथा पञ्चाङ्गदर्शनमें अर्थात् मानुषावर्णस्वरूपिणों है। यह

कुण्डलो सभी वर्णों में मिले कर मन्त्रमय जगत्को प्रकाश करती है। यह कुण्डलो शब्द और शब्दार्थ को प्रवासिनी तथा त्रिपुष्कर अर्थात् ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठके भेदसे तीन तीर्थ एवं उदात्त अनुदात्त प्रकृति स्वर-समाहारका प्रकाशक है। तन्त्रशास्त्र में कुण्डलो को परम देवता कहा है।

वक्षत्र और श्रोत्रपथ अपरिष्कार रहता है, इस कारण यह कुण्डलो जब अस्वष्ट वर्णों में अर्थात् अस्फुट ध्वनि में आलापादि करनेकी उद्यत होती है, तब मूलाधारमें आकर ध्वनित होता है तथा सुपुष्पा नाड़ी भी उस ध्वनिसे धार धार आलोडित होती रहती है।

पहले जो तन्त्रोक्त परदेवता कुण्डलोकी यात कही गई है, वह द्विचत्वारिंशद्वर्णों में मिल कर इस प्रकार क्रम-परम्परासे अक्षरसे ले कर सकार तक द्विचत्वारिंशदात्मक वर्णमालाका उद्गायन करती है। यह द्विचत्वारिंशदात्मक वर्णमाला ही भूतलिपि मन्त्र है। कुण्डलिनी सर्वशक्तियोगी और शब्दब्रह्मरूपिणी है। यह जिस क्रमसे वर्णमाला प्रसव करती है, वह इस प्रकार है, जैसे—पहले कुण्डलोसे शक्तिका विकाश, शक्तिसे ध्वनि, ध्वनिसे नाद, नादमें निरोधिका, निरोधिकासे अर्द्धन्दु, अर्द्धन्दुसे चिन्दु, चिन्दुसे अन्यान्य सभी उदपन्न होते हैं। समस्त अक्षरोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्धमें हो परम्परा इसी प्रकार है।

चिच्छक्ति-सत्त्वसम्बलित हो कर शब्दपदवाच्य होती है। यह फिर जब उस सत्त्वसम्बलित अवस्थामें आकाशमय हो कर रजोगुणसे अनुविद्ध होती है, तब ध्वनि शब्द कहलाती है। ध्वनि अक्षर अवस्थामें नमोगुणसे अनुविद्ध हो नादशब्दवाच्य होती है। यह अग्रकावस्था तमोगुणकी अधिकताके कारण निरोधिका शब्दमें पुकारी जाती है। यह निरोधिका फिर रत और मत दोनों गुणकी अधिकतासे अर्द्धन्दु ही जाती है। अलङ्कारकौस्तुभ और पद्यार्थादर्श आदि ग्रन्थोंमें लिखा है,—

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, अवस्थाभेदसे ये सब संज्ञासङ्केत हैं। वर्ण जब नादरूपमें मूलाधारसे पहले पहल उत्पन्न होता है, तब उसे परा कहते हैं। पीछे जब यह वर्ण नादरूपमें मूलाधारसे उठ कर क्रमशः हृदयगत होता है, तब यह पश्यन्ती है। इसके बाद जब

हृदयसे उठ कर क्रमशः बुद्धि या सङ्कल्पके साथ संयुक्त होता है, तब यह मध्यमा तथा उसके बाद बुद्धिसे उठ कर क्रमशः कण्ठगत हो मुञ्ज द्वारा अभिव्यक्त होता है, तब यह वैखरी है। यह वैखरी जब अवस्थापन्न नादसे हो पयन प्ररित होती है, तब वर्णसमूह सबोंके गोचरीभूत होते हैं। परा और पश्यन्ती दृशापन्न वर्ण योगियोंके प्रत्यक्ष होते हैं, दूसरेके पक्षमें यह प्रत्यक्ष होना असम्भव है।

व्याकरणके मतसे वर्णोंके उत्पत्तिस्थान आठ हैं। जैसे—हृदय, शिर, जिह्वा, दन्त, नासिका, दोनों ओष्ठ और तालु। इनमेंसे अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग (ः), इन सब वर्णोंका उच्चारणस्थान कण्ठ; इ, च, छ, ज, झ, ञ, य, श, इनका उच्चारणस्थान तालु; ऋ, ए, ठ, ड, ढ, ण, र, प, इनका उच्चारणस्थान मुहूर्त्ता; ल, लृ, त, थ, द, ध, न, ल, स, इनका उच्चारणस्थान दन्त; उ, ऊ, ए, फ, ब, भ, म और उपध्मानीय इत्यादिका उच्चारणस्थान ओष्ठ; 'व' दन्त और ओष्ठ, 'य' ऐ' कण्ठ और तालु तथा जिह्वा-मूलेयका उच्चारणस्थान जिह्वा-मूळ है।

प्रसञ्जसारके तृतीय पटलमें देहमध्यसे पच स वर्णों वा अक्षरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—वर्ण नमोर सञ्जालित शो सुपुष्पा नाडोके रन्ध्रके मध्यसे निकलते हैं। पीछे कण्ठादि स्थानको आलोडित कर वदन-विधरसे बाहर होते हैं। उद्य उन्मार्ग वायु उदात्त स्वर उत्पादन करती है। यह वायु नाभगत हो कर अनुदात्त तथा निर्धर्म भावमें जा कर स्वरित अक्षरकी उत्पादन करती है। इस प्रकार पञ्चाक्षर, एक, द्वि और तिस्रैष्यक मातामें सभी लिपियोंको सृष्टि हुई। यह ध्वजन हृदय, दीर्घ और प्लुत कहलाने लगे।

वर्णाभिधानमें अ से ह पर्यन्त प्रत्येक वर्णके स्वररूप और अर्थादिका विस्तृत विवरण लिखा है। 'अ' से 'ह' पर्यन्त प्रति वर्णकी उत्पत्ति, स्वररूप और अर्थादिका विवरण द्रिया गया है।

वर्णक ( सं० ह्री० ) वर्णवतीति वर्ण-पञ्चक । १ हरिताल, हरताल । २ अनुलेपन, उवटन । ३ चन्दन । ( पु० ) ४ विलेपन । वर्णयति नृत्यादौ विस्तारयति । ५ चरण । ६ माण्डल । ( पु० ख्री० ) वर्णानं रज्यतेऽनेनेति,

होती है। होनवर्षोंसे शास्त्रादि १५ होनतर वर्षों पैदा होते हैं। अगत्यागमनसे वर्षोंसंकरकी उत्पत्ति होती है। चारों वर्षोंसे षड्विंशत वर्षोंके मध्य सैरन्धी तथा मागध जातिसे राजाओंके प्रमाचन-कार्यस्य एवं उनके दिव्य अंग-रामवर्षण तथा रुनवादि द्वारा वासजोयन जातिकी सृष्टि होती है। मागध जाति द्वारा सैरन्धी योनिसे वागुरावन्ध जोयो भाषोपाय जाति उत्पन्न होती है। मागधोंसे वैदेह द्वारा मधकर मीरवद नामक पुत्र पैदा होने है। निपाद-जाति मद्र, अर्थात् मद्र नामक मत्स्योपजोयो तथा नौका-पजोयो दाग सन्तान पैदा करती है और चण्डाल इयपाक नामक मृत्युप राधांश्च श्मशानाधिकारी सन्तान उत्पन्न करता है। मागधी वागुरोपजोयो कूर घार पुत्र पैदा करते हैं, मांसविक्रय तथा मांस-संहार हो उनके प्रधान कार्य हैं। इनमें देव मांस तथा स्वाङ्कुर कहलाते हैं, बाकी देवके नाम क्षीद्र तथा सीगन्ध नामसे कथित है। इस तरहसे मागध जातिकी चारों वृत्तियाँ निहित की गई हैं। भाषोपायसे पाषोड, वैदेहसे मांसोपजोयो कूर, निपादसे अरधानगामी मद्रनाम एवं चण्डालसे अराभ्यगज भोजो पुकजजाति जन्म ग्रहण करता है, ये लोग मृतकको घस्त्रों ढकते एवं मित्र पात्रमें भोजन करते हैं। निपादों से वैदेह द्वारा छुद्र, अम्भ तथा आरण्यपशु-सोपाजोयो कीमार नामक चर्मकार ये तीन पुत्र पैदा होते हैं। ये लोग प्रामके बाहर बास करते हैं। निपादोंसे चर्मकार द्वारा कारावर तथा चण्डालसे देणुष्यवहारोपजोयो पांसुसोपाक जाति जन्म ग्रहण करती है। वैदेहोंसे निपाद द्वारा आदिण्टक नामक पुत्र पैदा होता है। चण्डाल द्वारा सोपाकसे चण्डालसम-व्यवहार-विशिष्ट पुत्र उत्पन्न होता है। निपादो चण्डाल द्वारा वाद्यवर्णोंके षड्विंशत श्मशानवासी अथवा पाषोय मंतान पैदा होती है। पशु मानुषजनिकम यज्ञतः ये सब संकरजाति उत्पन्न होती है, ये लोग प्रच्छन्नभावसे रहें या प्रकाश्यभावेसे, किन्तु अपने धर्म द्वारा ही पहचाने जाते हैं। शास्त्रोंमें ब्राह्मणभेद चारों वर्षोंका धर्म लिखा है, दूसरे दूसरे धर्म होने जातिवैधके मध्य किन्तोंके धर्मका नियम अथवा इच्छा नहीं है। प्रणव्यादि चारों वर्षोंमें अनुलोमजात ६ एवं विनेमजात ६, ये १२ प्रकारके संकीर्ण वर्णों पैदा

होते हैं, फिर इन १२ संकीर्ण वर्णोंसे २६ अनुलोमजात एवं २६ प्रतिलोमजात, इस तरहसे १२२ प्रकारके वर्णसंकर जातियाँ उत्पन्न होती हैं, फिर उनके अनुलोम तथा प्रतिलोमकी गणना द्वारा अन्त में १६ हो जाते हैं, अतएव इस समुदायके पहले कहे गये १५ भेदोंके मध्य अन्तर्भाव हो गया है, इसलिये सबको प्रतिसंख्या प्रदर्शित नहीं की गई है। स्वेच्छान्तरणसे अर्थात् जातिगत कीर्षे नियम न रहनेके कारण मनमाना समागम करनेसे साधु आदिके द्वारा उत्पन्न वाद्य वर्णसंकरजाति अपने अपने कर्मोंके अनुसार जीविका और जाति प्राप्त करती है। ये लोग चतुष्टय, श्मशान, पर्यंत तथा दूसरी दूसरी बन्ध-तियोंके निकट वास और नियत कृत्यवर्ण लोहमय अस्त्रका पहन कर अपने कर्म द्वारा अपने जीविका चलावेगे एवं अस्त्रकार तथा युद्धोपकरण वस्तुसे तैयार करेंगे। ये लोग गो-ब्राह्मणोंकी सहायता करेंगे, इसमें सन्देह नहीं। भानुशंख्य, द्या, सत्य, क्षमा एवं अपने शरीर द्वारा विषमोंकी रक्षा आदि हो वाहावर्णोंकी सिद्धिके कारण होंगी; हे नरधेष्टे ! इसमें मुझे संशय नहीं। सुस्तिमान् मनुष्य उपदेशानुसार परिकीर्तित होनजातिकी विवेचना करके पुत्रोत्पादन करे, जिस तरह जलमें तैरनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको प्रान्तर अयसत्र कर देता है, उस तरह नितान्त होन जातिसे उत्पन्न पुत्रवर्णका नाम कर डालता है। इस संसारमें रमणियाँ विद्वान् अथवा मूर्ख व्यक्तिकी काम-क्रोधके घशीभूत कर नितान्त सुपधमें खींच लेती हैं। नारियोंका स्वभाव ही दोषकी खान है, अतएव विपश्चित् व्यक्तियों पर अत्यन्त आशंक नहीं होती।

युधिष्ठिर बोले—पाप योनिज होनवर्ण व्यक्ति ओ भायके शूद्रमें जन्मग्रहण करनेके कारण भाय रूप हो गया है, किन्तु उत्पत्तिके कारण अनाथ है, उसे हम किस प्रकार पहचान सकेंगे ?

भोष्पाने कहा—अनाथोंके शूद्रप, शूद्रप, भाय तथा वेष्टा-जन्मभित्त मनुष्यके संकरयोनिज समकथा आदि ये एवं उनके सन्तानपरित कर्म द्वारा योनिशुद्धता विज्ञान होनी। इस संसारमें धनादर्पता, अनाचार, क्रूरता तथा निष्क-यादमता कतुपयोनिज सुदयमें ही देखी जाती है। संकीर्ण

जातिकी संतान पिताके अथवा माताके चरित्र किंवा पिता माना दोनोंके स्वभाव प्राप्त करती है, वह कभी भी अपनी प्रकृति गुप्त नहीं रख सकती। तिर्यक् योनिजात व्याघ्र प्रभृति जिस तरह चित्रित वर्णके साथ माता पिताके समान रूपसे ही पैदा होते हैं, ठीक उसी तरह मनुष्य अपने पिताके वर्णमें ही पैदा होता है। वंशस्रोत संच्छन्न होने पर योनिस्त्वर होता है, वह मनुष्य जिस व्यक्तिके औरससे पैदा होता है, उसका कुछ न कुछ चरित्र अथवा ही आश्रय करता है। कृत्तम पथसे विचरनेवाला व्यक्ति शोभनवर्ण है या निरुष्ट, इसका निश्चय उसके स्वभावसे ही हो जायगा। सुवर्ण जिस तरह वाहनः कठिन होने पर भी कार्यके समय मृदु होता है एवं सुवर्ण अर्थात् चाँदी जिस तरह नियम मृदु होने पर भी कार्यके समय कठिन है, सुजात तथा दुर्जात पुरुषोंके जन्म और चरित्र भी उसी तरह होते हैं। संकरजात वर्णका शरीर प्राचीन वृद्धि द्वारा नीच मार्गसे आरुष्ट नहीं होना, भोजगुणको प्रबलता वज्रतः कालभेदेसे बुद्धिबृत्तिको प्रधानता होने पर भी शरीरारम्भक स्वत्वके उपेत्य, मध्यमत्वके अनुसार जो समान होता है, वही प्रमुदित हुआ करता है। दूसरा स्वत्व उत्पन्न होते ही शरत्कालके मेघकी तरह पुनः विलीन हो जाता है। ऊँचे वर्णका लड़का जब सदाचारसे दूर हो जाय, तब उसका सम्मान नहीं करना चाहिये और शूद्र यदि सदाचारसम्पन्न तथा धर्मज्ञ हो, तो उसका सम्मान करना चाहिये। मनुष्य शुभाशुभकर्म, सुशीलता, सञ्चरित तथा कुल द्वारा अपनेको प्रकाश करता है, कुल नष्ट हो जाने पर पुरुष अपने कर्म द्वारा पुनः अपना उदार कर लेता है। इन सब संकीर्ण तथा इतर योनियोंमें पुत्रोत्पादन नहीं करना चाहिये, पंडित लोग इस तरहकी त्रिव्योका त्याग करें। ( महाभारत अनुशासन ४८ अ० )

वर्णधातु ( सं० स्त्री० ) गेरु, ईशुर आदि रंगके काममें आनेवाली धातु।  
वर्णन ( सं० स्त्री० ) वर्णस्तुती विस्तारे रज्जनादौ ल्युट्।  
१ स्तवन, गुणकीर्तन। २ विस्तरण, किसी बातको विस्तार कहना, कथन। ३ चित्रण, रंगना।  
वर्णनष्ट ( सं० पु० ) पिङ्गल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया।

इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि प्रस्तारके अनुसार इतने वर्णोंके वृत्तोंके अमुक संख्यक भेदका रूप लघु गुरुके हिसाबसे कैसा होगा। जितने वर्णके प्रस्तारके किसी भेदका रूप निकालना हो, उतने लघुके चिह्न लिख कर उनके सिरे पर क्रमशः वर्णोद्दिष्ट अंक ( १ से आरम्भ करके क्रमशः दूने दूने अंक ) लिखे। फिर अंतिम अंक का दूना करके उसमेंसे पूछी हुई संख्याको घटावे। जो अंक बाँकी बचे, वह जिन जिन उद्दिष्टोंके योगसे बना हो उनके नीचेकी लघु माताओंके चिह्नोंको गुरु कर दे। जो रूप सिद्ध होगा, वही उत्तर होगा।

वर्णना ( सं० स्त्री० ) वर्ण-णिच्-युच् टाप्। गुणकथन।  
पर्याय—इडा, स्तव, स्तोत्र, स्तुति, नृति, श्लाघा, प्रशंसा, श्रधंवाद। "विदग्धा अपि बर्षन्ते विट्बर्षानया स्त्रियम्"  
( कथासरित्सा० ३२।१६६ )

वर्णनाग ( सं० पु० ) वर्णस्य नागः ६-नत्। निरुक्तकारके अनुसार ऋद्धमे किसी वर्णका नष्ट हो जाना।  
वर्णनीय ( सं० स्त्री० ) वर्ण कर्माणि अनोयत्। १ वर्ण्य, वर्णितय, वर्णनाके योग्य। २ स्तवाद्, स्तवके योग्य।  
वर्णपताका ( सं० स्त्री० ) पिङ्गल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि वर्णवृत्तोंके भेदोंमेंसे कौन सा ( पहला, दूसरा या तीसरा आदि ) ऐसा है, जिसमें इतने लघु और इतने गुरु होंगे।

वर्णपात ( सं० पु० ) वर्णस्य पातः। उच्चारणके समय शब्दान्तगत वर्णका पतन।

वर्णपाताल ( सं० पु० ) पिङ्गल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक संख्याके वर्णोंके कुल कितने वृत्त हो सकते हैं और उन वृत्तोंमेंसे कितने लघ्यादि और कितने लघ्वन्त, कितने गुर्वादि और कितने गुर्वांत तथा कितने सर्वशुच और कितने सर्वलघु होंगे। जितने वर्णोंका पाताल बनाना हो, उतनी ही जड़ों रेखाएँ और उन्हें काटनी हुई पाँच झाड़ों रेखाएँ खींचे। इस प्रकार कोष्ठ बन जाने पर कोष्ठोंकी पहली पंक्तिमें क्रमसे १, २, ३, ४, आदि अंक भरें। दूसरी पंक्तिमें २, ४, ८, १६ आदि वर्णसूत्रोंके अंक लिखे। तीसरी पंक्तिमें सूत्रोंके अंकोंके आधे लिखे और चौथी पंक्तिमें पहली और तीसरी पंक्तिके अंकोंका गुणनफल लिखे।

वर्णपात्र (सं० ह्रो०) वर्णस्य पात्रं । चितकारका रंग रत्नैश्चावृतम् ।

वर्णपुर (सं० पु०) शुद्ध रागका एक भेदः ।

वर्णपुर (सं० पु०) वर्णवन्ति पुराणि यस्य क्व । राजनरुणो पुरावृक्षः ।

वर्णपुरक (सं० पु०) वर्णपुर्य देवोः ।

वर्णपुरो (सं० खो०) वर्णवन्ति पुराणि यस्याः डीप् । उष्ट्रकारो पुरावृक्षः ।

वर्णप्रकार्य (सं० पु०) वर्णको अधिकता ।

वर्णप्रत्यय (सं० पु०) छन्दःशास्त्रे वा विंगलमें ये क्रियाएँ जिनके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक स्वरुपाके वर्णवृत्तोंके कितने भेद हो सकते हैं, उनके स्वरुप क्या होंगे इत्यादि । जिस प्रकार मालिक छन्दोंमें ६ प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार वर्णवृत्तोंमें भी ६ प्रत्यय होते हैं.—प्रस्तार, सूची, पाताल, उद्दिष्ट, नष्ट, मेक, सण्ड-मेक, पताका और मकंठी ।

वर्णप्रसादन (सं० ह्रो०) वर्णस्य प्रसादनं यस्मात् । अमुदचन्दनः ।

वर्णप्रस्तार (सं० पु०) विंगल या छन्दःशास्त्रमें यह क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है, कि इतने वर्णोंके वृत्तोंके इतने भेद हो सकते हैं और उन भेदोंके स्वरुप इस प्रकार होंगे । जितने वर्णोंका प्रस्तार पढ़ना हो, उतने वर्णोंका पहला भेद (सर्वशुक्र) लिखे । फिर मुद्रके नीचे लघु लिख कर श्रेय ज्योंका त्यों लिखे । फिर सबसे बाईं ओरके मुद्रके नीचे लघु लिख कर भागे ज्योंका त्यों लिखे और बाईं ओर जितनी व्युत्पत्ता रहे, उतनी मुद्रके भरे । यह क्रिया अन्त तक अर्थात् सर्वा लघु भेदके आगे तक करे ।

वर्णभेद (सं० पु०) वर्णस्य भेदः । १ वर्णका भेद, प्राक्षणादि वर्णको निम्नता । २ रंगका भेद ।

वर्णभेदिता (सं० खो०) लताविशेषः ।

वर्णमय (सं० खो०) वर्णविनिष्टः ।

वर्णमकंठी (सं० खो०) विंगल छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया । इसमें यह जाना जाता है, कि इतने वर्णोंके इतने वृत्त हो सकते हैं, जिनमें इतने गुण्यदि, गुण्यन्त और इतने लघ्यादि स्वरुप होंगे तथा सब वृत्तोंमें मिला कर

इतने वर्ण, इतने शुक्र लघु, इतना कलाएँ और इतने विट्ट (—को फल) होंगे । जितने वर्ण हों, उतने ताने बाएँ से दाहिने बनावे । फिर उन वर्णोंके नीचे उतने ही वर्णोंको छः पंक्तियाँ और बनावे । कोष्ठोंकी पहली पंक्तिमें १, २, ३ आदि अंक लिखे; दूसरीमें वर्ण सूचोके अंक (२, ४, ८, १६ आदि) लिखे; तिसरी पंक्तिमें दूसरी पंक्तिके अंकोंके आधे अंक भरे; चौथीमें पहली और दूसरी पंक्तिके अंकोंके गुणनफल लिखे; पाँचवींमें चौथी पंक्तिके आधे अंक भरे; छठी पंक्तिमें चौथी और पाँचवीं पंक्तिके अंकोंका योग लिखे और सातवीं पंक्तिमें छठी पंक्तिके आधे अंक भरे ।

वर्णमातृ (सं० खो०) वर्णस्य मातेय ककाराद्यक्षरमृत्त्यात् । लेखनी, फलम् ।

वर्णमातृका (सं० खो०) वर्णानां वर्णमालानां मातृभेदः । सरलता ।

वर्णमात्रा (सं० खो०) वर्णस्य मात्रा । ककारादि वर्णोंको ह्रस्वर्थादि मात्रा ।

वर्णमाला (सं० खो०) वर्णानां माला । १ जातिमाला, वर्णश्रेणी । २ शस्त्रोंके रूपोंकी यथा श्रेणी लिखित सूची, किसी भाषामें आनेवाले सब हरक जो ठीक सिल मिलते रखे हों । संस्कृतमें ५० और जपविषयमें ५१ वर्णमाला है । तद्वत् ५१ वर्णमालाका निर्देश और उसके जपका विधान है । अद्वैती वर्णमाला २६, फरासी २३, अरबी २८, पारसी ३१, मुकी ३३, हिन्दू २२, रूसीय ४१, फ्राँक २४, लाटिन २२, जप २६, स्पेनिश २७, इटाली २०, तातार २०२, ब्रह्म १६ । चीन देशमें वर्णमाला गण्डात्मक है, इन शब्दोंकी संख्या प्रायः अस्सी हजार होगी । भद्राङ्गिणी देवोः ।

वर्णवितरण (सं० खो०) वर्णतीथ, वर्णन करनेके योग्यः ।

वर्णराशि (सं० पु०) वर्णसमुद्र, वर्णमात्रा ।

वर्णरेखा (सं० खो०) वर्ण लिखणमें उनपैनि लिख करके घूर्णयोरैश्वर्यं कठिनो, लघुः ।

वर्णलिपि (सं० खो०) वर्ण या अक्षरप्रकाशक लेखन प्रणाली (Alphabetic writing) ।

विशेष विवरण अक्षरलिपि इष्टमें देवोः ।

वर्णलेखिका ( सं० स्त्री० ) वर्णलेखा स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं । तद्धी ।

वर्णवत् ( सं० त्रि० ) वर्णांस्तस्य वर्ण ( रसादिभ्यश्च । वा पा० १।१५ ) इति मत्वप् मस्य चः । 'वर्णविशिष्ट ।

वर्णवती ( सं० स्त्री० ) हरिद्रा, हल्दी ।

वर्णवर्त्ति ( सं० स्त्री० ) लेखनी, कलम ।

वर्णवर्त्तिका ( सं० स्त्री ) वर्णवर्त्ति देवो ।

वर्णवादी ( सं० पु० ) प्रशंसाकारो, बधाई करनेवाला ।

वर्णविचार ( सं० पु० ) निरुक्तके अनुसार शब्दोंमें एक

वर्णका विग्रह कर दूसरा वर्ण हो जाना । जैसे—'हल्दी' शब्दमें 'हरिद्रा'के 'र' का 'ल' हो गया है । 'ह्लादग'के 'द' का 'वारह' शब्दमें 'र' हो गया है ।

वर्णविचार ( सं० पु० ) आधुनिक व्याकरणका वह अंश जिसमें वर्णोंके आकार, उच्चारण और सन्धि आदिके नियमोंका वर्णन हो । प्राचीन वेदाङ्गमें यह विषय 'शिक्षा' कहलाता था और व्याकरणसे बिलकुल स्वतन्त्र माना जाता था ।

वर्णविपर्यय ( सं० पु० ) निरुक्तके अनुसार शब्दोंमें वर्णोंका उलट फेर हो जाना । जैसे—'हिंस' शब्दसे बने 'सिंह' शब्दमें हुआ है ।

वर्णविलगिनी ( सं० स्त्री० ) हरिद्रा, हल्दी ।

वर्णविलोङ्ग ( सं० पु० ) वर्णान् विलाङ्गयतीति विलोङ्गिण्युल् । १ श्लोकस्तेन, यह जो दूसरेका लिखा विषय चोरो करके उसे अपना बतलाता है । २ सन्धिचोर, संधिया चोर ।

वर्णवृत्त ( सं० स्त्री० ) वह पद्य जिसके चरणोंमें वर्णोंको संख्या और लघु गुरुके क्रमोंमें समानता हो ।

वर्णव्यवस्थिति ( सं० स्त्री० ) वर्णस्य व्यवस्थितिः । चातुर्धर्षं विभाग ।

वर्णाशिक्षा ( सं० स्त्री० ) वर्णाभ्यास ।

वर्णश्रेष्ठ ( सं० पु० ) वर्णेषु श्रेष्ठः । चार वर्णोंमेंसे श्रेष्ठ, ब्राह्मण ।

वर्णसंघाट ( सं० पु० ) वर्णमाला ।

वर्णसंघात ( सं० पु० ) वर्ण समूह ।

वर्णसंयोग ( सं० पु० ) सर्वर्ण विवाह ।

वर्णसंसर्ग ( सं० पु० ) असवर्ण विवाह ।

वर्णसंहार ( सं० पु० ) प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंगोंमेंसे एक ; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके लोगोंका एक स्थान पर सम्मेलन । अमिनय गुप्ताचार्यका मत है, नाटकके भिन्न भिन्न पात्रोंके एक स्थान पर सम्मेलनको वर्णसंहार कहना चाहिये ।

वर्णस ( सं० त्रि० ) वर्णयुक्त ।

वर्णसङ्कर ( सं० पु० ) वर्णतो ब्राह्मणादिभ्यः वर्णानां या सङ्करो मिश्रणं यत् । मिश्रित जाति, ब्राह्मणादि वर्णके अनुलोम या प्रतिभोमसे उत्पन्न जाति ।

गोतामें लिखा है, कि जब अधर्मका अत्यन्त प्रादुर्भाव होता है, तब कुल-ललनाये दूषित होती है । जब वे दूषित होनी हैं, तब उन्हींसे वर्णसङ्कर जातिकी उत्पत्ति होती है । वर्णसङ्कर होनेसे देव और पितृकार्य लोप तथा कुलधर्म और जातिधर्मका नाश होता है । उस देशमें सबोंकी नरक जाना पड़ता है ।

( भगवद्गीता १ अ० )

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यही चार वर्ण हैं । इनके अतिरिक्त और कोई वर्ण नहीं है । उक्त चार वर्णोंके अतिरिक्त जो सब जातियां देखनेमें आती हैं, वे ही सङ्कर जाति हैं । इन चार वर्णों ही से सङ्कर जातिकी उत्पत्ति हुई है । शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंका अति सामान्य कुसंगसे यत्नपूर्वक बचाना चाहिये ; नहीं तो वह खो पिता और स्वामी दोनोंके कुलमें काली लगती हैं । पत्नीकी सर्वतोभावमें रक्षा करना सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ है । क्या दुर्वल, क्या सबल, क्या अन्ध, क्या खड्ग, सभीको अपनी अपनी भार्याकी रक्षा करनेमें चाहिये । एक भार्याकी रक्षा करने हीसे कुल और धर्म पवित्र होता है ।

भार्याके सुरक्षिता नहीं होनेसे उनमें व्यवहार फेल जाता है । उसीसे जो सन्तान पैदा होती है । वह वर्णसङ्कर कहलाती है । वर्णसङ्कर होनेसे धर्म और कुल नष्ट हो जाता है । धर्म और कुलके नष्ट होनेसे ऐहिक और पारलौकिक किसी भी प्रकारके मङ्गलको सम्भावना नहीं रहती । अतः जिससे वर्णसङ्करत्व न हो सके तथा वर्णसङ्करका मूल कारण जो खो जाति है, उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी होगी । यही शास्त्रका उपदेश है ।

इसके अनिश्चित प्राहणवादि तोन वर्षा यदि स्वर्गम-  
का त्याग करे, तो ये भी वर्षासङ्कर कहलाते हैं। मनुमें  
लिखा है, कि अन्योन्य स्त्रोगमन, स्त्रोत्तमं विद्याह तथा  
उपनयनवादि स्वर्गार्थांका त्याग, इन सब कारणोंसे प्राह-  
णादि तोन वर्षाओंमें वर्षासङ्करत्व होता है।

“अभिचयेद्ये वर्षानामभेदापेक्षेन च ।  
वर्षान्वाप्य त्वाग्निं जावन्ते वर्षावदुःखाः ॥”

[( मनु १०।२४ )

प्राहणानुसार देखा जाता है, कि वे प्रकारसे वर्षा-  
सङ्कर दुःखा करता है, एक स्त्रियोंके धर्मिचारसे और  
दूसरे प्राहणादि तोन वर्षाओंके स्वर्गमं त्यागसे। स्त्रियोंके  
धर्मिचारमें चार वर्षाओंके अनिश्चित जो सब जातियां  
उत्पन्न होता है, यह प्रथम वर्षासङ्कर और अर्धवर्षा तथा  
द्वितीय वर्षासङ्कर है।

चार वर्षाओंसे अनुलोम और प्रतिलोमक्रमसे वर्ष-  
सङ्करजातके मध्य परस्पर आसक्तिवशतः अनुलोम  
और प्रतिलोम क्रमसे यह वर्षासङ्कर उत्पन्न होता है।

“यद्भूर्यथानथा ये तु प्रतिलोमनुलोमजाः ।  
अन्योन्यं व्यतिपच्छाच तान् प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥”

( मनु १०।२५ )

प्राहणादि चार वर्षाओंसे परिणीता स्त्रीसे उत्पन्न  
सन्तान प्राहणादि वर्षा होश्री है। इसके सिवा अस-  
वर्षा परतोंसे उत्पन्न सन्तान पिताके समानवर्षा नहीं  
होती, उनको दूसरों जाति होता है। मन्वादि ऋषियोंने  
बढ़ा है, कि तान् द्विजवर्षाओंसे अनुलोमक्रमसे अनस्तर-  
वर्षांजा परतोंके गर्भमें उत्पन्न पुत्र माता यदि नीच  
जातिकी भी बचो न हो, तो भी पिताको जातिका होता  
है। यह यथानम मूर्खावसिक्त, मादृश्य तथा वरण इन  
तोन मामोंमें पुकारा जाता है।

प्राहण कर्त्तृक परस्पर या वैश्यागर्भसम्भूत सन्तान  
अथवा और वृक्षवत्तज दूद्रागर्भसम्भूत सन्तान निषाद  
या पारशय तथा क्षत्रिय कर्त्तृक दूद्रागर्भसम्भूत सन्तान  
उग्र कहलाते हैं। क्षत्रिय कर्त्तृक प्राहणोर्गर्भसम्भूत  
सन्तानको मूत, वैश्य कर्त्तृक क्षत्रियवर्गर्भसम्भूतको  
मागध तथा प्राहणोर्गर्भसम्भूतको वैशेद कहते हैं। दूद्र  
कर्त्तृक वैश्यागर्भसं सन्तानका नाम आयोग्य, क्षत्रिया-

गर्भसंज्ञा क्षत्रा और प्राहणोर्गर्भसं सन्तानका नाम  
चण्डाल है। दूद्र कर्त्तृक प्रतिलोमक्रमसे उत्पन्न ये  
तोनो जाति अति निष्कृष्ट हैं। प्राहण कर्त्तृक उग्रवत्या  
गर्भसम्भूत सन्तान आर्यतको, अथवा वृक्षवत्यासम्भूत  
आमोर तथा आयोग्य कर्त्तृकगर्भसं सन्तान चित्तव-  
की उपाधि पाती है।

चण्डाल, सूत, वैशेद, आयोग्य, मागध तथा क्षत्रा  
ये छः प्रतिलोमज वणसङ्कर हैं। चण्डालादि छः प्रकार-  
की वर्षासङ्कर जातियोंके परस्पर अनुलोम या प्रतिलोम  
क्रमसे परस्पर जातिकी कथ्याके गर्भसे जो सब सन्तान  
उत्पन्न होती है, यह अपने माता पितासे स्वर्पतामायमें  
होन, निम्नार्ह और सत्क्रियायद्विभूत है। दूद्र कर्त्तृक  
प्राहणोर्गर्भसंज्ञात चण्डालादि सन्तान जिस प्रकार भय  
कष्ट समझी जाती है, चण्डालादि छः प्रकारके सङ्करों  
द्वारा प्राहणादि चार वर्षाओंसे उत्पन्न सन्तान उनमें  
द्वार गुणा होन और निम्नार्ह है। आयोग्यादि छः  
प्रकारकी होन जातियां परस्पर मिलमायमें परस्पर  
वर्षांजा परतोंके गर्भसे जो सन्तान उत्पादन करती हैं,  
उनको संशय पश्य है। ये लोग पितासे भी कहीं होन  
हैं। वृक्षुजाति कर्त्तृक आयोग्य स्त्रीके गर्भसे जो  
सन्तान उत्पन्न होती है, उनका नाम सैरिष्ठ है। ये  
सबके शरत्तवादि कार्योंमें कुशल होती हैं। यद्यपि यह  
मूल्य दाम नहीं हैं तथापि दामकार्योवर्तियों हैं तथा पात्र  
द्वारा मुग्गादिका वध कर जीविका निर्वाह करने हैं। वैशे-  
दक जाति कर्त्तृक आयोग्यी स्त्रोगर्भमें जो सन्तान पैदा  
होती है, उनका नाम मितेय है। ये लोग स्वभावतः मधुर-  
भावा होते हैं। प्रत्याहालमें घंटा बजा कर राजा आदि  
का स्तुतिपाठ करना इनका कार्य है। निषाद कर्त्तृक  
आयोग्य स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न सन्तानको माग्य या  
दान कहते हैं। ये लोग नाथ यत्नमें बड़े गुरु होते  
हैं। आयोग्यी स्त्रीके गर्भमें जनकमेरुमें सैरिष्ठ,  
मितेय और माग्य ये तीन जातियां अन्न मरण करती  
हैं। निषाद कर्त्तृक वैशेदोर्गर्भसम्भूत सन्तानका नाम  
कारावर है। अथवा काटना इनका काम है। वैशेद  
जाति कर्त्तृक कारावर स्त्रीमें अन्न और निषाद स्त्रीमें  
मेरु जाति, चण्डाल कर्त्तृक वैशेदोंमें धेनुव्यवहारको

पाण्डुमोषक, निपाद वैदेहोसे आदिण्डिक और चण्डाल कचुक पुकसी स्त्रीके गर्भसे सोषाक जाति उत्पन्न होती है। यह सोषाक जाति जह्नुादका काम करके जीविका चलाती है। चण्डालसे निपादोर्गमसम्भूत सन्तानका नाम अन्त्याघसायी (गङ्गा पुत्र) है। श्मशानकार्य इनकी उपजीविका है। यह सब वर्णसङ्कर जाति निन्दनीय और निन्द्यकार्यकारो है। ( मनु १० अ० और कुल्लूकभट्ट )  
वर्णसङ्करिक ( सं० त्रि० ) वर्णसङ्कर सम्बन्धीय ।

वर्णसमाभनाय ( सं० पु० ) वर्णमाला ।  
वर्णासि ( सं० पु० ) घृणोति स्थलमिति घृष् आचरणे ( घान शिवनैव कर्षोतीति । उण्य् ५।१०७ ) इति असि घातोर्नु क् च । जल ।

वर्णसूची ( सं० स्त्री० ) छन्दःशास्त्र या पिंगलमें एक क्रिया । इसके द्वारा वर्णवृत्तोंको संख्याकी शुद्धता, उनके भेदोंमें आदि अन्त लघु और आदि अन्त गुरुकी संख्या जानी जाती है। जितने वर्णोंकी सूची देखती हो, उतने वर्णोंकी संख्या तक क्रमसे २, ४, ८ इत्यादि अर्थात् उक्त रीति दूने अङ्क लिखे। इस क्रियाके अन्तम जो संख्या आयेगी, वह वृत्तभेदकी संख्या होगी। अन्तके अङ्कने बाईं ओर जो अङ्क होगा, उतने आदि लघु और अन्तलघु तथा आदिगुरु और अन्तगुरु होंगे। फिर उसने भा बाईं ओर अर्थात् अन्तमें तोमरे काष्ठमें जो अङ्क होगा, उतने ही आदि अन्तलघु और आदि अन्त गुरु वृत्त होंगे ।  
वर्णस्थान ( सं० कृ० ) वर्ण या शब्द आदिका उच्चारणस्थान ।  
वर्णस्वरोदय ( सं० पु० ) ज्योतिषोक्त शुभाशुभ ज्ञानका प्रकार या नियमावशेष ।

नरपतिजयन्वर्णा स्वरोदयभूत ब्रह्मयामलमे स्वरोकी संख्या सोलह बताई है। इन सोलह स्वरोमें अन्तस्वर दो हैं—अ, आ। यद दोनों स्वर छोड़ कर लेना होगा। सोलह स्वरोमेंसे चार स्वर ह्रास्य हैं, जैसे—अ, अ, ल, ल, अनप्य ये चार स्वर भी ह्रास्य हैं।

अथशिए दश स्वरोमें दो दो करके पांच युग होंगे। इन पांच युगोंके आदि पांच स्वर हैं—अ, इ, उ, ए, ओ। ये सब ह्रस्व स्वरोमें गिने जाते हैं। अतः ये पांचों स्वर ही स्वरोदयमें अवलम्बनीय हैं।

इस स्वरोदयसे लामालाम, सुख-दुःख, जीवन मरण, जय-पराजय और सांख्य ये सब विषय जाने जाते हैं।  
मातृका वर्णमें ही चराचर परिग्यात है, किन्तु मातृका वर्ण विना स्वरके उच्चारण करना असम्भव है। सुतरां यह चराचर निखिल जगत् स्वरसे उत्पन्न हुआ, इस कारण स्वरोदय द्वारा ही सभी जाना जा सकता है।

अकारादि पांच स्वर ब्रह्मादि पांच देवता माने गये हैं। जैसे—अकारमें ब्रह्मा, इकारमें विश्व, उकारमें उद, एकारमें पवन, ओकारमें सदाशिव है। इसी प्रकार उन अकारादि पांच स्वरोमें निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतोता ये पांच कला तथा इच्छा, प्रसा, प्रसा, ध्रदा और मेवा ये पांच शक्ति निर्दिष्ट हैं।

इन पञ्च स्वरके अकारादि क्रमसे चतुरस्र, अर्द्ध-चन्द्र, त्रिकोण, पङ्क्तिवन्दुयुत, गोलाकार और शुद्ध गोलाकार ये पांच चक्र; पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पञ्चभूत; गन्ध रस रूपास्पर्श शब्द ये विषयपञ्चक तथा सम्माहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तम्भन ये पांच पञ्चवाणके वाणरूपमें निर्णय हैं।

अकारादि पञ्चस्वर अठ भागोंमें विभक्त हैं। यथा-माला, वर्ण, प्रज्ञ, जाय, राशि, नक्षत्र, पिण्ड और योग-स्वर ।

जयमालास्वर वचन न रहे, तब मन्त्रमाधन, यन्त्र-साधन और अन्यन्य अर्थे मुक्त कथ्य करने चाहिये ।

वर्णस्वरके प्रयत्न रहनेसे शुभाशुभ क्रम करे। वर्णस्वर सभी समय विशेषतः युद्धकालमें सिद्धप्रद हैं।

प्रदस्वरके बलवान् रहनेसे मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चारण, यगीकरण, विवाद, युद्ध, प्रदह और संहार ये सब कार्य कर्तव्य हैं।

जीवस्वरके बलवान् रहनेसे वल्ल, अलङ्कार, भूषण, विचारम्भ, विवाह, यात्रा और पानादि कार्य करे।

राशिस्वरके बलवान् रहनेसे प्रामाद, हर्षा, उद्यान, देवतास्थापन, राजसिंहासन पर अभिषेक और दोक्षा-कार्य करे।

नक्षत्रस्वरके बलवान् होनेसे शक्ति, पीठिक, शुद्धि प्रवेश, योजयपन, विवाह और यात्रा काय विधेय है।



विद्वत्प्रवर्गके प्रवक्तृ होनेसे शक्यवस्तु ही देशमहू, सेना-  
पति और मन्त्रिमन्त्रियोग ये सब कार्य करे।

क्रिस् योग्यप्रवर्गके प्रवक्तृ होनेसे ज्ञानमभय भाणय  
भर्षान्, मणिमादि, अष्टौभ्यदीप्तानि विषयक, श्रावण्य और  
नाक्त्ये इत्यादि आसौरिक योग्य साधन करे।

जिस नामसे निश्चित ध्वनिकोंका पुकारा जाता है,  
जिस नामसे पुकारने पर मनुष्य समन करते हैं, उस  
नामके आदि वर्णोंमें जो माता भर्षान् स्वर होगा उसीका  
नाम मातास्वर है। जिस प्रकार रजनोकाग्र, इस नाम-  
का आदि अक्षर हुआ 'र' और 'र' वर्णोंमें अ संयुक्त है।  
अतएव मातास्वर होगा 'अ'। एतौदव शब्दमें देखा।

मातास्वरचक्र।

अ	इ	उ	ए	ओ
क	कि	कु	के	को
ख	खि	खु	खे	खो
ग	गि	गु	गे	गो
घ	घि	घु	घे	घो
च	चि	चु	चे	चो
छ	छि	छु	छे	छो
ज	जि	जु	जे	जो
झ	झि	झु	झे	झो
ट	टि	टु	टे	टो

वर्णा ( सं० स्त्री० ) एषणमे भक्षणे इति एणु भक्षणे घम्,  
नतएवा। आट्टो, अरहर।

वर्णाट्टा ( सं० स्त्री० ) वर्णा आट्टातेऽनपेति आट्टु करणे, घम्,  
नतएवा। टिखनो, कलम।

वर्णाट ( सं० पुं० ) वर्णान् अटतीति अट-अच्। १ यावत्,  
नथैवा। २ निषकारे। ३ स्त्रीकृतप्रयोग, यद्द जिसकी  
जोषिवा स्त्रीमें चलीही हो।

वर्णात्मन् ( सं० पुं० ) वर्णाः भक्षाम् भक्षणा इत्यच्च् वच्च्।  
कम्।

वर्णात्थिप ( सं० पुं० ) वर्णानां प्राहणायौत्तमधिरा।  
कलितज्योतिषके अनुस्वार प्राहणायि वर्णोंके मन्त्रिपति  
मन्त्र। प्राहणके अधिपति घृहपति और शक्त, क्षत्रियके  
भीम और रथि, वैश्यके चन्द्र, शूद्रके युव और अश्वत्थके  
शनि माने जाते हैं।

वर्णात्स्वय ( सं० स्त्री० ) दूसरे वर्णोंका भाव, वर्णोंका  
परिचयन।

वर्णापेत् ( सं० स्त्री० ) वर्णापेत्तः। वर्णोंहीन, अरहराति।

वर्णाध्रम ( सं० पुं० ) वर्णानां चातुर्यर्णानां आध्रमः।  
चातुर्यर्णाध्रम, चारों वर्णोंका आध्रम।

वर्णाध्रमधर्म ( सं० पुं० ) चारों वर्णोंका आध्रमधर्म।

प्राहण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्णों आध्रममें रह  
कर जिस वृत्ति द्वारा जीविका और जिस कर्म द्वारा  
पेहिरा और पारलिक कल्याण लाभ कर सकते हैं, उसको  
आध्रमधर्म कहते हैं। मिनत मिनत वर्णोंका मिनत मिनत  
आध्रम है। महाभारतमें लिखा है, कि युधिष्ठिरने मोक्ष-  
देवसे पूछा था, कि सब वर्णोंका साधारण धर्म क्या है?  
तथा चार वर्णोंका वृथक् वृथक् धर्म ही क्या है? किस  
दिस वर्णोंका किस किस आध्रममें अधिपति है? मोक्ष-  
देवने उत्तरमें कहा था, कि चार वर्णोंके आध्रमधर्मका  
विषय कहना हूँ, सुनो। क्रोध-परिहाराय, महवगाय-  
प्रयोग, सव्यकृतसे धनविभाग, क्षमा, अथवा परनेमें  
पुत्रोत्पत्ति, पवित्रता, अहिंसा, मरुत्ता और भूतदण्ड  
भक्षणोपवण ये ती मनी वर्णोंके साधारण धर्म हैं।

इन्द्रियदमन और वैशाख्यवन ही प्राहणका प्रधान धर्म  
है। श्रावण्यप्रभाय और ज्ञानवान् प्राहण यदि समस्त कार्य  
न करके समूहमें धन लाभ कर सकें, तो विवाह करके  
सम्पत्ति उत्पत्ति, दान और यज्ञानुष्ठान करना उनका  
धर्म है। प्राहण चाहे दूसरे कार्यका अनुष्ठान करें  
चाहे न करें, पर उनके वैशाख्यवनविरत और श्रावण्य-  
सम्पत्ति होनेमें ही उनके वर्णाध्रम धर्मकी रक्षा होगी है।

धनदान यज्ञानुष्ठान, भक्षण और व्रतपालन ही  
क्षत्रियका प्रधान धर्म है। ज्ञान, याज्ञान या अज्ञान  
क्षत्रियोंके लिये निश्चित है। नीर डकीरोंका वच्य कार्यके लिये  
सर्वैव सैदार रहना, समस्तपुण्यमें विषय दिव्यपत्ता  
क्षत्रियोंका कर्तव्य है। नीर डकीरोंके शान्त करनेके लिये

क्षत्रियका प्रधान कर्म और कुछ भी नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ द्वारा ही क्षत्रियोंका कल्याण होता है। राजा दूसरा कोई काम करे' चाहे न करे', पर आचारनिष्ठ हो कर उन्हें प्रजापालन करना ही पड़ेगा। इसीसे क्षात्रधर्मको रक्षा होती है।

दान, अध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सद्गुणों द्वारा धन-सञ्चय तथा पुनर्के समान पशुपालन करना ही वैश्यका नित्य धर्म है। इसके सिवा दूसरे किसी कार्यका अनुष्ठान करनेसे वैश्यका अधर्ममें लिप्त होना पड़ता है।

गणवान् प्रजापतिने ब्राह्मणादि तीन वर्णोंका दास होगा कृद कर शूद्रको सृष्टि की है। अतएव तीन वर्णोंको परिचर्या करना ही शूद्रका प्रधान धर्म है। शूद्र यदि धनोपाजन कर धनो हो जाये, तो ब्राह्मण आदि उत्कृष्ट जातियों उसके बगोभूत हो सकते हैं, इसलिये शूद्रको चाहिये कि पाने पीनेके सिवा ब्रह्म अधिक अर्थसञ्चय न करे, करनेसे उसको पापग्रस्त होना पड़ता है। किंतु राजाके आदेशानुसार शूद्र धर्मकार्यके अनुष्ठानार्थ अर्थसञ्चय कर सकता है। ब्राह्मणादि तीन वर्ण शूद्रको भरण, पोषण तथा छत्र, वेष्टन, शयन, आसन, उपानस्युगल, चामर और घण्टा आदि प्रदान करे'। यह सब द्रव्य शूद्रोंका धर्मैक्य घन है। अर्थसञ्चय करना शूद्रका अधिकार नहीं है।

यज्ञ नाना प्रकारका है तथा उसके फल भी अनेक हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण समी यज्ञ कर सकते हैं। शूद्रका यज्ञमें अधिकार रहने पर भी मन्त्रमें उसे अधिकार नहीं है। चार वर्णोंके सभी वर्णोंमें सबसे पहले ध्रुदायज्ञका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। ध्रुदा महर्षिचरा स्वरूप है। यह याज्ञिकीकी पवित्रता सम्पादन करती है। चार वर्णोंके मध्य अत्यन्त ध्रुदासम्पन्न होने हीसे यज्ञानुष्ठानका अधिकार होता है। मनुष्य चोरी आदि पापकार्योंमें आसक्त हो कर भी यदि यज्ञानुष्ठान करे, तो भी उसे साधु कहा जा सकता है तथा महर्षिगण भी उसको प्रशंसा करने हैं। त्रिलोकके मध्य यज्ञके समान दूसरा कोई कार्य नहीं है। अतएव चारों वर्णोंको अत्याशुन्य हो कर ध्रुदापूर्वक साध्यानुष्ठा यज्ञानुष्ठान करना चाहिये।

मनुष्य वानप्रस्थ, भैक्ष्य, गार्हस्थ्य और ब्रह्मचर्य इन चार आश्रमोंका अचलम्बन करते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रममें केवल ब्राह्मणका ही अधिकार है। आत्मज्ञान-सम्पन्न जितेन्द्रिय ब्राह्मण पहले उपनयनादि संस्कारसे संस्कृत हो कर ब्रह्मचर्य ग्रहण, भग्न्याधानादि कार्य समाधान, वेदाध्ययन और पोंछे वे गार्हस्थ्य धर्मका प्रतिपालन कर केवल पत्नीके साथ वानप्रस्थ अचलम्बन करे'। इस आश्रममें वे आरण्यक शास्त्रोंका अध्ययन कर ऊर्ध्वचरैता हो आसानासे ब्रह्ममें लीन हो सकते हैं। ब्रह्मचर्य समाप्त करके ही मोक्षलामार्थ भैक्ष्य धर्मका आश्रय लेना ब्राह्मणोंके लिये योग्यावह नहीं है। इस आश्रममें वे सुखदुःखरहित, निकेतन विहीन, यदृच्छालब्धतोषी, दान्त, जितेन्द्रिय, सर्वोंके प्रति समदृष्टिसम्पन्न, भोग-कामनाशून्य और निर्विकारचित्त हो अन्तमें ब्रह्म पदको प्राप्त होते हैं।

क्षत्रियादि वर्ण भी ब्राह्मणोंके दृष्टान्तानुसार ही वानप्रस्थादि आश्रमका अचलम्बन करें'। स्वर्गनिरत क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका भी भैक्ष्यधर्मप्रवृत्तमें अधिकार है। कृतकार्य परिणतययस्क वैश्य भी राजाको अनुमति ले कर दूसरा आश्रम ग्रहण कर सकते हैं। क्षत्रिय वेद और राजनीति अध्ययन, सन्तानोत्पादन, सोमरस-पान, राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान, वेदपाठ करा कर ब्राह्मणको वक्षिणा-दान और आहुति द्वारा पितरोंको स्तन कर शोषावस्थामें दूसरा आश्रम ग्रहण कर सकते हैं। क्षत्रिय युद्धधर्मका परिव्याग कर अपनी जीवन-रक्षाके लिये ही भिक्षावृत्तिका अचलम्बन कर सकते हैं। भिक्षावृत्तिका अचलम्बन क्षत्रियादि तीन वर्णोंका कामधर्म है, नित्यधर्म नहीं।

मानवमण्डलीके मध्य एक क्षत्रियवर्ण ही ध्रेष्टवर धर्मकी सेवा करते हैं। वेदमें कहा है, कि अत्यन्त तीन वर्णोंके सभी धर्म तथा समा उपधर्म' क्षात्रधर्मके आश्रय हैं। जिस प्रकार सभी प्राणियोंके पदचिह्न हाथोंके पदचिह्नमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सभी धर्म राजधर्ममें लीन हो गये हैं। पण्डितोंने अन्यान्य धर्मोंको अव्यफलप्रद तथा क्षत्रिय-धर्मको आश्रमका सारभूत और कल्याणका परमात्म निदान बतलाया है।

वर्णाई ( सं० पु० ) वर्णानंद तोनि मर्द-सन् । मुद्र, मृग ।  
वर्णि ( सं० स्त्री० ) वर्णने स्त्रुवने इति वर्ण स्त्रुती इत् ।  
१ मर्न, मोना । ( पु० ) २ यन्त्रि ।

वर्णिक ( सं० पु० ) वर्णां लेखयत्येन सन्ति सत्येति वर्ण-  
टन । लेखक ।

वर्णिकृत् ( सं० पु० ) यद् वर्ण वा छन्द क्रिमके प्रत्येक  
वर्णके वर्णांकी संशया शौर लघु मुदके रूपान समान  
हो ।

वर्णिका ( सं० स्त्री० ) वर्णां मक्षराणि लेखयत्येन सत्यरुपयाः  
इति वर्णां डन्-टाप् । १ कठिनो, षड्विधा । २ मन्त्रि,  
स्वाधो । ३ मोनेका पामो । ४ चन्द्रमा । ५ पिलेपन ।

वर्णित ( सं० स्त्री० ) वर्णं क । १ स्त्रुतिमुक्त । पर्वोप-  
ईलिन, जन्म, पणायित, पनायित, प्रणुन, पनित, गोण,  
भाभिष्टन, ईदित, स्त्रुन, नुन । २ क्रिसका वर्णन हो  
नुहा हो, वयान क्रिया हुआ । ३ कथित, कदा हुआ ।

वर्णिन् ( सं० पु० ) वर्णां मक्षराणि लेखयत्येन सत्यरुपेति  
वर्ण-इनि । १ लेखक । वर्णां नीलगीताद्याः लेखयत्येन  
सत्यरुपेति । २ निलकार । वर्णं ( वर्णांद्मक्षराणि ) ।  
वा ५।२।१।४ इति इनि । ३ प्रालघारो । ( ति० ) ४ वर्ण-  
यिनिष्ठ । वर्णांलपदात् ( वर्णां नीलवर्णात्वात् ) वा ५।२।१।२  
इति इनि । ५ प्रास्यण ।

वर्णिमो ( सं० स्त्री० ) वर्णिन्-डोप् । १ हरिद्रा, हनुदो ।  
२ यनिता ।

वर्णिल ( सं० स्त्री० ) वर्णं- ( लोमादि पामाद्विपिच्छादिष्व-  
ननेलयाः । वा ५।२।१०० ) इति प्रशस्तायै इत् ।  
प्रशस्तवर्णविनिष्ठ, वर्णयुक्त ।

वर्णो ( सं० पु० ) वर्धिन देशो ।

वर्णु ( सं० पु० ) रूढ संभक्तो ( भक्तिवर्षीभ्यो निव ) डप् १, ३८  
इति पु-सञ्च्-गिन् । १ एत मूर्त्तिका नाम, वन्, भादिरव ।  
२ वन् नामक देश ।

वर्णोद ( सं० पु० ) छन्दात्तास्त्रमं एव क्रिया । इमके द्वारा  
एत जाना जाता है, कि अमुक संवत्स वर्णोदका कोई  
रूप कीन-सा भेद है । जो भेद दिया गया हो, उसमें  
लघु मुदके ऊपर समसे दूने भंके सधो १, २, ४, ८  
इत्यादि लिखे । फिर लघुके ऊपर क्रमसे भंके हो, उर्दं  
जोड़ कर इसमें १ भीट जोड़ दे ।

वर्ण्य ( सं० स्त्री० ) वर्णं पयन् । १ कुंकुम, वेंसर । ( पु० )  
२ बनगुलसी, बर्द । ३ गन्धक । ४ प्रमथन विषय ।  
५ उभयैव । ( ति० ) ६ वर्णनके योग्य । ७ जो वर्णनकर  
विषय हो ।

वर्णक ( सं० स्त्री० ) वर्णते इति घृत पयन् । १ वर्णमोद,  
विद्री । २ वटुवा । ( पु० ) ३ पशिविभोग, गर बटेर । ४  
घोड़े का मुद । ( ति० ) ५ पूतक ।

वर्णका ( सं० स्त्री० ) वर्णक-टाप्, 'वर्णकां गजुनी  
प्राचां' इति यार्त्तिकोपस्थान-यत इत्वं । वर्णक पत्तो,  
बटेर ।

वर्णकी ( सं० स्त्री० ) वर्णक देशो ।

वर्णाजगमन ( सं० पु० ) वर्णांनि भासाजगपथे जगम वन्व ।  
मेघ ।

वर्णादीक्षण ( सं० स्त्री० ) दपमलीद, विद्री ।

वर्णां ( सं० स्त्री० ) वर्णनेऽनेनेति घृत करणे लघुट् ।  
१ वृत्ति, रोजो, जोवनोपाय, व्यवसाय । २ साधारण  
वस्तुल । ३ तक्षुपींड, चरयेकी यह लकड़ी जिममें  
तकला लया रहता है । ४ जोघन । ५ यामन । ( ति० )  
६ वर्त्तिष्णु, वर्णांनोल । ( स्त्री० ) ७ परिवर्णां, फेर-कार ।  
८ फेरना, घुमाना, बटना । ९ जल्पकप्रवर्णकं, घावमें  
सलाई आल कट दिखाना कुशाना जिममें घाव वा  
मासूरकी गहराई भीर फैलाय भादिका गया लगता है ।  
१० सिपति, उदराय । ११ ल्यापन, रचना । १२ व्यवहार,  
घरताय । १३ कोभा । १४ बरमोई, बटुला । १५ घेवण,  
निलबट्टे से पोसना, बटना । १६ पात, घरतन । १७  
वर्णमान ।

वर्णा ( ति० स्त्री० ) वरणा देवो ।

वर्णनि ( सं० पु० ) १ पूर्व देश, पूर्वदिशा । २ बाट, रास्ता ।  
३ शुद्ध रागका एक भेद ।

वर्णनिन् ( सं० स्त्री० ) वर्णिक, बटोदो ।

वर्णमो ( सं० स्त्री० ) वर्णनि इदिकारादिति पत्तो कौटु ।  
१ घेवण, बटनेकी क्रिया, गिराई । २ बाट, रास्ता ।

वर्णमोव ( सं० स्त्री० ) वर्णमंवाय ।

वर्णमान ( सं० पु० ) वर्णने इति घृत जानम् । १ प्रयोगकर  
भाविकरणोभूत काव्य, व्याकरणके क्रियाके मोम वाऽमोमेरे  
एव । इममें यह सूचिण होता है, कि क्रिया समी चर्नो

चलती है, समाप्त नहीं हुई है। यह वर्त्तमान चार प्रकार-  
का है, प्रवृत्तोपरत, वृत्ताविरत, नित्यप्रवृत्त और  
सामोप्य ।

इन चार प्रकारके वर्त्तमानमेंसे सामोप्य दो प्रकार  
का होता है,—भूतसामोप्य और भविष्यत्सामोप्य । इन  
चारों वर्त्तमानका उदाहरण, यथा—'मांसं न खादति'  
इस वाक्यमें 'प्रवृत्तोपरता' पाई जाती है अर्थात् वह जन्म-  
से ही मांस नहीं खाता । 'इह कुमाराः कीडन्ति' इस  
वाक्यसे यह मालूम होता है, कि चाहे कहनेके समय  
लड़के न खेलते रहे हों, पर उसके पूर्व कई बार खेल  
चुके हैं और आगे भी बराबर खेलेंगे । इसलिये इसे  
वृत्ताविरत वर्त्तमान कहते हैं । 'पर्वतास्तित्ति' इस  
वाक्यसे पर्वतों पर भूत और भविष्यत्कालमें रहनेका  
सम्बन्ध सूचित होता है, अतः यह नित्यप्रवृत्त वर्त्त-  
मान है ।

'कदा आगतोऽसि इति प्रश्ने ३७७स्वेदादेव' वर्त्तमान-  
त्वान् एपोऽहं आगच्छामि इति आगतोऽपि वदति' अर्थात्  
कब आये हो ? ऐसा प्रश्न करने पर आया हुआ व्यक्ति  
'यहो मैं आया' उत्तर देता है । यहाँ यद्यपि उसका जाना  
समाप्त हो गया है, तो भी उसकी मौजूदगी रहनेके कारण  
यहाँ भूतसामोप्य वर्त्तमान हुआ । 'कदा गमिष्यसि इति  
प्रश्ने 'एपोऽहं गच्छामि इति गमनाक्रियमाणोऽपि  
वदति' कब जाओगे ? यह प्रश्न करने पर जानेवाला  
व्यक्ति 'अभी हो जाता हूँ' यह उत्तर देता है । यहाँ उसका  
जाना शुरू न होने पर भी भविष्यत्की समीपताके कारण  
यहाँ भविष्यत्सामोप्य वर्त्तमान हुआ । यही चार प्रकार-  
का वर्त्तमान है । धातु और कज्ञ शब्द देखो ।

वर्त्तमानकालमें लट् विभक्ति होती है । २ वृत्तान्त,  
सर्गाचार । ३ चलता व्यवहार । (ति०) ४ चलता हुआ,  
जो जारी हो, जो चल रहा हो । ५ विद्यमान, उपस्थित,  
मौजूद । ६ साक्षात् । ७ आधुनिक, हालका ।

वर्त्तमानता ( सं० स्त्री० ) वर्त्तमानस्थ भावः तल-टाप् ।  
वर्त्तमानत्व, मौजूदगी ।

वर्त्तक ( सं० पु० ) वर्त्तनं वर्त्तनं राति शृङ्गातोति या  
वाङ्मूलात् ऊक । १ एक नदीका नाम । २ काकनीड़,  
कौवेका घोंसला । ३ द्वारपाल ।

वर्त्तलोह ( सं० स्त्री० ) वर्त्तते इति वृत् अच्, ततः कर्म-  
धारयः । लोहविशेष, एक प्रकारका लोहा । पर्याय—  
वर्त्तलोक्षण, वर्त्तक, लोहसङ्कर, नीलक, नीललोह,  
नीलज, वर्त्तलोहक । वैद्यकमें शोथे हुए वर्त्तलोहको कफ,  
दाह और पित्तका नाशक और उसके स्वादको कटु,  
मधुर और तिक्त लिखा है । यह यही लोहा है जिसके  
विद्रो वरतन बनते हैं ।

वर्त्तस् ( सं० स्त्री० ) पश्चमपंक्ति । १ "यावा वृष्टिर्वा वर्त्तस्त्रिंशत्  
विद्युत्" ( शुक्लपु० २५।१ ) 'वर्त्तस् पंक्तिः ताम्रशः' ।

( महीधर )

वर्त्ति ( सं० स्त्री० ) वर्त्ततेऽनपेति वृत् ( क्षाण्वि ऋि वृतीति ।  
उप्य् ४।१२८ ) इति इन् । १ दीपदशा, वत्ता । २ भेषज-  
निर्माण, औषध बनाना । ३ अंजन । ४ लेख । ५ घट वत्तो  
जो वैद्य घाघमें देता है । ६ अनुलेपन, उदरन । ७ गोली,  
बटो । ८ दीप, दोषा ।

गर्दुपुराणमें लिखा है, कि रीठा, शंख, सैन्धव,  
दुग्धपण, घच, फेन, रसाञ्जन, मधु, विडङ्ग और मनः-  
शिला, इन सब द्रव्योंको वर्त्ति कास, तिमिर और परल  
रोगका नाश करती है । ( गर्दुपु० १६८ अ० )

भावप्रकाशमें रोपणी और स्नेहनी वर्त्तिका विषय  
यों हैं—

रोपणीवर्त्ति—तिलपुण्य ८०, पोपर ६०, ज्ञातोफुन ५०  
तथा मिचं १६ इन सबोंको जलमें अच्छा तरह पीस कर  
वर्त्तित बनाये और इस वर्त्तिसि औषधमें अंजन लगाये ।  
इससे कास, तिमिर, अर्जन शुक्ल और मांसवृद्धि नष्ट  
होती है । इसको मात्रा उड़द भर है ।

स्नेहनीवर्त्ति—भाँवलेका बीज १ तोला, बहेड़ेका ३  
तोला और हरोतकोका ३ तोला, इन सबोंको जलमें पीस  
कर उड़द भरकी वर्त्तिसि बनाये और उससे औषधमें अंजन  
करे । ऐसा करनेसे अश्रुश्राव और वातरक्तसि जो पीड़ा  
होती है, उसका नाश होता है । ( मानस० द्वितीय० ६।० )

वर्त्तिक ( सं० पु० ) पक्षिविशेष, बटेर । पर्याय—वर्त्तिक,  
वर्त्ती, गार्जिकाय । इसके मांसका गुण निर्दोष, चोर्ष  
तथा पुष्टिबद्धक, मधुर, रुक्ष, कफ और वायुनाशक माना  
गया है । ( राजनि० )

“नामधेयैः कर्मभिः जेम्मा नमुनेः कल्पे विद्येते ।

अर्धं चण्डिकायाम् विद्येते न च वर्द्धिकाः ॥”

(श्रुतम् ० ५१।१२)

पर्याप्तमान समय बद्धों, विधि, वर्द्धि, वर्द्धि, वर्द्धि का वर्द्धि नामसे विख्यात है। उत्तर-पश्चिममें ये लोग अपनी को विपश्यन्तोंको स्मरण करते हैं। इस समय प्रकृत वर्द्धि की जानि नहीं देखी जाती। मध्ययुग कई श्रेणियोंके लोगोंके बद्धोंका काम करनेसे इस नामकी एक सन्तान धरणा वैश हो गई है।

विदारके वर्द्धोंको लोग छः दलमें विभाक है। ये लोग परस्पर आदान-प्रदान नहीं करते। इनमें कर्मोत्रिया दलके लोग काष्ठका काम करते हैं एवं मगदिया लोहे तथा बाडको विपद्यी, कियारु प्रभृति तैयार करते हैं। मागलपुरमें इस जातिको लोहार नामक एक दल है। ये लोग प्रकृत लोहार जातिमें पृथक् हैं। कमारकला दलके वर्द्धोंको लोग काष्ठके पुनले नचा कर या तमाजा दिया कर अपनी जोविवा चलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतके हिन्दू तथा मुसलमान बद्धों जातिके मध्य कई जाणाय हैं। उनमें हिन्दू विभागके पांच ठर दल हैं। उनमें निम्नोक्त दल स्थानभेदसे विषयान हैं।

जदारनपुर—बन्दीया, ढोली, मुलतानी, मागद, तर-लोहया; मुजफ्फरनगर—दलवान, लोटा; मेरठ—जंघार; मुजफ्फरनगर—मोल, अलीगढ़—जोदान; मथुरा—बाणचन, मोहनिया; आगरा—मागद, जंघार तथा उपरीत; पकलबाद—पारीतिया; मेरपुर—उमरिया; पटा—अणुशरया, बरमनिया, विजारी, जलेवांरिया; बलिया—माकुल्यशा; बस्ती जिलेमें—दक्षिणाख्य, सरवरिया, सरगुपारी; गोएटा—कैरातो या टाएटी, लोहार, बद्धों, कोइजयशा, तथा सन्धो; बाराबंको—जैसवार; मिर्जा-पुर—बोइरवांगी, मगधिया या मगदिया, पूर्वोण, उलरिया भीर हातो या लाटी दहमान, मगधिया, लोहार, इत्यादि। इनके अनिश्चित मण्ड, टॉरि, भाष्य बद्धों तथा कमार बद्धों प्रभृति दल देखे जाते हैं। लम्बी विभागमें सनेऊपारा नामक एक दल है। वर्द्धोंपकम धारण करते हैं। माग प्रभृति

पदाधोंको छूते तक नहीं। भोष्का दलके लोग जनेऊ पर-गने हैं।

सेतुबन्ध-रामेश्वर नामक वर्द्धोंको लोग केवल काठ-को देयमूर्त्ति बना कर देखते हैं। जातीय व्यपसायमें उच्च स्थानके अधिकारी होने पर भी समाजके मध्य गिस्तकके नामसे मोक्ष श्रेणियोंमें गिने जाते हैं। कठो लोग सिपां गाड़ोंके पहिये बनाते हैं एवं दितोषामो कोरुज लोग टेविल, कुर्सी प्रभृति तैयार करते हैं। टॉरि, उकाट, दिमान तथा जंघार, राजपूत जातिको एक दूसरी जाया गिने जातो है। शुनिमास, कुन्दा तथा कुंदा प्रभृति पर्वतवासी बद्धों लोग जोम जातिके समान है।

मगदिया जातिके अन्दर इसे ५ वर्णके भोगरों हो बालिकाभोका विवाह हो जाता है। किन्तु उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें बालिकाका उमे ११ वर्णके अन्दर एवं बालक-का उमे १३ वर्षके मध्य विवाह हो जाता है। उनमें धनियोंके यहां 'चारहीया' प्रयासे, निर्धनोंके यहां 'दोला' प्रयासे एवं 'मदल बदल' तथा सगांरोंको प्रयासे विवाह होता है। इस समाजमें विधवा-विवाह भी प्रचलित है। विधवा स्त्रियां देवरके अनिश्चित दूसरे पतिको शिवाय बार पतिकरूपसे ग्रहण कर सकती हैं। स्त्रियोंके साधरण सप्त होने पर समाज उन्हें जातिके बाहर कर देते हैं। यदि ये इस समाजदलके बाध पुत्रा धर्म तथा समान-की रक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करती हैं, तो लोग उन्हें फिर समाजमें स्थापन देते। समाजमें मिल जानेके बाद ये स्त्रियां सगांरोंकी रीतिसे फिर विवाह कर सकती हैं। पुरवोंके पांशोका प्रायदिक्क प्र.अन-भोजन करनेसे, मगोष्वाताप्रां जनेसे बाधया गद्दा या सरपुमें स्थान करनेसे होता है।

ये लोग चौरागारा दीय हैं। ये मध्य प्रांत नहीं जाते। पानचोर, मद्राधीर, देयो, हुन्दाशेय, बिबियादेय, विरद-कर्मो प्रभृति देयतामोको पूजा ये लोग बड़ी मक्तिसे करते हैं। लोग गिनाके अन्दरको बसो सुयो मुनदकी पानचौरा नामसे किं कर माने महालय-

पर चात्रल तथा दूध चढ़ा कर प्राणियोंको कुछ खाद्य पदार्थ दान करते हैं। वसन्त तथा विसूचिका रोगसे मृत्यु होने पर वे लोग शवको गाड़ते हैं अथवा गद्दीके जलमें बहा देते हैं। विदिगमें किसी भासीय वा सज्जनको मृत्यु होने पर वे लोग कुशपुत्तलिका बना कर उसे ही जलाते हैं।

विहारके बड़ई लोग जलाचरणोय हैं। वे लोग उम-महाराज, बन्दी, गोरईया तथा पांचपीर प्रभृति प्राम्य-देवताओंको पूजा करते हैं। ग्वाला, कोररी, इनाम इत्यादिकी तरह वे लोग भी समाजमें बराबर आसन प्राप्त करते हैं। काठके कामके अलावे वे लोग खेती बारी भी करते हैं।

वर्द्धन (सं० त्रि०) वर्द्धयतीति वृध नन्यादित्वात् ल्यु, यद्वा वर्द्धते तच्छोले इति वृध-पूर्वो (अनुदात्तोत्तरपेति। पा ३।२।१४६) इति युच्। १ वर्द्धय्यु, बद्धनेवाला। २ वृद्धि, वृन्तति। (पु०) ३ बद्धाना। ४ छेदन, काटना, छोड़ना, तराशना। ५ पूरण, पूर्ति।

वर्द्धनकोट (वर्द्धनकुटी)—बगुड़ा जिलान्तर्गत एक जमीन-दारो। यह अक्षा० २५° ८' २५" उ० तथा देशा० ८६° २८' पू०के मध्य गोविन्दपुरके निकट करतोया नदीके किनारे अवस्थित है। अभी यह राजवाडो नामसे विख्यात है। कोई कहते हैं, कि यहाँ एक समय प्राचीन पाण्डु-वर्द्धन राज्यकी राजधानी थी। संस्कृत भविष्यप्रज्ञाखण्डके मतसे वर्द्धनकोट निघृत्ति देशके अन्तर्गत है। यहाँ प्राचीन राजवाडीका खंडहर दिखाई पड़ता है। इस समय भी वर्द्धनकोटमें एक धारिन्द्र कायस्थ राजवंश विद्यमान हैं। एक समय सुविस्तीर्ण वर्द्धनकुटीराज्य जिनके अधिकांशमें था, जिन्हें लाखसे अधिक रु० राजस्व देना पड़ता था, आज उनकी अवस्था बडो ही सोचनीय हो गई है, दो सीं रुपयेसे अधिक राजस्व देना नहीं पड़ता।

वर्द्धनगढ़—१ बम्बई प्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कोटियां और खटाव उपविभागकी सीमा के बीच महादेव शैलमालाकी एक शाखाके ऊपर सातारा नहरसे १७ मील उत्तर पूर्णमें अवस्थित है।

खटाव या पूर्व हो कर एक कुञ्ज होता हुआ इस गढ़ पर चढ़ना होता है। इसके समीप हो कर सातारा पुरन्दर

रास्ता चला गया है। इस रास्तेसे दो सी गज दूर पर एक प्राचीन सरोवर है।

नवजित राज्यको पूर्वी सीमाकी रक्षा करनेके लिये १७६३ ई०में महाराष्ट्र केगरो गियाजीने यह दुर्ग बनवाया था। १८०० ई०में महादजो सिन्धियाने २५०० सेना ले कर प्रतिनिधिसे यह दुर्ग छीन लिया। इस समय सिन्धियाकी बहन सर्णोवत घोड़गड़ेकी स्त्रोने कुछ अधिक उपद्रव न मचाया। १८०३ ई०में दुर्गाध्यक्ष बलवन्त राय वकसोने यहाँ आ कर जैसाई तिरन्दीके साथ लड़ाई छेड़ दी। १८०५ ई०में फतेसिंहमानने दुर्ग पर आक्रमण किया और साथमें बहुत घोड़े ले गये। उनके फेके हुए गोलकका चिह्न आज भी दुर्गके फाटकको छत पर दिखाई पड़ता है।

१८०६ ई०में वसन्तगढ़को लड़ाईके बाद यापू गोखले पर दुर्ग सौंपा गया। उन्होंने १८११ ई० तक उसको देखरेख की, पीछे पेशवाने उसका भार अपने हाथ लिया। १८१८ ई०में बिना किसी मन्वटके ही यह दुर्ग दुर्ग वृत्तिश-सरकारके मातहतमें चला गया।

आज कल दुर्गकी अवस्था बड़ी ही खराब हो गई है। इसके अधिकांश भवन ही खंडहरोंमें परिणत हो गये हैं।

२ सातारा जिलेमें महादेव शैलमालाके पूर्वांशमें उन्नत एक शाखा। यह खटाव मीलसे चन्द्रनवन्दन-शृङ्ग पर्यन्त करीब १६ मील विस्तृत है। इस विस्तृत शैलमालाके ऊपर उत्तरमें वर्द्धनगढ़, कराडके निकट सदागिवगढ़ तथा सदागिवगढ़से १२ मील दक्षिणमें मछिन्द्रगढ़ अवस्थित है।

वर्द्धनसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

वर्द्धनिका (सं० स्त्री०) यह पात्र था धरतन जिसमें यज्ञादिका पवित्र जल रखा जाता है।

वर्द्धनी (सं० स्त्री०) १ जलपात्रविशेष, जल रत्नके एक वर्गन। २ सम्भार्जनी, भाङ्गू। ३ सनाल पात्रविशेष, कमण्डलु।

वर्द्धनीय (सं० त्रि०) वर्द्ध-अनीयत्। वर्द्धनयोग्य, बढ़ानेके लायक।

“धर्ममे दलमेता नेम्या नाशो बलस्य विद्येयः ।  
अथ द्रव्याऽन्वमे दुःखानामिमे च वर्द्धकिनः ॥”

(बृहत्सं० ५३।३२)

वर्तमान समय बर्द्ध, [वर्द्धि, वर्द्धि, वर्द्धि] का वा वर्द्धि नामसे विद्यतात है। उत्तर-पश्चिममें ये लोग अपनेकी विश्वकर्माकी सन्तान बताते हैं। इस समय प्रकृत वर्द्धकी जाति नहीं देखी जाती। मध्यपृथ्वी के श्रेणियोंके लोगोंके बर्द्धका काम करनेसे इस नामकी एक स्वतन्त्र श्रेणी पैदा हो गई है।

विहारके वर्द्धकी लोग छः दलमें विभक्त हैं। ये लोग परस्पर आदान-प्रदान नहीं करते। इनमें कनौजिया दलके लोग काठका काम करते हैं एवं मगहिया लोहे तथा काठकी छिड़की, किवाड़ प्रभृति तैयार करते हैं। भागलपुरमें इस जातिका लोहार नामक एक दल है। ये लोग प्रकृत लोहार जातिसे पृथक् हैं। कमारकला दलके वर्द्धका लोग काठके पुतले नचा कर वा तमाशा दिया कर अपनी जीविका चलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतके हिन्दू तथा मुसलमान बर्द्ध जातिके मध्य कई जायाए हैं। उनमें हिन्दू विभागके बीच ७६ दल हैं। उनमें निम्नोक्त दल. स्थानभेदसे विषयात हैं।

जहारनपुर—बन्धरीया, डोली, मुलतानी, नागर, तर-लोइया; मुजफ्फरनगर—ढलवाल, लोटा; मेरठ—जंघार; मुलन्दशहर—भोल; अलीगढ़—चौदान; मथुरा—याध्वन, सोशनिया; आगरा—नागर, जंघार तथा उपरीत; फर्रुखाबाद—पारोतिया; मैनपुर—उमरिया; पटा—अगवारया, बरमनिया, विशारो, जलेधरिया; बलिया—गोकुलधंशो; बस्ती जिलेमें—दक्षिणास्य, सरवरिया, सरयूपारी; गोएडा—कैरातो वा टाएडी, लोहार; बर्द्ध, कोरुजवंशो, तथा सन्दो; पारावंको—जैसवार; मिर्जा-पुर—कोरुजवंशो, मगधिया वा मगहिया, पूर्वांध्या, उत्तरिया और शर्की वा छाटी दहमान, मथुरिया, लहोरी, कोरुज इत्यादि। इनके अतिरिक्त महर, डौक, मोभा, यामन बर्द्ध तथा चमार बर्द्ध प्रभृति दल देखे जाते हैं। चारपासी विभागमें जनेऊपारो नामक एक दल है। ये लोग पक्षोपचात धारण करते हैं और मद्य, मांस प्रभृति

पदार्थोंको छूते तक नहीं। मोभा दलके लोग जनेऊ पद-नने हैं।

सेतुबन्ध-रामेश्वर नामक वर्द्धकी लोग केवल काठकी देवमूर्त्ति बना कर वेचते हैं। जातीय व्यवसायमें उच्च स्थानके अधिकारी होने पर भी समाजके मध्य भिक्षुकके नामसे नीच श्रेणियोंमें गिने जाते हैं। छाटी लोग सिपा गाड़ोके पहिये बनाते हैं एवं दिल्लीवासी कोकश लोग टेबिल, कुर्सी प्रभृति तैयार करते हैं। दौक, उकाट, दिमान तथा जंघार, राजपूत जातिकी एक दूसरी शाखा गिनी जाती है। सुनिभास, कुला तथा कुंदा प्रभृति पर्वतवासी बर्द्ध लोग डोम जातिके समान हैं।

मगहिया जातिके अन्दर ३से ५ वर्षके भीतर ही बालिकाओंका विवाह हो जाता है। किन्तु उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें बालिकाका ७से ११ वर्षके अन्दर एवं बालकका १३से १६ वर्षके मध्य विवाह हो जाता है। उनमें धनियोंके यहां 'चारहीवा' प्रथासे, निर्धनोंके यहां 'दोला' प्रथासे एवं 'अदल बदल' तथा सगाईको प्रथासे विवाह होता है। इस समाजमें विधवा-विवाह भी प्रचलित है। विधवा स्त्रियां देवरके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तिको द्वितीय पार पतिरूपसे ग्रहण कर सकती हैं। स्त्रियोंके आचरण झट होने पर समाज उन्हें जातिके बाहर कर देने हैं। यदि वे इस समाजदण्डके बाद पुनः धर्म तथा सम्मानकी रक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करती हैं, तो लोग उन्हें फिर समाजमें स्थान देते हैं। समाजमें मिल जानेके बाद वे स्त्रियां सगाईकी रीतिसे फिर विवाह कर सकती हैं। पुत्रोंके पारोतका प्रायश्चित्त ब्राह्मण-भोजन करानेमें, अयोध्यातार्य जानेसे अथवा गङ्गा वा सरयूमें स्नान करनेसे होता है।

ये लोग घोरचारी शीय हैं। ये मद्य मांस नहीं खाते। पांचपीर, महावीर, देवो, दुल्हादेव, शिवियादेव, विश्वकर्मा प्रभृति देवताओंकी पूजा ये लोग बड़ी भक्तिसे करते हैं। ये लोग चिताके अन्दरकी बची खुबो मृतककी हड्डियां घटोर कर गङ्गा वा और किसी नदामें फेंक आते हैं। साधु पुरुषोंके समाधिस्थानों पर वे लोग महालयके दिन जठ चढ़ाते हैं तथा अयोध्या तिथिको उन स्थानों

पर चायल तथा दूध चढ़ा कर ग्राहणोंको कुछ खाद्य पदार्थ दान करते हैं। बसन्त तथा विसुविका रोगसे मृत्यु होने पर वे लोग शवको गाड़ते हैं अथवा गद्दीके जलमें बहा देते हैं। विदेशमें किसी आरमिष वा स्वजनकी मृत्यु होने पर वे लोग कुशपुत्तलिका बना कर उसे ही जलाते हैं।

विहारके बर्द्ध लोग जलाचरणीय हैं। वे लोग उग्र महाराज, बन्दी, गोरैया तथा पांचपीर प्रभृति प्राम्य-देवताओंको पूजा करते हैं। ग्वाला, कोररी, हजाम इत्यादिकी तरह वे लोग भी समाजमें बराबर आसन प्राप्त करते हैं। काठके कामके अलावे वे लोग खेती-बारी भी करते हैं।

वर्द्धन (सं० लि०) वर्द्धयतीति वृध नन्वादित्वात् न्यु, यद्वा वर्द्धते तच्छील इति वृध-पूर्वो (अनुदात्तोत्तरचेति। वा ३।२।१५६) इति युच् । १ वर्द्धिष्णु, बर्द्धनेवाला। २ वृद्धि, उन्नति। (पु०) ३ बर्द्धाना। ४ छेदन, काटना, छीलना, तराशना। ५ पूरण, पूर्ति।

वर्द्धनकोट (वर्द्धनकुटो)—बगुडा जिलान्तर्गत एक जमीं-दारो। यह अक्षा० २५° ८' २५" उ० तथा देशा० ८६° २८' पू०के मध्य गोविन्दपुरके निकट करतोया नदीके किनारे अवस्थित है। अभी यह राजवाटो नामसे विख्यात है। कोई कहते हैं, कि यहाँ एक समय प्राचीन पौण्ड्र-वर्द्धन राज्यकी राजधानी थी। संस्कृत भविष्यप्रद्वलण्ड-के मतसे वर्द्धनकोट निवृत्ति देशके अन्तर्गत है। यहाँ प्राचीन राजवाड़ीका खंहर दिखलाई पड़ता है। इस समय भी वर्द्धनकोटमें एक चारैन्द्र कायस्थ राजवंश विद्यमान हैं। एक समय सुविस्तोर्ण वर्द्धनकुटोरारज्य जिनके अधिकारमें था, जिन्हें लाखसे अधिक रु० राजस्व देना पड़ता था, आज उनकी अवस्था बड़ी ही सोचनीय हो गई है, दो सौ रुपयेसे अधिक राजस्व देना नहीं पड़ता।

वर्द्धनगढ़—१ बम्बई प्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कोटेगाँ और छाटाव उपविभागकी सीमा के बीच महादेव शैलमालाकी एक शाखाके ऊपर सातारा शहरसे १७ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

छाटाव या पूर्व हो कर एक कुञ्ज होता हुआ इस गढ़ पर चढ़ना होता है। इसके समीप दो कर सातारा पुरन्दर

रास्ता चला गया है। इस रास्तेसे दो सौ गज दूर पर एक प्राचीन सरोवर है।

नवजित राज्यको पूर्वी सीमाकी रक्षा करनेके लिये १७६३ ई०में महाराष्ट्र केशरो गिवाजीने यह दुर्ग बनवाया था। १८०० ई०में महादत्तो मिन्द्रियाने २५०० सेना ले कर प्रतिनिधिसे यह दुर्ग छीन लिया। इस समय सिन्द्रियाकी बहन सर्णोवत घोड़बड़ेकी खोने कुछ अधिक उपद्रव न मचाया। १८०३ ई०में दुर्गाध्यक्ष बलधन्त राव वकसोने यहाँ आ कर जेसाई तिरग्दीके साथ लड़ाई छेड़ दी। १८०५ ई०में फतेसिंहमानने दुर्ग पर आक्रमण किया और साथमें बहुत घोड़े ले गये। उनके फेके हुए गोलकका चिह्न आज भी दुर्गके फाटककी छत पर दिखाई पड़ता है।

१८०६ ई०में वसन्तगढ़की लड़ाईके बाद वापू गोखले पर दुर्ग सौंपा गया। उन्होंने १८११ ई० तक उसकी देखरेख की, पीछे पेशवाने उसका भार अपने हाथ लिया। १८१८ ई०में बिना किसी भ्रंशके ही यह दुर्ग दुर्ग वृंश सरकारके मातहतमें चला गया।

आज कल दुर्गकी अवस्था बड़ी ही खराब हो गई है। इसके अधिकांश भवन ही खंहरोंमें परिणत हो गये हैं।

२ सातारा जिलेमें महादेव शैलमालाके पूर्वांशमें उन्नत एक शाखा। यह छाटाव मोलसे चन्दनचन्दन-शृङ्ग पर्यन्त करीब १६ मील विस्तृत है। इस विस्तृत शैलमालाके ऊपर उत्तरमें वर्द्धनगढ़, कराटके निकट सदाशिवगढ़ तथा सदाशिवगढ़से १२ मील दक्षिणमें महिन्द्रगढ़ अवस्थित है।

वर्द्धनसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैतानार्थी।

वर्द्धनिका (सं० खो०) यह पात्र वा धरतन जिसमें यज्ञदिका पवित्र जल रखा जाता है।

वर्द्धनी (सं० खो०) १ जलवातविशेष, जल रन्धनेका एक बरतन। २ सम्मार्जनी, भाङ्गू। ३ सनाल पात्रविशेष, कमण्डलु।

वर्द्धनीय (सं० लि०) वर्द्ध-अनीयत् । वर्द्धनयोग्य, बढानेके लायक।



"शातथा वर्द्धनीपालैर्ष इच्छत्वात्मनः शुभम् ।"

( उद्योगपत्र )

वर्द्धमान ( सं० पु० ) वर्द्धते इति वृध्-वृद्धी ज्ञानच् ।  
परगृहवृद्ध, रेड्डीका पेड । २ पशुमेद । ३ जराय । ४ विष्णु ।  
५ जिनविशेष, पर्याय—घोर, चरमतीर्षकृत, महा  
घोर, देवार्ण, प्रातनन्धन । महावीर देखे । ६ धनी मनुष्यों  
के घर । वृद्धन्महितामें लिखा है, कि इस घरका दर-  
वाजा दक्षिणकी ओर नहीं बनाना चाहिये । ७ भद्राश्व-  
वर्षके जन्तर्गत कुलपर्व तद्विशेष । भद्राश्ववर्षके सात  
कुलपर्वत हैं, 'जिनमेंसे वर्द्धमान' सातवाँ कुलपर्वत है ।  
८ मिट्टीका प्याला, सफ़ीरा । ९ एक वर्षवृत्त । इसके  
चारों चरणोंमें वर्षोंको संख्या मिन्य होती है अर्थात् १४,  
१३, १८ और १५ । ( त्रि० ) १० वृद्धिविण्ण, वर्द्धन-  
श्रील, बढनेवाला । ११ बढता हुआ, जो बढता जा  
जा रहा हो ।

वर्द्धमान—बंगालके छोटो लाटके शासनाधीन एक विभाग,  
यह एक कमिश्नरके अधीन परिचालित होता है । यह  
अक्षा० २१' ३६" से ले कर २४' ३५" उ० तथा देशा० ८६'  
३३" से ले कर ८८' ३०" पू० तक विस्तृत है । वर्द्धमान,  
हुगली, हवड़ा, मेदिनीपुर, बांकुड़ा और धोरभूम जिलेको ले  
कर यह विभाग गठित हुआ है । इसकी उत्तरी सीमा पर  
संथाल परगना और मुर्शिदाबाद, पूर्वमें नदीया और २४  
परगना जिला, या गंगानदी, दक्षिणमें बङ्गोपसागर और  
घालेश्वर जिला तथा पश्चिममें मयूरभञ्ज राज्य एवं सिड-  
भूम और मानभूम जिले हैं । इस विभागमें २७ जहर  
और २४८३६ गाँव लगते हैं ।

वर्द्धमान—बंगालके अन्तर्गत एक जिला । यह लाट-  
की देव रेयमें है । यह अक्षा० २२' ५६" से ले कर २३'  
५३" उ० तथा देशा० ८६' ४८" से ले कर ८८' २५" पू०के  
मध्ये अवस्थित है । भूपरिमाण २६८६ वर्गमील है । इस  
जिलेके उत्तरमें धोरभूम, मन्थाल परगना और मुर्शिदा  
बाद, पूर्वमें भागोरपो तीरवर्ती नदीया जिला, दक्षिणमें  
हुगली, मेदिनीपुर और बांकुड़ा जिला एवं पश्चिममें मान  
भूम है । जनसंख्या १५३२४७५ है ।

इस जिलेकी भूमि प्रायः सर्वत ही समतल है, केवल  
संथाल परगनाके समीपवर्ती उत्तर-पश्चिम कोणोंज

कमोच्च निम्न पार्वत्य ढालू भूमिसे तथा जंगलोंसे पूर्ण  
है । इस धनभागमें नेकड़े, चीने तथा अन्यान्य विन्न  
जन्तुओंका वास है । दूसरे दूसरे स्थान श्यामल मस्य-  
क्षेत्रोंसे परिपूर्ण हैं । बीच बीचमें ताल, आम्र, कदवो  
तथा बाँसवन समाच्छन्न बड़े बड़े ग्राम, प्रकृतिको  
निर्जर्जनाको विदूरत कर जनकोलाहलसे अपने अपने  
समीपवर्ती स्थानोंको परिपूर्ण करते हैं । किमी  
किमी स्थानसे हो कर धलकिशोर वा दारिकेश्वर,  
दामोदर, अजय, खारो, बाँका प्रभृति नदियाँ मन्द मन्द  
चलती, इतराती, इठलाती स्वच्छसलिला भागोरपीते  
आ मिली हैं । इनके अतिरिक्त बराकर नदी इस जिलेके  
उत्तरपश्चिमभागमें दामोदरनदसे आ मिली है, पछेन खाँ  
दामोदर तथा बाँकाको मिलती है । दक्षिणमें 'काना'  
नदी प्रवाहित है ।

इस तरहसे नदीमालासमाच्छन्न होने एवं विस्तीर्ण  
श्यामल प्राग्तरके बीच बीचमें तालवृक्षपरिशोभित  
द्विगिर्घोंके रहनेके कारण यहाँ खेती करनेमें बड़ी सुविधा  
होती है । इन सब नदियोंके द्वारा कालना, काटोप,  
दाँइहाट, भावसिंह, मिल्लोपुर, उपणपुर प्रभृति गंगातीर-  
वर्ती प्रसिद्ध नगरोंमें व्यापार होता है । इन सब नद्वर-  
गाहों द्वारा लचण, चरुत तथा पाटके व्यघसाय ही अधिक  
तर होते हैं । रानीगंज उपविभागमें फोयला, छोटा,  
पट्यरका चूना प्रभृति वषेष्ट पाया जाता है ।

रानीगंज और फोयला देखे ।

पीरगिफ ।

ख्रिष्टीय १६ वीं शताब्दीमें लिखे गये ब्रह्मखंड नामक  
संस्कृत भौगोलिक ग्रन्थमें लिखा है—

वर्द्धमान मंडलका विस्तार २० योजन है । वहाँ  
चारों वर्णोंके लोग खेती करने हैं । कलियुगके ४४००  
वर्ष शीत जाने पर दामोदरके निवट हेमसिंह नामक एक  
प्रबल पराक्रान्त राजा होगे, उनके सात राजमहल होंगे ।  
इनके पुत्रका नाम वीरसिंह होगा । वे अपने चाहुवर्तसे  
नाप्रलित, कर्णदुर्ग, घरदाभूमि, सुखदेश तथा धोरदेव  
निजायक्त करेंगे । इस वीरसिंहके चार पुत्र और विष्णु  
नामक एक बन्धा होंगे । बन्धा प्रनिक्षा करेगी कि, जो  
पुत्र उसे शास्त्रार्थमें परास्त करेगा, उसीके साथ वह

विवाह करेगा। इस संवादके कांचीपुर पहुँचने पर वहाँके राजा गुणसिन्धुके पुत्र सुन्दर चर्द्धमान आवेंगे। वे दामोदरके तौर एक मालीके घर आश्रय लेंगे। कुटनी मालिककी सहायतासे तपोबलसे एक सुरंग खोद कर वे विद्याकी तरण करेंगे। केवल कालीदेशीके प्रमादसे सुन्दर वहाँसे सुरक्षित हो घर लौटेंगे। गौड़ान्तिके लोग उसी विद्यासुन्दरके चरित्रका गान करेंगे। अंग्रप्रह्लादमें लिखी हुई कहानीसे ऐसा जान पड़ता है कि, ख्रीष्टी १६-वें शताब्दीसे पहले ही विद्यासुन्दरके गान प्रचलित थे। उस समय भी वर्द्धमान राजवंशका अभ्युदय नहीं हुआ था।

प्रह्लादकी तरह प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ दिग्विजय-प्रकाशमें भी हम लोग विद्यासुन्दर तथा चर्द्धमानका विवरण इस तरह पाते हैं।

अजयनदके दक्षिण, शिलावतीके उत्तरकी ओर गंगाके पश्चिम एवं दारिकेशीके पूर्व एक अत्यन्त सुन्दर साधारणमोग्य भूभाग है। हे राजन् ! इस भूभागका नाम चर्द्धमान है। इस चर्द्धमान देशसे ही कर कितनी ही नदियाँ प्रवाहित होती हैं। इसकी लम्बाई ११ योजन एवं चौड़ाई ८ योजन है। इस देशके मध्य हो कर दामोदर नदी प्रवाहित होती है। इसके पूर्वकी ओर जितनी नदियाँ हैं, उनमें सुडेश्वर, बकुला तथा सरस्वती ये तीन प्रधान हैं। इनके अति रक्त इसके दक्षिणकी ओर अनेकों नदियाँ बहती हैं। तृणघानादि-भेदसे १७ प्रकारके घान इस देशमें उत्पन्न होते हैं। रक्त, श्वेत तथा पाटलवर्ण कपाम वहाँ बहुत पैदा होती हैं। इसके अलावे एक प्रकारके इक्षुपुष्पकी खेती वहाँ हर एक क्षत्रुमें होती है। कहनेका अभिप्राय यह है, कि सभी वस्तुओंकी गटाँ वृद्धि अर्थात् उत्पत्ति होती है, इमोलिये इसका नाम चर्द्धमान पड़ा है। दामोदरका जल विष्णुके पादपद्मसे सम्भूत है। सुतराँ दामोदर नदीके दोनों पार्श्वस्थापी, चर्द्धमानके अधिवासियोंकी धिमिन्न देश-वासियों बहुत प्रशंसा करते हैं।

अधोर नामक एक क्षत्रिय राजा चर्द्धमानवासी प्रजाओं पर चर्द्धमानुसार शासन करते थे। हे राजन् ! एलिके चार हजार वर्ष पूर्व ज्ञाने पर इस वंशीय राजा योगिन्दके घरमें एक विचित्र घटना घटी।

कांचीपुरमें गुणसिन्धु नामक एक राजा राज करने थे। उनके पुत्रका नाम था सुन्दर। सुन्दर एक समय चर्द्धमान क्षाये। चर्द्धमानके राजा पारसिंहकी विद्या नामक एक परमा सुन्दरी दुहिता थी। विद्याने उपनिषद् शास्त्रकी छोड़ धीरे सभी शास्त्रोंमें अच्छी रुपाति प्राप्त की थी। सुन्दरने रात्रिके समय सुरंग द्वारा जा कर विद्याके साथ विवाह किया। विद्या शास्त्र विचारमें सुन्दरसे परास्त हुई। इसके बाद सुन्दरने उसके साथ सम्भोग किया। हे नृपवर ! इस विद्या सुन्दरका वृत्तान्त 'चौरपंचांगत्' ग्रन्थमें बहुत बड़ा चढ़ा कर वर्णन किया गया है।

राजा अधोरके पुत्रका नाम थीमान् चन्द्रागद था। ये भी राजा थे। गणेशपुराणमें इनका विस्तृत वर्णन लिपिवद्ध है।

थीमान् कान्तिचन्द्र सूर्याय'शी राजा थे। ये कुजके वंशमें उत्पन्न हुए थे। कान्तिचन्द्र एक समय चर्द्धमानका शासन करते थे।

कुज द्वारा सुकन्याके गर्भमें अतिथि नामक एक पुत्र पैदा हुआ। अतिथि द्वारा अगुराके गर्भसे महाबली पुंडरीकका जन्म हुआ। धर्मोद्योग्य पुंडरीक द्वारा उलूपीके गर्भसे क्षेमधर्मा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। क्षेमधर्मा योगी पुरुष थे। इन्होंने एक मुनिसंघ पर प्राप्त किया था। इस घरप्रभावसे उनकी पत्नी रतिदाके वेदधर्म नामक एक पुत्र हुआ। वेदधर्म द्वारा देवानोकका जन्म हुआ। इन सबोंकी जन्मभूमि चर्द्धमान है।

देवानोक द्वारा फल्गुके गर्भमें पारिजात नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये राज कार्यामें चतुर एवं युद्धविद्यामें निपुण थे। इनका जन्म घट्टीरूलरूप चक्रचकी-नदीके तटवर्ती स्थानमें हुआ था। पारिजातसे बड़े कर प्रतापी राजा उस समय वदाँ और कोई न था। इस पारिजात द्वारा खंजनीके गर्भसे नातुंग नामक एक पुत्र पैदा हुआ। निर्भोकचित्त नातुंग हिमालकासनमें वाम करते थे। नातुंग द्वारा मारिपाके गर्भसे अर्द्धपुत्र, अर्द्धपुत्र द्वारा प्रमोलाके गर्भसे दिक्पति उत्पन्न हुए। दिक्पति और सुदर्शाके संयोगसे दो बड़े बलवान् पुत्र पैदा हुए। इनके बाद चक्रनाम, रयाकलि, वामन तथा

छलमस्तक नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। गोवर्द्धन देश में जीमूत नदीके किनारे वज्रनामकी स्त्री मेनकाके गर्भसे स्वर्गन तथा गणचूर नामक अति सुन्दर दो पुत्र पैदा हुए। गणचूरने पाटली प्रामके निकट यमकर नदीके तीर वास-स्थान किया। ये अत्यन्त लुब्धस्वभावके थे। स्वर्गन-के औरम तथा मोदामतीके गर्भसे विभूति, सुभूति तथा रामभूति नामक तीन पुत्र पैदा हुए। रामभूतिने कौकट देशमें अपनी राजधानी बनाई। यह देश उस समय जंगलों तथा पहाड़ोंसे भरा था। बहुसंख्यक नीच जातीय प्रजा उनके शासनाधीन हुई थी। सुभूति पलासतनगढ़में राज्य करते थे। उनका राज्य उद्य अस्त तक फैला हुआ था। विभूति अत्यन्त प्रतापी राजा थे। उन्होंने युवावस्थामें ही केरल तथा शतशृंग प्रदेशमें राज्य स्थापन किया। उनके राज्यमें बहुत-सी शूद्रजातीय प्रजा वास करती थी। यही पौराणिक मत है। इसके बाद द्विजकन्या तुंगलेखाके गर्भसे पुष्यंशुरका जन्म हुआ। पुष्यंशुरके पुत्र हठाश्व हुए। ये बड़े कोमल प्रकृतिके राजा थे। इन्होंने तपस्याका अनुष्ठान किया था। अगस्त्य ने इनको वरदान दिया था। उसी वरके प्रतापसे ये उदकलकी अन्तिम सीमा पर जगन्नाथक्षेत्रके समीपवर्ती एकाग्रकाननके राजा हुए। गंडकी नामक स्त्रोके गर्भसे चन्द्रनयनमें चन्द्रन नामक इनके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। चन्द्रनके छोटे भाईका नाम अघोर था। ये तुलादेशके चन्द्रनयनमें राज्य करते थे। अघोर द्वारा उत्तको पत्नी देशिकाके गर्भसे करणकी उत्पत्ति हुई। करण असाधारण विक्रमसम्पन्न थे। ये चन्द्रमानका परिव्याग करके कलापक प्राममें चले गये। पुरुरानन नामक एक क्षत्रिय राजा यहाँकी राजगढ़ पर अतिथिक हुए। संक्षेपमें चन्द्रमानाधिपति राजाओंके विवरण लिपि यक्ष हुए। अर्वाच्य साधारण देशोंके मध्य चन्द्रमान एक श्रेष्ठतम देश है। यहाँके राजाओंका विवरण पुराण-में वर्णन किया गया है। पुरुराननके चण्डपर राजे मंगलदेवीकी पूजाके प्रतापसे चन्द्रमानमें राज्य करते आ रहे हैं। (दिग्बिजय प्र०)

पुरातत्त्व ।

मार्कण्डेयपुराणमें इस चन्द्रमानका उल्लेख है।

जैनियोंके मतसे महावीर वा चन्द्रमानस्वामीने राट्टेग-के जिस अंशमें अस्मभ्य जातियोंके मध्य घर्षप्रचार किया था, उनके नामानुसार यही स्थान पीछे चन्द्रमान नामसे विख्यात हुआ। इस समय चन्द्रमान मध्य-राट्ट नामसे मजहूर है। इस जिलेमें एक समय अनेक सुप्राचीन राजवंश राज्य करते थे। इस समय भी उनही कितनी ही प्राचीन कौत्तियां कई स्थानोंमें विद्यमान हैं। शेरगढ़ परगनाकी सिंहारण नामक नदीके किनारे सिंहपुर नामक एक प्राचीन राजधानी थी। यहाँ सिंहवाहु नामक राजा राज्य करते थे। जब सिंहपुर नगर ध्वंस हो गया, तब यह स्थान सिंहारणके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी सिंहारणसे चन्द्रमान सिंहा-रण नदीका नामकरण हुआ है। इस जिलेके अन्तर्गत सातशैका परगना सप्तशती ब्राह्मणोंका आधिपत्यमें है। इस जिलेमें उन्होंने जिन सब प्रामोंको प्राप्त किया था, उन सभी प्रामोंके नामसे ही सप्तशतियोंकी विभिन्न उपाधियोंकी सृष्टि हुई। गौड़ाधिप आदिशूर जयन्तके अर्भुद्वयके पूर्व यहाँ सप्तशती ब्राह्मणोंका ही आधिपत्य था। नारायणके छन्दोगपरिशिष्टपत्रकागसे ज्ञाना जाता है, कि किसी राष्ट्रीय ब्राह्मणके पूर्व पुरुषने उगसे ही कितने कुलस्थान प्राप्त किया था; उनसे कई राष्ट्रीय ब्राह्मणोंकी उपाधियां प्राप्त हुई हैं। गौड़में पालवंशी राजाओंका आधिपत्य विस्तृत होने पर आदिशूरवंशीय शूरनरपतियोंने बहुत समय तक इस जिलेमें राज्य किया था, उन्होंने भी राष्ट्रीय श्रेणोंके ब्राह्मणोंको इस जिलेके बहुतसे प्राम दान दिये थे। इन सब प्रामोंसे ही राष्ट्रीय ब्राह्मणोंके पूर्वपुरुषोंने बहुत-सी उपाधियां प्राप्त की थी।

पालवंशीय राजे जिस समय चारैन्द्रमें बौद्धधर्म प्रचार करनेमें उद्यत थे, उस समय राट्टेगमें शूरराजे यहाँके बौद्ध समाजको हस्तगत करनेके लिये आध्यात्म-कृतानुसार शैव तथा जाक धर्मप्रचार कर रहे थे। गौड़में बौद्धाधिकारके समय यहाँके डेडुर नामक स्थानमें सोमघोषके पुत्र इच्छार्थ घोष नामक एक शाक राजा अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। उनका प्रतिष्ठित स्थामरुणा-गढ़ ही इस समय सेनपदाडोगढ़के नामसे प्रसिद्ध है। इसके समान प्राचीन और कोई दूसरा गढ़ इस

प्रदेशमें नहीं है। गौड़ेश्वर उनसे कई बार परास्त हुए थे। अन्तमें घमोटीमा लाउसेमसे वे पराजित हुए। इच्छाई घोषके गढ़का भग्नावशेष आज भी सेनपहाड़ीमें वर्त्तमान है।

इस जिलेके अद्भुतगंत वर्त्तमान भूरसुट परगनेमें भूरि-श्रेष्ठो नामक एक समृद्धशाली नगर था। यहां छूरीय श्यों शताब्दी तक कायस्थ राजे राज्य करते थे। यहांके पाण्डुशा हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही राजाओंके समय प्रसिद्ध थे। सेनवंशीय राजाओंके मध्य विजय-सेनने विजयपुर नामक एक नगर बसाया था।

यहां बहुत दिनोंसे मुसलमानोंका संभव चला आता था। मेमारीके उत्तर-पश्चिम श्रीकृष्णनगर नामक ग्राममें सैयद जलाल उद्दौल ताग्रिजीने कुछ समय तक व्यवस्थापन किया था। ५४२ हिजरी वा १२४४-४५ ई०में पांडुशामें उनको मृत्यु हुई। उक्त श्रीकृष्णनगरमें जलाल उद्दौलके नाम पर 'मदरसा ई-जलालिया' नामक एक मदरसा प्रतिष्ठित है। वर्द्धमान जिलेके कई स्थानोंमें प्राचीन दुर्गोंका ध्वंसावशेष दृष्टि-गोचर होता है। हुटोपुर परगनेमें मेमारी स्टेजानके दक्षिण कुलीन ग्रामके निकट कई प्राचीन गढ़ोंका भग्नावशेष विद्यमान है। अजमतशाही परगनेमें भाराकुल ग्रामके निकट रामचन्द्रगढ़ एवं अजयनदके निकट शेरगढ़ परगनेमें रानीगञ्जके उत्तर ओर भी कई एक गढ़ नजर आते हैं। वर्द्धमान शहरमें ही प्रसिद्ध बहरम सम्रा नामक प्रसिद्ध मुनश्चमान कविकी कब्रगाह दिखाई पड़ती है, यह कब्रगाह ठीक दुर्गके समान ही है। आगरासे सिंहलद्वीपकी यात्राके समय कविवरने १५३३ ई०में वर्द्धमानमें ही जीवनयात्रा समाप्त की। इस वर्षके मुसलमान-इतिहासमें प्रथम उल्लेख वर्द्धमानका ही देखा पड़ता है। राजमहलमें दाउद खाँको पराजय तथा मृत्यु ही जानेके बाद अकबरकी सेना वर्द्धमान पहुंच कर दाउदके परिवारवर्ग पर आक्रमण किया। इसके बाद दश वर्ष तक दाउदके पुत्र गुगलू खाँ मुगलोंके विरुद्ध वर्द्धमानमें समरतल प्रखलित करते रहे। कृतज्ञ हाँ देता।

उनकी कब्रके पास ही नूरजहाँके स्वामी शेर अफगान तथा बङ्गालके शासनकर्त्ता कुतबुद्दीनके मकबरे देख पड़ते हैं। दिल्लीश्वरके आदेशसे कुतबुद्दीनने नूर-

जहाँको दिल्ली भेजनेके लिये शेर अफगानक साथ युद्ध किया था। वर्द्धमान स्टेजानके दक्षिण स्वाधीनपुर नामक ग्राममें जिस स्थान पर दोनों वीरोंने युद्ध किया था, आज भी वह स्थान देखनेमें आता है।

१६२४ ई०में शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ)ने वर्द्धमान दुर्ग तथा शहर अपने अधिकारमें कर लिया। बादशाह औरङ्गजेबके पील आजिम उस्मानने १६६७ ई०से ले कर १७०४ ई०के मध्य वर्द्धमानमें एक सुन्दर मसजिद निर्माण की, आज भी वह देखनेको चीज है।

वर्द्धमान वर्द्धमान राजवंश।

पञ्जाब-प्रदेशान्तर्गत लाहौर नगरके कोटलो महल्लानिवासी संगम राय वर्द्धमान-राजवंशके आदिपुत्रय थे। छूरीय १६वें शताब्दीके शेष भागमें सङ्गम राय अपने परिवारके साथ जगन्नाथ दर्शन करनेके उद्देशसे धी-क्षेत्रघाम गये। लौटने समय वे वर्द्धमानके निकट राईपुर ग्राममें व्यवसाय करनेके लभिप्रायसे बस गये। यहाँसे अनाऊ चरौद कर दूसरे दूसरे स्थानोंमें बेचना ही उनका व्यवसाय था। धीरे धीरे उनके रोजगारमें बड़ी उन्नति हुई।

सङ्गम रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र बङ्गविहारी राय भी राईपुरमें अपने पिताकी तरह व्यवसाय करने लगे एवं सौभाग्यवश इनके व्यापारमें भी धीरे धीरे उन्नति होने लगी।

बङ्गविहारी रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र भाबूराय राईपुरसे वर्द्धमान आ कर बस गये। वं इस देशमें एक विख्यात व्यापारी थे। एक समय दिल्लीश्वरको सेना वर्द्धमान पहुंची, भाबूरायने उन लोगोंको नाना प्रकारके भोजनकी सामग्रियाँ प्रदान की। इस पर उक्त सेनाके अध्यक्षने खुश हो कर इन्हें १०६४ हिजरी (१६५७ ई०)में वर्द्धमानके फौजदारके अधीन रेकाबी बाजार, इग्राहिमपुर और मुगलदोलीके कोतवाल एवं चौधरीके पद पर नियुक्त किया। उस समय इन तीनों स्थानोंमें धार्मिक राजस्व सिर्फ ५३२ रुपये थे। सुविशाल समृद्धिशाली वर्द्धमान राज्यका इस तरह स्तृपत्त हुआ।

भाबूरायकी मृत्युके बाद उनके लड़के बाबूराय पैतृक-पद तथा सर्वोच्चके अधिकारी हुए। धीरे धीरे इन्होंने

भी वदमान परगनामर्गत और भी कई स्थान प्राप्त किये।

बाबुरावकी मृत्युके बाद उनके पुत्र घनश्याम राय पैतृक पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। वदमानके सुप्रसिद्ध श्यामसागर नामक सुविद्याल सरोवर घनश्याम रायको अनुल कीर्ति है।

घनश्याम रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र कृष्णराम रायने पैतृक पद एवं सम्पत्ति प्राप्त की। १६६४ ई० (११०७ हिजरी) की २४वीं रविपक्ष आयल तारोखको दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहके राजत्वके ३८वें वर्षमें उन्होंने उनसे वदमानके जमींदार तथा नीधरी पदकी सनद प्राप्त की। इस राजकीय आज्ञापत्र द्वारा उन्होंने और भी कई एक जमींदारी प्राप्त की, उनमें सेनपहाड़ी-गढ़ विशेष उल्लेखनीय है। उक्त कृष्णरामरायके प्रपौत्र महाराजाधिराज तिलकचन्द्र बहादुरके राजत्वकालमें भी वह दुर्ग उषीका त्यों वदमान था।

कृष्णरामरायके जीवितकालमें घरदा तथा चित्तुआके जमींदार शोभासिंह, विष्णुपुरके जमींदार गोपाल सिंह एवं चन्द्रकोनाके जमींदार रघुनाथ सिंहने चिट्टोही हो बड़े प्रतापसे मुगलसम्राटके विरुद्ध अस्त्र धारण कर मुर्शिदाबाद, पंजरभूत तथा वदमान पर आक्रमण किया। शोभासिंहने वदमान पर आक्रमण करके कृष्णरामरायके साथ युद्ध किया एवं उसी समय कृष्णरामराय मारे गये। शोभासिंहने जब कृष्णराम रायके राजमहल पर आक्रमण किया, तब उनके परिवारकी १३ रमणियोंने चिप ब्या कर प्राण त्याग किया। कृष्णरामरायकी कन्या शोभासिंहके हाथोंमें पढ़ गई। शोभासिंहने उन्हे अपने अंज्जायिनो बनानेके अभिप्रायसे जिस समय अपने दोनों हाथोंको उसकी ओर बढ़ाया, उसी समय धीरचालने अंगरखेसे छुरी निकाल कर उस दुराचारी शोभासिंहके अङ्गमें घुसेड़ दिया। शोभासिंहके वापस्य जीवनका अन्तिम पक्ष गिर गया। जीव ही उस बालिकाने अपने वक्षस्थलमें सी छुरी भोंक ली, देवते देगते उस उद्योतिर्मयीकी आत्मा भी शर्व्वदाके लिये इस असार संसारसे कृष कर गई।

कृष्णरामरायकी शोचनीय मृत्युके बाद उनके पुत्र

जगत्तराम राय पैतृक पद और सम्पत्तिके अधिकारी हुए। ११११ हिजरीकी ५वीं जमादिपक्ष अठवल तारीखकी, तथा दिल्लीश्वरका ४३ वर्ष राज्यांकाल क्पतोत होने पर जगत्तराम रायने दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहसे ५० मइल जमींदारी एवं जमींदार तथा चौधरीकी उपाधि प्राप्त की। उनकी लोका नाम ब्रजकिशोरी था, उसके गर्भमें कीर्त्तिचन्द्र तथा मिलसेन नामक दो पुत्र पैदा हुए। १७२१ ई०को कृष्णसागर-सरोवरमें स्नान करनेके समय एक गुप्त हथका-कारीकी छुरिकाघातसे उन्होंने प्राण त्याग किया। उस दिनसे राजपरिवारके कोई व्यक्ति कृष्णसागरके जलको दूषित समझ कर न तो उसका जल पीते हैं न उममें स्नान ही करते हैं। वदमान-रामधंशकी जितनी धनल कीर्त्ति एवं दशों दिशाओंकी समुच्चल बना रही हैं, उन्हें प्रधानतः कीर्त्तिमती ब्रजकिशोरीने ही स्थापन किया था। वदमानके सुविस्तृत सागरके समान कृष्णरामकी अनुल कीर्त्ति है।

जगत्तराम रायकी शोचनीय मृत्युके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र कीर्त्तिचन्द्र पिताके पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। कीर्त्तिचन्द्रने छोटे भाईके लिये मासिक प्रति नियुक्त कर दी। १११५ हिजरी २० सवाल ४८ जुलूसकी दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहसे कीर्त्तिचन्द्रने पैतृक पद तथा सम्पत्ति प्राप्तिका अनुज्ञासन प्राप्त किया। उन्होंने अपने बाहुदलसे घरदा तथा चित्तुआके जमींदार शोभासिंहके भाई हिम्मत सिंहकी पराजय करके वहाँकी जमींदारी पर अधिकार कर लिया। चन्द्रकोनाके जमींदार रघुनाथसिंहने शोभासिंहके साथ मिल कर वदमान पर आक्रमण किया था, इसका बदला लेनेके लिये ही कीर्त्तिचन्द्रने रघुनाथ सिंहकी परास्त करके उनकी जमींदारी छीन ली थी। पाँछे उन्होंने विष्णुपुरके जमींदार गोपाल सिंहकी युद्धमें परास्त तो किया, किन्तु ये उनकी कोई सम्पत्ति ले नहीं सके। भुरसुट, याशदा तथा घेठघरके जमींदारोंकी परास्त करके उनकी जमींदारी हस्तगत कर ली।

कीर्त्तिचन्द्रने दिल्लीश्वर अनुल फतेह नसबदीग महम्मद शाहने १५ रमजान १७ जुलूस तारीखकी एक दानपत्र प्राप्त किया। उस दानपत्र द्वारा उन्हें उक्त

विजित सम्पत्ति तथा फतहपुर परगनेका अधिकार मिला था। कीर्त्तिचन्द्र अत्यन्त युद्धकुशल थे। उन्होंने बंगालके नवाब बहादुरके आह्वानानुसार विष्णुपुरके राजाके साथ मिल कर कांटोवासे दुर्दान्त मरहट्टोंको निकाल बाहर किया था। कीर्त्तिचन्द्र बादशाह द्वारा राजाको उपाधि न प्राप्त करने पर भी देशमें महाराजके नामसे ही विख्यात थे। श्रोधर्ममंगल काथ्यमें कविबर घनरामने उन्हें महाराज कह कर ही उल्लेख किया है।

बंगालके नवाब बहादुरके यहां कीर्त्तिचन्द्रको यदो प्रज्जत थी। एक बार उनकी माताकी शोशैलवात्माके समय वनेभ्रमने उडिष्या प्रदेशस्थ फीजदारों तथा कीतवालोंको उनकी देख रैख अच्छी तरह करनेकी आज्ञा दी थी।

वर्द्धमानके पास कांचननगर नामक जो महा समृद्धिशाली जनपदका ध्वंसविशेष वर्त्तमान है, कीर्त्तिमान् कीर्त्तिचन्द्रने उसका स्थापन किया था। १७४० ई०में कीर्त्तिचन्द्रने परलोककी यात्रा की। उनके हाथको अनुपम तलवार अमो तक राजकोषमें यत्नपूर्वक रखी है। उन्हें लोग 'कीर्त्तिचन्द्रका तेगा' कहते हैं। कीर्त्तिचन्द्रकी अनेकों कीर्त्तियां अमो तक वर्द्धमान राजवंशके मुलकको उज्वल बना रही हैं।

कीर्त्तिचन्द्रके परलोक घास करने पर उनके पुत्र चित्तसेन रायने वर्द्धमानकी जमींदारी प्राप्त की। उन्होंने बादशाहसे परगना मंडलघाट, भारसा, ब्राह्मणभूमि प्राप्ति कई एक जमींदारी प्राप्त की। दिल्लीभर अबुल फतेह नसरुद्दीन् महम्मदशाह बादशाह द्वारा १५ सवाल १२ जुलुस तारोखको उन्हें राजाकी उपाधि तथा 'परचे खिलअत' प्राप्त हुई एवं एक जोड़ी मुक्ता भी मिली। इस समय कीर्त्तिचन्द्र जीवित थे।

उक्त बादशाहके २२वें वर्ष राजत्वकालमें २० रम जान तारोखको (१७४० ई०) चित्तसेनको राजाकी उपाधि के साथ साथ चाकले वर्द्धमानकी जमींदारीकी सनद प्राप्त हुई। १७४२ ई०में पुनः दिल्लीभरके यहांसे छत्र, भासफो, नकारा, अड़ानोकी खिलअतोंके साथ एक सनद भी मिली। इस समय भी कीर्त्तिचन्द्र जीवित थे। इस तरहसे राजा चित्तसेनको सब मिला कर १२ दानपत्र तथा सनद प्राप्त हुई थी। ये वार्षिक २२७०४७२ र० राजस्व दिया करते थे।

उनकी दो पत्नियां थीं, किन्तु दोनों ही वधवा। १७४४ ई०में चित्तसेनकी मृत्यु हुई। कालनामें उनका निर्माण किया हुआ देवालय वर्त्तमान है। इनके राजत्वकालके कितने ही घणुष अमो तक राजमहलमें वर्त्तमान हैं। उन सबों पर पारसी भाषामें उनका नाम जोदा हुआ है।

राजा चित्तसेनकी मृत्युके बाद उनके घचा गित्तसेनके पुत्र तिलकचन्द्र वर्द्धमानके राजा हुए। सन ११४० साल १२ अग्रहणको महाराज तिलकचन्द्रका जन्म हुआ था। इन्होंने १७४४ ई० २४ जुलुस ६ जमादियल अब्वल तारोखको दिल्लीभर अबुल फतेह नसरुद्दीन् महम्मदशाह बादशाहसे वर्द्धमान प्रभृति जमींदारीकी राजीपाधिके साथ प्रथम सनद प्राप्त की। पीछे अबुल नसर मुजाउद्दीनने अग्रहणका बादशाह गाजोसे ७ जुलुस ७ रजव तारोखको पुनः एक दानपत्र प्राप्त किया। दिल्लीभर बालनगोर बादशाहसे इन्हें ७ जुलुस २६ महरम तारोखको एक हाथी उपहार मिला।

दिल्लीभर शाह आलम बादशाहने इन्हें ७ फिदवी खास नामसे एक पत्र एवं उनके प्रधान सेनापतिने ( ४ हजार जात तथा २ हजार सवार) चार हजार जात तथा राजा बहादुरके खिताबके साथ एक अनुशासनपत्र दिया था। फिदवी खासके अर्थसे बादशाहके खास कर्मचारी, इस तरहका सम्मान राज्यके प्रधान कर्मचारिके सिवा और किसीको प्राप्त नहीं होता था एवं घंगदेशके दूसरे किसी राजाने भी उक्त उपाधि न प्राप्त की थी इष्ट इण्डिया कम्पनीके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल बहादुर 'फिदवी खास' शब्द उपवहार करते थे। इसके साथ साथ तिलकचन्द्रको नइवत तथा 'आलखदार पालमी भी मिली थी। फिर दिल्लीभरसे ( १७६८ ई० ) ६ जुलुस ८वें रमजानको ५ हजार जात, ३ हजार सवार ( पंचहजार जात ), महाराजाधिराज खिताब, तोप, नकारा तथा पताका प्राप्ति का पत्र प्राप्त हुआ।

१७५५ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीके तदानीन्तन गवर्नर मि० हेनरी रिसघेटने दिल्ली-सम्राटके आदेशानुसार महाराज तिलकचन्द्रकी एक खिलअत तथा एक हाथी प्रदान किया। पलासीके युद्धके समय तिलक-

चन्द्रने पांडे प्रदान पर अह्मदजीकी पूरी सहायता की थी। १७६० ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने महाराज तिलकचन्द्र तथा इनके दोपान एवं प्रधान कर्मचारियोंको ७५२५) रु०की मिलगत भेजी।

इष्ट-इण्डिया कम्पनीको महाराज तिलकचन्द्रने सहायता भी की, किन्तु अल्पकालके बाद ही कम्पनी महाराजके किये हुए उपकारकी भूल गई। यहाँ तक कि, कुछ ही दिनोंके बाद संगनगोलामें अंग्रेजों सेनाके साथ राज-सेनाओंका एक युद्ध हुआ एवं सेनपहाड़ी तथा इष्ट इण्डिया कम्पनीकी कौडीकी सेनाओंके साथ भी दो बार युद्ध हुआ। इस समय एस्टिग सरकारकी १५ सहस्र सेना मौजूद रहती है। उम समय यद्दमान एक करदराज्य था। राज्यकी दिवानी तथा फौजदारी बिचार महाराजकी अपनी अदालतमें ही हुआ करता था। दस्यु तथा तस्कर आदि दुष्ट शरराधियोंको महाराज अपने हाथसे दण्ड दिया करने थे। महाराज तिलकचन्द्र बहादुरके अधीन १२ दुर्ग थे, जहाँ उन बाटदों दुर्गोंका ध्वंसावशेष वर्तमान है। १७६७ ई०को एस्टिगराजकी तालिमासे पता चलता है, कि उपरोक्त १२ दुर्गोंमें २६ सुदक्ष सवार एवं २१६१ पैदल सेना सर्वोदा किलेकी रक्षाके लिये नियुक्त रहती थी, इनके अनिश्चित और भी कितने ही देशी सिपाही तथा पैदल सेना भी नियुक्त थी। १७६५ ई०में महाराज तिलकचन्द्रने इष्ट-इण्डिया कम्पनीको ४०६४८६३(॥६) रु० राजस्व प्रदान करके जो दाखिला प्राप्त की थी, वह अब तक राजप्रासादमें सुरक्षित है।

तिलकचन्द्रने बहुत सी कीर्तियां स्थापित की थीं, बहुतसे देशीसत्तार तथा ब्रह्मोत्तर प्रदान किये थे। उनके राजत्वकालमें सब मिला कर ४ लाख ६७ हजार बांधे सिर्फ ब्रह्मोत्तर प्रदान किये गये थे। ११५७ सालमें (१७७० ई०) महाराज तिलकचन्द्रने परलोककी यात्रा की। उनकी दो भाषियाँ थीं, जिनमें महाराजों विपणकुमारी ही पुत्रवती हुई थी, इनके गर्भमे महाराज तेजचन्द्रने इस संसारमें पदार्पण किया।

सन् ११७१ सालके ५वें माघकी (१७६४ ई०की १७वीं जनवरी) तेजचन्द्रका जन्म हुआ था। पाँच

वर्षकी अवस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई एवं ये इसी छोटी अवस्थामें पैतृक पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए, किन्तु उस समय नितान्त शैशवावस्थाके कारण उनकी असाधारण बुद्धिमत्ता माता महाराणी विपणकुमारी ही अभिमायिका हो कर राजकार्यकी देख-भाल करती थीं। १७७१ ई०में तेजचन्द्र बहादुरने दिल्लीभर ग्राहबालम बादशाहके आशानुसार उनके प्रधान सेनापति द्वारा महाराजाधिराज बहादुरका निताप, पाँच हजार जात एवं तीन हजार सवार, नकारा, तोप, प्रभृति रखनेका अनुयासनपत्र प्राप्त किया। तेजचन्द्र बालिग ही कर अत्यन्त विलासो हुए, इसलिये उनके राज्यकार्य उचित रीतिसे सम्पन्न नहीं होते थे। अन्ततः थोड़े ही समयमें उनकी जमींदारीके कितने ही हिस्से खजाना खाली हो जानेके कारण निलाम हो गये। उन्हीं सब जमींदारोंको धरौद कर इस देशीय बहूतसे जमींदारोंकी सृष्टि हुई। १७६३ ई०में दजमाला बन्दोबस्तके समय महाराज तेजसिंह बहादुरकी वारिद ४०१५१०६) रु० राजस्व एवं १६३७२१) रु० पूल्यन्दि कर्जा हो गये। दशसाला बन्दोबस्तके बाद तक महाराजकी कितनी जमींदारी बिक चुकी थी, किन्तु इसके बाद ही सहसा उनके स्वभावमें परिवर्तन हुआ। ये स्वयं राज्यकार्य देखने लगे। उन्होंने सारी जमींदारीकी पत्तनी बन्दोबस्त करके एक बार ही बहुतसे रुपये इकट्ठे कर लिये। ये निपुण पणराशि ही यद्दमान राजप्रभागारकी नींव हुई। तबसे इस समय तक राजवर्गमें बचे हुए धन उसी धनागारमें सुरक्षित होती चली आ रही है। १७६० ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीने महाराजके हाथसे दिवानी तथा फौजदारीकी क्षमता, जेलखाना एवं १७६३ ई०में पुलिग-विभाग अपने हाथमें कर लिया। उसके पहले तक इन सब विषयोंकी क्षमताके तथा उनके पूर्णपुरुष पूर्ण रूपसे उपभोग करते थे।

महाराज तेजचन्द्र बहादुरने ६ श्रादियाँ की थीं, जिनमें महाराणी नानकीकुमारी ही पुत्रवती हुई थीं। सन् ११६८ सालमें उनके गर्भमे महाराज प्रतापचन्द्रका जन्म हुआ। शैशवावस्थामें महाराज तेजचन्द्र बहादुरने प्रतापचन्द्रको राज्यभार सौंप कर निश्चिन्त होनेका प्रतिष्ठा

को थी, अतः महाराज प्रतापचन्द्रकी अवस्था पूरो प्राप्त होने पर उन्होंने उन्हें युवराजके पद पर अभिषिक्त किया। महाराज प्रतापचन्द्र अत्यन्त बुद्धिमान तथा कार्यपटु थे। राज्यभार पड़ने पर उन्होंने विशेष यत्नसे ढाँ आर्सेन प्रणयन करके अपने राज्यकी रक्षा करने लगे। सन् १२२८ सालके पीव मासमें २६ वर्षकी अवस्थामें महाराज प्रतापचन्द्रने परलोककी यात्रा की। इसी प्रतापचन्द्रको ले कर ही जाली प्रतापचन्द्रकी सृष्टि हुई। महाराज तेजचन्द्र बहादुर पुत्रके परलोक गमन करनेके उपरान्त पुनः राजकार्य सम्भालने लगे। इन्होंने श्यालक पराणचन्द्र कापूरके पुत्र सुन्नीलाल बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम महतावचन्द्र रखा। तेजचन्द्रकी अनेकी कीर्तिपोंसे वर्द्धमान राजवंश समुज्ज्वल हो रहा है। सन् १२३६ सालके भाद्रमासमें महाराज तेजचन्द्र परलोकवासि हुए।

१८२० ई०की १७वीं नवम्बरको महाराज महतावचन्द्र बहादुरका जन्म हुआ था। १८२७ ई०की ११वीं फरवरीको तेजचन्द्र बहादुरके परलोकवासि होने पर उनकी पत्नी महाराणी कमलकुमारी (पराणचन्द्र कापूरकी भगिनी) ने पुत्रकी राज्ञोपाधि प्राप्तिके लिये भारतवर्ष में तदानीन्तन गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम वेस्टिक बहादुरके पास एक पत्र लिखा। थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने (१८३३ ई० ३० अगस्त) गवर्नर जेनरल बहादुरसे महाराजाधिराजका खिताब तथा खिलअत प्राप्त की। उनकी नायागिवायस्थामें उनकी माता महाराणी कमलकुमारी तथा पराणचन्द्र कापुर उनके अभिभावक रूपका राज्यकार्यको देखभाल करते थे। १८२६ ई०की ८वीं फरवरीकी महतावचन्द्रने पहली शादी की। उनकी पहली स्त्रीके गर्भसे राजकुमारी श्रीमती चन्देयी देवीकी पैदाइश हुई। दुःखका विषय है, कि कुमारीके जन्मके सात दिनोंके बाद ही महाराणी परलोकवासिनी हुई। श्रीजयकालमें ही मातृश्रीना राजकुमारी विवाहके कुछ ही दिन बाद विधवा हो गई। सन् १२६२ ई०में सालके दूसरे भायादकी राजकुमारीने लाजा अथनोनाथ मेहरा बाबूकी दत्तकपुत्र ग्रहण किया। १८४४ ई०की २४वीं जूनको महतावचन्द्र बहादुरने श्रीमती नारायणकुमारी

देवीका पाणिग्रहण किया। महाराणीके गर्भसे संतानादि न होनेके कारण १८६५ ई०की १६वीं मार्चको महाराजने अपने साला लाला वंशगोपालचन्द्र बाबूके उच्येष्ठ पुत्रको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम कुमार आफतावचन्द्र महताव बहादुर रखा।

१८३६ ई०में महाराजने पुनः गवर्नर जेनरल बहादुरसे खिलअत प्राप्त की।

१८५५ ई०में सन्धालीके विद्रोहके समय एव १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय महाराजने गवर्नरमेण्टकी बड़ी सहायता की। इसलिये गवर्नरमेण्टने इनकी भूमि प्रशंसा की थी।

१८६४ ई०में महतावचन्द्रने भारतवर्षकी व्यवस्थापक समाका सवस्य-पद प्राप्त किया। इस देग-वामियोंके मध्य इन्होंने ही सबसे पहले इस पदको प्राप्ति की थी। उक्त पदके आशयकीय व्ययके लिये गवर्नरमेण्टने इन्हें १० सहस्र रुपये प्रति वर्ष मिलनेका नियम ठीक हुआ। महाराजने तीन वर्ष तक उक्त पद पर समासीन रह कर एक बार ३० सहस्र रुपये प्राप्त किये। उन मय रुपयोंको इन्होंने अलोरमें पशुगाला निर्माण करनेके लिये दान कर दिया।

१८६६ ई०में भीषण दुर्मिक्षके समय महाराजकी असाधारण दानशीलता देख कर भारतवर्षके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल सर जान लारेन्सने अपने हाथसे एक पत्र लिख कर अत्यन्त धन्यवाद दिया। १८६८ ई०में महाराजकी वंशानुक्रमसे महामान्या सन्नाहोके राजचिह्न (Armour and supporters) धारण करनेकी क्षमता प्राप्त हुई।

१८६६ ई०में वर्द्धमान प्रदेशमें मयडूर मलेरिया महामारीके प्रादुर्भाव होने पर उसके प्रतिकारके लिये बङ्गाल गवर्नरमेण्टकी ५० सहस्र रुपये दे कर वर्द्धमान महाराज गवर्नरमेण्टके धन्यवाद-माजन हुए।

१८७० ई०में महामान्या सन्नाहोके पुत्र श्यूरका शय पञ्चनवरने वर्द्धमानके राजभवनमें पदार्पण करके वर्द्धमानाधिपतिकी सम्मानित किया था।

१८७४ ई०में भीषण दुर्मिक्षके समय महाराजने अपने लघुसे बुचड़ा, कलना तथा वर्द्धमानके दुर्मिक्षनीडित



चन्द्रने घोड़े प्रदान कर अहुरेजोंकी पूरी महायता की थी। १७६० ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने महाराज तिलक चन्द्र तथा इनके दोपान एवं प्रधान कर्मचारियोंकी ७५२५) रु०की मिलजुत भेजी।

इष्ट-इण्डिया कम्पनीकी महाराज तिलकचन्द्रने सहायता की थी, किन्तु अन्तकालके बाद ही कम्पनी महाराजके किये हुए अकारकी भूल गई। यहाँ तक कि, कुछ ही दिनोंके बाद संगनगोलामें अंग्रेजी सेनाके साथ राजसेनाओंका एक युद्ध हुआ एवं सेनपहाडी तथा इष्ट इण्डिया कम्पनीकी कौटोकी सेनाओंके साथ भी दो बार युद्ध हुआ। इस समय वृटिश सरकारकी १५ महद्वर सेना मौजूद रहती है। उस समय वर्तमान एक करदराज्य था। राज्यकी दिवानी तथा फौजदारी विचार महाराजकी अपनी अदालतमें ही हुआ करता था। रक्ष्य तथा तस्कर आदि दुष्ट बापराशियोंका महाराज अपने हाथसे दण्ड दिया करने थे। महाराज तिलकचन्द्र बहादुरके अधीन १२ दुर्ग थे, जहाँ उन वारहों दुर्गोंका ध्वंसायत्तय वर्तमान है। १७६७ ई०की वृटिशराजकी तालिमसे पता चलता है, कि उपरोक्त १२ दुर्गोंमें २६ सुदक्ष सवार एवं २११ पैदल सेना मरहटा किलेकी रक्षाके लिये नियुक्त रहती थी, इनके अनिश्चित और भी कितने ही दुर्ग सिपाही तथा पैदल सेना भी नियुक्त थी। १७६५ ई०में महाराज तिलकचन्द्रने इष्ट-इण्डिया कम्पनीकी ४०६४८६३॥॥) रु० राजस्व प्रदान करके जो दाखिला प्राप्त की थी, वह अब तक राजप्रासादमें सुरक्षित है।

तिलकचन्द्रने बहुत सी कीर्तियां स्थापित की थीं, बहुतसे देवोत्तर तथा ब्रह्मोत्तर प्रदान किये थे। उनके राजत्वकालमें सब मिला कर ४ लाख ६७ हजार बाँचे सिक्के ब्रह्मोत्तर प्रदान किये गये थे। ११५७ सालमें (१७७० ई०) महाराज तिलकचन्द्रने फरलोडकी यात्रा की। उनकी दो भाषाएँ थीं, जिनमें महाराजो विपणकुमारी ही प्रथमकी हुई थी, इनके गर्भमें महाराज तेजचन्द्रने इस संसारमें पदार्पण किया।

सन् ११७१ गालके ५वें माघकी (१७६४ ई०की १७वीं जनवरी) तेजचन्द्रका जन्म हुआ था। पाँच

वर्षकी अवस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई एवं पैं इसी छोटी अवस्थामें पैतृक पद तथा सगुप्तिके उत्तराधिकारी हुए, किन्तु उस समय नितान्त शैशवावस्थाके कारण उनकी असाधारण बुद्धिमत्ता माता महाराजो विपणकुमारी ही अभिभाविका हो कर राजकार्यकी देख-भाल करती थीं। १७७१ ई०में तेजचन्द्र बहादुरने विद्दोभ्वर शाहआलम बादशाहके आशानुसार उनके प्रधान सेनापति द्वारा महाराजाधिराज बहादुरका बिनाश, पाँच हजार जात एवं तीन हजार सवार, नकारा, तोप, प्रभृति रखनेका अनुज्ञासनपत्र प्राप्त किया। तेजचन्द्र बालिग हो कर अत्यन्त विलासी हुए, इसलिये उनके राज्यकार्य उचित रीतसे सम्पन्न नहीं होते थे। अन्तय घोड़े ही समयमें उनकी जमींदारीके कितने ही हिस्से खजाना खाली हो जानेके कारण निलाम ही गये। उन्हीं सब जमींदारोंकी खरोद कर इस देशीय बहुरते जमींदारोंकी सृष्टि हुई। १७६३ ई०में दशमाला बन्दोपस्तके समय महाराज तेजसिंह बहादुरको पार्षद ४०१५१०६) रु० राजस्व एवं १६३७२१) रु० पूलवनि कर्यो हो गये। दशमाला बन्दोपस्तके बाद तक महाराजकी कितनी जमींदारी बिक चुकी थी, किन्तु इनके बाद ही सहसा उनके स्वभावमें परिवर्तन हुआ। ये स्वयं राज्यकार्य देखने लगे। उन्होंने सारे जमींदारोंकी पत्तनी बन्दोपस्त करके एक बार ही बहुतसे रुपये इकट्ठे कर लिये। ये गिण्डणराज ही वर्तमान राजघनागारकी नींव हुई। तबसे इस समय तक राजकार्य बचे हुए घन उसी घनागारमें सुरक्षित होती चली आ रही है। १७६० ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीने महाराजके हाथसे दिवानी तथा फौजदारीको क्षमता, जेलखाना एवं १७६३ ई०में पुलिण-विभाग अपने हाथमें कर लिया। उसके पहले तक इन सब विषयोंकी क्षमताके तथा उनके पूर्णपुरुष पूर्ण रूपसे उपयोग करने थे।

महाराज तेजचन्द्र बहादुरने ६ शादियों की थीं, उनमें महाराजो नानकीकुमारी ही प्रथमकी हुई थीं। सन् ११६८ सालमें उनके गर्भमें महाराज प्रतापचन्द्रका जन्म हुआ। शैशवावस्थामें महाराज तेजचन्द्र बहादुरने प्रतापचन्द्रकी राज्यमार सौंप कर निश्चिन्ता होनेकी प्रतिज्ञा

को थी, अतः महाराज प्रतापचन्द्रको अवस्था पूरो प्राप्त होने पर उन्होंने उन्हें युवराजके पद पर नामिनिक किया। महाराज प्रतापचन्द्र अत्यन्त बुद्धिमान तथा कार्यापटु थे। राज्यभार पड़ने पर उन्होंने विशेष यत्नसे ८वाँ आर्डिन प्रणयन करके अपने राज्यको रक्षा करने लगे। सन् १२२८ सालके पौष मासमें २६ वर्षकी अवस्थामें महाराज प्रतापचन्द्रने परलोककी यात्रा की। इसी प्रतापचन्द्रको ले कर ही जाली प्रतापचन्द्रकी सृष्टि हुई। महाराज तेजचन्द्र बहादुर पुत्रके परलोक गमन करनेके उपरान्त पुनः राजकार्य सम्भालने लगे। इन्होंने श्यालक पगणचन्द्र कापूरके पुत्र चुम्नोलाल बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम महानाचन्द्र रखा। तेजचन्द्रको अनेकों कौशियोंसे वर्द्धमान राजवंश समुज्ज्वल हो रहा है। सन् १२३६ सालके भाद्रमासमें महाराज तेजचन्द्र परलोकयासी हुए।

१८२० ई०की १७वीं नवम्बरको महाराज महतावचन्द्र बहादुरका जन्म हुआ था। १८२७ ई०की ११वीं फरवरीको, तेजचन्द्र बहादुरके परलोकयासी होने पर उनको पहली महाराणी कमलकुमारी (पराणचन्द्र कापुरकी भगिनी) ने पुत्रकी राजीपाधि प्राप्तिके लिये भारतधर्म के तदानीन्तन गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम बेंटिक बहादुरके पास एक पत्र लिखा। थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने (१८३३ ई० ३० अगस्त) गवर्नर जेनरल बहादुरसे महाराजपिठाजका खिताब तथा खिलअत प्राप्त की। उनकी नाबालिगावस्थामें उनकी माता महाराणी कमलकुमारी तथा पराणचन्द्र कापुर उनके अभिभावक स्वरूप राज्यकार्यकी देखभाल करते थे। १८२६ ई०की ८वीं फरवरीको महतावचन्द्रने पहली शादी की। उनकी पहली स्त्रीके गर्भसे राजकुमारी धीमती घनदेवी देवीकी पैदाइश हुई। दुःस्वभा विषय है, कि कुमारीके जन्मके सात दिनोंके बाद ही महाराणी परलोकयासिनी हुई। शीघ्रकालमें ही मातृशोना राजकुमारी विवाहके कुछ ही दिन बाद विधवा हो गई। सन् १२६२ ई०में सालके दूमरे भागड़को राजकुमारीने लाला अवनोनाथ मेहरा बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण किया। १८४४ ई०की २४वाँ जूनको महतावचन्द्र बहादुरने धीमती नारायणकुमारी

देवीका पाणिग्रहण किया। महाराणीके गर्भसे संतानादि न होनेके कारण १८६५ ई०की १६वीं मार्चको महाराजने अपने साला लाला वंशगोपालचन्द्र बाबूके ज्येष्ठ पुत्रको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम कुमार आफतावचन्द्र महताव बहादुर रखा।

१८३६ ई०में महाराजने पुनः गवर्नर जेनरल बहादुरसे खिलअत प्राप्त की।

१८५५ ई०में सन्थालोंके विद्रोहके समय एव १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय महाराजने गवर्नरके बड़ी सहायता की। इसलिये गवर्नरके इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

१८६४ ई०में महतावचन्द्रने भारतवर्षकी व्यवस्थापक समाका सदस्य-पद प्राप्त किया। इन देग-वासियोंके मध्य इन्होंने ही सबसे पहले इस पदकी प्राप्ति की थी। उक्त पदके आवश्यकतय व्यवके लिये गवर्नरमें इन्होंने १० सहस्र रुपये प्रति वर्ष मिलनेका नियम ठोक हुआ। महाराजने तीन वर्ष तक उक्त पद पर समासीन रह कर एक बार ३० सहस्र रुपये प्राप्त किये। उन मय रूपोंको इन्होंने अलापुरमें पशुशाला निर्माण करनेके लिये दान कर दिया।

१८६६ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजकी असाधारण दानशीलता देख कर भारतवर्षके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल सर जान लारेन्सने अपने हाथसे एक पत्र लिख कर अत्यन्त धन्यवाद दिया। १८६८ ई०में महाराजको वंशानुक्रमसे महामान्या सन्नाहोके राजचिह्न (Armour and supporters) धारण करनेकी क्षमता प्राप्त हुई।

१८६६ ई०में वर्द्धमान प्रदेशमें भयङ्कर मलेरिया महा-मारोके प्रादुर्भाव होने पर उसके प्रतिकारके लिये बङ्गाल गवर्नरमें एको ५० सहस्र रुपये दे कर वर्द्धमान महाराज गवर्नरमें एके धन्यवाद-मांजन हुए।

१८७० ई०में महामान्या सन्नाहोके पुत्र ह्यूक आथ एडिनबरागे वर्द्धमानके राजभवनमें पदार्पण करके वर्द्धमानाधिपतिकी सम्मानित किया था।

१८७४ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजने अपने स्वयंसे बुचड़ा, कलना तथा वर्द्धमानके दुर्भिक्षपीड़ित

लोगोंको भग्न वस्त्र प्रदान कर भस्म'कय दीनोंकी जीवन-रक्षा की थी। बङ्गालके तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवरनर मर जाई काम्ब्रेज बहादुरने स्वयं इन सब भग्नयंत्रोंकी दान करने देख कर वर्द्धमान-नरैंगकी दानपरांपणताकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए अपने हाथसे एक पत्र लिखा था। १८७७ ई०में महाराज प्रदेशके दुर्मिस्त्रके लिये वर्द्धमान-नरैंगने १० सहस्र रुपये प्रदान किये थे।

१८७७ ई०में दिल्ली-दरबारसे वर्द्धमानपतिने His Highness'की उपाधि एवं आजोवन सम्मान-स्वरूप १३ तोपे प्राप्त की। १८७८ ई०में वर्द्धमानके महाराजने भारत-नम्राशाकी एक प्रस्तरमयी प्रतिमूर्त्ति कलकत्तेके म्यूजियममें स्थापन की।

वर्द्धमान तथा कालनाके अत्रैतनिक विद्यालय, दातव्य-चिकित्सालय, बालिका-विद्यालय प्रभृति बहुत सों देश-हितैषिणी कीर्त्ति'यां स्थापन कर महतावचन्द्र बहादुर इस देशवासियोंके विरस्मरणिय हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे अपनी नूतन प्रीत विशाल जमींदारी उड्डिष्यामें कुजङ्ग-दुर्ग, मैदनीपुर जिलान्तर्गत सुजामुठा परगनेमें दो अत्रैतनिक विद्यालय तथा दो दातव्य-चिकित्सालय स्थापन कर गये हैं।

सन् १२६५ सालमें उन्होंने महर्षि' बाबमीकृत मूल तथा सरल टीका सहित रामायण एवं महर्षि' वेदव्यास-कृत मूल तथा व्याख्या सहित महाभारत छात्रा कर जन-साधारणमें बांटना शुरू किया। किन्तु दुःभाग्य विषय है कि आरब्ध कार्य सम्पूर्ण होनेके पहले ही वे परलोक-यात्री हो गये। सन् १८७६ ई०की २६वीं अक्टूबरकी ५६ वर्षकी अवस्थामें भागलपुर नगरमें उनकी मृत्यु हुई।

उन्नीस वर्षकी अवस्थामें महाराजाधिराज आफताय महताय बहादुर वर्द्धमानके राजसिंहासन पर बैठे। उम्र समय उनकी अवस्था छोटी होनेके कारण वर्द्धमान राज्य कीर्त्त' भाष्य वाईके अधीन होनेका प्रस्ताव हुआ, किन्तु महाराज महतावचन्द्र बहादुरके राजकार्य ऐसे सुप्रबन्धके साथ सम्भन्न होते थे एवं उनके प्रातुपुत्र तत्कालीन हीयान ई राज बनविहारो कापूर साहब जेसी योग्यताके साथ राज्यकार्य परिचालना करने थे, कि य'शेवच मर भस्को वडेन बहादुर, वर्द्धमान राज्य कु

समय तकके लिये कीर्त्त' भाष्य वाईके अधीन न करके, जिस तरह राज्यकार्य चलता था, उसी तरह चलानेको आह्वान प्रदान की।

महाराज आफतायचन्द्रने भी राजकार्यमें स्वयं हस्तक्षेप न करके राजमन्त्री बनविहारो कापूर साहबके ऊपर ही नारे राज्यकार्यका भार सौंप रखा था। १८८१ ई०में आफताय बहादुरकी महतामारोहके साथ गवर-मेण्टसे बिलमत सहित राज-सनद प्राप्त हुई। उन्होंने अति अल्प काल तक राज्य किया था, किन्तु इसी अल्प समयमें ही उन्होंने कई एक महान् कीर्त्तियां स्थापन कर इस देशकी बड़ी भलाई की थी। १८८१ ई०में धार्मिकङ्गमें यूरोपीय दातव्य-चिकित्सालय स्थापित होने पर वसकी सहायताके लिये उन्होंने एक मुद्र १० हजार रुपये तथा वर्द्धमान नगरमें जलकी काल तैयार करनेके लिये वर्द्धमान म्यूजिसिपलिटोको एक मुद्र १ लाख रुपये प्रदान किये थे।

महाराज महतावचन्द्र बहादुरने जो विद्यालय स्थापन किये था, उसमें सिर्फ पन्द्रह तक पढ़ाई होती थी। आप तावचन्द्रने इस स्कूलकी दो श्रेणीय कालेजमें उन्नत करके बिना वेतन दिये ही एल० ए० की परीक्षा पढान पाठ करनेकी सुविधा कर दी थी। इस कार्यमें उनके ८० हजार रुपये धर्ना हुए थे।

वे वर्द्धमानमें जनसाधारणके लिये पुस्तकालय स्थापन कर गये हैं। इस पुस्तकालयकी स्थापना करनेमें उनके ६ हजार रुपये व्यय हुए थे। इन सब लोक-हितैषी कार्योंकी देख कर गवर्नमेंटने उन्हें बहुत ही धन्यवाद दिया।

संश्रुत शिक्षाकी उन्नतिके लिये उन्होंने गवर्नमेंट की एक मुद्र ५ हजार रुपये दान दिये थे। महतावचन्द्र बहादुरके स्मरणार्थ वर्द्धमान गवर्नमेंटने दातव्य चिकित्सालय तथा चक्षुःशीघ्राप्रसव रोगियोंके वासी-पवोगी एक गृह निर्माण किया था। महतावचन्द्र बहादुरने अपने पिताकी पुण्यवत कीर्त्त' रामायण तथा महाभारत सम्पूर्ण मुद्रित कर जनसाधारणमें बाँट दिया।

सन् १२६१ सालके १३वें जूनकी २४ वर्ष की

अवस्थामें ही आफतय चन्द्रमहताव बहादुरने इस बसात हंसोरसे प्रस्थान किया ।

आफतावचन्द्र महताव बहादुरकी परलोकयात्राके उपरान्त उनकी नाबालिग पत्नी महाराणी अधिराणी देवदेवी देवी वर्द्धमान राज्यकी उत्तराधिकारिणी हुईं । महाराज आफतावचन्द्र बहादुरके विलमें महाराणीकी दत्तकपुत्र प्रहण करनेकी अनुमति दी गई थी, एवं महाराणीने राजा वनविहारी कापुर महाशयके पुत्र श्रीमान विजयविहारी ( विजयचन्द्र ) कापुरकी १८८७ ई० की ३१वीं जुलाईकी योगेश्वरके आदेशानुसार दत्तक पुत्र प्रहण किया । इस दत्तकपुत्र प्रहण करनेके सम्बन्धमें उनको सास श्रीमती महाराणी नारायणकुमारी देवीने आपत्ति करके बड़ी अदालतमें अमियोग चलाया, किन्तु मुकद्दमेका विचार होनेसे पहले ही आपसमें ऋगृहका निबटेरा हो गया । दत्तकपुत्र प्रहण करनेके घोड़े ही दिनोंके बाद १८८८ ई०की १३वीं मईकी महाराणीने परलोककी यात्रा की ।

१८८१ ई०की १६वीं अक्टूबरकी महाराजाधिराज विजयचन्द्र महताव बहादुरका जन्म हुआ था । महाराणी देवदेवीकी मृत्युके समय महाराज विजयचन्द्र नाबालिग थे, इसलिये राज्य कोर्ट आव पार्सके अधोन हो गया एवं अपने पिता वर्द्धमान राज्यके सुयोग्य मैनेजर ध्येयुक्त राजा वनविहारी तपूट साहेबकी देखरेखमें सुगिज्ञित हो कर १८६२ ई०की १६वीं अक्टूबरको बालिग हो कर महाराजाधिराज विजयचन्द्र महताव बहादुर वर्द्धमानकी गद्दी पर बैठे ।

राजा वनविहारीकापुर साहबने १८५३ ई०की २१वीं नवम्बरकी वर्द्धमान जिलान्तर्गत सोआई ग्राममें जन्म प्रहण किया । उनके उद्योगसे वर्द्धमानराज्यकी बड़ी उन्नति हुई । उन्होंने वृष्टिग गवर्मेण्टसे १८६३ ई०की २ती जनवरीकी राजाकी वपाधि प्राप्त की । विगत १६०१ ई०की मर्तुमसुमारोके समय उन्होंने अपनी जातिकी पदमप्यदाकी रक्षाके लिये घरेलीमें एक क्षत्रिय समा की । भारतवर्षके समी स्थानोंसे स्वजातिवृन्द उस समानि पदार्पण करके उनका यद्येष्ट सम्मान किया । उनके ही उद्योग तथा अध्येसतापसे वृष्टिग गवर्मेण्ट वर्द्धमान नरेज

तथा उनके स्वजातिवृन्दकी क्षत्रिय माननेको बाध्य हुई ।

प्राचीन स्थान ।

ग्रहखंडके मतानुसार वर्द्धमानमें बहुतसे नगर तथा ग्राम हैं, उनमें ये सब प्रधान हैं—

चाटुल, दारिकेजी नदीके तीरे जहानाबाद, मायापुर, शंकरसरित्के किनारे गरिष्ट ग्राम, मुंडेश्वरके निकट श्रीकृष्णनगर, दामोदरके पास राजवल्लभ, भागीरथी-तट विद्यास्थान नयद्वीप (गौरांगका जन्मस्थान), माला-जोड़, एकलक्षक, राघववाटिका, अम्यिका, बान्द्रग्राम, मीरग्राम, भूरिथ्रेष्टिक, सेनापि, जनाई, स्फुरण, अकून, तट, खण्डीक । वर्द्धमानके दक्षिणमें पाटल (यहां विजयामिनन्दन राजा हेने), कुमार घोषिका, कुलक्षिता, कपल, लौहपुर, गोवर्द्धन, हस्तिक, श्रीरामपुर, घेलुन, अग्रद्वीप, गटली, कर्णग्राम, जोतिवनी, चन्द्रपुर, घलिहारी-पुर, वच्छिकवाला, कुशमान, गंगचारि, जावट, चन्द्रलेज । जंगलके निकट रसग्राम इसके अतिरिक्ति और ८ नहरोंके नाम, जैसे—चैघपुर (यह तैलीके अधिकारमें भागीरथीमें दो योजन पश्चिममें हैं), पाटली (यह कायस्थ राजाके अधिकारमें गंगाके निकट है), गिलावतो नदीके पास लोहदा, दामोदरके निकट क्षत्रिय राजाके अधिकारमें चन्द्रवाटी, वर्द्धमानके पूर्व दृशिकपत्तन, दामोदरके तीरे, त्रिचक्रासरितके निकट हाटकृतगर, भागीरथीके पश्चिम घिल्यपत्तन, वर्द्धमानसे तीस कोसकी दूरी पर सामन्तपत्तन (यहां करतोया नदी बहती है) ।

उद्धृत ग्रामनगरादिके नामसे बोध होता है, कि वर्द्धमान हुगली, नदीया तथा पायना जिलेके दितने ही अंश वर्द्धमान प्रदेशके अन्तर्गत थे ।

वर्द्धमान समय वर्द्धमान जिलेमें जनाकीर्ण नगरोंके मध्य वर्द्धमान, कालना, श्यामबाजार, रानीगंज, जहाना-बाद, बाली, कांटोया, दाईहाट ये ८ नगर प्रधान हैं । इन भागोंके मध्य वर्द्धमानमें प्रायः ४० हजार एवं दाईहाटमें प्रायः १० हजार लोगोंका वास है । वर्द्धमान बड़े ग्रामोंके मध्य खंड्योप, इन्दास, सलीमाबाद, गांठुरिया, साहयगंज, भातुरिया, मन्त्रेश्वर, भाऊसिंह, भगवनीपुर, मंगलकोट, उदानपुर, बुडुडु, औसग्राम, मोनामुखी, कसया, दिगानगर, मानकर, काकसा, निवामतपुर,

गोगाट, कोतलपुर, रायना तथा सलोमपुर दे २४ ग्राम प्रदान हैं। इन सब ग्रामोंमें लोगोंकी घनी आबादी है।

उक्त नगर तथा ग्रामोंके मध्य कलना वाणिज्यका केन्द्रस्थान है। मुसलमानों अमलदारीमें भी यह स्थान बहुत समृद्धिवाली था। उस समय कालनाके पास ही नर गंगा नदी बहती थी। प्राचीन कलनामें इस समय वाणिज्यका केन्द्र न होने पर भी बहुतसे सम्प्रागत लोगोंका पास है। बहुतसे दूकानोंसे परिपूर्ण नये कालनेका निर्माण यद्यत्मान नरनेने बड़े परतसे किया है। रानीगंज की बौदलेकी स्थान सारे संसारमें विख्यात है।

रानीगंज देखो।

जहागाबाद दारिकेअरके तीरस्थित है। यहां महकुमा तथा बहुतसे संपन्न लोगोंका वास है। चालीग्राम भी दारिकेअरके तीर वास है। पहले यह स्थान ब्राह्मण तथा कायस्थोंका वासस्थान हो रहा था। भागीरथी तथा अजयनदके संगम पर कांटोया नगरी अवस्थित है, यहां बहुतसे धर्मियोंका वास है। बहुत पहलेसे ही कांटोयाकी समृद्धिका परिचय पाया जाता है। नयाव बालिगंजी लॉके समय मराठोंके उत्पातसे कांटोयाकी यही क्षति हुई थी। इस समय भी यह नगर वाणिज्यका एक प्रदान स्थान गिना जाता है। कांटोया देखो।

दांडगाट भागीरथीके तीर पर विद्यमान है। पहले यह स्थान भी बहुत उन्नति पर था। इस समय भी यहां अनेक प्रकारके व्यवसायियोंका वास देया जाता है। यह स्थान वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है।

यद्यत्मान जिलेमें परती जमीन दृष्टिगोचर नहीं होती, यहां प्रायः सर्पत ही जेतो होती है।

यहां पन्थ-पशुओंके मध्य रानीगंजके जंगलमें अल्प संख्याक श्याम, गालू तथा चांते देखे जाने हैं। यहां विप-धर सांघीकी कमी नहीं। पक्षियोंके मध्य यरघुकुण्ड, राजटंस, मयूर, पन्थकपोत, तिसिर तथा बटेर देखे जाने हैं।

अधिकांती तथा अंधकथा।

इन जिलेमें मैरुटे.८० हिन्दू, १८ मुसलमान वयं शेष निम्न धर्मावलम्बी हैं। हिन्दुओंके मध्य चाम्डी तथा सद्गोपकी संख्या ही अधिक है। इसके बाद संख्या-

नुसार यथाक्रममें ब्राह्मण, बाउरो, ग्याला, चानार, होम, यनिया, कायस्थ, कीवसे, तेथी, कलवार, हाथी, तम्बुभा, कर्नाकार, सूडी, नाई, खंडाल, कुम्हार, मोशी, बड़ई। मुसलमानोंके मध्य सभी प्रायः सुन्नी हैं, सिपाही संख्या बहुत ही कम है। अस्तान-सम्प्रदायकी संख्या एक हजारसे अधिक न होगी। उनमें यूरोप तथा यूरोसियोंकी संख्या ही अधिक है। देशी अस्तानोंकी संख्या विरोप नहीं है।

पहले यद्यत्मानकी आबादी बहुत घनी थी। १७६६ ई०में यहां मलेरिया उबरका प्रादुर्भावहुआ। उस समयमें यहांके लोगोंका संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही है। थोड़े दिनोंमें कुछ कुछ उन्नति होने लगी है। मायसे ले कर आवादके प्रथमान्त पर्यन्त यह जिला रूख स्वाभ्य-कर रहता है, इसके बाद वर्षा शरु होनेके साथ ही बर-का भी प्रादुर्भाव होता है। जलके निकटगीसे पैसी रुविधा न रहनेके कारण सर्दी तथा भोजनके क्षणमें बहुतसे लोग पीड़ित हो उठते हैं। किमी किमी-वर्षमें इस जिलावासियोंके ऊपर भीषण विपत्ति दृष्ट पड़ती है। जनसाधारणका विश्वास है कि, देलयेः। र्वाँ हो जानेमें ही जलनिकाशकी असुविधाके कारण बड़ी बड़ी नदियोंकी गति परिवर्तित हो जाती है एवं बाढ़ न आनेके कारण इस जिलेके पूर्वसंचित कूड़े कषाट यथास्थान ज्योंके त्यों रह जाते हैं, छोटी छोटी नदियोंकी धारायें शुष्क पड़ जाती हैं, जिसमें यहांका पानी दूषित हो कर इस जिलेकी अस्वास्थ्यकर बना डालता है। इसीसे इस जिलेकी आर्यदया शुद्ध करनेके निमित्त दामोदर नदीमें पड़ेन खाई खोद कर इस जिलेमें शुद्ध पानीका प्रादुर्भाव किया गया है। यद्यत्मान शहरमें जलकी कलें तैयार की गई हैं तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी विशुद्ध समेव इत्यादि खांदे गये हैं और खांदे जा रहे हैं।

देल्हेकी सुविधाके लिये दामोदर नदीका बांध तैयार होनेके पहले यद्यत्मान जिलेमें नियत समय पर बाढ़ माया करती थी। १७७०, १८२३ तथा १८५५ ई०की बाढ़ोंमें बहुतसे लोगोंकी हानि तथा प्राणोंका संहार हुआ। बांध हो जानेके दिनसे बाढ़का प्रतीक कम हो गया है।

१८६६ ई०में वटुर्धमानमें दुमिक्ष पडा। इस समय यहां मेटे चावलका भाव १॥०) रु० मनसे ले कर ५॥०) रु० तक हो गया था।

वाणिज्य ।

यहां देशी लोगोंके उद्योगसे धोती साड़ी तैयार हो कर कई स्थानोंमें भेजी जाती हैं। सोना, चांदी, पीतल तथा कांसाके बरतन यद्ये तैयार होने हैं। यहांकी जमीन खूब उपजाऊ है, इसलिये इस जिलेमें परती जमीन दृष्टि-गोचर नहीं होती। यहां फसल भी अच्छी उपजतीहै। यहांसे चावल, तमाकू, पाट, चीनी, लवण, देशी धोती, रुई प्रभृति पदार्थ दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं पर्यं यहां बिन्दायती कपड़े, बिन्दायती चीजे, लोहे, लवण, गरम ममाला, नारियल तथा अंडीका तेल दूसरे दूसरे स्थानोंमें भाते हैं।

इस जिलेमें इष्ट-इण्डिया रेलवेके मैमारी, शक्तिगढ़, वर्द्धमान, कानून्कसन, पानागढ़, दुर्गापुर, अंडाल, रानीगंज, सिपारसोल, निमचा, आसनसोल, सोतारामपुर, बराकर, गुप्तकर तथा भेदिया प्रभृति स्टेशनोंसे ही अधिकांश वस्तुएं आती तथा भेजी जाती हैं। रानीगंजमें कम्पनीका एक बड़ा कारखाना है। इसमें पाश्, ईंटा तथा नाना प्रकारकी सुन्दर मुन्दर चीजे तैयार होती हैं।

इस जिलेमें चार जेलखाने तथा १७ थाने हैं। उनमेंसे ८ थाने मद्रके अधीन है, जैसे—वर्द्धमान, साहेबगञ्ज, खंडघोष, गयना, गांगुड़, सलीमाबाद, बुदबुद तथा धौंस ग्राम। ३ थाने रानीगञ्जके अधीन हैं, जैसे—रानीगञ्ज, आसनसोल तथा ककसा। तीन थाने काँटोयाके अधीन केनूग्राम, काँटोया तथा मङ्गलकोट पर्यं तीन थाने कालनाके अधीन जैसे—कालना, पूर्वास्थली और मन्नेश्वर। ये सब फिर ७१ परगनेमें विभक्त हैं। इनके अलावा १० मस्प-ताल हैं।

३ उक्त जिलेका सदर महकुमा। यह अक्षा० २२° ५६' से ले कर २३° ३७' उ० तथा देशा० ८७° २६' से ले कर ८८° १४' पू० तक विस्तृत है। भू परिमाण १२६८ वर्ग-मील है। यहांकी जनसंख्या ६७१४१२ है। महकुमेमें एक शहर वर्द्धमान और १६८८ गाँव लगते हैं।

उक्त जिलेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा०

२३° १४' तथा देशा० ८७° ५१' पू०के मध्य बाँका नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ३५०२२ है, जिनमें हिन्दू-की ही संख्या ज्यादा है। यहां तेलकी दो कले हैं। १८८४ ई०में यहां पानी कल बनाई गई है। इसके बनाने-में दो लाख रुपये खर्च हुए थे जिसमें एक लाख महाराजकी ओरसे मिला था। यहां एक फेदखाना है जिसमें २५६ फीदी रखे जाते हैं। यहांका प्रधान वाणिज्य सुरकी, तेल और नेवार है। यहां एक वर्द्धमानराज कालेज है जिसमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। इसके अलावा यहां एक टेकनिकल स्कूल भी है जिसका खर्च ट्रिस्टिड्ट-बोर्डसे चलता है।

१८६३ ई०से इस शहरमें एक अनर्थकर ज्वरका प्रातुर्भाव हुआ है। इस समय म्मुनिस्पलिटोका प्रबन्ध हो जानेके कारण वर्द्धमान शहरका बहुत कुछ उन्नति हुई है। पहले यहां वर्द्धमान विभागके कमिश्नर साहय रहते थे। यहां के वर्द्धमान नरेशका सुदृढत्व प्रासाद, उनके बनाये हुए १०८ शिव मन्दिरे तथा पौरवरहम मन्जिदु खेखनेवांथ हैं। १६२४ ई०में शाहजादा म्मुर्म ( शाहजहा ) ने वर्द्धमान पर अधिकार जमाया। १६६५ ई०में गोमासिंहने वर्द्धमानाधिपतिको मार कर वटुर्धमान पर अधिकार कर लिया था। अन्तमें वटुर्धमानकी राजकुमारोके हाथसे उनको आगु शेष हुई; वटुर्धमान जिलेके इतिहासप्रसंगमें यह वान पहले ही लिखो जा चुकी है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेका बड़ा स्टेशन है। यहांका सीताभोग तथा मांतो-चूर प्रसिद्ध है।

वर्द्धमान ( मधुवर्द्धमान )—उत्तर भारतकी काश्मोर उप-द्वेपकाके पूर्ण एक सुदोर्घ उपद्वेपका। ये दोनों उपद्वेपकाये एक ऊँचे पर्वत द्वारा परस्पर अलग हैं। यह उत्तर दक्षिण प्रायः ४० मील लम्बा पर्यं चौड़ाई प्रायः आधा मील। इसके चारों सीमाओं पर पर्वत-श्रेणियाँ सुपारावृत शिखर-से स्थित हैं। चारों ओर ऊँचे ऊँचे पर्वतोंके रहनेके कारण इसकी निम्नभूमि तक सूर्यकी किरणें नहीं पहुंच सकने। वर्द्धमान नदी इस पर्वतमालाकी पार करती हुई चन्द्रभागासे जा मिली है। यहां कई एक प्रामोंमें बहुत कम लोगोंका वास है। ये लोग यहाँकी घोर सर्दी वहाँस्त नहीं कर सकते।

गोघाट, कीतलपुर, रायना तथा सलोमपुर से २४ ग्राम प्रदान है। इन सब ग्रामोंमें लोगोंकी घनी आबादी है।

उक्त नगर तथा ग्रामोंके मध्य कलना वाणिज्यका केंद्रस्थान है। मुसलमानोंके अमलदारीमें भी यह स्थान बहुत मशहूरनाली था। उस समय कालनाके पास ही नर संग नदी बहती थी। प्राचीन कालमें इस समय वाणिज्यका केन्द्र न होने पर भी बहुतसे सम्मान्त लोगोंका वास है। बहुतसे दूकानोंमें परिपूर्ण नये कालनेका निर्माण एवं प्राग नरनेके बड़े यत्नमें किया है। रानीगंज की बीपलेकी गान सारे संसारमें विख्यात है।

रानीगंज देखो।

जहानाबाद शारिकेअरके तोरस्थित है। यहां महकुमा तथा बहुतसे खानान लोगोंका वास है। घालीग्राम भी शारिकेअरके तोर वास है। पहले यह स्थान ब्राह्मण तथा कायस्थोंका वासस्थान हो रहा था। गागीरगी तथा अजयनदके संगम पर कांटोया नगरी अवस्थित है, यहां बहुतसे धनियाँका वास है। बहुत पहलेसे ही कांटोयाकी मसूदिका परिचय पाया जाता है। नयाव अजयनदी धाँके समय मराठोंके उत्पातसे कांटोयाकी घड़ी क्षति हुई थी। इस समय भी यह नगर वाणिज्यका एक प्रधान स्थान गिना जाता है। कांटोया देखो।

बौंदाट भागीरथीके तोर पर विद्यमान है। पहले यह स्थान भी बहुत उन्नति पर था। इस समय भी यहां अनेक प्रकारके व्यवसायियोंका वास देखा जाता है। यह स्थान वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है।

यह स्थान जिलेमें परती जमीन दृष्टिगोचर नहीं होती, यहां प्रायः सर्वत्र ही चैती होती है।

यहां अन्य पशुओंके मध्य रानीगंजके अंगुलमें अल्प संगवक, व्याघ्र, भालू तथा खोते भूँचे जाने हैं। यहां विषय पर साँपोंकी बसी नहीं। पहिरियोंके मध्य वन्यशुद्ध, राजहंस, मयूर, वन्यकपीत, तिस्र तथा बटेर भूँचे जाने हैं।

अधिकांश तथा अरण्या।

इस जिलेमें सैकड़ों ८० दिग्भू, १८ मुसलमान एवं शेष निम्न वर्गवाचक हैं। दिग्भूओंके मध्य पाथी तथा सहनोवकी संख्या ही अधिक है। इसके बाद संख्या-

नुसार यथाक्रमसे ब्राह्मण, बाउरो, ग्याला, चमार, सोम, बनिया, कायस्थ, फैयल, नेची, कलवार, हाफ़ी, तनुमा, कर्नाकार, सूडी, नार, चंडाल, कुमार, मोदी, बर्दा। मुसलमानोंके मध्य सभी प्रायः सुन्नी हैं, सिवाकी संख्या बहुत ही कम है। छस्तान-सम्प्रदायकी संख्या एक हजारसे अधिक न होगी। उनमें यूरोप तथा यूरेसिया की संख्या ही अधिक है। देगी छस्तानोंकी संख्या विशेष नहीं है।

पहले यहाँमानकी आबादी बहुत गनी थी। १७६६ ई०में यहां मलेरिया उबरका प्रादुर्भाव हुआ। उस समयसे यहांके लोगोंकी संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही है। थोड़े दिनोंमें कुछ कुछ उन्नति होने लगी है। प्रायः ले कर आवाटके प्रथमार्ध पर्यन्त यह जिला एक स्वायत्त-कार रहता है, इसके बाद बयो जन होनेके साथ ही उपाका भी प्रादुर्भाव होता है। जलके निकासकी चेती सुविधा न रहनेके कारण सर्दी तथा भोजनके क्षयमें बहुतसे लोग पीडित हो उठते हैं। किसी किसी वर्षमें इस जिलावासियोंके ऊपर भीषण विपत्ति घट पड़ती है। जनसाधारणका विश्वास है कि, रेलवे का बाँव हो जानेसे ही जननिकासकी बाधुविधाके कारण बड़ी बड़ी गर्दियोंकी गति परिवर्तित हो जाती है एवं बाढ़ न आनेके कारण इस जिलेके पूर्वार्धमें कुछ वर्षाट यथान्याय ज्योंके त्यों १६ जाते हैं, छोटी छोटी नदियोंका धारायें शुष्क पड़ जाती हैं, जिससे यहांका पानी दूषित हो कर इस जिलेकी अस्वास्थ्यकर बना डालता है। इसीसे इस जिलेकी आरथया शुद्ध करनेके निमित्त दामोदर नदीसे पट्टेन खाई खोद कर इस जिलेमें शुद्ध पानीका प्रादुर्भाव किया गया है। यद्युधामान शहरमें जनकी कुल संख्या की गई है तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी विशुद्ध सरोवर स्थापना को दे गये हैं और खाँदे जा रहे हैं।

रेलवेकी सुविधाके लिये दामोदर नदीका बाँध तैयार होनेके पहले यद्युधामान जिलेमें नियत समय पर बाढ़ आया करती थी। १७७०, १८२३ तथा १८५६ ई०की बाढ़ोंमें बहुतसे लोगोंका हानि तथा प्राणोंका संहात हुआ। बाँध हो जानेके दिनसे बाढ़का प्रकोप कम हो गया है।

परगनेके पर्वत शाल तथा सेगुन वृक्षोंके जंगलसे परिपूर्ण हैं। इन सब पर्वत श्रेणियोंके बीचकी उपत्यका बहुत उपजाऊ हैं।

इस जिलेके उत्तर विभागसे तलेग्राम, भिचलो, घाम-कुण्ड तथा खानग्राम नामक पहाड़ों रास्ता नागपुरकी ओर गया है। इन सब पर्वतमालाओंके मध्य मालेगाँव, नन्दगाँव तथा जैतगढ़का (२०८६ फीट) शिखर सबसे ऊँचा है। उन्हींके मध्य हो कर फिर पर्वतमालाप्रवृत्त जलराशिकी अववाहिका भूमि है। कई एक छोटी छोटी नदियाँ कल-कल गीत गाती उन गिरिकन्द्राओंको पार करती हुई पर्वत पार्वर्द्धस्थित निम्नप्रदेशके समतल प्रायसे प्रवाहित हो कर, यदासलिलमें आ कर मिल गई हैं। इन सबोंमें घाम, चोर, अशोड़ा तथा बसा नामक कई शाखाएँ यदाका कलेवर पुष्ट कर रही हैं। बड़े बड़े वृक्षोंमें यहाँ आम, इमली, बटवृक्ष तथा पोपल देखे जाते हैं। पूर्वाविभागके जंगलोंमें उस तरहके दीर्घाकार वृक्ष नहीं पाये जाते। द्विगनघाट-सहस्रील तथा गिराइनगर के भास पासकी भूमिके नीचे मीठे जलका प्रवाह है।

विगत छः शताब्दीसे पूर्व शैब ख्वाजा फरीद नामक एक मुसलमान साधु यहाँके पर्वतशिखर पर बान करते थे। प्रवाद है, कि एक समय कई एक व्यापारी लोग नारियल ले कर व्यापार करनेके निमित्त उस स्थानसे हो कर जा रहे थे। उस मुसलमान-साधुको आइम्बरी समझ कर उन्हें कुछ तोषे बचन सुनाये। इससे साधुके हृदयमें क्रोधका संचार हुआ एवं उनके अभिशापसे सभी नारियल पत्थररूपमें परिणत हो कर पर्वतके चट्टानोंमें मिल गये। अभी इस पर्वतके शिखर पर बहुतसे मुसलमान साधु रहते हैं।

यहाँ विशेष कोई खनिज पदार्थ नहीं पाया जाता। पर्वतोंसे जो कई प्रकारके पत्थर पाये जाते हैं, वे घर बनानेके बलाये किसी काममें नहीं आते। किसी स्थानमें चूनेके पत्थर पाये जाते हैं, उन पत्थरोंको भस्म करके चूना तैयार किया जाता है। यहाँ पलैगस्टोन तथा ब्लैकवेसल्ट नामक पत्थरोंका समाय नहीं है।

यहाँके जङ्गलोंमें नीता, नेकड़ा, बनबराह तथा बनश्यामल इत्यादि जानवर बहुत देखे जाते हैं। यहाँके

पर्वतभागमें हिरण, नीलगाय तथा भेड़ प्रभृति जन्तु दृष्टिगोचर होते हैं। पक्षियोंके मध्य तिलिटर, टिट्टिम, बटेर, पांचवैय कपोत आदि प्रधान हैं। सभी प्रकारके सर्प तथा शतपदी एवं वृद्धकाय विच्छेद रंगते नजर आते हैं।

यद्यपि यहाँके प्राचीन इतिहासके सम्यग्धर्म विशेष बातें पार्ई नहीं ज्ञातीं, तथापि महामारतको उक्ति तथा स्थानीय प्रवादोंसे जाना जाता है, कि यहाँका उत्तर-पश्चिम अंश विदर्भराज भीष्मकके शासनार्थात था। भगवान् श्रीकृष्णने इसी भीष्मक राजाको वेदो रुचिमणो देवोका पाणिग्रहण किया था।

दक्षिण-पूर्वांशमें गौली जातिका निवास था। सूर्य-वंशी क्षत्रिय राजा पवन पौण्डरने पत्नी तथा पशुभा नामक स्थानोंमें अपना अधिकार जमा लिया था। प्रवाद है, उनको एक पारस पत्थर था। जब प्रजा राजकर आदाय नहीं कर सकतो थी, तब राजाको राजकरमें लोहेकी फाल दी दिया करती थी। वे लोहेकी फाल उस पारस पत्थरके स्पर्शसे सोनेमें परिणत हो जाती थी।

अन्तमें सैयद सालार कबीर नामक एक मुसलमान जादूगर यहाँ पहुंचा। उसने जादू बलसे राजाके शिरके समान एक दूसरा शिर तैयार कर एवं अपने शिरको एक गुप्त स्थानमें रख राजाके भेषसे नगरमें प्रवेश किया। राजाने कबीरका प्रमाथ देख, लांछनाके भयसे पीनरगढ़की सामनेवाली घाम पुष्करिणीके जलमें प्रवेश किया। उस दिनसे जलके अन्दर नाना प्रकारके भीतिक चित्र दिखाई पड़ने हैं।

किम्बदन्तो है कि, एक समय एक चरवाहा उसी नदीके किनारे गाय चरा रहा था। अपनी गीलोंके फुएडमें एक काले बछड़ेको घूमते देख कर उसने सोचा—यह बछड़ा किसका है? बहुत दिनोंसे यह हमारे गो फुएडमें सम्मिलित हो कर चरने आता है, किन्तु कभी इसे अपने मालिकके पास जाते नहीं देखता। इसका कारण क्या है? ऐसा सोच कर वह धीरे धीरे उस बछड़ेके पास गया और पूछा—तुम किसके बछड़े हो? उस बछड़ेने इस प्रश्नका कुछ



वर्द्धमान—स्वनामकगत बहुतेक प्रयुक्तार्थ। १ नानक-विस्तरके रचयिता। २ क्रियागुरुक, सिद्धपराजयर्णन और गणरत्नमनोदधिकके प्रणेता। इन्होंने ११४० ई०में शैवोक्त प्रथकी एक टोका लिखी थी। सुप्रसिद्ध पण्डित गोविन्द शूर इनके गुरु थे। ३ नागानागार्थातिर्णके रचयिता। ४ धाराप्रदीपके प्रणेता। ५ एक मात्रान कवि। ६ एक विश्वाम ज्योतिषी। धर्माहिम्नके इनका नामोन्लेख किया है।

वर्द्धमान उपाध्याय—१ एक प्रथकार। इन्होंने किरणायली प्रकाश, पण्डितपण्डित्याध्यायप्रकाश, तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश, न्यायसुसमाह्वलिप्रकाश, न्यायनिघन्तुप्रकाश, श्यायर्षि निघ-प्रकाश, न्यायश्लोकायनी प्रकाश तथा प्रमेयतथ्ययोच आदि ग्रन्थोंकी रचना की। ये गङ्गेश या गङ्गाश्वरके पुत्र थे।

२ एक विष्णुवात पण्डित। ये कथिधेष्ट और महाधर्म-चिरात भवेनके पुत्र थे। इन्होंने भवने वितासे वद्धा था। ये गङ्गाश्वरविद्येक, इण्डविद्येक, धर्मप्रदीप, परिभाषा-विद्येक, स्मृतितत्त्वविद्येक, स्मृतिनश्यामृत, स्मृतितत्त्वा-मृत, मागेदार और स्मृति परिभाषा आदि ग्रन्थ बनाये। रघुनन्दन, कमलाकर और केशवने इनका मत उद्धृत किया है।

वर्द्धमानक ( सं० लि० ) वर्द्धमान स्वर्ण संघाया या कन् । १ पूर्वविनिघट, बढानेवाला। ( पु० ) २ नराव। ३ परण्ड-पुत्र, देनाका पुत्र। ४ भारतिक, भारती।

वर्द्धमानगणि—कुमाग्रप्रतिष्ठाकव्यके रचयिता। ये हेमचन्द्रके शिष्य थे।

वर्द्धमानद्वार ( सं० श्लो० ) १ वर्द्धमानका प्रवेशद्वार। २ हस्तिनापुर राज्यका प्रवेशद्वार।

वर्द्धमानपुर ( सं० श्लो० ) ग्रामविशेष, गुजरातका एक प्रधान नगर।

वर्द्धमानपुरीय ( सं० लि० ) वर्द्धमान नगर-सम्बन्धीय।  
वर्द्धमानपति ( सं० पु० ) वर्द्धमानस्य पतिः। वर्द्धमान-पुरके अधिपति।

वर्द्धमानमति ( सं० पु० ) शोषिसरस्यमेद्।

वर्द्धमान मिध—एक पुस्तक-प्रणेता। इन्होंने वर्द्धमान-प्राक्त्या नामक एक व्याकरणा लिखा।

वर्द्धमानसूक्त ( सं० श्लो० ) सृष्टकर्म, जोर मिला हुआ

महा। इसके बनानेका तरीका—दही मय कर उसमें यथा प्रमाण गुड़, मिर्च, सोंठ, पोपर, जोरा इन सबोका प्युर्ण मिलाये। उसके बाद अच्छी तरह हाथसे पीटे। पीटे पके बनारका रस उसमें मिला कर उसे षपट्टेसे छान ले। इस तरह जो महा तीया किया जाता है, उसको वर्द्धमानसूक्त कहते हैं। यह सूक्त गुण, अग्निशोष-कर, बलकारक, वृत्तिकारक, कफ, घात, पित्त, धम, भ्रान्ति और क्षुण्णानाशक होता है। ( वैद्यकनि० इण्डिय० )

वर्द्धमानसूरि—एक जैनसूरिका नाम। ये भगवद्देवके शिष्य तथा १०३२ ई०में विद्यमान थे। इन्होंने बधा-कोप या शरणरत्नायली तथा उपमितमय-प्रयत्ननाम-समुच्चय ११८८ संवत्में लिखा था।

वर्द्धमान स्वामी—एक जैन तीर्थाङ्करका नाम। महावीर देवो। वर्द्धमानेन ( सं० पु० ) वर्द्धमानस्य ईशः। वर्द्धमान-पुरके राजा। २ शिवलिङ्ग और मन्त्रिस्मेद।

वर्द्धमित् ( सं० लि० ) वर्द्धमान-विष्णु चू । वर्द्धमानकार, बढानेवाला।

वर्द्धा—मध्यप्रदेशके चोफ कमिश्नरके अधीनस्थ एक जिला यह अक्षा० २०° १८' से ले कर २१° २२' उ० तथा देशा० ७८° ३' से ले कर ७६° १४' पू० तक विस्तृत है। यह जिला त्रिकोणाकृति है। इसके पादमूलमें गान्धा जिला, पूर्वमें नागपुर तथा पश्चिममें वर्द्धानदी बहनेके कारण घेरासे यह अलग है। इसका भूपरिमाण २४२८ वर्गमील और जनसंख्या ३८५१०३ है। इस जिलेमें १०६ शहर और गाँव लगने हैं। जिलेके अन्दर ४ निम्नलिखित इंगलिज स्कूल, ८ वर्नाक्यूलर मिचिल स्कूल और ८८ प्राथमिक स्कूल हैं। इनके अलावे १० अस्पताल और १ मधेनी अस्पताल हैं।

इस जिलेकी अधिकांश भूमि वर्षातीर्ष भरी है। मन्-पुरा वर्द्धामालाकी एक गाथा उलरसे ले कर इस जिलेकी दक्षिण-पूर्वकी भूमि तक फैली हुई है। इसकी कमीक-निम्न तथा पथराली भूमिमें विशेष कीड़े वृक्ष लता तथा जल्पादि उत्पन्न नहीं होता। प्रोप्राप्त्युक्त वर्द्धानके द्वाद-शंशमें छोड़े बहुत धातु-खतार वैशु होने हैं। वर्द्धा-सूक्तके बाद ये सब स्थान पूर्णरूपसे मृत्पायत्र हो जाते हैं। उस समय गो, महिष आदि पशु दल बाँप कर वहाँ रुण इत्यादि चरने आते हैं। बघा तथा बन्धाको

पर्वतके पर्वत शाल तथा सेगुन वृक्षोंके जंगलसे परि-  
पूर्ण हैं। इन सब पर्वत श्रेणियोंके बीचकी उपत्यका  
बहुत उपजाऊ हैं।

इस जिलेके उत्तर विभागसे तलेग्राम, बिचली, धाम-  
कुण्ड तथा खानग्राम नामक पहाड़ा रास्ता नागपुरकी  
ओर गया है। इन सब पर्वतमालाओंके मध्य मालेगाँव,  
नन्दगाँव तथा जैलगढ़का (२०८६ फीट) शिखर सबसे  
ऊँचा है। उन्हींके मध्य हो कर फिर पर्वतमालाप्रखन  
जलराजिकी अववाहिका भूमि है। कई एक छोटी छोटी  
नदियाँ कल-कल गीत गाती उस गिरिकन्द्राओंको पार  
करती हुई पर्वत पार्श्वस्थित निम्नप्रदेशके समतल  
प्रायतसे प्रवाहित हो कर, धर्दासलिलमें आ कर मिल गई  
हैं। इन सबोंमें धाम, घोर, बजोड़ा तथा बसा नामक  
कई शाखाएँ धर्दाका कलेवर पुष्ट कर रही हैं। बड़े बड़े  
वृक्षोंमें यहाँ आम, इमली, बटवृक्ष तथा पीपल देखे जाते  
हैं। पूर्वोत्तरीभागके जंगलोंमें उस तरहके दीर्घाकार वृक्ष  
नहीं पाये जाते। हिमनघाट-तहसील तथा गिराइनगर  
के आस पासकी भूमिके नीचे मोटे जलका प्रवाह है।

विगत छः शताब्दीसे पूर्व शेर ख्वाजा फरीद  
नामक एक मुसलमान साधु यहाँके पर्वतशिखर पर बान  
करते थे। प्रवाद है, कि एक समय कई एक व्यापारी लोग  
नारियल ले कर व्यापार करनेके निमित्त उस स्थानसे  
हो कर जा रहे थे। उस मुसलमान-साधुको आडम्बरी  
समक कर उन्हें कुछ तोषे बचन सुनाये। इससे साधुके  
हृदयमें क्रोधका संचार हुआ एवं उनके अभिशापसे सभी  
नारियल पत्थररूपमें परिणत हो कर पर्वतके चट्टानोंमें  
मिल गये। अभी इस पर्वतके शिखर पर बहुतसे मुसल-  
मान साधु रहते हैं।

यहाँ विशेष कोई खनिज पदार्थ नहीं पाया जाना।  
पर्वतोंसे जो कई प्रकारके पत्थर पाये जाते हैं, वे घर  
बनानेके लिये किसी काममें नहीं आते। किसी  
स्थानमें चूनेके पत्थर पाये जाते हैं, उन पत्थरोंको भरम  
करके चूना तैयार किया जाता है। यहाँ फ्लैगस्टोन  
तथा ब्लैकषैलस्ट नामक पत्थरोंका समाय नहीं है।

यहाँके जङ्गलोंमें चोता, नेकड़ा, बनबराह तथा बन-  
श्यामल इत्यादि जानवर बहुत देखे जाते हैं। यहाँके

पर्वतभागमें हिरण, नीलगाय तथा भेंड़ प्रभृति जन्तु  
दृष्टिगोचर होते हैं। पक्षियोंके मध्य तित्तिर, टिट्ठिम,  
बटेर, पार्वत्य कपोत आदि प्रधान हैं। सभी प्रकारके  
सर्प तथा शतपदी एवं वृद्धत्वाय विच्छेद रंगते नजर  
आते हैं।

यद्यपि यहाँके प्राचीन इतिहासके सम्यग्धमें विशेष  
बाते पाई नहीं जातों, तथापि महाभारतका उक्ति तथा  
स्थानीय प्रवादोंसे जाना जाता है, कि यहाँका उत्तर-पश्चिम  
अंश विदर्भराज भोष्मकके शासनाधीन था। भगवान्  
श्रीकृष्णने इसी भोष्मक राजाकी बेटी रुक्मिणी देवीका  
पाणिग्रहण किया था।

दक्षिण-पूर्वांशमें गौली जातिका निवास था। सूर्य-  
यंत्री क्षत्रिय राजा एवन पीणारने पशु तथा पशुभा  
नामक स्थानोंमें अपना अधिकार जमा लिया था।  
प्रवाद है, उनका एक पारस पत्थर था। जब प्रजा राजकर  
आशय नहीं कर सकते थीं, तब राजाको राजकरमें  
लोहेकी फाल हो दिया करती थी। ये लोहेकी फाल  
उस पारस पत्थरके स्वर्णसे सोनेमें परिणत हो  
जाती थी।

अन्तमें सैयद सालार कबोर नामक एक मुसलमान  
जादूगर यहाँ पहुँचा। उसने जादू बलसे राजाके गिरके  
समान एक दूसरा शिर तैयार कर एवं अपने गिरको  
एक गुप्त स्थानमें रख राजाके भेपसे नगरमें प्रवेश किया।  
राजाने कबोरका प्रभाव देख, लाँछनाके भयसे पीनरगढ़-  
की सामनेवाली घाम पुष्करिणीके जलमें प्रवेश किया।  
उस दिनसे जलके अन्दर नाना प्रकारके मौक्तिक चित्र  
दिखाई पड़ते हैं।

किम्बदन्ती है कि, एक समय एक चरवाहा  
उसी नदीके किनारे गाय चरा रहा था। अपनी  
गीओंके झुण्डमें एक काले बछड़ेको घूमते देख  
कर उसने सोचा—यह बछड़ा किसका है? बहुत  
दिनोंसे यह हमारे गो झुण्डमें सम्मिलित हो कर  
चरने आता है, किन्तु कर्मा इसे अपने मालिकके पास  
जाते नहीं देखता। इसका कारण क्या है? ऐसा सोच  
कर यह घोर घोर उस बछड़ेके पास गया और पूछा—  
तुम किसके बछड़े हो? उस बछड़ेने इस प्रश्नका कुछ

है। भवानोको मैथिलका यज्ञांगनामग इम रमका सेवन करतो है, इसीलिये उनके शरीर अत्यन्त सुगन्धमय होने हैं। उनके अङ्गका अङ्गराग लगा कर वायु चारों ओर दान योजन तकके श्रेय जन्मुभोको आमोदित करतो है।

अश्वत्थके फल हाथोके बराबर स्थूल होने हैं। उनके बीज बहुत ही छोटे होने हैं। ये सब फल बहुत ही ऊँचे से गिरनेके कारण फट जाते हैं, उस समय उनके रससे जम्बू नदी नामक एक नदी निकलती है। यही नदी मेघ मन्वर पर्वतकी शिखरसे होती हुई अश्वत्थ योजन चल कर भूमण्डल पर जाती है। यह जिस स्थान पर गिरती है, उस स्थानसे अपना दक्षिण ओर सारे इलाकृत वर्षमें प्रवाहित होती है। इस नदीको मिट्रो उसके जलसे अनुपिद्ध हो कर वायु तथा सूर्यके संयोगसे विशेष पक्वता पा कर जम्बूनद अर्थात् सुवर्णमें परिणत हो जाती है। यह सुवर्ण ही अमर तथा अमरकामिनियोंके अलंकार है।

सुपाश्र्व पर्वतके पास महा कदम्ब नामक एक वृक्ष है। इसके गोदुरेके पंच श्याम परिमित पांच मधुघाराएँ निकलती हैं। एवं पर्वत शिखर पर गिर कर पश्चिमस्थ इलाकृतवर्षको अपनी सुगन्धसे आमोदित करतो हैं। जो लोग इस पर्वतकी मधुघाराका सेवन करते हैं, उनके मुखको हवासे चारों ओरका शत योजनश्यापी भूभाग सुपाश्र्वित होता है।

कुमुद पर्वत पर शतपलना नामक एक वटवृक्ष है। उसके स्वस्वभागमें दधि, दुग्ध, घृत, गुड़, अन्न प्रभृति तथा वसन, भूषण, शयन, भासनादि अमीरित्त वस्तु दोहनवाला सब इस पर्वतके समभागमें होना हुआ। उत्तरकी ओर चल कर इलाकृतवासियोंका बहुत ही उपकार करना है। यहाँके अधिवासी इन सब सामग्रियोंका सेवन करनेके कारण कर्मों में अद्भुतपुरुष, यज्ञान्ति, धर्म, जरा, रोग, अयमृत्यु, जीत भादि कुछ भी उत्सर्ग भोग नहीं करने। इसलिये इस वर्षके अधिवासी सात्त्विक केवल शुरुका ही उपयोग करते हैं।

अमोघके जिस ६ पुत्रोंके नाममें ६ वर्षोंका नामकरण हुआ है, उन पुत्रोंमें शामि सबसे बड़े थे। यद्यपि

शामि ही वर्षके अधिपति थे तथापि उनके पाँच भ्रात्रे नाम पर ही यह वर्ष प्रसिद्ध है। नामिके पुत्र क्षयम थे। क्षयमके द्वारा ही प्रसिद्ध भरतराजका जन्म हुआ। भरतके नामानुसार ही इस वर्षका नाम भारतवर्ष हुआ। भरतके पिता क्षयमने अजनाभ नामक एक विधिद मर्दन पर अधिकार कर लिया था, इसीलिये उनके अधिराज्य सभी वर्ष अजनाभ नामसे विख्यात थे। पाँचों उनके पुत्र भरत राजा हुए, उन्हींके नामसे यह वर्ष विख्यात है।

इस भारतवर्षमें बहुतसी नदियाँ तथा पर्वत श्रेणियाँ हैं। पर्वतोंके मध्य मलय, मंगलप्रस्थ, मैतक, तिकूट, श्यम, फूटक, कोष्य, सहा, देवगिरि, श्यमभू, शीवीन, चैकट, महेन्द्र, चारिघार, विन्ध्य, सुक्तिमान, श्यमगिरि, परिपाल, द्रोण, चिलकूट, गोवर्द्धन, रैयतक, ककुभ, गौर, कोकामुप तथा इन्द्रकोल तथा कामगिरि ये कितनेही पर्वत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनके अलावे और भी कई सौ पर्वत हैं, जिनकी गिनती नहीं हो सकती।

उक्त पर्वतोंसे कितनी ही नदियाँ निकल कर भारतवर्षकी भूमिको सोंच रही हैं, उन सबोंको संख्या करना भी असम्भव है। इन सब नदयोंके जलसे भारतकी स्थान पानाववाहन समाधान करतो है। उनमें यन्द्रयगा, ताप्रवर्णी, अयटोदा, कृतमाला, यैदायनी, कावेरी, वेणवा, पयस्विनी, शर्करावर्त्ता, दुङ्गभद्रा, कल्याणेश, मोन्दरवी, मोदायरी, तिर्यिन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरमा, नर्मदा, चर्मण्यती, अश्वनद ( ब्रह्मपुत्र ), साननद, मरानदी, वेदस्मृति, तिस्रोमा, कीजिकी, मन्दाकिनी, यमुनी, सरथता, दशरती, गोमती, सरयू, शोषयती पङ्कती, समयनी, सुयमा, शतद्रु, चम्पूमागा,

धसिक्ती तथा विपाना नदियोंके नाम

हैं। परन्तु भारतवर्षके हैं। मनुष्य साहित्यक, साम्बिक मानुषी तथा नारकी पर्वतोंकी जिन तरह उसी विधिका प्राप्त होते हैं।

कर्मक्षेत्र कहते हैं। दूसरे दूसरे आठों वर्षों स्वर्गोप-  
लोगोंके पुण्यका फल उपभोग करनेके स्थान हैं।

जम्बूद्वीप भारतवर्षके अतिरिक्त अन्त्यान्य आठों वर्षोंमें  
जो पुण्य वास करते हैं, उनकी पुण्य परिमाणसे अयुत-  
वर्ष परमायु, अयुत दस्तोकै तुल्य बल एवं वज्रवत्  
सुदृढ़ शरीर गठन होती है। उनका शरीर इस तरह  
बल, जीवन तथा ध्यानसे परिपूर्ण है कि, उनके द्वारा  
महासुरत व्यापारसे खोपुण्य अत्यन्त आनन्दित होते हैं  
एवं सम्भोगके अन्तमें एक वर्ष आयु शेष रहने पर उनकी  
स्त्रियाँ सिर्फ एक बार गर्भ धारण करती हैं। इस तरहसे  
वियम सुखकी उन्नतिके कारण इन सब वर्षोंके लोग  
हेतायुगकी तरह अत्यन्त आमोदममोदमें जीवन  
विताने हैं।

इन सब वर्षोंमें देवाधिपतिगण अपने अपने अनुचर  
तथा परिचारकोंके द्वारा पूजित होते हैं। वे स्वच्छा-  
नुसार आश्रमोंमें एवं गिरिगह्वर तथा धमल जलाशयोंमें  
क्रीडा करके समय वितारते हैं। यहाँकी सुरसुन्दरियोंकी  
जलक्रीडा तथा अत्यान्य कामोन्मादियोंके मन्विलास  
दास्य एवं लोलाललित दृष्टिमिक्षेपसे यहाँके पुरुषोंका  
चित्त तथा नेत्र आकृष्ट हो जाते हैं।

इन सब वर्षस्थित आश्रमायतनोंमें जिन पुरुषोंके विहार  
करनेकी बातें लिखी गई हैं, उनकी गोमा अथर्वीय है।  
यहाँके वृक्षोंकी शाया प्रशोषण सभी ऋतुओंमें पुण्य  
फल फलों तथा नये पल्लवके बोझसे सुधी रहती है।  
उन शाखाओं पर बहुत-सी लताएँ लदलहा रहो हैं।  
फिर यहाँके जलाशयोंकी गोमा देल घर आँखें वृत्त नहीं  
होती। इनके स्वच्छ सुमिष्ट सलिलके मध्य नये नये फल  
खिलते हैं, उनके स्वर्गीय सौरभसे वह स्थान सुवासपूर्ण  
हो उठता है। राजहंस, जलकृपाट तथा कार्दम प्रभृति  
पक्षियोंके कलालाप एवं झमरोंकी मधुर कंकारसे यहाँ  
विहार करनेवाले देवाधिपतियोंके मन अन्यायम हो मुग्ध  
हो जाते हैं।

उन्मिलित नयों वर्षोंमें भगवान् नारायण  
विभिन्न मूर्तियोंमें विराजमान हैं। उनमें इलानूत  
वर्षमें भगवान् 'भव' ही एकमात्र पुरुष हैं। यहाँ भी  
कोई दूसरा पुरुष नहीं है। कारण यह है, कि जो पुण्य  
भवानीके प्राप्तिसे जानकार हैं, वे यहाँ कभी नहीं जाते।

जो पुण्य भूख कर यहाँ जाते हैं, वे स्त्री-रूपमें परिणत हो  
जाते हैं। इस वर्षमें भगवान् भवकी सेवा भवानी  
तथा उनके अधीन बहुसंख्यक स्त्रियाँ किया करते हैं।

भद्राश्व वर्षमें घमपुत्र भद्रश्रवा नामक वर्षपति एवं  
उनके प्रधान प्रधान सेवकोंका वास है। ये लोग भग-  
वान् हयप्रोथ मूर्त्तिकी आराधना करते हैं।

हरिवर्षमें भगवान् नृसिंह मूर्त्तिमें अवस्थित हैं। परम  
भक्त प्रह्लाद इस वर्षवासों प्रजाओंके साथ अत्यन्त भक्ति-  
से उनकी उपासना करते हैं।

केतुमाल वर्षमें भगवान् कामदेववरुणमें विराजमान हैं।  
लक्ष्मी, संवत्सर एवं उनकी कन्या राज्ञ्याभिमानी देवता  
तथा उनके पुत्र दिवसाभिमानी देवोंका प्रियसाधन ही  
उनकी इच्छा है। उन सब दिवसाभिमानी देवोंकी  
संख्या ३३६ सहस्र है। इन वर्षोंके अधिपति महापुरुष-  
के चक्रेतमने दिवसाभिमानी कन्याओंके मन उद्दिप्त  
होते हैं, उससे उनके गर्भ नष्ट हो कर संवत्सरके अन्तमें  
पतित हो जाते हैं।

रघुवर्षके अधिपति मनु हैं। भगवान् उन्हें मत्स्य-  
मूर्त्तिसे दर्शन देने हैं। मनु अमां भी अत्यन्त भक्तिये  
उसी मूर्त्तिकी उपासना करते हैं।

हिरण्य वर्षमें भगवान् हरि कूर्मशरीर धारण करके  
वियमान हैं। गितुगणके अधिपति अर्ष्यमा इस वर्ष-  
वासों प्रजाओंके साथ निरन्तर उनकी उपासना करते हैं।

उत्तर कुम्भवर्षमें भगवान् गणपुत्र ही यराहमूर्त्ति  
धारण करके विराजमान हैं। देवीपुत्री कुम्भगणके साथ  
अत्यन्त भक्तिये उनकी पूजा करती हैं। किम्पुत्रवर्षमें  
परम भक्त इतुमान् इस वर्षवासों प्रजाओंके साथ भगवान्  
श्रीरामचन्द्रकी उपासना करते हैं।

(भागवत ५ स्कन्ध १-१६ म०)

जम्बूद्वीपस्थ वर्षविभागोंका संक्षिप्त विवरण वर्णन  
किया गया। अब भागवत मतानुसार अन्त्यान्य द्वीपस्थ  
वर्षविभागोंका संक्षिप्त घृत्तान्त वर्णन किया जाता है।

जम्बूद्वीपके बाद प्लक्षद्वीप है। प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीप-  
की अपेक्षा दो गुणा बड़ा है। इस द्वीपमें एक सुवर्णमय  
प्लक्षवृक्ष है। प्रियमतके द्वितीय पुत्र इक्ष्मजिह इस द्वीप-  
के राजा हैं। उन्होंने उस द्वीपको मात भाग्यमें किन्नक

करके अपने एक पुत्रको एक एक वर्षका अधिपति बनाया । उनके मातो पुत्रोंकी नामानुसार ही उन मातो वर्षोंका नामकरण हुआ । यथा—गिव, यवस, सुमद्र, नाम्ब, होम, अनुम तथा शमय । इन मातो वर्षोंमें भी यद्यपि बहुतसी नदनदियां तथा वर्षन धेनोयां हैं तथा सात नदियां एवं सात पर्वत ही यहाँ विद्यमान हैं । उन सात नदियोंके नाम—अद्यन, नृमणा, माङ्गिरसी, माविती, सुप-भाता, प्रतम्भरा तथा मरुवम्भरा । यहाँके उन सातो मोमावर्षोंके नाम—यप्रकूट, मणिपूट, इन्द्रासन, उपोनिमान, सुवर्ण, द्विष्टयष्टोय एवं मेयवाल । इन सब वर्षोंके अधिवासी त्रिदेवमूर्ति सूर्यही उपासना करते हैं ।

शाल्मलक्षोपके अधिपति थे त्रिपयतामत्र यद्यवाद । उन्होंने इन क्षोपको अपने सातो पुत्रोंके बीच सात वर्षोंमें विभक्त करके बाँट दिया । उन पुत्रोंके नामानुसार ही इन मातो वर्षोंका नामकरण हुआ । उन मातो वर्षोंके नाम—सुरोचन, सांगनस्य, रमणक, देवयह, पारिभद्र, आष्यापन तथा भासिजात । इन सातो वर्षोंके सात प्रधान मोमावर्षोंके नाम—सुरस्य, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्ड, सुमुद, पुष्यवर्ण एवं सहस्रश्रुति । सात प्रधान नदियोंके नाम—अनुमति, मिनीवायो, सरस्वती, कुट्ट, रजनी, नन्दा एवं राका । इन वर्षोंवासी लोग ध्रुतिघर, घोषघर, यमुन्धर एवं इमुन्धर नामक चार वर्षोंमें विभक्त हैं । ये लोग वेदमय मोमदेवको उपासना करते हैं ।

कुन्डक्षोप सुरोदनागरके पश्चिमार्गमें है । यह पूर्वोक्त क्षोपको सपेक्षा दो गुना बड़ा है । त्रिपयतके पुत्र द्विष्टय-देवा कुन्डक्षोपके राजा थे । उन्होंने अपने अधिष्टन क्षोप-का सात भाग करके अपने सातो पुत्रोंमें बाँट दिया इन मातो पुत्रोंके नाममें ही ये मातो वर्षों प्रसिद्ध हैं । यथा—वसु, यमुदाम, वृद्धकवि, मांसिगुत, सशयम, विप्र-नता तथा वेदनाम । इन मातो वर्षोंमें सात पर्वत एवं सात नदियां प्रसिद्ध हैं । इन वर्षोंके अधिवासी कौविद, भासिमुक तथा कुट्टक प्रभृति नामसे पुकारे जाते हैं । ये लोग आग्नेय भागमें कर्माहीनयसी भस्मिदेषको उपासना करते हैं ।

कौश्लोपके अधिपति त्रिपयत-पुत्र धूमद्रुष्य थे । उन्होंने इस क्षोपको अपने सातो पुत्रोंके नामसे सात वर्षोंमें विभक्त कर दिया । ये सातो पुत्र इन मातो वर्षोंके अधिपति हुए । उन वर्षोंके नाम—भारता, मधुवद, मेयवृष्ठा, सुषामा, स्राजिष्ठ, शोहितवर्णा तथा यनस्यनि । इन मातो वर्षोंके मध्य सात प्रसिद्ध पर्वत तथा नदियां हैं । इन वर्षोंके अधिवासी पुदय, श्रवम, द्विषिण तथा देवक इन चार वर्षोंमें विभक्त हैं ।

शाकक्षोपके राजा त्रिपयतके पुत्र मेधातिथ्य थे । इस क्षोपका विस्तार ३२ लाख योजन है । मेधातिथ्यने इस क्षोपको सात वर्षोंमें विभक्त कर अपने सातो पुत्रोंके बीच बाँट दिया । उन सातो पुत्रोंके नामानुसार उन मातो वर्षोंके नाम यथाकमसे पुत्रोजय, मनोज, धेयमान, पुना-मोक, चित्ररेक, यद्रूप तथा विश्वाधार हुए । इन मातो वर्षोंमें भी सात नामा पर्वत एवं सात प्रसिद्ध नदियां हैं । उक्त वर्षोंवासी लोग धूमद्रुष्य, मरुवयम, क्षोमयन तथा अनुमत् इन चारों वर्षोंमें विभक्त हैं ।

पुष्करक्षोपके अधिपति त्रिपयतके पुत्र शोतिहोत्र थे । उनके रमणक तथा धातक नामक दो पुत्र हुए । शोतिहोत्र राजाने इस क्षोपको दो वर्षोंमें विभक्त करके अपने क्षोमो पुत्रको वहाँके अधिपति नियुक्त किया :

( भागवत १।१।२।१।२६ तथा २० अ० )

पृथ्वीके मध्यस्थ वर्ष विनामोका संक्षिप्त वर्णन भाग-यतके मतानुसार किया गया । माकण्डेय, यराह, वामन कूर्म प्रभृति पायतोय पुराणप्रयोगोंमें ही कुछ विस्तार पूर्वक वर्षोंविषयण देखा जाता है । विस्तार ही ज्ञानके भावमें वे सभी बाने यहाँ वर्णन नहीं की गई ।

वर्षोंको द्वय अर्थात् ५ मेघ, बादल । ( ति० ) ६ वर्ष कमात । ७ परसर । प्रमवादि उः संवत्सरोका विषय एवं उन संवत्सरोमें पूष्य वा मकारके देवताओंके नामादि ।

गंवरम शारदमें देवते ।

वर्षक ( सं० ति० ) १ वर्षोपशील, बरसनेवाला । २ परसर सम्बन्धो ।

वर्षकर ( सं० पु० ) १ मेघ, बादल । ( ति० ) २ वृष्टिदान करी, वर्षा करनेवाला ।

वर्षकरी ( सं० स्त्री० ) वर्षं तत्सूचनं रवेण करोतीति वर्ष-  
क-ट, डीप । म्निहिका, भींगुर ।

वर्षकर्मन् ( सं० स्त्री० ) १ वर्षणकार्यं । २ वत्सरकृत्य ।

वर्षकाम ( सं० पु० ) घृष्टि प्राधानाकारी, घृष्टिको कामना  
करनेवाला ।

वर्षकामेष्टि ( सं० पु० ) एक यज्ञ जो वर्षाके लिये किया जाता  
था । ( आश्व० भी० २।१३।१ )

वर्षकालो ( सं० स्त्री० ) जोरक, जीरा ।

वर्षकृत्य ( सं० पु० ) वत्सरमें आचरणीय शास्त्रविहित  
कार्यं आदि ।

वर्षकेतु ( सं० पु० ) वर्षस्य घृष्टेः केतुरिय सति वर्षे  
भूरिग उदयनत्वाद्स्य तथात्वं । १ रक्त पुनर्वा, लाल  
गद्दहपूरना । २ अलकवंशीय केतुमालका पुत्र ।

( हरिवंश ३२।४० )

वर्षकोप ( सं० पु० ) वर्षस्य वत्सरस्य कोप इव सर्व-  
वर्षाज्ञानवत्वात् तथात्वमस्य । १ दैवघ्न, ज्योतिषी ।  
२ मौप ।

वर्षगांठ ( द्वि० स्त्री० ) यह कृत्य जो किसी पुरुषके जन्म-  
दिन पर किया जाता है । परगांठ देखो ।

वर्षगिरि ( सं० पु० ) वर्षं पर्वत । वर्षं शब्द देखो ।

वर्षघ्न ( सं० पु० ) १ प्रदोका वह योग जिससे वर्षा नष्ट  
हो जाती है । २ घन ।

वर्षाज ( सं० लि० ) वर्षात् जातमिति जनः । १ घृष्टिजात ।  
२ वत्सरजात, जन्मद्वेषजात । ३ द्वीपांशजात । ४ मेघ-  
जात ।

वर्षण ( सं० स्त्री० ) घृष ल्युट् । १ घृष्टि, वरसना । २ वर्षों-  
पल ।

वर्षणि ( सं० स्त्री० ) घृष-अग्नि । १ वर्चन । २ कृति । ३  
क्रतु । ४ वर्षण, वरसना ।

वर्षघर ( सं० पु० ) १ मेघ, बादल । २ अन्तःपुररक्षक, नपुं-  
सक, खोजा ।

वर्षधर्य ( सं० पु० ) अन्तःपुर-रक्षक, खोजा ।

वर्षधार ( सं० पु० ) नागासुस्मेद ।

वर्षधाराघर ( सं० पु० ) मेघ, बादल ।

वर्षनिर्णिज् ( सं० लि० ) वर्षणकारी, वर्षा करनेवाला ।

'निर्णिकृतयोः रूपवाचो निर्णिव्यतिरिति तन्नामसु

पाठात्, वर्षणं रूपं स्वभाषो येषां ते वर्षनिर्णिजो  
वर्षकाः ।' ( ऋक् ३।२६।४ वाच्य )

वर्षप ( सं० पु० ) वर्षपति, वर्षके अधिपति प्रह ।

वर्षपति ( सं० पु० ) वर्षस्य पतिः । १ वर्षके अधिपति ।

वर्षप्रवेश होने पर कोई न कोई प्रह उस वर्षका  
अधिपति या राजा माना जाता है । किस प्रहके आधि-  
पत्यमें कौन वर्ष कैसा फलप्रद होगा, इसका विस्तृत  
विवरण वर्षाधिप शब्दमें देखो । २ वर्षाधिपति राजगण ।  
पृथ्यो सात द्वीपोंमें विभक्त है । इन सब द्वीपोंका भू-  
विभाग मित्र भिन्न नामोंसे बहुत वर्षोंसे परिचित है  
तथा इन सब वर्षोंके अधिपति वर्षपति कहलाते हैं ।

वर्ष देखा ।

वर्षपद् ( सं० स्त्री० ) पञ्जिका ।

वर्षपर्वत ( सं० पु० ) वर्षाणां भारतादीनां विभाजकः  
पर्वतः, मध्यपदलोपी ममासः । वर्षविभाजक गिरि ।

वर्षपाकिन् ( सं० पु० ) वर्षे वर्षाकाले पाकोऽस्यास्तोति  
वर्षपाक इति । आन्नतक, आमड़ा ।

वर्षपुरुष ( सं० पु० ) पृथ्वीको यावनीय वर्षवासी  
विभिन्न धर्मोको प्रजा ।

( भागवत ५ स्कन्ध, १८, २४, २६, २० और २२ अध्याय )

वर्षपुत्र ( सं० पु० ) द्रक व्यक्तिका नाम । ( संस्कारको० )

वर्षपुत्रा ( सं० स्त्री० ) वर्षे वर्षणकाले पुत्रं वस्याः ।  
सहदेवी लता । विस्तृत विवरण सहदेवी शब्दमें देखा ।

वर्षप्रवेश ( सं० पु० ) वर्षस्य प्रवेशः । नोत्कण्ठताजिक-  
के अनुसार एक गणना । इस गणनाके द्वारा वर्षका  
प्रवेश स्थिर किया जाता । जात करने जिस लग्नमें जन्म  
लिया है, दूसरे वर्ष भव उसका वर्ष पूरा हो कर नये  
वर्षका आरम्भ हुआ, यह इसके द्वारा सहजमें जाना  
जाता है ।

वर्षप्रवेश द्वारा जातके वर्षका शुभाशुभ फल निर्णय  
किया जाता है, वर्षप्रवेश लग्न स्थिर करके बारह महिनो-  
मेंसे किस महिनेमें शुभाशुभ क्या फल होगा, यह इसके  
द्वारा अच्छी तरह बोध होता है । ताजिकमें वर्षप्रवेश-  
को प्रणाली इस प्रकार दी हुई है ।

जन्मके समय रवि जिस राशिमें जितने अंशोंमें  
अवस्थित करते हैं, पुनः रवि जिस समय उस राशिके

नरके भगने वरक पुत्रको १८ वरक यर्षका अधिपति बनाया । उनके मातो पुर्वीका नामानुसार हो उन मातो यर्वीका नामकरण हुआ । यथा—शिव, यवम, सुमद्र, नाम्र, हीम, समुद्र तथा अजय । इन मातो यर्वीमें सो यद्यपि बहृतसो नदनदियां तथा यर्वम धेयोयां ही तथा मात नदियां यर्व सात यर्वम हो यदा विख्यात है । उन सात नदियोंके नाम—मदण, नूदण, माङ्गिरसी, सावित्री, सुप-भाता, मृतमरता तथा मरयमरता । यदाके उन सातो गोमायर्वीकोके नाम—यसकूट, मणिकूट, इन्द्रामन, उजोनिमान, सुवर्ण, हिरण्यवर्ष यर्व मेरवाह । इन सब यर्वीके तपियामो तिदेयमूर्तिं यर्वीको उपासना यर्वी है ।

शान्मन्त्रोपके अधिपति धे प्रियमन्त्रमत्र यहवाह । उन्होमे इस होपको भगने सातो पुर्वीके बीच सात यर्वीमें विभक्त करके बांट दिया । उन पुर्वीके नामानुसार हो इन सातो यर्वीका नामकरण हुआ । उन सातो यर्वीके नाम—सुतोचन, सांमन्त्र, रमणक, देववर्ह, पारिभद्र, आणायन तथा मणिहात । इन सातो यर्वीके सात प्रधान गोमायर्वीकोके नाम—सुन्दर, जतभृङ्ग, वामदेव, कुन्ड, वसुध, पुत्रवर्ण यर्व सधप्रभृति । सात प्रधान नदियोंके नाम—अनुमति, मित्रोवातो, मरवती, कुट्ट, वज्रो, मन्दा यर्व राका । इन यर्वीयामो लोग भृत्तिपर, गोवधर, यमुधर यर्व इमुधर नामक चार यर्वीमें विभक्त हैं । ये लोग येदमय सोमदेवको उपासना करते हैं ।

कुण्डलाय सुतोदमागरके यद्विर्भागे दे । यह पुर्वीक होपको अपेक्षा हो गुना बढ़ा है । प्रियमन्त्रके पुत्र द्विष्य-रेता कुण्डलोपके राजा थे । उन्होने भगने अधिपत होप-का सात भाग करके भगने सातो पुर्वीमें बांट दिया इन सातो पुर्वीके नाममे ही ये सातो यर्व प्रसिद्ध हैं । यथा—वसु, वसुधात, वृद्धमणि, माङ्गिगुम, साधवत, विप्र-नाम तथा उदनाम । इन सातो यर्वीमें सात यर्वीत यर्व सात नदियां प्रसिद्ध हैं । इन यर्वीके अधियासो कोविद, माङ्गिगुम तथा कुण्डर प्रभृति नाममे पुकारे जाते हैं । ये लोग भगने भगने कर्माकीजलमे मणिदेवको उपासना करते हैं ।

कौबहोपके अधिपति प्रियमन्त्र-पुत्र पुत्रवृष्ट थे । उन्हो-ने इस होपको भगने सातो पुर्वीके नाममे सात यर्वीमें विभक्त कर दिया । ये सातो पुत्र इन सातो यर्वीके अधि-पति हुए । उन यर्वीके नाम—भारता, मधुकर, मेघपूजा, सुधामा, भ्राजिष्ठ, मोहितवर्ण तथा यन्मपि । इन सातो यर्वीके मज्य सात प्रसिद्ध यर्वीत तथा नदियां हैं । इन यर्वीके अधियासो पुण्डव, श्रवम, द्विषण तथा देवक इन चार यर्वीमें विभक्त हैं ।

शक्रोपके राजा प्रियमन्त्रके पुत्र मेधातिथि थे । इस होपका विस्तार ३२ लाख योजन है । मेधातिथिने इन होपको सात यर्वीमें विभक्त कर भगने सातो पुर्वीके बीच बांट दिया । उन सातो पुर्वीके नामानुसार उन सातो यर्वीके नाम यथाक्रमसे पुतोत्रय, मनोज, येवमान, धृमा-नोक, चित्ररेक, यद्वरुप तथा विश्वाचार हुए । इन सातो यर्वीमें भी सात गोमा यर्वीत यर्व सात प्रसिद्ध नदियां हैं । उन यर्वीयामो लोग धृत्तमन्त्र, मरयमन्त्र, हीममन्त्र तथा अनुमन्त्र इन चारो यर्वीमें विभक्त हैं ।

पुत्रकरोपके अधिपति प्रियमन्त्रके पुत्र बोतिहोत्र थे । उनके रमणक तथा धातक नामक दो पुत्र हुए । बोतिहोत्र राजामे इस होपको दो यर्वीमें विभक्त करके भगने दोनो पुत्रको यदाके अधिपति नियुक्त किया ।

( भागवत १।१।२।१।१६ तथा २० भ० )

पृथ्वीके मध्यस्थ यर्व विनागीका संक्षिप्त यर्वन माग-यनके मतानुसार किया गया । माङ्गिण्डेय, पराह, वामन यूर्म प्रभृति यावन्तोय पुराणग्रन्थोंमें हो कुछ विस्तार पूर्वक यर्व विवरण देता जाता है । विस्तार हो जानेके मध्यमे ये सभी बातें यदा यर्वन नहीं को गईं ।

यर्वीमें द्वय अष्ट । ५ मेघ, बादल । ( ति० ) ६ यर्व-कमात । ७ यर्वमर । प्रयवादि छः यर्वरमरीका विषय यर्व उन यर्वरमरीमें वृष्य या प्रकारके देवताओंके नामादि ।

यर्वरक शब्दमें दोनो ।

यर्वक ( सं० ति० ) १ यर्वजनील, यर्वमेवाला । २ यर्वर-साधव्या ।

यर्वकर ( सं० पु० ) १ मेघ, बादल । ( ति० ) २ मुष्टिराम-कायो, यर्वी करनेवाला ।

फलको पलके स्थानमें रखे। उसके बाद इन सब वारों आदिके साथ जन्मवार आदि जोड़ने होसे उस उस अंक द्वारा वर्ष प्रवेशके वार आदि निकलते हैं।

जो कई नियम दिये गये, उन्हीं द्वारा वर्ष प्रवेशकी गणना की जाती है।

नीचे एक तालिका दी गई है, इसके देखनेसे सुगमतासे ही बिना गणना किये वर्ष प्रवेशका वार, दण्ड आदि जाना जायगा।

वयस	वार	दण्ड	पल	विपल	वयस	वार	दण्ड	पल
१	१	१५	३६	३०	२०	५	३५	१५
२	२	३१	३	०	२०	४	१०	३०
३	३	४६	३४	३०	३०	३	४५	४५
४	५	२	६	०	४०	१	२१	०
५	६	१७	३७	३०	५०	६	५६	१५
६	७	३३	६	०	३०	५	३१	३०
७	६	४८	४०	३०	७०	४	६	४५
८	३	४	१२	०	८०	१	४२	०
९	४	१६	४३	३०	९०	१	१७	१५
					१०३	६	५२	४०

उल्लिखित तालिकामें वर्षके अंकके संलग्नमें जो वार और दण्ड आदि लिखा है, उसमें जन्मवार और दण्ड आदि जोड़नेसे वर्ष प्रवेशका वार और दण्ड आदि निकल जायगा। १० और २०, २० और ३०, ३० और ४०, इत्यादि वर्षोंके मध्य यथाक्रमसे १०, २०, ३० इत्यादि वर्षोंके संलग्नमें जो अंक है, उसमें १, २, ३ इत्यादि वर्षोंका संलग्न अंक तथा जन्मवार और दण्ड आदि जोड़नेसे अभीष्ट घणसका वर्ष प्रवेशवार और दण्ड आदि होगा। इस हिसाबसे यह कहना है, कि कभी कभी जन्मकी तारीखके पहले और बादके दिन वर्ष प्रवेश हुआ करता है।

उक्त प्रणालीके अनुसार जब वर्ष प्रवेशका वार और

दण्ड आदि निर्धारित हो जाय, तब यह समय अवलम्बनपूर्वक जन्मपत्रिकाके समान एक वर्ष पत्रिका बना कर उसमें वर्षालम्ब और तात्कालिक प्रदृष्टकृत संस्थापन करें। यन्तमें जन्मकालसे जातलम्बमें जितना अंतर था, वर्ष प्रवेशकालमें वृहस्पतिसे उक्त स्थान सञ्चालन करके उतना ही अंतर रखे। इसका कारण यह है, कि वृहस्पति जीवकारक है, इसलिये उसका दूमरा एक नाम जीव तथा मानवके जन्म लम्बके ऊपर उसकी (पेसो) आश्रयार्थ आकर्षण शक्ति है, कि जहां कहीं वह दृष्ट फर्यों न जाय, यह लम्ब उसका अनुवर्ती हो कर रहेगा; सुतरां प्रति घटसर वृहस्पति जिस प्रकार एक राशि करके हटा है, जन्मलम्ब भी उसी प्रकार एक राशिसे हट कर दूसरी राशिमें चला जाता है तथा आज्ञाकाल तक इसी तरह दोनोंको समदूरता कायम रहती है। किन्तु वृहस्पतिकी कभी कभी शीघ्र और कभी वक्रगति होती है; अतएव सूत्ररूपसे गणना किये जाने पर जन्मकालमें वृहस्पतिकी स्पुट राशि आदिसे चाम या दक्षिणावर्तके जन्मलम्बका जितना अंतर था, वर्ष प्रवेशकालमें वृहस्पतिकी स्पुट राशि आदि निर्णय करके उससे जातलम्ब हटा कर उतना अंतर संस्थापन करे तथा इस सञ्चालित लम्बमें शुभाशुभ घटके योग या दृष्टिके अनुसार वर्षफलका विचार करना होगा। वृहस्पतिके स्पुटके अभावमें जन्मकालमें वृहस्पतिसे चाम या दक्षिणावर्तके जन्मलम्बका जितना अंतर था, वर्ष प्रवेशकालमें वृहस्पतिसे यह उतनी ही राशि अंतर रखे अथवा वर्ष प्रवेशकालमें जितना घटम होगा, जन्मलम्ब उतनी ही राशि हटा करके अतीत घटसका अङ्क जिस राशिमें शेष होगा उसके बादकी राशिमें उसे रखे अर्थात् एक वर्ष अतीत हो कर दूसरे वर्षमें पदार्पण करनेसे जन्मलम्बसे दूसरी राशिमें, दो वर्ष शेष कर तीसरे वर्षमें वैर रखनेसे जन्मलम्बसे तीसरी राशिमें, इस प्रकार नियमपूर्वक जन्मलम्बका संचार हुआ करता है। किन्तु इस भांति स्थूल गणनासे जब वर्ष प्रवेशके पहले वृहस्पति अतिचारो हो कर दूसरी राशिमें किंवा एक राशिसे पहली राशिमें जाता है, तब गणनाके अतिक्रम होनेकी सम्भावना होती है। इस प्रकार कई गये संचालित जन्मलम्बको सुग्धा कहते हैं।



उत्तमे घण्टीमें प्रवेष्टन करने हैं—पहले समय वर्षप्रवेष्टन समय है। रवि शुकृत्स्थित करने भी वर्षप्रवेष्टनका समय निर्णय किया जाता है, किन्तु यह भक्ति भाषासम्बन्ध है। इस रविशुकृत् द्वारा वर्षप्रवेष्टनका समय स्थिर करनेमें बहुत महत्त्वमें समय स्थिर होता है।

ग्रहोंके गोचरफलका जो तारतम्य है, यह प्रतिघटसर वर्षप्रवेष्टनकार्यमें लभ्य और ग्रहोंकी स्थिति द्वारा निरूपण किया जाता है। ग्रहोंके स्थितिसे जन्म मासमें गया वर्ष भाग्य होता है। मकराचर ३१५ दिनोंमें एक और घटसर किया जाता है, किन्तु बहुत सीर घटसर उसको अपेक्षा और भी १५ दृष्ट, ३१ पल, ३१ विपल, २४ अनुपल अधिक होता है। जिस दिन वर्ष भाग्य होता है, उसके दूसरे दिन दूसरा वर्ष होता है। अतएव जन्म दिनमें जितना वर्ष बीतेगा, उसमें १ दिन, १५ दृष्ट, ३१ पल, ३१ विपल २४ अनुपल गुणा करे तथा उस गुणनफलमें जन्मदिन और दृष्टादि जोड़ दे। इस प्रकार जो योगफल होगा, वही वर्षप्रवेष्टनका दिन और दृष्टादि जानना होगा। उक्त रूपमें योग करनेमें यदि दिनका बहुत मातृमें अधिक हो, तो उसमें ७ घटा दे। घटा कर अगर १ बाकी बचे तो रविवार और यदि २ बाकी बचे, तो सोमवार समझना होगा।

जिसका जिस वर्षमें वर्षप्रवेष्टन करना होगा, उसका उस वर्षके पहले जितना वर्ष बीत गया है उसमें अपना वर्षांश जोड़ कर एक जगह रखे। गोटे पुनः बीते हुए वर्षकी २१से गुणा करके गुणनफलको ४३से भाग दे, जो भागफल होगा उसे भागके रंगे भागमें जोड़ दे। इस प्रकार जोहनेमें जो उत्तर होगा उसका घाट, दृष्ट और पलकी विधिगना कर उसमें जन्मघाट, दृष्ट भाग पल योग कर दे। घेना करनेमें जो घाट, जितना दृष्ट और जितना पल होगा, जन्मदिनमें उभो घाटमें उतना ही दृष्ट और उतना ही पल समवर्ष वर्षप्रवेष्टन हुआ है, स्थिर करना होगा।

दिनका भाँके यदि रातमें अधिक हो, तो उसकी ७ से भाग दे कर अर्धजिह्व भाँके लेना होगा। इस भाँकेमें १ रविवार २ सोमवार ३ मंगलवार वरपादि जानना होगा। वर्षप्रवेष्टनकी गणना करनेमें बहुतसे विधय हैं।

बीचे निम्नो प्रणाली द्वारा भी वर्षप्रवेष्टन स्थिर किया जाता है।

दूसरा तरीका—पहले १, १५, ३१ और ३० को गन वर्षांश द्वारा गुणा करके चार जगह रखना होगा। इस तरह गुणा करनेमें जो घाट गुणनफल होगा, उसके पहले भाँकेका घाट, दूसरेको दृष्ट, तीसरेकी पल और चौथे भाँकेका विपल समझ कर उसके साथ जन्मघाट, दृष्टपल, और विपल जोड़ दे। इसके बाद विपलके भाँकेकी ६०से भाग दे कर भागफलकी पलमें जोड़ दे। जो भाँके बचना जाय यथास्थान रख दे। इस भाँके फिर पलके भाँकेकी ६०से भाग दे कर भागफलको दृष्टांशमें और दृष्टांशकी ६० से भाग करके लघुभाँकेकी घाटमें जोड़ कर बचा हुआ भाँके पहलेकी तरह यथास्थान पर रख दे।

इस तरह गणना द्वारा जो अर्धजिह्व भाँके रहेगा, उसमें वर्षप्रवेष्टनका घाट, दृष्ट, पल और विपल जाना जा सकेगा।

अन्य प्रकार—५, २ और ६ को गन वर्षांशमें गुणा करके जो तीन गुणनफल होगा, उसे तीन जगह रख दे। गोटे पहले भाँकेका घाट, दूसरेकी दृष्ट और तीसरे भाँकेकी पल जान कर उसमें जन्मघाट, दृष्ट और पल जोड़ दे। तदनन्तर पलके भाँकेकी चारसे भाग करना होगा और भागफलको दृष्टमें तथा दृष्टकी ४से भाग दे कर भागफलकी घाटमें जोड़ दे और घाटभाँकेकी ७ से भाग देनेमें होगा। अर्धजिह्व भाँके यथाक्रममें वर्षप्रवेष्टनका घाट, दृष्ट और पल होगा।

अन्य विधि—गन वर्षांशकी १००७से गुणा करके उस गुणनफलको ८७७ से भाग देनेमें जो भागफल होगा वही वर्षप्रवेष्टनका घाट, अर्धजिह्व भाँकेकी ६० से गुणा करके पुनः ८०० से भाग देनेमें जो भागफल होगा वही दृष्ट होगा। इस प्रकार प्रणालीमें पल आदि भी जाना जाता है। गोटे उसमें जन्मघाट, दृष्ट और पल जोड़नेमें वर्षप्रवेष्टनकी घाट, दृष्ट और पल आदि निश्चाला जाता है।

बीचे निम्नो तरीकेमें भी वर्षप्रवेष्टन स्थिर किया जाता है। गन वर्षांशमें उसका बीसवाँ योग करके भाँके स्थानमें तथा इस गन वर्षांशका ६से भाग करके भागफलकी दृष्टके स्थानमें और दृष्टके गुणा करके गुणन-

फलको पलके स्थानमें रखे। उसके बाद इन सब वारों आदिके साथ जन्मवार आदि जोड़ने हीसे उस उस अंक द्वारा वर्ष प्रवेशके वार आदि निकलते हैं।

जो कई नियम दिये गये, उन्हीं द्वारा वर्ष प्रवेशकी गणना की जाती है।

नीचे एक तालिका दी गई है, इसके देखनेसे सुगमतासे ही बिना गणना किये वर्ष प्रवेशका वार, दण्ड आदि जाना जायगा।

वयस	वार	दण्ड	पल	विपल	वयस	वार	दण्ड	पल
१	१	१५	३६	३०	२०	५	३५	१५
२	२	३१	३	०	२०	४	१०	३०
३	३	४६	३४	३०	३०	३	४५	४५
४	५	२	६	०	४०	१	२१	०
५	६	१७	३७	३०	५०	६	५६	१५
६	७	३३	६	०	३०	५	३१	३०
७	६	४८	४०	३०	७०	४	६	४५
८	३	४	१२	०	८०	१	४२	०
९	४	१६	४३	३०	९०	१	१७	१५
					१०३	६	५२	४०

उल्लिखित तालिकामें वर्षके अंकके संलग्नमें जो वार और दण्ड आदि लिखा है, उसमें जन्मवार और दण्ड आदि जोड़नेसे वर्ष प्रवेशका वार और दण्ड आदि निकल जायगा। १० और २०, २० और ३०, ३० और ४०, इत्यादि वर्षोंके मध्य वयाक्रमसे १०, २०, ३० इत्यादि वर्षके संलग्न अंक तथा जन्मवार और दण्ड आदि जोड़नेसे अभीष्ट घणसका वर्ष प्रवेशवार और दण्ड आदि होगा। इस दिसासे यह कहना है, कि कभी कभी जन्मकी तारीखके पहले और बादके दिन वर्ष प्रवेश हुआ करता है।

उक्त प्रणालीके अनुसार जब वर्ष प्रवेशका वार और  
V. XX, 172

दण्ड आदि निर्धारित हो जाय, तब वह समय अथवा लम्बनपूर्वक जन्मपत्रिकाके समान एक वर्ष पत्रिका बना कर उन्में वर्ष लग्न और तात्कालिक प्रदण्ड संस्थापन करें। अन्तमें जन्मकालसे जातलग्नमें जितना अंतर था, वर्ष प्रवेशकालमें वृहस्पतिसे उक्त स्थान सञ्चालन करके उतना हो अंतर रखे। इसकी कारण यह है, कि वृहस्पति जीवकारक है, इसलिये उसका दूसरा एक नाम जीव तथा मानवके जन्म लग्नके ऊपर उसकी (ऐसे) आश्चर्या आकर्षण शक्ति है, कि जहां कहीं वह दृष्ट फलों न जाय, यह लग्न उसका अनुवर्ती हो कर रहेगा; सुतरां प्रति घणसर वृहस्पति जिस प्रकार एक राशि करके हटा है, जन्मलग्न भी उसी प्रकार एक राशिसे हट कर दूसरी राशिमें चला जाता है तथा आजीवन काल तक इसी तरह दोनोंको समदूरता कायम रहती है। किन्तु वृहस्पतिकी कमी शीघ्र और कमी वक्रगति होती है; अतएव सूत्ररूपसे गणना किये जाने पर जन्मकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदिसे वाम या दक्षिणावर्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्ष प्रवेशकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदि निर्णय करके उससे जातलग्न हटा कर उतना अंतर संस्थापन करे तथा इस सञ्चालित लग्नमें शुभाशुभ प्रदण्डके योग या दृष्टिके अनुसार वर्षफलका विचार करना होगा। वृहस्पतिके स्फुटके अभावमें जन्मकालमें वृहस्पतिसे वाम या दक्षिणावर्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्ष प्रवेशकालमें वृहस्पतिसे वह उतनी ही राशि अंतर रखे अथवा वर्ष प्रवेशकालमें जितना वयस होगा, जन्मलग्न उतनी ही राशि हटा करके अतीत वयसका अङ्क जिस राशिमें शेष होगा उसके बादकी राशिमें उसे रखे अर्थात् एक वर्ष अतीत हो कर दूसरे वर्षमें पदार्पण करनेसे जन्मलग्नसे दूसरी राशिमें, दो वर्षोंको हटा कर तीसरे वर्षमें वैर रखनेसे जन्मलग्नसे तीसरी राशिमें, इस प्रकार नियमपूर्वक जन्मलग्नका संचार हुआ करता है। किन्तु इस भांति स्थूल गणनासे जब वर्ष प्रवेशके पहले वृहस्पति अतिचारी हो कर दूसरी राशिमें किंवा वक्र गतिसे पहली राशिमें जाता है, तब गणनाके व्यतिक्रम होनेकी सम्भावना होती है। इस प्रकार कहें गये संघालित जन्मलग्नको सुस्था करते हैं।

एक उदाहरण दिया जाता है। उदाहरण १७५३  
 मन्त्री ७वीं भाषित नृद्वयतिथि १७३५ पत्रके समय  
 धनुःमासे बिम्बो कालिका जन्म हुआ। १८०४ मन्त्रीकी  
 ७वीं भाषितमें ५१ वर्ष कालिका नर जन्म स्थितिमें ५२  
 वर्षमें पदावधि किया था, वर्षभालिका इस अर्थात् ५१  
 वर्षमें ३ म्बर—

वार,	दृष्ट,	पत्र,	विपत्र,	अनुपत्र,
५० वर्ष— ६	५६।	१५।	१०।	०
१ वर्ष— १।	१५।	३३।	३१।	२४
५१ वर्ष— ८।	११।	४७।	४१।	२४

होता है।

उपरोक्त उमका जन्मवार और दृष्टादि ५१७३५  
 जोड़ेमें १३ वार, २६ दृष्ट, २२ पत्र, ४१ विपत्र, २४  
 अनुपत्र होता है। किन्तु वारका अंक स्थातमें अधिका  
 है, इसलिये इस मन्त्रीकी उम माग दिये जाने पर ६ वारकी  
 घटना है। सुतरां ७वीं भाषित शुक्रवार २६ दृष्ट, २०  
 पत्र, ४१ विपत्र, २४ अनुपत्र समयमें उसका वर्षभवेन  
 हुआ था। इस समय गणना करने देखनेमें पता चलता  
 है कि उम समय मौन राजिका पूर्व और उद्य हुआ है,  
 शतवष पक्षी मौनराजि वर्षभवेन है।

पूर्व ही यह भाषे है, कि उक्त समयमें इस व्यक्तिने  
 ५१ वर्ष वार नर ५२ वर्षमें नरुम बढ़ाया था। उसका  
 जन्मकाल धनु, ५१ राजि हटानेसे शेष बुम्मा होता है तथा  
 उसके बादकी राजिमोग अतएव ५२ वर्षके आरम्भमें  
 पूर्णक नियमानुसार मौन राजिम उमका जन्मकाल  
 मझार हुआ था। किन्तु १८०४ मन्त्रीके भाषित  
 महोत्तमें नृद्वयतिथि मन्त्रिचारी हो कर मिथुन राजिममें था,  
 इसलिये इस मौन जन्मकाल संवालय करनेमें गणनामें  
 धमिब्रम होता है। यदां शून्य गणनाको अभावकना  
 है। इस वर्षके जन्मकालमें नृद्वयतिथि मन्त्रीके प्रायः  
 २२ अंशमें अवस्थित था तथा उमका जन्मकालकुट  
 ८।११५० मन्त्री नृद्वयतिथि दक्षिणावर्तके जन्मकालका  
 प्रायः ४० अंशका अंतर था। उदात्त वर्षभवेनकालमें  
 दूरवर्षिका शून्य २५८६० था, अतएव यदां दक्षिणा-  
 वर्तके ४० अंश अर्थात् मन्त्रीके २२ अंशमें  
 जन्मकाल संवालय था।

इस तरह प्रतिपक्षर जन्मकालका संवार होता है,  
 इसलिये जन्मराजिम मन्त्रीके फल विचार किया  
 जाता है। यद्यो इस संवालयकाल और वर्षभवेनमें  
 जैसे घटमन्त्रिक शुभाशुभ फल निर्णीत होता है, वह  
 बहुत संशेपमें भाषे लिया जाता है।

मद्रमण जन्मकालमें शुभ हो कर वर्षभवेनकालमें  
 भी शुभ होनेमें शुभकालकी अधिका होती है; किन्तु  
 जन्मकालमें शुभ हो कर वर्षभवेनकालमें अशुभ होनेमें  
 यद्यो प्रथमाक्षमें शुभ तथा शेषाक्षमें अशुभ होता है  
 और यदि जन्मकालमें अशुभ हो कर वर्षभवेनकालमें  
 शुभ होता है, तो वर्षके प्रथमाक्षमें अशुभ तथा शेषाक्षमें  
 शुभ हुआ करता है।

वर्षभवेन, जन्मकाल, संवालय जन्मकाल और जन्म  
 राजिम शुभकालका योग या दृष्टि रहनेमें अथवा उनके  
 अधिका प्रमण शुभप्रमण हो कर शुभशुभ या दृष्ट  
 होनेमें उस वर्षमें तब तरहका सुख होता है।

जन्मकाल या जन्मराजिम अथवा राजिम अथवा  
 जन्मकालमें जिस राजिम जनि किंवा मङ्गल वार, उक्त  
 राजिम, वर्षभवेन किंवा संवालय जन्मकाल होनेमें  
 उस वर्षमें विशेषतः इस तरहमें यदि वापप्रदका योग या  
 दृष्टि रहे तो मानव योशुयुक्त और विपदाग्र होता है।

जन्मकालमें अथवा वापप्रद वर्षभवेनमें रहनेमें  
 विशेष अशुभकाल होता है। यदि वर्षभवेनके योशु  
 दिन पहले या पीछे वापप्रमण वक्त हो तथा वर्षभवेनमें  
 वापप्रदका योग या दृष्टि रहे, तो उक्त वर्षमें मानव  
 प्रकारका बह और व्याधि होती है।

वर्षभवेनकालमें मन्त्री जन्मराजिम जन्मकालमन्त्री  
 हो कर वर्षभवेनके मन्त्री, पत्र, मन्त्र, अथवा किया काल  
 प्रदोषी होइ अन्य प्रदोषी अथवा मानव करनेमें तथा उनके  
 प्रति शुभप्रदकी दृष्टि रहनेमें इस वर्ष में विशेष शुभकाल  
 होता है। मन्त्री विपरीत फल होता है। वर्षभवेनकालमें,  
 जन्मकालमन्त्री, संवालय जन्मकालमन्त्री और जन्म-  
 कालके कालकाल यद्यो वर्ष भवेनकालमें अथवा अथवा  
 पूर्व न होनेमें योग, मन्त्री और अथवा होता है।

वर्षभवेनकालमें धनुषीक मन्त्रीमन्त्री या दृष्ट होनेमें  
 अथवा, किन्तु वापप्रमन्त्री या दृष्ट होनेमें अथवा होता

है। जन्म और वर्ष ग्रहोंमें चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, क्रिया द्वादशमें संचालित लग्न होनेसे प्रथमा उसमें पापप्रदका योग या दृष्टि रहनेसे अशुभ होता है।

जन्म और वर्ष इन दोनों लग्नोंमें उक्त स्थानको छोड़ अन्य किसी गृहमें जन्मलग्न संचालित होनेसे शुभफलका आधिपत्य होता है। किन्तु यह संचालित लग्न जन्मलग्नसे शुभभावस्थ हो कर वर्षलग्नमें अशुभ गृहगत होनेसे वर्षके प्रथमादिकमें शुभ एवं शेषार्द्धमें अशुभ होता है और यदि वह जन्मलग्नसे अशुभभावस्थ हो कर वर्षलग्नसे शुभगृहगत हो, तो वर्षके प्रथमादिकमें अशुभ एवं शेषार्द्धमें शुभ होता है। संचालित जन्मलग्न चतुर्थ क्रिया सप्तम गृहगत हो कर यदि कोई शुभ प्रदयुक्त हो, तो पूर्वोक्तभावसे अशुभ न हो कर वर्ष शुभ होता है। यह लग्न रवियुक्त होने पर भी शुभफलदायक होता है।

वर्षलग्नमें जन्मलग्नका संचार होनेसे सम्मान, अपत्य, राजप्रसाद और धनलाभ, प्रतापको वृद्धि, शरीरकी पुष्टि तथा शत्रुका नाश; द्वितीय स्थानमें होनेसे सम्मान, यश, अर्थ, वस्तु, सुख एवं स्वास्थ्य लाभ; तृतीय स्थानमें होनेसे अपने उरसाहमें धन, यश और सुखलाभ, धर्मकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि एवं राजसम्मान लाभ; चतुर्थ स्थानमें होनेसे पौड़ा, शत्रुभय, सज्जनोंके साथ कलह, मनस्ताप, जनापवाद और मनःकष्ट; पञ्चम स्थानमें होनेसे आत्मज, धन और राजप्रसाद लाभ, प्रतापवृद्धि तथा धर्मोन्नति; षष्ठ स्थानमें होनेसे शत्रु वृद्धि, रोग, चोर या राजभय, कार्य और अर्चनाश तथा दुष्टद्विजगतः अनुताप; सप्तम स्थानमें होनेसे पुत्र, कलह, मिल और अर्चनाश, शत्रुवृद्धि, कलह, दूरवाता एवं उरसाहमङ्गल; अष्टम स्थानमें होनेसे शत्रुभय, धर्म और अर्थक्षय, हलहानि, रोग, शोक, विपद् या मृत्यु; नवम स्थानमें होनेसे अर्थप्राप्ति, धर्मोन्नति, पुत्र, कलह, वस्तु, यशो लाभ एवं भाग्योदय; दशम स्थानमें होनेसे सीमाय, पद और कोसिलाम तथा प्रताकमकी वृद्धि; एकादश स्थानमें होनेसे मनस्तुष्टि, स्वास्थ्य, सम्पन्न, पुत्र, राजाश्रय, हर्षवृद्धि, सीमाय और वाहनादि लाभ और द्वादश स्थानमें होनेसे ध्यायाधिपत्य, ज्ञान या कारावास, रोग, सज्जनके

साथ कलह और गुप्त शत्रुकी वृद्धि होती है; किन्तु शत्रुसे अर्थलाभ होनेकी सम्भावना होती है।

जन्मकालमें प्रदग्गण तन्वादि द्वादश भावस्थ हो कर जैसा फल उत्पन्न करता है, वर्षप्रवेशकालमें भी वह सब वैसा ही फल देता है। अर्थात् शुभप्रदोंके केंद्रमें वा त्रिकोणमें रवि और मङ्गलके उपचयमें एवं ग्रहिके तृतीय षष्ठ, एकादश और द्वादश स्थानमें रहनेसे शुभफलप्रद होता है।

वर्षलग्नसे आरम्भ करके द्वादश राशिके द्वारा द्वादश मासका फल स्थिर होता है। जो जो ग्रह वर्षलग्नमें रहता प्रथमा वर्षलग्नको देखता है, प्रथम मासमें उसका दिया हुआ फल भोग होता है। इस प्रकार जो जो ग्रह द्वितीय, तृतीय इत्यादि गृहमें रहता है अथवा उसी सब गृहको देखता है, द्वितीय, तृतीय इत्यादि मासमें उन सब ग्रहोंका दिया हुआ फल भोग करना है। जिस गृहमें किसी ग्रहका योग या दृष्टि नहीं रहता उस मासमें उसी गृहाधिपतिकी स्थिति और शुभाशुभ सम्बन्ध अनुयायी फल होता है।

वर्षलग्नसे द्वादश गृहके जिस जिस गृहमें मङ्गल और शनि रहता है, उसी संयुक्त मासमें पीडा या मनाकष्ट होता है। जन्मकालीन चन्द्रसे प्रदत्त शुभाशुभ फलका निरूपण करके देखा होगा, कि कौन कौन वर्ष रिष्टदायक है। उनमेंसे यदि किसी वर्षमें वर्षलग्न संचालित जन्मलग्न और उसके अधिपतिगण पापयुक्त या दृष्टि क्रिया अशुभ गृहगत हो, तो उस वर्ष मृत्युको सम्भावना रहती है।

वर्षाधिपानयन वर्षप्रवेशके वर्षका अधिपति कौन ग्रह है, यह स्थिर करके फलाफलका निर्णय करना होता है। वर्षाधिपति स्थिर करने ज्ञानमें विगणितिकी कौन कौन ग्रह एवं उसमेंसे कौन ग्रह बलवान् है, यह निर्णय करना पड़ता है। जब दिनमें वर्षप्रवेश होता है, तब वर्षप्रवेशलग्न में होनेसे रवि, वृष होनेसे शुक्र, मितुन होनेसे शनि, कर्षट होनेसे शुक, मिंद होनेसे वृहस्पति, कन्या होनेसे चन्द्र, तुला होनेसे शुभ और वृद्धिक होनेसे मङ्गल त्रिराशिपति होता है। रात्रिमें वर्षप्रवेश होनेसे वर्षप्रवेश लग्न यदि मेष हो, तो वृहस्पति तथा वृष, वर्ष-

प्रयोग सम्यक् होनेसे मन्त्र, सिद्धि होनेसे मन्त्र, कष्ट होनेसे मन्त्र, मित्र होनेसे शनि, बन्धा होनेसे शुक्र, मुला होनेसे राशि एवं चंद्रिका होनेसे शुक्र विराजिपति होता है।

दिन वा रात्रिमें वर्षभयेन होनेसे चतुष्पा राशि, मन्त्रका मन्त्र, शुम्भका चन्द्रपति और मोनका मन्त्र विराजिपति होता है।

ग्रहणमन्त्रका अधिपति, वर्षभयेनमन्त्रका अधिपति, शुभमधिपति और विराजिपति, दिनमें वर्षभयेन होनेसे मूर्धाभाषासे राशिका अधिपति और रात्रिमें वर्षभयेन होनेसे चन्द्रभाषासे राशिका अधिपति, इन पांच प्रदों द्वारा वर्षाभ्यापिका विचार करना होता है।

इन पांच प्रदोंमें पञ्चवर्षीय वन द्वारा बलवान् हो कर जो ग्रह मन्त्रके देवता है, यही ग्रह वर्षाधिपति होता है। जो ग्रह मन्त्रके नहीं देवता है, वह ग्रह वर्षाधिपति नहीं होता। उक्त पांच प्रदोंके समान बली होनेसे जिन ग्रहकोऽष्ट अधिक होता है, यही ग्रह वर्षाधिपति होता है। उक्त पांच ग्रह हीनवत् हो कर यदि समान ढाँच करे, तो शुभधाधिपति ग्रह वर्षाधिपति होता है और उक्त पांच ग्रह यदि मन्त्रके ढाँच न करे, तो बन्धाधिक ग्रह वर्षाधिपति होता है। इसमें किसी किमोका कदना है, कि वन और ढाँचकी समानता और भ्रमाय होनेसे दिनमें मूर्धाभाषा राशि राशिपति और रात्रिमें चन्द्रभाषा राशिपति वर्षधिपति होता है।

वर्षभयेनमें मोलह प्रकारके योग निर्दिष्ट हुए हैं। इन सब योगोंके द्वारा शुभाशुभ स्थिर किया जाता है। योगोंके नाम यथा—इकरालयोग, हनुमालयोग, इन्द्रमालयोग, ईश्वरालयोग, मन्त्रयोग, यमयोग, मनुष्ययोग, कर्णयोग, गौरिकमुलयोग, मन्त्रालयोग, रक्षयोग, दुर्गादिभूतयोग, दुर्गादेवद्वारायोग, मन्त्रयोग, दुर्गायोग, मन्त्रालयोग, मन्त्रयोग।

इन सब योगोंका विरंघ विवरण मोलहचन्देकालिकाके विलिखित है। यह सब योग निर्दिष्ट कर मन्त्र स्थिर करना होता है। मन्त्र भी ५० प्रकारका होता है। जोसे वर्षभयेनके द्वारा निरूपण कर फलदायक स्थिर करना होता है। वर्षभयेनमें वर्षभूतकी और जन्मभूतकी इन दोभोंके देख कर फल स्थिर करना उचित

है, सिर्फ वर्षभूतकी देख कर फल स्थिर करनेमें यह नहीं मिलेगा, जन्मभूतकीके साथ सम्बन्ध विचार करके फल निरूपण करना होगा। (नेत्रचन्द्रिकाके) वर्षभाषण ( सं० ति० ) भाषणिका पृष्टिपात्र, बहूत देव पात्रो वरसता।

वर्षमिष ( सं० पु० ) वर्षों वर्षों मिषं वस्य । वातक पात्रे । वर्षकल ( सं० ति० ) फलितज्योतिषमें ज्ञातकरके अनुमान यह कृष्ण्यो जिससे किमोके वर्षों भरके प्रदोंके शुभाशुभ फलोंका विवरण ज्ञाता जाता है। वर्ष और मन्त्रभार देव। वर्षभूत ( सं० पु० ) वरदमण्डलपति, मूर्धा, मूर्धा, जन्मभूतका अधिपति। ( भाषण १०८७, १०८८ ) वर्षमर्षादागिरि ( सं० पु० ) वर्षं समूरका मीमापयंत । ( भाषण १०२०, १०२१ )

वर्षनाल ( सं० मन्त्र० ) वर वरमर । वर्षभेदम् ( सं० पु० ) पृष्टिपात्र । ( भाषण १०११, १०१२ ) वर्षवर ( सं० पु० ) वरतीति वर भाषणके भाष, वर्षं वरतीति वर्षं वर भाषणकाः । मन्त्र, योजन। वर्षवर्धन ( सं० ति० ) वरवकी पृष्टि । वर्षवृत् ( सं० ति० ) वर्षीवृत्, जो जन्ममें बड़ा हो। वर्षवृष्टि ( सं० मन्त्र० ) वर्षं वर पृष्टिराधिपत्यं वर । १ जन्मनिधि । विवेक विराय जन्मनिधि वरदमें देवः । २ वर्षोवृष्टि ।

वर्षगत ( सं० ति० ) जन्मभू । वर्षगतोपिक ( सं० ति० ) जन्मभूमें भी अधिक । वर्षमहन्त्र ( सं० ति० ) मन्त्र वरमर । वर्षांज ( सं० पु० ) वर्षं वर वरमन्त्रं मन्त्राः । ताव, महाना । वर्षांजक ( सं० पु० ) वर्षांज देवः । वर्षा ( सं० मन्त्र० ) वर्षों वर्षांजमन्त्राणु इति वर्षांजकी भाषिणादम्, राप्, वरु ( मन्त्रे इति ( वृत्तकी ) । १५, १६ ) इति मन्त्र, मन्त्रम् । १ वर मन्त्र । वर्षांज—मन्त्र, मन्त्रकाल, जन्मकाल, मन्त्र, मन्त्राणम्, मन्त्राणम्, मन्त्राणम् । ( वरमन्त्रा ) मन्त्र मन्त्राणम् मन्त्र मन्त्र इति दोनो मन्त्राणो वर्षांजक करतं है। "मन्त्राणम् मन्त्राणम् पवित्राणाम्" ( मन्त्राणम् मन्त्राणम् धृति ) यह वर्षांजक दक्षिणामुखा है, यह देवतामोकी शक्ति है।

आषाढादि मास ऋतुप्रयांतमरु कालकी भी वर्षा कहते हैं। आषाढ, धावण, भाद्र तथा श्राव्यिन मास। चातु-  
मास्य विधानस्थलमें आषाढ मासमें ले कर इस प्रतका  
विधान है एवं ये चारों मास वर्षा ही कहलाते हैं।

भाष्यप्रकाशमें लिखा है कि, वर्षाऋतु शीतल, विदाह-  
पाकजनक, मन्दाग्निकारक एवं वायुवर्द्धक होता है। वर्षा-  
कालमें पित्तकी उत्पत्ति होती है, वायु प्रबल होती है,  
अनप्य इस वायुकी शान्त करनेके लिये मधुर, अम्ल  
तथा लघण रसयुक्त पदार्थ विशेषरूपमें सेवन करना  
चाहिये। इस समय शरीर क्लिन्न हो जाता है, इस  
क्लिन्नताके निवारणार्थ कड़ु, आ, तीना तथा कपायरसका  
सेवन करना चाहिये। वर्षाकालमें स्वेदकर द्रव्य सेवन  
तथा अंगमर्दन करना चाहिये। इस ऋतुमें दधि, उष्ण-  
द्रव्य, जङ्गली पशुओंके मांस, गोधूम, शालितण्डुलके अन्न,  
मायकलाय, कूपका जल तथा चूतफल सेवनीय हैं।  
पूर्वीय वायु, वृष्टि, धूम, हिम, परिश्रम, नदीके किनारे  
भ्रमण, दिनमें सोना, रुक्षद्रव्य तथा नित्य मैथुन ये सब  
वर्जनीय हैं।

घृत, मधुर, कषाय तथा तिक्त रसयुक्त द्रव्य, लघुपाक  
द्रव्य, दुग्ध स्वच्छ तथा शुक्लवर्ण इक्षु, विकार, लवण, घोड़ा  
जङ्गली पशुका मांस, गोधूम, जय, भूंग, शालितण्डुल,  
कपूर, रक्तचन्दन, रात्रिके प्रथम भागके चन्द्रकी ज्योतिमत्ता,  
मास्यधारण, निर्मलवस्त्रधारण, सुहृद्गुरुओंके साथ मधुर  
घासालाप, सरोवरमें जलक्रीड़ा एवं व्यायामराहित्य  
वर्षाके अवसान समय हितकर हैं। दधि, ज्वायान, अम्ल  
तथा कटु द्रव्य, उष्णद्रव्य, तीक्ष्ण द्रव्य, दिनकी निद्रा, हिम  
एवं धूप ये सब वर्षाके अवसान समय वर्जनीय हैं।

( भाष्य० )

वामरमें लिखा है कि, वर्षा, गरत् तथा हेमन्तकाल  
दक्षिणायन है, यह दिन दिन लोगोंका बल विसर्जन अर्थात्  
बलदान करता है, इसीलिये इसे विसर्जनकाल कहते हैं।  
इस समय चन्द्र बलवान तथा सूर्य हीनबल होते हैं  
और शीतल मेघ वृष्टि तथा वायुवीर्यसे पृथ्वीके अन्दर-  
की गर्मी शान्त होती है। इसलिये सभी द्रव्य स्नेह-  
युक्त होते हैं। अम्ल, लवण तथा मधुर रस प्रबल होते  
हैं। वर्षामें अन्न, शरत्में लवण एवं हेमन्तमें मधुर रस  
प्रबल होते हैं।

वर्षाकालमें कालधर्मवशा मनुष्यके पेटकी पाचनशक्ति  
कम हो जाती है। इससे शरीर क्लिन्न हो जाता है। उस  
समय आकाश जलमाराधनत तथा जलद्वजालसे व्याप्त  
होनेके कारण सदसाशोतल तुपासिक पचन, भूतलो-  
त्थित वाष्प तथा अम्ल विपाकवारिस एवं अग्नि मन्द  
होनेके कारण घात, पित्त तथा कफ प्रबल हो उठते हैं।  
घात, पित्त तथा कफ परस्पर एक दूसरेको दूषित करता  
है, जिससे पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है। इस समय  
साधारणतः पाचनशक्ति बढ़ानेवाली वस्तुओंका  
व्यवहार करना चाहिये। इस समय शरीर शोधन करके  
स्नेहवस्ति, पुरातनघास्य, सुसंस्कृत मांसरस, जंगली  
पशुओंके मांस, मुद्गादिके जूस, पुराना म्रुषु तथा अरिष्ट,  
सौयवर्चलयुक्त मस्तु वा पंचकालचूर्ण एवं आकाश जल,  
कूपजल वा अग्निसिद्ध जल सेवन करनेसे बहुत लाभ  
पहुंचता है। अत्यन्त बदलीके दिन तीक्ष्ण अम्ल, लवण  
तथा स्नेह सेवन, शुष्क तथा हलका भोजन एवं मधुपान  
करना चाहिये।

वर्षाकालमें पैदल चलना निषेध है। इस समय सुगंध  
सेवन तथा धूपित वसन धारण एवं वाष्पशीत शोकर  
वर्जित हर्म्यवृष्ट पर वास करना अच्छा है। गदीजल,  
उदमन्य ( घृत प्रक्षेप किया हुआ जलसिक भाँटा द्वारा  
जा खाद्य वस्तु तैयार होता है, उसे उदमन्य कहते हैं )  
दिवानिद्रा, परिश्रम तथा आतप सेवन वर्जनीय है।

( भाष्य सुत्रत्या० ३ भ० )

वर्षाकालमें इन सब वैद्यकीक विधिओंके अनुकरण  
करनेसे किसी तरहकी व्याधिका प्रकोप नहीं होता, स्वास्थ्य  
अच्छा रहता है।

सुधृतमें लिखा है कि, इस समय रात्रिदिवसके मध्य  
भी संपत्स्वरकी तरह शीत, मीथन तथा वर्षादिके समान  
छः ऋतुओंके लक्षण देखे जाते हैं एवं संध्या समय वर्षा-  
ऋतुके लक्षण भी स्पष्टरूपमें पाये जाते हैं। इसलिये  
वर्षाकालकी निषिद्ध वस्तुएँ संध्या समय नहीं जानी  
चाहिये।

कविकल्पलतामें लिखा है कि, वर्षावर्षण करनेके  
समय शिवा, समय, हंसागम, पंक, कन्दल, उद्भेद,



कुहककारो नागरमण एवं गान्धर्व, लेख्य, गणित तथा अस्त्रविदोंको वृद्धि होती है। राजा लोग परस्परको प्रीति-कामनासे अद्भुत दर्शन तथा तुष्टिकर द्रव्य एक दूसरेको दान करनेके अमिलापो होते हैं। कर्ता तथा त्रयोदास्य संसारमें अधिकल एव सत्य रहते हैं। किसी किसीकी बुद्धि शास्त्रदानमें अमिनिविष्ट होता है एव कोई कोई आपबीक्षकी शास्त्रने परमपद लाभ करनेकी चेष्टा करता है। वृष प्रहके वर्ष तथा मासमें इस तरहसे पृथ्वी दास्यश्च, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्त, संतुजल तथा पर्वतवासियोंकी वृत्ति एवं चारों ओर ओषधिर्षी वृत्ति एव प्रचुरता सम्पादन करती है।

गृहस्पतिके वर्षाधिपति होनेसे, यज्ञोच्चारित विपुल आकाशगामी वेदध्वनि यज्ञद्रोहियोंके मन विदोर्ण करती है तथा द्विजवर एवं यज्ञांगमांगियोंके हृदयमें आनन्दको धारा बहाती है। पृथ्वी अति शस्यवती होती है एव अनेक हस्तो, अथ, चतुरङ्ग सेना, गो घन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण है। कर राजाओं द्वारा पालिन तथा वर्द्धित होती है। मनुष्य स्वर्गीय लोगोंकी तरह स्वर्गाके माध जावन यापन करते हैं। गगनाश्रत कई वर्षोंके पयोद्गण वृत्तिरु जल द्वारा पृथ्वीका परिपूर्ण करते हैं। सुरगुह गृहस्पतिके शुभवर्षमें इस तरहसे पृथ्वी अति शस्यपूर्ण तथा समृद्धि शालिनी होती है।

शुक्रके वर्षाधिपति होनेसे, घराघर तुल्य जलदपटल धारिधारा वर्षण करती है। उससे पृथ्वी परिपूर्ण हो जाती है, सरोवरोका जल सुन्दर कमलोसे आच्छादित हो जाता है। पृथ्वी नये अलंकारोंसे अलंकृत हो कर उज्ज्वलांगी नारोकी तरह शोभा पाती है एव बहुतो शाली तथा शू उत्पादन करती है। राजाओंको जय-ध्वनिसे दिशार्प गूँज उठती है। जल्लुओंका नाश होता है, राजा लोग दुष्टदमन तथा शिष्टपालन करके नगर तथा पृथ्वीकी रक्षा करते हैं। वसन्त ऋतुमें मनुष्य कामिनियोंके साथ मधुपान करते हैं एव मधुर घोषा बजा कर गान करते हैं। अतिथि सुदृढ़ तथा सज्जनगणके साथ मिल कर अन्न भोजन करने हैं। शुक्रके वर्षमें इस तरहसे मंगलको प्रधानता हो सूचित होती है।

शनिके वर्षाधिपति होनेसे दुर्घट दक्षुओंके उपद्रव-से तथा संप्रामसे सारा राष्ट्र व्याकुल हो उठता है। अनेकों नर तथा पशुओंके प्राण विनष्ट होते हैं, मनुष्य अपने आत्मीय जनोके वियोगमें आँसू बहाते हैं। क्षुधा तथा संकामक रोगके प्रकोपसे मनुष्य व्यस्त हो उठते हैं। अन्तरीक्षमें वायु विशिन मेघ भीर देखा नहीं जाता। आकाशमें चन्द्र तथा सूर्यकिरण अ-यधिक धूलिपत्तनसे छिप जातो है। जलाशय जल-हीन हो जाता है। नदियोंको जलधाराये शुक पड़ जाती हैं। कहीं कहीं जलके अभावसे फसल नष्ट हो जाती है। कहीं कहीं जलसक भूभागमें उपज भी होती है। इस तरहसे सूर्यके वंशधर शनिके वर्षमें इन्द्र पञ्च-शस्यप्रद जल वरमाते हैं।

फलतः जो प्रह क्षुद्र, अपटुकिरण, नीचगामी वा अन्य द्वारा विजित होते हैं, वे शुभ फल तथा पुष्टिदाता नहीं हो सकते। अशुभ प्रहके वर्षाधिपति तथा मासाधिपति होनेसे उसाके मासजात फलों में वृद्धि होती है।

(गृहस्व० १६ अ०)

वर्षाधृत (स० त्रि०) वर्षाकालने लक्ष्य, वर्षायात।

(काल्याण भी० ४, ६, १६)

वर्षाप्रमञ्जन (स० पु०) ऋदिकी।

वर्षाप्रिय (स० पु०) वातर, वर्षाहा।

वर्षाबीज (स० झो०) मेघ, बादल।

वर्षामव (स० पु०) वर्षासु भवतीति भू अच् वर्षासु

भव उत्पत्तिर्भवस्य वा। १ रक्त पुनर्नवा। २ पुनर्नवा।

(त्रि०) ३ वर्षामे उत्पन्न।

वर्षाम्बु (स० पु० ख०) वर्षाम्बु, मयतीति भू क्तिप्। १

मेरु, मेढक। २ इन्द्रगोप, ध्वालिन नामका कीड़ा।

३ कोड़े मर्काड़े। ४ लाल रंगकी पुनर्नवा। (त्रि०)

५ वर्षामे उत्पन्न होनेवाला।

वर्षाभूगाक (स० पु०) पुनर्नवा जाँक।

वर्षाम्बो (स० ख०) वर्षाम्बु ङाप्। १ मेरु, मेढक।

२ पुनर्नवा।

वर्षामद (स० पु०) वर्षासु माघति इति मद-अच्। मद, मार।

वर्षाम्बु (स० झो०) वृष्टिजल, वर्षाका पाना।



जाती, बहम, बंजर, संजानित, निरुत्तम तथा इतिभोजि इन वर्षोंका वर्णन भी करना होता है।

पर शब्द सदा बहुवचनान्त है। 'दारादेर्निष्ये' इम सूत्रके अनुसार दार, अन्, वर्षा ये तीन शब्द सर्वदा ही बहुवचन होते हैं। इन सब शब्दोंके अन्ते एखवचन वा द्विवचन नहीं होता।

२ वर्षां हरमनेकी क्रिया या भाव, वृष्टि।

वर्षाकाल ( सं० पु० ) वर्षाशुभ्र, बरमात्र।

वर्षाकालान् ( सं० लि० ) वर्षासमयपरयोगी, बरसानके लक्षण।

वर्षांगम ( सं० पु० ) वर्षांगम, वर्षा शुभ्रका आगमन।

वर्षायोग ( सं० पु० ) वर्षांशु घोषा महान् शब्दोऽयम्। महामण्डूक।

वर्षाङ्ग ( सं० पु० ) वर्षस्य वत्सरस्य सङ्गमिव अभियानान् पुंश्वम्। मास, महाना।

वर्षाद्वी ( सं० स्त्री० ) वर्षांशु नद्गुं यस्याः तत्र जालाङ्गु, र-वर्तनाम् तस्याभ्यन्तरेवम्। पुनर्वसु।

वर्षान्तर ( सं० लि० ) वर्षानि विचरण करतेवान्। 'वर्षान्तरांशु भूतः' ( भात १३५६ )

वर्षांश ( सं० लि० ) वर्षांशोऽयम् धृत्सम्बन्धी।

( अर्थ १२१५७ )

वर्षानि ( सं० लि० ) १ वर्षाकाल-सम्बन्धी। ( पु० ) २ वह वर्ष जो वर्षाकालमें पड़ना जाता है। ३ वह रोग जो वर्षाके कारण गाय और घोड़ेका होता है।

वर्षाधिप ( सं० पु० ) वर्षांशामधिपः इ तत्पुरुषः। १ वर्ष-समूहके अधिपति। वर्ष देखो।

२ वर्षाधिप प्रदणन। प्रत्येक नव वर्षके बाद एक एक प्रद अधिपति होता है। प्रधानुसार वर्षका फलाफल स्थिर करना होता है। इस वर्षके फलाफलके ऊपर ही पूर्वोक्त मंगलमंगल निर्मात्र करता है।

वर्षाधिपति इम मन्वन्धमें वृहत्संहितामें लिखा है—पूर्वै त्रिम समय वर्षाधिपति, मासाधिपति वा दिनाधिपति होते हैं, उस समय वृहत्के प्रत्येक मासमें उपर्युक्त रम होती है। वनविभाग शुभ्र, दीप्यमानसे पूर्ण ही उठता है, नक्षत्रोंको अन्तर्घातार्थं शुभ्र पड़ जाती है, कोषधियोंको नाक हास हो जाती है। ये रोग दूर

करनेमें भावः समर्थ नहीं होती। शीतकालमें जो सूर्य अपनी प्रसर करियोंसे दिग्दिग्गन्त हो तत्र कर रखने है। पूर्वोपम मेघराजिसे अधिक वर्षा नहीं होती। आकाशमें टिमटिमानेवाले तारागण, यहाँ तक कि, आकाशके पनि चन्द्रदेव भी दोनिदोन हो जाते हैं। गो तथा तरुकी विषादप्रसन्न होते हैं। हस्ती, अश्व, पशुनि प्रभृति बन्-वाहनोंके साथ नरपतिगण अनुवर सदृश समामिवा-हारमें बहुत बाण, धनुष तथा तलवार प्रभृति अस्त्र शस्त्र ले कर देण ध्वंस करतेही तैयार हो जाते हैं।

चन्द्रमाके वर्षाधिप होने पर पूर्वोपम मेघराजि, हृष्य सर्प, बज्राल, ज्वर वा मक्षिकके समान कृष्णवर्ण हो कर आकाशमेंबलके आच्छादित कर देती है। निर्मल जलमें पृथो परिपूर्ण हो जाता है। सरोवरमग्न पद्म, उदल तथा कुमुद पुष्पोंसे अगमना उठते हैं। उद्यानोंमें पुष्पवृक्षकी शाखाएँ फूलोंके भारमें झूज जाती हैं, उन कुमुदोंके सौन्दर्यसे अन्तरमनुष्याय मदमत्त हो कर धाना-धिनान्दिष्ठ स्वरमें गान प्रारम्भ करते हैं, उनकी मधुर म्कारसे दिग्गर्भ गूँज उठती है। गोस्तनोंसे दुग्धकी धारा बहने लगती है। सुन्दरी रूपशीलसमग्ना कामनिर्वा अश्वत्त धनुषगले धारते पतिके साथ विदार करती है। पृथो गंधूम, शालि, यव, उत्तम धान तथा इन्धुसे परिपूर्ण हो कर अनेकी नगर तथा मन्दिरोसे पुनो-मित होती है, उस समय चारों ओर होमकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। नरपतिगण तमय हो कर अपनी प्रजाश्रीका लाञ्छन फालन करते हैं।

मंगल वर्षाधिपति होने पर वनमें अग्नि पैदा हो कर प्राम, यव तथा नगर दग्ध करनेको उद्यत होती है। पृथो पर अश्ववर्ग इन्दुजलसे माहत हो कर दाहाकार कर उठते हैं, पशुवृक्षका नाश होता है, मेघराजि अन्तर्हीन हो जाता है, कहीं भी अधिक वर्षा नहीं करती, उपर्युक्त मारो जाती है। मंगलके वर्षमें राजाओंके चित्त प्रज्ञाफलकी ओर अनुक नही होते। घर घरमें चित्तलोकका प्रवेश होने लगता है। सर्प द्वारा बहुतसे लोग बज्राल काटके मालमें मना जाते हैं। इस तरहमें प्रजायं जलपशुन, विषय तथा उपरत हो उठती है।

शुभके वर्षाधिपति होनेसे माया, इन्द्रजाल तथा

कुहककारो नागरगण एवं गान्धर्व, लेख्य, गणित तथा मन्त्रविद्याकी वृद्धि होती है। राजा लोग परस्परकी प्रति-कामनासे अद्भुत दर्शन तथा वृष्टिकर द्रव्य एक दूसरेको दान करनेके अभिलाषी होते हैं। कर्त्ता तथा त्रयोनाय संसारमें अधिकृत एवं सत्य रहते हैं। किसी किसीकी वृद्धि शास्त्रदानमें अभिनिविष्ट होता है एवं कोई कोई आणव्योक्षिकी शास्त्रमें परमपद लाभ करनेकी चेष्टा करता है। बुध ग्रहके वर्ष तथा मासमें इस तरहसे पृथ्वी हास्यशू, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिक, संतुल्य तथा पर्वतवानियोंकी वृत्ति एवं चर्चा और ओषधियों की वृत्ति एवं प्रस्तुता सम्पादन करती है।

वृहस्पतिके वर्षाधिपति होनेसे, यक्षोच्चारित विपुल आकाशगामी वेदध्वनि यक्षद्रोहियोंके मन विदीर्ण करती है तथा द्विजवर एवं यक्षांगनागियोंके हृदयमें आनन्दकी धारा बहाती है। पृथ्वी अति शस्ययती होती है एवं अनेक हस्तो, अय, चतुर्भुज सेना, गो घन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण है। कर राजाओं द्वारा पालित तथा वर्द्धित होती है। मनुष्य स्वर्गोप लोगोंकी तरह स्वर्दाके साथ जावन यापन करते हैं। गगनोन्नत कई धर्णोंके पयोदगण वृत्तिरु रजल द्वारा पृथ्वीका परिपूर्ण करते हैं। सुरगुह्य वृहस्पतिके शुभवर्षमें इस तरहसे पृथ्वी अति शस्यपूर्ण तथा समृद्धि शालिनी होती है।

शुक्रके वर्षाधिपति होनेसे, घराघर तुल्य जलदण्डल धारिधारा वर्षण करती है। उससे पृथ्वी परिपूर्ण हो जाती है, सरोथरोका जल सुन्दर कमलोंसे आच्छादित हो जाता है। पृथ्वी नये अलंकारोंसे अलङ्कृत हो कर उज्वलंगो नारोंको तरह शोभा पाती है एवं बहुतो शाली तथा शू उत्पादन करती है। राजाओंको जय-ध्वनिसे विशाण्ड मूँज उठती है। शत्रुओंका नाश होता है, राजा लोग वृहस्पतन तथा शिष्टपालन करके नगर तथा पृथ्वीको रक्षा करते हैं। वसन्त ऋतुमें मनुष्य कामिनियोंके साथ मधुपान करने हैं एवं मधुर घोषा बजा कर गान करते हैं। अतिधि सुहृद् तथा स्वजनगणके साथ मिल कर अन्न भोजन करते हैं। शुक्रके वर्षमें इस तरहसे मंगलकी प्रधानता हो मूर्च्छित होती है।

शनिके वर्षाधिपति होनेसे दुर्घट दम्बुओंके उपद्रव-से तथा सांभ्रामसे सारा राष्ट्र व्याकुल हो उठता है। अनेकों नर तथा यगुओंके प्राण वितष्ट होते हैं, मनुष्य अपने आत्मोप जनोंके वियोगमें आँसू बहाते हैं। क्षुधा तथा संक्रामक रोगके प्रकोपसे मनुष्य व्यस्त हो उठते हैं। अन्तरीक्षमें घाणु विक्षिप्त मेघ कीर देखा नहीं जाता। आकाशमें चन्द्र तथा सूर्यकिरण अ अधिक धूलिपत्तनसे छिप जाती है। जलाशय जल-हीन हो जाता है। नदियोंको जलधाराएँ शुष्क पड़ जाती है। कहीं कहीं जलके अभावसे फसल नष्ट हो जाती है। कहीं कहीं जलसक भूभागमें उपज भी होती है। इस तरहसे सूर्यके वंशधर शनिके वर्षमें इन्द्र पञ्च-शस्यप्रद जल बरसाते हैं।

फलतः जो ग्रह क्षुद्र, अपटुकिरण, नोचगामी वा अन्व द्वारा विजित होते हैं, वे शुभ फल तथा पुष्टिदाता नहीं हो सकते। अशुभ ग्रहके वर्षाधिपति तथा मासधिपति होनेसे उसाके मासजात फलें वृद्धि होती हैं।

(वृहत्सं० १६ अ०)

वर्षाधृत (सं० लि०) वर्षाकालमें लम्ब, वर्षापात।

(काल्पायन भी० ४६ १६)

वर्षाप्रभञ्जन (सं० पु०) कटिकी।

वर्षाम्रिय (सं० पु०) चातक, पपीहा।

वर्षावोज (सं० क्लो०) मेघ, बादल।

वर्षामय (सं० पु०) वर्षासु मधतीति मू अच् वर्षासु भय उत्पत्तिर्वस्य वा। १ रत्न पुनर्नया। २ पुनर्नया। (लि०) ३ वर्षामे उत्पन्न।

वर्षाम्बु (सं० पु० ख०) वर्षाम्बु, भयतीति मू किन्। १ मेरु, मेढरु। २ इन्द्रगोप, भ्यालिन नामका कीडा। ३ कोट्टे मकोट्टे। ४ लाल रंगकी पुनर्नया। (लि०) ५ वर्षामे उत्पन्न होनेवाला।

वर्षामृगाक (सं० पु०) पुनर्नया शीत।

वर्षाम्बो (सं० ख०) वर्षाम्बु क्वाप्। १ मेरु, मेढरु। २ पुनर्नया।

वर्षामद (सं० पु०) वर्षासु माघति इति मद-मच्। म५४, मेरु।

वर्षाम्बु (सं० क्लो०) वृष्टिजल, वर्षाका पाना।

जगतो, बृहस्प, बृहस्प, संज्ञानि, त्रिषणा तथा हलिमीनि  
इन सर्वोक्ता वर्णन भी करना होता है।

यह जन्म सदा बह्वचरनामत् है। 'दारादेनित्यं' इस  
सूत्रके अनुसार दार, अणु, वर्षा ये तीन जन्म सर्वदा ही  
बह्वचरन होते हैं। इन सब जन्मोंके भाषे एकचरन वा  
द्विचरन नहीं होता।

२ पानों बरसनेकी क्रिया या भाष, वृष्टि।

वर्षाकाल ( स० पु० ) वर्षासिन्धु, वरसान।

वर्षाकालीन ( स० लि० ) वर्षासमयवर्षावर्षा, वरसातके  
हाथके।

वर्षागम ( स० पु० ) वर्षागम, वर्षा अनुका भागमन।

वर्षाधीय ( स० पु० ) वर्षासु घोषा महान् जन्मोऽप्य।  
महामण्डक।

वर्षाङ्ग ( स० पु० ) वर्षस्य वरसरस्य अङ्गमिव अमिधानान्  
पुंस्त्वम्। मास, महान।

वर्षाङ्गी ( स० स्त्री० ) वर्षासु अङ्गं यस्याः तत्त ज्ञाताङ्ग, र-  
दर्शनात् तस्याभ्युत्थत्वात्। पुनर्नया।

वर्षावर ( स० लि० ) वर्षामं विचरण करनेवाला।

'वर्षाचरोऽस्तु भूतकः' ( भात १३ पर्व )

वर्षाम्य ( स० लि० ) वर्षाकालोत्पन्न पुनस्यन्थो।

( मयर्ष १२११७० )

वर्षानि ( स० लि० ) १ वर्षाकाल-सम्बन्धो। ( पु० ) २

यह वरस जो वर्षाकालमें पहना जाता है। ३ यह रोग  
जो वर्षाके कारण याप और घोड़ेका होता है।

वर्षाधिप ( सं० पु० ) वर्षापालधिपः ६ नत्पुत्रयः। १ वर्ष-  
समूहके अधिपति। वर्ष देवा।

२ वर्षाधिप प्रदग्ण। प्रत्येक नव वर्षके बाद एक  
एक प्रद अधिपति होता है। प्रधानुमात् वर्षका फलाफल  
स्थिर करना होता है। इस वर्षके फलाफलके ऊपर ही  
पृथ्वीका मंगलामंगल निर्मात करता है।

वराहार्माहने इस समयमें बृहत्संक्रितामं लिखा  
है,—सूर्य जिन समय वर्षाधिपति, मासाधिपति वा दिना-  
धिपति होते हैं, उस समय पृथ्वीके प्रत्येक भागमें उपज  
कम होती है। पनविभाग सुभुसु, दक्षिणसे पूर्ण हो  
उठता है, नदियोंकी जलधारायें शुष्क पड़ जाती हैं,  
वर्षाधिपोंकी शक्ति हास हो जाती है। ये रोग दूर

करनेमें बाधक समर्थ नहीं होते। जोतकालमें जो  
सूर्य अपनी प्रार क्रिणासे दिग्दिग्मन्तकी तप्त कर रखते  
हैं। पर्वतोपम मेघराशिमें अधिक वर्षा नहीं होती।  
आकाशमें टिमटिमानेवाले तारागण, यहाँ तक कि, ताराके  
पति चन्द्रदेव भी क्षीतहोन हो जाते हैं। जो तथा तपस्वी  
विषादमन्त होते हैं। हस्ती, अश्व, पदाति प्रभृति बल-  
माहनोंके साथ नरपतिगण अनुचर सदचर सममिथा-  
हारमें बहुत वाण, धनुष तथा तलवार प्रभृति अस्त्र अस्त्र  
ले कर देग ध्वंस करनेकी तैयार हो जाते हैं।

चन्द्रमाके वर्षाधिप होने पर पर्वतोपम मेघराशि, कृष्ण  
सर्प, कज्जल, ज्वर या महिषके समान कृष्णवर्ण हो कर  
आकाशमंडलको आच्छादित कर देतो है। निर्मल  
जलसे पृथ्वी परिपूरित हो जाता है। सरोवरसमूर पथ,  
उत्पल तथा कुमुद पुष्पोंसे जगमगा उठते हैं। उदात्तोंमें  
पुष्पवृक्षकी शाखायें फूलोंके भारमें भूम जाती हैं, उन  
कुसुमोंके सौरभसे ज्वररसमुद्राय मत्स्य हो कर पाना-  
धिनिन्दित स्वरमें गान प्रारम्भ करते हैं, उनको मयुर  
भंकारसे दिशाएँ मूँज उड़ती हैं। जो स्तनोंसे दुग्धको  
धारा बहने लगतो है। सुन्दरो रूपवीचनसम्पन्न  
कामिनीयाँ भ्रतवन्त अनुरागसे नयने पतिके साथ विहार  
करोती हैं। पृथ्वी गोधूम, गालि, यष, उत्तम धातु तथा  
इक्षुसे परिपूर्ण हो कर अनेकों नगर तथा मन्दिनोंसे सुगो-  
भित होती है, उस समय चारों ओर हीमकी ध्वनि सुनाई  
पड़ती है। नरपतिगण तत्रय हो कर अपनी प्रजाओंका  
लालन पालन करते हैं।

मंगल वर्षाधिपति होने पर पवनसे भनि पैदा हो कर  
ग्राम, वन तथा नगर दग्ध करनेको उत्पन्न होता है। पृथ्वी  
पर मर्षवर्षा दस्युदलमें आहत हो कर हाहाकार कर  
उठते हैं, पशुकुलका नाश होता है, मेघराशि जलहीन हो  
जाती है, कहीं भी अधिक वर्षा नहीं करती, उपज मारी  
जाती है। मंगलके वर्षमें राजाओंके शिष्य प्रजापालनकी  
ओर अनुरक्त नहीं होते। घर घरमें विचरितगण प्रकोप  
होने लगता है। मर्ष द्वारा बहुतसे लोग बराल कालके  
मानमें ममा जाते हैं। इस तरहमें प्रजायें शम्भुहीन,  
विषय तथा उपहन हो उठती हैं।

शुक्रके वर्षाधिपति होनेसे माया, शत्रुता तथा

वर्ष्मल ( सं० लि० ) वर्ष्म मत्वर्थे ( विष्णुादिम्यस्य च । पा  
 ५।२।२७ ) इति लच् । वर्ष्म युक्त, वर्ष्म विशिष्ट ।  
 वर्ष्मवत् ( सं० लि० ) शरीरके समान ।  
 वर्ष्मधीर्ष ( सं० क्लो० ) गुणारोहिक शक्ति ।  
 वर्ष्मां ( सं० क्लो० लि० ) वर्ष्म न देखो ।  
 वर्ष्मांम ( सं० लि० ) आकार वा गठनविशिष्ट ।  
 वर्ष्म्य ( म० लि० ) वर्ष्मसम्यग्धोय ।  
 वर्ह ( सं० क्लो० ) वर्हयति क्षीयते इति वर्ह-अच् ।  
 १ मयूरपुच्छ, मोरको पंख । २ प्रन्धिपर्ण, गंडियन ।  
 ३ पत्र, पत्ता । ४ परोवार ।  
 वर्हण ( सं० क्लो० ) वर्हतीति वृह-वृद्धौ ल्युट्, वर्हयति  
 शोभने इति वर्ह दीप्ती ल्युट् । पत्र, पत्ता ।  
 वर्हस् ( म० पु० ) वृहति वर्सते इति वृहि वृद्धौ  
 ( वृहेर्नलोपच । उष् २।११० ) इति रसि नलोपश्च । १  
 अग्नि । २ दीप्ति । ३ यज्ञ । ( हेम ) "मा नोयहिः पुरुयता"  
 ( शुक ७।७५८ ) ४ चित्रक, चीतेका पेड़ । ५ एक राजाका  
 नाम ।  
 वर्हस ( सं० क्लो० ) वृहतीति वृहि वृद्धौ इती नलोपश्च ।  
 १ प्रन्धिपत्र, गंडियन । २ कुज ।  
 वर्हां ( सं० क्लो० ) वर्हस् देखो ।  
 वर्हिःपुष्प ( सं० क्लो० ) वर्हिर्दीप्तिस्तदयुक्तं पुष्पमस्य ।  
 प्रन्धिपर्ण, गंडियन ।  
 वर्हिःशुभ्रम् ( सं० पु० ) वर्हिषा कुशोन वर्हिषि यज्ञे वा  
 शुष्कतेजो यस्य । अग्नि, आग ।  
 वर्हिष्ठ ( सं० क्लो० ) वर्हिश्च तिष्ठतीति स्था-क । होषे  
 वर्हिकुसुम ( सं० क्लो० ) वर्हिर्बर्हयुक्तं कुसुमं यस्य ।  
 प्रन्धिपर्ण, गंडियन ।  
 वर्हिण ( सं० पु० ) वर्हमस्त्यस्येति वर्ह 'फलवर्हाम्या-  
 मिनच्' इति इनच् । १ मयूर, मोर । ( क्लो० ) २ तगर ।  
 वर्हिणवाहन ( सं० पु० ) वर्हिणो मयूरो वाहनं यस्य ।  
 कात्तिकेय ।  
 वर्हिध्वजा ( सं० स्त्री० ) वर्हां ध्वजो वाहनं यस्याः ।  
 चण्डो ।  
 वर्हिन् ( सं० पु० ) वर्हमस्त्यतीति वर्ह-इति । १ मयूर,  
 मोर । २ प्रधाके गर्भसे उत्पन्न कश्यपके एक पुत्रको  
 नाम । ( भारत १।६।१७० ) ३ तगर ।

वर्हिपद् ( सं० पु० ) एक पितरका नाम ।  
 वर्हो ( सं० पु० ) वर्हिन देखो ।  
 वर्हपञ्ज ( सं० पु० ) मेघनाशकारी, यह जो बादलको नष्ट  
 करता है ।  
 वर्ह ( सं० पु० ) १ मेघ । २ एक असुरका नाम । यह देव-  
 ताओंको गोर्ष चुरा कर एक गुहामें जा छिपा था । इन्द्र  
 उस गुहाको छेक कर उसमेंसे गोर्षको लुड़ा लाये थे ।  
 फिर चलने बैलका रूप धारण किया और वह वृहरूपतिके  
 हाथसे मारा गया ।  
 वर्हक ( सं० पु० ) १ वर्ह नामक दानव । ( हरिवंश )  
 २ पुराणानुसार तामस मन्वन्तरके सप्तर्षिर्दामिसे एक  
 ऋषिका नाम । ( मार्क०पु० ७।५।१६ )  
 वर्हकेभरतीर्थ ( सं० क्लो० ) एक गोर्षका नाम ।  
 वर्हकम् ( सं० पु० ) पर्यायिक वर्ह ।  
 वर्हक्ष ( सं० पु० ) श्वेतवर्ण, मफेद ।  
 वर्हक्षण ( सं० पु० ) शुभ्रांशु चन्द्र ।  
 वर्हग ( सं० क्लो० ) वध्य द्यतिके प्रति आचरित कृत्याविशेष ।  
 पराजित राक्षस लोग भाग कर इन्द्र आदि देवताओंका बध  
 करनेके लिये अस्थि, केश और नलादि भूगर्भमें गिवाह  
 करके जो जो आभिचारिक कृत्या करते थे, उन्तीका नाम  
 वर्हग है ।  
 वर्हगहन ( सं० लि० ) वर्हगान् हन्तीति वर्हग-हन-क्विप् ।  
 कृत्याहननकारी । ( शुक्लपत्रु० ५।२३ )  
 वर्हगिन ( सं० लि० ) वर्हगसमन्वित । ( अथर्व० ५।३।१।२ )  
 वर्हङ्गिमान—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके तञ्जोर जिल्लेके कुम्भ-  
 कोणम् तालुकके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० १०°५३'  
 उ० तथा देशा० ७६°२५' पू०में अवस्थित है । यहाँकी  
 उपजका कारवार यहाँ जोरों चलता है ।  
 वर्हतो ( सं० स्त्री० ) यह मंडप जो घरके ऊपर शिखर  
 पर बना हो, राघटो ।  
 वर्हतेच—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके विजागापट्टम् जिल्लामन्तर्गत  
 एक नगर । यह अक्षा० १७° ४४' उ० तथा देशा० ८३°  
 २२' ३६" पू० तक विस्तृत है । वर्त्तमान अंगरेजों  
 मानचित्र या भूगोलमें यह वालटैयर (Waltair) नामसे  
 परिचित है । चङ्गोपसागरके तट पर पड़नेके कारण  
 यह स्थान बड़ा स्वास्थ्यप्रद है । यहाँ सिविल और

पर्यायशुभवाह ( मं० पु० ) पर्यायके पानीकी धारा ।  
पर्यायमन्वारणप्रद ( मं० पु० ) पर्यायभोगे वृष्टिफलं तस्य  
पारणं उपयासागते पारणं प्रतमिय प्रतं यस्य । चातक,  
पर्याहा ।

पर्यायम ( मं० लि० ) अतिवृद्ध, नाथे वरससे ऊपरकी  
अवस्थाका ।

पर्यायान ( मं० पु० ) पर्यायानां रात्रिः ततः समासाग्लोऽच् ।  
१ पर्यायकालीन रात्रि । २ पर्यायान् ।

पर्यायान् ( मं० पु० ) पर्यायानु अचिच्चर्दीतिरस्य ।  
मङ्गलप्रद ।

पर्याल ( सं० पु० ) परतंग, फति'गा ।

पर्याल्लुपयिका ( सं० स्त्री० ) पूका, पिङ्गि'साग ।

पर्याली—पाणिनीय ऊर्वादिगणोद्धृत एक शब्द ।

( पा १।४।६१ )

पर्यायत् ( मं० लि० ) पर्यायसूदन, पर्यायके समान ।

पर्यायनी ( मं० स्त्री० ) १ इन्द्रगोप, ग्यालिन नामका क्रीडा ।

२ भेरुपत्तो । ३ पुनर्न'धा ।

पर्यायसान ( सं० पु० ) पर्यायानामवसानमत्र । १ शरत्  
काल । ( ह्यो० ) २ पर्यायका शेष ।

पर्यायानाटी ( सं० स्त्री० ) यह चास या कपड़ा जो पर्या-  
यानुमें बाँध लाय पहनते हैं ।

पर्यायान्दी ( सं० स्त्री० ) पर्याय और शरत्काल ।

पर्यायानय ( सं० पु० ) पर्यायकाल ।

पर्यायानुज ( सं० लि० ) पर्यायमें उद्वह्न होनेवाला ।

पर्यायिक ( सं० पु० ) विपयिदानी सप'भेद, बरमान्नी साँप  
जिसमें विप नहीं होता । ( सुभ्रुत ४७० ४ भ० )

पर्याह ( सं० स्त्री० ) पर्याय, मेढकी ।

पर्याहा ( सं० स्त्री० ) पुनर्न'धा ।

पर्यायिक ( सं० लि० ) १ पर्यायसम्बन्धीय । २ पर्यायसम्बन्धीय ।

पर्याय और पर्याय' इन दोनों शब्दोंके उत्तर रिणक् प्रत्यय  
करनेमें पर्यायिक पद होता है ।

पर्यायिन ( सं० स्त्री० ) वृष्टि ।

पर्यायिता ( सं० स्त्री० ) पर्यायिन भाष्य तद्गतद्याप् । पर्याय-  
कर्ता, बरमानेवाला ।

पर्यायिन् ( सं० लि० ) पर्यायकर्ता, बरमानेवाला ।

( निरुक्तः ४८ )

पर्यायिन ( सं० लि० ) वपनकारो, धायिन ।

पर्यायिनः ( सं० पु० ) गृहका भाष्य, दीर्घ'जीवित्व ।

( सुश्रुतः १५४ )

पर्यायिष्ठ ( सं० लि० ) १ अतिशय वृद्ध, बड़ा बूढ़ा । २ अत्यन्त  
व्यथान ।

पर्यायिष्ठसूत ( सं० लि० ) १ अतिशय क्षमता या शक्ति-  
शाली । २ मिलावकरण ।

पर्यायिका ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका छन्द ।

पर्यायण ( सं० लि० ) पर्यायणसम्बन्धीय ।

पर्याय ( सं० लि० ) वरसर या वयम-सम्बन्धीय ।

पर्यायम् ( सं० लि० ) अयमनयोरतिशयेन वृद्धः, गृह इव-  
सुख ततो पर्यायिनः । अति सुख, बड़ा बूढ़ा । पर्याय—  
दशमी, ज्यामान् ।

स्मृतिशास्त्रमें लिखा है, कि सोलह वर्ष तक बालक,  
उसके बाद तपण या युवक होता है । तब सत्तर वर्षके बाद  
वृद्ध वर्ष मध्येके बाद, पर्यायान् कहलाता है ।

पर्याय ( सं० लि० ) पर्यायम ग्यानादि, पर्यायकालोत्पन्न ।

पर्यायक ( सं० लि० ) पर्यायित लक्ष्योल इति घृष्य- ( रूप पर्याय-  
स्यानु-वृष-दन-कम-गम-श्रम्य उच्यते । पा १।२।१५४ ) इति  
उच्यते । पर्यायकर्ता, बरमानेवाला ।

पर्यायकान्द ( सं० पु० ) पर्यायकदयासी अश्रुदचेति कर्मपाठः ।  
बरमानेवाला मेघ ।

पर्यायज ( सं० लि० ) पर्याय जायते इति जन-ज, सप्तम्या  
शत्रुक । १ पर्यायकाल जात । २ वरमरजात ।

पर्यायश ( सं० पु० ) पर्यायस्य ईगः । पर्यायिष्य ।

पर्यायघ ( सं० पु० ) ऋद्ध, प्रमज्जन ।

पर्यायवल ( सं० पु० ) पर्यायानुवलः । मेघजात शिला,  
करका ।

पर्याय ( सं० लि० ) वृष्टिकारो, पर्याय करनेवाला ।

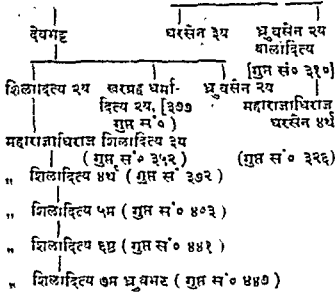
पर्याय ( सं० स्त्री० ) शरीर । ( द्विरुक्तेः ) "पर्यायिद्विन  
समाधानाम्" ( पाठ्यपर्यायः १।३ )

पर्यायन् ( सं० स्त्री० ) पर्यायि वृष्ट्यते धेनि घृष्य-मनिन् ।  
१ शरीर । २ प्रमाण । ३ इयत्ता । ४ जल-रोषक,  
बाँव । ( लि० ) ५ उन्नत । ६ शिपर । ७ अति शुद्ध-  
वृष्टि । ८ पर्यायान्, अतिशय वृद्ध ।

वर्ष्मल ( सं० लि० ) वर्ष्म मत्वर्थे ( विष्मादिभ्यश्च । पा  
५।२।१०० ) इति लच् । वर्ष्मयुक्त, वर्ष्मविशिष्ट ।  
वर्ष्मयत् ( सं० लि० ) शरीरके समान ।  
वर्ष्मधोर्व ( सं० ह्रो० ) शारीरिक शक्ति ।  
वर्ष्मा ( सं० ह्रो० लि० ) वर्ष्मन देखो ।  
वर्ष्माम ( सं० लि० ) आकार वा गठनविशिष्ट ।  
वर्ष्म्य ( सं० लि० ) वर्ष्मसम्बन्धोय ।  
वर्ह ( सं० ह्रो० ) वर्हयति दीप्यते इति वर्ह-अच् ।  
१ मयूरपुच्छ, मोरको पंख । २ प्रन्धिपर्ण, गंडिवन ।  
३ पल, पत्ता । ४ परोवार ।  
वर्हण ( सं० ह्रो० ) वर्हतीति वृह-वृद्धौ व्युट्, वर्हयति  
जोमने इति वर्ह दीप्ती व्युर्षो । पल, पत्ता ।  
वर्हस् ( सं० पु० ) वृहति वर्दति इति वृद्धि वृद्धौ  
( वृहेर्नलोपश्च । उष्य २।११० ) इति रसि नलोपश्च । १  
अग्नि । २ दीप्ति । ३ यज्ञ । ( हेम ) "मा नोवर्हिः पुरुषता"  
( श्रुक् ७।७५।५ ) ४ चित्रक, चीतेका पेड़ । ५ एक राजाका  
नाम ।  
वर्हस ( सं० ह्रो० ) वृहतीति वृद्धि वृद्धौ इती नलोपश्च ।  
१ प्रन्थिपत्र, गंडिवन । २ कुत्र ।  
वर्हां ( सं० ह्रो० ) वर्हस् देखो ।  
वर्हिःपुण्य ( सं० ह्रो० ) वर्हिर्दीप्तिस्तदपुक्तं पुण्यमस्य ।  
प्रन्थिपर्ण, गंडिवन ।  
वर्हिःशुभ्रम् ( सं० पु० ) वर्हिषा कुशोन वर्हिषि यज्ञे वा  
शुक्लतेजो यस्य । अग्नि, भाग ।  
वर्हिष्ठ ( सं० ह्रो० ) वर्हिरिव तिष्ठतीति स्था-फ । होवेर  
वर्हिकुसुम ( सं० ह्रो० ) वर्हिषं हंशुकं कुसुमं यस्य ।  
प्रन्थिपर्ण, गंडिवन ।  
वर्हिण ( सं० पु० ) वर्हमस्त्यस्येति वर्ह 'फलवर्हांस्या-  
मिनच्' इति श्नच् । १ मयूर, मोर । ( ह्रो० ) २ तगर ।  
वर्हिणवाहन ( सं० पु० ) वर्हिणो मयूरो वाहनं यस्य ।  
कात्तिकेय ।  
वर्हिध्वजा ( सं० खो० ) वर्हां ध्वजो वाहनं यस्याः ।  
चण्डी ।  
वर्हिन् ( सं० पु० ) वर्हमस्यातीति वर्ह-रिनि । १ मयूर,  
मोर । २ प्रधाके गर्गसे उत्पन्न कश्यपके एक पुत्रका  
नाम । ( भारत १।६।५०० ) ३ तगर ।

वर्हिण्यद् ( सं० पु० ) एक पितरका नाम ।  
वर्हीं ( सं० पु० ) वर्हिण्य देखो ।  
वर्लंज ( सं० पु० ) मेघनाशकारी, यह जो बादलको नष्ट  
करता है ।  
वल् ( सं० पु० ) १ मेघ । २ एक असुरका नाम । यह देव-  
ताओंको गोप्यं घुरा कर एक गुहामें जा छिपा था । इन्द्र  
उस गुहाको छेक कर उसमेंसे गोओंको छुड़ा लाये थे ।  
फिर चलने वैलका रूप धारण किया और वह वृहस्पतिके  
हाथसे मारा गया ।  
वल्क ( सं० पु० ) १ वल्क नामक दानव । ( शिबंश )  
२ पुराणानुसार तामस मन्वन्तरके सप्तविंशतिसे एक  
ऋषिका नाम । ( मार्क०पु० ७।५।५६ )  
वल्केभ्यरतीर्य ( सं० ह्रो० ) एक गोर्षका नाम ।  
वल्कम् ( सं० पु० ) पर्यायिक वल्क ।  
वल्क ( सं० पु० ) श्वेतवर्ण, मफेद ।  
वल्कशृ ( सं० पु० ) शुश्रांशु चन्द्र ।  
वल्ग ( सं० ह्रो० ) वध्य व्यक्तिके प्रति आचरित वृत्त्याविशेष ।  
पराजित राक्षस लोग भाग कर इन्द्र आदि देवताओंका वध  
करनेके लिये अस्थि, केश और नखादि भूगर्भमें निवाह  
करके जो जो आमिचारिक वृत्त्या करते थे, उसीका नाम  
वल्ग है ।  
वल्गहन ( सं० लि० ) वल्गान् हन्तीति वल्ग-हन-क्विप् ।  
वृत्त्याहननकारी । ( शुक्लपत्र १०।५।२३ )  
वल्गिन ( सं० लि० ) वल्गसमन्वित । ( अथर्व० ५।३।१।२२ )  
वल्ङ्गिमान—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके तञ्जोर जिल्लोंके कुन्म-  
कोणम् तालुकके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० १०°५३'  
३० तथा देशा० ७६° २५' पू०में अवस्थित है । यहाँकी  
उपजका कारण यहाँ जोरों चलता है ।  
वल्ती ( सं० खो० ) यह मंडव जो घरके ऊपर शिघर  
पर बना हो, रावटो ।  
वल्तेह—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके विजागापट्टम् जिल्लान्तर्गत  
एक नगर । यह अक्षा० १७° ४४' ३० तथा देशा० ८३°  
२२' ३६" पू० तक विस्तृत है । वर्त्तमान अंगरेजों  
मानचित्र या भूगोलमें यह वाल्टेयर (Waltair) नामसे  
परिचित है । यज्ञोपसागरके तट पर पड़नेके कारण  
यह स्थान बड़ा स्वास्थ्यप्रद है । यहाँ सिविल और





के ताम्रशासनसे ज्ञाना जाता है, कि वे 'राजे "वंच-महाशब्द" व्यवहार करते थे। महाराज, महासामन्त, महाप्रतोहार, महाइण्डनायक तथा महाकांक्षादित्य ये सब उपाधियां सम्भवतः उनके पूर्वपुरुषोंके राजकीय पद-निर्देशक थीं, मद्यस्तन वंशघरने उस स्मृतिका लोप करना कर्त्तव्य नहीं समझा। १म ध्रुवसेन अपने बौद्धधर्मावलम्बी होने पर भी अन्याय धर्माविवेक नहीं थे। बहुतसे ताम्रशासनोंमें उनको बहन दुड्डा "परमो-पासिका" नामसे सम्मानित हुई है। वलमीराज शिलादित्य प्रथम धर्मादित्य सम्राट् हर्षदेवसे पराजित हुए। वालादित्य द्वितीय ध्रुवसेनका ३१० संवत् चिह्नित (६२६ ख्र० अ०) ताम्रशासन पाया गया है। इस ध्रुवसेनको चीन-परिम्राजक यूएनसियानि 'तु-लू-हो-पो-टे' या ध्रुवमठके नामसे परिचित किया है।

उन्होंने वलमीपतिको मालवपति शिलादित्यका भानजा, कान्यकुब्ज हर्षवर्द्धनके पुत्रका जामाता एवं क्षत्रिय जातीय कह कर उल्लेख किया है। वे वलमीराज पहले हिन्दूधर्मावलम्बी होने पर भी इस समयके बौद्ध विरतका उपासक हो कर बौद्धधर्म अवलम्बनके साथ साथ अत्यन्त दयालु, विद्योत्साही तथा धार्मिक हो गये थे। प्रति वर्ष ही वे महाघोसभा करने थे, श्रोतार्थोंको बहुतसे घनरत्न तथा उत्कृष्ट आभूषण दान देते थे, आचार्योंको वस्त्र, भोजन्यादि तथा मूल्यवान् मणिरत्नादि बाँटते थे। दूरदेशीय आचार्यागण जो समामें उपस्थित होते थे, वे राजाके निकट विशेष सम्मानित होते थे। उस समय वलमीराजका आयतन ६००० ली या हजार मोल था और इनकी राजधानीका परिमाण ० ली था। इस देशकी आषाढ़ी, जलवायु तथा भूतस्थान मालव-राज्यके समान था। यह स्थान बहुत जनकीर्ण था, राजधानी धनी लोगोंके उन्नत प्रासादोंसे समाच्छन्न थी एवं इस स्थानमें बहुतसे क्रीड़ापतियोंका निवास था। अनेकों दूर-दूर देशोंकी रत्नरत्नि यहाँ संचित थी। यहाँ शताधिक संधाराम विद्यमान थे एवं उनमें प्रायः ३००० आचार्योंका वास था। वे सभी प्रायः सामंतीय शास्त्राके होतयान थे। यहाँ सौक्यों मन्दिरों विद्यमान थे। चीनपरिम्राजकने इस तरहसे वलमीका परिचय दे कर

सेनापति भटाकें यथापि इस वंशके वीजपुरुष थे, तथापि उनके पुत्र प्रथम ध्रुवसेनने ही स्वभावतः "वंच-महाशब्द" युक्त राजोपाधि ग्रहण की एवं इस वंशीय राजाओंके जितने ताम्रशासन आविष्टित हुए हैं, उनमें इस ध्रुवसेनका ताम्रशासन ही सर्वप्राचीन है, उसके २०७ अंक द्विद्विगोचर होने हैं। इन अंकोंको किसी किसी प्रकृतस्वविद्वाने "वलमीसेन" नामसे निर्देश किया है। सुप्रसिद्ध मुसलमान पंडित अलबेरुनी ख्रिष्टीय १०वीं शताब्दीके शैव आगममें लिख गये हैं कि, वल्लमवंश ध्रुवसेन होने पर २४१ शकाब्दमें यद् संवत् प्रचलित हुआ। किन्तु हम लोग देखते हैं, कि सेनापति भटार्थी द्वारा ही वलमीवंशका अभ्युदय हुआ। इन हालतमें उनके जन्मकी शताधिक वर्ष पहले ही किम तरह वलमीराजवंशके ध्रुवसेनका वात स्वीकार की जा सकती है। हम लोगोंका विश्वास है कि, एक समय वलमी सुराष्ट्रके शक-राजाओंके अधिकारमें था। २४१ शक वा ३१६ ख्रिष्टाब्दमें शक राज्य ध्रुवसेन तथा गुप्त साम्राज्य संधारण हुआ। २४१ शकाब्दमें ही गुप्तसंवत्सर आरम्भ हुआ। उनके बहुत वर्षोंके बाद सेनापतिवंशका अभ्युदय होने पर भी वलमीराजगण गुप्त सम्राटोंका संवत् ग्रहण करनेको बाध्य हुए। ऐसी दशामें वलमीराज्य ध्रुवसेन हॉन्सि ही वलमी-संवत् आरम्भ होनेका प्रवाद प्रचलित होता कुछ असम्भव नहीं है। उक्त २०७ अंक + २४१ = ४४८ शक (वा ५२६ ई०) में १म ध्रुवसेन राज्य करते थे। उनके तथा उनके बादके राजाओं



मिन्डिरो विनागके बहुतसे अंगरेज-बर्मेशारी रहते हैं। विनागपत्तनसे यह स्थान तीन मील उत्तरमें अवस्थित है, एवं उक्त नगरके यूरोपियोंकी वास्तुभूमि भी उपर्युक्त बट कर परिगणित है। समुद्रको तहसे यह स्थान २३० फीट ऊंचा एवं गण्डक्रीयमालामें परित्युक्त है। इष्टरीष्ट शैलपथ इस नगरके पास हो कर मास्ट्राजकी ओर सीधु गया है। इस कारण आज कल यहाँको श्रेष्ठि बहुत कुछ बढ़ गई है। पहले यहाँ पीनेके जलका बड़ा अभाव था, अब उम्मीठ टननी निकालत गलीं बढ़ गई है; परन्तु फलमूल और आमोंकी जोतका अब भी अभाव है। यहाँके अंगरेज टोलासे बंगाली-टोला बहुत ही बराबर है।

गण्ड्यूर—मास्ट्राज प्र सिट्टेन्कीके दक्षिण भागके जिलेके विनागपुमा तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षांश ११° ५८' ५०" उ० तथा देशांश ७६° ४४' ३०" पू० पंजाबमें ६ मास उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। फरा-मिर्गमें पंजीमेंको राजधानी सुदृढ़ करनेके लिये यहाँ पहले दुर्ग बना कर सेनानिवास स्थापन किया था। १७०० ई०में अङ्गरेज सेनापति क्रूडने पंजाबेरी पर आक्रमण कर इसे अङ्गरेजाधिपत्य कर लिया।

१८८२ ई०की ३०वीं जून तक स्थलपथगामी पथ-प्रथ पर शुक्र आशय करनेके लिये यहाँ फरासिरीका एक शुक्र-कार्यालय था।

पल्लिप ( सं० पु० ) इन्द्र।

पलन ( सं० पु० ) ज्योतिष शास्त्रानुसार प्रष्ट, नक्षत्रादिका साधनार्थमें दृष्ट कर चलना या विचलन (deflection)। पञ्चनयामना ( सं० ग्री० ) प्रशस्तिका अथवाकृति प्रतीपादन पञ्चानां ( सं० पु० ) ज्योतिषके अनुसार अथवाज्ञाने किन्तो प्रशस्त पञ्चन अर्थात् दृष्ट कर चलने या पकणतिको दूरीता अंश ( degree of deflection )।

पलनामन ( सं० पु० ) १ पल्लवसक। २ इन्द्र।

पलनिमुदन ( सं० पु० ) इन्द्र।

पलनिकता ( सं० ग्री० ) संगीतशास्त्रोक्त स्वरक्रममेष्ट।

पलपुर ( सं० ग्री० ) पल नामक दानपत्री पुरी।

पलानि ( सं० ग्री० ) पलनी देवी।

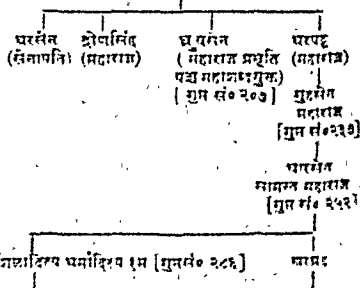
पलनी ( सं० ग्री० ) पलमि शक्तिशक्ति या स्त्रीय

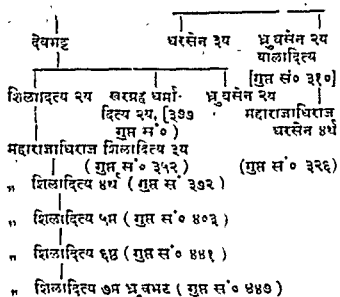
१ पद अष्टादश ओं पारके ऊपर निक्षर पर बना हो, रूपयौ।  
२ छान्नी। ३ पृथ्वी, पारकी यौती। ४ पुरीपरीय।

बलभीराजवंश—सुराष्ट्रका एक प्राचीन राजवंश। सुराष्ट्रके ( वर्तमान काठियावाड़के ) अन्तर्गत, भावनापत्तनके १८ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। वर्तमान बाका नामक स्थान पहले बलभी नामसे विख्यात था। प्राचीन बलभी-राजधानीका ध्वंसावशेष उक्त थाना नामक स्थानमें विद्यमान है। यहाँके प्राचीन मरुतिपतिराज बलभी-राजवंशके नामसे इतिहासमें परिचित है।

सुराष्ट्रयुद्धों जनाश्रुतिमें भटार्क नामक एक सेनापतिका अन्वयव्य हुआ। ये मौरव या मित्रवंशके थे। भटार्क समनयतः सुराष्ट्रके राजवंशों पर राजामोंके किमी सेनापतिके वंशधर थे। बलभी राजामोंकी बहुत सी जिलाकल्पि तथा ताजनामनसे जाना जाता है, कि भटार्कके अनुमार ही उनके उद्युक्त पुर प्रथम परमेष्ठ भी सेनापतिको उपाधिसे भूषित थे। पाश्चात्य ऐतिहासिक लोग इन्हें पिदेजो ही समझते हैं। हम लोगोंकी भी ऐसा ज्ञान पड़ता है कि भटार्क भी एक ज्ञानहीन क्षत्रियवंशके थे। अति प्राचीनकालमें जो ज्ञानहीन लोग भारतमें आये थे, वे मित्र नामक सूर्यात्मक थे। इसी कारण कितने ही मौरव या मिहिर उपाधि धारण करते थे। अन्तमें वे लोग ही वंशीपाधि रूपमें गिने जाने लगे। भटार्क भी इसी तरहसे किसी मौरव-कुलमें उत्पन्न हुए थे, उनके वंशधर भी मौरव कहलाने हैं। इस वंशके बहुतसे ताजनामन पाये गये हैं। उनसे ही वंशावली निकली है।

सेनापति भटार्क





सेनापति भट्टार्क यद्यपि इस वंशके वीजपुरुष थे, तथापि उनके पुत्र प्रथम ध्रुवसेनने ही स्वभावतः "पंच-महाशब्द" युक्त राजोपाधि ग्रहण की एवं इस वंशोय राजाओंके जितने ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं, उनमें इस ध्रुवसेनका ताम्रशासन ही मंत्रप्राचीन है, उसके २०७ अंक दृष्टिगोचर होने हैं। इन अंकोंको किसी किसी प्रव्रतस्वविदूने "वलभीसंबत" नामसे निर्देश किया है। सुप्रसिद्ध मुसलमान इतिहासकारोंकी खुरोय १०वीं शताब्दीके शेष भागमें लिख गये हैं कि, यल्लमवंश धरसेन होने पर २४१ शकाब्दमें यह संवत् प्रचलित हुआ। किन्तु हम लोग देखते हैं, कि सेनापति भट्टार्क द्वारा ही यलभीवंशका अस्तित्व हुआ। इस हालमें उनके जन्मके शताधिक वर्ष पहले ही किस तरह यलभीराजवंशके धरसेनका बात स्वीकार की जा सकती है। हम लोगोंका विश्वास है कि, एक समय यलभी सुराष्ट्रके शक-राजाओंके अधिकारमें था। २४१ शक या ३१६ ख्रिःपूर्वमें शक राज्य धरसेन तथा गुप्त साम्राज्य स्थापित हुआ। २४१ शकाब्दमें ही गुप्तसंवत्सर आरम्भ हुआ। उसके बहुत वर्षोंके बाद सेनापतिवंशका अस्तित्व होने पर भी यलभीराजगण गुप्त सम्राटोंका संवत् प्रदण करनेकी बाध्य हुए। ऐसी दशामें यलभीराज्य धरसेन होनेसे ही यलभी-संवत् आरम्भ होनेका प्रवाद प्रचलित होना कुल असम्भव नहीं है। उक्त २०७ अंक + २४१ = ४४८ शक (या ५२६ ई०) में १म ध्रुवसेन राज्य करते थे। उनके तथा उनके बादके राजाओं

के ताम्रशासनसे ज्ञाना जाता है, कि वे राजे "पंच-महाशब्द" व्यवहार करते थे। महाराज, महासामन्त, महाप्रतीहार, महादण्डनायक तथा महाकालाहृत्य ये सब उपाधियां सम्भवतः उनके पूर्वपुरुषोंके राजकीय पद-निर्देशक थीं, अथस्तन वंशघटते उस स्मृतिका लोप करना कर्तव्य नहीं समझा। १म ध्रुवसेन अपने बौद्धधर्मावलम्बी होने पर भी अन्यान्य धर्मविद्वेषा नहीं थे। बहुतसे ताम्रशासनोंमें उनकी बहन दुड्डा "परमोपासिका" नामसे सम्मानित हुई है। यलभीराज शिलादित्य प्रथम धर्मादित्य सम्राट् हर्षवंशसे पराजित हुए। यालादित्य द्वितीय ध्रुवसेनका ३१० संवत् चिह्नित (६२६ ख्रिः अ०) ताम्रशासन पाया गया है। इस ध्रुवसेनकी चीन-परिव्राजक यूचनसिपाने 'तु-लु-हो पो-टे' या ध्रुवभट्टके नामसे परिचित किया है।

उन्होंने यलभीपतिकी मालवपति शिलादित्यका भानजा, कान्यकुब्ज हर्षवर्द्धनके पुत्रका जामाता एवं क्षत्रिय जातीय कह कर उल्लेख किया है। ये यलभीराज पहले हिन्दूधर्मावलम्बी होने पर भी इस समयके बौद्ध विरतनका उपासक हो कर बौद्धधर्म अवलम्बनके साथ साथ अत्यन्त दयालु, विद्योत्साही तथा धार्मिक हो गये थे। प्रति वर्ष ही वे महाधर्मसभा करते थे, श्रोताओंकी बहुतसे धनरत्न तथा उत्कृष्ट म्याघ पदार्थ दान देते थे, आचार्योंको वस्त्र, मेषज्यादि तथा मूल्यवान् मणिरत्नादि बाँटते थे। दूरदेशीय आचार्यांगण जा मभामें उपास्थित होने थे, वे राजाके निकट विशेष सम्मानित होते थे। उस समय यलभीराज्यका वायतन ६००० ली या हजार मोल था और इसकी राक्षधानोका परिमाण

० ली था। इस देशकी वायादी, जलवायु तथा भूसंस्थान मालव-राज्यके समान था। यह स्थान बहुत जताफीर्ण था, राजधानी धनो लोगोंके उन्नत प्रासादोंसे समाच्छन्न थी एवं इस स्थानमें बहुतसे करोड़पतियोंका निवास था। जनेकी दूर-दूर देशोंकी रत्नरसि यहाँ संचित थी। यहाँ शताधिक संघाराम विद्यमान थे एवं उनमें प्रायः ३००० आचार्योंका वास था। वे सभी प्रायः सम्मतीय शास्त्रके दीनयान थे। यहाँ सैकड़ों मन्दिरों विद्यमान थे। चीनपरिव्राजकने इस तरहसे यलभीका परिचय दे कर

अन्तमें लिखा है, कि ये शनेकी बार यहाँ आया करने थे इसान्तिथे अन्तवराजने उनके स्मरणार्थ इस स्थान पर कई एक स्मृतिस्त्रुपे' निर्माण किये थे। यलमीनगरके समाप शोनपरिष्कारक बहैन् भाचार्यके प्रतिष्ठित गुणमती तथा सिधरमतोक स्मृतिन-दि'नाक पृथक् संस्काराम दूने गये हैं।

सम्राट् हर्षवर्धनको मृत्युके बाद जिस समय घटन-साध्याय ले कर गोलयोग उपस्थित हुआ था, उस सुमय-गर पर ४थे घटनेने बहुत-से राज्य जीत कर "परम-महाराज परमेश्वर चक्रवर्ती महाराजाधिराज"-की उपाधि प्रदान की थी। ये श्री-पुरुरव दोनोंको ही राजकार्यमें समान अधिकारी समझते थे। उनके ३२० यलमी-संवत् ( ३४६-५० ई० ) में उत्कीर्ण तादनासनमें उनकी प्रिय दृष्टिगा भृगु दूतक बर्षान् दानपत्रके कार्य संसाधनमें प्रधान राजपुरुरव का कर परिचित है। उन्होंने भद्रकाल-में ( परांमान भोजन ग्रहरमें ) अपनी राजधानी स्थापित की थी।

यलमी-राजवंशके ध्वंस हो जाने पर भी बहुत समय तक यलमी-संवत्का प्रचलन था। येतालमें भाविष्टत चोत्पुष्यराज अर्जुनदेवको जिलाकामिमें ६४५ यलमी-संवत् मण्ड ( = १२४६ ई० ) देना जाता है। यलमीके ध्वंस हो जानेके बाद यलमी राज्याय किये किमी व्यक्तिने राजपुत्रानेमें शाश्वत किया। बहलम देते।

यलभ्य ( सं० पु० ) अथलभ्य, सरल केनाकी उपरलभ्य लभ्य-रेखा ( Perpendicular )।

यलभ्य ( सं० पु० ) एक प्राचीन जनपदका नाम।

यलय ( सं० पु० श्लो० ) यलते भाषणोति हस्तादिकमिति-यन ( कर्ममण्डननिम्नः कथन् । उप् ५।६६ ) इति कथन् । १ स्वर्णादिशक्ति प्रोष्ठाभरण, लूङ्गे। पर्वण्य—भाषायक, परिहाये, गङ्गा, कम्पु, कुण्डल। २ मण्डल। ३ मन्थि विरोध । ( मभुत शरोरुषा० ५ ५० ) ४ दृष्टव्ययुक्तका एक भेद । ५ घेरन । ६ क'कण । ( पु० ) यलयवदाटुगिरिस्त्य-वदिनि शरी भादिस्थाद्यत् । ७ मन्दाय प्रहारके मलयगुट रोमीमेंसे एक । इसमें कर्णके कारण मतेके अन्तर उस मलयमें विद्यमाने हो कर अन्न जल घेरने जाता है, एक गण्ड उत्पन्न हो जाता है। यह गण्ड ऊँचों शीर बड़ी

होती है अन्न अन्न जलके आनेका मार्ग रोक देती है। येय लोग इसे भस्त्राण्य मानते हैं।

यलयवय् ( सं० श्लो० ) यलय अस्त्रवधे मनुष्य मरप यः । यलयविनिष्ट ।

यलयित ( सं० श्लो० ) यलयवय् एतमिति यलय तरकरो तोति पिच्छ ततः का, यदा यलय तदाटुगिरिज्ञानम्पेति यलय इत्यच् । घेरित, परिष्ठित, घेरा हुआ।

यलयिन् ( सं० श्लो० ) यलय या वृत्ताकारं गोमित्त ।

यलयोष्ट ( सं० श्लो० ) १ यलयाकारं घेरित । २ हत-यलय । ३ कुण्डलीष्ट ।

यलयोष्टपासुकी ( सं० पु० ) गिय ।

यलयोभूत ( सं० श्लो० ) १ यलयपाकारं श्वस्त । २ घेरित ।

यलरामी—वैष्णव सम्प्रदायभेद । बलराम हाडो इस सम्प्र-दायके प्रयत्नक थे, इसलिये यह सम्प्रदाय यलरामी बड-लाता है। नदी या जिलेके अन्तर्गत मेरेशपुर प्रामके प्राजापाडामें उनका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम गोविन्द हाडो एवं माताका नाम गोत्तमि था। १२५३ सालकी ३०वीं अमदायणकी लगभग ६५ वर्षकी अवस्था-में उनकी मृत्यु हुई।

यलराम इस प्रामके महिष्क बाबुभोके घर श्रीश्रीदामी का काम करने थे। उनके भयनमें आगन्ध विदारो नामक एक विप्रद है। एक समय इस विप्रदका स्वर्णलंकार गुरो जाने पर बाबुभोने यलराम पर कुछ प्रामन किया। उसने ये घर छोड़ गेदमा यल पारण कर उदासो हो गये। उन्होंने अपने नाम पर उपासक सम्प्रदाय प्रयत्न किया। यल-रामके शिष्यगण उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका अवगार मानते थे। किन्तु यलरामने स्वयं ऐसा अभिप्राय प्रकाश किया था, येसा जान नहीं पड़ता। सुना जाता है कि, ये स्वयं अरनेका सृष्टिस्थिति प्रत्यक्षकर्ता बड कर अरना परिचय देते थे। उनके शिष्य लोग कहते हैं कि, यलराम उपदेशक थे एवं ये सरव व्यवहार करनेका उपदेश दिया करते थे।

यलराम वाचरवट्टु थे। ये स्वमारके पायणोप व्यापारी-के निगूट भाषोकी व्यावसायिक आसक्तोमें कर लगे थे, इसलिये ये वाचरके नामसे प्रसिद्ध हैं। एक दिन उनके हिसां लिप्यने पूजा—पूज्यो बदांति पैदा हुई।

उन्होंने उत्तर दिया—'क्षय' से पैदा हुई है। शिष्योंने फिर पूछा—'क्षय' से किस तरह पैदा हुई? वे विशेषरूपसे कहने लगे—शादिकालमें कुछ भी नहीं था, मैंने अपना शरीर 'क्षय' करके अर्थात् अपने शरीरने इस पूछतीकी सृष्टि की। इसीलिये इसका नाम क्षिति है। क्षय, क्षिति तथा क्षेत्र एक ही पदार्थ है। लोग मुझे नोच हाड़ी जाति समझते हैं, किन्तु तुम लोग जो हाड़ी जाति सर्वांत देखते हो मैं यह हाड़ी नहीं हूँ। मैं हृतदार गढ़नदार हाड़ी हूँ, अर्थात् जो व्यक्ति घर तैवार करते हैं, वे घरामी कहलाते हैं, उसी तरह मैं हाड़ी की सृष्टि करनेके कारण हाड़ी कहलाता हूँ।

एक दिन वलराम नदीमें स्नान करने गये। वहाँ उन्होंने देखा—कई एक ब्राह्मण वहाँ पितृतर्पण कर रहे हैं। वे भी उन लोगोंकी तरह नदीके किनारे जल उछालने लगे। उनको अंगमंगी देख कर एक ब्राह्मणने उनसे पूछा— वलराम! तुम यह क्या कर रहे हो? इस पर वलरामने उत्तर दिया—मैं शाकके खेतमें जल पटा रहा हूँ। इस पर ब्राह्मण देवता कहने लगे—यहाँ शाकका खेत कहाँ है? वलरामने जवाब दिया—आप लोग जो पितरोंका तर्पण करते हैं, वे सब यहाँ कहाँ हैं? जब नदीका जल नदीमें ही निक्षेप करनेसे पितृदेवकी प्राप्त होता है, तब नदीके किनारे जल सिंचन करनेसे शाकके खेतमें पत्तों नहीं पहुँचेंगी?

होलिकाके समय वलराम स्वयं होलिकामंच पर जा बैठते थे और त्रिप्यगण अवीर तथा पुष्पादिसे उनको पूजा करते थे।

इस सम्प्रदायके अनुयायियोंने जातिविचार नहीं है। इनके अधिकारश मुद्दस्थ हैं तथा कोई कोई उदासी हैं। उदासी ब्याह नहीं करते, अथच इन्द्रिय दोषमें भी लिप्त नहीं होते। मुद्दस्थ लोग अपने अपने कुलाचारा-नुसार विवाह संस्कार सम्पन्न करते हैं।

इनका कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं है। वे लोग विप्रदकी सेवा भी नहीं करने, गुच नहीं कहने पर भी होता है। ब्रह्म मालोती नामक एक स्त्री थी। वलराम उसें प्यार करते थे। इसीलिये उसने कुछ दिनों तक गुचका कार्य किया था।

वलरामी सम्प्रदाय दो शाखाओंमें विभक्त है। एक

शाखाके लोगोंने वलरामके मृत्युस्थान पर एक छोटा-सा घर बना रखा है। वे लोग सन्ध्या समय वहाँ पर दीप दिखाते हैं और प्रणाम करते हैं। द्वितीय शाखाके लोग वलरामकी ऐसी आहा न समझ कर उनके मृत्यु-स्थानका कोई गौरव नहीं करते।

वलवत् ( सं० त्रि० ) घल अस्त्रयर्थं मनुष्य मस्य वः। घल-युक्त, घलवान्।

वलवत्ता ( सं० स्त्री० ) घलवती भावः तल्-टाप्। अतिशय घल, शक्ति, सामर्थ्य।

घलवनूर—मान्द्राज-प्रैसिडेन्सोके दक्षिण और भाकंड जिलेमें विचयपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक समृद्धिशाली गण्डग्राम। यह अक्षा० ११° ५५' ३० तथा देशा० ७६° ४८' ५० पंढीचेरोसे द्वाई फोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहाँ स्थानीय उपजको खरोद्-विश्वीके लिये एक बड़ी हाट लगती है।

घलवला ( अ० पु० ) उर्मग, आवेश।

घलवृत्तन्न ( सं० पु० ) घल और वृत्तनाशक इन्द्र।

घलवृत्तनिसूदन ( सं० पु० ) घलवृत्तौ निखृदयति खृद-न्त्यु। घलवृत्तहन्ता इन्द्र।

घलसूदन ( सं० पु० ) वलं सूदयति खृद-न्त्यु। इन्द्र।

घलहन—यम्बई प्रैसिडेन्सोके महिकान्धा विभागान्तर्गत एक क्षुद्र सामन्तराज्य। यहाँके सरदार ठाकुर मानसिंहजी राठोरवंशीय राजपूत हैं। उन्हें वृत्तक लेनेका अधिकार नहीं है; किन्तु राज-नियमसे ज्येष्ठ पुत्र ही राजतण्टके अधिकारी होते हैं। राजस्व ७२४०० रु० है, जिसमें वायिक २८०) रुपया कर-स्वरूप बड़ोदाके गायकवाड़की देना होता है।

घलहन्त् ( सं० पु० ) घल नामक असुरकी संहार करने-वाले इन्द्र।

घलाका ( सं० पु० ) बगला।

घलाट ( सं० पु० ) घलेन अटयते प्राप्यते इति अट-घञ्। मुद्गं, मूंग।

घलाराति ( सं० पु० ) घलस्य अरातिः। इन्द्र।

घलाहक ( सं० पु० ) वलेन होयते इति घल-हा षकृन्, यद्वा चारोणां बाहवः पुषोद्गरादित्वात् साधुः। १ मेष, बाहल। २ सुस्तक, मोथा। ३ पर्वत। ४ एक दैत्यका

नाम । ५. माँचीको एक शक्ति जो दुबरीकरके भयनाल मानो जानो हो । ६. रमाके गर्भमे उदरगत कलिकद्वयका पुत्र । ७. धीरुणके रथके एक घोड़ेका नाम । ८. एक नदीका नाम । ९. कुण्डलोपके एक पर्यंतका नाम ।

वनि ( सं० पु० ) १. देवा, लकीर । २. पेटके दोनो मोर पेटके सिद्धनुमे पड़ी हुई देवा, बल । जैसे—विपत्नी । ३. चन्द्र भाद्रिसे बनाई हुई देवा । ४. वृजोगहार, द्वयताकी चढ़ानेकी चम्पु । ५. राजकर । ६. एक दैत्य जो प्रह्लादका पीत भा मोर जिससे बिलुने पामन अथवाट ले कर छला था । वनि देवा । ७. एक प्रकारका बाजा । ८. श्रेणी, पंक्ति । ९. राजकर । १०. गंधक । ११. छाजनकी मोलती । १२. ववासीरका मस्त्रा ।

वलिक ( सं० पु० ) घरकी छत या छाजनकी ढालका मंत अहांसे पानी गलता है, मोलती ।

वलिकिया ( सं० स्त्री० ) १. उपहार दान । २. किस्मे व्यवस्थाके गारुमे लकार गींचना ।

वलित ( सं० लि० ) १. बल वाया हुआ, लचका हुआ । २. भुकावा हुआ, मोड़ा हुआ । ३. लिपटा हुआ, लगा हुआ । ४. परिप्लव, आवेष्टित । ५. युक्त, सहित । ६. जिसमें कुरिया पड़ी हो, जो जगह जगहसे मुकड़ा हो । ७. आच्छादित, ढका हुआ । ( पु० ) ८. कालो मिर्च । ९. मूलपमे हाथ मोटनेको एक मुद्रा ।

वलित् ( सं० लि० ) १. घटझाली । ( पु० ) २. सिद्धका हुआ गाल-मांस ।

वलित्त ( सं० लि० ) वलि मरघे ( दुन्दिबन्निपेटेमे ) । पा १२।१२६ वलित्तुक्त, वलिर्विनिष्ट ।

वालमुल ( सं० पु० ) १. बागर, बंदर । २. गरम दूधमें मट्टा मिलनेमे उदरगत छडा विकार ।

वालर ( सं० लि० ) चलने हीनूनांति बसुन्तारागिति चल-वाहुलकात् इत्यम् । बंकर या देवा कर्णविनिष्ट, जो देवा हो ।

वालवन्द ( सं० पु० ) राजपुत्रभेद ।

वालिका ( सं० स्त्री० ) वलिना मात्पवद्वय्याद्युपहादेषु इयति द्वित्वेण परस्वामिति लोके । वदिग, वंसी ।

वालिका ( सं० पु० ) मेघ, बादल ।

वालिका ( सं० स्त्री० ) वलिना भाहादीपहादेषु मत्स्वपदान्

इयति, विनाजपतीति जो वाहुलकात् कि । वदिग, वंसी । वली ( सं० स्त्री० ) १. धोनी, भावली । २. देवा, लकीर । ३. निकन, भुरी । ४. पेटके दोनो मोर पेटके मुकड़नेमे पड़ी हुई लकीर । ५. चन्द्र भाद्रिसे बनाई हुई लकीर । वली ( सं० पु० ) १. सामी, मानिक । २. शासक, कर्ण-पति । ३. साधु, फकीर ।

वलीभद्र ( सं० पु० ) सुपरांज, टिकीत ।

वलीक ( सं० स्त्री० ) चलति संवृणोतीति वन सागरमे ( भरीकादवच । उप् ५।२५ ) इति कोकम् । १. गर, सरचंडा । २. घरकी छत या छाजनकी मोलती ।

वलीदपुर—युक्तप्रदेगके आजमगढ़ जिलारागत एक नगर । यह अक्षां २६° ३' ३५" उ० तथा देशां ८३° २५' ३०" पू०, तीस नदीके किनारे आजमगढ़से ६ कोस दूर पर अवस्थित है । नगर तो छोटा है, पर बड़ा ही समृद्धि-जाली है । समाहमे दो बार हाट लगती है । उस हाट-मे भासपासके गाँवोंसे चीजें बिकने मानो हैं । यहाँ करीब २५० घर जुलाहे हैं जो कपड़ा बुनते हैं । जीनपुर-पासो मल्लभूम क्षेत्र मुशेवियोंके पंथापर लोग यहाँके जमी-दार हैं । उहाँमें १५० नदीके शेषमे जीनपुरके जंगल रोजा सुलतानसे यह जमीन जागीर-स्वरूप पारो थी ।

वलीमत् ( सं० लि० ) बलकायुक्त ।

वलीमुख ( सं० लि० ) वली युक्त मुख परध । बागर ।

वलीवाक ( सं० पु० ) एक प्रविक्त नाम । वलिवक्त देना ।

वल्यक ( सं० स्त्री० ) चलते इति चल संघरणे ( ( वल्लेभ्यः । उप् ५।५० ) इति ऊक । १. वल्यूल, कमलका जड़, मिस्त्रा । ( पु० ) २. वल्लिवशेष ।

वलक ( सं० पु० ) चलते चल संघरणे ( गूरकन्धोश्वाः । उप् ५।५२ ) इति कप्रवयवात्तो निपातितः । वलन, छाल ।

वलकत ( सं० पु० ) पुराणानुसार एक जाति ।

वलकत ( सं० पु० ) वलकप्रधानगहरिति कर्मधारया । पूगमूल, सुवातेका पेड़ ।

वलकदूम ( सं० पु० ) वलकप्रधानो प्रसः । भुगान्दूष, मोखनका पेड़ ।

वलकत ( सं० स्त्री० ) चलते संवृणोतीति पाट वा दूमकात् कम्त् । १. रथ, शरणीनी । ( पु० स्त्री० ) २. दूरा-

त्वक्, वृक्षकी छाल । पर्णपत्र—त्वक्, चर्क, त्वक्, चोच, चीलक, शर्क, छलक, छलि, चीतक ।

( शब्दरत्नाकर )

अत्यन्त प्राचीनकालसे ही चर्कल पहननेकी प्रथा प्रचलित थी । रामायणीय युगमें हम लोग रामचन्द्रको सोता तथा लक्ष्मणके साथ ( रामो ११ ) एवं महाभारतीय युगमें पांचो, पाण्डवोंकी अजिन चर्कल धारण करके माता कुन्तोदेवीके साथ ( महाभारत १।५७।२ ) वनास्तर-भ्रमणकार्यमें नियुक्त देख पाते हैं । साधु संन्यासी लोग उस प्राचीनकालमें सूत्रनिर्मित वस्त्रोंके बदले चर्कल-निर्मित कीपीन व्यवहार करते थे । धन्तुता यह परिधेय 'चर्कल' पर्णच्छादनके मूल ( Leaf wearing ) की तरह वृक्षछालके रूपमें ही व्यवहार किया जाता था । अथवा अभ्यन्तरभागस्व 'नाड़' या सूत्रम तन्तुमय रेशीके सूक्ष्म-तम सूत्र द्वारा वस्त्रके रूममें बुना जाता था इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

वर्तमान समय हम लोग देखते हैं, कि वृक्ष-छालके इन कोषमय नाड़ों ( Cellular tissue )को कूट कर सूत्रम सूत्रम सूते ( Fibrous material ) तैयार किये जाते हैं । उन्हीं तन्तुओंसे सुत्र वा मछली पकड़नेका 'कड़' ( Cordage ) एवं गलीचा, जाजिम प्रभृति बुने जाते हैं । ब्रह्म देशमें यह छालतन्तु 'प' कहलाता है । अङ्गरेजीमें इसे Bast कहते हैं । रूसदेशजात Linden श्रेणीके वृक्षोद्भव छालतन्तु द्वारा विनिर्मित चर्कलवस्त्र सारे यूरोपके चर्कल वस्त्रोंसे अच्छा होता है । इसके अतिरिक्त Tilia Europea नामक और एक स्वतंत्र श्रेणीका वृक्ष देखा जाता है । उसकी छालके रेशोंसे टेबिल डकनेके गलीचे तथा जूतेके कपड़े तैयार किये जाते हैं ।

भारतवर्ष तथा पूर्वभारतीय द्वीपोंमें Grewia, Libiscus तथा Malberry श्रेणीके वृक्षोंकी छालमें उत्कृष्ट तन्तु पाया जाता है । तूत फलके पेड़ोंकी छालसे मूगा नामक एक प्रकारका तन्तु निकाला जाता है । यह रेशमकी अपेक्षा सख्त और बहुकालस्थायी होता है । मछली पकड़नेकी बड़गि ( बंसी ) इस सूत्रमें बांधी जाती है । आरिफान देशके घेन्-घम्प, प-थ जौ, पष्यु, भीतसौ-अप, पनो तथा पग-बोन्-य नामक वृक्षोंमें बहुता-

यत चर्कलतन्तु पाये जाते हैं । आक्याच तथा ब्रह्म-विभागमें हेन्षयूप, दम्प, मनोत्प, चाभीत्प, प-गौत्व प्रभृति कई जातिके वृक्षोंसे इस तरहके तन्तु निकाले जाते हैं । उनसे नौका बांधनेकी रस्सी तथा मछली पकड़नेके जाल प्रभृति तैयार किये जाते हैं ।

आक्याचके गुयान्द योग-य वृक्षकी छालके तन्तु-ओंसे सुदृढ़ जाल तथा जहाज बांधनेकी रस्सी तैयारकी जाती हैं । मलका द्वीपके आम वृक्ष Melaleuca Viridiflora तथा ताली वृक्षकी छालके Artocarpus सूत्र द्वारा मछली पकड़नेके जाल बुने जाते हैं ।

शिंगापुरके ताली तरासके तन्तुओंसे एवं प्यामदेशके वृक्षोंकी छालके तन्तुओंसे सुतलो (Twine) तैयारी की जाती है ।

मलय प्रायद्वीप तथा केदा नामक स्थानोंमें सेमङ्ग जातिके वृक्षोंके छालसूत्र द्वारा एक प्रकारका चर्कलवस्त्र तैयार किया जाता है । सिलेबिस द्वीपके काइली विभागमें एक प्रकारके तूत वृक्षकी छालसे जो सूते तैयार किये जाते हैं, उनसे तैयार वस्त्र भी 'चर्कलवस्त्र' ही कहलाते हैं । १८५७ ई०की मान्द्राज-प्रदर्शनीमें जनसाधारणके सामने मि० जाफरीने Eriodendron anfractuosum नामक वृक्षकी छालसे सूत्र निकाल कर उसकी दृढ़ता तथा अखण्डव्यवयोगिता सिद्ध कर दी थी ।

पर्सोमान समय 'छालटो' नामसे एक प्रकारका सुन्दर रेशमी कपड़ा तैयार किया जाता है । यह केवल वृक्ष-तन्तुओंसे ही बुना जाता है । बनारसी सिल्कके नामसे जो शरीर ढकनेके मोटे कपड़े पाये जाते हैं, वे Rhea-fibre से तैयार किये जाते हैं । इन (Rhea fibre) तन्तुओंसे सिल्ककी चादरके समान पतले तथा शीत-कालोपयोगी मोटे गात्रवस्त्र एवं कौट प्रभृति तैयार किये जाते हैं ।

पखोंके अतिरिक्त इस चर्कलसे अनेकों-प्रकारकी औषधियाँ तथा चमड़ा साफ करनेके लिये एक प्रकारका 'कस' तैयार किया जाता है । सिनकोना वृक्ष ( Cinchona ) की छालसे कुनेन औषध तैयार की जाती है । वाकस-छाल, नीमछाल, जामुनछाल, चकुलछाल प्रभृति सभी छालों औषधरूपमें व्यवहृत होती हैं । आयुर्वे-



सुमाचीन याहीक राजधानीका धन्सायशेष दृष्टिगोचर होता है। इसके ही बाहर भागमें प्रत्नतत्त्वानुसन्धितलु मूर-कफूट तथा गुप्पीका समाधिस्तम्भ विद्यमान है। पहले ही कहा गया है कि, रामायणीय तथा महाभारतीय युगमें यह नगर बहुत उन्नति पर था। केवल हिन्दुओंके निकट ही नहीं, पश्चिम एशियाखंडवासियोंके निकट भी इस स्थानका पयेष्ट गौरव था। ये लोग इस राजधानीको आस-उल-वालाद या नगरमाता कह कर उल्लेख करते थे। पारसवासी इसे प्राचीन धर्मका केन्द्रस्थान तथा ज्ञानमंडार समझते थे। प्रयाद है, कि पारसवासी काश्यपमुज्जने यह नगर स्थापित किया पर्यं प्रसिद्ध दार्शनिक तथा धर्मप्रचारक जयपुस्त्रने दूसरा अंश स्थापन करके उसको धीरुद्धि की।

माकिदनवीर एलेकजैण्डरने इस स्थान पर अधि कार करके वषिन्नया राज्यमें मिला लिया। इस समय यह नगर स्थानीय पर्यतश्रेणीसे तीन कोसको दूरी पर समतलक्षेत्रमें बसा है। यहांका जलवायु वैसा अच्छा नहीं है। नगरमें जल पहुंचानेके लिये नदी-तटसे जल-नालियाँ (Aqueducts) लगी हैं।

एक समय दुर्द्धर्ष वषिन्नयाराजा भीने सेनादलके साथ रणक्षेत्रमें युद्धकीशलका विशेष परिचय दिया था। बाल्खराज १म अर्सेकेश पहल्लयचंशीय थे। छोरेनी-यासी मोजेसने उनकी घोरताका परिचय दिया है, मत-नेदसे अर्सेकेश सोगू-जनपदाधीश्वर कहलाते हैं।

चंगेज खानके समय तक बाल्खननगरी अपने सौन्दर्य समृद्धिसे एशियाके दूसरे दूसरे नगरोंके मध्य सर्वाश्रेष्ठ गिनी जाती थी। तीमूरने राज्यविजयकी यासनासे अपना विस्तृत मुगल-सेनाके साथ समय समय पर आ कर इस नगरको मिट्टीमें मिला दिया। विख्यात परि-प्राज्ञक मार्कोपोले इस स्थानको प्राचीन समृद्धि कितने ही निदर्शन प्रत्यक्ष कर गये हैं। १७३६ ई०में पारसके राजा नादिरशाहने बल्ख तथा हून्दज पर अधिकार कर लिया। उनकी मृत्युके बाद यह स्थान दुरानाधर्मी राजाओंके अधिकारमें चला गया। १८२० ई०में हुन्दज-पति शाह मुरादने स्वाधीनता अयलम्बन करके इस स्थान को अफगान शासनसे अलग कर दिया। उसके बाद

इस स्थान पर बुवारका अधिकार हुआ। इसके बाद फिर अफगानिस्तानके सीमांशुक हो गया है।

पलान (सं० खी०) पलान-खुट । १ प्लुतगमन, घोड़ेका कूदते या उछलते हुए चलना, दुलकी । २ बहुमापण, बहुत सी इधर उधरकी बातें कहना।

पलाना (सं० खी०) चलते-चलते घल-करणे घञ्, टाप् । दण्डालिका, लगाम, हाग । पर्याय—अवशेषणी, रश्मि, कुशा ।

पलित (सं० खी०) घल-भावे क । वरगन देखो ।

पल्लु (सं० पु०) चलते इति घल प्रोणने घल-उ, (बले-गुं कच् उष् । १२०) घातुर्लुत्तर गुगागमः । १ छाग, बकरा । २ बौद्धिके बोधिद्रुमके चार अधिष्ठाता देवताओंमेंसे एक । (त्रि०) ३ सुन्दर, खूबसूरत ।

पल्लुक (सं० खी०) पल्लुसंज्ञायां, सार्धे वा कन् । १ चन्दन । २ विपिन, वन । ३ पण, बाजो । ४ सौदा । (त्रि०) ५ खचिर, सुन्दर ।

पल्लुज (सं० पु०) छाग, बकरा ।

पल्लुजङ्घ (सं० त्रि०) १ सुन्दर जङ्घाविशिष्ट, जिसकी जांघ सुन्दर हो । (पु०) २ विध्यामित्तके एक पुत्रका नाम ।

पल्लुपत्र (सं० पु०) पल्लु मनोश्च' पत्र' यस्य । वनमुद्ग, वनमूंग ।

पल्लुपोद्की (सं० खी०) १ लहसुआ नामका साग । २ एक प्रकारकी लता ।

पल्लुल (सं० पु०) शृगाल, मोदड़ ।

पल्लुला (सं० खी०) पल्लु लातीति ला-क-टाप् । १ यकृचो । २ पक्षिविशेष, चमगादड़ । इस अर्थमें व्यवहृत पल्लु शब्दका पर्याय—चक्रविष्टा, दिवान्धा, निशाचरो, स्वैरिणी, दिवास्वाया, मांसेष्टा, मातृहारिणी ।

पल्लुलिका (सं० खी०) पल्लुसंज्ञायां कन्, टापि अत-इत्यञ् । १ कर्पूर रंगका पतंग जातिकका कीड़ा, चपड़ा । इसे तैलपायी भी कहते हैं । २ मंजूषा, भावा, पिटारा ।

पल्लुली (सं० खी०) १ रत्नचक्र पक्षिविशेष, चमगादड़ । २ मंजूषा, भावा, पिटारा ।

पल्लुसोम—एक प्राचीन ग्रन्थकर्ता । गोभिलगृह्यसूत्रभाष्यमें इतका उल्लेख है ।



बल ( ३० पुं० ) शीघ्र घेटा, पुन । किन्तो मनुष्यके बलके परिचयके लिये उसके नामके भाग इस शब्दका व्यवहार करते हैं। इसके विनाका नाम रखा जाता है । जैसे— 'गोबुल बन्द बलदेग' अर्थात् 'गोबुल, घेटा बलदेवका' । दस्तावेजों और मरकतों कागजों आदिमें जिनको भाषा उर्दू होती है, इन शब्दका प्रयोग होता है ।

बन्धुवग ( ३० स्त्री० ) विनाके नामका परिचय, वाचके नामका पत्रा । जैसे—बधुवग और सङ्कलन विनामो ।

बन्धन ( ३० स्त्री० ) बन्धन मशाले भावे ज्युट् । मशाल, माला ।

बन्धक ( २० पुं० स्त्री० ) बन्धकी ।

बन्धकी ( २० पुं० स्त्री० ) बलते इति बल मंघरले ( भन्धी-कारकम् । उट् ५२२ ) मुमगमः कीकनामो विनामः ।

१ उदिकाह्य मुक्तिकाश्वय, शोमकीका लगया धुमा मिट्टी-का टेर, बिभीट । इसका वर्ण—वामन, मादु, बलिक, पाल्मोक, पाज्जोकि, वा लेमकि, पुगलक, शम्भुर्वा, कृपि, शीतक । ( मधुसूतना० )

इस रोग वाकी दोवार तथा काष्ठके बने स्तम्भ प्रभृतिमें एक प्रकारका पुच्छिकाकीट ( Termites ) देखते हैं । ये शीघर या काष्ठके ऊपर मिट्टीका टेर लगा कर उसके अन्दर आवासमान करते हैं, फिर कमी कमी काष्ठ-काष्ठके अन्दर खुदना बना कर काष्ठकी बड़ी क्षति करते हैं । किन्तो काष्ठके अन्दर एक बार शोमक लग जानेसे फिर उसके उद्धार नहीं । अन्धकमरा, माधुन तथा चूना बहावर बहावर आगने इसके साथ भूमिमें उद्यान कर काष्ठ पर मल देनेसे शोमक नहीं लगने । कमी कमी मोम तथा लालक लगा कर शोमक नाम दिये जाते हैं । साल साल वर्षासे पहले काष्ठकाष्ठमें प्रवेशनाम मिट्टीका लेल मगनेसे शोमक नहीं पड़ते ।

इसके रोगमें भी बहुत शोमक पैदा होते हैं । ये ईशकी लड काट कर फलम लड कर हलते हैं । इसलिये इसके रोगमें इसे दूर करनेके लिये इतने ही पचाप अक्षयमल दिये जाते हैं । शोम टंछटाव, मरको ट मर, मरको मरको ५ मर, अग्निदिकामुल चूर्ण ३ मर काको लममें

लिद करके काटा सेवा करना चाहिये । उस काष्ठको खेतमें छिद्रक देनेमें शोमक तो मर जाते हैं, किन्तु इतने कुछ धीपे लड हो जाते हैं एवं यह धीपेके व्यापनाईको शक्ति होप करता है । मैदा वा रासूके माग से कीरिग मिला कर मुद मिलाये, इसके बाद उस मिश्रित पदार्थका पिण्ड बना कर शोमकके टोन्के पास रख देये । उस पिण्डके बानिसे शोमक निर्मूल हो जाते हैं । पापूर-निर्वास ( Dammer oil ) १२ घंटा तथा गाम्बोके इर-गिर्वास (Uncaria gambir), दोनोंको मिला कर बाहुने लगा देनेसे शोमक नहीं लग सकते । सलियाचूर्णके साथ तृनिवा मिला कर काष्ठ पर मल देनेसे शोमक मर जाते हैं अथवा सलिया, सुसधर, साधुन तथा सज्जे, इन मर-को उसके साथ भूमिमें उद्यान कर उस जगमें काष्ठको धो देनेसे भी शोमकीका नाम ही जाता है ।

ये पुच्छिका कीट ( White Ant ) मैदान, रंग तथा प्रमदके स्थानके किनारे एक एक मिट्टीका स्तूप बना कर उनमें वास करते हैं ।

भारतवर्षमें, विधियनः निग्न वङ्गके प्राग्वर प्रदेशोंमें एवं सिन्धु और, उत्तमगता । मरवीप तथा सिन्धुदेवता प्रदेशमें बहुतसे शोमक देखे जाते हैं । उनके मरुट्ग तथा कीना-कार मरुट्गकी भी आकृति देग कर मला हो मकी विरमय पैदा होता है । बड़ी बड़ी उनके मुक्तिकाश्वय २ से १५-१० फीट तक ऊंचे देखे गये हैं ।

पुपना धमया ग्यालम् जानेवाली रेली पारमके किनारे किनारे एवं उनके नाम पासके लोमेंमें ३५ फीट ऊंचे अनेक पुष्पिकाश्वय देखे जाते हैं । ये बलोक कीटें जिन परिमाणमें मुक्तिकाश्वय ऊंचा करते हैं, उसी परिमाणमें ये पूरुलेके अन्दर गहटा कोट्ट कर वर्षाके मिट्टी ऊपर उठा देते हैं एवं उसी मिट्टीके द्वारा ये शीघर पुष्पिकाश्वयमें वर्षाविग्न निरवगाश्वयके साथ उसके अन्दर अपना आवासमानुसार खुदाई कोट्ट देते हैं । अर्थात् यदि पदमोकका एक मरुट्टोपरिचय शोमकार अन्दर ३ फीट ऊंचा है, तो मरमथका चाहिये, कि मिट्टीके साथ उतना ही फीट गहटा गहटा कोट्ट कर उन कोट्टोंमें अश्वय

निर्माणकीशाल द्वारा एक चरमोकरुद्द निर्माण कर लिया है।

सिर्फ इतना ही नहीं, इस मृदाच्छादित अदृश्य पाटिकाके मध्य उन्होंने राणो-कोटके रहनेके लिये एक सुविस्तृत रामप्रसाद तैयार कर लिया है एवं उनके चारों पार्श्वमें अलंकरण शिशुकोट-भवन हैं। ये सब भवन सुन्दर सोपानश्रेणी द्वारा परस्पर संलग्न हैं। इनके भित्तिरिक्त एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेके लिये सोपान पथ, बरण्डा, दालान, प्रवेशद्वार प्रभृति सुचारुरूपमें विन्यस्त हैं। इनकी गठन निपुणता देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। नीचे अफ्रिका देशजात एक प्रकारके दोमकका घणन किया जाता है। ये दोमक सामरिक-पुस्तिकाके नामसे विख्यात हैं।

अफ्रिकाकी सामयिक पुस्तिकाएँ जो चरमोकरुद्द-प्रस्तुत करती हैं, उसका ऊर्ध्वभाग छेदन करनेसे देखा जाता है, कि वह चरमोकरुद्द अपूर्व गठन कौशलसे उनके द्वारा निर्माण किया गया है। जो सब सामरिक पुस्तिकाएँ चरमोकरुद्द निर्माण करती हैं, उनके शरीरकी लम्बाई १ सुलके चतुर्थांशसे भी कम होती है, किन्तु उनके द्वारा निर्माण किये गये वासगृह प्रायः ७८ हाथ ऊँचे होते हैं। कितने ही चरमोकरुद्द उनको अपेक्षा भी बड़े होते हैं।

उल्लिखित चरमोकरुद्द जितने ऊँचे होते हैं, उनकी निर्माण-परिपाटी भी उसी अनुसार होती है। उन चरमोकरुद्दोंका भीतरी हिस्सा देवनेसे सामरिक पुस्तिकाओंकी निपुणता तथा विचक्षणताका सुस्पष्ट प्रमाण देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। उनके बाह्यर विहार सम्गठन करनेके लिये वासगृहकी जिस तरहकी श्रुतिला आवश्यक होती है, वं उसी तरह सुचारुरूपमें उसे सम्गठन किये रहती हैं। वे राजप्रसाद, भंडार-गृह, शिशु-शाला, पथ, सेतु, सोपान प्रभृति अति चतुरतासे तैयार किये रहती हैं। इनके भवन 'खिलान' द्वारा छाये रहने हैं। एक प्रकोष्ठसे दूसरे प्रकोष्ठ पर गमन करनेके निमित्त सुगमपथ तैयार रहता है। एक प्राक्तसे दूसरे प्राक्तमें गमन करनेके लिये जिन जिन स्थानोंमें पेथोले-राम्तेसे घुम कर जाना पड़ता है, उन सभी स्थानोंमें एक एक

खिलान किये हुए बाँधीका निर्माण करके आने जानेकी सुविधा किये रहती हैं। इस तरहसे अपने वासभवनको सर्वांगसुन्दर बना कर उनके मध्य सुखसे वास करतो हैं। इनके गृहका ऊपरी भाग ऐसा सुदृढ़ तथा कठिन होता है, कि इसके ऊपर एक साथ चार पाँच मनुष्य-के चढ़नेसे भी वह नष्ट नहीं हो सकता।

सामरिक पुस्तिकाओंकी कार्यप्रणाली भी बहुत ही सज्जी होती है। इनकी कार्यप्रणाली ऐसी सुन्दर होती है, कि उसे एक उत्कृष्ट राजाकी व्यवस्था-प्रणाली कह सकते हैं। इनको तीन श्रेणियाँ होती हैं—श्रमजीवी पुस्तिका, सैनिक पुस्तिका तथा विशिष्ट पुस्तिका। श्रमजीवी पुस्तिकाएँ गृह, पथ, बाँध प्रभृति तैयार करती हैं। सैनिकपुस्तिकाएँ गृहकी रक्षणवेक्षण करती हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओंसे युद्ध किया करती हैं। उनका शरीर श्रमजीवी पुस्तिकाओंकी अपेक्षा १५ गुना बड़ा होता है। आश्चर्यका विषय यह है, कि श्रमजीवी-पुस्तिकाएँ किसी समय सैनिक पुस्तिकाओंके कर्ममें प्रवृत्त नहीं होती, इसी तरह सैनिक पुस्तिकाएँ भी कभी श्रम-जीवीपुस्तिकाओंके कार्यमें नियुक्त नहीं होती।

विशिष्ट पुस्तिकाएँ नहीं तो गृहादि ही निर्माण करती हैं, न युद्धमें ही प्रवृत्त होती हैं, यद्यत् तक, कि वे अपनी रक्षा करनेमें भी समर्थ नहीं होतीं। किन्तु उनका शरीर सर्वोपेक्षा बड़ा एवं उत्कृष्ट होता है। वे सैनिकपुस्तिकाओंसे दो गुना एवं श्रमजीवी पुस्तिकाओंसे ३० गुना बड़ी होती हैं। दूसरी दूसरी पुस्तिकाएँ उन्हें प्रधान मानती हैं एवं उन्हें प्रधानके पद पर अभिषिक्त करती हैं। वे विशिष्ट पुस्तिकाएँ, इस पद पर अभिषिक्त होनेके बाद कई सप्ताहके मध्य ही पर्युक्त हो कर यहाँसे उड़ जाती हैं। किन्तु उड़नेके कुछ ही समयके बाद उनके पंख झड़ जाते हैं, तब पक्षी पतङ्गादि व्या कर उन्हें खा जाते हैं। अफ्रिका-निवासी उन पुस्तिकाओंको भुन कर खाते हैं। इस तरहसे प्रायः सभी विशिष्ट पुस्तिकाएँ नष्ट हो जाती हैं। यदि किसी तरह दो चार बच जाती हैं, तो पूर्वोक्त श्रमजीवी पुस्तिकाएँ उन्हें राजा तथा रानीके पद पर अभिषिक्त करती हैं एवं एक मूर्त्तिकामय प्रकोष्ठका स्थापन कर यत्-पूर्वक उनका पालन पोषण करती हैं। पीछे जब रानीकी

सम्मानित-पुस्तिका उपक्रम होता है, तब ये एक काष्ठमय प्रकोष्ठ निर्धार करनेमें प्रयत्न होती हैं। शान्ति जितने अच्छे देखी है, ये धमजोयो पुस्तिकाएँ उन्हें शोभ हा उठा कर उन्हीं प्रकोष्ठों स्थापन करती हैं।

भारतमें साधारणतः मध्यम समय पंचमुक्त पुस्तिकाएँ उद्युक्तो देनी जाती हैं। उन्हें बादम-कोष्ठा बटनी हैं। जिन समय ये भूमिगत निवास रथाग दत्त बाँध कर बादमको तरह भाकानामागोले उद्युक्तो, है, उन समय तक, बापुर प्रभुतिंग माला मातिके पक्षो सा कर इनका मशान करना भारम्भ करने हैं। पंचके मष्ट हो जागोमे जो विभिन्न पुस्तिकाएँ पृथको पर गिर जाती हैं ये दूसरे दिन प्रातःप्रातः काकके उदरस्थ होगी है, कहीं कहीं निहृष्ट सेलाके लीग उनका संघय कर घोषी मुन कर ग्याते हैं।

उत्तिष्ठित पुस्तिका-मदियों जिन तरह अयस्थांतर तथा स्थाप्यको प्राप्त होगी हैं, उमें सुनकर विस्मय होता पडता है। उन समय उनका शरीर क्लमता फूल कर भाग्य पुस्तिकाओंके शरीरको अपेक्षा १५०० टेंक-हजार अथवा २००० दो हजार मुना बड़ा हो जाता है। उसका शरीर उन्में ग्यामोंके शरीरको अपेक्षा १००० एक हजार मुना भारो हो जाता है एवं धमजोयो पुस्तिकाओंके शरीरको अपेक्षा २०३० हजार मुना विस्तृत हो जाता है। एक वलिकतमें मानता करके देला घा—एक पुस्तिका-मदियोंमें एक समय ५,०१० टेंकमें ८००० अक्षी हजार अच्छे दिने है। प्रत्येक समय कई एक धमजोयो पुस्तिकाएँ उन्में वाग नियुक्त रहती हैं। ये उन मष्टोंको उठा कर पूर्वोक्त काष्ठमय प्रकोष्ठके मध्य स्थापन करती हैं। इन सब मष्टोंमें जितने बच्चे पैदा होने हैं, उन सबका सा दत्त-पाठन धमजोयो पुस्तिकाएँ करती हैं। उनको शान्ति के दिने जिन समय जिन घोषीको साधयपकता होगी है, उन समय ये उन घोषीको सा कर साधयपकता पूर्वो करती हैं। ये सब बच्चे इस प्रकार पल कर शक्ति मन्त्रप्र तथा धमजोग होने पर वस्त्रोत्तरक सुखय राज्यके कार्यमें नियुक्त होते हैं।

विदितको साक्षात् देला है—विदितियों प्रकार वस्त्रोत्तरका कर्म बलान मीन कर दिया जाय, तो उन्हीं समय मीनिक पुस्तिका इस मन्त्र स्थापन पर ही उदभियत होगी है। कुछ

दरमें यहाँ भीर दो तीन पुस्तिकाएँ सा जाती हैं। इसके बाद भुष्टको सुपय पुस्तिकाएँ उठा घन्नीकमे बाहर निष्ठा पकती हैं। इस तरहमें जितनी देर तक घन्नीकके ऊपर सापात किया जाय, उनको देर तक मीनिक पुस्तिकाएँ बाहर निष्क्यतो रहेंगी। इसके बाद ये सब निय कर एक प्रकारको सायाज करतो, सापातकारी पर भाकयन करतो हैं, सापातकारीके पाषोंमे नियर कर दंजग करतो हैं एवं उमें दूर मगानेको वधासाध्य शेषा करती है। जब घन्नीकके ऊपर फिर सापात नहीं होतो, तब ये उन्हीं शय घन्नीकके अन्तर पुन जाता है। इसके बाद मरय मष्टक धमजोयो पुस्तिकाएँ बाहर निकल कर घन्नीकके भाग स्थापनको पुनः तैयार करनेमें प्रयत्न होती हैं। साध्ययका विषय यह है, कि लक्ष लक्ष पुस्तिकाएँ एक साथ हो कार्य करती है भयघ कोई किमोंके कार्यमें बाधा नहीं डालती एवं एक शकके लिये तो भाग्ये कार्यमें सुख नहीं मोडती। एक एक मीनिक पुस्तिका एक एक धमजोयो पुस्तिकाओंके दलके साथ रहता है, माध्यम पडता है, कि ये पुस्तिकाएँ उन धमजोयो पुस्तिकाओंके मध्यम या प्रहरो-स्वदय इनके साथ रहती हैं। विदितः एक पुस्तिका भागस्थापनके समीप लक्ष रहती है, यह एक एक बार मष्ट करती है और धमो पुस्तिकाएँ उन्हीं शय एक प्रकारका ऊँचो सायाज करती हुई पक्षीको मीनिक प्रमुने उरसाहने काम भारम्भ करती हैं।

वेगोलेउ नामक स्थानके समीपवर्ती किमो विरयो स्थानमें बहुतेरे वस्तीक एक मध्य देवे जाते हैं, माध्यम पडता है, कि उन स्थानोंमें एक एक समय बस गया है। विदल, सुमाता, तथा घोर्निघो घोषीमें सर्व भारतके किमो किमो स्थानों Terms Approbata नामक एक जातीय पुस्तिका देनी जाती है। विदलकोषमें T. monaxen सेलोको पुस्तिकाएँ दूरके कीटकी सात करती हैं। कभी कभी उन स्थानमें गोपुता मीनिका सात देला जाता है। मन्त्रात प्रोविशमीके कनरवाइ नामक स्थानों जो वस्तीक देवे जाते हैं, उनमें बहुतीके अन्तर वदुयवक विषयक कार्य रहते हैं। विदलकेई कनरवाइ नामाई कनरवे एक मीनिको दूने पर साधयाना विदित संकरके सामने है। फीट ऊँचे बहुती वस्तीक विषयाने

वल्मीकको मिट्टीसे सींच करना निषेध है। विष्णु-पुराणमें लिखा है, कि बलरूक तथा मूसोंके द्वारा खोदी हुई मिट्टीसे शौचक्रिया नहीं करनी चाहिये।

किसी देवविग्रहकी प्रतिष्ठाके पहले जिलिय ध्यक्तिके स्पर्शाद्यको ज्ञान्तिके लिये वल्मीक मृत्तिका, गोमय तथा मसम इन तीनों धस्तुओं द्वारा विग्रहका मार्जन कर लेना होता है। उक्त तीनों धस्तुओंके द्वारा स्नान करानेका कोई पृथक् मन्त्र नहीं है। इसलिये शूद्रपाणि गायत्री वा उसी देवताके मूलमन्त्र द्वारा ही स्नान करानेकी विधि बताई गई है।

(पु०) २ वल्मीकि मुनि। रोगविशेष।

जिस रोगमें त्रिदोषके प्रकोपके कारण प्रीया, अंस, वक्ष, हृन्त, पद तथा मन्धिस्थानोंमें पर्व गलेके मध्य वल्मीककी तरह गाढ़मूल अथवा प्रचुर शिखरयुक्त तथा उन्नत प्रमिद्य उत्पन्न होती है एवं जब उनकी उचित चिकित्सा नहीं की जाती है, तब ये धीरे धीरे बहुत बढ़ जाते हैं और उनमें सूचोवेषयत् वेदना होने लगती है। इनमें कई छिद्र हो कर मवाद निकलने लगता है। इन्हीं वल्मीकरोग कहते हैं। इसकी उपयुक्त चिकित्सा न होने पर यह रोग धीरे धीरे अमाल्य हो जाता है।

इसकी चिकित्सा—वल्मीकरोग पहले शत्रु द्वारा उत्पाटन करके क्षार तथा अम्लिकर्म द्वारा दग्ध एवं अर्वाद् रोगकी तरह शोधन करना चाहिये। जिसके मर्मस्थानके अनिर्दिष्ट अन्य स्थानोंमें वल्मीक रोग हो जाय और वह यदि बहुत बढ़ा न हो, तो उसका पहले संशोधन एवं इसके बाद रक्तमोक्षण करके उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

कुलथीकी जड़, गुडूची, सैन्धव, दन्तिमूल, श्यामलताकी जड़, गुदा तथा सत्त, इन सबको पोस लेवें एवं इस चूर्णमें थोड़ासा घी मिला कर अंगि पर चढ़ाये। जब यह मिश्रित पदार्थ कुछ गर्म हो जाय, तब वल्मीक रोग पर इसका पुलटिग चढ़ाये। इससे इस रोगमें बहुत लाभ पहुँचता है।

वल्मीक रोगके एक जाने पर यदि उसमें छिद्र हो जाय तो उसके समी छिद्रोंका अन्वेषण करके उसका छेदन करना चाहिये एवं इसके बाद पुलटिगका चढ़ानी चाहिये। यदि इस रोगमें मंस दूषित हो जाय, तो उस

पर क्षार मलना चाहिये, पीछे फोड़ेके विशुद्ध होने पर औषधके प्रयोगकी विधि है। मनशिला, हरताल, मिलावा, छोटी इलायची, अमर, रक्तचन्दन, जातोपल तथा इन्द्रजी इन सबको मिला कर एक सेर लेवें, फिर ४ सेर नीमके तेलमें इन सब बीजोंका यथाविधि पाक करके वल्मीक रोगमें प्रयोग करें। इससे इस रोगका बहुत उपकार होता है। इस तेलको मनशिलाघतेल कहते हैं। हाथ या पांवमें बहु छिद्रविशिष्ट अथवा शोथयुक्त वल्मीक रोग होने पर असाध्य हो जाता है। चिकित्सक ऐसे रोगीका त्याग करें। (भावप्र० चूद्रोगाधि०)

वल्मीक मिट्टीके प्रलेपसे भी इस रोगमें बहुत लाभ पहुँचता है।

४ वह मेघ जिस पर सूर्यकी किरणें पड़ता है।  
 वल्मीकमात (सं० लि०) वल्मीकस्वरूपके आकारका।  
 वल्मीकवय (सं० पु०) कल्पमेद।  
 वल्मीकशार्प (सं० क्ली०) वल्मीकरूप शीर्षमिय शीर्षमस्य।  
 स्तोताञ्जन, लाल सुरमा।  
 वल्मीकसम्मया (सं० स्त्री०) अलावृविशेष।  
 वल्मीक (सं० पु०) वल्मीक।  
 वल्मीकूट (सं० क्ली०) वल्मीकरूप वल्मीकसञ्चितं वा कुटं।  
 वल्मीक।

वलय (सं० पु०) वलय-पद्। १ ताक्ष्यं, तक्ष मुनिके गोत्रज।  
 (क्ली०) २ शुद्धवक्। (त्रि०) ३ बलहर।  
 वलथ (सं० स्त्री०) पीतालयकड़ी लता।  
 वल (सं० पु०) वल्लते संयुणोतोति वल्ल-भञ्ज्। १ परिमाण-विशेष, एक मान। यह तीन गुञ्जा या रत्नोके बराबर तौलमें होता है। वैदिकमें दो गुञ्जाका एक 'वल' माना गया है। राजनिघण्टु १। घुघचोका ही वल्ल मानता। २ खलियानमें भूसा मिले हुए अनाजके दानिको ऊपरसे गिराना जिसमें हवाके जोरसे भूसा अलग हो जाय, ओमाना, बरसाना। ३ सल्लको वृक्ष, सल्लईका पेड़। ४ बौता। ५ आवरण। ६ निषेध।

वल्ल—प्राचीन शकजातिकी एक शाखा। पहले ये लोग सौराष्ट्रमें राजस्य करते थे। ये राजपुतानेके राजकुलके एक हैं। भट्टकविओंकी वर्णनासे जाना जाता है, कि ये एक समय सिन्धुनदके तीरघाटों दृष्ट और मूलतान प्रदेशोंके



तुमने इस राक्षसेसे किसीकी जाते देखा है ? उस राक्षसके भोग्य रूपकी देख कर रूपक मन ही मन सोचने लगा, 'यदि मैं इस राक्षसकी महेश्वरका पता नहीं बताता हूँ, तो इसी समय यह दुष्ट क्रोधके आघेगमें निश्चय ही मेरा संहार करेगा और यदि शिव इस विषयको जान पाये'गे तो मुझे उनके कोपानलमें दग्ध होना पड़ेगा, सुनरां किस कर्त्तव्यका अनुसरण करनेसे इस दारुण विपद्से दृष्टकारा पाऊँगा।' रूपकको चिन्तानिमग्न देख कर राक्षसकी विश्वास हुआ कि, रूपक निश्चय ही महादेवका पता जानता है। तब वह बार बार हुंकार द्वारा रूपकको भय दिखाने लगा। कोई उपाय न देख कर रूपकने चिल्ला कर कहा—'मैं महादेवका कुछ भी पता नहीं जानता।' फिर पीछे उसने धीरे धीरे महादेवके गुप्त स्थानका सारा भेद उस राक्षसको कह सुनाया।

तब वह राक्षस घृक उस वनमें जा कर महादेवको पकड़नेके लिये अग्रसर हुआ, ऐसे समय भगवान् विष्णु महादेवका उद्धार करनेके निमित्त मोहिनी रूप धारण कर उस राक्षसके सामने उपस्थित हुए। युवतीके सुन्दर रूपको देखते ही उस राक्षसके हृदयसे महादेवका ध्यान जाता रहा। वह धीरे धीरे उस सुन्दरीकी ओर बढ़ा, किन्तु वह लाख चेष्टा करने पर भी उसे स्पर्श न कर सका। राक्षसकी प्रेमविह्वलता देख कर सुन्दरीने बड़े मोठे स्वरमें कहा—मैं ब्राह्मणकी कन्या हूँ, किस तरह तुम्हारे ऐसे अपवित्र शरीरवाले राक्षसकी प्रार्थना पूरो करूँ ? तुम पहले सन्ध्यायन्त्रादि द्वारा अपने शरीरको पवित्र करो, तब तुम्हारी वासना पूरी होगी और तभी तुम मुझे स्पर्श कर सकोगे।

विष्णुकी छलना राक्षस नहीं समझ सका। शरीरके रूप पर मुग्ध हो कर वह अपने हाथका प्रमाण भूल गया। सन्ध्या करनेके समय वह राक्षस अंगव्यासकालमें अपने अंगादिकी यथाक्रमसे दाहिने हाथकी अंगुलियों द्वारा स्पर्श करने लगा एवं जिस समय अपने दाहिने हाथकी मस्तक पर रखा, उसी समय वह भस्म हो गया। इसके बाद महादेव अपने गुप्तस्थानका परित्याग कर बाहर निकले एवं उन्होंने विष्णुके पास जा कर अपनी कृतकृता प्रकट की। फिर वे उस विश्वासघातक तथा

अहलक्ष रूपकके अपराध पर विचार करने लगे। अन्तमें उन्होंने दृष्ट स्थिर कर रूपकसे कहा,—तुमने जिस अंगुली द्वारा निर्देश कर मेरा पता राक्षसकी दिया था, मैं उस अंगुलीको नष्ट कर दूँगा। ऐसा कह कर महादेव उसको अंगुली काटनेकी तैयार हो गये। इसी समय अरुन्धमात् उस रूपककी स्त्री भोजनको सामग्रियाँ ले कर उस क्षेत्रमें उपस्थित हुई। वह महादेवको अपने पतिकी अंगुली काटनेके लिये उद्यत देख उनके चरणों पर गिर पड़ी एवं बहुत ही अनुनय विनयके साथ बोली—'नाथ ! जब आप भेरे पतिकी अंगुली नष्ट कर देंगे, तो मेरा दृष्टि परिवार अन्नाभावसे करालकालके गालमें समा जायगा, सुतरां उसके बदले मैं अपनी दो अंगुलियां देनेको तैयार हूँ।' महादेव रूपक-रमणीकी इस प्रकार पतिभक्ति देख कर बोले—'तुम्हारी पतिभक्ति देख कर मैं अति प्रसन्न हुआ। आज दिनसे तुम्हारे यंगमें जितनी रमणियाँ पैदा होंगी, वे हमारे मन्दिरके सामने अपनी दो अंगुलियाँ बलि चढ़ा कर तुम्हारी पतिभक्तिकी घोषणा करेंगी। इसीलिये उसके वंशका कन्याएँ अपनी अंगुलियाँ बलिदान करती आ रही हैं। वे राज-त्तियमका उल्लेख करके राजदंड ग्रहण करती हैं, किन्तु तथापि देवताकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी इच्छा नदीं' करतीं। अन्ती भी महिसुरके प्रायः दो सहस्र परिवारकी रमणियाँ इस तरह अंगुलियोंका बलिदान करती हैं।

बल्लपुर—मान्द्राज प्रसिद्धस्तीके सलेम जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कोल्लिमल पर्वतके ऊपर स्थापित नामकाल नगरसे १६॥ मील पश्चिम-उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ तोरियूर उपर्यकाके सम्मुखस्थ कन्दरके सामने आर-पलेश्वरस्वामीका मन्दिर तथा पोखर है। इस पोखरमें बहुत-सी मछलियाँ हैं। प्रतिदिन घंटा बजा कर उन मछलियोंको भोजन दिया जाता है। घंटाका शब्द सुन कर मछलियाँ बाँपके ऊपर चली आती हैं। इसलिये कितने ही इस मन्दिरको मरुत्यमन्दिर कहते हैं। उस मन्दिरमें अनेकों शिलालिपियाँ उत्कीर्ण हैं। उनमेंसे एक १३५० ई०में उत्कीर्ण हुई थी।

बल्लभ ( सं० त्रि० ) बल्ल-अमच् । १ मिय, प्यारा । ( पु० ) २ अर्धश, मालिक । ३ अत्यन्त प्यारा व्यक्ति, मिय मित्त,

राग थे । किन्तु बाद ये लोग भीरु अपनेको जग मदीं समझते पर 'मूर्ख'जोय भयोप्यवसति रामचन्द्रके पुत्र रूपके य'जनें अपने यह या वल्ल नामक किस्से पुरपुरक-को हत्याकर्ता कहलना कर अपनेको मूर्खजोय बजाते हैं । पहले ये लोग मुद्दिगाटनके अन्तर्गत प्राचीन पाण्डु नगरमें था कर बग गये एवं आम गामके स्थानों'की जीत कर अपने राजनिकि फैलाई थी । उनका यह राज्य या-क्षेत्र भीरु राजधानी यज्ञोपुर नामसे प्रतिष्ठित हो गया तथा यहाँके राजवंजने यदरायका उपाधि धारण कर अपना प्रभाव फैलाया था ।

मौराष्ट्रको राजनिकि प्रतिष्ठाके बाद यन्त्रगण अपने-को मेषाष्टके गण्योत्प'जियों'की समझेणो मानने लगे । किन्तु राज इतिहास पढ़नेमें पता चलता है, कि यहलोक-गण नियको उपासनाके पहले मूर्खको उपासना करते थे, तबमें मौराष्ट्रके वल्ल लोग अपनेको इत्यु'जोयभीरु और चालिक पुत्र मानते हैं । यल्लिकपुत्रगण सिम्धुगौरवको भीरु नामक स्थानमें राजरय करते थे । १३वीं सदीमें यन्त्रगण बड़े दुर्लभ हो उठे तथा उपर्युपरि मेषाष्ट पर बढाई कर दी । गना हमोसे एक सदाईमें योनिकाके वल्ल-मरदाए'को मारा था । पाण्डुके वल्ल-मरदाए'ज भाज भी ज्ञातोप-गौरवको रक्षा कर रहे हैं ।

पद्ममौरावच'न देखो ।

वल्लक ( सं० पु० ) समुद्रमें रहनेवाला एक प्रकारका जंतु ।

वल्लकवज्र ( सं० पु० ) एक प्रकारका करज ।

वल्लकी ( सं० स्त्री० ) वल्लने इति वल्ल-कूनु, गौरा-दिव्यात् डीप । १ घोषा । २ मन्त्रकोपूहा, मन्त्रका वेष्ट । वल्लमुण्डपुग ( सं० स्त्री० ) पूगविशेष, एक प्रकारकी मुगाली ।

वल्लरजगद्—एक प्राचीन कवि । सुदृशतितकमें दोमेन्द्रने इनका उल्लेख किया है ।

वल्लरजभाषन—एक कवि ।

वल्लरज—एक प्राचीन कवि ।

वल्लरपुर—राजिनागरके अन्तर्गत दो प्राचीन नगर, यिद्ध तथा दोह, वल्लरपुरके नाममें विख्यात हैं । उक्त दोनों नगर परभार ७ कोरको दूरी पर अवस्थित हैं । द्वार-

गजी द्वारा ध्वंस होनेके पहले यह नगर सात ससू'र-जाली तथा घन-जन पूर्ण था । विजयनरमसू'रका बर यायु उनका सुत नदी' है । यहाँ मोरसु यज्ञनियंत्रणके चित्ते दो कृषिमायी ज्ञानियोंका निवास है । वे स्वेन अपने दाहिने हाथको दो अंगुलियोंका छेदन करना अपने जीवनका कर्त्तव्यकर्म समझते हैं, इसलिये उक्त बहनु-जाघामुक्त रमणियाँ अपने घाँका रक्षाके निधे अपने अपने कन्याओंके विवाह समय कर्णधेपनके साथ साथ दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका छेदन कर देती हैं । इस समय ये यथासाध्य पूजा अनुष्ठान करती हैं एवं श्रावण-कमारको बुलाती हैं और उन्हें कुछ कटाईकी मजारी दे कर कन्याओंकी दो अंगुलियोंका ऊपरलग भाग काट देती हैं । यह साँइन विषय होने पर भी १८७४के प्रारम्भमें यद्गु'रके अन्तर्गत द्वेष सहोती ग्राममें एक रमजीके कर्ष्यामुतोचमें दो अंगुलियाँ काटो गई थीं । गौतम नामक यज्ञ द्वारा एक ही व्यापातमें अंगुली काटनेकी रीति है ।

इस अद्भुत क्रियाके सम्बन्धमें उन लोगोंके बीच एक विचरदृशती चली जाती है—प्राचीन कालमें एक मानव एक राजस था । उसने कई सहर वर्षकी कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न किया था । उनकी तपस्यासे सम्पुष्ट हो कर महादेवने उस राजसको दर्शन दिया और कहा— परस ! हम तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हैं, हम समय यथाभिलषित पर माँगो । राजस देवादिदेव महादेवको ऐसी चाणी सुन कर बोला— देव ! यदि हम क्षम पर दया कर दर्शन दिया है, तो मुझे ऐसा परदास दीक्षिये, जिससे मैं जिसके मन्त्रक पर दाप रगू, यह तपस्व अश्रम हो जाय । आशुतोषने राजसका अतर्कविषय ने समझ तथापु' बह कर यहाँसे प्रस्थान किया । दुर्लभ पुरुषमें द्वेषप्रदक्ष इस अमाधारण ज्ञानिकी'पयो'रके निधे महादेवका पाँटा किया । जिय कीई उपाय न देख कर बड़ी जोरतासे भाग मले । राजस भी उनके पीछे दौड़ा । महादेवने राजसकी बहुत मनोर मेल कर परदे ज्ञानके भयमें एक बन्में प्रवेश किया । राजस भी बड़ी तेजोमें दौड़ता हुआ चलके समीप पहुँचा । वहाँ उसने एक क्षेत्रमें एक श्वककी द्वेष कर पड़ा—जोश बोने

तुमने इस राक्षसे किसीको जाते देखा है ? उस राक्षसके भोषण रूपको देख कर छपक मन ही मन सोचने लगा, 'यदि मैं इस राक्षसको महेश्वरका पता नहीं बताता हूँ, तो इसी समय यह दुष्ट क्रोधके आदेशमें निश्चय ही मेरा संहार करेगा और यदि शिव इस विषयको जान पायेगे तो मुझे उनके कोपानलमें दग्ध होना पड़ेगा, सुतरां किस कर्त्तव्यका अनुसरण करनेसे इस दाखण विपद्से छुटकारा पाऊँगा।' छपकको चिन्तानिम्न देख कर राक्षसको विश्वास हुआ कि, छपक निश्चय ही महादेवका पता जानता है। तब यह बार बार हुंकार द्वारा छपकको भय दिखाने लगा। कोई उपाय न देख कर छपकने चिल्ला कर कहा—'मै महादेवका कुछ भी पता नहीं जानता।' फिर पीछे उसने धीरे धीरे महादेवके गुप्त स्थानका सारा भेद उस राक्षसको कह सुनाया।

तब यह राक्षस धृक उस वनमें जाकर महादेवको परकड़नेके लिये क्षमसर हुआ, ऐसे समय भगवान् विष्णु महादेवका उद्धार करनेके निमित्त मोहिनी रूप धारण कर उस राक्षसके सामने उपस्थित हुए। युवतोकें सुन्दर रूपको देखते ही उस राक्षसके हृदयसे महादेवका ध्यान जाता रहा। यह धीरे धीरे उस सुन्दरीकी ओर बढ़ा, किन्तु यह लाख चेष्टा करने पर भी उसे स्पर्श न कर सका। राक्षसकी प्रेमविह्वलता देख कर सुन्दरीने बड़े मोठे स्वरमें कहा—'मैं ब्राह्मणकी कन्या हूँ, किस तरह तुम्हारे ऐसे अपवित्र शरीरवाले राक्षसकी प्रार्थना पूरी करूँ ? तुम पहले सन्ध्यावन्दनादि द्वारा अपने शरीरके पवित्र करो, तब तुम्हारी वासना पूरी होगी और तभी तुम मुझे स्पर्श कर सकोगे।

विष्णुकी छलना राक्षस नहीं समझ सका। नारीके रूप पर मुग्ध हो कर वह अपने हाथका प्रसाव भूल गया। सन्ध्या करनेके समय यह राक्षस अग्न्यासनाङ्गमें अपने अंगविकी यथाक्रमसे दाहिने हाथकी अंगुलियों द्वारा स्पर्श करने लगा एवं जिस समय अपने दाहिने हाथकी मस्तक पर रखा, उसी समय यह भस्म हो गया। इसके बाद महादेव अपने गुप्तस्थानका परित्याग कर बाहर निकले एवं उन्होंने विष्णुके पास जा कर अपनी कृतकृता प्रकट की। फिर वे उस विश्वासागतक तथा

अकृतक छपकके अपराध पर विचार करने लगे। अन्तमें उन्होंने दण्ड स्थिर कर छपकसे कहा,—तुमने जिस अंगुली द्वारा निर्दोष कर मेरा पता राक्षसको दिया था, मैं उस अंगुलीको नष्ट कर दूँगा। ऐसा कह कर महादेव उसको अंगुली काटनेकी तैयार हो गये। इसी समय अरुमात् उस छपकको खी भोजनकी सामग्रियाँ ले कर उस क्षेत्रमें उपस्थित हुईं। यह महादेवको अपने पतिकी अंगुली काटनेके लिये उद्यत देख उनके चरणों पर गिर पड़ो एवं बहुत ही अनुत्पन्न विनयके साथ बोली—'नाथ ! जब आप मेरे पतिकी अंगुली नष्ट कर देंगे, तो मेरा दखि परिवार अन्नाभावसे करालकालके गालमें समा जायगा, सुतरां उसके बदले मैं अपनी दो अंगुलियाँ देनेकी तैयार हूँ।' महादेव छपक-रमणीकी इस प्रकार पतिभक्ति देख कर बोले—'तुम्हारी पतिभक्ति देख कर मैं अति प्रसन्न हुआ। आज दिनसे तुम्हारे वंशमें जितनी रमणियाँ पैदा होंगी, वे हमारे मन्दिरके सामने अपनी दो अंगुलियाँ बलि चढ़ा कर तुम्हारी पतिभक्तिकी घोषणा करेंगी। इसीलिये उसके वंशकी कन्याएँ अपने अंगुलियाँ बलिदान करती आ रही हैं। वे राजनियमका उल्लंघन करके राजठंड प्रहण करती हैं, किन्तु तथापि देवताकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी इच्छा नहीं करतीं। अगो भी महिसुरके प्रायः दो सहस्र परिवारकी रमणियाँ इस तरह अंगुलियोंका बलिदान करती हैं।

वल्लभपुर—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके सलेम जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कोल्लिमल पर्वतके ऊपर स्थापित नामकल नगरसे १६॥ मील पश्चिम-उत्तममें अवस्थित है। यहां तोरियूर उपर्यक्ताके सम्मुखस्थ कन्दरके सामने आरपलेश्वरस्वामीका मन्दिर तथा पोखर है। इस पोखरमें बहुत-सी मछलियाँ हैं। प्रतिदिन घंटा बजा कर उन मछलियोंको भोजन दिया जाता है। घंटाका शब्द सुन कर मछलियाँ बाँधके ऊपर चली आती हैं। इसलिये कितने ही इस मन्दिरको मत्स्यमन्दिर कहते हैं। उस मन्दिरमें अनेकीं शिलालिपियाँ उत्कीर्ण हैं। उनमेंसे एक १३५० ई०में उत्कीर्ण हुई थी।

वल्लभ ( सं० त्रि० ) वल्लभ-अमन् । १ प्रिय, प्यारा । ( पु० ) २ अधपक्ष, मालिक । ३ अत्यन्त प्यारा व्यक्ति, प्रिय मित्र,



भाष्य । ४ सुलभनाशकाल मध्य सुन्दर मन्त्रोत्तमे सुक  
घोडा । ५ पति, पामा । ६ हृत्पायुड । ७ राजनिम्बो, एक  
प्रकारकी मंत्र ।

पल्लव—१ एक राजा । ये हृत्पतिराजके पिता थे । २ एक  
राजकुमारका नाम । ये सुप्रसिद्ध रूप और सनातन  
गोत्रात्मके भाई थे । सनातन देवो ।

पल्लव—बहुतेरे सुप्रसिद्ध प्रसवकर्त्ता—१ पल्लवाचार्य ।  
२ एक वैद्याचारण । मन्त्रिनाथ और रायमुकुटने इनका  
मूल प्रदण किया है । ३ मोक्षलक्ष्मीविलासके प्रणेता ।

४ पिडलजयपल्लव नामक ज्योतिर्गंधके रचयिता ।  
५ ज्योतिर्गंधोपाटोकाके प्रणेता । इनका प्रकृत नाम था  
हृत्पिडलजय । ६ ममपंचमगंधार्थके रचयिता । ७ वैद्यपल्लव  
नामक मन्त्रकार ।

पल्लवकृत ( सं० पु० ) हनुमंतो मंत्रादि पदु चानेवासी  
एक प्रकारका भीष्म । इसके पत्नीकी तरकीब—हरीतकी  
५०, मसूर २ लघण २ पल एकत मूलपाक करके मेषन  
कारमेंसे हल्लाम, मूल, उदरोग और पायुमाना होता  
है । ( अथर्वसंहितामें हनुमन्त्रिका० )

पल्लवगण्ड—बम्बई प्र सिटिमेंसीक सेलमान जिल्लात्तार्त एक  
गिरिदुर्ग । यह सिरीज्ज्मे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें  
भयंकर है । राजनिम्बके ऊपरका दुर्गाज प्रायः गोला-  
कार ( २३५ X २०० ) है तथा वहाँ कृत्तम और कहीं  
पर्यंतगलने इमें प्राचीनरूपमें घेर रखा है । उसके दो  
पथेनाहार, चार भग्ने, एक दहा कुम्भी जो समे ५४ दम  
नष्ट हो गया है, मौजूद हैं । सरसमत न होनेके कारण दुर्गा-  
का भी क्षीयनि ४५ स होतिका उपमम हो गया है ।

पल्लवगण्ड दुर्ग १६८० ईमें महाराष्ट्रनेजरी शिवाजीके  
सातदणमें था । यह बेरगामके १० प्रसिद्ध दुर्गमेंसे एक  
है । १७८१ ईमें मिसर्गोंके सामान्य मरदारने बीजापुर-  
राजके विरुद्ध भाव धारण कर उसके पल्लवगण्ड, मयवर्ष-  
गण्ड और मोमगण्ड में लिया । किन्तु बीजापुरस्यतिने  
दुर्ग पर ही विद्रोही सामान्यकी हरा कर दुर्ग पुनः मरने  
कहीमें कर लिया । १७११ ईमें जब परगुमम भाव  
दुर्गमें रहने थे, तब बीजापुरराजके जम्बू उरसीक मर-  
दारने फिर पल्लवगण्ड-दुर्ग छीन लिया ।

पल्लवगण्ड—मन्त्रिनाथके प्रणेता ।

पल्लवगण्ड—हेमचन्द्रक मन्त्रिनाथविलासनिने सोते-  
दार तथा देवसंभ्रंकी रोषाके प्रणेता । ये हृत्पिडलके  
निर्य थे ।

पल्लवगण्ड—१ हृत्पिडलके रचयिता । २ नादपल्लवके  
सारक्षीक और अष्टावायुक्रमण, महाभारताध्याय-  
मुकण, महामरःसोद तमार तथा पृथुनायके मद्र-  
यिता ।

पल्लवगण्ड गोत्राणी—एक प्रसिद्ध परिवृत ।  
पल्लवगण्ड ( सं० वि० ) भविजय मिय, बड़ा प्यारा ।  
पल्लवगण्ड ( सं० स्त्री० ) पल्लवगण्ड भावः धर्म या तदु-  
त्पां प्रियता, पल्लवगण्ड भाव या धर्म ।

पल्लवगण्डातिथि—महाराष्ट्रका एक प्रधान धर्मिक । ये मिर-  
राजके प्रधान मन्त्रार्य थे । १७१५ ईमें पेशवा मसुसाय-  
की मूरयुके बाद पेशवाकी गद्दीके लिये मोल्दोव उपनिष  
हुमा । इस समयविषया राजमार्हयो पञ्चोदावांने दलक-  
पुत्र प्रदण करनेका संकल्प किया । पल्लव उसी बाधा  
दे कर भी कुछ कर न सके । अन्तमें उन्होंने १७१६ ई०  
के जनवरी मासमें बाजोरायके पदपत्तने मोग दे कर  
उधे हो राजा बनानेकी व्यवस्था की । किन्तु बाजोराय-  
के पुता भा कर नाना-कहनयोंदसे माहात्म्य करने पर  
सुनीका पृथंगमोमालिन्य मिट गया एवं वही राजप्रसिध्दो-  
के सामने बाजोरायके पेशवा होनेकी बात-पकरी हुई । इस  
संमिलनकी विधेय आज्ञामद न देव कर पल्लवगण्डातिथिने  
दोनोंके गुण परामर्शसे विपरीताचरण करनेकी सेवा  
की । उन्होंने अपने पुत्रिलकलेने चिन्मात्रो कल्पाकी यकीर  
करिका दत्तचतुके पतयाया कीर कीजलय परगुमम  
भावकी संता-पद स्वीकार करवाया । इसके बाद ये मर  
निय कर बाजोरायके संप्रनाम-स्यधर्ममें प्रवृत्त हुए ।  
सोभा कहनयोंद प्रतां हार एवं परगुमममें राज्य बनाने-  
का भार प्रदण किया । इने समय कीजलय मिरके  
राजप्रसिध्दो ही डटे । उनके प्रतिविषातके लिये पल्लवगण्ड  
नामके परामर्शानुसार दोनों पक्षमें मित्र बनानेकी  
वेद्य की ।

इस समय विषयमात्रे कल्पा, बाजोराय तथा नाम-  
पदप्रयोग और परगुमम भावकी से कर महाराष्ट्र मर-  
कारमें ही और राजविषय मूचित हुआ था, यह महाराष्ट्रके

इतिहासमें स्पष्टरूपसे लिखा है । चिमनाजी अप्पाको नयाँ पेशवा बनानेके अभिप्रायसे नानाफड़नवीशने सतारा आं कं-राजसनद प्रहण की, इधर परशुरामके कौशलसे बाजीरावको वल्लभके हाथमें देख कर उन्हें सन्देश दीदा हुआ, उन्होंने उन लोगोंके साथ न मिल कर बाई द्वारा राजसनद प्रेरण की । २६वीं मईको चिमनाजी पेशवा पद परं-अभिविक्त हुए ।

इसके बाद परशुरामने नाना फड़नवीशको पूना बुला कर वल्लभमनातियाके साथ मेल करानेकी चेष्टा की, किन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ । दोनों पक्षमें शत्रुता वृद्धिके भाष निश्चय युद्ध होनेके लक्षण दिखाई पड़े । नानाने विशेष कौशलसे रघुमी मौसलाको अपने हाथमें किया । सिन्देराज तथा होल्करपति एवं पेशवाके सना-पति मि० वेड सज्जित हुए । ८वीं अक्टूबरको बाजीराव गद्दी पर बैठे और २७वीं अक्टूबरको वल्लभमनातिया सि-दे राजके द्वारा पकड़े गये । इसके बाद सिन्देराजने उन्हें बन्धनमुक्त कर फिर मंत्रीका पद दिया । किन्तु १८०० ई०में नानाफड़नवीशकी मृत्युके बाद पेशवा बाजीरावके साथ सिन्देराजको घोर शत्रुता हो गई । उस समय सिंधेराजने फिर विद्रोह होनेकी आशंकासे वल्लभको मार डाला । महाराष्ट्र शब्द देखो ।

वल्लभदास—वैष्णवार्हिकके प्रणेता ।

वल्लभ दीक्षित ( सं० पु० ) वल्लभचार्य । वल्लभचार्य देखो ।

वल्लभदेव—सुभाषितावलिके प्रणेता । वे १६वीं सदीमें

विद्यमान थे । इनके यत्नसे शाङ्गधरपदतिका सङ्कलन कार्य आरब्ध हुआ । २-योगमुक्तावलीके रचयिता । ३ एक कवि । ४ कुमारसम्भवकी अष्टाध्यायटीका, मेघदूत टीका, रघुवंशपत्रिका, वक्रोक्तिपञ्चांगिकाटीका, शिशुगल घषकी टीका और सूर्यगतकटीकाके प्रणेता । महिनाथने इनका मत उद्धृत किया है । वे आनन्ददेवके पुत्र और आनन्दवर्द्धनहन देवीशतकके टीकाकार कवयटके (६७६-६०) पितामह थे ।

वल्लभन्यायाचार्य ( सं० पु० ) न्यायलोलावतोंके प्रणेता ।

गङ्गेशतत्त्वचिन्तामणिमें इनका उल्लेख है ।

वल्लभपालक ( सं० त्रि० ) वल्लभानां अभ्यवशिष्याणां पालकः । अभ्यरक्षक ।

वल्लभपुर—कलकत्तेके उत्तर गङ्गातोवरत्ती एक गाण्डामा । यहाँ वल्लभमजीका मन्दिर विद्यमान है । प्रति वर्ष रथयात्रा उपलक्ष्यमें यहाँ द्वादशगोपालका उत्सव होता है । यह स्थान इष्ट-इण्डिया रेलपथके श्रीरामपुर स्टेशनसे आध कोस पर है । मादेश देखो ।

वल्लभराज—जनहिलगढ़के एक राजा तथा चामन्दराजके पुत्र ।

वल्लभशक्ति ( सं० खी० ) एक राजपुत्र ।

( कथावर्तिता १०१७ )

वल्लभस्वामी ( सं० पु० ) वल्लभचार्य ।

वल्लभा ( सं० खी० ) १ प्रिय स्त्री, प्यारी जोरू । ( त्रि० ) २ प्रिया, प्यारी ।

वल्लभमाचारी—वैष्णवसम्प्रदायभेद । इसका दूसरा नाम यद्रसम्प्रदाय है । वल्लभचार्य इसके प्रवर्तक थे, इस कारण लोग इन सम्प्रदायी वैष्णवोंको वल्लभमाचारी कहा करते हैं । भारतवर्षके उत्तरपश्चिममें रामसीताकी उपासना ही प्रचलित देखी जाती है, किन्तु उस स्थानके पश्चिम भागमें पेशवर्षवान् और भोगवान् शृङ्खलके मध्य प्रायः राधा-कृष्णको उपासना ही प्रचलित है । उस प्रदेशमें वल्लभ-चार्य प्रवर्तित बालगोपालकी सेवा, कुछ दिन हुए खूब प्रबल हो उठी है । गोकुलस्थ गोस्वामी इस धर्माका उप-देश देते हैं, इस कारण यह गोकुलस्थ गोस्वामियोंका धर्म कहलाता है ।

प्रवाद है, कि सबसे पहले वेदभाष्यकार विष्णुस्वामीने इस मतका मारतत्त्व प्रचार किया । वे सन्यासाश्रमोप-प्राप्त्यनो छोड़ कर दूसरेकी शिष्य नहीं बनाते थे । उनके शिष्यका नाम शानदेव था । शानदेवके दो शिष्य थे,—नामदेव और ब्रिलोचन । उनके कुछ समय बाद तैलङ्ग-देशीय लक्ष्मणभट्टके पुत्र वल्लभमाचार्य शुरुपद पर अभि-विक्र हो १५वीं सदीके शेष भागमें बड़े यत्नसे इस मतके प्रचारमें लग गये । पहले वे गोकुलमें रहते थे । यहाँ कुछ समय रह कर वे तीर्थ पर्यटनको निकले । मक-मालमें लिखा है, कि उन्होंने भारतवर्षके दक्षिणखण्डमें

१ यमुनके वामतट पर मथुरासे प्रायः तीन कोस पूर्वमें गोकुल नाम है ।

विह्वलनमस्तथापि हिन्दुधर्मकी मर्यादाएँ पढ़ें पर वहाँ के स्वामी प्रत्यक्षोंकी मर्यादाएँ पढ़ाने दिया। पाँचों ये पढ़ाई के शैलीमें हीनामार्ग पर हीनियोग हुए। यहाँमें उन्नतियोंमें नगरी जा कर निम्न-तर पर हीनियोग के साथे रहने लगे। यह स्थान आज भी उनको रीतिक बंध पर प्रामाण्य है।

समुदायके घाट पर इसी प्रकारकी उनको एक और रीतिक देना जानी है। सुभाषमें एक कौम पूरक उनके नाम पर एक मठ और मन्दिर विद्यमान है। उस मठके प्राङ्गणमें जो पूजा है वह आचार्य कुर्मी कहलाता है। उन्नतियोंमें कुछ दिन यह पूजायन होती। धोत्रपण उनको अचला मणि देना पर कष्ट संतुष्ट हुए और अति मजबूत रूपमें दराने दे कर उन्हें बालगोपालको संघाका प्रचार करने का आदेश दिया।

वन्द्यभाषार्थक। मृत्युपटमादिपत्रक। माणयन बड़ा हो निरमलकर है। ये रीत्यायुषधामें कुछ दिन यात्राणतीके जितनायुषमें उदरे थे। उस जितनयुषके निश्चय आज भी उनका एक मठ दृष्टिगोचर होता है। मर्यादीला होर करके ये एक दिन हनुमानघाटके गङ्गाप्रतीमें स्नान करने गैटे। वहाँमें है, कि गोता लगाने हो ये मर्यादित हो गये। इसके बाद उस स्थानमें एक दीदीयमान मणि-निष्ठा प्रदीत हो उठी। यह निष्ठा अनेक दर्शकोंके सामने स्थापितरूप करने लगी और मर्यादा आकाशमें लीन हो गई।

यद्यपि महाभारतदि प्राचीमें विष्णु और कृष्णके धर्मोद्धारण वर्णन है तथा श्रीमहाभारतमें उनकी कर्म-धर्मोद्धारण धर्मोद्धारण मन्दिनार विरायण गाथा साक्षात् है तथापि विष्णुकी अवेक्षा कृष्णका वाधायण वर्णन इन दोनों प्राचीमें नहीं आ गयी देना जाता। किन्तु वही वही धर्मोद्धारणके धर्मोद्धारण उपायनाकी सुस्पष्ट विधि पाई जाती है।

अन्तर्दृष्ट्यान्तर्दृष्टि विद्या है, कि कृष्णधर्मनामी गोपाल होने पर बराबर विद्वत् उदयन हुआ है। उनके दक्षिण वायव्यमें भावामय, बायु वायव्यमें महादेव, वायव्य-वर्षमें ब्रह्मा, उत्तरवर्षमें धर्म, सुषुप्तमें मारुतकी, मरुतमें अन्तर्दृष्ट्यान्तर्दृष्टि, जिह्वामें वायव्यमें, मरुतमें वायव्य

तथा वायव्यमें रति और वायव्यको उदयन हुए। तथा के लोमकृष्णमें लोम कौटि गोपालनामी तथा ब्राह्मणके लोमकृष्णमें लोम कौटि गोपालि अग्रम प्रद्वल किया। पहले गोलीकृष्णामों, पाँचों कृष्णधर्मनामों, गाय और बरुडे तक भी उनके लोमकृष्ण उदयन हुए। धीरे-धीरे अनुपम करके उनमेंसे एक गाय महादेवकी हो गयी। उस पुराणके सृष्टि प्रकरणमें धोत्रपणके किशोररूपकी ही सृष्टिचर्चा बतलाया है।

वन्द्यभाषार्थक कह गये हैं, कि परमेश्वरकी उपासनामें उपवासकी आवश्यकता नहीं, मरुत यज्ञका ह्येन पावेया भी प्रयोजन नहीं, यहाँमें बडीर तपस्याकी भी आवश्यकता नहीं, उत्तम यज्ञ परिधान तथा सुखाय भजन-भोगनादि स्तनी विषय-सुखोंका सम्भोग कर उनको सेवा करो। यद्यपि यह सम्भवायो वैश्याय अतिमात्र विपरीत और भोगविलासी होते हैं। सभी गोष्णामों कृष्ण्य है। सम्भवाय-प्रयत्नक यज्ञनामाथी यद्यपि पहले संन्यासी थे, पर लोकोका बचना है, कि पाठे उधेते फिरसे मर्यादा-धर्मका अयलक्षण किया था। संघकथन गोष्णामिषो-धे। उत्तमोद्यम यह मुख्य यज्ञ पहनने देने है तथा यद्यपि, सूम्ने, घाटने, पीने योग्य सुरम् द्रव्य भोजन कराते है।

निष्ठीके ऊपर गोष्णामिषोका अरवत्त प्रमुख देवने में जाता है। यहाँ तक, कि गिरव भोग उधे' मग, मरु और घन थे तोनी ही सम्भवन करेगे, वेना स्पष्ट विषय है। बहुतेरे संघक व्यवसायी हैं। गोष्णामों गो विष्णुन वाणिज्य व्यवसायों व्याप करने हैं तथा तीर्थप्रयाण मध्यमें दूर दूर दान आ कर वाणिज्य-व्यवसाय करने हैं।

इय-रीत्याके विषयमें अत्यन्त सम्भवायोंके साथ इन लोकोकी चिन्तन विनिष्ठा गयी है। इनके घरमें, मन्दि-रमें गोपाल और राधाकृष्ण तथा कृष्णायुक्त सम्भवाय अत्यन्त धर्मोत्थित प्रतिष्ठित रहती है। ये सब प्रतिष्ठित पातुकी बनो होती हैं। ये लोम विषयें भाट बार करके धोत्रपणकी सेवा करने है।

१ मृत्युपटमादि। सृष्टिपत्रके साथ यद्यत्त बाद धोत्रपणकी उदया परने उदा कर भावम पर चिन्तित और ताम्बूल सम्भवायितकम् किञ्चिन्तन तारकानके माताजी उधे' बरुडी है। इस समय यहाँ होन रखा जाता है।

२ श्रद्धार । दिनके चौथे दण्डमें श्रोत्रुण्य तैल, चन्दन औप कर्पूर द्वारा सुगन्धित तथा बख्खालद्वारासे विभूषित हो बार देते बैठते हैं ।

३ ग्वाला । छठे दण्डमें श्रोत्रुण्य मानो गाय घराने जा रहे हैं, ऐसे घेगभूपासे उन्हें सजाना पड़ता है ।

४ राजभोग । मध्याह्नकालमें श्रोत्रुण्य गोष्ठसे मानो घर लौट कर भोजन कर रहे हैं । ऐसा समझ कर देवालयके परिचारक विप्रहके सामने नाना प्रकारके मिष्ठान्न तथा अन्यान्य सुखाद्य सामग्री रखते हैं । भोग समाप्त होने पर प्रसादी द्रव्य और अन्यान्य सामग्री उपस्थित सेवकोंके बीच बांट देते हैं । कमी कमी यह प्रसाद घनी और लाने शिष्यके यहां भी भेज दिया जाता है ।

५ उद्यापन । भोगके बाद विप्रहकी निद्रा होती है, पीछे छः दण्ड रहते उन्हें उठाय़ा जाता है ।

६ भोग । उद्यापनके आध घण्टा बाद वैकालिक भोग होता है ।

७ सन्ध्या । सूर्यास्तके समय श्रोत्रुण्यकी सायंकालिक सेवा होती है । इस समय दिनके पढ़ने सभी अलङ्कार उतार कर फिरसे तैल और गन्ध द्रव्यादि द्वारा अङ्गसेवा करने होती है ।

८ शयन । करीब छः दण्ड रात्रिके समय विप्रहकी शय्या पर स्थापन कर उनके समीपगानीय जल, ताम्बूलाघार और अन्यान्य श्रान्तिहर द्रव्य रख कर परिचारक देवालयका दरवाजा बन्द कर चले जाते हैं ।

इन सभी समयोंमें प्रायः एक ही प्रकारकी सेवा होती है, जैसे—पुष्प, गन्ध और भोगदान तथा स्तोत्रपाठ और साष्टाङ्ग प्रणाम । विप्रहसेवक तथा अन्यान्य मनुष्य भी इन सेवाका अनुष्ठान करते हैं । किन्तु कृष्णस्तोत्र प्रायः सेवकगण ही किया करते हैं ।

नित्यसेवाके अतिरिक्त कुछ सांवेत्सरिक महोत्सव भी हैं । काशीघाममें और पश्चिम प्रदेशीय अन्यान्य स्थानोंमें जम्माएदमी और रासमात्राके उत्सवमें बहुत आमोद-प्रमोद होता है । ग्रामसन्निहित किसी चतुर्वरमें बड़ा धूमधामसे रासमात्रा बनाई जाती है । कितने मनुष्य सफेद, पीत, लोहिनादि उत्कृष्ट वस्त्र पहन कर रासभूमिमें इकट्ठे होते हैं, कितने प्रकारका मनोहर नृत्य, गीत और

वाद्यका अनुष्ठान होता है तथा श्यामसुन्दरके सुललित लोलानुरूप कितने ही कीतुक दिखलाये जाते हैं । जगह जगह गायक, वादक और नर्तक स्वेच्छानुसार उपस्थित हो कर अपना अपना गुण दिखलाते हुए लोगोंको मनोरञ्जन करते हैं तथा दर्शकगण बड़े सन्तुष्ट हो कर उन्हें पुरस्कार देते हैं । कहीं कहीं तुण-गृह, वस्त्रगृह और पण्यशाला बनाई जाती है । उसमें हिंडोले आदि लटकवा कर लोगोंको अति आमादित करते हैं । अपर्याप्त फल मूल और नाना प्रकारकी मिष्ठान्न सामग्री परिपाटोकमसे सजी रहती है । दर्शकगण परम कीतुहलाविष्ट हो कर हार्थोत्कृन्त चित्तसे चारों ओर विचरण करते हैं । असंख्य लोगोंका समागम ! विचित्र वसन ! विचित्र भूषण ! विविध कीतुक परमाश्चर्य सुहृद्ग्य व्यापार ! यह सब देख कर लोगोंके आनन्दका पारापार नहीं रहता । घृन्दावनमें भी चान्द्र आश्विन मासमें दशमीसे ले कर पूर्णिमा तक इसका उत्सव होता है । यहां नदीके किनारे पाषाणमय कृत्रिम वेदोंके ऊपर श्रोत्रुण्यकी रासलीलाका अचिकल प्रतिरूप दिखलाया जाता है ।

वल्लभाचारी ललाट पर दो ऊट्टूर्ध्व पुण्ड्र खींच कर नासामूलमें अर्द्धचन्द्राकृति बना कर मित्रा देते हैं । उन दोनों पुण्ड्रके मध्यस्थलमें एक लाल गोल तिलक रहता है । इस सप्रदायके भक्त श्रोत्रुण्यवर्गोंका तरह बाहु और वक्षःस्थल पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी प्रतिकृति अंकित करते हैं । कोई कोई श्यामवन्दो नामक काली मिट्टी अथवा काली धातुसे उल्लिखित गोल तिलक लगाता है । ये लोग गलेमें तुलसीकी माला पहनते तथा हाथमें तुलसी काष्ठकी जपमाला रखते हैं और 'श्रोत्रुण्य' तथा 'जयगोपाल' कह कर परस्पर अभिवादन करते हैं ।

वल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवतकी जो टीका लिखी है, वह इन लोगोंका प्रधान सांभ्रदायिक ग्रन्थ है । उसमें भागवतकी कैसी व्याख्या है, उसीका अथलम्बन कर ये लोग चलते हैं । इसके सिवा ये ब्रह्मसूत्रभाष्य, सिद्धान्त-रहस्य, भागवतलीला-रहस्य, एकांतररहस्य आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ भी रच गये हैं । वल्लभाचार्य देते ।

इसके अतिरिक्त सामान्य सेवकोंके मध्य भी कृष्ण-

तोना प्रतियोगिक भावामे स्थिति बहूनां सम्प्रदायिक-  
प्रथम प्रवर्तित है। अथा,—

विष्णुपुत्र—यह प्रथम भावामे स्थिता है। यज्ञमाचार्य  
इसके रक्षितता है। इसमें विष्णुगुण प्रतिपादक चिन्तने  
पद है।

सतविश्राम—सहस्रावसादात्मने इम प्रथमको भावामे  
स्थिता। इसमें श्रीहृत्पदकी पृष्ठावधमोक्षाका वर्णन है।

अष्टादाश—इम प्रथमि यज्ञमाचार्यके साठ प्रथम  
स्थितिके उपासकपद है।

शार्ङ्ग—इम भावा प्रथमि यज्ञमाचार्य और उनके  
मनानुभवकी ८४ अर्थोंके भवि भूक्त चारिन गणित है  
उन ८४ अर्थोंमें स्वी-पुण्य तथा सभी वर्णोंके भावकी है।  
इम सावधारणिक साध्यमें जीव और-प्रकाश अथवा माय  
साध साध विद्यसाध साध है। सिद्धांतरहस्यकी  
परासुक्ति या साधसाध-मिथुन साधसाध प्रसङ्ग शीतानी  
शार्ङ्ग नामक प्रथमि एक जगत् देवता ही स्थिता है।  
यज्ञमाचार्य श्रीहृत्पदके साध इम विषयमें कथोरकथन  
करके इसका मर्म अच्छी तरह समझ गये थे। अथा,—

“तव शार्ङ्गमाचार्योऽऽ महाप्रभु साय कर्हि जो जीवको  
सहस्र मो सुम सासन हो ही, होयवत्त है, मो सुम मी  
साधसाध केमे होय ? तव शीतानुश्री भाय कहे जो सुम  
जीवनकी साधसाधसाध करायोगे तिन की ही अहोकार  
करकी सुम जीवतकी नाम हैगो। तिनकी सकल दोष  
निवर्त होयेंगे।”

शार्ङ्ग—तव शार्ङ्गार्थे कदा,—सुम जीवका स्थिमाय  
जासने हा हो, ये सभी शार्ङ्ग है, तव फिर किस प्रकार  
सुमकी साध तवका संयोग होया ? इम पर शार्ङ्गजी  
( शार्ङ्ग श्रीहृत्पद ) में कदा सुत साधके साध जीवका जो  
संयोग कर योगे, में उगीको स्वीकार कर शृंगी।

इम साधके भावामा और जो चिन्तने साधसाधसाध साध  
वचनान है, किन्तु तवका देवता प्रकार नहीं है। अन्त-  
मात्मने भी इम साधसाधसाधसाध अनेक उपासकपद है,  
किन्तु २०० साधकारों दूसरे दूसरे साधसाधकारों तरह इमे  
सुम साधने नहीं साधने। अतिविश्राम शार्ङ्ग ही इन स्तोत्री-  
का साधसाध है। अन्तसाधकारों तरह इन साध साधने भी

श्रीहृत्पदके प्रसाद और भाविसामिप्यसूचक अनेक स्तोत्रीय  
और समसामिपय उपासकान समिधिनिग रूप है।

अथ प्रथमके साधसाध एक साधसाधको या साधसाध-  
जातोय स्थितिका उपासकपद चक्रमें मान्य होया है, कि  
इस साधसाधमें साधसाधका विधान न था। जगत्पद और  
साधसाधका नामक ही स्थितिको साध ही यज्ञमाचार्ये नहीं  
साधने स्तान्कर रहे थे। इसी समय तव श्री अनेक स्तान्  
के साध सभी दानिके सिधे यहाँ उपासकपद है। पद एक  
कर जगत्पदके साधसाधसाध गूठा, स्थितिके साधसाधमें  
विद्यसाधिकी जो प्रथा प्रचलित है, उसका क्या मतलब है ?  
साधसाधसाधने गिर स्थिता कर कदा, ‘साधके साध श्रीहृत्पदका  
साधके संयोगसाध है।’ साधसाधको इनके गिर स्थितिके  
साधके समझ कर स्थितिके साध साध न हुई और पर  
स्वीट भाई। कुछ दिन बाद इम साधसाधको उपासक-  
के अन्तसाध सुतासाध हो गई और यह सभी नहीं मनी  
हुई, इसका कारण इसने यह सुनाया, पीछे स्तोत्रीय शार्ङ्ग  
साधका ही ‘उम दिन साध शार्ङ्गमें मेरे ही कर क्या साध-  
साध होतो थी, सां हृत्पदा करिये।’ साधसाधका मन्त्रों तरह  
समझ गये, कि इस साधसाधको पर श्रीहृत्पदको हृत्पद  
हुई है। जगत्पदके साध उपासक आ कथोपकथन हुआ  
था, उसे सुना कर कदा कि, ‘मनसा साधसाधसाध शीतानु-  
श्रीको शीतानु समर्पित न करके साधके ऊपर जो निश्चिन्त  
करती रही, वह साधसाध अतिजाय मनुचित और साधसाध  
दुःसाध विषय था।’ अन्तसाध साधसाधने साधसाधसाध-  
में इस प्रकार उपासक हो कर शीतानुश्रीके वरिष्ठा  
कार्यमें निपुण रह भागना उपेक्षन विभावना।

यज्ञसाधकार्यके पुत्र विद्वत्साध विद्वत्पद पर अनिष्टिक  
हुव। इम साधसाधके लोम उपासके शीतानुश्रीको साधसाधने  
है। विद्वत्साधके साध पुत्र थे,—गोपीसाध, गोवि-  
साध, साधसाध, गोहृत्पदसाध, शार्ङ्गसाध, वदुसाध और वन  
साध। ये सभी शार्ङ्गविदेवक थे। इनके मनानुभवकी  
व्यक्ति पदके पृष्ठा-समासाधसाध है, पर साधसाध साधसाध  
विषयोंमें साध साध साधसाधका एक साध है। अथवा

० साधसाध है, कि वह साधसाध स्थितिके साधसाध साध  
साध है।

गोकुलनाथके शिष्योंमें कुछ विभिन्नता देखी जाती है। वे लोग बाकी छः समाजके मठोंके प्रति जरा भी श्रद्धा नहीं रखते, अपने समाजके गोखामोको छोड़ कर और किसीका भी सम्मान नहीं करते और न किसीको अपना शास्त्रविहित शुभ हो मानते हैं। विद्वलनाथके भी किसी भी पुत्रके मतानुवाचियोंमें ऐसा पक्षपात नहीं देखा जाता।

नाना स्थानोंके, विशयतः गुजरात और मालवदेशके कितने स्वर्णयणिक और श्वत्रसाथी बहुरमाचार्यके मतावलम्बी हैं। इसी कारण इस सम्प्रदायमें अनेक धनाढ्य मनुष्य देखे जाते हैं। भारतवर्षके सभी स्थानोंमें, विशेषतः मथुरा और वृन्दावनमें, इन लोगोंके अनेक मठ और देवालय हैं। काशोमें इस सम्प्रदायके दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं,—लालजीका मन्दिर और पुष्योत्तमजीका मन्दिर\*। इन दोनों मन्दिरोंके विप्रद अति विख्यात और बहु सम्पत्ति-शाली हैं। इस सम्प्रदायके अनेक पवित्र तीर्थ हैं। जगन्नाथक्षेत्र और द्वारका तथा अजमेरके श्रीनाथद्वारका मठ सबसे महिमान्वित और समृद्धिसम्पन्न हैं। प्रयाद है, कि इस मठके विप्रद पहले मथुरामें थे। औरङ्गजेव यादशाहने जब वहाँका मन्दिर ढाहनेका हुषम दिया, तब वह सर्वा-न्तर्पामो विप्रद वहाँसे अजमेरको चले गये। वहाँका वर्त्तमान मन्दिर बहुत दिनोंका नहीं है, किन्तु संवत्के दिये हुए धनसे उस विप्रदको प्रचुर सम्पत्ति हो गई है\*। बहुरमाचारियोंको कमसे कम एक धार भी श्रीनाथके दर्शन करने होते हैं तथा कुछ कुछ दान देना पड़ता है।

सम्प्रदायिक बालकोंको गोसाईं लोग गलेमें तुलसीको माला पहना कर "श्रीहृणः शरणं मम" यह अष्टाक्षर मन्त्र पढ़ कर धर्म सम्प्रदायमुक्त कर लेते हैं तथा बारह या उससे अधिक वर्षोंमें जब वह बालक जीवनका कर्त्तव्य-

कर्त्तव्य और शुभत्व अनुभव कर दैनन्दिन क्रियाकलापका आचरण करनेमें समर्थ होते हैं, तब गोसाईं लोग उन्हें दीक्षा देने हैं। दीक्षाके बादःबह बालक श्रीगोपालके चरणोंमें अपना सर्वस्व अर्थात् नन मन और धन समर्पण करना सीखते हैं।

वल्लभाचार्य—वल्लभाचार्य नामक वैष्णवमतके प्रतिष्ठाता एक आचार्य। इन्होंने लक्ष्मणमठ नामक एक तैलङ्ग प्रान्त-के द्वितीय पुत्ररूपमें १४७६ ई० ( विक्रम संवत् १५२५ वैशाख कृष्ण एकादशी ) को जन्मग्रहण किया। लक्ष्मण-मठका मातर्वो पीढ़ीसे ले कर सभी पुष्टय सोमयज्ञ करते चले आये थे। जिसके वंशमें १०० सोमयज्ञ पूरे होते हैं, उनके कुलमें साक्षात् भगवान्का प्रादुर्भाव होता है, इस शास्त्रोप नियमानुसार लक्ष्मणमठजीके समयमें सोमयज्ञ-को ज्ञत संख्या पूर्ण हुई और भगवान्ने 'वल्लभ' इस नामसे आपके वहाँ जन्म लिया। सोमयज्ञके उपलक्ष्यमें एक लाख ब्राह्मण भोजन काशोमें जा कर करनेके अभिप्रायसे आपके मातापिता चले। रास्तेमें चम्पारण्यमें ( जिला रायपुर सो० पी० ) श्रीवल्लभका प्रादुर्भाव हुआ था।

वल्लभके पिता विष्णुसामी सम्प्रदायभुक्त थे। धारा-णासी-धाममें रहते समय धर्माचार ले कर वहाँके अधि-वासियोंके साथ तन्मतावलम्बियोंका घोर विरोध उप-स्थित हुआ। इस कारण उन्हें धाराणसी छोड़ कर अन्यत्र जाना पडा था। उस समय उनकी पत्नी पूर्णगर्मा थी। थोड़ी दूर तक भी न गये थे कि अकालमें अष्टम मासमें उनकी पत्नीने इस नवकुमारको प्रसव किया। मातापिता चाहे अपने जीवनको विपद्संकुल ज्ञान कर हो अथवा पुत्रके देवाश्रय लाभके आश्वाससे हो, उस सद्यःप्रसूत तनयको एक वृक्षके नीचे फेंक चले गये। इस प्रकार कुछ दिन बीत जानेके बाद जब उनका प्राणभय जाता रहा, तब वे दोनों धीरे धीरे उसी राहसे वृक्षके समीप आये और पुत्रको उसी अवस्थामें अर्थात् शरीर और जीवित देब फूले न समाये, गोदमें उठा कर प्रेमश्रु बहाने लगे। इसके बाद पुत्रको साथ ले के धाराणसी आये और वहाँ कुछ समय रहनेके अनन्तर श्रीवृन्दारण्य-के समीपवर्ती गोकुल नगरमें आ कर बस गये।

\* काश्मीरके पौदार प्रत्येक छुडीमें एक एक पैसा देवालयके नामसे देते हैं तथा वहकि बरुण-व्यवसायो प्रति वारके क्रय-विक्रयमें दो दो पैसे कले।

\* प्रत्येक मन्दिरमें तीन जगह दान देना होता है, जैसे विप्रद-के समीप, प्रवर्त्तकको गद्दीमें और श्रीनाथद्वारके धारधर्म।



उपासनारूप शपना मत प्रचार किया। उत्तर-भारतमें अपना मत फैलानेके पहले ही इन्हें एक बार मातृभूमिके दर्शन करनेके लिये दक्षिणात्यमें जाना पड़ा था। यहां थोड़े ही दिनोंमें इनका कौत्सिस्तम्भ स्तूपतिष्ठित हुआ। यहां दामोदर दास नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्तिके सबसे पहले इनसे दीक्षित हो कर इनके धर्ममतका आश्रय लिया। इसके बाद वे विजयनगरमें अपने मामाके घर गये। यहां राजा कृष्णदेव इस मतलवसे कि "सर्वधर्म-वादीयोंका शास्त्रार्थ करा कर जिसकी जय हो उम सम्प्रदायका मैं अनुयायी बनूँ" सर्वधर्मके प्रतिनिधियोंको मान-पूर्वक बुलवा कर शास्त्रार्थ करवा रहे थे। उम समामें जय आप पचारे उस समय समग्र सभा आपकी नेत्रो-राशिसे चकित हो उठी। सबोंने आपको सर्वोच्च स्थान पर विराजमान किया। राजाको प्रार्थनासे सर्ववादीयो-का आपने पराजित किया और राजा कृष्णदेवको अपना शिष्य बनाया। अनन्तर इन्होंने सर्ववादीयोमें तथा राजा-से बड़े ही मान और समारोहके साथ दी गई 'आचार्य' उपाधिको स्वीकार कर दिग्विजय करनेकी इच्छासे भारत-भ्रमण प्रारम्भ किया। छः वर्षोंमें एक बार भारतकी परिक्रमा और एक बार दिग्विजय करना इस हिमावसे दोस वर्षोंकी अवस्थामें आपने तीन बार भारतको परिक्रमा तथा तीन बार सब तरहके वादीयोसे शास्त्रार्थ कर दिग्वि-जय किया था। जय आप-तृतीय बार परिक्रमा कर रहे थे उस समय पंटरपुरमें विराजमान श्रीविठ्ठलनाथ पाण्डुरङ्ग भगवान्ने आपको आह्वा दी, "आप विवाह करिये, मैं आपके यहां पुत्ररूपसे प्रकट होना चाहता हूँ।" इस आह्वाको गिरोधार्थ कर काशीनिवासी एक स्वजातीय कर्मकाण्डी ब्राह्मणकी महालक्ष्मी नामक कन्याके साथ आपने ब्राह्मणविवाह-विधिसे विवाह किया। १५११ ई०में गोपीनाथ तथा १५१६ ई०में विठ्ठलनाथ नामक इनके दो पुत्र हुए।

इन्होंने शेर जीयतमें प्रायः द्वादशभूमिका त्याग नहीं किया। यहां १५२० ई०में इन्होंने गोवर्द्धनशैलेके पार्श्वमें धोनाथका सुवसिद्ध और सुशुद्ध मन्दिर बनवाया। एक दिन वृन्दावनमें भगवद्दृष्टान्तमें निरत रह कर इन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए थे। भगवान्ने इन्हें अपनी पूजा

वा उपासनाकी एक अमिनव प्रथा चलानेका हुक्म दिया और कहा, कि उस प्रथामें उनकी बालकमूर्त्तिकी ही उपा-सनाकी व्यवस्था जानना। तदनुसार बालकृष्ण वा बाल-गोपाल नामने वह उपासनापद्धति प्रचलित हुई है।

आपके शिष्य लोग गुजरात, मारवाड, मेवाड़, मित्य, पञ्जाब, उज्जयिनी, वाराणसी, हरिद्वार, प्रयाग आदि प्रसिद्ध और पवित्र धर्मक्षेत्रमें हैं। इनके मतानुसार आजो-वन ब्रह्मन्यायलभ्यन न्यायमङ्गल वा धर्मप्रणीत नहीं है। इसी कारण इन्होंने विवाह कर लिया था।

वाराणसीमें इनका वासमवन था। यहां वे रहते थे और बीच बीचमें श्रीकृष्णकी लीलाभूमि श्रीवृन्दावनमें जा कर अपने धममय प्राणको भगवत्-प्रेमसलिलमें निपिक कर ले जाते थे। वाराणसीमें रहने समय इन्होंने अपने मतप्रतिष्ठापर बहुतसे धर्मग्रंथ लिखे। उनमेंसे सुबोधिनी नामकी सुविस्तृत भगवद्गुणोपाटीका बहुत प्रसिद्ध है। १५३१ ई०में बल्लभभाचार्य परलोकवासी हुए। ये जनसाधारणमें वैश्वानर कह कर पुजित थे। प्रधादि-में उनका बल्लभदोक्षित नाम भी पाया जाता है।

उनकी रचित ग्रंथावली—अन्तःकरणप्रबोध और उसकी टीका, आचार्यकारिका, आनन्दधिकरण, आर्षा, एकान्तरहस्य, कृष्णाश्रय, चतुःश्लोकिभागवतटीका, जल-भेद, जैमिनिसूत्रमाध्य (मोमांसा), तत्त्वदीप वा तत्त्वार्थ-दीप और उसकी टीका, त्रिविधशैलानामावली, नवरत्न और उसकी टीका, निरोधलक्षण और विवृत्ति, पताव-लभ्यन, पद्य परित्याग, परिशुद्धाटक, पुरुषोत्तमसद्वचनानाम, पुष्टिवाहमयांदाभेद और टीका, पूर्वमीमांसाकारिका, प्रेमाभूत और टीका, प्रौढचरितनामन, बालचरितनामन, बालबोध, ब्रह्मसूत्रवृत्ति, ब्रह्मसूत्रानुमाध्य, भक्तिवर्द्धिनी और टीका, भक्तिसिद्धान्त, भगवद्गुणोपाध्याय, भागवत-तत्त्वदीप नामकी टीका, निवन्ध और भागवतपुराणटीका सुबोधिनी। इनके अलावे भागवतपुराण दशमस्कन्धानु-क्रमणिका, भागवतपुराण पञ्चम स्कन्धटीका, भागवत-पुराणोकादशस्कन्धार्थनिरूपणकारिका, भागवतसारसमु-च्चय, मङ्गलवाद, मयुरामाहात्म्य, मयुराटक, यमुनाटक, राजलीलानामन, विवेकधैर्याश्रय, वेदस्तुतिकारिका, आक्ष-प्रकरण, श्रुतिसार, संन्यासनिर्णय और उसकी टीका, सर्वोत्तमस्तोत्ररूपण और टीका, साक्षान् पुरुषोत्तम-





आदि बड़े बड़े प्रासादोंसे पूर्ण एक सुन्दर नगर था। यह घेयासी नदीके तीरवर्ती मालपाड़ी प्रायसे १ मील पश्चिम तथा चित्तारसे १० मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। पहले यहाँ जैनधर्मका बहुत प्रचार था। इसके बाद शैवगणोंने प्रबल हो कर वहाँ लिंगोपासनाका प्रभाव फैलाया। उन्होंने पर्वतोपरिस्थ प्राचीन जैनमन्दिर पर अधिकार जमा कर उसे सुब्रह्मण्य-मन्दिरमें परिणत कर दिया। पर्वत पर जैनियोंकी कीर्त्तिका निदर्शनस्वरूप अनेकों मूर्त्तियां तथा शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिरकी गठननिपुणता देख कर मालूम होता कि, ४० X २० फीट परिस्तरयुक्त एक पर्वत-कन्दराके मध्य यह मन्दिर बनाया गया है। प्रवाद है, चोलवंशके किसी राजाने इस मन्दिरका निर्माण किया था। पर्वतके दक्षिणांशमें पर्वत-खण्ड काट कर समतल भूमिमें परिणत कर दिये गया है। उसके चारों ओर दुर्गका ध्वंसावशेष देख कर लोग कहते हैं, कि जैन-प्रादुर्भावके समय यहाँ एक छोटा-सा गिरिदुर्ग स्थापित था। नगरके प्रधान रास्तेसे पूर्वा एक सुन्दर दुर्गका ध्वस्तनिदर्शन आज भी दृष्टिगोचर होता है।

बल्लूर—मन्त्राज प्रेसिडेन्सीके तिमनेबल्ली जिलान्तर्गत एक बड़ा प्रायः। यह नानगुनेरी तालुकके सदरसे ४ कोस दक्षिण पश्चिम पथं कुमारिका अन्तरोपसे तिमनेबल्ली सदर आनेके रास्तेकी पश्चिम ओर अवस्थित है। यहाँ एक पुरस्करिणीमें बहुतसे पत्थरोंके टुकड़े पड़े हैं। उनका शिल्पनैपुण्य तथा उनमें अङ्कित प्रतिकृति प्रभृति पट्योदेशण करनेसे अनायास ही मालूम पड़ता है, कि वे पत्थरके टुकड़े जैन-मन्दिरके ध्वंसावशेष हैं। उन पत्थरोंके मध्य बहुत-सी शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। यहाँ जो जिनमूर्त्तियाँ पाई गई थी, उसे विश्वास सज्जोए ले कर रखा कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ कुलशेखर पांडेयका स्थापित किया हुआ एक विशाल मन्दिर है। विष्णु तथा सुब्रह्मण्य मन्दिर भी बहुत प्राचीन है। पांडेय-राजवंशके स्थापित किये हुए एक सुन्दर दुर्गका ध्वंसावशेष अब भी दृष्टि-गोचर होता है।

बल्लिराष्ट्र (सं० पु०) जनपदवासी लोकभेद। दूसरा नाम मल्लराष्ट्र है।

बल्लिशकटपोतिका (सं० खो०) बल्लिप्रधाना शकट-पोतिका। मूलपोडी।

बल्लिशूरण (सं० पु०) बल्लिप्रधानः शूरणः। अत्यम्ल-पर्णी, रामचना।

बबल्ली (सं० खो०) बलि-होप्। १ लता। २ कीवर्त्तमुस्ता, केयरी मोथा। ३ बज्रमोदा। ४ नय्य, चई। ५ अग्नि-दमनी, शोला। ६ काली अपराजिता।

बल्लोकर्ण (सं० पु०) सम विपमालयपालि कर्ण।

बल्लीखदिर (सं० पु०) आरुच नामक एक प्रकारका खैर। इसका गुण—तिक, कटु, उष्ण, कषाय, मलरस तथा श्वास-कासघ्न और पित्त रक्त त्रिदोषहर। (बैद्यकि०)

बल्लोगड (सं० पु०) बल्लिरूपा गडः। मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। यह लघु, रूक्ष, अग्निविष्यन्दी, वायुकर और कफनाशक मानी गई है।

बल्लोज (सं० ह्मी०) बल्लयां लतानां जायने इति जन-ड। मरिच, मिर्च।

बल्लोपञ्चमूल (सं० ह्मी०) लतापञ्चमूल। परिभाषाप्रदीप-के अनुसार यह पञ्चमूल कफनाशक माना गया है।

बल्लोपलाशकम्दा (सं० खो०) भूमिकुम्भाएड, भूईं कुम्हड़ा।

बल्लोफुल (सं० ह्मी०) कर्कटिकादि।

बल्लोषट (सं० ह्मी०) बटवृक्षभेद।

बल्लोवदरी (सं० खो०) बल्लोरूपा वदरी। भूवदरी, मोटा बेर।

बल्लोमुद्ग (सं० पु०) बल्लोपु जातो मुद्गः। मुङ्गछक, मोठ।

बल्लोवृक्ष (सं० पु०) बल्लोवत् दीर्घो वृक्षः। शालवृक्ष।

बल्लूर (सं० ह्मी०) बल्लयते आश्रयने लतादिनेति बल्ल-याद्बल्लकाल् उरच्। १ कुङ्ग। २ मंजरी। ३ शैल। ४ निजेल स्थान, सूची-जगह। ५ शाल्ल, हराभरा। ६ गहन, दुर्गम स्थान।

बल्लूर (सं० ह्मी०) बल्लयते संश्रियते इति बल्ल उरच् (ब्रजिणीपञ्चादम्य ऊपदत्तौ) उष्ण ५।६०। १ आतपादि द्वारा शुष्क मांस, धूपमें सुखाया हुआ मांस। मनुने ऐसा मांस खाना निषेध बताया है। २ शूकरका मांस। ३ घनशैल, जंगल। ४ धीरान, उजाड़। ५ ऊपर, ऊसर।



सूर्यगुण्टं पुंकरिणी एवं उनकी महिषी कृष्णाजोने अम्बानदीके तीर दो मन्दिरें स्थापन किये थे। यहांके विष्णु-मन्दिर तथा चाँदसाहबहत जुमामसजिद, हैदरवंशीयोंका समाधिश्चेत एवं और भी कितने ही हिन्दुओंकी कीर्तिके निदर्शन देखने योग्य हैं।

बल्लूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कृष्णा जिलेके बेजवाड़ा तालुकान्तर्गत एक नगर। यह बल्लूर जमोदारीकी राजधानी है। यह नगर बेजवाड़ासे १५ मील दक्षिण कृष्णा नदीके तीर पर बसा है।

बल्लूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके वापटला तालुकान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह वापटलासे १५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां गोपालसामोका मन्दिर तथा मण्डपके स्तम्भमें दो शिलालिपियाँ उत्कीर्ण हैं। उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि १५७३-६०में यह मंडप बनाया गया था।

बल्लूरक ( सं० पु० ) बल्लूर-कन। बल्लूर-देखा।

बल्लूरर—एक जाति।

बल्लूरक—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके उत्तर विभागस्थ एक धांगड़-जाति। ये लोग पैर-बल्लूरक नामसे भी परिचित हैं।

बल्लवग ( सं० स्त्री० ) बल्लव-भावे घञ्, बल्लवाय संवरणाय माधुः, बल्लव-यत्। धात्रीयुक्त, आँवलाका पेड़।

बल्लवज ( सं० पु० ) बल्लवे पर्वते जायते इति जन डे। उपल, ओखली।

बल्लवजा ( सं० स्त्री० ) बल्लवज-टाप। एक प्रकारका तुंग या प्रांस। पर्याय—दृढपत्नी, तृणेशु, तृणवहजजा, मीझो पत्नी, दृढतृणा, पार्ष्णीयाश्रा, दृढशु रा। वैद्यकमें यह मधुर, शीतल, पित्त, दाह और तृष्णाभाशक, वातवद्धक, रुचिकर और कण्ठशुद्धिकारक कही गई है।

बल्लवल ( सं० पु० ) एक दैत्य जिसे बलरामजोने मारा था, इल्लवल।

बल्लव ( सं० पु० ) शांशा।

बल्लवक ( सं० पु० ) जातिविशेष, सम्भ्रमंतः चाहोक् जाति।

बव ( सं० पु० ) फलित ज्योतिषके अनुसार ग्यारह करणों में एक करण। इसमें जन्म लेनेवाले मनुष्यका बलवाने, धीर, हठी और विलक्षण होना माना जाता है।

बवाङ्ग ( सं० स्त्री० ) बवाङ्ग।

बवजुंयो ( सं० स्त्री० ) कृत्तवापश्चित्त, वह जिसने पापका प्रायश्चित्त किया हो।

बय ( सं० त्रि० ) १ दृष्टित, घेरा हुआ। ( पु० ) २ अन्धकारावाहक। ३ गर्त, गहर। ४ रूप, कुर्वा।

बयि ( सं० पु० ) १ शरीरावरक जरा। 'बयि कृत्स्नं शरीरमापृत्यावास्थितं जराम्' ( शुक ११२-६।२० ) २ रूप।

बयिवासस् ( सं० त्रि० ) रूपयुक्त यमनशाली। 'बयि-वाससं बयिः रूपनाम रूपापेतयमनयन्तम्।'

(अथर्व ८।१।२ भाष्य)

बव्वूल ( सं० पु० ) बव्वूर, बव्वूल।

बव्वूलनिर्घान ( सं० पु० ) बव्वूल वृक्षका निर्घान या गोंद। इसका गुण—प्रायो, पित्त और वायुघ्न तथा रक्तातिसार, पित्तासू, मेह और प्रदरनाशक।

बव्वूलहाथरिष्ट ( सं० पु० ) प्रहारीरोगाधिकारोक औषध-भेद। बव्वूलकी छाल २५ सेर, पाकार्य जल ३५६ सेर, शेष ३४ सेर, गुड़ ३७१ सेर, धीका फूल १६ सेर, पीपल २ पल, जायफल, गुडुत्बक, इलायची, तैजपत्र, नागेश्वर, लवंग, गरिच, प्रत्येक १ पल, इन सबोंको एक साथ मिला कर एक महिना तक आवृत बरतन रख छोड़ें। उसके बाद इसका संघन करनेसे अमिसार आदि रोगोंमें फायदा पहुंचाता है। (मैयन्यरत्नावली ग्रह्यधिकार)

बशंवद ( सं० त्रि० ) बशं तवाहं, वश इति चाक्षये वदतीति बशंवद (प्रियवशो वदः खच्। पा ३।२।३८) इति खच्। (अर्थाहं प दन्तस्य मुम्। पा ६।३।६७) इति मुम्। १ बशो-भूत, बशवर्त्ती। (पु०) २ आशाकारो, दास।

बशंवदत्व ( सं० स्त्री० ) बशंवदस्य भावः त्व। बशंवदका भाव या धर्म।

बश ( सं० पु० ) बश ( बशिरपयोषसंख्यानां। पा ३।३।५८ ) इत्यस्य वारिंकोषत्या अच्। १ इच्छा, चाह। २ एक व्यक्ति पर दूसरेका ऐसा प्रभाव कि दूसरा, उसके साथ जो चाहे कर सके या उससे जो चाहे करा सके, काहू, इक्षितार। ३ किसी वस्तु या बातको अपने अनुकूल घटित करनेकी सामर्थ्या, शक्तिको पहुंच। ४ अधीन



मतसे इनके सात पुत्र और एक कन्या थी। वशिष्ठ देखे।  
२ मित्रावरुणके पुत्र। ( अग्निपु० )

यथा ( सं० त्रि० ) वशिय देखे।

वशीकरण (सं० क्री०) वशा-श्रु भावे लघुट्, अभूततद्भावेचिच्च मणि, मन्त्र या औषध आदिकं द्वारा किसोको अपने वशमें करनेका प्रयोग, आधार्थ्यप्रक्रियामेद। जिस क्रिया द्वारा सबको वश किया जाता है, उसको वशीकरण कहते हैं। मणि आदि धारण करने तथा मन्त्र और औषधका प्रयोग करनेसे वशाकरण होता है। तन्त्रमें वशीकरणकी मन्त्रोपधिका विशेष विधरण लिखा जा चुका है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका विषय बहुत संक्षेपमें दिया जाता है।

जो मारण, उच्चाटन और वशीकरणादि कार्य करें, उन्हें मन्त्रसिद्ध होना पड़ेगा, बिना मन्त्रसिद्ध हुए यह सब प्रक्रिया करनेसे यह सिद्ध नहीं होगा। साथकको चाहिये, कि वे स्थिरचित्तसे बीस हजार मन्त्र जप कर यह वशीकरण करें। वशीकरणकार्य करनेसे उनके दर्शन-मात्रसे लिखुवन क्षुब्ध हो जाता है।

भूमिकुम्भाण्ड और वरगदकी जड़ जलमें पीस कर उसका तिलक लगा कर जिसको ओर देखा जाय, वही वशीभूत हो जाता है। पुष्या नक्षत्रमें पुनर्वाकी जड़ और रुद्र-दन्तीकी जड़ उखाड़ कर इसके साथ पयवांज वाघनेके समय 'ओं ऐं पुरं क्षोभ्य भगवति गम्भीर्य छ्नुं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रण करे। इसके वाघनेके पहले यह मन्त्र बीस हजार जप करे, इससे समी मनुष्य वशीभूत हो जाते हैं। पचा, मज्जठ, अर्जुनवृक्ष, तगरकाष्ठ, इनका सम भाग ले कर जिसको खिलाया तथा शरीरसे छुमा दिया जाय, वही वशीभूत होता है।

पुष्या नक्षत्रमें फंटेकारीकी जड़ उखाड़ कर कमरमें बांधने तथा रुष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रातमें श्मशानस्थित महा नील वृक्षकी जड़ उपार कर नरतैलका अञ्जन करनेसे जगत् वशीभूत होता है।

श्मशानमें उत्पन्न महानील वृक्षकी जड़ और स्वोय शुक्र पक्ष पीस कर अञ्जन करनेसे वशीकरण किया जा सकता है तथा उक्त जड़ हाथमें बांधनेसे यह व्याक सर्वलोकप्रिय होता है। पुष्या नक्षत्रमें प्रह्लादस्तोत्रा मूल

उखाड़ करके जिसको खिलाया जाता है, वह वशमें हो जाता है। पंचकका कलेजा, घृतकुमारी और गौरोचना, इन सर्वोंका बराबर बराबर भाग ले कर आँवमें अञ्जन लगानेसे लिखुवन वशीभूत होता है। अश्विन लगानेके पहले "ओं नमो महायक्षिणी अमुकं मे वशामानय स्वाहा" इस मन्त्रसे दश हजार जप करना होता है। मृगशिरा नक्षत्रमें लाल कनेरकी जड़ उपाड़ कर उसका नौ अंगुलका खूँटा—'ओं ऐं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर जिसके नामसे जमीनमें गाढ़ा जायगा, वह अवश्य वशीभूत हो जायगा। यह मन्त्र पहले दश हजार जपना चाहिये।

अपामार्गकी जड़ उपार कर उसका तीन अंगुलका खूँटा सात बार अभिमन्त्रित कर जिसके घर फेंका जाय, वह वशीभूत हो जाता है। 'ओं मदन कामदेवाय स्वाहा' यह मन्त्र १०६ बार जप कर सिद्ध होनेसे यह कार्य करे। अभिमन्त्रण भी इसी मन्त्र द्वारा होगा। अपामार्गकी जड़का तिलक लगानेसे भी वशीकरण होता है।

ख्यम्भुकुसुम कपड़ोंमें ले कर तिरास्तेके बीच शनि या मंगलवारकी जलावे। जला कर जो भस्म होगा, उसका कपालमें तिलक करे। इससे राजा भी वशीभूत होते हैं। जलानेके समय 'ओं नमो मैर्योतरे आशाकाले कमलमुखे राजमोहने प्रजावशीकरणे ख्योपुदपरञ्जिनलोक वश्यमोहनि मे सोहं 'ओं गुरुप्रसादेन' यह मन्त्र पढ़ना होता है।

रुष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रातमें इपलाङ्गलिपाकी जड़, नरतैल, मधु और हरताल, इन सर्वोंको एक साथ कर कपालमें तिलक लगानेसे सर्वोंको वशीभूत किया जा सकता है।

यमानो वृक्षका मूल और हरताल पक्ष पीस कर गोली बनावे। यह गोली मुँहमें रख कर जिससे जा खोज मांगो जायगी, वह वशवर्त्तों हो कर तत्काल ही दे देगा। 'ओं अश्वकर्णेश्वरे दुर्बले अर्द्धि केशिक जटाकलापे ढक्कार फत्कारिणी स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर इसका अनुष्ठान करना होता है।

वटपत्र और मयूरशिक समभाग ले घस कर तिलक लगानेसे सर्वलोग वशीभूत होता है एवं रुष्णा अपरा-



मनःशिला, गैरीधना और श्वेत अपराजिताको जड़ पकत्र कर पोसे । पीछे उसका कपालमें तिलक कर जिससे वातचीन को जाती है, वही वशीभूत हो जाता है । स्वर्ण वेष्टित श्वेत अपराजिताकी जड़ तावीजमें रख कर जो व्यक्ति पहनता है, उसके वचनसे सभी वशीभूत होता है । श्वेत अपराजिताकी जड़ चवा कर उसका तिलक करनेसे नारी अथवा नर यदि उसकी ओर देखे, तो देखनेसे ही उसके वशमें हो जाता है । इस प्रक्रियाके करनेके पहले 'ओं वज्रकरिणे शिवे रक्ष रक्ष भगवति ममाङ्ग भवतु' कुछ कुछ स्वाहा' यह मन्त्र सहस्र बार जप करना होता है ।

पुष्या नक्षत्रयुक्त कृष्णपशुकी अष्टमी तिथिमें साधक उपवास रह कर पुष्य, धूप, चलि और घृतप्रदोष दे कर 'ओं श्वेतवर्णे सितपर्वतधामिनी अप्रतिहते मम कार्णे' कुछ कुछ ठः ठः स्वाहा' एक हजार आठ बार जप करे, उसके बाद श्वेत गुग्गुलु और उन्नी जगहकी मिट्टी ले कर इस फलमें घृत लेप दे । तदनन्तर यह बीज और मिट्टी एक नये बरतनमें रत्न कर कृष्णाचतुर्दशी या अष्टमी तिथिमें गाड़ रखे । जब तक इस बीजसे वृक्ष हो कर फल न हो, तब तक 'ओं श्वेतवर्णे मितथासिनि श्वेतपर्वतधामिनि सर्वाकार्याणि कुरु कुरु अप्रतिहते नमो नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे जल सोचना होगा । इस वृक्षमें फल लगनेसे पुनः पुष्या नक्षत्रमें शुचि हो कर उपवासी रह धूपदि दे, पीछे 'ओं श्वेतहृदयाय नमः' ओं पद्मसुखे शिरसि स्वाहा, ओं सर्वाङ्गानमस्यै शिखायै वषट्, ओं नमः सर्वाशक्तिमस्यै ऋचाय हुं, ओं नमः नेत्रत्रयाय धीपट्, ओं परमन्त्रमेदने अत्राय फट्, इस मन्त्रसे न्यास करके श्वेतगुग्गुली जड़ उपारे । इसके पहले 'ओं नमो भगवति ह्रीं श्वेतवासे नमः नमः स्वाहा' श्वेतगुग्गुलीकी जड़ उठा कर यह मन्त्र दश हजार जपना तथा घृत मिश्रित तिल और श्वेत-दूर्वा द्वारा सहस्र होम करना होगा । इसके बाद गुग्गुलीकी जड़ और श्वेतचन्दन पकत्र पोस कर शरीरमें लगानेसे उत्तम वशीकरण होता है, गुग्गुलीकी जड़के माथ लेपन करनेसे भी सब वशीभूत होता है ।

मनःशिला, कहे गये तरीकेसे उखाड़ा हुआ श्वेतगुग्गुलीका मूल और श्वेतचन्दन इन दोनोंकी पकत्र जलमें घास कर तिलक लगानेसे सर्वाङ्ग वशीभूत होता है ।

पूर्वरूप श्वेतगुग्गुलीकी जड़, सफेद सरसों और प्रियंगु इन तीनों द्रव्योंका समभाग ले कर चूर्ण करे । यह चूर्ण जिसके सिर पर निक्षेप किया जायगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा । 'ओं नमः श्वेतमात्रे सर्वाङ्गोक्त वशङ्करि दुष्टान् वशं कुरु कुरु मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र १०८ बार जप कर सिद्ध करे । जब तक यह मन्त्र सिद्ध न होगा, तब तक वशीकरण हो ही नहीं सकता ।

अडूसकी जड़, प्रियंगु, कुच, इलायची, नागकेशर और सफेद सरसों इन सबोंको पकत्र कर जिसके अङ्गमें धूप दिया जाता है, वह व्यक्ति वशीभूत होता है । 'ओं कामिनि माधाय माधवि नमः' इस मन्त्रसे धूप अभिमन्त्रित कर देना होगा । इस मन्त्रसे एक फूल ले कर सौ बार अभिमन्त्रित कर जिसे दिया जाता है वही वशीभूत हो जाता है । खानेके समय इस मन्त्रसे अन्न अभिमन्त्रित कर जिसे वशीभूत करना होगा, उसके नामसे सात दिन भोजन करनेसे वह व्यक्ति वशीभूत होता है । खानेके पहले 'ओं कर्दं कटे घोररूपिणि ठः ठः' यह मन्त्र सहस्र बार जप करे ।

साधक 'हुं जनके म्वाहा' यह मन्त्र दो लाख बार जप करके घृताक्त गुग्गुलुमें जपका दशांग होम करे । इस प्रकार जप होम करनेसे देवी सीमाय प्रदान करती एवं स्पर्शमात्रसे ही साधक तिसुवन वशीभूत कर सकता है ।

पीपलके पेड़ पर चढ़ कर 'ओं नमो भगवते रुद्राय सिद्धरूपिणे शिखिबन्ध सर्वेषां शिवमस्तु शिवमस्तु एन हन रक्ष रक्ष सर्वभूतैर्म्यश्च नमः' यह मन्त्र दश हजार जप करके पीछे प ६ नकरका फूड उक्त मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर जिसको दिया जाता है, वह उसी क्षण वशीभूत हो जाता है ।

'ओं नमो भूतनाथाय यं भूपाञ्च' वशं कुरु कुरु भुवनक्षोमक सर्वलोकान् क्षोभय क्षोभय स्कीं क्लीं क्लीं व्लुं स्वाहा' यह मन्त्र एक लाख जप करनेसे साधकके प्रति भूतनाथ अर्थात् महादेव सन्तुष्ट होते हैं एवं साधक जिसे स्मरण करता है, वह व्यक्ति तत्क्षणात् ही वशीभूत हो जाता है ।

राजवशीकरण—केसर, रक्तचन्दन, गैरीधना और कपूर





दुग्धरकी जड़ मृगशिरा नक्षत्रमें हाथमें बांध कर जिसके अंगमें स्पर्श कराओगे, वह कामिनी वशीभूत हो जायगी।

घनिष्ठा नक्षत्रमें शिरोप पेड़का मूल तथा स्वाती-नक्षत्रमें घातकीमूल ला कर हाथमें बांधनेसे नारियाँ वशीभूता होती हैं। रेवती नक्षत्रमें घटकी कली ला कर हाथमें बांधनेसे सबको वशीभूत कर सकते हो तथा मूला नक्षत्रमें घेरकी जड़ उखाड़ जिस स्त्रीको खिलाओगे वह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

स्वर्णपात्रमें कुन्दरूक्षका मूल पीस कर जिस स्त्रीको पीठ पर दिया जाता है, वह स्त्री निरन्धव ही वशीभूत हो जाती है। अगहन मासकी पूर्णिमा तिथिमें अपामार्गकी जड़ उपार कर जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री वशमें हो जायगी। श्येतगुञ्जाकी जड़ एवं पञ्चमल-जिह्वा, दन्त, चक्षु, कर्ण और नासामल इनको एकत्र कर चण्डमन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

यह जितने स्त्रीवंशीकरण लिये गये, इन सर्वोंको करते जानेंमें चण्डमन्त्र जप और मन्त्र पढ़ना होगा, नहीं तो सब निष्फल हो जाता है। सघेरे दूत साफ कर जिस स्त्रीका नाम ले और 'ओं नमः क्षिप्र' कामिनी अमुकी वशमानय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभि मन्त्रित कर सात गण्डूष (चुल्हू) जल पान करे, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

नागकेशरका फूल, त्रिवंगु, तगरकाष्ठ, पद्मकेशर, वच, जटामांसी, इन्हें एकत्र चूर्ण कर जो व्यक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूलि रक्ष रक्ष सर्वासां क्षेत्रपैम्ये परैभ्यः स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप देता है, उस व्यक्तिको कामदेवकी तरह जान कर स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं।

स्वीय जिह्वामल, नासामल और कर्णमल एकत्र कर 'ओं नमः सयाप्यै नमः सयाप्यै च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ करके सुराके सहित जिस स्त्रीको खिलाया जाय, वह स्त्री अवश्य ही वशीभूता हो जायगी।

अपामार्ग वृक्षके मध्यमागका चार अंगुलका काष्ठ 'ओं द्राघिणि स्वाहा ओं हर्मिले स्वाहा' इस मन्त्रसे सात

बार अभिमन्त्रण करके वेश्याके घर फेर देनेसे वह वेश्या वशीभूत हो जाती है।

पेचरुकी आँख और मांस, रकचन्दन, गोरोचना, फेसर तथा मछलीका तेल इन सर्वोंको एकत्र करके 'होँ, होँ प्लं प्लं फट् नमः' इस मन्त्रसे अपने शरीरमें लगानेसे स्त्रीको वशीभूत किया जाता है। एक गिरगिटका दाहिना पैर मुझमें रख कर जिस स्त्रीके साथ सम्भोग किया जाता है वह स्त्री वशीभूत हो जाती है एवं गिरगिटकी बाईं आँख मधु और तेलके साथ एकत्र करके आँखमें अञ्जन लगानेसे अगर किसी स्त्रीको देखा जाय वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। स्त्रीको देखनेके समय 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं होँ हूँ प्लं कालि कपालि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना होता है। गिरगिटकी दाहिनी आँख, काँजि और मधु एकत्र करके दाहिनी आँखमें अञ्जन दे 'ओं पूजिताय स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको देवा जाता है, वह स्त्री वशीभूत होती है।

'ओं नमः कामदेवाय महकल सहदश सहाम सहा-ल्लिमे यह धूननजनं ममदर्शनं उदकशितं कुच कुच दक्ष-दण्डधर कुसुमवाणेन हन हन स्वाहा' यह मन्त्र जिस नारीके उद्देशसे एक सप्ताह तक जप किया जायगा, वह नारी समीप आ कर उसके वशमें हो जायगी।

रात्रिकालमें कामाक्रान्त चित्तसे जिसका नाम ले कर 'ओं महवह्लोँ वल्लोँ करवल्लोँ कामपिशाच अमुकीं कामं प्राहय स्वपने मम रूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वेदेन वन्धय शीफट' यह मन्त्र जप किया जायगा, वह नारी वशीभूत होगी।

इस वशीकरण कार्यमें भी पूर्वोक्त चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करना होगा। बिना चण्डमन्त्रका जप किये कोई फल नहीं होता।

लघण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत इन्हें एकत्र करके एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे कुरूप व्यक्ति भी तिलोत्तमाके वशीभूत कर सकता है। सरसों, लघण, दुग्ध, मधु, घृत इनका एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं।

चार अंगुलकी अंडीकी लकड़ोसे मन्त्र पाठपूर्वक कड़वा तेल और लघणके साथ १०८ होम करे। होम



दुश्चरकी जड़ सृगशिरा नक्षत्रमें हाथमें बांध कर जिसके अंगमें स्पर्श कराओगे, वह कामिनी वशीभूत हो जायगी।

घनिष्ठा नक्षत्रमें शिरोप पेडका मूल तथा स्वाती-नक्षत्रमें घातकीमूल ला कर हाथमें बांधनेसे नारियाँ वशीभूता होती हैं। रेवती नक्षत्रमें घटकी कली ला कर हाथमें बाँधनेसे सबकी वशीभूत कर सकने हो तथा मूला नक्षत्रमें बैरकी जड़ उखाड़ जिस स्त्रीको खिलाओगे यह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

स्वर्णपात्रमें कुन्दरूक्षका मूल पीस कर जिस स्त्रीको पीठ पर दिया जाता है, वह स्त्री निश्चय ही वशीभूत हो जाती है। अगहन मासकी पूर्णिमा तिथिमें अपामार्गकी जड़ उपार कर जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री वशमें हो जायगी। श्वेतगुग्गुलीकी जड़ एवं पञ्चमल जिह्वा, दन्त, चक्षु, कर्ण और नासामल इनको एकत्र कर चण्डमन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

यह जितने स्त्रीवंशीकरण लिखे गये, इन सर्वोंको करते जानेंमें चण्डमन्त्र जप और मन्त्र पढ़ना होगा। नहीं तो सब निष्फल हो जाता है। सबेरे दौंत साफ कर जिस स्त्रीका नाम ले और 'ओं नमः क्षिप्रं कामिनीं अमुकीं वशमानय हुं फट् स्वाहा।' इस मन्त्रसे सात बार अभि मन्त्रित कर सात गण्डूप ( सुल्लु ) जल पान करे, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

नागकेशरका फूल, त्रियंगु, तगरकाष्ठ, पद्मकेशर, घच, जटामांसी, इन्हे एकत्र चुण्ण कर जो व्यक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूलि रक्ष रक्ष सर्वासां क्षे त्रयेभ्ये परेभ्यः स्वाहा।' यह मन्त्र पढ़ कर उक्त चुण्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप देता है, उस व्यक्तिको कामदेवकी तरह जान कर स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं।

स्वीय जिह्वामल, नासामल और कर्णमल एकत्र कर 'ओं नमः सवायै नमः सवाण्यै च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा।' यह मन्त्र पाठ करके सुराके सहित जिस स्त्रीको खिलाया जाय, वह स्त्री अवश्य ही वशीभूता हो जायगी।

अपामार्ग वृक्षके मध्यभागका चार अंगुलका काष्ठ 'ओं द्राघिणि स्वाहा ओं हर्मिळे स्वाहा।' इस मन्त्रसे सान

वार अभिमन्त्रण करके वेश्याके घर फेर देनेसे वह वेश्या वशीभूत हो जाती है।

पेचकी आँख और मांस, रक्तचन्दन, गोरोचना, फेसर तथा मछलोका तेल इन सर्वोंको एकत्र करके 'ह्रीं, ह्रीं प्लं प्लं फट् नमः' इस मन्त्रसे अपने शरीरमें लगानेसे स्त्रीको वशीभूत किया जाता है। एक गिरगिटका दाहिना पैर मुझमें रख कर जिस स्त्रीके साथ सम्भोग किया जाता है वह स्त्री वशीभूत हो जाती है एवं गिरगिटकी बाईं आँख मधु और तेलके साथ एकत्र करके आँखमें अञ्जन लगानेसे अगर किसी स्त्रीको देखा जाय वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। स्त्रीको देखनेके समय 'ओं आनन्द प्रह्ला स्वाहा ओं ह्रीं ह्रीं प्लं प्लं कालि कपालि स्वाहा।' यह मन्त्र पढ़ना होता है। गिरगिटकी दाहिनी आँख, काँजि और मधु एकत्र करके दाहिनी आँखमें अञ्जन दे 'ओं' पूजिताय स्वाहा।' यह मन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको देखा जाता है, वह स्त्री वशीभूत होती है।

'ओं नमः कामदेवाय सहकल सहदश सहाम सहा- लिमे यन्हे धूननजनं ममदर्शनं उत्करिठतं कुप कुप दक्ष- दण्डधर कुसुमवाणेन हन हन स्वाहा।' यह मन्त्र जिस नारीके उद्देशसे एक मत्साह तक जप किया जायगा, वह नारी समीप भा कर उसके वशमें हो जायगी।

रात्रिकालमें कामाक्रान्त चित्तसे जिसका नाम ले कर 'ओं सहयह्रीं वल्मी करवल्मी कामपिशान्च अमुकीं कामं प्राहय स्वपेन मम रूपेण नखैर्विदारय द्राघय स्वदेन वन्धय श्रीफट्' यह मन्त्र जप किया जायगा, वह नारी वशीभूत होगी।

इस वशीकरण कार्यमें भी पूर्वोक्त चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करना होगा। बिना चण्डमन्त्रका जप किये कोई फल नहीं होता।

लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत इन्हे एकत्र करके एक मत्साह तक होम करते रहनेसे कुरूप व्यक्ति भी तिलोत्तमाके वशीभूत कर सकता है। सरसों, लवण, दुग्ध, मधु, घृत इनका एक मत्साह तक होम करते रहनेसे स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं।

चार अंगुली अंडीको लकड़ोसे मन्त्र पाठपूर्वक कड़वा तेल और लवणके साथ १०८ होम करे। होम

इत सर्वोका बराबर बराबर भाग ले कर मायके हृषिके साथ मित्रा कर तिलक करनेसे राजपुत्रोत्पन्न होता है । तिलक लगानेके पहले 'मो ह्रीं स्वः भमुर्कं मे परां कुय कुय स्वाहा' यह मन्त्र एक हजार जप करना होगा ।

मङ्गोष्ठ, केसर, अन्नपादन, घृतकुमारी, चितामर्म और शकते शरीरका रक्त, इन्हे एकत्र कर भवने शुक्र द्वारा मायना है, पीछे पुनः मन्त्रमें उसकी गोली बनाये । यह गोली जिनै साधयन्तु या पीनेके श्लेष्में दे कर मित्राभोगे, यह शक्ति निश्चय ही यज्ञोभूत होगा तथा यह गोली राजासे श्रुतानेके चण्डमन्त्रके प्रमायने राजा भी यज्ञोभूत होने है । चण्डमन्त्र 'मो ह्रीं रक्तचामुण्डे कुय कुय भमुर्कं मे मन्मथाय स्वाहा' यह मन्त्र एक हजार जप करना होता है ।

चण्डमन्त्रके समय श्वेत अस्त्राग्निताकी जड़ उगार कर मातृकको भोजन करनेसे चण्डमन्त्रयत्नसे यह तुल्य यज्ञोभूत हो जाता है । इसमें मो उक्त चण्डमन्त्र सहस्र बार जप तथा भोजनकालमें मो यह मन्त्र पढ़ना होता है । उत्तरकल्मुनी, उत्तरावाहना, बिंया उत्तरमाद्रवद नक्षत्रोंमें प्रातःकाल पापलके पेड़की जड़ उखाड़ कर हाथमें रखनेसे राज-दरबारमें या अन्यथा स्थानोंमें जयलभ होता है ।

अथवा नक्षत्रमें श्रौचलेकी जड़, विद्याया नक्षत्रमें माय पेड़का मूल पर्व पूर्वकल्मुनी नक्षत्रमें मन्मथ शूको जड़ हाथमें रखनेसे देवराज इन्द्र भी उस पर यज्ञोभूत हो जाने है । अथवा नक्षत्रमें मायके शरीरकी जड़ हाथमें बांधनेसे राजा यज्ञोभूत होते हैं । रक्तोत्पलकी जड़ भद्रोष्ठ फलोंके तेलमें रचने करके पूर्वोक्त चण्डमन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर कालमें तिलक करनेसे राजा यज्ञोभूत होने है । इसमें मो चण्डमन्त्र सहस्र बार जप करना होता है ।

एकचन्द्र, शक्रे सरसी और कट्टे तेलके साथ चण्डमन्त्रमें मन्त्र होम करनेसे फौज हो राजाके यज्ञोभूत किया जा सकता है । रात्रिकालमें भवने घर बन्देके घृतेके साथ सरसी द्वारा उक्त चण्डमन्त्रसे सहस्र होम करनेसे राजाके यज्ञोभूत किया जा सकता है । रातमें मधुके साथ मरमोके फूल द्वारा चण्डमन्त्रमें मन्त्र होम करनेसे मन्मथ पृथ्वीके अभिवर्ति भी फौज यज्ञोभूत हो जाने है ।

श्रीयज्ञोकरण—शुक्लका कलेजा और शीतल मण्डपमें शरीरका मूत्र, गौरोगना और शोमकी मन्त्र (मन्त्र) इन सर्वोका एकत्र कर मन्त्र करनेसे श्री यज्ञोभूत होणे है ।

गौरोगना, चितामर्म, मनुष्यनैत्र और अपना शुद्ध इन्हे एक साथ पीम कर जिस स्त्रीके दिया जाय, वह स्त्री फौज यज्ञोभूत हो जायगी ।

चितामर्म, रसा, कुट, तगरकाष्ठ और केसर इनका समभाग ले कर पूर्ण करे । यह पूर्ण जिन स्त्रीके सिर पर और पुत्रके पैर पर फेका जाता है, वह स्त्री और पुत्र यज्ञोभूत होने है ।

घनूरेका बीया, टामा नैचूका बीया, जिह्वामूल, दशमूल, चक्षुमूल, कर्णमूल और नामामूल एकत्र करके जिन स्त्रीको मित्राभोगे यही यज्ञोभूत हो जायगी । रसा ३५, इन्द्रनी १६, मोदक और नरदन्त तेलके साथ पीम कर जलारमें तिलक करनेसे तिलोसना भी यज्ञोभूत हो जाती है ।

श्रीहागा, जेडोमधु, गौरोगना, चितामर्म और का-जिहा इनका समपरिमाण ले कर एकत्र मधुके साथ तिलक लगानेसे जिनकी यज्ञोभूत होने है । पुण्यामन्त्रमें काला चतुरेकी जड़, अरणा नक्षत्रमें कल, विद्यालानक्षत्रमें पल, मूल्यानक्षत्रमें मूत्र उखाड़ कर एकत्र पोसे । इसके साथ केसर, कपूर और गौरोगना मित्रा कर तिलक करनेसे श्री यज्ञोभूत होती है ।

काकजड़ा, पच, कुट, विप्रय, केसर और शकता एक साथ मिला कर कपालमें तिलक करनेसे श्री यज्ञो हो जाती है । काकजड़ा घन, कूर, शुक्र और शोपित इनकी एकत्र करके जिन स्त्रीकी मित्राया जायगा, यह स्त्री यावज्जीवन उसके यज्ञोभूत हो जायगी ।

घटक पशुका मन्त्रक, द्येन काकम्बकी जड़, मङ्गोष्ठ और गीर यह सब जिसकी मित्राभोगे, यही श्री यज्ञोभूत हो जायगी । मायकी केपुत्र, मन्मथका मूठकी और देवीका तेल सम भाग ले कर पूव क्षेत्में श्री यज्ञोभूत होता है ।

अभिधानक्षत्रमें पन्थागृहाकी जड़ मन्मथ करके हाथमें बांधनेसे नायिका यज्ञोभूत होती है । यही

दुग्धरकी जड़ मृगशिरा नक्षत्रमें हाथमें बांध कर जिसके अंगमें स्पर्श कराओगे, वह कामिनी वशीभूत हो जायगी ।

घनिष्ठ नक्षत्रमें शिरोप पेड़का मूल तथा स्याती-नक्षत्रमें घातकीमूल ला कर हाथमें बांधनेसे नारियाँ वशीभूता होती हैं । रैवती नक्षत्रमें घटकी कली ला कर हाथमें बांधनेसे सबको वशीभूत कर सकते हो तथा मूला नक्षत्रमें यैरकी जड़ उखाड़ जिस स्त्रीको खिलाओगे वह स्त्री वशीभूत हो जायगी ।

स्वर्णपात्रमें कुन्दरसका मूल पीस कर जिस स्त्रीको पीठ पर दिया जाता है, वह स्त्री निश्चय ही वशीभूत हो जाती है । अगहन मासकी पूर्णिमा तिथिमें अपामार्गकी जड़ उपार कर जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री वशमें हो जायगी । श्वेतगुञ्जाकी जड़ एवं पंचमल-जिह्वा, दन्त, चक्षु, कर्ण और नासामल इनको एकत्र कर चण्डमन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जाना है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है ।

यह जितने स्त्रीवशीकरण लिखे गये, इन सर्वोंको करते जानेमें चण्डमन्त्र जप और मन्त्र पढ़ना होगा; नहीं तो सब निष्फल हो जाता है । सवेरे दाँत साफ कर जिस स्त्रीका नाम ले और 'ओं नमः क्षिप्र' कामिनीं अमुकीं वशमानय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अमि मन्त्रित कर सात गण्डूप ( सुल्लू ) जल पान करे, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है ।

नागकेशरका फूल, मियंगु, तगरकाष्ठ, पक्षकेशर, बच, जटामांसी, इन्हे एकत्र चूर्ण कर जो व्यक्त 'ओं मूलि मूलि महामूलि रक्ष रक्ष सर्वासां क्षे त्रयेभ्ये परेभ्यः स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप देता है, उस व्यक्तिको कामदेवकी तरह जान कर स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं ।

स्वीय जिह्वामाल, नासामल और कर्णमल एकत्र कर 'ओं नमः सवाये नमः सवाण्यै च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ करके सुराके सहित जिस स्त्रीको खिलाया जाय, वह स्त्री अवश्य ही वशीभूता हो जायगी ।

अपामार्ग वृक्षके मध्यभागका चार अंगुलका काष्ठ 'ओं द्राविणि स्वाहा ओं हर्मिठे स्वाहा' इस मन्त्रसे सात

बार अमिमन्त्रण करके वेश्याके घर फेंक देनेसे वह वेश्या वशीभूत हो जाती है ।

पेचरुकी आँख और-मांस, रक्तचन्दन, गोरोचना, फेसर तथा मछलाका तेल इन सर्वोंको एकत्र करके 'ह्रीं, ह्रीं प्लं प्लं फट् नमः' इस मन्त्रसे अपने शरीरमें लगानेसे स्त्रीको वशीभूत किया जाता है । एक गिरगिटका दाहिना पैर मुझमें रख कर जिस स्त्रीके साथ सम्भोग किया जाता है वह स्त्री वशीभूत हो जाती है एवं गिरगिटकी बाईं आँख मधु और तेलके साथ एकत्र करके आँखमें अञ्जन लगानेसे अगर किसी स्त्रीको देखा जाय वह स्त्री वशीभूत हो जायगी । स्त्रीको देवनेके समय 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं ह्रीं ह्रीं प्लं कालि कपालि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना होता है । गिरगिटकी दाहिनी आँख, काँजि और मधु एकत्र करके दाहिनी आँखमें अञ्जन दे 'ओं पूजिताय स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको देखा जाता है, वह स्त्री वशीभूत होती है ।

'ओं नमः कामदेवाय सहकल सहदश सहाम सहा-ल्लिमे वहे धूवनजनं ममदर्शनं उत्कण्ठितं कुप कुप दक्ष-दण्डधर कुसुमवाणेन हन हन स्वाहा' यह मन्त्र जिस नारीके उद्देशसे एक सप्ताह तक जप किया जायगा, वह नारी समीप आ कर उसके वशमें हो जायगी ।

रात्रिकालमें कामाक्रान्त चित्तसे जिसका नाम ले कर 'ओं सहयह्यों यल्लो करयल्लो कामपिशाच अमुकीं कामं प्राहय स्वपेन मम रूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वदेन वन्धय श्रीफट' यह मन्त्र जप किया जायगा, वह नारी वशीभूत होगी ।

इस वशीकरण कार्यमें भी पूर्वोक्त चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करना होगा । बिना चण्डमन्त्रका जप किये कोई फल नहीं होता ।

लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत इन्हे एकत्र करके एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे कुरूप व्यक्ति भी तिलोत्तमाको वशीभूत कर सकता है । सरसों, लवण, दुग्ध, मधु, घृत इनका एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं ।

चार अंगुली अंडीको लकड़ोसे मन्त्र पाठपूर्वक कड़ुआ तेल और लवणके साथ १०८ होम करे । होम

जन्मके समय जिसका नाम होगा, यह व्यक्ति यज्ञीभूत होगा। महाशिवके कूलमें घृण मिला कर मंत्र दिन १०८ होन करे, इन प्रकार समूचा समाह होम करने करने में यज्ञीभूत माने यज्ञीभूत होता है। 'सो ह्रीं क्लृप्तामुष्टे वृद्ध कर भगुरीं मे यज्ञीभूत स्वाहा' यह मन्त्र पाठ कर होम करे।

गोन गोमुष्ट मा कर उमका सुन्दा बनाये, उममे मासपरी गोपरीमें पाठ कर उम भूने। भूतनेके समय आ गौरी (लावा) इन गोपरीमें हो कर बाहर निकलेगा, उमका पूर्ण कर एक कपालमें रख दे और गोपरी गो मध्यम गौरी पूर्ण कर दूसरी जगद रमे। पदलेकी निशाने दुई गौरीका पूर्ण जिस स्त्रीके मस्तक पर दिया जाता है, यह स्त्री यज्ञीभूत हो जाती है। मध्यम गौरीके पूर्णमें यज्ञीकरण निवृत्त होता है। इन योगमें मन्त्र को अष्टाक्षरका नहीं, यह बिना मन्त्र हो सिद्ध होता है।

मासय मस्तकका मध्यभाग, गर्डभका मस्तक मध्यमन मन्त्रा द्वारा पूर्ण कर उममें भूहाराके रम द्वारा मास दिन मायना दे कर सुखाये। पीछे कूईका पत्थीका बना कर यह मन्त्रा पाठमें दे होवा जन्दाये, जनिवारका इन हो निशाने मस्तकपालमें कञ्ज बनाये। यह कञ्ज जाँवमें लगा कर जिस स्त्रीकी ओर दृष्टि फेरो जायगा, यह स्त्री यज्ञीभूत हो जायगी।

मत्तानिन्दा, हरगार, श्रीव शुक्र, भाकेडू कलका नेत्र मत्त हाथाके गण्डका मद्, इन मन्त्रोंका एकत्र मिला कर कवा उमै तिलक करनेमें स्त्री यज्ञीभूत होता है। मत्तानिन्दा त्रिंशु, तायके मत्तका फूल और गोरोचना इन्हें पकल कर भाँगमें भक्षण करनेमें (घनेरमा कामिनीके भी यज्ञीभूत किया जा सकता है।

मिर्च, गु, वच, तैलपत्र, गोरोचना, रस्ताञ्जल और रक्त-मस्तक इन सब द्रव्योंका मिला कर जाँवमें अञ्जन लगा कर जिस स्त्रीकी ओर देखा जायगा, यह स्त्री यज्ञीभूत होती है। मोमराजो, भाकन्दका मूत्र या पिडलकी जड़ जिस स्त्री या पुत्रके नाममें उममें बाँधे जाती है, यह स्त्री या पुत्र यज्ञीमें ही जाता।

हजाराहो वा हजाराहो ह्रीं त्रिंशु उमका दुई पीने पदलेकी जड़, हृद और देवदार इनका मयान मास

ले कर पूर्ण करे। यह पूर्ण जिस स्त्री या पुत्रके मस्तक पर फेरा जाता है, यह स्त्री या पुत्र यज्ञीभूत होता है। कल सहित सामानकी वृक्षकी जड़ मस कर पाँचमें भक्षण कर, किंवा कपालमें तिलक लगा कर जिस स्त्री और पुत्र पर दृष्टिपात होता है, यह स्त्री और पुत्र यज्ञीभूत होता है।

गोपालकपंडीकी जड़ पुष्पा मक्षतों संगे हो कर उपाडे। पीछे इस जड़के साथ मिर्च, पोगल और मोंडकी गायके दूधमें पोस कर गोली बनाये। इस गोलीकी पोस कर रक्तचक्रके साथ कपालमें तिलक लगा कर त्रिपोंका देगनेसे त्रिपों यज्ञीभूत हो जाती है। स्वातोमक्षतमें घरबटोका मूत्र एवं भगुराया तक्षतमें घेरका मूत्र उपाय कर हाथमें ले त्रिपोंकी अयनीकन करनेसे ये यज्ञीभूत होती है। ऊर्ध्वपुष्पी, अणुपुष्पी, लज्जायन्त्री और अणुराजिना इन सब पीपोंका फूल ला कर एक सप्ताह तक अपने भुक्तमें मायना दे। पीछे उममें सिद्धा, दहन, कर्ण और नामा, इन मन्त्रोंका मल एकत्र करके जिस स्त्रीकी बाँध पदार्थ या पीनेके जलमें घाने दोगे, यह स्त्री यज्ञीभूत हो जायगी।

शुक्रपक्षके पुष्पाजलमें सम्भोगके समय घरनपूर्णक योगित्थन होनेका घोर्य घाप हाथमें प्रक्षुण कर स्त्रीकी बाँधें हथोलीसे लुभानेमें यह स्त्री यज्ञीभूत होती है। कण्ठपक्षके पुष्पाजलमें भी ऐसा करनेसे यज्ञीकरण होता है। (विद्यतमातुंनो)

इयंन आकन्द, लंगलिया, वच, लज्जायन्त्री, मन् इन मन्त्रोंका बराबर बराबर मास ले पूर्ण कर कुत्तोंके दूधके साथ मिलाये। उमके बाद यह घण्टा कलके पीछेमें रखे, यह कामबाण स्वरूप होता है, जिस स्त्रीको यह भीषण विषाक्षोमें, यह स्त्री यज्ञीभूत हो जायगी। इन सब यज्ञीकरणोंमें घण्टामन्त्र दग सहस्र जप करनेसे सिद्ध होगा। पूर्वाक अष्टमासके मन्त्राया यज्ञीकरण सफल नहीं होता।

मास बार मन्त्राञ्जलि दे कर 'सो' विधावसुनाम मंघाया कथकागामधिरतिः सुकृता मत्तदुर्गा देहि मे मस्तकमें विधावसम्ये स्वाहा' यह मन्त्र एक मास तक मन्त्र काने करनेमें सुदृग् स्त्री यज्ञीभूत होती है।

पट्कर्मदीपिकामें 'मारण, उच्चाटन और वशीकरण' पादिका विस्तार विवरण वर्णित है। इस मतसे वशीकरणका विषय संक्षेपमें आलोचना कर देना जाय।

इसके बाद वशीकरणका विषय लिखा जाता है। इसका हान हो जानेसे नर और नारी दोनोंका वशीभूत किया जा सकता है। लज्जालु लता, अपामार्गको जटा, बहेड़ा, अपराजिता और चाण्डाली लता इन सबको एक साथ गायके दूधमें पीस कर कीचड़की तरह करे। पीछे इसे एक पट्टयत्नके टुकड़ेमें लेप कर उसमें बत्ती बनावे। यह बत्ती पद्मनालके मध्यगत सूतेसे घेर दे। उसके बाद एकवर्णा गायके दूधसे घी तैयार कर उसी घीसे पहलेकी बनाई बत्ती धात्र कर दे। तदनंतर यह बत्ती जला कर उसको शिखाका कज्जल बनावे। पीछे नतुर्दशी रातको मैत्र्यको पुजा करके यह कज्जलपात करे। इस कज्जल द्वारा स्त्री पुरुष जिमकी इच्छा को जाय, वही वशीभूत हो जायगा। यह वशीकरण सर्वोत्तम है, स्वयं महादेवने इस वशीकरण का उपदेश दिया है। साधकको उचित है, कि वे इसे यत्नपूर्वक गोपन कर रखें। क्रूर, अव्ययिध, निन्दक और चपल, इनके निकट प्रकाश न करे।

यह मन्त्र जब तक सिद्ध न हो, तब तक साधक 'ओं ह्रीं मेहिनी-स्वाहा' जप करे। मन्त्र सिद्ध होनेके बाद चन्द्रन, पुष्य, वरुण अथवा कोई उतम फट उक्त मन्त्रसे १०८ बार अभिमन्त्रित कर जिसके हाथ दिया जायगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा।

साधक 'ओं चिटि चिटि चाण्डालि महावाण्डालि अमुक मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र ताड़के पत्ते पर लिख कर पत्तेको दूध मिले हुए पानोमें फेंक दे और पाक करे। इस मन्त्रमें जिसका नाम लिखा जायगा, वह व्यक्ति अवश्य ही वशीभूत होगा। किसी किसीका कहना है, कि उक्त मन्त्र बैठके काटिसे लिखना होगा एवं इस पत्तेको दूधमें पाक कर तीन दिन तक कीचड़में रख दे। पीछे उसे कीचड़से निकाल कर दुर्गास्वयं मण्डपद्वार पर गाड़ कर रख दे। ऐसा करनेसे भी वशीकरण होता है।

पूर्वको ओं चिटि चिटि इत्यादि मन्त्र पेलके काटिसे ताड़के पत्ते पर लिख कर यथाविधान भद्रकालीकी पूजा करके उसी घरमें उसे ढक कर रख दे। इससे भी वशी-

करण होता है। 'रं सर्वलोक वशमानय स्वाहा' इस मन्त्रसे जप और पूजा करनेसे अभिलपित व्यक्ति वशीभूत किया जा सकता है।

'ओं राजमुखि राजामिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाग्निदेवि सधंजनस्य मुलं वश्यं कुट म्वाहा।'।

'ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जपे विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्कुरि सर्वलोकवशङ्कुरि सर्वस्वो-पुरुषवशङ्कुरि सद्गुर्योर सद्गुर्योर ह्रीं स्वाहा' यह दो मन्त्र दश हजार जप करके पीछे घृतसंयुक्त पायस द्वारा जपका दशांश होम करना होगा। होम खतम होनेके बाद अङ्गदेवता, अष्टमातृका, और दश दिक्पालकी पूजा करके फिर स्वादुयुक्त तिलतण्डुल, मधुर फल तथा घृतयुक्त रक्तपत्र द्वारा होम करे। इस तरह तीन दिन तक होम करके सूर्यमण्डलाभिष्टात्री देवताकी आराधना कर सूर्या-मिमुख १०८ जप करे। इससे थोड़े दिनमें ही वशीकरण सिद्ध होता है। मन्त्रमें अभिलपित व्यक्ति का नाम लेना होता है। इस मन्त्रके अन्नभृषि, निवृत् छन्द और गौरी देवता हैं इस प्रकार कराङ्गन्यास करना होता है। 'ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, जपे विजये गौरि गान्धारि तज्जानीभ्यां स्वाहा, त्रिभुवन वशङ्कुरि मधुपामभ्यां वपद्, सर्वलोकवशङ्कुरि श्रानामिकाभ्यां हु, सर्वस्वोपुरुषवशङ्कुरि कनिष्ठाभ्यां घीपट्, सद्गुर्योर, सद्गुर्योर ह्रीं स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट्।' इस प्रकार हृदय आदिमें न्यास करना पड़ता है। इस देवताकी पूजा करनेके समय निम्नोक्त मन्त्रसे ध्यान करनेको विधि है—

'अमन्त्रशशिवाजन्मौलिशिवदपाशा-  
ङ्क शक्तिरकरान्ना वन्दुजीवारुपाङ्गी ।  
अमन्त्रिकरवन्द्या श्रीक्षणा शेषवर्णा  
शुंक्रुमुमुमुता स्यात् सम्पदे पार्वती ॥'

इस प्रणालीके अनुसार वशीकरण करनेसे सर्वोक्त वशीभूत किया जा सकता है।

'मद् मद् मादय मादय ह्रीं वश्य अमुकं स्वाहा' इस मन्त्रका नाम मदनमन्त्र है।



“इन्द्रकाविरभूतिः सुदहनस्यदधानो  
सुवर्णदहनस्ये निम्बमालोत्तियतः ॥”

मदनदेवका शरीर सुवर्ण-रश्मि है । ये भाकलें पर्वल्य  
घनुष्यां-साकृष्ट वयं सुवर्णियों हृदयमें निदगल मायसे  
गङ्गा भागीयत किये हुए हैं । येसा मदनदेवको शान कर  
मदनमत्त द्वा द्वाज जप और मदनदेवको सहस्र रत्न  
पुत्र मदाना होता है । इससे मत्त मिष्ट होता है ।  
इस मत्तवत्सं समस्त जगत्को यजोभूत किया जा  
सकता है ।

‘मो वामुण्डे जप वामुण्डे मोदण यजामाय अमुकं  
साहा’ यह मन्त्र ज्ञान कर जप कर शिरोप-युक्तके समिध्  
द्वारा द्वा सहस्र होम करे । निम्नोक्त ध्यानसे देवताकी  
पूजा होती है ।

ध्यान यथा—

“दंष्ट्राकोटिपिन्दुदृष्टा सुपदना षान्द्रान्धकसे विषया  
सहस्रशक्तिनिगूढरक्षिणकरा वामेन पागं गिरः ।  
श्यामा निग्लनूदंजा भयकरी शङ्खचर्मवृता  
पानुपदा रत्नगद्दिनी जडविधी ज्येष्ठा सदा साधने ॥”

विंशत्युत्तरक इस ध्यानसे पूजा करनेसे मन्त्र सिद्ध  
होता है । इस मन्त्रका येसा प्रभाव है कि इससे यजो-  
भूत होता है ।

‘मो नमः कामाय सर्वजनप्रियाय सर्वज्ञानसम्पन्नोत्तयाय  
उत्पत्त उत्पत्त प्रज्वाल्य प्रज्वाल्य सर्व-जगतस्य हृदये मम  
पदां पुत्र कृद् स्वाहा’ यह मन्त्र जपनेसे नर और मारीको  
यजोकरण किया जा सकता है ।

‘मो नमः भगवति सुविद्यावहादिनी नमः स्वाहा’ इस  
मन्त्रमें मण्डूच्छ्रय ( मोम ) द्वारा अभिजित व्यक्तिको एक  
प्रतिहति बनाना होगी । प्रतिमूर्ति बना कर उसकी प्राण-  
प्रतिष्ठा करने होगी है । पीछे इस प्रतिहृतिके ऊपर  
पूजाके ‘मो नमः भगवति’ इत्यादि मन्त्र जप करके अङ्गा-  
शान्ति द्वारा इस मूर्तिको तपाना होगा । येसा करनेसे  
अभिजित व्यक्तिको यजोभूत हो जाता है । ( पृ. १००-१०१ )  
बृहन्नीलमन्त्र, उद्बन्दी आदि मन्त्रमें यजोप-रत्नादिका  
विशेष विवरण लिखा है । मिलान हो जानेके मन्त्रके  
बन्दी यह और नहीं लिखा गया ।

यजोकरणकार्ये बरात कान्ति वा पूर्वाह्निकयो

करना होता है । इसके करनेमें समसो भीर द्वागो विधि  
यजाम्न मानो गई है ।

पृथो मादि तस्यके होमों कालमें यजोकरणादि कार्य  
करने होते हैं । उषेष्टा, उत्तराषाढा, अनुराधा, रोहिणी,  
यह सब नक्षत्र पूज्योत्तय हैं । इनका निरूपण कर यजो-  
करण करना होता है ।

यद् जो यजोकरणकी मर्मा प्रकियाएँ बर्णित हुईं,  
इसके करनेके पहले साधकको मन्त्र-मिष्ट होना होगा ।  
जब तक मन्त्र मिष्ट नहीं होगा, तब तक यजोभूत हो  
ही नहीं सकते । सुतरां साधक पहले मन्त्रकी श्रावणना  
कर सिद्धिप्राप्त करे । पीछे श्रावण, उच्चाटन, यजोकरण  
आदि जो आधिनारिक किये करेंगे, उसमें ये तत्काल ही  
सफलतामें होंगे ।

यजोकार ( सं० पु० ) यजोकरण । यजोकरण देतो ।

यजोहृत ( सं० ति० ) १ किसो प्रकार यजोमें किया हुआ ।  
२ माहित, सुगंध । ३ मन्त्रसुगंध, मन्त्र द्वारा यजोमें किया  
हुआ ।

यजोक्रिया ( सं० स्त्री० ) यजोकरण, यजोमें लायेका काम ।  
यजोभू ( सं० ति० ) यजोभूत किया हुआ ।

यजोभूत ( सं० ति० ) यजो यजोभूत इत्यर्थे चिन्त ।  
१ यजोमें भावा हुआ, भयोन, साथे । २ दूसरेको इच्छाके  
भयोन ।

यजोर ( सं० पु० ) यज-रत्न । १ शक्तिपत्नी । २ सर्वक,  
बर्ष । ३ भगवामां । ( स्त्री० ) ४ सामुद्र लक्षण, ममुद्रो  
नमक ।

यदियक ( सं० पु० ) अमन्त्राग्नेद ।

यद्य ( सं० स्त्री० ) यजो यजोकरणाप सापु इति यज यन्  
( वन शपुः । पा ४।१।८६ ) १ लयद्, लीङ् । ( मन्त्रव० ) यज-  
मन्त्रोत्तरयं यज इति यज-यन् ( वी० गणः । पा ४।१।८६ )  
( ति० ) २ भावसत्ताप्राप्त, यजोमें जानेवाला, साथे होनेवाला ।  
३ किसोको इच्छाके भयोन, दूसरेको भावना वा कदमेमें  
रहनेवाला । ( पु० ) ४ वास, संवक । ५ प्राणहण ।  
६ मन्त्रिप्रा पाँचवां पुत्र । ( माह० देव० ५२।१४ )

यद्वक ( सं० ति० ) यद्व व्याप्यं कन् । १ यजोभूत, यजो ।  
यद्वकर ( सं० ति० ) यज करनेके, साथे ।

यद्वकर्म्ये ( सं० स्त्री० ) यजोकरण, यजोमें लायेका काम ।

वश्यता ( सं० स्त्री० ) वशमें होनेकी अवस्था या भाव, अधीनता ।

वश्यत्व ( सं० क्लो० ) वश्यता देखो ।

वश्या ( सं० स्त्री० ) वश्य-टापू । १ वशीभूता नारी । पर्याय—वशागा, वशास्या और वश्यका । २ नीलापराजिता । ३ गोरोचना । ४ लगाम ।

वश्यात्मन ( सं० पु० ) वश्यः आत्मा कर्मघां । १ वशीभूत आत्मा । ( पु० स्त्री० ) २ वशीकृत चित्तन्द्रिय, वह जिसकी चित्तेन्द्रिय वशानुग हुई है । (चरक० सू० ८ अ०)

वषट् ( सं० अर्थ० ) १ एक शब्द । इसका उच्चारण अग्निमें आहुति देने समय यज्ञमें होता है । अङ्गन्यास और कल्याणमें शिवा और मध्यमाके साथ इसका व्यवहार होता है । वह प्रयुक्त मन्त्र जो तान्त्रिक पूजादिमें द्रव्य-विशेष देनेके समय पढ़ा जाता है ।

अमरटीकाकार भरत कहते हैं—केवल वषट् ही षष्ठी स्वाहा, श्रीषट्, वीषट्, वषट् और स्वधा इन पाँच शब्दोंसे ही वेदोद्देशसे आहुति देनी होती है । इस देव-शब्दसे इन्द्रादि देवगण समन्वता होगी । ( शृक् १०।१।५।६ )

वषट्कार ( सं० पु० ) वषट् इत्यस्य कारः करणं यत् । १ देवताओंके उद्देश्यसे किया हुआ यह, होम, होल । २ वेदोंके तैत्तिरीय देवताओंमेंसे एक । यथा—अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार ।

वषट्कारनिघण्टु ( सं० क्लो० ) सामभेद ।

वषट्कारिन् ( सं० स्त्री० ) वषट् मन्त्रयोगसे होम करनेवाला ।

वषट्कृत ( सं० स्त्री० ) वषट्कृत मन्त्रेण कृतं । देवताओंके निमित्त अग्निमें डाला हुआ होम, होम किया हुआ, कृत । वषट्कृत्य ( सं० क्लो० ) होम ।

वषट्क्रिया ( सं० स्त्री० ) होमक्रिये ।

वषट्फल ( सं० क्लो० ) ककौल, कंकौल ।

वषक्य ( सं० पु० ) वषकते इति वषक-गतौ बाहुलकात् अयन् । एकहायन वरस, वफेना बड़छाटा ।

वषक्यणी ( सं० स्त्री० ) वषक्य एकहायनी वरसः तैत्तिरीय इति, नो-क्विप्, गीरादित्वात्-लोप, णत्वम् ( पूर्वोदात्-संज्ञायामगः । पा. ८।५।३ ) वषक्यणीति पाठे वषक्योऽस्त्यस्या इति । 'अत इति ठर्ना' इति ईनि, अट् कुप्वाणिति णत्वम् । चित्रमसूता गामो, वफेनी गाम ।

वषक्यिणी ( सं० स्त्री० ) वषक्यणी देखो ।

वषटि ( सं० स्त्री० ) कामयमान, पार्थनाकारी । "परिचिद्धयो वषुः" (शृक् ५।०।५) 'वैष्टयः अस्मानेव कामयमाना ।' ( शायण )

वसंता ( हि० पु० ) हरे रंगकी एक सुन्दर चिड़िया । इसका कंठ और सिर लाल होता है ।

वसंती ( हि० पु० ) १ एक रंग जो हलका पोला होता है, सरसोंके फूलके रंगका, वसंती । ( वि० ) २ वसंती रंगका । वसन्तोत्सवमें इस रंगके कपड़े पहने जाते हैं ।

वसवत ( अ० स्त्री० ) १ विस्तार, फैलाव । २ समाई, अटनेकी जगह । ३ चौड़ाई । ४ सामर्थ्य, शक्ति ।

वसई द्वीप—वसई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत, वसई शहरसे ३२ मीलकी दूरी पर अवस्थित एक द्वीप । अक्षां १६°२४' से १६°२८' उ० तथा देशां ७२°४८' से ६४°५४' पू० पर्यन्त विस्तृत है । इसकी लम्बाई ११ मील, चौड़ाई ५ मील, भूपरिमाण ३५ वर्गमील है । इस छोटे द्वीपके उत्तरमें दन्तपरा खाड़ी, दक्षिणमें वसई प्रणाली, पश्चिममें अरब समुद्र एवं पूर्वमें समुद्रकी पतली खाड़ी भारतवर्षसे इस द्वीपकी पृथक् करती है ।

यह छोटा द्वीप अतिप्राचीन कालसे ही क्या पाश्चात्य, क्या प्राच्य, दोनों ही जगत्वासियोंके निकट परिचित है । किसी किसीका मत है, कि यह द्वीप संस्कृत 'वसति' मुसलमानोंके अमलमें 'वसई' पुर्तूगोनोंके निकट 'वसईम' ( Bascim ) एवं अङ्गरेजोंके निकट 'वैसिन' Bassein नामसे प्रसिद्ध है । हिन्दू पौराणिकोंके मतसे यह पुण्य भूमि परशुरामक्षेत्रान्तर्गत सप्तकोट्टणके मध्य वरलाटके शामिल है । साहाद्रिसोदमें केरल, तुलूष, गोवाध, कोङ्गण, कर्नाट, वरलाट और वसई, इन्हीं सप्त द्वीपोंको परशुरामक्षेत्र अथवा सप्तकोट्टण कहते हैं ।

उगमें वसईद्वीप वरलाटके अन्तर्गत है । इसको आगत छोटी होने पर भी तुंगारि, निर्मल, इस द्वीपके कल्याण श्रोस्थान और शूर्पाक नामक सुप्राचीन तीर्थस्थान रहनेके कारण मध्य ऐतिहासिक तथा प्रतनतस्व विद्वानोंके जाननेके लिये यहां अनेक निदर्शन वर्तमान है ।

तुंगारि प्रभृति पंचक्षेत्र, द्वाक्षिणारव्यके हिन्दुओंके निकट, अतिपुण्य तीर्थ तथा मोक्षधाम गिने जाते हैं । किस

“कन्दर्वाभिरुत्थैः बुद्धमाह्वयमाने  
सुवर्णद्वारवन्दने नि-वशोऽपि नः ॥”

मन्त्रदेवता शरीर सुवर्ण रचित है । ये भास्वरुं वर्धन  
सन्तुष्टान्-आहृष्ट एवं सुवर्णवर्णके हृद्यमं निदग्ध भावसे  
व्या-भारोपित किये हुए हैं । येना मन्त्रदेवको श्राव कर  
मन्त्रमन्त्र द्वा हस्त जप और मन्त्रदेवको महत्त्व-  
पुत्र महत्ता होता है । इससे मन्त्र सिद्ध होता है ।  
इस भाववशसे सामन्त जगन्को (यज्ञोभूत) किया जा  
सकता है ।

‘श्री वामुष्टे जप वामुष्टे मोक्ष यज्ञमाग्य भमुष्टं  
श्राहा’ यह मन्त्र श्राव कर जप कर निरोध-वृत्तके समिप  
द्रव्य द्वा महत्त्व होम करे । निम्नोक्त ध्यानसे देवताको  
पूजा होगी है ।

ध्यान वचन—

“दंष्ट्राशोर्धिवरुद्धा सुवर्णा गान्द्रान्धकारे विपना

महाःशान्तिमिन्द्ररुद्रिन्द्रकता वामेन पाशं विभः ।

श्वाना निद्रहृष्टंजा भयकरो कर्दूरुचमार्गुता

वागुष्टा श्ववर्दिनी श्वविषी श्वेवा तदा कापकेः ॥”

विंशत्युक्त इस ध्यानसे पूजा करनेसे मन्त्र सिद्ध  
होता है । इस मन्त्रका येना प्रभाव है, कि इससे यज्ञो-  
भूत होता है ।

‘श्री नमः कामाय सर्वज्ञप्रियाय सर्वज्ञसमयोगिनाय  
उवन् उवन् प्रथमाय प्रथमाय सर्व-जनस्य हृद्यं गग  
धरो बुद्ध बुद्ध स्वाहा’ यह मन्त्र जपनेसे नर और नारीको  
यज्ञोकरण किया जा सकता है ।

‘श्री नमः भगवति सुवर्णमाह्वयानिनी नमः स्वाहा’ इस  
मन्त्रसे मधुपिष्ट (मीम) द्वारा अभिमन्त्रित व्यक्तिकी एक  
प्रतिहृति बनानी होगी । प्रतिमूर्ति बना कर उसको प्राण-  
प्रतिष्ठा करने होती है । पीछे इस प्रतिहृतिके ऊपर  
पुष्पैः ‘श्री नमः भगवति’ इत्यादि मन्त्र जप करके अन्त-  
र्यान्त द्वारा इस मूर्तिकी तपना होगा । येना करनेसे  
भूमि रविण व्यक्त यज्ञोभूत हो जाता है । ( कर्कशरीरिका )

दृष्टोन्मन्त्र, उम्हरीन आदि मन्त्रसे यज्ञोकरणादिका  
विभूत विवरण निम्ना है । विन्ना हो जानेके प्रयत्ने  
वही यह और नहीं किया गया ।

यज्ञोकरणकार्ये यज्ञान् अन्तुसे वा-सुवर्णकार्यसे

करना होता है । इसके करनेमें सतनी और दृग्गी विधि  
प्रमाण माननी गई है ।

पृथ्या आदि तत्त्वके दोनो कालमें यज्ञोकरणादि कार्य  
करने होते हैं । उपेक्षा, उत्तराषाढा, मन्वराषा, रोहिणी,  
यह मन्त्र नक्षत्र पृथ्योत्तर्य हैं । इनका निरूपण कर यज्ञो-  
करण करना होता है ।

यद् जो यज्ञोकरणकी यज्ञी प्रक्रियाएँ वर्णित हुईं,  
उनके करनेके पहले साधकको मन्त्र-सिद्ध होना होगा ।  
जब तक मन्त्र सिद्ध नहीं होगा, तब तक यज्ञोभूत हो  
ही नहीं सकते । सुतरा साधक पहले मन्त्रकी आराधना  
कर सिद्धिप्राप्त करे । पीछे मारण, उच्चाटन, यज्ञोकरण  
आदि जो आधिनारिक किया करेंगे, उनमें ये तत्त्वज्ञ हो  
सक्यकाम होंगे ।

यज्ञोकार ( सं० पु० ) यज्ञोकरण । यज्ञोकरण देने ।

यज्ञोहन ( सं० ति० ) १ किसो प्रकार यज्ञमें किया हुआ ।

२ माहित, सुगंध । ३ मन्त्रसुगंध, मन्त्र द्वारा यज्ञमें किया  
हुमा ।

यज्ञोक्रिया ( सं० स्त्री० ) यज्ञोकरण, यज्ञमें लायेका काम ।

यज्ञोभू ( सं० ति० ) यज्ञोभूत किया हुआ ।

यज्ञोभूत ( सं० त्रि० ) अयज्ञो यज्ञोभूत इत्यर्थे किया ।

१ यज्ञमें भाषा हुआ, अघोम, ताबे । २ दूतरीको इच्छाके  
अघोम ।

यज्ञीर ( सं० पु० ) यज्ञ-ईरन् । १ मन्त्रविपणनी । २ यज्ञीर,  
नर । ३ अयामार्ग । ( त्रि० ) ४ सामुद्र सत्त्व, मन्वरी  
नमक ।

यज्ञियक ( सं० पु० ) मन्त्रहारभेद ।

यज्ञ्य ( सं० त्रि० ) यज्ञाय यज्ञोकरणाय मापु इति यज्ञ यज्ञ  
( तप मापुः । पा ४।४।८८ ) १ यज्ञ्य, लीङ्ग । ( मन्त्र्य० ) यज्ञ-  
मपोमत्तयं गत इति यज्ञ-यज्ञ्य ( श्रां गतः । पा ४।४।८८ )  
( ति० ) २ साधकनामान, यज्ञमें मानियान्ना, माने होनेवाला ।  
३ विद्वान्को इच्छाके अघोम, दूतरीको आहवा या कर्तृमें  
रहनेवाला । ( पु० ) ४ क्षाम, रसिक । ५ मन्त्रदण ।  
६ अभिमन्त्रका गीतवा पुत्र । ( नरकं दरेयपु० ५३।१४ )

यज्ञ्यक ( सं० ति० ) यज्ञ्य स्वार्थे कन् । १ यज्ञोभूत, यज्ञी ।

यज्ञ्यकर ( सं० ति० ) यज्ञ्य करनेके योग्य ।

यज्ञ्यकर्मन् ( सं० त्रि० ) यज्ञोकार्य, यज्ञमें लायेका काम ।

वश्यता ( सं० स्त्री० ) वशमें. होनेको अवस्था या भाव, अधीनता।

वश्यत्व ( सं० स्त्री० ) वश्यता देवो।

वश्या ( सं० स्त्री० ) वश्य-टाप्। १ वशीभूता नारी। पर्याय—वशगा, वशाएया और वश्यका। २ नीलापराजिता। ३ गोरौचना। ४ लगाम।

वश्यात्मन् ( सं० पु० ) वश्यः आत्मा कर्मधा०। १ वशीभूत आत्मा। ( पु० स्त्री० ) २ वशीकृत चित्तंन्द्रिय, वह जिसको चित्तेन्द्रिय वशानुग छुई है। (चक्र० पृ० ८ ५ अ०) वषट् ( सं० अश्व० ) १ एक शब्द। इसका उच्चारण अग्निमें आहुति देते समय यक्षोंमें होता है। अङ्गन्यास और करन्यासमें शिवा और मध्यमाके साथ इसका व्यवहार होता है। यह प्रयुक्त मन्त्र जो ताम्रिक पुत्रादिमें द्रव्य-विशेष देनेके समय पढ़ा जाता है।

अमरटीकाकार भरत कहते हैं—केवल वषट् ही पर्वो स्वाहा, श्रीपट्, वीपट्, वषट् और स्वधा इन पाँच शब्दोंसे ही देवोद्देशसे आहुति देनी होती है। इस देव-शब्दसे इन्द्रादि देवगण समभन्ता होया। ( शृक् १०११५६ )

वषट्कार ( सं० पु० ) वषट् इत्यस्य कारः करणं यत्न। १ देवताओंके उद्देशसे किया हुआ यज्ञ, होम, होत। २ वेदोक्त तैत्तिरीय देवताओंमेंसे एक। यथा—अष्टयसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार। वषट्कारनिघण्टु ( सं० स्त्री० ) सामभेद।

वषट्कारित् ( सं० स्त्री० ) वषट् मन्त्रयोगसे होम करने-वाला।

वषट्कृत ( सं० स्त्री० ) वषडिति मन्त्रेण कृतं। देवताओंके निमित्त अग्निमें डाला हुआ होम, होम किया हुआ, हुत।

वषट्कृत्य ( सं० स्त्री० ) होम।

वषट्किया ( सं० स्त्री० ) होमकार्य।

वषट्कल ( सं० स्त्री० ) कङ्कोल, फँकोल।

वष्क्य ( सं० पु० ) वष्कते इति वष्क-गतौ बाहुलकात् धयन्। एकहायन वत्स, बकनेो बछड़ा।

वष्क्यणी ( सं० स्त्री० ) वष्क्य एकहायनी वत्सः तेन नीयते इति. नी-किप्, गौरादित्वात्-स्त्रीप्, णत्वम्। ( पूर्णपादात्, संज्ञायामगः। पा. ८।५।३ ) वष्क्यणीति पाठे वष्क्योऽस्त्यस्या इति। 'अत इनि ठनी' इति ईनि, अट् कुष्वाडिति ष्वत्वम्। विरप्रसूतां गामो, बकनेो गाय।

वष्क्यिणी ( सं० स्त्री० ) वष्क्यणी देवो।

वष्टि ( सं० स्त्री० ) कामयमान, पार्यन्ताकारी। "परिचिद्ध-एयो दधुः" ( शृक् १।०६।५ ) 'वैष्टयः अस्मानेव कामयमाना' ( धायण )

वसंता ( १६० पु० ) हरे रंगकी एक सुन्दर चिड़िया। इसका कंठ और सिर लाल होता है।

वसंती ( हि० पु० ) १ एक रंग जो हलका पोला होता है, सरसोंके फूलके रंगका, वसंती। ( वि० ) २ वसंती रंगका। वसन्तोत्सवमें इस रंगके कपड़े पहने जाते हैं।

वसन्त ( अ० स्त्री० ) १ विस्तार, फैलाव। २ समारं, अट्टनेकी जगह। ३ चौड़ाई। ४ सामर्थ्य, शक्ति।

वसई द्वीप—वसई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत, वसई शहरसे ३२ मीलकी दूरी पर अवस्थित एक द्वीप। अक्षा० १६°२४' से १६°२८' उ० तथा देशा० ७२°४८' से ६४°५४' पू० पर्यन्त विस्तृत है। इसकी लम्बाई ११ मील, चौड़ाई ५ मील, भूपरिमाण ३५ वर्गमील है। इस छोटे द्वीपके उत्तरमें दन्तवरा खाड़ी, दक्षिणमें वसई प्रणाली, पश्चिममें अरब समुद्र एवं पूर्वमें समुद्रकी पतली खाड़ी भारतवर्षसे इस द्वीपकी पृथक् करती है।

यह छोटा द्वीप अतिप्राचीन कालसे ही क्या पाश्चात्य, क्या प्राच्य, दोनों ही जगत्वासियोंके निकट परिचित है। किसी किसीका मत है, कि यह द्वीप संस्कृत 'वसति' मुसलमानों अमलमें 'वसई' पुर्तुगालीके निकट 'वसईम' ( Baccim ) एवं अङ्गरेजोंके निकट 'वैसिन' Bassein नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दू पौराणिकोंके मतसे यह पुण्य भूमि परशुरामक्षेत्रागत सप्तकोङ्कणके मध्य वरलाटके शामिल है। सह्याद्रिखंडमें केरल, तुलूय, गोराष्ट्र, कोङ्कण, कर्नाट, वरलाट और वरवैर, इन्हीं सप्त द्वीपोंकी परशुरामक्षेत्र अथवा सप्तकोङ्कण कहते हैं।

उनमें वसईद्वीप वरलाटके अन्तर्गत है। इसको आमत छोटी होने पर भी तुंगारि, निर्मल, इस द्वीपके कल्याण श्रोस्थान और शूर्पाक नामक सुप्राचीन तीर्थ-स्थान इहनेके कारण मध्य ऐतिहासिक तथा प्रत्नतत्त्व विदोंके जाननेके लिये यहां अनेक निदर्शन वर्तमान है। तुंगारि प्रभृति पंचक्षेत्र, दक्षिणात्यके हिन्दुओंके निकट अतिपुण्य तीर्थ तथा मोक्षधाम गिने आते हैं। किस

प्रकार इन सब शीर्षों को उद्वेगित हूँ, इनका संश्लिप्त परिष्कृत पदपुस्तक तथा अक्षरसुगममें दिया गया है।

पद्मपुराणोप तु'गादि-माहात्म्यमें लिखा है—असुर लोच वल्गाटमें प्राज्ञानोंके रूप बहूत अटवागार करते थे। प्राज्ञान लोग परशुराम की अस्त्रमें मथे। प्राज्ञानोंकी शक्ति लिये परशुराम वल्गाट भाये। असुरराज उनके आक्रमणमें विह्वल हो उठे। उन लोगोंमें समुद्रमें छिप कर भयभीत भागमरणा को। असुरवृत्ति विमल-सु'ग नामक एक पर्यंत समुद्रमें स्थापन कर उसी पर निवास करने लगा। यहाँ यह महादेवकी तपस्यामें निरत हुआ। जिनमें समुद्र ही कर उने अमर किया। जिनके प्रसादसे यह स्थान शोकस्थान हो गया। विमलने यहाँ दिव्यलिंग स्थापित किया, उसका नाम सु'गेश्वर पड़ा।

तु'गादि पर्यंतगत 'तु'गा' पर्यंत एवं यामुसेवनके लिये एक श्रेष्ठ तथा प्रसिद्ध स्थान है। इनके पास ही कर शैलेय स्मारक गाँ है।

पद्मपुराणोप निर्वाण माहात्म्यमें लिखा है—असुर-वृत्ति विमलने सु'ग पर्यंतमें प्राविषोंके मुक्तसे परशुराम-का मुष्णानुकीर्षण धरवण किया। अगने जलकी प्रशंसा तुल कर उने बहुत शोक हुआ। उमने प्राविषोंके हवन-बुद्ध पर एक बहाना-या परपर स्थावर रत्न दिया। प्राविषों ने महादेवके निकट विमल पर अधिपोग मन्त्रावा। निषजीमें भागने प्रतिभृति मृत कर विमलकी दमन करनेके लिये परशुरामकी भेजा। परशुरामके साथ विमल-का भीषण युद्ध हुआ। विमल जिनके परशुरामसे अजेय था। विमलका मन्त्रक परशुराम द्वारा बार बार काटे जाने पर भी उसके चरणमें गूट जाता था। अन्तमें जिनके वरा-मर्गमें परशुरामने परशु द्वारा विमलको पराजित किया। विमल स्वामिमें पतित हो कर परशुरामकी स्तुति करने लगा। विमलके मुखमें भागने स्तुति तुल कर परशुरामकी दया आई। उन्होंने उनके पतित होनेके स्थान पर उनके स्वस्वामि 'विमलेश्वर' नामक एक निषर्षिकको स्थापना की। परशुरामने उनके विमल नामके बच्चे उसका नाम निर्मल रखा। उसी दिनसे यह क्षेत्र निर्मल नामसे प्रसिद्ध हुआ।

निर्मल माहात्म्यके अष्टम अध्यायमें लिखा है—निर्मल शीरेने वैतरणी तीर्थमें श्री कालिक रूपराजाकी एका-

दशोंको स्तनन करते हैं, उनका साथ पाप दूर हो जाता है।

पुस्तकोग्रंथोंके द्वारा विमलेश्वरके सुभाषेन मन्दिर तथा लिंग विष्कृत हो गये हैं, अब इनका निरुद्धान भी नहीं होना पड़ता। इसके पूर्व पदवीगत विमलेश्वर कलार-वासिवाका एक प्रधान तीर्थस्थानके नामसे प्रसिद्ध था। ११८३ अ.क. ( १२११ ई० )में उरुलोक चालुक्यवंशीय श्रीरामदेवको तादनासन पाठ करनेसे ज्ञान प्राप्त है, कि उस समय भी विमलतीर्थ अति प्रसिद्ध था और यहाँ लिंगकी पूजा होती थी। चालुक्यवंशीय विमलेश्वर लिंगके उद्देशमें जलशेखर नामक एक ग्राम नाम किया था। निर्मल माहात्म्यमें यहाँके बहुतसे छोटे छोटे तीर्थ और कुण्डोंका उल्लेख है। पुस्तकोग्रंथोंके नायकाकारमें इन सब तीर्थोंका उल्लेख हो गया था। उसके बाद मराठोंने इस स्थान पर अधिकार करके विमलेश्वर मन्दिर-का पुनः संस्कार किया एवं लिंगके स्थानमें शालात्रेय-को चरणपादुका स्थापित की। उस समय कितने ही तीर्थोंका पुनरुद्धार हुआ। यहाँके अधिवासियोंके लिये हृदय चमकें द्वारा शुद्ध शंकराचार्ये स्थापितके मन्त्रावधानमें देवसेवाका लक्ष्य चलता था। शंकरस्वामी यहाँ महोत्सव महोत्सव माना करते थे। इस मन्दिरके पास ही यहाँक प्रथम शंकराचार्यकी समाधि है। यहाँ प्राज्ञानोंके लिये भीतनालय है। कालिक माहात्म्यके रूपराजाकी एकादशो-की यहाँ एक यात्रा या मेला लगता है। दूर दूर देशोंके यात्रा लोग इस मेलेमें सम्मिलित होते हैं।

हठिदाश ।

यहाँका प्राचीन इतिहास अक्षर्य है। अनेक समुद्रके समयके परिपत्र प्रपूर्त प्रोक् ऐतिहासिककण पवित्रम गारलका ओ संश्लिप्त परिपत्र दे गये हैं, इनके पदुमें मान्य होता है, कि उस समय यह क्षेत्र सुराष्ट्र या मार-के अन्तर्गुंथ था। परिवर्तने लिखा है—प्रोचमन अर्थां अमलके बहुत पहलेंसे ही चन्दाणमें वाणिज्य करनेके लिये आते थे, ऐलना ही नहीं, किना किमो ऐतिहासिकों ने लिखा है, कि यीरोंने जालारोटी क्षेत्रमें भा इपनिषेन करनेको चेष्टा की थी। उनका उद्देश्य था कि अस्त्राक्षर पर अधिकार करना एवं उन्हींमें मोक्षा था, कि अन्तमें ही

स पर अधिकार करनेमें पूरी सुविधा होगी। रोमकों-  
ने इजिप्ट पर अधिकार कर लेनेके बाद भारतीय वाणिज्य  
पर अपना एकमात्र अधिकार जमा लिया था। इस  
समय अरब समुद्रमें प्रवेश करनेका अधिकार विदेशियों-  
का बिल्कुल हो नहीं रहा। प्रोक पैतिहासिकने लिखा है,  
कि उस समय 'मारगनस' (Saraganos) सारंग नामक-  
एक राजा कल्याण, वसई तथा इम्बई प्रभृति स्थानोंके  
अधिपति थे। प्रोकोके साथ उनको मित्रता थी, किन्तु  
'सन्दनेस्' (Sandanes) या चन्दनेशनने उनके राज्य पर  
अधिकार जमा कर विदेशियोंके प्रति वाणिज्य निषेधाशा-  
की घोषणा की, यहाँ तक कि कितने ही विदेशियोंको  
कैद कर कड़े पहरेके साथ भरोच भेज दिया। इस प्रकार  
प्रोकोके निर्वासित होने पर भी रोमकनि भारतसे  
वाणिज्य-संसार त्याग नहीं किया। जट्टिनियसके राजत्व-  
कालमें भी कल्याणका वाणिज्यप्रभाव संसार भरमें  
प्रसिद्ध था। मित्रका प्रसिद्ध वणिक् 'कसमस' (Kosmos  
Indikopleustes) प्रायः ५४७ ई०में कल्याण आये। वे यहाँ  
के बहुसंख्यक खूणानोंको देख कर बहुत चिन्तित हुए।  
वे सब खूणान लोग पारसके नेटोरियन विशांपके धर्म-  
शासनाधीन थे। इसके बाद खूण्टीय ७वीं शताब्दीमें  
चीन परित्राजक यूपनचुयंग आ कर यहाँकी वाणिज्य-  
समृद्धि ओषस्वनी भाषामें वर्णन कर गये हैं।

इस द्वीपके अन्तर्गत श्रीस्थान या ठाना बहुत पहलेसे  
ही राजधानीमें गिना जाता था। खूण्टीय ६वीं शताब्दीके  
शेषभागमें यहाँ शिलाहार-राजवंशका अभ्युदय हुआ।  
उनके समयमें श्रीस्थान लक्ष्मी-सरस्वतीका प्रियस्थान  
था। यहाँ ही अशेष-शास्त्रविदु जीमूतवाहन राज्य  
करते थे।

खूण्टीय १३वीं शताब्दी पर्यन्त धरलाट शिलाहारवंश-  
के अधिकारमें था, उसके बाद यह यादवरराजवंशके अधि-  
कारमें चला गया। वसईसे ११६४ तथा १२१२ ई०में  
उत्कर्णी यादवरराजवंशका शासनपत्र पाया गया है। यादवों-  
के मुसलमानोंको अधीनता स्वीकार करने पर कोङ्कणका  
यह अंश क्षण्ड क्षण्डमें विभक्त हो कर महिमके भीमराज,  
देवगिरिके रामदेव एवं नायक, चंगोलि तथा भंडारी  
उपाधिधारी मामान्तोंके शासनाधीन हो गया था।

१२६४ ई०में दिल्लीभर अलाउद्दीनके निकट रामदेव-  
के पराजित होने पर थोड़े ही दिनोंके मध्य समस्त  
दाक्षिणात्य मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया था  
सही, किन्तु उस समय भी वसईद्वीपपति अपनी  
स्वाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। मिनिस्के प्रसिद्ध  
पर्याटक मार्कोपोलो १२६५ ई०में श्रीस्थान आये। वे यहाँ-  
की समृद्धि देख कर चमत्कृत हो उठे थे। उन्होंने लिखा  
है, कि यह स्थान प्रतीच्यके एक सुविस्तृत जनपदकी  
राजधानी था। यहाँके राजा स्वाधीन थे। यहाँके  
अधिवासी पौत्तलिक कहलाते थे। वे लोग देशोभाषा-  
में बातें करते थे। उनके समयमें यहाँ उत्कृष्ट चर्म  
तथा कपासके साज, मसलिन एवं सोना चाँदीका  
व्यापार होता था। श्रीस्थानमें नदीसे जलदस्सुगण बाहर  
हो कर वधेष्ट अत्याचार करते थे।

१३११ ई०में मुसलमान विजेतुगणकी तीव्रदृष्टि इस  
अञ्चलपर पड़ी। उनके उपद्रव तथा अत्याचारसे बहुत  
दिनों तक यहाँके अधिवासीगण विपत्ति-सागरमें गोता  
लगाते रहे। उस समय केवल यहाँके वाशिन्धे ही नहीं  
वरन् कितने ही विदेशी धर्मप्रचारकगण भी अपने  
जीवनसे हाथ धो बैठे। १३३० ई०में प्रिउली-निवासी  
संन्यासी ओदेरिक (Friar Oderic of Priuli) वर्णन  
कर गये हैं, कि १३२० ई०में फ्रान्सिस्कान् खूण्टीय सम्प्र-  
दायमुक्त जर्डनस् (Jordanus) नामक एक संन्यासीने  
अपने साथी चार यतियोंकी समाधिस्थ करनेके बाद  
मुसलमानोंके हाथसे जीवन विसर्जन किया था।  
ओदेरिक अपनी स्वदेशयात्राके समय उस सब खूण्टान  
साधुओंकी दृष्टियाँ जहाजमें भर कर अपने साथ ले गये।  
वे कुछ दिनोंके बाद फिर भारतमें आये। वे बहुत-से सह-  
चरोंके साथ वसईद्वीपमें ही कालयापन करने लगे।  
उस समय मुसलमान काजीगण विदेशियोंके ऊपर किस  
तरह अत्याचार करते थे, 'ओदेरिक' इसे लिपिबद्ध कर  
गये हैं। विशांप जेरोनिमो ओजेरियो (Jeronimo Ozrio)  
ने लिखा है, कि उन सब फ्रान्सिस्कान साधुओंने करञ्ज  
द्वीपमें एक सुवृहत् खूण्टमन्दिरकी स्थापना की थी।  
लेवनादी पायस (Leonardo Paes) नामक खूण्टान  
लेखकके वर्णनमें जाना जाता है, कि करञ्जद्वीपमें नीले

वाराणसी वनां वृक्षादीं जैतौं श्री एक सुन्दर सुखि श्री ।  
 पुर्णगोत्र वने "Purna Senha de Benar" कहते थे ।  
 जैते पुर्णगोत्रोंके अधिष्ठातावर्गमें वरप्रदोंय एक पुर्ण-  
 गोत्र नाममें ही विख्यात हुआ ।

१५०१ ई०में पुर्णगोत्र अतिक्रमण वनां उपवनमें  
 दिव्यां पड़े । इसके १७ वर्षोंके बाद वहाँ पुर्णगोत्रोंके  
 आचार्य श्री जैतौं वनां । वृक्षादि बर्षोत्साह विषयकी  
 ही ज्ञाना जाता है, कि उस समय वनां जहर सुखरागके  
 सुमन्मान रात्राके अधिष्ठाताएक एक ध्यापनकेन्द्र था ।  
 दूर दूरके देशोंमें ज्ञाना था वर वहाँ उदरता था । मालव-  
 के उरुजने मारियन गया नामा प्रकाशके मरम ममानि  
 वहाँ आये थे ।

१५२० ई०में पुर्णगोत्रोंके वनां प्रोप,भा कर धोरुषान  
 तथा कल्याण पर आक्रमण किया एवं उन पर अधिष्ठा  
 जमा कर कर वसूळ किया । इससे पुर्णगोत्रों, वहादुर-  
 जादके साथ उनको लड़ाई हुई । वहादुर जाद कनिपव  
 भर्तुविषाण' श्रेय कर मन्त्रि करकेको पाषण हुए । इस  
 मन्त्रिमें वहादुरजादमें वरधर, महोम, प्रोऊ, हमन, येउर  
 तथा वनां प्राय पुर्णगोत्रोंके हस्तगत हुए एवं वरध-समुद्र  
 में गान्धर्वकर वसूळ करनेका अधिष्ठाता प्राप्त हुआ ।

१५२६ ई०में मून् मारि बुद्धाणे वनां प्रोपके, इति-  
 पांजमें एक दुर्ग निमर्माण कर जने जाया गान्धर्व कीरा-  
 को दुर्गावस्था बनाया। उपाय ही बाणकी मृत्युके बाद  
 एक दुर्गावस्था ही १५४८ ई०में पुर्णगोत्र अधिष्ठाताके  
 मन्त्रि-विपन्न हुए ।

पुर्णगोत्रोंके लिये हुए इतिहासमें ज्ञाना जाता है, कि  
 वनां दुर्ग सुदृढ़ परवरकी दीवारोंमें घिरा था । यह  
 जिला ११ पुर्णगोत्र सुगोत्रित था एवं उनमें १० कमान  
 संकोत्रित थे । इनके अन्तमें इस प्रोपमें और भी जिनके  
 छोटे छोटे जिनके थे उनमें १२७ कमान रहने थे । यहांके  
 वनांरादको वनां, वनांके लिये २१ कमानरादों समुद्र-  
 पोत हमारा लफार रहने थे, एक एक पोतमें १६ से १८  
 तक कमान देने थे ।

सुलेमान अधिष्ठातामें भी वनां प्रोप बहुत उन्नति पर  
 था । यहां वने वने पने अधिष्ठाता जिनका था । इस  
 समय यहां जिनके विदेशों परवरद तथा वैषण्व, उपनिषद  
 हुए थे, इनको जिनके ही अधिष्ठाता ज्ञाना ज्ञाना है,

कि वनांको मन्त्रों पयेष्ट कीरो भी, विपलीके मन्त्र जैने  
 जैने मन्त्र देने थे । मन्त्रों वनां और मन्त्र, तान मन्त्र  
 १५ प्रमुक्ति उद्यान था, मनांके वनां वार्लोंमें ही भी  
 जन्मवृत्त थे । सुखान, सुमन्मान तथा हिन्दू इन हीमें  
 ज्ञानिगीके प्रकाशे उद्योगमें वहांका हृदयकारे मन्त्र  
 होता था । यहां गृह-निर्माणोंपयोगों उदृष्ट कामुके पूष  
 तथा दानेदार परम उदृष्ट होते हैं । कल्याण तथा  
 गोभाके सुदृष्ट गिर्जापर वनां धामादादि वहांके पवरीमें  
 ही बने हुए हैं । वनांमान समयमें जिन तरह लोग वनांमें  
 मरने हैं, मृच्छीय १७ वीं ज्ञानादीके वैषण्वामें इगी मन्त्र-  
 का लेश वनां प्रोपमें दिव्यां दिया था, वनांमें वृद्ध ही  
 दिव्योंके मन्त्र वनां-जहर एक समय प्रायः जिन सुखदा  
 गया था । उनके बाद फिर इस जहरमें लोगोंके ममान  
 होने पर भी इसका उत्तर भाग ( समस्त मन्त्रका प्रायः  
 तिहाई भंज ) बहुत समय तक जगन्मय था ।

पुर्णगोत्रोंको अधिष्ठातावर्गके साथ साथ सुखान  
 वनांकी भी पयेष्ट उन्नति हुई । ये अपने धार्मावस्था  
 स्थितियोंके अनिरिक सभी ज्ञानियोंके लोकोकी वृक्षाको  
 वृष्टिमें देवने थे । सुखानोंके मन्त्र भी जो लोग धार्-  
 पात्म नहीं करते थे, उन्में ये लोग कारायद कर बहुत  
 कष्ट देने थे । वनां कारायामें इस प्रकार बहुतमें  
 सुखान तथा अन्य धार्मावस्थाको लोग कष्ट लोगने थे ।  
 प्रमग्ने वनांके ज्ञानमन्त्रानि निपन्न बना दिया, कि सुखान-  
 के निषाय और किमो ज्ञानिके लोग इस जहरमें काम  
 नहीं कर सकते । समस्तान हिन्दू सुमन्मानोंकी भी इस  
 जहरमें प्रवेश करनेका अधिष्ठाता नहीं रहा । यहां मन्त्र कि  
 सुखानके अनिरिक और किमोके साथ पुर्णगोत्रकी  
 ज्ञानो तथा ज्ञानका कल्याण वनां प्राय धार्मावस्था  
 या किमो प्रकार वैशिवक भगवा राजनीतिक कार्य हीं  
 नहीं कर सकते थे । सुखान लोग सुविषा वा वर कना  
 हिन्दू वनां सुमन्मान, वनांके वनांपूर्वक सुखान बन  
 देने थे । जो सुखानवर्गकी आचार-विधि पाठन नहीं  
 करता था, उसे वनां देने थे । वनांके अधिष्ठातावर्गमें इस  
 प्रकार गोत्रित ही कर विदेशोंके मन्त्र वनांकी व  
 अधिष्ठाता बनाया । विदेशोंमें ही वनांकी पुर्णगोत्रोंकी  
 वनां देने का मन्त्र वनांकी ही दिया ।

मन्त्रों वनांकी वनां ज्ञानों वनांके वनां वनां मन्त्र

एक छोटे किले पर अधिकार कर लिया। इस समय बरड़की रक्षाके लिये शालसेटीके शासनकर्ता लुई-डी-वटेल्लो, वसई दुर्गकी रक्षाके लिये कप्तान पेरिरा एवं बन्दोराके सेनावासकी रक्षाके लिये कप्तान बेराज नियुक्त हुए। इधर ओसलेने गोवा पर आक्रमण किया। महाराष्ट्रसेनापति चिमनाजी अण्णा बहुतसे सैन्य-सिपाहियोंके साथ दुर्ग भेद कर पुर्तगोजोंके सम्मुख युद्धके लिये अग्रसर हुए। दूसरी ओर मराठी सेनाने शालसेटीको घेर लिया एवं बरसोआ तथा घरावी द्वीप दखल कर वसईके पूर्वांशकी खाडोका रास्ता रोक रखा। किलेके चारों ओरसे घिर जानेके कारण पुर्तगोजोंको बाहरी सहायताकी भी आशा न रही। १७३६ ई०की १७वीं फरवरीको मराठी सेनाने वसई दुर्गको घेर लिया। लगभग तीन महीने तक किलेके घिरे रहनेके बाद पुर्तगोज लोग आत्म-समर्पण करनेको बाध्य हुए। इस पराजयके साथ ही पुर्तगोजोंके गौरव-सूर्यका अस्त हुआ। थोड़े ही दिनोंके अन्दर पुर्तगोजोंने अपने धनके साथ चिरकालके लिये इस नगरीका परित्याग किया। वसई मराठोंके हस्तगत होने पर भी यहांकी राजधानीका सौन्दर्य नष्ट नहीं हुआ। कुछ ही दिनोंके अन्दर एक 'सरसूवा' नियुक्त हुए एवं बाणकोट नदीसे ले कर दमन पर्यन्त सारे देश उनके शासनाधीन हुए। इस समय वसई नगरमें सम्भ्रान्त हिन्दुओंका वास नहीं था, यहांके अधिकारी अधिवासी पुर्तगोजोंके अत्याचारके भयसे वृत्तान्त हो गये थे। पेशवा माधवरावने उन्हें फिर हिन्दू समाजमें लानेके लिये कितने ही ब्राह्मण नियुक्त किये। उन ब्राह्मणोंके भरणपोषणके लिये प्रजा पर एक कर लगाया। पेशवाको इस सहृदयतासे बहुतसे जातिच्युत हिन्दू प्रायश्चित्त कर फिर हिन्दू समाजमें आ गये। क्रम क्रमसे महाराष्ट्र तथा गुजरातसे बहुतों सम्भ्रान्त लोग यहां आ कर बस गये। उनमें प्रभुकायस्थ लोग ही प्रधान थे। इस समय भी वसई शहरमें प्रभुकायस्थ लोग ही धन जनमें श्रेष्ठ हैं। वर्तमान वसई शहर राजाीरायके नामानुसार राजोपुरके नामसे विख्यात है। इस वसई जिलेके अन्तर्गत १६१ मीजे हैं। इन सब प्रामांके मध्य खानिवड़ेमें

एक छोटा-सा बन्दर है, दक्षिण-पूर्व माणिकपुर महलमें एक रेलवे स्टेशन है, उत्तरमें अघनासी वा अगासी महाल, सधवनमें प्रसिद्ध दुर्ग, पर्वतमय तुंगारिमें प्रसिद्ध तुंगारेश्वर मंदिर, निर्मलमें प्रसिद्ध विमलेश्वरतीर्थ, सुपागमें प्राचीन तीर्थ तथा प्रसिद्ध बन्दर है। राजोपुरके निकट-वर्ती पापरग्राममें बहुतसे चित्पावन, कराट और देशस्थ ब्राह्मण एवं पलसा, सोनार प्रभृति दूसरे दूसरे निम्न श्रेणीके लोगोंका वास है। वार्षिक राजस्व प्रायः १८०३० रुपये हैं।

१७८० ई०में अंग्रेज सेनापति गडाईने १२ दिन घेरा डाल कर वसई पर अधिकार जमाया। इसके बाद १७८२ ई०में सलवाईको सन्धिसे अनुसार इष्ट इच्छिया कम्पनीने मराठोंका यह स्थान छोड़ दिया। अन्तमें १८१८ ई०में पेशवाको पदच्युत करके उनके दूसरे दूसरे अधिकारके साथ साथ वसई द्वीपको भी बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भूक्त किया।

१८४० ई०में वसईके पार्श्ववर्ती कल्याण-खाडोंमें बांध तैयार करनेके लिये कोर्ट आव डारैषटरने हुकम जारी किया। इस बांधके होनेसे अब समुद्रका पानी ऊपर नहीं आता, इससे बहुतसे जमीनका उद्धार हुआ है। १८७२ ई०में रेलवे कम्पनीने लोहेका एक सट्टड़ पुल तैयार कर वसईको बम्बईके साथ संयोजित कर दिया है। महाराष्ट्रके अधिकारमें आने पर जिस तरह यहांके बहुतसे प्राचीन हिन्दूतीर्थोंका उद्धार हुआ, उसी तरह पुर्तगोजोंको अनेकों कीर्तियां नष्ट हो गईं, उनमें १० प्राचीन गिर्जोंका पुनरुद्धार अस्तान पादरियों द्वारा हुआ। इन सब गिर्जोंके कारुकार्य तथा शिल्पनैपुण्य देखने योग्य है।

डिपो ट्रो कोरोने लिखा है, कि पुर्तगोजोंने वसई पर अधिकार करके वहांके मन्दिर (पलोफरटा)का विध्वंस किया। उन लोगोंने मन्दिरके सिंहद्वार पर एक पत्थर-लिपि खोदी देखी। वहांसे ला कर पुर्तगोज गवर्नरने हिन्दू-मुसलमान द्वारा उसे पढ़ानेकी चेष्टा की। किन्तु जब कोई पढ़ न सका, तब उन्होंने उसे पुर्तगालके राजाके पास भेज दिया। पुर्तगोजपति डो जोआंवने उसे पढ़ानेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु चेष्टा व्यर्थ हुई। अन्तमें १७६५





कामिनी प्रमादनी एवं ऊया मधुरहासिनी होनी हैं। जल निर्मल एवं पथ सुगम हो जाते हैं। स्थलमें स्थल-पथ तथा जलमें जल-पथ प्रस्फुटित होते हैं। जलियां चटक जाती हैं। वनस्थली अलि समुदायकी मधुर कंकारसे गूँज उठती है। मलय-समीर मन्द मन्द चालसे प्रवाहित होती है। स्निग्ध-मधुर तरलताकुल नाना जातीय प्रचुरतर कुसुमभारसे भूम जाती हैं। कुसुमोंके सीरमसे वन, उपवन, उद्यान प्रभृति आमोदित हो उठते हैं। लताओंके नये नये पल्लव, फल, फूल, एवं कलियोंसे वासन्ती वनभूमि नवीन साज, नवीन वैषम्य सुसज्जित हो कर सदैव हास्यमयी बनी रहती है। चन्द्रदेवकी तुण्डस्निग्ध ज्योत्सना, पक्षियोंके कलकूजन, काकिलकी 'कुहू-कुहू' मलय समोरका मृदु-मन्द हिलोल, सुमनोंका सीरम, अशोककी जोकहर सुपूमा, सभी इस समय हृदयमें अपार आनन्द पहुंचाती हैं। इसीलिये भारतके प्राचीन कवियोंने अपनी अपनी धर्षनामें वसन्तऋतुकी सर्वालंकार-सुसज्जिता एवं रूप वीचन सम्पन्ना प्रतुराराणे कहा है।

यह भारतवर्ष ही वसन्तऋतुकी माधुरी मदिमा पूर्ण लीलाभूमि है। इसीलिये मदनोत्सव-वा वसन्तोत्सवादि वसन्तऋतुके अनुरूप अनुष्ठानादि इस भारतवर्षमें ही सर्वप्रथम प्रचलित हुई, किन्तु धीरे धीरे कालके उलट फेरसे उन उत्सव अनुष्ठानादिके लुप्तप्रय हो जाने पर भी इस सर्वप्राचीन सम्प्रदेशके कई स्थानोंमें वसन्तोत्सव मनाया जाता है। मदनमहोत्सव देखो।

वसन्तकालके अधिष्ठातृ देवकी उत्पत्ति सम्बन्धमें पौराणिक उपाख्यान इस तरह है—

एक समय विधाताके आह्वानसे मन्मथ उनके समीप आकर बोला—विमो ! मैं आपके आदेशानुसार लिपुह्वर हरके मोहविधानमें समर्थ हूँ, किन्तु कामिनी ही मेरा महाभय है। यदि महात्मा कामिनी आप सृष्टि करें। जिस समय मैं शम्भुको सम्मोहित करूँगा, उस समय यह कामिनी महादेवको बीच बीचमें ओंकार भी मुग्ध कर रखेगी सुतरां इस कठोर तपस्वी त्रिविको सम्मोहन करनेके लिये कामिनीकी बड़ी आवश्यकता है। किन्तु इस समय जितनी कामिनियाँ हैं, उनमें हरके मनकी मोहनेवाली एक

भी कामिनीमें नहीं देखता। अतएव हे विधाता ! यह कर्त्तव्य सम्पादनके लिये आपको ही कोई उपाय विधान करना होगा।

कन्वर्षको वारें सुन कर किस तरह शिवको सम्मोहित किया जायगा, इसकी चिन्तासे विधाता व्याकुल हुए। चिन्ता करते करते उनका एक निश्वास निर्गत हुआ, उसी निश्वाससे कुसुमसमूह-भूषित वसन्तकी उत्पत्ति हुई। सुता-ङ्कुर, सुतकलिका, श्रमरसमुदाय एवं किंशुक प्रभृति वसन्तके हाथमें विराजमान थे। उस समय वसन्त एक प्रफुल्ल पादपवत् शोभित हुआ। उसको आकृति रक्त कोक-नदिम, दोनों नयन प्रफुल्ल पंकजवत् सुशोभित, मुखमंडल सन्ध्योदित पूर्ण शशाङ्ककी तरह समुज्ज्वल, नासिका सुन्दर, कर्णविचर शंख सद्रश, केशकलाप कुञ्चित एवं श्यामवर्ण, कर्ण कुण्डल अस्तोन्मुख अशुमालोकी तरह समुज्ज्वल एवं वक्षस्थल विस्तोर्ण था। इनके अतिरिक्त उसकी गति मत्त मातंगवत्, दोनों भ्रुजबंध पौन स्थूल तथा आयत, करद्वय कठिनस्पर्श, कटि एवं जंघा सुवृत्त, श्रोत्रा कमवृत्त, स्कन्ध उन्नत, अङ्गुदेश गूढ एवं हृदय-देश-सर्व सुलक्षणसे परिपूर्ण था।

इस तरह सर्व सुलक्षणयुक्त कुकुमाराकृति वसन्त के उद्भव होते ही शीतल मन्द सुगन्ध समीर प्रवाहित होने लगा, द्रुमराजि कुसुमित हो उठी, कलकंड कोकिल-समूह पंचम सुरसे गाने लगे, सरोवरोंका जल स्वच्छ मोतीके समान झलक उठा एवं उस स्वच्छ सलिलमें करोड़ों शनदल (पद्म) प्रस्फुटित हुए।

(कामिकापु० ४ म०)

हरसम्मोहनके समय वसन्तने किस तरह कन्वर्षकी सहायता की थी, इसके सम्बन्धमें उक्त पुराणोंके सातवें अध्यायमें लिखा है कि मदन जिस समय हरका धर्षहरण करनेको उद्यत हुआ, उस समय वसन्तने हरके पकान्त आश्रमके चारों ओर किंशुक, केतरु, वक्रपुन्नाग, नागकेशर, माधवी, मल्लिका, पर्णसार तथा कुरवक प्रभृति पुष्पोंकी प्रस्फुटित कर दिया। वसन्तकी सहायतासे स्वच्छ सरोवरोंमें कमलवृन्द मुस्कुरा पड़े, शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित होने लगे, उससे शंकरका समूचा आश्रम सुगन्धमय हो उठा।



शयन पर्यन्त जितना समय है, उतने-समयके अन्दर ही संगीततत्त्वविदों ने वसन्तराग गानेका समय निर्धारण किया है।

संगीतदर्पणके मतानुसार वसन्तानुगामिनी रागिणीके साथ वसन्तराग वसन्तऋतुमें ही गाना चाहिये।

दिन रातके मध्य वसन्तराग गान करनेका समय प्रभातसे आरम्भ होता है।

वसन्त रागके आकार, ताल, लय, सुर-क्रम तथा समयादिके सम्बन्धमें बंगाली-संगीत-कवि राघामोहनसेन दास छत संगीततरंग ग्रन्थमें संक्षेपसे वर्णन किया गया है।

वसन्त (सं० पु०) १ पुराण तथा नाटकीक प्रसिद्ध-ऋतु-पति देवताभेद। ये कामदेव तथा मदनके चिर सहायक हैं। वसन्तदेवके आगमनसे पृथ्वी सचमुच ही माधुरी-मालासे परिप्लावित हो कर हर्षोत्फुल्ल हो उठती है।

नवीन श्यामल शस्यक्षेत्रनिचय चूतमुकुलकलिकाकीर्ण नय किशलय समूह कोमलपत्रवल्लियोंके मध्य नवीन रागसे रञ्जित हो कर-माँ उन्हींकी-व्यासे अपूर्व श्री धारणा कर रहे हैं। उसी वसन्तऋतुकी प्रेरणासे धरयासी वसन्तकालकी महिमा अनुभव करते हैं।

२ रोगभेद (Small pox) [-मैरिका देला।] ३ एक तालका नाम। ४ फूलोंका गुच्छा।

वसन्तक (सं० पु०) वसन्त संज्ञायां कन्। १. पृथु-शिश्य, श्योनाक, सोनापादो। २. कथासरित्सागर-वर्णित उम-प्यानके नमसुहृदके पुत्र।

वसन्तकाल (सं० पु०) वसन्तः कालः कर्मधा०। वसन्त ऋतु, वसन्तका-समय।

वसन्तकुसुम (सं० पु०) वसन्ते कुसुमं यस्य। वृक्षविशेष। वसन्तकुसुमाकर (सं० पु०) वृक्षविशेष।

वसन्तकुसुमाकर (सं० पु०) एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—मूंग, रससिन्दूर, मुक्का, अन्न प्रत्येक ४ भाग, लोहा, सोसा, रांगा प्रत्येक ३ भाग इन सबोंको एक साथ अड़ू स, हल्दी, ईख, पत्र, चन्दन और कदलीमूलके रसमें, दूध तथा मृगनामिके काढ़े में यथा क्रमसे सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनानी होती है। दोपानुसार अनुपान स्थिर करना होता है।

इसका सेवन करनेसे विविध रोगोंकी शान्ति होती है। वसन्तकुसुमाकररस (सं० पु०) १ कासाधिकारमें एक प्रकारकी औषध। प्रस्तुत प्रणाली—सोना २ भाग, चांदी २ भाग (चांदीके बदले कोई कोई कर्पूर व्यवहार करने हैं), रांगा, सोसा, लोहा प्रत्येक ३ भाग, अन्न, मूंग, मुक्का प्रत्येक ४ भाग, इन सबोंको एक साथ मल कर यथाक्रमसे गायका दूध, ईशु रस, अड़ू सकी छालका रस, लाक्षाका काढ़ा, पधरचुरका काढ़ा, कदलीमूलका रस, मोवाका रस, पत्रका रस, मालती फूलका रस और मृगनामि इन सब द्रव्योंसे भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनाये। अनुपान घी, चीनी और मधु है। यह मेहरोगकी सबसे फायदेमन्द औषध है। इससे बहुत रोग दूर होते हैं। चीनी और चन्दनके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त आदि अनेक पीड़ा दूर होती है।

२ सोमरोगाधिकारमें एक प्रकारकी दवा। इसके बनानेकी तरकीब—चैक्रान्त (चुन्नो) १ भाग, सोना, अन्न, मुक्का, मूंग प्रत्येक २ भाग, रांगा ३ भाग, रससिन्दूर ४ भाग इन्हीं नीबूके रसमें, गायके दूधमें, खसखसकी जड़के काढ़े में, अड़ू सकी छाल और ईशु रसमें सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली तैयार करे। इसका अनुपान मधु है। इससे सोमरोग, यष्टुमूल, प्रमेह, तृष्णा, दाह तथा अन्यान्य रोग प्रशान्ति होते और बलको वृद्धि होती है। यह उत्कृष्ट रसायन औषध है।

वसन्तगद्—दाक्षिणात्यके बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक प्राचीन दुर्ग। प्रयाग है, कि ११६२ ई०में पनाला-राजवंशके किसी एक राजाने यह दुर्ग बनवाया था। पीछे महाराष्ट्रीय अशुभयुद्धमें यह शिवाजी महाराजके अधीन चला गया। फिर १६६८ ई०में राजारामके निकटसे मुगल-सम्राट औरङ्गजेबने तीन दिन घोर युद्ध करनेके बाद यह दुर्ग अपने मातहतमें कर लिया। बहुत दिनोंसे यह दुर्ग दुर्गमें कह कर ख्यात था। सम्राट दुर्गजयके बाद उसका नाम "कुलोड ई-फते" रखा गया।

वसन्तगन्धिन् (सं० पु०) युद्धभेद। (अभिव्यक्तिर) वसन्तघोषिन् (सं० पु०) वसन्ते वसन्तकाले घोषति विरौति, यद्वा; वसन्तं घोषयति विद्यापयतीति वसन्त-घुष-णिनि। कोकिल।



वसन्तपुर—१ एक प्राचीन विशाल जनपदके अन्तर्गत एक नगर। (भविष्य ब्रह्मखण्ड ३६।२३) २ महलभूमिके अन्तर्गत एक गण्डप्राम। यह विष्णुपुरके उत्तर उपकण्ठमें अवस्थित है।

वसन्तपुष्प (सं० पु०) १ घूलिकदम्ब। (क्री०) २ वसन्तकालोत्पन्न कुसुम।

वसन्तवन्धु (सं० पु०) कामदेव।

वसन्तमानु (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वसन्तमैरवी (सं० स्त्री०) एक रागिणीका नाम।

वसन्तमण्डल (सं० स्त्री०) १ सिन्दूर। २ रक्तपत्र, लाल कमल।

वसन्तमहोत्सव (सं० पु०) वसन्तोत्सव। इस दिन जगत्के यांचतीय देशवासी मनुष्यसमाज शीतकी जड़ता परित्याग कर वसन्तका आगमन ज्ञापनार्थ आनन्दसे उत्कृष्ट हो शहर उधर घूमते हैं। प्राचीनकालमें हिंदू समाजमें मदनमहोत्सव प्रचलित था। आज कल यह वासन्तिक होलीपर्वमें पर्यवसित हो गया है, किन्तु यथावर्तमें यह श्रोपञ्चमी पूजाके दूसरे दिन ही प्रथम वसन्तोत्सव होता है। इस दिन सभी प्रदेशोंमें शीतवास परित्याग कर शुद्ध या वसन्ती रंगमें रंगा हुआ कपड़ा पहन कर सभी शहर उधर परित्यमण करते हैं। यन्वायनमें आज भी ऐसा दृश्य देखा जाता है। इस दिन पर्व होलीपर्वके दिन रातमें भोजन और आमोदकी ज्यादाही भी नितान्त कम नहीं है। राजपूत जातिके मध्य वसन्तोत्सवके दिन उमा या गौरीकी पूजा और मृगयाकी रीति है। मदनमहोत्सव देखो।

वसन्तमाह (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

वसन्तमालतीरस (सं० पु०) एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—सेना १ भाग, सुका २ भाग, हींग ३ भाग, मिर्च ४ भाग एवं कपूर ८ भाग इन सबोंके पहले धोड़ा मषधनके साथ मर्दन कर पीछे नेबूके रसमें अच्छी तरह घोट्टे जिससे मषधन एकदम मिल जाय। इस तरह बना कर २ रस्तीपरिमाणमें मधु और पीपलके चूर्णके साथ सेवन करे। इसका सेवन करनेसे जीर्णज्वर, विषम ज्वर, उदरामय और कास आदि रोग

जल्द जाते रहते हैं। यह पश्चिम प्रदेशकी नामी दवा है। वसन्तमालिका (सं० स्त्री) छद्मोभेद।

वसन्तयात्रा (सं० स्त्री०) वसन्तोत्सव।

वसन्तयोध (सं० पु०) कामदेव।

वसन्तराज—एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने प्राकृतसंज्ञीयनी नामक प्राकृतप्रकाशकी एक टीका लिखी।

वसन्तराज—हुमागिरिके एक राजा। ये काट्यवेम नामक पण्डितघरके प्रतिपालक थे। इनका लिखा वसन्तराजोय नाट्यशास्त्र नामक एक ग्रन्थ मिलता है। महिनाथने शिशुपालवधटीकामें इस ग्रन्थका उल्लेख किया है।

वसन्तराजमठ—शकुनार्णव या शाकुनशास्त्रके प्रणेता। इन्होंने मिथिलाधीश्वर चन्द्रदेवके अनुरोधसे यह ग्रंथ रचा। इनके पिताका नाम विजयराज और जेठे भाईका शिवराज था।

वसन्तराजोय (सं० स्त्री०) वसन्तराजका बनाया हुआ एक नाट्यशास्त्र।

वसन्तराय (राजा)—यहके स्वाधोन बंगाली-धोर प्रतापदित्यके चचा। बंगज कायस्थकुलमें गुहवंशमें गुणानन्दके औरससे ये पैदा हुए थे। इनका प्रकृत नाम जानकीवल्लभ था, किन्तु ये वसन्तराय नामसे ही साधारणमें परिचित थे। गुणानन्दके जेठे भवानन्दके पुत्र विक्रमादित्य ही प्रतापके पिता थे।

बचपनसे ही विक्रम और वसन्तरायमें बड़ा सद्भाव था। राजमन्त्रीपद पर नियुक्त होनेके बाद दोनों भाई गौड़में रहने लगे। इस समय विक्रमने चाँद खाँ नामक जागीर पा कर वहाँ यमुना और इच्छामतीके संगम पर नगर और गढ़ स्थापन किया एवं वहाँ पुत्र और परिचारादिकी भेज दिया। लेकिन दोनों भाई राजधानीमें ही रहे मुनाहम खाँके बंगाल पर आक्रमणके समय यद्यपि गौड़वासी राजधानी छोड़ चले गये, तो भी दोनों भाई छद्मवेशमें वहीं ठहरे रहे। दाउदकी मृत्युके बाद टोडरमल्लको बंगालका राजस्व-विषयक कागज पत्र सन्तर्पण कर देने पर ये दोनों ही मुगल सरकारके अनुग्रहीत हुए। दिल्लीशहरकी ओरसे राजा टोडरमल्लने विक्रमादित्यके महाराजकी एवं वसन्तरायके राजाकी उपाधि मंजूर करा



रहता है। मृतशरीरके कई स्थानोंमें अर्थात् चमड़े, गले, आँख, नासिका अन्त तथा पाकाशयके मध्य स्फोटक देखा जाता है। हृत्पिण्ड, मूत्रयंत्र, यकृत तथा स्वाधोनपेशी, सभी कोमल एवं घसापकृतताविशिष्ट होता है। प्लोहा विवर्द्धित तथा कोमल हो जाता है। स्थान स्थान पर रक्तस्त्रावका चिन्ह दिखाई पड़ता है। मृतदेह बहुत जल्द सूड़ जाती है।

लक्षण

१ गुप्तावस्था—संक्रमण द्वारा रोगोत्पन्न होने पर १२ दिनों तक एवं टीका द्वारा होने पर ७ दिनों तक इस अवस्थामें रोगी कुछ असुस्थ रहता है।

२ आक्रमणावस्था—शीत तथा कम्प द्वारा अकस्मात् पीड़ा आरम्भ होती है एवं रोगीको ज्वरके समी लक्षण अनुभव होते हैं। स्फोटक निकलनेके पहले तापपरिमाण क्रमशः १०४से १०६ डिग्री तक बढ़ जाता है। इसके अलावे पेट तथा कमरमें पीडा होना एवं बहुत उछाल होना, ये कई लक्षण देखे जाते हैं। अत्यन्त लक्षणोंके मध्य शिरोवेदना, मुदाभङ्गल आरक्तिम, हस्तपदादिके स्पन्दन, आलस्य, अत्यन्त दुर्बलता, प्रलाप, अस्थिरता तथा अचैतन्यादि लक्षण भी वर्तमान रहते हैं। इसे प्राथमिक ज्वर (Primary Fever) कहते हैं। उक्त अवस्था दो दिनों तक वर्तमान रहनेके बाद स्फोटकावस्थामें परिणत हो जाता है।

३ स्फोटकावस्था—ज्वरके तीसरे दिन मुँह, कपाल तथा हाथोंमें छोटे छोटे लाल दाग देखे जाते हैं। ये लाल दाग बहुसंख्यक उत्पन्न हो कर दो एक दिनके भीतर ही सारे शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं। इन स्फोटकोंकी संख्या प्रायः १०० से ले कर ३०० तक रहती है। कभी २ रोगीके शरीरमें १००० एक हजार स्फोटक देखे जाते हैं। मुदाभङ्गल ही इसको संख्या अधिक होता है। टीका देनेके बाद अथवा संक्रामक रूपमें वसन्तरोग उपस्थित होने पर स्फोटकावस्थाके पहले पेट तथा छातीमें बृहदाकार लाल दाग बाहर होते देखे गये हैं, उसे प्रोड्रोमल एक्जैन्थेम (Prodromal Exanthem) कहते हैं। वसन्तरोगकी गोटियाँ सर्वत्र, सश्लिष्ट या दूसरे प्रकारकी हो सकती हैं। गोटी होनेके पहले छोटे छोटे लाल दाग उत्पन्न होते हैं। स्फो-

टकके दूसरे दिन कंडुपं सर्पपंकी तरह ऊँचे देख पड़ते हैं, इसे अंगरेजोंमें पैप्युल कहते हैं। तृतीय दिन स्पष्ट करनेसे कुछ कठिन मालूम पड़ता है। चौथे दिन गोटियोंके अन्दर रस (सिरम्) पैदा होनेके कारण वे गोटियाँ नर्म हो जाती हैं एवं मुकाकी तरह भेसिकेले देव पड़ते हैं। पांचवें दिन उनके ऊपरी भाग कुछ निम्न हो जाते हैं, इसे अभियन्काकेटैडू कहते हैं। स्फोटककी परिधि रेटिमुकोसम (Retemucosum) सिरम द्वारा स्फोन एवं मध्यस्थ सब कोप पपिडार्मिसके साथ मिल जानेसे इसका नया भाग उपस्थित होता है। स्फोटकके मध्यसे हो कर एक हीयरां किंवा ग्लैण्ड छपट प्रवेश करने पर भी उक्त प्रकारसे चिपक जा सकता है। छठसे सातवें दिन पर्यान्त स्फोटकके मध्यस्थलमें खच्छ तथा तरल सिरम् रहता है एवं चारों तरफ क्रमशः मवाद एकत्र होते देखा जाता है। इन खच्छरस तथा मवादके अन्दर एक प्रकारका आवरण रहता है; जब मवाद बढ़ जाता है तब वह अदृश्य हो जाता है, इस अवस्थाको एपिडल कहते हैं, इस समय गोटीके चारों ओर लाल रेखा दिखाई देती है। आठवें दिन स्फोटक मवादसे परिपूर्ण हो जानेके कारण वे गाल तथा ऊँचे दिखाई पड़ते हैं। ११से १८ दिनके मध्य गोटियोंके ऊपरके चमड़े सूख कर फड़ जाते हैं। इसके बाद गोटियोंके स्थान पर लाल लाल दाग मालूम पड़ते हैं। जब स्फोटक कुछ बड़े बड़े रहते हैं, तब वे दाग कुछ गहरे दिखाई पड़ते हैं; इन्हें Pits कहते हैं।

गोटियोंकी संख्यानुसार साधारण लक्षणोंमें भी बहुत कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। गोटियोंकी संख्या अधिक होने पर मस्तक, गले तथा शरीरके कई स्थान स्फोत हो उठते हैं, चगड़ा अधिक लाल एवं उसमें कण्डुयन रहनेके कारण नवाघात द्वारा बड़े बड़े फोड़े निकल जाते तथा कईस्थानोंमें श्लैष्मिक फिड्रियां देखी जाती हैं, गलेके भीतर गोटियाँ हो जानेसे बड़ी वेदना होती है एवं काने पीनेके समय अत्यन्त कष्ट होता है। नासिकामें गोटियाँ निकलनेसे नाक बहने लगती है एवं श्वास रुक रुकके चलता है। लिस्सि, ट्रे क्रिया वा ब्रंकाई आक्रान्त होने पर छांसी, स्वरभंग प्रभृति उपस्थित होते हैं। मूत्रमार्गमें श्लैष्मिक





काल पर गोटियों की गति मृदु हो जाती है। कई बार देखा गया है, कि वसन्त संक्रामक होने पर गीर्षोंके पयो-परमें भी मैक्सिना या गो-वसन्त होता है। मानव-यसंत बीज गीर्षोंके उदरके निकट इमोष्युलेट करने पर शरीर के मध्य विशेष परिवर्तन होनेके कारण वसन्त-गोटी न निकल कर गो-वसन्त यहिर्गत होता है। उसकी क्रियाएँ वसन्तकी क्रियाओंकी अपेक्षा मृदु होती हैं। इन गो-वसन्त की लसिका द्वारा टीका दी जाती है।

गीर्षे स्तनों पर गोटियाँ निकलनेसे उन्हें मैक्सिना (Vaccina) या गो-वसन्त कहते हैं। इस प्रकारकी गोटीके रसको काउ लिम्फ अर्थात् गो बीज कहते हैं। इसीके द्वारा टीका दी जाती है। जिस प्रणालीसे हम बीज द्वारा मनुष्यके शरीरमें टीका दी जाती है, उसे मैक्सिनेसन्त कहते हैं एवं उसके द्वारा मनुष्यके शरीरमें जो गोटियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें मैक्सिन पोस्ट्रियु कहते हैं। सातवें दिनकी गोटीमें जो रस पाया जाता है, वह लसिका या लिम्फ कहलाता है। वह निम्न-लिखित उपाय द्वारा रक्षा की जाती है (१) अति सूक्ष्म ग्लास्-ट्यूबमें, (२) दो खण्ड काचोंके मध्य, (३) लसिका कम होने पर उसके साथ गिलसिरिन् मिला कर रखने हैं। सातवें या आठवें दिन अर्थात् परिभोला होनेके पहले स्फोटकके शोषस्थानमें अल्प घेध कर लसिका ग्रहण करे। पाईयमें विद्व करनेसे मध्य प्राचीरका भेद कर लसिका अल्पके ऊपर नहीं आ सकती एवं उससे लसिकामें रक्त मिश्रित हो जानेकी सम्भावना रहती है। शीतकालमें ६७ एवं शीतकालमें ५६ दिनोंकी गोटियोंसे बीज ग्रहण करना उचित है। एक व्यक्तिके हाथसे बीज ले कर दूसरेके हाथमें टीका देनेसे विशेष लाभ होता है। नीरोग बालककी टीकासे बीज लेनेकी विधि है। किसी बच्चेके चर्मरोग अथवा गुह्यद्वार या जननेन्द्रियमें उपद्रवशान्ति उच्च स्फोटक क्रिया सर्दी तथा गलेमें क्षत रहनेसे उसका बीज लेना उचित नहीं। परिष्कृत लैन्सेट (Lancet) का व्यवहार करना उचित है, अपरिष्कृत अल्प व्यवहार करनेसे चमड़ेको उच्च बना बह जाता है। इसे ४ मासकी उप्रवाले बच्चोंकी टीका देनेसे बड़ा लाभ होता है। शिशुके ज्वराक्रान्त होने पर अथवा चर्मरोग, उदरामय या दंतोद्गमकी सम्भावना रहने

पर टीका नहीं देने चाहिये। विशेष आवश्यक न होनेपर १॥ वा २ वर्षके बच्चेको टीका देना उचित है। इसके अतिरिक्त कई प्रकारका फुलिम्फ अर्थात् गीर्षके बड़ड़ेसे जो मैक्सिना उत्पन्न होता है, उसकी लसिका द्वारा टीका देनेका परामर्श देते हैं। इसके द्वारा बच्चोंको एक बार तथा परिणत वयस्कको दो बार टीका देनेसे विशेष लाभ होता है।

टीका देनेका स्थान—साधारणतः जिम स्थान पर डेडेट्टे पैगी शोप होता है, उसके बीच तथा नीचे परस्पर एक वा डेडेट्टे इंच अन्तरित स्थानका चमड़ा अकृष्ट करके अल्प द्वारा उपत्यकके निर्माशा पर्यन्त बीज प्रवेश कराना होता है। प्रत्येक हाथमें दो टीका देना उचित है। निम्न-लिखित चार प्रणालियोंसे टीका देनेकी विधि है—(१) लैन्सेरके अग्रभागमें बीज लित करके उसे शकमावसे प्रकृत चर्म पर्यन्त विद्व करना चाहिये; इस तरह अखा-घात करना चाहिये, कि केवल विन्दुमात्र रक्त बाहर निकले। ५६ सेकेंड तक छिन्न स्थानमें अल्प रक्ष कर इसको बाहर करना चाहिये। (२) अल्प द्वारा समागतराल-भावसे ५६ छिद्र करके उसके ऊपर लिम्फ लगाना चाहिये। (३) उलकी देनेके तरीकेसे सूई द्वारा उक्त स्थान विद्व करके उसके ऊपर लिम्फ संलग्न करेगे। (४) अल्प किंवा लाइकर पमोनिया द्वारा ऊपरका चमड़ा उन्मीलन करके बीच देना चाहिये।

गोटीकी गति—टीका देनेके बाद तीसरे दिन छेदे हुए स्थानमें लाल एवं कुछ ऊँचा पैप्युल नजर आता है। दिन दिन उसकी ऊँचाई तथा लाली क्रमशः बढ़ती जाती है। ५६ दिनके मध्य पैप्युल-समूह मैक्सिकेलमें परिणत हो जाने हैं। ये देवनेमें गोले वा अण्डाकार होते हैं। उनके बीचका अंश चिपटा हुआ रहता है एवं रंग कुछ नीलापन लिये हुए उजला होता है। सातवें दिनके शोप भागमें उनको सारों गौर लाल रंगकी एक रेखा दिखाई पड़ती है, उसे परिभोला (Areola) कहते हैं एवं उस समय गोटियाँ पूरी तरह निकल आती हैं। छेदे दिनसे गोटियाँ क्रमशः बढ़ते बढ़ते पूर्णरूपसे परिपुष्ट हो जाती हैं। ये गोटियाँ देखनेमें गोले एवं कुछ ऊपर उठी हुई मालूम पड़ती हैं। इनका रंग मुक्ताकी तरह उज्वल तथा इनके



करने पर गोटियों की गति मृदु हो जाती है। कई बार देखा गया है, कि वसन्त संक्रामक होने पर गीबोंके पयो-धरमें भी मैक्सिना वा गो वसन्त होता है। मानव-वसन्त बीज गीबोंके उदरके निकट इनोक्युलेट करने पर शरीर के मध्य विशेष परिवर्तन होनेके कारण वसन्त-गोटी न निकल कर गो-वसन्त बहिर्गत होता है। उसकी क्रियाएँ वसन्तकी क्रियाओंकी अपेक्षा मृदु होती हैं। इस गो-वसन्त को लसिका द्वारा टीका दी जाती है।

गीके स्तनों पर गोटियाँ निकलनेसे उन्हें 'मैक्सिना (Vaccina) वा गो-वसन्त कहते हैं। इस प्रकारकी गोटीके रसको काउ लिम्फ अर्थात् गो बीज कहते हैं। इसीके द्वारा टीका दी जाती है। जिस प्रणालीसे इम बीज द्वारा मनुष्यके शरीरमें टीका दी जाती है, उसे मैक्सिनेसन्त कहते हैं एवं उसके द्वारा मनुष्यके शरीरमें जो गोटियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें 'मैक्सिन पोस्टियु कहते हैं। सातवें दिनकी गोटीमें जो रस पाया जाता है, वह लसिका वा लिम्फ कहलाता है। वह निम्न-लिखित उपाय द्वारा रक्षा की जाती है (१) अति सूक्ष्म ग्लास्-ट्यूबमें, (२) दो छण्ड काचोंके मध्य, (३) लसिका कम-होने पर उसके साथ गिलसिस्त्रिन् मिला कर रखने हैं। सातवें वा आठवें दिन अर्थात् परिओला होनेके पहले स्फीटकके शोषस्थानमें अन्न बेघ कर लसिका प्रदूषण करें। पार्श्वमें विद्य करनेसे मध्य प्राचीरका भेद कर लसिका अन्नके ऊपर नहीं आ सकती एवं उससे लसिकामें रक्त मिश्रित हो जानेको सम्भावना रहती है। शीतकालमें ६।७ एवं शीतप्रकालमें ५।६ दिनोंकी गोटियोंसे बीज प्रदूषण करना उचित है। एक व्यक्तिके हाथसे बीज ले कर दूसरेके हाथमें टीका देनेसे विशेष लाभ होता है। नरीयण बालकको टीकासे बीज लेनेकी विधि है। किसी बच्चेके चर्मरोग अथवा गुहाद्वार वा जननेन्द्रियमें उपर्युक्तजनित अथ स्फोटक क्रिया सर्दी तथा गलेमें क्षत रहनेसे उसका बीज लेना उचित नहीं। परिष्कृत लैन्सेट (Lancet)का व्यवहार करना उचित है, अपरिष्कृत अथ व्यवहार करनेसे चमड़ेकी उत्तेजना बढ़ जाती है। २से ४ मासकी उम्रवाले बच्चोंको टीका देनेसे बड़ा लाभ होता है। शिशुके उवराक्रान्त होनेपर अथवा चर्मरोग, उदरामय वा दंतोद्भ्रमकी सम्भावना रहने

पर टीका नहीं देनी चाहिये। विशेष आवश्यक न होने पर १। वा २ वर्षके बच्चेको टीका देना उचित है। इसके अतिरिक्त कई ग्रंथकार काफ़्लिम्फ अर्थात् गीबके बड़ड़ेसे जो मैक्सिना उत्पन्न होता है, उसीकी लसिका द्वारा टीका देनेका परामर्श देते हैं। इसके द्वारा बच्चोंका एक बार तथा परिणत वयस्कोंको दो बार टीका देनेसे विशेष लाभ होता है।

टीका देनेका स्थान—साधारणतः जिस स्थान पर डेवेटेड पैनी शोष होती है, उसके बीच तथा नीचे परस्पर एक वा डेड इंच अन्तरित स्थानका चमड़ा आच्छाद करके अन्न द्वारा उपत्यक्तके निम्नोश पर्यन्त बीज प्रवेश कराना होता है। प्रत्येक हाथमें दो टीका देना उचित है। निम्न-लिखित चार प्रणालियोंसे टीका देनेकी विधि है—(१) लैन्सेरके अग्रभागमें बीज लित करके उसे धक्कावसे प्रकृत चर्म पर्यन्त विद्य करना चाहिये; इस तरह अन्नाघात करना चाहिये, कि केवल विन्दुमाल रक्त बाहर निकले। ५।६ सेंकेउ तक छिन्न स्थानमें अन्न रब कर इसको बाहर करना चाहिये। (२) अन्न द्वारा समागतपाल-मायसे ५।६ छिद्र करके उसके ऊपर लिम्फ लगाना चाहिये। (३) उसको देनेके तरीकेसे सूई द्वारा उक्त स्थान विद्य करके उसके ऊपर लिम्फ संलग्न करेंगे। (४) अस्त कि वा लाहकर एमोनिया द्वारा ऊपरका चमड़ा उन्मोचन करके बीच देना चाहिये।

गोटीकी गति—टीका देनेके बाद तीसरे दिन छेदे हुए स्थानमें लाल एवं कुछ ऊँचा पैप्युल नजर आता है। दिन दिन उसकी ऊँचाई तथा लाली क्रमशः बढ़ती जाती है। ५।६ दिनके मध्य पैप्युल-समूह मैसिकेलमें परिणत हो जाते हैं। ये देवनेमें गोले वा मण्डाकार होते हैं। उनके बीचका अंश चिपटा हुआ रहता है एवं रंग कुछ नीलापन लिये हुए उजला होता है। सातवें दिनके शेष भागमें उनके चारों ओर लाल रंगकी एक रेखा दिखाई पड़ती है, उसे परिओला (Areola) कहते हैं एवं उस समय गोटियाँ पूरी तरह निकल जाती हैं। ८वें दिनसे गोटियाँ क्रमशः बढ़ते बढ़ते पूर्णरूपसे परिपुष्ट हो जाती हैं। ये गोटियाँ देवनेमें गोले पयं कुछ ऊपर उठी हुई मालूम पड़ती हैं। इनका रंग मुक्ताकी तरह उज्वल तथा इनके



बच्चे पर आक्रमण करता है, किन्तु कभी कभी युवक व्यक्ति तथा वयस्क स्त्रियोंको भी आक्रान्त होते देखा जाता है। कोई कोई कहते हैं, कि यह भी एक प्रकारका वसन्तरोग है; किन्तु परीक्षा करके देखनेसे अनुमान होता है, कि यह एक स्वतंत्र रोग है। कारण यह है, कि प्रकृत-वसन्त तथा पान-वसन्तमें मूलतः बहुत पृथक्ता देखी जाती है। अणुवीक्षण द्वारा विशेष पर्यवेक्षण करके देखा गया है, कि इसकी लसिका तथा मवादके मध्य एक प्रकारका सूक्ष्म उद्भिज विद्यमान है।

किसी किसी समय यह १० से १८ दिन पर्यन्त गुणवस्थामें रहता है, उस समय उसमें कोई विशेष लक्षण नहीं देखे जाते। फिर किसी समय ज्वरका कोई लक्षण उपस्थित न हो कर ही पहले कण्डु पहिर्गत होते देखा जाता है। किन्तु कभी कभी कण्डु पहिर्गत होनेके २४ वा ३६ घंटांपहले ज़िरोवेदना, आलस्य तथा सामान्य ज्वर उपस्थित होता है, एवं सामान्य खांसी तथा वायु-नलीके प्रदाहके संमी लक्षण, वर्त्तमान रहते हैं। ज्वरके प्रथम वा द्वितीय दिवस सहसा स्फोटके निकल आते हैं। ये पहले वक्षस्थल तथा स्कन्धमें दिखाई पड़ते हैं, इसके बाद ४५ रात्रिके मध्य ही क्रमशः सारे शरीरमें फैल जाते हैं एवं मुखमण्डल, सामान्य भागमें आक्रान्त होता है। किसी किसी प्रकारके मतानुसार पहलेसे ही स्फोटकोंके मध्य जलके समान थोड़ा थोड़ा रस वर्त्तमान रहता है, किन्तु अधिक समय किंचित् उच्च तथा उज्ज्वल लाल वर्ण दाग बाहर होता है। यह दाग चार पाँच घंटेके भीतर ही रस गोठियोंमें परिणत होते देखा जाता है। उस समय गोठियोंके देखनेसे मालूम पड़ता है, मानो नीले हुए पानीका छीटा दे कर रोगीकी देहमें फफोले उपपन्न किये गये हों। २४ घंटेके मध्य मेसिकेलके भीतरका रस कुछ गढ़ोला हो जाता है—एवं तीसरे दिन कई एक मेसिकेल मवादसे भरी हुई गोठियोंकी तरह देखे जाते हैं। मेसिकेलसमूह देखनेमें गोल अथवा अंडाकार एवं वसन्तकी गोठोके समान होते हैं। इनका ऊपरी हिस्सा निपटा किंवा इनका कोटर विभक्त नहीं रहना। छेद कर देनेसे गोठियाँ बिल्कुल सिकुड़ जाती हैं और परिबोला नहीं रहता। २४ घंटेके अन्दर

उक्त गोठियाँ कुछ गाढ़ा तथा अस्पष्ट हो पड़ती हैं। चाँधे तथा पानवे दिन कण्डु शुष्क हो जाता है एवं उस पर बारीक झिल्ली पड़ जाती है। इसके बाद धीरे धीरे ऊपरका शुष्क चमड़ा गिर जाता है। इस तरह पपरीके स्थलित हो जाने पर कुछ दिनों तक शरीरमें सामान्य लाल दाग रहता है; किसी किसी स्थानमें गहरे दाग देखे जाते हैं। साधारण लक्षणोंके मध्य सामान्य ज्वर, सर्दी तथा चमड़ेमें कण्डु वर्त्तमान रहते हैं एवं शरीरसे एक प्रकारकी गंध निकलती रहती है।

निर्णयतत्त्व—टीका देनेके बाद वसन्तरोग होने पर कभी कभी जल-वसन्त होनेका भ्रम हो सकता है। वसन्तकी गोठी निकलनेके पहले कमरमें दर्द, उछाल, शिरमें पीड़ा आदि कई लक्षण दिखाई पड़ते हैं, किन्तु इस पीड़ा में ये लक्षण प्रगट नहीं होते। जल-वसन्तका आवरण वसन्तकी तरह दृढ़ नहीं होता। मेसिकेल अवस्थामें परिणत होने पर निम्नभागमें वसन्तकी गोठियोंके समान इसकी गोठियाँ ऊँची वा कठिन नहीं होतीं। सर्से छिद्र करने पर चिकेन्द्रपाषण पूर्णतया संकुचित हो जाता है।

भावोक्त—इसमें रोगीको अधिक कष्ट भोगना नहीं पड़ता, यह रोग आसानीसे भाराम होता है; किन्तु भारीप्यलाभ करने पर भी रोगी कुछ दिनों तक दुर्बल रहता है।

चिकित्सा—इसमें किसी प्रकारके ओषधिके प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं होती। इस रोगमें सर्वदा पेट साफ रखना चाहिये एवं हलका भोजन देना चाहिये। ज्वर तथा खांसी रहने पर उसके निवारणार्थ उपयुक्त ओषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः गृहस्थ लोग रोगीको पाचक खिलाते हैं, उसे वसन्तकी "जाड़ी" कहते हैं। बनियकी दूकान पर वसन्तकी 'जाड़ी' खोजनेसे पूरे-परिमाणमें मिलती है।

वसन्तशतुमें हम लोगोंके देशमें वसन्त रोगका प्रादुर्भाव होता है। इस रोगके उपद्रवकी शान्तिके लिये हम लोगोंके देशमें शीतलाकी पूजा तथा स्तयकवचादि पाठ होता है। माँ शीतला ही वसन्तरोगकी अधिष्ठात्री देवी हैं एवं ज्वरसुर उनका सहकारी है।



स्वतंत्र है। वसन्तरोगकी चिकित्सा कर किसी डोम पंडितने गवर्नमेंटसे डिप्लोमा प्राप्त किया है।

शीतलाके पंडित लोग कहते हैं एवं देवकीनन्दन, कविवल्लभ तथा नित्यानन्दके शीतला-मंगलग्रन्थमें लिखा भी है, कि आलकुशी, पुकुडिया, चामदल मयूनि ६४ प्रकारके वसन्तरोग होते हैं।

चौदह प्रहर अर्धात् डेढ़ दिन ज्वर भोग करनेके बाद प्रायः वसन्त दिखलाई देता है एवं शिरमें पीड़ा तथा जड़िया बुभार हो वसन्तरोगके आरम्भ होनेका प्रधान लक्षण है। विभिन्न प्रकारके वसन्तके नाम तथा वसन्तरोग मुक्तिके निदानभूत शीतलास्तव एवं शीतलाके गान शीतलादेवीके प्रसंगमें वर्णन किया गया है। शीतला देखो।

वसन्तलता (सं० स्त्री०) नायिकाभेद।

वसन्तललना (सं० स्त्री०) शुक्लयूथी, सफेद जुही।

वसन्तलेखा (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

(राजतर० ७६५७)

वसन्तवाक (सं० पुं०) चौदह तालोंमेंसे एक।

(संगीत-दामोदर)

वसन्तवितल (सं० पुं०) विष्णुकी एक मूर्ति।

वसन्तव्रण (सं० स्त्री०) वसन्त नामक रोगजनित व्रण, मसूरिका।

वसन्तव्रत (सं० पुं०) कीर्तिक।

वसन्तशेखर (सं० पुं०) किन्नरभेद।

वसन्तसप्त (सं० पुं०) वसन्तस्य सप्ता (राशब्दसहित-म्यन्त्व्। पा १।४।६१) इति टच्। कामदेव।

वसन्तसप्ता (सं० पुं०) वसन्तस्य सप्ता।

वसन्तसमयोत्सव (सं० पुं०) वसन्तसमयस्य उत्सवः।

वसन्तसमयका उत्सव, वसन्तोत्सव, यह उत्सव जो फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिमें श्रीकृष्णके उद्देशसे होता है।

वसन्तसेन (सं० पुं०) राजपुत्रभेद।

(कथासरित्सा० ३३।६३)

वसन्तसेना (सं० स्त्री०) महाकवि राजा शूद्रक प्रणीत मूल्हाकटिक नामक प्रकरणकी एक नायिका। अवन्ती-पुरीमें चाण्डदत्त नामके एक सार्धधातु ब्राह्मण युवक थे।

वसन्तसेना वेशजनिता होने पर भी इस दरिद्र युवककी

गुणानुरागिणी हो गई। कविकी वर्णनासे वसन्तसेना वसन्तयोभाकी तरह रमणीया है।

वसन्तात्त (सं० पुं०) विभीतकवृक्ष, बड़ेडा।

वसन्ताध्ययन (सं० स्त्री०) वसन्तसहाचरित अध्ययन।

वसन्तिका (सं० स्त्री०) एक अक्षराका नाम।

वसन्तोत्सव (सं० स्त्री०) वसन्तस्य उत्सवः। फाल्गुने-त्सव, होलीका उत्सव। फाल्गुनमासकी पूर्णिमाके दिन वैष्णवोंके साथ श्रोत्रहृष्णके प्रिय भक्तकी वसन्तका पूजा-हलव करना होता है। इस उत्सवकी विधिब्यवस्था आदि भविष्योत्तरखण्डमें भगवान्ने स्वयं ही 'युधिष्ठिर-को कही है। इसको फलश्रुतिके ले कर ऐसा कहा है, कि जो मनुष्य शाखानुसार इस फाल्गुनेत्सवका अनुष्ठान करेगा, मेरे प्रसादसे उसके सभी मनोरथ सिद्ध होंगे। जाड़ा घेतते ही वसन्तकालमें जो वासन्तो-पूर्णिमाके दिन सपेरे चन्दन सहकृत हुआ चूतकुसुम खींचेगा, वह निश्चय ही सौ वर्ष तक सुखसे अपना जीवन बिता-वेगा। (हरिभक्तिवि० २४ वि०)

२ एक उत्सव जो प्राचीनकालमें वसन्तपञ्चमीके दूसरे दिन होता था। इसे मदनोत्सव भी कहते थे। इसमें उद्यानोंमें जा कर लोग वसन्त और कामदेवका पूजन करते थे। होलीका उत्सव इसीकी परम्परा है।

वसन्तोत्सवमाण्डल (सं० स्त्री०) दरिताल, हरताल।

वसन्ता (सं० पुं०) १ नीलका पत्ता। २ उषटन। ३ मिजाब।

४ एक प्रकारका छपा कपड़ा जो चांदीके चक्रे लगा कर छाया जाता है।

वसहर्न (सं० पुं०) १ नाना वेशधारी। २ अग्नि।

वसव (वृषभ शब्दका कनाड़ी अपभ्रंश)—दाक्षिणात्यके वीरशैव या लिङ्गायत-सम्प्रदायके प्रवर्तक। वीरशैवोंके निकट थे जिनके अनुचर नन्दीके अवनगर समझे जाते हैं। दाक्षिणात्यमें आज भी लातों मनुष्य इस वसवके मतानुसार चलते हैं, इसलिये ये एक सामान्य व्यक्ति नहीं थे। इनका माहात्म्य और धर्ममत वीरशैवोंके 'वसव-पुराण' और 'छत्रवसवपुराण' में वर्णित है।

वसवपुराणमें लिखा है,—जैन, बौद्ध और चाण्ड्याओंके प्रभावसे भारतभूमिसे शैवधर्म एक प्रकारसे विलुप्त होनेका उपक्रम ही गया। उस समय नारद ऋषिने





तक है, तब तक मुझे किस बातकी चिंता है ?' यह कह कर उन्होंने राजाको धनागार दिखा विस्मिन कर दिया ।

एक दिन राजसभामें वसवने भस्म लगानेका माहात्म्य कहा, राजा जैन धर्मावलम्बो थे । भस्म लगाने या लिङ्गकी उपासना पर उनकी तनिक भी श्रद्धा न थी । वसवके मुखसे भस्मका माहात्म्य सुन राजा हँस पड़े और एक मोच जातिकी स्त्रीकी दिखा कर उनसे पूछा, 'यह देखो भस्माट्टन ह'डोमें फेसी पवित्र सुरा ले कर जा रही ।' वसवने उसी समय उत्तर दिया—'ऐसे पवित्र वस्तुमें सुरा कदापि नहीं रह सकती । यह कह कर राजाका ह'डोमें सुराके बदले दूध दिखा दिया । सब कोई चमत्कृत हो गये । कुछ दिन बाद एक वैदिक कल्याणकी राजसभामें जो उपस्थित हुए । उनके साथ बहुत-से शिष्य और दश हाथी पर लदी हुई पेशियां थीं । सभामें जितने सभ्य बैठे थे, सबोंने तो वैदिकका सम्मान किया, पर वसवने अपनी ओर आँव भी टेढ़ी न की । वैदिकने यह देख लिया । उन्होंने उनकी ओर बना कर राजासे पूछा 'ये भस्मोभूत मूर्ति कौन हैं ?' राजाने वसवकी बड़ाई करते हुए अपना मंलो बताया । अनन्तर वैदिक उनसे शास्त्रालाप करने लगे । वसव एक एक करके उनके तर्कोंको काटने गये । अन्तमें वैदिक शिष्यकी निन्दा करने लगे । तब वसवने कहा,—'शिवकी निन्दा करते जानेंमें ब्रह्माका एक सिर गया था । उस प्रकार शिवनिन्दकका भी सिर लेना उचित है, ऐसे व्यक्तिके साथ शास्त्रार्थ करनेमें जोमा नहीं होती । खड्क पुतला ऐसे अर्धाचीनके साथ शास्त्रार्थ कर सकता है । वैदिकने खड्कका एक पुतला बना कर वसवको दिखाया । क्या आश्चर्य ! वसवने उसी खड्कमें जीवनदान कर उसीसे वैदिकका दर्प चूर्ण किया । पोछे वैदिकने हार खा कर अपने शिष्योंके सहित वसवका श्रेष्ठत्व प्रहण किया ।

एक दिन बहुत लोगोंके कोलाहलसे विजयराजकी नौद टूट गई । वे उस गभीर रात्रिमें प्रासादकी छत पर चढ़ कर क्या देखते हैं, कि चारों ओर लोकारण्य है, थालोकमालासे समस्त पथ ऐसा हो गया है मानों दिवाकर दिनके बदले आज रात हीमें अपनी सारी ज्योति

खतम कर देंगे । इनके अलावे और क्या देखते हैं, कि लाखों लिङ्गायत शैव उनकी राजधानी घेरे हुए हैं और मन्त्रों उन्हें धन वांट रहे हैं । यह देखते ही उनको क्रोधान्न धधक उठी । दूसरे दिन उन्होंने वसवको खूब डाँट डगट की । वसव यह डाँट-डपट कब सुननेवाले थे । उन्होंने कान पर हाथ रखा, पराधोना उन्हें असह्य जान पड़ी । उसी समय उन्होंने राजाका जो कुछ था उसे अर्पण कर कल्याण राजधानी छोड़ चले ।

प्रखर रौद्रतापमें धनाहार चलते चलते जब दारद कोस आये, तब एक पुरोहितसे उनकी मुलाकात हुई । पुरोहित बड़े घतनसे उन्हें अपने घर लिवा गये । यहाँ भगवान्ने उन्हें स्वप्न दिया, 'वत्स ! चिन्ता मत करना ! अमुक स्थानके गर्तमें तुम एक हार पावोगे, उसीसे तुम्हारी सारी तकलीफें दूर होंगी ।' सवेरा होने पर वे उस गर्तके पास गये । गर्तमें हाथ देते ही एक विपधर साँप निकल पड़ा । भगवान्की लोला अपार है, झूते ही वह साँप मूलवयान् हार हो गया । वह हार पेश कर वसवने प्रभूत धन पाया एवं उसीसे महासमोरहके साथ फिर जङ्गमकी सेवा करने लगे । विजयराजने उनकी अपूर्व क्षमता पर विस्मय हो फिर उन्हें मन्त्रित्व प्रदान किया । वसवकी क्षमता और भी बढ़ गई, हजारों मनुष्य आ कर उनके भक्त हो गये ।

छत्रवसवपुराणमें लिखा है, कि वसवके चरित-बल, शानप्रभाव और अलौकिक शक्तिके फलसे शैव-सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुआ । उस समय वसवकी ज्येष्ठा भगिनी नागलाश्विकाके गर्भमें स्वयं भगवान् शिव अथ नीर्ण हुए । नागलाश्विका चिरकुमारी अथच घषषया थी । उनका गर्भ देल नाना आत्मी नाना तरहकी बातें बोलने लगे । यहाँ तक, कि राजाके पास भी इसकी शिकायत हुई । नाना विचार करनेके लिये नागलाश्विकाको बुलवा कर इस गर्भके होनेका कारण पूछा । साध्वी कुमारोने अकुण्ठितभावसे राजाको कहा, 'स्वयं भगवान् मेरे गर्भमें आये हैं । यह उनकी देवपरिचर्याका फल है ।' राजाने इतनेमें ही उनकी बातका विश्वास न किया ; किन्तु क्या आश्चर्य नागलाश्विकाके गर्भसे स्वयं भगवान्ने हुंकार किया । सभी अचर्यमें गड़ गये । यथा-



जीवहत्याके बाद रसायनकार्य शीघ्र ही सम्पादन करना चाहिये; कारण शवदेहसे तुरत चरबी अलग न करनेसे उसके साथ संयुक्त तन्तु और मांससूत्रके साथ साथ चरबी भी सड़ जाती है।

समूचे संसारके मध्य सिर्फ रूसराज्यमें ही सर्वा-पेक्षा अधिक परिमाणमें घसा उत्पन्न होता है। उस देशके वाशिन्वे प्रायः प्रति वर्ष २५ करोड़ पौंड घसनको घसा विभिन्न देशोंमें भेजते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग अपने देशवासियोंके व्यवहारके लिये घसा तैयार करते हैं। इतनी घसा साधारणतः यूरोपीय रूसराज्यके दक्षिणस्थ पोएटान् एपी (Pontine steppes) नामक सुविस्तृत तृणप्रान्तके मध्य हो संगृहीत होती है। यहाँ जितने सुगृह्य घसाके कारखाने हैं, उन्हीं Salgans कहते हैं। ये कारखाने केवल प्रेट-रूसके अधिवासियों की ही देख-रेखमें परिचालित होते हैं। यहाँके कर्मचारो लोग हजातों गवादि पशु एक साथ खतोवते और एक वर्ष तक अच्छी तरह खिला कर उसका शरीर चरबोसे भरा देते हैं। जब वे लोग इन पशुओंकी चरबी निकालनेके उपयुक्त समझते, तब सर्वोंकी कसार्-बाड़ांमें भगा ले जाते और यहाँ उन्हीं मारते हैं।

इन सब कसार्-बाड़ांमें कसार् लोगोंके बहुत-से घर हैं। उनके बीच एक निहत गोमांस-विक्रयस्थान, कितने में मांससिद्ध करनेके लिये घायलर प्रतिष्ठित और किसी घरमें चमड़े रहते हैं। दूसरे कई घर दपतरखाने और कर्मचारियोंके वासभवन हैं। प्रोम्फालमें कोई भी कसार्-बाड़ांमें नहो रहता, केवल कुत्ते और शिकारो पाक्षणय यहाँ मांसको गंध ले बिचरते रहते हैं। प्रोम्फोत जाने पर वे पहले घोड़ा मोटा ताजा बैल यहाँ ला कर बध करते हैं। इसके बाद वर्षा ऋतुमें वे लोग यथार्थरूपसे कार्यारम्भ करते हैं। तब दलके दल कसार्-बाड़ांमें पशु ला कर नृशंसमावसे निहत किया करते हैं। पशु-हत्याके बाद पशुका चमड़ा उतारते और बिना चरबीवाला मांस बाजारमें बेचनेके लिये भेजते हैं। निष्ठुरतासे मारनेके कारण यह मांस इतना खराब होता, कि कोई भद्र पुरुष यह मांस नहो खरोदते। सिर्फ दृष्टि ही खरोदता है।

अवशिष्ट शवदेहको वे लोग टुकड़ा टुकड़ा करते एवं उसे घायलर (Boiler)में डाल कर चरबो बाहर करते हैं। एक एक घायलरमें १० से १५ बैलों तकका मांस बंट सकता है। हर एक कसार्-बाड़ांमें ऐसे ५ या ६ घायलर होते हैं। तदनन्तर कड़ाहके गाढमें मांस लग कर जल उठता है, उस घायलरके मध्य वे लोग घोड़ा जल देते हैं। कड़ाहस्थित मांसास्थिको मजजा (Soup) कहते हैं। जब कड़ाहके ऊपर चरबी गल कर उठती है, तब हत्येसे काट कर उसे पोपेमें रखते हैं। उसके बाद यह कस कर वैद्युतिक यणिकीके हाथ भिन्न देशोंमें भेजा जाता है। पहले जो घसा उबलाती है, यह सबोसे सफेद और अच्छी तथा पोछेवाली घसा कुछ हल्दी रंगकी होती है। पोपेके अभावमें चमड़ेकी सिलाई करके एक एक पैली बनाई जाती है। दूसरी थ्रेणोकी घसा उस्थित होने पर नायलर पातस्थ अवशिष्ट मांस और अस्थि-कलकी भयानक चापसे एक प्रकारकी निष्ठुर घसा निकाली जाती है। यह मैली गंदी घसा साधारणतः कलके चक्केमें व्यवहृत होती है।

एक मोटे ताजे बैलसे साधारणतः २५० से २६० पौंड घसा निकलती है, जिसका मूल्य १५० रुबुलसे कम नहो होता।

इन सब पशुओंकी आंत भी बरवाह होने नहो पाता। घसाके व्यवसाय करनेवाले सूअर भी रखते हैं, सूअर यह आंत खाते हैं। इसके खानेसे सूअरकी भी चरबी बढ़ती है। पोछे इन सूअरोंकी भी चरबी निकाली जाती है।

घसाके व्यवसायो लोग सफेद और हल्दी रंगकी घसाके मध्य जो पीया बत्तोंमें और जो साबुन बनानेके काममें आता है, उसे अलग कर बेचते हैं।

जीव-शरारकी स्थान विशोरजात चरबी कड़ी और मुलायम होती है। यूक्रक (गुरदा) की पार्श्वस्थ चरबी स्वमायतः ही कड़ी होती है, लेकिन अस्थिगह्वरके मध्य जहाँ जहाँ चरबी उत्पन्न होती है, वह उससे बहुत मुलायम होती है। इसके अलावे मांसपेशी और अन्यान्य कमनीय देहांशमें जो चरबी रहती है, वह सबोसे कोमल होती है और उसमें आधा तेल मिला हुआ रहता है। इस तरह जीवदेहके भी तात्तभ्यानुसार घसा कड़ी और मुलायम होती

जात स्वयं भगवान् शिव भूमिष्ठ रूप, उनका नाम वसा उग्रप्रसव । वसव भीर इनके सनातनवर्ती जन्मोंमें पड़ते हीमें राक्षसा साक कर रखा था । भव भगवान्में भय-सौंदां हो कर मरने मरना प्रतिष्ठा की । वसव भीर सिद्धायत मरनेमें भरदार (सिद्धय) देते ।

वसपाय ( ५० पु० ) १ घुम, दुबिधा, खंवेद । २ भुजाया, बहकाया, भयोमन या मंगद ।

वसयाग ( ५० वि० ) १ विश्रयान न करनेपाला, संश-यात्मा, अज्ञो । २ भुजातेमें डालनेपाला, बहकानेपाला ।

वसथ ( सं० स्त्री० ) घन, अर्थ सभक्ति ।

वस ( सं० स्त्री० ) वसते वसने या वस-नियसे वस-धावुःइने या वस भव् । श्रिवागाय् । १ मांसरोहिणी २ मेरो धातु । ( रात्रि० ) ३ शुद्ध मांसमय स्नेह, चरबी ।  
यसा भीर स्नेहको पृथक्ता बतलाते हुए महोघरने लिखा है—

“तापमानस्य वा स्नेहा मेदसः धा वसा यसा ॥”

( सुश्रुतपु० २५६ भाष्य )

वेद्यक ज्ञानमें यसाके बहुत-से गुणोंका उल्लेख है । बहुत प्राचीन कालसे ही यसाका प्रचलन है । तैत्ति-रीय संहितामें 'यसा होम' ( ६।३।१११ ) की व्यवस्था देना जाता है । सुधृतमें घराहयसाकी उपकारिता दिख-लाई गई है । पचलरीगमें शूकर-यसानिर्मित प्रलेप शरीर-के चमड़ेका विक्रोव उपकारी होता है । यातरीगमें शूकर का यसाको मालिज करनेसे बड़ा उपकार होता है ।

इस घराहयसा या शूकरकी चरबीको ऐतिहासिकताके महत्त्वमें हम भारतके सुविश्रयत सिपाही विश्वेश्वरका उल्लेख कर सकते हैं । जिन डीटाको ले कर १८५७ ई०में दिग्गू तथा मुमजमान सिपाही-दल अंग्रेज सपुर्गीके विपक्षमें अस्तुतिग हुआ था, यह डीटा उक्त दोनों जगि योंको निविद्ध गो तथा शूकरकी यसाके योगसे तैयार किया गया था, ऐसा उनका विश्वास था ।

सांख्यिके शरीरके मेह या चरबी अन्निके योगसे मन्दा कर उसके चिद्विज्ञ पदार्थ (Membranous matters) अन्न कर लेनेसे घांके समान तथा शनिदार यसा पाई जाती है । इस घनेमें किमी तरहका स्वाह नहीं पाया

जाता, उसे एक प्रकारका स्वाधीन पदार्थ भी कर सकते हैं । प्राणित्यके लिये देनादेनातरमें जो यसा भेजी जाती है, यह बहुत कुछ अपरिष्कार भीर हुए दन्दी रंगकी होती है । प्राणियोंके मेदानुसार पच पदार्थ के तावस्थानुसार यह साधारणता बहुत प्रकारकी होती है । इनमेंसे जो यसा अच्छी होती है, यह मॉपप ( मल-हम ointment भादि ) भीर बत्ती ( Candles ) बनानेके काममें आती है । यसाका मलहम या प्रलेप बना कर फोड़े पर लगानेसे गोड़ा जरूर हो शराम हो जाता है । Tallow candles या चरबीकी बत्ती जो म्हाड फर्नास, सेज, समादान भादिमें जलाई जाती है, यह भी उक्तम धेणोकी यसासे बनती है । चरब यसासे मायुन (Soap) तैयार होता है । चमड़े की वालिज (Leather dressing) भीर नरम करनेमें चरबीको बड़ी ही भावश्यकता होती है । बल-कस्तीमें (Machinery) भीर गाड़ी भादिके यक में चरबी न लगानेमें काममें बड़ा व्याघात पहुंचता है ।

इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्कान्दिनेविया, इटली, रूस भादि अंगरेजी राज्योंमें मायुन भीर बत्ती बनानेके लिये चरबी प्रचुर परिमाणमें गलाई जाती है । अमी अमेरिका, जापान भीर भारतके माला स्थानोंमें जोष-देहकी चरबीसे यसा मन्दा कर मायुन, बत्ती भादि बनानेके बहुत-से कारखाने हो गये हैं । इन सब जगहोंमें किम तरह यसा गलाई जाती है यह लोके लिखा जाता है—

कसाई लोग जानवरका मांस चरबीसमधि (fat and salt) कारखानेमें (Renderer) इस यसाकी फेंक देते भीर उसे भांगसे धु-धोरे धोरे गळ कर चिह्नीमें बल-जन्के ऊपर भांगसे लकती है । यसाके हाथमें उठा कर भी चिह्नीमें (fat) सहायतासे है । यह चिह्नीविष बहलाता है । किम नरम हो जाता है । दूसरे दूसरे यगुभीकी वि-

जीवहत्याके बाद रसायनकार्य शीघ्र ही सम्पादन करना चाहिये; कारण शवदेहसे तुरत चरबी अलग न करनेसे उसके साथ संयुक्त तन्तु और मांससूत्रके साथ साथ चरबी भी सड़ जाती है।

समूचे संसारके मध्य सिर्फ रूसराज्यमें ही सर्वा-पेक्षा अधिक परिमाणमें वसा उत्पन्न होती है। उस देशके वाशिन्वे प्रायः प्रति वर्ष २५ करोड़ पौंड यजनकी वसा विभिन्न देशोंमें भेजते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग अपने देशवासियोंके व्यवहारके लिये वसा तैयार करते हैं। इतनी वसा साधारणतः यूरोपीय रूसराज्यके दक्षिणस्थ पोएटान् एपी (Pontine steppe) नामक सुविस्तृत तृणप्रान्तके मध्य हो संगृहीत होती है। वहां जितने सुवृद्ध वसाके कारखाने हैं, उन्हें salgangs कहते हैं। ये कारखाने केवल प्रेट-रूसके अधिवासियों को ही देख-रेखमें परिचालित होते हैं। वहांके कर्मचारी लोग हजारों गद्यादि पशु एक साथ खरीदते और एक वर्ष तक अच्छी तरह खिला कर उसका शरीर चरबोसे भरा देते हैं। जब वे लोग इन पशुओंको चरबी निकालनेके उपयुक्त समझते, तब सबोंको कसाई-बाडामे भगा ले जाते और वहाँ उन्हें मारते हैं।

इन सब कसाई-बाडोंमें कसाई लोगोंके बहुत-से घर हैं। उनके बीच एक निहत गोमांस-विक्रयस्थान, कितने में मांससिद्ध करनेके लिये घायल प्रतिष्ठित और किसी घरमें चमड़े रहते हैं। दूसरे कई घर वपतरखाने और कर्मचारियोंके वासमवन हैं। प्रोम्कालमें कोई भी कसाई-बाडामे नहीं रहता, केवल कुत्ते और शिकारी पक्षिण यहाँ मांसको गंध ले बिचरते रहते हैं। प्रोम्काल की बात जाने पर वे पहले थोड़ा मोटा ताजा वैल यहाँ ला कर बध करते हैं। इसके बाद वर्षा ऋतुमें वे लोग यथार्थरूपसे कार्यारम्भ करते हैं। तब दलके दल कसाई-बाडामें पशु ला कर न्यासभावसे निहत किया करते हैं। पशु-हत्याके बाद पशुका चमड़ा उतारते और बिना चरबीवाला मांस बाजारमें बेचनेके लिये भेजते हैं। निष्ठुरतासे मारनेके कारण वह मांस इतना खराब होता, कि कोई मद्र पुष्य यह मांस नहीं खरीदते। सिर्फ दरिद्र ही खरीदता है।

अवशिष्ट शवदेहको वे लोग टुकड़ा टुकड़ा करते एवं उसे घायलर (Boiler)में डाल कर चरबी बाहर करते हैं। एक एक घायलरमें १० से १५ बैलें तकका मांस अंट सकता है। हर एक कसाई-बाडामें ऐसे ५ या ६ घायलर होते हैं। तदनन्तर कड़ाहके गातमें मांस लग कर जल उठता है, उस घायलरके मध्य वे लोग थोड़ा जल देते हैं। कड़ाहस्थित मांसास्थिको मज्जा (Soup) कहते हैं। जब कड़ाहके ऊपर चरबी गल कर उठती है, तब हट्येसे काट कर उसे पोपेमें रखते हैं। उसके बाद यह कस कर वैदेशिक वणिकोंके हाथ भिन्न देशोंमें भेजा जाता है। पहले जो वसा उबलाती है, वह सबोंसे सफेद और अच्छी तथा पोछेवाली वसा कुछ हल्दी रंगकी होती है। पोपेके अभावमें चमड़ेकी सिलाई करके एक एक थैली बनाई जाती है। दूसरी थैणोको वसा उत्थित होने पर चायलर पोतस्थ अवशिष्ट मांस और अस्थि-कलकी भयानक चापसे एक प्रकारकी निष्ठुर वसा निकाली जाती है। यह मैली गंदी वसा साधारणतः कलके चक्केमें व्यवहृत होती है।

एक मोटे ताजे वैलसे साधारणतः २५० से २६० पौंड वसा निकलती है, जिसका मूल्य १५० रुबुलसे कम नहीं होता।

इन सब पशुओंकी आंत भी भरवा दे होने नहीं पाता। वसाके व्यवसाय करनेवाले सुखर भी रखते हैं, सुखर यह आंत खाते हैं। इसके खानेसे सुखरकी भी चरबी बढ़ती है। पीछे इन सुखरोंकी भी चरबी निकाली जाती है।

वसाके ध्यवसायी लोग सफेद और हल्दी रंगकी वसाके मध्य जो पीया बत्तोंमें और जो साबुन बनानेके काममें आता है, उसे अलग कर बेचते हैं।

जीव-शरारकी स्थान विशेषज्ञत चरबी कड़ी और मुलायम होती है। यूकफ (गुरदा) की पार्श्वस्थ चरबी स्वमायम होती है। यूकफ (गुरदा) की पार्श्वस्थ चरबी स्वमायम होती है। लेकिन अस्थिगहृके मध्य जहाँ जहाँ चरबी उत्पन्न होती है, वह उससे बहुत मुलायम होती है। इसके अलावे मांसपेशी और अग्न्यायन कमनीय देहांश-में जो चरबी रहती है, वह सबोंसे कोमल होती है और उसमें आधा तेल मिला हुआ रहता है। इस तरह जीवदेहके भी भारतभ्यानुसार वसा कड़ी और मुलायम होती

है। दैत्य और गीर्वाणों का बोधसे बहरे, हरिण आदि कोमल पशुओंको चरको मुखायम होतो है और घोड़े तापसे मर जातो है। ७२ में ६३ छिद्रों तापसे समी चरको मर जातो है।

भौतिक कार्य समाप्त करने जानेमें भी ज्ञानोप पशु पक्षों आदिको वसाका आवश्यक होता है।

प्रसुरप, माना आनिके पक्षी तथा जलमर मरुत्प-भकादिके जनेरमे विभिन्न प्रकारको वसा उत्पन्न होतो है। इन सब वसाओंके गुण और स्वादत्या वैषम्याग्र-से निम्ने है।

वसाचंतु (सं० पु०) एक प्रकारके वसाचंतु जो पश्चिममें उद्भू होतो है और जिनको वृंछका विस्तार उत्तरकी ओर होता है। ये देवतेमें स्निग्ध जान पड़ते हैं और इनके उद्भवेमें सुमिश्र होता है। (३० व० ११२६)

वसाट्टय (सं० पु०) वसया आट्टयः प्रचुरवसावत्यादस्य तथायत् । जिगुमार, सूंस । शुक्ल देतो।

वसाट्टयः (सं० पु०) जिगुमार, सूंस । (Dolphinus Gangeticus )

वसाति (सं० स्त्री०) उत्तरके एक जनपदका नाम। (पु०) २ वसाति नामक जनपदका अधिपामो। ३ जन्मे-जयके एक पुत्रका नाम। ( भारत भादिप०) ४ इत्याकु-के एक पुत्रका नाम। (हरिपंच)

वसातिक (सं० पु०) वसाति नामक उत्तर जनपदका अधिपामो। (५० व० १४२५)

वसातोप (सं० स्त्री०) १ वसाति ज्ञानि-सम्यग्धोप। (पु०) २ वसातिराज।

वसादन्तो (सं० स्त्री०) पोतगिं'गपा, पोला जीजम।

वसापापित् (सं० पु०) वसां पिपत्तोति या-पिति। कुषकुट, कुत्ता।

वसापापन (सं० पु०) एक प्रकारके वैदिक देवता, पशु-माता। (शुक्लपु० ६।१६)

वसामय (सं० स्त्री०) वसा स्वरूपे मयट् । वसाभ्यरूप।

वसामूर (सं० पु०) एक जनपदका नाम।

वसामेह (सं० पु०) एक प्रकारका मेहरोग जिनमें मूत्र-के साथ गन्धो मिल कर निकलतो है। आयुर्जिक दार्ढ्यो विचिरसामे मेह बहुमूलका मेह है। इनमें मूत्रके साथ

प्ररोक्ता सन निकलता है और रोगी [बहु-सोन] हो जाता है।

वसामेदिन् (सं० स्त्री०) वसामेदिविनिष्ट धाति, यह वसामेह रोग हुआ हो।

वमार (सं० स्त्री०) १ इच्छा। २ वग। ३ समिपय।

वमारोद (सं० पु०) छलिका, कुकरमुस्ता, गुनी।

वसापि (सं० स्त्री०) वसुसमुद्र। "वसापिमिन्द्र धारव" (भृ० १०३३७) "वसाप्यां वसुसमुद्र" (भारव्य)

वसि (सं० पु०) वस्ने भाच्छाद्यवत्पनेन वस्यते आच्छान-पूर्वक धियते इति या वस आच्छादने ( परिहृत्पन्त्रोति।

उप्य । ४।३६) इति इ। वसत, वसत।

वसिक (सं० स्त्री०) शूय्य। वसिक देतो।

वसितव्य (सं० स्त्री०) परिधानयोग्य, पहननेके कारित।

वसित्व (सं० स्त्री०) आच्छादयित्, वस्नेने हुकनेवाना।

वसिन् (सं० पु०) वसा, मेद।

वसिर (सं० स्त्री०) वस किरन् । १ सामुद्र-लपण। २ गज-पिप्लो। (पु०) ३ लाल रंगका अपामार्ग, लाल चिपड़। ४ वारिनिम्ब, जलनोम।

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टाश्रानि। श्रम्येदेके ७८ मण्डलका अधिकांश श्रुक् हो वसिष्ठ रचित था वसिष्ठका द्रष्ट है। वसिष्ठके जन्म-मन्वन्तमें वृद्धेपता नामक वैदिकप्रथमें इस प्रकार लिखा है—

यह रूपधर्म उर्ध्वनीको देत कर मित और वदम इन दोनों धादित्वोका रेतःस्यलित हुआ। यह रेत वस-तोयर नामक यक्षीय कुम्भमें गिरा। उसमें क्षण भरमें भगवत्प और वसिष्ठ नामक दो पीर्पावान् तपस्वी श्रानि भाषिभूत हुए। यह रेत कलसमें, जलमें और पथमें गिरा था। अद्विसत्तम वसिष्ठमुनि रूपधर्म, भगवत्प कुम्भसे और महाद्युति मरुत्प जलमें उत्पन्न हुए थे। जलके टाल निचे जाने पर वसिष्ठ पुत्ररमें (जलमें) थे, उस समय देवताओंमें समी दिग्गामीने उस जलमें उतरी पारण किया था। शुकसंहितामें वसिष्ठकी उत्पत्तिके माध्वधर्म इस प्रकार लिखा है—

हे वसिष्ठ! तुम मित और वरुणके पुत्र हो। हे मरुन्! उर्ध्वनीके मनमें तुम उत्पन्न हुए हो। जह (मित और वरुणका) रेतःस्यलन हुआ था, उस समय

विश्वेदेवोंने देव्यस्तोत्र द्वारा पुष्करमें तुमको धारण किया था। ब्रह्म ज्ञानसम्पन्न वसिष्ठने दोनों (लोक)-को जान कर सहस्र दान किये थे। यम द्वारा विस्तीर्ण बलवयन करनेकी इच्छासे वसिष्ठने उर्वशीसे जन्मग्रहण किया था। सनसे प्रार्थित हो कर मिल और वरुणने कुम्भके मध्य युगपत् रेतःसेक किया था। अनन्तर मध्यसे मानका प्रादुर्भाव हुआ। लोग कहते हैं, कि वसिष्ठऋषि भी उसीसे उत्पन्न हुए थे।

( श्रुवेद ७३३।११-१२ )

वसिष्ठ किस प्रकार ऋषि हुए, इस सम्बन्धमें ऋग्वेद- ( ७।८।३-४ ) में इस प्रकार लिखा है—

जब मैं ( वसिष्ठ ) और वरुण दोनों नाव पर चढ़े थे, जब समुद्रके मध्य नाव बड़ी तेजीसे जा रही थी, उस समय, शोभा बढ़ानेके लिये मैं, हिंडोले पर बड़े ध्यानन्दसे खेल करता था। वरुण वसिष्ठको नाव पर ले गये थे, अपने महातेजसे उन्होंने निज सुकर्मा द्वारा वसिष्ठको ऋषि बनाया था। उनका दिन और उपा वृद्धित होयें, इस प्रकार स्तय करेगें, इसीसे सुदिनमें उन्हें स्तोता किया था।

ऋग्वेदसे मालूम होता है, कि वसिष्ठ और उनके वंशधरगण सुदास-राजके पुरोहित थे। सुदास पित्रवनके पुत्र, देववतके पील और दिवोदासके वंशधर थे। वसिष्ठने पैत्रवन सुदासके पौरोहित्य कालमें राजासे प्रचुर धन-रत्न पाया था। ऋग्वेदमें सुदास पैत्रवनके दानस्तुति-विषयक सूक्त देखे जाते हैं, वसिष्ठ ही उस सूक्तके ऋषि हैं। ( श्रुवेदमें ७ मण्डल १८ सूक्त )

ऋग्वेदके ७ म मण्डलके ३३वें सूक्तमें लिखा है—  
तृणातुर राजाओंसे परिदृत वृष्टिप्रार्थी वसिष्ठोंने वंश-राजाओंके साथ संस्राममें आदित्यकी तरह इन्द्रको ऊपर उठाया था। इन्द्रने स्तुतिकारी वसिष्ठका स्तोत्र सुना था तथा राजाओंके लिये विस्तीर्ण लोक प्रदान किया था। गोलके दण्डकी तरह भरतगण ( शत्रुगण ) परि-छिन्न और अव्यसंख्यक थे। अनन्तर वसिष्ठ उन्हींके पुरो-हित हुए तथा तृप्तसुओंकी प्रभा वृद्धि-होने लगी। यदा वसिष्ठ भरतोंके भी पुरोहित होते हैं।

पैतरेय ब्राह्मण ( ८।२१ ) में लिखा है, वसिष्ठने

येन्द्र महाभिषेक द्वारा सुदास पैत्रवनको अभिषिक्त किया था। इसीसे सुदास पैत्रवनने समस्त पृथ्वी जय कर अव्यमेध यज्ञ किया था।

वसिष्ठ सुदासके पुरोहित होने पर भी सौदास या सुदासके पुत्रोंने उनके सौ पुत्रोंका प्राणसंहार किया था। इस विषयको ले कर बृहदेवतामें लिखा है,—

महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंका निधन कर एक जिवांसु राक्षसने वसिष्ठका रूप धारण कर उनसे कहा था, 'तुम राक्षस हो, मैं वसिष्ठ हूँ।' इस उपलक्षमें वसिष्ठने बहुत-से ऋक् देखे थे। वही ऋक्संहिताके ७म मण्डलमें १०४ सूक्तमें १२से १६ संख्यक मन्त्र हैं। इनमेंसे १६वें ऋक् में स्पष्ट लिखा है—

“यो मायात् यातुधानेत्याह ये वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।

इन्द्र स्तं इत्यु महाता वषेन विन्वत्य जन्तोरकम्पदौष्ट ॥”

जो 'यातुधान' (राक्षस) कह कर मेरा सम्बोधन करता है तथा जो राक्षस 'मैं शुचि हूँ' यह बात कहता है, इन्द्र महा आयुध द्वारा उसका विनाश करे, वे सब अधम हो कर पतित होयें।

वसिष्ठका वेदमें इस प्रकार उल्लेख देख कर अध्या-पक सुंदर साहवने लिखा है—“वसिष्ठ परवर्त्तौ वैदिक-प्रथमं ब्राह्मण कह कर गण्य तो हुए हैं, परन्तु यद्यार्थमें वे ब्राह्मण नहीं थे। उनके जन्मके सम्बन्धमें गोलमाल था, इसी कारण कहीं तो वे ब्रह्माके मानसपुत्र, कहीं मित्रावरुण और कहीं उर्वशीके पुत्र कह कर अभिहित हुए हैं।”

अध्यापक मोक्षमूलरने वेदका प्रमाण उद्धृत कर इन्हें आर्य ब्राह्मण ही बतलाया है। उनके मतसे वेदमें वसिष्ठ मित्रावरुणके पुत्ररूपमें वर्णित होने पर भी मित्र या सूर्य ही समझे जाते हैं।

हृण्य यजुर्वेद वा तैत्तिरीय संहितासे मालूम होता है, कि सौदाससे जब वसिष्ठके पुत्र मारे गये, तब उन्होंने बदला लेनेके लिये चेष्टा की।

कौपीतकी ब्राह्मण ( ४४ अध्याय ) में भी इसी प्रकार वसिष्ठके पुत्रलाम और सौदास-परामवकी बात लिखी है। मनुसंहिता ( ८।११० ) में लिखा है, कि महर्षि-गण और देवगण कार्यसम्पादनके लिये श्राय्य खाया करते थे। इस प्रकार वसिष्ठ ऋषिने भी पैत्रवनराजाके लिये



है। येव गौर जोड़ेकी चारबोने बहरे, हरिण आदि कोमल पशुभोंकी चारबो मुखायम होती है और सोड़े तापमें गल जाती है। ७२ से १२ डिग्री तापमें सभी चारबो गल जाती है।

भौतिक कार्य समाप्त करने जानेमें गौ जानाव पशु पत्नी भर्तृकी चमका आवश्यक होता है।

प्रचुर, मात्रा जतिके पशो तथा जलधर प्रत्येक-जन्तुके जोरमें विभिन्न प्रकारकी चरता उत्पन्न होती है। इन सब चरतामेंके गुण और स्वात्मका वैधकताय-ने लिखे हैं।

चरताकेतु ( सं० पु० ) एक प्रकारके भूमकेतु जो पृथिवीमें उर्य होने हैं और जिनके पूँछका विस्तार उत्तरकी ओर होता है। वे देशमेंके विभिन्न जग पड़ते हैं और इनके उत्पत्ते सुनिधि होता है। ( १० व० ११, २६ )

चरताण्ड ( सं० पु० ) चरता आण्ड्या प्रचुरचरतापरवाण्ड्य तथाण्ड्य । जिग्मार, मूस । शुशुक देणो।

चरताण्डक ( सं० पु० ) जिग्मार, मूस । ( *Dolphinus Gauceticus* )

चरताणि ( सं० स्त्री० ) १ उत्तरके एक जलपशुका नाम । ( पु० ) २ चरताणि नामक जलपशुका अघियासो । ३ जन्मे-जवके एक पुत्रका नाम । ( भारत भासिप० ) ४ इत्याकु-के एक पुत्रका नाम । ( हरिवंश )

चरताणिक ( सं० पु० ) चरताणि नामक उत्तर जलपशुका अघियासो । ( १० व० १४, २५ )

चरताणोव ( सं० स्त्री० ) १ चरताणि जानि-सम्बन्धीय । ( पु० ) २ चरताणिक ।

चरताणो ( सं० स्त्री० ) चरताणि ज्ञाया, चीला जोनाम ।

चरताणियन् ( सं० पु० ) चरताणि विपणोति पा-जिनि । कुण्डुर, कुता ।

चरताणायन ( सं० पु० ) एक प्रकारके वैदिक देवता, पशु-माता । ( शुक्लसू० १, १६ )

चरताणव ( सं० स्त्री० ) चरता स्वरूपे मयट् । चरताण्डक ।

चरतामूर ( सं० पु० ) एक जलपशुका नाम ।

चरतामेह ( सं० पु० ) एक प्रकारका मेहरोग जिसमें मूत्र-के साथ चारबो मिन बर निकलती है। आधुनिक आकुरी (विकार)में यह बहुमुत्रका भेद है। इसमें मूत्रके साथ

जलोत्का सत निकलता है और रोगी बहुत क्षीन हो जाता है ।

चरतामेहिन ( सं० स्त्री० ) चरतामेहविनिष्ठ चरति, यह चरते चरतामेह रोग हुआ हो ।

चरता ( सं० स्त्री० ) १ इच्छा । २ चरता । ३ चरताय ।

चरताण्ड ( सं० पु० ) चरताणि, कुण्डुर, मूसो ।

चरतायि ( सं० स्त्री० ) चरतामूर । "चरताणामिन्द्र चरतायि" ( श्व १०, ३३ ) "चरतायि चरतामूर" ( भाष्य )

चरति ( सं० पु० ) चरते आच्छाद्यवत्पनेन चरपने आच्छाद्यन पूर्वक चिपते इति या चरत आच्छाद्यने ( पक्षिचरतायि ) उच्य । ४, १३६ इति । चरत, चरत ।

चरतिक ( सं० स्त्री० ) शूण्य । चरतिक देणो ।

चरतिचय ( सं० स्त्री० ) परिपानयोग, चरतनेके काचित् ।

चरतिवृ ( सं० स्त्री० ) आच्छाद्यवित्, चरतसे टकनेवाला ।

चरतिन ( सं० पु० ) चरता, मेह ।

चरतिर ( सं० स्त्री० ) चरत चरतिर । १ सामुद्र-नवण । २ चर-पिण्णो । ( पु० ) ३ साल रंगका अणामां, लाल चिपटा । ४ चरतिरिचय, जलतोम ।

चरतिष्ठ—एक प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टाश्रुति । श्रुतेके ७२ मण्डलका अघिकांठ श्रुत्तौ चरतिष्ठ इति या चरतिष्ठोका दृष्ट है। चरतिष्ठके जन्म-सम्बन्धमें चरदेवता नामक वैदिकप्रथमं इस प्रकार लिखा है—

चररूपमें उर्यगोको देव कर मित और चरत इन दोनों आदित्योका रेतःस्यजिते हुआ । यह रेत चर-गोवर नामक यक्षीय कुम्भमें गिरा । उसमें क्षण मारी अणुस्य और चरतिष्ठ नामक दो योर्घोषात् तवस्थो अघि भाविमूर्त दृष्ट । यह रेत बलसमें, जलमें और धलमें गिरा था । अघिसमय चरतिष्ठगुण रूपमें, सगल्प कुम्भमें और महाद्युति मरुत्प जलमें उरगन दृष्ट थे। जलके धाल लिये जाने पर चरतिष्ठ पुत्रार्ये ( उर्ये ) थे, उस समय देवताओंमें सारी दिग्गोत्रोते उर्य जलमें उरही धारण किया था । शुक मुदिगामे चरतिष्ठो रत्नासके मरुत्थमें इस प्रकार लिखा है—

हे चरतिष्ठ ! तुम मित और चरतके पुत्र हो । हे प्रह्व ! उर्यगोके प्रथमे तुम उरगन दृष्ट हो । तब ( मित और चरतका ) रेतःस्यजन हुआ था, उर्य समय

गये और उनसे कहा 'मैंने नीलपर्वत पर दृविष्याशी तथा संवमी हो देवी तारिणीको आराधना की। परन्तु जब कृपा मुझ पर न हुई, तब सिर्फ एक गण्डूप जल पो कर अथुत वर्ष तक फिरसे देवीकी कठोर आराधना की। किन्तु जब देखा, कि इतने पर भी देवी प्रसन्न न हुई, तब मैंने नीलपर्वत पर एक पदसे दण्डायमान हो परम समाधि अवलम्बन कर निराहार रह देवीके ध्यानमें हजार वर्ष बिताया। इतना ही नहीं, उसी प्रकार कठोर भावमें दश हजार वर्ष कामाख्यामें भी बिताया; किन्तु आज तक कोई अनुग्रह मुझे देलनेमें नहीं आता। अतएव दुःसाध्या इस विद्याको मैं वड़े दुःखके साथ त्याग करता हूँ। ब्रह्माने वशिष्ठको सान्त्वना देते हुए कहा, 'वशिष्ठ! तुम फिरसे नीलाचल पर जाओ, वहाँ रह कर कामाख्या योनिमें उस परमेश्वरीकी आराधना करो। अति शीघ्र तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा।' मुनिवर वशिष्ठने पिताके वचन सुन कर हजार वर्ष तक ताराकी आराधना की, परन्तु इतने पर भी महेश्वरी ताराकी उन पर कृपा न हुई। अनन्तर मुनिवरने कुड़ हो कर देवीको श्राप देनेके लिये जल ग्रहण किया। वशिष्ठकी क्रोध देख कर वन-कानन पर्वतादिके साथ सारी पृथ्वी कांपने लगी, समस्त देव और देवियोंके मध्य हाहाकारकी ध्वनि होने लगी। तब संसारतारिणी तारादेवी वशिष्ठ मुनिके पुरोभागमें आविर्भूत हुई। मुनिवर वशिष्ठने उन्हें देख कर बहुत कठोर शाप दिया। अनन्तर कष्टसिद्धिदात्री तारिणीने वशिष्ठ मुनिसे कहा, 'मुनिवर! क्रोधके आवेगमें क्यों मुझे अभिशाप देते हो। मेरी आराधनाप्रक्रम एकमात्र बुद्धरूपी जनादर्नके सिया और कोई नहीं जानते। तुमने विरुद्धाचारका आश्रय कर व्यर्थ ही मेरी आराधनामें हजारों वर्ष बिताये, वास्तविक तत्त्वका तुम्हें कुछ भी पता नहीं। अतएव अभी बुद्धरूपी विष्णुके निकट जाओ और उनसे मेरा आराधनाक्रम अच्छी तरह जान कर फिरसे मेरी आराधनामें लग जाओ, तब निश्चय ही मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँगी।'।

वशिष्ठ देवीको प्रणाम कर महाचीन देशको चल दिये। हिमालयके पार्श्व देशमें लोकेश्वरसेचित तथा मद्मत्त सहस्र कामिनिघोसे परिवेष्टित मदिरापानसे मद्-

मन्थरलोचन बुद्धदेवको देखते ही वे विस्मित हो गये। उन्होंने मन ही मन संसारतारिणी ताराको स्मरण कर कहा, कि बुद्धरूपी विष्णुने यह कौन-सा आचार अवलम्बन किया? यह तो देव और देवाचारविरुद्ध है। इसी समय देववाणी हुई, 'हे मुने! तारिणीका परमार्थिन यह आचार है, इसके विरुद्धाचारसे वे प्रसन्न नहीं होतीं; अतएव यदि तुम उनका अनुग्रह चाहते हो, तो इसी आचारसे उनका भजन करो।' यह आकाशवाणी सुन कर मुनिवर वशिष्ठ दण्डयत् भूमि पर गिर पड़े, पीछे उठ कर कृताञ्जलिपुटसे बुद्धरूपी विष्णुके निकट गये। मद्मत्त प्रसन्नात्मा बुद्धने उन्हें देख कर पूछा, 'तुम किस लिये यहाँ आये हो?' मुनिने भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तारिणीकी आदेशवाणी कह सुनाई। भगवान् बुद्धने कहा, 'मुनिवर! यद्यपि यह आचार अप्रकाश्य है, तथापि मैं तुम्हें जो कहता हूँ, सुनो,—तारादेवीका आचारानुष्ठान करनेसे संसारमें फिर आना नहीं पड़ता। इस आचारसे स्नानादि सभी मानसिक तथा सभी काल शुभ हैं, अशुभ काल कोई भी नहीं। इस आचारमें शुद्धि आदिकी अपेक्षा तथा मद्यादिका दोष नहीं है। सर्वदा क्या स्नात क्या अस्नात, क्या भुक्त क्या अभुक्त सभी समय देवीको पूजा कर सकते हो, इत्यादि प्रकारसे अनेक महाचीनाचार-क्रमका उन्हें उपदेश दिया।' पीछे महामुनि वशिष्ठने बुद्धरूपी हरिका वाक्य सुन कर फिरसे उन्हें पूछा, 'प्रभो! तुम तत्त्वज्ञानमय हो, इस महाचीनाचारक्रममें लो और मद् दोनों ही समत हैं; किन्तु इन दोनोंमें कौन प्रधान है?' बुद्धदेवने उत्तर दिया, 'मुने! इस आचारमें दोनों समान होने पर भी स्त्राके शरीरमें अनेक देवताका वास है, इस कारण स्त्री ही प्रधान है।' तत्त्वज्ञ भगवान्ने इन दोनोंके बहु गुणकीर्त्तन तथा कौलिकोंके मांस और कुलाचार द्रव्यके लक्षण और माहात्म्य तथा समग्र महाचीनाचारक्रमका वर्णन किया।

मुनिवर वशिष्ठने वह सब जान कर उसी आचारका अवलम्बन किया तथा संवत्चित्तसे वे देवीका आराधनामें लग गये। कुछ दिन बाद नीलाचल पर देवी-महामाया ताराने दर्शन दे कर कहा, 'वत्स वशिष्ठ! वर

शपथ बतर्ही थी। शपथ बची बार्ही थी मनुदेवकी बुन्दूक-  
में इस प्रकार लिखा है,—

विश्वामित्रने जब वसिष्ठके स्त्री पुत्रोंको ब्याजला,  
तब उर्हीने कूट हो मर्गो परिगुप्तिके लिये विप्रवचनके  
पुत्र सुदामन् राजाके निकट शपथ की थी।

यही बुन्दूकने विश्वामित्रको राज्ञम बतसाया है और  
सुदामन् राजाका नाम लिखा है; किन्तु येम्में ऐसी बात  
नहीं है। विश्वामित्रने स्त्री पुत्र महान् नहीं किये थे,  
एक राजामने उर्ही महान् कर मर्गोको वसिष्ठ दत्तलानेकी  
पेक्षा की थी। ३१०४।१२ श्रक.के भाष्यमें सायणा-  
चार्यने वृद्धेयताका मत उद्धृत कर दिखलाया है, पहले  
यह बात कही जा चुकी है। फिर विप्रवचनके पुत्रका नाम  
सुदामन् नहीं, सुदाम था।

शब्दायन ब्राह्मणमें लिखा है, कि (वसिष्ठके पुत्र) शक्ति-  
में श्रीदाम कर्तृक बनिमें निहित होनेके समय प्रगाय-  
का शैलान पाया था। अद्भुत श्रक. शोलनेके अन्तिम  
मगधमें ये दम्प ब्रह्म तथा वसिष्ठने पुत्रोक्त श्रक.को  
सम्पूर्ण उच्चारण किया था। इस प्रकार वसिष्ठने मर्गो  
शपथकी रक्षा की थी।

काण्डमें लिखा है, कि श्रविण्य इन्द्रको प्रत्यक्ष देख  
न मके। परमात्त वसिष्ठने ही उर्ही देखा था। पीछे  
वसिष्ठ वही श्रविणके नामने उन (इन्द्र)-का विषय वर्णन  
न करे, इस भयसे उर्हीने वसिष्ठके निकट आ कर  
परामर्शमें कहा, 'मैं तुमको ब्राह्मण लोकार करता हूँ, तुम  
मेरा विषय इन श्रविणोंके सामने न कहना। पीछे श्री  
अनंतेम, ये हो तुम्हें पीरोहितरथमें धरण करोगे।' यही  
कारण है, कि इन्द्रने वसिष्ठको स्तोमनाम बद्द दिया था।

षड्विंश-ब्राह्मण (१।३६)-में लिखा है, कि इन्द्रने  
विश्वामित्रको उक्थ और वसिष्ठको ब्रह्म कहा है। उक्थ  
हो वाक् है यही विश्वामित्र है तथा ब्रह्म ही मन है, यही  
वसिष्ठ है। यही कारण है, कि षड मग्न हो वसिष्ठका  
निकटन है।

पुण्यमें बलिष्ठ।

येम्में विश्वामित्र और वसिष्ठका समझ रहने पर भी  
बही भी वसिष्ठके भाषणमें राजा विश्वामित्रके जाने बर्त  
होनेके विषयका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

वृद्धेयता (४।२२)-में लिखा है, कि परवर्ती विश्व-  
मितमेव शार श्रक. है, वसिष्ठगण उन चारों मन्त्रोंको  
न धुनेंगे, यही उन लोगोंके आचार्यका मत है।

इस प्रकार विश्वामित्र और वसिष्ठके मध्य परस्पर  
विद्वेषका आभास रहने पर भी वसिष्ठका वैश्वेय देव कर  
विश्वामित्रको इषा तथा उससे उनके ब्राह्मणपर-स्वामकी  
बात भी येम्में देतामें नहीं मिलती। रामायण, महा-  
भारत और पुराणादिमें इसका विस्तृत विवरण देवनेमें  
आता है। विश्वामित्र उर्हीने विसृज्य विरच्य देलो।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि दक्षकी कन्या ऊर्जाके  
मर्गसे रत्न, गाव, ऊतुर्ध्वपाहु, सपन, मन्थ, सुतथा और  
शुक ये सात सप्तर्षि उत्पन्न हुए। भागवतपुराणके मतमें  
वसिष्ठकी दूसरी स्त्रीके मर्गसे शशव नामक एक पुत्रने  
अन्नमहण किया। मनुस्मृतितामें वसिष्ठकी अज्ञानता  
नाम्नो एक और पत्नीका उल्लेख मिलता है। धराभारता  
विभक्त कुलकी होने पर भी मर्गोंके गुणने उन्नत हो  
गर्ही थी।

"वाग्नु गृधेन मर्गो श्री म'पुत्रने मर्गादिभि।"

वाग्नु गुण्य वा मर्गो उर्हीदेव विष्णवः।

मन्त्रमत्ता शक्तिष्ठेन उ'कुलउपमर्गोनिभा ॥"

(मनु ६।२२-२३)

महाभारतमें वसिष्ठकी प्रधान पत्नीका नाम मर्द-  
व्यकी कहा है। रामायणमें लिखा है, कि वसिष्ठके  
द्वंद्वारसे विश्वामित्रके स्त्री पुत्र दम्प हुए थे। रामायण  
और महाभारतमें मान्युम होता है, कि इक्ष्वाकु-पुत्र विविमें  
सूर्यवंशीय राजाओंके ये'जपरपरा पुरोहित वसिष्ठ  
थे। विष्णु और ब्राह्मणपुराणके मतसे एम द्वारमें  
वसिष्ठ ध्यामहणमें मर्गोको हुए थे। उनी पुराणमें एक  
अन्य लिखा है, कि वसिष्ठ आषाढ मासमें सूर्यके रथ पर  
रहने थे।

उर्हीमें बलिष्ठ

महाध्वोनाधारक्रम मन्त्रमें इन प्रकार लिखा है—

सूर्यकासमें ब्रह्मके मातृता पुत्र विप्रवचनी बलिष्ठ  
मुनिने शोलाचन पर ताराध्वोको आशयता की थी।  
मनुज धर्मे भारवचना करने पर मा तारा ध्वो प्राप्त न  
हुरे। अनन्तर मुनिवर कल्पन क'यही ब्रह्मके निकट

ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्युष और प्रभास ।  
ये आठ प्रसिद्ध अष्टवसु हैं ।

ऋग्वेदसंहितामें वसुओंका उल्लेख देखा जाता है ।  
पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें इनको सख्या आठ बतलाई गई  
है । इन देवताओंके प्रभाव तथा कार्यकारिताके सम्बन्धमें  
महाभारतके भीष्मोपाख्यानमें यथेष्ट वर्णन किया गया है,  
किन्तु वैदिक विवरणके अनुसरण करनेसे मालूम होता  
है, कि ये एक एक प्रकृतितत्त्वके निवासभूत देवता थे ।  
हम लोग ऋक्संहिताके किसी किसी स्थानमें वसुओंको  
आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रभास तथा  
प्रत्युष प्रभृति प्रकृतिपुत्रके निवासक कर्तृरूपमें देखते  
हैं । रामायणमें इन वसुओंका वर्णन अदिति-पुत्र कह  
कर किया गया है । ऋक्संहिताके २२७।१, ७।५२।२, २,  
८।१८।१५में वे आदित्य कह कर वर्णन किये गये हैं । फिर  
कहीं कहीं ये अग्नि ५।६।१, ५।२४।२, ५।५१।१३, कहीं पर  
मरुद्गण ५।५५।८, ६।५०।४, ७।३६।१७, कहीं इन्द्र १।११।०७,  
४।३२।१४, ७।३१।३, कहीं पर ऊषा ५।६४।१, कहीं अश्विन  
१।१५।८।१, कहीं पर रुद्र १।४३।५ एवं कहीं पर वायु  
४।४०।५ रूपमें वर्णित हैं । उक्त संहिताके १।१६।३।२ मन्त्र  
से मालूम होता है, कि वसुओंने सूर्यसे अश्वका निर्माण  
किया था । २।३४ मन्त्रमें इनके घृताक्त वर्हिमें ( अग्नि  
स्वरूप ) उपवेशन करनेका आज्ञाहन किया है । वाज-  
सनेय संहिताके ५।११ मन्त्रमें ये अष्ट संख्यक गणदेवता,  
२।५ तथा १।१।५, मन्त्रोंमें आदित्य तथा रुद्र। ८।१८ मंत्रमें  
निवासप्रद देवगण एवं अथर्ववेदके "अस्मिन् वसु, यसवो  
धारयन्तिन्द्रः पुषा यदणो मितो अग्निः । इममादित्या उत  
विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" ( १।६।१ )  
मंत्र पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उक्त गणदेवता  
पृथ्वीके नियन्ता थे । ये धनरक्षक एवं इन्द्र तथा अग्नि  
प्रभृतिके अनुगत सहकारो थे । सायणाचार्यने उक्त मन्त्र-  
के भाष्यमें वसुओंको इस प्रकार व्युत्पत्ति की है :—

'अस्मिन् जने सर्वसम्पदाति फलकामे वसवः निवास-  
हेतुभुता पतत्संज्ञा देवा । वसु अमिलयितं धनं धारयन्तु  
स्थापयन्त । धूष धारणे अस्मात् पिब वसव इति । वस  
निवसि । श स्तु हिन्दित्वप्यसि वसि हिन्दित्विबिभ्यम-  
निभ्यश्च (उप्य १।११) इति उपत्ययः । तत्र धान्ये पिबु

(उप्य १।१०) इत्यनुवृत्तेः त्रित्यादिर्नित्यम् इति आद्य-  
दात्तत्वम् ।' वसुओंके इस घनाधिपत्यके कारण  
ये परवर्षिककालमें विष्णु तथा कुबेरके रूपमें कल्पित  
हुए हैं ।

ये वसुगण पितृविशेष हैं । मनुसंहितामें लिखा है,  
कि ब्राह्मकालमें पितृगणका वस्वादिरूपमें ध्यान करना  
होता है ।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—इक्षु प्रजापतिने पद्ममन्वन्तर-  
में द्वितीय जन्ममें अस्मिन्नोके गर्भसे ६ कन्याएँ उत्पन्न कीं ।  
ये सब कन्याएँ प्रजापतिगणको प्रदत्त हुई थीं ।  
उनमें धर्मको दश कन्याएँ दान की गईं । उन दश कन्याओं-  
के नाम जैसे—मानु, लम्बा, ककुत्, यामि, विश्वा, साध्या,  
मरुत्वती, वसु, सुहृता तथा संकल्पा । इनके मध्य वसु-  
नाम्नी कन्याके गर्भसे ८ पुत्र उत्पन्न हुए । ये आठों पुत्र  
ही अष्टवसु हैं । इन अष्टवसुके नाम जैसे—द्रोण, प्राण,  
ध्रुव, अर्क, अग्नि, दीप, वास्तु तथा विभावसु । द्रोणको  
अभिमती नाम्नी पत्नीके गर्भसे हर्ष, शोक तथा भय  
प्रभृति पुत्र पैदा हुए । ऊर्जस्वतीके गर्भसे प्राणके दो  
पुत्र हुए । उनके नाम स्तायु तथा पुरोजय । धारणी  
पत्नीसे, ध्रुवके पुर नामक एक पुत्र हुआ । वासना  
नाम्नी पत्नीसे अर्कके तर्वादि पुत्र पैदा हुए । अग्नि द्वारा  
वसुधाराके गर्भसे द्रविणक प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ।  
शर्वरीके गर्भसे दीप द्वारा एक पुत्र पैदा हुआ । यह पुत्र  
हरिका अश्वरूप था, उसका नाम शिशुमार पड़ा ।  
वास्तुको आङ्गिरसी नाम्नी पत्नीसे विश्वकर्माको उत्पत्ति  
हुई । विश्वकर्मा आशुष नामधारी, मनु द्वारा उत्पन्न हुए  
थे । मनुके पुत्र विश्वदेवगण तथा साध्यगण थे । विभा-  
वसु द्वारा ऊषा नाम्नी पत्नीके गर्भसे तीन पुत्र पैदा  
हुए । उनके नाम—उबुध, रोचिष तथा तप ।

महाभारतके द्वापयुगमें अष्ट वसुओंके नाम इस  
प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं । जैसे—धर, ध्रुव, सोम,  
साधिव, अनिल, अनल, प्रत्युष तथा प्रभास ।

अग्निपुराणमें अष्टवसुओंको नामनिर्दिष्ट तथा वर्ण-  
विवृति इस प्रकार देखी जाती है । नाम जैसे—आप,  
ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, तथा प्रभास ।  
इन्हें आपके पुत्रोंके

मांगो।' वसिष्ठ बोले, 'महामाये! यदि आपकी मुक्ति पर कृपा हुई, तो मुझे यही वर दीजिये, 'जो इस धाधार-का आश्रय कर तुम्हारी आराधना करेगा, तुम अवश्य उसके प्रति सुप्रसन्न होगी।' देवी 'तथास्तु' कह कर बोली, 'यत्स! अग्निनादि सिद्धियां तुम्हारी सर्वदा सिंघा करेंगी।' मुनिवर वसिष्ठ महामायासे इस प्रकार वर पा कर नक्षत्रलोकको चले गये और तमोसे आज तक यही दीप्ति पा रहे हैं। (चीनाचारक्रम)।

वसिष्ठ (सं० पु०) वसिष्ठ ष्टोदरादित्वात् शस्य सः।  
वसिष्ठ मुनि। (द्विलोक०)

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने इतिहास, गण्डा-न्तादि दोष विचार, प्रदशान्तिपद्धति और शान्तिविधि नामक कितने ग्रन्थ लिखे। यह शेषोक्त ग्रन्थ वसिष्ठी-शान्ति नामसे परिचित है।

वसिष्ठक (सं० पु०) वसिष्ठ ऋषि या तत्सम्बन्धो।

वसिष्ठतन्त्र (सं० क्लो०) तन्त्रभेद।

वसिष्ठत्व (सं० क्लो०) वसिष्ठके भाग या धर्म।

वसिष्ठनिह (सं० पु० क्लो०) सामभेद। (लाट्या० ३६।१२)

वसिष्ठपुत्र (सं० पु०) वसिष्ठके पुत्र या वंशपरमण। ये लोग ऋग्वेदके ७।३।१०-१४ मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। गण्ड-पुराणके पांचवे अध्यायमें वसिष्ठपुत्रोंका विवरण मिलता है।

वसिष्ठपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। इसका उल्लेख देवोभाग्यतमें है। कुछ लोगोंका कहना है, कि लिङ्गपुराण ही वसिष्ठपुराण है।

वसिष्ठप्रमुख (सं० लि०) वसिष्ठपुरतः। वसिष्ठ ऋषि जिस कार्यमें अग्रणी हों।

वसिष्ठपात्री (सं० स्त्री०) एक जनपदका नाम।

वसिष्ठगण (सं० पु० क्लो०) सामभेद। (लाट्या० १।६।३२)

वसिष्ठसंसर्प (सं० पु०) एक प्रकारका संन्यासी।

(शाश्व० घो० १।०।२।२५)

वसिष्ठसंहिता (सं० स्त्री०) १ एक स्मृतिका नाम, उन्नीस संहिताओंमेंसे एक संहिता। वसिष्ठ मुनिते यह संहिता प्रणयन की है इसीसे इसका नाम वसिष्ठ-संहिता पड़ा है। यह संहितां बीस अध्यायमें समाप्त है। इसमें पहले धर्म और धर्मके लक्षण, घणाश्रमधर्म,

सदाचार आदि अनेक विषय वर्णित हैं। २ योगवासिष्ठ। योगवासिष्ठ भो. वसिष्ठसंहिता ही कहलाता है।

वसिष्ठसिद्धान्त (सं० पु०) ज्योतिषका एक सिद्धान्त ग्रन्थ।

वसिष्ठाङ्गुश (सं० पु०) सामभेद।

वसिष्ठाङ्गुपद (सं० पु०) सामभेद।

वसिष्ठापवाह (सं० पु०) सरस्वती नदीके किनारेका एक प्राचीन स्थान। कहते हैं, कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्रके बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदीने वसिष्ठको विश्वामित्रसे बचानेके लिये इसी स्थान पर छिपा लिया था।

वसिष्ठीपेपुराण (सं० क्लो०) एक उपपुराण। देवोभाग-वतमें इस पुराणका उल्लेख है। कोई कोई इसे वासिष्ठ लैङ्गपुराण कहा करते हैं।

वसीका (अ० पु०) १ मुसलमानों धर्मशास्त्रके अनुसार वह धन जो विधर्म या काफिरसे नकद रूपके मुनाफेके तौर पर लिया जाय। २ वह धन जो इस उद्देश्यसे सरकारी खजानेमें जमा किया जाय कि उसका सूद जमा करनेवालेके सम्बन्धियोंको मिला करे अथवा किसी धर्म-कार्य, मकानकी मरम्मत आदिमें लगाया जाय। ३ ऐसे धनसे आया हुआ सूद। ४ वर्षरुका इकरारनामा।

वसीयन (अ० स्त्री०) १ वह अंतिम आदेश जो विदेश जानेवाला या मरणोत्पन्न पुरुष इस उद्देश्यसे करता है कि मेरी अनुपस्थितिमें अनुक काम इस प्रकार किया जाय। २ अपनी सम्पत्तिके विभाग और प्रबन्ध आदिके सम्बन्धमें की हुई यह व्यवस्था जो मरनेके समय कोई मनुष्य लिख जाना है, विल।

वसीयननामा (अ० पु०) वह लेख जिसके द्वारा मनुष्य यह व्यवस्था करता है कि मेरी सम्पत्तिका विभाग और प्रबन्ध मेरे मरनेके पीछे किस प्रकार हो, विल।

वसीयस् (सं० लि०) धनवान, दौलतमंद। (काठक २।५।६)

वसीला (अ० पु०) १ सम्बन्ध। २ किसी कार्यकी सिद्धिका मार्ग, जरिया, द्वारा। ३ आश्रय, सहायता।

वसु (सं० पु०) वसताति वस-उ। १ एकदश, अगस्तका पेड़। २ अमल, अमि। ३ रश्मि, किरण। ४ देवताओंका एक गण। इसके अन्तर्गत आठ देवता हैं। यथा—घर,

ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूप और प्रभास ।  
वे आठ प्रसिद्ध अष्टवसु हैं ।

ऋग्वेदसांहितामें वसुओंका उल्लेख देखा जाता है ।  
पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें इनकी सख्या आठ बतलाई गई  
है । इन देवताओंके प्रभाव तथा कार्यकारिताके मन्त्रधर्मों  
महाभारतके भीष्मोपाख्यानमें यथेष्ट वर्णन किया गया है ;  
किन्तु वैदिक विवरणके अनुसरण करनेसे मालूम होता  
है, कि ये एक-एक प्रकृतितत्त्वके निवासभूत देवता थे ।  
दस लोग ऋक्संहिताके किसी किसी स्थानमें वसुओंको  
आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रभास तथा  
प्रत्यूप प्रभृति प्रकृतिपुत्रके नियामक कर्तृरूपमें देवते  
हैं । रामायणमें इन वसुओंका वर्णन अदिति-पुत्र कह  
कर किया गया है । ऋक्संहिताके २२७।११, ७।५२।२, २,  
८।१८।१५में वे आदित्य कह कर वर्णन किये गये हैं । फिर  
कहीं कहीं ये अग्नि ५।६।१, ५।२४।२, ५।५१।१३, कहीं पर  
मरुत ५।५५।८, ६।५०।४, ७।३६।१७, कहीं इन्द्र १।१२०।७,  
४।३२।१४, ७।३१।३, कहीं पर ऊषा ५।६४।१, कहीं अश्विद्वय  
१।१५।८।१, कहीं पर रुद्र १।४३।५ एवं कहीं पर वायु  
४।४०।५ रूपमें वर्णित हैं । उक्त संहिताके १।१६।३।२ मन्त्र  
से मालूम होता है, कि वसुओंने सूर्यसे अश्वका निर्माण  
किया था । २।३।४ मन्त्रमें इनके घृताक वर्धिम ( अग्नि  
स्वरूप ) उपवेशन करनेका आवाहन किया है । वाज-  
सनेय संहिताके ५।१२ मन्त्रमें वे अष्ट सख्यक गणदेवता,  
२।५ तथा १।१।५, मन्त्रोंमें आदित्य तथा रुद्र; ८।१८ मंत्रमें  
निवासप्रद देवगण एवं अष्वर्षवेदके "अस्मिन् वसु-वसवी  
धारयन्त्विन्द्रः पुषा वरुणो मित्रो अग्निः । इममादित्या उत  
पित्रे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" ( १।६।१२ )  
मंत्र-पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उक्त गणदेवता  
पृथ्वीके नियन्ता थे । वे धनरक्षक एवं इन्द्र तथा अग्नि  
प्रभृतिके अनुगत सहकारो थे । सायणाचार्यने उक्त मन्त्र-  
के भाष्यमें वसुओंकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है :—

'अस्मिन् जने सर्वसम्पदाति फलकामे वसवः निवास-  
हेतुमुता पतत्संज्ञा देवा । वसु अमिलपितं धनं धारयन्तु  
स्थापयन्त । घृण धारणे अस्मात् णिच वसव इति । वस  
निवासे । श सृष्टि स्निहिव्यस्तिर्घासहनिहिविचिन्धि-  
निम्बश्च ( उष् १।११ ) इति उप्रत्ययः । तत् धान्ये णित्

( उष् १।१० ) इत्यनुसृतेः जित्यादिर्नित्यम् इति आद्य-  
दात्तत्वम् ।" वसुओंके इस धनाधिपत्यके कारण  
वे परवर्त्तिकालमें विष्णु तथा कुबेरके रूपमें कल्पित  
हुए हैं ।

ये वसुगण पितृवशिये हैं । मनुसंहितामें लिखा है,  
कि ध्रादकालमें पितृगणका ब्रह्मादिरूपमें ध्यान करना  
होता है ।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—दश प्रजापतिने षष्ठमन्वतर-  
में द्वितीय जन्ममें अस्मिन्कालमें गर्भसे ६ कन्याएँ उत्पन्न कीं ।  
ये सब कन्याएँ प्रजापतिगणको प्रदत्त हुई थीं ।  
उनमें धर्मको दश कन्याएँ दान की गईं । उन दश कन्याओं-  
के नाम जैसे—मानु, लम्बा, ककुत्, यामि, विश्वा, साव्या,  
मरुवती, वसु, मुहूर्त्ता तथा संकल्पा । इनके मध्य वसु-  
नाम्नी कन्याके गर्भसे ८ पुत्र उत्पन्न हुए । ये आठों पुत्र  
दो अष्टवसु हैं । इन अष्टवसुके नाम जैसे—द्रोण, प्राण,  
ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु तथा विभावसु । द्रोणकी  
अभिमती नाम्नी पत्नीके गर्भसे हर्ष, शोक तथा भय  
प्रभृति पुत्र पैदा हुए । ऊर्जस्वतीके गर्भसे प्राणके दो  
पुत्र हुए । उनके नाम स्नायु तथा पुरोजय । धारणी  
पत्नीसे ध्रुवके पुर नामक एक पुत्र हुआ । वासना  
नाम्नी पत्नीसे अर्कके तर्पादि पुत्र पैदा हुए । अग्नि द्वारा  
वसुधाराके गर्भसे द्विचिणक प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ।  
शर्वरोके गर्भसे दोष द्वारा एक पुत्र पैदा हुआ । यह पुत्र  
हरिका अश्वरूप था, इसका नाम शिशुमार पडा ।  
वास्तुकी आङ्गिरसी नाम्नी पत्नीसे विश्वकर्माकी उत्पत्ति  
हुई । विश्वकर्मा चाशुप नामधारी मनु द्वारा उत्पन्न हुए  
थे । मनुके पुत्र विश्वदेवगण तथा साध्यगण थे । विभा-  
वसु द्वारा ऊषा नाम्नी पत्नीके गर्भसे तीन पुत्र पैदा  
हुए । उनके नाम—व्युष्ट, रोचिष तथा तप ।

महाभारतके दानधर्ममें अष्ट वसुओंके नाम इस  
प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं । जैसे—धर, ध्रुव, सोम,  
सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूप तथा प्रभास ।

अग्निपुराणमें अष्टवसुओंकी नामनिर्घटिका तथा वंश-  
विवृति इस प्रकार देखी जाती है । नाम जैसे—आप,  
ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूप तथा प्रभास ।  
इनमें आपके पुत्रोंके नाम जैसे—वैतण्ड्य, श्रम, शान्त

मांगो।' वसिष्ठ बोले, 'महामाये! यदि आपकी मुक्ति पर कृपा हुई, तो मुझे यही वर दीजिये, 'जो इस आचारेका आश्रय कर तुम्हारी नाराधना करेगा, तुम अवश्य उसके प्रति सुप्रसन्न होगे।' देवी 'तथास्तु' कह कर बोली, 'वत्स! अणिमादि सिद्धियां तुम्हारी सर्वदा सेवा करेंगे।' मुनिवर वसिष्ठ महामायासे इस प्रकार वर पा कर नक्षत्रलोकको चले गये और तमोसे आज तक वही दीप्ति पा रहे हैं। (चीनत्वारकम)

वसिष्ठ (सं० पु०) वसिष्ठ ऋषीन्द्रादित्वात् शस्य सः।  
वसिष्ठ मुनि। (द्विरूपको०)

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने इतिहास, गण्डा-  
न्तादि दोष विचार, प्रहशान्तिपद्यति और शान्तिविधि  
नामक कितने ग्रन्थ लिखे। यह शेषोक ग्रन्थ वसिष्ठो-  
शान्ति नामसे परिचित है।

वसिष्ठक (सं० पु०) वसिष्ठ ऋषि या तत्सम्बन्धो।

वसिष्ठतन्त्र (सं० स्त्री०) तन्त्रमेद।

वसिष्ठत्व (सं० स्त्री०) वसिष्ठके भाव या धर्म।

वसिष्ठनिह (सं० पु० स्त्री०) सामभेद। (आख्या० ३११२)

वसिष्ठपुत्र (सं० पु०) वसिष्ठके पुत्र या वंशधरगण। ये  
लोग ऋग्वेदके ७३३१०-१४ मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। गरुड-  
पुराणके पांचवें अध्यायमें वसिष्ठपुत्रोंका विवरण  
मिलता है।

वसिष्ठपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। इसका उल्लेख  
देवोभागवतमें है। कुछ लोगोंका कहना है, कि लिङ्गपुराण  
ही वसिष्ठपुराण है।

वसिष्ठप्रमुख (सं० त्रि०) वसिष्ठपुरतः। वसिष्ठ ऋषि  
जिस कार्यमें अग्रणी हों।

वसिष्ठप्राची (सं० स्त्री०) एक जनपदका नाम।

वसिष्ठशक (सं० पु० स्त्री०) सामभेद। (आख्या० ११६३२)

वसिष्ठसंसर्प (सं० पु०) एक प्रकारका संन्यासी।

(आश्व० सू० १०२२५)

वसिष्ठसंहिता (सं० स्त्री०) १ एक स्मृतिका नाम,  
उग्नोस संहिताओंमेंसे एक संहिता। वसिष्ठ मुनिने  
यह संहिता प्रणयन की है इसीसे इसका नाम वसिष्ठ-  
संहिता पड़ा है। यह संहिता बीस अध्यायमें समाप्त  
है। इसमें पहले धर्म और धर्मके लक्षण, वर्णाश्रमधर्म,

सदाचार आदि अनेक विषय वर्णित हैं। २ योगवासिष्ठ।  
योगवासिष्ठ भो वसिष्ठसंहिता ही कहलाता है।

वसिष्ठसिद्धान्त (सं० पु०) ज्योतिषका एक सिद्धान्त  
ग्रन्थ।

वसिष्ठाङ्गुल (सं० पु०) सामभेद।

वसिष्ठानुपद (सं० पु०) सामभेद।

वसिष्ठापवाह (सं० पु०) सरस्वती नदीके किनारेका एक  
प्राचीन स्थान। कहते हैं, कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्र-  
के बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदीने वसिष्ठ-  
को विश्वामित्रसे बचानेके लिये इसी स्थान पर छिपा  
लिया था।

वसिष्ठोपपुराण (सं० स्त्री०) एक उपपुराण। देवोभाग-  
वतमें इस पुराणका उल्लेख है। कोई कोई इसे वसिष्ठ  
लैङ्गपुराण कहा करते हैं।

वसीका (अ० पु०) १ मुसलमानी धर्मशास्त्रके अनुसार  
वह धन जो विधर्मी या काफिरसे नकद रूपके मुनाफे  
के तौर पर लिया जाय। २ वह धन जो इस उद्देश्यसे  
सरकारी खजानेमें जमा किया जाय कि उसका सूद जमा  
करनेवालेके सम्बन्धियोंको मिला करे अथवा किसी धर्म-  
कार्य, मकानकी मरम्मत आदिमें लगाया जाय। ३ ऐसे  
धनसे आया हुआ सूद। ४ बफरका इकरारनामा।

वसोयन (अ० स्त्री०) १ वह अंतिम आदेश जो पिदेश-  
जानेवाला या मरणसन्न पुरुष इस उद्देश्यसे करता है कि  
मेरी अनुपस्थितिमें अनुकूल काम इस प्रकार किया जाय।  
२ अपनी सम्पत्तिके विभाग और प्रबन्ध आदिके सम्बन्ध-  
में की हुई यह व्यवस्था जो मरनेके समय कोई मनुष्य  
लिख जाता है, विल।

वसोयतनामा (अ० पु०) यह लेख जिसके द्वारा मनुष्य  
यह व्यवस्था करता है कि मेरी सम्पत्तिका विभाग और  
प्रबन्ध मेरे मरनेके पीछे किस प्रकार हो, विल।

वसोयस (सं० त्रि०) धनवान्, दीलतमं। (काठक २४६)

वसोला (अ० पु०) १ सम्यन्व। २ किसी कार्यको  
सिद्धिका मार्ग, जरिया, द्वारा। ३ आश्रय, सहायता।  
वसु (सं० पु०) वसतोति वस-उ। १ धकृष्ट, अगस्तका  
पेड़। २ अन्तः, अन्ति। ३ रश्मि, किरण। ४ देवताओंका  
एक गण। इसके अन्तर्गत आठ देवता हैं। यथा—धर,

ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूर और प्रभाम ।  
ये आठ प्रसिद्ध अष्टवसु हैं ।

ऋग्वेदसंहितामें वसुओंका उल्लेख देखा जाता है ।  
पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें इनको सख्या आठ बतलाई गई  
है । इन देवताओंके प्रभाव तथा कार्यकारिताके सम्बन्धमें  
महाभारतके भीष्मोपाख्यानमें यथेष्ट वर्णन किया गया है ;  
किन्तु वैदिक चित्रणके अनुसरण करनेसे मालूम होता  
है, कि ये एक एक प्रकृतितत्त्वके निवासभूत देवता थे ।

हम लोग ऋक्संहिताके किसा किसो स्थानमें वसुओंको

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रभाम तथा  
प्रत्यूर प्रभृति प्रकृतियुक्तके नियामक कर्तृरूपमें देखते  
हैं । रामायणमें इन वसुओंका वर्णन अदिति-पुत्र कह

कर किया गया है । ऋक्संहिताके २२७।११, ७।५२।२, २,  
८।१८।१५में वे आदित्य कह कर वर्णन किये गये हैं । फिर

कहो कहो ये अग्नि ५।६।१, ५।२४।२, ५।५१।१३, कहो पर  
मरुद्गण ५।५।८, ६।५।४, ७।३६।१७, कहो इन्द्र १।१०।७,

४।३२।१४, ७।३१।३, कहो पर ऊषा ५।६।४।१, कहो अश्विद्वय  
१।१५।८।१, कहो पर रुद्र १।४३।५ एवं कहो पर वायु

४।४०।५ रूपमें वर्णित हैं । उक्त संहिताके १।१६।३२ मन्त्र  
सें मालूम होता है, कि वसुओंने सूर्यसे अश्वका निर्माण

किया था । २।३।४ मन्त्रमें इनके घृताक वर्धिमं ( अग्नि  
स्वरूप ) उपवेशन करनेका आवाहन किया है । याज्ञ-

सनेय-संहिताके ५।११ मन्त्रमें ये अष्ट सख्यक गणदेवता,  
२।५ तथा १।१।५, मन्त्रोंमें आदित्य तथा रुद्र, ८।१८ मंत्रमें

निवासप्रद देवगण एवं अधर्ववेदके "अस्मिन् वसु वसवो  
धारयन्त्विन्द्रः पुषा वरुणो मित्रो अग्निः । इममादित्या उत

पित्रवे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" ( १।६।१ )  
मंत्र पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उक्त गणदेवता

पृथ्वीके नियन्ता थे । वे धनरक्षक एवं इन्द्र तथा अग्नि  
प्रभृतिके अनुगत सहकारो थे । सायणाचार्यने उक्त मन्त्र-

के भाष्यमें वसुओंको इस प्रकार व्युत्पत्ति की है :—  
'अस्मिन् जने सर्वसम्पदाति फलकामे वसवः निवास-

हेतुभुता पतत्संज्ञा देवा । वसु अभिलषितं धनं धारयन्तु  
स्थापयन्त । धृण धारणे अस्मात् णिञ् वसव इति । यस्म

निवासे । अ स्तु स्तिद्विद्विष्यसिर्घासहनिक्विदिवन्धिम्-  
निम्बश्च ( उष्य १।११ ) इति उप्रत्ययः । तत्र धारणे णिञ्

( उष्य १।१० ) इत्यनुवृत्तोः जित्वादिर्नित्यम् इति आद्य-  
दात्तप्रम् !" वसुओंके इस घनाधिपत्यके कारण  
वे परवर्त्तिकालमें विष्णु तथा कुबेरके रूपमें कल्पित  
हुए हैं ।

ये वसुगण पितृविशेष हैं । मनुसंहितामें लिखा है,  
कि श्राद्धकालमें पितृगणका वस्वादिरूपमें ध्यान करना  
होता है ।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—दक्ष प्रजापतिने षष्ठमन्वन्तर-  
में द्वितीय जन्ममें अस्मिन्कोके गर्भसे ६ कन्याएँ उत्पन्न कीं ।  
ये सब कन्याएँ प्रजापतिगणको प्रदत्त हुई थीं ।

उनमें धर्मको दश कन्याएँ दान की गईं । उन दश कन्याओं-  
के नाम जैसे—मानु, लम्बा, ककुब्, यामि, विश्वा, साध्या

मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता तथा संकल्पा । इनके मध्य वसु-  
नाम्नी कन्याके गर्भसे ८ पुत्र उत्पन्न हुए । ये आठों पुत्र

दो अष्टवसु हैं । इन अष्टवसुके नाम जैसे—द्रोण, प्राण,  
ध्रुव, अर्क, अग्नि, दीप, वास्तु तथा विभावसु । द्रोणको

अमिमती नाम्नी पत्नीके गर्भसे हर्ष, शोक तथा भय  
प्रभृति पुत्र पैदा हुए । ऊर्जस्वतीके गर्भसे प्राणके दो

पुत्र हुए । उनके नाम स्नायु तथा पुरोजव । धारणी  
पत्नीसे ध्रुवके पुर नामक एक पुत्र हुआ । वासना

नाम्नी पत्नीसे अर्कके तर्पादि पुत्र पैदा हुए । अग्नि द्वारा  
वसुधाराके गर्भसे द्रविणक प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ।

शर्वरीके गर्भसे दीप द्वारा एक पुत्र पैदा हुआ । यह पुत्र  
हरिका अशस्वरूप था, उसका नाम विशुमार पड़ा ।

वास्तुकी आङ्गिरसी नाम्नी पत्नीसे विश्वकर्माकी उत्पत्ति  
हुई । विश्वकर्मा चाक्षुष नामधारी मनु द्वारा उत्पन्न हुए

थे । मनुके पुत्र विश्वदेवगण तथा साध्यगण थे । विभा-  
वसु द्वारा ऊषा नाम्नी पत्नीके गर्भसे तीन पुत्र पैदा

हुए । उनके नाम—ध्रुव, रोचिप् तथा तप ।  
महामारतके ज्ञानधर्ममें अष्ट वसुओंके नाम इस

प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं । जैसे—धर, ध्रुव, सोम,  
सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूर तथा प्रभास ।

अग्निपुराणमें अष्टवसुओंकी नामनिर्दिष्ट तथा वंश-  
विशृति इस प्रकार देखी जाती है :— नाम जैसे—आप,

ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूर तथा प्रभास ।  
इनमें आपके पुत्रोंके नाम जैसे—वैतपथ्य, ध्रम, शान्त



तथा मुनि । धृषके पुत्र लोकान्तकारी कालः, सोमके पुत्र वर्याः, धरके पुत्र द्रविण, हुत, हव्यवह, शिगिर, प्राण तथा रमण ; अनिलके पुत्र पुरोजय तथा अविघ्नात ; अनि या अनलके पुत्र कुमार ; इन सबोंने शरस्वतमर्म जन्म ग्रहण किया था । शाप, विशाप तथा नैगमेय ये तीन कुमारके पृष्ठम थे । उक्त कात्तिकेय तथा यति सनत्कुमार कृत्तिका द्वारा उत्पन्न हुए । प्रत्यूषसे देवल एवं प्रभासासे विश्वकर्माका जन्म हुआ । ये विश्वकर्मा ही देवशिल्पी हैं । इनके द्वारा नाना प्रकारके शिल्पोंका आविष्कार हुआ है ।

देवोभागवतमें अष्टवसुओंका विवरण इस तरह पाया जाता है—एक समय अष्टवसु अपनी अपनी पत्नियोंके साथ स्वेच्छाविहारमें बाहर हो कर घटनाक्रमसे वसिष्ठके आश्रममें पहुँचे । पृथु प्रभृति वसुओंके मध्य धी नामक प्रधान वसुको पतनाने वसिष्ठकी नन्दिनी धेनुको देख कर अपने पतिसे उसका परिचय पूछा । स्वामी धीने उत्तर दिया—प्रिये ! इस प्रघाणा धेनुके स्वामी महर्षि वसिष्ठ हैं । नारी हो वा पुरुष, जो कोई इस धेनुका दूध पीता है, उसकी आयु अयुत वर्षकी हो जाती है । उसकी जवानी कभी नष्ट नहीं होती, दुग्धपातके गुणसे र्थावन चिर दिनों तक [एक-सा बना रहता है ।

वसुकी बात सुन कर वसुपत्नी धोली—महाभाग ! इस धेनुके दूधका जय पैसा गुण है, तब मत्तलोकमें मेरी एक सुन्दरी मन्त्री है, यह राजर्षि अशोकरकी तनया है ; उसके लिये इस नन्दिनी धेनुको ले चले । इसके दूधको पी कर मत्तलोकमें एकमात्र मेरी बड़ी सखी जरारोगहीन हो कर सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक कालयापन करेगी । पत्नीके अनुरोधसे अन्यान्य वसुओंको सहायता द्वारा वसु धीने चुपकेसे वसिष्ठकी धेनु चुरा ली ।

इधर तपोधन वसिष्ठ वनसे फल ले कर आश्रममें लौटे । आश्रममें उन्होंने नन्दिनी तथा उसके बच्चेको न देखा । वसिष्ठ सोचने लगे इन दोनोंको कौन हर ले गया ? वे उसी समय जंगल, पहाड़ तथा कन्दारमें नन्दनीकी खोज करने लगे । बहुत अनुसंधान करने पर भी नन्दिनीका पता न चला । उस समय उस श्रांत दाँत जितेन्द्रिय महर्षिके मनमें क्रोधकी अग्नि धधक उठी । उन्होंने

ध्यान करके मालूम किया, कि वसुओंने उनके आश्रमका धेनु नन्दिनीको अन्याय पूर्वक हरण किया है । इस पर मुनिके मुखसे अमोघ अभिशाप निर्गत हुआ । ऋषिने कहा—मेरी अवज्ञा करके वसुओंने जब मेरे आश्रमकी धेनुको चुरा कर ले गया है, तब उन्हें बहुत जल्द मनुष्य योनिमें जन्म लेना पड़ेगा ।

वसिष्ठने इस तरह शाप दिया, उस समय इस आश्रमका विवरण मालूम होने पर अभिशाप वसुगण दुःखित मनसे वसिष्ठके आश्रममें आ कर उनके चरणों पर गिर गये एवं ऋषिके शरणागमन हो कर अनुनय विनय कर उन्हें खुश करनेकी चेष्टा करने लगे । तब ऋषिने उनसे कहा—मेरे प्रसादसे सम्भवसरके मध्य ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे । किन्तु तुम लोगोंके मध्य जिस वसुने मेरा नन्दिनीका हरण किया था, उसे दीर्घकाल तक मनुष्य-लोकमें घास करना पड़ेगा ।

ऋषिकी बातोंमें फिर वसुओंने आपत्ति नहीं की । उन्होंने ऋषिवाक्य अंगीकार कर वसिष्ठाश्रमसे प्रस्थान किया । जाते जाते रास्तेमें उन्हें सखि-प्रवरा गंगा मिली । इस समय ऋषिके अभिशापसे वसुओंकी महिमा विलुप्त हो गई थी एवं हृदय चिन्ताज्वरसे ज्वर-रित हो रहा था । उन्होंने पावनी गङ्गाको देखते ही प्रणाम करके कहा—‘देवि ! हम लोग ऋषिके शापसे हत-माहात्म्य हो गये हैं । हाय ! हम लोग सुघामोमो दीय हो कर किस तरह मनुष्ययोनिमें जन्मग्रहण करेंगे, हमें इसकी बड़ी चिन्ता लग रही है । इसीलिये हम लोग निषेदन करते हैं, हे सखिधेने ! मातृपौ हो कर आप ही हम लोगोंका उत्पादन करें । हे निष्पापे ! राजर्षि साततनु इस समय भूमण्डलके नायक हैं । आप जा कर उनकी भाँट्याँ होये ।’ हम लोग आपके गर्भसे एक एक करके जन्मधारण करेंगे । जन्म लेनेके साथ ही आप हम लोगोंको जलमें फेंक देंगे । इस तरहसे थोड़े ही दिनोंमें हम लोग ऋषिके शापसे मुक्त हो जायेंगे । गङ्गासे इस प्रकार अनुरोध कर वसुगण अपने अपने स्थानको चले गये । गङ्गादेवी भी इस विषयकी बार बार चिन्ता करती हुई यहाँसे चली गई । ( देवीभागवत २।१२।४-५)

५ धोषक, ओत । ६ राजा । ७ घनाचिप, कुषेर ।

८ साधु पुरुष, सजान । ९ पीतमुद्ग, पीली मूँग ।  
१० वृक्ष, पेड़ । ११ पुष्करिणी, सरोवर । (विदाकौ०  
उप्यादि वृत्ति) १२ शिव । १३ सूर्य । १४ विष्णु ।

(महाभा० १३।१४।५२)

'वसन्ति भूतान्यत्र एतेषु स्वयमपीति वसुः ।' (शाङ्करभाष्य)

१५ कुल्लोन कायस्थको पञ्जैतिविशेष । १६ जडों  
द्वारा संख्या सूचित करनेकी रीतिके अनुसार आठको  
संख्या । १७ बकुल, मौलसिरी । १८ राजा वृगके एक  
पुत्रका नाम । १९ छप्पयके हो; सक्नेवाले भेदोंमेंसे  
६६वाँ भेद ।

(ह्रो०) वसत्यनेनेति वस ( वृ लृ क्तिर्होति । उष्  
१।११ ) इति उ । २० रत्न । २१ घन । २२ वृद्धी-  
पथ । २३ श्याम । २४ हाटक, सोना । २५ जल ।  
(खी०) २६ दीप्ति, आभा । २७ वृक्ष प्रजापतिको एक  
कन्या । यह धर्मकी व्याहो धी और इससे द्रोण आदि  
आठ वसुओंका जन्म हुआ था । (विष्णुपु० १।१५।१०५)  
(त्रि०) २८ मयुर । २९ शुष्क । ३० जो सबमें घास  
करता हो । ३१ जिसमें सबका घास हो ।

वसुक (सं० ह्रो०) वसुवत् कायतीति कै-क । १ सामर  
लवण । २ पांशु लवण । ३ वास्तूक, वधुआ । ४ ऊष्णा-  
गुरु, काला अगर । ५ क्षार लवण । (भावप्र०) (पु०)  
वसुः सूर्यस्तभ्रान्ना कायतीति कै आतोऽनुपेति कः । ६  
मदारका पेड़ । ७ वनहुला वृक्ष, बड़ी मौलसिरी । ८ पुष्प-  
विशेष । 'यहं पुष्प सफेद और लाल दो प्रकारका होता  
है । पर्याय—वसु, शैव, वक, शिवमल्लिका, पाशुपत,  
शिवमत, सुरेष्ट, शिवशेखर । गुण—कटु, तिक्त, उष्ण,  
पाचनं शीतल, दीपन, अजीर्ण, घात और शुल्मनाशक ।  
श्रेय पुष्प—रसायन । (राजनि०) ९ पीतमुद्ग, पीली मूँग  
वसुकर्ण (सं० पु०) वसुक गोलमें उत्पन्न एक मन्त्रद्रष्टा-  
ऋषि ।

वसुकल्प—एक प्राचीन कवि । इन्होंने अपने ग्रन्थमें केशव,  
वाण, योगेश्वर और राजशेखर कविका उल्लेख किया है ।

वसुकल्पदत्त—एक प्राचीन कवि ।

वसुकोट (सं० पु०) वसुनि घने कोट इव प्राथकत्वात् ।  
याचक ।

वसुकृत् (सं० पु०) वसुकके गोलमें उत्पन्न एक मन्त्रद्रष्टा  
ऋषि ।

वसुकोदर (सं० ह्रो०) तालीशपत्त ।

वसुक (सं० पु०) एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका नाम । इस  
नामके दो ऋषि हुए हैं । एक इन्द्रके गोलमें उत्पन्न हुए  
थे; दूसरे वशिष्ठके गोलके थे ।

वसुकर्म—एक वैचारण । गणरत्नमहोदधिमै इनका  
उल्लेख है ।

वसुगुप्त—सिद्धांतचन्द्रिका, स्पन्दसूत्र और स्पन्दकारिकाके  
रचयिता । ये मष्ट कल्लट और राजानक श्रोत्रामके गुरु  
थे । सर्गदर्शनसं ग्रहमें इनका उल्लेख देखा जाता है ।  
ये वसुगुप्ताचार्य नामसे विख्यात थे ।

वसुबन्ध (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक व्यक्तिका  
नाम । (भारत द्रोणपर्व)

वसुचरण (सं० पु०) डगणके चौथे भेदका नाम । इसके  
आदिमें गुरु और फिर दो लघु होते हैं ।

वसुचारुक (सं० ह्रो०) स्वर्ण, सोना ।

वसुच्छिद्रा (सं० खी०) महाभेदा ।

वसुजित् (सं० त्रि०) वसुजयकारी, वसुको जीतनेवाला ।  
(अथर्व १।२०।१६)

वसुता (सं० खी०) वसुसत्त्वा, धनयत्ता ।

(शुक् ६।१।१३)

वसुताति (सं० खी०) धनविस्तार ।

(शुक् १।१२।१२ उष्य)

वसुत्ति (सं० खी०) धनलाभ ।

वसुत्व (सं० ह्रो०) वसोर्भावः त्व । वसुका भाव या  
धर्म । (शुक् १०।६।१।१२)

वसुत्वन् (सं० ह्रो०) वासक, वसुत्वयुक्त ।

वसुव (सं० पु०) वसुनि ददातीति दा-क । १ कुबेर ।

वसु घन ददातीति दा-क । २ विष्णु । (भारत १३।१४।४२,  
(त्रि०) ३ घनदाता ।

वसुदत्त (सं० पु०) कथासरित्सागरोक एक व्यक्तिका  
नाम । (कथा० २।१।५२)

वसुदत्तपुर (सं० ह्रो०) एक नगरका नाम ।

वसुदा (सं० खी०) १ स्कन्द माताओंमेंसे एक । २ पृथ्वी ।  
३ माली राक्षसकी पत्नी । यह नर्मदा नामकी गंधर्वी  
की पुत्री थी । इसके अनल, निल, हर और  
नामक चार पुत्र थे, जो विभीषणके अमात्य थे ।

वसुदान (सं० पु०) १ धनदान । २ विदेहराजके एक पुत्रका नाम । ( भात २।४।२६ ) ३ वृहद्रथके एक पुत्रका नाम । ४ हिरण्यरेताके एक पुत्रका नाम ।

( भागवत ५।२०।१५ )

वसुदामन् ( सं० पु० ) वृहद्रथके एक पुत्रका नाम ।

वसुदामा ( सं० स्त्री० ) स्कन्द माताओंमेंसे एकका नाम ।

( महाभारत शल्यपर्व )

वसुदायन ( सं० लि० ) वसुदा, धन देनेवाला ।

वसुदेव ( सं० स्त्री० ) अमिमत्त धनप्रदान ।

वसुदेव ( सं० पु० ) वसुना धनेन दीयतीति दिव्-अच् ।

१ श्रीकृष्णके पिता । पर्याय—आनकदुन्दुभि, शूर, कृष्ण-पिता । वसुदेवेन पूर्वपुण्यके फलसे श्रीकृष्णकी पुत्र-रूपमें पाया था । ये चन्द्रवंशीय यदुकुलोद्भव देवमीडुप-तनय शूरके पुत्र थे । यदुकुलपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पिता एवं पांडवमाता कुन्तीदेवोके भ्राता थे । इनके जन्म समय स्वर्गमें दुन्दुभि बजनेकी आवाज सुनाई पड़ी थी, इसलिये इनका दूसरा नाम आनकदुन्दुभि रखा गया । इनकी माताका नाम महिषी था । वसुदेव अपने पिताके सबसे बड़े पुत्र थे । ये अत्यन्त सुन्दर, यथेष्ट पत्नी एवं चन्द्रमाके समान कान्तिशाली थे ।

वसुदेवकी पौरवी, रोहिणी, मदिरा, घरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शाश्वतदेवा, सुदेवा, देवरक्षिना, वृकदेवी तथा देवका नामक चौदह स्त्रियां एवं सतनू तथा बड़वा नामक दो परिचारिकाएँ थीं । उनकी पहली तथा सबसे बड़ी पत्नी वाहोक्की कन्या रोहिणा थीं । उपरोक्त पतिवर्गके मध्य शेष आड़ुफके पुत्र देवका कन्याएँ थीं । उनमें सबसे छोटी देवकी ही, भगवान् कृष्णकी माता थीं । देवकके भाई उपसेनका पुत्र कंस मथुराका राजा था । इस तरहसे वसुदेव कंसके बहनोई थे ।

एक समय महवि-नारदने कंसके पास आ कर कहा—'महाराज ! मैं ब्रह्मादि देवताओंको मन्त्र द्वारा जान सका हूँ, कि तुम्हारी बहिन देवकीके गर्भसे जो आठवाँ पुत्र पैदा होगा, उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी ।' गार्दके मुखसे अपने मरनेकी बात सुन कर असुर कंसने देवकीके गर्भच्छेदन करनेका संकल्प किया । तत्पुत्रार उसने

देवकी तथा वसुदेवको कैद कर रखा । एक एक करके कंसने देवकीके दस प्रसूत बच्चोंको मार डाला । सप्तम गर्भ योगमाया द्वारा रोहिणीके गर्भमें संचारित हुआ । अष्टम गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ । इसी समय गोकुलमें नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे विष्णु-शरीरसम्भवा योगनिद्राका जन्म हुआ था । योगनिद्राके पैदा होनेकी बात यशोदा तककी मालूम नहीं हुई ।

इधर वसुदेव अपने आठवें पुत्रको धीवत्सलांछित तथा दिव्यलक्षणसम्पन्न देख कर कंसके भयसे डोले—हे अधोक्षत्र ! इस रूपका परित्याग करो । तुमसे पहले पैदा होनेवाले मेरे छः पुत्रोंको दुष्टूल कंसने मार डाला है । वसुदेवकी बातें सुन कर भगवान्ने अपना वह रूप संहार करके कहा—पिता ! मुझे शीघ्र गोपपति नन्दके यहां ले चलें । भगवान् कृष्णकी ऐसी बात सुन कर वसुदेव उसी समय उन्हें गोदमें उठा कर वहां शीघ्रतासे गोकुलकी ओर बढ़े एवं यमुना नदी पार कर गोकुल पहुंचे । इस समय तक भी यशोदाकी अपनी पुत्री होनेकी खबर मालूम न हुई थी । वसुदेवने चुपकेसे यशोदाके शयनागारमें प्रवेश किया एवं भगवान् कृष्णको उसके समीप लिटा दिया । इसके बाद वे यशोदाकी तत्कालीन प्रसूत पुत्रीको गोदमें उठा कर वहांसे अपने स्थानको लौट आये । पीछे कंसके पास जा कर उन्होंने अपनी लड़की होनेकी सूचना दी । कंस तथा कृष्ण देखे ।

२ स्वनाममपगत कलियुग-राजविशेषके अमात्य । ये देवभूतिको मार कर स्वयं राजाहुए थे ।

“शुभ्रं हत्वा देवभूतिं कपवोऽमात्यस्तु कामिन्म् ।  
स्वयं करिष्येऽस्मिन् वसुदेवोऽमहामतिः ॥”

( भाग० १२।१।८ )

( पत्नी० ) वसवो देवता यस्य । ३ धनिष्ठा नक्षत्र ।

वसुदेव—मलमासनिर्णयतन्त्रके प्रणेता ।

वसुदेवता ( सं० स्त्री० ) १ धनिष्ठा नक्षत्र । ( बृहत्सं० ८।२२ ) पु० ) २ वसुदेव ।

वसुदेवता ( सं० स्त्री० ) वसवो देवता यस्याः । धनिष्ठा नक्षत्र ।

वसुदेव प्रसाद—सच्चिदानन्दानुमयपदोपिकाके प्रणेता ।

वसुदेवब्रह्मप्रसाद ( सं० पु० ) एक प्रबंधकारका नाम ।  
 वसुदेवभू ( सं० पु० ) वसुदेवात् भवतीति भू क्विप् । श्री-  
 कृष्ण ।  
 वसुदेवामज्ज ( सं० पु० ) वसुदेवस्यात्मजः । श्रीकृष्ण ।  
 वसुदेव्या ( सं० स्त्री० ) धनिष्ठा नक्षत्र ।  
 वसुदैव ( सं० क्ली० ) धनिष्ठा नक्षत्र । ( बृहत्सं० ७।११ )  
 वसुदैवत ( सं० क्ली० ) धनिष्ठा नक्षत्र । ( बृहत्सं० १५।३० )  
 वसुद्रुम ( सं० पु० ) उदुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़ ।  
 वसुधर—एक प्राचीन कवि ।  
 वसुधरा ( सं० स्त्री० ) बौद्ध भिक्षुकभेदः ।  
 वसुधर्मा ( सं० पु० ) महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम ।  
 वसुधर्मिका ( सं० स्त्री० ) स्फटिक, बिल्ली ।  
 वसुधा ( सं० स्त्री० ) वसुनि रत्नानि दधाति धारयतीति धा-क्, सुवर्णादीनामाकरत्वात् तथात्वं । १ पृथ्वी । वसु-  
 धनं दधाति घत्ते इति धा-क्विप् । ( त्रि० ) २ धनदाता,  
 वसु अर्थात् धन देनेवाला ।  
 वसुधाखजूरिका ( सं० स्त्री० ) वसुधा-जाता खजूरिका ।  
 भूवज्जूरिका, खजूरोका पेड़ ।  
 वसुधाघर ( सं० पु० ) १ पर्वत । २ विष्णु ।  
 वसुधाधिप ( सं० पु० ) वसुधायाः अधिपः । राजा,  
 पृथिवीपति ।  
 वसुधाधिपत्य ( सं० क्ली० ) वसुधायाः अधिपत्यं । वसुधा-  
 का अधिपत्य, राजत्व ।  
 वसुधान ( सं० पु० ) पृथ्वी ।  
 वसुधापति ( सं० पु० ) वसुधायाः पतिः । पृथिवीपति ।  
 वसुधापरिपालक ( सं० पु० ) वसुधायाः परिपालकः ।  
 वसुधापालनकारी, राजा ।  
 वसुधापाल ( सं० पु० ) वसुधापालनकारी, राजा ।  
 वसुधार ( सं० पु० ) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम ।  
 ( मार्क० पु० ५५।७ )  
 वसुधारा ( सं० स्त्री० ) वसुवत् रत्नस्यैव धारा यत्रो  
 पस्थाः । १ बौद्धशक्तिविशेष । पर्याय—तारा, महाश्री,  
 गौंकार, साहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता,  
 गिधा, लोकेश्वरी, आत्मज्ञा, खड्गवासिनी, भद्रा, वैश्या,  
 नीलसरस्वती, शंखिनी, महातारा, धनंदाता, त्रिलोचना ।

( हेम ) वसुनां रत्नानां धारा समन्ततिर्यक् । २ कुपेरपुरी ।  
 ( शब्दरत्नमाहा ) ३ तीर्थविशेष । ( भारत ३।२।७२ )

वसोवृत्चेदिराजस्य प्रिया धारा, वसुतो घृतस्य वा  
 धारा । ४ चेदिराज वसुके उद्देशसे घोको जो धारा दी  
 जाता है, उसे वसुधारा कहते हैं । नान्दीमुख श्राद्धमें वसु-  
 धारा देनी होती है । यह धारा चेदिराज वसुकी अति  
 प्यारी है, इसीलिये इसे वसुधारा कहते हैं । दीवारको  
 नोचमें इसकी धारा दी जाती है । नान्दीमुख श्राद्धमें पहले  
 षष्ठोमार्कण्डेयदिकी पूजा करके वसुधारा देनी चाहिये ।  
 वसुधाराके बाद श्राद्ध किया जाता है ।

वसु शब्दसे घृत, चेदिराज वसुकी प्रीतिकामनासे  
 तृत्के द्वारा पांच वा सान धाराय' दी जाती हैं । यह  
 धारा न तो बहुत लम्बी और न बहुत छोटी ही होनी  
 चाहिये । दीवार पर नाभि परिमित स्थानसे यह धारा  
 वृ जाती है । यह वसुधारा साम, ऋक् तथा यजुर्वेदियों-  
 के पृथक् पृथक् होनी है ।

पहले दीवारके नाभिपरिमित स्थानमें ७ सिं'दूरकी  
 पं ७ नन्दनकी लकीर खींच कर घृतकी धारा देनी  
 होती है । सामवेदी लोगोंको चाहिये, कि पहले कोशोमें  
 दू ले कर निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करें, इसके बाद  
 वसुधारा देवे । मन्त्र यथा—

"यद्ब्रूचो हिरण्यस्य यद्वा वचो गवानुत ।

यत्यस्य ब्रह्मणो वचस्त्वेन मांघ संसृजामहि ॥"

यजुर्वेदीगण निम्नोक्त मन्त्रसे वसुधारा देवे—

"वसोः पवित्रमसि शतधारे वसोः पवित्रमसि सहस्र-  
 धां देयस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण  
 सुवा कामधुश्च ।"

इस मन्त्रका पाठ करके एक एक धारा देवे ।  
 प्रत्येक धारा देनेके समय इस मन्त्रका पाठ करना  
 चाहिये । किन्तु ऋग्वेदियोंको पृथक्सात मन्त्रों द्वारा  
 सात्वधाराय' देनी होती हैं । ऋग्वेदियोंके मन्त्र—

अप संचर आगच्छन्तो भूरिधारे पयस्वती । घृत-  
 प्रघातंसुहृते सुचिप्रते । राजंगम यस्य यस्य भुवनस्य  
 रोदस् आत्म रैते सिचितं यन्मनुकृतम् ।

आग्या इव यनुत्तमे तवासुब्रजा अमिचाकसीमि ।  
 यत् वेमः श्रुपते यत् यतो पठते घृतस्य धारा मनुकृत-  
 वधन्ते



नों ही पुतोंका नाम यसुवन्धु रखा था। तृतीय पुत्र सर्वास्तिवाद-शाखाध्यायी हो कर एवं अर्द्धम आचरण करके ज्ञानमार्गानुगामी हो गये थे। वे अपनी माताके नामानुसार विलञ्जीवत्स नामसे विख्यात हुए। ज्येष्ठ यसुवन्धुने कनिष्ठकी तरह ज्ञानमार्गानुगामी हो कर भी प्रकृत ज्ञान वा मोक्ष लाभसे वञ्चित हो कर आत्महत्या करनेकी चेष्टा की। किन्तु पीछे उन्होंने मैत्रेयके निकट महायान-मतविद्वित्ति लाभ कर उस संकल्पका त्याग किया। इसके बाद वे जम्बूद्वीपमें लौट आये एवं एकान्त मन्त्रे ज्ञानालोचनामें प्रवृत्त हुए। इसलिये वे असंग यसुवन्धुके नामसे प्रसिद्ध हुए। जम्बूद्वीपमें वास करनेके समय उन्होंने महायानसूत्रका अथलभन करके उपदेशकी रचना की थी।

द्वितीय ध्याताने सर्वास्तिवाद शाखाध्यायी हो कर अन्य दो ध्यातार्थोंकी तरह आत्मज्ञान प्राप्त किया था। उनके समान दूरदर्शी तथा ज्ञानवान् उस समय कोई न था। वे सिर्फ यसुवन्धुके नामसे विख्यात हुए थे।

बुद्धनिर्वाणकी १३वीं शताब्दीके बाद विन्ध्याचल पार्श्व-वासी विन्ध्याकर तीर्थक नामक एक पंडित एक समय अयोध्या नगरके राजा विक्रमादित्यके राजदरवार में उपस्थित हुए। उन्होंने राजसभामें बैठ कर वहाँके बौद्ध-पुरोहितोंके साथ शास्त्रार्थ करनेकी प्रार्थना की। उस समय मणिरात, यसुवन्धु प्रभृति बौद्ध मनोपिणग कोई वहाँ उपस्थित नहीं थे। वे कार्योपलक्षमें राज्यके बाहर वास करते थे। उस समय केवल यसुवन्धुके एक अतिबुद्ध बुद्धमित्त वहाँ उपस्थित थे। वे राजाकी आज्ञासे शास्त्रार्थ करनेके लिये राजसभामें आये सही, पर वृद्धावस्थाके कारण कोई विशेष तर्क नहीं कर सके। बात बातमें उन्हें पराजय होना पड़ा। राजासे पुरस्कार प्राप्त कर पंडित तीर्थकने अपनी वासभूमि विन्ध्याचलको प्रस्थान किया।

यसुवन्धु जब लौट कर आये, तब उन्हें मालूम हुआ, कि उनके गुरु बुद्धमित्त एक तीर्थक नामक पंडितसे शास्त्रार्थमें पराजय हुए हैं। यह सुन कर वे बहुत दुःख हुए एवं उन्होंने उस तीर्थकके साथ फिर शास्त्रार्थ करनेके लिये उसकी बहुत खोज की, किन्तु दुर्भाग्यवश दोनों में भेंट न हुई।

यसुवन्धु अन्य कोई उपाय न देख कर उस तीर्थकके मतका खंडन करते हुए एक बड़े प्रबंधकी रचनामें प्रवृत्त हुए। इस प्रबंधके समाप्त होने पर राजाने यसुवन्धुको तीन लाख स्वर्णमुद्रा पारितोषिक रूपमें दी थी। इस धनसे यसुवन्धुने बुद्धकी तीन मूर्त्तियोंका निर्माण किया। उनमें एक भिक्षुपिणोंके लिये एवं अन्यत्र दो मूर्त्तियाँ सर्वास्तिवाद-शाखाध्यायी तथा महायान साम्प्रदायिक लोगोंके लिये निर्दिष्ट हुई थीं।

इसके बाद यसुवन्धुने पवित्र बुद्धधर्म पुनः संस्थापन करनेके लिये बहुत यत्नके साथ वैभाषिक तत्त्वका अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने इस मतके प्रचार करनेका संकल्प किया। इस तरहसे वे मूलप्रबंधसे अपनी दैनिक पकृता या उपदेशके विषयीभूत अर्थोंका सारसंग्रह करके उसकी रचना करते थे एवं उस रचनाकी एक ताम्रपत्र पर लिख कर डिंडोरेके साथ संवत् उपदेश किया करते थे। उनकी गाथाका गर्भविकाश तथा मोमांसा देख कर कोई उनके विरुद्ध मतप्रकाश करनेमें साहसी नहीं होता था। इस तरह ईसासे भी अधिक गाथाएँ रचित हो कर समस्त वैभाष्यकी व्याख्या निष्पन्न हुईं। इन सब गाथाओंका संग्रह प्रबंध कोय वा कोयकार नामसे विख्यात है।

व्याख्याप्रबंध समाप्त होने पर यसुवन्धुने ५०० स्वर्ण-मुद्रा पुरस्कारमें पाई एवं उस प्रबंधकी काबुलराज्यके अमिधर्ममतानुवर्त्तों बड़े बड़े पंडितोंके समीप भेज दिया एवं उन्हें कहला भेजा, कि जो पंडित उनके मतका खंडन करेंगे, वे ही उक्त पुरस्कार पावेंगे। उस प्रबंधकी पढ़ कर बौद्ध-यतिगण बहुत संतुष्ट हुए। उस प्रबंधमें बौद्धधर्मका इस तरह विस्तार देख कर वे पंडित लोग बहुत नकित हुए। उन प्रबंधमें किसी किसी स्थल पर पद्य बहुत ही कठिन था, इसलिये उन पंडितोंने उन दुर्बोध पद्योंका गद्यानुवाद करनेके लिये यसुवन्धुसे प्रार्थना की एवं पुरस्काररूपक ५०० स्वर्णमुद्राएँ और भेज दीं।

इसके बाद यसुवन्धु अमिधर्मकोय लिखने लगे। इस प्रबंधमें इन्होंने सर्वास्तिवादमतका यथेष्ट समर्थन किया था एवं स्वल्पप्रत्येक मतोंकी निंदा की थी। इससे काबुलके बौद्ध पंडितोंके साथ इनका घोर विरोध उपस्थित

पूर्वोक्त अयोध्याराज विक्रमदित्यके पुत्र प्रादित्य तथा उनकी माताने यमुबन्धुसे वीरधर्मकी शिक्षा ली। पिताकी मृत्युके बाद जब प्रादित्य पितृमिहासन पर बैठे, तब उन्होंने अपनी माताके अनुरोधसे अपने मुकुटकेकी अयोध्या बुला लिया। यहाँ तीर्थक-मन्मथदायमुक्त तथा प्रादित्यके बहनोई ब्राह्मण-तनय यसुराजने व्याकरणके मनानुसार यमुबन्धुकृत कोषग्रन्थका प्रतिवाद प्रचार किया। यमुबन्धुने भी अपने पक्षका मन्मथन करनेके लिये उस प्रतिवादका खंडन करते हुए एक प्रथमकी रचना की थी। उसके लिये वीरधर्मके आस्थायात्रा राजाने उस महापंडित यमुबन्धुको एक लाख एवं धर्ममीला राजमानाने दो लाख स्वर्णमुद्राएं पारितोषिकमें दी थीं। इस धनसे यमुबन्धुने काहुल, पुण्यपुर एवं अयोध्यामें तीन सुरमूर्ति स्थापन की थी।

यमुबन्धुके इस तरह प्रतिपत्तिविस्तारसे तीर्थकगण अप्रतिभ हो पड़े। उनको परास्त करनेके लिये तीर्थकगण मिहमात्र नामक एक महापंडितकी अयोध्या बुला लाये। उक्त पंडितने यमुबन्धुकृत कोषका मत खंडन करनेके लिये दो प्रथमोंकी रचना की। उनमेंसे १० सहस्र गाथायुक्त एक प्रथम वैभाषिककी व्याख्या प्रतिपादित हुई थी। दूसरा प्रथम १२ हजार गाथाओंमें लिखा गया था, उसमें तीर्थक राजाने अपना पक्ष समर्थन करते हुए अमिधर्मकोषका विपरीत अर्थ किया था।

इन दोनों प्रथमोंकी रचना करनेके बाद सिहमदने यमुबन्धुको तर्क करनेके लिये ललकारा, किंतु यमुबन्धु फिर धर्मके पादानुवादमें प्रवृत्त नहीं हुए। उन्होंने उन्हें

पण्डितोंके निकट दोनोंके विषयस्त मतका गोमांसामा अर्पण किया।

कहा जाता है, कि यमुबन्धु पहले अष्टादश शाखाके धर्ममतकी आलोचनामें प्रवृत्त हो कर हीनयानमतके हो पक्षपाती हो गये थे। पहले उन्हें महायानमतमें विश्वास नहीं होता था। वे कहते थे,—प्रकृत प्रस्तावसे इसमें वीरधर्मकी कोई बात नहीं है। पीछे वे कहीं महायानमतका खंडन करते हुए किसी ग्रन्थकी रचना न कर बैठे, इसलिए उनके भाईने उन्हें पुण्यपुर बुला कर महायानमतकी शिक्षा दी। उस समय उनके मनमें महायानमतकी अधीकृत समालोचनाके परिताप उपस्थित हुआ, वे अपनी जोम काट देनेका तैयार हुए। उनके भाईने इस समय विरोध अनुरोध करके उन्हें इस दुर्विषय कार्यसे रोक और कहा, इसके बदले तुम महायानमतके प्रतिपोषक दो एक ग्रन्थ लिख कर साम्प्रदायिक उन्नतिकी चेष्टा करो। अपने भाईके मुखसे ऐसी बात सुन कर यमुबन्धुने अत्यन्तसक, निर्वाणसूत्र, सद्धर्म-पुंडरीक, प्रज्ञापारमिता, विमलकीर्त्ति तथा अन्यान्य सूत्र ग्रन्थोंकी टीकाकी रचना की थी। इनके अतिरिक्त उन्होंने महायानमतके विस्तारार्थ कई एक शास्त्रग्रन्थोंकी रचना की थी।

अयोध्यानगरमें असली धर्मकी अवरूपमें यमुबन्धुने मधेलीला संस्मरण की। तत्कालके तारानाथकृत मन्मथराजवंशीतिवृत्त पाठ करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वजनपदापोषर (धंगराजेश्वर) धोचन्द्रके पुत्र राजा धर्मचन्द्रकी सभामें यमुबन्धु विद्यमान थे।

